धन्वन्तरि

तदेव युक्तं भैषज्यं यदारोग्याय कल्पते ।
स चैव भिषजां श्रेष्ठो रोगेभ्यो यः प्रमोचयेत् ॥ —च० सू० १-१३२

वर्ष २८ | विजयगढ़ (अलीगढ़) दिसम्बर १९५४ | अङ्क १२

निवेदन

यह अङ्क इस वर्ष का अन्तिम अङ्क है। आगामी वर्ष का विशेषांक–"चरक-चिकित्सांक" का छपना प्रारम्भ होगया है। इसमें चरक-संहिता चिकित्सा स्थान सटीक एवं विशेष वक्तव्य सहित प्रकाशित होगा तथा चरक-चिकित्सा पद्धति की विशेषता, आदि विषय के महत्वपूर्ण लेख होंगे। लगभग ६०० पृष्ठों का बहुत ही उपयोगी विशेषांक बहुत अधिक व्यय करके तैयार किया जारहा है। आगामी साधारण अङ्क भी पहिले से अधिक उत्तम और उपयोगी तथा समय पर प्रकाशित करने की व्यवस्था कर रहे हैं। अब आपसे निवेदन है कि आप भी हमारी थोड़ी सहायता करें। अपना वार्षिक मूल्य ५॥) तुरंत ही मनियार्डर से भेज दें। २-१ नवीन ग्राहक भी बनाकर हमारा उत्साह बढ़ावें। यदि धन्वन्तरि के ग्राहक चाहें तो २-२ ग्राहक बड़ी आसानी से बना सकते हैं। इस बार का विशेषांक बहुत अधिक उपयोगी और हर दृष्टि से विशाल होगा। आपके सहयोग के लिए निवेदन है।

"श्री. आचार्य जी का प्रस्तुत लेख बड़ा ही खोजपूर्ण और तथ्यपूर्ण है। आपका ही 'लंका में आयुर्वेद प्रचार" शीर्षक एक लेख धन्वन्तरि के पूर्व अङ्कों में प्रकाशित हो चुका है। आप विश्व लेखक संघ के सदस्य हैं तथा इण्टर नेशनल आयुर्वेदिक रिसर्च इन्स्टीस्यूट के अन्तर्गत आयुर्वेद पर रिसर्च (अन्वेषण) कर रहे हैं। आपके लेखों से स्पष्ट प्रमाणित होता है कि भारतेतर देशों ने चिकित्सा क्षेत्र में भारत से क्या सहायता ली थी, आयुर्वेद कितना पूर्ण और उन्नत चिकित्सा शास्त्र था। काल-चक्र के प्रभाव से, पराधीनता के अभिशाप स्वरूप अब उसका सर्वथा विपरीत ही दृष्टिगोचर होता है। हमारी राष्ट्रीय सरकार भी विदेशियों के आडम्बरपूर्ण प्रचार में फंस गई है और वह अपने देश के छुपे रत्नों की खोज के स्थान पर विदेशियों के आकर्षक कांच-टुकड़ों के लिए हाथ पसारती है। कैसी विडम्बना है!"

—सम्पादक।

प्राचीन तिब्बत में आयुर्वेद का प्रसार

लेखक—आचार्य परमानन्दन शास्त्री, डी-लिट।

भारतवर्ष में वैदिक आर्यों ने जिस आयुर्वेदाख्य चिकित्सा-विज्ञान की नींव डालकर उसका व्यापक सर्वाङ्गीण विकास भी कर लिया था वह भारत में ही नहीं अपितु सारे संसार के प्रायः अन्यान्य देशों में काल क्रम से फैलता हुआ भारतीय चिकित्सा सम्प्रदायाचार्यों का गुणगौरव बढ़ाता ही गया। तिब्बत, जो ईसवी सन् की ७ वीं शताब्दी के मध्यकाल से ही भारत का सांस्कृतिक उपनिवेश हो चुका था, बौद्ध संस्कृति के साथ ही भारतीय चिकित्सा विज्ञान को भी अपने यहां उधार ले गया। वहां बहुत से भारतीय चिकित्सा ग्रन्थ आज भी तिब्बती अनुवाद के रूप में पाये जाते हैं। सिद्ध नागार्जुन के जीव-सूत्र तथा अवभेषजकल्प, योगशतक, वाग्भट्ट की अष्टाङ्गहृदय संहिता, वैद्यक सिद्धसार, महौषधिवल, आयुर्वेदसार संग्रह तथा शालिहोत्रकृत अश्ववैद्यक आदि कई एक ग्रन्थ इनमें प्रमुख कहे जायेंगे। रसायन तथा रसशास्त्र के भी बहुत से ग्रन्थ तिब्बत में उपलब्ध हैं जिनका यथार्थ स्रोत भारत ही माना जाता है (देखिये इण्डोएशियन कल्चर, भाग २, खण्ड १, पृष्ठ ११)। जर्मनी के सुप्रसिद्ध विद्वान् एच. लॉफर ने अपने खोजपूर्ण ग्रन्थ बिट्रेज जुर केण्टनिस डेर टिबेटिस्केन मेडिसीन' (बर्लिन, लिपजिग्से १६०० ई० में दो भागों में प्रकाशित) में इस सम्बन्ध में पर्याप्त प्रकाश डाला है।

तिब्बत में ८ वीं शताब्दी में आयुर्वेद के लुप्त ग्रन्थ 'चतुस्तन्त्र' का तिब्बती अनुवाद हुआ था जिस संस्कृत मूल चतुस्तन्त्र का एक भी ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है—वह सर्वांश में लुप्त हो चुका है, और इसके लेखक आचार्य वर्य का नाम पता करना भी आज सर्वथा असम्भव हो चला है। तब से लेकर भारतीय आयुर्वेद के उत्तमोत्तम ग्रन्थों का जो तिब्बती भाषा में अनुवाद होना प्रारम्भ हुआ और वह भी उतनी बड़ी संख्या में कि इन अनुवादों का भी पूरा-पूरा ब्यौरा देना सुलभ भी नहीं और सुखसाध्य भी नहीं। प्रोफेसर जोहान् नोबेल ने जर्मनी भाषा के अपने खोजपूर्ण निबन्ध—आइन आल्टर मेडीजिनिस्कर संस्कृत टेक्स्ट उण्ड साइन ड्रटंग—(अमेरिकन

ओरियण्टल सोसाइटी जर्नल संख्या–११, जुलाई-सितम्बर १९५१, पृ० १-३५) में महायान बौद्ध सम्प्रदाय के संस्कृत ग्रन्थ सुवर्ण प्रभास सूत्र के १६ वें अध्याय—व्याधि प्रशमन–पर विचार किया है। यह अध्याय तीसरी शताब्दी ईसवी (अनुमानतः) से बाद की नहीं है। इसका तिब्बती अनुवाद बड़ा ही परिनिष्ठित है। इस ग्रन्थ के दो चीनी अनुवाद भी उपलब्ध हैं—एक मध्य एशियायी विद्वान् धर्मक्षेम का जो ४१४ ई० में चीन गये हुए थे और ४३३ ई० तक वहां रहे थे। दूसरा अनुवाद है प्रसिद्ध चीनी यात्री इत्सिंग का जो ७१३ ई० में मरा था। इस अध्याय में कुल १३ श्लोक रहने पर भी आयुर्वेद के मूल सिद्धांत के अध्ययन में एक खासी विशेषता है, और यह कई एक आवश्यक विषयों पर चरक और सुश्रुत की संहिताओं से मौलिक विभेद रखता है।

इस संबंध में यह भी नहीं भूलना चाहिये कि तिब्बत में बौद्ध आयुर्वेदज्ञों के ग्रन्थों के प्रचार के साथ ही भारतीय आयुर्वेद की 'बृद्धत्रयी' के आचार्य वाग्भट्ट का तो इतना अधिक स्वागत हुआ था कि उसकी आधे दर्जन के करीब संस्कृत व्याख्याओं का भी तिब्बती अनुवाद मिलता है। यहां तक कि अष्टांगहृदय वैदूर्यक भाष्य, पदार्थचन्द्रिका प्रभास नाम अष्टांगहृदयवृत्ति और वैद्यकाष्टांग हृदय वृत्तभैषज नाम सूची, इन तीन व्याख्याओं का अस्तित्व भी आज केवल उनके तिब्बती अनुवाद के बल पर ही है। देखिये—सुरेन्द्रनाथदास गुप्त लिखित भारतीय दर्शनेतिहास, भाग, २, पृ० ४३६।

अष्टाङ्गहृदय के तिब्बत में व्यापक प्रचार-प्रसार के मूल में कुछ लोगों का यह विश्वास है कि वह आचार्य वाग्भट्ट के सम्प्रदायतः बौद्ध होने के कारण ही हुआ था। परन्तु आधुनिक अध्ययन-अनुसन्धानों के बल पर यह निश्चित सा हो चुका है कि आचार्य वाग्भट्ट सम्प्रदायतः बौद्ध नहीं थे। प्रसिद्ध जर्मन विद्वान् जूलियस जौल्ली ने भी अपने ग्रन्थ 'मेडीजिन्न' में जो इन्साइक्लोपेडिया आफ इण्डो-आर्यान रिसर्च, भाग ३, खण्ड १० में कई दशाब्दियों पूर्व प्रकाशित हो चुका है यह संकेत किया है जिस पर विस्तृत विवेचना प्रकृत निबन्ध का विषय नहीं है। जो भी हो तिब्बत में सिद्धसार शास्त्र (८-१० शताब्दी) तथा अमृत हृदयाष्टांगगुह्योपदेशतन्त्र। (७२८-७८६ ई०) की चर्चा लुईरेनो तथा जीव फीजियोजन ने भी की है। देखिए-एल, इण्डे क्लासिके, हनोई, १९५३, पृ० १५८।

यह अनूदित चिकित्सा विज्ञान का साहित्य भी इतना जनप्रिय एवं जन लाभकारी हुआ कि १३ वीं शताब्दी में मंगोलिया में भी तिब्बतियों द्वारा लामावाद के प्रचार के साथ ही प्रचारित हो चला था और तब से ये तिब्बती अनुवाद मंगोल भाषा में अनुवाद के रूप में लाये गये। इन तिब्बती भेषजों का उपयोग बुरजात, दसुंगर, तंगुत् बोला कल्मुक तथा लेपचा आदि हिमालयस्थ तिब्बती जनता ने किया। प्रसिद्ध फ्रांसीसी विद्वान् लिटार्ड ने 'हिस्ट्री डेला मेडीसिन' में इसका विषद विवेचन किया है।

जर्मनी विद्वान प्रोफेसर जूलियस जौल्ली के अनुसार तिब्बती चिकित्सा विज्ञान बहुतायत से भारतीय चिकित्सा विज्ञान पर ही आधृत है। उदाहरण स्वरूप शरीर के ९ द्वार तथा ९०० स्नायुओं का होना शारीर से – त्रिदोषवाद का सैद्धान्तिक रूप से परिग्रहण तथा दूध और मछली का संयोगज विष क्रिया जनकत्व और वेगधारण की सदोषता स्वस्थ वृत्त से–तीनों त्रिफला, नीलोफर, काली मिर्च, लहसुन, अद्रक. दालचीनी, कूठ की जड़ आदि भेषज विधान में:—बैल के सींग से चीरने का उपदेश तथा धान्य मुख, पक्षि तुण्ड, पशुतुण्ड आदि की आकृति वाले यन्त्रों का वर्णन, शल्य विज्ञान में- तथा गर्भ विज्ञान के अन्दर भ्रूण की योनि के परिचायक चिन्हों का निर्देश इसके प्रबल प्रमाण हैं। देखिये–मेडीजिन (जर्मनी) का अंग्रेजी रूपान्तर, सी० जी० काशिकर एम्० कृत, पूना, १९५१ ई०

पृ० २५। जौल्ली का यह भी कहना है कि भारतीय पशु चिकित्सा संबन्धी ग्रन्थ भी आदि काल में ही तिब्बती भाषा में अनुवादित हुए थे। देखिए-वहीं, पृ० २१।

तिब्बत में आदिम आयुर्वेद ग्रन्थ-

श्री० ई० एच० सी० वाल्स भी तिब्बती चिकित्सा विज्ञान से प्रसूत मानते हैं और इसका मौलिक रूप 'ग्युद्-सी' नामक तिब्बती चिकित्सा ग्रन्थ से प्रतिपादित है। देखिये-जर्नल, रायलएशियाटिक सोसायटी, लन्दन, अक्टूबर १६१० में प्रकाशित श्री वाल्स का दी टिबेटियन अनाटोमिक सिस्टम नामक निबन्ध।

ग्युद्सी का अर्थ-

तिब्बती भाषा में 'ग्युद्' का अर्थ होता है तन्त्र जो एलुइण्डे क्लासिके, हनोई १६५३, के पृ० ३६१ में श्री लुइरेनो तथा जिन फिलियोजन ने भी दिया है'। 'सी' का अर्थ होता है-चार। फलतः ग्युद्सी का अर्थ भी तिब्बती भाषा में वही होता है जो संस्कृत में चतुस्तन्त्र का।

कहा जाता है कि उक्त तिब्बती चिकित्सा ग्रन्थ मूल संस्कृत चतुस्तन्त्र का अनुवाद है और ४ तन्त्रों के रूप में ४ भागों में विभक्त है। यह भी कहा जाता है कि यह ग्रन्थ भगवान बुद्ध द्वारा मूलतः उपदिष्ट हुआ था। यह ग्युद्सी नामक ग्रन्थ तिब्बती चिकित्सा विज्ञान का मूलस्रोत है जिसके बारे में 'क्लोमाडे कूरुस्' का विषय-सूची व्याख्यानुवाद पठनीय हुआ है। इस पुस्तक की दो ब्लाक-प्रिण्ट प्रतियां इण्डिया आफिस के पुस्तकालय में सुरक्षित हैं जिसका नाम संस्कृत में ऊपर में अमृत हृदयाष्टांग-गुह्योपदेश दिया हुआ है। इसके प्रत्येक के चार भाग हैं। प्रथम के चार भागों में क्रमशः ८, ४३, २१० तथा ६२ पृष्ठ हैं और इस भाग की पुस्तकालय संख्या डी० १ है। द्वितीय के ४ भागों में भी क्रमशः ११, ४३, २२६, तथा ६२ पृष्ठ हैं और इसे डी० २ से संकेतित किया गया है। एक पुस्तक ब्रिटिश म्यूजियम में भी है जो आपेक्षिक स्पष्ट अधिक रहते हुए भी अपूर्ण है। यह भी कहा जाता है कि 'क्लोमाडे-कूरुस्' का विवरण उनके लिये एक तिब्बती लामा ने तैयार किया था। देखिये—जर्नल, एसियाटिक सोसायटी, बङ्गाल १८३५; पृ० १-२०।

तिब्बत में आयुर्वेदावतरण-

प्रकृत पुस्तक ग्युद्सी में तिब्बत में आयुर्वेदावतरण का क्रम बतलाते हुए लिखा गया मिलता है कि रिब्सोङ दिहु (ग्यु) त्सन के काल में (ईसा की ८-६ शताब्दी में) तिब्बती भाषान्तरकार वैरोत्सन या वैरोचन ने इसे काश्मीर में वैद्य पण्डित दवनोंगह की सहायता से अनुवाद करके उक्त राजा को समर्पित किया। उस समय इसे प्रसिद्ध वैद्य यूथोग तथा कई अन्य विद्वानों ने ग्रहण किया; और तब से परम्परया अवतरित होता हुआ वृद्धयूथोग से १३ वें वंशज यूथोग-जिसने अपने को पृथक् परिगणित कराने के लिये अपना नाम नव-यूथोग रखा था-तक आया। इस वैद्य ने इसमें बहुत सा संशोधन-परिवर्धन किया और इसका प्रचार किया। इस काल में, कहा जाता है कि, ६ व्यक्ति चिकित्सा विज्ञान के पण्डित हुए थे। देखिये-जर्नल, रायल एसियाटिक सोसायटी, लन्दन, १६१०, पृ० १२१८-६।

कहना न होगा कि यह चिकित्सावतरण परिपाटी भी भारतीय ही है और इस प्रकार का अवतरणक्रम आचार्य चरक तथा सुश्रुत द्वारा निर्दिष्ट आयुर्वेदावतरण परम्परा का अनुसारी ही कहा जायगा। साथ ही वृद्ध यूथोग से नव-यूथोग का पृथक्करण क्रम भी वृद्ध वाग्भट्ट, वृद्ध सुश्रुत आदि के पाथक्योतिहास की ओर स्पष्ट संकेत कर रहा है। पुस्तक के ऊपर लिखित संस्कृत नाम 'अमृत हृदयाष्टांग गुह्योपदेश' भी एक प्रकार से भारतीय अष्टांगहृदय संहिता की उपयुक्तता के अद्भुत प्रभाव का ही स्मरण करा डालता है।

तिब्बती शासक खिस्रोङ दिहु (धु)त्सन किंवा उसके काल के प्रधान वैद्य वृद्ध-युथोग का काल निर्धारण तिब्बती पुरातत्व एवं इतिहास के ज्ञाता एवं वैद्य पण्डित दवनोंगह का काल निर्णय काश्मीर के पुरातत्वविद् ही स्पष्टरूप से कर सकेंगे परन्तु प्रकृत अवतरण कथायें उद्दिष्ट वैरोचन तो अवश्य ही ध्यानि बुद्ध के साम्प्रदायिक अनुयायियों में से रहे होंगे-जिस बुद्ध की चर्चा सरमोनियर विलियम के 'बुद्धिज्म' नामक ग्रन्थ के पृष्ठ २०२ में उपलब्ध मिलती है, और जिन्हें बौद्ध ग्रन्थ 'ललित विस्तरा' में नील कायिक देवताओं में परिगणित हम पारहे हैं।

बौद्धधर्म का प्रसार ही मूल

बौद्ध साहित्य के अनुशीलकों के लिये यह बात छिपी नहीं है कि बौद्ध धर्म के भारतीय प्रचारक बौद्ध सिद्धान्तों के साथ ही बौद्ध संप्रदायानुमत भारतीय चिकित्सा विज्ञान के सुन्दर सिद्धान्तों का भी प्रचार किया करते थे। फलतः, उनके द्वारा प्रचारित आयुर्वेद विज्ञान का भगवान् बुद्ध द्वारा उपदिष्ट कहकर प्रख्यात किया गया होना भी कुछ आश्चर्यजनक नहीं।

यह भी संभव है कि भगवान् बुद्ध ने अपने शिष्यों को जो चिकित्सा विज्ञान संबन्धी उपदेश दिये थे उन्हें उनके शिष्यों ने चार तंत्रों में विभक्त कर लिपिबद्ध कर दिये हों, और उसी चतुस्तन्त्र के अनुवाद के रूप में 'ग्युदूसी, को तिब्बत में सर्वोपरि मान्यता मिली हो।

भगवान् बुद्ध द्वारा उपदिष्ट एक चिकित्सा सूत्र से सुप्रसिद्ध चीनी यात्री इत्सिंग (६७१-६९५ ई.) ने उद्धरण देकर हमें यह मानने को भी बाध्य कर रखा है कि उसके भारत भ्रमण काल में भारत में बौद्ध चिकित्सा विज्ञान का भी पर्याप्त प्रसार था। देखिये-तकाकुसु १, १२६-४०; १२७ पाददिप्पणी; १३४; २२२ पाददिप्पणी। भगवान् बुद्ध द्वारा औषधि उपदेश किये जाने का प्रमाण पूर्वी तुर्किस्तानान्तर्गत तुङ्हाङ्ग में स्टाइन महाशय द्वारा प्राप्त जिस प्राचीन चिकित्सा पुस्तक की चर्चा डाक्टर हार्नले ने की थी उसमें प्राचीन ईरानी भाषानुवाद के साथ जो मूल संस्कृत लेख भी उपलब्ध है जिसमें जीवक को संबोधित कर औषधोपदेश की चर्चा है। देखिये—आर. जी. भण्डारकर अभिनन्दन ग्रन्थ, भाग, १, पृ० ४१६; काश्यपसंहिता, निर्णयसागर १९३८ ई० उपोद्घात पृ० १७। यद्यपि प्रकृत जीवक के भी संबन्ध में कोई निश्चित मत स्थिर नहीं होसका है फिर भी इतना तो अवश्य मानना पड़ेगा कि ये जीवक भगवान् बुद्ध के सम-सामयिक वैद्य वा बौद्ध मतावलम्बी व्यक्ति थे और जिन्हें भगवान् बुद्ध से वार्तालाप का अवसर भी सम्प्राप्त हुआ था।

बौद्ध साहित्य में भगवान् बुद्ध को 'भैषज्य गुरु' की संज्ञा दिया जाना भी पर्याप्त ऐतिहासिक महत्व रखता है-भले ही वह 'निर्वाण' प्राप्ति के सरलतम उपाय प्रदर्शन करने के कारण ही उन्हें दीगई हो। अस्तु-

इस पुस्तक के ४ भागों में प्रथम दो भागों में क्रमशः रोगाधिष्ठान और रोगापतन पर मीमांसा हुई है और शेष दो भागों में यथाक्रम भेषज चिकित्सा तथा शल्यकर्म का विधान है। इस पुस्तक की टीकाएँ भी तिब्बती भाषा में हुई थीं जिनमें संङ्स-ग्याद-ग्या-त्सो की लिखी 'वैदूर्यपोङपो' नामकी व्याख्या चिकित्सा विज्ञान का चूड़ान्त ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा वाले छात्र ही पढ़ा करते हैं। इस टीका की एक ब्लाक प्रिण्ट कापी इण्डिया आफिस पुस्तकालय में संरक्षित है जिसके ४ खण्डों में क्रमशः ४०, २८३, ४६२ और २५० पृष्ठ हैं, और मुद्रण भी सुस्पष्ट है। इसके अलावा भी 'तन्ग्युर' तथा 'कद्ग्युर, में भी आयुर्वेदिक पुस्तकें बिखरी हुई मिलती हैं।

तिब्बती आयुर्वेद की सामनताएँ

तिब्बती चिकित्सा विज्ञान का मूलाधार ही भारतीय आयुर्वेद विज्ञान माना जाता है, फलतः उस चिकित्सा विज्ञान को भारतीय चिकित्सा विज्ञान से सर्व विध समानताएँ उपलब्ध होना स्वाभाविक

ही माना जायगा फिर भी पाठकों के अवलोकनार्थ यहां भी समानता के थोड़े से उदाहरणस्थल लिखना आवश्यक मानता हूं।

१—भारतीय आयुर्वेद के अनुसार शरीर के ७ मौलिक तत्व यथा क्रम रस, रक्त, मांस, मेदस्, अस्थि, मज्जा और शुक्र हैं जिन्हें एक शब्द में 'धातु' कहा जाता है। आयुर्वेदीय सिद्धान्तानुसार रस से रक्त, रक्त से मांस, मांस से मेदस्, मेदस् से अस्थि, अस्थि से मज्जा और मज्जा से शुक्र की उत्पत्ति मानी गई है। तिब्बती मूल चिकित्साग्रन्थ ग्युद्सी में भी रस, रक्त, मांस, मेदस् अस्थि, मज्जा और शुक्र ये सात शरीर धारक तत्व कहे गये हैं जिन पर जीवन आधृत भी बताया गया है।

२—भारतीय परम्परा के अनुसार वात, पित्त और कफ का शरीर में स्थान यथाक्रम पक्वाशय, आमाशय और छाती माना गया है। आचार्य चरक ने भी सूत्र स्थान महारोगाध्याय (२०) में लिखा है कि वस्ति वा मूत्राशय, पुरीषाशय, कटि, जानु, पांव और हड्डियां वायु के आश्रय स्थान हैं। इनमें पक्वाशय वायु का प्रधान आश्रय स्थान है। स्वेद, रस, लसीका, रक्त और आमाशय ये पित्त के आश्रय स्थान हैं। इनमें आमाशय पित्त का प्रधान स्थान है छाती, मस्तक, ग्रीवा, पर्व समूह, आमाशय और मेदस् ये कफ के आश्रय स्थान हैं। इनमें भी छाती प्रधानतः कफ का स्थान है। देखिये—

"तेषां त्रयाणामपि दोषाणां शरीरे स्थान विभाग मनुव्याख्यास्यामः। तद्यथा—वस्तिः पुरीषाधानं कटी सक्थिनी पादावस्थीनि वातस्थानानि, तत्रापि पक्वाशयो विशेषेण वातस्थानम्। स्वेदो रसो लसीका रुधिर मामाशय-श्चेति पित्तस्थानानि, तत्राप्यामाशयो विशेषेण पित्तस्थानम्। उरः शिरो ग्रीवा पर्वाण्यामाशयो मेदश्च श्लेष्मणः स्थानानि, तत्राप्युरो विशेषेण श्लेष्मणः स्थानम्।"—चरक १, २०।

तिब्बती चिकित्सा सिद्धान्त के अनुसार भी कफ का स्थान शरीर का ऊपरी भाग, पित्त का मध्य भाग तथा वायु का निम्न भाग माना जाता है। 'ग्युद्सी' के अनुसार कफ का आश्रय स्थान छाती, जबड़े, रसना, मस्तक और सन्धि स्थान हैं; पित्त का आश्रय स्थान पेट—पक्वाशय और आमाशय के बीच में हैं, और वात का आश्रय स्थान पंचप्राण, सिद्धान्तानुसार मस्तक, छाती, हृदय तथा कायका निचला भाग है। देखिये—

एशियाटिक सोसायटी, बंगाल का जर्नल, भाग ४। यही नहीं, भारतीय आयुर्वेद के सिद्धान्त के समान ही तिब्बती आयुर्वेद ग्रन्थों में भी वायु का प्रकोप वृद्धावस्था वालों को, पित्त का प्रकोप जवानों को और कफ का प्रकोप बच्चों को बाहुल्येन होना बतलाया गया है। देखिये—वहीं पृ० ३।

(३) इसी प्रकार गर्भ में बच्चों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में तिब्बती चिकित्सकों का मत भी भारतीय विचार धारा से बिलकुल मिलता है। तिब्बतीओं का मत है कि शरीर का निर्माण माता के रज, पिता के शुक्र और चेतन्य—इन तीनों के संयोग से ही होता है। इसमें भी यदि शुक्र की बहुलता हो तो पुत्र तथा रज की बहुलता में पुत्री का जन्म होता है। यदि शुक्र और शोणित दोनों समान ही रहे तो नपुंसक की पैदायश होती है। यदि रक्त दो भागों में बंट जाय तो यमज (जुड़वां) बच्चा पैदा होता है। देखिये - वहीं।

भारतीय आयुर्वेद में तो यह मत इतना अधिक प्रचलित है कि इसकी चर्चा चरक से लेकर भावमिश्र तक ने अपनी संहिताओं एवं ग्रन्थों में विशद रूप से की है। यहां चरक संहिता से इस संबन्ध के तीन श्लोकों का उद्धरण देना अनवसरोचित नहीं होगा। श्लोक ये हैं—

"रक्तेन कन्या मधिकेन पुत्रंशुक्रेण तेन द्विविधीकृतेन।
बीजेनकन्यां च सुतंच सूते यथास्वबीजान्यतराधिकेन॥
शुक्राधिकं द्वैधमुपैति बीजं यस्याः सुतौसा सहितौ प्रसूते।
रक्ताधिकं वा यदि भेदमेति द्विधा सुते सा सहिते प्रसूते॥
भिनत्ति यावद् बहुधा प्रपन्नः शुक्रार्तवं वायुरति प्रवृद्धः।

तावत्स्य भत्यागित यथा विभागं कर्मात्मकाम्नत्ववशात् प्रवृती ॥
(चरक, शारीर, अ० २)।

इस प्रकरण में यह भी कहना अप्रासंगिक नहीं होगा कि तिब्बतीय आयुर्वेद का गर्भ-सृजन में शुक्र शोणित एवं आत्मा (चैतन्य) से उत्पन्न अङ्ग-प्रत्यङ्गों का वर्णन भी भारतीय आयुर्वेद के उस सम्बन्ध के मत से सर्वथा मिलते-जुलते हैं। तिब्बतियों का यह मत है कि शुक्र से हड्डियां,मस्तिष्क और कंकाल बनते हैं; शोणित से मांस, रक्त, हृदय, फेंफड़ा, यकृत, प्लीहा और वृक्क ये ४ प्रमुख अङ्ग और ६ शिराएँ उत्पन्न होते हैं। आत्मा से चैतन्य होता है। देखिये-वाल्स का उपरिनिर्दिष्ट निवन्ध। आचार्य चरक का भी रूपान्तर से इसी प्रकार का मत प्रकट होता है। वस्तुतः चरक ने इस मत के बल पर यह मुक्तकण्ठ कहा जायगा कि तिब्बती आयुर्वेद भारतीय आयुर्वेद का सर्वथा अनुगामी रहा है। देखिए—

"त्वक् च लोहितं च मांसंच मेदश्च नाभिश्च हृदयं च क्लोमच यकृच प्लीहा च वृक्कौ च वस्तिश्च पुरीषाधानंचामाशयश्च पक्वाशयश्चोत्तरगुदञ्च क्षुद्रान्त्रञ्च स्थूलान्त्रञ्च वपा च वपावहन-श्चेतिमातृजानि ।.........केशश्मश्रु नखलोमदन्तास्थि शिरा स्नायुधमन्यः शुक्रमिति पितृजानि।.........'तासुतासु योनि पूत्पत्ति रायुरात्म ज्ञानं मन इन्द्रियाणि प्राणापानौ प्रेरणं धारणमाकृति स्वर वर्ण विशेषाः सुखदुःखे इच्छा द्वेषौ चेतना धृतिबु्द्धिः स्मृति रहङ्कारः प्रयत्नश्चेत्यात्मजानि"। —चरक, शारीर, अ० ३।

इसी प्रकार के अन्य भी बहुत से समानता के उदाहरण तिब्बती आयुर्वेद के ग्रन्थों में उपलब्ध होते हैं--जिनका निर्देश कलेवर वृद्धि के भय से नहीं किया जारहा है।

शरीर विज्ञान का विशेष प्रकार—

तिब्बत में चांगपोरी विहार तथा इससे सम्बद्ध अन्य विहारों में श्री० ई० एच० सी० वाल्स को एक शारीर विज्ञान विशेष ज्ञानोपाय प्रकार प्रदर्शक चित्र भी मिला था जिससे तिब्बती शारीर विज्ञान पर पर्याप्त प्रकाश मिलता है। कहा जाता है कि यहां के प्रत्येक चिकित्सक को यह चित्र पढ़ना पड़ता है। यह तिब्बत मिशन के प्रधान मेडिकल अफसर-कर्नलवेडेल आई. एम. एस. ने प्राप्त किया था। श्री. एल्. आस्टिन वेडेल ने अपने ग्रन्थ-'लासा ऐण्ड इट्स मिस्टरीज' में अपने यात्रा-प्रसंग का सुन्दर वर्णन किया है। (पृ० ३७६-६)।

उक्त चांगपोरी विहार तथा उससे सम्बद्ध मेडिकल स्कूल यद्यपि पञ्चम दलाई लामा के प्रधानमन्त्री सङ्-ग्यसग्यात्सो (१६४० ८० ई०) के बनवाये हुए हैं, ऐसा कहा जाता है; परन्तु परम्परा अनुश्रुति यही है कि उक्त प्रधानमन्त्री ने नव-निर्माण नहीं किया था अपितु ६५० ई० के लगभग तिब्बत में बौद्धधर्म के प्रचार के समय के ही राजा स्रोङ्त्सन गम्बो द्वारा ही इस विहार की नींव डाली गयी थी—केवल जीर्णोद्धार ही स्ङ्ग्यात्सो ने करवाया था। देखिये—वाल्स का लेख पृ० १२१७।

वाल्स को यह भी ज्ञात हुआ था प्रकृत चित्र कोई नया नहीं; अपितु पुराने परम्परा प्रचलित चित्र की अनुकृति मात्र है। इसमें १२१ संख्यक चिन्ह देकर मूलाधार से ब्रह्मरंध्र पर्यन्त प्रदर्शित हैं और हैं मस्तक, गला, हृदय, नाभि, स्नायु, शिरा, धमनी, मांसपेशियां, फेफड़े, यकृत, प्लीहा, वृक्क, आमाशय, पक्वाशय, शुक्राशय, अस्थि कंकाल आदि शरीर के प्रत्येक अंग-प्रत्यंग बारीकी से प्रदर्शित। यह बड़े ही आश्चर्य की बात है कि इतने प्राचीन चित्र में भी फेफड़े का इतना स्पष्ट चित्रण मिलता है जिसके बारे में कई एक पाश्चात्य गवेषकों की यह भ्रान्त धारणा रही है कि आयुर्वेद में फेफड़े को मुख्यता नहीं दी गई है, और इस धारणा की पुष्टि में बताते हैं कि चरक,सुश्रुत आदि आर्ष आयुर्वेद के ग्रन्थों में क्लोम का उल्लेख नहीं मिलता है। इस सम्बन्ध में यह भी कहना कि श्री जौल्ली के द्वारा भारतीय आयुर्वेद का 'सर्वे' करते समय आयुर्वेद के १४ हजार पारिभाषिक शब्दों की सूची बनाने पर भी उन्हें फेफड़े का कोई

नाम नहीं मिला, सर्वथा आश्चर्यजनक है। देखिये—कीसर का हिन्दूमेडीसिन, पृ० १६१-२ अन्यथोल्लिखित। मेरे ख्याल से स्यात् उन लोगों की यह भ्रान्त धारणा शारीर विचयाध्याय में क्लोम का उल्लेख नहीं रहने के कारण हुई है। परन्तु उन्हें यह स्मरण रखना चाहिये था कि इन संहिताओं का कालेकाले लुप्त होने पर प्रतिसंस्कार होते रहे हैं, जिसके चलते उक्त प्रकरण में क्लोम का निर्देश लुप्त हो चला हो। यही कारण हो सकता है कि क्लोम का मुख्यत: उल्लेख चरक संहिता में भी अन्यत्र उपलब्ध होता है। देखिये—चरक संहिता, शारीर स्थान, खुड्डी का गर्भावक्रान्ति शारीर अध्याय ३। यहां भारद्वाज का मत कि गर्भ मातृज,आत्मज,पितृज सात्म्यज नहीं;और मन उसका उपपादुक भी नहीं का खण्डन करते हुए आत्रेय के मत से मातृज शारीर पदार्थों की गणना कराते हुए लिखा है:—

"त्वक् च लोहितं च मासं च मेदश्च नाभिश्च हृदयं च क्लोम च यकृच्च प्लीहा च वृक्कौ च वस्तिश्च पुरीषाधानञ्चामाशयश्च पक्वाशयश्चोत्तर गुदश्चाधर गुदश्च क्षुद्रान्त्रंच स्थूलान्त्रंच वपा च वपा वहनश्चेति मातृजानि।"

यहां यह भी नहीं भूलना चाहिये कि चेतनाधिष्ठान हृदय के बाद ही क्लोम का उल्लेख किया हुआ है जो इसकी प्रमुखता का ही प्रत्युत पोषण करता है। वहीं शारीर संख्या नाम शारीराध्याय (७) में १५ कोष्ठांगों का निर्देश करते समय "हृदयञ्च क्लोमच" के रूप में फेफड़ों का स्पष्ट निर्देश है। देखिये—चरक संहिता, कविराज सतीशचन्द्र शर्मा संस्करण, १३११ साल, पृ० ५०६; ५४४।

मारीच कश्यपोक्त वृद्ध जीवकीय तन्त्र में तो—"लोहितञ्च मांसंच नाभिश्च हृदयंच क्लोम च यकृच्च प्लीहा च वृक्कौ च वस्तिश्च पुरीषधारणञ्चामाशयश्चोत्तरगुदश्चवरगुदश्च क्षुद्रान्त्रञ्च स्थूलान्त्राञ्चेतिमातृजानि" के बीच हृदय के बाद ही क्लोम का निर्देश मिलता है और थोड़ा और आगे बढ़कर श्लोकों में हृदय, यकृत, प्लीहा और फुफ्फुस की उत्पत्ति भी बतायी गयी है। वहां लिखा मिलता है कि—'शोणितादु हृदयं तस्य जायते हृदयाद् यकृत्। यकृतो जायते प्लीहा, प्लीह्नः फुफ्फुसमुच्यते ॥४॥ परस्पर निबन्धानि सर्वाण्येतानि भार्गव!" काश्यप संहिता, गर्भावक्रान्ति शारीराध्याय, पृ० ४८-६।

प्रकृत शारीर चित्र में केवल फेंफड़े का ही निर्देश हो, यही नहीं, अपितु, वाम और दक्षिण दोनों ही फेंफड़े की अगली-पिछली कर्णिकाओं (लोबों) का भी सुस्पष्ट चित्रण मिलता है। फिर भला कौन ऐसा विवेकशील विद्वान होगा जो इसे आंख मूंद कर मान लेगा कि भारतीय आर्ष आयुर्वेदज्ञों को फेफड़े का ज्ञान नहीं हुआ था, किंवा उन्होंने फेंफड़े की मुख्यावयवता नहीं जानी थी। अथवा जानकर भी उसकी अपेक्षा की थी।

तिब्बती आयुर्वेदाचार्यों की विस्तृत परम्परा

तिब्बती आयुर्वेद के आचार्यों की भी एक लम्बी परम्परा है जिसका यथावत् व्याख्यान करना इस लघुकाय निबन्ध में सम्भव नहीं। इसी निबन्ध के उपरोक्त लेखांशों से भी यह स्पष्ट होचुका है कि ग्युद्सी के अनुसार वृद्ध यूथोग से नव-यूथोग की वंश परम्परा में ही १२ आचार्य हुये थे। यूथोग काल के ६ आचार्यों की चर्चा भी पहले हो चुकी है। प्रकृत शारीर चित्र में भी १२ प्रसिद्ध आयुर्वेदज्ञों के चित्र भी उसी चित्र के ऊपर अङ्कित उपलब्ध हुआ है। इसमें सर्व प्रथम दवाइ वाङ्पो का नाम है और अन्तिम है लिङ्ग सोङ् के लोजङ ग्यत्सो का।

विशेषाध्ययन अपेक्षित

उक्त शारीर चित्र का जो विवरण श्रीवाल्स ने अपने उपरि निर्दिष्ट निबन्ध में दिया है वह सर्वथा अपूर्ण और सदोष है। क्योंकि जिस तिब्बत वैद्य ने इस शारीर चित्र का विवरण उन्हें बतलाया था उसे ही चित्र के सम्बन्ध की पूरी जानकारी नहीं थी।

यह श्री वाल्स के निबन्ध से ही स्पष्ट हो जाता है। श्रीवाल्स लिखते हैं कि उन्हें वैद्य ने कहा था कि चित्र में जहां चिह्नित कर उसकी संख्या दी हुई है वह एक चिकित्सा ग्रन्थ की संख्या है जिसमें उस चिह्नित अंग का पूरा विवरण दिया हुआ है, किन्तु उसे उस ग्रन्थ का नाम ही स्मरण नहीं आरहा था। देखिये—श्रीवाल्स का निबन्ध, पृ० १२२४। वाल्स ने यह भी लिखा है कि तिब्बती शारीर विज्ञान का मूल ग्रन्थ ग्युदसी है (वहीं पृ० १२१८)। और उस ग्रन्थ में इस चित्र की चर्चा है (वहीं, पृ० १२१७ पाद टिप्पणी)। संभवतः श्रीवाल्स को जो तिब्बती वैद्य मिला था वह चाङ्पोरी विहार का स्नातक नहीं ही था और उसने अपनी प्रतिष्ठा के लिये यह कूट प्रचार किया होगा कि उसने अपनी प्रकृत चित्र की कॉपी नेपाल की सीमा पर वेंच दी थी, जिसका उल्लेख वाल्स ने किया है, इसलिये जब तक भारतीय आयुर्वेदज्ञ इस क्षेत्र में जाकर तिब्बती चिकित्सा ग्रन्थों का अनुसन्धान अनुशीलन कर इस शारीर चित्र पर प्रकाश नहीं डालें तब तक इस चित्र की प्रकृत व्याख्या सर्वथा संगत नहीं ही मानी जानी चाहिए।

चित्र की विशेषताऐं

यद्यपि चित्र की विशेषताएं अनेक हैं, मगर इसकी सबसे बड़ी विशेषता है हृदय को चैतन्य का अधिष्ठान मानना और इस सिद्धान्त की पुष्टि में चित्र में हृदय से संवद्ध ५ ज्ञानवहा नाड़ियों का भी स्पष्ट निर्देश है।

यहां यह भी कहना अप्रासंगिक नहीं होगा कि आधुनिक पाश्चात्य शारीरज्ञ मस्तिष्क को इन्द्रियाधिष्ठान के रूप में मानते हैं, यह भी कोई नवीन मत नहीं है। भारतीय चिकित्सा विज्ञान के इतिहासज्ञों को यह भली भांति विदित है कि भारद्वाज मुनि ने सर्व प्रथम मस्तिष्क को इन्द्रियाधिष्ठान के रूप में देखा था, और उसी के बूते पर शरीर में सर्व प्रथम शिर की उत्पत्ति होना बतलाया था। परन्तु चेतना धातु आत्मा के मुख्याधिष्ठान होने और सभी अंगों का मूल एवं कतिपय भावों का अधिष्ठान होने के कारण हृदय को शरीर में मुख्य अंग एवं एकमात्र चेतनाधिष्ठान के रूप में आत्रेय एवं धन्वन्तरि दोनों ही सम्प्रदाय के आचार्यों ने माना है। देखिए-सुश्रुत, ३, ४, चरक, ४, ६, ७।

कहना न होगा कि इस प्राच्य-पाश्चात्य विवेचना पद्धति की परिहासात्मक टिप्पणी करते हुए एक प्यूब्लो प्रधान ने डाक्टर सी० जी० जंग (जूरिख) से कहा था कि "आप गोरे लोग माथे से सोचते हैं, यही आपकी न्यूनताओं का कारण है। हम तो हृदय से सोचा करते हैं।" देखिए--फीमर का हिन्दू मेडीसिन, पृ० १६४।

तिब्बत के शल्य शास्त्रीय यन्त्र—

श्री वाल्स के अनुसार १६ वीं शताब्दी तक तिब्बत में शल्य चिकित्सा में चूषण, अग्निकर्म, तथा रक्तस्रावण ये तीन शल्यकर्म मुख्य थे। उन्हें यह पता चला था कि 'मे पुङ्' और मेबुङ्' नामक दो यन्त्र जिनमें कागज का पलीता जलाकर गर्म पात्र ब्लिस्टर करने के स्थान पर रखा जाता था। चूषण के लिए तुम्बी का प्रयोग, नस्तर की छुरी रक्तस्रावण के लिये और स्वर्ण शलाका आंख के आपरेशन के लिये प्रयोग किये जाते थे।

इसके अतिरिक्त तिब्बत विज्ञान के प्रसिद्ध विद्वान श्री शरतचन्द्रदास, बहादुर ने लासा से लाकर कुछ ब्लाक प्रिण्ट कलकत्ता बुद्धिष्ट टेक्स्ट सोसायटी के जर्नल में १८६४ में प्रकाशित कराये थे, यह उन्हें घूम (दार्जलिंग के निकटस्थ) विहार के भूतपूर्व लामा शेस्एव्ग्यत्सो से प्राप्त हुये थे। इन ब्लाक प्रिण्टों में बहुतेरे शल्य चिकित्सापयोगी यन्त्र हैं; जिनमें आरियां, सलाईयां, पर्यवेक्षण सूईयां, शुष्क वृद्धि व्यधन करने के यन्त्र, धात्री विद्या के यन्त्र तथा कुछ अन्य चिमटे हैं। इनकी विशेष जानकारी के लिये बुद्धिष्ट टेक्स्ट सोसायटी कलकत्ता, का जर्नल १८६४; भाग २, खण्ड ३, पृ० ६–१० देखना चाहिये। किसी दूसरे निबन्ध में इन पर विस्तृत अध्ययन प्रकाशित करूंगा। ★★

आयुर्वेद का आदर्श

लेखक—आयुर्वेदाचार्य श्री मदनगोपाल वैद्य ए. एम. एस, एम. एल. ए.।

यदि हास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति तद् कचित्।

चरक संहिता की इस अन्तिम पंक्ति को पढ़कर अनेक विद्वान् गर्व से फूले नहीं समाते। इसके प्रतिकूल कितने ही इसकी कटु समालोचना करते हैं और समझते हैं कि दुनियां में सर्वदा नवीन ज्ञान का अर्जन होता रहा है और यह कथन सत्य के विपरीत है।

प्राचीन विद्वान् इस समालोचना को सहन करने में अपने को असमर्थ पाते हैं। वे ऋषियों के वचन को त्रिकालावाधित सत्य समझते हैं। इस प्रकार जब एक पंक्ति पर दो वर्ग के विद्वानों में इतना तीव्र मतभेद हो तो ऐसे लेख पर या शास्त्र पर साधारण जनों की तथा विद्यार्थियों की श्रद्धा कैसे स्थाई हो सकती है।

आज हमें इस बात का विवेचन करना है कि इस पंक्ति में सत्य कितना है। इस पंक्ति का अर्थ लोग अपनी भावना के अनुसार कई प्रकार से करते हैं। दोनों वर्ग के लोग संदर्भ या प्रसंग का ध्यान न रखते हुये इसके अर्थ को अधिक व्यापक बना देते हैं। यदि संदर्भ के अनुकूल इसका अर्थ किया जावे तो दोनों वर्गों के विद्वानों का यह संघर्ष मिट सकता है।

प्राचीन पंडित अर्थ करते हैं कि आयुर्वेद शास्त्र में जो ज्ञान है वही अन्य चिकित्सा शास्त्रों में है। जो ज्ञान इसमें नहीं है वह अन्य चिकित्सा पद्धतियों में भी आज इस विज्ञान के युग में भी नहीं है।

आज का आधुनिक वैज्ञानिक इस बात को मानने के लिये तैयार नहीं है कि विज्ञान में इधर प्राच्यज्ञान की अपेक्षा उन्नति नहीं हुई है।

ग्रन्थकार ने इस पंक्ति को ग्रन्थ के अन्त में उपसंहार के रूप में लिखा है जिससे स्पष्ट है कि लेखक को अपने ज्ञान पर गर्व था और उनकी धारणा थी उस समय जगत् में किसी भी देश में चिकित्सा सम्बन्धी अधिक ज्ञान नहीं था। ऐसा अर्थ करने से आज के वैज्ञानिक को कोई आपत्ति नहीं हो सकती, प्राचीन विद्वानों को होसकती है।

जिस समय यह ग्रन्थ पूर्ण किया गया उस समय स्वस्थातुर परायण आयुर्वेद शास्त्र में तथा प्रस्तुत चरक संहिता में वर्णित जितना ज्ञान है उससे अधिक ज्ञान (चिकित्सा विषयक ज्ञान) उस समय किसी भी देश के ग्रन्थ या शास्त्र में नहीं था। लेखक ऋषि की यह प्रतिज्ञा उस काल की थी जिसमें से वर्तमान थे।

आज भी इस युग में Year Book का प्रकाशन होता है। पाश्चात्य चिकित्सा विज्ञान विषयक वर्षग्रन्थ लिखे जाते हैं कि चिकित्सा शास्त्र में १९५०, १९५१ १९५२, १९५३ में क्या प्रगति हुई। और अमुक वर्ष का नवीनतम, अधिकतम चिकित्सा ज्ञान इस ग्रन्थ में निबन्धित किया गया है।

इसी प्रकार चरक संहिता के लेखक ने भी ग्रन्थ के अन्त में यह प्रतिज्ञा की है कि स्वस्थातुर-परायण आयुर्वेद का सम्पूर्ण ज्ञान इस ग्रन्थ में है। इससे अधिक

या इससे नवीन ज्ञान (लेखक के समय में) किसी भी देश या शास्त्र या चिकित्सा-पद्धति में नहीं है। ऐसा करने से प्राचीन पंडितों तथा नवीन वैज्ञानिकों में से किसी को भी आपत्ति नहीं होसकती, और दोनों के मतभेद दूर हो जाते हैं। बिल्कुल यही श्लोक महाभारत में भी पाया जाता है। और इसका भी यही अर्थ है कि महाभारत में तत्वज्ञान सम्बन्धी जितना ज्ञान है वही अन्यत्र अन्य ग्रन्थों, राष्ट्रों में भी है। और जो तत्वज्ञान इसमें नहीं है वह किसी भी देश व राष्ट्र में (उस समय) नहीं था।

इस प्रकार के लेख दर्शन ग्रन्थों में भी पाये जाते हैं जिसका भाव यह है कि 'यथा पिंडे तथा ब्रह्मांडे'। अर्थात् जो जो भाव पिण्ड शरीर में है वही ब्रह्माण्ड जगत् में भी है। जो भाव पिंड में नहीं है ब्रह्माण्ड में भी नहीं है।

इस पंक्ति में ऋषियों ने एक अपूर्व आदर्श उपस्थित किया है कि किसी भी वस्तु का अधिकतम व नवीनतम ज्ञान प्राप्त करना चाहिये। अर्थात् विद्वान को देश काल के अनुरूप पूर्ण ज्ञाता होना चाहिये। आदर्श विद्वान या आदर्श शास्त्र वह हो सकता है जो देशकाल के अनुरूप पूर्ण हो। हमारे ऋषियों का यह बड़ा ऊंचा आदर्श था।

आयुर्वेद की परिभाषा करते समय भी चरक कार ने इसी आदर्श को कायम रखा है। मनुष्य की आयु या जीवन को सुखमय बनाने के उपायों के ज्ञान को आयुर्वेद कहते हैं।

हिताहितं सुखं दुःखं आयुः तस्यहिताहितम्।
मानं च तच्च यत्रोक्तं आयुर्वेदः स उच्यते॥

जीवन को सुखमय बनाने के सम्पूर्ण ज्ञान को चाहे वह ज्ञान किसी भी देश या राष्ट्र का हो वह सब आयुर्वेद है। इस प्रकार ऐलोपैथी होमयोपैथी आदि सब आयुर्वेद है। ऋषियों के इस उच्चादर्श से आपस का संघर्ष कम होकर सत्य की स्थापना होती है।

आज हमारे देश में स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद आयुर्वेद उद्धार के प्रयत्न चल रहे हैं, इस सम्बन्ध में शिक्षा पद्धति, अन्वेषण आदि कार्य किस प्रकार हो इस पर दुर्भाग्य से मत-भेद चला आ रहा है। कुछ लोग शुद्ध आयुर्वेद शिक्षा पक्षपाती है, कुछ विद्वान मिश्र शिक्षा के समर्थक हैं। इसी प्रकार अन्वेषण पद्धति पर भी आपस में मतभेद है। जहां तक शिक्षा का प्रश्न है वह तो पूर्ण रूप पूर्ण शिक्षा होनी चाहिये और वर्तमान काल में चिकित्सा विषयक जितना ज्ञान है उस सबका समावेश होना चाहिये और सब पद्धतियों को अन्तर्राष्ट्रीय मान्यता मिलनी चाहिए।

अन्वेषण के सम्बन्ध में अवश्य ही आयुर्वेदीय पद्धति से कार्य होना चाहिये और उसमें आधुनिक विज्ञान से सहायता लेनी चाहिये।

सम्पूर्ण देश में गत २५-३० वर्षों से जो आयुर्वेद का विकास हुआ है तथा जो नवीन साहित्य की सृष्टि हुई है वह सब मिश्र ज्ञान का समर्थक है। कोई भी ग्रन्थ आज के युग में लोकप्रिय नहीं हो-सकता जब तक उसमें मौलिकता न हो तथा वह देश काल के अनुरूप लोकोपयोगी न हो,मिश्रज्ञान के ग्रन्थ ही बहुत लोकप्रिय हुये हैं। गत ३० वर्षों का इतिहास व साहित्य इस बात का साक्षी है कि आज देश में उभयज्ञ मिश्र ज्ञान की नितान्त आवश्यकता है इसके बिना चिकित्सक का ज्ञान पूरा नहीं होता और वह शुद्ध आयुर्वेद के ज्ञान से चिकित्सा पद्धतियों के संघर्ष में अपने को कमजोर अनुभव करता है। नवीनतम ज्ञान प्राप्त करने से उसकी दृष्टि खुल जाती है, और वह व्यापक तथा व्यवहारिक होजाता है। देशकाल के अनुरूप वह आयुर्वेद का प्रयोग कर सकता है। अतः आज इस विवाद में अधिक बल नहीं है। ऋषियों के उच्चादर्श को सामने रखकर चिकित्सा विषयक पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिये। इसी प्रकार अन्वेषण क्षेत्र में भी मूलायुर्वेद के उद्धार के लिये आधुनिक विज्ञान की सहायता अपेक्षित है।

गत कई वर्षों से अखिल भारतीय आयुर्वेद शास्त्रचर्चा परिषद् का भी अधिवेशन होता है। वहां भी ऋषियों के उच्चादर्श को ध्यान में रखकर

विवेच्य विषय का पूर्ण ज्ञान चाहे वह जिस चिकित्सा पद्धति में हो ग्रहण करना चाहिये। और संपूर्ण ज्ञान को क्रियात्मक रूप देने का प्रयत्न होना चाहिये। अब मौखिक विवेचन से काम नहीं चलने वाला है।

आज आधुनिक विज्ञान की सबसे बड़ी विशेषता है कि वे प्रत्येक वस्तु का प्रत्यक्षीकरण व मात्रात्मक विवेचन करने में समर्थ है। अब स्थूल व गुणात्मक विवेचन से काम नहीं चल सकता। तीव्र मन्द ज्वर शब्द से अब संतोष नहीं होता। क्योंकि उसका निश्चित माप अब सम्भव है। इसी प्रकार नाड़ी गति के सम्बन्ध में भी मात्रात्मक विवेचन से ही अधिक सन्तोष होता है।

अतः ऋषियों के उच्चादर्श को ध्यान में रखकर विश्व के सम्पूर्ण ज्ञान को आयुर्वेद में आत्मसात करने का प्रयत्न होना चाहिये तभी आयुर्वेद प्रखर रूप में चमक सकता है।

आज इन्द्रियों की क्षमता के बढ़ाने वाले सूक्ष्मदर्शक आदि अनेक यन्त्र मौजूद हैं। कोई भी विज्ञान इनके उपयोग के बिना चमक नहीं सकता। अतः आज बिना संकोच विज्ञान की सहायता से आयुर्वेद को प्रखर करना सबका परम कर्त्तव्य है। और आयुर्वेद की प्रत्येक शाखा पर प्रथक-प्रथक प्रयोगशाला खुलनी चाहिये। आयुर्वेद शास्त्रचर्चा परिषद् अथवा अखिल भारतीय वैद्य सम्मेलन से ऐसी प्रयोगशालाओं की योजना बनाकर सरकार को देनी चाहिए। और उनमें कार्य होना चाहिए। नवीन योजनाओं के सम्बन्ध में सम्मति देने के अधिकारी वे ही हैं जो स्वयं कुछ ठोस कार्य आयुर्वेदोद्धार के लिये कररहे हैं।

पं० मदनमोहन मालवीय ने बहुत विचार विनिमय के बाद ही आयुर्वेद कालेज में मिश्र शिक्षा की व्यवस्था की थी। आज आयुर्वेद की शिक्षा संस्था, तथा साहित्य व नेतृत्व का विकास मिश्र पद्धति के पक्ष में चल रहा है।

मिश्र शिक्षा पद्धति के साथ शिक्षा के माध्यम भाषा का भी प्रश्न बड़ा महत्वपूर्ण है। अब तक आयुर्वेद का शास्त्र संस्कृत या प्रदेशीय भाषाओं में था, यदि हम आयुर्वेद के अन्तर्राष्ट्रीय मान्यता दिलाना चाहें तो उसकी शिक्षा व शास्त्र का विकास अन्तर्राष्ट्रीय भाषा के द्वारा होना चाहिये।

आज जिन डाक्टरों ने आयुर्वेद का अध्ययन किया है वे आयुर्वेद जगत् में नेतृत्व कर रहे हैं और उनकी सम्मति मान्य समझी जाती है। वे आयुर्वेद के अच्छे व्याख्याता समझे जाते हैं। इसका कारण यही है कि वे आयुर्वेद के भाव को आधुनिक शब्दों में आधुनिक विचारों तथा विज्ञान के अनुरूप प्रकट करने में सक्षम हैं और आयुर्वेद की समस्त पत्रिकायें उनको प्राथमिकता देती हैं, उनका गौरव करती हैं।

आयुर्वेद को वैद्य समाज राष्ट्रीय चिकित्सा पद्धति बनाना चाहता है। आज इस युग में प्रत्येक वस्तु का विकास अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि से अन्तर्राष्ट्रीय संघर्ष के रूप में हो रहा है। जो व्यवस्था अन्तर्राष्ट्रीय संघर्ष में नहीं ठहरती वह राष्ट्र में भी नहीं टिक सकती। आज यह संभव नहीं है कि अन्तर्राष्ट्रीय चिकित्सा पद्धति अन्य हो तथा राष्ट्रीय पद्धति अन्य हो। यदि कोई राष्ट्रीय पद्धति कुछ समय के लिये चल भी सकती है तो भी उसका आधार व दृष्टिकोण अन्तर्राष्ट्रीय ही होना चाहिये।

आज आयुर्वेद को वैद्य समाज राष्ट्रीय चिकित्सा पद्धति बनाना चाहता है। और प्रस्ताव भी पास किया है पर मेरी सम्मति में आयुर्वेद या तो अन्तर्राष्ट्रीय चिकित्सा पद्धति बनेगी अन्यथा कालान्तर में विनष्ट हो जावेगी। इसको अन्तर्राष्ट्रीय चिकित्सा पद्धति बनाने की क्षमता यदि वैद्य समाज में होगी तो दूसरे देश के लिए इसको नवीन रूप देकर अन्तर्राष्ट्रीय चिकित्सा पद्धति बना देंगे। मेरा तो विश्वास है कि आयुर्वेद अन्तर्राष्ट्रीय चिकित्सा पद्धति बनेगी—समय चाहे कितना लगे। आयुर्वेद प्राचीन काल में भी अन्तर्राष्ट्रीय पद्धति थी और आगे भी उसका विकास अन्तर्राष्ट्रीय रूपमें ही होगा। ★★

राजयक्ष्मा और यज्ञ चिकित्सा

लेखक—कविराज गौरीशंकर श्रीवास्तव साहित्य महोपाध्याय।

मनुष्य क्या है और उसके स्वास्थ्य का क्या रहस्य है इसका अनुसन्धान मानव जिज्ञासा का चिरकालीन विषय रहा है, और आदिम काल से आज तक मनीषियों ने इन प्रश्नों के उत्तर पाने के प्रयास किए हैं। उनके अनुभवों के आधार पर ही भिन्न-भिन्न सिद्धान्तों, धर्मों और चिकित्सा-प्रणालियों को जन्म मिला। यह प्रयास उस अनादि व्यापक सत्य के कितने समीप तक पहुंचते हैं, इसका निर्णय मानव कल्याण के परिमाण पर अवलम्बित है।

जिन सिद्धान्तों को हम अनुभूति से स्थापित करते हैं, वे अनायास ही पोच और असामयिक से प्रतीत होने लगते हैं और लगता है कि अभी हम सत्य से बहुत दूर हैं। साथ ही जिन पुरानी चीजों को हम अवैज्ञानिक समझकर अवहेलना करते आरहे हैं वे हमें आज नया सन्धान देती प्रतीत होती हैं। इस बात को आप नीचे के दो उदाहरणों से समझिए।

१—आन्ध्र विश्वविद्यालय के आधीन पद्मापरम हाईस्कूल में दलपति सिंह जी एक गणित के अध्यापक थे। उनके मस्तिष्क की विशेपता यह थी कि जटिल से जटिल गणित का प्रश्न उनके समीप आकर हल हो जाता था। सभी उनकी मानसिक शक्ति से प्रभावित थे। एक बार वह बहुत बीमार पड़े और सभी प्रसिद्ध ऐलोपैथों ने एक मत से यह निर्णय दे दिया कि वे अब बच नहीं सकेंगे और कुछ घण्टों के ही महमान हैं। अतएव, सरकार ने मृत्यु के कुछ क्षण पूर्व ही मस्तिष्क प्राप्त करने के लिये उनकी पत्नी से अनुमति चाही-जो उसने नहीं दी। "दैव योग से" प्रोफेसर साहब कुछ ही दिनों बाद चंगे हो गये और कई वर्षों तक जीते रहे।

२—सागर से एक बारात में वकील गोपीलाल आए हुये थे। बड़े संयमित, स्वस्थ्य एवं सुन्दर युवक थे। केवल कुछ ही घंटों की साधारण सी अलालत के बाद अनायास उनके हृदय की गति बन्द होगई और लाख कोशिश करने पर भी वे जीवित न हो सके। डाक्टरों का कहना था कि उनका "हार्ट-फेल" हो गया।

ऐसी घटनाएं आए दिन होती रहती हैं। पर यह सब क्यों होता है? क्या हम इन बातों को ठीक-ठीक समझते नहीं हैं? और यदि समझते हैं तो बार-बार क्यों होती है? पहले दृष्टान्त में "दैव योग" और दूसरे में "हार्ट-फेल" हमारी जिज्ञासा के वास्तविक उत्तर नहीं हैं। यह तो अज्ञानता को ढंकने की भूल-भुलैयां हैं। जिसे हमारी जानकारी में मर जाना चाहिये था, वह जीवित रहता है, और जिसे जीवित रहना चाहिए था, वह मर जाता है। इसका स्पष्ट अर्थ है कि जो कुछ हम समझते हैं या समझने का दावा करते हैं वह अधूरा और भ्रमपूर्ण है। सत्य इससे परे है।

चीरफाड़, अवयवों के स्थान एवं उनके कार्य, नस-नाड़ियों का ज्ञान, शरीर-विज्ञान, शल्य क्रियाएें आदि ही सब कुछ नहीं है। हमें किसी और गहरे सन्धान की आवश्यकता है। आइये, हम इस पर विचार करने का प्रयास करें।

मनुष्य-शरीर

मनुष्य केवल शरीर मात्र नहीं है। हाथ-पैर आंख कान आदि के भंग होजाने पर भी वह जीवित रहता है।

जिस स्थान पर यह होता है उसे उसी स्थान के क्षय के नाम से पुकारते हैं, जैसे T. B. lung, T. B. Bone etc.

वर्तमान क्षय चिकित्सा की त्रुटियां

क्षय बड़ा भीषण रोग है। इसकी चिकित्सा भी बहुत मंहगी पड़ती है। इसका कीटाणु भी इतना उद्दण्ड और मक्कार होता है कि वह साधारण औषधियों से नष्ट नहीं होता क्योंकि—

१—क्षय के कीटाणु अत्यन्त सूक्ष्म होते हैं और मौखिक औषधियों को रक्त के माध्यम से सूक्ष्म होने में बहुत समय लग जाता है।

२—रोगी की प्राणशक्ति त्वरा गति से क्षीण होती जाती है।

३—रोगी उत्तरोत्तर क्षीण होता है क्योंकि वह पौष्टिक आहार पचाने में असमर्थ होता है।

४—कोई ऐसी चिकित्सा प्रणाली आज सुलभ नहीं है जो क्षय के कीटाणुओं पर सीधा प्रभाव डालकर उन्हें नष्ट कर सके।

५—तीव्र कीटाणुनाशक औषधियां जहां जीवाणुओं को थोड़ा-बहुत नष्ट करती हैं वहां उनका मारक गुण जीवन-कणों को भी ध्वंस कर देता है और जीवनी शक्ति को हानि होती है।

यज्ञ

यज्ञ क्या है, इस प्रश्न का उत्तर वेद मंत्रों से सुनिये—

येन सद् अनुष्ठानेन आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक ताप त्रयोन्मूलनं सुकरं स्यात तत यज्ञ पदाभिधेयम्।

जिस अनुष्ठान के द्वारा आध्यात्मिक आधिदैविक, आधिभौतिक तीनों प्रकार के कष्टों का निवारण हो वह यज्ञ कहा जाता है।

ये रूपाणि प्रति मुञ्चमाना असुराः सन्तः। स्वधया चरन्ति। परा पुरो निपुरो ये भरन्त्यग्निष्टांल्लोकात् प्रणुदात्य स्मात्॥ —यजुः २।३०

जो असुर प्राण इस पृथ्वी पर असुर रूप से विचरण करते रहते हैं वे यज्ञ की अग्नि द्वारा शरीर में से निकाल बाहर किये जाते हैं।

उक्त सूत्रों से स्पष्ट है कि—

१—यज्ञ सब प्रकार के कष्टों को दूर करने के लिये किया जाता है।

२—यज्ञ की अग्नि द्वारा शरीर के असुर प्राण (विकृत कीटाणु) बाहर निकाल दिये जाते हैं।

पिण्ड और ब्रह्माण्ड दोनों में अग्नि का बड़ा महत्व है। अग्नि का अभाव ही मृत्यु है और उसका सन्तुलन बिगड़ना ही रोग है। अग्नि ही देवताओं (दिव्य शक्तियों) तक हमारी पूजा को पहुंचाता है। देव (आत्मा) और मनुष्य के बीच में सम्बन्ध स्थापित करने वाला देव दूत अग्नि ही है। अग्नि के मुख में वस्तुओं को डालकर हम उन्हें देवों तक पहुंचाते हैं।

यज्ञ का तात्विक विवेचन

सर्व साधारण का विश्वास है कि जो पदार्थ अग्नि में जलाये जाते हैं वे नष्ट हो जाते हैं। पर यह बात भ्रमपूर्ण है। यथार्थ में वह पदार्थ अग्नि के माध्यम से वायु रूप होकर अधिक सूक्ष्म बन जाता है।

१—जल को अग्नि के द्वारा वायु रूप करिये। भाफ में जल के सभी गुणों का अस्तित्व होगा, साथ ही उसमें जल की अपेक्षा कई गुनी अधिक शक्ति भी होगी।

२—तम्बाखू खाने की अपेक्षा जब अग्नि के द्वारा वायु भूत करके सेवन की जाती है तो उसका विषैला प्रभाव तीव्र और तात्कालिक होता है।

इससे स्पष्ट है कि वायु भूत क्रिया मूर्त पदार्थ का रूपान्तर मात्र है, जिसके समस्त परमाणु अक्षुण्ण

रहते हैं। हवन में जलाई हुई सामग्री बरबाद नहीं होती। उसका केवल रूप बदल जाता है और वह वायुभूत होकर सूक्ष्म हो जाती है। औषधियों को वायुभूत करके रुग्ण शरीर में पहुँचाने की प्रणाली आयुर्वेद की प्राचीन परम्परा है।

वायुभूत की प्रणाली–

कितने रोगों में हम औषधियों के धुंए का प्रयोग साधारणतया करते हैं। ऐलोपैथी में भी क्रियाजोट, यूक्लिप्टस आयल आदि औषधियों को वायुभूत करके ही प्रयोग में लाते हैं।

हवन यही वायुभूत प्रणाली है, जिसके द्वारा दु:साध्य रोगों की चिकित्सा की जाती है।

हवन में रोग निवारक गुण–

संसार के अनेक मनीषियों ने इसका अन्वेषण किया है। चेचक के टीकों का आविष्कारक डाक्टर हैफकिन लिखता है—"घी को जलाने से रोग के कीटाणु मर जाते हैं।"

प्रसिद्ध डाक्टर कर्नल किंग ने स्वीकार किया है कि घी और केसर को मिलाकर जलाने से रोग के कीटाणु नष्ट हो जाते हैं।

फ्रांसीसी रसायन शास्त्री डाक्टर त्रिले ने "अग्नि और धुंए का वायु पर प्रभाव" विषय पर गहरी शोध की है, जिसके मोटे मोटे तथ्य इस प्रकार हैं:--

(१) कतिपय वस्तुयें साधारण रूप की अपेक्षा जलने पर अधिक लाभप्रद बन जाती हैं।

(२) शक्कर के जलाने पर फार्मिक आल्डिहायड नामक गैस निकलती है, जिसमें हैजा, चेचक, महामारी, क्षय आदि के कृमियों को नाश करने की अद्वितीय शक्ति होती है।

(३) मुनक्का, किशमिश, छुहारा आदि पदार्थों से उत्पन्न गैसों में कृमिनाशक गुणों के साथ-साथ पोषक गुण भी विशेष मात्रा में रहते हैं।

चरक अपने चिकित्सा खण्ड में लिखते हैं:—

"प्रयुक्तया यथा चेष्ट्या राजयक्ष्मा पुरोजितः।
तां वेद विहता मिष्ट या रोग्यार्थी प्रयोजयेत्।"

(यज्ञ के प्रयोग से राजयक्ष्मा रोग नष्ट किया जाता था। रोग–मुक्ति की इच्छा करने वाले मनुष्य को चाहिये कि उसी वेद विहित यज्ञ का आश्रय ले।)

मुंचामि त्वा हविषा जीवनाय कम ज्ञात यक्ष्मा,
दुत राजयक्ष्मात्।
ग्राहिर्जग्राह यद्यते देनं तस्या इन्द्राग्नि प्रमु-
मुक्त मे नम्॥ —अथर्व:

(हे व्याधिग्रस्त रोगी तुमको सुख के साथ चिरकाल तक जीने के लिए गुप्त यक्ष्मा और प्रकट तपैदिक रोग से हवन द्वारा मुक्त करता हूं। इस रोगी को रोग से इन्द्र, सूर्य्य एवं यज्ञ छुटा देवें।)

"यज्ञ करना एक बड़ा अस्पताल खोलने के समान है + + + + यज्ञ से राजयक्ष्मा जसे असाध्य और कष्टसाध्य समझे जाने वाले रोग भी दूर हो जाते हैं। जिन रोगों में साधारण औषधियां काम नहीं करतीं उनमें विधिपूर्वक किया हुआ यज्ञ विशेष उपयोगी सिद्ध होता है।"

—आचार्य श्रीराम शर्मा।

"रोगनाशक औषधियों के सुगन्धित द्रव्य को विधिपूर्वक घृत मिला कर अग्नि में वैदिक मंत्रों से हवन करें। इन औषधियों के परिमाणु मंत्र शक्ति द्वारा बलवान होकर वायुमण्डल में संचार करते हैं और वह प्राणदा वायु श्वास एवं अन्य छिद्रों द्वारा शरीर में प्रवेश करती है और आरोग्य प्रदान करती है। इसी प्रणाली को यज्ञ-चिकित्सा कहते हैं। शरीर के रोग नष्ट होकर आरोग्य की प्राप्ति होती है। मानसिक रोग, चिन्ता, भ्रम, शोक, शंका, उदासीनता, खिन्नता, क्षय आदि सब नष्ट हो जाते हैं।"

--डॉ० दुर्गाशंकर नागर।

"गूगल की धूप देने मात्र से ज्वर, नजला, जुखाम, स्वरभंग, स्वर नली के प्रदाह, वायु नलियों की सूजन में लाभ होता है। दमा, खांसी और क्षय के रोग में बड़ा लाभ होता है।"

डॉ० कर्नल चोपरा।

हवन एक वैज्ञानिक पद्धति है—

कुछ लोगों का विश्वास है कि हवन से कार्बन डाय-आक्साइड गैस निकलती है जो फेफड़ों के लिए घातक है। बात ठीक है। हवन के द्वारा कार्बन डाय आक्साइड गैस की उत्पत्ति का निषेध नहीं किया जा सकता। किन्तु साथ ही इस क्रिया पर भी ध्यान देना होगा जो हवन के साथ व्यवहृत होती है।

(१) हवन में समिधाओं का बड़ा महत्व है। ऐरे-गैरे किसी भी वृक्ष की समिधायें लेने का निषेध है। इसका प्रयोजन यही है कि समिधायें उन्हीं वृक्षों की ली जाएं जो उस दूषित गैस को कम मात्रा में उत्पन्न करें और साथ ही उसके लाभप्रद तत्व इतने अधिक हों कि उस गैस की हानि को निष्प्रभ कर सकें।

(२) हवन कुण्ड के चारों ओर एक घेरे में जल भरा जाता है जो हवन से उत्पन्न दूषित वायु को तत्काल अपने भीतर खींच लेता है। जहां जल के इस घेरे का अभाव होता है वहां जल से भरे हुये मृत्तिका पात्र रखे जाते हैं, जो कार्बन डाय आक्साइड जैसी हानिप्रद वायुओं को अपने भीतर खींच लेते हैं।

(३) हवन आदि कृत्य करते समय हरे ताजे लता-पल्लव लाकर पूजन स्थान को सजाने का विधान है एवं दरवाजों पर हरे बन्दनवार बांधे जाते हैं।

इसका ध्येय यही है कि हरे पत्ते सुन्दर और भले लगने के साथ ही साथ हवन आदि के द्वारा निकलने वाली कार्बन डॉयआक्साइड को एक दम अपने भीतर निगल जाते हैं और प्राण वायु को प्रदान करते हैं। इस प्रकार इन लता-पल्लव और बन्दनवारों का भी वैज्ञानिक महत्व है।

अब आप विचारिए कि इस कार्बन डायआक्साइड के प्रभाव को निरस्त करने के लिए इस विधान में कितनी सावधानी बरती गई है कि उससे जरा से भी अनिष्ट की आशंका नहीं है। इस पद्धति को अवैज्ञानिक बताना ऐसा ही है जैसा मल की दुर्गन्ध के कारण भोजन का निषेध करना।

स्पष्ट है कि अग्नि द्वारा औषधियों का वायुभूत प्रणाली से जो सूक्ष्मीकरण होता है, उसमें रोग निवारक शक्ति तो रहती ही है, साथ ही भेषज परमाणु रोग कीटाणुओं के सीधे सम्पर्क में पहुंच कर उन्हें नष्ट करने में समर्थ होते हैं। उनके पोषक तत्व रोगी का यथेष्ट पोषण करने में सफल होते हैं।

हमारा व्यक्तिगत विश्वास है कि हवन के द्वारा असाध्य और यक्ष्मा जैसे दुःसाध्य रोगों को बहुत कम पैसों में ठीक किया जा सकता है। जिन रोगियों को डाक्टर ने असाध्य कहकर छोड़ दिया और जो जीवन से हताश हो चुके थे उन्होंने हवन-चिकित्सा का आश्रय लेकर न केवल रोग से ही छुटकारा पाया अपितु पूर्ण आरोग्य लाभ किया।

किस रोग पर किन-किन औषधियों का हवन करना चाहिए, इसकी हम विस्तृत तालिका दे सकते हैं। यह विज्ञान बहुत विस्तृत और पूर्ण है। किन्तु स्थानाभाव के कारण हम केवल क्षय की औषधियों पर ही प्रकाश डालेंगे।

हवन के लिये आवश्यक उपकरण

(१) हवन कुण्ड या पात्र जिसमें हवन करना हो।
(२) जल से भरे हुए मृत्तिका पात्र।
(३) एक कटोरी में घी, दूसरी में हवन सामग्री।
(४) चम्मच।
(५) समिधायें।
(६) कपूर या घी की फूल बत्ती।
(७) माचिस, चिमटा, पंखा, गमछा आदि।

समिधा

पीपल, पलाश, बड़, गूगल, आम या विल्व।

इनमें से यदि कुछ भी न मिले तो जलाने की लकड़ियों में से अच्छी-अच्छी पतली समिधायें छांट ले, जिनमें कीड़े आदि न लगे हों। जहां कोयले से ही काम चलाना हो वहां निर्धूम्र कोयले लेकर काम चलाया जा सकता है।

सामग्री

मण्डूकपर्णी, ब्रह्मी, इन्द्रायण की जड़, शतावरी, असगन्धा, शालपर्णी, अडूसा, गुलाब के फूल, रास्ना, वंशलोचन, देवदारु, अगर, तगर, जटामांसी, गोखरू। पिस्ता, बादाम, मुनक्का, छुहारे, जायफल, लौंग, बड़ी हर्र और आमला। —ये सब १-१ भाग।

गूगल दुगना। कपूर-केशर यथाशक्ति।

उक्त सामग्री में यथासाध्य मेवा मिष्टान मिलाए जा सकते हैं। इस सामग्री में इतनी शकर और घी डालिये कि लड्डू बन जाएँ।

विधि

कपूर को हवन कुण्ड के बीचों बीच रख कर ऊपर से पतली पतली समिधाएँ चुन दीजिये, जिससे अग्नि प्रज्वलित हो सके।

सामग्री में घी मिलाकर आहुति डालना चाहिये। हवन में घर के अन्य लोग एवं इष्टमित्र सम्मिलित हों तो उन्हें अलग-अलग सामग्री अथवा घी दे देना चाहिये। किसी हवन-विधि की पुस्तक को देखकर मंत्र आदि पढ़े जा सकते हैं या केवल रोग निवारण की भावना से ही आहुतियां डाली जा सकती हैं।

हवन में भावना का महत्व

हमारे प्रत्येक कार्य में भावना (इच्छा) का बड़ा महत्व है। इच्छा और विश्वास के साथ किया हुआ कार्य असफल नहीं होता। चिकित्सा में विश्वास का विशेष स्थान है। अच्छे से अच्छे चिकित्सक पर भी जब रोगी का विश्वास नहीं होता तो उसकी चिकित्सा असफल-प्राय रहती है और विश्वास के बल पर साधारण चिकित्सक अधिक सफलता प्राप्त कर लेता है। हवन भी एक चिकित्सा-प्रणाली है। श्रद्धा और विश्वास के साथ आरोग्य की भावना को अपना कर आहुतियां देने का विधान बतलाया गया है। मंत्रों में भी इसी भावना के दृढ़ीकरण का संकेत है। जो आस्तिक हैं वे इसे धार्मिक विधान से सम्पन्न कर सकते हैं। अन्य लोग औषधियों के गुण धर्म पर विश्वास रखते हुये मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त के अनुसार आरोग्य भावना पर बल देते हुये इस क्रिया का प्रतिपादन करें।

क्रमशः लाभ होने पर इस भावना को स्वयमेव बल मिलता जाता है और खोया हुआ स्वास्थ्य त्वरा गति से प्राप्त होने लगता है। यह क्रिया दो चार दिन या हफ्ते दो हफ्ते करने से लाभप्रद नहीं हो सकती। जब हम स्ट्रेप्टोमायसिन के कोर्स महिनों चला सकते हैं तो इसे भी कुछ मास चालू रखने की आवश्यकता है। इससे तो कोई भी इन्कार नहीं कर सकता कि हवन अपने घर का वायुमण्डल शुद्ध करने की अद्वितीय प्रणाली है। फिर एक पंथ दो काज।

कुछ अन्य बातें--

१—हवन करते समय धुंआ अधिक न हो, इसका ध्यान रखना आवश्यक है। धुंआ से रोगी को कष्ट हो सकता है, इसलिये अग्नि निर्धूम रहे।

२—हवन समाप्त होजाने के बाद भी रोगी उसी कमरे में रहे ताकि श्वास-प्रश्वास के द्वारा वायुभूत औषधियां शरीर के भीतर प्रवेश पाकर अपना प्रभाव बना सके।

३—इस विधान में रोगी को औषधि-सेवन का निषेध नहीं है। वह चाहे तो मौखिक औषधियों का सेवन भी करता रह सकता है।

४—क्षय के सम्बन्ध में आहार-विहार सम्बन्धी अन्य सभी बातों में चिकित्सक के आदेशानुसार रहना आवश्यक है। ★★
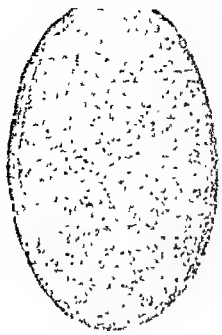
नेत्र शालाक्य चिकित्सा

(आयुर्वेदिक कफज लिंगनाश)

लेखक—वैद्य इन्द्रभान सी. भटनागर, नेत्ररोग विशेषज्ञ।

सामिग्री—

१-यवमुखी शलाका--शास्त्रोक्त सु० उ० अ० १७ श्लोक-८४।

२-Bleeding or Vaccination Lancet,

३-घृत ४-रुई ५-स्त्री-दुग्ध ६-पट्टा (सहायक यंत्र)।

मोतियाबिन्दु कफज लिंगनाश—

जब कफ तिमिर दृष्टि (Lens) के चौथे पटल में पूर्ण रूप से भर जाता है तब पक्व मोतियाबिन्दु शस्त्र योग्य कहलाता है, श्लोक. नं० ३०-३१, सु० अ० ७।

श्लेष्मणा बहलं स्निग्धं शङ्ख कुन्देन्दुपाण्डुरम्......
........छायायां विस्तृतो भवेत्।

पक्व मोतियाबिन्दुः—

सु०अ० ७, श्लो. नं० २०-२१, जब तक कफ आंख के दृष्टि (Lens) के प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय पटल में होता है तब तक उसे धुंधला, मच्छर उड़ते हुये, धूंवा सा दिखाई देता है। आंख के अति निकट तक भी अंगुलियां गिन सकता है-एक के दो-दो दिखाई देते हैं। जब तक वह कफज तिमिर अपक्व मोतिया है जो शस्त्र कर्म करने के योग्य नहीं है।

पक्व और अपक्व कफज लिंगनाश की पहिचान प्राचीन तथा आधुनिक विद्वान द्वारा एक ही है।

पाश्चात्य नेत्र सर्जरी- मोतियाबिन्दु ओपरेशन Instruments-शस्त्र व सामग्री- 1. Catract knife 2. Eye Speculum 3. Cystetoms 4. Currattes. 5. Iris forceps 6. Fixation forceps 7. Iris Covered Sciessor 8. Iris repostitor 9. Spoon, 10. Undyne with Cannula 11. Atropine lotion 12. Murc-Lotion. 13. Vaseline. 14. Cotton 15. Bandage 16. Sergical Table 17. com-pounder 18. Cocaine or, Novocaine lotion.

आयुर्वेद कफज लिंगनाश प्रणाली—

देखिये-सुश्रुत० अ० १७, श्लोक ५५ से ७० तक सम्पूर्ण। वाग्भट्ट-उ०अ० १४ श्लोक-६ से २१ तक. चक्रदत्त—नेत्ररोग चि० ५६. श्लोक १५२ से १५७ तक

इसी प्रकार वंगसेन तथा यूनानी ग्रंथ तिब्बे-अकबर भी इसी पद्धति का समर्थन करते हैं; तथा इस पद्धति के द्वारा शस्त्र-चिकित्सा करनेका आदेश दे रहे हैं

लिंगनाश निकालने का आयुर्वेद-क्रम—

अथ साधारणे काले शुद्ध सम्भोजितात्मनः।
देशे प्रकाशे पूर्वाह्णे भिषग् जानूच्चपीठगः॥
यन्त्रितस्यो पविष्टस्य स्विन्नाक्षस्य मुखानिलैः।
अंगुष्ठमृदिते नेत्रे दृष्टौ दृष्ट्वोत्प्लुतं मलम्॥
स्वनासां प्रेक्षमाणस्य निष्कम्पं मूर्ध्नि धारिते।
कृष्णाद्र्धाङ्गुलं मुक्त्वा तदर्धापाङ्गतः॥

सर्जनीमध्यांगुष्ठैः शलाकां निश्चलं धृताम् ।
दैवच्छिद्रं नयेत्पार्श्वादूर्ध्वमामन्थयन्निव ॥
सव्यं दक्षिण हस्तेन नेत्रं सव्येन चेतरत् । इति ।

वाग्भट अ. १४।१६-१७

जिस ऋतु में बहुत गर्मी या शर्दी न हो ऐसे साधारण समय में तीन घंटा पहले शुद्ध भोजन (हलका भोजन) किये हुये शुद्ध शरीर वाले पुरुष व स्त्री को प्रकाश वाले स्थान में अपने सम्मुख इस प्रकार विठलावे कि सुयोग्य शस्त्र कर्म करने वाला वैद्य रोगी की शस्त्रकर्म करने योग्य आंख के तारा Pupil को स्पष्ट रूप से देख सके । रोगी को ठीक वैद्य के सम्मुख पावों के पास पलोटी मारकर (सिद्धासन से) विठावे और वैद्य उस रोगी के ठीक सम्मुख कुछ उच्च स्थान बाजोट(तख्ते) पर इस प्रकार बैठे कि उसके दोनों पांव रोगी की पालेटी के सम्मुख निकट ही जुड़े हों । रोगी से वैद्य के दोनों पांव दोनों हाथों से पकड़ने को कह देवे । जिस समय वैद्य शस्त्र-कर्म करने को तैयार होवे उस समय दूसरी आंख, जो शस्त्रकर्म योग्य नहीं है, को रुई रखकर खाली पट्टा बांध कर बंद कर देवे । एक व्यक्ति को ठीक रोगी के पीछे इस प्रकार बैठने को कहे और उसका शिर दोनों हाथों से स्थिर धीरे से पकड़ने को कहे । जब सिर स्थिर होजावे तब स्वच्छ गरम जल लेकर उसमें रुई भिगोकर शस्त्रकर्म योग्य आंख को स्वेद देवे (मुख की भाप का भी स्वेद ठीक है) जब आंख अच्छी तरह से स्वेदित होजाय या गरम होजाय तब चतुर वैद्य Bleeding lencet नाम के शस्त्र को हाथ में लेवे, जिसके मुंह पर डोरा इस प्रकार बंधा हुआ होना चाहिये कि शलाका का मुंह जितना मोटा हो उतना उतनी ही दूरी पर उस यंत्र का मुंह खुला हुआ हो, बाकी डोरे से बंधा हो। इसका कारण यह है कि वह चाकू उतना ही छिद्र करेगा जिसमें शलाका आसानी से नेत्र में प्रवेश हो सके, ये शोध कार्य करने वालों की कुछ कठिनाई हल करने के लिये है । इस शस्त्र को हम अपनी भाषा में (चूंका) शब्द कहते हैं । शलाका प्रवेश करने के पूर्व दैवकृत छिद्र का स्थान का ज्ञान होना जरूरी है जिसे हम अपनी भाषा में चूंके का घर कहते हैं । उसी में ठीक शस्त्रकर्म करने पर किसी प्रकार के उपद्रव नहीं होंगे सिर्फ शलाका या चूंका प्रवेश करने पर पट्ट सी आवाज होगी और सिर्फ पानी की बूंद उस छिद्र में से निकलेगी । यही दैवकृत छिद्र समझो जिसका स्थान वाग्भट्टमुनि इस प्रकार बतलाते हैं ।

नेत्र के कृष्णभाग को आधा अंगुल छोड़कर उस आधे से आधा अपांग की ओर छोड़कर न ऊपर न नीचे नसों के जाल को बचाकर छिद्र किया जाता है वही दैवकृत छिद्र है, जिसका ज्ञान हमारे बड़े-बड़े सर्जनों को भी नहीं है । इसी दैवकृत छिद्र पर वैद्य आपस में आलोचना कर आयुर्वेद की महानता कम करते हैं । और प्रत्यक्ष रूप मोटाई, गहराई एक दूसरे को पूंछ कर आपस में नाहक Criticise कर एलोपैथी सर्जनों के सम्मुख हास्यरूप बनते हैं । हम प्रत्यक्ष वह स्थान को दिखा सकते हैं लेकिन मोटाई, गहराई का विषय जुदा रहा । यदि कोई वैद्य व डाक्टर प्राणवायु की मोटाई, रंग बतला सकता है और उसे पकड़ कर रख सकता है तो इस छिद्र की मोटाई गहराई आदि बतलाने में नेत्र वैद्य समर्थ हो सकेगा । इतना कह सकता हूं कि यह छिद्र पाश्चात्य नेत्र शारीर के अनुसार Posterior Chamber में होता है ।

अब उस यंत्र (Bleeding lancet) को अपने दायें हाथ की तर्जनी और अंगूठे से इस प्रकार स्थिर करो कि तनिक जोर से ही स्वेत पटल काट दे, बंधे हुये डोरे से आगे न जाने पावे अथवा शलाका को इस प्रकार से पकड़ो कि उसी स्थान पर कुछ जोर देने पर शलाका स्वेत पटल को काटकर शलाका का यवमुख ही धीरे से अन्दर प्रवेश करे । जिस समय इस छिद्र में यन्त्र या शलाका प्रवेश करे उस समय रोगी को नाक की ओर दृष्टि करने के लिये कहे और बांये हाथ से ऊपर की पलक ऊपर की ओर

स्थिर करते हुये चतुराई के साथ वैद्य सुवेध्य करे। यह प्रथम कार्य हुआ।

अब जब शलाका यंत्र के द्वारा छिद्र करने पर अथवा शलाका द्वारा प्रवेश करने पर 'पट्ट' शब्द होगा और सिर्फ पानी की बूंद ही निकलेगी। ठीक स्थान पर वेधन न होने पर रक्त निकलेगा। यही दैवकृत छिद्र की पहिचान है। ऐसा उचित वेधन न होने पर अनेक उपद्रव पैदा होते हैं जिन्हें चतुर वैद्य ही शास्त्र में बतलाये हुये उपचारों द्वारा शमन कर सकते हैं।

शलाका प्रवेश करके उसे रोगी के गाल पर लटकने दो। वह लटकी हुई जभी रहेगी जब ठीक उसकी मोटाई में छिद्र यू के द्वारा हुआ हो। यव की नोक जो बाहर की ओर है पतली होने की वजह से लटकी रहेगी। ज्यों ही शलाका गालों पर छोड़ो त्यों ही उस छिद्र को स्त्री-दुग्ध से सिंचन करदो। फिर आंख को स्थिर रखते हुये बांई आंख में दायें हाथ से शलाका अपांग की ओर इस प्रकार उठावो जो Suspensory ligament से जुड़े हुये दृष्टि (Lens) को तोड़ते हुये नीचे की ओर की Supensary Ligament के पास Posterior Chamber में इस प्रकार दवा दो कि वह फिर से न उठे। नीचे दवाते हुये एक सहज Lens दृष्टि पर जोर दो जिससे Lens के पटल, Capsules फट जाय और कफ का पानी निकल जाय। जिस समय आप Suspensory ligaments तोड़ते हुये Lens को नीचे की ओर हटायेंगे उस समय Pupil (ताल) स्वच्छ दिखाई देगा और Way of vision साफ होजाने से रोगी फिर से पूर्व की तरह प्रत्येक वस्तु को अच्छी तरह देखने लगेगा, यहां तक कि उसके सामने सिर के बाल गिनाये जांय तो भी गिन देगा तभी शुद्ध शल्य कर्म समझो। Lens दृष्टि को तोड़कर नीचे डालते समय शलाका इस रूप से बड़ी कौशलता के साथ चलाओ कि शलाका Iris को (कृष्णपटल) को Touch न करे अन्यथा उपद्रव प्रारम्भ होना सम्भव है, यह एक सुयोग्य कुशल वैद्य या सर्जन का कार्य है।

अब शलाका धीरे से बाहर निकाल दो, दुग्ध तथा घृत से सिंचन कर दो, फिर घृत से फाहा भर कर आग के ऊपर गरम करके मिनट आंख के ऊपर स्वेद देकर वही रुई का आंख पर रखकर पट्टा बांध दो, दूसरी आंख कर सकते हैं।

अब खाट पर रुई का गदैला बिछाकर नीचे तकिया रखकर रोगी को उत्तान लिटा दो। सिर न तो ज्यादा ऊंचा करे न ज्यादा नीचा फिर तीन दिन तक ईंट गरम करके कपड़े में कर दिन में चार-पांच बार पट्टे पर से सेंक करते जिससे आंख में वायु का प्रकोप न होवे और किसी प्रकार का उपद्रव हो। तीन दिन तक लंघन अथवा पेया दो जो हलके पदार्थ में जाता हो, रोगी को पिलाते समय खाट पर धी बैठा कर दो और फिर धीरे से उसी स्थिति सुला दो।

फिर तीसरे दिन पहले की तरह रोगी को वैद्य सामने बिठाकर आंख के ऊपर हरा या काला डालकर वैद्य पट्टा खोले, वायुनाशक गरम अथवा Boric के गरम पानी द्वारा धीरे आंख धोकर रोगी से आंख खोलने को कहे। समय दूसरी आंख रुई द्वारा बंद रखनी चाहि देखिये Pupil स्वच्छ है या नहीं। रोगी को फिर वस्तुयें दिखला कर विश्वास करो कि आंख हो गई। यदि कोई उपद्रव नहीं है तो रोगी पहले तरह सब दिखलाई हुई वस्तुयें कपड़े में से देख कह देगा। समझो कार्य आधा सफल हुआ।

फिर पूर्व की तरह स्त्री दुग्ध तथा घृत से कर घृत का फिर से पट्टा बांध देवें। और उसी रोगी को चार दिन और सोते रहने को कहें। इसी प्रकार चार दिन और चाल रहे। रोगी चाहे

जिस ओर ओपरेशन किया हुआ न हो उस ओर वह करवट बदल सकता है, अब चार रोज उसे खीचड़ी अथवा हल्का भोजन या पेया ही देते रहो।

चार दिन बाद फिर पट्टा खोल कर उसी प्रकार देखो, आंख में लालिमा न हो, सारी वस्तुओं को आसानी से देखता होवे तो पट्टा खोलकर उस आंख पर हरा कपड़ा लटका दो, जिससे आंख पर एक दम प्रकाश न पड़े। रोगी कुछ दिन नजदीक की वस्तुओं को देखता हुआ दूर की वस्तुएं देखे फिर उसे नेत्र स्वच्छ करने वाले शास्त्र में बतलाये हुये अथवा परीक्षित अञ्जनों तथा लालिमा, वेदना न होने देने वाले लेपों का प्रयोग ४० दिन तक कराते रहना चाहिये। आपका कार्य सिद्ध हुआ। ४० दिन तक गरिष्ठ पदार्थ, गरम पदार्थ तथा खट्टे या तेल वाले पदार्थ खाने को मना करदे। ४० दिन बाद हरा पट्टा हटा देवें।

रोगी को पहले की तरह हिलने फिरने की आज्ञा दे सकते हैं। यह हमारी शुद्ध लिंगनाश क्रिया है।

ऐलोपैथी प्रणाली—

सर्वप्रथम रोगी को Operation टेबिल पर उत्तान लेटाइये। रोगी के हाथ-पांव बांधकर अथवा किसी व्यक्ति की सहायता से स्थिर कर दीजिये, आंख में Atropine Lotion Drop करके ताल pupil विस्तृत कीजिए। जब Pupil पूर्ण रूप से Dialate विस्तृत हो जाय तब Cocaine अथवा Novocaine lotion आंख में डालिये। कनपटी, भौं तथा आंख की निचली पलक के नीचे Novocain अथवा Coccain के Injection लगाइए। फिर आंख को Eye speculum यंत्र द्वारा खोलिये जब अच्छी तरह से आंख बाहरी हो जाय तब Catract knife द्वारा भौं की तरफ Cornea को इस प्रकार अर्द्धवृत्त से काटें कि चाकू Pupil के ऊपर Iris काटता हुआ न जावे, यदि कट भी जावे तो कोई बात नहीं। Cornea काटते समय आंख को स्थिर रखने के लिए Fixation forcep काम में लेवें। जब cornia अर्द्धवृत्त में कट जावे तो फिर Fixation forcep से Cornea का कटा हुआ पर्दा उठा कर Iris को Iris Forcep से ताल के पास से पकड़ कर बाहर की ओर खींचकर Iris scissor से काट देवे फिर धीरे से Systatomd का प्रयोग करते हुए Lens को Suspensory liganent तोड़ कर पूर्ण रूप से बाहर निकाल कर Cornia ठीक Iris Repositor द्वारा बिठाकर Saline Lotion से undyne के द्वारा धोकर उसमें Atropine और Mur. Lotion डाल कर Eye Speculom निकाल कर Vesline युक्त गरम रूई का पट्टा बांध देवे। रोगी २४ घण्टे तक उठ-बैठ नहीं सकता। दोनों आंखों पर पट्टी बांधनी जरूरी है। रोगी लेटी हुई अवस्था में ही तीन दिन तक दूध पीये। उसकी दृष्टि का स्वच्छ होना तीसरे दिन मालूम पड़ता है।

सावधानी—

छींकना, डकार लेना, वमन करना, करवट बदलना, शिर का हिलाना २४ घन्टे तक बंद रहे। यदि इनमें से कुछ एक भी गड़बड़ी हुई तो आंख का ऑपरेशन निष्फल जावेगा।

इस क्रिया को करते समय आंख में रक्तश्राव होना स्वाभाविक है।

बाकी क्रिया जो पट्टा खोल कर बांधने की है वही क्रिया आयुर्वेद पद्धति की है। सातवें या दसवें दिन पट्टा खोल दिया जाता है और हरा पट्टा बांध दिया जाता है। फिर zinc Sulphate और Mur. Lotion चालू रखते हैं।

तुलना

आयुर्वेदिक	एलोपैथिक
१—बिना Iris कांटे Lens तोड़ कर posterior	१—Iris काट कर Lens बाहर निकाला जाता है।

chamber Aquous Humour में डाल देते हैं जहां सदा के लिए छोड़ देते हैं।	
२—डाल की आकृति वैसी ही बनी रहती है।	२—डाल (Pupil) की आकृति कृत्रिम हो जाती है।
३—Vitreous निकलने का मार्ग नहीं है। आंख में खड्डा होने का कोई कारण प्रतीत नहीं होता।	३—Lens निकालते समय आंख के गोले पर अधिक दबाव पड़ने पर Vitreous Homour का निकल जाना अधिक सम्भव है। जिससे दृष्टि में अन्तर पड़ता है अथवा कभी कभी खड्डा ही पड़ जाता है।
४—लालिमा व अश्रुश्राव अधिक दिनों तक बने नहीं रहते हैं।	४—लालिमा और अश्रु श्राव अधिक दिनों तक बने रहते हैं।
५—शस्त्रों की कीमत एलोपैथिक शस्त्रों की कीमत से कई गुना सस्ती है। सिर्फ एक-दो औजार ही काम में लेने पड़ते हैं। ये शस्त्र स्वयं वैद्य शास्त्रानुसार बना सकते हैं।	५—यहां सात-आठ शस्त्रों का प्रयोग करना अनिवार्य है, शस्त्र बहुत कीमती होते हैं।
६—आयुर्वेदिक औषधियां भी कई गुनी सस्ती हैं।	६—एलोपैथी औषधियां आयुर्वेदीय औषधियों से कई गुनी कीमती हैं।
७—सफलता एलोपैथी से अधिक है।	७—सफलता आयुर्वेद की अपेक्षा कम है।
८—आँपरेशन बैठे-बैठे होता है।	८—ओपरेशन सुलाकर करते हैं।
९—नोवोकेन कोकेन की आवश्यकता नहीं।	९—नोवोकेन कोकेन बिना ओपरेशन नहीं होता।

शंकायें—

१—डाक्टर महोदय कहते हैं कि Lens बाहर न निकालने से वह शल्य बन जाता है।

उत्तर—मोतिया का ओपरेशन न करने पर Lens खराब होकर टुकड़े रूप होकर गल जाता देखा गया है, शल्य नहीं बनता। जिस प्रकार मनुष्य का एक Lung फुफ्फुस खराब होने पर सर्जन उसके कार्य को बंद कर देते हैं और वहीं पड़ा रहने देते हैं वह शल्य नहीं बनता। इसी प्रकार Lens भी शल्य नहीं बन सकता।

दूसरे जब Lens Posterior Chamber Aquous humour में पड़ा रहता है तो वह समय पाकर उसमें स्वतः ही गल जाता है। कारण वह क्षारीय जल है। पाश्चात्य पद्धति में संक्रमण होना अधिक संभव है, Cut अधिक होने से घाव जल्दी नहीं भर पाता।

२—शिरःशूल होता है।

उत्तर—शास्त्रों के आदेशानुसार शस्त्रकर्म करने पर तथा उसकी बतलाई हुई विधि से सेवा-सुश्रुसा करने पर शिरःशूल तथा अन्य उपद्रव नहीं होते। यदि होते भी हैं तो उनके सफल उपचार भी उन्हीं में बतलाये हैं जो तुरन्त पीड़ा-शामक हैं। शिरःशूल दोनों पद्धतियों में सम्भव है।

३—दृष्टिनाश शीघ्र होती है।

उत्तर—उनका यह कहना नितान्त भूल है। जितने समय तक ज्योती उनकी पद्धति द्वारा बनी रहती है उतने ही व उससे अधिक समय तक ज्योती आयुर्वेदिक पद्धति से भी बनी रहती है। यों तो optic Nerve, या Retina खराब हो जाने पर दोनों प्रकार से प्राप्त की गई दृष्टियां नष्ट हो

—शेषांश पृष्ठ १०५६ पर।

वृश्चिक (बिच्छू) दंश चिकित्सा एवं बिच्छू का चिकित्सा में उपयोग

लेखक—वैद्य कृष्णदेव शर्मा, सीकरी (भरतपुर)

ईश्वर ने जो वस्तु एक भयंकर रूप में संसार को दी है वह आशा से भी अधिक अमृतमयी बना कर दी है, उदाहरण के रूप में मैं आज पाठकों के समक्ष वृश्चिक (बिच्छू) को रखता हूँ।

इसकी भयंकरता, दंश की चिकित्सा, एतत्प्रयोग-पञ्चक—

प्राय: देखने में आता है कि वृश्चिक साधारणत: हाथ या पैर में ही डंक लगाता है। तत्काल भयंकर वेदना के साथ विष शिरा मार्ग से हृदय की ओर प्रसरित होता है। हृदय में पहुंचकर भयंकर शूल पैदा कर देता है, साथ में मूर्च्छा भी हो जाती है, यदि सर्पादि की कोथ द्वारा उत्पन्न हुआ तो इसी अवस्था में प्राण वियोग भी करा देता है। रोगी ही जानता है कि उसके शरीर में कितनी वेदना हो रही है (मुझे पूरा विश्वास है कि अभी तक एलोपैथी के भक्त इस वेदना का मीटर नहीं बना सके हैं) निम्न-लिखित चिकित्सा न्यूनातिन्यून २०० दंशितों पर प्रयोग कर लिखी जा रही है। पाठक चाहे जहां परीक्षा कर सकते हैं, चाहे जिस अवस्था में (रोगी मरा न हो)।

पहिले मैं प्राय: नृसार के साथ शीशी में चूना (बिना बुझा) डालकर दंशित को सुँघाया करता था काफी देर बाद सफलता प्राप्त होती थी, एक दिन चूने की शीशी में चूना नहीं था तथा वृश्चिक दंश का रोगी आ गया। पास में ही कास्टिक सोडा जो कि साबुन बनाने के काम में आता है उसे चूने का सत्व भाग मान ४-६ रत्ती साफ शीशी में डाल दिया तथा ऊपर से ४-६ रत्ती नृसार (नौसादर डण्डे का) पीस कर डाल दिया, तथा ऊपर से ४ ही बूंद जल की डाली होंगी कि उफनकर औषधि बाहर आने लगी, मैंने जैसे-तैसे करके पानी में हाथ भिगोकर शीशी पर डाट लगाया तथा प्रथम गैस बनी या नहीं यह जानने के लिए स्वयं ही एक नासारंध्र से सूंघा, उसी समय आधा मस्तक संज्ञाहीन-सा होगया तथा, उसकी तीव्रता का अनुभव हुआ। मेरा हृदय प्रसन्नता से भर गया, कारण कि वृश्चिक दंशी को इतनी तीव्र गैस ही स्वस्थ बना सकती है, इतनी ही देर में वह दंशित मूर्च्छित हो गया था तथा दंश-स्थान पर दो बड़े-बड़े छाले उठ आये थे। मैंने उसके अभिभावक से पूछा—दंश पर कोई औषधि लगाई है क्या? उसने कहा—नहीं। मैं हैरान था। यह बिच्छू था कि आग का गोला। खैर, मैंने शीशी की डाट खोलकर उस मूर्च्छित के नासा रंध्र के आगे की। उसने आंखें खोलीं, मैंने पूछा दर्द कहां है? उसने छाती पर इशारा किया। मैंने कहा "बोलो" उसने मुंह पर हाथ लगाकर समझाया कि बोला नहीं जाता। मैंने दुबारा शीशी को सुंघाया, तथा तिबारा सूँघाते ही वह बोल उठा। कहने ल ा—"वैद्य जी आपने बचा दिया, छाती का दर्द हट गया है, नीचे है।" पूछने पर

—लेखक—

उसने कमर पर बताया। मैंने सुंघाना पुनः प्रारम्भ कर दिया। एक बार सुंघाने से कमर से भी दर्द हट चुका था; मैंने उसे केवल ग्यारह बार शीशी और सुंघाई, उसका दर्द दंश स्थान पर आ चुका था। उस पर श्वेत मल्ल (संखिया) घिसकर लगा दिया और विदा किया। कह दिया कि दंश स्थान पर थोड़ा दर्द रहता ही है।

वह चला गया। साथ में एक शिक्षा भी दे गया, कि वेदना को ऊपर से उतार कर दंश स्थान पर भी नहीं छोड़ना चाहिये। मैंने उस दिन से, पोटाशियम परमेंगनेट, टार्टरिक एसिड का दवा, लवण मिश्रित जल का कान में प्रयोग, हल्दी का धूम्रपान, वृश्चिक-युक्त स्प्रिट, अपामार्ग का लेप इत्यादि अनेक प्रयोगों का अनुभव किया, किन्तु दंश स्थान की पीड़ा हटाने में असफल रहा। अन्त में "जिन खोजा तिन पाइयां गहरे पानी पैठ" कहावत चरितार्थ हुई और प्रातः स्मरणीय वैद्यवर श्रीकृष्णराम जी शर्मा जयपुरीय की निर्मित्त सिद्ध भैषज्य मणि-माला के विषाधिकारोक्त—

कपिशाखुमार सागर दन्तीबीजानि निम्बुपिष्टानि।
लिप्त्वा दंश मुखोपरि वृश्चिक विद्धः सुखं शेते॥

पीला संखिया	१ माशा
नौसादर	१ माशा
जमालगोटे के बीज	१ माशा
नीबू का सत्व (टार्टरिक एसिड)	१ माशा

प्रयोग—दंश स्थान की पीड़ा को हटाने में अद्भुत रहा। संखिया को भली भांति अलग पीस सूक्ष्म कर लेना आवश्यक है। पुनः अन्य वस्तुऐं मिला-कर पीस कर लेप कर देना चाहिये। लगभग ५० मिनिट में पीड़ा बिलकुल शान्त होजाती है।

इस प्रयोग में नीबू-सत्व (टार्टरिक) इस लिये रखा जाता है कि हमारे जैसे ग्रामों में नीबू हर समय उपलब्ध नहीं होते।

कविवर ने इस प्रयोग के महत्व में प्रशंसा के पुल नहीं बांधे, उन्होंने केवल दो शब्द लिखकर ही प्रयोग की गंभीरता प्रगट करदी है, 'वृश्चिक विद्धः सुखं शेते' शयन तभी हो सकता है जब कि शरीर स्वस्थ हो नहीं तो "बिछी काटे चैन कहां।"

नोट—प्रथम उपरोक्त गैस सुंघाकर विष उतार लेना चाहिये, पुनः यह लेप करना चाहिये।

यदि उपरोक्त गैस समय पर उपलब्ध न हो सके तो अंतिम पीड़ा स्थल पर एक वस्त्र में बल देकर बंध लगा देना चाहिये, तथा अपने दोनों हाथों को रगड़कर विष को नीचे की ओर सूंतना चाहिये, जैसे-जैसे पीड़ा नीचे आती जावे उसी तरह बंध को भी नीचे सरका लाना चाहिये। बंध अच्छा मजबूती से कसा हुआ रखना चाहिये। जिसको दूसरा आदमी पकड़े रहे। इस विधि से विष पीड़ा शांत होजाती है, किन्तु दंश स्थान पर तो रहती ही है।

वृश्चिक प्रयोग पंचक

१ कर्णरोग पर—

एक अदद अच्छा मोटा ताजा मृत बिच्छू लेकर पीतल की कटोरी में डाल दें तथा ऊपर से तोला ४

तिली का तैल डालदें, आग पर रखकर पकावें जब तक कि बिच्छू का रंग कुछ काला न हो। उतार कर तैल को शीशी में डालदें, उस पके बिच्छू को सुरक्षित रखें यह भी काम आवेगा।

उपरोक्त तैल कर्णशूल, कर्णस्राव, कर्ण पाक, पूतिकर्ण के लिये अमोघास्त्र है। पाठक अनुभव कर देखें।

२—वातजन्य पीड़ा पर—

आधा पाव कटु तैल में मोटे दो नग बिच्छू तथा उसी में दो नग विष-तिन्दुक की टिकियां डालदें, तैल पाक विधि से पाक करलें, वृश्चिकों को कुछ कूट लेना आवश्यक है। तैयार करके रखें। यह तैल सन्धिवात में तथा अन्य वातजन्य पीड़ाओं में मालिश कर सेंक करने से आश्चर्यजनक लाभ दिखलाता है।

३—अपस्मार रोग नाशक—

जंगल में लाल वर्ण के चींटे होते हैं जो कि बड़ी तेजी से दौड़ते हैं, यदा कदा कई चींटे क्रोधित होकर मनुष्य का पीछा तक करते हैं। ये एक बिल में हजारों की संख्या में निवास करते हैं, उस बिल को तलाश करलें, उस बिल में धीरे धीरे १ धार से जल डालना प्रारंभ करदें, अनुमानतः १ घड़ा जल पर्याप्त होता है किसी में अधिक जल भी डालना होता है। इस भांति जल डालते-डालते उस बिल से १ या २ पीत-रक्त से वर्ण के वृश्चिक निकलेंगे। उन्हें सावधानी से पकड़ कर शराब संपुट में रख अन्तर्धूम विधि से भस्म करलें तथा पीस कर सुरक्षित रखलें।

यह भस्म अपस्मार के रोगी को नस्य देनी चाहिये। प्रातः सायं १-१ रत्ती की मात्रा में, लगभग ७ दिवस में अच्छा लाभ दिखलाती है। मेरा केवल २ रोगियों पर अनुभव है। साथ में ब्राह्मी घृत का भी सेवन कराया था, इसके द्वारा भी अच्छा लाभ प्रतीत हुआ था।

४—पथरी नाशक—

मेरे पूज्य पिता जी ने बतलाया कि बिच्छू को कतर कर गुड़ में गोली बनाकर देने से अश्मरी (पथरी) गलकर मूत्र द्वारा निकल जाती है, उपरोक्त विधि अवश्य लाभप्रद है किन्तु मैं जैसी चाहता था वैसी नहीं, मैं पथरी पर इसके प्रयोगों की खोज करता रहा, मैंने "तिब्ब-अकबर" यूनानी प्रसिद्ध ग्रन्थ में बिच्छू की भस्म की माजून बनाकर पथरी में देने का विधान देखा। उसके बाद में सन् १६५३ में धन्वन्तरि विष चिकित्साङ्क में प्रसिद्ध कविराज प्रताप सिंह जी के लेख में कृष्ण वृश्चिक भस्म का प्रयोग देखा, फिर भी चित्त को शांति नहीं मिली। अन्त में मेरे भ्रमण करते हुये मुझे त्रिकालज्ञ श्री. पं० हवेलीराम जी ज्योतिषी से मिलने का अवसर प्राप्त हुआ, उन्होंने मुझे एलोपैथी दर्प-दमनार्थ निम्न प्रयोग दिया, उसको बना कर मैंने ३ अश्मरी के रोगियों पर प्रयोग किया, आशातीत सफलता प्राप्त हुई। मैं उसी प्रयोग को वैद्य-बन्धुओं के हितार्थ प्रकाशित करा रहा हूं।

प्रथम २ तोला बेर पत्थर को लेकर पीसले, उसमें मूली के स्वरस से ७ पुट दे लें। पुनः १० नग पेशौरी या काले वृश्चिक तथा १ तोला उपरोक्त बेर पत्थर की भस्म खरल में डाल गेंदे के स्वरस से पीस कर टिकिया बनालें और मध्यम पुट में शराब संपुट द्वारा फूंकलें। स्वांग शीतल होने पर भस्म को निकाल पीसकर सुरक्षित रखें।

यह भस्म आधी रत्ती मक्खन में रख प्रातःकाल दें, ऊपर से २ तोला गाजर का स्वरस या गेंदे का स्वरस पिलादें। सायंकाल शुण्ठादि कषाय का सेवन करावें, अधिक से अधिक १ सप्ताह में बड़ी से बड़ी पथरी गल कर टुकड़े हो निकल जाती है पाठक अनुभव करके देखें।

(५) स्नायुरोग नाशक—

स्नायुक रोग जोकि प्रायः राजपूताने की मरुभूमि में पोखरों के गंदे जल के व्यवहार से पाया जाता है जिसमें पादतल में तथा पिंडली आदि के स्थानों में थोड़ा व्रण होकर श्वेत सा सूत्र निकल आता है यह

कष्टप्रद होता है इसे गांवों में नहरुवा कहते हैं इसके लिये यह वृश्चिक एक उत्तम औषधि है। मैं वैद्यों से अपील करता हूं निम्न प्रयोग द्वारा क्षणों में ही सफलता प्राप्त कर यश के भागी बनें।

जीवित वृश्चिक के डङ्क को मजबूती से तर्जनी अँगुली, अँगूठे से या किसी हलके संदंश से पकड़ लें। तथा एक चिमटी से उस तन्तु को पकड़ कर सीधा कर लें और उस तन्तु के मध्य में उस वृश्चिक के डङ्क को प्रविष्ट करदें। ताकि वह बिच्छू उस तन्तु में विष का इंजैक्शन कर दे। पुनः डङ्क को निकाल वृश्चिक को डविया इत्यादि में रखें। यह प्रयोग करते ही वह तन्तु उछल-उछल कर नाचने लगेगा, तथा व्रण के आस-पास खुजली होगी। थोड़ी ही देर में उसका उछलना बन्द हो जावेगा, बस उसको पकड़ कर बाहर खींच लें वह सम्पूर्ण बाहर आजावेगा, व्रण पर साधारण मलहम लगा दें। ठीक हो जावेगा।

★★

[पृष्ठ १०५२ का शेषांश]

जाती है। ऊपर से नीचे गिरी हुई वस्तु कभी भी स्वतः ऊपर नहीं चढ़ती तो फिर Lens तोड़ा हुआ वापिस Pupil के सामने किस प्रकार आ सकता है। यह हो सकता है कि वैद्य की असावधानी से बराबर Suspensory Ligament पूर्ण न तोड़ने पर Lens समय पाकर वापिस अपने स्थान पर आ जाता है। तो फिर भी वह इसी प्रकार दुबारा क्रिया करने पर फिर से दृष्टि प्राप्त कर सकता है, ऐसा शास्त्रों का कथन है।

अब आप भली-भांति समझ गए होंगे कि जब एक छोटी सी नेत्र-चिकित्सा एलोपैथी से लोहा लेने को तैयार है जो एलोपैथी के सामने कम खर्चीली और सुसिद्ध है तो और भी अन्य भारतीय सर्जरी भी कम खर्चीली और सिद्ध हस्त होंगी इसमें कोई शक नहीं।

★★

प्रदर रोग

लेखक—श्री. मोहरसिंह यादव 'हितैषी" मिमरी, डालमिया दादरी (महेन्द्रगढ़)

आजकल प्रायः ६० प्रतिशत स्त्रियां इस रोग में फंसी हुई दिखाई देती हैं। आज पाठकों के सम्मुख में अपना अनुभव जो प्रदर रोग पर हुआ है प्रस्तुत करता हूँ।

कारण—

१-काम चिन्तन २-अनियमित भोजन ३-अत्यंत मैथुन ४-अप्राकृतिक मैथुन ५-अति प्रसव, ६-गर्भपात, स्राव ७-अति चिन्ता ८-क्लेश ६-कोमल स्थानों पर आघात १०-योनि की गन्दगी ११-रक्तहीनता १२-अल्पायु में गर्भ रह जाना १३-गर्भाशय से विच्युति १४-शारीरिक दुर्बलता १५-किसी लम्बी बीमारी का होना १६-गर्भाशय शोथ १७-पूयमेह, १८-उपदंश आदि इसके मुख्य कारण हैं।

परन्तु आजकल विशेष कारण जो दृष्टिगोचर हो रहे हैं वे भी घातक हैं—

१-अश्लील उपन्यास पढ़ना २-मन को उत्तेजित करने वाले चलचित्र (सिनेमा) देखना ३-अश्लील गाने ४—बन्द मकानों में रहना (मैंने कानपुर में देखा है जहां १२ मास में एक दिन भी सूर्य का प्रकाश बन्द गलियों वाले मकानों में प्रवेश नहीं कर पाता है।) ५—रहस्यवाद के नाम पर गन्दे साहित्य का सृजन ६—शृङ्गार भी एक कारण बन गया है।

लक्षण—

इस रोग का प्रमुख लक्षण योनिमार्ग से स्राव होना है। अन्य लक्षण ये हैं—

१—शारीरिक दुर्बलता २—बार-बार मूत्र त्यागना ३—आलस्य ४—कमर में दर्द ५—पेड़ू में भारीपन ६—पिण्डलियों में वेदना ७—शिर का भारीपन ८—तंद्रा (भी देखी गई है) इसके अतिरिक्त रोग पुराना पड़ने पर हाथ-पैरों में दाह भी हो जाता है ।

रोग का कुप्रभाव—

१—स्वभाव में परिवर्तन—जब रोगी दुर्बल हो जाता है तब उसका स्वभाव भी चिड़चिड़ा हो जाता है।

२—मस्तिष्क तथा स्नायुमण्डल दुर्बल होने के कारण शिरःशूल तथा शिर में खुजली और तन्द्रा।

३—मुखमण्डल की कान्ति का मन्द होना, यह तो सभी जानते हैं। जब रक्ताल्पता की नौबत आ पहुंची है तो कान्ति एवं ज्योति तो स्वयं ही मन्द पड़ जाती है।

४—हृदय धड़कन बढ़ जाना, श्वास फूलना, परिश्रम से घबरा जाना।

५—योनि मार्ग में खाज तथा जलन।

६—स्वास्थ्य का छिन्न-भिन्न हो जाना।

अब विद्वान पाठकों की सेवा में मैं अपना अनुभव भेंट कर रहा हूँ।

नाम रुग्णा— सरलादेवी आयु २५ वर्ष, रोग काल २ वर्ष। जिस समय मैंने रुग्णा को देखा उस समय वह उठने-बैठने चलने-फिरने तक असमर्थता प्रकट करती थी। कब्ज, भूख का अभाव रहता। त्वचा का रङ्ग पीला हो गया था। सिर और कमर के दर्द से अत्यन्त व्याकुल रहती थी। नेत्र श्वेत से हो गये थे। स्राव भी अधिक था। यदि रुग्णा को कुछ टहलने के लिये कुछ कह दिया जावे तो रोने लगजाती थी। पीछे की कुछ कहानी भी पूंछी जिससे पता चला कि दो बार गर्भपात भी हो चुका है। और भी अनेक कारणों के साथ उसे सन्तति शोक ने भी ग्रसित बना रक्खा था। विशेष बात एक और विदित हुई, वह यह कि श्रीमती जी का पतिदेव दो तीन वर्ष उपदंश का रोगी रहा है और उसी काल में वह स्त्री-सङ्ग भी करता रहा, जिससे कि श्रीमती जी को भी यह रोग हुआ था और उसकी सैनिक चिकित्सालय में रह कर चिकित्सा कराई गई, कारण श्रीमती जी के पति (श्री जयराम) स्वयं एक सैनिक थे।

चिकित्सा आरम्भ हुई—प्रथम हमने दोनों से नियम करा लिया कि जब तक औषधि सेवन करें तब तक पथ्यापथ्य पर ध्यान देकर दृढ़ता से पालन करना होगा, तब रोग शमन हो सकता है।

सूर्यरश्मि सेवन—

प्रातःकाल ५ बजे के लगभग उठ कर शौचादि से निवृत हो सूर्य की ओर मुख कर बैठा रहना तथा सरसों के तैल की मालिश करना; सिर पर कपड़ा रखना परन्तु मस्तक पर नहीं। इस प्रकार शरीर में स्वेद आने तक बैठे रहना, कारण कि मालिश आदि से शीघ्र ही स्वेद आजाता है। पुनः स्वेद को मोटे खरदुरे कपड़े से साफ कराया जाता था और कुछ देर बाद शीतल जल से स्नान कराया जाता था।

स्नान - स्नान करते समय स्वच्छ अङ्ग-पूछा (अङ्गोछा) मोटे धागों से बना लेकर पानी में भिगो समस्त देह पर रगड़-रगड़ स्नान कराया जाता था।

व्यायाम—सूर्यरश्मि (प्रकाश) सेवन के समय ही हल्का व्यायाम अर्थात् जिसे सूर्य नमस्कार कहते हैं कराया जाता रहा।

भ्रमण—प्रातःकाल ही जब समय सुहावना होता था कुछ दूर फिरने (घूमने) के लिये भी एक अन्य स्त्री के साथ भेजा जाता रहा अन्यथा अपने घर में ही घूमने के लिये कहा गया और ऐसा किया गया।

चक्की - चक्की पीसने को बड़े-बड़े शहरों में विशेषकर शिक्षित वर्ग की नवयुवतियां लज्जाजनक समझती हैं। व्यायाम की दृष्टि से हमने रुग्णा को पनचक्की चलाने के लिये कहा तो नित्य यह थोड़ीदेर की भी चलाने लगी।

वायु सेवन—पहिले यह शहर की बन्द गलियों में रहा करती थी किन्तु जब चिकित्सा आरम्भ हुई तो एक गांव में जहां वायु सदैव स्वच्छ आती थी रहने के लिये कहा गया और इसी प्रकार प्रबन्ध भी कर दिया गया। वैसे तो वाटिका में भ्रमण करते समय ही यह दो कार्य बन जाते हैं किन्तु ग्रामों में कहां वाटिकायें, यदि हों तो अच्छा है।

पथ्यापथ्य—अचार, चटनी, शराब, तामसिक पदार्थ, आलू,लालमिर्च,खटाई,विदाही पदार्थ, करेला, बैंगन,प्याज आदि सर्वथा वर्जित कर दिये गये।

खाने के लिए—फलों में केला, खजूर, नारङ्गी, अंगूर, सेव आदि दिये जाने लगे।

भोजन में गेहूँ का मोटा आटा अर्थात् चोकर सहित की रोटियां, जौ की भी व्यवस्था थी। हरी तरकारी टमाटर, गोभी, पालक, गाजर, कालीमिर्च, सेंधा नमक दिया गया।

कब्ज नहीं रहने देने का विशेष ध्यान रक्खा गया। पाउडर तथा शृङ्गार-पूर्ण रहन-सहन को छुड़ाया गया। पठन-पाठन के लिये धार्मिक पुस्तकों के लिये कहा गया पर वह तो पहिले से ही अपढ़ थी। अश्लील चलचित्र (सिनेमा) तथा चित्र आदि देखने से वर्जित कर दिया गया। चिन्ता और शोक को दूर करने का पूरा प्रयत्न किया गया। जिसमें सफलता प्राप्त हुई।

इतने कार्य के पश्चात् औषधि व्यवस्था की। धन्वन्तरि मासिक पत्र के एक योग ने जो चमत्कार दिखाया वही ज्यों का त्यों मैं लिख रहा हूं।

रसौत	वंशलोचन	काकड़ासिंगी
चित्रक छाल	मुलहठी	धनिया
तालीसपत्र	खैर	जीरा
कृष्ण जीरक	निशोथ	दन्ती
खरैंटी की छाल		त्रिकटु

—ये सब १-१ तोला।

मधु		८ तोला
जायफल	गा	कंकोल
दालचीनी	दाख	लघु एला
तेजपत्र	छुहारा	नागकेशर

—ये प्रत्येक ६-६ माशा

वर्क चांदी	बंगभस्म	शीशा भस्म

—ये तीनों ३-३ माशा।

(मैंने अभ्रक तथा लोहभस्म ३-३ माशा और मिलाये थे)

—लेकर चूर्ण कर मिट्टी के चिकने वर्तन में रक्खा।

अनुपान—एक छटांक चावल लेकर पहले उसका पानी उतार दें। फिर दो बार पानी डालकर हलके हाथ से मलें तथा पानी छान लें। इस पानी के साथ ३-३ माशा प्रातः सायं दोनों समय सेवन करावें।

गुण—इसके सेवन से श्वेत प्रदर, रक्त प्रदर या योनि से नीला, काला पानी आता हो नष्ट होता है।

[धन्वन्तरि—नारीरोगांक योग नं० २६६ देखें]

भोजनोपरान्त—अशोकारिकारिष्ट १॥ तोला समभाग पानी मिला (प्रातःकाल) देते रहे।

सायंकाल—को भोजन के बाद द्राक्षासव दिया गया।

योनि कण्डु नाशनार्थ—

सुहागा	१ ड्राम
बोरिक एसिड	$\frac{1}{2}$ ड्राम
जिंक	५ रत्ती
पुटेशियम परमेगनेट	$\frac{1}{2}$ रत्ती।

—को दस छटांक पानी में डाल योनि को स्वच्छ कराया गया। यह नित्य नहीं अपितु हर तीसरे दिन। हां, फिटकरी के पानी से अवश्य ही योनि नित्य साफ करती रही।

यह चिकित्सा विधि मैंने चार स्त्रियों पर प्रयोग कर देखी है मुझे तो १०-१५ दिन में ही सफलता मिली है। जो स्त्री सन्तति के वियोग में व्याकुल रहा करती थी आज उसकी गोद में कई बच्चे-बच्ची हैं।

★★

तीन प्रयोगों में पूरा दवाखाना

लेखक—डा० विक्रमाजीत नन्दा, मेरठ ।

प्रयोग नं० १—

औषधि द्रव्य—तबाशीर असली	४ तोला
शुष्क धनियां की मिंगी	सन्दल सफेद
छोटी इलायची के बीज	कहरवा शमी
जहरमोहरा खताई	—प्रत्येक ५-५ तोला ।
दरियाई नारियल	३ तोला
अकीक भस्म	२ तोला
प्रवाल भस्म	२ तोला
संगयशव भस्म	२ तोला
चांदी के वर्क	६ माशा
अर्क गुलाव	अर्क केवड़ा
अर्क वेदमुश्क	तीनों मिलाकर १ बोतल

निर्माण विधि—उपरोक्त प्रत्येक औषधि अच्छी तरह देख-भाल कर लेनी चाहिये,हर एक वस्तु असली, शुद्ध और नई लेनी चाहिये, कीड़ों से खाई हुई न हो। जो द्रव्य कूटने योग्य हों उन्हें कूट-छान कर वजन करलें और एक वड़े खरल में डाल कर थोड़ा-थोड़ा अर्क मिला कर खरल करें। जव सम्पूर्ण अर्क औषधि में विलीन हो जाय और औषधि खुश्क हो जाय तो दवा तैयार समझें। डाट लगा कर शीशी में रखें।

मात्रा—१ तोला से २ तोला तक सुवह-शाम।

अनुपान—ताजा जल के साथ।

गुण—दिल की धड़कन, नकसीर, कै आना, जी मचलाना, गर्मी के दस्त, खूनी पेचिस (आमातिसार) अधिक प्यास लगना, गरमी में मस्तिष्क से काम करने वालों को लाभकर है।

पथ्य—दूध, मलाई, मक्खन, वादाम और पगे हुये मेवा आदि।

अपथ्य—लालमिर्च, वैंगन, तेल, खटाई (पर नीबू खाना मना नहीं)।

प्रयोग नं० २—

शुद्ध गौदन्ती हरताल	४० तोला
गूदा घी गुवार (ग्वारपाठा)	४० तोला

निर्माण विधि—मिट्टी की एक हांडी लेकर उसमें उपरोक्त दोनों चीजें डाल दें, ऊपर से सराव से ढँक कर कपड़मिट्टी करके सुखालें। वीस सेर उपलों (कण्डों) की आग में उसे फूंक लें। स्वाँग शीतल होने पर हांडी में से गोदन्ती को निकाल लें। इसे खरल में डाल कर तीन दिन तक ग्वारपाठा के गूदे के साथ खूब घोंटें, यहां तक कि २ पाव ग्वारपाठा इसमें पड़ जाय। जब शुष्क होने लगे तब दवा की टिकियां वना कर छाया में सुखा लेवें। इन टिकियों को पुनः एक मिट्टी के कूजे (हांडी) में डाल कर ऊपर ढक्कन लगाकर कपड़मिट्टी करके सुखा लेवें

और बीस सेर कण्डों की आग में फूंके, स्वांग शीतल होने पर हांडी निकाल कर उसमें से दवा निकाल कर खरल करो। दवा तय्यार है, बोतल में कार्क लगा कर रख लेवें।

मात्रा—दो रत्ती से ४ रत्ती तक। बच्चों को अवस्थानुसार एक से दो रत्ती तक।

अनुपान—मुनक्के के बीज निकाल कर उसमें रख कर, मलाई या मक्खन में मधु के साथ दें।

गुण—यह कुश्ता अनेक रोगों के लिये लाभदायक है। इसके कुछ प्रयोग निम्न हैं:—

(१) पित्त (गरमी का) ज्वर, सिर दर्द, पीले दस्त, मुंह का कड़ुआपन, पसीना अधिक आना, बदन में जलन व बेचैनी में—

कुश्ता गोदन्ती	२ रत्ती
मुलेहठी का चूर्ण	२ रत्ती
तवाशीर असली	२ रत्ती

—यह सब एक मात्रा है। प्रति चार घण्टे के बाद ऐसी एक खुराक ताजा पानी से दो।

(२) ज्वर, खांसी (बेचैन करने वाली) में—

कुश्ता गोदन्ती	२ रत्ती
सुहागा खील (फूला)	१ रत्ती
काला नमक	१ रत्ती

—यह एक मात्रा है। प्रति चार घण्टे बाद ऐसी एक मात्रा दो। यदि खांसी खुश्क हो तो मलाई के साथ देवें अथवा बलगम आती हो तो शहद के साथ देवें।

(३) छपाकी, पित्त, खुजली, जलन, ज्वर व दिल धड़कने में, घबड़ाने में—

कुश्ता गोदन्ती	३ रत्ती
सफेद फिटकिरी (खील)	१ रत्ती

—यह एक मात्रा है। हर चार घण्टे बाद एक खुराक ताजे पानी से दें।

(४) मलेरिया ज्वर में—

कुश्ता गोदन्ती	२ रत्ती
नौसादर का चूर्ण	२ रत्ती
काली मिरच का चूर्ण	२ रत्ती
अपामार्ग के पत्ते पिसे हुये	१ रत्ती

—यह एक मात्रा है। चार-चार घंटे बाद एक खुराक ताजे पानी से दें। ज्वर में देने से ज्वर जल्दी टूट जाता है, आराम हो जाने के एक हफ्ते बाद तक देना चाहिये।

(५) नकसीर, वेदना में—

कुश्ता गोदन्ती	२ रत्ती
कहरवा शमी का सफूफ	२ रत्ती

—यह एक मात्रा है, प्रति तीन-तीन घण्टे बाद एक खुराक ताजे पानी से दें।

(६) गर्मी के पुराने दस्तों में—

कुश्ता गोदन्ती	२ रत्ती
आंवले का चूर्ण	३ रत्ती
सौंफ कच्ची-पक्की (भुनी) का चूर्ण	२ रत्ती

—एक मात्रा है, बच्चों को अवस्थानुसार कम दवा देनी चाहिये। प्रति चार-चार घण्टे के पश्चात् ताजे पानी से देवें।

पथ्य—दही के साथ चावल या दही के साथ मकी की रोटी।

प्रयोग नं० ३. कुश्ता मूंगा—

औषधि द्रव्य—प्रवाल	२० तोला
ग्वारपाठा का गूदा	४० तोला

निर्माण विधि—दोनों औषधियों को एक मिट्टी की हाँडी में रख कर बिना कपड़मिट्टी किये सरावे से मुंह ढक कर २० सेर कण्डों में हांडी को किसी गड्ढे में रखकर या तन्दूर में डालकर आग देनी चाहिये। स्वांग शीतल होने पर हांडी से प्रवाल को निकाल लेवें और खरल में डालकर पीस लें। अब इसमें २० तोला ग्वारपाठा का गूदा मिला कर खरल करें, जब टिकिया बनने

के लायक होजावे तब २॥-२॥ तोला की टिकियां बनालें। खुश्क होने पर फिर एक मिट्टी की हांडी में डालकर सरवा से ढँक कर कपड़मिट्टी करके सुखालें। सूखने पर दस सेर कण्डा तन्दूर में डालकर हांडी बीच में रखकर आग देवें। शीतल होने पर प्रवाल की टिकियां जो फूली होंगी निकाल लें। इन टिकियों को अर्क केवड़ा और अर्क गाजवां में तीन दिन खरल करें।

मात्रा—इसकी मात्रा दो रत्ती तक है, बच्चों को अवस्थानुसार कम दो।

अनुपान विधि—मलाई, मक्खन, हलवा के साथ या मधु के साथ दें।

गुण—मस्तिष्क की दुर्बलता, हृदय की धड़कन, कफ, बलगम, पुराना रेशा प्रमेह, कास, सिर दर्द, जिगर के रोग, खूनी बवासीर, कैल्शियम की कमी, गर्भ गिरने के डर में उपयोगी है। इस कुश्ता के प्रयोग निम्न हैं—
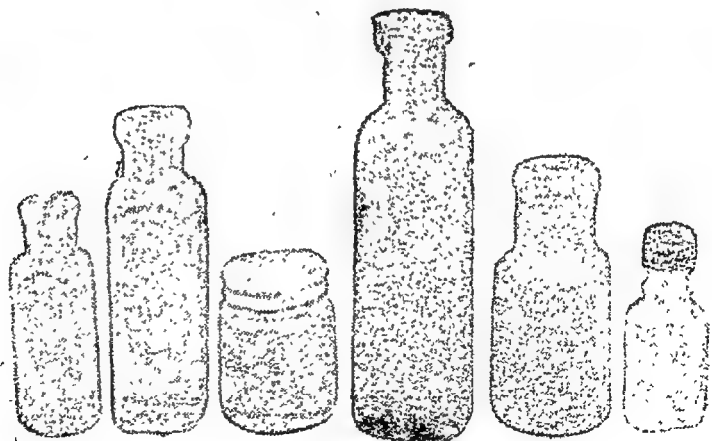
(१) दिमागी कमजोरी में—

कुश्ता मूंगा	२ रत्ती
ब्राह्मी बूटी पिसी हुई	२ रत्ती
दालचीनी पिसी हुई	१ रत्ती
आंवला पिसा हुआ	२ माशा

—यह एक खुराक है। गर्म दूध ठंडा करके उसके साथ सवेरे या शाम को खांड मिलाकर दें।

(२) नजला जुकाम में—

कुश्ता मूंगा	२ रत्ती
सुहागाफूला	½ रत्ती
शहद खालिस	एक चम्मच

—यह एक खुराक है। इन सब चीजों को मिलाकर चार-चार घण्टे बाद दो।

(३) दिल की धड़कन में—

कुश्ता मूंगा छोटी इलायची पिसी हुई
तबाशीर असली पिसी २-२ रत्ती

—यह एक मात्रा है। दो तोला मक्खन में औषधि को मिलाकर सुबह-शाम लेना चाहिये। ☆☆

स्वास्थ्य और आहार का सम्बन्ध

लेखक—वैद्य सुन्दरलाल जोशी (कॉन्ट्रैक्ट) जुगसलाई बाजार, टाटानगर।

वृद्ध वैद्यों का कहना है कि "पहला सुख निरोगी काया" अर्थात् शरीर निरोग रहने से ही आयु आनन्द, उत्साह तथा ओज (बल) की वृद्धि होती है। जिसके द्वारा मनुष्य धर्म, अर्थ, काम, मोक्षादि कठिन से कठिन कार्यों को आसानी के साथ करता हुआ, अपने देश तथा राष्ट्र की पताका को उन्नति की शैलशिखर पर फहरा सकता है। इसी स्वास्थ्य को कायम रखने के लिये मनुष्य को कठिन से कठिन कार्यों के करने में हिचकिचाहट नहीं करनी चाहिये। क्योंकि स्वास्थ्य ही राष्ट्र का अलौकिक धन है। जिसकी रक्षा शुद्ध आहार विहार से ही हो सकती है। कारण आहार विहार का सार रस है जो शरीर रूपी दुर्ग की बाह्य तथा भीतर से रक्षा करता रहता है। ऐसा आयुर्वेद के विशेषज्ञों का कहना है।

अतः रस अनेक प्रकार के होते हुये भी आयुर्वेदाचार्यों ने आयुर्वेद रस वल्लरी के मूल में रहने वाले सोम संज्ञक रस को ही प्रधान माना है। जो प्रकृति से पाचन किया हुआ सूक्ष्म द्रव होने से रसायन है। तथा योगवाही होने से पृथ्वी अप-तेज, वायु, आकाश से उत्पन्न होने वाले, स्वादु, अम्ल, लवण, तिक्तोष्णादि उपरसों के गुणादि धर्मों के भेदों को भिन्न-भिन्न करके बताने में कुशल है। अथवा यों समझिये कि रसवल्लरी के मूल में रहने वाले सोमसंज्ञक रस में जैसे जैसे उपरसों का मिश्रण होता है वैसे वैसे ही गुणादि धर्मों वाला हो जाता है। अगर इसमें रासायनिक विधि से शुद्ध तथा सुपक्व रसायनिक रसों का मिश्रण होता है। तब वह रसरक्तादि धातुओं का पोषण करता हुआ शरीर के अंगप्रत्यंगों को हृष्ट-पुष्ट बनाता रहता है। इसी से वृद्धावस्था में होने वाले बलिपलितादि रोग उत्पन्न नहीं होते। युवावस्था कायम रहती है। तथा अहिंसादि रासायनिक गुणों की वृद्धि होने से वह मनुष्य ऋषी, मुनि महात्माओं की गणना में गिना जाता है। ऐसे ही त्वागाश्रीत रुद्र संज्ञक रस में जब दिनचर्या तथा ऋतुचर्या आदि से शुद्ध तथा सुपक्व रासायनिक रसों का मिश्रण होता है तब वह त्वचादि धातु उपधातुओं का पोषण करता हुआ हर्षादि को उत्पन्न करता है। जिससे जीवन शक्ति का प्रसार होता है। किन्तु इनसे विपरीत शितोष्णादि विषाक्त रसों का मिश्रण होने से नाना प्रकार के रोग उत्पन्न होते हैं। इसी से आयुर्वेदाचार्यों ने आयुर्वेद में आहार विहार को ही मुख्य माना है।

अतः आज जिधर देखते हैं उधर रोगों ही का साम्राज्य देखने में आरहा है। इसका मुख्य कारण मिथ्या आहार-विहार तथा आजकल की चिकित्सा प्रणाली ही है। जिसका जीता जागता उज्वल उदाहरण यह है कि रूस के सर्वेसर्वा मार्शल स्टलिन की मृत्यु अनेक वर्षों से ऐलोपैथिक डाक्टरों की देख-रेख रहते हुये भी पक्षाघात तथा मस्तिष्क की रक्तवाहिनी शिरा के फट जाने से हुई है, ऐसा समाचार-पत्रों में देखा गया है। इसीसे यह प्रतीत होता है कि ऐलोपैथिक चिकित्सा प्रणाली आयुर्वेद के शल्य-शालक्य चिकित्सा प्रणाली तक ही सीमित है। इसीसे इसमें आहार विहार पर किसी प्रकार का प्रतिबंध नहीं देखा जाता, क्योंकि शल्य शालाक्य प्रणाली में विशेष करके छेदन-भेदन उत्पीडनादि कर्मों के

होने से यह चिकित्सा सुरक्षित स्थान में ही हो सकती है। जिसमें रुग्ण के हित की हर एक वस्तु मौजूद रहती है। क्योंकि इस चिकित्सा प्रणाली का आधारभूत केवल क्षारोदक है। वह उष्ण है तीक्ष्ण है, लघु है, क्लेदकारी होते हुये रस रक्तादि धातुओं का शोषण करता है। इसीसे क्षारोदक का शरीर में विशेष भाग पहुंचते ही जिस तरह स्नेह हीन चर्म ऊष्मा के बढ़ते ही फट जाती है उसी तरह शरीर की स्नायु, शिरा तथा चर्मादि फट करके मृत्यु तथा नाना प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं।

इसी प्रकार कृमिकीटादि से दूषित अन्नादि का वाणिज्य यन्त्रों द्वारा पेषण करके बारम्बार शित तथा उष्ण हुये घृतादि से परिपक्व किया हुआ पदार्थ तथा लोहादि धातुओं के वर्तनों से वेष्टित निर्वात स्थान में रखे जाने वाले पेयादि पदार्थों को अनिच्छा से अनियमित काल में खानपानादि करने कराने से अथवा ऋतुचर्या के शितोष्णादि धर्मों को धारण करने वाली वायु के विपरित वस्त्रों को धारण करने से तथा आमोद प्रमोद की इच्छा से लोभ के वशीभूत होकर असत्य वाक्यों के व्यवहार करने से हृदय रूपी कमल की कलियां मुर्झा कर मन को खिन्न बनाती हुई नाना प्रकार के रोगों को उत्पन्न करती रहती हैं।

इसीसे मनुष्य का कर्त्तव्य है कि अपने स्वास्थ्य को कायम रखने के लिये आहार विहार अर्थात् भोजन, भ्रमण, वस्त्र तथा वाणी पर अपना पूरा अधिकार रखें, तब वह निरोग तथा स्वस्थ्य रह सकता है।

"कुछ जनोपयोगी बातें"

१—रात्रि के अंत में जल तथा दिन के अंत में दुग्ध उत्तम है।

२—लवण मिश्रित तैल मधु मिश्रित त्रिकटु दांतों के लिये श्रेयस्कर है।

३—शुद्ध तैल का मर्दन शरीर की पीड़ा को दूर करता हुआ स्फूर्ति लाता है किन्तु स्निग्धता रहित तैल का मर्दन वलिपलितादि रोगों को पैदा करता है।

४—भोजन के बाद गीले हाथों से नेत्रों को साफ करना नेत्र रोगों को दूर करता हुआ दृष्टि को बढ़ाता है, परन्तु चलचित्रों का देखना नेत्रों के लिये हानिकारक है।

५—दूध बल तथा वीर्य को बढ़ाता है किन्तु चाय रस रक्तादि धातुओं का क्षय करती है।

६—हरीतकी उदर रोगों के लिये हितकर है किन्तु भोजन पर भोजन हानि करता है।

७—प्रातः तथा सायंकाल का भ्रमण श्रेयस्कर है किन्तु रोग निवृति पर भ्रमण करना हानिकर है।

८—ऋतुचर्या के मुताबिक स्वभाव को बदलने वाले वस्त्र को ही वस्त्र कहते हैं किन्तु शरीर के अवयवों को निर्लज्ज बनाने वाले वस्त्र को वस्त्र नहीं कहते, क्योंकि वस्त्र केवल शरीर की रक्षा के लिये है।

९—वाणी उसी को कहते हैं जिसमें सत्य तथा अहिंसा का भान हो। असत्य युक्त वाणी वर्षा ऋतु के मेंढक की वाणी के समान है।

१०—सत्य का व्यापार हजारों वर्ष चलता है किन्तु असत्य का व्यापार नदी के किनारे के वृक्ष के समान है।

बुढ़ापा क्यों और कैसे ?

लेखक—डाक्टर एस० पी० रंजन, आसनसोली।

'बुढ़ापा' शब्द सुनते ही प्रत्येक मनुष्य-चाहे वह पुरुष हो या नारी-एक बार मन ही मन अवश्य कांप उठता है। मगर, ध्यानपूर्वक देखिये तो इससे डरना गल्ती नहीं बल्कि सबसे बड़ी बेवकूफी है। इससे डरने का अर्थ है, मृत्यु को निकट बुलाना।

मानव जीवन को यदि हम अवस्था भेद से देखें तो इसे चार भागों में विभक्त किया जा सकता है। सबसे पहले शैशव, तब यौवन, उसके बाद अधेड़ अवस्था एवं अन्त में जरावस्था यानी बुढ़ापे का नम्बर आता है। 'जो जन्मा है वह एक न एक दिन अवश्य मरेगा।' यह एक सर्वमान्य प्राकृतिक नियम है। इस स्वाभाविक प्रक्रिया के विरुद्ध कोई भी चेष्टा व्यर्थ है। बचपन, जवानी, प्रौढ़ावस्था और बुढ़ापा की मंजिल तय करते हुए जब एक दिन सबको मरना अवश्यम्भावी है तो फिर इससे भय कैसा ? और भय ही तो मृत्यु की पहली सीढ़ी है ! बुढ़ापा निःसन्देह आने वाली मृत्यु का सूचक है, खतरे की घण्टी है; अतः हमें इस समय विशेष सतर्क रहने की आवश्यकता है। जीवनी शक्ति में क्रमशः ह्रास होने के कारण दिनों दिन शरीर निर्बल होता जाता है, अतः जीवन को सुखमय बनाने के लिए शक्ति संचय करना प्रथम कर्त्तव्य है।

प्रत्येक मनुष्य सौ वर्ष तक जीना चाहता है और उसका ऐसा सोचना यथार्थ ही है। वास्तव में वही मनुष्य सच्चे अर्थ में सुखी है जो मरते-मरते दम तक अपने अन्दर जवानी की ताजगी का अनुभव करता है यानी उसके शरीर की सारी इन्द्रियां अपना काम सुचारु रूप से करती हों। सुखी जीवन का यही रहस्य है, मगर ऐसा होता कहां है ? वर्तमान परिस्थित में तो ऐसा सोचना भी मूर्खता समझी जायगी। मगर क्यों ?

अपने जीवन के प्रथम बीस वर्ष तो हम खेल-कूद और पढ़ाई-लिखाई में बिता देते हैं। अनन्तर पन्द्रह वर्ष यानी ३५ वर्ष की अवस्था तक हमारी जवानी के सुनहरे दिन आंधी और तूफान की तरह तेजी से निकल जाते हैं। बाद के पन्द्रह वर्ष अधेड़ अवस्था कहलाता है। और बुढ़ापा तो जिन्दगी की आखिरी मंजिल है ही। तो इस हिसाब से ज्यादा नहीं, ५० या ६० वर्ष के होते-होते हम स्वर्ग-यात्रा की तैयारी करने लगते हैं। सारांश यह है कि हमारे जीवन का परिमाण आजकल सौ वर्ष की जगह ६० वर्ष है; और इसे भी तो विशेष ही समझिये क्योंकि हमारे देश की औसत आयु २३ वर्ष कूती गई है !

बुढ़ापा क्या है ? ध्यानपूर्वक विचारिये तो पता चलेगा कि शरीर जब अपने अन्दर जमा हुये विजा-

तीय पदार्थों को बाहर निकाल फेंकने में असमर्थ हो हो जाता है तो उसी अवस्था को 'बुढ़ापा' कहते हैं। किसी की उम्र को वर्षों में आंकना भयङ्कर भूल है क्योंकि यह वर्षों पर नहीं बल्कि शारीरिक योग्यता पर निर्भर है। तभी जो आपने प्रायः देखा होगा कि कोई आदमी भरी जवानी में ही बूढ़ा नजर आने लगता है तो कोई 'साठा में पाठा' वाली कहावत के अनुसार बुढ़ापे में भी जवान जैसा चुस्त, दुरुस्त !

तो आखिर ऐसा होता क्यों है ? दरअसल बात तो यह है कि हमारी उम्र जैसे जैसे बढ़ती है, हमारी ग्रन्थियां क्रमशः शक्तिहीन होने लगतीं हैं। पूरा काम नहीं कर पा सकने के कारण उनका रस कम निकलने लगता है। यही रस 'हार्मन' कहलाता है जिसकी कमी का प्रभाव अन्य ग्रन्थियों पर भी अवश्य पड़ता है। परिमाण स्वरूप, जीवन का क्रम टूट जाता है और विश्रृंखलता के कारण सरस जीवन नीरस बन जाता है। जिन्दगी की घुड़दौड़ में हम अपने पोपले गाल, धंसी हुई आंखें, डगमगाते कदम और बुझती हुई राख सी जिन्दगी लेकर आगे बढ़ने से लाचार हो जाते हैं। जीवन के संघर्षों से घबड़ा जाना ही मृत्यु को आमन्त्रण देना है। बुढ़ापे का यही रहस्य है।

काम करने में लगन, उमंग और उत्साह, फुर्ती और साहस के साथ मन की प्रसन्नता तथा काम शक्ति की उपस्थित-ये ही जवानी के चिन्ह हैं। इनका अभाव ही मनुष्य को, चाहे वह जवान ही क्यों न हो, बूढ़ा बना देता है। अभाव का ही दूसरा नाम मृत्यु हैं। बूढ़ा आदमी असमर्थ होने के कारण ही पराधीन बन जाता है, उसके सारे हौसले परत हो जाते हैं। बुढ़ापा इसीलिये दुःखदाई है कि उस समय मनुष्य की इच्छायें मर जाती हैं, शक्ति क्षीण होने लगती है, थकावट हमेशा बनी रहती है, भोजन की रुचि और स्वाद मिट जाता है और शरीर एक प्रकार से 'व्याधि मन्दिर' बन जाता है। ऐसा जीवन भार बन जाता है।

सच पूँछिये तो बुढ़ापे का प्रधान कारण है स्नायविक दुर्बलता। जीवनी शक्ति का क्रमिक ह्रास ही इसके लिये उत्तरदायी है। उम्र के साथ-साथ अन्तःस्रावी ग्रन्थियों में 'हार्मन' नामक रस का प्रभाव घटने लगता है। जीवन के शक्ति कोषों में संजीवनी रस का संचार इन्हीं ग्रन्थियों द्वारा होता है। आज के फैसनबुल जमाने में हमारी जिन्दगी बिल्कुल बनावटी हो गई है और इसका सबसे जबर्दस्त प्रभाव स्नायु मण्डल पर पड़ता है। 'हार्मन' की कमी से रगें दिनों दिन कमजोर पड़ती जाती हैं, फलतः मनुष्य शीघ्र ही नपुंसक और बूढ़ा बन जाता है।

बुढ़ापा आने का माने है शरीर के अंग-प्रत्यंग में शिथिलता का प्रवेश! सारी इन्द्रियों यानी पूरे शरीर का ओजक्षय होने लगता है, निर्बलता नित्य प्रति बढ़ती जाती है और यही जब सीमा पार कर जाती है तो मृत्यु अवश्यम्भावी है। इस अवस्था में रक्तवाहिनी नालियां सूखने लगती हैं, इनकी स्थिति-स्थापक शक्ति जाती रहती है, फलतः रक्त संचालन में बाधा पड़ने लगती है, धमनियों का पोषण रुक जाता है एवं इस कारण शरीर की रगें क्रमशः कमजोर पड़ती जाती हैं। मानव शरीर तब 'जिन्दा मुर्दा' बन जाता है।

नसों का उभरना, मुरझाना, चमड़े पर झुर्रियां पड़ना, कमर का झुक जाना, बालों का सफेद होना, दांतों का गिर जाना और जोड़ों में हल्का दर्द बना रहना ही तो बुढ़ापे के चिन्ह हैं। इसके अतिरिक्त मसूढ़ों का फूलना, जीभ का सफेद होना, जीभ पर कांटेदार दानों का होना, दांतों से पीव निकलना इत्यादि लक्षणों से ही बुढ़ापे का आगमन पता चलता है। क्षार पदार्थों की अधिकता एवं विजातीय द्रव्यों के विशेष संचय से ही ये चिन्ह कभी भी प्रकट हो सकते हैं।

एक बात हमेशा याद रखिये कि सुबह सोकर उठने पर यदि आपको आलस्य मालूम दे तो समझ

-शेषांश पृष्ठ १०६६ पर।

अभिनव शरीर-क्रिया विज्ञान—

लेखक—श्री. पं० प्रियव्रत शर्मा M. A., A. M. S. प्रकाशक—चौखम्बा विद्या भवन बनारस, पृष्ठ संख्या ६२४, सजिल्द मूल्य ७॥)

मैंने "अभिनव शरीर क्रिया विज्ञान" नामक पुस्तक का अवलोकन किया। अब तक फिजियोलोजी की इस प्रकार की कोई भी पुस्तक हिन्दी में नहीं थी। फिजियोलोजी एक महत्वपूर्ण विषय है। इस विषय को पढ़ने वाले छात्रों को इस पुस्तक से सहायता मिलेगी। लेखक महोदय ने इस दिशा में जो प्रयास किया है वह सराहनीय है। कई स्थानों पर विषय को संक्षिप्त कर दिया गया है। आशा है कि लेखक महोदय अपने आगामी संस्करण में इस कमी को पूरा कर देंगे। इस सुन्दर कृति के लिए लेखक को मेरा हार्दिक धन्यवाद है। —श्री. शिवचरण ध्यानी, B. I. M. S., हरद्वार।

ज्वर रोग चिकित्साङ्क—

(आत्रेय का विशेषांक)

प्रधान-सम्पादक—श्री. वेदव्यास दत्त जी शास्त्री विद्यारत्न। प्रकाशक—अर्जुन आयुर्वेदिक फार्मेसी, गोपालनगर जालंधर। वार्षिक मूल्य ३) इस विशेषांक का मूल्य १॥) पृष्ठ-संख्या लगभग १२८।

इस विशेषांक में विभिन्न ज्वरों का विस्तृत विवेचन प्रकाशित है। विशेषांक को आठ भागों में विभक्त कर दिया है। इन भागों में ज्वर, मलेरिया, आन्त्रिक ज्वर, शीर्षपुन्ना ज्वर, निमोनियां, प्रसूतिज्वर, मिश्रित ज्वर विषयक लेख विद्वान और अनुभवी लेखकों द्वारा लिखित दिए गए हैं। लेख परिष्कृत एवं पठनीय हैं। बीच-बीच में विज्ञापनों की अधिकता से विशेषांक की शोभा में कमी प्रतीत होती है। यह अक्टूबर-नवम्बर २ माह का संयुक्तांक है।

आधुनिक सिद्ध रसेन्द्र विज्ञान—

अनुवादक व लेखक—चन्द्रभानु शर्मा, प्रकाशक—कृष्णकान्त आनन्दप्रकाश शर्मा, भूडपुर, रेवाड़ी (पंजाब. पृष्ठसंख्या २४२, मू० ७)

पुस्तक का आद्योपान्त मूल विषय उस कीमियागीरी से है जिसके द्वारा धातुओं की शुद्धि और विशेष क्रियाओं द्वारा उन निकृष्ट धातुओं को उच्च स्वर्णादि धातुओं में परिवर्तित किया जाता है, जो हमें प्राकृत रूप में प्राप्त होती हैं। हमारे साहित्य में ऐसी अनेक कथायें हैं परन्तु इधर की कुछ अरबी फारसी की कृतियां विशेष प्राप्त ऐसी हैं।

धातुवाद पर प्रस्तुत पुस्तक भी एक तंत्र श्री० अब्बूबकर तज्जलूशाह विरचित—'मुसत्ते ताब मतले उन नैरीन' फारसी मूल का अनुवाद है। साथ ही अन्य ग्रन्थों से तथा अपना अनुभव भी लेखक ने दिया है।

भारतवर्ष में एक बड़ा वर्ग इस विद्या में विश्वास किये है और सफलता के लिये जुटा पड़ा है पुस्तक उन इच्छुकों को सम्भव है सहायक हो। हिन्दी अनुवाद में इस विषय की सामिग्री उपलब्ध कर अनुवादक ने एक प्रशंसनीय कार्य किया है। प्रयोगों के सत्य असत्य के विषय में कुछ नहीं कहा जा सकेगा इन्हें तो वे रासायनिक ही जान सकते हैं जो इधर संलग्न

हैं। हां लेखक के इन शब्दों में वजन और सत्यता अवश्य प्रकट होती है, पृष्ठ ११३ पर—

"ईश्वर को साक्षी बनाकर शपथ लेता हूँ कि लेखक ने आद्य परियन्त तक कोई शब्द झूंठ नहीं लिखा है या गुप्त रखा है। जैसे लेखक तक पहुंचा है वैसे ही पाठकों तक पहुंचा दिया है।" पुस्तक में सामग्री सारगर्भित प्रतीत होती है। सात धातुओं का वर्णन, विश्व में उनका क्या स्थान है, सूर्य-चन्द्रमा से धातुओं का निर्माण कैसे होता है, सर्दी गर्मी का प्रभाव, एक धातु दूसरी में कैसे परिवर्तित हो जाती है। अच्छा विश्लेषण किया गया है। आयुर्वेदिक धातु शुद्धि और इस धातु शुद्धि में अन्तर है। आयुर्वेदिक धातु शुद्धि जहां धातु को भस्मीकरण की ओर अग्रसर करती है वहां यह विशेष शुद्धि उस धातु में उत्कृष्टता प्रदान करती है ताकि उस धातु की आन्तरिक कालिमा नष्ट होकर उस उच्च धातु के समकक्ष आजाय जिसका उसे रूप लेना है क्योंकि तभी वह धातु स्वर्णादि बन सकेगी। पुस्तक में इन्हीं पर सब विधियां दी गई हैं।

पुस्तक की भाषा में संस्कृत की ओर अधिक झुकाव दिखाया है, वर्णन शैली सरलता से दूर हो गई है, बहुत से मूल शब्द ही रख दिये हैं जिससे पाठक विषय से ऊब जाते हैं। यद्यपि प्रयोग छोटे हैं पारिभाषिक शब्दों के कारण अनुवादक ने कुछ कठिनता अनुभव की है। द्वितीय संस्करण में इनको अधिक सरलता और सुबोधता की ओर ध्यान देना चाहिये। पुस्तक वैद्यों को नहीं है, किन्तु वर्णन शैली आयुर्वेदिक भाषा पर आधारित है। कीमिया-प्रेमियों को सरल शैली होनी चाहिये। मूल्य दरअसल पुस्तक को देखते हुये ७) अत्यधिक है। जहां उन्होंने ऐसी गुप्त विद्या को प्रकट करने में उदारता बरती है वहां मूल्य निश्चित करने में उसकी कमी मालूम पड़ती है।

श्री वेंकटेश्वर समाचार दीपमालिकांक—

सम्पादक—श्रीदेवेन्द्र शर्मा शास्त्री। प्रकाशक—खेमराज श्रीकृष्णदास श्री वेंकटेश्वर स्टीम प्रेस बम्बई। मू० १)।

श्री वेंकटेश्वर समाचार का यह सन् ५४ का दीपमालिका विशेषांक है। वेंकटेश्वर प्रेस सदैव ही संस्कृत व हिन्दी का साहित्य जनता को प्रदान करता है, उसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु यह विशेषांक भी प्रकाशित किया है। पत्र के प्रारम्भ में तथा अन्त में राष्ट्र के गोधन से सम्बन्धित सारपूर्ण लेख देकर अन्य हिन्दू-धर्म, शास्त्र, विज्ञान, संस्कृत, इतिहास, आध्यात्मिक ज्ञान, साहित्य तथा कला, प्राचीन भारतीय गौरवमयी सामाजिक विवेचन, चिरन्तन पुराणोक्त मानव जीवन का प्रकाशवान व्यक्तित्व, आधुनिक प्राचीनता का अन्तर स्वरूप, हमारे कवियों की उत्कृष्ट रचना सूफ तथा भक्ति मार्ग आदि अनेक विषयों पर करीब ६० लेखों का सुन्दर संग्रह है जिनमें विद्वानों का पूर्ण सहयोग प्राप्त हुआ है। सामग्री सभी दृष्टि से दर्शनीय, पठनीय और संग्रहणीय है। टाइटिल के सजाने में हमारी गौ-माता ने अपनी अपूर्व शोभा प्रदान की है जिसके हेतु पत्र ने अत्यन्त सामयिक महत्व दिया है।

जयआयुर्वेद का 'पथ्यापथ्य चिकित्सांक'

विशेषांक सम्पादक—श्रीरघुवीर प्रसाद त्रिवेदी, प्रकाशक—वैद्य गौरीशंकर व्यास, सरस्वती मुद्रणालय, जोधपुर। धन्वन्तरि आकार, पृष्ठ संख्या ३२७। मू० ३)

जितना आयुर्वेद वाङ्मय में रोग निवारणार्थ रोगी चिकित्सा का वर्णन है उतना ही, उससे कहीं अधिक स्वस्थ्य पुरुष के लिये स्वास्थ्य रक्षा के निमित्त समुचित आदेश है। इन दोनों के लिये पथ्यापथ्य निरूपण आयुर्वेद संहिता में प्रचुर मात्रा में विद्यमान है। जो प्रति अध्याय में चिकित्सा सूत्र रूप में या अध्यायों के मध्य या अन्त में स्पष्ट देखा जा सकता है। इस सम्पूर्ण पथ्यापथ्य साहित्य को यदि क्रम बद्ध एक स्थान पर संग्रहीत किया जाय तो एक वृहत ग्रन्थ ही तैयार हो सकता है। इसी दृष्टि से जयआयुर्वेद ने अपना यह पथ्यापथ्य चिकित्सांक निकाला है।

प्रश्न यह था इस समुद्र को मन्थन कौन करे और इस आयुर्वेद महा अगाध सागर से चौदह ही नहीं अनेक रत्नों को कैसे कौन निकाले उसके लिए आयुर्वेद जगत के परिचित सुयोग्य सम्पादक आचार्य श्री रघुवीर प्रसाद त्रिवेदी ने उस महासमुद्र में गोता लगाकर जो अनन्त-रत्न राशि प्राप्त की है वही भंडार आपको इस विशेषांक में पढ़ने को प्राप्त होगा। इस विशेषांक में आयुर्वेद का सार समस्त ग्रन्थों से संग्रह कर दिया गया है। आयुर्वेद साहित्य संस्कृत प्रधान है अतः प्राचीन वैद्य ही इधर समुचित ध्यान देते हैं उनको तो यह विशेषांक उपादेय है ही, उन नवीनों के लिये भी यह पथ-प्रदर्शक होगा जो इधर कुछ भी ध्यान देसकें। लेख सभी सारगर्भित हैं तथा आयुर्वेद का महत्व प्रकाशित करते हैं। इस अंक में करीब ४० विद्वानों के लेख संग्रह हैं। जो लेख रूप में बोलते दृष्टिगोचर होते हैं। विशेषांक सुन्दर सुबोध है, आयुर्वेद का एक स्पष्ट रूप है।

महिला-रोग चिकित्सांक (पूर्वार्द्ध)

सम्पादक पं० चन्द्रशेखर जैन शास्त्री आयुर्वेद चिकित्सक, जबलपुर। साइज २०×३०=१६ पेजी पृष्ठ संख्या १६० मू. २)

आयुर्वेद के सभी पत्र अपना विशेषांक निकाल रहे हैं और 'चिकित्सक' ने भी यह विशेषांक प्रकाशित किया है। विशेषांक यद्यपि छोटा मालूम पड़ता है किन्तु उपादेय है। कारण उसमें केवल स्त्री-रोगों की चिकित्सा ही दी है; थोड़े में अधिक से अधिक सामग्री देने का प्रयास किया गया है। इसमें शास्त्रीय योगों के अतिरिक्त सम्पादक के स्वानुभूत प्रयोग हैं। देखने से सभी योग सरल और कम पैसों में तय्यार होने वाले मालूम पड़ते हैं। जो स्त्री-पुरुष वैद्य नहीं हैं वे भी इससे समय पड़ने पर लाभ उठा सकते हैं स्त्री सम्बन्धी सभी शारीरिक अवयवों के रोगों के प्रयोग इसमें हैं। क्योंकि यह एक पत्र का विशेषांक है, अतः कागज और छपाई की दृष्टि से कुछ सोच कर काम लिया गया है। अन्यथा अंक और सुन्दर बन सकता था।

कफ-परीक्षा —

ले. डा. श्री रमेशचन्द्र वर्मा B. I. M. S. आयुर्वेदाचार्य। प्रकाशक-मोतीलाल बनारसीदास, बनारस; साइज २०×३०=१६ पेजी, पृष्ठ संख्या६०। मू० १।)

पुस्तक कफ की वैज्ञानिक परीक्षा से सम्बन्धित है। पाश्चात्य रीत्यानुसार कफ परीक्षा की आधुनिक सभी पद्धतियां इसमें सरल रीति से दर्शाई गई हैं। पुस्तक पांच अध्यायों में विभक्त है। पुस्तक सामग्री का आधार चूंकि पाश्चात्य नवीन विज्ञान है अतः यह नवीन समन्वय प्रणाली के विद्यार्थियों के लिये जो कालेजों में शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं उपादेय और सहायक है। आज के युग में हिन्दी भाषा में ऐसी पुस्तकों की अत्यन्त आवश्यकता है। इस छोटी वैज्ञानिक पुस्तक में टाइप की अशुद्धियां खटकती हैं, पर विषय के आगे वे गौण ही हैं। लेखक ने विषय का अच्छा चुनाव किया है।

आयुर्वेद साप्ताहिक का दिवाली विशेषांक—

सम्पादक—श्री शिवकरण शर्मा छांगाणी, नागपुर। पृष्ठ-संख्या ६८ मू. २।–)

आयुर्वेद का यह वर्ष ५४ का विशेषांक एक सुन्दर प्रयोग संग्रह है। आधुनिक सभी विद्वानों के संग्रह प्रकाशित होरहे हैं, आयुर्वेद जगत के अनन्य सेवक वयोवृद्ध नेता श्री गोवर्धन छांगाणी महोदय ने भी अपने दीर्घ जीवन का चिकित्सा सम्बन्धी अनुभव जनता तथा आयुर्वेद की हित-दृष्टि से सहर्ष इस अंक के रूप प्रदान कर दिया है। वह ज्ञान किसी प्रकार नष्ट न हो जाय आपका यही दृष्टिकोण है इससे अपना हृदय खोल कर पाठकों को यह थाती विशेषांक के रूप में भेंट करदी है। सभी योग सरल सुबोध और सच्चे हैं। उनमें बहुत से शास्त्रीय योग हैं पर उनको जो अनुभूत कर लेता है वही प्रयोग सिद्ध अनुभूत और अधिक महत्व का हो जाता है, अस्तु संग्रह सुन्दर है। छपाई और कागज दृष्टि से भी विशेषांक में कोई कमी नहीं है।

माधव निदानम्—

सम्पादक—पं० ब्रह्मशंकर शास्त्री; प्रकाशक—चौखम्बा संस्कृत सीरीज, बनारस। पृष्ठ—४११, सजिल्द मूल्य ६)

इस पुस्तक में माधव निदान की सरल हिन्दी टीका के साथ मधुकोष संस्कृत व्याख्या दी गई है। माधवकार ने विभिन्न आयुर्वेद ग्रन्थों से निदानांश संग्रह कर 'माधव-निदान' जैसी महत्वपूर्ण पुस्तक की सृष्टि की है। विद्वान सम्पादक ने माधव निदान के श्लोकों के साथ जिन ग्रंथों के वे श्लोक हैं उनका संदर्भ भी यथासम्भव दिया है, जिससे मूल ग्रन्थों का विषय से सम्बधित अध्ययन करना आसान हो जाता है। पुस्तक का कागज, छपाई जिल्द आदि सर्वोत्तम है। मूल्य भी उचित रखा गया है।

माधव निदान—

टीकाकार—आयुर्वेदाचार्य श्री सुदर्शन शास्त्री, A. M. S., सम्पादक—आयुर्वेदाचार्य यदुनन्दन B. A., A. M. S. प्रकाशक—चौखम्बा संस्कृत सीरिज, बनारस। २ भागों में सजिल्द—मूल्य १२)

इस पुस्तक में माधव निदान की हिन्दी टीका, संस्कृत मधुकोष व्याख्या तथा विमर्श के रूप में विस्तृत एवं वैज्ञानिक विवरण हिन्दी में दिया है। इस संस्करण में विमर्श शीर्षक के अन्तर्गत जो भी दिया गया है वह अत्यन्त महत्वपूर्ण और उपयोगी है। अन्य आयुर्वेदिक एवं एलोपैथिक ग्रंथों का आधार लेकर विषय को सुस्पष्ट शब्दों में विवेचनात्मक शैली से समझाया है। विद्यार्थियों के लिए यह पुस्तक अधिक उपयोगी प्रमाणित होगी।

प्रसूति विज्ञान—

लेखक—डा० रमानाथ द्विवेदी आयुर्वेद बृहस्पति M. A, A. M. S. प्रकाशक—चौखम्बा विद्याभवन चौक, बनारस। पृष्ठ ७२२। मूल्य ६)

'प्रसूति-तंत्र' पर हिन्दी में प्रकाशित अन्य सभी पुस्तकों से प्रस्तुत पुस्तक अधिक महत्वपूर्ण एवं विस्तार युक्त है। विद्वान लेखक अनेक ग्रन्थों के प्रणेता एवं आयुर्वेद महाविद्यालय के सफल प्राध्यापक हैं। पठन-पाठन की कठिनाइयों का आपको ज्ञान है, इन्हीं कठिनाइयों को दूर करने के लिये आयुर्वेद एवं एलोपैथी उभय चिकित्सा पद्धतियों के आधार पर "प्रसूति विज्ञान" पुस्तक प्रस्तुत करके आपने महान उपकार किया है। हर विषय को बड़ी सरलता एवं विस्तार के साथ समझाया गया है। आवश्यक स्थानों पर चित्र भी पर्याप्त दिये हैं। पुस्तक तीन खण्डों—प्रकृत खण्ड, विकृति खण्ड एवं परिशिष्ट खण्ड—में विभाजित है। प्रकृत खण्ड में—गर्भवती एवं प्रसूता की जो प्राकृतिक दशा होती है वह ३८८ पृष्ठों में १८ अध्यायों में वर्णित है। विकृति खण्ड में गर्भिणी के रोग, प्रसूता के रोग, जनन-सम्बन्धी कठिनाइयां और इन सबके उपचार—चिकित्सा १७ अध्यायों में वर्णित है। इसी खण्ड के अन्त में २ अध्यायों में सूतिका रोग वर्णन है। तृतीय परिशिष्ट खण्ड में दो प्रकरण हैं—शिशु प्रकरण एवं शल्य कर्म प्रकरण। पुस्तक अपने विषय की सर्वाङ्गपूर्ण पुस्तक है। छपाई कागज सभी उत्तम है। ★★

(पृष्ठ १०६५ का शेषांश)

लें कि आप बुढ़ापे की ओर बढ़ रहे हैं। प्रातः कालीन थकावट इस बात की संकेत देती है कि आपकी पाचन-क्रिया जरूरत से ज्यादा मन्द है, शक्ति संचय नहीं हो पाता और मल की अधिकता से शरीर के अंग-प्रत्यंग थके से जान पड़ते हैं। मनमें उदासी, सुस्ती और अंग-अंग का टूटना चिल्ला चिल्ला कर आपको सावधान करते हैं कि रोग, बुढ़ापा और मृत्यु शीघ्र ही आपके यहां पधारने वाले हैं। कहने का गरज़ यह कि थकान से रोग और मृत्यु का गहरा सम्बन्ध है।

स्मरण रहे कि शरीर के पुराने परमाणु नष्ट होते रहते हैं और नए बनते भी रहते हैं। यदि हम इन नये परमाणुओं को नष्ट होने से बचा सकें तो पौ-बारह! बुढ़ापा दूर रखने का यही सुगम मार्ग है।

★★

वनौषधि-रत्नाकर का एक लेख—

आलू (Solanum Tuberosum)

लेखक—श्री० पं० कृष्णप्रसाद जी त्रिवेदी B. A. आयुर्वेदाचार्य।

आयुर्वेदीय ग्रन्थों में 'आलु, और 'आलुक' शब्दों का प्रयोग बहुत व्यापक अर्थ में किया गया है कई कंदों व फलों के साथ आलु शब्द जुड़ा हुआ देखा जाता है। और कहा भी है—

"कंदो बहुविधो लोके आलु शब्देन भण्यते।
कच्चालु चैव वंशालु पिण्डालु शर्करादिकम्॥
काष्ठालु (काशालु) चैवमाद्यं स्यात् तस्य भेदा अनेकशः॥
काष्ठालुक शंखालुक हस्त्यालुकानि कथ्यंते।
पिंडालुक मधालुक रक्तालुकानि चोक्तानि॥"

इनके अतिरिक्त और भी कई प्रकार के कंदों को आलु कहा गया है, जैसे—मुखालु, रोमालु, रक्तपिंडालु, कंडालु, पानीयालु, नीलालु, शुभ्रालु आदि। इन सबका विवरण यथास्थान देखिये। आयुर्वेद का ही अनुकरण करते हुये शायद फारसी में भी कई गोल फलों के नामों में आलु शब्द जोड़ा हुआ पाया जाता है, जैसे शफ्तालु, आलुचा, आलूबोखारा आदि।+

आधुनिक जगत्-प्रसिद्ध 'आलू' जिसके विषय में इस प्रकरण में लिखा जा रहा है, प्राचीन ग्रन्थों में आलूक या आलुक या आलुक नाम से पुकारा जाता था; तथा चरक संहिता, कौटिल्य अर्थशास्त्र आदि संस्कृत के पुराने ग्रन्थों में चरक और चाणक्य आदि ऋषियों ने 'आलुक' नाम से इसी शाक कन्द का वर्णन किया है। पहले यह पहाड़ों में जङ्गली रूप में होता था, पश्चात् लगभग दो हजार वर्ष हो गये यह यहां खेतों में बोया जाने लगा, और शनैः-शनैः यह हमारे भोजन का एक महत्वपूर्ण अङ्ग बन गया। तथा यह इतना प्रिय हुआ कि इसका नाम कई कन्दों में जोड़ दिया गया। अस्तु,

+ एक प्रकार का आलु, और होता है, जिसे भारतवर्ष के इटावा आदि के समीपवर्ती स्थानों में हम लोगों ने जङ्गली पाया। वहां के लोग इसे 'वनालु' कहते हैं। यही राजनिघंटु में कहा हुआ 'पानीयालु' है।
(आ० विश्वकोष)।

इसी हमारे प्रेमी आलू के विषय में कुछ विदेशी विद्वानों द्वारा, तथा उन्हीं की लकीर पीटने वाले कुछ हमारे भाइयों द्वारा कहा जाता है, कि यह हमारे देश का नहीं। इसका मूल स्थान चिली और पेरू या दक्षिण अमेरिका है। "अमेरिका के आविष्कार के समय यह चिली से नवग्रेनाडा तक बोया जाता था। सन् १५३५ और १५८५ इसवी के मध्यकाल में युरोपनिवासी इसे स्पेन ले गये थे, और वहीं से पुर्तगाल, इटली, फ्रांस, बेलिजियम व जर्मनी में इसकी खेती का प्रसार हुआ। सन् १५८६ को सर वाल्टर राले ने इसे आयरलैंड पहुंचाया था। पहले इङ्गलैंड स्काटलैंड और फ्रांस के लोग कुसंस्कार से आलू बोते न रहे। इसके साथ उन्हें विषवृक्ष उत्पन्न होने का ध्यान था। सन् १७२८ में स्काटलैंड निवासी टमास् प्रेंटिस नामक किसी व्यक्ति ने पहले-पहल इसे बोया। इसके उपरांत क्रमशः यह अफ्रीका, एशिया और आस्ट्रेलिया में चल निकला।" (हि० विश्वकोष)

इस पर हमारा कथन है कि चाहे युरोप आदि पाश्चात्य देशों में तथा आस्ट्रेलिया व एशिया के कुछ भागों में आलू का उक्त प्रकार से अवश्य प्रचार हुआ हो; किंतु इसी अमेरिका वाले आलू को भारतवर्ष के भी गले मढ़ना, यह बात हमें ठीक नहीं जँचती। इस विषय में पं० भागीरथ स्वामी जी का कथन

युक्तियुक्त है-"यदि यह अमेरिका से हमारे यहां आया होता, तो उसका वही 'पोटाटो' या बटाटा नाम प्रसिद्ध होता, (जैसे 'टमाटर' प्रसिद्ध हुआ) आलू नाम नहीं होता। किन्तु 'आलू' शब्द प्राचीन है। परन्तु प्राचीन समय में इसका व्यवहार कम होता था, लोग कम जानते थे, उस समय कोई (शायद) अमेरिका से लाया हो, और उसको देख कर इसे लोग अधिक जान गये, प्रवृत्ति बढ़ गई। (संगति का असर हुआ, इससे परहेज़ करने वाले भी इस पर मुग्ध हो गये)। इसकी खूब खेती होने लगी, व्यापार बँध गया। इस समय तो यह सर्वव्यापक हो रहा है।

बंगला में जिसे 'आलू गाछ' कहते हैं, वह इससे भिन्न है। इसे लेटिन में-जाट्रोफा या जानिफा मानिहाट (Jatropha-Janipha-Manihot) अंग्रेजी में-कासहा ट्री (Cassava-Tree) कहते हैं। भारत में यह भी पाया जाता है। यह एक पौधे के रूप में होता है। इसकी जड़ से तापिओका (Tapi-oca) नामक पिष्ट सत्व (Starch) प्राप्त होता है, जो साबूदाना के समान रोगियों को पथ्य रूप में दिया जाता है। किंतु यह पचने में साबूदाना से हलका नहीं है। अतः इसका प्रचार बहुत कम है।

'आलू' पाश्चात्यों के मतानुसार कंटकारी वर्ग (Solanaceae सोलेनेसिई) का माना गया है। इस वर्ग का वर्णन 'कटेरी' प्रकरण में देखिये।

नाम—

संस्कृत—आलुक, आरुक, गोलालु, बटालु, वीरसेन इ०। हिन्दी—आलू। मरेठी—बटाटा। गुजराती—पापेटा। बङ्गला—गोलालु। तेलगु—उरलगड्ड। तामील—उरल, किलंगु। मलाबार—उरल, कोरनू। कर्णाटकी—उरलगड्डे। फारसी—आलुएफिरंग, सेबेजमो। अरबी—तुफाहुलअर्ज। अंग्रेजी—पोटाटो (Potato)। लेटिन—सोलेनम ट्युबरोसम्।

उत्पत्ति स्थान—

भारत के कुछ स्थानों को छोड़ इसकी उपज प्रायः सर्वत्र ही होती है। नैनीताल, अलमोड़ा, पावरी, लोहूघाट, चीरापुंजी आदि उत्तर प्रदेशों के पहाड़ी स्थानों में पहाड़ी आलू प्रचुरता से होता है। फरुखाबाद और पटना में इसकी खूब खेती होती है। यह कुछ रेती मिश्रित मिट्टी के स्थानों में अधिकता से होता है। कंकड़दार स्थानों में ठीक प्रकार से नहीं होता। नैनीताल के पहाड़ी आलू बहुत बड़े-बड़े होते हैं। तैसे ही आसाम के खसिया पहाड़ पर भी यह खूब होता है, किन्तु यह आसामी आलू कृषि-कार्य के दोष से ज्यादा दिन नहीं टिकता, सात-आठ दिन में ही सड़ जाता है।

बङ्गाल के हुगली और वर्धमान जिलों में इसकी खूब खेती होती है। पंजाब के बड़े-बड़े नगरों के पास इसकी अच्छी खेती है। बम्बई प्रांत में महाबलेश्वर का आलू प्रसिद्ध है, यह खूब बड़ा लाल रङ्ग का होता है। पूना, सतारा अहमदनगर, अहमदाबाद और केड़ा जिलों में इसकी खूब खेती होती है। खानदेश के पाचौरा नामक स्थान में आलू की प्रसिद्ध मण्डी है। मद्रास प्रान्त के निलगिरी पहाड़ पर भी यह बहुतायत से उत्पन्न होता है।

आलू साधारणतया सब भूमियों में हो सकता है किन्तु विशेषकर ऊंची व खुली हुई भूमि इसके लिये अधिक उपयोगी होती है। तथा दुमट अर्थात् जिसमें रेत और चिकनी मिट्टी के अंश बराबर-बराबर परिमाण में हो उत्तम होती है। जिन जमीनों में गेहूँ, अफीम, कपास, मक्का, जौ, ज्वार, मटर, सरसों, अरहर और तम्बाकू आदि होती है, उन जमीनों में आलू भी बहुत अच्छा होता है। आलू के लिए सबसे अच्छी लाल, भूरी व पीली मिट्टी की जमीन मानी जाती है। काली मिट्टी वाली जमीन आलू बोने से, उसका पौधा अधिक नहीं बढ़ पाता, तथा आलू भी कमजोर व मुर्झाया हुआ होता है।

विवरण—

बीज के लिये अच्छे और अधिक उपज वाले पौधों में से इन्हें चुनना चाहिए। बीज का आलू गोल होना चाहिए, टेढ़े मेढ़े और नुकीले आलू लेने से उपज घट जाती है। बीज के आलू सरकारी गोदामों या जानकार व्यापारियों से लेवें। कई धूर्त व्यापारी उन्हें मिट्टी के तैल में भिगो कर रखते हैं, जिससे उनकी उत्पादक शक्ति घट जाती है। बीज के आलुओं की कीड़ों से रक्षा करने के लिए, उन्हें खोदने के पश्चात् तुरन्त रेत में दबा कर रख देना चाहिए। आठ-दस दिन के बाद एक बार सब आलू निकाल कर उसमें से सड़े हुए फेंक दें। बरसात में प्रति सप्ताह इनकी देख-भाल करें। नैनीताल और दार्जिलिंग के आलू बीज के लिए अच्छे होते हैं।

पहाड़ों में फागुन से लेकर वैसाख तक, और मैदानों में कुआंर से पूस तक यह बोया जाता है। कृष्णपक्ष में बोने से उनकी जड़ों में कीड़े नहीं लगते। हमारे देश में प्रायः आलू काट कर बोया जाता है; किंतु इस प्रकार बोने से पौधा अच्छी तरह बढ़ने नहीं पाता, तथा उसकी उत्पादन शक्ति भी कई अंशों में नष्ट हो जाती है। बड़े-बड़े आलुओं के बीच में कुछ अधिक और छोटों के बीच में कम जगह छोड़नी चाहिए। ऐसा करने से पौधों को फैलने को काफी जगह मिलेगी तथा आलू भी बड़े और स्वादिष्ट होंगे। बीज को कम से कम तीन-चार इञ्च गहरा गाड़ना आवश्यक है। अधिक गहरा भी न गाड़ें, क्योंकि इससे हानि होती है। प्रति एकड़ १० से १२ मन बीज पर्याप्त होता है। बीज सीधी कतारों में गाड़ना चाहिए।

बिना सिंचाई के आलू की फसल नहीं होती। पहाड़ों में सिंचाई की कम आवश्यकता होती है। कई स्थानों पर बीज बोने के पश्चात् यदि मृत्त्यापन हो, तो शीघ्र सिंचाई करनी पड़ती है, और उसके बाद १० दिन तक बराबर पानी देना पड़ता है। जब बेल पीली पड़ जाय और पत्ते पीले होकर मुरझा कर गिरने लगें, तब समझना चाहिए कि फसल पक गई है, तथा सिंचाई कम कर देना चाहिए। आलू खोदने के १५ दिन पहिले सिंचाई बन्द कर देनी चाहिये।

आलू की फसल में बहुत रोग लगते हैं। कभी-कभी निकम्मी खाद डालने और एक ही खेत में बार-बार खेती करने से रोगों की उत्पत्ति होती है। आलुओं में भूरे रङ्ग का आध इञ्च का लम्बा कीड़ा जिसे सुण्डी कहते हैं, बहुत लगता है। इसके नष्ट करने के लिये, आलू की क्यारी में पानी देते समय, जहां से पानी काटा जाता है, एक मलमल की छोटी थैली में शुद्ध हींग भर कर रख देना चाहिए। दीमक की हानि से बचने के लिए मदार (अकौआ) की जड़ को चूर्ण कर पानी में घोल कर खेत में देवें। पौधों पर राख बुरकने से भी बहुधा कीड़े नहीं लगने पाते। आलू के सब रोगों का पाश्चात्य प्रणाली से सामान्य इलाज इस प्रकार है—साबुन (कपड़ा धोने का) एक पाव लेकर पानी में घोल लें, फिर १० सेर मिट्टी के तेल को इसमें लकड़ी से भली प्रकार मिला, इसमें उबलता हुआ १० सेर पानी मिलावें। जब यह मिश्रण ठंडा हो जाय, तो इसे थोड़ा-थोड़ा पौधों पर सिंचन कर दें।

खोदने के बाद, जहां आलू रखने हों, उस स्थान पर एक इञ्च ऊंचा चूना, अथवा घास-फूंस या दो इञ्च रेत बिछा कर रखना चाहिए। समय समय पर उन्हें देखते रहना और खराब आलुओं को छांटते रहना आवश्यक है। यदि आलू सदैव बीज के लिये रखना हो, तो बड़े बड़े चुन कर धूप में सुखा कर सावधानी से थर देकर इस प्रकार रखना चाहिए कि वे परस्पर एक दूसरे से छूते हुए न रहें, थर पतली होना चाहिये। बीज में भी अक्सर एक कीड़ा लग जाता है, इसलिए उन्हें रेत पर रख कर ऊपर से रेत से ढँक देना चाहिए। ऐसा करने से कीड़े बीज पर अण्डे न दे सकेंगे।

('आलू की खेती' नाम की पुस्तक के अधार से)।

प्राचीन समय में जो आलू पैदा होता था, वह गंधा, स्वादिष्ट, ज्वरार्तों को दिया जाता था, उसमें भी कीड़ा नहीं पड़ता था। अब नीम की, तीसीकी, डी की खली मिट्टी में मिला कर खेती जब से होने लगी तब से आलू तो अधिक होने लगा रन्तु जल्दी सड़ने लगा, कीड़ा पड़ने लगा, प्राचीन स्वादिष्टता जाती रही। इससे खांसी, श्वास भी अधिक खाने से होता है।

अब फुलवा आलू (जिसमें फूल आता है) अधिक पैदा होता है। उसे आषाढ़ में बोते हैं। कार्तिक में छोटा-छोटा आने लगता है। फाल्गुन, चैत्र तक खोद लिया जाता है। इसी समय बीज के लिए रख लिया जाता है। चतुर्मास्य में आलू के किल्ला निकलने लगता है। प्राचीन समय में झाऊ व अरहर की लकड़ी की बड़ी-बड़ी डालियों में भर कर हवादार मकानों में रक्खा जाता था; परन्तु कीड़ा नहीं लगता था। आजकल बालू में रखने पर भी कीड़ा लगता है। —पं० भागीरथ स्वामी जी

आलू कई प्रकार के होते हैं, जैसे देशी, विलायती पहाड़ी, लाल, सफेद आदि। इनमें लाल आलू सबसे श्रेष्ठ समझा जाता है। इसमें और आलुओं की अपेक्षा पौष्टिक तत्व अधिक होता है। पहाड़ी आलू भी खाने में अच्छा होता है, इसमें चिकनाई का भाग अधिक होने से पचने में कुछ गड़बड़ नहीं करता। सफेद या पीले आलुओं में पौष्टिक तत्व बहुत कम होता है, और मेदासार (Starch) तथा काष्ठ तन्तु उनमें अधिक होने से गुणों में हीन समझे जाते हैं। और खाने में भी वे अधिक स्वादिष्ट नहीं मालूम होते, बल्कि उनमें एक प्रकार की नीरसता या सीटापन होता है। हरे, काले और नीले रङ्ग के आलू बड़े हानिकारक होते हैं, तथा उनका स्वाद भी अच्छा नहीं होता।

प्रत्येक आलू में तीन भाग होते हैं। ऊपर के छिलके के नीचे एक चौड़ी पट्टी सी होती है जो सम्पूर्ण आलू का दस प्रतिशत तक है। इसके भीतर गूदा होता है, जो सारे आलू का ७५ प्रतिशत् भ होता है। ध्यान रहे उक्त छिल्के के नीचे की पट्टी में गूदे की अपेक्षा खनिज लवण और प्रोटीन काफी अधिक मात्रा में रहते हैं। आलू का जब छिलका उतारते हैं, तो नीचे की तह का भी कुछ अंश साथ ही खुरचा जाता है। जिसका मतलब यह कि हम आलू के बहुमूल्य भाग को नष्ट करते हैं।

गुणधर्म—

आयुर्वेदानुसार—

यह शीतल, मधुर, रुक्ष, पाक में भारी या दुर्जर, आलस्यकारक, विष्टंभी या मल को गाढ़ा करने वाला, वृष्य (वीर्यवर्धक), बलकारक, मलमूत्र-निःसारक, किंचित् अग्निकारक, स्तन्यवर्धक, रक्तपित्त नाशक तथा वातकफनाशक भी है। कोई-कोई इसे वातकफकारक मानते हैं।

यूनानी मतानुसार—

यह पहले दर्जे में ठंडा और रूक्ष है। वीर्य को गाढ़ा करता, कामोद्दीपक, वस्ति को बल देता है। देर से पचता है, मेदे को बिगाड़ता और अफरा पैदा करता है। किसी-किसी के मत से यह खून को बिगाड़ता और खुजली पैदा करता है। इसका सुर्मा आंखों को शक्ति देता व जाला काटता है। आलू के दर्पनाशक-गर्ममसाला, अदरख और गोश्त हैं। इसका प्रतिनिधि—अरबी (घुइयां) और उत्तम अंडा है।

मात्रा—बड़ों को १० से २० तोले तक, और साधारण २ से ५ तोला तक।

कोई-कोई आलू को सुखा कर सालबमिश्री की जगह व्यवहार करते हैं।

आधुनिक मतानुसार—

अङ्कुरित या अपक्व आलूकन्द तथा पत्तियों और पुष्पों में सोलेनिन (Solanine) नामक एक विषैला क्षार होने से वे विषैले होते हैं। पूर्ण वृद्धि को प्राप्त

हुए या पक्व आलू-कंद में यह क्षार नहीं रहता। कुछ थोड़े परिमाण में आलू का उपयोग श्वेतसार (Starch) निर्माणार्थ किया जाता है। यह आलू का श्वेतसार महीन आटा, मैदा आदि तथा अन्य श्वेत सारों में मिलाने के काम में आता है। आलू द्वारा, अधिक परिमाण में व्यापारार्थ द्राक्षोज (Glucose) निर्माण किया जाता है। कई स्थानों में आलू, मद्यसार (अल्कहोल) निर्माण का एक महत्वपूर्ण साधन होता है (इसके द्वारा मद्यसार बनाया जाता है)।

औषध रूप से आलू रक्तपित्त प्रशमन (Antiscorbutic) स्कर्वी रोग को दूर करने वाला है। मज्जातन्तु या वात सम्बन्धी और यकृत सम्बन्धी अग्निमांद्य से पीड़ित व्यक्ति इसे अच्छी तरह पचा लेते हैं। आमवात (Gout) या गठिया रोग में मृदुरेचक, मूत्र प्रवर्तक, स्तन्यजनक, नाड्यवसादक व उत्तेजक रूप में इसका प्रयोग होता है। इसके पत्तों के अर्क का प्रयोग चिरस्थायी कास रोग में आक्षेपहर (Antispasmodic) रूप से होता है, यह इसमें अफीम जैसा ही अपना प्रभाव दर्शाता है। आग से जले हुये स्थान पर पिसे हुये आलू का पलस्तर रखने से बहुत लाभ होता है।

रासायनिक संगठन—

आलू में नत्रजनीय (Nitrogenous) पदार्थ, वसा, कर्बोज (Carbohydrates); राख और जल होता है। आलू का नत्रजन सर्वथा वास्तविक अण्डे की सफेदी के तत्व के (Albuminoids) या सार तत्व (Proteins) के रूप में नहीं होता, प्रत्युत उसका लगभग अर्द्धांश वास्तविक एल्ब्युमिनाइड रूप में तथा लगभग शेषार्द्ध एमिडो-मिश्रण (Amido-Compounds) रूप में पाया जाता है, जिसमें एस्पैरागीन (Asparagin) की प्रधानता होती है। एस्पैरागीन जैसे अल्ब्युमिन रहित नत्रजनीय पदार्थ इस कंद के मूल भूत महत्वपूर्ण भाग हैं। असली एल्ब्युमिनाइड्स या प्रोटीनस को ट्यूबरीन (Tuberin) कहते हैं। ट्युबरीन में १६-२४ प्रति० नत्रजन होता है। आलू के सारभाग में से कुछ भ० कंद स्थित जल में घोल रूप से रहता है।

आलू का स्वरस एक प्रकार के गहरे रङ्ग का है जिसका क्षारीय स्वभाव (Acid Character) होता है। इसका यह क्षारीय स्वभाव (Acidity) निंबुकाम्ल (Citric acid), अम्लिकाम्ल (Tartaric Acid) और अम्बराम्ल (Succinic-acid) के कारण से है। इसमें खनिज-द्रव्य प्रायः पोटाशियम साल्ट्स के रूप में पाये जाते हैं, जो जल में घुलनशील हैं। आलू में जो एस्पैरागीन है, वह भी जल में घुलता है, तथा ट्युबरीन न्यूनाधिक ठोस द्रव्यों में घुलता है।

अनुभव से ज्ञात हुआ है कि उबालने से पूर्व आलू को छील डालने या ठंडे जल में भिगो देने से बहुत हानि या नुकसान होता है। ऐसी अवस्था में, उन्हें पानी में भिगो रखने के समय के अनुसार नत्रजनीय पदार्थ के ह्रास की मात्रा प्रतिशत ४६ से ५८ तक देखी गई है। जिस जल में आलू पकाया गया उस जल में से २५ प्रतिशत् एलब्युमिनाइड्स और ३० प्रतिशत् खनिजद्रव्य प्राप्त हुए। इस जल को फेंक देने से उक्त द्रव्य साधारणतः नष्ट प्राय हो जाते हैं। आलू को छील और ठंडे जल में भिगोने के पश्चात् यथासम्भव शीघ्र ही उबलने तक पकाया जाय, तो उक्त ह्रास की मात्रा अत्यल्प होती है, अर्थात् यह मात्रा समग्र नत्रजनीय पदार्थ की लगभग १३ प्रतिशत (जिनमें से एल्ब्युमिनाइड्स आधे से कम) तथा कुल खनिज-द्रव्यों की १६ प्रतिशत होती है। उबलता हुआ पानी एलब्युमिनाइड्स को अविलेय (Insoluble) बनाते हुये, उसे आलू की सतह पर जमा देता है। वे आलू के बाहरी छिद्रों को भर देते हैं, जिससे अन्दर के रसों का बहुत कम ह्रास होने पाता है; यद्यपि इसके पूर्व (उबलने के पूर्व) लवण एवं खनिज द्रव्य काफी परिणाम में निकल चुके होते हैं। आलू में बहुत काफी परिमाण में लोहा होता है, किन्तु उसका किंचिन्मात्र अंश कोषस्थ

रस (Cell-sap) में घुलित होकर रह जाता है, क्योंकि उबालने से वह लगभग सम्पूर्ण तलस्थायी हो जाता है।

—डा० नाडकर्णी (इं० म० मेडिका)।

आलू के पत्तों में चार भाग बहुत होताहै। कच्चा (या अपरिपक्व) आलू दाहजनक व मदकारक है, किंतु पकाने से उसका यह दोष नष्ट हो जाता है। आलू में पौष्टिक द्रव्य बहुत कम प्रमाण में होते हैं, और वे भी छाल के नीचे के पतले स्तर में रहते हैं। छाल को छील डालने से यह अल्प पौष्टिक द्रव्यमय स्तर भाग निकल जाता है। आलू में श्वेतसार या पिष्ठभाग बहुत होता है, जो चावल के पिष्ठ के दर्जे का एवं उसके समान ही पौष्टिक है। आलू के कल्क को बार-बार शीतजल में धोकर इस पिष्ठ (श्वेतसार) को निकाला जाता है। यह पिष्ठ तवाखीर (अरारूट) के दर्जे का होता है। इस पिष्ठ से सहज ही में शर्करा और उत्तम मद्य तैयार की जा सकती है।

—डा० देसाई (औषधि-संग्रह)।

आलू का शाक सुस्वाद, रुचिकर, शक्तिदायक, तथा पाचन में दरम्याने दर्जे का है। वात, कफ से उत्पन्न व्याधियों, कास, जुकाम, दमा, कलेजे की पीड़ा, पेशाब के साथ शक्कर का आना, आदि रोगों में इसका प्रयोग लाभदायक होता है। आलू में निशास्ता (Starch) अधिक होता है।

दोष—संग्रहणी, अतिसार तथा मरोड़ आदि रोगों में इसका प्रयोग ठीक नहीं। अधिक सेवन से चर्बी बढ़ती है, और पेट भी अधिक बड़ा हो जाता है। कुछ लोगों का अनुभव है कि निरन्तर आलू खाने से गठिया रोग की उत्पत्ति होती है। सुजाक और आतशक के रोगी इसका सेवन न करें, क्योंकि यह मूत्रनालिका में जलन उत्पन्न करता है।

—आरोग्यता प्रकाश से।

आलू में यद्यपि स्टार्च (श्वेतसार) अधिक होता है, तथापि इसका शाक मधुमेह रोग में अधिक उपयोगी सिद्ध हुआ है। मधुमेह रोगी को अन्य सब प्रकार के शाकों को छोड़कर, केवल अधिक घृत में पकाया हुआ आलू का शाक सेवन करने से बड़ा लाभ होता है। आलू में कई ऐसे पदार्थ पाये गये हैं कि वे छोटी आंतों में अच्छी प्रकार जीर्ण नहीं हो सकते, इसलिए संग्रहणी, प्रवाहिका, अतिसार आदि रोगों में आलू का सेवन हानिकारक है। पित्त के विकार और रुधिर सम्बन्धी रोगों में भी प्रायः आलू का अच्छा फल नहीं माना जाता; अतः इन रोगों में भी आलू-सेवन ठीक नहीं। कोष्ठबद्धता विशेषतः पुरानी कोष्ठबद्धता में भी अधिक आलू नहीं खाना चाहिए। आलू के अधिक सेवन से प्रायः कोष्ठगत् मल सूख जाता है, और आंतों में बड़ी खुश्की हो जाती है। इसके अतिरिक्त मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात, सुजाक और उपदंश रोग में भी आलू का बुरा परिणाम देखने में आता है। अधिक खाने से प्रायः मूत्रनली में चिलक व दाह पैदा हो जाती है, तथा ग्रीष्म-ऋतु में भी आलू का अधिक सेवन हानिकारक है। —'वैद्य' मासिक से।

आलू में स्टार्च या पिष्ठ भाग अधिक होने से, यह ख्याल किया जाता है कि इसका अधिक सेवन करने से पेट बढ़ जाता है। परन्तु मेरिट्ज वर्ग के होम-इकोनोमी आफिसर मिस के. आर. हेवहाड का कहना है कि यह भ्रमपूर्ण धारणा है। सचमुच सस्ती और शक्तिरक्षक खुराक के रूप में आलू की उपयोगिता ऊंचे दर्जे की है। इसमें शरीर की रक्षा करने वाला कार्बोहाइड्रेट अच्छे प्रमाण में है। जिससे शारीरिक गर्मी बनाये रखने में इससे अच्छी सहायता मिलती है। खनिज लवण का अंश भी इसमें अच्छा है। और विटामिन 'ए' तथा 'बी' और 'सी' अर्थात् ओज-वर्धनीय व दीपन-पाचनीय तत्व भी पूर्ण रूप से हैं। इसमें कुछ शर्करा का अंश है, किंतु वह शरीर में लाभ पहुंचाने भर को ही है, उस शर्करा से हमें विशेष हानि नहीं होती। अधिक मिठाई और श्वेतसार वस्तु खाने वालों के दांत कमजोर व रोगी हो जाते हैं, किंतु आलू खाने वालों में यह शिकायत नहीं पाई जाती। तलने से आलू की शक्ति

कम हो जाती है, उबाले और भुने आलू अधिक लाभदायक हैं। चावल खाने से जिन्हें हानि होती हैं, उन्हें आलू ही दीजिए, इससे चावल की आवश्यकता भी पूर्ण होगी। आलू में लौहतत्व रहता है, जिससे शरीर को जिन खनिज तत्वों की आवश्यकता रहती है उसकी पूर्ति आलू से हो जाती है। रक्त बढ़ाने और उसका रञ्जन करने का काम आलू से होता है। रक्त का लाल रङ्ग इससे बढ़ता है। इसमें मिलने वाले विटामिन 'ए' से आँख, कान, नाक, गला और फेफड़े का रक्षण होता है। उसके विटामिन 'बी' से नाड़ी जाल (नर्वस सिस्टम) को लाभ पहुंचता है; और उसके विटामिन 'सी' से रक्त-रञ्जन त्वचा की कोमलता व दांतों की तन्दुरुस्ती बढ़ती है। उबाली गोभी की अपेक्षा उबाले आलू में विटामिन 'सी' पांच गुना अधिक होता है।

—(सुधानिधि)

सिद्ध साधित प्रयोग—

(१) तरीप्रद शाक—मोटे-मोटे आलू लेकर उनके ऊपर का पतला-पतला छिलका उतार कर, थोड़े पानी में छिलकों को धोकर घृत में प्याज, लहसुन आदि का पिसा हुआ मसाला डाल कर खुब भून लो, अन्दर के गूदे को भी साथ ही साथ भून लेना चाहिए। थोड़ी देर बाद पानी डाल कर अच्छी आग पर एक घण्टा तक पका कर उतार लो। बहुत रोचक, स्वादिष्ट तरावटदार शाक बन जावेगा। शुष्क शाक बनाना हो तो पानी बहुत कम डालना चाहिए, यह भी खाने में बहुत स्वादिष्ट होती है।

नोट—आलुओं में एक मुख्य गुण यह है कि इन्हें अन्यान्य शाक-भाजियों के साथ मिला कर भी बना सकते हैं। पंजाबी लोग तो अवश्य ही आलुओं से मिश्रित सब्जियों का ही अधिक प्रयोग करते हैं। जैसे—गाजर-आलू, मेंथी-आलू, सोया-आलू, टमाटर-आलू, मटर-आलू, बैंगन-आलू, और जो मांस खाने वाले हैं वे मांस में आलू मिलाकर के ही खाते हैं। आलू ही एक हमारा ऐसा खाद्य-पदार्थ है जो अन्य सब्जियों के साथ मिलकर उन्हें खूब स्वादिष्ट और रोचक बना देता है।

(२) आलू के कोफते—आलुओं को उबाल कर उसी उबले हुए पानी में उन्हें हाथों से खूब मसल कर उसमें थोड़ा सा बेसन, नमक, मिर्च और बारीक प्याज मिला, कोफते की भांति गोल और लम्बे-लम्बे कोफते हाथ से बनालें। पश्चात् घृत में मन्द आग पर तल लो। यह इसी प्रकार खाने में भी लाभदायक होते हैं और इसकी तरी की सब्जी बहुत स्वादिष्ट अरुचि को दूर करने वाली होती है।

(३) आलू का रायता—आलुओं को छिलके सहित कद्दूकस में कस कर, थोड़े पानी में पकालो, फिर दही को मथ कर उनमें नमक, कालीमिर्च और गर्ममसाला की चीजें महीन कर मिलावें, फिर उक्त आलू को मिला कर ढांक कर रक्खें। एक या दो घण्टा बाद काम में लावें। यह रायता भी स्वादिष्ट और हितकर होता है।

(४) आलू की टिकियां—छिलके सहित आलू को कद्दूकस में कस कर, थोड़े पानी में बफारा देकर अलग रक्खें, फिर उसमें उबली हुई चने की दाल अर्धभाग मिला सिल पर पीसलें। साथ ही नमक, मिर्च, मसाला आदि मिला लें। पश्चात् इस कल्क में से थोड़ा-थोड़ा लेकर चौड़ी-चौड़ी टिकिया बना घृत में तले। ध्यान रहे इसमें घृत एकदम नहीं डालना चाहिए, किन्तु गेहूं के परौंथे बनाने की भांति थोड़ा-थोड़ा घी साथ-साथ डालना अच्छा रहता है। ये टिकियां खाने में अपूर्व रस देती हैं। शरीर में बल, वीर्य की वृद्धि करती हैं तथा कामोद्दीपक हैं।

(५) आलू का हलुवा—छिलके सहित कद्दूकस में कसे हुए आलू को, थोड़े जल में बफारा देकर, घृत में अच्छी तरह भून लो। भूनते समय ही उसमें समभाग चीनी मिला लो। फिर उतार कर उसमें बादाम, किसमिस आदि मिला कर रखलो। यह

अत्यन्त वीर्यवर्धक और कामोद्दीपक होता है। इसे अपनी अग्नि बलानुसार सेवन करना चाहिए।

नोट--आलू के और भी कई पदार्थ बनाये जाते हैं जैसे--समोसे, सेव-कचालु, आलू के पापड़, आलू के बड़े, कचौड़ी, कढ़ी, रसगुल्ला, गुलाब-जामुन, पकौड़ी, इमरती, जलेबी, सोहन-हलुवा, खीर आदि-आदि।

रोगानुसार कुछ प्रयोग—

(१) खांसी पर--आलू के पत्तों को कुचल कर या जवकुट कर चार गुना जल में भिगो रक्खें। १२ घण्टे बाद आग पर पकावें। चौथाई भाग जल शेष रहने पर जल को नितार लें और थोथे को वस्त्र से निचोड़ कर, निचुड़ा हुआ जल उसी में मिला, पुनः आग पर औटावें। गोली बनाने लायक घन-क्वाथ सिद्ध हो जाने पर दो से चार रत्ती की गोलियां बना रक्खें। इन गोलियों को चूसने से खांसी का उग्र वेग शान्त हो जाता है।

(२) स्कर्वी रोग में—जब दांतों की हड्डियां सूज कर रक्त बहता हो तो आलू को भून कर खाने, या छिलके सहित इसका यूप या पतला साग बना कर खाने से लाभ होता है।

(३) वात वेदना या शोथ पर—आलू के पत्ते और बेल को कुचल कर मटकी में भर, थोड़ा जल मिला मटकी का मुख बन्द कर आग पर पकावें। जब अंदर जल उबलने लगे तब, वेदनायुक्त स्थान या शोथ पर इसका बफारा देने से शीघ्र लाभ होता है।

(४) अग्निदग्ध पर—शरीर का कोई भी भाग आग से जलने पर, तुरंत ही (फफोला उठने के पहले) आलू को पत्थर पर पीस कर लेप करदें। उसी समय दाह की शांति होकर, फफोला वगैरा नहीं उठने पाता। इसी प्रकार दिन में दो-तीन बार लेप करते रहने से आग से जला हुआ स्थान शीघ्र अच्छा हो जाता है।

(५) बालकों को शक्तिवर्धनार्थ—अच्छे मोटे-मोटे आलू चुन कर साफ करलें, फिर उन्हें छिलके सहित महीन कतर कर या कद्दूकस में कस कर उन्हें मन्द आग पर भून कर चूर्ण बना कर शीशी में भर रक्खें। इस चूर्ण को दूध की मलाई के साथ थोड़ा-थोड़ा सेवन कराने से बालक शीघ्र ही पुष्ट हो जाते हैं। इस चूर्ण को दूध के साथ भी चाय जैसा बना कर पिला सकते हैं। यह बालकों के लिए उत्तम खाद्य या पेय रूप में हो जाता है।

(६) आमाशय शत-शल्य निष्कासनार्थ--खीलें आदि वस्तुऐं आमाशय में जाने पर शल्य ग्रस्त रुग्ण को आलू ही केवल खाने को दिये जावें। आलू का चाहे सो पदार्थ बना कर दे सकते हैं। किन्तु उसके साथ अन्य कोई भी चीज मिश्रित न होनी चाहिए। सम्पूर्ण आहार बन्द कर केवल आलू पर ही उसे रखा जाय। यह उपचार चालू है तब तक रोगी को सीधे करवट पर ही सुलावें। इस उपचार से शल्य आगे-आगे सरकता है। शल्य का पीड़ा स्थान प्रति-दिन बदलता है, अर्थात् आगे-आगे पीड़ा होती जाती है, और पहले स्थान की बन्द होती जाती है। ९ या १० दिनों तक यह प्रयोग जारी रखने से शल्य बाहर निकल आता है। आलू में २० प्रतिशत् कार्बो-हायड्रेट्स व पिष्टसत्व, तथा सेल्युलोज ७० प्रतिशत् है। अतः पाचक रसों की क्रिया कम चलती है। अर्थात् सेल्युलोज और दूसरे कार्बोहायड्रेट्स पदार्थ जल से फूलते हैं और पचते नहीं, आंतों में वैसे ही रहते हैं, जिससे आंतों की अन्तरथ-वली इन पदार्थों से भर जाती है, और इसी से वह शल्य आगे-आगे नीचे जाता है, कहीं अटकने का डर नहीं रहता। इस तरह सरकता हुआ शल्य अन्त में बाहर निकल जाता है। शस्त्र-क्रिया की कोई जरूरत नहीं होती।

--चिकित्सक।

(७) नेत्र रोग जाला फुली पर—कच्चे आलू को किसी साफ पत्थर पर घिस कर प्रातः-सायं काजल

—शेषांश पृष्ठ १०७९ पर।

लेखक

वैद्य श्री. धीरेन्द्रमोहन भट्ट शास्त्री आयुर्वेदाचार्य

प्रधान चिकित्सक--राजकीय आयुर्वेदिक चिकित्सालय
वढोली, सरगुजा (म० प्र०)

पिता का नाम-श्री पं. सुरेन्द्रमोहन भट्ट वैद्य आयुर्वेदाचार्य

आयु—२५ वर्ष चिकित्साकाल—४ वर्ष

प्रयोग विषय—१–विषमज्वर २–सर्पविष
३–बिच्छू विष ४–उपदंश
५–ध्वजभङ्ग या शीघ्रपतन

"श्री० भट्ट जी से धन्वन्तरि के पाठक पहिले ही परिचित हैं। आपके लेख यदा-कदा धन्वन्तरि में प्रकाशित होते रहते हैं। आप विद्वान एवं अनुभवी चिकित्सक हैं। राजकीय आयुर्वेदिक चिकित्सालय के इंचार्ज हैं तथा आप अपनी लेखनी का रसास्वादन विभिन्न पत्रिकाओं द्वारा वैद्यसमाज को कराते रहते हैं, प्रयोग परीक्षित और उपयोगी हैं।" --सम्पादक।

१—विषमज्वर (तृतीयक चातुर्थिक और अन्य) पर—

यह एक जगत् प्रसिद्ध रोग है जिसे तिजारी और मलेरिया नाम से लोग पुकारते हैं। सरकारी औषधालयों में काम करते हुए मेरा यह स्वतः का अनुभव सिद्ध योग है जो इस रोग को दूर करने में ६०% कारगर है। मैं इसका प्रयोग षडङ्ग के साथ करता हूं। औषध द्रव्य निम्न हैं—

शोन पुष्पी	नीमत्वक
कागनमूलत्वक	तुलसी (पञ्चांग)
गुडूची (पञ्चांग)	कटेरी
छोटी हरें	—प्रत्येक १०-१० तोला।

निर्माण विधि--सभी द्रव्यों को कूट कर अष्टगुण जल में क्वाथ करें, पश्चात चतुर्थांश अवशेष रहने पर उतार लें, पुनः छान कर बोतल में रख लें और ज्वर आने से पूर्व २-२ घंटा पर ३ मात्रा दे दें। दो दिन के प्रयोग से विषमज्वर अवश्य दूर होता है।

मात्रा—२ तोला तक।

२—बिच्छू विष पर—

नमक	४ ग्रेन
जल	१ तोला

--दोनों को विलय कर दें। पुनः निम्न विधि से

इसका प्रयोग करें।

प्रयोग विधि—५ बूंद दंश स्थान पर, ५ बूंद कान, ५ बूंद नाक और ५ बूंद आंख में डाल कर १० बूंद मुख द्वारा पीने को दें।

इसके प्रयोग से ज़हर और बेचैनी दूर हो कर रोगी को आराम अनुभव होता है।

३—सर्पविष पर—

सर्प से काटे हुए व्यक्ति के नेत्र में जयपाल को नरमूत्र में घिस कर अञ्जन की तरह २-३ बार प्रयोग करने से सर्प विष से मुक्त होकर नूतन जीवन को प्राप्त करता है। यह योग मुझे पूज्य श्री पं. हरिशंकर शर्मा रसायनाचार्य से प्राप्त हुआ है।

नोट— इसके प्रयोग से ६० प्रतिशत् लोग चंगे हुए हैं जिनके ऊपर विष का प्रभाव कंठगत हो चुका था।

४—उपदंश के व्रण पर—

शुद्ध कर्पूर खैर सङ्गजराहत

—प्रत्येक १-१ तोला।

विधि—गौ घृत में मिला सौ बार धोकर रखलें। पुनः व्रण पर दिन में ३ बार लेप करने से ३ दिनों में व्रण को दूर कर देता है। मुझे यह योग पूज्य पिता जी से प्राप्त हुआ है।

५—ध्वजभङ्ग और शीघ्रपतन पर—

कवांच बीज	५ तोला
अश्वगन्ध	५ तोला
भुई कुष्माण्ड	१० तोला
सेमल मूलत्वक	१० तोला
सितावर	१० तोला
मिश्री	४० तोला

निर्माण विधि—नं० १ से ५ तक के द्रव्य को कूट कर महीन चूर्ण बना लेने के बाद मिश्री डाल कर महीन कर लें और बोतल में बन्द कर दें।

मात्रा—२ तोला। प्रयोग विधि—प्रातः-सायं ताजा गौदुग्ध ३० तोला या जल से।

गुण—इसके प्रयोग से शीघ्रपतन, ध्वजभङ्ग तो दूर होते ही हैं। इसके अतिरिक्त स्त्री-सम्भोग, हस्तमैथुन, स्वप्नदोष या अन्य कारणों से वीर्य अतिक्षय हुआ हो और पतला पड़ गया हो तो उसे भी गाढ़ा करता है। ☆☆

(पृष्ठ १०७७ का शेषांश)

की तरह आंखों में लगाने से कुछ दिनों में ५-६ वर्ष का जाला और ४ वर्ष तक की फूली, दो या तीन माह में साफ हो जाती है। —धन्वन्तरि।

नोट—आजकल विशेष पद्धति से तैयार किये हुए आलू के शुष्क सुन्दर महीन टुकड़े बाजारों में बिकते हैं। उन्हें शीत जल में १०-१५ मिनट भिगोकर, फिर ढांक कर लगभग आधा घंटा तक पकाने से उत्तम साग तैयार हो जाता है। कहा जाता है कि, एक पौंड ये शुष्क आलू के टुकड़े ५ पौंड ताजे आलू की बराबरी करते हैं। इन टुकड़ों को पीस कर पूरी आदि कई खाद्य-पदार्थ बनाये जाते हैं। यह आलू का पिष्ट प्रोटीन, चरबी या पिष्ट विभाग की दृष्टि से गेहूं के आटे के समान होता है, तथा गेहूं के स्थान में उपयोग में लाया जा सकता है। यद्यपि शरीर में उपयुक्त उष्णतोत्पादक धारण शक्ति या कॅलरीज की दृष्टि से यह विशेष प्रशंसनीय नहीं है, तथापि केवल अन्न की दृष्टि से इसका भिन्न-भिन्न प्रकार से उपयोग करने में कोई विशेष बाधा नहीं है। ☆☆
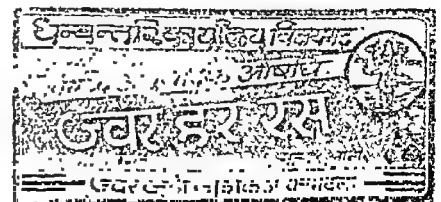
वैद्य राजासिंह वैस विशारद

मानिकपुर पो० राजेपुर (उन्नाव)

आयु—२६ वर्ष, चिकित्साकाल—८ वर्ष,

आत्मज—श्री० जीवनसिंह वैस-राजपूत।

विषय—१-मलेरिया २-जीर्ण विषमज्वर, ३-रक्त प्रदर,

४-बच्चों की पसली चलना (डब्बा), ५-दुर्बलता,

"श्री. वैद्य जी ने श्री. पं० रामप्रसाद जी द्विवेदी फतहपुर एवं डा. एन. एन. भटनागर सफीपुर से चिकित्सा विषयक क्रियात्मक अनुभव प्राप्त किया है। डा. हरिदास कृत 'चिकित्सा-चन्द्रोदय' ग्रंथ को आपने अध्ययन किया है। इस समय अपने गांव-मानिकपुर में सफल चिकित्सक हैं। आपने अपने प्रयोगों के पूर्ण सफल होने की गारंटी की है। प्रयोग सरल हैं पाठक लाभ उठावें।"

—सम्पादक।
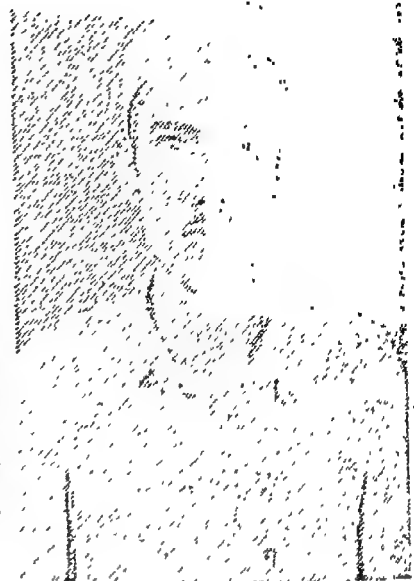
१—मलेरिया—

कलमी शोरा	५ तोला
नौसादर	२ माशे

—दोनों को बारीक पीस लें, मलेरिया के लिये तीरे-हदफ का कार्य करता है। चढ़े-उतरे किसी भी दशा में दे सकते हैं, घबड़ाहट, तीव्र ज्वर में आशुफलकारी है।

अनुपान—बताशे में भरकर रोगी को खिला दें, एक बार इसे प्रयोग कर देखें, सचाई साबित होगी। दिन में चार-पांच बार दें। मात्रा—२ रत्ती

अवधि—४ दिन, तृतीय, चतुर्थक, सभी बुखारों में लाभकारी है, कब्ज के लिये कोष्ठ शुद्धि चूर्ण कोई भी दे सकते हैं।

सावधानी—सन्तत ज्वर (टायफाइड) अथवा कोई भी सविराम ज्वर जिसमें खांसी भी हो इसका प्रयोग न करें, टम्परेचर को कम करने में कमाल है।

२—जीर्ण विषमज्वर—

चिरायता	६ माशा
गुर्च (नीम पर की)	१ तोला
सौंफ	३ माशा
सुंठी	३ माशा
सनाय	३ माशा
बनफसा	३ माशा
करंज की पत्ती ३ माशा (सूखी १॥ मा०)	
नीम की अन्तर छाल	३ माशा
शुद्ध खूबकलां (खाकसीर)	३ माशा

—यह एक खूराक है, जाड़े के दिनों में काढ़ा बनावें, गर्मी के दिनों में हिम पिलावें।

क्वाथ विधि—तीन पाव पानी में (खाकसीर को पृथक रखें, उसे न डालें) काढ़ा बनावें। चतुर्थांश शेष रहने पर उतार कर शहद ३ माशे डाल कर रोगी को दिन में दो बार पिलावें। इसी प्रकार ग्रीष्म ऋतु में आधा सेर पानी में रात में भिगो दें, प्रातःकाल मल छान कर रोगी को पिलावें।

नोट—खाकसीर शुद्ध फांक कर ऊपर से काढ़ा या हिम पीना चाहिये।

खाकसीर शुद्ध करने की विधि—

तीन दिनों तक पानी में पोटली बनाकर पड़ी रहने दें, बर्तन मिट्टी का हो। पानी २४ घण्टे में दो बार बदलते रहें, खाकसीर शुद्ध हो जायगी, जीर्ण विषमज्वर जो अन्त में यक्ष्मा का सम्मन है, इस काढ़े से अवश्य नष्ट होगा।

३—रक्तप्रदर—

शुक्तिभस्म	३ रत्ती
अपामार्ग स्वरस	१ तोला

—अपामार्ग स्वरस से प्रथम दिन में ३ बार, फिर दूसरे दिन दो बार इस प्रकार दिन में २ बार देते रहें, गुरुजी का यश है, रामबाण का कार्य करता है।

४—पसली चलना अथवा बच्चों का डब्बा रोग—

अभ्रकभस्म	आधी रत्ती
सुहागे का लावा	आधी रत्ती

—शहद के साथ चटाइये। दिन में दो बार, या ३ बार तक दें। अथवा—

भेंड का पेशाब रोगी के घर वालों से छिपाकर २४ घण्टे में ४ बार १०-१० बूंद पिलावें, दोनों प्रयोगों को भली प्रकार अनुभव में लाकर लिखा है। छाती पर निम्नलिखित प्लास्टर करें—

रसमाणिक्य	६ माशे
मोम देशी असली	६ माशा
गाय का पुराना घी	१० तोला
कपूर	३ माशा
कत्था	३ तोला
अलसी की पीठी	२ तोला
कुकरौंधा की पत्तियों का स्वरस	६ माशा

—भली प्रकार प्लास्टर बनालें। उचित मात्रा में लेकर एक कपड़े पर लगा कर चिपकादें। शर्तिया सफलता प्राप्त होगी।

नोट—चिपके हुये प्लास्टर को सेंक दिया करें।

दुर्बलता नाशक प्रयोग—

यह योग उन्हीं लोगों के लिये है जो मुर्गी के अण्डे को सेवन कर सकते हैं। जो जन्म से निर्बल एवं दुर्बल हैं उनके लिये मैं नहीं कह सकता, प्रमेह एवं धातु विकार अधिक वीर्यक्षय से हुई दौर्बल्यता के लिये अक्सीर है, कभी फेल नहीं होगी।

—शाम को गाय का दूध पकाकर जमादें, प्रातःकाल उसे मथें, जब मक्खन निकलने पर हो तो उसी में मुर्गी के एक अण्डे की जर्दी भी डाल दें, पुनः मथें, कम से कम आध सेर मट्ठे में जिसमें मक्खन भी मिला हो (यानी मक्खन उससे निकाला न जाय) १ छटांक शक्कर डालकर भली भांति मथकर रोगी को पिलादें, किसी भी प्रकार से हुई दौर्बल्यता में रामबाण है। यक्ष्मा पर भी अक्सीर का काम करता है। इससे खून में लाल एवं श्वेत अणु अधिक बढ़ते हैं, रक्त बढ़कर शरीर को लाल बना देता है।

सावधानी—साधारण अविवाहित मनुष्य सेवन न करे या यक्ष्मा होगया हो तो सेवन करें।

हकीम श्यामकृष्ण अरोरा B. A., B. I. M. S.

हकीम रामकृष्णलाल यूनानी मैडीकलहाल,

रानीमंडी, इलाहाबाद।

"श्री अरोरा जी शिक्षित और कुशल चिकित्सक हैं। आपके पिता यूनानी एवं आयुर्वेद के ज्ञाता हैं तो आपके चचा एलोपैथी डाक्टर। आपने दोनों के पास रहकर क्रियात्मक अनुभव प्राप्त किया है, अतएव आप आयुर्वेद, यूनानी एवं एलोपैथी तीनों चिकित्सा पद्धति के ज्ञाता हैं और उत्साही तरुण चिकित्सक हैं।"

—सम्पादक।

(१) कामिनी कल्याण—

कूठ मीठा मुश्कतरामसी
रेवन्दचीनी सुगन्धवाला शोरा कल्मी
सातरफारसी —प्रत्येक ६-६ माशा
सोंफ मोरमक्की
जावित्री अनेसून —प्रत्येक ३-३ माशा

—इन सब दवाओं को कूट-छानकर शहद में सानलें और जंगली बेर के बराबर गोलियां बनालें। जब गोलियां सूख जांय तो साफ शीशी में रख लें।

मात्रा—एक गोली या दो गोली सुबह और शाम गर्म पानी के साथ दें।

गुण—यह गोलियां औरतों के रुके हुए मासिक धर्म को जारी कर देती हैं। ऋतुरोध और रजःकष्ट के लिये भी परम कल्याणकारी हैं।

(२) चमत्कारी बूटी—

तुलसी की पत्ती	२ तोला
पानी	आध सेर

—तुलसी की पत्ती को मात्रानुसार पानी में पकालें, जब आध पाव रह जाय तो आग पर से उतार लें, और छान कर घी दो तोला और खांड दो तोला मिला कर चाय की तरह गरम-गरम पिलादें।

गुण—यदि किसी स्त्री को प्रसव वेदना आरम्भ हो गई हो, किन्तु बच्चा बाहर न आता हो और कष्ट बहुत होरहा हो तो उस समय ऊपर-लिखित काढ़ा पिलाने से बच्चा बिना तकलीफ के हो जाता है।

(३) प्रसूतिना—

धतूरे का बीज काला	३ माशा
सोंठ	६ माशा
काली मिर्च	३ माशा
कस्तूरी	२ रत्ती

—इन सब दवाओं को बारीक करके कपड़छान करलें, और कस्तूरी गुलाबजल में घोट कर बाकी दवाओं को भी मिलालें, और चने के बराबर गोलियां बनालें।

मात्रा—एक गोली सुबह और एक गोली शाम को सौंफ का अर्क एक छटांक के साथ दें।

गुण—जच्चा की कुल बीमारियों को जैसे बुखार आना, खांसी, सरदर्द, जुकाम आदि को दूर करती है।

(४) बाल-खांसीनो—

नौसादर	सुहागा
जवाखार काला नमक—प्रत्येक १-१ तोला	
अजवाइन खुरासानी	३ तोला
छोटी भटकटैया	३ तोला

—इन सब दवाओं को किसी मिट्टी के बर्तन में रखकर पांच सेर उपलों की आंच में फूंक लें।

मात्रा—२ रत्ती से ४ रत्ती तक शहद मिलाकर चटा दें।

गुण—बच्चों की काली खांसी Whooping Cough के लिये अक्सीर है।

(५) मियादीना—

दालचीनी	३ माशा
छोटी इलायची	६ माशा
छोटी पीपल	१ तोला
सत्त गिलोय	१ तोला
बंशलोचन	२ तोला
मिश्री	५ तोला

विधि—इन सब दवाओं को खूब बारीक करके महीन चलनी से छान लें और साफ शीशी में रखलें।

मात्रा—१ रत्ती से १ माशा तक शहद या दूध में मिला कर बच्चों को पिला दिया करें।

गुण—हर प्रकार का मियादी बुखार वह चाहे जिस उपद्रव से पैदा हुआ हो इसके प्रयोग से जाता रहता है।

☆☆

डा० ईश्वर सी० डोगर H. L. M. S.

मृत्युञ्जय फार्मेसी, भवारना (कांगड़ा)

पिता का नाम—डा० सन्तराम डोगर M. B. H. वैद्यशास्त्री।

"श्री० डोंगर जी ने अपने पिता जी से ही चिकित्सा ज्ञान प्राप्त किया है। आप उत्साही नवयुवक हैं। दी यङ्ग आर्यन सोसाइटी भवारना के प्रधान एवं जिले की बेसिक अध्यापक समिति के मन्त्री हैं। आपके निम्न प्रयोग उपयोगी हैं। आपको गुप्त रोगों की चिकित्सा में विशेष अनुभव है।"

—सम्पादक।

उपदंशघ्न वटी—
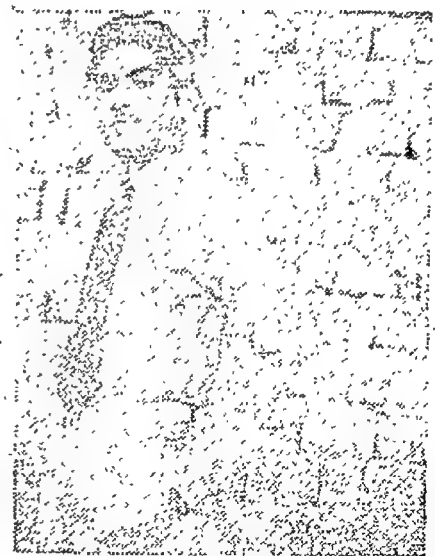
कपूर	४० ग्रेन
शुद्ध रसकपूर	४० ग्रेन
पापड़िया कत्था	४० ग्रेन
मूसली श्वेत	४० ग्रेन

निर्माण विधि—सबको महीन पीस करके पान के ताजा रस में खरल करें। ५-५ ग्रेन की ३० गोलियां बनाओ और उन्हें छाया में खुश्क होने (सूखने) दो।

मात्रा—प्रातः और सायं १-१ वटी ताजे ठंडे जल से प्रयोग करें। यह गोलियां १५ दिन के लिये काफी (पर्याप्त) होंगी।

गुण--उपदंश या फिरङ्ग रोग की सफल औषधि है।

मूत्ररोग नाशक वटी–

बीज जामुन (खस्ता)	६ माशा
शु० अफीम	६ माशा
वङ्ग भस्म	६ माशा
लौह भस्म	६ माशा
शुद्ध शिलाजीत (सूर्यतापी)	६ माशा
शुद्ध कपूर	३ माशा

विधि–सबको पानी मिला कर खरल करें १-१ रत्ती की गोलियां बना लेवें।

मात्रा–१ गोली प्रातः तथा १ गोली सायं ताजा पानी से सेवन कराएं।

गुण–मूत्ररोग, मधुमेह, प्रमेह रोगनाशक उत्तम औषधि है।

सर्वशूलहर प्रयोग–

सोडा सिलिसिलास	१ तोला
एस्प्रीन	३ माशा
मीठी सुरंजाँ चूर्ण	३ माशा
दाना इलायची (छोटी)	६ माशा
पोटाशियम ब्रोमाइड	२ माशा
गुड़ (पुराना)	२ माशा

विधि–सबको बारीक पीस कर शीशी में रखें।

मात्रा–१ माशा, पानी अथवा दूध से सेवन करें।

गुण–सर्वप्रकार के दर्दों में लाभप्रद है।

विषम ज्वरांकुश वटी—

तुलसी के पत्तों का चूर्ण	१ तोला
क्वीनीन फॉस्फेट	१ तोला
गोदन्ती हरताल	१ तोला

विधि—इन सबको मिलाकर सहदेवी के रस में खरल करके सुखा लें। तत्पश्चात् दो दिन तक द्रोण-पुष्पी के अर्क में खरल करके इसमें ३ तोला फिटकरी मिलावें। फिर अच्छी तरह पीस करके दो-दो रत्ती की गोलियां बनाकर सुखा लें।

मात्रा—आवश्यकतानुसार दिन में एक से तीन गोली तक काढ़े या गरम पानी से सेवन करायें।

गुण—विषमज्वर की सफल औषधि है।

डब्बा रोग की दवा—

अर्थात् यह बच्चों की पसली चलना रोग की अचूक दवा है।

प्याज का अर्क	३॥ तोले
फ्रैंच वाईन (ब्रांडी)	१०॥ तोले

विधि—मिलाकर शीशी में भर लो। एक सप्ताह के पश्चात् छानकर दूसरी शीशी में रख लो।

मात्रा—२० से ६० बूंद तक माता के या गौ के दूध से आवश्यकतानुसार सेवन करायें।

अर्क कपूर—

यह अर्क हैजे (Cholera) में विशेष लाभकारी है। इसके अतिरिक्त उदर शूल, आमाशय की निर्बलता (मन्दाग्नि), भूख की कमी तथा शोथ आदि के लिए भी अत्यन्त लाभदायक है।

रैक्टीफाइड स्प्रिट	१२ औंस
शुद्ध कपूर	६ तोला
पिपरमेंट तैल	१ औंस

विधि—सर्व प्रथम कपूर के छोटे-छोटे टुकड़े करके स्प्रिट वाली बोतल में डाल दीजिये। जब कपूर हल हो जावे, तो पेपरमेंट का तैल मिला देवें। बस "अर्क कपूर" तैयार है। प्रयोग करके लाभ उठावें।

मात्रा—५ बून्द से १५ बून्द तक आवश्यकतानुसार, खांड,पानी, अर्क सौंफ या अर्क अजवाइन आदि के साथ सेवन करायें। अत्युत्तम औषधि है।

★★

वैद्य जगदीशचन्द्र शर्मा आयुर्वेद-विशारद.

कोटकपूरा (पेप्सू)
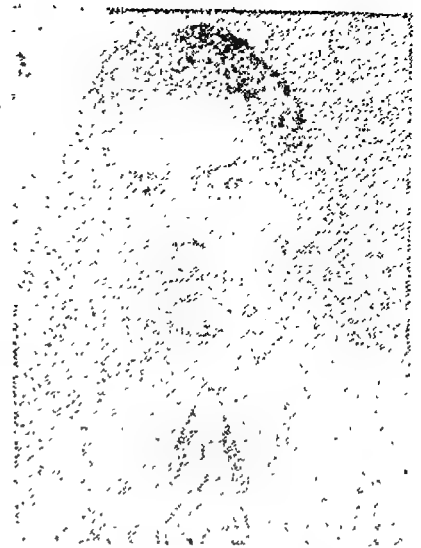
पिता का नाम-- पं० देवीदत्त शर्मा वैद्य

जाति—गौड़ ब्राह्मण आयु—२५ वर्ष

"आपके यहां वंशपरम्परागत चिकित्सा-व्यवसाय बहुत समय से होता आया है। आपने आयुर्वेद भिषक्, आयुर्वेद विशारद परीक्षायें उत्तीर्ण की हैं तथा पं० नवलकिशोर जी L. A. M. S. से क्रियात्मक अनुभव प्राप्त किया है। निम्न प्रयोगों की आपने बहुत प्रसंशा की है, पाठक परीक्षा करें।"

—सम्पादक।

—लेखक—

कर्णस्राव पर—

लहसुन प्याज निम्बपत्र
अपामार्ग हरमल करञ्ज

—प्रत्येक २॥-२॥ तोला।

—इन सबका तीन छटांक कल्क करे, तैल सरसों तीन पाव, बकरी का दूध तीन पाव ले मन्द अग्नि मे पाक करे, तैल मात्र शेष रहने पर बारीक वस्त्र से छान शीशी में भर लें।

प्रयोग विधि—प्रथम कान को निम्न पत्र के पानी से साफ करने के बाद २-४ बून्द तैल कान में डालें। खाने को कफकेतु रस की १ वटी प्रातः-सायं दें। तीन दिन में लाभ करेगा, अनुभूत है।

खाने के लिए- आजकल चिरायता भी देते हैं। क्योंकि यह पूय आदि की शोषक है। इसके अलावा यह तैल कर्ण-पीड़ा, कर्णनाद. बाधिर्य आदि रोगों में लाभप्रद है।

पथ्य—गर्म पदार्थ, मिरच, खटाई, चाय आदि इनका परित्याग करें।

प्रवाहिका पेचिस पर—

टंकण सुरसा अहिफेन

—तीनों को समभाग ले गोली बनाले।

मात्रा—आधी से एक रत्ती, आयु के अनुसार ले।

अथवा—

सोंठ सौंफ जंगी हरड़

—तीनों को समभाग ले चूर्ण कर ले।

मात्रा—२ माशे से ३ माशा तक पानी से दें। अनुभूत है।

हर प्रकार के फोड़े पर—

शुद्ध तिल तैल १ पाव
शुद्ध सिन्दूर एरण्ड बीज

—ये आध-आध पाव।

सफेदा काशगिरी राल तुत्थ

—ये तीनों ६-६ माशा।

निर्माण विधि—प्रथम तैल को एक कड़छी में गर्म करे फिर उसमें एरण्ड बीज डाल दे। जब एरण्ड बीज डालकर काले हो जायें तब उनको झरनी के द्वारा बाहर निकाल दे और फिर बाकी वस्तुयें मिला ले। एक जी हो जाने पर चाहे बत्ती बना लो चाहे यों ही डिब्बे में भर कर रख लें। हर

प्रकार के व्रण, फोड़े, फुन्सियों पर लाभप्रद है यह योग एक वृद्ध वैद्य की सेवा से प्राप्त किया था।

दर्दनाशक तैल—

साबुन सनलाईट	१॥ औंस
जल	५ औंस
कपूर	१ औंस
तैल तारपीन	१२ औंस

निर्माण विधि—प्रथम साबुन को बारीक चूर्ण करे, फिर उसे पानी में घोल ले, बाद में कपूर और तैल तारपीन मिला खूब हल करे। तीन दिन कार्क बन्द कर धूप में रख दे, प्रयोग करते समय शीशी को एक बार अच्छी प्रकार हिला ले। दर्द की जगह धीरे-धीरे मालिश करें।

मलेरिया पर—

फिटकरी लाल नवसादर गोदन्ती
—ये तीनों समान भाग।

—इनको लेकर एक सुन्दर साफ हांडी में बन्दकर एक पुट दे। शीतल होने पर खरल में पीसले।

मात्रा—४ रत्ती। आगे आयु के अनुसार। मलेरिया पर अनुभूत है।

कासनाशक योग—

काली मिरच	१ तोला
अनार का छिलका	४ तोला
एक वर्ष पुराना गुड़	८ तोला
पिप्पली जवाखार	६-६ माशा

—गुड़ खरल में डालदें और उसमें उपर्युक्त औषधियों के चूर्ण डालकर १॥-१॥ रत्ती की वटी बना लें। असाध्य कास भी इससे ठीक हो जाती है।

★★

समाचार एवं सूचनाएं

मध्यप्रदेश के स्वास्थ्य मंत्री—

मध्य प्रदेश के स्वास्थ्य मन्त्री माननीय कलमवारजी ने रायपुर आयुर्वेद कालेज, फार्मेसी और अस्पताल का निरीक्षण कर विद्यार्थियों से कहा कि आप लोग अध्ययन की ओर पूरा ध्यान दें। आपकी निष्ठा से आयुर्वेद को पुनः प्राचीन गौरव प्राप्त होगा।

उपराष्ट्रपति—उपराष्ट्रपति डाक्टर राधाकृष्णन ऋषिकेश गये थे। वहां काली कमली के क्षेत्र और आयुर्वेद विद्यापीठ की ओर से संस्कृत में मानपत्र दिया गया और विद्यापीठ की आयुर्वेद विश्वविद्यालय की योजना समझायी गई। आपने कहा कि आयुर्वेद का जो महत्व है वह अन्य किसी प्रणाली में नहीं है। इस समय देश को सतत शिक्षा से शिक्षित करना आवश्यक है। आयुर्वेद वर्तमान विद्वानों जैसा नहीं यह तो आरोग्य शास्त्र है। आयुर्वेद केवल शरीर की चिकित्सा ही नहीं करता विद्या बुद्धि और बल को बढ़ाने वाला है। प्राचीन ऋषियों ने आयुर्वेद को जो महत्व दिया है वह दूसरी पद्धतियों में नहीं मिल सकता।

बी० आई० एम० एस० एसोसियेशन—

बी० आई०एम०एस० असोसियेशन यू० पी० की वार्षिक रिपोर्ट। जिसके सभापति पं० योगीन्द्रचन्द्र शुक्ल और मन्त्री हकीम मुहम्मद सिद्दीकी थे। उसमें कहा गया है कि असोसियेशन के प्रयत्न से रजिस्टर्ड वैद्य और हकीमों को सलफाड्रग्स औषधियों और स्ट्रेप्टोमायसिन के प्रयोग का अधिकार मिल गया है। अन्य अंग्रेजी औषधियों का व्यवहार भी वे कर सकते हैं। असोसियेशन ने बोर्ड आफ इण्डियन मेडिसिन से कहा है कि बोर्ड के स्नातक हिन्दू युनीवर्सिटी की आयुर्वेदिक परीक्षाओं में परीक्षक नहीं बनाये जाते, अतएव बोर्ड की परीक्षा में हिन्दूयुनिवर्सिटी के स्नातक परीक्षक न बनाये जावें। असोसियेशन अपने काम में मुस्तैद है। असोसियेशन का अनुरोध है कि सब बी० आई० एम० एस० इसके सदस्य बनें।

बम्बई प्रदेश के वैद्य-हकीमों के प्रति

अहमदाबाद वैद्य-सभा के सभापति की ओर से सूचना मिली है कि, "बम्बई से भारतीय औषध प्रथा के रजिष्ट्रार [रजिस्ट्रार ऑफ इण्डियन सिस्टम ऑफ मेडिसीन] की सूचना है कि आयुर्वेद और यूनानी प्रथा के एक्ट १९३८ में रजिस्टर्ड हुए या एनलिस्ट हुए वैद्य-हकीम अपने रजिस्ट्रेशन को रिन्यू कराने के लिये ३१-१२-५४ से पूर्व ५ रु० रिन्युअल फीस रजिष्ट्रार आयुर्वेद और यूनानी तिब्बी सिस्टम ऑफ मैडिसन, एसप्लेनेड मेंशन, १४४ महात्मा गांधी-रोड, फोर्ट बम्बई को मनीआर्डर द्वारा भेज दें और प्रति ३ वर्ष के अन्तर पर सूचना मिले या न मिले इस प्रकार की रिन्युअल फीस उपर्युक्त तारीख का ध्यान रखकर प्रेषित कर दिया करें। इन मनीआर्डर पर अपना पूरा नाम पता तथा रजिस्टर या एनलिस्ट नंबर लिखना न भूलें। यदि किसी ने शासन की इस सूचना का अमल न किया तो रजिस्टर में से उसका नाम खारिज होने का पूरा पूरा भय है।"

आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति ही राष्ट्रीय प्रणाली घोषित हो

काशी वैद्य सभा का विशिष्टाधिवेशन स्वामी शीलस्वरूपानन्द के सभापतित्व में हुआ जिसमें सर्वसम्मति से यह मांग की गई कि सरकार द्वारा संचा-

लित एवं सम्मानित आयुर्वेद विद्यालयों में पाठ्य-क्रम एवं अध्यापन में आयुर्वेद को ही प्राधान्य दिया जाय, सरकार शुद्ध आयुर्वेदीय औषधियां प्राप्त होने की व्यवस्था करे, आयुर्वेदीय चिकित्सा पद्धति को राष्ट्रीय चिकित्सा पद्धति घोषित किया जाय तथा इसकी उन्नति के लिये केन्द्र और उत्तर प्रदेश में स्वतन्त्र मन्त्रालय या स्वतन्त्र विभाग स्थापित किया जाय।

इसके पश्चात काशी वैद्य सभा द्वारा नागपुर के श्री गोवर्धन शर्मा छांगाणी तथा बम्बई के श्री शिवशर्मा वैद्य का स्वागत महामहोपाध्याय श्री नारायण शास्त्री खिस्ते के सभापतित्व में किया गया। श्री छांगाणी ने आजकल के आयुर्वेदिक स्नातकों के आयुर्वेद सम्बन्धी अधूरे ज्ञान एवं उनके द्वारा की गई आयुर्वेद की अवहेलना की तीव्र आलोचना की।

श्री राजेश्वरदत्त शास्त्री ने अभ्यागतों का स्वागत करते हुए श्री छांगाणी तथा श्री शिवशर्मा का परिचय बताया।

सभापति श्री खिस्तेजी के भाषण के पश्चात् श्री लालचन्द्र वैद्य ने सबको धन्यवाद दिया।

यू० पी० मेडिकल कौन्सिल की हार

विशेष अनुमतियाचिका रद्द

नई दिल्ली, १६ अक्टूबर। सर्वोच्च न्यायालय की वैधानिक बेंच ने गत सोमवार को यू०पी० मेडिकल कौन्सिल, लखनऊ की अपील करने के लिये सर्वोच्च न्यायालय में प्रस्तुत की हुई उस विशेष अनुमति याचिका को रद्द कर दिया जो उसने डाक्टर डी० एन० केसरवानी के विरुद्ध प्रस्तुत की थी। डाक्टर केसरवानी प्रयाग में क्षय रोग अस्पताल के, जो एक सरकारी अस्पताल है, मेडिकल अफसर हैं।

डाक्टर केसरवानी ने अपनी प्रारम्भिक शिक्षा हरिद्वार स्थित गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय में प्राप्त की थी। वहां से उन्होंने सन् १६२८ में डाक्टरी की डिग्री प्राप्त की। यह विश्वविद्यालय यद्यपि देश की प्राइवेट शिक्षण संस्थाओं में बहुत ख्याति प्राप्त है, किन्तु चूंकि कुछ कारणों से इस संस्था ने न तो अपने आपको किसी अन्य विश्वविद्यालय से सम्बद्ध किया है और न यह संस्था किसी कानून के अन्तर्गत विश्वविद्यालय के रूप में रजिस्टर्ड है, अतः इस संस्था द्वारा दी हुई डिग्री के आधार पर मेडिकल प्रैक्टिशनर के रूप में रजिस्ट्रेशन प्राप्त करने की सुविधा नहीं रही है।

डाक्टर केसरवानी युद्ध काल में इटली चले गये थे और वहां उन्होंने रोम विश्वविद्यालय से एम० डी० की डिग्री प्राप्त करली थी।

उन्हें भुआली (नैनीताल) के क्षय रोग सैनिटोरियम में मेडिकल सुपरिण्टेण्डेण्ट की हैसियत से सरकारी नौकरी भी मिल गयी।

अचानक ही कुछ ऐसा हुआ कि मेडिकल कौन्सिल की विचारधारा पलट गई और उसने डाक्टर केसरवानी को २६ अप्रैल सन् १६४८ को एक पत्र लिखकर उनका भारत छोड़ने से पहले की योग्यता आदि के सम्बन्ध में कुछ प्रश्न पूछे। डाक्टर ने इस पत्र का समुचित उत्तर भेज दिया और अपने मूल सर्टिफिकेट भी भेज दिये।

इस पर मेडिकल कौन्सिल के रजिस्ट्रार ने रोम युनिवर्सिटी को यह पत्र लिख कर कि डाक्टर केसरवानी ने गलत और झूठ बात कह कर रोम के विश्वविद्यालय में भर्ती प्राप्त करली थी, उनकी एम० डी० की डिग्री को रद्द करा दिया।

इस पर डाक्टर केसरवानी से जवाब तलब किया गया कि चूंकि रोम युनिवर्सिटी ने आपकी एम० डी० की डिग्री को अब रद्द कर दिया है इसलिए आप कारण बतायें कि मेडिकल रजिस्टर से आपका नाम क्यों न हटा दिया जाय।

इस धमकी के कुप्रभाव से अपने आपको बचाने

के लिए डाक्टर केसरवानी ने प्रयाग उच्च न्याया-लय में एक समादेशयाचिका प्रस्तुत की थी। प्रयाग उच्च न्यायालय ने कई विद्वानों और डाक्टरों आदि की साक्षियों तथा राष्ट्रपति डाक्टर राजेन्द्रप्रसाद और उपराष्ट्रपति डाक्टर राधाकृष्णन की गुरुकुल कांगड़ी के शिक्षण स्तर आदि के सम्बन्ध में धार-णाओं से सहमत होते हुये यह मान्य किया था कि गुरुकुल कांगड़ी को केवल प्राचीन आयुर्वेद प्रणाली द्वारा शिक्षण देने वाली संस्था कहना गलत होगा। प्रयाग उच्च न्यायालय ने यह भी मान्य किया।

प्रिय वैद्य बन्धु वृन्द !

आयुर्वेदोविजयते। कतिपय विशिष्ट सज्जनों के सुझाव निर्देशपत्र आने पर कि परिपत्र संख्या ५ के अनुसार निर्वाचन और सम्मेलन कार्य शीघ्रता से होना सम्भव नहीं। अतएव पुनः विचार करने के लिए दि० २६-११-५४ को कार्यकारिणी समिति की बैठक वनस्पति भवन देहरादून में हुई। उसमें ये निश्चय किये गये।

(१) संशोधित नियमावली और नवीन मूल सदस्यों की सूची यथासम्भव शीघ्र प्रकाशित करने के प्रश्चात् सम्मेलनाध्यक्ष के निर्वाचन की तिथि निश्चित की जावे, जिससे कि सदस्यों को नियम जानने और सदस्य सूची अवलोकन करने की सुविधा प्राप्त हो सके।

(२) परिपत्र संख्या ५ में जनवरी मास के अन्त में सम्मेलन करने का निर्देश था परन्तु कतिपय कारणों से उसको अभी स्थगित किया जाता है। जिन स्थानों से निमन्त्रण प्राप्त हुए हैं उन स्थानों की सन्तोषजनक स्थिति जान लेने के अनन्तर आगामी अधिवेशन में इसका निर्णय किया जावे।

(३) संशोधित नियमावली को पूर्ण रूप से स्वीकृत कर प्रकाशित करने के लिये दिसम्बर मास के अन्तिम सप्ताह में कार्यवाहक समिति के अधिवेशन में प्रस्तुत किया जावे। (स्थान तिथि का० वा० स० सदस्यों को पृथक् सूचित की जावेगी।)

(४) उ० प्र० वैद्य सम्मेलन का लेखा न देने के विषय में द० नि० शर्मा पर जो बरेली में अभियोग चलाये जाने की वैधानिक व्यवस्था की जा रही है यह समिति उसका सहयोगपूर्वक समर्थन करती है और मेरठ में 'स० देवी' के चलाये हुये अभियोग को दृढ़ता तत्परता से लड़ने का निश्चय किया गया है।

(५) दिसम्बर के अन्त तक मूल सदस्य सूची पुस्तिकाकार रूप में प्रकाशित कर दी जावे तब तक और जो सदस्यों के नाम आजावें उनको स्वीकृत कर सम्मिलित कर लिया जावे। यह सूची वैद्य सभाओं को बिना मूल्य, अन्य सज्जनों को निर्धारित मूल्य पर दी जावे।

(६) नि० भा० आयुर्वेद महा सम्मेलन दिल्ली से निवेदन है कि उ० प्र० कार्यवाहक सम्मेलन सद-स्यता शुल्क का जो शेष धन १६४) संचित है यह राशि कार्यवाहक समिति संयोजक को देहरादून भेजने की कृपा करें जिससे कि उन स्थानों के और सदस्य स्वीकृत किये जावें।

(७) शोक प्रस्ताव--श्री. पं० गोकुलप्रसाद जी वैद्य लखनऊ और श्री. पं० कन्हैयाल जी जैन वैद्य कानपुर के देहावसान पर महान शोक,आत्मिक शांति, ईश्वर प्रार्थना तथा परिवार से हार्दिक समवेदना। हिन्दी तार द्वारा प्रेषित।

(८) अब तक मूल सदस्य संख्या १७५० हुई है। इस मास में इन सज्जनों ने सदस्य बनाने का विशेष प्रयत्न किया। एतदर्थ साधुवाद।

श्री० सीतावर पन्त (पूर्व प्रधान सम्मेलन)
श्री० लक्ष्मीनारायण शास्त्री, शामली।

श्री० रेवानन्द गौतम,
प्रधान जनपद वैद्यसभा, मुजफ्फरनगर।
श्री० देवीदीन बाजपेयी
प्रधान जनपद वैद्यसभा, बलिया।
श्री० महादेवप्रसाद पाठक मन्त्री प्रयाग।
श्री० हरिस्वरूप कुलश्रेष्ठ मन्त्री पीलीभीत।
श्री० ब्रह्मनारायण मिश्र
मन्त्री नागरिक वैद्य सभा, कानपुर।
श्री० सदस्यगण नगर वैद्य मण्डल, देहरादून।

परिपत्र संख्या ५ में निर्दिष्ट जनपदों की १० वैद्यसभाओं के प्रधान,मन्त्रियों ने सदस्य बना देने का प्रयत्न किया परन्तु अब भी ७-८ जिलों की स्थिति अतीव शिथिल होरही है। जिन जनपद वैद्य-सभाओं ने अपने कर्त्तव्य का पालन नहीं किया उनके लिये अब चौथा अवसर है कि आलस्य त्यागकर सङ्गठन सहयोग की भावना से शीघ्र सदस्य बना कर भेजें। नाम सूची प्रेस में दी जा रही है जोकि ३१ दिसम्बर तक छप जावेगी। विलम्ब करने से नाम अङ्कित न हो सकेंगे। ....आवश्यकता हो तो तुरन्त सूचित कीजिये सदस्यपत्रक भेजे जावेंगे।

(६) जो सज्जन २) व ३) रु० शुल्क भेज कर आयुर्वेद महा सम्मेलन देहली के द्वारा मूल सदस्य बने थे, उ० प्र० का० वा० समिति के सदस्य स्वीकृत हैं उनका एक रु० प्रति सदस्य प्राप्त हुआ है शेष शुल्क के अपने जिलों से सदस्य बनाये जा सकते हैं। इसके लिये आ० महा सम्मेलन दिल्ली को तुरन्त ही प्रेरित पत्र लिखिये जिससे कि शेष शुल्क प्राप्त हो सके। क्योंकि वह शुल्क उ० प्र० वैद्य सम्मेलन के लिये भेजा गया था अब सदस्य बढ़ाने के उपयोग में आना चाहिए।

१०—सावधान होकर नम्र निवेदन पर ध्यान दीजिये—

(क) यदि आयुर्वेद का उत्थान तथा वैद्य समाज का कल्याण चाहते हो तो परस्पर का ईर्षा, द्वेष, वाद-विवाद भ्रम सन्देह छोड़ कर संगठन कार्य में उत्साह पूर्वक सहयोग दीजिये।

(ख) जिन नगरों जिलों में दुर्भाग्य से दो-दो वैद्य सभायें हैं, अविलम्ब सद्भावना से उनका समन्वय कर एक-एक नगर, जनपद वैद्य सभा बनाकर परस्पर का कलह क्लेश शान्त कीजिये।

(ग) जिस-जिस नगर के वैद्य समाज की स्थिति असंगठित, विवादमयी, असन्तोषकारिणी हो वहां वैद्य सम्मेलन को बुलाने का प्रयत्न न किया जावे क्योंकि इससे वास्तविक उद्देश्य की सिद्धि न होकर परस्पर मनोमालिन्य बढ़ने की सम्भावना रहती है और समय शक्ति का व्यर्थ दुरुपयोग होता है।

(घ) अभी का० वा० समिति को अनेक विघ्न-बाधाओं से संघर्ष करना पड़ रहा है। मेरठ में अभियोग चल रहा है, कार्यालय के पुस्तक पत्र और ४५६६॥)॥ का लेखा कोष भी प्राप्त नहीं हो सका। प्रत्येक जनपद सभा संगठित होकर सहयोग देवें तभी पूर्ण रूप से सफलता प्राप्त होगी।

—अमरनाथ वैद्य संयोजक, वैद्यसम्मेलन देहरादून।

बम्बई स्वास्थ्य मंत्री से डेपूटेशन मिला—

अखिल भारतवर्षीय वैद्य हकीम कांग्रेस का एक डेपूटेशन ता० २३-११-५४ को श्रीमान् माननीय स्वास्थ्य व श्रम मंत्री श्री० शान्तीलाल जी शाह से मिला, उनके समक्ष निम्न मांगे पेश कीं—

कामगार बीमा योजना के अन्तर्गत आयुर्वेद एलोक्युशन कमेटी की जो स्थापना हुई है। उससे यहां के वैद्यों व हकीमों को बहुत ही असंतोष है।

(१) जो कमेटी में वैद्य प्रतिनिधि लिया गया है, वह वास्तव में वैद्यों का प्रतिनिधित्व नहीं करता है। व उस कमेटी में हकीमों का प्रतिनिधि नहीं लिया गया है।

(२) कई हकीमों व वैद्यों ने आपको पत्र भी दिये व स्वयं भी मिले, उन पत्रों को आपने मैडीकल ऐडमीनिस्टेटीव आफीसर के पास भेजा। पर उसका

कोई उत्तर नहीं। इससे हमें असंतोष है। यह किसके सामने व्यक्त किया जाय, यही हमारी समझ में नहीं आता है।

(३) हमें मालूम हुआ है कि बीमा योजना के अन्तर्गत कई वैद्य महानुभावों को ऐलोक्युशन कमेटी के मेम्बरों ने यह प्रश्न पूछा कि क्या आप अंग्रेजी जानते हैं। आगे यह भी कहा गया कि सरकार का कानून है कि अंग्रेजी जानने वाले वैद्यों को ही इसमें स्थान दिया जायगा। ऐसा कहकर कई विद्वान वैद्यों के प्रार्थना पत्र अस्वीकार कर दिये गये। इस विषय में ऐडमीनिस्टेटीव आफीसर को भी शिकायत की, कि क्या कोई ऐसा विधान है कि अंग्रेजी जानने वाले वैद्यों को ही इसमें स्थान दिया जायगा। फिर भी हम कह सकते हैं कि ऐलोक्युशन कमेटी ने यह प्रश्न करने के बावजूद भी कई ऐसे वैद्यों को लिया है, जो अंग्रेजी नहीं जानते। सरकार का यह कर्तव्य है कि ऐलोक्युशन कमेटी से इसकी जांच की जाय कि इस तरह का पक्षपातपूर्ण व्यवहार क्यों हो रहा है। अगर ऐसा कोई विधान नहीं है कि वैद्यों को बीमा योजना में शमिल होने के लिये अंग्रेजी का ज्ञान आवश्यक है तो ऐलोक्युशन कमेटी की खुली जांच हो व उसको गलत प्रश्न करने के लिये ऐक्शन लिया जाय।

(४) शुद्ध आयुर्वेद पाठ्यक्रम कमेटी का जो आपने निर्माण किया है, उससे वैद्यों व हकीमों को असंतोष है। वास्तव में ऐसी कमेटी का निर्माण गणतंत्र की पद्धति पर होना चाहिये। या यह कमेटी श्री जादवजी त्रिकमजी आचार्य जैसे के नेतृत्व में हो ताकि वास्तव में आयुर्वेद की कुछ सेवा हो सके।

(५) युनीवर्सल हैल्थ होम—

यह जान कर हमें खुशी है कि सरकार ने आयुर्वेद के उत्थान के लिये कुछ रकम अलग मंजूर की है। परन्तु वास्तव में अत्यन्त दुःख है कि यूनीवर्सल हैल्थ होम का कोई भी कार्य वैद्य व हकीमों के सामने प्रगट नहीं हुआ है। अतः ऐसी संस्था को देशी चिकित्सा पद्धति विभाग सम्बन्धी भिन्न-भिन्न संस्थाओं के प्रतिनिधियों के सहयोग से ही चलाया जाय। **

धन्वन्तरि

मार्च

१९५५

भाग २९ अङ्क ३

'धन्वन्तरि' से

(श्री० सरयूप्रसाद जी भट्ट 'मधुमय')

अन्तःसलिला तुम जग जीवन की बन जाओ।
ताप-तप्त जन मन में शान्ति अमर सरसाओ॥
वज आतप से दग्ध आज भव देखो आओ।
जन जन में नैरोग्य सतत बनकर तुम छाओ॥

हरित करो काया मधुर,
तुष्टि पुष्टि का दान दो।
ईति भीति भय नष्ट हों,
'मधुमय' नव नव प्राण दो॥

☆

स्पर्माटोजा की आत्मकथा

(लेखक-कविराज हरिकृष्ण जी सहगल, वागीची अलाउद्दीन, दहली)

मेरा नाम स्पर्माटोजा है हिन्दी में मुझे शुक्राणु कहते हैं। माइक्रास्कोप के नीचे जब वैज्ञानिकों ने मुझे देखा तो मैं वीर्य के तरल में इस प्रकार तैर रहा था, जैसे कि चीन के महामंत्री चू एन लाई द्वारा, भारत के प्रधानमंत्री श्री नेहरू को भेंट की जाने वाली सुनहरी मछलियां कंटर के जल में तैर रही थीं।

मेरा कद कोई बड़ा नहीं होता, मेरी लम्बाई १/६०० से १/४०० इञ्च तक होती है। और शिर मोटा तथा शरीर वेलनाकार लम्बा होता है। मैं इतना छोटा नन्हा प्राणी, और जब गर्भाशय में बढ़ता हूं तो यह लम्बाई कई इञ्च होजाती है, और जब गर्भाशय से बाहर आकर बढ़ता हूँ तो पांच फुट होजाती है, मैं एक नन्हा इन्सान हूँ।

मेरा अभाव होता है। ब्रह्मचर्य-विहीन व्यक्तियों तथा स्वप्नदोष प्रमेह के शिकार प्राणियों के वीर्य में, मैं निर्बल रहता हूँ, मेरा जन्म-स्थान अण्डकोष हैं। शिश्न के नीचे थैली में दो अण्डकोष, इनमें अण्ड (Scrotum), उपाण्ड (Epididymis) और शुक्रप्रणाली (Seminal Tube) का निचला भाग होते हैं। मेरा वास्तविक घर यह अण्ड है। इन अण्डों में बहुत लम्बी रक्त-वाहनियां हैं, यहीं वीर्य भी बनता है और मेरे मिलने से पूर्ण होता है।

यह अण्ड शरीर का बहुत महत्वपूर्ण अङ्ग है। एक बार इन्द्र ने गौतम ऋषि की स्त्री अहल्या से व्यभिचार किया, तो गौतम ऋषि ने इन्द्र के अण्डकोषों को काट दिया था और बाद में देवताओं के वैद्यराज
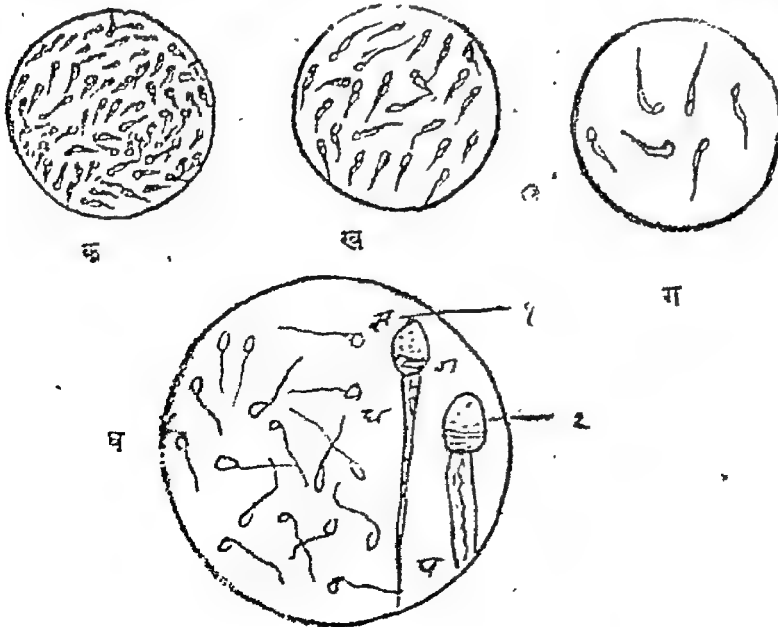
शुक्राणु

(क) युवा का वीर्य
(ख) वयस्क का वीर्य
(ग) वृद्ध का वीर्य
(घ) १–(स)-जीव का शिर
(ग) जीव का ग्रीवा
(ध) जीव का धड़
(प) जीव की पूंछ
२—जीव का आंतरिकरूप

परन्तु मैं प्रत्येक वीर्य में नहीं होता, नपुंसकों और सुजाक रोग से पीड़ित व्यक्तियों के वीर्य में

अश्विनीकुमारों ने जो नित्य कमल की माला पहने रहते हैं, मेढ़ के वृष्ण लगाकर इन्द्र को मर्द

बनाया था।

वैज्ञानिकों का कहना है कि इन अण्डों के शक्तिशाली रहने से ही रूपलावण्य, तरुणता और दीर्घजीवन होते हैं। बचपन की असावधानियों, अत्यधिक कामसेवन से यह अण्ड छोटे रह जाते हैं, इनकी कार्यशक्ति क्षीण होजाती है और स्वास्थ्य तथा तरुणता विदा होजाते हैं।

बुद्धिमान पुरुष सर्वदा इन अण्डों की शक्ति बढ़ाने में तत्पर रहते हैं। ब्रह्मचर्य, संयम, रसायन वाजीकरण औषधियों का सेवन सभी इसी हेतु से किये जाते हैं।

मेरा सुन्दरतम शिशुकाल इसी अण्ड की अन्धेरी रक्तवाहनियों में बीता है, जब मैं पक्वावस्था को पहुंच गया तो मुझे कभी कभी उष्णता का अनुभव होने लगा। पहले कई बार तो मैंने उष्णता को झेल लिया परन्तु एक दिन अचानक यह उष्णता असह्य हो गई। मैं पागलों की तरह से नाचने लगा और धीरे धीरे एक तरल में पहुँच गया, जिसमें दो अढ़ाई करोड़ मेरे भाई तैर रहे थे। आपकी दुनियां वाले इस तरल को वीर्य कहते हैं।

यह तरल मुझे एक लम्बी नली में से, जिसे आप वीर्यप्रणाली का नाम देते हैं, शुक्राशय में ले गया। यह दो थैलियां होती हैं। इनकी लम्बाई लगभग २ इञ्च होती है। यहां पर बहुत मुसीबत आई। मैं आपको बता चुका हूँ कि गरमी के बढ़ने से मैंने घर को छोड़ दिया था। अब जिस तरल में मैं था, वह भी उष्ण से उष्णतर होता चला गया। और ग़ज़ब खुदा का, इसके अतिरिक्त भूचाल के झटकों की तरह के बहुत से झटके भी आरहे थे।

हम लोगों ने शीघ्र ही शुक्राशय को छोड़ दिया अब एक और तरल हम में सम्मिलित हो गया, यह प्रोस्टेटिक ग्रंथि का स्राव था, इसके बाद हम कुछ खुले मार्ग में प्रविष्ट हुए, यह मूत्रमार्ग था।

इस मूत्रमार्ग को पार करने के बाद हम एक गुफा में गिर गये। हमारे गिरने के स्थान पर एक गरम जल था। इस गुफा की दीवारें सुकड़ने और फैलने वाली थीं। अब भूचाल के धक्के थम चुके थे और हम प्रसन्नता से गुफा के तरल में गति कर रहे थे।

इस गुफा के तरल में बहुत सुगंधि थी। इस सुगन्ध को पाकर हम इसी प्रकार हर्षित हो उठे, जैसे बैल, कुत्ता, सिंह, बकरा आदि मादह की योनी के पास थूथनी लेजाकर, कुछ सूंघने पर हर्षित हो उठते हैं। यह सुगन्ध प्रत्येक युवती के युवाकाल आने पर उत्पन्न होती है। और विशेष जाति पद्मिनि में अधिक पाई जाती है, स्त्रियां इस रहस्य को जानते हुये ही सुगन्धियों का बहुत व्यवहार करती हैं। वह पुष्पों के आभूषण पहनती हैं। सुगन्धित द्रव्यों को तैलों और उबटनों में डाल कर प्रयोग करती हैं।

इस सुगन्ध से हमारी कामेन्द्रियां जागृत हो गई हमें इस गुफा की प्रत्येक वस्तु सुन्दर दृष्टिगोचर होने लगी, और हम बहुत काल तक इस गुफा के दलदल में, किनारे तक पहुँचने के लिये रींगते रहे।

परन्तु एक बात मैं बतादूं कि सर्वदा ही हमारे साथ ऐसा नहीं होता, कभी कभी व्यर्थकण्ट्रोल अर्थात परिवार नियोजन के समर्थकों से भी पाला पड़ जाता है। इस गुफा में नीमतैल की तेज बू हमें मार देती है। कई स्त्रियां कुनीन के योगों को इस भाग में लगा रखती हैं, यह भी हमारे लिये मृत्युकारक होते हैं।

हम अपनी व्यथा क्या कहें, कभी सब ठीक होता है। परन्तु स्त्रियां सम्भोग के पश्चात् पोटाशियम परमेंगनेट लोशन, व कुनीनसल्फेट लोशन तथा स्फटिका-बोरिक लोशन से प्रक्षालन कर हमें मृत्यु की निद्रा सुला देती हैं। हमारी नन्हीं सी जान होती है, उसे भी मारने के लिये विज्ञान का सहारा लिया जारहा है।

मैं कह रहा था कि दलदल में हम किनारे तक पहुँचने के लिये रींगते रहे, आखिर हम किनारे पर पहुंच गये। यहां हमारी संख्या बहुत अल्प रह गई

थी। हमारे स्वजनों की लाशें थीं और सामने एक महराब थी। इस महराब के नीचे एक द्वार था और उसमें एक सुरंग थी, इसी सुरंग को आप फलेपियन ट्यूब कहते हैं।

मैं और मेरे कुछ प्रतिद्वन्दी इस सुरंग में प्रविष्ट हुये और तेजी से एक दूसरे से आगे बढ़ने लगे, मैं इस दौड़ में जीत गया और अपनी प्रेमिका डिम्ब के निकट पहुंच गया। आइये अब आपका परिचय डिम्ब से करा दिया जाये।

गर्भाशय के दोनों किनारों पर दो ग्रंथियां होती हैं। इन्हें डिम्बग्रंथियां (ओवरीज्) कहते हैं। इन डिम्बग्रंथियों से एक नाली गर्भाशय में आकर खुलती है,इन नालियों को फलेपियन ट्यूबज् कहते हैं। इन ओवरीज में ऐवा (डिम्ब) होते हैं। इनकी संख्या साठ हजार होती है, प्रति मास एक डिम्ब नाली में आता है और उसके मेरे साथ मिलने से गर्भ स्थिति होती है।

आप जानते हैं कि स्त्रियों में पुरुषों की उपेक्षा अधिक कामाग्नि होती है। यह डिम्ब अपना कुमार-पत्र लिये जब डिम्बप्रणाली में प्रवेश करती है तो इसे भी मुझे प्राप्त करने की भारी इच्छा होती है। यह डिम्ब नोरवेज कोयल की तरह चंचलता के साथ लजाती और लचकाती हुई, गर्भाशय की ओर बढ़ती है। और मैं भी ब्यूटी क्वीन के दर्शनों के लिये शीघ्रता से उसकी ओर बढ़ रहा होता हूं। यह मुझे देखकर दो प्रेमियों की तरह आंख मचौनी का खेल खेलने लगती है। कभी निकट आ जाती फिर तेजी से दूर रह जाती है, कभी दूर रहने के लिये प्रेरणा करती और कभी मेरे प्रेम का इकरार करती है, अन्त में मैंने उसे दबोच लिया अपने बाहुपाशों में कस लिया।

परन्तु ऐसा भी सर्वदा नहीं होता। कुछ स्त्रियां बांझ होती हैं, उनमें डिम्ब होती नहीं, हमारी दौड़-धूप निष्फल होती है, कभी पलाशबीज चूर्ण व स्लियों तथा [illegible] का सेवन कर [illegible] हमारी प्रेमिकाओं का अन्त कर देती हैं। और कभी तो यह फिलेपियन ट्यूब बन्द होती है, इसमें कारण बर्थकण्ट्रोल के लिये शस्त्र-चिकित्सा होता है। और स्त्रियों की मीनापोजस्टेज, ऋतुनिवृति के बाद हमारी कभी डिम्ब से भेंट नहीं होती।

तो जब मैंने डिम्ब को बाहुपाशों में कस लिया तो वह भी मेरे से लिपट गई। जीवन भर मेरे से जुदा न होने का उसने इकरार किया। उसकी युवावस्था, सौन्दर्य और व्यवहार प्रसन्नतादायक देख कर मैंने उससे गन्धर्व विवाह कर लिया, वह मेरी और मैं उसका होगया। इसके बाद हनीमून आरम्भ हुआ। हम रंगरलियां मनाते हुए गर्भाशय में पहुंचे क्योंकि यह क्षेत्र मेरा देखा हुआ था हम गर्भाशय के मखमली फर्श के एक स्थान से चिपक गये। दोनों दो जान और एक कालब थे। कोई हमारे प्रेम में बाधा डालने वाला न था। हम यहां पूरे नौ मास तक रहे।

यह नौ मास निवास की एक अलग कहानी है। इसे बहुत लोग जानते हैं, क्योंकि हमारी प्रेम कथा का पहला भाग सर्वसाधारण को विदित नहीं, इस लिये मैंने जीवन की आरम्भिक प्रेम कथा को आपके सामने रख दिया है।

आन्त्रिक ज्वर (TYPHOID FEVER)

लेखक—पं० बनवारीलाल शर्मा वैद्य, अध्यक्ष दि हिन्दरिसर्च लेबोरेटरीज, झांसी।

यह रोग ज्वरप्रकरण में सन्निपात ज्वर के भेदों में से एक है, वातपित्तप्रधान होकर यह ज्वर आरम्भ होता है।

(१) इसकी ११ दिन, २१ दिन अथवा ४० की अवधि होती है, अतः इसके नाम मियादी-बुखार या मुद्दती ताप भी प्रचलित है।

(२) इस ज्वर के द्वितीय सप्ताह में कण्ठ से लेकर नाभिपर्यन्त मोती के समान चमकदार छोटे छोटे दाने निकल आते हैं उन मोती के समान दानों के कारण इस रोग का नाम मोतीझरा भी पड़ गया है।

(३) इस ज्वर में अनियमित आहार विहार से सेंद्रिय विषदूषित होकर आंतों में विकृति उत्पन्न कर देता है, जिससे आंतों में शोथ होजाता है और वे अपना कार्य करना बंद सा कर देती हैं, पाचन-क्रिया बिगड़ जाती है पेट में भारीपन और दर्द रहने लगता है, कुछ बद्धकोष्ठता तथा अतिसार भी होने लगता है, जिह्वा पर सफेदी सी जम जाती है किन्तु जिह्वा के किनारे गुलाबी से ही रहते हैं। यह इस ज्वर की तीसरी पहिचान है जो आंतों से सम्बन्ध रखती है। इन कारणों को लेकर इस ज्वर को आन्त्रिक ज्वर की संज्ञा दी गई है।

कारण—अधिक चलने फिरने से अनियमित खान-पान से, बासी अन्न खाने से तथा रात्रि में जागरण करने से प्रायः यह ज्वर होजाता है।

प्रथम सप्ताह में जब यह ज्वर प्रारम्भ होता है तो २४ घण्टों में कभी नियमित तापमान अर्थात् नारमल ९८'४ डिग्री नहीं आता, ९९° या १००° से कम नहीं होता, आंखें भारी तथा कुछ मैलापन लिये रहती है, सिर में पीड़ा रहती है, जमुंहाई बार बार आती हैं तथा सम्पूर्ण शरीर में दर्द सा बना रहता है, पेट भारी रहता है तथा भोजन में अरुचि होजाती है।

कभी-कभी आरम्भ में यह ज्वर पसीना देकर उतर जाता है और ९८'४ डिग्री तक उतरकर फिर बढ़ जाता है। ऐसी अवस्था में मियादी होते हुए भी कुछ लक्षण विषमज्वर के होजाते हैं। चिकित्सक को चाहिए कि रोगी की ऐसी अवस्था में प्रथम विषमज्वर पाचनार्थ औषधि दे, तत्पश्चात् आन्त्रिकज्वर की चिकित्सा आरम्भ करे। इस ज्वर में यदि सावधानी रखी जावे तथा रोगी प्रारम्भ से ही किसी योग्य वैद्यकी चिकित्सा में रहे तो बिना किसी

उपद्रव के यह ज्वर शान्त होजाता है। यदि तनिक भी असावधानी हुई या चिकित्सा में किसी योग्य चिकित्सक का सहयोग न लिया गया तो उपद्रव बढ़ जाते हैं और रोगी पूर्ण सन्निपातज्वर से ग्रसित हो जाता है।

सावधानी—साधारणतया इस ज्वर में रोगी को अधिक दस्त न होने दें, अर्थात् तीव्र अतीसार से रोगी को बचावें। तीव्र वायु से भी रोगी की रक्षा करे। अच्छी प्रकार से उबालकर शीतल किया हुआ जल पिलावें। रोगी को इस ज्वर में अन्न देना वर्जित है। इतनी बातें ध्यान में रखते हुए निम्न औषधि देना चाहिए—

सोंठ, चिरायता, नागरमोथा, पित्तपापड़ा और गिलोय इन सबको समभाग लेकर शास्त्रोक्त विधि से क्वाथ तैयार करें और रोगी की आयु और बल के अनुसार हर ४ घंटे पर प्रतिदिन ४ मात्रा तक देता रहे। आंत्रिकज्वर में यह क्वाथ पूर्ण लाभप्रद सिद्ध हुआ है। जब आंत्रिकज्वर बिगड़ जाता है और रोगी पूर्ण सन्निपात से ग्रसित होजाता है उस समय चिकित्सक को किस प्रकार चिकित्सा करनी चाहिए, यह विवरण एक रोगी का सही उदाहरण देकर यहां लिखा जा रहा है ताकि चिकित्सक बन्धु उसे भली-प्रकार समझ सकें।

रोगी की आयु १६ साल १० वीं कक्षा का विद्यार्थी। रोगकाल अक्टूबर ५२, रोगी को प्रारम्भ में शीत लगकर ज्वर हुआ, उसकी आंखों में जलन, सिर भारी तथा कोष्ठबद्धता थी, इस कारण "एलोपैथिक डाक्टर" ने पेट साफ करने वाली औषधि देने के बाद कुनाइन मिक्चर दिया किन्तु रात्रि को रोगी जब अत्यधिक बेचैन रहा, उसे नींद नहीं आई और ज्वर का वेग कम होने की अपेक्षा और अधिक बढ़ गया तथा जब रोगी ने इधर-उधर की बातें बकना शुरू किया तब उसके घर वालों ने किसी प्रकार धीरज रखकर बड़ी कठिनता से रात व्यतीत की प्रातः होते ही रोगी को एक दूसरे अनुभवी डाक्टर को दिखलाया गया। डाक्टर महोदय ने कहा कि इसको जो रोग है उसकी चिकित्सा तो रक्त-परीक्षण करने के बाद ही की जायेगी किन्तु इस समय रोगी की जो दशा है उससे यही प्रतीत होता है कि इसके मस्तिष्क में गर्मी चढ़ गई है अतः दिन भर में रोगी को कम से कम १२ मोसम्बी का रस ग्लूकोज़ मिला मिलाकर पिलाओ और माथे पर बर्फ के पानी की पट्टी या बर्फ से भरी हुई रबर की थैली रक्खो। जब तक कि ज्वर १०१ डिग्री तक न आजाये तथा जो औषधि मैं देता हूं उसे नियमपूर्वक पिलाओ। रोगी के घर वालों ने डाक्टर महोदय को उनकी फीस देकर विदा किया और पड़ोस के समझदार व्यक्तियों की सम्मति से यह निश्चय किया कि रोगी को सन्निपात ज्वर हो गया है अतः किसी योग्य वैद्य की चिकित्सा में इसे रखना नितान्त आवश्यक है।

इस निर्णय के अनुसार एक वैद्य जी को बुलाया गया। वैद्य जी ने रोगी को देखकर कहा कि इसे आंत्रिक ज्वर होगया है साथ ही साथ कुछ कफ की वृद्धि हो जाने से इसकी संज्ञा सन्निपातज्वर की हो गई है। उन्होंने निम्न औषधि देना प्रारम्भ किया।

स्वच्छन्दभैरव रस	आधी रत्ती
शृंगभस्म	२ रत्ती
कस्तूरीभैरव लघु	१ रत्ती
अभ्रकभस्म साधारण	१ रत्ती

इन सबकी १ मात्रा बनाकर हर ४ घण्टे पर; एसी १-१ मात्रा मधु के साथ दी जाने लगी।

रात्रि में रोगी को कुछ शिथिलता सी आ जाती थी। उस समय के लिये उन्होंने—

जवाहरमोहरा पिष्टी	आधी रत्ती
मुक्ता पिष्टी	आधी रत्ती
अभ्रकभस्म	आधी रत्ती

इसकी १ मात्रा बनाकर रात को १२ बजे और इस प्रकार की दूसरी मात्रा रात्रि को ३ बजे देने का आदेश दिया। ६ दिन तक वैद्य जी ऊपर के योगों

को ही थोडा बहुत फेर--बदल करके देते रहे किन्तु रोगी को कोई विशेष लाभ न हुआ। प्रत्युत कुछ उपद्रव बढ़ते हुए प्रतीत हुए तब उसकी चिकित्सा करने के लिये मुझे बुलाया गया उस समय रोगी की जो दशा थी वह निम्न प्रकार है'—

रोगी पूरी तरह सन्निपात से आक्रांत था वह घर के तथा बाहर के किसी भी व्यक्ति को नहीं पहिचान सकता था कफयुक्त कास तथा श्वासोच्छ्वास अधिक था, नेत्र मैले तथा कुछ लाली लिये थे, शय्या से उठ-उठ कर भागता था कभी कहता था दूकान जाता हूँ कभी कहता था कालेज जाता हूं कभी यह कहता हुआ कि मेरी माँ बहुत अच्छी थी, उनका स्वर्गवास हो गया है, वह रोने लगता था। यद्यपि उसकी माता जीवित थीं और उसी के समीप उपस्थित रहती थीं, इत्यादि कई प्रकार की बातें बका करता था नींद अह-र्निश कभी भी न आती थी। मोतीझरा के दाने कुछ कंठ पर थे तथा कुछ वक्ष पर। ऐसी अवस्था में जो औषधि रोगी को दी गई वह इस प्रकार है–

बृहत् कस्तूरीभैरवरस	१/२ रत्ती
महावातविध्वंसन रस	१ रत्ती
शृङ्गभस्म	२ रत्ती
अभ्रकभस्म सहस्रपुटी	½ रत्ती
तुलसीपत्र	२ नग
बच मीठी	१ रत्ती
ब्राह्मी	२ रत्ती

—इन सबको पीसकर अदरख स्वरस तीन माशा मधु ३ माशा में मिलाकर चटाना प्रारम्भ किया। ऐसी १-१ मात्रा हर घंटे के बाद रात्रि में तथा हर घण्टे बाद दिन में देना प्रारम्भ किया। पीने के लिये पंचभद्रअर्क हर ४ घंटे पर १-१ तोला मधु मिलाकर दिया जाने लगा।

निद्रा लाने के लिये रात्रि को ६ बजे बकरी के २ तोला दूध में २ माशे भांग की पत्ती पीस कर रोगी के पैर के तलुवों में धीरे-धीरे मर्दन करने को कहा गया। इस उपचार से उसे नींद भी आने लगी।

३ दिन चिकित्साक्रम इसी प्रकार चलता रहा और रोगी की दशा बहुत संतोषजनक होगई। चौथी रात्रि को उसकी दशा अचानक बिगड़ गई उसको जब मैंने जाकर देखा तो तापमान १०४ डिग्री था किन्तु नाड़ी की गति क्षीण होने के कारण १०० या १०१ के समान प्रतीत होता था।

उस अवस्था में रोगी का उठ-उठ कर भागना अधिक था, श्रवणशक्ति तो उसमें रोग के प्रारम्भ से ही कम थी फिर भी चिल्लाकर उससे कोई बात पूछने पर वह उसका उत्तर क्रोधित होकर अपशब्दों में देता था। इस दशा को देखने पर उसके घर वालों तथा सम्बन्धियों को प्रतीत हुआ कि दवा अधिक गरम है इस कारण इसके मस्तिष्क पर गर्मी चढ़ जाने से इसकी यह दशा है। उन्होंने यह शंका मेरे सामने भी रक्खी मैंने उसके कहने पर विशेष ध्यान न देकर केवल पंचभद्रअर्क की दुगुनी मात्रा करदी जिससे ज्वर में कुछ न्यूनता आगई और कफ भी कुछ शमन होगया। अब मैंने सहस्रपुटी अभ्रक की अपेक्षा साधारण अभ्रक उपरोक्त योग में बदल दिया, रोगी की दशा सप्ताह में संतोषजनक होगई।

कफ का शमन संतोषजनक होगया फिर रोगी को एक दिन अधिक बेचैनी हुई। वह बार बार यही कहता कि मेरे पेट में भारीपन है, मुझे कोई ऐसी औषधि दो जिससे पेट का मल निकल जावे। रोगी का पेट दबाने से मल की गांठें स्पष्ट प्रतीत होती थीं सवेरा होते ही रोगी की गुदा में ग्लिसरीन की बत्ती लगाई गई और उसे शौच के लिये बिठलाया गया दुर्बलता अधिक होने के कारण उसे चक्कर सा आ गया और माथे पर कुछ पसीना की बूंदें दिखलाई दी और जो ग्लिसरीन की बत्ती लगाई गई थी वह बाहर निकल आई। उसकी अवस्था कुछ शिथिल देखकर उसे शैय्या पर लिटा दिया गया और अभ्रक भस्म ½ रत्ती प्रवालचंद्रपुटी १ रत्ती पिप्पलीचूर्ण मधु के साथ १-१ घण्टे में दो मात्रायें दी गई। देने से रोगी में चेतन्यता आगई किन्तु मल न निकलने

के कारण उसकी बेचैनी तथा पेट के दर्द में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। तब ग्लिसरीन का एनिमा देने वाली सिरिंज में २ औंस साधारण ग्लिसरीन भर-कर गुदामार्ग द्वारा रोगी के पेट के अन्दर प्रविष्ट कर दिया गया। ग्लिसरीन अन्दर जाने के ५ मिनट बाद ही रोगी ने कहा मुझे जल्दी बैठा दो मेरा मल निकलने वाला है। वह इतना दुर्बल था कि बैठने से उसकी हालत बिगड़ने का अंदेशा था इस कारण खटिया पर ही पैरों की तरफ को उसे खिसका दिया गया और एक आदमी ने सावधानी से उसे बैठने के समान कर दिया। १० ही मिनट के अन्दर छोटी बड़ी करीब १२-१४ गांठें निकलीं, इससे पेट तो हल्का हो गया किंतु रोगी का शरीर शीतल पड़ गया उसे पसीना आगया तथा कुछ मूर्छा के चिन्ह दिखाई देने लगे। ऐसी अवस्था में उसे निम्न औषधि दी गई—

छोटी पीपर भूनी हुई	१ नग का चूर्ण
अभ्रकभस्म सहस्रपुटी	आधी रत्ती
मृतसंजीवन सुरा	१० बूंद

१ चम्मच गाय के दूध में मिलाकर रोगी को पिला दी गई। कुछ ही काल बाद रोगी की दशा सुधर गयी। उसके पश्चात २ मात्रा हर ४ घंटे के बाद निम्न औषधि दी गई—पीप्पलीचूर्ण १ नग अभ्रकभस्म आधी रत्ती पूर्णचन्द्रोदय ½ रत्ती मुक्ता-पिष्टी आधी रत्ती मधु के साथ दी गई जिससे रोगी को अधिक लाभ हुआ।

यह ध्यान रखने का विषय है कि ऊपर का उप-चार केवल उपद्रव शांत करने के लिये आवश्यकता पड़ने पर किया था जैसा नियम भी है। बृहद् कस्तूरी भैरव महावातविध्वंशरस, शृंगभस्म, ब्राह्मी, बच आदि का उपरोक्त योग का क्रम यथापूर्व चलता रहा तथा पंचभद्रक्वाथ भी साथ साथ चलता रहा।

१८ वें दिन रोगी की दशा आधी सुधर गई २२ वें दिन रोग शमन होकर पित्त जागृत हो गया कफ पूर्णरूपेण पच गया, रोगी की बेहोशी समाप्त हो गई। वह खाने के लिये आग्रह करने लगा अभी उसको थोड़ा ज्वर रहता था इस कारण अन्न नहीं दिया गया और ऊपर वर्णित औषधियां आधी मात्रा में दी जाने लगी। अदरख का रस बिल्कुल हटाकर केवल मधु के साथ औषधि देने का क्रम रक्खा। २५ वें दिन ज्वर प्रातःकाल ९८° तथा रात्रि को ९७½° रहा, २६ वें दिन सुबह ९७½° तथा रात्रि को भी इतना ही रहा। नाड़ी की गति भी बिल्कुल हलकी चाल में पित्त प्राधान्यता दर्शाने लगी। नेत्रों का वर्ण बिल्कुल ठीक हो गया, जिह्वा पर से सफेदी हट गई। सब लक्षण रोगमुक्ति के देखकर २७ वें दिन पंचकोल की पोटली डालकर मूंग की छिलके वाली दाल बनाकर उसको कपड़े से छानकर रसमात्र रोगी को पिलाया गया। इस प्रकार २ दिन पंचकोल और दाल का पानी देने के बाद तीसरे दिन बगैर छनी हुई दाल और चौथे दिन प्रातःसायं दाल दी गई पांचवें दिन सुबह दाल में फुलके के ऊपर की पपड़ी दी गई और शाम को केवल १ कटोरे भर दाल दी गई, ३२ वें दिन दोनों समय दाल और फुलकी दी गई फिर कुछ शाक भी दिया जाने लगा। इस प्रकार धीरे-धीरे भोजन की मात्रा में वृद्धि कर दी गई। जिस दिन से रोगी को सुबह दाल और फुलकी देना आरम्भ किया उसी दिन से दोपहर को बकरी का दूध उबाल कर थोड़ी चीनी मिलाकर समशीतोष्ण दिया जाने लगा। ४५ वें दिन रोगी को नीम की पत्ती डालकर उबाले हुये समशीतोष्ण जल से रोग मुक्त स्नान कराये गये अब रोगी बिल्कुल नीरोग हो गया। केवल दुर्बलतानाशक निम्न योग उसे देना आव-श्यक समझा—

मुक्तापिष्टी	½ रत्ती
प्रवालभस्म चन्द्रपुटी	१ रत्ती
वंशलोचन पिष्टी	२ रत्ती
सितोपलादि चूर्ण	२ माशा
वर्क चांदी	१ नग

मधु के साथ दिन में २ बार चाटने को दिया गया। भोजन के बाद दिन में २ बार १-१ तोला लोहासव समभाग जल मिलाकर पिलाया जाता था।

विशेष नोट—कभी-कभी मोतीझरा से पीड़ित रोगी को पतले दस्त लग जाते हैं तथा प्रायः रक्तातिसार हो जाता है ऐसी दशा में चिकित्सक को बड़ी सावधानी से चिकित्सा करनी चाहिये। रक्तातिसार में निम्न योग अति लाभप्रद एवम् शतशोनुभूत है—

रक्तातिसारनाशक योग

कर्पूररस	½ रत्ती से १ रत्ती तक
कहरवा समई पिष्टी	१ रत्ती
वंशलोचन पिष्टी	२ रत्ती
खूनखराबा चूर्ण	२ रत्ती
छोटी इलायची	१ रत्ती
शंखजराव पिष्टी	१ रत्ती
माजूफल चूर्ण	१ रत्ती

एक मात्रा, ३ माशा मधु या चम्मच भर गाय के दूध में मिलाकर दो बार से तीन बार तक रोग की अवस्थानुसार देने से निश्चय लाभ होता है। यदि दस्त में रक्त न आ रहा तो उपरोक्त योग में से कहरवासमई पिष्टी, खूनखराबा चूर्ण और माजूफल चूर्ण प्रथक करके शेष योग देने से लाभ होता है।

आन्त्रिकज्वर में रोगी को कफ की अधिकता, श्वसनक, अतिसार, रक्तातिसार दिल की धड़कन, प्रस्वेदाधिक्य तथा नाड़ी की गति अत्यन्त क्षीण होना ये उपद्रव यदि रोग की स्थिति में आ जाते हैं तो रोग कष्टसाध्य एवं असाध्य भी बन जाता है। इस कारण जहां तक हो सके चिकित्सक उपरोक्त उपद्रवों से रोगी को सदा बचाता रहे अर्थात् अपने भरसक प्रयत्न से ये उपद्रव न आने दे और उपद्रव आ भी जावे तो बड़ी सावधानी से उनकी चिकित्सा करे।

आंत्रिकज्वर में यकृत और प्लीहा विकृत हो जाते हैं जिस समय आंत्रिकज्वर के सब दोष शमन हो जाते हैं और रोगी को पथ्य देना होता है उस समय चिकित्सक को रोगी की प्लीहा को विशेष रूप से देख लेना चाहिये। यदि प्लीहावृद्धि हो तो रोगी के भोजन का विशेष ध्यान रखना चाहिये।

कभी कभी ऐसी अवस्था में रोगी गरिष्ट भोजन कर लेता है जिससे उसको पुनः ज्वर आ-घेरता है और फिर से सेन्द्रिय विषदूषित होकर आंत्रिक ज्वर के पूर्ण दोष प्रकुपित न होने पावे इसका ध्यान रखते हुए अत्यन्त सावधानतापूर्वक उपरोक्त पंचभद्र-क्वाथ का सेवन कराते हुये प्लीहानाशक सौम्य योग देना प्रारम्भ करदे। इस दशा में तीव्र विरेचक औषधि देना वर्जित है।

आंत्रिकज्वर के प्रारम्भ में चिकित्सा का जो क्रम वर्णित है तदनुसार चिकित्सा करने से लाभ होगा। आहार विहार का ध्यान तब तक पूर्ण रूप से रखे जब तक कि यकृत प्लीहा की क्रिया नियमित न हो जाय। उपरोक्त बातों को ध्यान में रखकर तथा धन का मोह छोड़कर जो चिकित्सक कठिन से कठिन चिकित्सा में प्रवृत्त होते हैं वे भगवान श्री धन्वन्तरि की अनुकम्पा से चिकित्सा में पूर्ण सफलता प्राप्तकर यशोभागी बनते हैं।

आंत्रिकज्वर में बृहदकस्तूरी भैरव का विशेष महत्व है। इसके द्वारा आन्त्र में एकत्रित हुये सेन्द्रिय विष शमन हो जाते हैं और रोगी शीघ्र ही पूर्ण स्वस्थ हो जाता है।

अनुभव लिख भेजें

यदि आपने किसी कष्टसाध्य रोगी की सफल चिकित्सा की है तो उसका पूरा विवरण तथा जो चिकित्सा की है वह सभी कुछ, लिखकर धन्वन्तरि में प्रकाशनार्थ भेजें।

अर्श की प्राकृतिक चिकित्सा

(लेखक---श्री. गणेशदत्त "इन्द्र" आगर ।)

अर्श को बवासीर भी कहते हैं। सर्वसाधारण में इसे "मस्से" की बीमारी कहा जाता है। यह रोग मनुष्य की गुदा इन्द्रिय के मुख पर होता है। गुदा के आस पास चारों ओर मस्से होजाते हैं। यह दो प्रकार का माना गया है (१) बादी और (२) खूनी। गुदा के मुख पर होने से मलोत्सर्ग के समय बड़ा कष्ट होता है। यदि मल कठोर हुआ तो असह्य वेदना होती है। खूनी हुआ तो गुदा मार्ग छिल जाने से रक्त प्रवाह होने लगता है। खूनी बवासीर मनुष्य को निर्बल निस्तेज बना देता है। कभी कभी तो यह असाध्य हो जाता है और रोगी की रक्ताभाव में मृत्यु होजाती है।

यह रोग ५० प्रतिशत मनुष्यों को होने से इसकी औषधियां भी अगणित हैं। सैकड़ों प्रकार की दवाइयां लोग बता देते हैं। रोगी उन्हें सेवन करता है, और इस प्रकार रोग धीरे धीरे अपनी जड़ जमा लेता है। आजकल तो इसका अचूक इलाज आपरेशन माना गया है। शल्यक्रिया द्वारा मस्सों को काट दिया जाता है और रोगी अच्छा होजाता है, किन्तु यदि पथ्य से नहीं रहा गया और खान-पान में बेपर्वाही बरती गई तो फिर मस्से पैदा होजाते हैं। इस लिए प्राकृतिक चिकित्सा ही एक ऐसा उपचार है जिससे अर्श को समूल नष्ट किया जा सकता है।

सबसे अच्छी बात तो यह है कि रोग को पैदा ही न होने दिया जाय। नियमित आहार वाले व्यक्ति को यह रोग कभी नहीं होता। वात उत्पन्न करने वाले पदार्थों का सेवन और मिर्च-मसालों के चटपटे पदार्थों का निरन्तर उपयोग अर्श को उत्पन्न करने में सहायक होता है। तेल, तीखी खटाई, लालमिर्च, और गुड़ का अत्यधिक सेवन इस रोग को जन्म देकर पालन पोषण करने वाले हैं। वात उत्पन्न करने वाले खाद्य पदार्थों का अधिक और निरन्तर सेवन अर्श-कारक है। अतएव अर्शरोगोत्पादक आहार बिहार से बचते रहना सबसे श्रेष्ठ मार्ग है। यदि अर्श की आरम्भ हो तो उसे तत्काल ही नष्ट कर देना उचित है। रोग की अवहेलना नहीं करनी चाहिए, अन्यथा उसके जड़ जमा लेने पर उस पर विजय पाने में विशेष श्रम करना पड़ेगा।

अर्शरोग को समूल उन्मूलन के निमित्त प्राकृतिक चिकित्सा ही सर्वोपरि सिद्ध होती है। अर्शरोग शमनार्थ "मूलबन्ध" सर्वप्रथम आवश्यक है। प्राणायाम के समय किए जाने वाले त्रिबन्धों में से मूलबन्ध अर्श के लिए नष्ट कर देने वाला है। मूलबन्ध के लिए आप (१) सिद्धासन (२) सरलासन अथवा (३) पद्मा-

(१) अपने दाहिने पांव की एड़ी मूत्रेन्द्रिय के ऊपरी भाग पर नाभि के नीचे और बाएँ पैर की एड़ी अण्डकोष और गुदा के मध्य के भाग पर रखकर बैठने से सिद्धासन बन जाता है।

(२) साधारणतया आलथी-पालथी से बैठने का नाम सरलासन है।

पद्मासन

सन पर बैठ जाइए। आसन के समय ध्यान रखिए कि आपकी पीठ समसूत्र में सीधी रहे–झुकी न हो अर्थात् रीढ की हड्डी सीधी रहे। रीढ सीधी रखने के लिए दीवार के सहारे बैठकर अभ्यास कर लेना चाहिए। नितम्ब से सिर तक शरीर सीधा समसूत्र हो। अब आप धीरे-धीरे अपनी गुदा का आकुञ्चन कीजिये, सिकोड़िए। जब पूर्ण आकुञ्चन होजाय तब उसे उसी दशा में जब तक आप रख सकें रखिए। अर्थात् ऊपर की ओर खींचे रखिए। जब आपको आकुञ्चन में थोड़ा भी कष्ट प्रतीत हो, तब धीरे-धीरे आकुञ्चन छोड़कर गुदा को फैलने दीजिए। इस प्रकार अनेक बार कीजिए। यह मूलबन्ध चाहे जब और कहीं भी किया जासकता है। यह क्रिया खड़े रहकर भी की जासकती है। लेटकर भी की जा सकती है।

शीर्षासन के समय की गई यह क्रियाविशेष लाभकारक होती है। "शीर्षासन" उस आसन का नाम है जिसमें सिर भूमि पर रखकर अपनी दोनों टांगे समसूत्र में ऊपर की ओर तान दी जाती हैं। इस समय मूलबन्ध हमारे ऊपर बताए गए नियमानुसार करना चाहिए। मूलबन्ध में जल्दी कभी नहीं करनी चाहिए। धीरे-धीरे गुदा को सिकोड़ना और धीरे-धीरे ही खोलना चाहिए। शीर्षासन के समय इस क्रिया को अपनी सामर्थ्य और शक्ति के अनुसार ही करना श्रेयस्कर है। बलात् और हठात् इस क्रिया को करने से हानि सम्भाव्य है।

यह बात विशेष द्रष्टव्य है कि आसन शुद्ध वायुमण्डल में ही किए जाने चाहिए। एकान्त में मूलबन्ध करने से मन की एकाग्रता में सहायता मिलती है। जब मूलबन्ध कर रहे हों तब अपने मन को इधर-उधर की बातों से हटाकर मूलबन्ध की ओर लगा दीजिए और इस दृढ़ धारणा को मन में जमा दीजिए कि "मैं अर्शरोग पर विजय पा रहा हूं और वह अब टिक नहीं सकता—ठहर नहीं सकता। मैं नीरोग हो रहा हूँ"। इत्यादि मनोबल को स्थायित्व और दृढ़ता प्रदान कीजिए।

नित्य "मूलशोधन" की क्रिया अर्शनाश के लिए नितान्त आवश्यक है। आप अपने हाथ की उस अँगुली को जो सहज ही आपकी गुदा में प्रवेश कर सके; तेल या घी चुपड़कर गुदा के अन्दर धीरे से प्रवेश कर दीजिए। तेल या घी इतना अधिक लगाना चाहिए कि गुदा के अन्दरी भाग तक पहुंच जाय। तेल या घी अंगुली पर लगाने का अर्थ यह नहीं है कि अंगली प्रवेश कर सके, बल्कि यह है कि तेल या घी गुदा के अन्दर लगाया जा सके।

जब गुदा में अंगुली पूर्ण प्रवेश हो जाय तब उसे धीरे धीरे चारों ओर घुमा देना चाहिए जिससे गुदा के अन्तर्भाग में चारों ओर वह चिकनाई लग जाय। इस क्रिया में अंगुली और चिकनाई प्रमुख हैं। अतएव ध्यान रहे अंगुली शुद्ध हो। साबुन से धोली गई हो और नाखून आदि बड़े न हों। इसी प्रकार तेल या घी के सम्बन्ध में भी सावधानी अपेक्षित है। तेल शुद्ध तिल तैल हो। या शुद्ध खोपरा

---

(३) बाएँ पैर का पंजा दाहिने पैर की जंघा पर और दाहिने पांव का पंजा बायीं जंघा पर इस तरह रखा जाय कि एड़ी पेट की दीवार (पेडू) को छूती रहें। यह पद्मासन कहलाता है।

(नारियल) का तेल हो। बाजारू तेल या हेअरआयल आदि के शुद्ध होने का कितना ही उनके निर्माता विश्वास बंधाएं, आप उसका प्रयोग न करें। बादाम का शुद्ध तेल या जैतून का तेल भी प्रयोग में लाया जासकता है। घी के लिये भी यही बात है। शुद्ध गोघृत का ही प्रयोग लाभदायक है। यह क्रिया नित्य एक बार की जानी पर्याप्त है। शौच आदि के बाद ही मूल शोधन करना चाहिए।

जो लोग अर्श पीड़ित नहीं हैं उन्हें मूलबन्ध और मूलशोधन इस लिये करना चाहिए कि वे इस दुष्ट रोग से बचे रहें। हरेक व्यक्ति प्रति सप्ताह अथवा सप्ताह में दो बार मूल शोधन कर लिया करे तो उसे अर्श का कभी भी भय नहीं रहता। इसके करने से अर्शनाश तो होता ही है, साथ ही नेत्ररोग आदि से भी छुटकारा मिल जाता है। और भी अनेक रोग नष्ट हो जाते हैं। यही बात मूलबन्ध के लिये भी है। नीरोग मनुष्य मूलबन्ध द्वारा अनेक रोगों पर अधिकार पालेते हैं. विशेषतः वीर्यविकार तो इससे कोसों दूर भागते हैं।

अर्श रोगियों को मल त्याग के पश्चात् अपने गुदामार्ग को मिट्टी लगाकर धोना चाहिए। जब-जब मलोत्सर्ग करें तब-तब मिट्टी लगाकर जल से गुदा धोवें। मिट्टी पवित्र हो। उसमें कचरा कूड़ा और बाजारू या घरू धूल न मिली हो। रास्ते की मिट्टी न हो। जंगल से लाई गई और पवित्र स्थान में सुरक्षित रखी मिट्टी को ही काम में लाना चाहिए। जिस प्रदेश में जो मिट्टी मिलती हो उसी का प्रयोग करना चाहिए। मिट्टी में कंकर-पत्थर न हों। मिट्टी को काम में लाने से पूर्व थोड़ा पानी डालकर गला लेवें। बाद में पहले गुदा को पानी से धोकर मलरहित करदें, तदुपरान्त मिट्टी लगाकर पानी से धो डालें। मिट्टी तीन चार बार लगानी चाहिए। मनु आदि स्मृतिकारों ने तो सर्वसाधारण को नित्य मलद्वार, मिट्टी लगाकर धोने का विधान बनाया है—

"विण्मूत्रोत्सर्गशुद्ध्यर्थं मृद्वार्यादेयमर्थवत्।"

अर्थात्—जिन इन्द्रियों से विष्ठा और मूत्र त्यागा जाता है उनकी शुद्धि के हेतु यथेष्ट मिट्टी और जल को उपयोग में लाना चाहिए। आगे चलकर और भी स्पष्ट कर दिया है—

एकालिङ्गे गुदे तिस्रः।"

अर्थात्—एक बार लिंगेन्द्रिय को और तीन बार गुदा को मिट्टी लगाकर जल से शुद्ध करना चाहिए। आज के युग में भले ही इन बातों की लोग मजाक उड़ाएँ, किन्तु सत्य तो यह है कि इन पवित्रता के नियमों में स्वास्थ्य के सूत्र निहित हैं। इन शुद्धिकारक नियमों का पालन करने वाला मनुष्य किसी भी गुप्त-रोगी का शिकार नहीं हो सकता। जो स्वस्थ दशा में मलेन्द्रियों की शुद्धि के निमित्त मृत्तिका का प्रयोग करते हैं, उन्हें स्वप्न में भी अर्श नहीं हो सकता।

अर्श की भयङ्करता में मिट्टी की पट्टी का प्रयोग आवश्यक है। अपने यहां मिलने वाली शुद्ध मिट्टी लीजिए यदि उसमें कङ्करियां हों तो पानी में गलाकर उन्हें निकाल दीजिये। मिट्टी को गूंधकर आवश्यकतानुसार बड़ी उसकी टिकिया बना लीजिये। उसे गुदामार्ग पर अच्छी तरह रखकर लंगोट आदि बांधकर लेट जाइए। रात्रि को सोते समय यह क्रिया विशेष सुविधाजनक रहती है। इसे अधिक दिनों तक करने से निस्सन्देह अर्श रोग मिट जाता है।

अर्शरोगियों को कभी गर्मपानी से गुदप्रक्षालन नहीं करना चाहिए। और वे जो अर्श से बचना चाहते हैं उन्हें कभी भी गर्मजल गुदा धोने के काम में नहीं लाना चाहिए। सदैव शीतल और स्वच्छ जल का प्रयोग करना उचित है। जो लोग गुदा को मलद्वार मान कर चाहे जैसे गन्दे मैले पानी से धोते हैं, वे भूल ही नहीं करते बल्कि जान बूझकर गुदरोगों को आमंत्रित करते हैं। स्मरण रहे स्वच्छातिस्वच्छ जल ही मलेन्द्रियों को धोने के काम में लाना चाहिए।

अर्श की प्राकृतिक चिकित्सा के दिनों में खान-पान का ध्यान रखना सर्वथा अपेक्षित है। खाने पीने की वस्तुओं की सूची यहां नहीं दी जासकती, केवल

—शेषांश पृष्ठ ७२१ पर।

कैन्सर रोग की चिकित्सा—

लेखक—श्री प्रभाकर चट्टोपाध्य, एम. ए., डी. एस-सी। प्रकाशक-कविराज श्री अमलकुमार चट्टोपाध्याय, इन्स्टीट्यूट आफ हिन्दु कैमिस्ट्री एण्ड आयुर्वेद रिसर्च ६१।१, मूर एभिन्यू, रिजेण्ट पार्क, कलकत्ता ४०। पृष्ठसंख्या १८८ मूल्य ५)

जैसा कि सम्प्रति पुस्तक लेखक करते हैं इस पुस्तक के लेखक ने इतर ग्रंथों से संकलन करके इस पुस्तक का निर्माण नहीं किया है, प्रत्युत यह पुस्तक लेखक ने केन्सररोग पर २५ वर्ष पर्यन्त अन्वेषण अनुभव करके जो अनुभूति की उसी के आधार पर लिखी है। पुस्तक में पग-पग पर लेखक के अनुभव की छाप है। यह पुस्तक चिकित्सा विषय प्रधान है तथा चिकित्सा भी प्रायः आयुर्वेदिक ही दी गई है। गला, जिह्वा, दन्तमूल, गाल, तालु, ओष्ठ, नासिका, नेत्र, मस्तक, अन्नप्रणाली, स्तन, उदर, स्त्रीजननेन्द्रिय, अण्डकोष, गुह्यप्रदेश, जानुसन्धि, पादांगुलि, चर्म आदि सभी स्थानों के कैन्सरों का प्रथक् पूर्वरूप, रूप, निदान, उपशय, सम्प्राप्ति, चिकित्सा नातिविस्तारपूर्वक लिखी है। गला, जिह्वा, गाल, मस्तक, उदर, इनके कैंसरों के चित्र भी दिए हैं।

लेखक राजयक्ष्मा एवं कैंसर के सफल चिकित्सक हैं तथा इस पुस्तक में कैंसर-विषयक अपने अनुभव निःसंकोच प्रगट कर चिकित्सक-समाज का अत्यधिक उपकार किया है।

यह पुस्तक बंगला तथा अंग्रेजी भाषा में भी पूर्व प्रकाशित होचुकी है जिसका विद्वत समाज ने उचित आदर किया है।

इण्डियन कैंसर सोसाइटी (जिसने कि यह घोषित किया बताया जाता है कि कैंसर का रेडियम-चिकित्सा के अतिरिक्त कोई उपाय नहीं है) के मैम्बरों को चाहिए कि वे इस पुस्तक को पढ़ें और देखें कि आयुर्वेद में इस रोग का कितना सुन्दर वर्णन है और सफल चिकित्सा भी। इस पुस्तक के अनुभवी लेखक से हम निवेदन करेंगे कि वे आधुनिक चिकित्सक समाज के समक्ष अपने अनुभव आयुर्वेदिक मासिक-पत्रों को माध्यम बना कर रखें, क्योंकि पुस्तक इतनी अधिक और शीघ्रता से उनके विचारों का प्रचार नहीं कर सकेगी। "धन्वन्तरि" आपके अनुभवपूर्ण लेखों को प्रचारित करने के लिए सहर्ष प्रस्तुत है। पुस्तक में कागज उत्तम नहीं व्यवहार किया गया तथा मूल्य भी कुछ अधिक रखा है। किन्तु पुस्तक के साहित्य की महानता के आगे मूल्य अधिक प्रतीत नहीं होगा।

इच्छाशक्ति—

लेखक–डा० श्री श्यामदास प्रपन्नाश्रमी। प्रकाशक–श्री मोतीलाल बनारसीदास नेपाली खपरा बनारस। प्राप्तस्थान–धन्वन्तरि कार्यालय विजयगढ़। पृष्ठ संख्या १००। मूल्य १।)

प्रकृति ने कहिए या ईश्वर ने, मनुष्य में एक अटूट शक्ति प्रदान की है किन्तु वह हर मनुष्य को स्पष्ट दृष्टिगोचर नहीं होती। जो मनुष्य उस शक्ति को जान लेता है, उसे जागृत कर अपने जीवन में व्यवहार में लाता है, वही वस्तुत मनुष्य है। वह शक्ति है—इच्छाशक्ति। इस इच्छाशक्ति के विकास करने से व्यक्ति अन्य मनुष्यों को असम्भव जान पड़ने वाले महान कार्य भी सहज ही कर डालता है और शारीरिक—मानसिक व्यावहारिक एवं आध्यात्मिक उन्नति करने में सफल होता है। जितने बड़े-बड़े विद्वान महान आत्माएं इस संसार में हुई या हैं उनके विकास में, यदि गम्भीरता से अध्ययन किया जाय

तो, यही इच्छाशक्ति ही मूल कारण ज्ञात होगी। विद्वान लेखक ने इस छोटी सी पुस्तिका में इसी इच्छाशक्ति के विषय में सारपूर्ण विवेचना की है। इच्छाशक्ति क्या है, उसे किसी प्रकार बढ़ाया जा सकता है एवं शारीरिक मानसिक एवं आध्यात्मिक उन्नति में किस प्रकार लगाया जासकता है। चरित्रहीन एवं पतित नवयुवक भी अपने चरित्र और शरीर का सुधार इच्छा-शक्ति के द्वारा कर सकता है। परिशिष्ट में आत्मसम्मोहन (Self Hypnotism), सम्मोहन (Hypnotic Suggestion) मन की एकाग्रता, नेत्रों की आकर्षण शक्ति आदि विषयों पर भी लेखक ने प्रकाश डाला है। पुस्तक पढ़ने, मनन करने और समझने योग्य है।

अनुभूति —

लेखक—वैद्य रघुनन्दन मिश्र आयुर्वेदाचार्य। प्रकाशक-'जयश्री' उपर बाजार, रांची। पृष्ठ संख्या १६६। मूल्य २)

पुस्तक के नाम से ही यह स्पष्ट होजाता है कि लेखक को जीवन में चिकित्सा-विषयक जो अनुभूति (अनुभव) हुई है वह इस पुस्तक में प्रकाशित है। प्रारम्भिक २६ पृष्ठों में 'तथ्य की बातें' शीर्षक के अन्तर्गत—रोग क्या है, औषधि क्या है, रोग में कर्तव्य, औषधि कब प्रयोग करनी चाहिए, आशुकारी औषधि या स्वरस, क्वाथ, प्रक्षेप द्रव्य, चूर्ण, अनुपान आदि पर संक्षिप्त प्रकाश डाला गया है। उसके बाद १५१ सरल-सरल और सस्ते प्रयोगों का उल्लेख है। उन प्रयोगों की निर्माणविधि, गुण, प्रयोगविधि आदि सभी बातें समझाकर लिखी हैं। प्रयोगों को पढ़ते समय पग-पग पर लेखक के अनुभव की छाप स्पष्ट दिखती है। प्रयोग शास्त्रीय एवं स्वकल्पित दोनों ही प्रकार हैं। चिकित्सकों के लिए पुस्तक उपयोगी है।

नाड़ीदर्शन—

लेखक एवं प्रकाशक—पं तारासंकर जी मिश्र वैद्य आयुर्वेदाचार्य, काशी। प्राप्त स्थान—धन्वन्तरि कार्यालय विजयगढ़ (अलीगढ़) पृष्ठ संख्या १७८। चित्र संख्या ८ मूल्य २।।।)

इस पुस्तक के लेखक महोदय से धन्वन्तरि के पाठक सुपरिचित हैं तथा उनकी लेखनी का रसास्वादन धन्वन्तरि के पिछले दो विशेषाङ्कों में भली प्रकार कर चुके हैं। आप हर बात को सरल भाषा में युक्तियुक्त ढङ्ग से लिखने के अभ्यस्त हैं और उसी सरणि का इस पुस्तक के निर्माण में भी अवलम्बन किया गया है।। "नाड़ी" आयुर्वेदज्ञों के लिए एक समस्या भी है और हमारे महर्षियों की अनुपम देन भी। शरीर की सम्पूर्ण अवस्थाओं, परिवर्तनों, रोगों और लक्षणों का प्रभाव नाड़ी-स्पन्दन पर पड़ता है, उस प्रभाव को समझ लेना ही कुशल और अनुभवी चिकित्सकों का काम है। विज्ञ लेखक ने इस पुस्तक का निर्माण कर वैद्यसमाज का बड़ा भारी उपकार किया है। इसे पढ़कर और समझकर अभ्यास करने वाला चिकित्सक अवश्य ही कुशल नाड़ी विशेषज्ञ बन सकेगा। रङ्गीन तथा सादे चित्रों द्वारा विषय को सुस्पष्ट करने के लिए लेखक ने सराहनीय प्रयत्न किया है।

नाड़ी-शरीर अध्याय में लेखक ने आयुर्वेद में वर्णित कूर्म को Pons से आकृति एवं नाड़ी-संस्थान की दृष्टि से सामञ्जस्य करते हुए आगे अन्वेषणार्थ शारीर शास्त्र के ज्ञाताओं को संकेत किया है। नाड़ी परीक्षा प्रकार, रोगों का नाड़ी पर प्रभाव, दोषों का नाड़ी पर प्रभाव, और अन्त में पाश्चात्य दृष्टिकोण आदि अध्याय बड़े ही महत्व के हैं। पुस्तक के लेखन में लेखक ने बहुत परिश्रम किया है।

रसादि परिज्ञान—

लेखक—श्रीपं. जगन्नाथप्रसाद जी शुक्ल आयु० पञ्चानन। प्रकाशक चौखम्बा संस्कृत सीरिज बनारस १।

रस-परिज्ञान का यह द्वितीय संस्करण है। आज से तीस वर्ष पूर्व शुक्ल जी ने क्रियों की परीक्षा लिए रस विषय पर इस पुस्तक का निर्माण किया था, प्रधान उद्देश्य यह भी था कि आयुर्वेद की वैज्ञानिकता को अच्छी तरह प्रमाणित किया जाय, अतः पुस्तक का कलेवर बढ़ गया था। परन्तु तब से

तक एक युग जैसा परिवर्तन होगया है और कई लेखकों की उत्तम पुस्तकें प्रकाशित होगई हैं। शुक्ल जी ने सन् ५३ में हरिद्वार की शास्त्रचर्चा परिषद् के समय इस पुस्तक में बहुत कुछ परिवर्तन कर दिया है यह वही परिवर्द्धित संस्करण है। द्रव्यों के रसों पर बहुत अच्छा विवेचन किया है और विषय को इस प्रकार सम्मुख रखा है कि सभी पाठक भली प्रकार समझ सकें। प्रथम पदार्थ और द्रव्य विज्ञान के साथ द्रव्यों का पञ्चभूतात्मक वर्णन किया है इन पञ्च-महाभूतों से ६ रसों की उत्पत्ति, तत्वविशेष द्रव्यों की पहिचान, द्रव्यों का औषधिरूप, द्रव्यों की कार्यविधि तथा उनके योनि भेद कहे गये हैं।

गुण, द्रव्य, रसपरिज्ञानान्तर्गत रसों की उत्पत्ति भेद, रसान्तर, पहिचान, कार्यशक्ति, सामर्थ्य, गुण, कर्म, सेवन परिणाम, दोषों पर प्रभाव, रहस्य रसों का काल पर काल-प्रभाव, शक्ति और रस की प्रधानता कही गई है। वीर्य-विपाक तथा प्रभाव विस्तृत प्रकाश डालकर दर्शाया गया है। रसों की अनेक विशेषतायें बताकर पुस्तक समाप्त की है। पुस्तक का आधार पूर्ण आयुर्वेद शास्त्र की संहितायें है फिर भी विषय सुबोध है। प्रमाणस्वरूप मूलग्रन्थों का दिग्दर्शन कराते गये हैं। प्रस्तुत पुस्तक पाठ्यक्रम मेंभी निर्धारित है। कागज की ओर प्रकाशक ने ध्यान नहीं दिया है मूल्य की दृष्टि से पुस्तक ठीक ही है।

द्रव्यगुण विज्ञान—

लेखक—श्री प्रियवृत शर्मा एम० ए० एम० एस०। प्रकाशक—चौखम्बा विद्याभवन बनारस १, पृष्ठ संख्या ३३१ मू० ५॥)

प्रस्तुत ग्रन्थ औषधि द्रव्यों के गुणधर्मविवेचन से परिपूर्ण नवीन रचना है। द्रव्यगुण, कर्म और कल्प नाम से चार खण्डों में जिसमें कुल २५ अध्याय हैं विभक्त है। द्रव्य खण्ड में द्रव्यों का कुल, कर्म तथा मिश्र रूप से वर्णन तथा उनकी नवीन और प्रचीन तुलनात्मक विवेचना की गई है। गुण खण्ड में गुणों के वर्गीकरण के साथ उनका दोष-धातु पर प्रभाव, रस के कर्म तथा विपाक के सम्बन्ध में मतभेद, वीर्य का रूप वा प्रभाव का वर्णन किया है। तीसरे कर्म खण्ड में द्रव्यों के कर्मों की व्याख्या नवीन और प्राचीन दोनों शैलियों से की गई है। कल्प खण्ड में संक्षेप से कुछ भेषज्य के बारे में कहा गया है। लेखक ने अपनी रचना में आलोचना और तुलना को विशेष स्थान देकर विषय को सामने रखने का प्रयत्न किया है। जिससे पाठक अपना सही दृष्टिकोण बना सके। प्रमाण रूप में संस्कृत मूल ग्रन्थों के उद्धरण नीचे टिप्पणी की जगह देकर आकर्षण बनाये रखने का प्रयत्न किया गया है।

आजकल नवीन आयुर्वेदिक छात्रों की जो दोनों प्रणालियों का अध्ययन करते हैं तथा अध्यापकों की सहायता के लिए ग्रन्थ उपादेय है। वर्णन शैली सरल बोधगम्य है तथा छपाई और सुन्दरता की दृष्टि से भी ग्रन्थ शोभनीय है।

आयुर्वेद संदेश (पाक्षिक)—

यह पाक्षिक पत्र आयुर्वेदाचार्य पं० शिवराम द्विवेदी वैद्य के प्रधान सम्पादकत्व में लखनऊ से गत २-३ माह से प्रकाशित हो रहा है। इसके कार्यकारी सम्पादक राजवैद्य पं० सुरेन्द्रनाथ दीक्षित बड़े उत्साही, कर्मठ एवं लगन के व्यक्ति हैं। आप अ. भा. आयुर्वेद चिकित्सा प्रचारक संघ का बहुत समय से सञ्चालन कर रहे हैं और वस्तुतः यह पाक्षिक भी इसी संघ का मुखपत्र है। इस पत्र में उत्तर प्रदेशीय आयुर्वेद विषयक समाचारों की प्रधानता होते हुए भी अन्य प्रान्तों के समाचार भी बहुत रहते हैं। एलोपैथी डाक्टर समुदाय, जो आजकल आयुर्वेद को नष्ट-भ्रष्ट करने पर तुला है, को यह पत्र करारा जबाब देता है। प्रान्तीय एवं केन्द्रीय सरकार की आयुर्वेद के प्रति उपेक्षा वृत्ति को सप्रमाण प्रकाश में लाता है। आयुर्वेद के विरोध में कहां क्या सांठ-गांठ हो रही है इस पत्र द्वारा ज्ञात होती है तथा इसके लेख बड़े मार्के के और उग्र विचारों के होते हैं। वैद्यसमाज को ऐसे पत्र के ग्राहक बनकर इसे प्रोत्साहन अवश्य देना चाहिये। प्राप्ति-स्थान—पाक्षिक आयुर्वेद सन्देश, अशरफाबाद, लखनऊ। वार्षिक मूल्य ४)

डा० गोपीनाथ नागर H. M. B. I. आयुर्वेदशास्त्री

श्रीनगर—महोबा [हमीरपुर]

"श्री नागर जी योग्य चिकित्सक एवं सेवा परायण व्यक्ति हैं। ऑलइण्डिया नागर सेवा-श्रम श्रीनगर के संस्थापक हैं। गत कुम्भ मेला प्रयाग में आपने सेवाश्रम का कैम्प लगाकर तीर्थ-यात्रियों की सेवा बड़ी लगन से की थी। आपके द्वारा प्रेषित निम्न प्रयोग अनुभूत और सफल प्रतीत होते हैं। पाठक निर्माण कर के व्यवहार करने पर अवश्य लाभ प्राप्त करेंगे।"
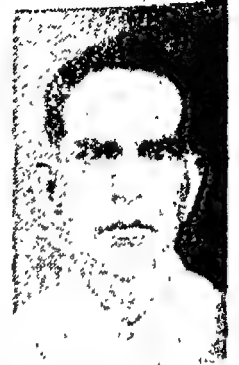
—सम्पादक।

१—श्वेतप्रदररिपु

मोचरस	शुद्धगेरू	रालसफेद
मुलहठी	लाखपीपल	चौराईमूल
प्रवालपिष्टी	गौदन्तीहरतालभस्म	

—समान भाग लें। काष्ठौषधियों को कूट कपड़छन कर प्रवालपिष्टी व गौदन्तीहरतालभस्म मिलावें।

मात्रा—दिन में तीन बार ३-३ माशे चावल के धोवन में थोड़ी मिश्री मिलाकर, पहिले पुड़िया फांक ऊपर से पीवें। औषधि सेवन काल में गर्म वस्तुओं एवं पति-सहवास का त्याग करदें।

गुण—अनुभव किया गया है कि इसके प्रयोग से ३-४ दिन में ही चमत्कारिक लाभ होता है।

२—रक्तदोषान्तकअर्क

हल्दी नीम की अन्तरछाल पुरानागुड़
तीनों १-१ सेर

—इनको कूटकर पानी में मिलाकर सीमेंट के पात्र में भरकर सीमेंट से मुंह बंद करें। खुली जगह में १॥ गज लम्बा, १ गज चौड़ा गड्ढा खोदें आधा गड्ढा घोड़े की लीद से भरकर उस पर औषधि का पात्र रखकर पुनः लीद रख मिट्टी डाल गड्ढा बंद करदें। १ माह बाद गड्ढा खोदकर औषधि सावधानी से निकाल छानकर बोतलों में भरलें।

मात्रा—प्रातः सायंकाल २-२ तोला लें।

गुण—सर्व प्रकार के रक्तविकारों में गुणप्रद है। कुष्ठ तक को नष्ट करता है।

कफकर्त्तनरस

अपामार्ग (चिरचिटा) पञ्चाङ्ग	२ सेर
जावित्री जायफल	२-२ तोला
छोटीइलायची के बीज	१ तोला
लवंग	१ तोला
कालीमिर्च	३ तोला

—इन सब औषधियों को लोहे की कढ़ाई में अग्नि पर चढ़ावें। सब वस्तुएं जलकर काली राख हो जाने पर उतार कर खरल करलें। इसमें १ तोला चरस की राख (चरस के अभाव में गांजे की राख) चौकिया सोहागा भुना और पारद-गंधक सम भाग की कज्जली ६-६ माशे मिलाकर खरल

करें।

मात्रा—१ रत्ती से २ रत्ती तक दिन में ३ बार बंगला पान के स्वरस और मधु के साथ लें या केवल पान में रखकर धीरे-धीरे रस चूसें।

गुण—सर्व प्रकार की कास में लाभप्रद है। श्वास में धीरे-धीरे लाभ करता है। इसके सेवन से जमा हुआ कफ बाहर निकलता है।

४—नेत्रबन्धु सुरमा—

जस्ता (यशद) का फूला	८ तोला
सुहागा भुना	४ तोला
नवसादर का जौहर	२ तोला
चाकसू चूर्ण	२८ तोला
लालफिटकिरी भस्म	२ तोला
एलुआ बीज की गिरी	२ तोला
कपूर देशी	३ तोला

—इन सब दवाओं को कूट-कपड़छन कर लोहे के खरल में या कढ़ाई में डाल कर अर्क गुलाब में मिला चन्द्रमा की रोशनी में ३ रात घोंटे।

दिन के समय अंधेरे में रखें, सूर्य की रोशनी न लगने दें। शुक्लपक्ष की चतुर्दशी से घोटें। घोटते-घोटते शुष्क होने पर नीले रंग के कांच की शीशी में दवा भरदें।

गुण—यह सुरमा आंखों का दुखना, लाल रहना, दृष्टि दुर्बल होना, जाला, फूली, रतौंधी, रोहे आदि नेत्ररोगों में अत्युत्तम है।

व्यवहार विधि—चांदी की सलाई या नीम की लकड़ी की सलाई से इस सुर्मे का व्यवहार करें। सुरमा लगाने के बाद आधा घंटा तक नेत्रों को बंद किए हुए बैठे रहें। बाद में जल से धो डालें। सोते समय लगावें तो प्रातः उठने पर आंखें जल से धोडालें।

नोट—मैं स्वयं इस सुरमे को प्रतिवर्ष शरद पूर्णिमा को बनाता हूं।

५—चर्मरोगहर मलहम

रसकपूर	गंधक
पंवार बीज	कपूर देशी

चारों १-१ तोला

वैसलीन या २१ बार धुला मक्खन ८ तोला

—सब चीजों को कपड़े में छानकर मक्खन या वैसलीन में खूब मिलालें। मरहम तैयार है।

गुण—इसके लगाने से हर प्रकार की खाज-खुजली, अपरस, चकौता आदि चर्मरोग नष्ट होते हैं।

●

[पृष्ठ ७१६ का शेषांश]

इतना ही बता देना पर्याप्त होगा कि ऐसी चीजें जो गर्म प्रकृति की हों, जो वातकारक हों, जो मलावरोध करती हों त्याग देना चाहिए। चटपटी चाट, मिर्च-मसालों से परिपूर्ण पदार्थ, तेल में भुनी या तली हुई वस्तुएं हानिप्रद हैं। अर्श के रोगी को यह सदैव ध्यान रखना चाहिए कि मल कड़ा न हो, बल्कि पतला और ढीला हो जो सुगमतापूर्वक बाहर आसके, ऐसा खान-पान होना चाहिए।

ऊपर बताई क्रियाओं को करने से अर्शरोग निश्चय ही नष्ट होजायगा। किन्तु यह नहीं भुला देना चाहिए कि प्राकृतिक उपचारों का लाभ तत्काल नहीं दिखाई पड़ता। दो हफ्ते लगातार धैर्यपूर्वक चिकित्सा करते रहने पर थोड़ा सा लाभ दिखाई देगा। और इन्हीं क्रियाओं को कुछ महीनों तक—रोग हटजाने के बाद भी दिनों तक करने से ही रोग आजीवन समाप्त हो सकेगा। प्राकृतिक चिकित्सा में मनोबल, लगन, उत्साह, सतत प्रयत्न और विश्वास की सर्वदा आवश्यकता है। अर्श के रोगियों को इस चिकित्सा से लाभ उठाना चाहिए। यदि परिणाम से इन पंक्तियों के लेखक को भी सूचित कर दिया जाय तो बड़ी कृपा होगी।

●●

श्री गुलाबसिंह जी वैद्य,
धुरकोट (बिलासपुर)

"आप उत्साही नवयुवक वैद्य हैं। लगभग ८ वर्ष से ही आपने चिकित्सा-व्यवसाय प्रारम्भ किया है। सेवा भावना से प्रेरित हो धन्वन्तरि के पाठकों के समक्ष अपने अनुभवपूर्ण प्रयोग प्रस्तुत किए हैं। प्रयोग उपयोगी प्रतीत होते हैं। पाठक परीक्षा करें और फलाफल सूचित करें।"

—सम्पादक।

१—हैजा—

हैजा की पहली अवस्था में लवणभास्कर चूर्ण नीबूरस के साथ प्रयोग करें। प्रयोगनिम्न प्रकार है—

पीपरामूल	पीपर	धनियां
कालाजीरा	सेंधानमक	विडनमक
तेजपत्र	तालीसपत्र	नागकेशर

—प्रत्येक १-१ तोला।

कालानमक		२॥ तोला
कालीमिरच	श्वेतजीरा	सोंठ

—तीनों आधा-आधा तोला।

इलाइची	½ तोला
दालचीनी	½ तोला
समुद्रनमक	४ तोला
अनारदाना	२ तोला
अम्लवेत	१ तोला

—सभी को कूट एवं कपड़छान कर एकत्र करलें और कांच के पात्र में रखें।

मात्रा—३ माशे से ४ माशे तक नीबू के रस से इसके सेवन से पतले दस्त, उदरविकार, मंदाग्नि, प्लीहावृद्धि इत्यादि रोग दूर होते हैं।

कपूर		सतअजवायन
पीपरमेंट		सत-पुदीना

—हरेक १-१ तोला

—इन सबको एक शीशी में भरदें। १५ मिनट में घुल कर तरल पदार्थ होजाता है।

मात्रा—३ बूँद से ५ बूँद तक, बतासे के साथ आध-आध घंटे पर दें। इससे विसूचिका के जीवाणु नष्ट होते हैं। दाह, प्यास, उदरशूल अजीर्ण, पतले दस्त, ऐंठन को रोकता है। और शरीर को ठंडा नहीं होने देता है। इसे बाजार में अमृतधारा, लक्ष्मण-धारा इत्यादि नामों से बिक्री करते हैं।

३. शीतला पर टोटके—

इस बीमारी को रोकने के लिये निम्नलिखित उपचार करें।

अ—पुरुष को दाहिने हाथ में और स्त्री को बांए हाथ में हरड़ का बीज बांधना चाहिये।

आ—चैत्र महीने के अंधेरे पक्ष की चतुर्दशी के दिन एक लाल कपड़े का पताका बनावे और सीज की (थूहा) डाल में चूना लगाकर घर के नैऋत्य कोण में रख दे। इससे चेचक के होने का भय नहीं रहता और घर में किसी को चेचक हो तो शीघ्र आराम होता है। यह टोटका मैंने स्वयं किया

था तो हमारे घर में किसी को माता नहीं निकली और हमारे गांव में बहुत जोरों से माता फैली थी।

शीतला (माता) पर प्रयोग—

भूनिम्बादि क्वाथ—

चिरायता रूसा (वांसा) की छाल
कुटकी पटोलपत्र हरड़
बहेड़ा आंवला रक्तचंदन नीम की छाल

मात्रा—सभी को बराबर बराबर लेकर १६ गुणा पानी डाल कर क्वाथ बनावें और आठवां हिस्सा बचने पर मधु और चीनी डाल कर दें।

इसके साथ पित्तपापड़ा, पाठा, धमासा, श्वेतचंदन को मैं और मिलाता हूँ।

गुण-इसके काढ़ेको पीनेसे ज्वर, विसर्प से उत्पन्न त्रिदोष-जनित माता जो बाहर होकर विलीन होगई हो वह भी निकलकर शांत होती हैं। दाह, मुंह सूखना पिपासा, वमन ये सब उपद्रव दूर होते हैं।

४—सूखारोग पर प्रयोग—

अ—बालक को गाय का धारोष्ण दूध ५ तोला सवेरे और शाम को पिलावे। और दो माशे गुड़ की टिकड़ी बना कर तालु पर रख दें। उसके ऊपर बनतुलसी के पत्तों को पीसकर टिकिया बना तालु पर जहां गढ्ढा हो, वहां बांध दो यदि सूखा रोग होगा तो गुड़ नहीं बचेगा। इसी तरह जब तक न बचे तब तक रोज बांधना चाहिए।

आ—काले कम्बल पर प्रातः सूर्य निकलने के पहिले बर्तन में या पत्ते पर मुर्गी के अण्डे का तरल पदार्थ रखे फिर उसके ऊपर बच्चे को बैठावें। सूखारोग होगा तो वह तरल पदार्थ गुदा मार्ग से ऊपर चढ़ जावेगा।

इन दोनों प्रयोगों को एक माह तक करने से बच्चा निरोग हो जाता है। खाने के लिये स्वर्ण वसंत मालती रस नं.१ (धन्वन्तरि कार्यालय का बना हुआ) मधु के साथ देना चाहिये। इसमें असली सोनाभस्म रहता है।

अरविन्दासव उम्र के अनुसार ३ माशे से ६ माशा तक जल के साथ देना चाहिये।

इ—बच्चा सूखता जाता हो और ज्वर रहता हो तो इस तैल का प्रयोग करें।

तिलतैल १५ तोला, कड़ुवा तैल १० तोला, और केंचुआ (गेंगरुवा) जो बरसात में पैदा होता है तीन तोला। पहिले तैल मिलाकर खूब गरम करें। बाद में केंचुआ को डालकर जला लें, जल जाने पर उतार कर ठण्डा करले फिर शीशी में छानकर रखलें। इसको सायंकाल और प्रातःकाल बच्चे को सूर्य की किरण में बैठाकर प्रतिदिन मालिश करावें।

ई—सर्पगन्धा (छुकुरौन्धा) की जल से पीसकर चने के बराबर गोली बनाकर १-१ गोली सुबह दूध से प्रतिदिन दें।

५—नामर्दी के लिये प्रयोग—

अ—घुङ्घची सफेद, सफेद कनेर की जड़ की छाल दो-दो तोले लेकर एक सेर दूध में पकाकर जब आधा रह जाय तो दही जमा दें। इसके मक्खन को लिंग पर मालिश करें। फिर ऊपर से पान या एरण्ड के पत्ते थोड़ा गरम करके बांध दें और सुबह १ रत्ती दूध के साथ खा लिया करे। इससे नया नामर्दी-रोग १० या १५ दिन में ठीक हो जाता है।

आ—शुद्ध आंवलासार गन्धक और सूखे आंवले का चूर्ण, बराबर वजन कूट-छानकर आंवले के ताजा रस या काढ़े की भावना दे-देकर छाया में सुखाकर फिर सेमल के रस की भी ७ भावना देकर छाया में सुखाकर रखलें। फिर दोनों के बराबर मिश्री मिलादें।

मात्रा—३ माशे चूर्ण, ६ माशे शहद में मिलाकर दूध से सेवन करे। ब्रह्मचर्य से ३ मास तक सेवन करें तो नामर्द भी मर्द हो जाता है।

६—सुजाक के लिए प्रयोग—

अ—खीरे के बीज आधा तोला, नारियल का फूल आधा तोला, अरवा चावल के धोवन के साथ चीनी मिलाकर पीने से रक्तश्राव व सुजाक दूर होता है।

आ—१० तोले शीतल जल में ४ बून्द चन्दन, का तैल डालकर पीने से ७ दिन में सुजाक अवश्य जाता रहता है।

श्री वैद्य गमनलाल जे. नाथूभाई आयु. भिषक्

नानपुरा, सूरत।

"श्री वैद्य की मातृभाषा गुजराती है। आप अब हिन्दी का अभ्यास कर रहे हैं। आपने अपने पितामह श्री नाथूभाई से चिकित्सा का क्रियात्मक अभ्यास प्राप्त किया तथा नि. भा. आयुर्वेद विद्यापीठ से आयुर्वेद-भिषक् परीक्षा उत्तीर्ण की है। आप एलोपैथी एवं होमियोचिकित्सा विज्ञान का भी ज्ञान रखते हैं। आपने जो प्रयोग प्रकाशित कराये हैं वे पूर्ण परीक्षा करने पर ही भेजे हैं। पाठक व्यवहार करके लाभ उठावें।

—सम्पादक।

१ हरिद्रादि चूर्ण—

छोटी हरड़ कालीजीरी आंबाहल्दी
—तीनों १०-तोला

सोडाबाइकार्ब पापड़खार ५-५ तोला

लवंग पीपर (पिप्पली) २॥-२॥ तोला

—सबको कूट-पीस कपड़े में छान शीशी में रखलें।

प्रयोगविधि—६ रत्ती से १॥ माशे तक मधु या गरम पानी के साथ दें। केवल मधु से या रोगानुसार अनुपान से व्यवहार करने से श्वास, कास, रक्त का जमाव, ताप (जूड़ी), यकृत-प्लीहा के दर्द में लाभदायक है।

२ मनःशिलादि कल्प—

मंशिल को अद्रकस्वरस में २१ दिन (प्रतिदिन कम से कम तीन घंटा) घोट लें। इसी प्रकार इसके बाद ११ दिन बकरी के पित्त में घोट लें। शुष्क हो जाने पर ५ तोला इस मंशिल को अभ्रकभस्म ५०० पुटी २॥ तोला स्वर्णमाक्षिकभस्म २॥ तोला के साथ एक खरल में खूब घोटें। तत्पश्चात् इसमें त्रिकटुचूर्ण २॥ तोला डालकर वांसापत्रस्वरस की २ भावना दें। सूखने पर कपड़े में छान शीशी में रखलें।

मात्रा—१ रत्ती से ३ रत्ती तक।

अनुपान—मधु, या बादाम ३ नग यष्टीमधु (मुलहठी) ४ रत्ती सौंठ १ रत्ती के साथ एक मात्रा मिलाकर दूध में घिस थोड़ा शहद मिलाकर दें। प्रातः सायं दिन में दो बार व्यवहार करें। साथ ही शंशमनी वटी की गोली दिन में १०-१२ तक दे दें।

गुण—इस कल्प से क्षय की प्रथम एवं द्वितीय अवस्था में लाभ होता है। रक्तस्राव, जीर्णज्वर कास, पसीना आना और निर्बलता में भी प्रभावशाली है। इस औषधि से ६० प्रतिशत लाभ होता है। यह प्रयोग मेरे पूज्य पिता जी का है।

३—शूलहरचूर्ण—

कालानमक (कांकच) अजवाइन
सज्जीखार आंबाहल्दी घी में भुनी हींग

—सब समान भाग ले, चूर्ण करके रखलें।

व्यवहार विधि—वातजशूल में गरम पानी से, पित्तज शूल में तक्र (छाछ) के साथ तथा कफज शूल में गुड़ के साथ दीजिये।

गुण—इससे उदावर्त, आध्मान, परिणामशूल और गुल्म नाश होता है।

४—बालशूलान्तक वटी—

एरण्डी (एरण्ड) तैल में पकाई हुई बड़ी
हरड़ (अभया) १० तोला
छोटी हरड़ (हीमज) ५ तोला
घी में भुनी हींग ५ तोला
संचल (सौवर्चल) २॥ तोला
पोटाशब्रोमाइड (Pot. Bromide) २॥ तोला

—सब मिलाकर पोदीना के स्वरस के साथ घोटकर १-१ रत्ती की गोली बना सुखालें

मात्रा—वयानुसार १ गोली से ३ गोली तक।

अनुपान—१ मात्रा गरम पानी में पीस, शहद मिला पिलावें। दिन में प्रातः सायं दो वार दें।

गुण—इसके सेवन से बच्चे का रोना, कब्ज, नींद में चौंक पड़ना, पेट का दर्द दूर होता है।

नोट—प्रतिदिन रात्रि को १-१ गोली देने से बच्चा स्वस्थ और सबल रहता है।

५ प्रमेहहर—

बहुत पुरानी ईंट का चूर्ण १० तोला
बिदारीकंद का चूर्ण १० तोला
आंबा हल्दी दारुहल्दी वंशलोचन
बड़ीइलाइची कलमीशोरा (सूर्यक्षार)
शिलाजीत ५-५ तोला
वंगभस्म स्वर्णमाक्षिकभस्म चन्दनतैल
—तीनों २॥-२॥ तोला

निर्माणविधि—भस्म, तैल और शिलाजीत छोड़ शेष चीजों को खरल में २ दिन घुटाई करें। बाद में भस्म मिला कर घोटें। तीसरे दिन शिलाजीत और तैल मिलाकर घोटें। फिर हल्दी के क्वाथ के साथ ३ दिन घोटकर मटर बराबर गोली बनालें।

गुण—१ गोली से ३ गोली तक प्रातः सायं योग्य अनुपान के साथ देने से सब प्रकार के प्रमेह नष्ट होते हैं।

श्री पं० रमाकान्त जी शर्मा

सकनापुर कलां, पो० केशरगञ्ज (बहिराइच)

पिता का नाम — श्री. पं० बल्देवप्रसाद शर्मा

आयु—३७ वर्ष चिकित्साकाल—१७ वर्ष

लेखक

"श्री वैद्यजी अनुभवी और सफल चिकित्सक हैं। आपने अपने चिकित्साकाल में सफल प्रमाणित प्रयोगों को धन्वन्तरि में प्रकाशनार्थ प्रेषित कर अपनी उदारता का परिचय दिया है। पाठक आपके सफल सरल प्रयोगों से लाभान्वित होंगे ऐसी आशा है।"

—सम्पादक।

१-उपदंशनाशक वटी—

रसकपूर कत्था बढ़िया छोटीइलायची के बीज

निर्माणविधि—उपरोक्त तीनों चीजों को पहिले कूट-कपड़छान करके बारीक चूर्ण बनाले। पश्चात् खरल में डालकर ऊपर से भँगरा का स्वरस डाल-डालकर चार दिन तक घुटाई करें। जब वटी बनाने योग्य होजाय तब मूङ्ग के बराबर वटी बनाकर रखलें।

प्रयोगविधि—२ गोली मलाई, दूध की साढ़ी या घी के साथ निगल जांय। केवल एक बार शाम को। इसी प्रकार २ सप्ताह सेवन करे। सेवन काल में बेसन की रोटी घी से खायें या उपरोक्त रोटी चना की दाल से खायें किन्तु दाल में नमक सेंधा डाले। दूध भी गाय का पिया जाय तो उत्तम है।

गुण—इस प्रयोग से उपदंशरोग, कुष्ठ, रक्तविकार,

स्याह-काले-सफेद दाग भी नष्ट होजाते हैं।

नोट—इस वटी से मुंह आजाना स्वस्थ होने का सूचक है। मुंह आने पर चमेली की पत्ती का काथ बनाकर कुल्ला करने से अच्छा होजाता है।

२—उपदंशनाशक क्वाथ—

भटकटैया की जड़	इन्द्रायन की जड़
बबूल की फली	झरबेरी की जड़
कचनार की छाल	—प्रत्येक ५-५ तोला।
गुड़ पुराना	२५ तोला

विधि—उपरोक्त सभी चीजें कूटकर एक जीव करके ५-५ तोला की १० मात्रा बनालें। और एक मात्रा को आधा सेर जल में क्वाथ बनावे। अष्टमांश रहने पर पीवें।

गुण—इसी तरह १० दिन पीने से उपदंशरोग समूल नष्ट होजाता है।

३—उपदंशव्रण पर मलहम—

केलोमेल	१० ग्रेन
एडोफार्म	१० ग्रेन
जिंक-आक्साइड	२० ग्रेन
वैसलीन सफेद	१ तोला

विधि—उपरोक्त चारों चीजें मिश्रित करके मलहम बनालें और पहिले व्रण-स्थान को कार्बोलिक साबुन से धोकर तथा पोंछकर इस मलहम को लगावें। बहुत शीघ्र व्रण अच्छे हो जायेंगे।

उपरोक्त तीनों प्रयोग अनेक बार के परीक्षित प्रयोग हैं, अतः वैद्यबन्धु इन प्रयोगों द्वारा सफलता प्राप्त करें।

४—ज्वरनाशकवटी—

पीपल छोटी	५ तोला
कञ्जा की गूदी	५ तोला
जीरा सफेद	२॥ तोला
बबूल की पत्ती	२॥ तोला

विधि—उपरोक्त चारों चीजें खरल करके चना के बराबर गोली बनाकर सुखालें।

सेवन विधि—सुबह, दोपहर, शाम तीनों समय एक-एक गोली खाकर ऊपर से ताजा जल दो घूंट पी लें।

गुण—इस गोली से आंत्रिकज्वर के अतिरिक्त सब तरह के ज्वर ठीक होजाते हैं।

शीतज्वर में—जाड़ा लगने से एक या आधा घण्टा पूर्व दो गोली खिलाकर ऊपर से गुड़ का शर्बत उसमें १ माशा हल्दी पीसकर मिलावे और गोली खिलाकर ऊपर से पिलादे। दवा सेवन के बाद रोगी को उढ़ाकर लिटादे। इस तरह करने से उसी रोज ज्वर नहीं आता है।

५—प्रवाहिकानाशक योग—

बबूल की ताजी पत्ती	१ तोला
अनार की ताजी पत्ती	१ तोला
धनिया पुरानी	४ माशे
जीरा सफेद	३ माशे
शक्कर (सफेद)	२॥ तोला

विधि—उपरोक्त पांचों चीजें शाम को मिट्टी के कोरे पात्र में पावभर जल के साथ भिगोदें। सुबह सिल पर पीसलें और कपड़े में छानकर पीले।

गुण—इस प्रयोग से अतिसार संग्रहणी तक अच्छे होजाते हैं। प्रवाहिका के लिए तो अमोघास्त्र है।

अपथ्य—बादी तथा गरिष्ठ और गर्म पदार्थों से परहेज रखना आवश्यक है।

नोट—यह प्रयोग हमारा अनुभत तथा परीक्षत है। इसका प्रयोग विशेषकर मैंने ग्रीष्मऋतु में किया है।
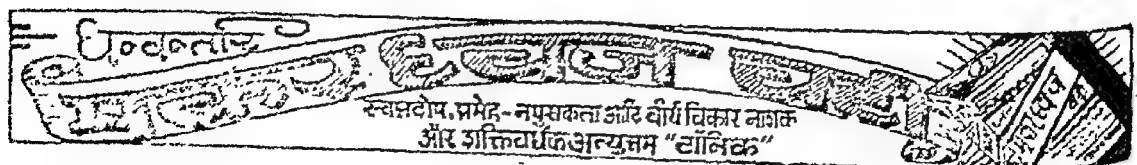
अमरकन्द (EULOPHIA NUDA)

(लेखक—श्री० पं० कृष्णप्रसाद जी त्रिवेदी, B. A., आयुर्वेदाचार्य)

विशेष द्रष्टव्य—यह हमारे भारतवर्ष की ही एक अद्वितीय गुणशाली वनौषधि है, किंतु खेद है कि इसकी ओर हमारे वैद्यों का बहुत ही कम ध्यान गया है। ★आयुर्वेदीय-निघण्टुकारों ने इसकी उपेक्षा की है। कई लोग मानकन्द को ही अमरकन्द मानते हैं। यद्यपि दोनों के गुणों में बहुत कुछ साम्य है, तथापि मानकन्द इससे भिन्न है। अमरकन्द में गण्डमाला के सदृश मालाकार कन्द लगते हैं।

नाम—

संस्कृत में—मालाकंद, अलिकन्द, पंक्तिकन्द।

हिन्दी में—अमरकन्द, गोरुमा, अम्बरकन्द, सकाकुल भेद, इत्यादि।

मराठी—मानकन्द, मालेकन्द, भुईकाकली, दावणीचेकन्द।

बंगाली—बुदूबर। मलवारी—कथौथेकमारवर।

तेलंगी—गोरुचेन्दु। मलयालम—कंटकलोन।

लेटिन—यूलोफिया न्यूडा, यूलोफिया बायकोलार।

उत्पत्ति स्थान—

यह भारत के समशीतोष्ण प्रान्तों की पहाड़ियों पर जैसे बंगाल, उड़ीसा, छोटा नागपुर, आसाम, पंजाब, लाहौर और खासिया की पहाड़ियों पर, आबू अजिंटा, सतपुड़ा और हिमालय की तलैटियों पर नेपाल से सीकिम तक, तथा दक्षिण में कोंकण व महाबलेश्वर के पहाड़ी प्रदेश में पाया जाता है। बंगाल में प्रायः बांसों के जङ्गलों में यह पैदा होता है।

विवरण—

यह काली मुसली या सालबमिश्री की जाति का ही कन्द है। जमीन के अन्दर इसके छोटे गोलाकार किन्तु नोंकदार, श्वेत या धूसर वर्ण के, एक साथ मिले हुए मालाकार कन्द होते हैं। इसीलिये यह 'मालाकन्द' या 'कन्दलता' कहलाता है। पंक्तियुक्त होने से 'पंक्तिकंद' या 'अलिकन्द' कहे जाते हैं।

कन्द पर छोटे-छोटे श्वेत रङ्ग के फूल तथा दो या तीन केशाकृति नीलकृष्ण रङ्ग की गोल-गोल रेखायें होती हैं। पौष या माघ मास में इन कन्दों को खोद कर संग्रह करते हैं। व्यापारी लोग इसी में सालबमिश्री भी मिला देते हैं। खोदने के बाद यह शीघ्र ही नहीं सूखती। ८ या १० मास तक गीला बना

★केवल 'राजनिर्घंटु' में इसका बहुत ही संक्षिप्त उल्लेख है।
"मालाकंदः सुतीक्ष्णस्स्यात् गंडमाला विनाशकः।
दीपनो गुल्म हारी च वातश्लेष्मापकर्षकम्॥"

रहता है। वर्षाकाल के प्रारम्भ में आपही आप इसमें पत्र अंकुर फूट आते हैं।

पत्र—वर्षाऋतु के प्रारम्भ में इसके कन्द से जो पत्ते निकलते हैं, वे आकार में प्रायः काली मुसली के पत्र जैसे ही होते हैं; किन्तु लम्बाई में उनसे कुछ कम, ६ से १० इञ्च तक होते हैं, चौड़ाई में उनकी अपेक्षा कुछ अधिक, मजबूत और अणी या नोकदार होते हैं। पत्र पर ५ या ६ खड़ी केसाकार लम्बी-लम्बी सिरायें होती हैं। पत्र प्रायः तीन शाखायुक्त होने से, यह 'त्रिशिखदला' कहलाता है। पत्र मूल ग्रन्थियों से निकलते हैं, अतः इसे 'ग्रंथिदला' भी कहते हैं। ये पत्र प्रायः कार्तिक, मार्गशीर्ष मास में गल जाते हैं।

पुष्प—बड़े ही सुहावने, जामुनी हरे रङ्ग के, आकार में भूमिचंपक के पुष्प जैसे होते हैं। पुष्प के बाह्यकोष के पट्टे और पखुड़ियां लम्बा गोलाकार होते हैं। पुष्पदण्ड सीधा १ या १॥ हाथ लम्बा किरमजी रङ्ग का ठिपकों से युक्त होता है।

गुणधर्म—

यह कन्द-मधुर, उष्ण, स्निग्ध, चरपरा, दीपन क्षुधावर्धक, अत्यंत पौष्टिक है, तथा गले की क्षयरोग-जनित ग्रन्थियां या गंडमाला, गुल्म, शोथ, शूल, कृमि, वातकफजन्यदोष, अर्बुद, बालकों का कास रोग और वृश्चिकदंशजन्य पीड़ा को दूर करता है।

कंद का शुष्क चूर्ण धातुपुष्टि सम्बन्धी प्रयोगों में डाला जाता है। शोथ पर कंद को गोमूत्र में घिसकर लेप किया जाता है। और उदरकृमिनाशार्थ इसका चूर्ण जल के साथ देते हैं। चूर्ण की मात्रा—५ रत्ती से १० रत्ती तक है।

रासायनिक विश्लेषण—से ज्ञात हुआ है कि इस कन्द में स्वच्छ श्वेत पोत (जो श्वेत रङ्ग के गोंद जैसा होता है) का प्रमाण बहुत होता है। यह श्वेत सत्व, सालबमिश्री के सत्व के समान नायट्रिक एसिड में गुलाबी वर्ण का नहीं होता, जैसा का वैसा ही बना रहता है।

मुख्य प्रयोग—

(१) गण्डमाला पर—नित्य प्रातःकाल, इस कंद को भूभल में भूनकर गोदुग्ध के साथ सेवन करें; अथवा कन्द को पीसकर गेहूं के आटे की सोजी में मिला हलुवा बनाकर सेवन करें, तथा साथ ही साथ इसके कल्क को गोमूत्र में मिला, गरमकर दिन रात में ३ या ४ बार लेप करें। शीघ्र लाभ होता है।

(२) सिर दर्द पर—इसे जल के साथ पीसकर लेप करने से शीघ्र लाभ होता है।

(३) पार्श्वशूल पर—इसे गोमूत्र के साथ पीसकर और थोड़ा आग पर गरम कर लेप किया जाता है।

(४) बिच्छू के दंश पर—इसे गोमूत्र में पीसकर दंशस्थान तथा जहां तक वेदना का चढ़ाव हो लेप करने और ऊपर से सेंक देने से शीघ्र लाभ होता है।

समाचार एवं सूचनाएँ

श्री सनातन धर्म आयुर्वेद महाविद्यालय बीकानेर का

पदवी दान समारोह

श्री राजस्थान प्रान्तीय वैद्य सम्मेलन की ओर से गत २७ फरवरी को सम्मेलन सभापति खेड़ाया पीठाधीश्वर महन्त श्री हरिदत्त जी महाराज दर्शनायुर्वेदाचार्य, बी. ए. द्वारा श्री सनातनधर्म आयुर्वेद महाविद्यालय में भगवान् धन्वन्तरि के मन्दिर के संमुख झंडाभिवादन किया गया। इसके बाद राजस्थान के मुख्यमन्त्री, स्वास्थ्यमन्त्री, सम्मेलन में समागत वैद्य महानुभावों, उच्च राज्याधिकारियों, एवं बीकानेर के विशिष्ट नागरिकों के सम्मान में अल्पाहार का आयोजन किया गया। उक्त अवसर पर विद्यालय को देखकर समागत वैद्य बान्धवों ने अति प्रसन्नता प्रकट की।

इस विद्यालय का आयुर्वेद सेवा काल १० वर्ष का होचुका है अतः इस अवसर पर विद्यालय का दशाब्द महोत्सव समारोह के साथ पूर्वोक्त रूप में मनाया गया। पूज्य यादव जी महाराज के करकमलों द्वारा सम्मेलन के पण्डाल में दूर-दूर से आये हुये विद्यालय के भूतपूर्व स्नातकों का पदवीदान समारोह भी सम्पन्न हुआ। —प्रिंसीपल।

काशी वैद्यसभा का वार्षिकोत्सव—

स्थानीय अर्जुन दर्शनानन्द आयुर्वेद विद्यालय कबीरचौरा के भवन में आचार्य श्री यादव जी त्रिकम जी वैद्य बम्बई के सभापतित्व में श्री काशी वैद्य सभा का बारहवां वार्षिकोत्सव ता० १६-३-५५ को सायंकाल ४ बजे सम्पन्न हुआ। श्री अमरनाथ जी जेतली एवम् श्री श्यामनारायण जी पाठक द्वारा वेदपाठ के पश्चात् सभापति ने अपना आसन ग्रहण किया। आयुर्वेद विभाग हिन्दू विश्व विद्यालय के अध्यक्ष एवं काशी वैद्य सभा के उपसभापति श्री प० राजेश्वरदत्त जी शास्त्री ने सभापति एवं विशिष्ट अभ्यागतों को माल्य-प्रदान किया। आयुर्वेद विभाग मारवाड़ी अस्पताल के अध्यक्ष श्री पं० दुर्गादत्त जी शास्त्री ने स्वागत भाषण किया। तदनन्तर काशी वैद्यसभा के मंत्री श्री पं. ताराशंकर जी ने कार्यविवरण सुनाया। तदनन्तर श्री कैलाशनाथ जैतली ने प्रस्तावित आयुर्वेद विज्ञान परिषद् के उद्देशों पर प्रकाश डाला। आयुर्वेद विभाग बम्बई के डाइरेक्टर श्री पं० हरिदत्त जी शास्त्री ने परिषद् का उद्घाटन करते हुए कहा कि वैद्य की परीक्षा प्रत्येक रोगी पर होती रहती है, उसे सतत शास्त्र का परिशीलन करते रहने की आवश्यकता है इसलिए परिषद् के उद्घाटन करने का कार्य बड़े पुण्य का है, परिषद् का कार्य बढ़ाइये। प्रत्येक वैद्य अपने रोगियों की चिकित्सा व्यवस्था का रिकार्ड रखे तथा उस पर परिषद् में विचार विनिमय कर प्रकाशित किया जाय। वैद्यरत्न कविराज प्रतापसिंह जी ने कहा कि हमारे त्रिदोष सिद्धान्त का विकाश त्रिधातु के रूप में पश्चिम में भी होरहा है। श्री पं० शिवविनायक मिश्र वयोवृद्ध कांग्रेसी ने आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति से अपने जीवन में संकट से मुक्त होने की बात दोहराई। प्रांतीय इण्डियन मेडीसन बोर्ड के अध्यक्ष पं० दरबारीलाल जी शर्मा ने अपने प्रभावोत्पादक भाषण में बताया कि आयुर्वेद ही एक सजीव चिकित्सा प्रणाली है जिसमें शरीर के साथ मन बुद्धि और आत्मा की चिकित्सा की व्यवस्था की गई है। इसके आश्रय के बिना केवल शरीर की चिकित्सा व्यवस्था करने वाली सभी चिकित्सा प्रणालियां निष्प्राण हैं। जो वैज्ञानिक वात पित्त कफ को प्रत्यक्ष न देखने के कारण आयुर्वेद को अवैज्ञानिक कहते हैं वह स्वयं अज्ञान में हैं। उनका विज्ञान भी नित्य शरीर में रहने वाले मन बुद्धि इन्द्रिय इत्यादि को प्रत्यक्ष न कर सकने के

कारण अवैज्ञानिक ही है।

राष्ट्रपति के चिकित्सक पद्मविभूषण श्री पं० सत्यनारायण जी शास्त्री ने कहा कि वैद्य शब्द का तात्पर्य १४ विद्याओं के ज्ञाता से है इसे छोड़कर अपने को डाक्टर लिखना अपनी अवहेलना और जनता को प्रवंचित करना है। आयुर्वेदीय उपाधिधारी अपने को चाहे जितना ही डाक्टर बनाने का प्रयत्न करें सब व्यर्थ और हास्यस्पद है क्योंकि सरकार इसे कभी भी वैद्य का पद छोड़ डाक्टर का पद नहीं दे सकती, न देती है। सभापति श्री यादव जी ने कहा कि धर्मो रक्षति रक्षितः की तरह शास्त्र रक्षति रक्षितः है। आयुर्वेदशास्त्र की रक्षा करने वाले यदि आत्मबलपूर्वक कार्य करते हुए आयुर्वेद की रक्षा करें तो आयुर्वेद कभी भी लुप्त नहीं होसकता। मेरा तो यह अक्षुण्य विश्वास है कि आयुर्वेद अजर अमर है। अन्त में श्री राजेश्वरदत्त जी शास्त्री ने सब आगत सज्जनों को धन्यवाद दिया। लगभग सभी वक्ताओं ने हिन्दू विश्वविद्यालय में विशुद्ध आयुर्वेद की प्रधानता और एलोपैथी को वैकल्पिक रखने की प्रस्तावित नीति पर हर्ष प्रकट किया।

—मंत्री, ताराशंकर मिश्र।

आयुर्वेदिक प्रोफेसर सम्मेलन

प्रतिनिधि स्वास्थ्यमंत्री से मिले

बिहार आयुर्वेदिक ग्रेजुएट प्रोफेसर सम्मेलन का प्रथम अधिवेशन कविराज नन्दकिशोर मिश्र, चिकित्सा प्रोफेसर गवर्नमेंट आयुर्वेदिक कालेज, पटना के सभापतित्व में १३ मार्च को पटने में हुआ। जिसमें विभिन्न आयुर्वेदिक कालेजों के प्रतिनिधि सम्मिलित थे।

सभापतिपद से भाषण करते हुए श्रीयुत मिश्रा जी ने आयुर्वेद के अनुसंधान, विकास आदि विषयों की विवेचना कर स्टेट कौंसिल औफ आयुर्वेदिक एण्ड यूनानी मेडिसंस, बिहार के भावी निर्वाचन से उत्पन्न होने वाली खतरे की ओर ध्यान आकर्षित किया और कहा कि कौंसिल में वैद्यों का प्रतिनिधित्व अत्यल्प तो है ही, साथ ही शिक्षित वैद्यों की अपेक्षा परीक्षा बिना पास किये रजिष्टर्ड वैद्यों की संख्या दसगुनी से भी अधिक हो जाने की संभावना है। भय है कि उपाधिधारी वैद्य निर्वाचन में शायद ही कभी सफलता प्राप्त कर सकें। ऐसी अवस्था में आयुर्वेदिक कालेजों के शिक्षा का स्टैण्डर्ड बनाए रखना कठिन होगा और आयुर्वेद का भविष्य भी खतरे से खाली न रहेगा।

कविराज राधाकृष्णनाथ मिश्र, पं. चतुर्भुज चौधरी, कविराज विक्कूसिंह, पं. दारोदरप्रसाद मिश्र, पं. बांकेविहारी शर्मा, पं. रणविजयकुमार मिश्र, पं. इन्द्रासन पांडेय, कविराज कृष्णचन्द्रप्रसाद, पं. ओमप्रकाश उपाध्याय झांसी, प्रभृति के भाषण के बाद कई प्रस्ताव स्वीकृत हुए।

सम्मेलन की ओर से १४ प्रतिनिधियों का एक डेपुटेशन माननीय स्वास्थ्य मंत्री पं. हरिनाथ मिश्र तथा आयुर्वेदिक स्टेट कौंसिल के प्रेसीडेंट जस्टिस वशिष्टनारायण राय, पटना हाईकोर्ट से मिलकर संकटमय परिस्थिति से उन्हें परिचित कराया और अनुरोध किया कि निर्वाचन में खड़े होने वालों की शिक्षा की योग्यता एक्ट में फिर से निर्धारित करदी जाय और लिस्टेड वैद्यों की सूची का कार्य भी जारी कर दिया जाय।

उक्त महानुभावों ने प्रोफेसरों की कठिनाई को स्वीकार किया और सहानुभूति से विचार करने का आश्वासन दिया।

—इन्द्रासन पांडेय, आयुर्वेदिक कलेज, पटना।

उत्तर प्रदेश के—

स्वास्थ्य अधिकारी ध्यान दें

महोदय,

उत्तर प्रदेश की सरकार का भारतीय चिकित्सा का पांच वर्ष का एक ही पाठ्यक्रम है, परीक्षा उत्तीर्ण छात्र को Bachelor of Indian Medicine and Surgery की उपाधि मिलती है। उपाधि में स्नातक को आयुर्वेदिक काय चिकित्सा (medicine), तथा शल्य (Surgery) में व्यवसाय करने का अधिकार दिया गया है। आयुर्वेददृष्ट्या कायचिकित्सा के

वास्तविक अर्थ रोगी को स्वास्थ्य प्रदान करने के हेतु संसार में जहां से भी औषधियां मिलें उनका व्यवहार करना चाहिए। कोई भी सीता की रेखा नहीं हैं कि उस रेखा में आने वाले पदार्थ ही आयुर्वेदिक औषधियां कहलायेंगी अन्य नहीं, या अन्य देशों में हुई नवीन खोजों के प्रति आयुर्वेदज्ञ अपनी आंखें मूद लें।

इसी धारणा को हृदय में रखकर उत्तर प्रदेश की सरकार ने B. I. M. S. नवीन पाठ्यक्रम प्रचलित किया है जिसके अन्दर प्राचीन (आयुर्वेदिक) नवीन (ऐलोपैथिक) दोनों प्रकार की Medicine and Surgery पढ़ाई जाती हैं जिससे B. I. M. S. स्नातक आवश्यकता के अनुसार रोगी को स्वस्थ करने के हेतु हर प्रकार के पदार्थ प्रयोग कर सकें।

फिर अब प्रश्न उठता है कि जब B. I. M. S. स्नातक नवीन पाठ्यक्रम के अनुसार Modern medicine, surgery, Pathology and Bacteriology पढ़ता है तथा इन विषयों में उत्तीर्ण होने के लिए कम से कम चालीस प्रतिशत (४०%) लिखित व पचास प्रतिशत (५०%) क्रियात्मक परीक्षाओं में अङ्क प्राप्त करता है तब आश्चर्य की बात है कि जिस विज्ञान को पढ़ा जाय व समझा जाय उसी के प्रयोग करने से वञ्चित रहे। सरकार से प्रार्थना है कि वह इस विषय पर विचार करे कि जब B. I. M. S. स्नातक दोनों प्रकार की औषधियां व शल्य जानते हैं तो उनके ऊपर किसी प्रकार की औषधि प्रयोग की पाबन्दी नहीं होनी चाहिए तथा उनकी उपाधि में नवीन पाठ्यक्रम का जो संकेत नहीं है वह अवश्य होना चाहिए। जब विदेशी सरकार इन स्नातकों को नवीन पाठ्यक्रम में विशेष योग्यता प्राप्त करने का अवसर देती है तो क्यों नहीं उत्तर प्रदेशीय सरकार इस विषय पर विचार करती, तथा इन स्नातकों के लिए नवीन व प्राचीन पाठ्यक्रमों में विशेष योग्यता प्राप्त करने का अवसर देती ताकि इस क्षेत्र में प्रगति हो सके।

—मन्त्री

स्टूडेण्ट वेलफेअर कमेटी, आर. ए. कालेज हरद्वार।

आयुर्वेद जगत से नम्र अपील

आदरणीय महानुभाव !

आपकी सेवा में मुझे यह सूचित करते हुए अत्यधिक हर्ष होरहा है कि आयुर्वेद परिषद रानीखेत, द्वारा अपने प्रारम्भिक जीवन से आजतक अहर्निश यथाशक्ति आयुर्वेद की सेवा की गई है, उत्तर प्रदेश में ही नहीं समस्त भारतवर्ष में यह प्रथम संस्था है जिसने अप्रैल मई १६५१ में वैद्य प्रशिक्षण शिविर का आयोजन करके वैद्य बन्धुओं के मध्य में चिकित्सा का सामञ्जस्य स्थापित करके राष्ट्र का नेतृत्व किया। भारतवर्ष के भिन्न-भिन्न आयुर्वेदिक कालेजों के आचार्य तथा छात्रवर्ग को पर्वतीय वनौषधि अन्वेषण तथा संग्रह कार्यों में पूर्ण हार्दिक सहयोग प्रदान किया जा रहा है। इस समय तक विहार (वेगूसराय) हिन्दू विश्वविद्यालय काशी, ललितहरि आयुर्वेदिक कालेज पीलीभीत का नाम विशेष उल्लेखनीय है। जिनके आचार्य तथा छात्र-वर्गों द्वारा इस परिषद् के तत्वावधान में पर्वतीय प्रदेश की यात्रा सम्पादन करते हुये वनौषधि-संग्रह तथा परिचयात्मक प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त किया है।

'परिषद' के कार्य-कर्त्ताओं से हार्दिक सहानुभूति तथा सहयोग प्रदान करते हुये पूज्यपाद आचार्य यादव जी त्रिकम जी महाराज (बम्बई) ने परिषद का आजीवन सदस्यत्व तथा अध्यक्षता स्वीकार करने की महती कृपा की है। आचार्य श्री विश्वनाथ द्विवेदी जी, डा. भीखनलाल आत्रेय जी, प्रो० बलवन्तसिंह जी, प्राणाचार्य कविराज प्रतापसिंह जी, आचार्य पं. जगन्नाथप्रसाद शुक्ल जी, आचार्य पं. घनानन्द-पन्त जी, कविराज रामरक्ष पाठक जी, लेडीडाक्टर कविराज सत्यवती जी, प्रोफेसर रामकृपालु गुप्त जी प्रभृति आयुर्वेद के लब्धप्रतिष्ठ, आयुर्वेद के कर्णधार महारथियों द्वारा इस परिषद की सम्माननीय सदस्यता (Directorship) स्वीकार करके इसे अखिल भारतीय रूप प्रदान करने की कृपा की गई है।

"हिमवनौषधि भूमीनाम्" प्राचीन भारत के

आचार्यों महर्षियों की यह देववाणी आज भी पूर्ण रूपेण उतनी ही सत्य तथा महत्वपूर्ण है जितनी कि आज से हजारों वर्ष पूर्व स्वर्णकाल में की गई थी, आयुर्वेद को राष्ट्रीय-चिकित्सा के गौरवपूर्ण पद पर अभिषिक्त करने के लिये यह नितान्त अवश्यकीय है कि हिमालय प्रदेश की बहुमूल्य वनौषधियों की रक्षा तथा राष्ट्र के आयुर्वेदज्ञ चिकित्सकों के द्वारा इनका प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त किया जाय, क्योंकि इन्हीं वनौषधियों पर आसेतु-हिमाचल, समस्त भारतीय आयुर्वेद व उसके कर्णधारों का जीवन व सम्मान का प्रश्न अवलम्बित है. हिमालय का पर्वतीय प्रदेश किसी प्रान्त अथवा राज्य विशेष की सम्पत्ति न होकर समस्त राष्ट्र की निधि है।

"आयुर्वेद परिषद" द्वारा यह योजना प्रस्तुत की गई है कि रानीखेत में एक पर्वतीय-वनौषधि-उद्यान, संग्रहालय, तथा अन्वेषणालय स्थापित किया जाय। जिसमें भारतवर्ष के समस्त आयुर्वेद महाविद्यालयों के आचार्य-छात्रवर्ग, तथा अन्वेषण के इच्छुक चिकित्सक महानुभाव समय समय पर इस प्रदेश की यात्रा करते हुये सुगमतापूर्वक वनौषधियों का प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करने के साथ ही अपनी चिकित्सा-औषधि निर्माण के हेतु प्रामाणिक-पुष्ट व नवीन वनौषधियों का संग्रह कर सकें।

अतएव रानीखेत में वनौषधि उद्यान के हेतु भूमि तथा निवास स्थान के निर्माण हेतु इस समय ५००००) पचास हजार रुपयों की नितान्त आवश्यकता है, यह वनौषधि उद्यान, संग्रहालय, तथा निवास भवन समस्त आयुर्वेद जगत राष्ट्र की निधि के रूप में रहेगा।

एतदर्थ भारतवर्ष के समस्त चिकित्सक महानुभावों, पूज्य आचार्यवर्ग, आयुर्वेद के छात्रवृन्द व भारतीय संस्कृत के प्रेमी महानुभावों की सेवा में हमारी करबद्ध प्रार्थना है कि वे मुक्त हस्त से स्वेच्छापूर्वक आर्थिक सहायता प्रदान करते हुये इस राष्ट्र निर्माणयज्ञ में श्रद्धापूर्ण आहुति देंगे।

मन्त्री—"आयुर्वेद परिषद" रानीखेत।

राजस्थान प्रान्तीय वैद्य सम्मेलन द्वारा

वैद्यों के पंजीकरण में श्रेणिभेद का तीव्र विरोध

राजस्थान प्रान्तीय वैद्य सम्मेलन ने एक प्रस्ताव के द्वारा वैद्यों के पंजीकरण में श्रेणिभेद को व्यर्थ बतला कर समस्त वैद्यों को एक ही श्रेणि में पंजीकरण करने का राजस्थान सरकार से अनुरोध किया है। प्रस्ताव को उपस्थित करते हुए आचार्य नित्यानन्द ने बतलाया कि वैद्यों में श्रेणिभेद के द्वारा फूट डालकर आयुर्वेदोन्नति में बाधा डालने की दुराकांक्षा इस प्रस्ताव के बाद दूर होजानी चाहिए। सरकार को चाहिए कि वह वैद्यों की इस न्यायोचित मांग के अनुसार ही वैद्यों के रजिस्ट्रेशन-कार्य को आगे बढ़ाये। श्री सीताराम मिश्र ने प्रस्ताव का समर्थन करते हुए कहा कि बम्बई प्रान्त में श्रेणिभेद का कोई स्थान नहीं है। वहां पर आयुर्वेद संसार के सर्वोत्तम वैद्य श्री आचार्य यादव जी और एक सामान्य वैद्य को एक ही श्रेणि में पंजीकृत किया गया है।

रजिस्ट्रेशन एक्ट में श्रेणिभेद सम्बन्धी धाराओं में परिवर्तन कराने के लिए सरकार से अनुरोध के अलावा विधान सभा के सदस्यों से भी सम्पर्क स्थापित करने के लिए आचार्य नित्यानन्द के संयोजकत्व में एक समिति की स्थापना सम्मेलन ने अपने एक दूसरे प्रस्ताव के द्वारा की

--आचार्य नित्यानन्द जी।

आयुर्वेद में अनुसंधान के लिए

'धन्वन्तरि—परिषद्' की बैठक

पटना, ३१।३।५५। गवर्नमेंट आयुर्वेदिक कालेज, पटना की "धन्वन्तरि-परिषद्" का अधिवेशन कल एक बजे दिन में पं. ब्रह्मदत्त शर्मा, प्रिंसीपल आयुर्वेदिक कालेज, बेगूसराय के सभापतित्व में हुआ।

परिषद् के स्थायी सभापति कविराज नन्दकिशोर मिश्र चिकित्सा-प्रोफेसर, आयुर्वेदिक कालेज पटना ने प्राथमिक भाषण में समागत विद्वानों का स्वागत करते हुए कहा कि इस संघर्षमय युग में वैद्यों को निजी स्वार्थों को भूलकर आयुर्वेद-विज्ञान के उपादेय

तत्वों को विज्ञान की कसौटी पर कस कर प्रकाश में लाना चाहिए। उसी अनुसंधानात्मक प्रवृत्ति की ओर विशिष्ट छात्रों को प्रवृत्त करने के लिए परिषद् प्रवृत्त है और प्रमुख विद्वानों के समक्ष अपनी गवेषणा-सम्बन्धी उलझनों को सुलझाने एवं समझने के लिए रखती है।

समारोह का उद्घाटन करते हुए विहार देशी चिकित्सापद्धति के सुपरिंटेंडेंट पं० हजारीलाल सुकुल ने कहा कि आयुर्वेद में धन्वन्तरि का युग स्वर्णयुग समझा जाता है। उनके नाम पर स्थापित यह परिषद् शल्य और कायचिकित्सा में वैद्यों को नव प्रेरणा दे, यह मेरी आन्तरिक अभिलाषा है।

पं० ब्रह्मदत्त शर्मा जी ने व्रण-शोथ का विश्लेषण करते हुए कहा कि नव चिकित्सा विज्ञान भी वही तथ्य प्रकट करता है, जो हजारों वर्ष पहले आचार्य सुश्रुत ने त्रिदोष सिद्धान्तानुसार प्रकट किया था।

विचार विनिमय में प्रोफेसर सिद्धेश्वरनाथ उपाध्याय, प्रो० सुखरामप्रसाद, प्रो० विक्कूसिंह, डा० बलदेश्वरीप्रसाद, श्री धर्मनारायण झा, श्री रामाश्रय शर्मा प्रभृति ने भाग लिया।

उपमन्त्री—श्री वीरेन्द्रसिंह आयु० कालेज पटना।

श्वास-शिविर की सफलता

श्वास-दम्मा एक जिद्दी व कठिन रोग है। हमारे गरीब भाइयों के लिये तो तीव्र कष्ट देने वाला है। स्वर्गीय जमनालाल बजाज द्वारा स्थापित माधव सेवा समिति सीकर के प्रधान वैद्य श्री प्रहलादराय जी आयुर्वेदाचार्य ने इस रोग के २०००० से अधिक रोगियों की चिकित्सा करके अत्यन्त दुखी मानव समाज को नर्क से स्वर्ग में स्थापित कर दिया है। अपने हमारे वर्तमान राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद जी की चिकित्सा कई बार की है और सफलता प्राप्त की है। समाचार पत्रों के पाठकों ने बहुत बार पढ़ा होगा कि कलकत्ता की मारवाड़ी रिलीफ सोसायटी ने श्री प्रहलादराय जी वैद्य द्वारा अनेक श्वास शिविर (कैम्प) कराये हैं। श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन के प्रधान संचालकों ने अपने जन्मस्थान गांव कांसली में ता० ६ मार्च से श्वासशिविर कराया। इसमें २६५ श्वास के रोगियों की चिकित्सा हुई। श्री प्रहलादराय जी ने प्रत्येक रोगी की परीक्षा करके दवा दी। प्रातः और सायं दवा की एक पुड़िया पान के साथ दी गई। खाने में बिना नमक जौ की रोटी और पीने के लिए गर्म पानी। तीन दिन में ९० प्रतिशत् रोगियों को पूर्ण लाभ रहा, यदि किसी विदेशी डाक्टर ने ऐसी औषधि का आविष्कार किया होता तो तमाम संसार में तूफान आजाता। परन्तु आयुर्वेद की दवा और उसका भी बिना मूल्य वितरण होना आर्य-पद्धति होने के कारण राज्यनेता, पत्र सब चुप हैं। वैद्यसमाज को तो विश्वास भी नहीं होता कि ऐसी श्रेष्ठ दवा हमारे खजाने में भी है।

श्री प्रहलादराय जी बिना मूल्य और बिना निजी परिश्रम लिये इस काम को तीन वर्ष से कर रहे हैं। करीब २०००० रोगियों को आरोग्य दे चुके हैं। इस ऋषिकल्प महापुरुष के चरणों में मेरा तो स्वयं नतमस्तक होकर बिना प्रेरणा ईश्वर से मंगल कामना होने लगती है और ऐसे परोपकारी भाई के कार्य से वैद्य के नाते गर्व का अनुभव होता है।

—श्री. वैद्य रामनारायण जी झांसी।

वैद्यों को अच्छी नौकरी दी जायगी

आयुर्वेद चिकित्सा प्रणाली अधिक वैज्ञानिक है।

लखनऊ। राजकीय आयुर्वेद व यूनानी चिकित्सा संघ, उत्तर प्रदेश के नवें वार्षिकोत्सव का उद्घाटन करते हुए मुख्य मन्त्री श्री सम्पूर्णानन्द ने कहा कि एलोपैथिक प्रणाली से आयुर्वेद चिकित्सा प्रणाली अधिक वैज्ञानिक है। एलोपैथिक प्रणाली में साधारण ज्ञान काफी है परन्तु उसमें सभी बीमारियों के विभाजन और इलाज के नियम नहीं हैं। परन्तु आयुर्वेद में बहुत काल से ही बीमारियां पित्त, वात और कफ में विभाजित होती आयी हैं, वैद्य बीमारी को लक्षणों से ही बता सकते हैं।

सम्मेलन में आये हुए हकीमों और वैद्यों से

उन्होंने कहा कि आप लोग अपने को तथा अपने पेशे को स्वयं नीची निगाह से न देखें तथा यह विश्वास रखें कि यदि आपके ज्ञान में नयी खोजें और मिला दी जायें तो वह इन्सान को रोगों के प्रकोपों से बचाने के लिए बहुत बढ़िया साधन होगा।

खेद की बात है कि भारतीय चिकित्सा प्रणाली को लोग सस्ती प्रणाली कह कर अपनाते हैं। यदि इसी कारण के बल पर आयुर्वेद रहना चाहता है तो उसका खत्म हो जाना ही बेहतर है।

आयुर्वेद के पुराने शिक्षकों की निस्वार्थता पर बोलते हुए उन्होंने कहा कि आयुर्वेद की सर्जरी और प्लास्टिक सर्जरी शाखाएं भी थीं, परन्तु वे अलग होने के स्थान पर उसी में मिल गयीं। उन्होंने आधुनिक प्लास्टिक सर्जरी की प्रणाली का विकास बताते हुए कहा कि हमारी पुस्तकों में यह विवरण मिलता है कि अगर पति अपनी पत्नी की नाक काट ले तो वह फिर से जोड़ी जा सकती है। प्लास्टिक सर्जरी सुश्रुत ने की थी।

मुख्य मंत्री ने बताया कि राज्य धीरे-धीरे भारतीय चिकित्सा प्रणाली को एलोपैथिक प्रणाली के बराबर स्थान देगा और वैद्यों को सहायता तथा अच्छी नौकरी दी जायगी। —नागरिक।

संक्षिप्त-समाचार

—ता० २ मार्च को देहरादून की अदालत में वैद्य अमरनाथ जी ने उत्तर प्रदेशीय वैद्य सम्मेलन के भू० पू० प्रधान मंत्री श्री दयानिधि शर्मा पर कार्यालय सम्बन्धी सम्मेलन के कागजात न देने के अपराध में अभियोग दायर कर दिया है जिसकी अब तक ३ पेशियां हो चुकी हैं।

—ड्रग्स एक्ट के मातहत रुरुगंज इटावा के वैद्य परमानन्द जी को बिना लाइसेन्स लिये एलोपैथी की दवाओं का प्रयोग करने तथा बनाने व बेचने के जुर्म में ३ महीने की सख्त कैद की सजा दी गई है।

—उत्तर प्रदेशीय सरकार के शिक्षा विभाग ने सर्कुलर नं० ए. ४३६४-१५-३०० आई०१-३।५० द्वारा भारत के समस्त शिक्षा विभागों को लिखा है कि अ० भा० विद्वद् सम्मेलन अलीगढ़ की समस्त परीक्षायें अमान्य घोषित कर दी गई हैं, अतः इस संस्था की किसी भी परीक्षा को मान्यता न दी जाये।

—ता० २२-२३-२४ मई को अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन आयुर्वेदाचार्य वैद्यरत्न पं० शिवशर्मा जी की अध्यक्षता में त्रावनकोर कोचीन राज्य में होगा।

—अ० भा० आयुर्वेद महामंडल विद्यापीठ का शिक्षा सम्मेलन आयुर्वेद महासम्मेलन के साथ ही जबलपुर के सुप्रसिद्ध वैद्य आचार्य भीकाजी विनायक डिग्वेकर एम० ए० एल० बी०, एम० एस-सी० की अध्यक्षता में होगा।

—उत्तर प्रदेशीय जर्राह सभा का वार्षिक अधिवेशन चौ० हकीम उल्लाह जर्राह की अध्यक्षता में ३१ मार्च व १ अप्रैल को मुजफ्फरनगर में हुआ जिसमें जर्राहों को इण्डियन मेडीशन बोर्ड द्वारा रजिष्टर्ड किये जाने की मांग की गई।

—उत्तर प्रदेशीय बोर्ड आफ इण्डियन मेडीशन ने एक विज्ञप्ति द्वारा वैद्य-हकीमों को सूचित किया है कि जिनके प्रार्थनापत्र रजिष्ट्री के लिये २८ फरवरी सन् ५३ तक बोर्ड के कार्यालय में आचुके हैं इनके रजिट्रेशन प्रायः होचुके हैं फिर भी यदि किन्हीं महानुभावों का रजिस्ट्रेशन किन्हीं कारणों से न हुआ हो तो रजिस्ट्रार बोर्ड आफ इण्डियन मेडीशन उत्तर प्रदेश लखनऊ को पत्र लिखकर प्राप्त करलें।

—इलाहाबाद के सुप्रसिद्ध वैद्य आयुर्वेद पंचानन पं० जगन्नाथप्रसाद शुक्ल के नेतृत्व में वैद्यों का एक प्रतिनिधि मण्डल गत मास भारत के प्रधान मंत्री श्री जवाहरलाल जी नेहरू से आनन्द भवन में मिला

और अनुरोध किया कि प्रयाग में शीघ्र ही एक आयुर्वेदिक कालेज की स्थापना की जावे।

—देहली के वैद्य गुरुदत्त, वैद्य राधेलाल, कविराज हजारीलाल, जे० पी० कथूरिया, तथा हकीम रामआसरे का एक शिष्ट मंडल देहली राज्य के स्वास्थ्य मंत्री डा० युद्धवीरसिंह से पुनः मिला और उसने मांग की कि दुकानदारी कानून से वैद्य-हकीमों को मुक्त किया जाय। साथ ही वार्षिक रिन्यूवल फीस वैद्यों हकीमों पर से शीघ्र हटाई जाय।

—ता० १३ व १४ फरवरी को लखनऊ विश्वविद्यालय में आयुर्वेदिक कालेज पाठ्यक्रम समिति की बैठक हुई जिसमें वैद्यरत्न पं० शिवशर्मा जी बम्बई, अयुर्वेदाचार्य श्री विमालानन्द जी तर्कतीर्थ कलकत्ता डा० प्राणजीवन मेहता जामनगर ने भी विशेष रूप से भाग लिया। इस कमेटी ने ५ वर्ष के लिये आयुर्वेद प्रधान पाठ्यक्रम बनाकर तैय्यार किया प्रवेश योग्यता इण्टर साइन्स के बजाय अब इण्टर तथा मध्यमा परीक्षा पास रखी गई है। इण्टर पास छात्र को संस्कृत का सम्यग् ज्ञान और मध्यमा पास छात्र को अंग्रेजी का सम्यग् ज्ञान होना आवश्यक होगा।

मालवा आयुर्वेद मण्डल, जगरांव—

मण्डल की सर्वसाधारण बैठक में सर्वसम्मति से चुनाव निम्न प्रकार हुआ—

प्रधान—श्री स्वामी सुन्दरदास जी।
उपप्रधान—श्री भागसिंह जी, श्री करतासिंह जी।
प्रधानमन्त्री—वैद्य सत्यपाल गुप्ता।
मन्त्री—वैद्य सन्तसिंह जी, श्री ठाकुरसिंह जी।
प्रचार मंत्री—श्री सरुपानन्द जी।
कोषाध्यक्ष—श्री कुन्दनसिंह जी।
आयव्यय निरीक्षक—पं० रामजीदास जी।
,, श्री बचनदास जी, श्री तेजभान जी।

कार्यकारिणी बनाने का अधिकार अधिकारी-वर्ग को दिया गया। —प्रधान मन्त्री।

आयुर्वेद मण्डल सिरसा (हिसार)—

७-१-५५ को वैद्य कन्हैयालाल जी के औषधालय में श्री वैद्य शिवकुमार जी की अध्यक्षता में मण्डल की बैठक हुई और निम्न प्रकार वार्षिक चुनाव हुआ—

सभापति—वैद्य चेतराम जी।
उपसभापति—वैद्य शिवकुमार जी।
मन्त्री—वैद्य कन्हैयालाल जी।
कोषाध्यक्ष—वैद्य विद्याधर जी। —मन्त्री।

कल्याणकारिणी वैद्य सभा ब्यावर—

ता० २३-३-५५ को श्री जैन सेवा समिति औषधालय में उपर्युक्त वैद्य सभा की बैठक हुई और नये वर्ष का चुनाव निम्न प्रकार सम्पन्न हुआ—

सभापति—वैद्यराज श्री रविदत्त जी आर्य।
उपसभापति—,, ,, चिरंजीलाल जी।
मन्त्री— ,, ,, मुकुन्दलालजी आयुर्वेदाचार्य।
उपमन्त्री— ,, ,, भंवरलाल जी शास्त्री।
,, ,, ,, रमेशचन्द्र जी लाटा।
कोषाध्यक्ष—श्री बी० रतन मिश्रा जी। —मन्त्री।

वैद्य सभा, हरदुआगंज—

श्री पं० रामस्वरूप जी आयुर्वेदाचार्य के सभापतित्व में स्थानीय वैद्य सभा का वार्षिक अधिवेशन ता० २४-३-५५ को हुआ तथा नवीन चुनाव निम्न प्रकार सर्व सम्मति से सम्पन्न हुआ—

प्रधान—पं० रामस्वरूप जी आयुर्वेदाचार्य।
उपप्रधान—पं० गोपीवल्लभ जी।
प्रधानमन्त्री—आचार्य आनन्दवल्लभ जी त्रिवेदी।
मन्त्री—पं० कच्छीलाल जी।
सहायक मन्त्री—कविराज भगवानदास जी।
कोषाध्यक्ष—श्री हजारीलाल जी वैद्य।
आयव्यय निरीक्षक—श्री बनवारीलाल जी।

एक प्रस्ताव द्वारा सभा की बैठक प्रति माह होना निश्चित हुआ। —प्रधानमन्त्री।

तदेव युक्तं भैषज्यं यदारोग्याय कल्पते ।
स चैव भिषजां श्रेष्ठो रोगेभ्यो यः प्रमोचयेत् ॥

—च० सू० १-१३२.

भाग २९ | धन्वन्तरि कार्यालय बिजयगढ़ | मार्च
अङ्क ४ | का मुखपत्र | १९५५

यह वस्तुतः आयुर्वेदिक अनुसंधान नहीं

बल्कि एलोपैथिक अनुसंधान है ।

केन्द्रीय सरकार की ओर से आयुर्वेद में अनुसंधान को प्रोत्साहन देने का जो दावा किया जाता है, वह सिर्फ आयुर्वेदिक जड़ी-बूटियों का इस दृष्टि से परीक्षण किया जाता है कि उन्हें अन्ततोगत्वा एलोपैथी दवा बना लिया जाय। यह वस्तुतः आयुर्वेदिक अनुसंधान नहीं है; बल्कि एलोपैथिक अनुसंधान ही है। अगर आयुर्वेदिक अनुसंधान उपयुक्त रीति से किया जाय, तो उससे आयुर्वेद को लाभ होना चाहिये। इसलिये अनुसंधानकर्ताओं की सहायता से यह काम आयुर्वेद के विद्वानों को ही करना चाहिये। आयुर्वेद के शोध और अन्वेषण की आज सख्त जरूरत है, किन्तु इसके लिये स्वतंत्र व्यवस्था होनी चाहिये एवं इस कार्य के लिये प्रसिद्ध आयुर्वेदशास्त्रियों का सहयोग प्राप्त किया जाना चाहिये। देश में आयुर्वेदिक अनुसंधान के लिये आयुर्वेदिक के विशिष्ट विद्वानों की एक केन्द्रीय परिषद् स्थापित की जानी चाहिये।

—श्रीयुत के० एम० मुंशी, राज्यपाल—उत्तरप्रदेश।

जीवन, यौवन का संरक्षक—क्षारतत्व !

(डा० रामशङ्कर मिश्र) ।

मानव आकांक्षाओं की अतृप्त पिपासा आज बहुत तीव्र बन चुकी है। वह आकाश पर आंखें गड़ाकर अपने सृष्टा के साथ प्रतियोगिता करने के लिये कटिवद्ध है। उसकी सृजन प्रेरणाएँ साकार बनने के लिए छटपटा रही हैं। किन्तु हमारी मनुष्यता की ऊंचाल गर्त में गिर रही है। हममें से सैकड़ों, हजारों, नहीं लाखों को चारों ओर से आलस्य-अवसाद घेरे रहता है। असफलता, नैराश्य और अन्यमनस्कता की त्रिविध वायु बारी-बारी से झकोरा करती है। कभी कटिशूल की शिकायत है तो कभी पीठ में पीड़ा, आज फुंसिया शरीर को छलनी कर रही हैं तो कल उदर प्रदेश में बादल गड़गड़ा रहे हैं। सफलताएँ कारे कोसों दूर भाग रही हैं और हम बन रहे हैं पृथ्वी की पीठ का अनावश्यक बोझ ! हममें से अधिकांश इस गोल-माल का कारण भी नहीं समझते। अधिकांश लोग भाग्य का कुचक्र और दिनों का फेर मानकर मुर्दों की भांति जिया करते हैं कुछ एक डाक्टरों तक पहुंचने का प्रयास करते हैं। डाक्टर कहते हैं तुम्हारे रक्त में अम्लता अधिक बढ़ गई है।"

कोई अम्लता-वृद्धि के अनुपात को ठीक करने के लिये सोडाबाईकार्ब की टिक्कियां, जिजामेंट, 'मिल्क आफ मगनेशिया' की व्यवस्था करता है तो कोई सूचिकाभरण चिकित्सा का परामर्श देता है। इन उलटे-सीधे उपायों से लोगों को अल्पकालीन आराम आजाता है और फिर बढ़ जाती है वही परेशानी। रोगी डाक्टरों का बिल चुकाते-चुकाते ऊब जाता है किन्तु रोग करवटें बदलता रहता है। जब तक बीमार को व्याधि का कारण न हृदयङ्गम करा दिया जाय, दवा द्वारा उसे दबाने की तदबीर व्यर्थ है।

रोग और आरोग्य दोनों का आधार है आहार। अयुक्त एवं अत्याहार बीमारियों को आमंत्रित करता और सन्तुलित आहार, उसका सम्यक पाचन, शरीर का पोषण करता है। जो कुछ खाया जाय, दांतों की चक्की में पिसकर उसके सूक्ष्मातिसूक्ष्म कण होजांय, शारीरिक परिक्रिया उसे रस और रक्त में परिवर्तित करदे और मलांश को शरीर के बाहर निकाल दे; यह क्रिया यदि नियमित रूप से होती रही, निर्दोष रक्त प्रवाहमान होकर शारीरिक अवयवों को खाद्य सामग्री पहुंचाता रहे तो आपका स्वास्थ्य एवं सौन्दर्य तप्त-स्वर्ण की भांति निखरता रहेगा। दूसरे शब्दों में कहा जासकता है कि उत्तम शोणित ही आरोग्य का मूल है। रक्त के निर्माण में रसायनिक रीति से ८० प्रतिशत क्षार और २० प्रतिशत अम्लतत्व होता है। क्षार और एक का यह अनुपात सुरक्षित रहे, आरोग्य, सौन्दर्य और यौवन को व्याघात न पहुँचेगा। निर्दोष, रक्त विशेषकर क्षारमय और स्वाद में होता है नमकीन ।

रहन-सहन, संयम-असयंम, आहार-विहार, इस अनुपात को न्यूनाधिक्य कर देता है। फिर भी आम्ल और क्षारतत्व निर्माण में हमारे आहार की मुख्यता रहती है। इसे और अधिक बोधगम्य बनाने के लिए आम्ल एवं क्षारपोषक आहारों की तालिका नीचे प्रस्तुत की जारही है।

आम्लपोषक—

मांस, मछली, अण्डा, पनीर, रोटी, दालें, छरे चावल आदि, मिठाइयां, मुरब्बे, औटाया दूध, बेर, सफेद खांड, चाय-काफी, तली हुई चीजें, नशे वाले पेय एवं पदार्थ तथा फास्फोरस, गन्धक, क्लोरीन, आयोडीन, संखिया ब्रोमाइन तत्वपूर्ण वस्तुएं।

—

राब, सेम, हरीमटर मूली गाजर टमाटर शल-चुकन्दर, गोभी, पातगोभी, गुच्छी, कुकुरमुत्ता, आदि तरकारियां, मेंथी, बथुई, पालक, ई आदि शाक, मुनक्का, किशमिश, खजूर, ट, बादाम, पिस्ता आदि सूखे मेवे, अंगूर, अमरूद, अनार, अनन्नास, अंजीर, पीपल, सेव, नाशपाती, मोसबी, सन्तरा, नीबू, आम, बेल आदि फल, धारोष्ण दूध, मठा, पुटाश, चूना, तांबा, सोडा आदि क्षारतत्व बाहुल्य, क्षारपोषक हैं।

क्षार, पेशियों का सङ्गठन करते, दिल, जिगर, तिल्ली, फेफड़ा, गुर्दों के कर्म को सुचारु रूप से चलाने में सहायता करते, दांत, अस्थि को दृढ़ बनाते, रक्त को लाल रखकर शुद्ध एवं प्रवाहमान रखते हैं। क्षार हमारी खूराक में कमोवेश प्रत्येक वस्तु में पाया जाता है किन्तु पाकशाला की पटुता, भूनने, पकाने, निचोड़ने, मिर्च मसालों के संयोग से आग पर तलने में वे प्रायः नष्ट होजाते हैं। भोजन में ऊपर से नमक मिलाने की आवश्यकता का मूल प्राकृतिक क्षारों का नष्ट होजाना है। प्रायः सभी शाक क्षार सम्पन्न होते हैं किन्तु उन्हें सुस्वादु बनाने, मिर्च-मसाले और सिरके मिलाने की परिक्रिया द्वारा हम उस तत्व को गंवा बैठते हैं। मादक पेयों की प्रतिक्रिया प्रायः अम्लकारक उतने परिमाण में नहीं होती किन्तु इनके व्यवहार से आम्लतत्व के बाहर निकलने में बाधा पड़ती है। यह तत्व शरीर द्वारा, फेफड़ों से गैस के रूप में, पसीने पेशाव और पाखाने के रास्ते निकलता रहता है। अगर मनुष्य डटकर शारीरिक परिश्रम करता है तो अम्लपोषक पदार्थ, यदि अधिक न व्यवहार किए जांय, तो सरलता से पाचन होकर शरीर से निकल जाते हैं। स्नायु और मज्जा की रचना के लिये थोड़ी मात्रा में आम्ल पदार्थों की भी शरीर को आवश्यकता पड़ती है। वे चोकर मिले चक्की के आटे, छिलकों वाली दाल और हाथ के कुटे चावलों और थोड़े दही के रूप में हमारे अन्दर पहुँचती रहती है। कुछ अम्लता अधिक पहुँची तो शारीरिक श्रम उसे रक्त हड्डियों आदि तथा शरीर रक्षित क्षार कोष से लेकर अनुपात को ठीक रखता है। किन्तु कठिनता है निरन्तर आम्लपोषक पदार्थों का प्रचुरता से प्रयोग करने वाले बाबुओं, आरामतलब अमीरों और भोजनभट्ट महानुभावों के लिए। बीड़ी सिगरेट के धुएं से कृत्रिम आकाश बनाने वाले, सिनेमा, पार्टियों और नाच में रात बिताने वालों का बुरा हाल होता है। प्रकृति इस वृद्धिगत तत्व को कम करने के शरीर के क्षारों को खींचते, फलस्वरूप वे लोग दुर्बल बन जाते, मसूढ़ों में सूजन होजाती, और छाती में जलन, खट्टी डकारें आने लगतीं और दांत जुट्ठल होजाते हैं। रक्त की बढ़ी हुई अम्लता मनुष्य को किस भांति पीड़ित करती है—भुक्त भोगी ही अनुमान कर सकता है।

मूत्रपरीक्षा—

बढी हुई रक्त की अम्लता का अर्थ है क्षार की न्यूनता। टोरँटो विश्वविद्यालय के डाक्टर पलाजो-विथ चाँट ने १६ लड़कों के आहार में पुटाश और चूने के परिमाण को कम कर दिया, दूसरे दिन ही १४ लड़कों ने कब्ज होने की शिकायत की; सप्ताह के पश्चात् उनकी आंतें निष्क्रिय हो चलीं। क्षार और आम्लतत्व के अनुपात में विषमता उत्पन्न होने पर प्रकट होने वाले लक्षणों का विवेचन कई स्थलों पर किया जा चुका है। अधिक निश्चय के लिए, आरोग्य को यावत्कर्मों का आधार मानने वाले महानुभावों को, किञ्चित सन्देह होने पर मूत्रपरीक्षा करा लेना ही उचित होगा। ऐसे रोगियों के मूत्र में एसीटोन (Acetone) तत्व की विद्यमानता अवश्य होगी। मूत्र साधारणतया किञ्चित् अम्ल तो होता ही है और इसके द्वारा रक्त अपने विष को भी निकालता है। अस्तु अधिक अम्लता वालों में रुधिर की अपेक्षा १०० से १००० गुना आम्ल मूत्र में होना चाहिए। गुर्दे खराब होने की अवस्था में कभी-कभी पसीने द्वारा यह तत्व बाहर निकलता और नन्हीं किरचों के रूप में त्वचा पर यत्र-तत्र जमा हुआ दिखलाई पड़ता है

गन्ध भी मूत्र की आती है। मूत्र का क्षारीय (Alkaline) होना भी कम चिन्ताजनक नहीं। मूत्र का क्षारीय होना इस तथ्य को प्रकट करता है कि शरीर का विष नियमित रूप से बाहर नहीं होरहा है। इस अनियमितता का कारण है मूत्रोत्पादक अङ्ग गुर्दे का अपना कर्तव्यपालन न करना।

इस बढ़े हुए आम्लतत्व के अनुपात को सुधारने के लिए आधुनिक चिकित्सक जिन औषधियों की व्यवस्था करते हैं वे प्रायः क्षारमय होती हैं। इन कृत्रिम—खनिज, सामुद्रिक अथवा अन्य साध्यमों द्वारा प्राप्त-क्षारों या नमकों को शरीर ग्रहण न करके बाहर निकाल देता है। नमक का व्यवहार फिर भी उत्तरोत्तर बढ़ता ही जाता है। साधारण सीमा का अतिक्रमण कर आज यह मानव जाति के लिए अभिशाप बन गया है। प्रसिद्ध पाश्चात्य वैज्ञानिकों की एक गोष्ठी में 'नमक' पर वाद-विवाद प्रारम्भ हुआ और बहुमत ने विवाद को इस वाक्य के साथ समाप्त किया—"सभ्य मनुष्य नमक में सुरक्षित रहने वाला अचार बनता जारहा है।"

"क्षारमय औषधियों के प्रचुर प्रयोग द्वारा गुर्दे ही कमजोर और बरबाद नहीं होते प्रत्युत शरीर में ऐसे भयानक अनिष्ट प्रकट होजाते हैं जो बढ़ी हुई अम्लता के कुपरिणामों से कहीं अधिक दुखदाई सिद्ध होते हैं"—यह है कोलम्बिया विश्वविद्यालय के प्रोफेसर एच० सी० शरमैन की वजनी राय। येल विश्व विद्यालय के विश्व-विश्रुत वैज्ञानिक अध्यापक यायदेल होडर्सन का अनुभव भी आपके ही शब्दों में सुनिये-

"रक्त की बढ़ी अम्लता को कम करने के लिए वर्तमान क्षारमय औषधियां रोग की अपेक्षा शरीर को अधिक हानि पहुंचा रही हैं, + इनके शरीर में संचित होने के कारण 'इरिस' नामक आंख के पर्दे पर एक प्रकार का गोल घेरा सा बन जाता है जिसे "सोडियम रिंग" कहते हैं। डा० आर० पेनिंगटन ने लगभग चौथाई शताब्दी तक 'नमक' प[illegible] किए हैं। एक राजयक्ष्मा एवं मधुमेह के [illegible] नमक छोड़ने से काफी लाभ हुआ। आप[को] मधुमेह की शिकायत हुई, आपने नमक का सीमित किया, वह ठीक होगई। आप[का] [अनु]भव है कि नमक के खुले व्यवहार के कारण मधुमेह की ही व्याधियां पल्ला नहीं पकड़[तीं] धमनियों की लचक नष्ट होकर वे कठोर हो जा[ती हैं] असमय बुढ़ापा घेर लेता है। + एक दूसरे डाक्टर इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि अधि[क नमक] खाने से 'पुरुषत्व' शक्ति में दुर्बलता आजाती [है]। डा० हेरीगेज् ने शल्यक्रिया तथा शवच्छेदन [द्वारा] पता लगाया है कि नमक का खुला व्यवहा[र करने] वालों में कभी-कभी उसका शरीर से निष्कासन [न] होने के कारण, वह सन्धि या अन्य स्थलों में [जम] जाता है; वे अङ्ग निर्बल होजाते, रक्त [भी] वहां पहुंच नहीं पाता, परिणामस्वरूप लोग रोगग्रस्त बन जाते और कभी-कभी काल-कवलित भी हो जाते हैं। ये हैं खनिज, सामुद्रिक एवं औषधिरूप में होने वाले क्षारों के कसरत इस्तेमाल के कुपरिणाम, आम्लतत्व नियमन के लिए नमकों द्वारा अनेकों रोग मोल लेने के कटु अनुभव। इस विवेचन द्वारा निष्कर्ष निकलता है कि क्षारमय औषधियों का प्रयोग और अधिक नमक का व्यवहार दोनों स्वास्थ्य के लिए अहितकर हैं।

अब प्रश्न यह उठता है कि जीवन को जड़त्व की ओर लेजाने वाले, लक्ष्य से सदैव दूर रखने वाले, साहस, स्फूर्ति के शत्रु आम्लतत्व की बढ़ती हुई प्रगति को कैसे रोका जाय? उपाय स्पष्ट है और उत्तर निश्चित—क्षारतत्व की अभिवृद्धि एवं क्षार पोषक पदार्थों का व्यवहार। घोड़े में हवा से बातें करने वाला वेग कैसे पैदा हुआ—हरी घास खाकर। हाथी को इतना बल और ऐसा विशाल शरीर कैसे

+ 1. See medical Record Oct. 1939.

+ Health and vitality vol. iii 2.

★ The Doctor vol XI. N. 9.

मिला—बरगद पीपल के वल्कल द्वारा। बन्दर में इतनी स्फूर्ति कहां से आई—मांसाहार से नहीं फल और साग-भाजियों से। प्राचीन भारत के ऋषि मुनि 'शाकाहार', 'फलाहार' और 'दुग्धाहार' के आधार पर ही विश्व का नेतृत्व करते थे। आपको फिर असमञ्जस क्यों? धारोष्ण दूध पीजिये, हरे शाक सब्जियां खाइये अथवा कीजिए फलाहार। एक से काम न चले, तो तीनों वर्गों का थोड़े-थोड़े परिमाण में ग्रहण कर अपना पोषण कीजिए। अम्लतत्व स्वतः दब जायगा, क्षार बढ़ेगा, दूध, शाक, तरकारियों एवं फलों द्वारा प्रकृत रूप में ग्रहण किया गया यह क्षार आपके रक्त में घुल-मिलकर क्रिया-...ना, चुस्ती, साहस, शक्ति और उल्लास सभी कुछ ...न्न करेगा। विदेशों में लोग एक प्रयोग वर्षों चलाते हैं। आप मास या पक्ष में ही इसके प्रभाव का परिणाम पा सकते हैं; प्रारम्भ करने की हिम्मत तो कीजिए! क्षारतत्वपोषित शरीर में कोई भी रोगाणु पैठने का कष्ट न करेंगे। भूल की तो बढ़ी-चढ़ी रोगप्रतिरोधक शक्ति उनका काम-तमाम कर देगी। क्षार तो कृमिनाशक है न!

यदि चटपटी जबान, कच्ची चीजों पर अधिक काल तक आरूढ़ न रह सके तो पाकशाला में बैठकर व्यञ्जनों का भी स्वाद लीजिये किन्तु अन्न २० प्रतिशत से अधिक न हो। २० प्रतिशत हों टमाटर, प्याज, धनियां की पत्ती, पत्तों सहित मूली, गाजर, राई, बथुआ, मेंथी आदि का शाक। २० प्रतिशत हों भाप में उबाली बिना मसालों वाली तरकारियां, २० फीसदी ऋतु में मिलने वाले आम, जामुन, पपीता, पीपर, गूलर, बरगद, बेल, अमरूद, मकोय आदि में से सरलता से सुलभ फल और भोजन का २० प्रतिशत होजाय, बकरी या भैंस का धारोष्ण दूध, दही (मीठा) अथवा मठा।

दौड़, सैर, व्यायाम, तैरना आदि में से एक या दो, जो चाहें अपना लें। बस इतनी सरल साधना, इतना कम खर्च और ऐसा बढ़िया स्वास्थ्य, आप स्वयं दंग रह जायंगे। कल काहिलों का कलाम है। आज जवानों की मुहूर्त है। इसका प्रथम चरण सङ्कल्प के लिये है और दूसरा चरण है उसे साकार बनाने के लिए। बस, यौवन, स्वास्थ्य एवं सौन्दर्य का मनोरम प्रसाद इसी कार्यक्रम की नींव पर निर्मित हो सकता है।

क्षय रोगी का मानसि विश्लेषण

—लेखक
डा. देवराज श्र

बार जम लौ चौ म आ गू जा ।

हमारा यह मानव शरीर मन द्वारा नियन्त्रित एवं संयत है। शरीर के गहरे विकारों का मन पर काफी दुष्प्रभाव होता है यह बात निरापद है तथा स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मन रहता है यह एक सनातन सत्य है। आंखें चेहरा एवं अन्यान्य अङ्ग शारीरिक एवं मानसिक विकारों के अनुकूल ही अपने आपको यथोचित स्थिति में ढाल लिया करते हैं। क्रोध के आवेश में चेहरा आग-बबूला अर्थात् लाल सा हुआ रहता है अथवा शोक में श्यामवर्ण, तथा उदासीन दिखाई देता है और प्रसन्नता में यह शुभ्रवर्ण एवं खिला हुआ सा लगता है।
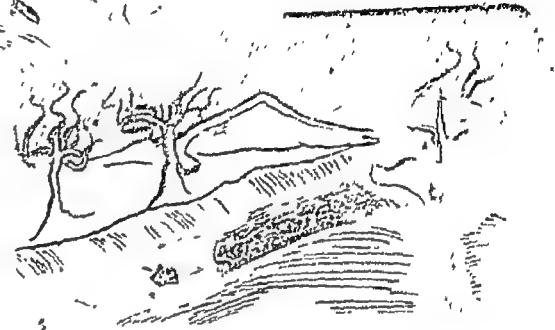
इसी प्रकार भिन्न भिन्न बीमारियों में भिन्न-भिन्न अङ्गों के विकारों में विविधता दृष्टिगोचर होती है। इस लेख में हम केवल क्षयरोगी (तपेदिक के बीमार) का मानसिक विश्लेषण करेंगे जिसे आज से हजारों वर्ष पूर्व श्री महर्षि चरकने अपने चिकित्सा ग्रंथ में सूत्ररूप में हमारे सन्मुख उपस्थित किया था क्षयरोगी के मानसिक जगत् का अध्ययन कर ऋषि लिखते हैं—

> स्वप्नेषु काकशुकशल्लकीनीलकण्ठाः,
> गृध्रास्तथैव कपयः कृकलासकाश्च।
> तं वाहयन्ति स नदीः विजला च पश्येत्,
> शुष्कांस्तरून्पवन धूमदवार्दिताश्च॥

अर्थात् क्षयरोगी इस प्रकार के स्वप्न देखता है कि मानों कौआ तोता मोर गीध आदि पक्षी एवं अन्य बन्दर गिरगिट सेहे आदि प्र उसे अपनी पीठ पर उठाये हुए आकाश में उ जाते हों अथवा उसे भ्रमण कराते फिर रहे हों। उसे इस प्रकार आभास होता है।

द्वितीय प्रकार के स्वप्नों में उसे ऐसा प्रतीत होता है कि मानों नदियां जलरहित अथवा कम जल वाली होकर बह रही हों

तृतीय प्रकार के स्वप्नों में उसे नदी के किनारे पर खड़े वृक्ष आग से धधकते एवं झुलसते से प्रतीत होते हैं।

इन तीन प्रकार के स्वप्न उसे प्रायशः देखने में आते हैं। अब हमें विचार करना है कि इस प्रकार के स्वप्न उसे क्यों दिखाई देते हैं और इनका अभिप्राय क्या है ?

स्वप्न क्या है—अर्धसुप्तावस्था में जब कि हमारी अर्ध चेतनात्मक मन कार्य कर रहा होता है और वह मानस पटल पर अनिश्चयात्मक चित्रों को अंकित किये रहता है इसे ही हम स्वप्नावस्था कहते हैं। इस

वस्था से उठने के अनन्तर हम कहा करते हैं कि मने आज अमुक स्वप्न देखा और उसमें ये ऐसा-सा था इत्यादि।

प्रायशः ये स्वप्न मनुष्यों के निजी जीवन एवं नकी दिनचर्या अथवा परिस्थितियों से पर्याप्त संबंध खने वाले हुआ करते हैं। यदि दूसरे शब्दों में हते हुए हम यह कहें कि मनुष्य प्रायशः अपनी नचर्या जिन्दगी तथा अपनी अवस्थाओं के अनु-ार ही स्वप्नों को देखा करता है तो अनुचित न होगा।

मनुष्य को यह संसार अपनी अन्तःमनोअवस्था का तद्रूप ही दिखाई देता है।

यदि हम प्रसन्न हैं तो सम्पूर्ण विश्व हमें दुख से कहीं दूर सुख से भरपूर सा जान पड़ता है। यदि हम दुःखी हैं तो हमें सुखदायक वस्तुएँ भी दुखदा-यिनी मालूम होती हैं। यह मनोविज्ञान का मौलिक सिद्धान्त है।

(१) इसी प्रकार जब क्षयरोगी धीरे धीरे दुर्बल, क्षीण तथा पतला हो रहा होता है तथा वह अनुभव करता है कि बड़ी तेजी से उसका वजन कम हुआ जारहा है तब वह अपनी वास्तविक अवस्था के अनु-कूल ही स्वप्न देखता है और उसे अपना वजन कम होता समझ पड़ता है कि मानों कौए, तोते, मोर गीध आदि पक्षी उसे पीठ पर उठाये आकाश मार्ग में उड़ाये लिये जाते हों। यह उसके क्षीण होते हुए शरीर का दर्शक स्वप्न है।

(२) उसे नदियां जलरहित हो रही हैं ऐसा स्वप्नों में प्रतीत होता है—ऐसा क्यों होता है?

वास्तव में एक क्षय रोगी की रस, रक्त, मांस, मेद, मज्जा, शुक्र, ओज आदि सातों धातुएँ भली भान्ति परिपुष्ट न होने के कारण सूख रही होती हैं जिससे उसका शरीर भी धीरे-धीरे सूख जाता है इस लिये अपनी अन्दर की अवस्था के अनुसार ही बाह्यजगत् दिखाई पड़ता है। वे नदियां जो कभी सर्वथा जलशून्य नहीं हो सकतीं, उसे जलरहित सी भासती हैं।

(३) उसे नदी के किनारों के वृक्ष आग से धध-कते से प्रतीत होते हैं। वास्तव में क्षयरोगी को प्रति समय ज्वर (बुखार, सन्ताप) रहा करता है तथा उसके हाथों, पावों एवं उनके तलवों से हर समय आग सी निकला करती है इसी कारण से उसे बाह्य जगत् अपनी अन्तः मनो अवस्था का मूर्तरूप ही दिखाई देता है। जिससे उसे नदी के किनारे के वृक्ष दहकते तथा धूप से व्याप्त प्रतीत होते हैं।

इन उपरोक्त मनोवैज्ञानिक तथ्यों को यदि ताक में रख कर हम श्लोक पर विचार करें तो प्रायशः व्यक्ति कह उठेंगे कि क्या मूर्खतापूर्ण क्षयरोगी का वर्णन है। किन्तु गहराई में उतरने पर ही उस गूढ़ सत्य को पाया जा सकता है। ऋषियों द्वारा प्रति-पादित एवं वर्णित विषय सचमुच गूढ़ बुद्धि द्वारा ही ज्ञातव्य हुआ करते हैं जिसे हर व्यक्ति का ठीक समझ सकना इतना सरल नहीं जितना कि कभी-कभी हमारे समाज के कुछ व्यक्ति मान बैठते हैं।

हमें उपरोक्त वर्णन से अधिक सुन्दर सुगूढ़ तथा नितान्त सत्य तथा सूत्रमय वर्णन (क्षयरोगी के मन का) किसी अन्य चिकित्सा पद्धति में देखने में नहीं आया ऐसा हम अवश्य कह सकते हैं। आशा है हमारे शास्त्रज्ञ ऋषियों की असत्यता प्रमाणित करने से पहले अपने ज्ञान की न्यूनता पर विचार कर लिया करेंगे।

दूषीविष विज्ञान तथा चिकित्सा

लेखक—आयुर्वेदालंकार वैद्य प्रहलादराय शर्मा आयुर्वेदाचार्य A. S. V. सालासर।

चरक का मत—

दूषीविषं तु शोणितदुष्टमरु: किटिभकोठलिङ्गं च।
विषमेकैकं दोषं संदूष्य हरत्यसूनेवम्॥

क्षरति विष तेजसाऽसृक् तत् खानि निरुध्य मारयति-जन्तुम्। पीतं मृतस्य हृदि तिष्ठति दष्टविद्धयोर्दंश-देशे स्यात्॥ —चिकित्सा स्थान अ० २३ श्लो०३०-३१

सुश्रुत का मत—

यत्स्थावरं जंगम कृत्रिमंवा, देहादशेषं यद् निर्गतं तत्।
जीर्णं विषघ्नौषधिभिर्हतं वा, दावाग्नि वातातप शोषितं वा,
स्वभावतोवा गुण विप्रहीनं हि दूषी विषता मुपैति।
वीर्याल्प भावान्न निपातयेत्तत् कफावृतं वर्षगणानुबंधि॥

दूषीविष के लक्षण—

विष सेवन के बाद जब चिकित्सा की जाती है तो कभी कभी औषधि के प्रभाव से विष हीनवीर्य होकर शरीर के सूक्ष्म अवयवों या सेलों में कुछ न कुछ विष-अंश रह जाता है, और यह महीनों और कभी कभी वर्षों तक शरीर में रहता है इसी को दूषीविष कहते हैं।

यह दूषीविष प्राणनाशक नहीं होता, किन्तु यह शरीर को कष्ट पहुंचाता है। इसके परिणामस्वरूप कभी फोड़े फुन्सी दद्रु आदि हो जाते हैं, कभी वमन मूर्च्छा आदि लक्षण उत्पन्न होते हैं, जो कि वास्तव में किसी व्याधि के कारण नहीं होते अपि तु शरीर में जो विष रह जाता है, उनके प्रभाव से होते हैं।

दूषीविष पुराना पड़ने से या विषनाशक औषधियों द्वारा कम शक्ति (ताकत) वाला होने से या वन-अग्नि, वायु या तेज धूप से सूख जाने से कमजोर होजाता है। स्थावर या जङ्गम किसी तरह का भी विष जब हीनशक्ति हो जावे तो वह दूषीविष हो जायगा। जैसे किसी ने संखया आदि किसी प्रकार का विष खालिया हो और उस हालत में वैद्य ने उसकी चिकित्सा करके उसको शान्त कर दिया हो। किन्तु इलाज करते समय वह किसी अंश में शरीर में रह गया हो, और शरीर में रहते रहते बहुत पुराना पड़ गया हो, जिससे कि वह विष के समान वेगों को नहीं कर सकता है तो वह दूषीविष कहलायेगा।

दूषीविष नियुक्ति (नामकरण)—

दूषितं देश कालान्न, दिवास्वप्नै रभीक्ष्णशः।
यस्मा दूषयते धातून्, तस्मा दूषीविषं स्मृतम्॥

अर्थात् पूर्वोक्त कारणों से हीनवीर्य विष जब शरीर में रह जाता है, तो वह समान गुण देश काल तथा अन्नपान से और दिन में अधिक सोने से विकृति को प्राप्त होकर धातुओं को दूषित (खराब) कर देता है, इस वास्ते इसका नाम दूषीविष पड़ा है।

दूषीविष का कार्य—

तेनार्दितो भिन्न पुरीष वर्चो, दुष्टा सृ रोगी तृडरोच-कार्त। । मूर्च्छन् वमन गद्गद् वग्विमुह्यान भवेच्च दूष्यो दर-लिङ्ग जुष्ट। ॥

यह पहले बताया जा चुका है कि यह विष लक्षण उष्ण आदि गुणों के कमजोर होने से शरीर में कफ से आच्छादित होकर वर्षों पड़ा रहता है। जिससे अग्निमान्द्य तथा परिपाक क्रिया में विकृति बनी रहती है।

दूषी विष से पीड़ित रोगी का दस्त पतला तथा रंग बदला हुआ होता है। और रोगी रक्त (खून) विकृति से उत्पन्न होने वाले विद्रधि विसर्प-तिल्ली आदि रोगों से पीड़ित रहता है। अरुचि और प्यास लगती है।

कभी मूर्च्छा (बेहोशी), कभी उल्टी होजाती है, वाणी में तुतलाहट और सन्निपातज उदररोग के लक्षणों से युक्त रहता है।

सन्निपात के उदररोग में रोगी दुबला-कमजोर और पीले रंग का हो जाता है। तथा उसको समय समय पर बेहोशी होती और प्यास लगती है।

स्थानभेद से दूषीविष के कार्य—

आमाशयस्थे कफवात रोगी, पक्वाशयस्थेऽनिल पित्तरोगी।
भवेन्नरोध्वस्त शिरोरूहांगो, विलूनपक्षश्च यथा विहंग ॥

दूषीविष के आमाशय में रहने पर कफ और वातसम्बन्धी रोगों को उत्पन्न करता है। और इससे पीड़ित मनुष्य के शिर तथा शरीर के बाल उड़ जाते हैं, जैसा कि पंख और रोमों से रहित कोई पत्नी।

रसादि सात धातुओं में रहने से निम्न लिखित प्रकार से तत्तद्गत विकारों को पैदा करता है। रस धातु में होने से दूषीविष से अरुचि अजीर्ण, शरीर में टूटन, ज्वर, उबकाई, भारीपन, दिल में घबराहट, त्वचा में खिंचाव (संकोच), बालों में सफेदी, मुंह का जायका खराब शरीर में थकान आदि रोग होते हैं

रक्त में होने से विसर्प फोड़े फुन्सियां मस्से तिल, चकत्ते झाईं तिल्ली विद्रधि वातरक्त शरीरदर्द खुजली रक्तपित्त आदि रोगों को पैदा करता है।

मांसधातु में होने से दूषीविष अधिमांस-कहीं पर शरीर में मांस बढ़कर लटक जाता, रसोली, अर्श (बवासीर) अधिजिह्वा (जीभ के नीचे बढ़ जाना) उपजिह्वा (जीभ के ऊपर बढ़ जाना) गलगण्ड (घेघा) गण्डमाला (गले में छोटी छोटी गांठों का पैदा होना) आदि रोग उत्पन्न होते हैं।

मेदे में होने से अण्डकोषों का बढ़ना-गलगण्ड अर्बुद (रसौली) मधुमेह (*Diabetese*) शरीर में मोटापन पसीना अधिक आना आदि रोग हो जाते हैं।

हड्डी में होने से कहीं पर हड्डी का बढ़ जाना, दांत के ऊपर दांत निकलना, नाखूनों में खराबी आदि रोग होजाते हैं। मज्जा में होने से अंधेरी आना मूर्च्छा भ्रम, जोड़ों में मोटापन आदि रोग होते हैं। शुक्र में होने से नामर्दी, स्त्रीप्रसंग में अरुचि, पथरी, पेशाब के साथ धातु का गिरना तथा और भी वीर्य की खराबियां उत्पन्न होजाती हैं।

दूषीविष के प्रकोप का समय—

दूषीविष अत्यन्त ठंडी हवा के चलने पर तथा बहुत जोर का जाड़ा पड़ने पर और ऐसी हालत में जब कि आकाश (आसमान) बादलों से घिरा है। और छोटी बूंदों के साथ कभी कभी बारिस भी होती हो तो यह उसी समय कुपित होकर रोगों को पैदा कर देता है।

दूषीविष का पूर्वरूप व रूप—

निद्रा गुरुत्वं च विजृम्भणं च, विश्लेष हर्षा वथवांगमर्दः।
ततः करोत्यन्न मदा विपाकं, मरोचकं मण्डलकोठजन्मः ॥

दूषीविष का प्रकोप होने से पूर्व यह हालत होती है कि उस रोगी को नींद तथा जम्भाई अधिक आती है, तथा जोड़ों में ढीलापन आ जाता है, और शरीर में टूटन तथा रोंगटे खड़े हो जाते हैं।

रूप—जब दूषीविष कुपित होता है, तब भोजन करने पर मद (नशा) करता है, और भोजन नहीं पचता तथा अरुचि हो जाती है।

शरीर में मण्डल तथा चकत्ते पड़ जाते हैं। शरीर का मांस दिन-दिन घटने लगता है। हाथ-पैर और आंखों में सूजन बढ़ जाती है रोगी को मूर्च्छा उल्टी और दस्त लग जाते हैं। श्वास प्यास और ज्वर होजाता है, तथा रोगी का पेट भी बढ़ जाता है।

दूषीविष के भेदों के विचार—

कोई दूषीविष उन्माद (बावलापन) पैदा करता है, कोई पेट में अफारा तथा कोई शुक्र को नष्ट कर देता है। इसी तरह कोई जबान में तुतलाहट कोई कोढ़ को पैदा करता है।

इस प्रकार के अनेक विसर्प-विस्फोटक आदि रोग अनेक प्रकार के दूषीविषों से होजाते हैं। पहिले बतलाया गया था कि कोई विष हीनवीर्य होने से या चिकित्सा करने पर भी अच्छी तरह बाहर न निकलने के कारण शरीर में रह जाने से दूषीविष हो जाता है वही जङ्गम या स्थावर विष पीछे

समय समय पर अनेक प्रकार के रोगों को पैदा कर देता है।

दूषीविष प्रकोप का कारण

दिन में अधिक सोने से, कुलथी तिल मसूर आदि अहित अन्नों के खाने से तथा ठंडी हवा के चलने पर बादल और वर्षा के होने पर दूषीविष कुपित होकर शरीर में फैलता हुआ रोगों को पैदा कर देता है।

दूषीविष की साध्यासाध्यता—

साध्य मात्मवतः सद्यो, याप्यं सम्वत् सरो सितम्।
दूषीविष मसाध्यस्यात् क्षीणस्या हित सेवनः॥

एक वर्ष के अन्दर की तथा पथ्य सेवन करने वाले जितेन्द्रिय मनुष्य का दूषीविष जल्दी ठीक हो जाता है।

एक वर्ष बाद वह याप्य होजाता है, अर्थात् पथ्यपूर्वक रहने से तथा औषधि सेवन करने से आराम रहता है। कुपथ्य करने से और औषधि छोड़ने से पुनः हो जाता है। अगर दूषीविष वाले के मांस तथा-धातु क्षीण होगये हों और वह कुपथ्य करता हो तो आराम नहीं हो सकता है।

कृत्रिम विष या गरविष—

मनुष्य द्वारा कई विषोपविषों तथा दूसरी औषधियों के संयोग से बना हुआ विष "कृत्रिम विष" कहा जाता है। इनके दो भेद हैं।

१—सविष २—निर्विष

(१) जिस कृत्रिम विष का सम्बन्ध विष से होता है तथा उनमें विष भी डाला जाता हो तो उसे दूषीविष कहते हैं।

(२) जिसका सम्बन्ध विष से नहीं होता अपितु अनेक प्रकार की औषधियों का संयोग विष के समान कार्य करता हो तो उसे "गर विष" कहते हैं।

जैसे बहुतसी दुष्टा स्त्रियां अपने पति को वश में करने के लिये, पति से रहित स्वतन्त्र विहार करने के लिये उन्हें अपना आर्तव (माहवारी खून) और शरीर का मैल पसीना नाखून आदि मिलाकर खिला दिया करती हैं वे आर्तव आदि सब मिलकर धातु-क्षीणता, मन्दाग्नि ज्वर आदि रोगों को उत्पन्न करते हुए विष का काम करते हैं, इसलिये उन्हें गरविष कहते हैं।

अनेक प्रकार के द्रव्यों से बना हुआ कृत्रिम (बनावटी) विष दो प्रकार का है। १—दूषीविष २—गरविष।

गरविष का कार्य—

गरविष से पीड़ित मनुष्य पीला, अत्यन्त कृश, मन्दाग्नि, कास-श्वास, ज्वर, वायु की गति विपरीत होने से उसको नींद तथा चिन्ता घेरे रहती है। यकृत सीहा बढ़ जाते हैं, आवाज़ धीमी कमजोर, आलस्य तथा कमजोरी अधिक बढ़कर सर्वांङ्ग शोथ। गरविष का रोगी स्वप्न में सियार, बिल्ली-सर्प नौला आदि बन्दरों आदि को देखता है। जलाशय नदी नाले कूवे तालाब आदि को भी सूखा ही देखता है। गोरा आदमी अपने को काला, काला अपने को गोरा और अपने को नाक आंख और मुंह से रहित स्वप्न में देखता है। अगर गरविष वाले रोगी की जल्दी ही चिकित्सा न की जाय तो वह शीघ्र मर जाता है।

दूषीविष व गरविष के सात वेग

स्थावर, जङ्गमविष के समान ही ज्यादा असर होने से अन्त में सात वेगों के लक्षण दिखाई देते हैं। विष के दौरे आमाशय से लेकर शुक्र में पहुंचने तक बदलती हुई अवस्थायें हैं।

सात वेगों में तीन वेग विष के आमाशय में रहने से माने जाते हैं, और चार वेग चौथे से लेकर पांचवे तक, विष के पक्वाशय में पहुंचने तक होते हैं। चरक ने विष के आठ वेग माने हैं वाग्भट्टादि ग्रंथों ने सात वेग माने हैं।

दूषीविष चिकित्सा

"दूषी विषार्तं सुस्विन्नं मूर्ध्वंऽन्धश्च शोधितम्।
दूषी विषारिमगदं, लेहयेन्मधुना प्लुतम्॥१॥

दूषीविष वाले की चिकित्सा करने के पूर्व रोगी को स्वेद (बफारा) देकर पश्चात् वमन विरेचनों से शुद्ध करलें। बाद को नीचे लिखा हुआ दूषीविषारि अगद शहद में मिलाकर चटाना चाहिये, इस अगद के हजम होने पर विषघ्न यवागू पिलानी चाहिए।

दूषीविषारि अगद—

पीपल, गन्धेल घास, जटामांसी (बालछड़), लोध की छाल, इलाइची, हुलहुल अरलू, तगर, कूठ, मुलहठी, चन्दनसफेद, सोनागेरू इन सबको बराबर भाग लेकर पीसकर शहद-घी मिलाकर चटावे। दूषीविष के ज्वर-दाह, हिचकी अफारा, सूजन दस्त आदि उपद्रवों में उन-उन रोगों की चिकित्सा करनी चाहिये किन्तु इन उपद्रवों को शान्त करने के साथ साथ विषघ्न औषधियां अवश्य देते रहना चाहिये।

विषघ्न यवागू—

कड़वी तुम्बी के पत्ते, चीता, पाठा, हरड़, गिलोय, लिसोड़ा, शिरस की छाल, ओंगा, दारुहल्दी, हल्दी, दोनों चन्दन पुनर्नवा सोंठ मिरच पीपल दोनों कटेरी इनको समप्रमाण लेकर विधिपूर्वक क्वाथ बनाकर उसमें धान की खीलों को पकाकर यवागू बनाना चाहिए इससे सभी विष शांत होते हैं।

गरविष चिकित्सा—

गरविष वाले को पहले वमन कराकर दूषीविषारि अगद पिलाना चाहिए।

भूख लगने पर सुपाच्य हल्का अन्न देना चाहिए। यदि हो सके तो विषघ्न यवागू शहद और घृत मिला कर पिलाना चाहिए बाद में जमा हुआ मल (विष) निकालने के लिये शुद्ध ताम्रभस्म बलानुसार शहद में मिला कर चटाना चाहिए।

इससे जब हृदय शुद्ध हो जाय तो रोगी को बलाबल मात्रानुसार स्वर्णभस्म शहद से चटावे। इस प्रयोग से अनेक प्रकार के गरदूषीविष नाश होकर रोगी स्वस्थ होता है।

गरविष उपद्रव की चिकित्सा—

कबूतर का मांस कचूर पोकरमूल इनको बराबर भाग लेकर क्वाथ बनाकर ठण्डा करके पीने से गरविष से हुए उपद्रव प्यास दर्द कास श्वास हिचकी ज्वर आदि दूर होते हैं। गरविष से अग्निमन्द पड़ गई होवे उन्हें मरोरफली, गिलोय, तगर, पीपल, परवल के पत्ते, चव्य, चित्रक, दुधवच, नागरमोथा, वायविडङ्ग इन औषधियों को समानभाग लेकर चूर्ण करे। यह चूर्ण देश काल आदि के अनुसार मात्रा लेकर मट्ठा या गरम जल या दधि के पानी के साथ खाना चाहिये। अथवा बिजौरा नीबू या कागजी नीबू के रस के साथ सेवन करना चाहिये।

पेट के कीड़े और उनकी चिकित्सा

(लेखक डा० विक्रमाजीत नन्दा, L. M. S. H. मेरठ)।

प्रकृति में हमें अनेक छोटे बड़े कीड़े मिलते हैं। छोटे से कीड़ों को हम नेत्रों से देख भी नहीं सकते। इन कीड़ों को वैज्ञानिकों ने दो भेदों में विभाजित किया है (१) प्राणिवर्ग के जिन्हें जीवाणु कहते हैं (२) वनस्पति वर्ग के जिनको कीटाणु संज्ञा देते हैं। कीड़ों का वर्णन तो बहुत विस्तृत है और उनसे उत्पन्न होने वाले अनेक रोग हैं पर इस लेख में हम पेट के उन्हीं कीड़ों का वर्णन और चिकित्सा लिखेंगे जो आमाशय या आंतों में पाये जाते हैं।

अन्त्र में रहने वाले कीटाणु—

ये कीटाणु कई प्रकार के होते हैं जैसे—

१—केंचुवे (Round worms)—

ये पेट की छोटी आंत में रहते हैं। इनका रङ्ग सफेद या मैला श्वेत होता है। इनकी लम्बाई चार से छः इंच तक होती है इनके मुख में छोटे-छोटे दांत होते हैं। यह कीड़े एक जगह जम कर नहीं रहते, आंतों और आमाशय में चुपक कर भोजन चूसते हैं और कई वार उल्टी में निकलते हैं।

२—कद्दाने (Tape worms)—

ये वारीक कीड़े होते हैं और कद्द की बीज के तरह चपटे होते हैं ये आंतों में व्रण पैदा करते हैं इसलिए वहां से रक्त निकलता है। ये पाखाने में कई वार निकलते हैं इनकी जातियां नीचे लिखी जाती हैं।

१—चौमुखिया-यानी चार मुख वाले। (Tine Solium) इनकी चोटी पर दो कतारें होती हैं, इन पर कुण्ड होते हैं।

२—चौमुखिया (Tincasage Nata) इनकी चोटी पर कुण्ड नहीं होते।

३—वे कीड़े जिनके मुख तो नहीं होते पर चूसनियां होती हैं।

४—चूनूने (Thread worms) यह कीड़े धागे जैसे होते हैं या यों समझें-जैसे सिरके में कीड़े होते हैं। ये कीड़े ½ इंच लम्बे होते हैं और प्रायः पाखाने की जगह होते हैं मगर चलकर लड़कियों में पेशाब की जगह में जाकर पानी या खारिश पैदा करते हैं।

५—इनके सिवाय एक प्रकार के कीड़े और होते हैं जिन्हें Distoma कहते हैं। दूसरी तरह के जिसे Hook-worm कहते हैं।

पेट के कीड़ों की साधारण चिकित्सा लिखते हैं, इसके बाद विविध योगों का वर्णन किया जायगा। केंचुवे इत्यादि की सुलभ चिकित्सा यह है कि पहिले तीन दिन दूध जिसमें मीठा ज्यादा हो कीड़े वाले रोगी को पिलाओ या मांस का कबाब दो फिर अफसनतीन जिसका सत्व Santonin कहलाता है किसी डाक्टर की देख-रेख में देवें; दूसरे दिन Castor oil से विरेचन देना चाहिए। इस प्रकार एक दो वार यों ही करें। पाखाने वाली जगह पर एरंड का पानी आड़ू के पत्तों का पानी या नीम का तेल या मोम का तेल लगावें। भोजन में अखरोट खोया नारियल का पानी देवें।

सवेरे कीड़े मारने वाली दवा दो और फिर ५ घण्टे बाद जुलाब देवें। या दो तीन रोज पहिले दूध में अधिक शक्कर मिलाकर पिलाओ ताकि सब कीड़े एक जगह जमा होजांय। चौथे दिन यह औषधि दो और दूसरे दिन जुलाब Castor oil या पहिले दिन Castor oil की पिचकारी गुदा में करनी चाहिये। दूसरे सुबह दवा दो और उसी शाम को फिर पिचकारी दो या दो-तीन रात पहिले मांस का कीमा तिल गुड़, अखरोट की मिंगी खिलाओ। दूसरे सबेरे दवा देवें और उसी शाम को जुलाब देवे। ध्यान रहे

दवा खाते समय नाक पर आड़ देलें या नाक के नथने बन्द करलें जिससे दवा की गंध नासिका मार्ग से कीड़ों तक न पहुँचे। यह इसलिये किया जाता है कि वैद्यों ने लिखा है कि कीड़ों को गन्ध से घृणा होती है जिससे वे इधर उधर छिप जाते हैं और औषधि का इन पर प्रभाव नहीं होता।

अब हम अनेक भिन्न-भिन्न योग दे रहे हैं जिनमें खाने लगाने के एलोपैथिक आयुर्वेदिक यूनानी होम्योपैथिक सभी योग हैं। जो जिसको सुलभ हो वह उस योग का प्रयोग कर सके इसलिये सभी पैथी के योग एक साथ दिये हैं।

केवल एक ही द्रव्य के योग—

१—नारियल का पानी पिलावे और दिन भर नारियल खिलावें। और कुछ खाने को न दिया जाय।
२—अखरोट की मिंगी खूब खिलानी चाहिए और उस दिन कुछ न दिया जाय।
३—लहसुन की भाजी या चटनी लेनी चाहिए।
४—रोगन जैतून का पान कराया जाय।
५—सत अजवायन पिलाया जाय।
६—अंग्रेजी दवा Santonin पिलावे।
७—अंगरेजी दवा 'दि कसलर सारसीनोल' पिलावे।
८—पाषाणभेद (एक्स्ट्रेक्ट आफ Jaishan) खिलायें।

लेप—

१—कड़वा बादाम कमीला तरमस करमकल्ला इनको समभाग लेकर सिरके में पीसकर पेट पर मलें।
२—समाक अकाकीना गुलमखतूम बराबर लेकर शराब में घिसकर पेट पर लगाओ।
३—बूरा अरमनी सिरके में पीसकर पेट और नाभि पर लगाओ और आग के पास बैठो।
४—कालादाना पानी में पीसकर नाभि पर लगाओ।
५—रोगन पलासपापड़ा को पेट पर मलें।
६—कलौंजी को सिरके में घिसकर नाभि पर लगावें।

अच्छा होगा यदि अंगरेजी दवाओं को किसी डाक्टर की राय से लिया जावे। आगे योग दिये जाते हैं—वैसे तो पेट में अनेक रोगों के कीटाणु होते हैं और उनके होने पर भयानक रोग पैदा होते हैं परन्तु खासकर हमारा मतलब चूनूने, केंचुवे, कद्दाने आदि कीड़ों से है। ये सहस्त्रों की संख्या में होते हैं और अंगूर के गुच्छे की तरह इकट्ठे रहते हैं, कई एक कीड़े एक से चार गज तक लम्बे होते हैं ये कीड़े अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न करते हैं जैसे गूंगापन, बहरापन, नकसीर, कान में पीप, पेट में दर्द आदि। ये कीड़े निमोनियां और इस प्रकार के अन्य रोगों में भी पाये जाते हैं। ये कीड़े अपने जीवन के लिये भोजन मनुष्य शरीर से ही ग्रहण करते हैं। जब वे शरीर में होते हैं। यही कारण है कि बहुत से बच्चे व जवान काफी खाने पर भी कमजोर दुर्बल दिखाई पड़ते हैं।

पेट में विद्यमान कीड़ों से निम्न लक्षण दृष्टिगोचर होते हैं।

१—भूख न लगना।
२—जी मिचलाना, पेट में दर्द।
३—रात को दांत पीसना।
४—नाक गुदा और लिंग को खुजलाना।
५—शरीर का पीला होना और बल घटना।
६—मिट्टी, कोयला और चूना खाने की इच्छा होना।
७—मूंह से लार गिरना।
८—सिर में दर्द या भारीपन।
९—हाजमा खराब होना।
१०—सुबह उठते समय मुंह शुष्क होना।
११—पाखाना नरम होना।

उपरोक्त लक्षणों में एक या कई एक साथ हो सकते हैं। कीड़ों का शरीर में प्रवेश प्रायः मुख के रास्ते खाने-पीने की वस्तुओं के साथ होता है।

एलोपैथिक चिकित्सा—

केंचुवे (Round worms)—

एक मात्रा केस्टर आइल की दोपहर को दो। शाम को खांड में मिलाकर आधा ग्रेन सैन्टोनीन (Santonin) दो। मगर किसी डाक्टर से पूंछकर

देना उचित होगा। दूसरे दिन फिर एक मात्रा सवेरे सेन्टोनीन की दो और शाम को एक मात्रा केस्टर आइल की दो। खाने के लिये साग सब्जी कुछ भी न दें। केवल अण्डे या चावलों का रस दें।

कुल्हाड़ीनुमा कीड़े (Hook worms)—

दोपहर को कोई हल्की और जल्दी पचाने वाली भोजन की मात्रा दो। शाम को एक मात्रा एप्सम साल्ट (Epom salt) की लेनी चाहिए। सुबह को शौच त्याग के पश्चात आधी मात्रा थाईमोल (Thymol) की दो फिर दो घण्टे के पश्चात्य एक मात्रा एप्सम साल्ट की देनी चाहिये। थाईमोल की मात्रा लेने के पश्चात् आधा घण्टा दाईं करवट लेटे रहें। दो तीन दिन दवा दो और इन दिनों में कोई भोजन न दो केवल पानी या चाय ही देना चाहिये। थाईमोल की मात्रा कैपशूल में इस प्रकार हैं—

एक से पांच वर्ष वाले को	७॥ ग्रेन
पांच से दस वर्ष वाले को	१५ ग्रेन
दस से पन्द्रह वर्ष वाले को	३० ग्रेन
पन्द्रह से बीस वर्ष वाले को	४५ ग्रेन
बीस से ऊपर वाले को	६० ग्रेन

चुनने (Thread Worms)—

दिन में सादा भोजन देना चाहिये जो शीघ्र पच जाय। रात को एक खुराक केस्टर आइल की पिलावें। और एक गिलास गर्म पानी में बीस ग्रेन क्वीनीन पिचकारी द्वारा गुदा में प्रवेश करें या किनीन की जगह दो-तीन चम्मच लाहौरी नमक मिलाओ। यह क्रिया एक बार नित्य एक सप्ताह तक करनी चाहिये।

कारबन टैट्राक्लोराइड (Carbon tetrachloride) की ४५ बूंदें कैपशूल में डालकर दिन में एक बार देवें। यह मात्रा पूरी अवस्था वाले पुरुष की है। अवस्था के अनुसार खुराक देनी चाहिये। खुजली मिटाने के लिए गुदा में कारबोलिक एसिड दो तीन चम्मच वैसलीन में मिलाकर लगाओ।

कद्दाने (Tape worms)—

औषधि खाने से दो दिन पहले कोई कठिन पदार्थ न खाया जाय केवल चावल का मांड और आधे उबले अण्डे देने चाहिए। तीसरे दिन पांच साल की अवस्था वाले बच्चे तक बीस बूंदें Oleorism of malerren देवें। फिर तीन घण्टे के बाद ऐसी ही एक खुराक और देनी चाहिए। तीसरी मात्रा ५ घंटे के बाद देवें। फिर दो घण्टे के पश्चात् एप्सम साल्ट या केस्टर ऑइल की एक मात्रा देनी चाहिये। इस समय मरीज पूर्ण विश्राम करता हुआ लेटा रहे।

होम्योपैथिक इलाज—सीना (Cina) या Spigelidanth किसी होम्योपैथी डाक्टर से पूछकर हालत के अनुसार देवें।

यूनानी और आयुर्वेदिक चिकित्सा

केंचुवे—हींग तीन रत्ती, चिरायता ५ रत्ती यह एक मात्रा रात को नित्य दें।

कद्दाने—पोस्त, अनार ताजा दो हिस्से, पानी चालीस हिस्से में जोश देवे। जब पानी २० भाग रह जावे (आधा) तो इसे उतार लो। इसमें से दो माशा पानी की एक मात्रा दें। परन्तु यह मात्रा रोगी को २४ घंटे भूखा रखने के पश्चात् देनी चाहिये, इस प्रकार चार मात्रा देने के पश्चात् एक मात्रा केस्टर-आइल की देनी चाहिए।

चुनने—१-सेन्टोनीन डेढ़ रत्ती, सफूफ रेवन्द भी डेढ़ रत्ती मिलाकर रात को रोज आठ दिन तक खिलाओ।

२-लाहौरी नमक १॥ माशा पानी गर्म ६ औंस में डालकर पिचकारी से गुदा में चढ़ा दो। मीठा का त्याग तथा नमकीन वस्तु ही खावें।

सितोपलादि चूर्ण

(ले० पं० मदनमोहनलाल जी चरोरे)।
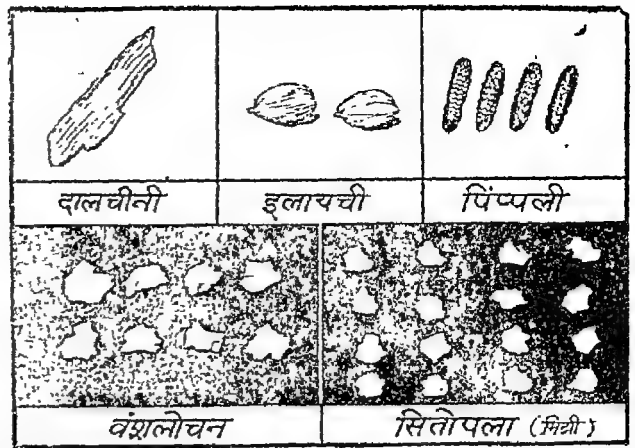
आयुर्वेदिक चिकित्सा में योगों की कमी नहीं है संहिताओं तथा दूसरे संग्रह ग्रन्थों में सहस्रों योग गृथित हैं जिनमें से वैद्य समुदाय अपने अनुभव के आधार पर कुछ योग चुनकर अपने कार्य में लाता है। वैसे तो आसेतु हिमांचल सभी वैद्यों के औषधालयों में विभिन्न अनेक योगों का व्यवहार चिकित्सा क्षेत्र में दृष्टिगोचर होता है परन्तु कुछ योगों का स्थान तो इतना महत्वपूर्ण है कि उनकी ओर सर्वसाधारण का आकर्षित होना एक आश्चर्य जैसा मालूम होता है। आखिर इन योगों को यह महत्व और आदर क्यों मिला है। निश्चय ही इन योगों के गुणों की प्रत्यक्ष उपलब्धि है। किसी भी प्रान्त में जाइये सितोपलादि, संजीवनी वटी, च्यवनप्राश, द्राक्षासव, लवणभास्कर महानारायण आदि के अवश्य दर्शन होंगे बिना इनके वैद्य का दवाखाना अधूरा लगता है। जहां तक हिन्दू भारत का प्रश्न है कोई ऐसा व्यक्ति होगा जिसने जीवन में सितोपलादि सेवन न किया हो और वह इससे परिचित न हो तथा कोई ऐसा वैद्य होगा जो सितोपलादि को निरर्थक, अयोग्य योग बतलाता हो। जिस समानगति से सितोपलादि चूर्ण और संजीवनी की अजस्रधारा इस आयुर्वेद जगत में बह रही है देखकर गद्‌गद होजाना पड़ता है।

जो वैद्य जगत् तथा आयुर्वेदिक संसार सितोपलादि का इतने दीर्घ काल से वर्तने का अभ्यस्त रहा है उसके औषधि-मंजूषा से यदि सितोपलादि को एकाएक निकालकर बाहर करदें तो निश्चय ही वह अपने लिये एक भारी अड़चन का अनुभव करेगा। जिन चिकित्सकों का अन्य प्रान्तों के वैद्यों से सम्पर्क का अवसर मिला है वे इसके महत्व और चमत्कार को अच्छी तरह देख चुके हैं, इसीलिये हम भी इस लघु योग पर कुछ लिखने के लोभ को संवरण न कर सके।

सितोपलादि चूर्ण लेह या प्राश कहें एक ही वस्तु है पुराने सभी ग्रन्थों में यह योग वर्णित है। चरक, शार्ङ्गधर भैषज्यरत्नावली आदि में इसी नाम से दिया है तथा अष्टांगहृदयकार ने इसको त्वगेलादि चूर्ण के नाम से कहा है। प्रारम्भ में इस योग को किसने कहा इस विषय में हमें चरक से प्राचीन कुछ नहीं मालूम। चिकित्सा स्थान यक्ष्माधिकार में पुनर्वसु आत्रेय ने अग्निवेश के प्रति इसे प्रथम कहा है यही प्रमाण है। इसकी निर्माण विधि सभी आचार्यों की एक समान है चरक लिखते हैं:—

सितोपलां तुगाक्षीरीं पिप्पलीं बहुलां त्वचम्।
अन्त्यादूर्ध्वं द्विगुणितं लेहयेन्मधु सर्पिषा ॥
चूर्णितं प्राशयेद्वा तच्छ्वासकासकफातुरम्।
सुप्तजिह्वारोचकिमल्पाग्निं पार्श्वशूलिनम् ॥
हस्तपादाङ्गदाहेषु ज्वरे रक्ते तथोर्ध्वगे।

निर्माणविधि—मिश्री १६ तोले, वंशलोचन ८ तोले, पीपलछोटी ४ तोले छोटी इलायची के बीज २ तोले और दालचीनी १ तोला लें। इस प्रकार पीछे से पूर्व के द्रव्य को क्रमशः दुगुना लेकर

सब को कूट कपड़छन करके चूर्ण बनावें। प्रथम पीपल को थोड़ा कूट धूप में सुखावें, दालचीनी और इलायची के बीजों को एक साथ कूट कपड़छन करे, फिर सूखी पीपल भी कूट-छान कर रखलें। तत्पश्चात् वंशलोचन को खरल में डालकर अत्यन्त बारीक होने पर कपड़छन करें फिर घोटकर सब कपड़छन द्रव्य एक साथ मिलादें।

यही वह प्रसिद्ध योग है जो अनपढ़ और विद्वान्, शहर और ग्राम, तथा झोंपड़ी से लेकर महलों तक एक समान स्थान पाये हुए है। यही वैद्यों का शान्त लेह, प्रशान्तलेह, प्रशान्तप्राश, माधुरी स्वादिष्टप्राश आदि है, जो अपने निजी नाम रखे हुये हैं। इसी को कुछ वैद्य चासनी में या शहद में मिलाकर लेह रूप कर लेते हैं। आजकल बहुत से लोग सिता के स्थान पर सफेद मिल की चीनी मिलाते हैं पर यह सिता नहीं है। सिता तो सफेद ढेले के रूप में ही (जो मिट्टी के कूंजे में जमाई जाती है) श्रेष्ठ है और उसे ही लेना चाहिये।

गुण—सितोपलादिचूर्ण मधुर एवं कटु, वीर्य में शीतल, तृषा, कास, रक्तस्राव को रोकने वाला, दीपन पाचन वश्य बृंहण अरुचि को दूर करने वाला कफनिस्सारक-तथा रसनेन्द्रिय का उद्बोधक है।

इसकी मात्रा—२-३ माशा गोघृत और शहद के साथ मिलाकर दिन में ४ बार देना चाहिए। कफ के रोगों में घी से शहद दूना और पित्त के रोगों में घी शहद से दूना अनुपानार्थ लेना चाहिए।

उपयोग—इस चूर्ण का व्यवहार राजयक्ष्मा की प्रथम अवस्था में विशेष लाभकर है। मुख्य प्रभाव श्वास प्रणाली और फुफ्फुसों पर होता है। क्षय के कीटाणु अपने विष का प्रभाव इनके वायु-कोष्ठों में छोड़ते हैं जिससे रोगी शुष्कता का अनुभव करता है यह दशा यक्ष्मा की प्रथम अवस्था में होती है। उस दशा में यदि रोगी को ज्वरनाशार्थ कोई शुष्क औषधि किनाइन या कड़वाचूर्ण या कोई अन्य उग्र दवा दी जाती है तो फुफ्फुसों में शुष्कता बढ़ जाती है। कभी-कभी इस पतले कफ के झागों के साथ रक्त भी आजाता है कास रोगी बेचैन रहता है रात्रि में कास निद्रा नहीं आने देती। ज्वर १६° से अधिक नहीं होता। मन्दाग्नि, निर्बलता, मलावरोध, मूत्र में पीलापन कास होने के कारण पसीना आजाता है नेत्रों में जलन होना, आदि लक्षणों में सितोपलादि चूर्ण अत्यन्त लाभ करता है क्योंकि यह शामक औषधि है। ऐसी दशा में उत्तेजक अभ्रक जैसी औषधियों से कोई लाभ नहीं होता बल्कि कष्ट बढ़ जाता है। २ माशे से ४ माशा तक गोघृत और शहद के साथ मिलाकर दिन में ३-४ बार देना चाहिये। साथ में मुक्तापिष्टि या प्रवालपिष्टि मिला देने से लाभ शीघ्र होता है।

राजयक्ष्मा की इस प्रथम अवस्था में यदि शामक औषधियों का प्रयोग नहीं किया जायगा तो फुफ्फुसों में कफ की उत्पत्ति होने लगेगी।

यक्ष्मा की द्वितीय वा तृतीय अवस्थाओं में भी इसका प्रयोग किया जाता है, जीर्णज्वर में यह एक परम महौषधि है खास प्रणाली तथा वायुकोष्ठ कफ से पूर्ण होते हैं श्वास में अड़चन होती है रक्त में कीटाणु विष मिलता रहता है धीरे-धीरे फेंफड़े में विवर बनते हैं। केशिकाओं के टूटने से कास में रक्त आने लगता है शुष्कता के कारण। उस दशा में उग्रता के लिये तथा रक्तशोध के निमित्त शामक सितोपलादि लाभ करता है। नियमित सेवन से रस रक्त मांस धातुओं को पोषण मिलता है, कास का वेग शान्त होता है। और निद्रा आने लगती है।

पित्त की तेजी में या राजयक्ष्मा में जब पित्त तेज होता है रोगी को कष्ट, छाती नेत्र हाथ पैरों में जलन, मुखपाक, श्लेष्मिककला में लाली, मस्तिष्क में उग्रता बेचैनी, मूत्रविदाह आदि लक्षणों में सितोपलादि अत्यन्त लाभ पहुँचाता है। पित्त की विकृति दूर होकर विष का शुद्धीकरण होता है।

गर्भ की दशा में माता को इसके सेवन से बच्चे की अस्थियां पुष्ट होती हैं जिनका अस्थि संस्थान दुर्बल होता है उनका गर्भकी हालत में इसके सेवन से

अस्थि संस्थान पुष्ट होता है, प्रसव के बाद बच्चों को इसका सेवन कराना चाहिए। इससे अस्थितत्व अपना कार्य करने लगते हैं। मात्रा १-२ रत्ती सवेरे शाम लगातार देना चाहिये

माता पिताओं की दुर्बलता के कारण से जो बच्चे जन्म के समय निर्बल होते हैं वे भी इसके सेवन से ठीक होजाते हैं। उनकी माताओं को सितोपलादि अत्यन्त लाभकर साबित हुआ है। सितोपलादि के साथ अभ्रक प्रवाल देने से क्षय पीड़ित रोगियों पर भी यह योग पूर्ण लाभ पहुंचाता है। प्रसव के बाद की निर्बलता में या उस दशा में जब ज्वर हो प्रसूत रोग हो इसके सेवन से दशा सुधरती है।

जो स्त्रियां प्रसव के बाद जल्दी पुनः गर्भ धारण करती हैं जिससे वे निर्बल होजाती हैं या अन्य किसी रोग के कारण अथवा छाती छोटी होने के कारण बचपन से ही जिनका स्वास्थ्य खराब रहने से विवाहोपरान्त कुछ दिन ठीक व्यतीत होने पर प्रथम गर्भ धारण और प्रसव में ही शरीर का ढांचा बिगड़ जाता है। गर्भ की दशा में उनको अधिक कष्ट होता है चला-फिरा नहीं जाता, निर्बल आलस्ययुक्त पड़ी रहती हैं उनको सितोपलादिचूर्ण प्रवाल के साथ ६ माह तक सेवन कराने से वे पुष्ट हो जाती हैं स्फूर्ति बल का पुनः अनुभव होने लगता है तथा यौवन के साथ प्रसन्न वदन मुद्रा में हो जाती हैं। अम्ल-पित्त की दशा में जिसमें खट्टी डकारें आती हैं आमाशय में आमाशयिक रस (Gestric juice) अधिक बनने पर किन्हीं पित्तकर कारणों से या चाय तथा गरम मसाले या आलू अरहर का अधिक सेवन से पित्त के अधिक वृद्धि होने पर क्योंकि आमाशयिक पित्त तीव्र बनता है छाती में जलन व मुखपाक होता है। आहार ठीक नहीं पचता, अरुचि बनी रहती है प्रवाल के साथ सितोपलादि सेवन से थोड़े समय में ही अम्ल शान्त होजाता है। रुचि के साथ अग्नि तीव्र होजाती है। कौड़ी प्रदेश का दर्द नहीं रहता, भोजन के बाद की जलन मिटती है।

पित्त प्रमेह—अधिक पित्त बनने के कारण पाचन-क्रिया मन्द हो जाती है अधिक बढ़ने पर विदग्धाजीर्ण हो जाता है और उसके बाद पित्तप्रमेह हो जाता है। मूत्र अति पीला होजाता है। सारे शरीर में दाह तृषा, मूत्र का परिमाण कम हो जाता है पर बार बार (संख्या बढ़ जाती है) थोड़ा थोड़ा मूत्र त्यागता है। चक्कर, आंखों में जल, सामने अंधेरा, शरीर सूखा सा, तारे से चमकना इस अवस्था में चन्द्रकलारस के साथ सितोपलादि देने से जल्दी लाभ हो जाता है।

चिड़चिड़े व्यक्तियों को या जिनको जल्दी क्रोध आजाता है असहनशील हैं जीर्णज्वर या मस्तिष्क दीर्घकाल तक गर्मी बढ़ जाने पर या निर्बल यकृत होजाने पर मलावरोध में तथा उसके कारण दुर्गंध आती है। पित्तप्रकोप या पाण्डु की दशा में हृदय की धड़कन बढ़ जाने पर सितोपलादि का अवश्य सेवन करना चाहिये

यद्यपि इस योग में कोई खास रसादिक औषधि नहीं है फिर भी इस योग के द्रव्यों का इतना सुन्दर चुनाव हुआ है कि सब दशाओं में उनसे हित ही होता है। इसमें दालचीनी, इलायची और पिप्पली दीपन पाचन और उड़नशील तैलों से युक्त होने के कारण भोजन के पाचक रसों का आमाशय और ग्रहणी में पर्याप्त मात्राधिक्य कराते हैं तथा श्वसन मार्ग से वे तैल उड़कर उसको जीवाणु विरहित कर देते हैं। दालचीनी आंतों का शोधन करती है और आध्मान या गैसों की उत्पत्ति की क्रिया को रोक देती है। इलाइची उत्तेजक और वातानुलोमक होने से गैस को बाहर फैंकती रहती है। भोजन को पचाती है तथा आन्त्र की आकुञ्चनक्रिया को नियमित कर देती है, पिप्पली की तीक्ष्णता अन्त्र की श्लैष्मिककला की क्रिया को उत्तेजित करके स्नेहों और प्राङ्गोदियों की क्रिया को बढ़ा देती है।

अब इसका आवश्यक घटक वंशलोचन और रह गया। वंशलोचन या कैल्शियम ग्लूकोनेट अस्थि-संस्थान को पुष्ट करता है। यक्ष्मा की रक्तपित्त की उत्पत्ति को रोक कर गलियाओं के घावों और सूजी-

करण करने में सहायक होता है। इसकी क्रिया हृदय पर होती है जिसके कारण वह सबल और पुष्ट होकर अपनी गति को स्थिरतापूर्वक करता चलता है। बिना किसी भार और संकट के रोगी के भार में वृद्धि होने लगती है।

इस योग में वंशलोचन मुख्य द्रव्य है, यह असली शुद्ध होना चाहिए। यह नकली बहुत आता है। भारत-वर्ष में जितना वंशलोचन खपता है उसका बहुत बड़ा भाग इसी के बनाने में काम आता है। असली वंशलोचन नीली आभावाला सुन्दर होता है। इसको लकड़ी या पत्थर पर घिसने से किसी प्रकार का निशान नहीं पड़ता। यह हाथ की चुटकी में दबाने से टूटता नहीं और न मुंह में रखने से एकदम घुलता ही है। असली वंशलोचन में पानी को सोख लेने की शक्ति रहती है और पानी सोखने के पश्चात् यह पारदर्शक हो जाता है। नकली वंशलोचन पानी में डालते ही घुल जाता है।

वंशलोचन सूखा कसैला मधुर रक्त को शुद्ध करने वाला, शीतल, ग्राही, वीर्यवर्धक, कामोद्दीपक; क्षय, श्वास, खांसी, रुधिरविकार, मन्दाग्नि, रक्तपित्त, ज्वर, कुष्ट, कामला, पाण्डुरोग, दाह, तृषा, मूत्र-कृच्छ्र और दात को नष्ट करता है। वंशलोचन में ७० प्रतिशत सेलिसिक एसिड होती है तथा ३० प्रतिशत पोटास और चूना रहता है। जिस वंशलोचन में जितनी अधिक सेलिसिक एसिड होती है वह उतना ही उत्तम रहता है इसके प्रयोग से श्वासेन्द्रिय की श्लेष्मिककला को बल मिलता है और इसी कारण उसके द्वारा उत्पन्न होने वाला कफ कम मात्रा में उत्पन्न होता है। सितोपलादि चूर्ण में भी ये सब गुण वंशलोचन के कारण हैं। यह चूर्ण बच्चों और जवानों का विशेष रूप से उपयोगी है।

कुछ विद्वान् सितोपलादि चूर्ण में मिश्री के स्थान पर ग्लूकोज और वंशलोचन के स्थान पर कैल्शियम ग्लूकोनेट लेने की सिफारिश करते हैं और इस कारण यह गुणों में अधिक लाभप्रद बन जाता है। ●●

—सिद्ध-योग—

(अपनी अप्रकाशित रचना सिद्धयोगपद्यावली से इस तरह के प्रयोग जो अनुभवसिद्ध हैं, धन्वन्तरि के सिद्ध-योग स्तम्भ के लिए क्रमशः—१-२ करके भेजता रहूंगा। इस तरह के प्रयोग शास्त्रीय एवं अन्य लेखकों के हैं, प्रयोग-पद्य के नीचे जहां जो जैसे प्रयोग हैं, उन पुस्तकों, पत्रों, लेखकों के नामांकन कर दिए हैं, प्रयोगों के गुणों की मोहकता ने मुझ कवि-हृदय को पद्य-बद्ध कर लेने को बाध्य किया है, प्रयोगलेखक-पत्रसम्पादक क्षमा करेंगे, मुझे विश्वास है कि कंठाग्र-सौकर्य की दृष्टि से अनुभूत पद्य-प्रयोग पाठकों वैद्यों को लाभकर सिद्ध होंगे। —लेखक।)

श्री सत्यप्रसाद भट्ट 'भ्रमर'

—वचादि चूर्ण—(वा. म. ३ अ १)

योग—सोंठ, हरड़ सेंधानिमक, कूट मुलहटी जान।
वच, अजमोदा, पिप्पली, जीरा लेंय समान॥
कूट पीस सब चूर्ण कर घी में इसको खांय।
वाक् शक्ति स्पष्ट हो, जिह्वा-दोष नशांय॥

विशेष द्रष्टव्य—२ माशे चूर्ण ६ माशे घी में मिलाकर चटायें, यह मात्रा पूर्ण वयस्क की है।

अमरूद के नाम

संस्कृत— पेरुक अमृतफल, दृढ़बीज
बंगला—पियारा
हिन्दी—अमरूद
मराठी—पेरू
कर्नाटकी—शिबे
फारसी—अमरूत

आयुर्वेद की दृष्टि में—

यह फल वीर्यवर्द्धक उन्माद एवं नशे को नष्ट करने वाला, बहुत ठण्डा, तीक्ष्ण, भारी किंचित् कषैलापन लिए हुए स्वादु, रुचिकारक, तीनों दोषों को दूर करने वाला है।

यूनानी मत में—यह पहिले दर्जे का ठण्डा और दूसरे दर्जे का उष्ण प्रकृति युक्त है।

देशी जड़ी बूटी के प्रधान अन्वेषक ट्रापिकल स्कूल आफ मिडिसन्स कलकत्ता के डा० लेफ्टिनेण्ट कर्नल चोपरा की दृष्टि में—

इसकी जड़ और छाल में टेनिक एसिड काफी मात्रा में उपलब्ध है। (जिसका प्रधान कार्य व्रणशोधन एवं रोपणात्मक है।) तथा केल्सियम एवं आक्जलेट भी पाए जाते हैं। इसके पत्तों का काढ़ा मसूड़ों की सूजन एवं मुंह के फोड़ों में कुल्ला करने के काम में लाया जाता है। इसकी जड़ का छिलका उत्तम संकोचक ज्वरनिवारक और आक्षेपनिवारक औषधि है। इसके फल दस्तावर एवं पत्ते रोचक हैं।

वेस्ट इण्डीज में—इसके काढे का स्नान ज्वर-नाशक एवं आक्षेपनिवारक माना जाता है। गठिया की बीमारी में इसके पत्तों का लेप किया जाता है, एवं मूर्छा तथा कम्पवात में इसके पत्तों का अर्क पिया जाता है।

विवेचन— राजस्थान में मैं अपनी पुस्तक 'शब्द-शती' को लिख रहा था तब अकस्मात् ही मुझे अमरूद शब्द की व्युत्पत्ति सूझी। मेरे विचार में आया कि यह शब्द 'अमरुद' नहीं अपितु आमरुद है और इसका अर्थ होना चाहिए आम को—पेट में स्थित अपक्व रस को—जो एक बहुत दुस्साध्य तथा

फैला हुआ विकार है, को रौंद देता है। सौभाग्यवश उसी ऋतु में बाजार में अमरूद उपलब्ध होगए, पर कोई भी प्रयोग नहीं करना चाहता था। एक बात यह थी अमरूद के प्रति लोगों की धारणा भी विपरीत थी, सभी इसको अपथ्य समझते थे। मेरे वैद्य सहयोगी भी वैसा ही समझते थे। परन्तु कुछ रोगियों को यह फल खाने को कहा फलतः जिनके लिए पर्पटी प्रयोग ही अन्तिम सोच लिया गया था ऐसे आंव के रोगियों को अमरूद दिया। दूसरे दिन ही लाभ हुआ जहां दस बार टट्टी आती थी चार बार आयी, गड़गड़ाहट भी नगण्य रही। तीन चार दिन के बाद रोगी का चेहरा प्रसन्न एवं शरीर स्वस्थ सा दिखाई देने लगा। बन्धी हुई टट्टी तथा आंव लिपटी हुई, दिन में दो बार आने लगी। अब तो भूख भी चेतने लगी। और दो मास में रोगी ठीक। न दूध की जरूरत और न दही की। इसके बाद आमविकार एवं संग्रहणी विकार के कई रोगियों पर इसका प्रयोग किया सर्वत्र सन्तोषप्रद फल मिला।

इसके प्रति जनसाधारण में यह धारणा है कि यह वायु करता है। मालूम होता है कि यह धारणा निघण्टुरत्नाकर के नीचे लिखे श्लोक के वातद शब्द के भ्रमपूर्ण अर्थ से फैली है।

तदाऽमृत फलं स्वादु तुवरं चाति शीतलम्, तीक्ष्णं गुरु कफकरं वातदं माद नाशकम्। वृष्यं रुचि शुक्रकरं त्रिदोषघ्नं प्रकीर्तितम्।

इस श्लोक में अमरूद को 'वातद' कहा है। सीधा सादा अर्थ निकाला वात देने वाला। परन्तु तीसरी लाइन में लिखा है त्रिदोषघ्नं अर्थात् तीनों दोषों को वात पित्त कफ को नष्ट करता है और वस्तुतः बात भी ऐसी है। यह वात को करता नहीं अपितु हरता है इसकी व्युत्पत्ति वातं ददाति न करके वातं द्यति, नाशयति करनी चाहिए। यदि ग्रन्थकार की इच्छा यह होती कि यह वातकारक है तो कफकर अलग देने के बजाय कफवातकर दिया जा सकता था जैसा कि रुचिशुक्रकर, दिया है जब कफकर पृथक और वातदं अलग लिखा है तो ग्रन्थकार का आशय स्पष्ट है। अथ च ग्रन्थकार ने वातद शब्द का प्रयोग समझ बूझकर किया है इसका वातनाशः अभिप्राय निगूढ़ है क्योंकि वात देने वाला अर्थ गठित नहीं होता। प्रायः ऐसे स्थलों में वात करने वाला 'वातकृद' प्रयोग ही उपलब्ध होता है जो सन्देह रहित है छन्दोभंग न करने वाला तथा उपयुक्त है। वातद प्रयोग देने वाला अर्थ की अपेक्षा नाश अर्थ में अधिक उपयोगी है। वात का दान संभव ही यह सिद्ध था कि यह तीनों दोषों को नष्ट करता है फिर वातद कह कर वात को नष्ट करने की विशेष शक्ति इसमें ग्रन्थकार ने बतलाई और अनुभव से मैंने भी यही तत्त्व इसमें अधिक पाया। यदि यह वात करने वाला हो, कफकर भी हो जैसा कि ग्रन्थकार ने दूसरी पंक्ति में कफकर लिखा है तो त्रिदोषघ्नं कहना ही इसका व्यर्थ होजाता, जो कफकारक एवं वातकारक है वह कैसे त्रिदोषघ्न होसकता है। परन्तु ग्रंथकार ने बिलकुल ठीक लिखा है कि यह त्रिदोषघ्न अर्थात् तीनों दोषों का नष्ट करने वाला है और विशेषतः वायु को। किन्तु यह कफकर भी है। कब? कफकर के ठीक पीछे गुरु शब्द आया है। यह महत्वपूर्ण है। यदि अमृतफलं गुरुमात्रया अधिकं चेद् भक्षितं, तदा कफकरं यदि यह अमृतफल अमरूद गुरु, अर्थात् मात्रा से अधिक खाया गया तो कफकारक है अन्यथा नहीं। और अनुभव मे भी यही प्रमाणित हुआ। अतः मात्रा से खाने पर यह वातपित्त, कफ को नष्ट करता है। फारसी में इसको अमरूद कहते हैं। यह शब्द भारत से फारसी में गया मालूम होता है। क्योंकि यह विशुद्ध संस्कृत शब्द है। अ-मरुत। न मरुत (भवति यस्य सेवनेन) सः अमरुत। जिसके सेवन से मरुत् अर्थात् पेट में वायु बनना ही बन्द हो जाय उसका नाम अमरुत होसकता है। भारतियों ने अपने व्याकरण के अनुसार इसके दो रूप बनाए हैं अमरूत और अमरूद (वाचस्पति) जो एक फारस में चला गया हो और एक यहां रह गया हो। भारत में इसके 'रु' को 'रू' लिखने लग गए हैं यह एक अंश में ठीक है। हल होने के रु कार्य दिखाया हो गया था व्याकरण में

द्विमात्रता को स्थापित करने के लिए इसे दीर्घ कर दिया होगा और शताब्दियों की अज्ञानता ने दु की ह्रस्वता भी समाप्त कर दी। इसमें शीतल गुण भी है। यद्यपि ये रसा वात शमना भवन्ति यदि ते सुवै शैत्य लाघवु शैत्यानि नते हन्युः समीरणम् है। परन्तु इसमें केवल शैत्य है यथा तैक्ष्ण्यलाघव के विपरीत तीक्ष्ण गुरु वृष्यादिगुण है। अतः शैत्य यहां निर्बल है अतएव शास्त्रकारों ने इसका नाम अमृतफल रक्खा। क्योंकि यह त्रिदोष वात पित्त कफ को नष्ट करता है इसलिए इसे अमृत फल कहा है। यही इसका बीज है। हरीतकी आदि को भी इसलिए अमृत कहा है। कर्णाटकी भाषा में इसे शिवे इसी लिए कहते हैं कि यह शिव कल्याणकारक है। बंगाल में इसे पियारा या प्यारा कहते हैं। संभव है कि यह पेरुक का अपभ्रंश हो या देह विकृति को दूर करने के कारण प्रिय प्यारा हो। शालिग्राम निघंटु में लिखा है पेरुकं तुवरं प्रोक्तं स्वाद्वम्लं कफकारकं, शुक्रलं वातपित्तघ्नं शीतलं च रसं मतम्। इसने इसको स्पष्ट वात पित्त को नष्ट करने वाला बतलाया है। यह स्वाद्वम्ल गुणयुक्त है अतः तत्राद्या मारुतं घ्नन्ति के अनुसार स्वाद्वम्ल लवण रस वातनाशक है।

भोजन दांतों से पिसकर लालारस से मिला हुआ पेट में जाता है। वहां साढ़ेतीन-चार घण्टे रहकर ग्रहणी छोटी और बड़ी आन्तों में होते हुए मलाशय और गुदद्वार में पहुँचता है। इस यात्रा में भोजन को अठाइस उन्तीस फुट लम्बा मार्ग तथा चौदह पन्द्रह घण्टे तय करने पड़ते हैं। इस मार्ग में भोजन में बहुत तरह के परिवर्तन मिश्रण एवं विश्लेषण होते हैं। इस क्रिया से भोजन के आवश्यक तत्व शरीर के द्वारा ग्रहण किये जाते हैं और शरीर के प्रत्येक अवयव का पोषण होता है। भोजन के इस लम्बे रास्ते में आवश्यक तत्वों को चूसने के लिए चूषणांकुर या ग्राहकांकुर लगे हुए हैं जो प्रतिक्षण क्रियाशील रहते हैं। आंतों में प्रतिक्षण स्नुक्स्रित तथा अन्य रासायनिक पदार्थ बनते रहते हैं जो आंतों को तर रखता है, इससे (१) शुष्क पदार्थ की रगड़ से आंतें छिलती नहीं हैं तथा (२) मल आगे Slip होता रहता है। कुछ विद्वानों का कथन है कि आयुर्वेद के आम और एलोपैथी के अमीबिक में इतना अन्तर है कि वे किसी भी तरह एक पंक्ति में नहीं रखे जासकते, परन्तु उनका यह विचार सर्वथा भ्रमात्मक है।

एलोपैथी के सिद्धांतानुसार अमीबा बाह्य जगत से भीतर में प्रवेश कर अपने प्रधान स्थान आंतों में जाता है और वहां शोथ व्रण एवं पूय का निर्माण करता है। फलतः ग्राहकांकुर या चूषणांकुर नष्ट हो जाते हैं। इसी कारण भोजन का परिपाक तथा आत्मीकरण नहीं होपाता। फलतः वह आम अपरिपक्व ही अन्त्रमार्ग से गुदा द्वारा गिरता है।

आयुर्वेदानुसार अन्न के अपरिपाक से विकृत वात-पित्त कफ अन्त्रमार्ग को क्षुब्ध करते हुए नाना वर्ण विभिन्न रंगों से युक्त मल को गिराते हैं क्योंकि इसमें व्रण का रक्त तथा पूय श्लैष्मिक झिल्लियों के खंड, मल तथा कई रासायनिक तत्व आदि रहने से वर्ण में विभिन्नता और भृश दुर्गन्धि अत्यन्त बदबू वाला होना स्वाभाविक ही है। आयुर्वेदज्ञों ने अपक्व रस का अतिमात्र सरण होने से इसको आमातिसार माना तथा एलोपैथी ने इन्टेमोयबा हिस्टोलिटिका नामक अमीबा द्वारा होने से इसे अमीबिक डिसेन्टरी कहा। एक ने नामकरण कार्य (आम) के कारण रक्खा दूसरे ने कारण (अमीबा) के कारण रूप में कोई भेद नहीं। दोनों एक हैं अस्तु इस अमीबा का प्रधान स्थान आंत है आंतों में अमीबा के प्रविष्ट होने से आंतों में घुणजन्य व्रणों की तरह यत्र तत्र व्रण होजाते हैं। शोथ आजाता है, ग्रन्थियां एवं गुहायें (कैवीटिज) होजाती हैं। और अन्तिमावस्था में छिद्र भी हो जाते हैं।

अमीबा जब कालान्तर में यकृत में प्रवेश कर जाता है तो यकृत की भी यही दशा होकर एक विशाल स्फोट होकर वह फट जाता है। अमीबा के विकार से विकृत आंतों एवं यकृत का वास्तविक विवरण मैं इस छोटे से पंजे में लिपबद्ध नहीं कर सकता जिन्हें

इस जिज्ञासा को शान्त करना हो वे किसी मैडिकल कालेज के पैथोलोजीकल म्यूजियम में इनको प्रत्यक्ष देखें। अमीबा के प्रविष्ट होने तथा कार्यारंभ करने पर यह दुश्चिकित्स्य है। कुछ अधिक समय बीत जाने पर तथा यकृत आदि में प्रवेश करने पर तो अचिकित्स्यवत् है ही। यह शरीर शास्त्र विशेषज्ञों को विदित ही है।

इस अमीबा की प्रारम्भिक दशा में यदि अमरूद का प्रयोग किया जाय तो अवश्य लाभ होता है। अमरूद में टैनिक एसिड है जिसका प्रधान कार्य व्रण शोधन रोपण (हीलिंग) है अतः आंत की कोमल दीवार में लगे कीड़ों को नष्ट करके घावों को भर देता है। इसका बीज बहुत दृढ़ होता है अतएव इसे दृढ़बीज कहते हैं। आंतों में इसकी पिसाई नहीं होती अतः जलीय अंश के दूर होने के बाद आंतों की चतुर्दिक दीवारों को स्पर्श करते हुए काष्टोज प्रधान होने से रगड़ते हुए चलता है। इससे आंत के व्रणों पर तो टैनिक एसिड से (हीलिंग) होता रहता है तथा इसके दानों से स्क्रुबिंग होता रहता है ताकि समस्त अपद्रव्य इसके साथ मलाशय द्वारा बाहर आ सके।

प्रयोग विधि—

अच्छे पक्के फल को काटकर तश्तरी में रखें। यह फल भोजन करते समय बीच में शाक की जगह खाते जांय। भोजन जितनी बार करना हो उतनी बार अमरूद अवश्य लें। इस प्रकार एक फल से प्रारम्भ कर एक बार में तीन फल तक ले सकते हैं। कभी कभी इसके खाने से पेट में दर्द होता है, संभव है इसी कारण लोगों ने इसको वायुकारक मान लिया हो। वस्तुतः पेट दर्द का कारण और ही है। आंतें जब मल अवरुद्ध रहती हैं और अमरूद उस अपद्रव्य को निकालना चाहता है तो स्वभावतः वहां पारस्परिक संघर्ष होता और वायु रुक जाती है, पेट में अफरा सा मालूम होता है क्योंकि नीचे का मार्ग रुका रहता है और ऊपर से अमरूद का अपद्रव्य निकालने के लिए दबाव रहता है।

अमरूद में नमक आदि नहीं मिलाना चाहिए और न उसका छिलका या बीज ही निकालना चाहिए यह अतिसार में लाभ करता है।

बहुत ज्यादा और पानी की तरह यदि मल आता हो तो अमरूद तत्काल ही उसमें लाभ पहुंचाता है।

प्रत्यक्ष उदाहरण—

जब मैं कलकत्ता आया ही था डेढ़ वर्ष की बात है पं० रामेश्वर जी व्यास हेड केशियर पंजाब नेशनल बैंक बड़ाबाजार ब्रांच मेरे पास आये। दुबले पतले जीवन से निराश। इनकी बातों से मालूम होता था जैसे कि कोई मरने की तैयारी करता हो। डा० ने टी० बी० की व्यवस्था कर दी थी स्ट्रेप्टोमाइसीन इन्जेक्शन भी दर्जनों दे चुके थे बैंक से भी काफी लम्बी छुट्टी वे ले चुके थे परन्तु मर्ज बढ़ता ही गया ज्यों-ज्यों दवा की। नये वैद्य की आजमाइश करने मेरे पास आए। मैंने चेहरा देखते ही कह दिया कि आपको पेट की गड़बड़ है घबराओ नहीं ठीक हो जावोगे। सारा इतिहास सुन कर उनको अमरूद खाने को कहा। विश्वासार्थ थोड़ी औषध भी दी। अमरूद के नाम से वे, उनके घर वाले तथा पड़ौसी सभी चमके; परन्तु मेरी बात पर वे दृढ़ रहे और अमरूद खाना प्रारंभ कर दिया। फलतः कुछ ही दिनों के बाद उनके पेट की अशान्ति दूर होने लगी। जब उनका वजन जो प्रति सप्ताह घट रहा था रुक गया तो उनको और भी साहस हुआ। दो तीन मास बराबर प्रयोग चला और वजन भी दस-बारह पौंड बढ़ गया। एक लाभ और हुआ पहले उनको दो छटांक से अधिक दूध नहीं पचता था ज्यादा लेने पर पाखाना जाना होता था तथा मल भी पतला हो जाता था परन्तु अब वे दूध तीन पाव निर्भीक होकर पीलेते थे तथा समय पर बंधा टट्टी आता था। अब वे स्वस्थ हैं तथा अपने मित्रों को अमरूद की सलाह देकर लोगों को स्वस्थ करते हैं जिन्हें अमरूद के विषय में भ्रांत धारणा हो उनसे मिलें।

यह मन को प्रसन्न करता है क्षुधा को बढ़ाता है पाचन शक्ति हृदय तथा मस्तिष्क को बल देता है आंत के व्रणों को दूर करता है।

मनुष्य

(कविराज हरिकृष्ण सहगल, देहली ।)

मानव शरीर निर्माण कार्बन, हाईड्रोजन, औक्सीजन, गन्धक, कैलिशयम, फास्फौर्स, मैंगनीज, सिलिकन और नाईट्रोजन के मिलाप से हुआ है ।

लाल कणों के कारण रक्त लाल होता है । लालकणों से अन्य श्वेताणु भी इसमें होते हैं । वैज्ञानिकों ने रक्त में ६० पदार्थों की खोज की है । रक्त के वर्ण विहीन द्रव को प्लाज्मा कहते हैं । रक्त की कमी होने पर इसी रक्त प्लाज्मा को स्टिन्ड वाटर के साथ शरीर में इन्जैक्ट किया जाता है । अमेरिका में प्लाज्मा की कुछ प्रोटीनों को सुखाकर इन्जेक्शन लगाने से देखा गया है कि चेचक मम्पस तथा इन्फ्लूएन्ज़ा का आक्रमण नहीं होता । आज विज्ञान की उन्नति ने रक्त बैंकों का बनना सम्भव कर दिया है । जीवित शरीर से रक्त लेकर उसे सुरक्षित कर लिया जाता है और कमी व शल्यकर्म काल में इसे मानव जीवन बचाने के लिये रक्त धमनियों में चढ़ाया जाता है ।

एक तरीका इलाज का नाम आटो हिमोथिरेपी है, इसमें शरीर से रक्त को निकाल कर उसे ही अन्य स्थान पर शरीर में इन्जेक्ट कर दिया जाता है । श्वास रोगियों को विकोटे निक एसिड और उनके साथ पांच से दस सीसी तक शिरा से रक्त लेकर उसके नितम्ब प्रदेश में सूचीवेध दिया जाता है यह श्वास की विशेष चिकित्सा है । यूरोप में व्रणों को भरने के लिये रक्त से प्रोटीन मिक्सचर प्रवेश किये जाते हैं ।

रक्त की रक्तता हेमोग्लोबिन को शास्त्र ने ओज माना है और कहा है रक्त गुणों में स्निग्ध, गुरु, चल, स्वादु और शीतोष्ण होता है ।

विज्ञान ने रक्तता की जिन ६० वस्तुओं की खोज की है उनसे सर्जिकल अर्पज बनाये गये हैं, जो स्वतः ही रक्त में विलीन हो जाते हैं । इससे एक ऐसी औषधि तैयार की गई है जो खसरा को रोकती है । बच्चों की काली खांसी की दवा भी इसी से बनी है । कुष्ठ व्रणनाशक झिल्ली का निर्माण भी रक्त से हुआ है ।

रक्त से बनी फाइब्रोजन नामक औषध प्रसूता स्त्रियों के अधिक रक्तस्राव द्वारा होने वाली रक्त की कमी को पूरा करती है । इसी अभिप्राय से बनी दूसरी औषध का नाम प्लाज्मिनोजन है यह औषध डूबते हुए दिल को बचाती है । रक्त की चीजों से एक परदा तैयार हुआ है, जिसे खोपरी के ओप्रेशन के बाद दिमाग पर चढ़ा देते हैं, धीरे धीरे यह परदा दिमाग का ही एक भाग बन जाता है ।

स्त्री के मासिक स्राव में पुरानी शराब मिलाकर आंख में लगाने से फूली कट जाती है । उष्ण मासिक-स्राव को आंख में लगाने से लाली कटती है । अपने रज को छातियों पर लगाने से उनकी कठोरता बनी रहती है । बावले कुत्ते के काटे स्थान पर रज लगाने से विष दूर होता है । श्वेतकुष्ठ पर रज का लगाना लाभ करता है । आर्तव के स्पर्श मात्र से शराब खट्टी हो जाती है । उस स्पर्श मात्र से दर्पण का पारद फट जाता है, बीज पर रज गिरने से उसकी उगने की शक्ति नष्ट हो जाती है । मधु-मक्खी रज पीने से मर

जाती है, कुत्ते के पेट में रज पहुँच जाने से वह पागल हो जाता है, इसी लिए आचार्यों ने ऋतुकाल में स्त्री-स्पर्श का निषेध किया है।

मनुष्य बाल एक प्रकार के प्रोटीन से बनते हैं। रक्त बन्द करने के लिये बालोंको जलाकर लगाने का आम रिवाज रहा है, खाने में गर विष हैं, गुणोंमें सर्द खुश्क हैं, खाने पर वमन लाते हैं। जालीनूस का कथन है कि मनुष्य के बालों को जलाकर जुलाब में मिलाकर गर्भवती के शिर पर लेप लगाने के प्रसव शीघ्र होता है। बालों को सिरका में पीसकर बावले कुत्ते के व्रण पर लगाने से लाभ होता है। गले स्थान पर जैतून के तैल में मिलाकर लगाये जाते हैं। बालों की राख को आंख में लगाने से आंख के व्रण दूर होते हैं। कान के दर्द में रोगन गुल में मिलाकर, कान में डाला जाता है। काले बालों को अष्टमांश नीलाथोथा के साथ मिलाकर तैल निकालें इसे श्वेतकुष्ठ को खुर्च कर लगाने से श्वेत दाग दूर होते हैं।

मनुष्य का थूक सर्प के लिए विष है, तीन चार सर्प के मुख में थूकने से सर्प मर जाता है। दाद मुहासों, आंख की मुहांजनी आदि में बासी थूक लगाने का रिवाज है। निराहार मुंह गेहूँ चबाकर शोथ पर बांधे तो वह बैठ जाती है अगर फोड़े पर लगायें तो वह फट जाता है। प्राचीन काल में जो राजा विषकन्यायें पालते थे उनकी लार में इतना विष होता था कि तत्काल पुरुष की मृत्यु हो जाती थी। नमक न खाने-वालों की लार में भी विष होता है। थूक व्रणरोपक है. गुजरात में थूक में लवण डालकर व्रण में भरते हैं। कुछ वर्ष पूर्व बम्बई में आधा चबाया पान, व्रणों को भरने के लिये उनमें दबाया जाता था।

कर्णगूथ—पित्त की उष्णता से कान में मैल जम जाता है इसे अङ्गरेजी में सैम्प्ल आफ सैरेमन कहते हैं। कान के सूक्ष्म भाग में बहुत सी सूक्ष्म ग्रंथियां होती हैं, इनमें से एक प्रकार का चेपदार पदार्थ निकलता है इसे कर्णशूल कहते हैं। इस कर्णगूथ को पशमीना स्याह के ऊपर रखकर स्त्री के गले में बांधे जब तक बंधा रहेगा गर्भ स्थिति न होगी।

अस्थियां—बच्चे का वह दांत जो सर्वप्रथम गिरे कपड़े में सींकर तावीज की तरह पास रखने से स्त्री गर्भवती नहीं होती। मनुष्य अस्थिभस्म में पेठवा मिलाकर लगाने से नाक के अन्दर की फुन्सियां दूर हो जाती हैं। इसी की नस्य नकसीर के रक्त को बन्द करती है।

नर कपालस्थि भस्म—१ रत्ती घृत में देने से मृगी दूर होती है। समभाग चीनी के साथ खिलाने से आमवात गठिया व गृध्रसी में लाभ होता है। अस्थि की भस्म को बुरकने से व कज्जली के साथ घृत में मरहम बनाकर लगाने से घाव भरते हैं। मनुष्य अस्थि गर्म कर पानी से बुझा, पानी पिलाने से तृषा शान्त होती है, च० वि० टायफाइड ज्वर में १ से २ गुंजा तक ठंडे जल के साथ दोपहर को एक मात्रा देने से बहुत लाभ होता है। हलुवा में १ रत्ती से २ रत्ती तक खिलाने से भी व्रणों को भरती है। अस्थिभस्म को जात्यादि तैल में मिला व निम्ब तैल में मिश्रण कर नासूर पर रखने से लाभ होता है। मनुष्य का दन्त जलाकर पीस लें, इसे सर्प काटे स्थान पर बुरकने से लाभ होता है। नर कपालस्थि भस्म, अभ्रक और सितोपलादि चूर्ण का सेवन यक्ष्मियों को लाभ करता है।

ओस्ट्रो कैल्शियम में चूना और अस्थिभस्म है, इसके स्थान पर १० पुट की कुमारी स्वरस से निर्मित मनुष्य अस्थि भस्म समान गुणों की है। यह भस्म बालशोष, दन्तोद्गम कष्ट, राजयक्ष्मा, विटामिन डी की कमी, गर्भवती स्त्री के लिये उपयोगी है एक दो रत्ती की मात्रा में माखन के साथ लेने से सर्व प्रकार का रक्तस्राव दूर होता है। यही भस्म उन्माद और अपस्मार में भी हितकर है। नरकपालस्थि भस्म कम मात्रा में बकरी के दूध से दें और ऋतु स्नान के बाद सम्भोग करें तो गर्भस्थिति हो। परन्तु इसे अधिक काल तक न खिलाना चाहिए, आंख का पानी शुष्क करके अन्धा भी कर सकती है।

नाखून—हाथ पांव के नाखून जलाकर धूनी देने से अर्श दूर होती है; नाखूनों की राख में ३ रत्ती

अफीम मिलाकर नासूर में भरने से वह भर जाता है।

मनुष्य पित्ता—मैडीकल जर्नल के अनुसार चूना मगनीशिया, कोलेस्ट्रोल, क्लोराइड आदि पदार्थ इसमें रहते हैं। मनुष्य पित्ता घोर विष है। परन्तु आंखों पर लगाने से उसके ऊपर आने वाले श्वेतप्रदर को काट देता है। पित्त को गेहूँ के आटे में मिलाकर कृष्ण वर्ण कुक्कुर को खिलायें और फिर उसके मांसरस का सेवन करें तो मोटा करता है।

मनुष्य वृक्कों को धोकर पिलायें तो ज्वर, यकृत शोथ दूर हो जाते हैं।

मस्तिष्क—मनुष्य के मस्तिष्क की खाद बनाकर खरबूजे आदि बोयें और इनके फलों को सेवन करें तो बुद्धि और स्मृति में वृद्धि होती है।

चमड़ा—बच्चे के खितना कराने से जो चमड़ा कट जाता है, वह बारीक पीस लें, थोड़ी मात्रा में मुश्क और गुलाब मिलाकर कुष्ठी को पिला दें तो उसका रोग नहीं बढ़ता, इसी की भस्म को श्वेतकुष्ठ के रोगी को खिला दें तो यह रोग चला जाता है।

नाल—बच्चे की नाल का एक टुकड़ा कलाई पर बांधने से हाथ का दर्द जाता रहता है। स्त्री के कमल का सूखा भाग करम के साग के शुष्क पत्तों में लपेटकर अगर प्रसूता की योनि भाग में धूनी दें तो कमल बाहिर निकल आती है। शिशु काल का वह भाग जो नाल काटने के पश्चात तागे से बांध दिया जाता है, थोड़ा लेकर अंगूठी के नग के नीचे रखें तो, इसके पहनने से पेट की घोर पीड़ा नहीं होती। मनुष्य पसीने को आटे में मिलाकर छातियों पर लगाने से शोथ दूर होता है।

मनुष्य वीर्य—अमेरिका में ईस्टा ट्यब बेबीज उत्पन्न करने के लिये इसका व्यवहार होता है। एक अमेरिकन डाक्टर की धारणा है कि मनुष्य वीर्य को बनमानस मादाओं में प्रविष्ट कर एक अच्छी नसल पैदा की जा सकती है। वीर्य स्त्रियों में देर तक युवावस्था कायम रखता है। कुष्ठ पर लगाने से दाग दूर होते हैं। वीर्य में पारद मिलाकर नस्य देने से पक्षाघात में लाभ होता है, डिप्थीरिया रोगी के गले से बाहिर शहद से लगाना चाहिए।

(आयुर्वेद गौरव)

तीन अनुभव

(वैद्य कान्ति भाई मेहता, आयुर्वेदविशारद)

१—रक्तदबाव की अधिकता-हाई ब्लडप्रेशर

इस रोग को रोग न कह कर लक्षण कहना ही उपयुक्त है। निदान-चिकित्सा में मन को विशेषतः स्मरण में रखना चाहिए। शारीर-मानस विश्रान्ति की आवश्यकता इसमें मुख्य है। पश्चात् शीत उपचार अवश्य गुणकारी सिद्ध होता है।

एक सज्जन पटवारी के रूप में सरकारी नौकर थे। सहसा उन्हें अर्दित (फेशिअल पेरेलिसिस) हो गया। यों उन्हें भ्रम तथा शिरोवेदना की व्याधि तो थी ही। इन विकारों के लिये एलोपैथिक उपचार चालू था, उसी समय में उन्हें यह अर्दित हो गया। डाक्टर औषध रूप में विटामिन बी० कम्प्लेक्स की सूची-वस्ति, उसी की गोलियां तथा सर्पीना टेब्लेट देते थे। तथापि अर्दित के लक्षण प्रकट होते और लुप्त हो जाते थे। इस प्रकार तीन-चार वेग हुए। रोगी मेरे पास लाया गया। मैंने रोगी की भली प्रकार परीक्षा की। मुझे प्रधान दोष पित्त तथा अनुबद्ध दोषवायु प्रतीत हुआ। वात-पित्तशामक उपचार करने का निर्णय कर रोगी का केस हाथ में लिया।

प्रातः-सायं बृहत् सुवर्णवसन्तमालती १ रत्ती, गोदन्तीभस्म १ रत्ती, मुक्तापिष्टी १ रत्ती, गुडूची सत्व १ रत्ती—च्यवनप्राशावलेह के साथ तथा रात को चन्द्रप्रभावटी तीन गोलियां दूध के साथ देना आरम्भ किया। तेल, अम्लपदार्थ तथा हरी-लाल मिर्च वर्ज्य कराये। छिलके सहित शिम्बी धान्य, उष्ण पदार्थ तथा वात-पित्तकर द्रव्यों का भी त्याग कराया

साथ ही शारीर-मानस आराम कराया। रोगी का एक मास उपचार चालू रहा। इस मध्य अर्दित का एक भी वेग न हुआ और रोगी स्वस्थ हो गया।

२—ज्वर-प्रतिश्याय-कास

मेरे एक रोगी को ज्वर आता था। वेग ९९°, से १०१° फा० पर्यन्त रहता था, वय ६० वर्ष की थी। तमकश्वास तो उसे था ही। वह भी चिरकारी होने से याप्य ही था। माधव ने इस रोग के विषय में स्पष्ट कहा है—

स याप्यस्तमकश्वासः साध्यो वा स्यान्नवोत्थितः।

तथापि प्रायः चिकित्सक इस तथ्य को विस्मृत कर रोगी को स्वस्थ कर देने के भारी आश्वासन देते हुये तन और धन की बलि देते देखे जाते हैं। प्रारम्भ में ही यह कह दिया जाये कि रोग याप्य है तो न्यूनाधिक काल अर्थकृच्छ्र सहन करना पड़े, परन्तु अनुबन्ध में तो यह लाभदायी ही सिद्ध होता है। आवश्यक होने से इतना विषयान्तर कर अब पुनः विषय पर आता हूं। रोगी को श्वास-क्रिया के वेग अधिक होते थे और दुर्बलता थी। मैंने एक सरल योजना अजमाई और रोगी को अल्पकाल में ही शान्ति प्राप्त हुई। योजना यह थी—

शुण्ठी, कण्टकारीमूल, वासापत्र, निम्ब पर चढ़ी गुडूची प्रत्येक द्रव्य आधा तोला लेकर अष्टगुण जल में डाल उबालते-उबालते चतुर्थांश शेष रख क्वाथ छान लिया। शीतल होने पर उसमें मधु डाला। ऊपर से पिप्पलीचूर्ण १ रत्ती छिड़क कर रोगी को पिलाया। प्रातः-सायं यह क्वाथ देता था।

पथ्यापथ्य में तेल, अम्ल द्रव्य, मिर्च तथा गुरु द्रव्य वर्ज्य कराए। प्रातः मृद्गयूष लशुन आदि से संस्कृत कर दिलाता था मध्याह्न को खिचड़ी। सायं केवल एक कप दूध में दो टुकड़े शुण्ठी छोड़ उबाल कर दूध पिलाता था शेष आहार छुड़ा दिया। एक सप्ताह में रोगी का रोग निर्मूल हो गया।

३—ऊर्ध्वग रक्तपित्त

एक रोगी आया, जिसे कास के साथ रक्त प्रवृत्ति होती थी। रोगी की आयु ३० वर्ष की थी। प्रभूत रक्तस्राव के कारण रोगी दुर्बल हो गया था।

मैंने रोगी की परीक्षा की। रोग ऊर्ध्वग रक्तपित्त है यह निश्चय किया। रक्त-पित्तोपयोगी सरल प्रयोग आजमाया। प्रयोग यह था—

वासा-पत्रों का पुटपाक-विधि से स्वरस निकाला। रस शीतल होने पर उसमें अर्ध भाग मधु मिलाया। मधु से अर्धांश सितोपलादि डाला। इस प्रकार एक सप्ताह की औषधि बना कर दिया।

एक ही सप्ताह में रोगी की रक्तप्रवृत्ति शान्ति होगयी। कास भी न्यून हो गया। वह कुछ बल अनुभव करने लगा शास्त्रकारों ने—

वासायां विद्यमानायामाशायां जीवितस्य च।
रक्तपित्ती क्षयी कासी किमर्थमवसीदति॥

इन शब्दों में वासा के गुणों की अति प्रशंसा की है। इन गुणों की प्रत्यक्ष प्रतीति मुझे हुई। अन्य रोगियों को भी मैं यही योजना देता हूं।

इस रोगी की चिकित्सा हुए वर्षों बीत गए। अब तक कोई कष्ट होने का वृत्तान्त उपलब्ध नहीं हुआ।

(आयुर्वेद विज्ञान)

● ●

तीव्र ज्वर की सफल चिकित्सा

एक बालक उम्र १३ वर्ष त्रतीयक ज्वर से बीमार था। तीसरे दिन को बड़ी तेजी के साथ ज्वर आजाया करता था। रोगी के कुटुंबियों द्वारा रोगी मेरी चिकित्सा में लाया गया। मैंने उसे चंदनादि काढ़े के साथ महामृत्युंजय रस १-१ रत्ती दिन में तीन बार देना आरम्भ किया। भोजन के पश्चात कामदुधा गाय के दूध के साथ आध-आध रत्ती देने लगा। परिणाम यह हुआ कि ४ दिनों के बाद रोगी को प्रतिदिन ज्वर आने लगा। त्रितीयकज्वर का रूपान्तर दैनिकज्वर में होगया।

मैंने चिकित्सा में थोड़ा परिवर्तन कर महामृत्यु-

जय रस १-१ रत्ती तुलसी के पत्तों के रस के साथ देना प्रारम्भ किया। रोगी का ज्वर कम होगया तथा रोगी सुधरने लगा। किन्तु एक दिन अकस्मात सुबह से ही रोगी के ज्वर का वेग बढ़ना शुरू हुआ। ६६½° से धीरे धीरे ज्वर बढता हुआ दिन के ३ बजे तक १०५° पर पहुँच गया। मैं चिंतित हुआ। चिकित्सा आरंभ की परन्तु ज्वर कम होने के स्थान पर उत्तरोत्तर बढ़ता ही गया। सायंकाल ६ बजे रोगी का तापमान १०७° डिग्री होगया। तापमान की इस तीव्रता को देख मेरा तो धैर्य छूटने लगा कारण मैंने अपनी चिकित्सा में १०६° से अधिक तापमान कभी देखा ही न था। अस्तु विवश होकर धैर्यपूर्वक पुनः चिकित्सा आरम्भ की।

ज्वर की तीव्रता कम करने के लिए सन्निपात भैरवरस १-१ रत्ती अद्रक का रस तथा शहद के साथ देना शुरू किया। रोगी के सिर पर ठंडे पानी की पट्टियां रखना प्रारम्भ कीं। रोगी की बेहोशी मिटाने के लिये रोगी के नेत्रों में सोंठ का अञ्जन दिया तथा रोगी के तल-हाथ एवं पैरों को गाय के घी में कपूर मिलाकर कांसे के कटोरों से मलवाना आरम्भ किया। इस चिकित्सा का परिणाम यह हुआ कि आधे घण्टे पश्चात् ज्वर १ डिग्री कम (१०६°) होगया। मैंने रोगी को दी जाने वाली औषधि बंदकर कामदुधा (मौ. यु.) आध-आध रत्ती गाय के दूध के साथ आध-आध घण्टे के अन्तर से तीन मात्रायें दीं परिणाम यह हुआ की १॥-२ घण्टे बाद रोगी का तापमान १०२° डिग्री पर आगया। मुझे यह देखकर हर्ष हुआ। रोगी को कोई इंजेक्सन देने की आवश्यकता प्रतीत नहीं हुई। अब रोगी की दशा अत्यन्त समाधानकारक है। (लोक वैद्यक)

वनस्पतियों पर मेरे अनुभव

(वैद्यरत्न कविराज प्रतापसिंह जी D. Sc.)

बल प्राप्ति के लिए

शरीर को तरोताजा रखने के लिए दूर्वा का निम्न प्रयोग उत्तम है। मैं चिरकाल से इसका प्रयोग कर रहा हूँ।

हरी दूर्वा	१ तोला
बादाम छिलके सहित	१० दाने
काली मिर्च	१० दाने

—इन तीनों को सिल पर पीसकर रुचि के अनुसार मीठा मिलाकर शर्बत ३-४ बजे दिन के पीलें।

दूर्वा में जीवन शक्ति अनन्त है किसी अनुसंधान कर्ता ने लिखा है—

"निष्पिष्टापि पदाघातैः खरतापैश्च तापिता।"
अजाद्यैश्चर्विता न्येषां न दूर्वा म्रियते क्वचित् ॥

दूर्वा रात दिन पादाघात से कुचली जाती है सूर्य की तीव्र किरणों से उत्तप्त होती है और विविध प्रकार के जीव उसे चरते रहते हैं पर दूर्वा का नाश नहीं होता है।

दूर्वा का पूजन में भारतवर्ष में सर्वत्र ही प्रयोग होता है इस विषय में यजुर्वेद में प्रार्थना आती है।

"काण्डात्काण्डात प्ररोहन्ति परुषः परुषस्परि
एवानो दूर्वे प्र तनु सहस्रेण शतेनचे।"

अर्थात् हे दूर्वे आप कठिन से कठिन स्थान पर फैलती हैं और अपने काण्ड से लग जाती हैं इस लिये आप हजारों की तादाद में हमारे लिये संसार में फैल जांय।

यह सर्व विदित है कि हाथी जैसा जीव भी दूर्वा के सेवन से मस्त हो जाता है, गोधन तो इसके सेवन से पुष्ट होता ही है, घोड़ा जैसा बलिष्ठ परिश्रमी जीव इसी पर जीवित रहकर संसार की सेवा करता है, इस प्रकार की दिव्य सुलभ प्राप्त होने वाली वनस्पति का प्रतिदिन उपयोग कर मनुष्य क्यों न बल प्राप्त करें! प्रत्येक व्यक्ति कुछ समय सेवन कर इसका लाभ प्रत्यक्ष देख सकता है।

जापान के एक वैज्ञानिक "काई" जो पानी पर हरे रंग की वनस्पति होती है, उसका अनेक प्रकार से भोजनोपयोगी सामग्री बनाकर प्रयोग कर रहे हैं, इससे कहीं अधिक दूर्वा में जीवन रक्षा की शक्ति है।

आशा है अन्वेषक विद्वान इसकी परीक्षा कर लोकोपकार करेंगे।

नाड़ियों की शिथिलता पर मधुयष्टि

आयुर्वेद ने शरीर को नवीन बनाने के लिए अनेक सिद्ध प्रयोग दिये हैं और रसायन शब्द से इस प्रकरण का उल्लेख किया है। जिन स्त्री-पुरुषों को मानसिक दुर्बलता हो या नाड़ियों की शिथिलता से शरीर के अवयव समय पर काम करने में असमर्थ हों तो उन्हें 'मधुयष्टि या मुलेठी, का सेवन करना चाहिए।

मुलेहठी बाजारों में सर्वत्र सुलभ है इसका कपड़छान चूर्ण कर एक बोतल में भरकर रखलें, प्रति दिन ६ माशा इस चूर्ण को छटांक भर दूध में घोल-कर पीलें, निरन्तर सेवन करने से बल-बुद्धि का शरीर में संचालन कर मेधा शक्ति का अभिवर्धन करती है।

शरीर को सबल बनाने वाला योग

आजकल अग्निमांद्य, अर्श भगन्दर आदि रोगों से पीड़ित प्राणि प्रतिदिन चिकित्सकों के यहां चक्कर लगाते रहते हैं अनेक उपचार करने पर भी न्यूनाधिक कष्ट भोगते ही रहते हैं। यदि ऐसे रोगी नीचे लिखा योग वर्ष भर निरन्तर सेवन करते रहें तो आजीवन सुखी रहेंगे।

लाल चित्रक की जड़ का चूर्ण
छोटी हर्रों का चूर्ण
छोटी पीपल का चूर्ण
सैंधा नमक

सब समान भाग में मिलाकर ६ माशा से एक तोला प्रातःकाल तक्र के साथ सेवन करें तो सब प्रकार के उदर रोग नष्ट होकर शरीर बलिष्ट हो जाता है।

(रसायन)

'मेंहदी' और उसका विभिन्न-रोगों में उपयोग

१—'सिरदर्द में' तेल में मेंहदी और राल पीस कर गाढ़ा-गाढ़ा लेप करो।

२—'चेचक के प्रकोप में' मेंहदी के पत्ते पीसकर पैरों के तलवों में लेप कर दो। इससे आंखें बिगड़ जाने का भय बिलकुल जाता रहेगा।

३—मेंहदी के पत्ते पीस कर बालों पर लगाने से वे मजबूत-रंगीन रहेंगे।

४—नाखूनों पर मेंहदी लेप करने से वे रोगित नहीं होते, सुन्दर रहते हैं।

५—मेंहदी के पेड़ की छाल को छाया में सुखा कर बारीक कूट डालो। इसे १ माशे से २ माशे तक अवस्थानुसार गरम पानी से लेने पर तिल्ली के विकार, पथरी, कोढ़ एवं अन्यान्य चर्मरोग नष्ट होंगे।

६—पुराने गरमी के सिरदर्द में 'मेंहदी के फूलों का हिम' बनाकर पिलाओ।

७—यदि शरीर का कोई भाग घिसड़-छिल जाय तो मेंहदी लगाये।

८—नींद न आती हो तो इसके फूलों का तकिया रख कर सोइये।

९—कोढ़ में इसका सत्व या गोंद, या पत्र-पुष्प कुष्ठ-रोगी को देवें।

१०—सभी चर्मविकारों में इसके पत्तों का लेप अत्यन्त लाभप्रद है।

११—मेंहदी का चूर्ण (पावडर) उत्तम जन्तुघ्न प्रमाणित हुआ है।

१२—मेंहदी के पत्तों का रस १ से २ चम्मच तक प्रतिदिन पीते रहने से कष्ट-साध्य रक्त-विकार भी सरलता से ठीक हो जाते हैं।

१३—गरमियों में जिन्हें नकसीर फूटती हो वे हर तीसरे दिन इसे लगावें।

१४—सिर के तलुवे को प्रतिदिन मुंडवा कर उस पर १ अंगुल मोटी हरी-पिसी मेंहदी रखे रहने से पागलपन मिट जाता है।

नोट—मेंहदी के फूल बरसात में लगते हैं।

(आयुर्वेद चिकित्सक)

अमलतास (CASSIA-FISTULA)

(लेखक—श्री पं० कृष्णप्रसाद त्रिवेदी B. A. आयुर्वेदाचार्य)

वि० दृष्टव्य—

यह भारतवर्ष की ही वनौषधि है। चरक सुश्रुतादि प्राचीन से प्राचीन आर्षग्रन्थों में इसका विवरण उपलब्ध है। शायद अरबों ने इसका ज्ञान भारत से ही प्राप्त किया था, तत्पश्चात् यूनानियों को इसके विषय में ज्ञात हुआ है।

आयुर्वेदीय निघण्टुकारों ने इसका एक नाम कर्णिकार रख दिया है। और कहा है कि यह अमलतास का ही एक भेद 'क्षुद्र अमलतास' है। इस विषय में विद्वानों में बहुत ही मतभेद है। इस मतभेद के दो कारण हैं। एक तो 'कर्णिकार' यह नाम 'उलटकमल' नामक वनौषधि को आधुनिक विद्वानों में से किसी किसी ने दे दिया है। स्वर्गीय श्री उमेशचन्द्र जी ने भी अपने औषधि शब्दसिन्धु में उलटकमल को कर्णिकार यह नाम देते हुए, दूसरा उसका वास्तविकनाम 'द्रुमोत्पल' दिया है, तथा राजनिघन्टुकार के अनुसार उसके गुणों को लिखा है।

दूसरा कारण यह है कि भावप्रकाश में अमलतास के पर्यायवाची नामों में जो 'कर्णिकार' शब्द आया है, उसके नीचे किसी टीकाकार ने 'महाकर्णिकार और द्रुमोत्पल ये नाम दे दिये हैं। वास्तव में 'द्रुमोत्पल' यह नाम 'उलटकमल' को दिया जा सकता है, न कि कर्णिकार या महाकर्णिकार को।

बड़ा अमलतास और छोटा अमलतास ऐसे दो भेद अमलतास के हैं। बड़े को महाकर्णिकार और छोटे को कर्णिकार कहा गया है। छोटा अमलतास या कर्णिकार का पेड़ बड़े अमलतास से छोटी कद का रेतमिश्रितभूमि (मध्यप्रदेश में चांदा के जंगल में तथा अन्य ऐसे ही जंगलों) में पाया जाता है। इसकी फलियां, बड़े अमलतास की फलियों की अपेक्षा लम्बाई और गोलाई में छोटी होती हैं। इसकी पुष्पमाला, बड़े अमलतास की पुष्पमाल जैसी ही नयनमनोहर होती है, किंतु निर्गन्ध होती है। महाकवि कालीदास इसी कर्णिकार को देख दुखित चित हो कह उठे थे कि—

"वर्ण प्रकर्षे सति कर्णिकारं दुनोति निर्गन्धतयास्य चेतः। प्रायेण सामग्र्य विधौ गुणानां पराङ्मुखी विश्वसृजः प्रवृत्तिः॥" (कुमारसंभव).
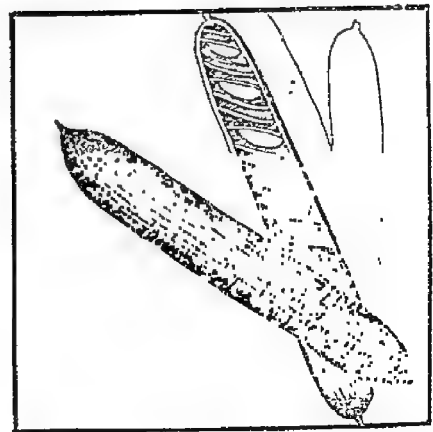
इसी प्रकार उनकी एक उक्ति 'श्रीकण्ठचरित सर्ग ५ में है। महाकर्णिकार या बड़े अमलतास के पेड़ को शायद कालीदास जी ने नहीं देखा। अन्यथा उसकी मनोहर मधुर सुगन्धियुक्त सुवर्णपुष्पमाला को देख

वे मुग्ध हो जाते और उनका चित्त प्रसन्न हो शायद कह उठता कि 'सोना और सुगन्ध की कहावत इसमें चरितार्थ होती है। अस्तु'

स्वर्गीय श्री उमेशचन्द्र जी ने इस 'कर्णिकार' के विषय में (इन्होंने ही उलटकमल का कर्णिकार नाम रक्खा और फिर अन्यत्र इसी औषधि शब्दसिन्धु में) ठीक ही लिखा है कि—'ह्रस्व स्वर्णभूषण वृक्ष A sort of Cassic Fistula (एक प्रकार का अमलतास) जिसे बंगला में छोटे सोनालु गाछ, मरेठी में लघुबाहवा, तेलंगी में किरुपक्के आदि कहते हैं, और राजनिघण्टु में जो 'सर, तिक्त कटूष्ण, कफशूलघ्न, उदर कृमिभेदघ्न और गुल्मघ्न★गुण कहे गये हैं वे इसी के हैं।

नामः—

संस्कृत—आरग्वध, राजवृक्ष, चतुरंगुल, कर्णिकार इ०
हिन्दी—अमलतास, धनवहेरा, बानरकाकड़ी इ०
मरेठी—बाहवा, भावा इ.।
गुजराती—गरमाले गरमाळो, गडमालु, इ।
बंगाली—सोनालु, बन्दरलाटी इ.।
पंजाब—अमलतास, करङ्गल, कनियार।
तेलंगी—रेल्लकाय, रेलचेट्टु।
तामील—कोरैक्काय।
कर्नाटकी—कक्केमर।
मलबारी—कोनक्काय।
द्राविड़ी—कोन्नेमरं, शरकोन्ने।
उड़ीया—सुनारी।
आसामी—सनारू।
गोंड़ी—जगरा, जगरुआ।
फारसी—ख्यारे चंबर।
अरबी—ख्यारे शम्बर।
अंग्रेजी—पुडिंग पाइप ट्री pudding pipe tree
दि इण्डियन लेबर्नम—the Indian Laburnum
दि पर्जिग केसिया. the purging cassia,
लेटिन—केसिया फिस्चुला. Cassia Fistula,

★ "कर्णिकारः सरस्तिक्तः कटूष्णः कफशूलहा।
उदरकृमिमेहघ्नो व्रण गुल्महरो नृप॥
(नि० र० और राज नि०)

उत्पत्तिस्थान—

यह प्रायः समस्त भारतवर्ष में ब्रह्मदेश, बंगाल, पश्चिम भारतीय द्वीप समूह, दक्षिण अमेरिका त्रेमित प्रांत में तथा अफ्रिका के उष्ण प्रदेशों में बहुतायत से पाया जाता है।

विवरण—

इसके मैदानी पेड़ छोटी कद के (जिन्हें कर्णिकार या छोटा अमलतास कहा जाता है) होते हैं, तथा पहाड़ी पेड़ या बड़ा अमलतास बड़ी कद के लगभग ३० फुट तक ऊँचे होते हैं। पेड़ की गोलाई ३ से ५ फुट तक होती है। शाखायें खूब घनी मोटी और पतली होती हैं। शाखाओं से एक प्रकार का लाल रस निकलता है, जो जमकर पलाश के गोंद जैसा हो जाता है। इसे डाढ़ के दर्द पर लगाते हैं।

मूल—

पेड़ की जड़ें जमीन में बहुत गहरी गई होती हैं। जड़ की लकड़ी बड़ी कड़ी होती है, तथा ऊपर की छाल धूसर लाल वर्ण की, रस से युक्त होती है। छाल की गंध उग्र और स्वाद में कुछ कसैली कड़ुवी होती है।

पत्र—जामुन के पत्र जैसे अण्डाकार, आमने-सामने जोड़े से, लम्बी सींकों पर लगते हैं। पत्र-धारण करने वाली सींक १२ से १८ इञ्च तक लम्बी होती है, जिसमें पत्रों के ४ से ८ तक जोड़े लगते हैं। पत्ते की लम्बाई ३ से ५ इञ्च तक (कर्णिकार के पत्ते की लम्बाई १॥ से ३ इञ्च) और चौड़ाई १॥ से ३॥ इञ्च तक होती है। पत्र का पृष्ठ भाग चिकना और डंठल ह्रस्व होता है। बड़े अमलतास के पत्ते के दोनों ओर श्वेत धूसर वर्ण के रोंये से होते हैं। पत्र का ऊपरीभाग गहरा नीले वर्ण का, तथा नीचे का भाग किंचित् फीके वर्ण का होता है। कोमल पत्र बड़े चमकीले सुन्दर निखरे हुये सुवर्ण की आभायुक्त तथा घने रोयेंदार होते हैं। पत्र की गंध उग्र, स्वाद में कुछ चरपरे व कसैले से होते हैं। पत्र प्रायः शीतकाल के अन्त में झड़ जाते हैं।

पुष्प—कर्णिकार या छोटे अमलतास में पत्तियों के झड़ जाने पर प्रायः वैसाख या ज्येष्ठ मास में पीत पुष्पों की माला से सम्पूर्ण पेड़ बड़ा ही मनोहर दिखाई देता है, ऐसा मालूम देता है मानो पेड़ ने चमकीला पीताम्बर धारण कर लिया हो। किन्तु इसमें गन्ध नहीं होती।

बड़े अमलतास में भी ये पुष्प पीतवर्ण के, सुदीर्घ मालाकार तुर्रों में प्रायः चैत्र या वैसाख में पत्तों के साथ ही साथ निकलते हैं। ये पुष्प प्रायः ज्येष्ट मास के अन्त तक वृक्ष को सुशोभित किये रहते हैं। प्रत्येक पुष्प में प्रायः पंखुड़िया होती हैं। पुष्पों को धारण करने वाली पतली सींक जैसी मालाकार डंडी १ से १॥ फुट तक लम्बी, पत्रकोण में से (Axillary) निकली हुई होती है। यह डंडी गहरे हरित या नील वर्ण की बड़ी ही मुलायम, चमकीले व श्वेत रोयों से व्याप्त होती है, तथा पुष्पों से लदी हुई, वायु के झोंके से इधर-उधर झुलती हुई नेत्रों को आकर्षित करती है। इन पुष्पों में स्वाभाविक मधुर गन्ध प्रथम बार सूंघने पर पके हुए खरबूजे जैसी मीठी, किन्तु बाद में विशेष सूंघने पर जरा उग्र या तीक्ष्ण लगती है। पुष्प का डंठल १॥ से २॥ इञ्च लम्बा, मुलायम और नीचे की ओर झुका हुआ होता है। पुष्प-डंठल के मूलभाग में तीन पुष्प-पत्र (Bracts) होते हैं, जो १/८ इञ्च से ३/१६ इञ्च तक लम्बे तथा धूसर, चमकीले रोयों से व्याप्त रहते हैं। बीच का पुष्प-पत्र कुछ अधिक लम्बा होता है।

इन पुष्पों की भाजी (साग) बनाई जाती है; गुलकंद और क्वाथ भी औषधि प्रयोगार्थ बनाया जाता है। किंतु ये पुष्प बहुत ही शीघ्र सड़ने वाले होते हैं। इन्हें संग्रह कर सुरक्षित रखना बड़ी ही मुश्किल का काम है। अतः इनका जो कुछ उपयोग करना हो तुरन्त ही कर लेना आवश्यक होता है।

फली—ज्येष्ठ मास में प्रायः पुष्पों के झड़ जाने पर ये फलियां आरम्भ में पतली-पतली सलाई जैसी नीलाभ हरित वर्ण की निकलती हैं, जो धीरे धीरे वर्षा के अन्त तक १॥ से २॥ फुट तक लम्बी होजाती हैं। छोटे अमलतास में ये फलियां अधिक से अधिक १॥ फुट लम्बी होती हैं। गोलाई में ३/४ से १ या १॥ इञ्च तक नलाकार होती हैं।

पक कर सूखने पर शीतकाल के अन्त में, इनका रक्ताभ काला वर्ण होजाता है। तथा इनका पृष्ठ भाग लकड़ी के समान कड़ा होजाता है। फली का अग्रभाग नोकदार होता है। फली के अन्दर छोटे छोटे खाने बने रहते हैं। तथा खाने या परत के दोनों ओर अफीम जैसा काले वर्ण का, चिपचिपा मधुर गूदा या गिर लगा हुआ होता है, जो मुख्य औषधि कार्य में लिया जाता है।

बीज—फली के उक्त प्रत्येक परत में २-३ बीज सिरस के बीज जैसे, चक्राकार रक्ताभ धूसर वर्ण के, खूब चिकने होते हैं। ये बीज बड़े कड़े होते हैं, फोड़ने पर अन्दर से पीली दाल निकलती है।

लकड़ी—पेड़ की लकड़ी बड़ी मजबूत होती है। घरों पर छप्पर के काम में या कुए के अन्दर पानी की सतह पर लगाने के काम में आती हैं। लकड़ी की राख रङ्ग के काम में आती है। लकड़ी के ऊपरी छाल को पानी में सड़ाकर रेसा निकाल कर रस्सी बनाते हैं, तथा यह छाल चमड़ा रंगने के काम में भी आती है।

गुण-धर्म

आयुर्वेदानुसार—

यह रस में मधुर, विपाक में तिक्त (कोई-कोई रस और विपाक में इसे मधुर ही मानते हैं), वीर्य में शीतल और गुरु, स्निग्ध, मृदुरेचक, जठराग्नि-वर्धक है, तथा ज्वर, दाह, हृदय रोग, वातोदावर्त्त, कृमि, शूल, उदररोग, विष्टम्भ, प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, रक्तपित्त, कफोदर, गुल्म, पित्तप्रकोप, त्रिदोष, कण्डू, और कुष्ठनाशक है। ज्वरकाल में मलावरोध दूर करने के लिए इसकी सफल योजना की जाती है।

आंत्र में संग्रहीत कच्चे और पक्के मल को यह निकाल देता है। यह आम को पचाकर मल को नहीं निकालता। ज्वर की दशा में दूषित आम को

न पचाते हुए यदि उसे शीघ्र ही बाहर निकाल दिया जाय तो और भी उत्तम होता है, ज्वर ज्यादा उग्ररूप नहीं धारण कर सकता, अतः ज्वर की हालत में भी आंत संशोधनार्थ एवं आम-मल को बाहर निकालने के लिये, साथ ही साथ आंत्रप्रदाह शमनार्थ इसका उपयोग निर्भयता से किया जाता है।

"जिस प्रकार डाक्टरी में लिक्विड पेरेफिन और एरण्ड तैल से स्रंशन करा (मल को धीरे धीरे सरका) कर बाहर निकालना. यह कार्य होता है, उसी तरह अमलतास के गूदे से स्रंसन गुण की प्राप्ति होती है, किन्तु लिक्विड पेरेफिन का जितना अंश पच जाता है, वह देह के लिये उपकारक नहीं होता उसमें यह दोष है। और एरण्डतैल विरेचन कराने के पश्चात् अंत्र का आकुंचन कराता है, जिससे दूसरे दिन मलावरोध हो जा ताहै। ये दोनों दोष अमलतास में नहीं हैं। इसलिये ज्वरावस्था में उदर शोधनार्थ अमलतास इन दोनों से श्रेष्ठ माना गया है। अमलतास के विरेचन से अति विरेचन नहीं होते, एवं कभी निर्बलता भी नहीं आती, अर्थात् यह सौम्य स्रंशन औषधि है। यह अंत्र में स्रंशन गुण की प्राप्ति कराता है, इस हेतु से उदरशूल, उदरवात और उदावर्त की भी निवृत्ति होती है। इसी हेतु से इसकी योजना आवश्यकता पड़ने पर क्षय में भी उदरशुद्धि के लिये की जाती है।" (स्वामी श्री कृष्णानंद जी)

आगे स्वामी जी (गांवों में औषधिरत्न पुस्तक में) लिखते हैं कि-"अमलतास से उदरगत मल और कृमि निकल जाते हैं। फिर मल विष या कीटाणु विष का प्रवेश रक्त में नहीं होता। एवं रक्त-प्रसादन का कार्य भी कुछ अंश में यह करता है। इन दोनों हेतुओं से उक्त विष से उत्पन्न सब चर्मरोगों (कुष्ठ) का नाश होजाता है। यह रक्त की तीक्ष्णता और उष्णता को कम करता है। इसी लिये ऊर्ध्वगामी रक्तपित्त की अधःप्रवृत्ति कराकर, विकार दूर करने के लिये यह दिया जाता है।

आमवात, उदर में मल और वात-संग्रह, हृदय शूल एवं विविध वातरोगों में हृदय पर आघात पहुँचने से हृदय शिथिल बनता है। ऐसी स्थिति में अमलतास का सेवन कराने से उदर का शोधन होकर हृदय कष्ट से बच जाता है।

इसके गूद में कुछ हीक आती है, अतः सेवन काल में, उसके साथ थोड़ा गुलकंद मिला जल के साथ उबाल छान कर पिलाना विशेष लाभदायक है। कई चिकित्सक इसमें गुड़ मिलाकर सेवन कराते हैं, जिससे उदर में कोई पीड़ा नहीं होने पाती।

आयुर्वेदीय ग्रंथों में, विरेचनवर्ग में कई औषधियों का उल्लेख किया गया है, और वे सब गुणदायक भी हैं, किन्तु उन सबमें अमलतास को विशेष श्रेष्ठता दी गई है।

कहा गया है कि—ज्वर, हृद्रोग, वातरक्त, उदावर्त आदि रोगों में यह अधिक पथ्यकारी है, क्योंकि यह मृदु, मधुर और शीतल है ×। यह बालक, वृद्ध क्षतक्षीण और सुकुमार से सुकुमार तक को भी हानि नहीं पहुंचाता, प्रत्युत् लाभ ही पहुंचाता है।

इसे विशेष रूप में (कल्परूप से) सेवन कराने के लिये अच्छी परिपक्व गूदेदार इसकी फलियों को लेकर ७ दिन तक रेती (बालू) के ढेर में गाढ़ दें, फिर उन्हें अच्छी तरह धूप में सुखाकर, गूदा को निकाल शुद्ध पात्र (मिट्टी के शुद्ध पात्र में) भर कर सुरक्षित रक्खें। आयुर्वेदानुसार इस प्रकार निकाला हुआ इसका गूदा, कभी किसी प्रकार की हानि नहीं करता। चार वर्ष से १२ वर्ष तक के बालक के लिये इसकी मात्रा एक प्रसृत अथवा एक अंजली अर्थात् १ तोले से २ तोले तक है।

गूदे में—समभाग दाक्ष का रस मिलाकर देने से अथवा सुरामण्ड, या बेर के सीधू, या दधिमण्ड, या आमले के रस या शीतकषाय या कांजी के साथ देने से, अथवा इसे निशोथ के कषाय में मिलाकर पीने से, अथवा इसमें लवण और मधु मिला बिल्वफल के काढ़े के साथ पीने से, अथवा

× "ज्वर हृद्रोग वातासृगुदावर्तादि रोगिषु।
राजवृक्षोऽधिकं पथ्यं मृदुर्मधुर शीतलः॥"
—चरक कल्पस्थान।

इसके क्वाथ में निशोथ चूर्ण और गुड़ मिला, उचित मात्रा में सेवन करने से, अथवा इसे दूध में पकाकर उससे घृत निकाल सेवन करने से, अथवा उस घृत को पुनः आमले रस और उसके गूदे के कल्क से सिद्ध कर सेवन करने से, अथवा उसी घृत को दशमूल, कुल्थी, और जौ के कषाय तथा निशोथ आदि के कल्क से सिद्ध कर सेवन करने से, अथवा इसका अरिष्ट बना (अरिष्ट विधि आगे देखिये) सेवन कराने से उत्तम कायाकल्प की सिद्धि होती है। दाह उदावर्त आदि रोगों से पीडित रोगियों के लिये उक्त द्वादश कल्पसिद्ध चिकित्सा चरकसंहिता में दी गई है। और अन्त में कहा गया है कि जिस मनुष्य को मधुर, कटु या लवण जिस प्रकार का खान पान प्रिय हो, उसे उसी के साथ इसके गूदे का सेवन कराने से भी अभीष्ट सिद्धि होती है। उत्तम विरेचन होकर देह शुद्धि होती है।

गूदे को—गाय के उष्ण दुग्ध के साथ देने से ज्वर रोगी की कोष्ठ शुद्धि होती है। इसे प्रचुर प्रमाण में मधु और शर्करा के साथ देने से ऊर्ध्वगत रक्तपित्त में, इसका केवल काढ़ा पित्तोदर में, इसे गन्ने के या भूमिकुष्माण्ड या आमले के रस के साथ देने से कामला रोग में; इसे अजवायन के साथ मिला क्वाथ सिद्ध कर सेवन करने से कब्ज अरोचक में, इसके साथ किसमिस मिला क्वाथ सिद्धकर पिलाने से पित्त-ज्वर में, इसके साथ इमली का गूदा मिला पीसकर पिलाने से पित्तप्रकोप में लाभ होता है। यदि रोगी में कफ की विशेषता हो तो उक्त मिश्रण में थोड़ा निशोथ का चूर्ण मिला दिया जाता है।

गूदे को धनिया के साथ पीस, थोड़ा कत्था मिला मुख में रखने से, अथवा केवल इसके गूदे को ही मुख में रखने से मुख-पाक रोग दूर होता है। इसे गर्म जल में मिला उदर पर लेप करने से बालकों का आध्मान, शूल दूर होता है।

अमलतास की पकी ताजी फली को गूदा और बीजों के सहित पीस, गर्मकर प्लेग की गांठ पर लेप करते हैं, तथा प्लेग की कब्जी और बेहोशी पर इसके गूदे का क्वाथ पिलाते हैं।

इसके गूदा को पीपरामूल, कुटकी, मोथा और हरीतकी के साथ मिला क्वाथ सिद्धकर सेवन करने से आंव, शूल, कफ, वात ज्वर में लाभ होता है। यह आरग्वधादि पंचक दीपन और पाचन भी है।

कच्ची फली—अमलतास की कच्ची, कोमल फली का साग, रायता आदि बनता है जो गुणों में—स्रंसन, रुचिकारक, मृदुरेचक, पित्तनिवारक, कफघ्न, मलाशय को साफ करने वाली, ज्वर में सर्वदा पथ्य और कुष्टनाशक है।

पत्र—कफ और मेदा को सुखाने वाले, मल को ढीला करने वाले (मृदुविरेचक), सामयिक ज्वर-नाशक, ज्वर में पथ्य, व्रणरोपक, कंडु आदि त्वग्रोग और आमवातनाशक हैं।

पत्तों—को पीस कर, प्रलेप करने से कुष्ठ, चकत्ते आदि त्वचा के रोगों पर, इन्हें पीसकर घृत मिला प्रलेप करने से कफज विसर्प पर, इन्हें स्त्री के दूध में या गोदुग्ध में पीसकर लगाने से सद्योव्रण और किक्किस रोग (मांसदारुण रोग) पर, इसे वैसे ही पीसकर लगाने या स्वरस लगाने से बिलाव के विष पर, इसके साथ सेंधानमक, गंधक, चक्रमर्द के बीज केशर और रसोत मिला खरल कर तथा उसमें कैथ का रस और शहद मिला लेप करने से दाद और छाजन पर, इन्हें तक्र के साथ पीसकर टिकिया सी बना लगाने से विद्रधि पर लाभ होता है। पत्र के क्वाथ से व्रण को धोते रहने से वह शुद्ध होकर शीघ्र भर जाता है। पत्र के साथ चमेली के पत्ते मिला, क्वाथ कर उपदंशजन्य क्षत का प्रक्षालन करने से लाभ होता है।

पत्तों को नमक और मिर्च के साथ खाने से उदरशुद्धि होती है। पत्तों का साग (भाजी) तिल तैल में, लवणरहित सिद्ध कर खिलाने से उरुस्तम्भ रोग में लाभकारी है। पत्तों को सरसों तैल में भून कर सायंकाल भोजन के साथ सेवन करने से आम-दोष जन्य आमवात में लाभ होता है। पत्तों का क्वाथ

मलाई के साथ पीस कर लेप करने से नवजात शिशु के शरीर पर होने वाली फुंसियां या छाले दूर हो जाते हैं।

पुष्प—स्वादिष्ट, शीतल, कुछ कड़वे, ग्राहक, कसैले, वातवर्धक तथा कफपित्तनाशक हैं।

पुष्पों का गुलकंद आन्त्ररोग, सूक्ष्म ज्वर एवं कोष्ठबद्धता पर लाभदायक है। कोमलाङ्गी स्त्री को यह गुलकंद १॥ तोले तक रात्रि के समय दूध के साथ देने से प्रातः कोठा साफ हो जाता है। पुष्पोंका क्वाथ बहुमूत्र और अतिसार पर लाभकारी है। इसका आसव भी बनाया जाता है।

मूल—वातरक्त, मंडलकुष्ठ, दाद, चर्मरोग, क्षय, गंडमाला, हरिद्रामेह, शोथ आदि नाशक हैं।

मूल छाल या मूल—को दूध में औटाकर पीने से वातरक्त और दाह पर, इसे चावल के धोवन के साथ पीस नस्य देने तथा प्रलेप और अभ्यंग करने से गंडमाला पर; इसे तक्र के साथ पीसकर लगाने से खुजली पर; इसे जल में पीसकर लगाने से शोथ पर, और इसका क्वाथ बनाकर पीने से हरिद्रामेह पर लाभ होता है।

मूल की ताजी छाल के स्वरस की या क्वाथ की १०० बार भावनायें देकर सिद्ध किया हुआ घृत कुष्ठ रोगी को सेवन कराया जाता है, तथा इसके सेवन काल में स्नान-पानार्थ खदिरयुक्त जल का व्यवहार करते हैं।

बड़े और छोटे अमलतास की मूल को पृथक पृथक जल में पीसकर प्रलेप करने से लिंग पर हुये दर्पदंश के व्रण और पीड़ा में लाभ होता है।

पंचाङ्ग—दाह, खुजली आदि चर्मरोग एवं कुष्ठ नाशक है। इसके पंचाङ्ग (मूल, छाल, पत्र, पुष्प और गूदा) को जल के साथ पीसकर लगाने से दाह, कण्डू आदि चर्मरोगों पर लाभ होता है। पंचाङ्ग के क्वाथ का उपयोग स्नान, पान आदि (हाथ पैर धोना) कार्यों में करने से, अन्तर्बाह्य, दोनों मार्गों से लाभ पहुंच कर, नये और पुराने, सब प्रकार के कुष्ठ अच्छे हो जाते हैं। साथ ही साथ उक्त मूल क्वाथ से सिद्ध किये हुये घृत का भी सेवन कराना आवश्यक है।

—क्रमशः

लेखकों को पुरस्कार !

★

प्रति माह के अंकों में प्रकाशित लेखों के अधिकारी लेखकों को पारिश्रमिक तो दिया ही जायगा। इस वर्ष से सर्वोत्तम दो लेखों पर दो पुरस्कार भी दिए जायंगे। वर्ष में प्रकाशित होने वाले (विशेषांक के अतिरिक्त) अङ्कों में प्रकाशित सर्वोत्तम दो लेखों पर १२५) का प्रथम पुरस्कार तथा ७५) का द्वितीय पुरस्कार दिया जायगा। आशा है विद्वान एवं अनुभवी लेखक समुदाय अपने उत्तमोत्तम लेख अवश्य भेजते रहेंगे।

—वैद्य देवीशरण ग[illegible]
प्रधान सम्पादक

सर्वज्वरों पर

नीम की निबौली कच्ची, शुद्ध मनशिल, पीपल छोटी तीनों समभाग केले के फल के रस में तीन दिन घोटना फिर सुखाकर १/२, ३/४ तथा एक रत्ती की गोली बना कर यथायोग्य रोगानुसार अनुपान से देना। किसी भी प्रकार का ज्वर हो हानि नहीं होती है लाभ ही होता है। विषमज्वर तथा सन्निपात में भी वेखटके दे सकते हैं।

पुराने ज्वरों पर अर्क

पित्तपापड़ा	धनियां	कासनी
मूसली सफेद	गिलोय	खस
अजवाइन	कटेरी	नीलोफर
गाजवा सौंफ		–प्रत्येक १०-१० तोले,
त्रिफला		४० तोला
केसर		६ माशे
पुदीना		परसौंसा (हंसराज),
सरफोंका		फूलगुलाब
मोथा	मुलेठी	तज
मजीठ	पुनर्नवा	जूफा
दालचीनी		बड़ी इलायची
कुलंजन	बासा	तालीसपत्र
तमालपत्र		धाय के फूल
चित्रक	चिरायता	संखाहुली
मकोय	ग्वारपाठा	मुंडी
कुश	गोखरू	कचूर

–प्रत्येक ५-५ तोला

दोनों जीरे	बनफशा	बच
पोहकरमूल	पीपलामूल	पटोलपत्र
चंदन	छोटी इलायची	छड़ अतीस

—प्रत्येक ३-३ तोले

जावित्री	काकड़ासिंगी	भारंगी

–प्रत्येक २-२ तोला

—ये सब औषधियां मिलाकर ३ दिन भिगोकर अर्क खींचले। २ से ५ तोले तक सरबत सफा मिलाकर सेवन करने से मंदाग्नि, दस्त, क्षय, कास, शूल, आदि सब नष्ट होते हैं। यद्यपि प्रयोग बड़ा है, पर हमारा परीक्षित है।

श्री पुषपात चूर्ण—

(मोतीज्वर तथा प्रसूतरोग में अनुभूत)

लौंग	बड़ी इलायची के दाने
दालचीनी अकरकरा	चारों १–१ तोला
त्रिकुटा	३ तोला

इन सबके बराबर लाल चन्दन।

—ज्वर मोतीझरा में अनुभूत है।

अनुपान—गुलकन्द २ तोला, सौंफ ६ मासे, खूबकला ६ मासे।

—इनकी ठंडाई बना कर देना, सर्दी में ठंडाई गरम करके उसके साथ देना।

प्रसूतरोग में बड़ी इलायची जीरे के साथ श्री पुषपात देना।

—श्री० स्वामी कृष्णानन्द जी चक्रवर्ती
सब्जीमण्डी चौक, लखनऊ।

अजीर्ण पर—

अजवायन	८ तोला
बहेड़ा	४ तोला

हरड़	२ तोला
आंवला	१ तोला
सैंधानमक	६ माशे

विधि—इन सबको कूट-पीसकर जल के साथ ४-४ रत्ती की वटी बनावें।

सेवन विधि—सुबह-शाम सौंफ दो आना भर चीनी १ तोला एवं पानी आधा पाव की ठण्डाई वा चाय के मुताबिक उबालकर सर्वत बनाकर २-२ गोली उसके साथ लेने से अजीर्ण, उदरशूल, व अपकामातिसार एवं पोदीना व बड़ी इलायची की घनी हुई ठण्डाई के साथ लेने से छर्दि अथवा बिल्व के सर्वत या बिल्व के चूर्ण के साथ लेने से अतीसार शमन होते हैं। यह वटी मामूली औषधियों द्वारा तैयार होते हुए भी अनुपान-भेद से अनेक रोगों में दी जाती हैं। जैसा कि बहेड़ा एवं सैंधानमक का योग होने से मुख में रखने से कास एवं अरुचि आदि को भी शमन करती हैं।

व्रण (जला हुआ)—

राल	५ तोला
नारियल तैल	१५ तोला

विधि—राल को बारीक कूट-कपड़छान कर कांसे की थाली में नारियल का तैल मिलाकर हाथ से मर्दन करते हुये पानी से धोता जाय। इस तरह मर्दन करते करते राल फूल कर जब मक्खन जैसी होजाय तब उसे शीशी में भरलें।

प्रयोग विधि—किसी भी तरह से जले हुये पर लगाने से दाहशमन होकर फफोलों को नहीं होने देता। फफोले होने पर फोड़ कर लगाने से शीघ्र ही आराम पहुँचता है। दाहजनक हर एक व्रण के लिये उत्तम है क्योंकि यह ठण्डी है।

कास—

एरंड के पत्ते	१ सेर
आक के पत्ते	आधा सेर
ईख	१५ तोला

निर्माणविधि—पहले दोनों पत्तों का पुटपाक विधि से स्वरस निकाल कर मधू मिला कर १ सप्ताह तक शीशी में भर धूप में रखें। बाद में निकाल कर छान कर शीशी में भर देवें।

सेवन विधि—इस अर्क की १०-१५ बूंद एक तोला मामूली उष्ण जल के साथ लेवें। बच्चे को ४-५ बूंद देवें। यह दिन में तीन-चार बार देवें। यह अर्क हर प्रकार की खांसी के लिये उत्तम है। परन्तु पित्तज कास में न देवें।

—वैद्य केदारमल जी शर्मा, आयुर्वेदीय दातव्य औषधालय, जुगसलाई बाजार, टाटानगर

■ ■

गठिया—

(१) २-३ दिनों तक उपवास तथा एनीमा।

(२) पानी काफी मात्रा में दें ताकि गुरदे शरीर के यूरिक एसिड को पूरी तरह निकाल सके। धूप-स्नान अवश्य करें।

औषधि—

(अ) आक (मदार) की २ सेर जड़ को ४॥ सेर पानी में पकावें जब आधा पानी शेष रहे तब उन जड़ों को निकाल लें और पानी में २॥ सेर गेहूँ छोड़ दें। जब जल बिलकुल सूख जाय तब गेहूँ को सुखाकर आटा बना लें। इसकी मोटी-मोटी रोटियां तैयार करलें। अब इस रोटी को यथाशक्ति खूब मसलें तथा इसमें घी और गुड़ खूब मिलावें ताकि चूरमा बन जाय। अब इस चूरमे को २१ दिनों तक रोगी को खिलावें, गठिया अवश्य दूर होगी।

नोट—तेल खटाई या मिर्चों का सेवन त्याज्य है।

(ब) एरण्ड तेल से चने की ५ तैयार करलें। २-३ पकौड़ी सुबह-शाम खाय। रात २ गोली महायोगराजगुग्गुल दूध से लें तथा गर्म तेल की दोनों समय आक्रान्त स्थान पर करें। अवश्य लाभ होता है।

मधुमेह—

प्राकृतिक चिकित्सा—कटिस्नान और मूत्रेन्द्रिय स्नान दोनों समय करें। पानी में तैरना लाभप्रद है, सवेरे-शाम इतना घूमें कि कुछ थकान प्रतीत हो।

औषधि—इम्माज के बीज   कसेरु   ब्राह्मी
खरबूजा के बीज   खीरा के बीज
पेठा के बीज   —प्रत्येक १-१ तोला
गुड़मार   बहुफली   मगज कद्दू
—तीनों २-२ तोला

मीठा तुरङ्ग बीज   २॥ तोला
खसखस   बादाम का तेल   ४-४ तोला

—लेकर ये सब वस्तु सुखाकर कूट-पीसकर कपड़छान करें। बादाम तेल में मिलाकर ८ माशा प्रातः काल और ५ माशा सन्ध्याकाल दूध के साथ सेवन करें। ४ माह में मधुमेह जड़ से नष्ट होती है। यह औषधि मेरे मामा वैद्य पं० सुन्दरलाल शर्मा की सैकड़ों रोगी पर अजमाई हुई है।

बाल उड़ाने की तथा दाद की औषधि—

७॥ तोले खूब गरम खौलते पानी में २॥ तोले "बैरियम सलफाईड" मिलाकर खूब मजबूत कार्क लगादें। यह जब पानी में मिल जाय तब थोड़ी मात्रा में बाल पर लगाकर ५ मिनट हलके हाथ से मलें। बाल निश्चित ही उड़ जाता है।

(२) इसी बनी हुई औषधि में ३ माशे साइसोफानिक एसिड मिलाकर दाद में लगावें। यह औषधि रामबाण का कार्य करती है।

रजःकृच्छ्र की औषधि—

जंगली कपास के काढ़े में थोड़ा एलुआ मिलाकर पीने से मासिक धर्म ठीक होता है।

(२) भारंगी   हींग   काला नमक
सोंठ   लौंग   पीपर

—ये सामान भाग लेकर कूट-पीस चूर्ण बनालें तथा २-२ माशा चूर्ण सवेरे-शाम गरम पानी से पीने पर रुक-रुककर स्राव होना, कोखे का दर्द अवश्य आराम होता है।

बाल रोग—

जायफल	६ माशे
हल्दी	६ माशे
धाय के फूल	१ तोला
लाल चंदन	१० तोला
त्रिफला पीपर मुलहठी	१-१ तोला

—उपरोक्त औषधियों को कूट-पीसकर तैयार करलें अब चूने का निथरा पानी ३ पाव और मिश्री २ पाव दोनों की चासनी बनाकर गाढ़ा होने पर ऊपर के सब चूर्णों को डाल दे और ठंडा होने पर खरल से महीन घोट कर १ बोतल में डांट लगाकर रख दें। ये औषधि बालकों के ज्वर, खांसी कमजोरी, पतले दस्त, क्षुधा न होने पर मां के दूध से ३-४ रत्ती मात्रा से दिन में ३ बार देवे। शीघ्र ही सब रोग नष्ट हो जाते हैं।

मलेरिया—

कूठ पीपल दारुहल्दी हल्दी चित्रक
सोंठ कालीमिरच आमले सेंधानमक
हरड़ का छिलका   —प्रत्येक समान भाग

नीम के पत्ते	२ भाग
गिलोय	३ भाग
मोथा	८ भाग

—इन सब औषधियों को पीस-छान लें, अब सब औषधियों को बकरी के मूत्र से १८ घण्टे खरल करके चने के समान गोलियां बनालें। प्रतिदिन हर ३-३ घण्टे पर औषधि देवें। इससे मलेरिया, इकतरा, तिजारी चौथैया सभी प्रकार का मलेरिया ज्वर भागते हैं।

—डा० जनक नागेन्द्रनाथ पाण्डेय एल. ए. एम. पी. आयु. रत्न, सा. विशारद, अकोला।

विशूचिका—

लाल मिरच	२॥ तोला
अहिफेन	१ माशे
हींग	१। तोला
रससिंदूर	३ माशे
कपूर	३ माशे

विधि—इन पांचों द्रव्यों को इकट्ठा करले, फिर मिरच चूर्ण बारीक करके बाकी सब द्रव्य उसमें डाले प्याज के रस की ३ भावना दें। इस प्रकार तीन भावना देने पर फिर मूंग प्रमाण वटी बनालें।

अनुपान—पोदीना अर्क से छोटे को १ वटी बड़े को २ वटी। दो घण्टे बाद फल देगा।

बिच्छू के काटे—

मधु घृत चूना

—तीनों समभाग लेकर मिलालो। दंश-स्थान पर लगाने से तत्काल लाभ होगा। परीक्षित है।

नेत्रामृत लोशन—

शु० वर्षा जल	१ बोतल
तुत्थ भुना	१॥ रत्ती
फिटकरी	२ माशे
कपूर	२ माशे
कलमीशोरा	२ माशे

—सुन्दर साफ शीशी में भर कर तीन दिन धूप में रख दें। चौथे रोज प्रयोग करना प्रारम्भ करे। लाली जलन कुकरे आदि में अति लाभप्रद सिद्ध हुई है।

—पं० जगदीशचन्द्र शर्मा भारद्वाज आयु.विशा. कोटकपूरा (पेप्सू)

सुधासिन्धु—

आयल सोंज	आयल सिलामोनी
आयल नीलगिरी	अजवान का फूल
पिपरमैन्ट	कपूर
वायबिडङ्ग आयल	आयल इलायची
जिंजर आयल	सोंफ आयल
सत वहरोजा	मैन्थर पिपरेण्टा

—सब चीजें २॥-२॥ तोला लेकर बोतल में भर दो। घुलने पर शीशियों में पैक कर बाजार में सुधासिन्धु अमृतसिन्धु अमृतधारा के नाम से पुकारते हैं। वैद्य लोग इससे लाभ उठावें। सैकड़ों बार का मेरा परीक्षित प्रयोग है।

—वैद्य बाबूलल जैन मु० पठा, टीकमगढ़।

रक्तार्श—

कुकरौंधा का पञ्चाङ्ग ताजे जल के साथ पीसकर पीने से खूनी बवाशीर शर्तिया नष्ट होजाती है प्रयोग तीन दिन दोनों समय करें। बादी की चीजों से परहेज रखें। हल्का भोजन करें। यह हमारा कई बार का परीक्षित है।

मलेरिया—

हारसिङ्गार के पत्तों का स्वरस ६ माशा शुद्ध शहद मिलाकर एक सप्ताह तक पीने से मलेरिया अवश्य दूर-दूर होता है।

पथ्य—मूंग की खिचड़ी अथवा दूध भात।

कर्णशूल—

आक के पीले-पीले पत्ते को घी से चुपड़ कर गरम करके उसका रस कान में छोड़ने से कान की पीड़ा अवश्य ही दूर होती है।

दाद पर—

दूब को साफ धोकर सिल पर पीस कर उसमें हल्दी के चूर्ण का प्रक्षेप देकर लेप करने से दाद तीन दिन में ही नष्ट हो जाता है।

महापौष्टिक चूर्ण—

तालमखाना	विदारीकन्द	सोंठ
असगन्ध		कौंच के बीज
सेमल के फूल		बीजबन्द

शतावरी मोचरस गोखरू
जायफल घी में भुनी हुई उड़द की दाल
भांग (घी में भुनी) वंशलोचन

निर्माण विधि—सब औषधियों को समान भाग लेकर कूट-कपड़छन चूर्ण बनाकर सब चूर्ण के बराबर मिश्री या चीनी मिला कर साफ बोतल में रख कर कार्क लगादें।

गुण और उपयोग—६-६ माशे सुबह और शाम दुग्ध अथवा ठंडे जल से सेवन करे। तो अवश्य ही धातु के तमाम दोष विनिष्ट हो जांयगे।

अपथ्य—मिरच तेल खटाई स्त्री-प्रसंग त्याग देवें।

पथ्य—हल्का सुपाच्य पौष्टिक भोजन करें।

—पं० हरीराम मिश्र आयु० विशारद
जनता हितैषी औषधालय
फुटुक पो० लोटन (बस्ती)

ज्वरघ्नपंचतिक्त वटी—

अनन्तमूल सुगन्धवाला
नागरमोथा सोंठ कुटकी
—प्रत्येक ५-५ तोले।

विधि—चूर्ण कपड़छानकर जल के साथ बेर प्रमाण गोली बनाकर छाया में सुखा लेवें। और ज्वर की प्रत्येक अवस्था में १ से २ गोली तक जल से खिलावें तो सर्व प्रकार के ज्वरों से शीघ्र ही मुक्त कर देती है। इससे दस्त साफ होता है, क्षुधा-वृद्धि के साथ-साथ रक्तवृद्धि होती है। विषम-ज्वरों में पूर्ण लाभदायक है।

रक्तशोधक अनन्तमूल अर्क—

संस्कृत में अनन्तमूल को सारिवा, अँगरेजी में सार्सापरेला, और बङ्गला में गोरीसर कहते हैं। इसकी कनेर के सदृश बेल चलती है और तदसमान ही पत्ते होते हैं। यह जनवरी मास में उत्पन्न होती है। इसकी शाखा अँगुली के समान मोटी और लम्बी फलियां होती हैं, फलियों के भीतर कपास निकलती है, इसका पत्ता तोड़ने पर श्वेत वर्ण का दूध निकलता है। बलांगीर स्टेट के जङ्गलों में लाखों मन अनन्तमूल उत्पन्न होता है। रायपुर में—अनन्त-मूल-मंधुरी, कपूटी के नाम से सस्ता ही मिलता है। आयुर्वेद में इससे बढ़कर रक्तशोधक और कोई औषधि नहीं है। इसका अर्क निकालकर बहुत से फार्मेसी वाले वेंचते हैं और धन कमाते हैं। मैंने स्वयं इसको कई बार बड़े से बड़े रक्तविकारों में व्यव-हार किया है और तत्काल ही पूर्ण लाभ हुआ है।

मात्रा—१ तोला से २ तोला तक।

विधि—इसको चूर्ण या क्वाथ रूप में देना चाहिए। चूर्ण की अपेक्षा क्वाथ अधिक लाभदायक है। ४० दिन के सेवन से असाध्य रक्तज व्याधियों में भी शान्ति प्राप्त हुई है।

उत्तम रेचक—

एक वृक्ष की मूल है जोकि शलगम की भांति होता है। वर्ण में भूरा किन्तु प्राचीन होने पर श्यामवर्ण का होजाता है। स्वाद में फीका, गुण में उष्ण एवं रूक्ष है। रेचकता में रेवन्दचीनी से उत्तम है। दुकानदारों के यहां 'जुलाफा हरड़' के नाम से मिलता है।

मात्रा—३ माशे से ६ माशे तक।

विधि—इसका चूर्ण बनाकर गुलाबगुलकन्द २ तोला सौंफ का अर्क आध पाव के साथ दें।

—इसके सेवन से २-३ घण्टे में २-३ दस्त सुखपूर्वक होजाते हैं, विरेचन होने के साथ-साथ विबन्ध से शिरःशूल, उदरशूल तथा कटिशूल आदि में लाभ करता है। अँगरेजी में इसको 'जेलप' कहते हैं। डाक्टर लोग भी प्रायः इसी को विरेचनार्थ प्रयोग में लाते हैं।

उपदंशहर—

विधि—भटकटाई का पञ्चाङ्ग गीला लेकर स्वरस दो सेर निकाल लेवें। तदनन्तर एक छटांक

सुर्ख स्फटिक कच्चा ही स्वरस में खरल करलें जब सब अर्क खुश्क होजावे तब छोटे बेर प्रमाण गोली बनावें और छाया में सुखाकर १ गोली आम के आचार के तेल में लपेटकर उक्त रोगी को देवें। ५ या ७ दिन में पूर्ण लाभ होगा।

पथ्य—मूंग की दाल एवं गेहूँ की रोटी खिलावें।

इस प्रयोग में तैल, मिर्च, खटाई आदि का कुछ भी परहेज नहीं है। जो रोगी की इच्छा हो वही सेवन कर सकता है। प्रयोग बड़ा सुन्दर है। इसके सेवन से कोई कष्ट न होगा, न विरेचन होगा न मुंह ही आवेगा। पांचदिन में उपदंश के व्रण (घाव) चकत्ते सब भर जावेंगे। यह प्रयोग मुझको एक वृद्ध वैद्यराज जी ने बताया है। मैंने भी इसका कई बार प्रयोग किया है।

नोट—यह दिन में एक बार ही सेवन करावें। रोग की भयानकता हो तो प्रथम विरेचन देकर प्रयोग करें।

श्वासकुठार—

विधि—पांच वर्ष का प्राचीन गुड़ १ तोला को स्वर्णक्षीरी (कटसैला) के दूध की सात बार भावना देकर सुखालें। पुनः चना प्रमाण गोली बना कर गोली के बीच राल का टुकड़ा साबुत ही रख देवें और गोली पर चांदी का वर्क चढ़ा देवे। श्वास रोगी को १ गोली मूंग की दाल पकी हुई से खिला देवें, पुनःऊपर से और दाल पिला देवें। इससे जो दस्त आवेगा उसमें कफ की गाँठे निकलेंगी और कुछ लाभ तो प्रथम दिन ही प्रतीत होगा। इस प्रकार सात या दस दिन रोगी को पिलावें। श्वास में अवश्य सफलता मिलेगी।

यदि प्रथम दिन गोली खिलाने से वमन होजावे तो तीन दिन तक प्रयोग बन्द रक्खें। यदि पुनः भी वमन होजावे तो चौथे दिन पूर्ववत् दवा फिर देवे। यदि चौथी बार भी वमन होजावे तो एक माह तक प्रयोग-बन्द कर देवें ऐसा वैद्यराज जी का उपदेश है। मैंने इसका चार जगह प्रयोग किया है जिसमें २ वर्ष तक रोगी को पूर्ण लाभ रहा।

—वैद्य श्री० बदरीनाथ शास्त्री।
सोप, पो० गंगापुरी सिटी (राजस्थान)

अ० भा० राज्य-चिकित्सा-परिषद् का
महत्वपूर्ण दूसरा अधिवेशन

लखनऊ में गत १५-१६ अप्रैल को अ० भा० राज्य-चिकित्सा-परिषद् का द्वितीय-वार्षिक-अधिवेशन वहां के ऐतिहासिक छतर मंजिल (रिसर्च इन्स्टीच्यूट) में कविराज विमलानन्द जी तर्कतीर्थ, एम० एल० ए० उपाध्यक्ष, आयुर्वेद स्टेट फैकल्टी, कलकत्ता की अध्यक्षता में बड़े समारोह के साथ सम्पन्न हुआ।

यह स्मरणीय है कि इस परिषद का प्रथम अधिवेशन कलकत्ता में गत दिसम्बर १९५२ में हुआ था तथा इसका उद्घाटन राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद के कर कमलों द्वारा हुआ था। अस्तु,

इस सम्मेलन को सफल बनाने के लिये इण्डियन मेडिसिन बोर्ड के चेयरमैन श्री दरबारीलाल शर्मा आयुर्वेदाचार्य, कविराज धर्मदत्त जी आयुर्वेदाचार्य, एम० एल० ए०; उत्तर प्रदेश आयुर्वेद विभाग के उपसंचालक श्री द० अ० कुलकर्णी और सरकारी आयुर्वेदिक कालेज के प्रिंसिपल, तथा उत्तर प्रदेश राजकीय औषधि निर्माणशाला के अध्यक्ष श्री विश्वनाथ द्विवेदी वैद्य, आयुर्वेदशास्त्राचार्य आदि विशेष प्रयत्नशील थे।

परिषद् में विशेष रूप से भाग लेने के लिए-विहार से डा० श्रीनारायण शर्मा, बंगाल से—क० इन्दुभूषण सेन क० विजयकाली भट्टाचार्य, तथा सचित्र आयुर्वेद के सहायक सम्पादक वैद्य रमाकान्त झा शास्त्री, पटियाला (पेप्सु) से—क० कांतिनारायण मिश्र, पंजाब से—श्री सत्यार्थी जी, राजस्थान से—श्री पं० जयरामदास स्वामी तथा रामप्रकाश जी वैद्य, त्रावणकोर-कोचीन से—डायरेक्टर आफ आयुर्वेद श्रीवास्तवजी, मध्यभारत से-रामेश्वरजी शास्त्री, तथा श्री पं० रमेशप्रसाद त्रिपाठी, बनारस से—क० प्रतापसिंह, पं० शिवदत्त शुक्ल, क० राजेश्वर दत्त शास्त्री, कानपुर से-पं० रघुवरदयाल भट्ट आयुर्वेदाचार्य, वैद्य सत्यनारायण मिश्र आयुर्वेदाचार्य, बम्बई से—डायरेक्टर आफ आयुर्वेद पं० हरिदत्त जी शास्त्री, झांसी से—श्री आर० वी० धुलेकर पं० राधाकृष्ण पाराशर, देहली से—क० आशुतोष मजूमदार, हैदराबाद से—क० ईश्वरीप्रसादजी, डायरेक्टर ऑफ आयुर्वेद आदि विद्वानों के अतिरिक्त उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा संचालित राजकीय आयुर्वेद चिकित्सालय के वैद्य-हकीम, राजकीय औषधालयों के निरीक्षक एवं शिक्षा स्वास्थ्य अधिकारी भी अधिकाधिक संख्या में उपस्थित थे। १५ अप्रैल के सायं ४॥ बजे राजकीय रिसर्च इंस्टीच्यूट हाल (छतर मंजिल) में परिषद् की कार्यवाही प्रारम्भ हुई। सर्वप्रथम बालिकाओं द्वारा राष्ट्रीय गान हुआ, तदनन्तर वेदमन्त्रों द्वारा मंगलाचरण होने के बाद परिषद् के स्वागताध्यक्ष क० दरबारीलाल शर्मा ने बाहर से आए हुए अभ्यागतों की अभ्यर्थना करते हुए सम्मेलन के उद्देश्य पर प्रकाश डाला।

श्री दत्तात्रेय अनन्त कुलकर्णी, एम० एस-सी० आयुर्वेदाचार्य, उपसंचालक, चिकित्सा और स्वास्थ्य, उत्तर प्रदेश, जिन्होंने अखिल भारतीय राज्य चिकित्सा परिषद् के अधिवेशन को पूर्णतया सफल बनाने में विशेष रूप से योगदान किया।

उत्तर प्रदेश के राज्यपाल डा० कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी ने अखिल भारतीय राज्य चिकित्सा-परिषद् का उद्घाटन करते हुए आयुर्वेद के प्रति अपनी हार्दिक शुभेच्छा प्रकट की और कहा कि इस सम्मेलन में भाग लेते हुये मुझे बड़ी खुशी होती है. फिर भी मुझे खेद से कहना पड़ता है कि आज हमारे देश में आयुर्वेद की जो स्थिति है उससे मैं प्रसन्न नहीं हूं । ज्ञान के क्षेत्र में ऐसा कोई भी दूसरा विषय नहीं है जिसे शताब्दियों से परीक्षण में सफल होते हुए भी विदेशी शासन के कारण इतनी आपत्ति उठानी पड़ी हो । पाश्चात्य चिकित्सा-ज्ञान के अभ्यासियों ने इस विषय में जो दृष्टि रखी है, उससे हमारे मूल्यों में इतना परिवर्तन हो गया है कि आज भारत में आयुर्वेद सम्बन्धी सब मान्यताएं अस्त-व्यस्त होगयी हैं। इसलिये सबसे पहले मैं राष्ट्रीय महत्व के थोड़े तथ्यों पर अपने विचार प्रकट करूंगा ।

आयुर्वेद ढोंग है, यह कहना यथार्थ नहीं है। इसी प्रकार यह भी यथार्थ न होगा कि आज आयुर्वेद जिस स्थिति में है, उस स्थिति में पाश्चात्य शल्य और चिकित्सा-ज्ञान उतना ही आगे बढ़ा हुआ है। भारत में ५०,००० से भी कम एलोपैथ हैं । इनमें से अधिकतर बड़े-बड़े नगरों और कस्बों में बसे हैं । इसी प्रकार शहरों में भी इतने ही वैद्य हैं और यदि यह मान लिया जाय कि प्रति तीन गांवों के लिए एक वैद्य मौजूद है तो ग्राम्य-क्षेत्रों में वैद्यों की संख्या १,८६,००० के करीब होगी ।

आज हमारे विश्वविद्यालयों में १५० वर्ष से एलोपैथिक चिकित्सा-प्रणाली का बोलबाला रहा है । सरकारी और धनीमानी लोगों से भी इसे अधिक श्रेय प्राप्त है । इतना होते हुये भी हमारे सारे राष्ट्र की आरोग्य-सेवा का बहुत सा भार तो आयुर्वेद के चिकित्सकों ने उठाया है ।

यह निर्विवाद है कि शल्य-चिकित्सा, जैसी कि आज यह विकसित है, एक अर्वाचीन कला है । आज के आयुर्वेद में उसका कोई विशेष स्थान नहीं है । शताब्दियों से सुश्रुत की परम्परा भी मृतप्राय-सी रही है । एलोपैथिक सृष्टि में भी केवल ५ या १० प्रतिशत वास्तविक रीति से शल्य के चिकित्सक हैं । शेष सभी चिकित्सक मात्र हैं। जिनकी योग्यता एक मात्रा की नहीं मानी जा सकती ।

पिछले १५० वर्षों में चिकित्सा-विज्ञान उसकी सुविधाओं और उसके अनुसंधान सम्बन्धी कार्यों पर सरकारी-धार्मिक संस्थाओं और रोगियों ने जो धन-व्यय किया है वह इतना अधिक है कि उसका कोई हिसाब नहीं किया जा सकता, किन्तु इन वर्षों में आयुर्वेद भिखारी की तरह दरवाजे पर खड़ा रखा गया है और उसको सिर्फ भीख के टुकड़े दिये गये हैं ।

कुछ सरकारें अपने बजट का बहुत कम अंश आयुर्वेद पर खर्च करती हैं यदि करती भी हैं तो वे आयुर्वेद की शिक्षा तथा चिकित्सा सम्बन्धी सब सुविधाएं ऐसे लोगों की देख-रेख और नियंत्रण में देती हैं जिनमें से अधिकांश तो आयुर्वेद को ढोंग समझते हैं और उसकी खुल कर निन्दा करते हैं । फिर भी हमको सोचना चाहिए कि इन रुकावटों के होते हुए भी आयुर्वेद अब भी जीवित है क्योंकि उसने मानवता की अपार सेवा की है।

जो लोग आयुर्वेद को निर्मूल या हताश करना चाहते हैं उनको यह बात याद रखनी चाहिये कि आयुर्वेद को विध्वंस करें उसके पहले एलोपैथी पर जो धन व्यय हो रहा है उससे दस गुना खर्च करने का वे असंभव कार्य करें। इतना ही नहीं वे ढाई लाख एलोपैथों को भी तैयार करें, जो सारे देश की चिकित्सा का भार उठाने को तैयार हों। यह बात निकट भविष्य में सम्भव है यह कहने वाला बड़ा साहसी होना चाहिए ।

प्राचीन काल में आयुर्वेद में बड़े-बड़े अनुसन्धान कार्य हुए । शताब्दियों पूर्व पहली बार चरक ने मधुप्रमेह का पता लगाया था । सत्रहवीं शताब्दी में काशी के भावमिश्र ने "फिरंग रोग" नामक एक "यौन रोग" का अध्ययन किया । पुर्तगाली लोग इस रोग से ग्रसित होते थे, इसी से यह नाम पड़ा । उसी शताब्दी में त्रिमल्लभट्ट ने इस रोग के लिये संखिया (आर्सेनिक) का पहली बार उपयोग किया । एर्हलिक ने इस औषध का प्रयोग बीसवीं शताब्दी में किया था । अभी कल की ही बात है कि 'सर्पगन्धा औषधि' को रोवाल्फिया सर्पेन्टाइना के नाम से एलोपैथी ने पुनर्जन्म दिया । इसके सम्बन्ध में यह बताया गया है कि

आधुनिक विज्ञान का यह महान् आविष्कार है। परन्तु वास्तविक रूप से यह औषधि युगों से आयुर्वेद में उन्माद, मिर्गी और रक्तचाप जैसे रोगों में इस्तेमाल होती आई है।

यह आवश्यक है कि भारत में ऐसी परिस्थितियों का निर्माण किया जाय जिससे आयुर्वेद सम्बन्धी कार्य भी अच्छी रीति से चल सके। परन्तु आयुर्वेद की अनुसंधान परम्परा का किस लिए ध्वंस हो गया है ? इसके लिए दोषी कौन हो सकता है ?

दो शताब्दियों तक सरकारी विभाग, सुप्रतिष्ठित पश्चिमी चिकित्सा-विज्ञान के अभ्यासी और पाश्चात्य संस्कारवाले नागरिक, जो उस चिकित्सा-पद्धति के मेहरबान रहे हैं उन लोगों ने तो आयुर्वेद का तिरस्कार किया है, उसकी परवाह नहीं की है और उसकी तरफ घृणा दिखाई है। इस तरह आयुर्वेद में अनुसंधान कार्य कैसे हो सकता है ?

हाल ही में केन्द्रीय सरकार ने यह दावा किया है कि वह आयुर्वेद के अनुसंधान-कार्य में सहायता दे रही है। जहां तक मैं समझता हूं—यदि मुझे गलत सूचना न मिली हो तो—जिस अनुसंधान कार्य को प्रोत्साहन दिया जा रहा है वह केवल एलोपैथिक फार्माकोपिया में आयुर्वेदिक औषधियों को स्थान देने में ही समाप्त हो जाता है यह आयुर्वेदिक अनुसन्धान नहीं कहा जा सकता। यह तो एलोपैथिक अनुसंधान है। सचमुच आयुर्वेदिक अनुसंधान तब कहा जा सकता है जब कि आयुर्वेदिक प्रणाली को लाभ पहुंचे और अनुसन्धान करने वाले आचार्यों के द्वारा अपना कार्य कर।

चिकित्सा-शास्त्र का यह दुर्भाग्य है कि उसका विकास साहित्य या दर्शन की तरह हो सकता है। यह वृक्ष के नीचे बैठ कर या कन्दराओं में नहीं हो सकता। चिकित्सा-शास्त्र को प्रारम्भिक वात्सल्य और आर्थिक सहायता की जरूरत होती है। यदि आयुर्वेद को इस प्रकार का संरक्षण और सहायता न मिले—और यदि मिली भी तो इस संरक्षण और सहायता का सूत्र एसे लोगों के हाथ में रखा गया जिनको न तो आयुर्वेद में विश्वास ही है और न इस पद्धति का ज्ञान ही है—तो यह पद्धति कभी भी जिन्दा नहीं रह सकती।

वास्तव में यदि प्रामाणिक रीति से आयुर्वेद में अनुसन्धानकार्य करना हो—और यह तो राष्ट्र के हित में जरूरी है तो यह कार्य एक केन्द्रीय परिषद् के अधीन सम्पन्न होना चाहिये और उसमें प्रतिष्ठित आचार्यों को स्थान होना चाहिये क्योंकि आयुर्वेद की आत्मा का वहुत करके वे ही दर्शन कर सकते हैं।

पाश्चात्य चिकित्सा-विज्ञान विश्लेषणात्मक है। इसमें शरीर के विभिन्न अङ्गों का अलग-अलग उपचार होता है। इसमें रोगों का सूक्ष्म से सूक्ष्म विभाजन है। जब कोई रोगी पश्चिमी चिकित्सक के पास जाता है तो वह समस्त रोगी को नहीं देखता। वह एक रोगीले गुर्दे, कमजोर हृदय और क्षयग्रस्त फेफड़े को देखता है।

परन्तु आयुर्वेद की दृष्टि समन्वयात्मक है। इसमें सम्पूर्ण शरीर की रचना पर ध्यान देना आवश्यक हो जाता है इस पद्धति के अनुसार प्रथमतः उन लक्षणों पर ध्यान दिया जाता है, जिनसे सारे शरीर के रोग का प्रतिकार करने की शक्ति आ जाय। आयुर्वेद में इस प्रकार से आन्तरिक अवरोध शक्ति के विकास के ऊपर अधिक जोर दिया जाता है।

मेरे विचार से दोनों पद्धतियों में सबसे बड़ा अन्तर यह है कि एलोपैथी में सल्फा औषधि और एन्टीबायोटिक्स जैसी आधुनिक प्रबल औषधियों से जहरीले कीटाणुओं का नाश किया जाता है। आयुर्वेदिक पद्धति में समस्त शरीर रचना पर ध्यान केन्द्रित किया जाता है जिससे जहरीले कीटाणुओं का प्रभाव ही न पड़ सके।

दोनों पद्धतियों के वाचाल समर्थकों के साथ सहमत होने की यह आवश्यकता नहीं कि आयुर्वेद और एलोपैथी एक-दूसरे से भिन्न और विपरीत हैं। यद्यपि दोनों के उपचार की विधियां भिन्न है फिर भी दोनों एक साथ रह कर एक-दूसरे को लाभ पहुंचा सकती हैं। साथ ही, आयुर्वेद की बहुत सी औषधियों को एलोपैथिक प्रणाली में लाने से आयर्वेद की सहायता नहीं की जा सकती, यह भी निर्विवाद है। ऐसा करना सह-अस्तित्व नहीं है, बल्कि एक को फायदा पहुंचाने के लिए दूसरे को नष्ट करना है।

इस कारण से चिकित्सा सम्बन्धी शिक्षा देते समय इस बात का प्रयास किया जाय जिससे दोनों पद्धतियों की विशेषता बनी रहे और उनके जो गौण लक्षण हैं उनका समन्वय किया जाय।

उत्तर प्रदेश में आधुनिक शिक्षा का एक प्रयोग किया जा रहा है जिसके अनुसार एलोपैथी के मूल विषयों और आयुर्वेद तथा एलोपैथी दोनों के क्लीनिक विषयों की शिक्षा दी जासकती है। हमें इस प्रयोग के परिणामों को ध्यान से देखना चाहिए।

उत्तर प्रदेश सरकार ने आयुर्वेदिक तथा यूनानी पद्धतियों को पर्याप्त प्रोत्साहन दिया है। आयुर्वेद की चिकित्सा एवं स्वास्थ्य-सेवाओं के उप-संचालक इस संगठन के प्रधान हैं। प्रदेश में आयुर्वेदिक तथा यूनानी चिकित्सालयों की संख्या क्रमशः ४६१ और ८६ है। ये चिकित्सालय एक निरीक्षण कार्यालय की देखरेख में कार्य कर रहे हैं। शीघ्र ही एक नई (गजटेड) प्रदेशीय आयुर्वेदिक सेवा चालू की जायगी। आयुर्वेदिक एवं यूनानी औषधियों की राजकीय औषधि निर्माण-शाला प्रतिवर्ष लगभग ४ लाख रुपये की औषधियां तैयार करती है। इस राज्य में ५ आयुर्वेदिक तथा २ यूनानी कालेजों को बी० आई० एम० एस० परीक्षा में अपने विद्यार्थियों को भेजने की अनुमति है। इनके अतिरिक्त, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय का आयुर्वेद कालेज तथा अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय का तिब्बिया कालेज भी उक्त परीक्षा के लिए अपने विद्यार्थी भेज सकते हैं। अगस्त, १९५४ में लखनऊ में एक आयुर्वेदिक कालेज की स्थापना की गयी थी। यह कालेज लखनऊ विश्वविद्यालय से सम्बद्ध है। वैद्यों और हकीमों को प्रोत्साहन देने की एक आर्थिक सहायता योजना भी चालू की गयी है। छोटे-छोटे नगरों और गांवों में प्रैक्टिस करने के लिए वैद्याओं और महिला हकीमों को भी प्रोत्साहन दिया जाता है।

उत्तर प्रदेश की आयुर्वेदिक एवं यूनानी तिब्बी एकेडेमी पाठ्य-पुस्तकों के प्रकाशन सम्बन्धी कार्य में संलग्न है। हमारे प्रदेश में आयुर्वेदिक तथा यूनानी पद्धतियों के विकास एवं संगठन पर व्यय करने के लिए १९५५-५६ के बजट में ४१,७६,८०० रु० की व्यवस्था की गयी है जब कि १९४७-४८ में यह राशि केवल १,२१,६६० रु० ही थी। यह अन्तर इस बात का द्योतक है कि हमारे प्रदेश ने इन दोनों पद्धतियों के विकास के सम्बन्ध में कितनी अधिक दिलचस्पी दिखाई है।

आयुर्वेद शिक्षा चाहे जिस प्रणाली से दी जाय, परन्तु उसका यह ध्येय अवश्य ही होना चाहिए कि विद्यार्थी की आयुर्वेद में आस्था रहे और संस्कृत का अभ्यास जितना आवश्यक हो और जिसमें आयुर्वेद के अभ्यासी एलोपैथी के विषय में अधममनस्थिति (Inferiority Complex) का अनुभव न करें। साथ ही एलोपैथी के कोर्स में आयुर्वेद का सामान्य ज्ञान और आयुर्वेद की सफलताओं से सम्बन्धित सभी बातें सम्मिलित होनी चाहिए। इससे कुछ नहीं तो एलोपैथों में नम्रता अवश्य आ जायगी।

उपर्युक्त प्रयोगों के सम्बन्ध में यह नहीं भूलना चाहिये कि दो लक्षणों वाला चिकित्सक ही सफल होता है। एक तो रोगियों में विश्वास पैदा करने वाला व्यक्ति, जो कि बहुत जरूरी है, और दूसरा रोगों को मिटाने की शक्ति वाला। चिकित्सक किसी भी प्रणाली के अनुसार अपना कार्य करे, लेकिन सबसे आवश्यक तो यह है कि उसे अपने ज्ञान, प्रणाली और पद्धति में सम्पूर्ण श्रद्धा होनी चाहिए। मैं आशा करता हूं कि इस सम्मेलन में संकुचित मनो-वृत्ति का आश्रय न लें और अतिशयोक्तिपूर्ण अभिप्रायों की घोषणा न करें। आप यदि ऐसा करेंगे तो मुझे विश्वास है कि आप आयुर्वेद को प्रतिष्ठित पद प्राप्त करने में सरलता दे सकेंगे।

राज्यपाल महोदय के भाषण के पश्चात् उत्तर प्रदेश के स्वास्थ्य-मन्त्री श्री चन्द्रभानु गुप्त ने भाषण देते हुए कहा कि यह सम्मेलन एक ऐसे महत्वपूर्ण समय में हो रहा है, जब कि आयुर्वेद और तिब्ब दोनों ही उन्नति के मार्ग पर खड़े हैं। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पूर्व तक तो देश में मुख्यतः एलोपैथी को ही राजाश्रय प्राप्त था। इसके अतिरिक्त मूलतः सरकार जन-साधारण को चिकित्सा तथा जन-स्वास्थ्य सम्बन्धी सुविधायें प्रदान करना अपना कर्तव्य भी नहीं समझती थी, किन्तु गत छः-सात वर्षों में इस सम्बन्ध में कई क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए हैं। अब प्रायः

शासन किसी विशेष चिकित्सा-प्रणाली से बंधा हुआ नहीं है। समस्त नागरिकों को यथासम्भव उनकी रुचि और प्रकृति के अनुकूल उच्चकोटि की वैज्ञानिक चिकित्सा उपलब्ध करना उसका ध्येय बन गया है। आयुर्वेदिक तथा यूनानी प्रणालियों में नव-चेतना और स्फूर्ति अनुप्राणित करने के लिए नित नये प्रयत्न हो रहे हैं। केन्द्रीय तथा विभिन्न राज्य सरकारों द्वारा नियुक्त जांच-समितियों की रिपोर्टों से इन चिकित्सा-प्रणालियों की वर्तमान अवस्था का वास्तविक चित्र स्पष्ट होगया है। साथ ही, इन समितियों की सिफारिशों के आधार पर आयुर्वेद और तिब्ब के पुनर्गठन की दिशा और कार्यक्रम भी मोटे रूप से निर्धारित हो गया है। पर वास्तव में इससे भी कठिन कार्य मार्ग की उलझनों और बाधाओं को दूर करते हुए विभिन्न विकास योजनाओं को पूर्णतया सफलीभूत बनाना है।

इस समय चिकित्सा क्षेत्र में एक बड़ी कशमकश चल रही है। आयुर्वेद, तिब्ब आदि को प्रोत्साहन देने से चिकित्सा का क्षेत्र विस्तृत अवश्य हो रहा है, पर साथ ही विभिन्न प्रणालियों में पारस्परिक विरोध और विवाद भी उठ खड़ा हुआ है। विशेषकर एक ओर आयुर्वेद और तिब्ब के पोषक देशी प्रणालियों के पुनर्संगठन की सरकारी योजनाओं की गति से संतुष्ट नहीं हैं और दूसरी ओर एलोपैथी के आचार्यगण अपनी प्रणाली को ही एकमात्र वैज्ञानिक पद्धति बताते हुए दावा करते हैं कि समुचित चिकित्सा तो केवल एलोपैथी द्वारा ही हो सकती है। देशी और पाश्चात्य चिकित्सा-प्रणालियों के पोषक अपनी-अपनी प्रणालियों की श्रेष्ठता, उच्चता और उपयोगिता को सिद्ध करने के लिए विविध तर्क-वितर्क उपस्थित कर रहे हैं। पर चिकित्सा-शास्त्र के अतीत और वर्तमान के निष्पक्ष विश्लेषण से यह स्पष्ट हो जाता है कि इस प्रकार के वाद-विवाद केवल संकीर्ण मनोवृत्तियों और संकुचित स्वार्थों की ही उपज हैं। सच तो यह है कि इस ऊहापोह का विषाक्त प्रभाव परोक्षरूप में चिकित्सा-प्रसार की गति पर भी पड़ रहा है। अतः इसे शीघ्रातिशीघ्र दूर करना भी सभी जनहित प्रेमियों और विशेषकर विभिन्न पद्धतियों के प्रतिनिधियों का परम कर्तव्य है। यह केवल सौहार्द और सहयोग के वातावरण में ही सम्भव है।

निःसंदेह प्रारम्भिक तथा मध्ययुगीन काल में आयुर्वेद का वैभव अपार था। चरक और सुश्रुत संहिताएं उन दिनों की हमारी श्रेष्ठता के जीवित प्रमाण हैं। इतना ही नहीं वरन् आयुर्वेद का गहन प्रभाव मिस्र, यूनान, रोम और अरब पर भी पड़ा। आर्य और यूनानी सभ्यताओं के संसर्ग से आयुर्वेदिक प्रणाली ने यूनानी चिकित्सा-पद्धति को जन्म दिया और आगे चल कर यही आधुनिक पाश्चात्य चिकित्सा-शास्त्र का आधार बनी। सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दी तक भी हम इस विषय में अन्य देशों से कहीं आगे थे। इसी समय वाग्भट्ट ने अपनी सुविख्यात पुस्तक 'अष्टांग हृदय' की रचना की थी। यह प्रायः सभी स्वीकार करते हैं कि हमारे पूर्वज ऐसी अनेकों बातें युगों पूर्व जानते थे, जिन्हें आधुनिक विज्ञान आज नवीन अनुसंधान का लेबिल लगाकर संसार के सम्मुख रख रहा है। पर गुलामी के कठोर शिकंजे ने हर क्षेत्र में हमारी गति रोक दी और राज्य की उपेक्षा का भीषण अभिशाप इन भारतीय चिकित्सा-प्रणालियों को भी ले डूबा। हर क्षेत्र में संकीर्ण मनोवृत्तियों का जन्म हुआ। समय का प्रभाव तेजी से आगे बढ़ रहा था किन्तु हमारे चिकित्सा विशारद संकुचित दृष्टिकोण और अपर्याप्त साधनों के कारण जहां के तहां रह गये। यूनानियों को दिए हुए हमारे ज्ञान को लेकर योरोप नवीन अनुसन्धानों तथा आविष्कारों द्वारा समय के साथ आगे बढ़ा और उसने हमारी ही विद्या को एक नया रूप दे डाला। हम बढ़ते-बढ़ते रुक गये और दूसरे हमारे ज्ञान को लेकर आगे बढ़ गये।

इसमें भी कोई सन्देह नहीं कि आयुर्वेद और यूनानी के आठ अङ्गों में से अब कुछ अङ्ग अत्यन्त शिथिल तथा निर्बल पड़ गये हैं। इस समय देश में कुछ थोड़े से ही ऐसे आयुर्वेदाचार्य तथा हकीम हैं, जो ज्ञान की ज्योति को जीवित रखे हैं, अन्यथा वैद्यों और हकीमों का विशाल समुदाय तो अर्धशिक्षित तथा साधनशून्य है और साथ ही संकीर्णता के दलदल में फंसा हुआ है। दूसरी ओर एलोपैथी वैज्ञानिक आविष्कारों और अनुसंधानों से पूर्णतया लाभ उठा रही है। इसी के आधार पर विगत शताब्दी में इसने आश्चर्यजनक उन्नति की है। एलोपैथी के इस विकास और अभिवृद्धि का एक मात्र कारण विभिन्न

देशों की सरकारों का राजाश्रय नहीं है। वरन् इसके विद्वानों का सतत् प्रयत्न और कर्तव्यनिष्ठा भी है। आज विभिन्न विद्यालयों और प्रयोगशालाओं में इस चिकित्सा-प्रणाली को अधिकाधिक उपयोगी बनाने के लिए विभिन्न विषयों के विशेषज्ञ निरंतर प्रयत्नशील हैं उनके प्रयत्न स्तुत्य ही नहीं, बल्कि आयुर्वेद प्रेमियों के लिए सर्वथा अनुकरणीय हैं।

आज का वैज्ञानिक संसार किसी भी प्रणाली विशेष के चक्कर में न पड़ कर निष्पक्षरूप से प्रत्येक वस्तु को स्वीकार करने के पूर्व उसके गुणों तथा उपयोगिता का वैज्ञानिक विश्लेषण कर लेना चाहता है। इस प्रकार प्रत्येक चिकित्सा-प्रणाली को संसार के सम्मुख अपने चमत्कार प्रदर्शित करने का समान अवसर प्राप्त है। आयुर्वेदिक और यूनानी प्रणालियों को समयानुकूल बनाने के लिए आधुनिक विज्ञान की सहायता लेने में किसी प्रकार का असमंजस नहीं होना चाहिए। इसके अतिरिक्त आरोग्यता लाभ में एलोपैथी द्वारा हमें जो अमूल्य सहायता मिल रही है उसे नष्ट करना अथवा उसकी उपेक्षा करना भी बुद्धिमता न होगी। वास्तव में आवश्यकता इस बात की है कि देश के नागरिकों को उनकी रुचि और प्रकृति के अनुकूल उच्चकोटि की किन्तु सस्ती चिकित्सा उपलब्ध हो। जब हम इस दृष्टिकोण से आयुर्वेदिक, यूनानी और एलोपैथिक प्रणालियों पर विचार करते हैं तो इसी निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि देशी और पाश्चात्य दोनों ही प्रकार की प्रणालियों को सहयोग तथा सम्मिश्रण द्वारा एक दूसरे के निर्बल अङ्गों की पूर्ति करनी चाहिए। संक्षेप में इन चिकित्सा-प्रणालियों के समीकरण की आवश्यकता है। ऐसा करने के लिये हमें यह भावना संचारित करनी होगी कि भारतीय और पाश्चात्य प्रणालियां परस्पर विरोधनी न होकर चिकित्सा-विज्ञान की दिशा में विविध दृष्टिकोण तथा विकास के विभिन्न स्तर हैं।

यह भी भलीभांति स्पष्ट हो जाना चाहिए कि किसी भी अवैज्ञानिक प्रणाली को अपनाना अथवा प्रोत्साहित करने का प्रश्न नहीं उठाता। हमारा ध्येय विभिन्न चिकित्सा-प्रणालियों में जो कुछ वैज्ञानिक परीक्षण की कसौटी पर खरा उतरता है उसका संकलन करके विश्व-विज्ञान-भंडार में वृद्धि करना ही होना चाहिए। हमारा विश्वास है कि चिकित्सा और स्वास्थ्य विज्ञान में अभी अन्तिम पृष्ठ नहीं लिखा गया है, इसमें अनुसन्धान की आवश्यकता है और हमें देशी प्रणालियों के ग्रहणीय तत्वों को प्रकाश में लाने की चेष्टा करनी चाहिए। अब तक हम अशक्त थे, दासता की शृंखलाएँ हमें उठने और उभरने का अवसर नहीं देती थीं, किन्तु अब समय आगया है कि हम संसार के ज्ञान भण्डार में वृद्धि करने की अपन सामर्थ्य का पूर्णतया उपयोग करें। इस समय आयुर्वेद और यूनानी के समर्थकों के सम्मुख इन प्रणालियों में नवजीवन संचारित करने और इन्हें उन्नति के मार्ग पर ले जाने के लिए एक अपूर्व सुअवसर है पर हम केवल अपने अतीत की गौरवगाथाएँ गाकर ही देशी प्रणालियों के ग्राह्य तत्वों की उपादेयता सिद्ध नहीं कर सकते। इसके लिए वैद्यों और हकीमों को वैज्ञानिक आधार पर अत्यन्त तीव्र गति से व्यापक प्रयत्न करने होंगे।

देशी पद्धतियों को चिकित्सा-जगत में समय के साथ बदलते हुए मूल्यों की ओर भी ध्यान देना होगा। पहले चिकित्सक की योग्यता और कार्य-क्षेत्र प्रायः रोगों के निदान और उनकी चिकित्सा तक ही निहित था, किन्तु अब चिकित्सा का मौलिक उद्देश्य रोगों की रोक-थाम और जन-स्वास्थ्य की रक्षा समझा जाने लगा है। इसके अतिरिक्त चिकित्सक को रोगी की सामाजिक स्थिति तथा वातावरण से भी अवगत होना आवश्यक हो गया है। देशी चिकित्सकों की सफलता चिकित्सा जगत के इस नये मूल्यों के अपनाने पर भी निर्भर है।

उपर्युक्त प्रकार के चिकित्सक उत्पन्न करने के लिए उच्च स्तर की शिक्षा-संस्थाओं की आवश्यकता है। चिकित्सा सम्बन्धी ज्ञान केवल पुस्तकों से ही नहीं प्राप्त हो सकता। इसके लिए व्यवहारिक क्षेत्र में भी सिद्धहस्त होने की आवश्यकता है। इस प्रकार की शिक्षा देने के लिए प्रत्येक चिकित्सा विद्यालय में उच्च शिक्षा प्राप्त शिक्षकगण, ऐसा अस्पताल जिसमें रह कर रोगी चिकित्सा करा सकें, नवीनतम सज्जा से सुसज्जित प्रयोगशाला, सेन्द्रिय तथा निरेन्द्रिय औषधियां तैयार करने के लिए औषधि निर्माण सम्बन्धी विभाग, भेषज संग्रहालय, औषधि

उद्यान, वनस्पति उद्यान, आंकड़ों सम्बन्धी विभाग तथा अच्छे पुस्तकालय आदि सहायक साधनों की आवश्यकता है। इस दृष्टि से हमारे आयुर्वेदिक और यूनानी विद्यालय अधिकांशतः पिछड़े हैं। अतः अभी तक अपने स्नातकों को ये चिकित्सा-शास्त्र में सुचारुरूप से शिक्षित नहीं कर पा रहे हैं। मेरा यह विचार ही नहीं वरन् विश्वास है कि यत्र-तत्र फैली हुई छोटी और साधनहीन अनेक शिक्षा-संस्थाओं के स्थान पर कम संख्यक किन्तु पूर्णतया साधन-सम्पन्न संस्थाओं का होना कहीं अधिक लाभकारी सिद्ध होगा।

स्वास्थ्य मन्त्री के भाषण के पश्चात् परिषद् के मनोनीत अध्यक्ष क० विमलानन्द जी तर्कतीर्थ, एम० एल० ए० ने अपना अध्यक्षीय भाषण दिया। श्री तर्कतीर्थ ने अपने भाषण में कुछ लोगों की आयुर्वेद की खिल्ली उड़ाने की मनोवृत्ति की और भारतीय नेताओं को गुमराह करने की नीति की, जिससे आयुर्वेद फलफूल न सके, निन्दा की। उन्होंने सुझाव दिया कि राज्यों में समितियां और एक केन्द्रीय समिति बनाई जाए जो सरकार से अन्य चिकित्सा पद्धतियों के समान आयुर्वेद के भी वैज्ञानिक विकास के लिए समुचित सुविधाऐं प्राप्त करने की कोशिश करे।

सम्मेलन के स्वागताध्यक्ष श्री दरबारीलाल शर्मा ने अपने स्वागत भाषण में दृढ़ विश्वास के साथ कहा कि स्वतन्त्र भारत में मानव-कल्याण के लिये, आयुर्वेद विज्ञान की उन्नति का मार्ग प्रशस्त होना है और उसकी अबाध-प्रगति, जो प्रकृति की भांति अपना अस्तित्व और सामर्थ्य रखती है, अवैज्ञानिक झंझावातों से डिग नहीं सकती। मृत्यु जीती जा सकती और शारीरिक कल्प में कल्पना नहीं यथार्थता है, किन्तु आवश्यकता इस बात की है कि वैद्य और हकीम समुदाय को सरकार का समुचित समर्थन मिले। आज यद्यपि केन्द्रिय सरकार से प्रदेशीय राज्यों तक ही का नहीं वरन् ग्राम सभाओं तक का समर्थन हमें उपलब्ध है तथापि आवश्यकता इस बात की है कि हम अपने कर्तव्य और समय की आवश्यकता का स्मरण कर समस्त भारतीय राज्यों के प्रयत्नों और साधनों को एकत्र करें। जो विज्ञान हमारे जीवन के लिए है, हमारा जीवन उस विज्ञान के लिए है। पैतृक थाती का रूप भी कुलन्तति से विकास की अपेक्षा करता है, फिर जिन्हें आयुर्वेदरूप महा-कल्पवृक्ष मिला हो उनका दायित्व तो बहुत बढ़ जाता है। हमारा किसी विज्ञान से द्वेष नहीं। जो विधि मानव-जीवन में सुख और शान्ति दे वह प्रशंसनीय है। हम एलोपैथी, होम्योपैथी और सभी पैथियों के उन साधनों के समर्थक हैं जिनसे मानव-कल्याण हो। यदि आधुनिक विज्ञान हमारा सौभाग्य है तो प्राचीन विज्ञान हमारा गौरव है और दोनों का समन्वय हमारा कल्याण है। हम इसे भूले नहीं है कि हमें कितना सीखना है किन्तु सीखा हुआ भूला कर नहीं, वरन् सीखे हुए को संवृद्धि और विकास के लिये। आधुनिक बड़ी देन है किन्तु आयुर्वेद भारतीय दर्शन, संस्कृति और आयु विज्ञान का वह उत्कृष्ट रूप है जिसमें शरीर ही नहीं वरन् मन और आत्मा की निरोग्यता भी वांछनीय है।

यह भौतिक हित का भी विरोध नहीं है किन्तु भौतिक हित को ही सब कुछ नहीं माना जा सकता है। यदि विज्ञान से मानव-कल्याण की इच्छा है तो यह भी देखना होगा कि मनुष्यों के मन और आत्मा की उपेक्षा तो नहीं हुई, अथवा शरीर की निरोग्यता के साथ-साथ मन और आत्मा के विकास में रुकावट तो नहीं पड़ी। आयुर्वेद सम्पूर्ण-मानव के कल्याण का विज्ञान है, जिसमें मन के वशीकरण से ब्रह्मचर्य का सात्विक स्वरूप प्रकट होता है न कि कृत्रिम उपायों से सन्तति-निरोध का विषारोपण, जिसके अनैतिक-कालकूट का प्रभाव एक दिन समाज अनुभव करेगा और व्याकुल हो उठेगा।

कीमती तथा साधारणतया अनुपलब्ध औषधियों तथा उपायों के आश्रित कोई विज्ञान करोड़ों देशवासियों का हित कर सकेगा? क्या यह उचित है कि देश के कतिपय धनी नागरिकों के लिए ही कठिनता से उपलब्ध उपाय वैज्ञानिकता के नाम पर करोड़ों देश वासियों को सरलता से प्राप्त साधनों को बन्द कर जन-हित समाज-हित और देश-हित का जयघोष करें? हमें इसका उत्तर देना होगा दूसरों को बुरा कह कर नहीं, वरन् आयुर्वेद और यूनानी भारतीय चिकित्सा साधनों को आधुनिक विज्ञान का पुट

देकर। साथ ही असाधारण अध्यवसाय से आयुर्वेद की एक-एक शाखा के अनुसन्धानीय प्रयत्नों से—अन्वेषण से—गवेषणा से। शक्तिहत आयुर्वेद को प्रयत्नी हनूमान की आवश्यकता है। द्रोणाचल पर दोषहर बूटियों की कमी नहीं। हमारा प्रयत्न है कि समस्त राज्यों में शिक्षा की लगभग एक सी रूप-रेखा हो, एक सी डिग्री हो, एक सा रजिस्ट्रेशन, एक से वैद्यों के अधिकार और एक से नैतिक नियम (कोड आफ एथिक्स)। राज्यों में किये जाने वाले प्रयत्नों को इस भांति सुसंगठित और एकत्र करना है जिससे आयुर्वेद का राष्ट्रीय चिकित्सा विज्ञान के रूप में विकास हो सके। हम चाहते हैं कि महाविद्यालयों का स्तर ऊंचा हो, हमारे स्नातकों का देश-विदेश में सम्मान हो, अच्छे अध्यापक मिलें और उनका न्यूनतम वेतन निर्धारित हो। स्नातकोत्तर शिक्षा का आयोजन हो एवं विदेशों में स्नातकों की विशेष शिक्षा का प्रबन्ध हो। हम चाहते हैं कि विदेशीय स्नातकों को भारत में आकर आयुर्वेद की शिक्षा प्राप्त करने का अवसर मिले जिससे आयुर्वेद का महान उद्देश्य मानव-कल्याण की तुमुल-ध्वनि पृथ्वी-मण्डल पर ध्वनित हो सके। मेरा विचार है, विदेशियों के इस विज्ञान में दीक्षान्त होने पर हमारे कतिपय कुपित बन्धुओं को जो सदैव वैदेशिक चश्मे से ही देखते हैं, अपने देश-विज्ञान के गौरव की अनुभूति मिल सकेगी।

इसलिये कि शुद्धि औषधियां बन सकें, नकली पदार्थों की रुकावट की जाय और भारत के लिये एक फारमोकोपिया बनाई जाय। यदि विदेशी कपड़े और अन्न से भारतीय स्वतन्त्रता को खतरा है तो विदेशी औषधि कब हमें अपनी स्वतन्त्रता के गौरव को पाने देगी। खर्चीली औषधि और कीमती डाक्टर करोड़ों नागरिकों का हित नहीं कर सकते। उत्तर प्रदेश आयुर्वेद के प्रति अपना कर्तव्य निबाहने में आगे बढ़ा है और आयुर्वेद और यूनानी के स्नातकों को डाक्टरों के समकक्ष स्थान मिला है। यदि केन्द्रीय और राज्य सरकारें उत्तर प्रदेश के इस पथ-प्रदर्शन को अपना लें और आयुर्वेद और यूनानी के स्नातकों को रेल, जेल, सेना, श्रम और स्वास्थ्य आदि विभागों में उचित स्थान दें तो समाज का कल्याण हो सकता है। अच्छा हो केन्द्रीय सरकारें इस विज्ञान के विकास को द्वितीय पंचवर्षीय योजना में सम्मिलित कर लें। सबसे आवश्यक यह है कि भारतीय चिकित्सा परिषद् (सेन्ट्रल-इण्डियन मेडिकल कौन्सिल) सरकार से मान्यता प्राप्त वैधानिक संगठन बने।

इसके बाद सभा विसर्जित हुई और उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा दी गई टी-पार्टी (एट-होम) में समस्त वैद्य हकीम सम्मिलित हुए। इस प्रकार ७ बजे सायंकाल को प्रथम दिन का कार्यक्रम समाप्त हुआ।

दूसरे दिन राज्यों के आयुर्वेदिक बोर्ड व कौंसिलों के अखिल भारतीय सम्मेलन के द्वितीय अधिवेशन में अनेक महत्वपूर्ण प्रस्ताव स्वीकृत हुए जो आगामी अङ्क में प्रकाशित किए जायगे।

अन्त में क० धर्मदत्त जी एम० एल० ए० ने समागत प्रतिनिधियों एवं स्थानीय उत्साही कार्यकर्ताओं के प्रति आभार प्रदर्शन करते हुए धन्यवाद प्रदान किया और सम्मेलन सफलतापूर्वक समाप्त हुआ।

—(सचित्र आयुर्वेद से साभार)।
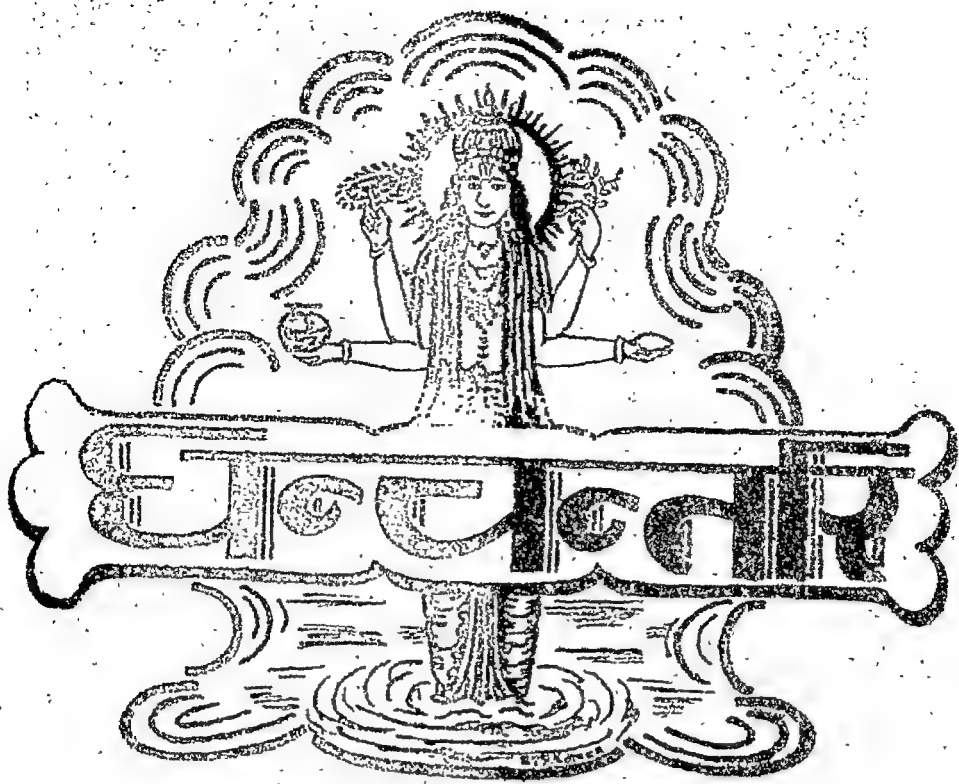
तदेव युक्तं भैषज्यं यदारोग्याय कल्पते।
स चैव भिषजां श्रेष्ठो रोगेभ्यो यः प्रमोचयेत् ॥

—च० सू० १-१३२.

भाग २६ अङ्क ५ | धन्वन्तरि कार्यालय बिजयगढ़ का मुखपत्र | मई १६५५

वैद्य-स्तवन

रचयिता—साहित्यभूषण डा० एम० पी० रंजन, दरभंगा।

वैद्यराज ! तेरे गुण पै हम, अपना शीश झुकाते।
त्याग और तपमय जीवन पै, बार-बार बलि जाते॥
सेवा भाव तुम्हारा गर, किंचित् भी अपना पाते।
धन्य-धन्य जीवन हो जाता, भवसागर तर जाते॥

तुम इलाज के पहले लेते, धन्वन्तरि का नाम।
सुखारोग्य का जो दाता है, धन-सम्पत्ति का धाम॥
आदि गुरु के सुमिरन से, बन जाता बिगड़ा काम।
उनकी कृपा कोर से ही तुम, पाते कीर्ति ललाम॥

कठिन परिश्रम तुम करते हो, जाड़ा, वर्षा, घाम।
कभी कभी हफ़्तों तक मिलता, नहीं तुम्हें विश्राम॥
रात दिवस रोगी जन की सेवा करते अविराम।
बदले में पैसा मिलता कम, ज्यादा मिलता नाम॥

भूल गये समता के कारण, धनी दीन पहचान।
इसीलिये निर्भय तेरे ढिग, आते दीन किसान॥
कष्ट कहानी तुम्हें सुनाते, बूढ़े और जवान।
प्यार भाव सब पर दर्शाते, तुम निज पिता समान॥

दया भाव वश करते हो तुम, मानव का उपकार।
ध्येय सदा तेरा ऊंचा, रहता है नेक विचार॥
रोगी जन की नैया का, तू ही असली पतवार।
संकट में तेरी सहायता, करती बेड़ा पार॥

मानव मात्र तुम्हारी नजरों में है एक समान।
इसीलिये हम तो नतमस्तक हो करते सम्मान॥
समदर्शी हो वैद्यराज! देते नवजीवन दान।
इसीलिये आदर्श तुम्हारा है व्यवसाय महान॥

आज वासनाओं का भारत बना हुआ है दास।
सभी तरह के अरे उपद्रव, आये उसके पास॥
रोग फैलता देख निरन्तर, हम हो रहे उदास।
मुख मण्डल से इसी लिये है लुप्त हुआ मधु-हास॥

निखिल विश्व में गूंज रहा अब, मानवता का क्रन्दन।
सभी भांति होकर निराश हम तोड़ चले अब बन्धन॥
आतुरता से आज अतः करते हम तेरा वन्दन।
शीतल आशीर्वाद बनेगा, दग्ध हृदय का चन्दन॥

ईश्वर के समकक्ष तुम्हें हमने है आज बिठाया।
साक्षात् श्रीहरि का दर्शन मानों तुममें पाया॥
बड़े बड़े राजाओं तक ने मस्तक सदा नवाया।
पूर्व जन्म के संचित फल से तुमने यह पद पाया॥

पार लगा दो जीवन नैया, डूब रही मंझधार।
संकट मोचन कर रोगों का हो पल में संहार॥
दीन हीन भारत हो जावे पुनः स्वर्ण-भंडार।
तुम तो हो पीयूषपाणि, कर दो अमृत संचार॥

निसर्गोपचार के मार्गदर्शक महर्षि

आयुर्वेदशिरोमणि, आयुर्वेदवाचस्पति सी० के० दिवाकर एस० ए०
राजकीय आयुर्वेद महाविद्यलय, हैदराबाद

अधिकांश विद्वानों का विश्वास है कि योगसूत्र तथा महाभाष्य के रचयिता महर्षि पतञ्जलि ने ही चरकसंहिता का रूप दिया है। इस विचार के अनुसार चरक शारीरिक, मानसिक तथा शाब्दिक दोषों के सफल चिकित्सक हैं। स्वास्थ्य के क्षेत्र में यह एक असाधरण मेल है। क्योंकि वास्तविक स्वास्थ्य के लिये शारीरिक पवित्रता के साथ मानसिक तथा शाब्दिक शुद्धि आवश्यक हैं। कहा जाता है कि चरक ने इस तत्व को ध्यान में रखते हुए अपनी अद्वितीय रचनाओं से हमें उपकृत किया है। इस विषय में मत-भेद होंगे। परन्तु यह तो निर्विवाद है कि चरक ने अपनी संहिता में विभिन्न चिकित्सा तत्वों को जुड़ा दिया है। दैविक, शारीरिक एवं मानसिक उपचारों के साथ निसर्गोपचारों के प्रयोग में चरक को विशेष पक्षपात है। "प्रकृति" की एक छाप चरकचिकित्सा में आद्योपान्त दिखाई देती है। इस लेख में चरक कहां तक 'प्रकृति' के पुजारी हैं? इस पर विचार करेंगे।

निसर्गोपचार के चिन्तकों का मत है कि ऐसी एक स्वाभाविक शक्ति है जो कि शरीर से रोगों को दूर करने के कार्य में सदा लगी रहती है। जो शक्ति रोगों के आक्रमण से शरीर की रक्षा करती है वही शक्ति विकारों को दूर कर शरीर को प्रकृति में लाने की सामर्थ्य रखती है। निसर्गोपचारकों की भाषा में इसे "आन्तरिक शक्ति" 'Inner force' अथवा 'Inner healer' कहते हैं। रोग शरीर को प्रकृति में लाने की शारीरिक शक्ति के प्रयत्न का ही स्वरूप समझा जाता है। अतएव चिकित्सा में आन्तरिक शक्ति को बल देना आवश्यक है और वही चिकित्सा का लक्ष्य होना चाहिए।

चरक ने उल्लिखित चिकित्सा के सिद्धान्त को अधिक आदर दिया है। अपने आप रोगों को नष्ट करने की शारीरिक शक्ति का नाम है 'ओज'। कभी इसे 'बल' या 'प्राण' कहते हैं। "बलं ह्यलं निग्रहाय दोषाणाम्" "बलं ह्यलं दोषहरणम्" इत्यादि प्रकरण प्रकृति के इस रहस्य की व्याख्या है। ओज का विवेचन करते हुए चरक ने कहा है कि वह प्राण का मूल है और वह गर्भ से प्रारम्भ कर आमरण शरीर का अनुग्रह करता रहता है। त्रिधातु के व्यापार वास्तव में ओज के अधीन होते हैं। ओज नष्ट होजाने पर शरीर का नाश अनिवार्य है।

> "येनौजसा वर्तयन्ति प्रीणिताः सर्वजन्तवः।
> यदृते सर्वभूतानां जीवितं नावतिष्ठते॥
> यत् सारमादौ गर्भस्य ....
> यस्य नाशात्तु नाशोऽस्ति धारि यत् हृदयाश्रितम्
> यच्छरीर रसस्नेहः प्राणाः यत्र प्रतिष्ठिताः
>
> च० सू० ३०-८-१०

अतएव चरक ने हमें यह चेतावनी दी है कि स्वास्थ्य बल पर निर्भर रहता है और चिकित्सा में हमेशा बल की रक्षा करनी है। धातुओं में व्याप्त होकर समस्त शरीर में प्राण का सञ्चार करने के कारण ओज ही बल कहा गया है। चरक की सम्मति में बलाधान चिकित्सा ही आदर्श चिकित्सा है। ओज के साथ प्रकृति चिकित्सकों की आन्तरिक शक्ति समन्वय संगत प्रतीत होता है।

यज्जः पुरुषीयाध्याय में यह व्यक्त किया है कि जिन तत्वों के स्वाभाविक मेल से पुरुष का जन्म होता है उन तत्वों के समतोल के भंग से ही नाना प्रकार के रोग उत्पन्न होते हैं। अर्थात् धातुओं की विषमावस्था का नाम रोग है। नाना प्रकार के कारण

स्थान वर्णन और वेदना के आधार पर धातुवैषम्य नानात्व धारण करता है। यह सिद्धान्त प्रकृति चिकित्सकों के इस मत को पुष्ट करता है कि रोग अनेक रूप में दिखाई देने पर भी वस्तुतः एक ही है। धातु स्थायी नहीं रहते हैं क्योंकि काल के समान वे गतिशील होते हैं और उत्पन्न होते ही नष्ट होते हैं। अतः चरक का मत है कि धातुओं की उत्पत्ति के लिये ही कारण होते हैं। उनके विनाश के लिये कारण की अपेक्षा नहीं। इस अवस्था में सम आहार-विहार सेवन से ही हम स्वास्थ्य का संपादन कर सकते हैं।

"जायन्ते हेतुवैषम्यात् विषमादेहधातवः।
हेतुसाम्यात् समाः तेषां स्वभावोपरमः सदा॥
प्रवृत्तिहेतुर्भावानां न निरोधेऽस्ति कारणम्।

च० सू० १६-२७, २८

धातु वैषम्य इसलिये चालू रहता कि हम निरन्तर अहित आहार-विहार का सेवन करते हैं। यदि संतुलित आहार-विहार का सेवन किया जाय तो सम-धातुओं की उत्पत्ति होकर विषम धातुओं का अनुबन्ध स्वयं दूर होजाता है। रोग तथा चिकित्सा के उल्लिखित सिद्धान्त चरक के प्रकृति-चिकित्सा के चिन्तन का परिणाम है।

"त्यागात् विषमहेतूनां समानां चोपसेवनात्
विषमाः नानुबध्नन्ति जायन्ते धातवः समाः"

च० सू० १६-३६

उपवास निसर्गोपचार का प्रधान उपचार माना गया है। निसर्गोपचारकों के अनुसार "विजातीय पदार्थ" "foreign matter रोगों का सामान्य कारण समझा जाता है। उपवास विजातीय पदार्थों को दूर कर आन्तरिक शक्ति की स्फूर्ति प्रदान करता है। इसी लिये अधिकांश रोगों में वे उपवास को उपयुक्त समझते हैं। चरक में उपवास पर पर्याप्त प्रकाश डाला है। ज्वर चिकित्सा में उल्लिखित "षडङ्ग चिकित्सा" उपवासक्रम का प्रकाशमान उदाहरण है। आम-प्रदोष रोगों का सामान्य कारण माना गया है। वास्तव में 'विजातीय' पदार्थ, तथा आमप्रदोष दोनों में अधिक सादृश्य प्रतीत होता है। ज्वर में प्रायः आम-दोषों से स्रोतोमार्ग बन्द हो जाने से आमाशय शीतल होकर उसका स्वाभाविक चलन बन्द होता है। फलस्वरूप आम और कायाग्नि का संघर्ष उत्पन्न होता है। इस द्वन्द्व में कायाग्नि मन्द होकर शारीरिक तापमान में परिवर्तन उत्पन्न करता है। ऐसी अवस्था में आमदोष को शोषित कर कायाग्नि के साथ कोष्ठावयवों को उत्तेजित करने के लिए आम-दोष के पाक होने तक उपवास का विधान है।

"प्राणाविरोधिना चैनं लङ्घनेनोपपादयेत्।
बलाधिष्ठानमारोग्यमारोग्यार्थः क्रियाक्रमः"॥

इसके अतिरिक्त रस की दुष्टि से उत्पन्न सारे रोगों में उपवास एक मात्र उपाय बताया गया है। रसधातु अन्य धातुओं का पोषक होने से रस स्रोतों की दुष्टि अनेक रोगों का कारण बन जाती है।

"विविधादशितात् पीतात् अहितात्लीढखादितात्
भवन्त्यते मनुष्याणां विकाराः ये उदाहृताः
तेषामिच्छन्ननुत्पत्तिं सेवेत मतिमान् सदा
हितान्येवा शितादीनि न स्युस्तज्जास्तदामयाः
रसजानां विकाराणां सर्वं लङ्घनमौषधम्

च० सू—२८-२२-२४

निसर्गोपचारों में स्वेद का प्रयोग अधिक महत्व रखता है। विजातीय पदार्थों को दूर करने का ए[क] प्राकृतिक मार्ग है स्वेद। चरक में स्वेद के कई सुन्द[र] कल्प हैं, परिषेक, नाडी आदि सरल तथा कुटी जेन्ता आदि तीव्र स्वेद। इनके अतिरिक्त धूप सेवन व्याया[म] आदि को स्वेदोपचार में स्थान दिया गया है। स्वेद क्रिया से सारे स्रोत शुद्ध हो जाते हैं अतः विजा[तीय पदार्थों] के कारण होने वाले रोगों में स्वेद अत्यन्त सफ[ल] उपचार है ऐसा चरक का कथन है।

पञ्चकर्म आदि कठिन चिकित्साओं के साथ सा[थ] चरक ने प्रति रोग नैसर्गिक उपचार से लाभ उठा[ने] का मार्ग बनाया है। अगस्त्य के उदय से अमृत[के] समान "हंसोदक", वसन्त के वन तथा उपवनों का 'यौवन', "पुष्करणीमूल" आदि का चरकचिकित्सा में महत्वपूर्ण स्थान है। रक्तपित्त की चिकित्सा समाप्त

—शेषांश पृष्ठ ८०० पर।

आम-विकार

लेखक – कृष्णप्रसाद त्रिवेदी बी० ए० आयुर्वेदाचार्य।

आम की व्याख्या आयुर्वेदीय ग्रन्थों में कई प्रकार से की गयी है। जैसे—

> उष्मणः अल्पबलत्वेन धातुमाद्यमपाचितम्।
> दुष्टमामाशयगतं रसमामं प्रचक्षते॥
> —वाग्भट

अर्थात्–जठराग्नि के मन्द होने से अन्न का पाचन ठीक ठीक नहीं होता, और आमाशय में लालादि रसों से मिश्रित अन्न के स्थित होने से आहार रस का पाक नहीं हो सकता, तथा आमाशय में स्थित वही दूषित (अपक्व) रस आम कहलाता है।

> अविपक्वमसंयुक्तं दुर्गन्धं बहुपिच्छलम्।
> सदनं सर्व गात्राणामामसित्यभिधीयते॥
> आहारस्य रसः शेषोयोन पक्वाग्नि लाघवात्।
> स मूलं सर्वरोगाणामाममित्यभिधीयते॥

तथा—

> आममन्न रसं केचित् केचित्तु मलसंचयम्।
> प्रथमं दोष दुष्टं च केचिदामप्रचक्षते॥

उक्त तीनों श्लोक माधव निदानान्तर्गत् मधुकोश टीका से उद्धृत हैं। जिनका सारांश यह है कि आहार का परिपक्व सार 'रस' धातु कहलाता है, और अपक्व भाग 'आम' पुकारा जाता है। जैसा कि शार्ङ्गधर जी का भी कथन है:–

> "रसो भवति सम्पक्वादपक्वमाम संभवम्॥"

आयुर्वेदानुसार 'आम' यह एक ऐसा शब्द है, जिसकी बड़ी विस्तृत व्याख्या की जासकती है। और यह सिद्ध किया जा सकता है कि सर्वरोगों का उपादान कारण 'आम' ही है। इसी 'आम' से 'आमय' शब्द बना है, जो रोग का पर्यायवाची है। इसी में 'निर' उपसर्ग जोड़ देने से 'निरामय' अर्थात् 'आरोग्य' का पर्यायवाचक शब्द निष्पन्न होता है।

आमयावस्था (रोगावथा) के स्साम दोषों को निराम करना ही वास्तव में चिकित्सा की चाभी या कुंजी है। किन्तु उक्त 'आम' सम्बन्धी व्याख्याओं से कई कल्पनायें उद्भूत होती हैं। यह माननीय बात है कि आम का घनिष्ट सम्बन्ध ज्वर, वात आदि कतिपय व्याधियों के साथ है, तथा इस दृष्टि से वह उनका उपादान कारण ही एक प्रकार से है, और वह अकेला ही अनेक व्याधियों को उत्पन्न करता है। तथा प्रायः सर्व व्याधियों में उसका निर्देश 'आम' शब्द द्वारा ही किया जाता है, तथापि यत्र-तत्र व्याधियों में उसकी चिकित्सा भिन्न भिन्न प्रकार से ही करनी पड़ती है। यह इसमें एक विशेषता है। उदाहरणार्थ आमवात की चिकित्सा सामज्वर चिकित्सा से भिन्न है। अजीर्णान्तर्गत् आम की चिकित्सा उससे भी भिन्न है। अर्थात् व्याधियों में, निदान ग्रन्थों की दृष्टि से, 'आम' के सामान्य होने पर भी, चिकित्सा में समानता नहीं होती।

उक्त विवरण से मालूम होता है कि यह 'आम' पदार्थ यद्यपि एक ही (आम शब्द से ही) आयुर्वेद ग्रंथों में सर्वत्र निर्दिष्ट है, तथापि द्रव्यतः या स्वरूपतः वह सर्वत्र (सर्व व्याधियों में) एक ही है, ऐसा नहीं माना जा सकता। प्रत्येक व्याधि में वह भिन्न भिन्न स्वरूप का होता है। उसके रूप रस गन्ध आदि गुण भिन्न भिन्न होते हैं। तथा इस गुण भिन्नता का भी कारण पांचभौतिक द्रव्य मिश्रण वैशिष्ट्य ही है।

यदि आम के द्वारा ही निदान निश्चित कर प्रत्येक व्याधि में आम का एक ही स्वरूप मान कर चिकित्सा की जाय तो वह कदापि साध्य या सफल नहीं हो सकती। क्यों नहीं हो सकती? इसके रहस्य को जानने के लिये हमें 'आम' की ग्रन्थोक्त व्याख्या का जरा ध्यान पूर्वक मनन करना होगा।

उष्मणोऽल्पबलत्वेन धातुमाद्यमपाचितम्।
दुष्टमामाशयगतं रसमामं प्रचक्षते॥

इस सर्वमान्य ग्रन्थोक्त व्याख्या से यह स्पष्ट बोध होता है कि जठराग्नि के मंद होने से या पाचकरस की क्षीणता के कारण आमाशय स्थित जो अपाचित आहाररस है, उसे ही 'आम' कहना उचित नहीं, प्रत्युत् जब वह 'दुष्टमामाशय गतं' होता है, अर्थात् वह अपाचित रस जब दूषित हो जाता है, तब ही 'आम' संज्ञा का पात्र होता है। अपाचित शुद्ध (निर्दोष) अवस्था में तो वह स्वाभाविक ही कुछ काल के बाद पच सकता है, और 'आम' संज्ञा को प्रायः नहीं प्राप्त हो सकता। वह तो किसी कारण-वश यथा योग्य न पचते हुये जब दूषित हो जाया करता है, तब ही 'आम' कहलाता है। अन्यथा नहीं।

जैसे आम्रफलों को जब पाल में डालकर पकाया जाता है, तब पकने के पूर्व वे अपक्व स्थिति में रहते हैं, और काल पाकर वे अच्छी तरह परिपक्व हो जाते हैं। उन्हें दूषित किसी भी हालत में नहीं कहा जासकता। किन्तु पाल में डाले गये आम्रफलों में से कोई फल यदि पहले से ही दूषित या सड़ान-युक्त हो तो उसके संसर्ग से समीप के फल भी सड़ने लगते एवं स्वतः के परिवर्तनशील स्वभावानुसार तथा पाल की उष्णता से पकने भी लगते हैं। ऐसी स्थिति में आम्रफल को निकाल कर निरीक्षण किया जाय तो मालूम होगा कि वह ऊर्ध्वपक्व तथा साथ ही साथ सड़ानयुक्त ऐसी दुष्ट अपक्व स्थिति में है। इसी प्रकार आहाररस यदि केवल अपक्व स्थिति में हो तो उसे दूषित या 'आम' नहीं कहा जा सकता, किंतु उसी अपक्व स्थिति में जब वह सड़ानयुक्त भी हो जाता है तब ही उसे 'आम' कहा जा सकता है। अस्तु, यह आम्रफलों का दृष्टान्त आम-वस्तु-स्थिति संदर्भी अंशांश कल्पना के लिये दिया गया है। सर्वांश में यह दृष्टान्त नहीं घट सकता।

प्रायः भ्रम से हम लोग अपक्व आहाररस को ही आम समझ लिया करते हैं, और कहा करते हैं कि अपक्व रस ही (रक्त के अनुसार) शरीर में इतस्ततः संचरित होता है। अर्थात् अपक्वरस का शोषण होकर वह शरीर भर में दौड़ लगाता है। किन्तु हमारे ख्याल से तो अपक्व रस का प्रायः शोषण होना शरीर की प्राकृतिक स्थिति के विरुद्ध बात है। यद्यपि हमारे इस विधान के लिये कोई शास्त्राधार हमारे पास नहीं है; तथापि अनुभव और तर्क के आधार पर हम कह सकते हैं कि अपक्व आहाररस का शरीर में यदि शोषण या पाचन होता तो फिर अतिसार विकार का प्रादुर्भाव ही नहीं हुआ होता।

हम प्रायः देखते हैं कि जिसकी प्रकृति को जो आहार पचाने की आदत है, उसके विरुद्ध आहार सेवन करते ही उसे अतीसार विकार हो जाया करता है। जो हमेशा चावल ही खाया करता है, या बाजरा खाया करता है उसे गेहूँ की फुलकियों से ही, किसी को मूंगफली के दानों से, किसी को चना खाने से ही टट्टियां (दस्तों की फुलझड़ी) शुरू होजाती हैं। नियमित आहार करने वाले को कभी विशेष घृतपक्व हलुवा आदि खालेने से ही अजीर्ण होकर अतीसार की शिकायत हो जाती है, जिसमें स्नेहांश की अधिकता पायी जाती है। इससे मालूम होता है कि उस मनुष्य की अग्नि, स्नेहेतर सर्व आहारांश को पचा सकती है। इन सब उदाहरणों से स्पष्ट बोध होता है कि शारीरिक प्रकृति अपक्व आहारांश का शोषण नहीं करती। इस हमारे विधान पर कदाचित् शंका हो सकती है कि, जब ऐसा ही है तो अतिसारादि कतिपय रोगोंके निदान में अध्यशन, विषमाशन आदि कारण रूप से क्यों कहे गये है? अपक्वांश का प्रवेश यदि शरीर में नहीं होता तो फिर ये कारण गौरवादि लक्षण प्रवर्त्तक कैसे होते हैं? इस शंका के मूल में आहाररस अपाचित स्वरूप में ही शोषित होकर गौरवादि लक्षणों को प्रकट करता है, ऐसी जो दृढ़ कल्पना है, उसके निराकरणार्थ हमें सर्वरोगों की सम्प्राप्ति के सारतत्व का ही विवेचन करना पड़ेगा, जो कि हमारे इस लेख के लिये अनावश्यक एवं व्यर्थ विस्तार का कारण होगा। अतः इस चर्चा

को हम आगे के लिये स्थगित कर, पुनः अपने मूल विषय की ओर आते हैं।

अपक्व अन्न-रस शरीर में शोषित (पेवस्त) नहीं होता ऐसा जो उपर्युक्त विधान किया गया है, उसमें एक अपवाद अवश्य मानना होगा। आहाररस अपक्व स्थिति में ही यदि सड़ान-युक्त हो जाय तो वह विषवत् हो जाया करता है। उसमें विष स्वभावी एक भिन्न ही पदार्थ निर्माण हो जाया करता है, जो कि विष सदृश ही सूक्ष्म, व्यवायी एवं विकाशी धर्मों से युक्त होने के कारण शरीर में बरबस प्रविष्ट हो जाता है और इसका शोषण या प्रवेश जैसे जैसे शरीर में होते जाता है, तैसे तैसे विष लक्षण प्रकट होते जाते हैं।

अतः हमारे उपर्युक्त विधान का तात्पर्य यह है कि अपक्व आहार रस का तो शोषण तत्काल नहीं होता। कारण अपक्व आहारांतर्गत् स्थूल तत्वों का जब तक पचन नहीं होता, अर्थात् मल और सत्व भाग का जब तक पूर्णतया विभाजन नहीं होता तब तक वह शोषित नहीं हो सकता। विभाजन या पूर्णतया छन जाने पर सत्वभाग या रस जब परम सूक्ष्मावस्था को पहुंचता है, तब कहीं उसका शोषण हुआ करता है। ध्यान रहे पक्वाशय या आंत्रस्थित शोषक अन्तस्त्वचा फिल्टर (या Wollen filter bag) से भी बढ़कर कार्यक्षम होती है। कारण उसमें सचेतनत्व होने से शोषण-योग्यता-युक्त द्रव-पदार्थ ही उसके द्वारा शोषित हुआ करता है, और सजीवत्व के कारण ही उसमें ग्राह्य और अग्राह्य का भी ज्ञान रहता है। तथापि विष के सामने उसका कुछ भी नहीं चलता। विष और मद्य ये दोनों इससे अपवाद हैं।

अब यह सिद्ध हुआ कि उक्त प्रकार से, किसी कारणवश आहाररस में सड़ान आकर वह विषधर्मी हो, बरबस आंत्र के अन्तस्त्वचा द्वारा शोषित हो नाना प्रकार के विकारों को उत्पन्न करता है, उन्हें इस आमाशयस्थ या आंत्रस्थ आम-विकार-जन्य मानना होगा और यही "दुष्टमपक्वमाहाररसं आमाशय गतम्" आम, उक्त शास्त्र वचनों द्वारा निर्दिष्ट किया गया है।

जो 'आम' शरीर में रस, रक्त के साथ इतस्ततः संचरित होता है, वह उक्त आम से एकदम भिन्न है। इसकी उत्पत्ति अपक्व आहार-रस से न होते हुये, केवल शुद्ध पक्व रस से ही होती है। इसे अब यहां स्पष्ट दर्शाना है।

वाग्भट सूत्रस्थान के उक्त श्लोक के पश्चात् ही यह श्लोक है:—

"अन्ये दोषेभ्य एवाति दुष्टेभ्योऽन्योन्यमूर्छनात्।
कोद्रवेभ्यो विषस्येव वदन्त्यामस्य संभवम्॥"

अर्थात् दूसरे आचार्य वातादिक दोषों के अति दुष्ट (विकृत) होकर परस्पर मूर्च्छित या मिश्रित होने से आम की उत्पत्ति मानते हैं। जैसे कोद्रव भक्षण से विष की उत्पत्ति होती है। बात ठीक ही है, किंतु कोद्रव (कोदों धान) के उदाहरण से यहां आम सम्बन्धी कल्पना विशेष स्पष्ट नहीं होती। अस्तु, यह दोष मूर्च्छना जन्य 'आम' एक भिन्न प्रकार का आम है, और उक्त अपक्व दुष्ट रस स्वरूपी आम से भिन्न है। इसी प्रकार मद्य से भी 'आम' की उत्पत्ति मानी गई है। जैसे—मदात्यय चिकित्सा में चरक जी का कथन है—'जीर्ण आम मद्यदोषस्य मद्यमेव-प्रदापयेत्"। इत्यादि

अब प्रश्न यह है कि, क्या पक्व आहाररस से भी अपक्व रस धातु का निर्माण होता है?

इसका समाधान यों है कि पक्वरस के शोषित हो जाने पर, रसवाहनियों में उसे स्थान मिल जाने पर भी एक प्रकार का 'आम' निर्माण होता है। इसे पूर्णतः समझने के लिये, यहां प्रथम सप्तधातु-भवन-क्रिया की कुछ चर्चा आवश्यक है।

शरीरान्तर्गत् सप्तधातुओं में यद्यपि कुछ धर्मों की समानता है, तथापि उनमें भिन्नत्वदर्शक द्रव्य विशेष, घटना विशेष आदि विशेष धर्म भी पाये जाते

हैं। हमारे प्रत्येक आहार द्रव्य में सप्तधातु पोषक पदार्थ नहीं होते। अकेले गेहूँ या चावल सप्तधातुओं का पूर्णतः पोषण नहीं कर सकते, इसी से उनके साथ दाल, साग आदि अन्यान्य आहार द्रव्यों की आवश्यकता होती है।

कभी-कभी उक्त आहार के ऐसे भी पक्व अंश देह में प्रविष्ट होजाया करते हैं कि उनका शोषण होकर कोई भी एक धातु परिपुष्ट होने के लिये उन्हें दूसरे विशिष्ट अंश की आवश्यकता होती है। किन्तु वह अन्य विशिष्ट अंश न प्राप्त होने से अपूर्ण, पक्वांशों को धातुत्व न प्राप्त होते हुये जैसे की तैसे ही अपरिवर्तित अवस्था में, त्रिशंकु के समान, इतस्ततः संचरित होते रहना पड़ता है। यह भी एक 'आम' का ही प्रकार है।

सप्तधातु निर्माण में रस के बाद रक्त, रक्त के बाद मांस, मांस के बाद मेद इत्यादि जो क्रम शास्त्रों में बतलाया गया है इसका वास्तविक मर्म यह है कि रस धातु पर रंजक पित्त का संस्कार जब तक नहीं हो जाता, तब तक उसमें से रक्त धातु (धात्वग्नि युक्त होने पर भी) अपने अंश को नहीं ग्रहण कर सकता। अर्थात् रस के रक्त में परिवर्तनार्थ रंजक की अत्यन्त आवश्यकता है। रंजक के योग से परिवर्तन हो जाने पर ही, रक्त-धातु अपनी शक्ति (अग्नि) द्वारा स्वाभीष्ट अंश को उस परिवर्तित रस धातु में से ले सकता है। अन्यथा नहीं।

रक्त धातु अपना भाग उस परिवर्तित रस में से ग्रहण कर चुकने के पश्चात् शेष मांस, मेद आदि धातु भी अपने-अपने भाग को उसमें से शोषित करते रहते हैं। जिस प्रकार डिब्बे के अन्दर डिब्बा, ऐसे छोटे बड़े कई डिब्बे रक्खे हों, तो उनमें से ऊपर का बड़ा डिब्बा निकालने पर ही अन्दर के छोटे डिब्बे दिखलाई पड़ते हैं। अन्यथा नहीं दिखलाई देते। कुल एक ही डिब्बा मालूम देता है। तैसे ही ऊपर से एक ही मालूम पड़ने वाले इस परिवर्तित आहार-रस से जब तक रक्तत्व का अंश नहीं निकल जाता (अर्थात् जब तक रक्त धातु इसमें से अपना भाग नहीं ग्रहण कर लेता) तब तक उसमें मांस परिपोषक अंश होते हुये भी मांस-धातु उस अपने अंश या भाग को नहीं ग्रहण कर सकता। एक ही द्रव दृष्टिगोचर होता है, उस द्रव में जब तक एक विशिष्ट भाग का पृथक्करण नहीं हो जाता तब तक दूसरा भाग उसमें से नहीं निकल सकता। अनेक प्रकार के लवणों के एक ही मिश्रण में से हम सब लवणों को जिस प्रकार अलग अलग कर सकते हैं, उस प्रक्रिया को ध्यान में लाने से, रस के बाद रक्त, रक्त के बाद मांस आदि बनने के विषय में शास्त्र का कथन स्पष्ट समझ में आ सकता है।

उक्त स्वाभाविक क्रिया में अग्नि आदि की विकृति से विषमता आने पर, रूपान्तर होने के पूर्व जो द्रव-धातु शरीर में स्थित रहेगा, वह वैसे ही संचित रहेगा, यह भी एक प्रकार का आम ही कहलावेगा।

ऊपर जो आम्र-फलों का दृष्टान्त दिया गया है, उसमें जैसे फलों का परिवर्तन पाल स्थित ऊष्मा के संयोग से होता है, तैसे ही आहार रस का परिवर्तन धातु-स्थित अग्नि के सहारे से हुआ करता है किंतु उसमें भी कुछ अंश काल एवं अग्नि की अपेक्षा से अपरिवर्तित ही रह जाता है। उसे काल का यदि उचित योग मिल जाय (बीच ही में यदि आहार या अध्यशन न हो) तो उसका यथायोग्य धातु-पोषक परिवर्तन हो सकता है। किन्तु वह योग न मिलने से (बीच में ही खा-पी लेने से) वह अपरिवर्तित (अपरिपक्व) अंश तैसे ही शरीर में संचरित होते रहता है। यह भी एक आम ही की अवस्था है।

इस प्रकार शरीर में आहार-रस के ही द्वारा कई प्रकार से आमोत्पत्ति होती रहती है जिनके कारण भिन्न भिन्न प्रकार के रोग होते हैं। इसलिये सब पर एक ही उपचार कार्य-कारी नहीं होता। इसमें ध्यान रखने की बात है कि अंत्रस्थ पचन-क्रिया द्वारा जो रस में परिवर्तन होता है उससे भिन्न है जो धात्वस्थ अग्नि

द्वारा होता है। इन दोनों स्थितियों में आमोत्पत्ति होती है, जैसा कि ऊपर स्पष्ट किया जाचुका है। और यह भी ध्यान रहे कि ये दोनों प्रकार से उत्पन्न हुये आम स्वतंत्र स्वरूप के होते हैं। अतः तदनुरोध से उनकी चिकित्सा भी भिन्न भिन्न प्रकार से होनी आवश्यक है।

पाश्चात्यों के अनुसार आमाशय की भीतरी पृष्ठ पर जो श्लैष्मिक कला है, उसमें अनेक सूक्ष्म नलाकार ग्रन्थियां हैं। और इन ग्रन्थियों की दीवारों में दो प्रकार की सैलें होती हैं।

(१) स्तंभाकार या घनाकार, और (२) बड़ी एवं मोटी मींगी वाली सैलें। ये अम्लोत्पादक सैलें कहलाती हैं, जिनसे आमशयिक रस की उत्पत्ति होती है।

आमाशय के जिस श्लैष्मिक स्थान को पाश्चात्यों ने निर्दिष्ट किया है, और अम्लोत्पादक सैलों की चर्चा की है, वहीं पर आयुर्वेदानुसार पाचक पित्त की उत्पत्ति भी बतलाई गई है, जो कि आमाशय और पक्वाशय में स्थित हुआ चतुर्विध (अशित, खादित, लीढ़ और पेय) अन्न को पचाता है, तथा दोष, रस, मूत्र, पुरीष को भिन्न-भिन्न करके अग्निकर्म से शरीर की रक्षा करता है। यह पाचक पित्त अपने अम्ल गुण द्वारा, आमाशय के द्रव श्लेष्मा से मिल कर भोजन को द्रव करता और पाचन करता है। इसे ही पाश्चात्य वैज्ञानिक हाइड्रोक्लोरिक अम्ल (Hydrochloric Acid) कहते हैं।

ऊपर जो आंत्रस्थ पचन-क्रिया की विषमता से रस में आमोत्पत्ति दर्शायी गई है, वह इसी पाचक पित्त की कमी के कारण होती है। और आमाशयिक अर्बुद, पाण्डु, कामलादि रोगों को उत्पन्न करती है यह पाचक पित्त की न्यूनता (जिसके कारण आंत्रस्थ पचन क्रिया की विकृति होकर आमोत्पत्ति होती है) ईर्ष्या-भय क्रोध आदि कारणों से भी होती है। जैसा कि कहा है—

'ईर्ष्याभयक्रोधपरिप्लुतेन लुब्धेन शुग्दैन्यनिपीडितेन।
प्रद्वेषयुक्तेन च सेव्यमानमन्नं न सम्यक् परिपाकमेति।'

तथा—

'मात्रयाऽप्यभ्यवहृतं पथ्यं चान्नं न जीर्यति।
चिंता शोक भय क्रोध दुःख शय्या प्रजागरैः॥'

इसी से अजीर्ण, अग्निमांद्यादि रोगों की भी उत्पत्ति होती है। आमाजीर्ण में भोजन करने अथवा अतिमात्रा में भोजन करने से विसूचिका, अलसक, विलम्बिकादि रोग उत्पन्न होते हैं। कहा भी है—

"अतिमात्राशनमाम प्रदोष हेतूनाम्।
—इत्यादि, चरक सूत्रस्थान।

यही रस की सामता, उक्त कथनानुसार दोषों की सामता को पैदा कर ज्वर अतीसार, ग्रहणी आदि रोगों में कारणीभूत होती है। इस प्रकार वात, पित्त, कफ ये दोष और रसादिक दूष्य आम से सम्बन्धित साम कहलाते हैं। जैसा कि वाग्भट सूत्र स्थान अ. १४ में कहा है—

"आमेन तेन संपृक्ताः दोषाः दूष्याश्च दूषिताः।
सामा इत्युपदिश्यन्ते ये च रोगास्तदुद्भवाः॥"

ये साम दोष और दूष्य देह के जिस भाग में स्थित होते हैं, वहीं पर शूल, स्तब्धता, जड़ता (गौरवादि) आदि एवं दोषों के अनुसार तीव्ररुजा (पीड़ा) आदि लक्षणों को उत्पन्न करते हैं। कहा है—

"यत्रस्थमामं विरुजेत्तमेव,
देशं विशेषेण विकार जातैः।
दोषेण येनावततं शरीरम्—
तल्लक्षणैराम समुद्भवैश्च॥"
—सुश्रुत।

शास्त्रों में आम के साधारण और विशिष्ट लक्षण भी कहे गये हैं उनमें विशिष्ट लक्षण तो प्रत्येक दोष के अनुसार अलग अलग होते हैं। सामान्य लक्षण—स्रोतों का अवरोध, बलनाश, जड़ता, अफरा या वायु की रुकावट, आलस्य, अपचन, लार का बहना, मलबद्धता, अरुचि और ग्लानी या बगैर श्रम के थकावट

का होना इत्यादि @

दोषों की सामता का ज्ञान होना चिकित्सा में विशेष उपयोगी है। कहा है—

"निरामेन्नामनं स्तब्धे सामे लोंघनमाचरेत्"

प्रत्येक दोष की सामता और निरामता के लक्षण भी इसी हेतु से कहे जाते हैं—

सामवात के लक्षण—

साम वायु-विबन्ध, अग्निमांद्य, तन्द्रा, आंत्र में गुड़गुड़ाहट, तोद भेदादि वेदनायें, शोथ, निस्तोद (सूचिवेधन सी पीड़ा) करता है। कुपित सामवायु शरीर में जकड़न पैदा करता हुआ इधर-उधर घूमता है, और स्निग्ध, गुरु मंद आदि गुण-युक्त वस्तुओं के सेवन से, प्रातः सूर्योदय के समय तथा रात्रि के प्रथम भाग में वृद्धि को प्राप्त होता है।

निराम वात के लक्षण—

निराम वायु-विशद(पिच्छलता के विपरीत), रूक्ष, सर्वदेहानुगामी, और अल्प वेदना वाला होता है। तथा विपरीत गुण वाले द्रव्यों से, विशेषकर स्निग्ध द्रव्यों से शांति को प्राप्त होता है। कहा है—

"निरामो विशदो रूक्षो निर्विबन्धोऽल्पवेदनः।
विपरीत गुणैः शांति स्निग्धैर्याति विशेषतः॥"

सामपित्त के लक्षण—

साम पित्त दुर्गन्धित, हरा वर्ण का, कृष्णश्वेतवर्ण का अम्ल, घनीभूत और गुरु होता है। तथा अम्लोद्गार (खट्टी डकारों को) कंठ हृदय में दाह को करता है।

निराम पित्त के लक्षण—

निराम पित्त-ताम्र-पीतवर्णयुक्त, अति उष्ण, रस में कटु और अस्थिर होता है, दुर्गन्ध रहित होता है। ऐसा निराम पित्त रुचि, अग्नि और बल का देने वाला है।

@ "स्रोतोरोध बलभ्रंश गौरवानिल मूढता।
आलस्यापक्ति निष्ठीवी मलसंगारुचिक्लमाः॥"
—वाग्भट सूत्रस्थान

साम कफ के लक्षण—

यह धूसर वर्ण का, तन्तुयुक्त, अतिघन, [illegible] में स्थित होता है तथा दुर्गन्धयुक्त होता क्षुधा और उद्गार (डकार) का नाशक है।

निराम कफ—

झागयुक्त, पिण्डीभूतश्वेतवर्ण का निःसार, गन्धरहित होता है, और मुख की शुद्धि करने वाला होता है।

संक्षेप में कह सकते हैं कि साम वात से शूल (तोद, भेद, आयामादि) भ्रम, आनाह या मल वातादि का रुक जाना, कम्प, स्तंभ, उद्वेष्टनादि लक्षण होते हैं। सामपित्त से-ज्वर, अतिसार, वमन, अन्तर्दाह, तृषा, प्रलापादि लक्षण और साम-कफ से वमन, गौरव (विशेषतः सिर का भारी होना, थूक का अत्यधिक आना, अङ्गगौरवादि) लक्षण होते हैं।

आमजन्य विशेष रोग या आमप्रकोप—

चरकाचार्य जी ने दो आमप्रदोष माने हैं— विसूचिका और अलसक। अलसक का ही भेद दण्डालसक है। सुश्रुत जी ने आमप्रदोष का एक और भेद माना है—विलम्बिका। कहा है—

"अजीर्णमामं विष्टब्धं विदग्धं च यदीरितम्।
विसूच्यलसकौ तस्माद्भवेच्चापि विलंबिका॥
—सुश्रुत

इन तीनों में पारस्परिक भेद इस प्रकार है—

१—विसूचिका में दोषों की प्रवृत्ति नीचे और ऊपर दोनों मार्गों से होती है, जैसा कि कहा है—
"तत्र विसूचिका मूर्ध्वं चाधश्च प्रवृत्तामदोषां यथोक्त रूपां (कफपित्तानिलरूपां) विद्यात्।" —चरक

शूल की अधिकता होती है, और वात अधिक पित्तमध्य, कफ हीन-यह क्रम होता है।

२—अलसक में साम वात की प्रधानता होने से आमाशय में श्लेष्मा का अवरोध होता है अतः वहां का रुद्ध अन्न न ऊपर (मुखमार्ग से और न नीचे (गुदामार्ग) से ही निकलता है

इसमें पीड़ायें शल्य के समान उग्र एवं तीक्ष्ण होती हैं, और वात अधिक, कफ मध्य. पित्तहीन यह क्रम होता है।

३—विलंबिका—में कफ वात से प्रदुष्ट अन्न किसी मार्ग से नहीं निकलता। शूल अल्प होता है। कफ अधिक, वात मध्य, पित्त हीन इस प्रकार दोषों का क्रम इसमें रहता है।

दण्डालसक में—अतिमात्र प्रदुष्ट दोषों के कारण अत्यंत आम प्रकोप होकर सब स्रोतों के मार्ग अवरुद्ध हो जाते हैं, तथा दोषों की तिर्यक् गति होने से शरीर लकड़ी के डंडे के समान स्तंभित हो जाता है, जकड़ जाता है। वह एक दम असाध्य है। कहा है—

"अतिमात्र प्रदुष्टाश्च दोषाः प्रदुष्टामबद्धमार्गास्तिर्यंगच्छन्तः कदाचित्केवलमेवास्य शरीरं दण्डवत्स्तंभयंति, ततस्तमलसकमसाध्यं ब्रुवते।" —चरक

अतः यह स्पष्ट है, विरुद्धाशन, अध्यशन, अत्यशन आदि के कारण आमप्रदोष होता है। इसकी चिकित्सा विषम है। कहा है—

"आमो विषम चिकित्स्यानाम्।" —चरक।

इस आम की संज्ञा विष है। क्योंकि इसमें विष के सदृश लक्षण होते हैं। वह आमविष आशुकारी, सद्यमारक तथा विरुद्ध चिकित्सा-क्रम के कारण असाध्य है। ×

यदि इस प्रकार के आम की उष्ण चिकित्सा करें, तो वह विष के विरुद्ध है, क्योंकि विष में उष्णता, तीक्ष्णता, आशुकारी आदि गुण होने से शीत चिकित्सा की जाती है यदि शीत चिकित्सा की जाय तो वह आम के विरुद्ध है, क्योंकि आम में उष्ण चिकित्सा करनी चाहिए। अतः विरुद्धोपक्रम होने से इसकी चिकित्सा बड़ी विषम है।

मध्वाम—

चरक जी ने, मधु का सेवन विधियुक्त न करने से भी आमोत्पत्ति या आम की उत्पत्ति मानी है, और कहा है—

"हन्यान्मधूष्णमुष्णार्त्तमथवा स विषान्वयात्।"

अर्थात्—उष्ण या गरम किया हुआ, उष्ण वीर्य औषधियों से युक्त, ग्रीष्म ऋतु में, अथवा गरमी और दाह से पीड़ित पुरुष को (उष्ण न किया हुआ) मधु भयंकर परिणामकारी होता है। कारण—

"नातः कष्टतमं किञ्चिन्मध्वामात्तद्धिमानवम्। उपक्रमविरोधित्वात्सद्यो हन्याद् यथा विषम्॥" तथा

"आमे सोष्णा क्रिया कार्या सा मध्वामेविरुध्यते।
मध्वामं दारुणं तस्मात्सद्यो हन्याद्यथा विषम्॥

अर्थात्—मधु सेवन से उत्पन्न आमदोष से बढ़ कर और कोई भी रोग कष्टदायक नहीं। क्योंकि चिकित्सा की विषमता से यथा मार देता है, तैसे, ही मध्वाम भी मार देता है। आम में उष्ण चिकित्सा करनी चाहिये किंतु मधुजनित आम में निषिद्ध है अतः मध्वाम बड़ा दारुण है।

आम का और भी एक प्रकार—

शरीर के धातुपोषणार्थ आहार की जैसे आवश्यकता है, तैसे ही व्यायाम की भी है। जो किसी प्रकार का भी व्यायाम नहीं करते, उनके शरीर के चित परमाणुओं (सेल्स) में से मलोत्सर्जन बराबर नहीं हो पाता। अतः वह मल शरीर में जहां तहां स्थित हुआ करता है, जो शरीर में वेदना, व्रण, शोथ, ग्रंथि रोगादि का कारण होजाता है। यह भी एक आम का ही प्रकार है।

इस तरह, आम के कई प्रकार हैं, और तदनुसार ही तज्जन्य विकारों की चिकित्सा में भेद करना आवश्यक है। इन-इन आमों का भिन्न भिन्न नामकरण होना आवश्यक है। एतदर्थ आगे कभी प्रयत्न किया जावेगा।

× "विरुद्धाध्यशनाजीर्णाशन शीलिनः पुनरामदोषमामविषमित्याचक्षते भिषजः विषसदृशलिंगत्वात्, तत्परमसाध्यं, आशुकारित्वात् विरुद्धोपक्रमत्वाच्चेति।
—चरक।

आयुर्वेदिक अनुसन्धान की रिपोर्ट

लेखक—पं० ठाकुरदत्त शर्मा वैद्य, अमृतधारा देहरादून।

पाठकों को ज्ञात होगा कि ठाकुरदत्त शर्मा धर्मार्थ ट्रस्ट के तत्वावधान में आयुर्वेदिक अनुसन्धान का कार्य चालू है।

यह हम पहिले ही लिख चुके हैं कि इस अनुसंधान से हमारा प्रयोजन आयुर्वेद की सचाइयों को प्रकाश में लाना है। आयुर्वेदिक ग्रन्थों में जो कुछ लिखा चला आरहा है उसमें कितना अंश सत्य है और कितना अंश प्रमाणित नहीं होता इसको अनुभव से सिद्ध करना है।

सबसे बड़ा कार्य पारद की शुद्धि और सिद्धि करना है जिसे आधुनिक समय में साधारण तौर पर पारद शुद्ध करके सब रस बनाये जाते हैं। हम चाहते हैं कि जो कुछ इस विषय में किया जाय वह आयुर्वेद जगत् के सन्मुख रख दिया जाये और यदि किसी सज्जन को इस विषय का क्रियात्मक अनुभव हो तो उससे लाभ उठाया जाये। जिस भ्राता को जो कुछ ज्ञात हो लिखने की कृपा करें। हमने हरतालभस्म, शिंग्रफभस्म, रजतभस्म आदि पर भी अनुभव किये हैं उनका वर्णन फिर करेंगे। अभी पारदसंस्कार में हमने पारद के ८ संस्कार पूर्ण रीति से किये हैं। अब बुभुक्षित करने की चिन्ता में हैं। तीन-चार विधियों से बुभुक्षित क्रिया कर चुके हैं परन्तु अभी तक पारद बुभुक्षित नहीं हुआ है। किसी भी सज्जन ने पारद को बुभुक्षित करने में सफलता प्राप्त की हो तो कृपा करके लिखें ताकि आयुर्वेद संसार का उपकार हो। हमें तो जो कुछ सिद्ध करना है सबके लाभार्थ उसको प्रकाशित कर देना है।

इस समय तक जो संस्कार किये उनका व्यौरा लिखते हैं। सब रस-पुस्तकों से प्रयोग एकत्र करके एक दूसरे की सहायता और अपने पुराने अनुभव मिलाकर ये सब संस्कार निम्न प्रकार किये हैं।

१ स्वेदन

तारीख २४-८-५३ को पारद का स्वेदन संस्कार प्रारम्भ किया। २०० तोला यानि २॥ सेर पारद को पहिले चौलड़ कपड़े से २० बार छाना गया और छनने के बाद एक लोहे की कड़ाही में पारद डालकर २० सेर पानी तथा १० तोला नमक के साथ ४ घंटा ओटाया जिससे पारद स्वच्छ हो गया और इस प्रथम क्रिया में ४ तोला पारद कम हुआ क्योंकि कोई वस्तु मिली हो वह निकल जाती है। स्वेदन करने को निम्नलिखित कांजी तैयार की गई।

चावल २ सेर को १ मन पानी के साथ ओटाया यहां तक कि चावल पानी में फूटने लग गये। फिर इस पानी को मिट्टी के बड़े माट में छानकर निम्न लिखित औषधियां डाली गईं।

१ सेर कुलथी का क्वाथ, राई, जीरा, सेंधा नमक, हींग, सोंठ, हलदी, १०—१० तोला का चूर्ण तथा बांस के पत्ते ५ तोला, नागरमोथा, चित्रक, पुनर्नवा १०—१० तोला चूर्ण डालकर १० दिन रखा गया।

फिर पारे को एक पत्थर के खरल में डालकर निम्न औषधियों के साथ घुटाया।

अदरख २० तोला, मूली २० तोला, लहसुन २० तोला, चित्रक २० तोला, सोंठ २० तोला, मिर्च २० तोला, पीपल २० तोला, राई २० तोला, सेंधानमक २० तोला डालकर घोटते गये और कांजी देते गये।

इस प्रकार १ सप्ताह घोटने के पश्चात् २ गज नये लट्ठे की ४ तह करके एक पोटली बनाई। पोटली में औषध मिश्रित पारद डाल कर एक तांबे के डेग में दोलायंत्र बनाया तथा दोलायन्त्र में पारद की पोटली लटका कर चूल्हे पर लकड़ी की ३६ घंटे आंच दी गई।

३६ घंटा तक लकड़ी की आंच देते गये और बीच में जब कांजी देने की आवश्यकता होती तब पोटली बचा कर नई कांजी देते गये। इस प्रकार ३६ घंटा में करीब एक मन कांजी लगी।

स्वेदन करने के पश्चात् पारद को पोटली से निकाल कर एक इनेमल (तासचीनी) की चिलमची में पारद सूखने को धूप में रख दिया गया। १० दिन पश्चात पारद सूख जाने पर डमरूयन्त्र से पारद निकाला गया।

इस प्रकार प्रथम संस्कार में २०० तोला पारद का १७६ तोला पारद हाथ लगा। यानि इस क्रिया में २४ तोला पारद उड़ने के कारण कम होगया।

२ मर्दन

स्वेदन करने के बाद जो १७६ तोला पारद निकला उसको ईंट का चूर्ण,हल्दी, राई, घर का धुवां, चूना, सोंठ, मिर्च, पीपल, सैंधानमक, चित्रक हर-एक का १०-१० तोला चूर्ण डालकर कांजी के साथ घोटते गये।

३ मूर्च्छन

मर्दन तथा मूर्च्छन संस्कार की औषधियां समान हैं अतः मर्दन संस्कार में डाली हुई औषधियां ही मूर्च्छन संस्कार में रहीं। जिन-जिन चीजों का रस या क्वाथ मूर्च्छन में डाला गया उनका विवरण दिया जाता है।

घृतकुमारी रस २० तोला, चित्रक काथ २० तोला त्रिफला काथ २० तोला, अमलतास क्वाथ २० तोला गलगल रस ४० तोला, तक्र ४० तोला, कांजी ४० तो. इनको डाल-डाल कर घोटते गये। कुल ६ दिन पारद को इनके साथ घुटवा कर गरम कांजी से धोया गया। किन्तु पारद में गलगल वगैरा का चिक-टास विशेष होने से पारद कांजी से धोने पर नहीं निकला। अतः पारद को धूप में सूखने को रख दिया। पारद को धूप में रखने से भी वह नहीं सूखा अतः लकड़ी की नरम आंच पर पारद कढ़ाही में डाल कर गरम किया तो इससे चिकटास दूर होकर ४० तो. पारद तो अनायास ही निकल आया। पूरा पारद औषधियों से पृथक न होने के कारण औषधिमिश्रित पारद डमरूयन्त्र से पत्थर के कोयले की अंगीठी पर ६ घंटा आंच देने से ६५ तोला पारद निकल आया।

शेष पारद को डमरूयन्त्र बना कर चढाया गया तो १५ मिनट बाद यन्त्र टूटकर कोयलों पर गिर गया और पारद उड़ गया। इस प्रकार शेष पारद का नुकसान हुआ। अब हमारे पास १३५ तोला पारद रहा।

४ पातन संस्कार

ऊर्ध्व, अधः तथा तिर्यक् भेद से पारद का पातन संस्कार ३ प्रकार का है।

(क) ऊर्ध्वपातन

आयुर्वेदप्रकाश ग्रन्थ से यह क्रिया की गई—

१३५ तोला पारद में तूतिया २० तोला, स्वर्ण-माक्षिक २० तोला डालकर घुटाया। जब पारद तुत्थ वगैरा में अदृश्य होगया तब नीबू का रस डाल कर घोटते गये। इस प्रकार २० दिन बराबर घुटाया। इन २० दिनों में करीब ४। सेर नीबू रस लगा। नीबूरस में घुटने के पश्चात् १ सप्ताह घृतकुमारी स्वरस में घुटाई हुई।

निम्बु तथा घृतकुमारी में घोटने के पश्चात् पारद को सुखा कर डमरूयन्त्र से पारद निकाला गया। ४ बार डमरूयन्त्र में पारद को उत्थापन करने से १३५ तोला के स्थान पर १२७ तोला पारद प्राप्त हुआ।

(ख) अधः पातन

रसकामधेनु, आयुर्वेदप्रकाश तथा पारदसंहिता के बताये हुए विधान से उन सब ग्रन्थों में निर्दिष्ट सम्पूर्ण औषधियां एकत्रित कर अधःपातन निम्न प्रकार से किया गया।

तारीख १६-२-५४ को १२७ तोला पारद में सज्जी ४ तोला, यवक्षार ४ तोला, हींग ४ तोला, समुद्रनमक

४ तोला, सैंधानमक ४ तोला, विड़नमक ४ तोला, कालानमक ४ तोला, साम्भरनमक ४ तोला, चित्रक ४ तोला, राई ४ तोला, हरड़ ४ तोला, बहेड़ा ४ तोला, आमला ४ तोला, कौंच के बीज ४ तोला, सोंठ ४ तोला, मिर्च ४ तोला, पीपल ४ तोला, संहजने की छाल ४ तोला इन सबको चूर्ण कर पारद से आधा यानि ६५ तोला चूर्ण डालकर घुटाया और नीम्बु का रस देकर खड़ी के समान लेप तैयार किया गया। पारद को लेप के समान बनाकर दो मिट्टी की हंडिया लेकर एक हंडिया के अन्दर औषध मिश्रित पारद का लेप कर सुखाया गया। दूसरी हंडिया को आधा पानी से भर कर पारद वाली हंडिया उस पर लगाकर सन्धि बन्द करदी गई।
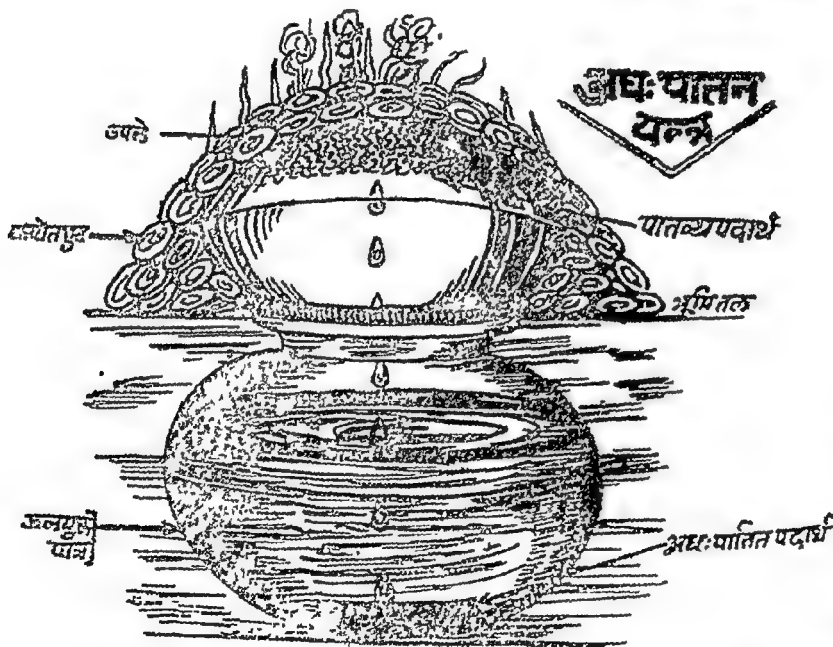
पृथ्वी में गढ्ढा खोद कर पानी वाली हंडिया उसमें रख दी गई और शेष भाग हंडिया का मिट्टी से पूर्ण कर दिया और पारे वाली हंडिया पर ३ सेर कोयलों की आंच दी गई। इस क्रिया को २ बार करने पर १२७ तोला पारद का १०२ तोला पारद प्राप्त हुआ। इस अधःपातन में २५ तोला पारद कम हुआ।

(ग) तिर्यक्पातन

तारीख ३०-३-५४ को १०२ तोला पारद का तिर्यक्पातन कविराज प्रतापसिंह जी रसायनाचार्य के विधान से निम्न प्रकार किया गया। वे यहां देखने आये थे।

विधि—जिस लोहे की शीशी में पारद आता है उस लोहे की बोतल पर १ पाइप लगाकर तिर्यक्पातन यन्त्र बनाया। यानि आधा इञ्ची पाइप को तिर्छा कर बोतल के मुंह में फिट किया गया। इस लोहे की शीशी के तिर्यक्पातन-यन्त्र में २०-२० तोला पारद डाल-डाल कर तिर्यक्पातन किया तो पहली बार पारद का पातन हुआ और इस क्रिया में २० तोला पारद का और नुकसान हुआ। शेष पारद को इस यन्त्र में डालकर तिर्यक्पातन किया जिससे ७२ तोला पारद प्राप्त हुआ।

५ बोधन

२० तोला सैंधा नमकको जल में घोट कर नमक का पानी तैयार किया और एक हंडिया में पारद डाल कर ऊपर यह नमक का जल भर दिया और हंडिया का मुंहबंद कर सन्धि बन्द करदी गई। इस हंडिया को पृथ्वी में दबा कर ऊपर बालू भर दी गई और बालुका पर २० कंडों की आंच प्रतिदिन देते गये। इस प्रकार १ सप्ताह तक नित्य २० कंडों की आंच देकर पारद निकाला गया। पारा पूरा ७२ तोला निकल आया।

६ नियमन

७२ तोला पारद में लहसुन, इमली, सैंधानमक, असगंध, चित्रक, नागरमोथा, राई, विदारीकन्द, गंधनाकुली, नीम के पत्ते, नागफणी, थूहर इन ११ चीजों का १०-१० तोला कुल ११० तोला चूर्ण को

चतुर्गुण जल में क्वाथ कर यह क्वाथ तथा कांजी डेग में भर दी गई और १ गज डबल जीन के कपड़े की पोटली बनाकर उसमें पारद डाला और ३६ घंटा यानि ३ दिन दोलायन्त्र से स्वेदन दिया।

यह संस्कार आयुर्वेदप्रकाश, रसकामधेनु, पारदसंहिता, रसराजसुन्दर वगैरा ग्रन्थों के सब द्रव्य एकत्रित कर किया गया।

२०० तोला पारद का ७२ तोला पारद संस्कार करने के पश्चात् रहा।

संस्कृत पारद पर गन्धक-जारण

अब हम बुभुक्षित करने के वास्ते थोड़े थोड़े पारद पर क्रिया करने लगे।

२ तोला संस्कृत पारद पर षड्गुण गन्धक जारण निम्न प्रकार से किया—

पृथ्वी में गढ़ा खोद कर उसमें एक हंडिया रखी तथा हंडिया में पानी इतना भरा गया जो पारद के प्याले से १ सूत नीचे रहा फिर १ लोहे के प्याले में २ तोला संस्कृत पारद डालकर इस पर आधा तोला गन्धक का चूर्ण डाला और प्याले पर १ कड़ाही रख कर हंडिया तथा प्याले की सन्धि बन्द करदी गई और कड़ाही में १ सेर कोयले की आंच देते रहे जिससे प्याले में गंधक जल जाता था। इस प्रकार ३४ दिन में १२ तोला गंधक जलाया।

इस प्रकार गंधक-जारण करने पर पारद अपने रूप में ही रहा और कज्जली नहीं हुआ तथा २ तोला का १ तोला पारद गंधकजारण करने पर शेष रहा।

गन्धकजारण की यह विधि श्रेष्ठ रही इससे पारद चूर्ण रूप में नहीं हुआ। यह विधि इसलिये की गई कि इस विधि से कई स्थानों पर बुभुक्षित होना लिखा है। उपरोक्त गन्धकजारण किये हुए १ तोला पारद में ४ रत्ती स्वर्ण देकर घुटवाया किन्तु तोलने पर पारद में स्वर्ण का वजन पाया गया। अतः इनका चन्द्रोदय बनाने को इस स्वर्ण मिश्रित पारद में १ तोला गन्धक डालकर कज्जली बनाई।

एक बिजली के बल्ब पर कपरमिट्टी कर उसमें उक्त २ तोला कज्जली भर कर वालुका यन्त्र से चन्द्रोदय बनाने को चढ़ाया। ७ घण्टा आंच देने पर तीन माशा पारद बल्ब के गले पर जमा हुआ मिला जो हलके लाल रङ्ग का था और बल्ब के नीचे १० माशा काले रङ्ग की भस्म रही। यह भस्म परीक्षा के लिये रखी गई थी कि इसमें स्वर्ण जारण हुआ या नहीं। किन्तु यह भस्म खो गई और परीक्षण पूर्णरूप से न हो सका। जो बल्ब के ऊपर लगा था उसमें स्वर्ण प्रतीत नहीं होता। यही ख्याल है कि पारद बुभुक्षित नहीं हुआ।

अब बुभुक्षित करने की दूसरी क्रिया चालू है।

पारदबुभुक्षितीकरण

आठ संस्कार किये हुए पारद में से २० तोला पारद बुभुक्षित करने के लिये डाला। उसमें निम्न औषधियों का चूर्ण डाल कर निम्न रसों में खरल किया। यह औषधियां सब रसग्रन्थों के आधार पर डाली गई।

हींग २ तोला, कलिहारी २ तोला, मिर्च २ तोला, पीपल २ तोला, सोंठ २ तोला, सहंजना २ तोला, सैंधानमक २ तोला, नोसादर २ तोला, यवक्षार २ तोला, राई २ तोला, लहसुन २ तोला, चित्रक २ तोला, विष २ तोला डालकर तप्त खरल में ५ घण्टा नित्य घोटते गये और निम्न चीजों का रस या क्वाथ देते गये।

घृतकुमारी ४ दिन, आकपत्र का रस ४ दिन, धतूरा रस ५ दिन, कलिहारी क्वाथ ४ दिन, कनेर का क्वाथ ३ दिन, नीम्बु का रस ३ दिन, अहिफेन ५ तोला पानी में घोलकर इस जल से ३ दिन, इस प्रकार इनका रस देकर २७ दिन तप्त खरल में घुटाया। फिर गरम कांजी से पारद को धोकर निकाला गया। २० तोला का १६ तोला पारद प्राप्त हुआ। इसमें से १ तोला पारद में १॥ माशा स्वर्ण देकर घुटाया फिर १ तोला गन्धक देकर कज्जली बनाई। इस

कज्जली को एक पाइरेक्स के फ्लास्क में रख कर ५ घण्टा कोयले की आंच देकर चन्द्रोदय बनाया तो स्वर्ण साथ नहीं उड़ा।

नोट—१ तोला में १॥ माशा स्वर्ण डालकर तोला गया तो तोल में भी बढ़ गया और कपड़े से छानने पर स्वर्ण पारद से कुछ पारद मिला पृथक् होगया। यदि बुभुक्षित होजाता तो वजन भी नहीं बढ़ता और वस्त्र में छानने पर पारद से स्वर्ण पृथक् भी न होता। तथा चन्द्रोदय बनाते समय पारद के साथ स्वर्ण भी उड़ता किन्तु तीनों परीक्षाओं से बुभुक्षित होने के कोई चिह्न न मिले। अब हम चाहते हैं कि भारतवर्ष के किसी भी वैद्य ने पारद को बुभुक्षित किया हो तो वह अपना अनुभव लिखे तो आगे उसी प्रकार किया जावे। हमारा विचार विषों उपविषों में मर्दन कराने का है। पर सबका मिलना कठिन है और परिणाम का पता नहीं। किसी सज्जन ने ऐसा किया हो तो अवश्य लिखें।

ग्राहक नम्बर

पत्र-व्यवहार करते समय अवश्य लिख दिया कीजियेगा।

(पृष्ठ ७८८ का शेषांश)

करते हुए चरक ने कहा—

"मूलानि पुष्पाणि च वारिजानि—
प्रलेपनं पुष्करणीमुदश्च"

'वाहे प्रशस्ता। सुशीताः पद्मोत्पलानां च कलापवाताः सरित् ह्रदनां हिमवद्दरीणां चन्द्रोदयानां कमलाकराणाम् मनोनुकूलाः शिशिराश्च सर्वाःकथाः सरक्तं शमयन्ति पित्तम्।

प्रमेह चिकित्सा में भी—

"व्यायाम योगैर्विविधैः प्रगाढ़ैः उद्वर्त्तनैः स्नानजलावसेकैः सेव्यत्वगेलागरुचन्दनाद्यैर्विलेपनैश्चाशुनसन्ति मेहाः"
च० चि० ६-५०

इस प्रकार के अनेक सन्दर्भ उद्धृत कर सकते हैं। चरक ने 'प्रकृति' के और सूक्ष्म तत्वों को हमें बताया है जिनकी गहराई तक प्रकृति चिकित्सा के चिन्तक अभी नहीं पहुँचे हैं। दोष प्रकृति भूत प्रकृति सात्म्य आदि विषय 'प्रकृति' की दृष्टि से अत्यन्त महत्व रखते हैं। इन विषयों का अध्ययन निसर्गोपचार की प्रगति के लिये सहायक होगा।

ज्ञान बुद्धिप्रदीपेन यो नाविशति तत्ववित्
आतुरस्यान्तरात्मानं न स रोगांश्चिकित्सति

भेषज सूक्ष्मीकरण का चिकित्सा में महत्व

लेखक—कविराज डॉ० गौरीशंकर श्रीवास्तव

आज विज्ञान का युग है। प्रत्येक दिशा में नवीन अनुसन्धान एवं आविष्कारों का बोल-बाला है। मनुष्य की बुद्धि सूक्ष्म से सूक्ष्मतर होती चली जाती है। पोटली में रुपए बांधकर रखने की अपेक्षा बैंक की एक पास-बुक ही यथेष्ट समझी जाती है। वस्तुओं के स्थूल और भरकम आकार के स्थान पर अब सूक्ष्म अणुओं का प्रयोग प्रारंभ होगया है। बड़ी बड़ी मशीनगनों और विस्फोटक बमों के स्थान पर अणुबम की श्रेष्ठता आज विश्वविख्यात है। इन अणुओं का प्रयोग ध्वंसात्मक न रहकर निर्माणात्मक क्षेत्रों में करने के लिये वैज्ञानिक प्रयत्नशील हैं जो मानव सभ्यता और विकाश में सहायक सिद्ध होगा।

रोगों की चिकित्सा करने में भी अणु-परिमाणु के प्रयोग प्रारंभ हो चुके हैं। दवाओं की लम्बी लम्बी मात्राएं, चूर्णों की वरिष्ट बुकनियों तथा आसव और अरिष्टों के सुलम्ब घूंटों के स्थान पर दवा के केवल सूक्ष्मातिसूक्ष्म कुछ परमाणु ही देकर तीव्र और प्राचीन रोगों की सफल चिकित्सा की जाने लगी है। इस प्रकार की चिकित्सा पाश्चात्य विश्व में बड़ी तेजी से स्थान ग्रहण कर रही है। इस सूक्ष्मीकरण का प्रयोग उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्व में जर्मनी के प्रसिद्ध डाक्टर सेमुअल हेनीमन ने प्रारंभ किया था जिसमें उन्हें यथेष्ट सफलता मिली और तत्कालीन सभी चिकित्सकों को उनका लोहा मानने के लिए बाध्य होना पड़ा।

औषधि की व्याख्या

संसार की सभी चिकित्सा पद्धतियों में प्रकृति में पाए जाने वाले द्रव्यों को उनके भेषज गुण के अनुसार औषधियों के रूप में प्रयुक्त किया जाता है। औषधि की व्याख्या आयुर्वेद में इस प्रकार की गई है।

"वैद्यो व्याधि हरेद्येन तद्द्रव्यं प्रोक्तमौषधम्"

अर्थात् वैद्य जिस पदार्थ से रोग को नष्ट करता है वह पदार्थ औषधि कहलाता है।

उक्त वाक्य से स्पष्ट है कि औषधि का मूल गुण पदार्थ न होकर उसकी रोगनाशक शक्ति ही है फिर उस पदार्थ की कुछ भी संज्ञा क्यों न हो। और यदि उसमें रोगनाशक शक्ति नहीं है तो केवल संज्ञा से ही उसके औषधि होने का बोध नहीं होता।

द्रव्यों के गुण

प्रत्येक द्रव्य में रस विपाक वीर्य्य और प्रभाव भेद से चार गुण वर्तमान रहते हैं जिनमें उसकी भेषज शक्ति अन्तर्हित रहती है। वह द्रव्य कभी अकेला और कभी दूसरे के संयोग के साथ औषधि रूप में प्रयुक्त होता है। परस्पर विरुद्ध गुण वाली औषधियों का संयोग होने से उनमें रस विपाकादि गुणों की न्यूनाधिकता हो जाती है। क्योंकि रस को विपाक जीत लेता है रस और विपाक को वीर्य्य जीत लेता है; तथा रस विपाक एवं वीर्य्य को प्रभाव जीत लेता है। इस प्रकार के संयोग में जो औषधि रस विपाक वीर्य्य और प्रभाव में बलिष्ठ होती है वह निम्न औषधि के गुणों को दबाकर अपना ही प्रभाव अक्षुण्ण रखती है।

विरुद्ध गुण संयोगे भूयसाल्पे हि जीयते।
रसं विपाकस्तो वीर्यं प्रभावस्तान्यपोहति॥

—सुश्रुत

इस लिए विरुद्ध गुण वाले द्रव्यों का प्रथम तो संयोग किया ही नहीं जाता और यदि आवश्यकतावश करना ही पड़े तो बहुत विचारपूर्वक।

द्रव्यों का सूक्ष्मीकरण

द्रव्यों में निहित रस विपाक वीर्य्यादि गुणों को प्रकट करने के लिये उसे स्थूल अवस्था से सूक्ष्म करना आवश्यक है। आयुर्वेद में चूर्ण, कल्क, क्वाथ आदि के प्रकरण का इसी लिये महत्व है। द्रव्य को जितना अधिक सूक्ष्म किया जाएगा वह उतना ही तीक्ष्ण प्रभावोत्पादक बनेगा। "मर्दितं गुण वर्धितं" का मूल सिद्धान्त इसी को लेकर चलता है। किन्तु यह सूक्ष्मीकरण परिमाणुओं तक ही सीमित रहना चाहिए। परमाणु (Molecule) उस द्रव्य का सूक्ष्म से सूक्ष्म वह अंश है जिसमें उसके सम्पूर्ण भेषज गुण वर्तमान रहें। परमाणु की व्याख्या शार्ङ्गधर ने इस प्रकार की है।

जालान्तर्गते भानौ यत् सूक्ष्मं दृश्यते रजः।
तस्य त्रिंशत्तमोभागः परमाणु स उच्यते॥

अर्थात झरोखे से पड़ने वाले सूर्य किरण में जो सूक्ष्म रजकण दिखाई देते हैं उस कण के तीसवें भाग को परमाणु कहते हैं।

परमाणु से अणु

जब इन परमाणुओं का किसी निरोषध द्रव्य में मिलाकर सूक्ष्म से सूक्ष्मतर किया जाता है तो वह अणुओं में विभक्त हो जाता है। यह अणु स्वतंत्र अस्तित्व एवं परमाणु के विपरीत गुण वाला होता है। यह भारतीय तत्वज्ञान का एक मोटा सिद्धान्त है। दूसरे शब्दों में इसे इस प्रकार कह सकते हैं कि जब किसी द्रव्य के परमाणु को अणुओं में विभक्त करते हैं तो वे अणु द्रव्य के विपरीत भेषज गुण युक्त हो जाते हैं। उदाहरण के लिए गन्धक को लीजिए, गन्धक में निम्न भेषज गुण होते हैं।

गन्धकः कटुकास्तिक्तो वीर्योष्ण स्तुवरः सरः
पित्तलः कटुकः पाके जन्तु कण्डू विसर्पजित्
हन्ति कुष्ठ क्षय प्लीहा कफवातान् रसायनः

अर्थात गन्धक चिरपिरा, कडुवा, उष्णवीर्य, कसैला, दस्तावर, पित्तकारक, पाक में चरपरा और रसायन है। खुजली, विसर्प, कृमि, कोढ़, क्षय, प्लीहा, कफ और वात को नष्ट करता है।

गन्धक का उक्त भेषज गुण उसके परमाणुओं तक अक्षत रहेगा। किन्तु ज्योंही परमाणुओं का विभाजन अणुओं में किया जाएगा वहीं वे अणु विपरीत गुण वाले होजाएंगे। इसका यह अर्थ हुआ कि यदि स्वस्थ व्यक्ति पर इन अणुओं का प्रयोग किया जाय तो वे खुजली, विसर्प, कृमि, कोढ़, क्षय, प्लीहा और कफ-वातजन्य अनेक व्याधियां उत्पन्न करने में समर्थ होंगे और यदि उक्त बीमारियाँ शरीर में हों तो उनका शमन भी यही गन्धक अणु कर देंगे।

आज के चिकित्सा-मनीषी औषधियों के इस सूक्ष्मीकरण में काफी विश्वास करने लगे हैं। ग्रीक्स-वाल्ड यूनीवर्सिटी के प्रोफेसर शूल्टज् ने मरकरी क्लोराइड (Mercury chloride) के भिन्न-भिन्न शक्ति के अनेक घोल तैयार किए और उनमें बीस्टस् (Beasts) के जीवित कीटाणु छोड़कर निम्न परिणाम निकाले—

(क) गाढ़े घोल में डाले गए कीटाणु शीघ्र मर गए।

(ख) हल्के घोलों के कीटाणु जीवित तो रहे किन्तु निर्बल पाए गए;—यानी उनकी जीवनी शक्ति क्षीण होगई।

(ग) अत्यन्त हलके घोलों में कीटाणु बढ़कर असंख्य होगए। उक्त उदाहरण से यह स्पष्ट है कि औषधि की मात्रा जितनी हलकी होगी उतनी ही वह शरीर कोषों पर आशुगुणकारी क्रिया करेगी एवं जीवनी शक्ति की वृद्धि करेगी। ऐलोपैथी की हम बात नहीं कहते। लोग कहते हैं कि उसे विज्ञान का समर्थन प्राप्त है। इसलिए वह इस दिशा में क्या कहता है और क्या नहीं सो उन्हीं को जानने दो जिनका काम इसे जानने का है। हम तो आयुर्वेदिक की बात आपसे कहते हैं जो स्पष्ट कहता है—

प्रशस्त देशे सञ्जातं प्रशस्तेऽह्नीन चोद्धतम्
अल्पमात्रं बहुगुणं गन्धवर्ण रसान्वितम्
दोषघ्नं ग्लानिकर मधिकं न विकारयत्
समीक्ष्यकाले दत्तं च भेषजं स्याद् गुणावहम्

—भावप्रकाश।

अर्थात्—श्रेष्ठ देश में उत्पन्न हुई, शुभ दिन में उखाड़ी गई, अल्प मात्रा में, विशेष गुण करने वाली, गन्ध वर्ण और रसयुक्त दोषों को नष्ट करने वाली औषधि यदि विचारपूर्वक समय पर दी जाए तो गुणकारक होती है।

जहां ऐलोपैथी की सेरों दवा गले की राह पेट में पहुँचाने पर लाभ नहीं दिखता वहां आयुर्वेदिक रसों की कुछेक चावल मात्रा ही कायाकल्प के लिए काफी होती है। मकरध्वज और हेमगर्भ के प्रभाव आज भी आयुर्वेद जगत में जीवित हैं।

अणु-चिकित्सा का प्रयोगात्मक रूप

अब हमें यह देखना है कि इन अणुओं का चिकित्सा क्षेत्र में कौनसा प्रयोगात्मक रूप सम्भव है? डाक्टर हेनीमन ने इसका प्रयोग सदृश्य चिकित्सा (Homeopathy) के रूप में किया है। भले ही हम भारतीयों की दृष्टि में उनका यह विचार मौलिक न हो। किन्तु सूक्ष्म सिद्धान्त रूप में पड़े हुए हमारे उस विचार को इतनी व्यापकता और विस्तार देने का श्रेय हम उस महात्मा को दिए विना न रहेंगे जिसने पाश्चात्य विश्व को हमारे अनादि प्राकृतिक सिद्धान्तों का दिग्दर्शन कराया।

हेतु व्याधि विपर्यस्त विपर्यस्तार्थकारिणाम्
औषधान्न विहाराणाम् उपयोग सुखावहम्
विद्यादुपशय व्याधेः सहि सात्म्यमितिस्मृतः
विपरीतोऽनुपशयो व्याध्य सात्म्याभि संज्ञितः
—माधव।

अर्थात् चिकित्सा पद्धतियों के दो भेद हैं—

१—सात्म्य-यानी सदृश्य।

२—असात्म्य-यानी विपरीत।

इन्हें फिर तीन-तीन भागों में इस प्रकार बांटा है।

सदृश्य—१-हेतु सदृश्य २-व्याधि सदृश्य ३-हेतु-व्याधि उभय सदृश्य।

विपरीत—१-हेतु विपरीत २-व्याधि विपरीत ३-हेतु-व्याधि उभय विपरीत।

उक्तप्रकरण से स्पष्ट है कि सदृश्य चिकित्सा कोई नवीन विचारधारा (Theory) न होकर आयुर्वेदिक दृष्टि से बहुत प्राचीन और व्यवहृत प्रणाली है। अतिसार पर विरेचक औषधियां तथा कफ व्याधि पर कफ-निस्सारक प्रयोग सर्व-विदित हैं। साथ ही ग्राही और कफ-शामक प्रयोग भी अपरिचित नहीं हैं।

जब हम रोग के लक्षणों पर दृष्टि डालते हैं तो मालूम होता है कि शरीर को कुछ ऐसे विपरीत भेपज गुणयुक्त द्रव्यों की आवश्यकता है जिसके द्वारा शरीर का दोष्य-दूष्य शमन किया जा सकता है। जैसे कफज्वर में सोंठ आदि उष्ण औषधि और अतिसार में पाटला आदि विपरीत भेपज। वस्तु इन्हीं द्रव्यों का यदि आणुविक सूक्ष्मीकरण किया जाए तो सोंठ के अणु कफोत्पादक और पाटला के विरेचक गुणयुक्त होजाएंगे जैसा कि हम ऊपर स्थापित कर चुके हैं। चूँकि शरीर के लिए इन विकृतियों में सोंठ और पाटला की ही आवश्यकता है आयुर्वेदिक वैद्य इनका सूक्ष्मीकृत क्वाथ, चूर्ण आदि देगा और सदृश्य-चिकित्सक व्याधि सादृश्य के अनुरूप इन्हीं औषधियों की अणु वटिकाऐं। भेपज द्रव्य में कोई अन्तर न होकर केवल औषधि-निर्माण का अन्तर मात्र है। ऐसे अनेक उदाहरण दिए जा सकते हैं। जहां शरीर को सोहागा (Borax) की आवश्यकता है वहां सोहागा ही दिया जायगा। उसका काम कुचले से कोई भी चिकित्सक नहीं चला सकता।

इस प्रकरण से यह स्पष्ट है कि यदि हमें भेषजों के अणुओं का प्रयोग करना अभीष्ट हो तो चिकित्सा का स्वरूप सात्म्य (सदृश्य) ही रखना होगा; और दूसरा निष्कर्ष यह भी स्पष्ट है कि सदृश्य तथा असदृश्य विधान वास्तव में एक ही चीज है।

यह सब कुछ लिखने से हमारा तात्पर्य यही है कि आयुर्वेद की अवनति के मूलकारण दो ही है—

(१) उचित सूक्ष्मीकरण का अभाव।

(२) शक्तीकरण की क्रिया का अनास्तित्व।

इस दिशा में चिकित्सक और निर्माणशालाऐं दोनों ही जागरूक नहीं हैं जिसका परिणाम हमारे सम्मुख है। यदि दोनों अपने-अपने कर्त्तव्य का समुचित निर्वाह करें तो हमें विश्वास है कि आयुर्वेद संसार को झुकाने में समर्थ हो सकता है।

रतिज रोग (VENERIAL DISEASE)

(उपदंश–फिरङ्ग–Syphilis)

लेखक—डा० श्रीश्यामदास प्रपन्नाश्रमी, आयुर्वेदाचार्य।

उपदंश व फिरङ्ग प्रायशः एक ही श्रेणी की व्याधि और पुरुष-शरीर में ही अधिक उत्पन्न होने वाला है। इसका अधिकार स्थान पुरुषों के शिश्न हैं। यह पुरुष-शरीरगत व्याधि होने के कारण स्त्रियों में इसका आविर्भाव नहीं होता ऐसा कहना भी अनुचित होगा। आयुर्वेदज्ञ महाजनों की उक्ति;

"हस्ताभिघातान्नखदन्तघातादधावनादत्युपसेवनाद्वा।
योनिप्रदोषाच्च भवन्ति शिश्ने पञ्चोपदंशा विविधोपचारैः॥"

हस्त-नख तथा दांतों के आघात से क्षत उत्पन्न होने से, मैथुनोपरान्त गुप्तांगों को उचित रीति से न धोने से, अस्वाभाविक मैथुन जैसे–हस्तमैथुन, गुदा-मैथुन तथा पशु-मैथुन आदि के आदी बन जाने से, अति मैथुन, दूषित योनि वाली स्त्री-प्रसंग, रोगिणी और कठोर केशा स्त्री-सहवास, बहु-चारिणी-गमन, शुक्र तथा मूत्र का वेगधारण आदि-आदि कारणों से शरीरस्थ धातुओं का विकार अवश्य ही होजाता है और इसी से ही वातज, पित्तज, कफज, त्रिदोषज और रक्तज भेद से पांच प्रकार के उपदंश लिंग में उत्पन्न होते हैं। लिंग में दोषों का संघात होने के साथ ही चाहे उसमें क्षतादि दिखाई दे या नहीं शोथ का होना स्वाभाविक है।

प्रकृत उपदंश की विशेषता यह है कि स्त्रियों को इसका आक्रमण बहुत कम ही देखने में आता है। आश्चर्य की बात यह है कि उपदंश से ग्रसित पुरुषों से सहवास करती हुई भी स्त्रियां इसके चंगुल से छुटकारा पा सकती हैं।

उपदंश के सामान्य लक्षण—

जिस उपदंश का क्षत सूची-भेदन जैसी पीड़ा उत्पन्न करता है वह वातज और जिसमें फुंसियां वाहयुक्त पीले के मवाद से भरी हुई हों अथवा आरक्तिम शोथयुक्त देखने में मांस के सदृश हो वह पित्तज तथा जिसमें कण्डू-युक्त शोथयुक्त आकार में वृहत् श्वेताभ घन युक्त होते हों वह कफज जानना चाहिए।

उपदंश के व्रण जो अनेक प्रकार के स्रावयुक्त और तरह-तरह की यन्त्रणा-पीड़ा देने वाले हैं वह त्रिदोषज और जिनका वर्ण कृष्णाभ व शोणित स्रावयुक्त फिर उसके साथ ज्वर को उत्पन्न करने वाला होता है, वह रक्तज समझना चाहिए।

उपदंश के व्रण जो अनक प्रकार के स्राव युक्त और तरह-तरह की यन्त्रणा-पीड़ा देने वाले हैं वह त्रिदोषज और जिनका वर्ण कृष्णाभ व शोणित स्रावयुक्त फिर उसके साथ ज्वर को उत्पन्न करने वाला होता है, रक्तज समझना चाहिए।

असाध्य उपदंश के लक्षण—

"प्रशीर्णमांसं कृमिभिः प्रजग्धं मुष्कावशेषं परिवर्जनीयम्।"

उपदंश के आक्रमण से जिस शिश्न का मांस गलित हुआ हो अथवा उसके मांस को कीड़ों ने खालिया हो, केवल अण्डकोष ही शेष रह गया हो, ऐसे उपदंश के रोगियों की चिकित्सा चतुर वैद्य को कभी भी नहीं करनी चाहिए।

उपदंश में उत्पन्न होने वाला क्षत चाहे यह दूषित योनि-संक्रमण से हुआ हो या अन्य किसी भी कारण से हो, "कोमल-क्षत"–Soft chancre कहलाता है। इस क्षत के अन्दर पहले तरल रस बाद में घन पूयोत्पत्ति हो जाती है फिर वेदना यन्त्रणा भी इसमें सदैव वर्तमान रहती है। उपदंश की एक और भी विशेषता है कि वक्षण-सन्धियों में लसिका-ग्रन्थियों का प्रवाह जिसे गिल्टी उभर आना कही जाती है।

फिरंग के साथ उपदंश के कतिपय विशिष्ट विभेदात्मक लक्षण देखने में आते हैं। इसीसे इन दोनों का स्वतन्त्र रूप से निदान जानना सम्भव होता है। यह पार्थक्य पृथक रूप से फिरंग का विस्तृत वर्णन करने पर प्रदर्शित होगा।

फिरंग—

फिरंग रोग अत्यन्त संक्रामक है। इससे आक्रान्त स्त्रियों के सहवास से पुरुषों को इसका शिकार बनना पड़ता है। पाश्चात्य निदानानुसार Treponema pallidum नामक एक प्रकार के कीटाणुओं के संक्रमण के परिणाम यह रोग मनुष्य का दिवाला निकाल देता है।

प्राथमिक रूप से यह रोग दो भागों में विभक्त है जैसे–(१) स्वोपार्जित (Acquired) और (२) वंश-परम्परागत प्राप्त (Congenital)

फिरंग रोगग्रस्त रमणी के साथ सहवास करने से पुरुष के लिंग-चर्म या लिंग-मणि के कोई अंश अगर विच्छिन्न हुआ हो अथवा मैथुन करने वाला पुरुष-लिंग के कहीं किसी प्रकार क्षतयुक्त रहा हो तो यह तीव्र विष उसके शरीर में तत्काल ही संक्रमित हो पड़ता है। केवल गुप्तेन्द्रिय के सम्पर्क से ही इसका संक्रमण हो यही नहीं, प्रत्युत इसकी भीषण कार्यवाही शरीर के 'नवद्वार' द्वारा तो हो ही सकती है शरीर में कहीं पर क्षतादि वर्तमान हो वहीं से यह शोनित–सम्पर्क द्वारा सर्व शरीर को बिगाड़ने में बड़ा ही ताकतवर है। इसके संक्रमण का क्रम पुरुष से स्त्री और स्त्री से पुरुष में एक ही ढंग से चलता रहता है। मनुष्य शरीर में जब इसका संक्रमण फैल जाता है तो चार प्रकार की परिस्थितियों में इसका 'रोग-राज्य' प्रवर्तित होता है। राज्य-विस्तार की प्रथम घोषणा यानी-पहली दशा—

दूषित योनि-संगम के फलस्वरूप इसका विष शरीराभ्यन्तर में शोषित होने के कई दिन बाद ही लिंग तथा अन्यत्र एक-आध उद्भेद निकल आता है और उत्तरोत्तर बढ़ता ही जाता है। पूर्णरूप से बढ़ने के साथ यह तरल रस के रूप में बाद में पूयः के रूप में परिवर्तित होजाता है। इसी समय व्रण के ऊपर का या आस-पास का चमड़ा आसानी से ही उखड़ जाता है और क्षत का रूप ले लेता है। यह क्षत साधारणतया कठोर होता है। इसलिए इसे 'कठिन-क्षत'–Hard Chancre कहा जाता है। स्त्रियों को अगर यह आक्रमण करता है तो उनके वृहत भगोष्ठों के अन्दर ही इसका 'प्रथम-दर्शन' उपलब्ध होगा।

इसका संक्रमण पूर्णरूपेण होते ही रोगी के वंक्षण-सन्धि यानी रागों में यह अपना राज्य विस्तार तत्परता के साथ करता रहता है। यानी यह समझिए कि इधर मूल-संक्रमण की जगह पर परिपूर्ण परिवर्तन तो कर ही देता है दूसरी जगह रागों पर भी करामात जारी करने में पीछे नहीं हटता। दोनों रागों में ही गिल्टी पैदा कर देता है जो न तो पकती ही है और न उनमें मवाद ही बनता है।

दूसरी दशा—

ऐसी हालत में ज्वर और उसके साथ-साथ रक्ताल्पता उपस्थित होजाती है। इसी समय शरीर के विभिन्न स्थानों में पिड़िकायें निकल आती हैं। ये पिड़िकायें ही दूसरी दशा के विशेष सूचक लक्षण हैं।

तीसरी दशा—

यह दशा दूसरी दशा के बीत जाने के कई महिनों से लेकर कई वर्ष के अन्दर लगातार चल सकती है। ऐसी दशा में शरीर के "सप्तधातु" यानी रस, रक्त, चर्म-मांस, अस्थि-मज्जा आदि सांघातिक रूप से विकृत होने लगती हैं। बहुत से रोगियों की नासास्थि का ध्वंस भी होजाता है।

चौथी दशा—

यह है रोग की अन्तिम परिणति। ऐसी हालत में स्नायु-संस्थान सर्वतोभावेन आक्रान्त हो पड़ता है। इसके फल-स्वरूप सिरःपीड़ा, मानसिक विकृतियां, स्नायुशूल, शारीरिक गठन-विकृति आदि फिर पंगुता, पक्षाघात जैसी दयनीय पीड़ा भी बन सकती है।

उपरोक्त दशाओं का वर्णन यहां और भी स्पष्ट रूप से किया जाय तो निबंध का कलेवर बढ़ जायगा इसी लिए उनमें से कुछ खास बातों का उल्लेख करता हूं।

स्वोपार्जित फिरंग के कठिन क्षतों का निदान जानने का सहज उपाय —

कठिन क्षतों में—यह एक से अधिक नहीं उत्पन्न होता और क्षत के चारों ओर पत्थर के समान कठोर जो रहता ही है फिर उसके आस-पास की ग्रन्थियां भी कठोर प्रतीत होती है। क्षत में ज्वाला-यन्त्रणा भी नहीं रहती हैं। रसादि स्राव प्रायः नहीं ही होता। इसमें रोगों की ग्रन्थि बढ़कर बड़ी होजाती हैं। इस ग्रन्थि को दबाकर देखने से मालुम होता हैं कि इसके अन्दर कई ग्रन्थियां पृथक-पृथक रूप से एकत्रित होगई हैं। यह प्रायः हो चमड़े के नीचे रहती हैं।

कोमल क्षतों में—इसके द्वारा मानव शरीर में कोई विशेष हानि नहीं पहुंचती है क्योंकि यह स्थानिक पीड़ा है। उपदंश का विष रक्त के साथ संक्रमित होने के दो-तीन दिनों में क्षत उत्पन्न कर देता है। पहले-पहल आक्रान्त स्थान उछड़ा हुआ दिखाई देता और बाद में दो-तीन दिन के अन्दर वहां क्षत बन जाता है, क्षत के ऊपर एक सफेद सा पर्दा पड़ जाता है। उस पर्दा को हटा देने से उसके अन्दर लालिमा लिए हुए क्षत देखने में आता है। इस क्षत का स्वभाव बड़ा हो विचित्र होता है। धीरे-धीरे बढ़ता ही जाता और फिर उसके ऊपर व चारों ओर अंकुरोद्गम होता है जो सहज ही से ठीक नहीं होता है। क्षतोत्पत्ति के प्रारम्भ से पांच-सात दिन के अन्दर काफी मात्रा में पूयःस्राव होने लगता है। क्षत को यदि दबाया जाय तो मुलायम सा अनुभव होता है। इस क्षत का स्राव जहां कहीं भी लग जाता है वहीं फिर नवीन क्षतोत्पत्ति होने लगती है। कोमलक्षत एक से अधिक और कठिन क्षत केवल एक ही होता है।

यहां कहा जाता है कि प्राथमिक दशा तथा द्वितीय दशा अतीत होने के कुछ समय बाद ही तृतीय दशा आजाती है परन्तु इस नियम का व्यतिक्रम भी देखने में आता है यानी पहली दशा अतीत होते ही दूसरी व तीसरी दशा एक ही साथ रोगी-शरीर में प्रगट होजाती ह और दूसरी दशा के लक्षण-समूह याप्य होकर तीसरी दशा के लक्षणादि रोगी के जीवनान्तकाल-पर्यंत वर्तमान रह सकते हैं। फिर यह भी होसकता है कि कहीं कहीं दूसरी दशा के लक्षण समूह अप्रकटित ही रह जाते हैं।

दूसरी दशा में जो पिडिकायों का निर्गमन होता है उसके साथ अन्यान्य उद्भेदों का पार्थक्य यह है कि उपदंश में होने वाले उद्भेदों का वर्ण ताम्राभ और आस-पास के चमड़े का वर्ण और कुछ होता है। इसके उद्भेदों में खुजली प्रायः ही नहीं रहती। इसका निर्गमन स्थान हाथ-पैरों के तलुवे, तथा बालों की जड़ में, ओठों, छाती, माथा, गर्दन के पीछे और कंधों में होता है।

फिरङ्ग की दूसरी दशा में जब शरीर के वैधानिक तन्तुओं पर रोग विष का प्रभाव पड़ता है तो उससे होने वाले रोगों व विकृतियों के कई रूप यह हैं:—

(१) अस्थियों की आवरक झिल्लियों का प्रदाह (२) सन्धिवात व गठिया (३) अंडकोष प्रदाह (४) वीर्य-वाहिनी यानी रेतःरज्जु प्रदाह (५) अण्डकोषों के चर्मार्बुद (गामा) (६) खालित्य (७) रक्तहीनता तथा लसिका-ग्रंथियों का विकार आदि।

फिरङ्ग की तीसरी अवस्था में वैधानिक तन्तुओं के गम्भीरतम आक्रमण द्वारा निम्नलिखित विकृतियां आजाती हैं:—

(१) कोषार्बुद यह शरीरस्यन्तरस्थ वैधानिक तन्तुओं को विकृत करके स्थानीय कोषार्बुद की सृष्टि कर देती है। यह कभी-कभी पूयोत्पत्ति भी कर सकती है और न भी। इसका सबसे छोटा रूप मटर के सदृश और बड़ा श्रीफल यानी बेल (बिल्व) के समान भी होसकता है।

(२) अस्थि का क्षत (Caries) जो धीरे-धीरे उत्पन्न होकर अस्थियों को गला देता है।

(३) अस्थि का क्षय (Necrosis)—अस्थियों में गलाव पड़कर धीरे-धीरे उसका ध्वंस होता है। इसमें अस्थियों के टुकड़े भी निकल आते हैं।

(४) सौत्रिकार्बुद (Nedules)—अस्थि तथा अस्थि आवरणी झिल्लियों का प्रदाह होने से यह अर्बुद उत्पन्न होता है। जब इसमें पूयोत्पति होती है तभी अस्थियों पर आक्रमण [illegible] होजाता है और [illegible]

क्षत के रूप में आकर उसकी समाप्ति होने से स्थानिक संकीर्णता भी आसकती है। शरीरस्थ शिराओं तथा धम-नियों में यह अर्बुदोत्पत्ति हो जाये तो उसके घातक परि-णाम स्वरूप धमन्यर्बुद तथा शिरावरोध का होना कोई बड़ी बात नहीं।

यकृत, फुफ्फुस आदि में यह अर्बुद हो जाये तो उनके अन्दर सौत्रिकझिल्लियों की अभिवृद्धि तथा अन्यान्य उपसर्ग भी उपस्थित हो जाते हैं।

फिरङ्ग की तीसरी अवस्था के उपसर्ग-समूह अधिक दिन पर्यन्त स्थायी होने पर रोग का विष मस्तिष्क आदि को आक्रमण कर बैठता है और इसी से रोगी की मृत्यु भी होजाती है।

उपदंश से ग्रसित रोगी की रोग-यन्त्रणायें प्रायः सूर्यास्त काल से सूर्योदय काल तक यानी रात्रि में अत्यन्त बढ़ जाती हैं। यह भी इस रोग का खास निदान है।

ग्रन्थि-परीक्षा द्वारा फिरङ्ग का निदान

ओठों पर अगर "कठिन क्षत" हुआ तो रोगी की गले के दोनों ओर की गिल्टी अवश्य ही बढ़ जावेंगी। हाथों की अंगुलियों में कठिन क्षत उत्पन्न होजाय तो कोहनी के नीचे गिल्टी उतर आवेगी। जननेन्द्रियों में कठिन क्षत होने पर रागों में गिल्टी पैदा होना इस रोग की खास पहिचान है। इस हेतु कोई रोगी अगर अपने रोग को छिपाकर आपके पास इलाज कराने आता है और उसके रोग पर आपको कुछ संशय मालूम हो तो उल्लिखित स्थानों की ग्रन्थि-परीक्षा करके देखेंगे तो आपका निदान सही बैठेगा कि यह रोगी किसी समय फिरङ्ग रोग का शिकार बन चुका था क्योंकि मनुष्यों के शरीर में फिरङ्ग का विष प्रविष्ट होने से रोग यद्यपि साध्य अवस्था में रह जाय अथवा शान्त हो भी जाय परन्तु उसका आक्र-मण सूचक चिन्ह इन गिल्टियों को छोड़ जाता है।

फिरङ्ग और औपसर्गिक मेह (गिनोरिया) का प्रभेद

फिरङ्ग	औपसर्गिक मेह
(१) इसका रोग-विष मूत्रमार्ग द्वारा संक्रमित होता है।	(१) इसका रोग-विष जननेन्द्रिय की त्वचा विच्छिन्न होने पर उसी से प्रविष्ट होता है।
(२) इसमें शिश्नाभ्यन्तरीण मूत्रनाली के अन्दर गम्भीर क्षतोत्पत्ति होजाती है।	(२) इसमें शिश्नाग्रभाग अथवा उसके चर्म के नीचे क्षतोत्पन्न होता है।
(३) इसकी गिल्टियां अति शीघ्र ही पक जाती हैं।	(३) इसकी गिल्टियां उतनी जल्दी नहीं पकती हैं।
(४) इसमें गिल्टियां रागों की ग्रन्थि को आश्रय करके ही निकलती हैं।	(४) इसकी गिल्टियां वंक्षण-सन्धि के कुछ ऊपरी हिस्से में निकल आती हैं।
(५) इसमें पिडिकायें नहीं निकलती हैं।	(५) इसमें नाना प्रकार की पिडिकायें उत्पन्न होती हैं।
(६) मूत्रत्याग तथा पूयः का निर्गमन ज्वाला-यन्त्रणा के साथ होता है।	(६) किसी भी प्रकार का स्राव नहीं होता।
(७) इसमें "कठिन-क्षत" का होना देखने में नहीं आया।	(७) इसमें कठिन-क्षत होना अवश्यम्भावी है।
(८) इस रोग की अन्तिम दशा में अस्थि, मांस का क्षय होना तथा समय समय पर मूत्रमार्ग द्वारा दुग्धवत् किम्वा श्लेष्मल स्राव का होना अनिवार्य है।	(८) रोग की चरमावस्था में चर्म, मांस, अस्थि आदि का ध्वंस तो होता ही है उपरान्त इसके परिणाम-स्वरूप पक्षाघात आदि रोग भी उत्पन्न हो सकते हैं।

फिरङ्ग और उपदंश में पार्थक्य-निर्णय

फिरङ्ग	उपदंश
(१) यह अत्यन्त संक्रामक व्याधि है।	(१) संसर्गज दोष की प्रबलता इसमें नहीं के बराबर है।
(२) स्त्री और पुरुष दोनों ही को यह आक्रमण कर सकता है।	(२) यह रोग केवल पुरुष-शरीर को आश्रय करके होता है, स्त्रियों को यह प्रायः नहीं होता है।
(३) यह जननेन्द्रिय में क्षतोत्पन्न करके ही प्रकटित होता है। इससे स्थानिक शोथ का आधिक्य रहता है।	(३) यह भी पुरुष शरीरगत स्थानीय पीड़ा है पर शोथ का आविर्भाव इसमें भी दिखाई देता है चाहे इसमें क्षत रहे या न रहे।
(४) इसके रोगविष द्वारा शोणितादि पर विष-क्रिया अत्यन्त घातक बना डालती है।	(४) इसमें विषक्रिया प्रायः नहीं होती है।
(५) कठिन क्षत का होना इसका विशेष लक्षण है।	(५) कोमल-क्षत का होना इसका विशेष लक्षण है।
(६) इस रोग से पीड़ित होने पर शरीर में नाना प्रकार के उद्भेद, अर्बुद आदि का निर्गमन तथा तालु-शोथ (क्षत) नासाभङ्ग (नासिका अस्थि में क्षत जनित उसका ध्वंस होता है)।	(६) इसमें क्षतोत्पन्न तो होता है परन्तु गुटिकायें आदि शरीर के किसी भी अंश में नहीं निकलती हैं।
(७) गिल्टी इसमें रागों के कुछ ऊपरी हिस्से में निकलती है।	(७) रागों की ग्रन्थि को आश्रय करके ही इसकी गिल्टी की अभिवृद्धि होती है।
(८) इस रोग के विशेष रोग-बीजाणु (Treponema pallidum द्वारा ही इसका संक्रमण होता है।	(८) हस्त-नखादि के आघात तथा अति-मैथुन व अवैध मैथुन किम्वा अन्य किसी व्यभिचार के फलस्वरूप इस रोग का उद्भव होता है।

फिरङ्ग और औपसर्गिक मेह में लक्षणों की सामञ्जस्यता

(१) दोनों रोग ही उक्त रोग-विष दुष्ट सहवास के कारण उत्पन्न होते हैं।

(२) जननेन्द्रिय के क्षत दोनों प्रकार के रोगी को होते हैं।

(३) दोनों रोग ही संसर्गज, संक्रामक तथा धातुओं के विकार उत्पन्न करने वाले हैं।

(४) दोनों रोग में ही गिल्टियां निकलती हैं।

(५) पुरुषों से स्त्रियों में और स्त्रियों से पुरुषों में यह दोनों रोग ही संक्रमित हो सकते हैं।

फिरङ्ग और उपदंश के लक्षण-समञ्जस्य–

(१) दोनों रोग ही जननेन्द्रिय सम्बन्धी व्याधि हैं।

(२) जननेन्द्रिय के क्षत उभय रोग में ही होते हैं।

(३) गिल्टियां भी इन दोनों रोगों में विशिष्ट लक्षण हैं।

वंश-परम्परागत पीड़ाओं में

शैशवीय उपदंश

उपदंश-विष-दुष्ट माता पिता की सन्ततियों को यह रोग अवश्य ही होगा और फिर अपने माता पिता के अज्ञान-कृत कुकर्मों के फलस्वरूप उन सन्ततियों को अशेष दुःख दुर्दशाओं का बोझ जीवनभर ढोना पड़ता है। शिशु-उपदंश भी फिर स्वोपार्जित तथा वंशानुक्रमिक होता है जैसे:—

(१) माता की जननेन्द्रिय में उपदंश-जनित क्षत वर्तमान रहते हुए अगर उसके गर्भ से सन्तान उत्पन्न हुई तो

प्रसव काल में सन्तान के शरीर में यह विष संक्रमित अवश्य हो होगा और इसी से सन्तान भी सौवर में ही उपदंश-क्षत द्वारा सर्वाङ्गभूषित होगी। ऐसी सम्प्राप्ति को वंशानुक्रमिक नहीं कहा जाता है क्योंकि यह तो शिशु शरीर में स्वोपार्जित रूप से आया है।

(२) माता के गर्भ-ग्रहणोपयोगी डिम्ब तथा पिता के गर्भाधान योग्य शुक्र में जब उपदंश विष वर्तमान होता है और उससे जो सन्तान उत्पन्न होती है तभी ऐसे आक्रान्त शिशु-उपदंश वंशपरम्परागत नाम से अभिहित होगा।

निम्नलिखित लक्षणावली द्वारा शैशवीय उपदंश का

निदान—

शिशु के भूमिष्ट होने के अन्यून डेढ़ महीने के अन्दर प्रायः उपदंश के सभी लक्षण प्रकाशित होजाते हैं। कदाचित् इस स्वाभाविक नियम में हेर-फेर होसकता है।

शिशु के ओठों के दोनों जोड़ों में, गुदामार्ग में, नासिका मार्ग में क्षत उत्पन्न होना और हमेशा नथुए के बन्द रहने की वजह से स्तनपान तथा श्वास-प्रश्वासकाल में तकलीफ होना, शरीर पर ताम्राभ उद्भेदों का निर्गमन, गुदामार्ग में मस्से, हाथ-पैरों में मक्के की भुल्लियों की सी खाल उखड़ना, नाना प्रकार की नेत्र पीड़ायें, अस्थि-आवरणी झिल्लियों का प्रदाह, अस्थिक्षत तथा अस्थिक्षय, मुख-जिह्वा, तालु-मूल प्रदाह, गलशुण्डिका, कर्णशूल, बधिरता आदि-आदि रोगोपसर्ग शिशुउपदंश में तीसरी अवस्था का सूचक हैं। शिशु के चेहरा बूढ़े के समान दिखाई देना और अस्थिचर्म से ढका हुआ गुड़िया जैसा मालूम देता है। उसके शरीर पर खड़िया पोतने के समान धब्बे और सिर के बाल कहीं-कहीं उड़े हुए कहीं पर थोड़े बहुत उपजे हुए होते हैं। शरीर में तो उद्भेदों का निर्गमन होता ही हैं फिर जननेन्द्रिय, अण्डकोष और चूतड़ पर ही अधिक दिखाई देते हैं।

कतिपय विशेष लक्षणों के द्वारा शिशु-उपदंश का निदान—

(१) ओठों के दोनों ओर क्षत होकर सूख जाने से उसका स्थायी निशान अवश्य रहेगा।

(२) नासास्थि के क्षत होने के कारण नासिका के बीचोंबीच का हिस्सा बैठा हुआ होता है।

(३) दोनों नेत्रों के भ्रूओं की सन्धिस्थल की अस्थि पर गढ्ढा सा होजाना।

(४) नीचे वाले सामने के चार दांतों में क्षत या क्षय तथा मुखपाक के साथ लालास्राव की अधिकता।

(५) खोपड़ी की हड्डियों में कहीं-कहीं फूलकर सुपारी जैसी गाठें और माथा व कनपट्टी की हड्डियों पर सूजन होना। इसके अतिरिक्त खोपड़ी की हड्डी पतली पड़ जाती है।

उपदंश ग्रस्त शिशु को स्तन्यपान-सम्बन्धी सावधानता—

उपदंश द्वारा आक्रान्त शिशु को स्तन्यपान कराने से सुन्दर स्वस्थ स्त्री भी उपदंश का शिकार बन जाती है परन्तु अपनी मां का दूध पीवे तो उसकी मां के स्तनों में क्षतादि उपसर्ग नहीं दिखाई देते हैं। क्योंकि गर्भग्रहण के पहले से ही उसके शरीर में इसका विष प्रविष्ट होने के कारण उस पर उस विष का प्रभाव उतना नहीं हो सकता।

उपदंशज शिशु के मातृ-वियोग होने से अथवा किसी विशेष कारणवशतः माता का दूध निषिद्ध होने से धात्री की आवश्यकता पड़ती है। अतः धात्री निर्वाचन के पहले उसके शरीर में उपदंश का विष प्रच्छन्न रूप से वर्तमान है या नहीं इसकी जांच रक्त-परीक्षा पद्धति से होना जरूरी है। ग्रन्थि परीक्षा द्वारा उपदंश रोगी को अनायास ही पहिचान लिया जाता है। इसके अतिरिक्त ऐसे मनुष्यों की हाथ-पैरों की तलुये में जगह-जगह पर काले-काले धब्बे अवश्य होते हैं और स्त्रियों के चूचुकों में फटा-फटा दाग भी। ऐसे लक्षणावली जिस धात्री के शरीर से सम्बन्धित हैं उसे परित्याग कर देना ही बुद्धिमानी है।

उपदंशदुष्ट मनुष्यों का पाणि-ग्रहण कार्य अवैध है—

दूसरी दशा के यावतीय लक्षणों के आरोग्य न होने के पूर्व यदि सन्ततियों का जन्म दिया जावे तो उन पर विष का घातक परिणाम होगा ही अतः उचित् ढंग से उक्त रोगोपसर्गों का शमन न होने तक फिर उसके उपरान्त कम से कम दो वर्ष के बाद विवाह कर लेना अनुमोदन योग्य है।

उपदंश की चिकित्सा

इसके इलाज करते समय ज्यादा ध्यान

कि आक्रान्त स्थान के क्षतादि शीघ्र भर जाय तथा क्षत होने में रोगी को बचाया जाय। कारण क्षत स्थान में पूयोत्पत्ति होने पर जननेन्द्रिय को विशेष हानि पहुँचने की सम्भावना रहती है। फिर ज्वर का न होना और विषम्वता से रक्षा करना भी चिकित्सा का प्रमुख विषय है। उदुम्बरसार, पंचक्षीरि का प्रलेप गर्म जल के साथ अथवा त्रिफला का दुग्धदुग्ण क्वाथ या नीम के पत्तों से क्वाथ बनाकर रोजाना कई बार क्षतस्थान धोना चाहिए।

आक्रान्त स्थान में पूयोत्पत्ति होने पर जयन्ती, जाती, करवी, आकन्द (अर्क) और अमलतास के पत्तों के क्वाथ द्वारा क्षत का शोधन करना अत्यावश्यक है। कनेर (करवी) मूल को जल के साथ बारीक पीसकर अथवा स्वर्णक्षीरि के बीजों से निकाला हुआ तेल किम्वा स्वर्णक्षीरि के दूध का प्रलेप दिया जाय तो उपदंश का दाह, यन्त्रणा आदि शीघ्र ही ठीक हो सकती है। निम्नोक्त औषधियों का प्रयोग भी काम में लेना चाहिए।

अमृतादि क्वाथ—इसके सेवन से उपदंश में विशेष लाभ प्रतीत होता है। प्रत्यह प्रातःकाल में सेवनीय।

वरादि गुगल—यह उपदंश में अत्यन्त फलप्रद है। इसके सेवन से उपदंश तथा उससे होने वाला रक्तविकार का अन्त होजाता है। मात्रा—आधा तोला से एक तोला, अनुपान—गर्म जल।

रसशेखर—यह योग उपदंश पर अत्यन्त प्रभावशाली कार्य करता है। इसके सेवनकाल में अम्ल तथा लवणाक्त वस्तुओं का सेवन निषिद्ध है। अनुपान—दूध के साथ एक वटिका।

इनके अतिरिक्त सारिवाद्यारिष्ट व सारिवाद्यासव, खदिरारिष्ट, पंचतिक्त घृत गुगल, माणिक्यरस आदि विचार के साथ प्रयोग करना चाहिए।

आगरधूमाद्य तैल—यह तेल उपदंश के पूयोत्पत्ति पर प्रयुक्त होने से क्षतादि सत्वर ही आरोग्य होजाते हैं।

अनन्ताद्य घृत—इस घृत के सेवन से सर्वविध उपदंश के उपसर्ग और रक्तविकार आरोग्य हो जाते हैं। मात्रा—आधा तोला, अनुपान—गर्म जल।

उपदंश की साधारण परिस्थिति पर निम्नलिखित व्यवस्था उपयोगी है।

(१) अनन्ताद्यघृत—प्रातःकाल में आधा तोला परिमाण आधा पाव गर्म दूध के साथ।

(२) अमृतादि क्वाथ—सवेरे नौ बजे और—

(३) माणिक्य रस—मात्रा एक वटी, अनुपान—तीन माशा घृत व तीन माशा चीनी, दो माशा मधु के साथ सायंकाल में सेवनीय।

(४) गर्म जल के साथ उदुम्बरसार मिलाकर आक्रान्त स्थान धोना चाहिए।

उपरोक्त चिकित्सा के अतिरिक्त विशेष विधि और उपचार फिरंग के समान होने के हेतु फिरंग की चिकित्सा ही को अपनाना चाहिए।

पथ्यापथ्य—ज्वर न रहने से चने की रोटियां, घृतपक्व भोजन जैसे हलुआ मोहनभोग आदि, मूंग की दालदलिया, पुनर्नवा, मूली, परवल की भुजिया (घी में), करमकल्ला, आलू आदि ईषदुष्ण जल हितकर हैं। तेल, गुड़ मीठा, खटाई मिर्च, व्यायाम, दिवानिद्रा, मल-मूत्र का वेग धारण, मैथुन सर्वतोभावेन वर्जनीय है।

फिरंग की चिकित्सा

इसके इलाज की साधारणतया दो विधियां हैं, एक तो प्रतिषेधक और दूसरी है लाक्षणिक चिकित्सा।

प्रतिषेधक चिकित्सा—फिरंग के आक्रमण से बचने का प्रमुख साधन है स्वच्छता और आत्म-संयम। जिन सब कारणों से फिरंग का शिकार होना पड़ता है उनसे अपनी रक्षा करना ही इसकी प्रतिषेधक चर्या है। फिरंग द्वारा आक्रान्त रोगी के संसर्ग और उसके क्षतादि में से निःसृत क्लेदादि ही दूसरे के शरीर में रोग का संक्रमण करता है। इस हेतु यह दूषित विष जो क्लेदादि में संश्लिष्ट रहते हैं उस बात का ध्यान हमेशा रहने से अति अल्प ही मनुष्य इस रोग के चंगुल में आवेगा।

फिरंग से ग्रसित मनुष्य के सम्पर्क में आने वाली यावतीय वस्तुओं का व्यवहार उपयोग न किया जावे तो बहुधा इसके आक्रमण से रक्षा हो सकती है। रोग विष के विस्तार को रोकने के लिए दूसरे रोगी के आक्रान्त स्थान तथा व्यवहृत सभी उपकरणों का संस्कार जन्तु-नाशक औषधियों के द्वारा हमेशा करना चाहिए।

लाक्षणिक चिकित्सा—

फिरंग रोग का अवस्थानुसार विविध औषधोपचार करना अत्यावश्यक है। क्षत के तात्कालिक उपशमन के लिये यत्नवान होना चिकित्सक का परम कर्तव्य व चरम ध्येय होना चाहिए। उसी उद्देश्य से उदुम्बरसार या पंचक्षीरि प्रलेप को उष्ण जल के साथ मिलाकर क्षत धोने से विशेष लाभ होता है।

फिरंग रोग में गिल्टी उतरना एक विशेष उपसर्ग है। जल्दी से उसके पक जाने और फटने के लिए अलसी, इसबगोल तुख्मरहम व गेहूं के आटे की पोल्टीश लगाना चाहिए। कबूतर की बीट (ताजी) हाल की हाल करते ही किम्वा सिमूल की कांटे को जल के साथ घिसकर लगाने से गिल्टी पक कर फूट जाती है। किसी उपचार से लाभ नहीं हुआ तो शस्त्रोपचार द्वारा इसका इलाज शुरु कीजिए।

फिरंग के अधिकार में पारद एक शक्ति-सम्पन्न भेषज है। इसी कारण रस-शास्त्रकारों ने रसघटित औषधि योगों का पुनः पुनः उल्लेख किया है। उपदंश में वर्णित सारी औषधियां और इनसे अतिरिक्त निम्नोक्त प्रयोगों से काम लेना चाहिए।

१—अनन्तादि क्वाथ का सेवन और निम्बादि क्वाथ द्वारा क्षत स्थान धौत करने से यथेष्ट लाभ होता है।

२—निम्बादि घृत—उपदंश के क्षत में इसका प्रयोग करने से आशु उपशम प्राप्त होता है।

३—रस गुगल—इसकी उपयोगिता उपदंश व फिरंग की सभी अवस्थाओं में सिद्ध होती है। इसका सेवन मैदा किम्वा आटे की लोई के अन्दर रखकर कराना चाहिए। ऊपर से दूध पीलेना होता है। इसकी २-२ गोलियां एक साथ दें। दो सप्ताह पर्यन्त प्रत्यह दोनों समय इसी रीति से सेवन कराना होगा। क्षत के कारण वेदना यन्त्रणा तथा क्लेदादि निर्गमनजन्य कष्ट का अन्त यह कर सकता है।

पारद का धुवां लेने से भी फिरङ्ग का क्षत आरोग्य हो सकता है। रसकर्पूर का धुवां अथवा रसादि धूम—इसकी धुवां लेने से क्षत, क्लेदादि का निर्गमन अति शीघ्र शान्त होता है। इसकी एक वटिका अग्नि पर डाल देने से धुवां निकलता रहता है और वस्त्रावृत होकर इसका सेवन करना पड़ता है।

पारद इस रोग का शक्ति-सम्पन्न भेषज होने पर भी इसके अपव्यवहार करने से मुखगह्वर में शोथ, मसूड़ों में क्षत, लालारस-रक्त के अत्यधिक स्राव होकर रोगी को परेशान कर देता है। एसी हालत में पारदघटित भेषज सर्वथा वर्जन तथा मुखरोगाधिकार की चिकित्सा द्वारा रोगी को शांति देनी चाहिए।

४—मुनिम्बादि घृत—उपदंश व फिरंग की उसी अवस्था में इसका प्रयोग होना चाहिए जब कि रोगी के शरीर के अनेक स्थानों में क्षत दिखाई देवे। उष्ण दुग्ध के साथ आधा तोला।

५—सारिवाद्यासव व सारिवाद्यारिष्ट—इनके नियमित सेवन द्वारा रक्त-विकार जड़-मूल से नष्ट होता है। मात्रा—सवा तोला जल समभाग मिलाकर प्रत्यह दोनों समय।

फिरंग की यात्यावस्था में आमवात आदि उपसर्ग दिखाई देने एवं उसके साथ मल-विबन्धता रहने से विचार-पूर्वक योगराज गूगल, किशोरगुगल आदि से काम लेना पड़ता है।

क्षतरोपण तथा शोनित-शोधनार्थ पंचतिक्तघृत, महातिक्तघृत महाखदिरिकघृत आदि का सेवन कराना आवश्यक होता है। पिड़काओं की शान्ति के लिए वृहद मरिचादि तैल, महासिन्दूरादि तैल करवीराद्य तैल लगाना चाहिए। उपदंश व फिरंग रोगी की चिकित्सा करते समय सर्वंव शैत्यापचार तथा शीतवीर्य वाली औषधियों का प्रयोग होना अनुचित है।

रोगी को सम्पूर्ण विश्राम लेना तथा स्वच्छता व पवित्रता के साथ रहना और आहार-विहार आदि पर सर्व-तोभावेन संयम साधना का आश्रय लेना जरूरी है।

डाक्टरी चिकित्सा क्षेत्र में उपदंश व फिरंग की कमाल करने वाली पेटेन्ट तथा सिद्धौषधियों से बाजार भरपूर

—शेषांश पृष्ठ ८१५ पर देखें।

पित्ताशयाश्मरी

लेखक— डॉ० रामसमुझसिंह, एम० डी०, एम० एस० लखनऊ।

मनुष्य के शरीर में अनेकों छोटी-बड़ी ग्रन्थियां हैं। इन ग्रन्थियों में से ग्रन्थि एक जो अत्यावश्यक तथा सबसे बड़ी है वह यकृत (Liver) के नाम से प्रसिद्ध हैं। इस ग्रन्थि का कार्य रक्त, पित्त तथा मूत्राम्ल बनाना है। यकृत् के भीतरी सतह में एक नाशपाती जैसी खोखली थैली है इसी का नाम पित्ताशय (Gall Bladder) है। इसके भीतर पित्त नामक एक पाचकरस रहता है, जो पीलापन लिए क्षार प्रकृति का होता है। पाकाशय में भोजन रहने पर यह रस उसमें मिलकर उसके पाचन में सहायता पहुंचाता है।

इस उपरोक्त पित्ताशय या पित्तवाही नली में अगर पित्त खाने-पीने के दोष से पैदा होकर पत्थर के कण के रूप में हो जाये, तो इसे "पित्त-पथरी या पित्ताशयाश्मरी" कहते हैं। बालू का कारण (gravel) कबूतर के अण्डे या मटर के बराबर छोटा, बड़ा मझोला, गोल, सादा, काला, खाकी या हरा एक या बहुत पथरी इस रोग के रोगी में पैदा हो जाती हैं। मर्दों की अपेक्षा औरतों को यह रोग अधिक होता है।

इस रोग का प्रधान लक्षण—पेट में थोड़ा-बहुत दर्द, इसके अलावा जिन्दगी भर पित्ताशय में पथरी रहने पर भी किसी किसी को बिलकुल ही तकलीफ नहीं होती।

पथरी जब तक पित्ताशय में रुकी रहती है, तब तक तो रोगी को किसी तरह की तकलीफ नहीं मालूम होती, कभी-कभी पेट में दर्द मालूम होता है, परन्तु जब यह पथरी पित्ताशय से निकल कर पित्तवाही-नली में आ पहुंचाती है, तब धीरे या जोर से पेट में एक तरह का दुःसह दर्द होकर रोगी को एक दम व्याकुल कर देता है। भयानक दर्द का नाम "पित्तशूल" है। शूल का दर्द दाहिनी कोख से शुरू होकर चारों ओर दर्द के साथ अकसर कै, ठण्डा पसीना, नाड़ी कमजोर, हिमाङ्ग, कामला, सांस में कष्ट मूर्च्छा वगैरह लक्षण दिखाई देते हैं। यह दर्द कई घण्टे से लेकर कई सप्ताह तक ठहर सकता है और फिर एकाएक बन्द हो जाता है। (अर्थात् पथरी पक्वाशय के अन्दर आजाने पर सब तकलीफ दूर होजाती है।) उस समय मल को धोने पर पत्थर के कण हाथ में लगने से ही समझना चाहिए कि पथरी निकल गयी है।

पित्ताशयाश्मरी शूल और मूत्र-पथरी शूल का भेद

पित्ताशयाश्मरी शूल	मूत्र-पथरी शूल
१—पित्त-पथरी शूल में कै नहीं होती है।	१—मूत्र-पथरी शूल में पेशाब की नली से लेकर अण्डकोष तक यह दर्द फैल जाता है।
२—इसमें पेशाब करने की इच्छा लगातार नहीं रहती है।	२—इसमें पेशाब करने की इच्छा लगातार रहती है। साथ में खून तथा पथरी रहती है।
३—पित्त-पथरी के शूल में आक्रान्त अङ्ग को सेकने और गर्म जैतून का तेल (olive oil) सेवन करने से बन्द हो जाता है।	३—मूत्र पथरी के शूल में सेकने से कोई लाभ नहीं होता है।

चिकित्सा

होम्यापैथिक चिकित्सा—

शूल-वेदना के समय—कैल्केरिया-कार्ब पित्त से पैदा हुए शूल को बन्द करने की बहुत ही बढ़िया दवा है। पन्द्रह मिनट का अन्तर देकर यह दवा देनी चाहिए। यदि तीन घण्टे सेवन के पश्चात् कोई लाभ न दिखाई पड़े तो बार्बेरिस Q की खुराक बी समिनट के अन्तर से देना चाहिये। कार्डयस मेरियेनस Q (५-१० बून्द लक्षणानुसार) रोज तीन घण्टे का अन्तर देकर सेवन करना चाहिये) यकृत में खासकर उसके बांए उन्नत अंश (left lobe) में दर्द रहने पर आर्निका ३x ६x नयी हालत के उपसर्ग कुछ घट जायें और धीमा दर्द रहे तो चायना Q बीमारी के जोर के समय शूल वेदना से लेकर बन्द होने तक मैग्नेशिया फास (गर्म पानी में) खाने से दर्द घट जाता है।

दुबारा आक्रमण बन्द करने के लिये चायना Q—

चायना ६ x की मात्रा में छः गोलियां रोज दो बार देनी चाहिये। जबतक दस मात्रा दवा पेट में न चली जाये। इसके बाद एक दिन नागा देकर एक मात्रा (छः वटिकाऐं) दवा देनी चाहिए जब तक दस मात्रा न खतम हों। इसके बाद क्रम से तीन दिन नागा देकर और चार दिन तथा पांच दिनों का अन्तर देकर दवा देनी होगी। यह तब तक, जबतक इसी तरह एक महीने का अन्तर देकर एक मात्रा (अर्थात् छः वटिकाए) न हो जाये। बहुत से मशहूर डाक्टरों ने देखा है कि ऊपर लिखे उपाय से चलने पर पहले रोगी की पथरी जल्दी निकल जाती है और इसके बाद पित्त कोष में पथरी पैदा नहीं होती (अर्थात् रोग जड़ से आराम हो जाता है)।

आयुर्वेदीय चिकित्सा—

अश्मरी सूमरो व्याधिः कषायेणैव शाम्यति।
पञ्चक्षार सध्रोचैव रसस्तु दिरसायेत॥

अर्थात्—अश्मरी की शान्ति के लिए पंचक्षार सहित अर्जुनादि कषाय का जो लाभ दिखाता है
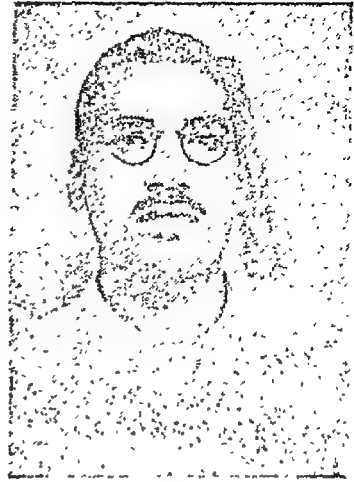
वह रस प्रयोग नहीं दिखाते। अतः यह निश्चित है कि स्थान, दूष्य, दूषण, अवस्था, देश, कालादि के भेद से कभी-कभी कषाय चिकित्सा भी कमाल दिखाती है।

कुमार्यासव—यह उदर रोगों की प्रसिद्ध दवा है। इसके पीने से आठ तरह के उदर रोग उदाहरणार्थ तिल्ली, जिगर (यकृत) जलन्धर आदि तथा पक्ति-शूल (भोजन के बाद पेट-दर्द) अश्मरी, कब्जियत, गुल्म (वायुगोला), प्रमेह, राजयक्ष्मा आदि रोग नष्ट होते हैं।

मात्रा—१ तोला से २ तोला समान जल में मिलाकर दोनों समय भोजन के १५ मिनट बाद।

चन्द्रप्रभा गुटिका—(शार्ङ्गधर) यह गोलियां पेशाब में आती हुई धातु, अल्ब्युमेन (Albumen) और 'रेती को' बन्द करती हैं। इसके सिवाय पेशाब की जलन, पेशाब कठिनता से होना, मूत्रकृच्छ्र, नजला, 'पथरी', पुराना सुजाक, आतशक और स्त्रियों के गुह्य भाग की खाज में यह गोलियां बहुत बरती जाती हैं। यह रसायन है और मूत्र मार्ग को साफ रखती है तथा अनेक रोगों को मिटाती है।

मात्रा—१ से ४ गोली तक दिन में ३ बार पानी या दूध के साथ खानी चाहिए।

—शेषांश पृष्ठ ८२१ पर।

हिस्टेरिया की सफल चिकित्सा

(दो रुग्णाओं का वर्णन)

(लेखक— वैद्यराज मोहरसिंह यादव 'हितैषी' डालमिया दादरी ।)

यह रोग स्त्री पुरुष दोनों को होने वाला है ? स्त्रियों में अधिकांशतः नवयुवतियों में प्रचुरता से पाया जाता है ।

कारण—

इस रोग में मानसिक कारण प्रधान हैं । स्त्रियां कोमल मन की होती हैं, वे शीघ्र ही घबरा जाती हैं दुखी होती हैं, जिससे दौरे आरम्भ हो जाते हैं । मानसिक कारणों में—

१-सन्तान न होने से दुखित रहना २-पति से अनबन ३-इच्छानुसार आभूषण न मिलना ४-रजोधर्म के पश्चात् पुरुष समागम न होना ५-पति समागम से असन्तुष्ट ६-पति का आयु में छोटा होना या वृद्ध ७-पति का अन्य स्त्रियों से प्रेम करना ८-मासिकधर्म की गड़बड़ी ९-क्रोध, शोक, प्रेम-प्राप्ति में असफलता १०-अनिद्रा, मस्तिष्क रोग प्रधान कारण हैं ।

मैंने कानपुर में एक नवयुवती को इस रोग से ग्रसित देखा । रुग्णा की आयु लगभग २० वर्ष होगी, अभी तक अविवाहिता थी । इसे यह रोग लगभग दो वर्ष से था । मैंने रोग के कारणों को जानने के लिये अपने एक मित्र से पूछा जो उसके पड़ौस में रहता था । उसने बतलाया 'महाशय बड़ी रोचक कहानी है तनिक सुनें' प्रथम जब मासिक-धर्म आरम्भ हुआ तब से ही यह लड़की कुछ आवारा सी बन गई और गुप्त रूप से इधर-उधर आने-जाने लगी । इसी समय में गर्भ रह गया, अपने मान-प्रतिष्ठा के लिये गर्भ गिराया गया, उसी समय से मासिक-धर्म में विकार आगया है । चार मास बाद इन्हें कुछ कुछ हल्के दौरे की शिकायत होगई । अब आप देख सकते हैं । मैंने लड़की को एकान्त में लेजाकर एक बुढ़िया से निम्न बातें मालूम कराई । १—कामेच्छा की अधिकता २—चंचल और विलासी स्वभाव ३—मासिक धर्म की अनियमितता । उत्तर में तीनों कारण प्रधान मिले ।

दौरे के समय की स्थिति—

१-हृदय की धड़कन बढ़ जाती थी । २-आवाज बन्द हो जाती थी । ३-मूर्च्छा आजाती थी ४-मूर्च्छा आने पर रुग्णा भूमि पर गिर जाती थी किन्तु हाथ छाती पर कस लेती थी । ५-श्वास-प्रश्वास की गति बढ़ जाती थी । ६-चेहरा तमतमा जाता था । ७-लम्बे सांस लेती थी ।

दूसरी रुग्णा विवाहिता थी । आयु ३० वर्ष, रोग १ वर्ष से, एक लड़का भी था । घर परिवार सब सुख सम्पन्न था । पारिवारिक स्थिति अर्थात् सास-बहू में भी प्रेम अच्छा था । इतना होते हुये भी बड़ी दुर्बल सी थी । मस्तिष्क स्नायुमण्डल सम्वेदनशील रहते थे । २-मासिकधर्म (ऋतुस्राव) अधिक होता था । ३-एक बार गर्भपात हो गया था । ४-गर्भपात एवं ऋतुस्राव से मानसिक सन्ताप भी रहता था । ५-अजीर्ण भी रहता था ।

इस रुग्णा में निम्न लक्षण मिले:—

१-पेट पर अफारा २-हिचकी आना, वमन भी होना ३-पेट में दर्द सा होकर दम घुट जाना ४-आवाज बन्द होकर मूर्च्छित हो जाती थी । ५-हाथ-पैर अकड़ जाते थे और इधर-उधर फेंकती भी थी । ६-मुठियां भिंच जाती थी ७-दान्त भी भिच जाते थे ८-जब दौरा शान्त होने को आता था तो मुंह से झाग निकलते थे और रुग्णा अनर्गल प्रलाप करती थी ।

चिकित्सा।

प्रथम रुग्णा को केवल एक ही नुस्खा (प्रयोग) बतलाया जो उसके लिये रामबाण सिद्ध हुआ, वह प्रयोग है 'विवाह" बस सफलता मिल गई। केवल मासिकधर्म विकृति के लिये भोजन के बाद अशोकारिष्ट एवं अश्वगन्धारिष्ट मिलाकर दिया जाता था। एक मास में पूर्ण चिकित्सा हो गई और आठवें मास में वह गर्भवती भी होगई।

द्वितीय रुग्णा का चिकित्साक्रम

१—दौरे के समय रुग्णा को खुली हवा में रखा जाता था एवं वस्त्र ढीले कर दिये जाते थे। पंखे से हवा की जाती थी।
२—ठण्डे पानी के छींटे मुख पर देते थे।
३—हाथ-पैरों को मलते थे।
४—दशांग धूप का भी प्रयोग किया जाता रहा।
५—चूना नौसादर मिलाकर सुंघाया जाता था।

दौरे के पहिले तथा पश्चात्

१—सुपाच्य एवं पौष्टिक भोजन दिया जाता था जिस में गेहूँ का आटा हाथ की चक्की से पिसा हुआ बिना छना।
२—घूमने के लिये दोनों समय कुछ दूर भेजा जाता था।
३—विशेषकर वाटिका वा जहां स्वच्छ वायु का स्थान हो रखा जाता रहा।
४—ठण्डे पानी से स्नान कराया जाता।
५—हल्का व्यायाम भी कराया जाता।
६—कब्ज पर विशेष ध्यान दिया जाता था।

औषधि व्यवस्था—

रुग्णा दुर्बल थी और इस रोग में हृदय को बल देने वाली औषध देना चाहिए अतः स्वर्णभस्म १ रत्ती, मुक्ताभस्म २ रत्ती मकरध्वज २ रत्ती अर्जुनसत्व ४ रत्ती।

सबको मिलाकर प्रातःकाल १॥ से २ रत्ती तक द्राक्षासव के साथ देते रहे। भोजनोपरांत अश्वगंधारिष्ट २ तोला। समभाग पानी मिलाकर देते रहे। मध्याह्न गुलकन्द भी देते रहे। इस प्रकार यह चिकित्साक्रम (१५ दिन) चलता रहा। इससे पूर्ण लाभ तो नहीं परन्तु दौरों में न्यूनता होगई और हल्कापन आगया। १५ दिन में ३ दौरे हुये। २० वें दिन जब घर वालों को कुछ उग्र देखा और उनसे पूछने से पता चला कि हम इसे इसके मयके में भेज रहे हैं। मैंने उनको १५ दिन और रखने के लिये कहा। इस समय मुझे कुछ करना चाहिये था। अतः मेरे पास 'मार्तण्ड फार्मेसी बड़ौत' के 'स्मृतिदा' (Smaritida) इन्जेक्शन थे। मैंने उसी दिन एक एम्पुल की एक सी.सी. का इन्जेक्शन (Injection) कर दिया। इस प्रकार उन औषधियों के साथ-साथ सप्ताह में दो बार सूचिकाभरण करता रहा। १५ दिन में ही रुग्णा स्वस्थ दीखने लगी और दौरे बिल्कुल बन्द होगये। अभी तक वह स्त्री अपने सुखी जीवन से प्रसन्न है।

रजित रोग

(पृष्ठ ८११ का शेषांश)

है। डाक्टरी मतानुसार इसके चिकित्सार्थ पारद-संखिया आदि से बनी हुई कई पेटेन्ट एसी हैं जिनमें एन. ए. बी. सल्फरसेनोल, मेफरसाइड, एसिटिलार्सन आदि प्रमुख हैं। इसके अतिरिक्त पेनिसिलीन आदि कीटाणु-नाशक (anti-biotic) औषधियों का नाम आज सर्वजन विदित है। इन सब औषधियों द्वारा इलाज करने वाली बातों से साधारण चिकित्सकों को अलग रहना ही ठीक है क्योंकि यह अमीरों और डाक्टर साहबों के लिए उचित है। डाक्टरी दवा में कैलोमेल एक ऐसी है कि इसकी मात्रा ढाई रत्ती परिमाण में सेवन करके बाद में प्रसंग किया जाय तो उपदंश दोष युक्त स्त्री-पुरुषों के लिए लाभदायक हो सकता है। आजवरण का दूध दो बूंद एक छटांक दही के साथ अच्छी तरह मिलाकर कुछ दिन पर्यन्त नियमित सेवन कराने से उपदंश का विष नष्ट हो जाता है। अश्वत्थ (पीपर) छाल का बारीक चूर्ण और पाण्डु-खदिर को पीस कर अथवा त्रिफला की भस्म और टंकणाम्ल (बोरिक एसिड) एक साथ मिलाकर लगाने से उपदंश का क्षत आरोग्य होता है।

स्वप्नदोष की प्राकृतिक चिकित्सा

(लेखक—श्री. गणेशदत्त "इन्द्र" आगर)

इस युग का, स्वप्नदोष एक सर्वव्यापी रोग है। सम्भव है मध्य प्राचीनकाल में यह नहीं रहा हो, अथवा कम रहा हो। अति प्राचीन काल में तो इसका नाम भी नहीं था। आयुर्वेद में इस नाम से कोई रोग नहीं पाया जाता। यदि इसका उस युग में प्रावल्य होता तो निस्सन्देह इस पर स्वतन्त्र रूप से विचार किया जाता। शास्त्रों द्वारा इसे प्रमेह का एक भेद माना गया है। इससे अनुमान होता है कि आयुर्वेद-निर्माण युग में यह रोग क्वचित देखा पाया जाता होगा। यह सही भी है कि स्वप्नदोष उन दिनों नहीं के बराबर था क्योंकि खान-पान, रहन-सहन, आहार विहार, चर्या और विचारों में उन दिनों का मानव आज के मानव से एक-दम भिन्न था। फिर कैसे संभव है कि स्वप्नदोष सर्वसाधारण को अपना शिकार बना सके। उन दिनों के कुछ विलासी, कामलोलुप, विषयी लोगों को ही शायद यह रोग होता हो।

आज स्वप्नदोष ९९ प्रतिशत नौजवानों को होता है। डाक्टरों का मत है कि सोलह वर्ष की अवस्था के बाद स्वप्नदोष हो तो कोई चिन्ता की बात नहीं। इसी विचार के कतिपय वैद्य और हकीम भी हैं। किन्तु यह सिद्धान्त समीचीन नहीं है। क्योंकि वीर्य-पात के लिए सोलह वर्ष की अवस्था कदापि उचित नहीं। वीर्य की गणना शरीर-धातुओं में है, तो जब रस रक्त मज्जा मांस अस्थि के शरीर से निकलने को रोग माना जाता है तो क्या कारण है कि वीर्य के स्वयं निकल जाने को रोग नहीं माना जाता। यदि वीर्य किसी शरीर धातु का मल होता तो उसका निकलना उपयुक्त होता। और जब यह भी सिद्ध है कि वीर्यपात से निर्बलता और अनेक रोग, दोष उत्पन्न होजाते हैं तब इसका अनावश्यक, बिना निकाले निकल जाना रोग क्यों नहीं माना जाता? शरीरस्थ अन्य मल जैसे, कफ, मूत्र, पुरीष आदि के शरीर से बाहर होने पर फुर्ती, हल्कापन और स्वस्थता अनुभव होती है उसी तरह वीर्यपात के बाद भी अनुभव हो तो इसे मल समझना उचित है, किन्तु होता है इसके विपरीत ही। इससे सिद्ध होता है कि स्वप्नदोष एक रोग है।

सोते हुए यदि आदमी बड़बड़ाता है, चौंक उठता है, रोता या गाता है, दांत पीसता है, भागने लगता है, खर्राटे भरता है, पेशाब कर देता है, या मलोत्सर्ग होजाता है तो वह रोग माना जाता है, किन्तु स्वप्न में वीर्यपात होने पर उसे रोग न मानना समुचित नहीं कहा जासकता। यदि यह तर्क रखा जाय कि वीर्याधिक्य होने पर उसका निकलना अनिवार्य है तो हम पूछना चाहते हैं कि एक निर्बल, अशक्त और रोगी को स्वप्नदोष क्यों होता है? एक रात में दो-तीन तीन बार स्वप्नदोष क्यों हो जाता है? मैथुन के बाद भी स्वप्नदोष क्यों होजाता है? इन प्रश्नों का उन लोगों के पास क्या उत्तर है जो सोलह वर्ष के बाद स्वप्नदोष को कोई विकार नहीं मानते?

इस विवेचन से यह सिद्ध होजाता है कि, स्वप्नदोष एक रोग है, जिसका इलाज आवश्यक है। मैंने अपनी "स्वप्नदोषविज्ञान" "स्वप्नदोष रक्षक" सन्तान शास्त्र" "यौवन के आँसू" आदि पुस्तकों में स्वप्नदोष पर विशद विवेचन किया है, और इससे बचने तथा निवारण करने के विविध उपाय और चिकित्साएँ लिखी हैं। इन पुस्तकों के पाठक स्वप्नदोष विषयक अनेकानेक प्रश्न पत्रों द्वारा मुझसे किया करते हैं। उनकी स्थिति पढ़कर रोंगटे खड़े होजाते हैं। ऐसी दशा में यह कैसे मान किया जाय कि स्वप्नदोष का होना स्वाभाविक है और यह रोग नहीं है।

मेरा आजतक का यह अनुभव है कि, स्वप्नदोष औषधोपचार द्वारा हटाया जाना असाध्य नहीं किन्तु

कष्टसाध्य अवश्य है और वह स्थाई नहीं होता। औषधि का प्रभाव कम होते ही अथवा कुपथ्य होते ही वह फिर आ जमता है, किन्तु प्राकृतिक चिकित्सा दोषरहित और अमोघ गुणकारी है। प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा प्रभाव स्थायी और दोषरहित होता है। मैंने जिन-जिन लोगों को स्वप्नदोष निवारणार्थ प्राकृतिक चिकित्सा बतलाई उन्हें निश्चय लाभ पहुँचा इस चिकित्सा में रोगी को धैर्य और सतत अभ्यास परमावश्यक है। प्राकृतिक-चिकित्सा का लाभ दो-चार दिन में या दो-चार हफ्ते में नहीं होता बल्कि इसके लिए महीनों और बरसों तक सतत प्रयत्न आवश्यक है। प्राकृतिक चिकित्सा से रोग सदासर्वदा के लिए नष्ट होकर शरीर कुन्दन सा निखर उठता है।

प्राकृतिक चिकित्सा में न तो कुछ व्यय होता है, और न नित्य अधिक समय ही लगता है। लाभ अपार होता है, फल महान् होता है, आनन्द अनन्त आता है। अतएव सदा सर्वदा के लिए स्वप्नदोष से छुटकारा पाने के हेतु निरन्तर चलने वाले सत्र की तरह प्राकृतिक चिकित्सा का अनुष्ठान आरम्भ कर देना चाहिए। रोग को अपना शत्रु मान कर उस पर चारों ओर से प्रहार करना आरम्भ कर दीजिए, और जिस कारण पर वह आधारित हो उसे विनष्ट कर दीजिए। कोई भी रोग निस्सन्देह स्वयमेव चला जावेगा।

रोग हटाने के लिए खान-पान और आहार-विहार में परिवर्त्तन करना प्राकृतिक चिकित्सा की पृष्ठ भूमि तैयार करना है। किसी भी ऐसे काम को नहीं करना चाहिए जिससे मन, मस्तिष्क और शरीरस्थ धातुओं में अनावश्यक गति संचरण हो, या इनमें किसी प्रकार की उत्तेजना हो। खान-पान, रहन-सहन, संगति, विचार, दिनचर्या बिलकुल सात्विक, सरल और पवित्र हो। इनकी पवित्रता से ही रोग की जड़ हिल जावेगी। कोई भी ऐसी वस्तु न खाई-पियी जावे जिसके द्वारा शरीरस्थ धातुओं में अथवा मस्तिष्क में उत्तेजना उत्पन्न होती हो। उत्तेजक, गर्मी बढ़ाने वाले पदार्थों, जैसे मिर्च मसाले, चाय, तम्बाकू, पान-सिगरेट, मद्यमांस, अंडे, तेज खटाई, तेल आदि पदार्थों से दूर रहना चाहिए। रहन-सहन अत्यन्त सात्विक हो। विचारों में पवित्रता हो, विषयवासना की भावना हृदय में न आने दी जाय। इन्द्रिय-लम्पट, विषयी, व्यभिचारी की संगति तो दूर, उनकी हवा भी नहीं लगने देना चाहिए।

दिनचर्या बिलकुल सरल और सात्विक हो। सूर्योदय के पूर्व शय्या से उठ ही जाना चाहिए। उठते ही अमृतपान (तांबे के पात्र में रात को भरकर रखा हुआ जलपान) करना चाहिए। अमृतपान मुंह साफ करके कुल्ली करके धीरे-धीरे एक-एक घूंट पीना चाहिए। यदि पाखाने जंगल में जाना हो तो सात आठ फर्लाङ्ग चलकर मलत्याग करना चाहिए। या फिर जैसी जरूरत हो उतनी दूर तक जाना ठीक है। और यदि घर में जाना हो तो अमृतपान के बाद कुछ देर टहल कर शौच जाना उचित है। स्मरण रहे जब दाहिने नथुने से सांस चल रहा हो तब मलत्याग करने से मलाशय विशेष शुद्ध हो जाता है और कोई रोग नहीं होता। इसी प्रकार बाएँ नथुने से सांस चलते समय पेशाब करने से अनेक रोग नष्ट होजाते हैं। स्मरण रहे पेशाब के समय श्वासोच्छ्वास न हो सांस रोक कर पेशाब किया जाय। यदि बीच में साँस लेना हो तो पेशाब रोक कर साँस ले लें। मलमूत्र त्यागने में जोर कभी भी न लगाया जाय। मलमूत्र त्यागने के बाद मूत्रेन्द्रिय और गुदा को शीतल जल से धोना चाहिए। मूत्रेन्द्रिय के ऊपर का चमड़ा सरकाकर सुपारी पर जमे हुए सफेद मैल को अच्छी तरह धो डालना चाहिए। अण्डकोषों और रानों को भी अच्छी तरह शीतल शुद्ध जल से धो डालना चाहिए। ध्यान रहे जितनी बार पाखाना जावें उतनी बार मूत्रेन्द्रिय अण्डकोष आदि धोए जावें। पेशाब के बाद यदि सुविधा हो तो मूत्रेन्द्रिय को शीतल पानी से धो डालें। पाखाना जाने के बाद मलेन्द्रियों को धोने के निमित्त पवित्र जल और शुद्ध मिट्टी काम में लाई जाय तो बहुत ही अच्छा हो। मिट्टी की पवि-

त्रता का विशेष ध्यान रखा जाय।

यद्यपि दंतून एक साधारण सी क्रिया है, किन्तु स्वास्थ्य-रक्षा में इसका प्रमुख भाग है। किसी मञ्जन अथवा ब्रुश से दांत घिसने को मैं दंतून नहीं मानता इनसे यथेष्ट लाभ नहीं होता। इसलिए किसी वृक्ष-शाखा का दतून होना आवश्यक है। दतून की मुटाई अपने हाथ की कनिष्ठका अँगुली के अग्रभाग के बराबर हो। उसका छिलका न हटाया जाय। १४-१५ अंगुल लम्बी होना आवश्यक है जिससे जीभ साफ करने में सुविधा रहे। दांतों से चबाकर उसकी ब्रुश बनाली जावे। पत्थर आदि से कूट कर नहीं। ब्रुश बन जाने पर एक-एक दांत को खड़ा आड़ा धीरे धीरे घिसा जाना चाहिए। दाँत तीनों ओर से घिसने चाहिए। जबान के नीचे के गड्ढे को भी दतून की ब्रुश से साफ कर देना उचित है। बाद में दतून को बीच में से चीरकर, एक भाग मोड़ कर उससे जीभ पर का मैल धीरे-धीरे साफ कर देना चाहिए। दूसरी फांक से उसकी ब्रश को मुंह के अन्तर हलक तक डालकर धीरे-धीरे जबान को घिस देना चाहिए। बाद में मध्यमा और तर्जनी अंगुलियों से जीभ की जड़तक धीरे धीरे घिसकर साफ कर डालना चाहिए। इसके बाद तालू को दूर हलक तक अपने हाथ के अँगूठे से घिसकर साफ कर डालना चाहिए। प्रत्येक क्रिया के बीच में पानी के कुल्ले करते रहना चाहिए। स्वच्छ पानी से आँख नाक के मल को धो डालना चाहिए। जीभ और तालू को साफ करते समय आंखों में आंसू और हुबड़कों से पेट को झटका लगाना जरूरी है। प्राकृतिक चिकित्सा करने वालों को दतून क्रिया का विधिपूर्वक करना नितान्त आवश्यक है। जो लोग विधिपूर्वक नियमित वृक्ष शाखा की दतून करते हैं, उनको कभी नेत्ररोग नहीं होते। कान की बीमारियां नहीं होतीं, जुकाम नजला वगैरः नहीं सताते। मुखरोग नहीं होते। दांत जीवन भर मजबूत रहते हैं। बुद्धि बढ़ती है। मुख पर चमक बनी रहती है। अपच, अग्नि-मांद्यादि उदर विकार कभी नहीं होते। फलतः वीर्य-रक्षण में बड़ी सहायता मिलती है।

स्वप्नदोष के रोगियों को स्नान में विशेष सावधानी रखने की जरूरत है। सदैव बारहों मास शीतल जल से ही स्नान करना चाहिए। तालाब, नदी या टब में कटिपर्यन्त पानी में रह कर स्नान करना चाहिए। स्नान करने में सबसे पहले अपना सिर भिगोना उचित है। खादी के किसी खुरदरे वस्त्र को पानी में भिगो-भिगोकर रुमाल से पांव के अँगूठे तक प्रत्येक अङ्ग को धीरे-धीरे रगड़-मसलकर स्वच्छ कर देना चाहिए। शरीर की त्वचा लाल रङ्ग की होजानी चाहिए। ध्यान रखिए, बलपूर्वक जोर-जोर से न रगड़ें। शरीर रगड़ चुकने पर अब आप गीले टावेल से अपने पेट को धीरे-धीरे गोलाकार दाएँ-बाएँ मसलिए (देखो चित्र नं० १) मसलने की संख्या २५ से ५० तक हो। इसके बाद नाभी के नीचे और मूत्रेन्द्रिय के ऊपरी भाग पेडू को दायें-बायें सीधे घिसिए (देखो चित्र नं० १) इसकी भी उतनी ही संख्या हो जितनी पेट की थी। अब मूत्रेन्द्रिय के ऊपरी और नीचे के भाग को भी बहुत धीरे-धीरे उतनी ही बार घिसें। मूत्रेन्द्रिय की सुपारी पर का चमड़ा हटाकर शनैः-शनैः वस्त्र से घिसदें। अण्ड-कोषों के मल को बहुत धीरे-धीरे साफ करके गुदा और अण्डकोषों के बीच की जगह को धीरे-धीरे रगड़ें। इसी प्रकार दोनों रानों को भी भीगे वस्त्र की सहायता से घिस कर साफ कर डालें। स्नान में १५-२० मिनट से ३०-३५ मिनट तक लगाने चाहिए।
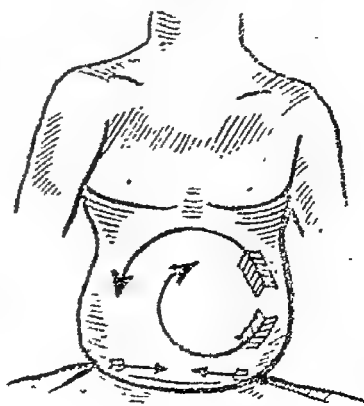
चित्र नं० १

बाद में शीतल जल से सारे शरीर को धोकर उसी गीले वस्त्र को निचोड़ कर सारे शरीर को भली-भांति पोंछ डालें। मूत्रेन्द्रिय, अण्डकोष रानें और गुदा मार्ग को अच्छी तरह पोंछना न भूलिए।

स्नान के बाद प्राणायाम करना चाहिये। नंगे बदन, अथवा ऋतु के अनुकूल कम से कम और ढीला वस्त्र पहिन कर प्राणायाम करना चाहिये। प्राणायाम के लिए चटाई या सूती वस्त्र बिछाकर बैठना उचित है। जहां आप प्राणायाम करें वहां स्वच्छ वायु स्वच्छन्दतापूर्वक बहता हो। सूर्यप्रकाश पर्याप्त हो। भूमिसमतल हो। विघ्न उत्पन्न करने वाले कोई साधन न हों। दृश्य मनोहर और सुन्दर हो। मन प्रसन्न हो।

खड़े रहकर या बैठकर श्वासोछ्वास की भास्त्रिका क्रिया करें। बैठने में या खड़े रहने में कमर, शरीर, और सिर को सीधा समसूत्र रखने की ओर अधिक ध्यान देवें। बीस पच्चीस बार दाहिने नथुने से और उतनी ही वार बाएँ नथुने से जल्दी-जल्दी सांस फेकें और खीचें। फिर दोनों नथुने से उतनी वार श्वासोछ्वास की क्रिया करें। सांस छोड़ते और लेते समय ठीक उसी तरह आवाज और गति हो जैसी लोहार आदि के यहां लोहा आदि गर्म करते समय धोंकनी से हुआ करती है। अब बाहर की ओर सांस मत लीजिए। जहां तक सरलता से रोका जा सके रोकिए। फिर बहुत ही धीरे-धीरे सांस खींचकर अन्दर रोक लीजिये। जब तक सरलता से रोका जावे रोकिए और बाद में धीरे-धीरे उसे निकाल दीजिए। ऐसा चार-पांच बार नित्य कीजिए। जब तक आप सांस रोकने की क्रिया करें तब तक अपने गुदामार्ग को सिकोड़ कर ऊपर की ओर खींचने की क्रिया कीजिए। यह सिकोड़ने और ऊपर खींचने की क्रिया बार-बार करें। यह गुदसंकोचन और आकर्षण की क्रिया स्वप्नदोषरूपी मृग के लिए सिंह के समान है। गुदा के इस संकोचन-आकर्षण की क्रिया को "मूलबन्ध" कहते हैं।

भोजन में विशेष सावधानी बरतनी चाहिए। कोई भी गुरुपाक भोजन नहीं करना चाहिए। घी, या तेल में तले पदार्थ, मिर्च-मसाले, तेज खटाई, कब्ज करने वाले पदार्थ कभी नहीं खाने चाहिए। हरी पत्ती की भाजियां, मूङ्ग की दाल, विशेष रूप में उपयोग करना उचित है। फलों का और फलों के रस का पर्याप्त सेवन आवश्यक है। मूङ्गफली का अधिक प्रयोग उचित नहीं। विशेषतः रात्रि का भोजन बहुत ही हल्का और सुपच लेना अपेक्षित है। भोजन सूर्यास्त के पूर्व कर लेना ठीक होता है। सोने से ३-४ घण्टे पूर्व भोजन कर लेना उचित है। भोजन करके थोड़ी देर टहलना चाहिए और बांयी करवट कुछ देर लेटना चाहिए। भोजन करके नींद में सो जाना बुरा है। भोजन और नींद में कम से कम तीन घण्टे का अन्तर अवश्य रहना चाहिए। भोजन में और स्नान में कम से कम एक घण्टे का अन्तर आवश्यक है। इसी प्रकार पाखाना जाने के कम से कम आध घण्टे बाद भोजन करना चाहिए। भोजन तभी करना चाहिए जब कि आपके दाहिने नथुने से सांस चल रहा है।

भोजन के पूर्व दो-तीन घूंट जल पी लेना चाहिए और अन्त में भी इतना ही जल पिया जाय। यदि आवश्यकता हो तो भोजन के बीच में भी इतना ही जल पिया जा सकता है। बार-बार अधिक मात्रा में पानी पीकर खाए हुए अन्न को पतला बनाने और लार के उस भाग को भोजन के साथ पेट में गया है पानी में घोलकर खाद्य पदार्थ से अलग कर देने पर भोजन जल्दी नहीं पचता। अतएव भोजन के समय पानी का अधिक उपयोग न किया जाय। भोजन के बाद जब प्यास लगे तब यथेष्ट पीना चाहिए। जितना भोजन को चबाकर पेट में उतारा जायगा, वह उतना ही लघुपाक होगा। भूख रखकर खाने से भी भोजन जल्दी पच जाता है और पेट हल्का रहने से वीर्याशय आदि पर दबाव नहीं पड़ता। इसलिए स्वप्नदोष ग्रस्त व्यक्तियों को भोजन में अधिक सावधानी रखने की जरूरत है।

सायंकाल के समय कोई देशी या विदेशी ऐसा खेल खेलना चाहिए जिसमें हल्की दौड़ भाग के साथ हल्की सी थकान भी आजावे। यदि खेल संभव न हो अथवा अभिरुचि न हो तो टहलने को दूर तक जङ्गल में निकल जाना चाहिए, जो आगे कम से

कम चार पांच मील अवश्य हो। टहलते समय नाक के द्वारा दीर्घ श्वासोच्छ्वास किया जाय। टहलने में बातचीत करने से मुंह के द्वारा सांस लिया जाता है अतएव उस समय बातचीत कदापि न करें।

रात के दस बजे जरूर सो जाना चाहिए। देर तक जगने से निद्रा अव्यवस्थित होजाती है। इसलिये दस बजे निस्सन्देह सो जाना उचित है। सोने का स्थान ऐसा हो जहां स्वच्छ हवा स्वच्छन्दता से आती जाती रहे। किसी प्रकार निद्रा में बाधा न पहुँचती हो। सोने से पूर्व अपने अंडकोषों को दस मिनिट तक शीतल जल में रखो। यदि मूत्रेन्द्रिय भी रखी जाय तो और भी अच्छी बात है। किसी लोटे में शीतल जल भरकर उसमें अपनी मूत्रेन्द्रिय और अण्डकोष रखकर लोटे का मुंह मूत्रेन्द्रिय के आस-पास चिपका दो और लोटे को हाथ से थामे रहो। यह क्रिया उकड़ू बैठकर अच्छी तरह की जासकती है। इससे पानी भी नहीं बिखरेगा और क्रिया भी भली-भांति सम्पन्न होजावेगी। बाद में एक सूखे वस्त्र से गीले भाग को पोंछकर शीतल जल यथावश्यक पान करना चाहिए। इसके बाद पेशाब करके सो जाना चाहिए। निद्रा की इच्छा करने से, तथा शिथिलाङ्ग चुपचाप लेटने से निद्रा तत्काल आजाती है। यदि निद्रा न आती हो या नींद खुल गई हो तो फिर बिछौने में हरगिज न पड़े रहो। फौरन उठो और कोई काम करने लग जाओ। यदि कुछ भी काम न हो तो उत्तम पुस्तकें पढ़ो।

स्वप्नदोष के रोगियों को चित्त नहीं सोना चाहिए। इसका यह अर्थ नहीं कि चित्त कम सोना चाहिए क्योंकि प्रायः स्वप्नदोष चित्ते ही होता है। ज्यों ही नींद हल्की पड़े त्यों ही करवट से सोजाना चाहिए। बायीं करवट विशेष लाभदायक है। गहरी नींद में कभी स्वप्न नहीं आते। जब स्थूल शरीर से मन कारण शरीर में जाने लगता है, तब, जबकि वह शरीर में पहुँचता है स्वप्न आते हैं। सूक्ष्म शरीर में मन, आत्मा के संयोग से कल्पना की उड़ान भरता है। उस समय वह स्वच्छन्द विचरण करता है; जो जागृतावस्था में देखी या सुनी बातें होती हैं उन्हें साकार रूप देकर कभी-कभी अत्यन्त विकृतावस्था में उनका चित्र अपने सामने प्रस्तुत कर लेता है। कामी विषयी, इन्द्रियलम्पट व्यक्ति का मन वैसी ही कल्पना करता है जो उसे स्वप्नदोष का कारण बन जाता है। इसमें खान-पान शारीरिक स्थिति मन को सहायता पहुँचाती है। यदि पेट हलका हुआ तो मन की कल्पना सात्विक और तदनुकूल रहती है और भारी हुआ तो वह दबकर अनेक विकारों की कल्पना करने लगता है।

व्यक्ति के विचार यदि पवित्र हैं तो मन की कल्पनायें भी पवित्र होंगी और यदि उनमें विषय-वासना और कामुकता का प्राबल्य है तो फिर वैसी कल्पना बनकर परिणाम में स्वप्नदोष बनता है। अतएव प्रत्येक व्यक्ति को स्वप्नदोष से बचने के निमित्त जागृतावस्था में कामवासना के विचारों को मन में नहीं आने देना चाहिए और न ऐसे लोगों की संगति में ही रहना चाहिए। स्त्री-पुरुषों की प्रेम कथाओं का साहित्य ऐसे उपन्यास और प्रेमकलापूर्ण सिनेमाओं से दूर रहना चाहिए। सारांश कि आहार-विहार, विचार सर्वदा और सर्वथा पवित्र रखने का प्रयत्न करना चाहिए। यदि इनमें पवित्रता नहीं है तो कोई भी चिकित्सा लाभप्रद नहीं हो सकेगी।

मन की चञ्चलता पर काबू पाने के निमित्त यहां हम कतिपय आसनों की क्रियायें लिखते हैं। इन आसनों के करने से मन और मस्तिष्क का चाञ्चल्य दूर होकर स्थैर्य उत्पन्न होगा। आसन करने में ध्यान रखिए कि स्थान एकान्त, पवित्र, शुद्धवायु और प्रकाश-मय, खुला तथा नेत्रभिराम हो। आसन करने के लिए, चटाई, दरी, मृगचर्म, ऊन या दर्भ का आसन हो जो स्वच्छ और पवित्र हो। आसन करते समय दीर्घ श्वासोच्छ्वास किया जाय। मेरुदण्ड सीधा रखने के निमित्त कमर को न झुकने दिया जाय। आसनों को बलपूर्वक, थक जाने पर, कदापि न किया जाय। जरा भी कष्ट अथवा दुःखवेदना

होते की आसन बन्द कर दिया जाय। आसनों का अभ्यास धीरे-धीरे बढ़ाया जाय।

चित्र नं० २

सिद्धासन—पृथ्वी पर बिछाए आसन पर बैठकर बायें पांव की एड़ी गुदा और अण्ड कोष के मध्य की जगह पर दृढ़ता से जमादें। बाद में दायें पांव की एड़ी मूत्रेन्द्रिय के ऊपरी भाग पेडू पर जमादें। दोनों हाथों को घुटनों पर एड़ी पर मध्य भाग में रखिए। देख चित्र नं० २। इस समय मूलबन्ध अवश्य कीजिए। वीर्य स्थिर होजाने के बाद इस आसन का प्रयोग बन्द कर देना चाहिए। अन्यथा कामवासना का बिलकुल लोप होजावेगा। इस आसन से काम पर विजय प्राप्त की जा सकती है। इस समय यदि प्राणायाम किया जाय तो और भी अच्छा हो। इसे सरलासन भी कहते हैं।

भद्रासन—अण्डकोषों के नीचे सींवन के पास दाहने तर्फ अपने पांव की दाहनी एड़ी और बायीं ओर बांई एड़ी लगादें। पंजों का अग्रभाग पीछे की ओर मुड़ा रहेगा। इसके बाद पीठ की ओर निकले हुए पैरों के अग्रभाग को दोनों हाथों से पकड़ लें। अपनी दृष्टि को नासिका के अग्रभाग पर अथवा भृकुटि के मध्य स्थिर करदें। मूलबन्ध करें। यह बड़ा ही उपयोगी आसन है। समस्त वीर्यदोष नष्ट होजाते हैं। इसी का दूसरा नाम गोरक्षासन है।
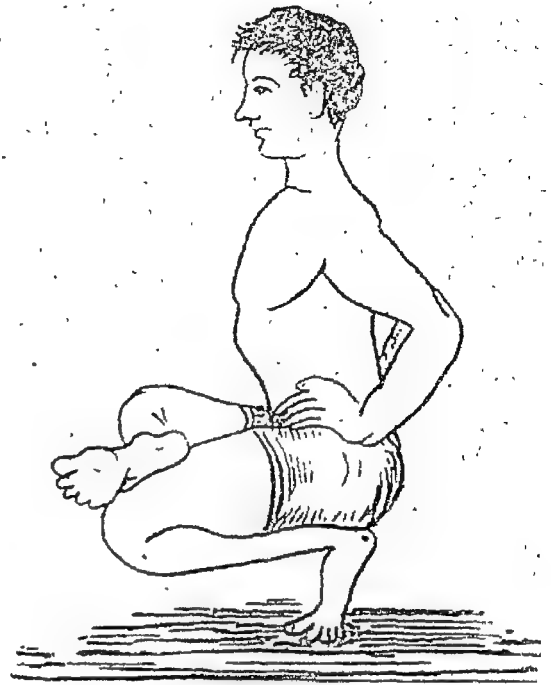
चित्र नं० ३

पादांगुष्ठासन—पहले आप अपने किसी एक पांव की एड़ी लिंग और गुदा के बीच में जमा कर पांव के पंजे के बल बैठ जाइए। तत्पश्चात् अपना दूसरा पांव उस पांव के जंघा पर रख दीजिए। दोनों हाथों को कमर पर रख दीजिए। देखो चित्र नं० ३। इसे इस प्रकार भी किया जा सकता है कि, जंघा पर रखने वाले पांव को सामने की ओर सीधा फैला दिया जाय। एड़ियों को हेर-फेर कर इसे करना उचित है अर्थात् पहले दायें पैर की एडी पर किया है तो फिर बायें पैर की एड़ी पर किया जाय। इसे स्त्रियां न करें। स्वप्नदोष जड़ से चला जावेगा। अधिक करने पर कामवासना नष्ट होजाती है।

शीर्षासन—एक कपड़े की गेंडुई बनाकर भूमि पर रख लेवें। दोनों हाथों को कुहनियों तक जमीन पर रख कर दोनों हाथों की अंगुलियों की कैंची बनालें। गेंडुई में अपना सिर रख कर, अपनी टांगें आकाश की ओर सीधी तान दें। यह शीर्षासन कहलाता है।

इसे करते समय मूलबन्ध अवश्य करना चाहिए। वीर्य रक्षा के अतिरिक्त इस आसन से शरीर के समस्त रोग दूर हो जाते हैं। इसे विपरीतकरणी मुद्रा भी कहते हैं।

योग मुद्रा—जमीन पर बैठकर, दाहने पांव की एड़ी पेड़ू के बांई ओर और बांयें पांव की एड़ी पेड़ू के दाहिनी ओर सटाकर बैठ जाइए। यह पद्मासन हुआ। अब दाहिना हाथ पीठ की ओर लेजाकर पीछे से बायें हाथ की भुजा कोहनी से ऊपर पकड़लें, इसी प्रकार बांयें से दाहिन भुजा को पकड़लें। इसके बाद अपना सिर, अपने ठीक सामने पृथ्वी पर धीरे से रखदें। देखो चित्र नं० ४। सिर के बाद नाक, और ठोड़ी भी रखी जा सकती है। मूलबन्ध करना आवश्यक है। यह योग-मुद्रा कहलाती है। स्वप्नदोष को इसके द्वारा नष्ट किया जा सकता है। यह मुद्रा सर्वोपरि मानी गई है। इसका अभ्यासी रोगमुक्त होकर दीर्घ-जीवी होता है।
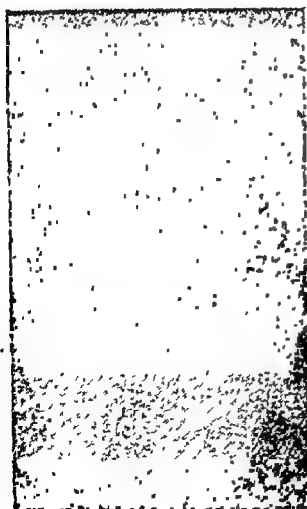
चित्र नं० ४

मूलशोधन—यह आसन नहीं एक क्रिया है। शौच से निवृत्त होने पर अपनी कनिष्ठका, मध्यमा, अथवा तर्जनी जो भी उपयुक्त हो उस पर शुद्ध गोघृत अथवा शुद्ध बादाम, तिल या खोपरे का तेल अच्छी तरह चुपड़ लें। बाद उसे अपने गुदा मार्ग में प्रवेश करके चारों ओर घुमादें। यह क्रिया मूलशोधन कहलाती है। बड़ी ही उपयोगी क्रिया है। स्वप्नदोष के रोगियों को इसे यथासमय हफ्ते में एक बार अवश्य करना चाहिए।

जो स्वप्नदोष पीड़ित तरुण हैं उन्हें हमारे इस लेख में वर्णित आसनों और क्रियाओं को करके लाभ उठाना चाहिए। दृढ़तापूर्वक निरन्तर कुछ महीनों के अभ्यास द्वारा स्वप्नदोष को जीवन भर के लिए नष्ट किया जा सकेगा।

पित्ताशयाश्मरी

पृष्ठ ८१३ का शेषांश

पथ्यापथ्य—

हलकी, जल्द पचने वाली चीजें खिलाना, पाव रोटी आग में सेंककर, खूब गर्म पानी में डुबोकर चीनी के साथ खाना चाहिये। भूना हुआ सेव (Roasted) इच्छा पूर्ण ठण्डा पानी, रोज खुली हवा में घूमना (खासकर घोड़े पर) आदि लाभदायक है। दर्द से बहुत व्याकुल हो जाने पर रोगी को खूब गर्म पानी पिलाना, गर्म पानी के टब में बैठाना और सरल आंत में यन्त्र के द्वारा बून्द-बून्द कर गर्म जल की धारा देकर लगातार भिजाते रहना (Rectalirrigation) दाहिनी कोख में गरम पोल्टीस लगाना आदि उपायों से दर्द बहुत कुछ कम होजाता है।

जिन वस्तुओं के खाने से ज्यादा शकर चर्बी या श्वेतसार और चूना बने उन चीजों को जितना ही न खाया जाये उतना ही अच्छा है और मांस, तेल की चीजें, मछली और सोडा रोगी को नुकसान पहुँचाने वाली हैं।

एक प्रश्न

अश्मन्तक क्या है?

प्रश्नकर्त्ता—वैद्याचार्य श्री० उदयलाल महात्मा।

पूज्य आचार्यों की सेवा में निवेदन है कि चरक अ० १ श्लोक ११३ में वर्णित 'वमनेऽश्मन्तकं विद्यात्' के अश्मन्तक का स्वरूप, अन्य भाषाओं के नाम, प्राप्ति स्थान आदि मेरी समझ में नहीं आये, न मिले, इसलिए आपसे विनय है कि आप इस पत्र द्वारा पूरा परिचय दिलाकर और होसके तो सचित्र वर्णन शीघ्र प्रकाशित कराने का कष्ट करें जिनसे वमन में इस द्रव्य का उपयोग वैद्य समाज कर सके।

मैंने इस बारे में निम्न ग्रंथों में निम्न बातें पाई हैं जो चरक वर्णित अश्मन्तकः की ओर भ्रान्ति ही पैदा करती हैं इसी वास्ते धन्वन्तरि कल्प मनिषियों से प्रार्थना है कि शीघ्र इसको असंदिग्ध बनादें।

वमनेऽश्मन्तकं विद्यात्स्नुही क्षीरं विरेचने ।
क्षीरमर्कस्य विज्ञेयं वमने स विरेचने ॥१३॥

चरक अध्याय १

भावार्थ—वमन में अश्मन्तक का दूध, विरेचन में स्नुही क्षीर (सेहुण्ड का दूध) तथा विरेचन और वमन दोनों में अर्कक्षीर (मदार का दूध) जानना चाहिए। अर्थात् वमन आदि कर्म में अश्मन्तक आदि के दूध का प्रयोग होता है।

चरकतन्त्रार्थदीपिका, जयदेव विद्यालंकारकृत चरक (जामनगर) द्वितीय भाग अध्याय १ श्लोक ११५ की अंग्रेजी व्याख्या में उन्होंने अश्मन्तक को (Heart leaved fig) लिखा है।

कैयदेव निघण्टु—अश्मन्तकः (कुद्दालकः कोविदार भेदः) हिन्दी नाम–सफेद छोटी कचनार। जिसको राजस्थानी में (झिम्फा) कहते हैं किया है और गुण कचनार तुल्य बतलाया है।

द्रव्यगुण शिक्षा (बंगला) संकलनकर्त्ता-कविराज नगेन्द्रनाथ सेन कलकत्ता के पृष्ठ १७ में अश्मन्तक (Colenus Amboinicus-Syn-Colenus Aromaticus.) बंगला में अश्मन्तक, देश भेद से पाथर कूचा, लोहाचूर, हिमसागर। हिन्दी नाम बताते हुए पाथरचूर कहे हैं। संस्कृत नाम पाषाण-भेदक बतलाया है। जो चरक वर्णित अश्मन्तक के नहीं हो सकते। इसमें चरक में वर्णित न तो क्षीर निकलती है न ये वामक ही है। इसी प्रकार कैयदेव वर्णित 'कोविदार' भी अश्मन्तक कदापि नहीं हो सकती।

नालन्दा शब्दकोषः—अश्मंतक अश्मन्तक, (संज्ञा पु०) (सं०) वर्णन में मूंज जैसी एक घास जिससे प्राचीन काल में ऋषि लोग करधनी या मेखला बनाते थे।

ये भी वर्णन चरक के गुण दर्शाने के अनुसार नहीं है। इसीलिए अनुसंधान प्रिय और उसमें लगे वैद्यों से पुनः प्रार्थना है कि आयुर्वेद के पत्रों द्वारा शीघ्र यथोचित स्पष्टीकरण करें।

शिंशिपा (शीशम)

लेखक—कविराज पं० युगलकिशोर द्वारिकाप्रसाद जी शर्मा आयुर्वेदशास्त्री, राजगांगपुर।

हिन्दी-शीशम; बंगाली-शिशुगाछ; शादागाछ; मराठी-कालशिशवा; गुजराती-शिशम; कर्नाटकी-करीयदपिड्डु; तैलंगी-जिहरे-गुचेट्टु; अर्बी-सासम; इंगलिश-Black Wood।

शीशम और उसका प्रयोग—

(१) शीशम के हरे पत्तों की चटनी बनाकर दिन में २-३ बार बांधने से कच्चे फोड़े शीघ्र ही शान्त हो जाते हैं। गर्म कर बांधने से पके फोड़े साफ करके भर लाता है, बहुत लाभदायक है।

(२) इसी प्रकार दाद पर बराबर तूतिया मिलाकर बांधना कुछ दिनों में ही लाभ करता है।

(३) शीशम के ताजे पत्तों की चटनी गंडमाला पर बांधना, गंडमाला को फोड़ कर मवाद निकाल व्रण कर साफ कर देता है।

(४) पाव भर शीशम के पत्ते २ सेर पानी में उबाल कर सेर भर पानी रहे, तब उतारकर छान इससे व्रण को धोना जख्म शीघ्र भर देता है। इसी जल के स्नान से शरीर की खाज नष्ट होती है।

(५) शीशम के ताजे पत्तों का पानी निकालकर बराबर की मिश्री मिला शरबत बनालें। और एक मास से छः मास तक के बच्चों को ४ माशे, छः से १२ मास के बच्चों को ६ माशा अर्क सौंफ तिगुना मिलकर पिलावें। बच्चों का सूखा रोग, कमजोरी, दुबलापन, नष्ट होता है, पूर्ण सिद्ध योग है।

(६) शीशम के पत्तों का रस १ छटांक गाय का दूध आधा सेर मिला गर्म कर और मिश्री मिलाकर सुबह शाम पीना मृगी रोग में लाभदायक है।

(७) शीशम के ताजे पत्तों का रस ६-६ माशा आधा-आधा घण्टे बाद पिलाने से हर प्रकार की वमन बंद होजाती है।

(८) शीशम के ताजे पत्तों का रस निकाल १४-१४ मिनट बाद पिलाना कठिन से कठिन हैजा में प्यास को शान्त कर बेचैनी दूर करता है।

(९) शीशम के २ तोले पत्तों का क्वाथ नमक मिलाकर पिलाना वायु गोला में उत्तम है।

(१०) शीशम के पत्ते गाय के तक्र में घोट कर पिलाना पेट के कीड़ों को नष्ट करता है।

(११) शीशम के पत्ते २ तोला कूटकर आध सेर पानी में उबालें जब आध पाव रहे छानकर ४ रत्ती कलमीशोरा मिलाकर सायं-प्रातः पीना, दर्दगुर्दा को १ सप्ताह में नष्ट करता है।

(१२) शीशम के ताजे पत्ते २ तोला पाखानभेद

२ तोला पानी में घोट दिन में २ बार पिलाना, पथरी नष्ट करता है।

(१३) शीशम के पत्ते २ तोला मिर्च काली १ माशा, २ छटांक पानी में घोट पिलावें, कुछ समय लगातार पीना मृगी पागलपन योपापस्मार को लाभदायक है।

(१४) शीशम के पत्ते ऊँट के लेड़ी (मेंगनी) पीसकर गर्म कर बांधना सेग की गांठ, रसौली को शीघ्र पकाकर फोड़ देता है।

(१५) शीशम के पत्ते ३ तोला कालीमिर्च १ माशा, घोट कर श्वेतकुष्ठ पर लेप करें, ३ घंटा बाद स्नान करें कुछ समय में अवश्य लाभ होगा।

(१६) शीशम के पत्ते ताजे छाया में सुखाकर बारीक पीस ६-६ माशा गाय के गर्म दूध से प्रातः-सायं लेना तिजारी, चौथाइया ज्वर को नष्ट करता है।

(१७) शीशम के पत्ते सुखाये हुए, बारीक पीसकर आधा हिस्सा मिश्री मिलाकर, रखें ६-६ माशा पानी के साथ प्रातः-सायं लेना बदहजमी को नष्ट करता है।

(१८) शीशम के पत्ते ५ तोला, पाव भर पानी में पीसकर १ माशा नमक मिला एक-एक चम्मच १५-१५ मिनट बाद पीवें हिचकी को नष्ट करता है।

(१९) शीशम के हरे पत्ते १-१ तोला, १० तोला पानी में घोट दिन में ३ बार पिलाने से दस्त बन्द होजाते हैं।

(२०) शीशम के पत्ते खुश्क किये बारीक पीस ६-६ माशा दिन में ३ बार पानी के साथ लेना, शोथ रोग, ज्वर, कुष्ठ को लाभ पहुंचाती है।

(२१) शीशम के ताजा पत्ते सूखा पीसलें, दोनों वक्त ६-६ माशा गाय के गर्म दूध से पीना, बांझपन को ३ माह में नष्ट करता है अव्यर्थ योग है परीक्षा करनो जरूरी है।

(२२) शीशम के पत्तों का चूर्ण ताजे पानी से ६-६ माशा प्रातः-सायं लेना प्रमेह को नष्ट करता है। विश्वासपूर्वक खावें, इस योग को मामूली न समझें।

(२३) इसी प्रकार खाने से मूत्रकृच्छ्र, बहुमूत्ररोग, मूत्राशय की कमजोर जाती रहती है।

(२४) शीशम के पत्तों का चूर्ण गाय के गर्म दूध से ६-६ माशा प्रातः-सायं लेना योपापस्मार को लाभदायक है।

(२५) शीशम के पत्तों का चूर्ण ६-६ माशा प्रातः-सायं गर्म दूध से पावभर में २ तोला एरण्ड तैल मिलाकर लेने से स्नायुशूल शीघ्र नष्ट होजाता है।

अमलतास (CASSIA-FISTULA)

लेखक—श्री पं० कृष्णप्रसाद त्रिवेदी B. A. आयुर्वेदाचार्य ।

(गतांस से आगे)

छोटा अमलतास (कर्णिकार)—

सारक, कडुवा, चरपरा, उष्ण, तथा कफ, शूल, उदर रोग, क्रिमी, प्रमेह, व्रण और गुल्मनाशक है। शेष गुण उक्त बड़े अमलतास जैसे ही हैं। इसके फूलों का गुलकन्द विशेष लाभदायक नहीं होता।

इसकी फली का गूदा गोमूत्र के साथ मिलाकर प्रलेप करने से वातरक्त, यकृतशोथ, प्लीहोदर, रक्तगुल्म, मूढ़गर्भ, खुजली, पामा, नाड़ीव्रण, नेत्र की शोथ तथा वातादि शोथ को दूर कर देता है।

इसकी छाल को गोमूत्र में क्वाथ कर शहद मिलाकर सेवन करने से जलोदर वातार्श मंदाग्नि ग्रहणी गुदा के क्रिमि आदि विकारों पर उत्तम लाभ होता है।

इसका गूदा और तुलसीपत्र समभाग १-१ तोला एकत्र मिला क्वाथ सिद्ध कर पीने से शरद ऋतु का विकृत ज्वर शीघ्र दूर होता है।

नोट—इसकी गिरी या गूदा फली में से निकालकर रखने से कुछ दिनों में ही गुणहीन होजाता है अतः जब आवश्यकता हो तब ही निकाल कर काम में लाना चाहिए। इसका क्षार कृमिनाशक है।

यूनानी मतानुसार—

पहले और दूसरे दर्जे में उष्ण, कोई इसे पहले दर्जे में गर्म तर या मातदिल मानते हैं। आमाशय के लिए हानिकारक है, हृल्लास को पैदा करता है, इस दोष को सुधारने के लिए इसमें रूमामस्तंगी या रूमी सोंफ (अनीसूं) मिलाना चाहिए। और अंतड़ियों में चिपकने के कारण यह मरोड़ पेचिस को पैदा करता है इस दोष को दूर करने के लिए इसमें रोगन बादाम (बादाम का तैल) या बादाम की गिरी अवश्य मिला लेनी चाहिए। एसा करने से मरोड़ पेचिस नहीं होने पाती, छाती का दर्द दूर होता है। बालक और सगर्भा स्त्री को भी यह निर्भयता से दिया जा सकता है।

यह अन्दर के उष्ण शोथों को लाभकारी है। कंठ शोथ,कंठ के अन्दर काक की सूजन (खुनाक) के लिए इसे मकोय या धनियां के काढ़े के साथ मिला कुल्ले करने से लाभ होता है। संधिवात और वातरक्त पर इसका लेप कराते हैं। उक्त खुनाक पर बकरी के दूध या आब-अंजीर के साथ मिला इसके कुल्ले कराने से भी लाभ होता है। इसे कासनीपत्र स्वरस मकोय, कसूम आदि उपयुक्त द्रव्यों के साथ सेवन कराने से यकृत पीड़ा (यकृत के अव-रोध), कामला और पित्त के ज्वर को लाभप्रद है। शरीर में संचित पित्त को दूर करने के लिए इसे इमली के साथ पिलावें। बलगम तथा सौदा के लिए इसे निशोथ तथा बसफाइज (कासनी आबशहतरा वर्ग वेद) के साथ देवें, आंतों के अवरोधों को दूर करने के लिए इसे अलसी या रोगन बादाम आदि लुआबदार वस्तुओं के साथ देवें।

पुष्प और पत्र में द्रावक (मुलत्तिफ़) गुण हैं कोई इनमें रेचन गुण को बतलाते हैं।

गूदे में सारक और ज्वरघ्न गुण हैं। डाक्टरी औषधि 'कास्करा-सिगरेटा' के बदले में यह दिया जा सकता है। गूदे को बसफाइज, कासनी रस, वेदपत्र और पित्तपापड़ा के साथ देने से वात निःसरण होकर यकृत के सुद्दे खुल जाते हैं। इसका गूदा मकोय के पत्तों के साथ पीस नाभी के नीचे लेप करने से मूत्र के साथ रक्त आने को रोकता है।

इसकी कच्ची फली की गिरी को पीस कर लेप करने से दाद छाले दूर होते हैं।

इसके पत्ते गर्म कर या पुल्टिस बना बांधने से अर्दित तथा गठिया से पैदा हुई छोटे २ जोड़ों की सूजन मिटती है और त्वचा की सुन्नता दूर होती है। पत्तों का काढ़ा

बना कान को धोने से पीब का बहना बन्द होता है तथा इसीसे उपदंश के जख्मों को धोने से वे सूख जाते हैं। दाद को कपड़े से खूब रगड़ कर इसके पत्तों का रस रोज कई बार लगाने से जल्दी ठीक होजाते हैं। इसके पत्ते और छाल को पीस तैल में मिला नाक की छोटी २ फुंसियों पर लगाते हैं।

छाल को औटाकर उसमें केसर, गुलाबफूल और मिश्री पीस कर मिला पीने से सुखपूर्वक शीघ्र प्रसव होता है। अथवा इसकी छाल के क्वाथ में केवल शक्कर मिला पिलाने से भी सुखपूर्वक प्रसूति होती है।

जड़—अमलतास की जड़ को मूली के स्वरस में घिस कर बत्ती बना, नासूर में भर देने से अति पुरातन नासूर भी अच्छा हो जाता है।

बीज—वमन कार्य के लिये बीजों का प्रयोग किया जाता है। इसके लगभग ५ बीजों को जल के साथ पीस कर क़ै कराने के लिए पिलाते हैं।

आधुनिक मतानुसार—

इसके गुदे, मूलछाल बीज और पत्र में रेचक गुण है। मूल की क्रिया रेचक बल्य और ज्वरघ्न है। केवल गूदे का ही प्रयोग जब बड़ी मात्रा में—२॥ तोला से ५ तोला या अधिक किया जाता है तब कहीं उसका पूर्ण प्रभाव होता है। इतनी बड़ी मात्रा रोगी को असह्य होती है अतः इसे अन्य रेचक औषधियों के साथ पाक या अवलेह रूप में दिया जाता है। इसे कॉफी के अर्क के साथ भी दिया जाता है। इसका पाक (Confection) या माजून दो से ४ ड्राम की मात्रा में मृदु रेचक है। इसे मधुमेह या बहुमूत्र में भी देते हैं। इसका गुलकन्द विशेषतः कोमल प्रकृति की स्त्रियों के लिए शीतल मृदुरेचक का काम करता है। मात्रा—१। तोला तक है। इसे सोते समय उष्ण दुग्ध से देते हैं। बालकों के आध्मानयुक्त उदरशूल में दस्त कराने के लिए इसके गूदे को नाभी के चारों तरफ लगाते हैं।

इसके फूलों का काढ़ा उदर-विकार पर दिया जाता है। इसके पत्तों और छाल को पीस कर और इसमें तेल मिला फुंसी धाव शीतजन्य हाथ-पैर की उंगलियों का कंडुयुक्त शोथ (chilblains) कीटक-दंश, अर्दित और आमवात पर लेप करते हैं। इसकी मूल ज्वर हृद्रोग अवरुद्ध स्राव और पित्त विकारादि पर लाभदायक है।

—डा. नाडकर्णी।

रक्त की उष्णता बढ़ने पर अथवा शरीर में मल संचय होकर वातरक्त आमवात आदि रोग होने पर अमलतास विरेचन रूप से दिया जाता है। पित्त की प्रधानता यदि हो तो इसे निशोथ के साथ तथा यकृत क्रिया में बिगाड़ हो तो मकोय के साथ देते हैं ज्वर की मलावरोध एवं आंत्र प्रदाह की दशा में यह हितकारी है।

कफ के कारण गलग्रंथि सूजने पर बड़ा कष्ट होता है, जल पीने में भी कष्ट होता है एसी दशा में इसकी छाल १ तोला को थोड़े जल में औटाकर उसमें से थोड़ा थोड़ा मुख के अन्दर डालते रहने से ग्रंथियों का शोथ दूर हो जाता है। वात-वाहिनियों के आघात से उत्पन्न अर्दित आदि वातरोगों में इसके पत्तों का रस पिलाया जाता है तथा पक्षाघात से पीड़ित स्थान पर मर्दन भी कराया जाता है। —डा० देसाई।

इसका गूदा १॥ भाग में शक्कर २॥ भाग मिलाकर देने से श्वास, उदक और पिष्ट-प्रमेह में लाभ होता है, तथा धातु पुष्टि होती है। इसका गूदा, काफी या मुर्गी के अण्डे की जर्दी के साथ भी देसकते हैं। गूदा और शक्कर समभाग का प्रयोग शर्करा प्रमेह (गुलूटीन), तथा पेशाब द्वारा खून के आने में किया जाता है। इसकी मूल का केवल चूर्ण रक्तातिसार में देना चाहिये।

कोकण में इसके कोमल पत्तों का स्वरस कृमिघ्न रूप से तथा भिलावे की विष विकृति (खराश आदि) के शमनार्थ उपयोग में लाया जाता है। पोर्तुगाल निवासी इसकी कोमल फलियों का एवं पुष्पों का माजून या पाक बनाते हैं। इसके वृक्ष में छेद देने से एक प्रकार का गोंद निकलता है, जो कतीरा के समान पानी में फूल जाता है। अमलतास के समान ही गुणकारी अन्य ब्रेझिल आदि देशों के पौधे केशिया ब्रेझिलिएना (Cassia-Braziliana) तथा केशिया मॉस्केटा (C. Moschata)

आदि भारतवर्ष में लगाये हैं। अमलतास का प्रयोग अधिक काल तक करने से गहरा धूसर वर्ण का मूत्र आने लग जाता है।

काफी के एसेंस में मिश्रण करने के लिये इसका गूदा काम में लाया जाता है। यह गूदा संग्रहणी रोग से ग्रस्त व्यक्तियों के लिये लाभकारी है। मात्रा—१५ से ४० रत्ती तक। —मेटिरिया मेडिका, खोरिकृत।

रासायनिक संगठन—

फली के बारीक चूर्ण का भवके द्वारा अर्क खींचने से मधु गंधयुक्त एक काले पीले वर्ण का उड़नशील तैल प्राप्त होता है। तथा इस तैल में जो जलीयअंश या अर्क होता है उसमें साधारण ब्युटिरिक एसिड Butyric Acid (यह बसामय उड़नशील एसिड है जिसमें सड़े हुये मक्खन जैसी दुर्गन्ध आती है यह एसिड मक्खन में प्रायः प्राप्त होता है) होता है। इसके गूदे में शर्करा ६० प्रतिशत तथा लुआब (Gum) संग्राही पदार्थ ग्लूटीन (Glutin) रंजक पदार्थ पेक्टीन, केलसियम आक्सलेट, भस्म और जल सम्मिलित रहते हैं।

मात्रा—

गूदे की मात्रा—सौम्य रेचनार्थ २ माशे से ६ माशे तक। विरेचनार्थ—१ तोला से ५ तोले तक। गूदे के क्वाथ की मात्रा ४ तोले से ८ तोले तक।
मूलत्वक क्वाथ की मात्रा—५ तोले से २० तोले तक।

सिद्ध-साधित प्रयोग—

(१) पाचकावलेह या चटनी—

अमलतास की पकी फली आधसेर तक या गूदा १ या १॥ पाव तक (फली को काटकर) एक सेर नींबू के रस में डालदें। २४ घंटे भीगने के बाद हाथों से मसल कर स्वच्छ वस्त्र में डालकर अच्छी तरह हिला-हिला कर छान लें। फिर इसमें धालचीनी सोंठ कालीमिर्च छोटी पीपर छोटी और बड़ी इलायची के दाने, दोनों जीरा (भूने हुए) प्रत्येक २-२ तोला सेंधा और कालानमक ५-५ तोला (कोई सेंधा २ तोला और काला नमक २ तोला लेते हैं) ये सब पीसकर मिला देवें। यदि इसे कुछ मीठा बनाना हो तो आध पाव मुनक्का पीसकर मिला दें। कोई इसमें १ तोला अकरकरा भी मिलाते हैं। फिर इसमें भूना हुआ कालादाना ७ तोला तथा भुनी हींग ६॥ माशे पीसकर मिलावें। बस यह स्वादिष्ट पाचक चटपटी चटनी बन जाती है।

मात्रा—३ माशे से १ तोला तक। इससे मंदाग्नि और आलस्य दूर होता है। रात्रि को इसे चाटकर सोने से प्रातः दस्त साफ होता है चित्त खूब प्रसन्न रहता है। भोजन में अरुचि होने पर दो घंटे पहले इसे चाट लेने से रुचि उत्पन्न होती है। प्रायः ज्वर में मुख का स्वाद बिगड़ा रहता है इसके चाटने से वह दोष दूर हो जाता है। इस अवलेह में यदि पके हुये अनार के दानों का रस मिलादें तो इसकी गरमी शांत होकर स्वाद और भी बढ़ जाता है। इसे किसी धातु के पात्र में न बनावें और न रक्खें। स्वादानुसार लवण को न्यूनाधिक कर सकते हैं।

(२) गुलकन्द अमलतास—

बड़े अमलतास के उत्तम फूल आध सेर लेकर पाथर या चीनी मिट्टी के हमामदस्ते में डालकर थोड़ी थोड़ी श्वेत शर्करा डालकर धीरे कूटते जाएं। जब १ सेर शर्करा उसमें मिल जाय और मिश्रण गुलकन्द जैसा हो जाय तब तैयार जानें। रंग में यह पीला होता है। कोई कोई गुलाब के फूलों के गुलकन्द के समान ही इसे भी तैयार करते हैं। छोटे बालकों को ४ माशा से ८ माशे तक, कोमलाङ्गी स्त्रियों को १॥ तोला तक, बड़ी अवस्था के पुरुषों को २ तोला से १० तोले तक इसे दे सकते हैं।

यह गुलकन्द मल मूत्र और वायु की रुकावट से उत्पन्न विकारों को शीघ्र दूर करता है। गर्भावस्था में स्त्रियों के दोषों को शान्त करने के लिए इसका विशेष सेवन कराया जाता है। यह कास श्वास और ज्वर में भी लाभकारी है। एक दस्त होकर साधारण ज्वर उतर जाता है। यह शुष्क कास को तर करता है। रात को सोते समय १ तोले या १॥ तोला इसे खाकर ऊपर से दूध या गर्म जल पीने से कोमल प्रकृति वाले को प्रातः साफ दस्त आजाता है।

(३) मुरब्बा अमलतास—

अमलतास की अधपकी फलियाँ जिनमें गंध का प्रादुर्भाव न हुआ हो लेकर छिलका दूर कर अन्दर का गूदा निकाल चूने के पानी में दो घंटे भिगो रक्खें। जब लाल वर्ण हो जाय तब उसे उक्त पानी से निकाल दो, तीन बार साफ जल से धोडालें। फिर दो गुनी मिश्री को गुलाबजल में घोलकर पकावें 'चासनी तैयार होने पर जब आवे तब उसमें उक्त धोये हुये गूदे को डाल दो तीन उबाल और देकर उतार लें। इसे सवासित करने के लिये किंचित् कस्तूरी तथा अम्बर मिला सकते हैं। यह कोठे को मुलायम करने वाला और उदरशूल-नाशक है।

(४) शर्बत अमलतास —

उन्नाबदाना ३० अंजीरदाना १० लिसोड़ा (लभेरा) दाना ४०, गावजुवां और हंसराज (हंसपदी) प्रत्येक ५ माशे मुलैठी छिली हुई २॥ तोले इन सबको जौकूट कर दो सेर जल में पकावें। एक सेर शेष रहने पर उसमें १० तोले अमलतास का गूदा घोलकर छान लें। फिर उसमें बादाम का तेल ३ तोले और मिश्री आध सेर मिला चासनी कर शर्बत बना लें। मात्रा—२ तोला से ४ तोला तक उष्ण जल में मिला पीने से फेंफड़ों को शुद्ध करता है पेट को मुलायम करता कास श्वास को मिटाता और बलकारी है।

(५) माजून अमलतास—

गुलाब के फूल और सनाय ७-७ तोला सूखा धनियां सतमुलैठी और सेंधा नमक १-१ तो. इन्हें महीन चूर्ण कर अलग रक्खे। फिर अंजीर १२ तो० इमली ८ तोला और आलू बुखारा ५ तोला इनको बरसात के दो सेर जल में २४ घटे भिगोने के बाद चौथाई अर्थात् आधा सेर जल शेष रहने तक पकाकर चलनी से छान लेवें। इस छने हुए जल में अमलतास १ पाव (२० तोला) गूदा भिगोकर कुछ मिनट तक मंदाग्नि की उत्ताप देकर उतार लें। और पुनः चलनी से छानकर उस पानी में उक्त उबले हुये अंजीर इमली और आलूबुखारा को खूब मसल कर मिला दें तथा १ सेर चीनी मिलाकर गाढ़ा होने तक पकावें। फिर उतार कर उसमें उक्त महीन किये हुये चूर्ण को मिला बादाम तैल ४ तोला मिला कर रक्खें, ध्यान रहे उक्त पकाने की क्रिया करते समय वह अग्नि में जल न जाय।

मात्रा—४ माशे से ८ माशे तक। यह अर्श रोगी के लिये बहुत लाभकारी है आंतों की रूक्षता को मिटाकर उदर रोगों को दूर करता है क्षुधावर्धक उदरवात हारक है। जी का मिचलना और घबराहट को दूर करता है। इसे रात्रि में सोते समय ताजे जल के साथ या दूध के साथ सेवन करें।

नोट—माजून के और भी कई प्रयोग हैं। यूनानी ग्रंथों में देखें।

(६) आरग्वधारिष्टः—

अमलतास का गूदा और जमालगोटे की जड़ (दंतीमूल) १-१ सेर लेकर प्रथम ३२ सेर जल में दंतीमूल का चतुर्थांश क्वाथ सिद्ध कर छानकर शुद्ध चिकने मटके में भर उसमें अमलतास का गूदा और गुड़ २॥ सेर तथा धाय के फूल काली मिर्च सोंठ और पीपल का चूर्ण ५-५ तोला मिला पात्र का मुख संधान कर एक मास तक सुरक्षित रक्खें फिर छानकर बोतलों में भर दें। मात्रा—१ तोले से २॥ तोला प्रातः सायं, उत्तम रेचक है। कोष्ठ साफ करता है. उदर गुल्मप्रमेह उदावर्त आदि के लिये विशेष लाभकारी है।

(७) आरग्वध पुष्पासव—

अमलतास के फूल ४०० नग और देशी पान का स्वरस ४० तोले एकत्र शुद्ध मटके में भर २४ घंटे रखने के बाद मसल कर साफ वस्त्र से छान चीनी मिट्टी के पात्र में भर उसमें गावजुवां मकोय मुलैठी चिरायता और दशमूल प्रत्येक का २५ प्रतिशत वाला अर्क+

+फल फूल पत्रादि शुष्क द्रव्यों में ६ गुना जल तथा शुष्क काष्टमय द्रव्यों में ८ गुना जल मिला २४ घंटे भिगोकर भवके द्वारा अर्क खींचें, जब अर्क द्रव्य से चौगुना खिंच आता है तब वह २५ प्रतिशत वाला कहलाता है।

आध आध सेर तथा मिश्री १॥ सेर मिला पात्र का मुख अच्छी तरह बन्द कर १ मास तक सुरक्षित रखने के बाद छानलें।

मात्रा—१ तोले से २॥ तोला तक शीतल जल के साथ अहोरात्र में चार बार देवें। यह श्वासरोग की सब दशाओं में लाभदायक है। (बृ. आसवारिष्ट संग्रह)

७ क्वाथ अमलतास—

अमलतास का गूदा, अतीस, नागरमोथा और कुटकी इनका चतुर्थांश क्वाय सामज्वर, शूल, वमन, दाह, कामला और रक्तपित्त ज्वर का नाश करता है। ग्रन्थों में आरग्वधादि क्वाथ के कई प्रयोग हैं। यूनानी लोग इसके क्वाथ में बादाम तैल मिलाया करते हैं।

६ तैल अमलतास—

अमलतास की जड़ ५ तोला शंखचूर्ण २ तोला हरताल २ तोला इनके कल्क और १॥ सेर गधे के मूत्र के साथ आध सेर कड़ुआ तेल सिद्ध करें, फिर इस तैल में चौथा भाग शंख और हरताल का चूर्ण मिला लेप करने से बाल उड़ जाते हैं और फिर उत्पन्न नहीं होते।

(रसरत्नाकर)

(अ) अमलतास के पत्ते पंवाड के पत्ते मेनसिल हल्दी कूठ दारुहल्दी पीपल और गंधक समभाग कल्क कर कड़ुवे तैल में पकाकर लगाने से फोड़ा-फुंसी दाद खाज आदि चर्मरोग दूर होते हैं।

(इ) आरग्वधादि गण के कल्क और क्वाथ से सिद्ध किया हुआ तैल कफोत्थ शोथ में मिलाया जाता है।

(योगरत्नाकर)

(ई) अमलतास की जड़ के क्वाथ (६ सेर) तथा गुंजा बावची और गंधक के कल्क के साथ (कल्क की प्रत्येक औषधि ४ तोला) मालकंगनी का तैल १॥ सेर सिद्ध कर मालिश करने सिध्म और उदम्बर कुष्ठ नष्ट होता है। (रस रत्नसमुच्चय)

नोट—यूनानी वैद्यक में कई प्रकार के माजून, मुलैयन मुबारक, लहूक, हिम, फांट आदि अमलतास के प्रयोग व्यवहार में लाए जाते हैं जिन्हें लेख विस्तार से हम यहां नहीं लिख सकते।

मुख्य प्रयोग (रोगानुसार)

१—विष्टम्भ या मलावरोध पर—

(अ) अमलतास समस्त रेचनीय औषधियों में सर्वोत्तम पाया गया है तथा यह समशीतोष्ण होने से ग्रीष्म ऋतु में विशेष लाभप्रद है। इसका गूदा २ तोले छटांक भर जल में घोल बादाम तैल ६ माशे (या ४ तोले बादाम की गिरी पानी के साथ पीस कर) मिला दें। इसके पीने सुखपूर्वक ३-४ दस्त होकर कोठा साफ़ होजाता है, खून की गरमी कम होजाती है। अथवा—

अमलतास का गूदा दो से चार तोले तक, आध पाव जल में, मिट्टी के पात्र में भिगो दें। फिर सनाय दो तोले बड़ी हरड़ का वकला ६ माशे, मुनक्का १५ दाने, खतमी-खुब्बाजी, बनफ़्शा, सौंफ, श्वेतचन्दन का बुरादा और गोरखमुंडी ६-६ माशे, तथा उन्नाब ७ दाने इनको आधसेर जल में अर्धावशिष्ट क्वाथ करें। और इस क्वाथ जल में उक्त भिगोया हुआ गूदा, तथा दो तोले इमली को ५ तोला जल में मल-छानकर मिला देवें; साथ ही साथ तुरंजबीन दो तोले, शीरखिश्त १ तोला, इन दोनों को अर्क गुलाब ५ तोला में घोलकर मिलालें, फिर गुलकन्द दो तोले मिला पिलावें। यह बादशाही मलावरोधनाशक प्रयोग बहुत ही उत्तम है। इसमें प्रत्येक दस्त पर अर्कमकोय और अर्कसौंफ आध-आध पाव यदि पिलाया जाय तो मेदा बिल्कुल साफ़ होकर खून-फ़िसाद की बीमारियों में बहुत लाभ होता है। अथवा—

अमलतास का गूदा १ तोला और बड़ी हरड़ का वकला ६ माशे, दोनों का आधे सेर जल में अष्टमांश क्वाथ सिद्ध कर, छानकर मिला पिलावें।

(आ) ज्वर की अवस्था में मलावरोध हो तो, द्राक्षारस, या गुलकन्द अथवा दूध के साथ इसके गूदे का प्रयोग करें। ध्यान रहे—यदि यकृत का पित्त तेज हो और गुदा में जलन होती हो, तो द्राक्षारस के साथ; यदि पित्त बहुत ही तीव्र हो गया हो, उसे निकालना हो तो दूध के साथ

इसका प्रयोग हितावह होता है।

(इ) ज्वर के दूर होजाने पर यदि विष्टम्भ हो तो इसका गूदा, कुटकी, निशोथ, सनायपत्र, बड़ी हरड़ की छाल, शुष्क गुलाब के फूल २-२ तोला (यदि गुलाबपुष्प गीले हों तो ४ तोला) और मुनक्का (बीजों को निकाल कर) ५ नग, और सब औषधियों से आधा गुलकन्द। इन आठ द्रव्यों में से अमलतास का गूदा, मुनक्का और गुलकन्द, इन तीनों को छोड़कर शेष चीजों को कूटकर चूर्ण करें, फिर इन तीनों को भी मिलाकर कल्क करलें। इस कल्क में से लगभग दो या ढाई तोले कल्क को, पाव भर जल में डालकर अवौट क्वाथ कर पीवें तो एक दो दस्त खुलकर होजाते हैं, उदर का दोष निःशेष होकर खूब क्षुधावृद्धि होती है। (रसायनसार)

अर्श के मलावरोध पर आगे 'अर्श पर' देखिए—

(२) अर्श पर—

(अ) अर्श के रोगी को प्रायः मलावरोध विशेष रहा करता है, तथा इसीसे कष्ट बढ़ कर रक्तस्राव होने की सम्भावना रहती है। अतः कब्ज और वेदना की विशेषता हो तो—इसका गूदा १ तोला हरड़ का छिलका ६ माशा और बीज निकाली हुई मुनक्का १ तोला एकत्र मिला आधे सेर जल में, अष्टमांश क्वाथ सिद्ध कर पिलावें। इस प्रकार प्रातः-सायं पिलाने से मलबद्धता दूर होजाती है। मस्सों की वेदना शान्त होकर वे मुलायम और सिकुड़ जाते हैं। इस क्वाथ को लगातार ३ या ४ दिन तक पिलाना आवश्यक है। यही क्वाथ ऊर्ध्व रक्तपित्त या नकसीर पर, मूत्रकृच्छ्र पर, और ज्वर के मलावरोध पर भी सफलता के साथ दिया जा सकता है। कोई-कोई शोथ पर भी इसी काढ़े में १ तोला पुनर्नवा मिलाकर उपयोग में लाते हैं, और शोथ स्थान पर अमलतास के पत्तों को गरम कर बांधते हैं। यदि अर्शस्थान पर विशेष शोथ हो तो इसी प्रकार प्रयोग करने से लाभ होजाता है।

कोई-कोई अर्श के मलावरोध पर उक्त क्वाथ में मुनक्का को न डालते हुए, केवल गूदा और हरड़ को ही उक्त प्रमाण में लेकर २४ तोले जल में उबालकर चतुर्थांश क्वाथ सिद्ध कर, उसमें ६ माशे गुड़ मिला पिलाते हैं। इससे ३-४ घण्टे में एक दस्त साफ आजाता है, तथा आंत्र के आकुंचन होने में सहायता मिलती है।

(आ) रक्तार्श की प्रधानता हो तो—इसका गूदा दो तोले लेकर १० तोला जल में मिला, आग पर थोड़ी देर रक्खें, रङ्ग उतर आने के बाद छानकर, उसमें घृत और सेंधानमक १-१ तोला मिलावें। फिर लवणभास्कर चूर्ण ३ माशे फंका कर ऊपर से उसे पिलाने से रक्तस्राव बन्द होजाता है। कुछ दिनों तक इसका सेवन जारी रखने से मस्से भी सूख जाते हैं। इससे वातार्श में भी लाभ होते देखा गया है।

अमलतास के फूलों को घृत में भून कर ३ से ६ माशे तक भोजन के साथ प्रथम ग्रास में खाने से भी मलावरोध दूर होजाता है।

(३) कास, श्वास तथा कफ के विकारों पर—

उक्त 'शर्बत अमलतास' अच्छा लाभकारी है। तथा श्वास पर 'आरग्वध-पुष्पासव' उत्तम है। अथवा—अमलतास का गूदा १० तोला को ६० तोले जल में मिला, मिट्टी के पात्र में रख ओस में रक्खें। प्रातः मल छानकर उसमें ईसबगोल की भुसी, बादामगिरी, आक (मदार) के पुष्प जो खिले न हों प्रत्येक २-२ तोले कूट पीसकर मिलावें, और आठ प्रहर खूब खरल करने के बाद कुल ८० गोलियां बनालें। प्रातः-सायं १-१ गोली बकरी या गाय के दूध से सेवन करने से श्वास में आशातीत लाभ होता है।

फेफड़ों में कफ का विस्तार हो तो—इसके गूदे को जल में मिला, उसमें तिगुनी मिश्री मिला चटनी बनावें, और इसे सौंफ के अर्क के साथ पान करें। यह प्रयोग फेफड़ों से कफ को निकाल देता है। अथवा—

इसके गूदे के साथ पाकड़ का फल अथवा गुड़ को पीसकर सुपारी जैसी गोलियां बना प्रतिदिन प्रातः-सायं उष्णोदक से लेवें। अथवा—

इसका गूदा और मिश्री समभाग एकत्र मिला खरल कर इसे दिन-रात में कई बार थोड़ा-थोड़ा चाटते रहने से आंतों तथा पसलियों में जमा हुआ कफ दस्तों के रास्ते

निकल जाता है। बालकों के कफ-विकार पर यह उत्तम लाभकारी है।

(४) शोथ पर—

(अ) कंठशोथ या गल-ग्रन्थि शोथ पर—अमलतास के वृक्ष की छाल या मूल की छाल १ तोला को जौकुट कर २० तोला जल में पकावें, चतुर्थांश शेष रहने पर बूंद-बूंद मुख में छोड़ें। रहने पर इसकी कुछ बूंदें अन्दर जाते ही लगभग ३ या ४ घण्टों में रोगी को बहुत ही शांति प्राप्त होती है, और कुछ ज्यादा बूंदें पेट में जाने पर दूसरे दिन गले की लाल ग्रंथि की सूजन (Acute tonsilitis) एकदम गायब होजाती है। गलपिण्डशोथ पर यह अप्रतिम प्रयोग है। विशेषकर छोटे बच्चों को जब यह विकार होजाता है, तब वह दूध, पानी वगैरा कुछ भी पी नहीं सकता, उसका कण्ठ अवरुद्ध होजाता है। डाक्टर लोग हताश होकर भयंकर आपरेशन आदि करने पर भी बालक के जीवन को नहीं बचा सकते। ऐसी दशा में उक्त प्रयोग चमत्कारिक लाभ करता है।

(आ) वृक्क (गुर्दों का) शोथ हो तो—इसका गूदा ३ भाग और अंजीर का रस १ भाग एकत्र मिला मृदु अग्नि पर पकाकर लेह बनाकर चटावें। मात्रा—१ तोला तक, प्रातः-सायं चटाने से गुर्दों की शोथ और शरबी दूर होती है।

किसी भी शोथ पर लेपार्थ—इसका गूदा और जव का आटा २-२ तोले, कपूर दो माशे तीनों को अलसी तैल १ तोला में खरल कर (अथवा अलसी बीज १॥ तोला मिला और जल के साथ खरल कर) और गरम करके लेप करें।

(इ) यकृत, प्लीहा की विकृतजन्य शोथ पर—

अमलतास के ताजे फूल १ तोला को सुहागा खील ३ माशे के साथ पीसकर, सुखोष्ण जल के साथ प्रातः साथ सेवन कराने से लाभ होता है।

(५) कुष्ठ, विसर्प, विचर्चिका आदि पर—

बड़ा अमलतास तथा छोटा अमलतास (कर्णिकार) की जड़ें २-२ भाग, धव, अर्जुन, सर्ज (राल का वृक्ष), पलास, कदम्ब, नीम, कुड़ा, अडूसा, खैर और मूर्वा प्रत्येक की जड़ १-१ भाग लेकर, एकत्र जौकुट कर आठ गुने जल में पकावें, अष्टमांस शेष रहने पर छानकर इसमें थोड़ा घृत मिला सेवन करें। अथवा—

अमलतास की जड़ २ सेर, जल १६ सेर मिला क्वाथ करें, ४ सेर शेष रहने पर इसमें १ सेर घी और १० तोले अमलतास की जड़ का कल्क मिला पकावें। घृत मात्र शेष रहने पर छानलें। उसमें पुनः उक्त प्रकार से क्वाथ और कल्क मिला पकावें। इसी प्रकार १०० बार पाक करने पर इस घृत की मात्रा—१ तोला तक, अनुपान—खैरसार का क्वाथ मिला सेवन करने से कुष्ठरोग शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। रोगी को इस प्रयोग के सेवनकाल में खैरसार का क्वाथ ही स्नान, पान के उपयोग में लाना चाहिए।

विसर्प पर—अमलतास के पत्ते, लिहसोड़े की छाल, सिरस के फूल और काकमाची समानभाग लेकर चूर्ण कर, पानी में पीस लेप करने से लाभ होता है।

(६) मासिकधर्म विकृति और प्रदर पर—

कष्टरज, रजःरोध या आर्तव खुलकर न आता हो तो—

(अ) अमलतास की छाल ६ तोले, तथा सोंफ, कुसम्भ के बीज ५-५ तोला और मजीठ ३ माशे, सबको जौकुट कर १। सेर जल में पकावें। १ पाव तक शेष रहने पर छानलें, तथा शर्बत बजूरी मिलाकर पिलावें। अथवा—

इसका गूदा १ तोला अखरोट के फल का छिलका, वायविडङ्ग, कपास के फूल की डोंडी प्रत्येक ७-७ माशे, गाजर के बीज, गोखरू, खरबूजा बीज, मूली बीज, कलौंजी ४-४ माशे, तथा बांस की गांठ ५ नग, सबको मिला, अष्टमांश क्वाथ सिद्ध कर पिलाने से ३ या ४ दिन में ही आर्तव खुलकर आता है। ध्यान रहे—गर्भावस्था की दशा में इसे कदापि न देवें। अथवा—

अमलतास गूदा ४ माशे, सोंठ और नीम की छाल ३-३ माशे, तथा गुड़ १ तोला, इन सबका चतुर्थांश

क्वाथ सिद्ध कर बराबर ३ दिन तक पीने से आर्तव खुल कर होजाता है, तथा कमर, सांथल आदि की पीड़ायें दूर होजाती हैं ।

(आ) प्रदर पर—

अमलतास के कोमल पत्र १ तोला (या २॥ तोला तक) कुचल कर स्वरस निकालें, फिर बबूल का गोंद २ तोला और कत्था २ तोला दोनों को थोड़े जल में भिगोकर उक्त स्वरस में मिला, १ तोला प्रातः और १ तोला सायं (या उक्त मिश्रण का आधा प्रातः और आधा शाम को) पिलाने से सर्व प्रकार के प्रदर दूर होते हैं । कम से कम ७ दिन पिलाना चाहिए ।

(७) ज्वरों पर—

(अ) यदि वातपित्तज्वर हो तो-इसका गूदा, मोथा, मुलहठी, खस, हरड़ दोनों हल्दी, पटोलपत्र, नीम की छाल, गिलोय और कुटकी का क्वाथ बना पिलावें ।

(आ) आम और शूलयुक्त कफवात ज्वर हो तो-इसके गूदे के साथ पीपलामूल, नागरमोथा, कुटकी और हरड़ का चूर्ण मिला क्वाथ सिद्ध कर पिलावें ।

(इ) शूल, वमन, दाह, कामला और रक्तपित्त युक्त ज्वर की दशा में- इसके गूदे के साथ अतीस, नागरमोथा और कुटकी मिला, क्वाथ सिद्ध कर सेवन करावें ।

(ई) आमज्वर तथा जीर्ण ज्वर हो तो इसके गूदे के साथ हर्र, कुटकी, निशोथ और आमला मिला क्वाथ सिद्ध कर सेवन करावें । यह प्रयोग 'आरोग्य पंचक' कहलाता है ।

(उ) वात या कफजन्य ज्वर हो, तो इसके गूदे के साथ पीपलामूल, नागरमोथा, चिरायता और हरड़ मिला क्वाथ बना कर पिलावें ।

(८) नाड़ीव्रण या नासूर पर—

अमलतास की छाल, हल्दी और तालमखाना इनके समभाग महीन चूर्ण में घृत और शहद मिलावें, फिर सूत में लपेट कर बत्ती बना नासूर में डालने से पहले का सवाव खारिज होकर निकल जाता है तथा नासूर धीरे-धीरे ठीक होजाता है । अथवा—

अमलतास मूल छाल के चूर्ण के साथ हल्दी और बेर की मज्जा का चूर्ण मिला, तथा उसमें शहद और घी मिला, सूत की बत्ती को भिगो, नासूर में रक्खें । यह व्रण को शोधन करने वाली तथा उसकी गति को नाश करने वाली है ।

(९) अण्डवृद्धि पर—

इसका गूदा १॥ तोले को १० तोला जल में पकावें । २॥ तोला शेष रहने पर छान लें, और उसमें ३ तोले घृत मिलाकर खड़े-खड़े ही कुछ गर्म गर्म पीने से लाभ होता है । लगभग ७ दिन यह प्रयोग करें ।

(१०) मूत्रकृच्छ्र पर—

इसके गूद के साथ, धमासा, धनिया, शतावर, पाषाण-भेद और हर्र सम भाग लेकर, चतुर्थांश क्वाथ सिद्धकर सेवन करने से लाभ होता है ।

(११) वातशूल पर—

इसका गीला गूदा, बीजरहित, १॥ या २ तोला लेकर एक छटांक घृत में डाल आग पर खूब भून लें, फिर घृत सहित उस गूदा को, पाव भर गरम गोदुग्ध में डाल दें । जब दूध कुछ ठंडा होजाय, तब उस गूद को मसल कर बाहर निकाल दें और उस दुग्ध में काली-मिर्च ६ नग पीस कर मिलालें तथा रोगी को पिलादें । इससे मरता हुआ वातशूल रोगी बच जाता है । (सिद्धयोगांक)

(१२) उपदंश पर—

इसके वृक्ष की जड़ पीस कर लेप करने से, तथा इसके गूद को ३ माशे प्रमाण प्रतिदिन नियम से एक सप्ताह पर्यन्त सेवन करने से, गलितउपदंश शीघ्र दूर होता है । उपदंश के साथ साथ या पश्चात् जो बद या गांठ उत्पन्न होजाती है, उस पर तिनिपतिया बूटी की जड़ की पुलटिस बांधने से ४ प्रहर में वह गांठ नष्ट हो जाती है । (वैद्य)

(१३) नकसीर (नासा रक्तस्राव) पर—

इसका गूदा और गुलाबफूल का गुलकन्द २-२ तो. एकत्र कर एक पाव जल में पकावें । १० या १५ तोला

—शेषांश पृष्ठ ८३५ पर देखें ।

सिद्ध औषधियाँ

लेखक—श्री० दारोगाप्रसाद मिश्र व्याकरण-सांख्य-योगाचार्य-काव्यतीर्थ
साहित्यशास्त्री, बी० ए० एम० एस० (स्वर्ण पदक प्राप्त)
प्रिन्सिपल-आयुर्वेद कालेज, मोतीहारी (चम्पारण)।

विषमज्वर में—

जब पसीना देकर ज्वर उतर जाय तब निम्न दवा का अतिशय लाभदायक प्रयोग हजारों रोगियों पर सिद्ध होचुका है।

सफेद धत्तूर के बीज	१ भर
लौंग	१ भर
कालीमिर्च	१ भर

को पानी से खूब महीन पीस कर मटर बराबर गोलियां बनाकर सुखाले। जब विषमज्वर रोगी का स्वाभाविक ताप होजाय तब एक एक घण्टे पर एक-एक गोली तुलसीपत्र स्वरस १ तोला में घोल कर पिलावे। प्यास लगने पर पानी नहीं देकर रोगी को गोदुग्ध और मिश्री घोलकर पिलावे। अगर चारों खुराक पड़ गया तो निश्चित ही ज्वर उतरा का उतरा ही रहेगा। वैद्यगण प्रयोग करें। निश्चित सफलता मिलेगी। चम्पारण उत्तर विहार में है। उत्तर विहार मलेरिया के लिये प्रसिद्ध स्थान है। रोगी को उपवास न करावें। बार्ली-रोटी की पपड़ी-विना घी-तेल का परवल-पपीता-सतपतिया-तोरी-सहिजन का रसा दें। धीदाना भी दें। सुसुम पानी पीने को दें।

व्रण—

व्रण पर अगर कोई दवा लाभ न करे तो निश्चित है कि निम्न तेल आरोग्य कर ही देगा। किसी भी तरह का घाव हो उस पर इस तेल का व्यवहार करें।

एक पाव सरसों के तेल में एक छटांक मुठिया सरिस (भूरकेंद गोन्दा) की सफेद गुद्दी को पकाकर बोतल में रखलें। किसी भी घाव पर इसे कौआ के पांख से लगावें; निश्चित घाव अच्छा हो जायगा। कार्बङ्कल तक आराम होता है। घाव पर इस तेल को लगावें पर पानी नहीं पड़ना चाहिये। पानी पड़ने पर घाव बढ़ जाता है। गलित कुष्ठ के व्रण पर भी प्रयोग किया गया है। उत्तमोत्तम दवा है। मेरे पूज्यवर राज्यवैद्य पितामह खटाई मिश्रः जी का यह योग है। ये टेकारी महाराज (गयानरेश के) वैद्य रह चुके हैं। इस योग का व्यवहार वृद्ध प्रपितामह सुदर्शन मिश्रः वैद्य के समय से ही चला आ रहा है। गयानरेश के प्रथम वैद्य यही थे। विहार के गया जिला में अभी भी बूढ़े लोग खटाई मिश्र जी का नाम जानते हैं। इस तेल को मेरे चाचाजी वैद्य पं० भगवत मिश्रः जी वातपित्त ज्वर के हजारों रोगियों को लगाने को देते हैं। निश्चित है कि ज्वर विनाबाधा के दूर हो जाता है। कर्णमूल का भय हो तो ५-५ बून्द दोनों कान में डालना चाहिये।

उपर्युक्त दोनों योग (विषमज्वर और व्रण वाले) २०० सौ वर्षों से मुझ शाकद्विपीय वैद्य के घर चलते आरहे हैं। मैं भी जब पटना गवर्नमेण्ट आयुर्वेद कालेज में प्रोफेसर था एवं इन्दौर राजकुमारसिंह आयुर्वेद कालेज में चरक का प्रोफेसर था तब प्रयोग किया हूँ और सफलता पाया हूं। ज्वर में तेल मर्दन का विधान नहीं है पर यह तेल तो अमृत तेल है। मुष्ट्यादितैल इसका नाम मैंने दिया है। इसको आंख में नहीं लगने दें। पुराने बुखार को निश्चित दूर कर देता है। यह तेल सूतिका ज्वर में भी लाभ करता है।

—क्रमशः।

—लेखक—

श्री ज्ञानचन्द जी वर्मा

पुरानी कोतवाली, रुड़की।

—०—

श्री वर्मा जी रुड़की में १६ वर्ष से चिकित्साकार्य कर रहे हैं। आपके निम्न पांचों प्रयोग अनेक रोगियों पर सफल प्रमाणित होचुके हैं। आशा है धन्वन्तरि के पाठक भी इनको व्यवहार कर अवश्य ही सफलता प्राप्त करेंगे।"

—सम्पादक।

१-सुजाक—

गुलाबजल	१ बोतल
सुहागे की खील	१ माशा
फिटकरी की खील	१ माशा
नीलाथोथा भस्म	४ रत्ती

विधि—इन तीनों दवाओं को गुलाबजल में डालदें और इसको खूब हिलादें, फिर बोतल को रखदें। दवा तैयार है।

सेवन विधि—इस बोतल से नितरा जल लेकर ६-६ माशे पानी की पिचकारी लगावें। इस तरह तीन बार करें। प्रारम्भ के दिनों में दिन में तीन बार इस जल की पिचकारी करें।

खाने की औषधि—४ रत्ती फिटकरी की खील पानी के साथ खाने को दें। दस १० दिन में आराम हो जायगा।

पथ्य—खाने को चावल, मूंग की दाल, गेहूँ का फुल्का दें। तेल, मिर्च, खटाई का परहेज।

२-संग्रहणी—

छोटी बेरी के पत्ते	१ तोला
भुना सफेद जीरा	४ माशे
भुनी हींग	३ रत्ती
सेंधानमक	६ माशे
गाय का मट्ठा	१ पाव

विधि—मट्ठे को छोड़कर उपर्युक्त सब औषधियों की चटनी पीसलें। इस चटनी को मट्ठे में मिलाकर

पिलादें। यह एक मात्रा है। ऐसे ही दिन में तीन चार मात्रा लेनी चाहिए।

गुण—संग्रहणी में बार-बार दस्त आने को रोकती है, और हाजमे को ठीक करती है। जो इस रोग से बिल्कुल सूख चुके थे और अपने जीने की आशा छोड़ चुके थे उनको इस प्रयोग ने जीवन दान दिया है।

३-पेचिश–

सोंठ	सौंफ	छोटी हरड

—प्रत्येक २-२ तोला

काला नमक	१ तोला

विधि—नमक को छोड़कर तीनों चीजों को घी में तल लिया जावे। नमक डालकर कपड़छान चूर्ण करलें।

सेवन विधि—६ माशे गर्म जल से प्रातः सायं फंकी लें। भोजन-खिचड़ी और दही। यह पेचिश को ४ दिन में समाप्त कर देती है। जो डाक्टरों के इन्जेक्शनों से थक चुके थे, उनको आश्चर्य-जनक लाभ हुआ।

४-बच्चों का डब्बा रोग–

लहसुन को फूंक कर भस्म बनाले। मात्रा २ रत्ती शहद के साथ चटावें, दिन में तीन-चार बार। डब्बा रोग ठीक हो जायेगा।

५-गर्भ रहने का परीक्षित चूर्ण–

हरड़ छोटी	६ माशे
ढाक की कली	१ तोला
माजूफल	५ दाने
चिकनी सुपारी	१ तोला
मिश्री कूजा की	४ तोला

विधि—इन सब दवाओं को कूटकर कपड़छान करलें। इस दवा की ४ मात्रा करलें।

सेवन विधि—मासिक धर्म से पांचवें दिन इसकी १ मात्रा प्रातः कच्चे दूध से सेवन करें।

नोट—सूर्य के सम्मुख स्नान के पश्चात् देवताओं में [illegible] की चौकट पर बैठकर इस फंकी को कच्चे दूध से लें। जहां तक हो सके दूध गाय का हो। फंकी समाप्त होने पर १२ वे दिन स्त्री अपने पति के पास जाये. ईश्वर ने चाहा तो गर्भ रह जावेगा। यदि पहिले महीने में गर्भ न रहे तो अगले दूसरे, तीसरे महीने इसी विधि से सेवन करादें।

अमलतास

(पृष्ठ ३३३ का शेषांश)

जल शेष रहने पर छानकर ठंडा होने पर पिलावें, शीघ्र ही नकसीर बन्द होती है, तथा इससे मूत्र के दाह में भी लाभ होता है।

(१४) लू लगने पर––

इसका गूदा दो भाग के साथ पाषाणभेद ३ माशा धमासा ४ मा० छोटी हरं ५ मा० और गोखरु ६ माशा इनका महीन चूर्ण मिला शहद के साथ पीसकर चटनी बना चटाने से शीघ्र लाभ होता है।

(१५) उदर कृमि पर––

इसका गूदा २॥ तोला में वायविडंग का चूर्ण ६ माशे मिला, चतुर्थांश क्वाथ सिद्ध कर, छान कर उसमें एरण्ड तैल दो तोला मिला प्रातः पिलाने से, ३-४ घंटे में मल के साथ सूक्ष्म उदर के कृमि झड़ जाते हैं। विरेचन के बाद रोगी को खिचड़ी खिलावें। आवश्यकता हो तो इस प्रयोग को ३-४ दिन तक दे सकते हैं। इससे कृमिजन्य अग्निमांद्य, उबाक, पाण्डुता, निर्बलता, खुजली, आलस्य, तन्द्रा, मन्दज्वर आदि सब शिकायतें दूर हो जाती हैं।

(१५) मधुमेह पर–––

इसका गूदा, अफीम की तरह आग पर पकाकर चने जैसी गोलियां बनाले। प्रातः सायं २-२ गोलियां जल के साथ सेवन करावें। पथ्यपूर्वक रहें।

(१७) बिच्छू के दंश पर––

इसके बीज को पानी में घिसकर दंश स्थान पर चिपका देने से शीघ्र लाभ होता है।

—लेखक—

श्री. वैद्य रायबहादुर जी सक्सैना

धर्मार्थ औषधालय, पचलख पो० गोरीकरन (कानपुर)

पिता का नाम –श्री केशवराम, आयु-३२ वर्ष, चिकित्साकाल १२ वर्ष,

"आपने पहिले पी० टी० सी० परीक्षा उत्तीर्ण कर अध्यापन कार्य अपनाया। पश्चात् श्री० पं० उमाशंकर शास्त्री आयुर्वेदाचार्य के प्रोत्साहन से आयुर्वेद भिषक् परीक्षा उत्तीर्ण कर चिकित्सा-कार्य प्रारम्भ किया है। इस समय भी अध्यापन कार्य से जीवकोपार्जन करते हुए अतिरिक्त समय में आयुर्वेद-चिकित्सा द्वारा जनता की सेवा में संलग्न हैं। आपके निम्न प्रयोग सफल प्रमाणित हैं।"

—सम्पादक।

१-उत्फुल्लिका–

यह बच्चों का प्रसिद्ध रोग है। बोलचाल में इसे डब्बारोग भी कहते हैं। इसके लिये ताजे सेंहड के डंडे पर भीगा कपड़ा लपेट कर पड़वा मिट्टी आटे की तरह गूँदकर उस डंडे पर थोप आग में पकावें। मिट्टी सूखने पर आग से निकाल मिट्टी आदि प्रथक करके सेंहड के डंडे का रस निकाले। इस प्रकार निकाले हुये ढाई तोले रस में जावित्री केशर अतीस व अहिफेन डेढ़-डेढ़ माशा तथा कालानमक आधा माशा मिलाकर रुग्ण बच्चे की पसलियों व हाथ-पैरों में मालिश करे, कान में डाले तथा ५ से १५ बूंद रोग व रोगी की अवस्था के अनुसार पिलाने से कुछ ही समय में लाभ प्रतीत होने लगता है।

२-वायुशूल–

अपान वायु के रुकने से उदर में एक महा कष्ट-दायक शूल उत्पन्न होजाता है जो प्रायः रुक-रुक कर होता है। इसके लिये ताजी सत्यानाशी मूलत्वक ६ माशा कालीमिर्च ७ अदद महीन पीस ४ तोला पानी में अर्द्धावशेष क्वाथ कर छान ले, उसमें १ माशा नौसादर तथा ४ रत्ती शंखभस्म डाल कुछ गर्म रहते ही पिला दे। आध-आध घण्टे में २ या ३ मात्रायें देने से ही शूल शान्त हो जाता है।

३-आंख आना–

नीम की कोंपल २॥ तोला चूल्हे की पकी हुई मिट्टी ६ माशा, कड़वे तेल के दिये की जली हुई बाती ६ माशा, साबित लौंग ७ अदद इन वस्तुओं को पीतल की थाली में पीतल के लोटे से कडुआ तेल डालकर २ दिन घोटे पश्चात् किसी डिब्बी में भरकर रखले। इससे आंखों की लाली, पानी बहना, कोये कटना, आंखों की पीड़ा व रोहे दूर होते हैं। इसे सुबह शाम अंगुली से अञ्जन की भांति लगाना चाहिए।

४-कास–

यों तो कास की विभिन्न अवस्थाओं में विभिन्न योग काम आते हैं। यह योग क्षयज, कास एवं शुष्क कास

पर अच्छा कार्य करता है। योग इस प्रकार है—उत्तम कत्था, मिर्चकाली, अजवार व मौरेठी तथा पीपल छोटी प्रत्येक आधा तोला बड़े अनार का वक्कल २ तो. जवाखार ३ माशा इन वस्तुओं के महीन चूर्ण में बीज निकले १० तोला मुनक्का डालकर भली भांति घोंटकर,झरबेरी के बराबर गोली बना लें दिन में दस पन्द्रह गोली चूसने को दें। यह वटी कास में तो लाभ करती ही है हैजे की उस अवस्था में जबकि रोगी को तृषा अधिक लगती है, पेशाब रुक जाता है, इस वटी को चुसाने से तृषा शान्त होजाती है एवं पेशाब रने में भी सहायक होती है। न्युमोनिया की अवस्था में जब प्यास अधिक लगती व सूखी आती है इस वटी के चूसने से लाभ होता है।

५-चिनग—

गर्मी के कारण बच्चों की बूंद-बूंद पेशाब बार आने लगता है,ऐसी दशा में अपामार्ग की जड़ १ तोला दूध में महीन पीस छानकर मिश्री मिलाकर पिलाने से चिनग अच्छी होजाती हैं।
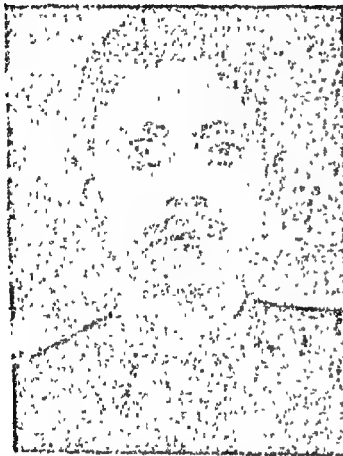
श्री पं. शरणगोपाल जी त्रिवेदी आयुर्वेदाचार्य,

मु० पो० जसो, तहसील—नागौद।

पिता का नाम—श्री राधिकाप्रसाद त्रिवेदी

"श्री०त्रिवेदी जी योग्य चिकित्सक हैं। आपने शिरःशूलनाशक ५ प्रयोग प्रकाशनार्थ भेजे हैं। इन प्रयोगों की आपने अनेक रोगियों पर परीक्षा करली है तथा सफलता प्राप्त की है। हमको विश्वास है कि पाठक इन सरल प्रयोगों से आवश्यकता के समय सफलता प्राप्त करेंगे।" —सम्पादक।

१—शिरःशूलान्तक जड़ी—

सहदेई की जड़ व पत्तों को ताजा लाकर शिर से बांधो, शिर दर्द तुरन्त दूर होजायगा।

२—आधाशीशीनाशक मन्त्र—

वन में ब्यानी वानरी उछर वृक्ष पर जाय।
खूद-खूद शाखान पर आधा तोड़े
आधा फोड़े आधा देय गिराय॥
हुंकारत हैं हनुमान जी आधाशीशी जाय।

नोट—उक्त मन्त्र को ग्रहण के समय रविवार पुष्य नक्षत्र में सिद्ध कर धूप-दीप का हवन कर १०१ बार सिद्ध करें।

३—आधाशीशी पर नस्य—

बकरी का दूध व बकरी का घी दोनों को एकदिल करलें और उसमें थोड़ी सी केशर मिलाकर नथुने से ऊपर को चढ़ावे। दाहिनी ओर दर्द हो तो बायीं ओर के नथुने से औषधि ले, और बांयी ओर दर्द हो तो दाहिनी ओर से। अवश्य लाभ होगा।

४—लेप—

केशर	२ माशा
चन्दन	आधा तोला
मुचकन्द के फूल	१ तोला
लवङ्ग	३ माशा

—पीसकर गोघृत १ तोला में मिलाकर लेप बनालें। मस्तक पर लेप करें। शिरःशूल में लाभदायक है।

५—श्वासकुठाररस की नस्य देने से शीत के कारण होने वाले सिर दर्द में शीघ्र लाभ होता है।

आयुर्वेदाचार्य डा० जे० बी० द्विवेदी M. D. H., B. I. M. S.

चिकित्साधिकारी—जिला बोर्ड आयु० चिकि० गोवर्धनी (फरुखाबाद)

"श्री० द्विवेदी जी स्वर्गीय वैद्यराज पं० गंगाधर जी शास्त्री के पौत्र तथा वैद्य पं० विद्यानन्द जी द्विवेदी के पुत्र हैं। आप गांधी चिकित्सालय पन्चपुखरा में प्रधान चिकित्सक तथा पन्चपुखरा आयुर्वेद कालेज फरुखाबाद के अध्यापक पद पर कार्य कर चुके हैं। इस समय जिला बोर्ड के प्रधान चिकित्सक हैं, प्रतिवर्ष सैकड़ों-हजारों रोगियों को स्वास्थ्य-प्रदान करते रहते हैं। आपके निम्न प्रयोग अनेक रोगियों पर सफल प्रमाणित हैं। पाठक लाभ उठावें।"

—सम्पादक।

—लेखक—

—दन्तीताल-योग—

व्य—गोदन्ती हरताल स्फटिका (श्वेत)
हीरा कसीस —तीनों ५-५ तोला।

र्माण विधि—तीनों औषधियां शुद्ध समभाग लेकर जम्बीरी नीबू के स्वरस में घोंटकर चक्रिका बना कर साया में सुखालें। भली-भांति सूख जाने पर गजपुट में रखकर फूंक ले। स्वांग-शीतल होने पर पीसकर रखले। लाल रङ्ग की भस्म तैयार हो जायगी।

त्रा—२ रत्ती से ४ रत्ती।

पयोग विषमज्वर में किरातार्क के साथ तज्जन्य मधुरिम ज्वर में गिलोयस्वरस के साथ। यह औषधि साधारण प्रकार के सभी ज्वरों में प्रयोजनीय है। विषमज्वरजन्य पाण्डुरोग में भी लाभ पहुँचाती है। तथा अर्श के लिए भी लाभदायक सिद्ध हुई है।

२—शूलान्तक—

व्य—सुहागा १॥ तोला
गोदन्ती फिटकरी प्रवाल
—तीनों ५-५ तोला
बोंडी का क्षार ४ तोला

निर्माण—उपरोक्त चारों द्रव्य शुद्ध ले गजपुट द्वारा फूंक कर पीसलें। बोंडी क्षार को भी साथ में पीसकर रखले।

मात्रा—२ रत्ती से ४ रत्ती।

उपयोग—शिरःशूल, वातजशूल, दन्तशूल आदि में मक्खन मिश्री के साथ। प्रतिश्यायजन्य मस्तिष्क पीड़ा में अच्छा लाभ पहुँचाती है। यह किंचित निद्राजनक है। ज्वरावस्था में भी दी जासकती है।

नोट—बोंडी क्षार के अभाव में गैरिकपिष्टी मिलाकर प्रयोग किया जा सकता है।

३—कर्णस्रावहर तैल—

द्रव्य कड़ुवा तैल धत्तूरपत्र स्वरस
नीमपत्र स्वरस बेलपत्र स्वरस
—प्रत्येक २०-२० तोला
हल्दी ५ तोला

निर्माण विधि—तैल पाक विधि से तैल पाक करें। इसमें १ तोला बोरिक एसिड डालकर २४ घण्टे बाद छानलें। बहते हुए कान को Hydrogine Parovide से साफ कर दिन में दो-तीन बार डालें।

नोट—बेल पत्र में जल डालकर पीसना चाहिए, तभी स्वरस प्राप्त किया जा सकता है।

४ —आयुर्वेदिक चाय—

शुष्क अदरख	१ तोला
बड़ी इलायची	१ तोला
द्रव्य—शुष्क तुलसीपत्र	१ तोला
कालीमिर्च लौंग दालचीनी	
लालचन्दन	आधा-आधा तोला।

निर्माण विधि—सभी द्रव्यों का जवकुट करके चाय की भांति उबालकर दूध मिला दें। यह अत्यन्त सुन्दर सुगन्धित स्वादिष्ट व स्फूर्ति को देने वाली सुमधुर आह्लादकर पेय है।

५ — नेत्रबिन्दु—

विधि—दारुहल्दी ऽ॥ लेकर जवकुट करें। उसमें ऽ२ जल डालकर उबालें। जब अर्धावशेष रह जाय तब छानलें। तब कपूर २॥ तोला पीसकर डाल दें। बस औषधि तैयार है। दृढ़ कार्क लगाकर हिलाते रहें, २४ घण्टे बाद प्रयोग में लावें।

गुण—आई हुई आंखों (Canjunctivitis) में दो-तीन वार दिन में डालना चाहिए। एक-दो-दिन डालने से आंखें बिल्कुल अच्छी होजाती हैं।

वैद्य पं० सोहनलाल जी शर्मा वैद्य-विशारद

दलालपुरा (पटियाला)

पिता का नाम— श्री. पं० गोरालाल जी वैद्यराज

आयु—२४ वर्ष चिकित्सा काल—४ वर्ष

प्रयोग—(१) पामान्तकजल, (२) अर्शोहर मलहम, (३) रक्तशोधकवटी, (४) श्वेतप्रदरहर पाक, (५) तृतीयक ज्वरहर योग

"श्री. वैद्य जी ने गवर्नमेंट आयुर्वेद कालेज पटियाला से वैद्य विशारद की परीक्षा उत्तीर्ण की है। आपके पिता योग्य एवं अनुभवी चिकित्सक हैं। उनसे ही आपने क्रियात्मक अनुभव प्राप्त किया है। आपके निम्न प्रयोग अत्यन्त सरल हैं और आशा है वे सफल भी प्रमाणित होंगे।"

—सम्पादक।

—लेखक—

१—पामान्तक जल—

गन्धक	३॥ तोला
चूना	५ तोला
पानी	५ सेर

—इन सबको पकाकर एक बोतल में रखें।

गुण—इस जल को रुई के साथ पामा तथा दाद पर लगावें।

२—अर्शोहर मलहम—

काफूर (कपूर देशी)	६ माशे
कत्था	२ तोला

—इनका चूर्ण कर १५ तोले मक्खन में मिलाकर रखें।

गुण—अर्श पर अत्यन्त लाभकारी है। तथा खाज की पिडकाओं को भी दूर करती है।

३–रक्तशोधक वटी–

रसौत	गुग्गुल	५-५ तोला
गिरी निम्ब		७० दाना

—इन सबको कूटकर १-१ माशे की बटियां बनायें।

मात्रा—१-२ गोली प्रातः सायं। अनुपान—जल।

गुण—रक्तविकारों पर लाभकारी है।

४–श्वेतप्रदरहर पाक—

समुद्रशोख पलास का गोंद
गोखुरू बबूल की फली मोचरस
—पांचों ६-६ माशे

मुसली श्वेत लोध पठानी
पान की जड़ तीनों १-१ तोला
गौघृत खांड —दोनों १-१ पाव

निर्माण—इसका चूर्ण कर, घृत में भूनकर शीतल होने पर खांड मिला दें।

मात्रा—६ माशे से १ तोला। अनुपान—गाय दूध।

गुण—श्वेत प्रदर को शीघ्र दूर करता है।

५–तृतीयक ज्वरहर योग—

अ—१ पाव स्फटिका भस्म को निम्ब के स्वरस की तीन भावना दें, और शुष्क करलें।

मात्रा—२ रत्ती से ४ रत्ती तक।

गुण—यह भस्म तृतीयक ज्वर रोगी को ४ घण्टे पहले १-१ घण्टे बाद ३ मात्रा देवे। बारी का ज्वर तुरन्त लाभ होता है।

आ—अतीस चूर्ण १ तोला, स्फटिका भस्म १ तोला मिलाकर शीशी में रखें।

मात्रा—२ रत्ती से ४ रत्ती तक।

गुण—तृतीयक ज्वर पर लाभकारी है।

इ—तृतीयकज्वरहर चूर्ण—

भांग का चूर्ण गेरू नवसादर
—तीनों २-२ तोला।

—इनको बारीक करके शीशी में रखें।

मात्रा—२ रत्ती से ४ रत्ती तक।

गुण—तृतीयक ज्वर पर लाभकारी है।

ई—तृतीयक ज्वरनाशक तैल—

तिल तैल	१ पाव
रसोन (लहसुन) का कल्क	१ तोला

—इनको पकाकर तेल सिद्ध करें।

गुण—इस तेल को तृतीयक ज्वर, रोगी के कान में डालें।

समाचार एवं सूचनाएँ

श्री शंकरदाजी शास्त्रीपदे पुरस्कार

श्री शंकरदाजी शास्त्री पदे आयुर्वेदिक पुरस्कार की प्रतियोगिता में गत वर्ष ७ पुस्तकें आयी थीं। निर्णायकों के बहुमत से 'नाड़ीतत्वदर्शन' के रचयिता पण्डित सत्यदेव वाशिष्ट को पुरस्कार देना निश्चित हुआ है। विलम्ब से निर्णय होने के कारण इस वर्ष त्रिवेन्द्रम आयुर्वेद महासम्मेलन के समय इसका देना सम्भव नहीं हुआ। किसी उपयुक्त अवसर पर यह ५००) का पुरस्कार प्रदान किया जावेगा।

—श्री. पं. जगन्नाथप्रसाद शुक्ल, प्रयाग।

\+ \+ \+

आयुर्वेद छात्रों के लिये शुभ सूचना—

आयुर्वेद का उच्च शिक्षण कार्य करता हुआ 'श्री सनातन धर्म आयुर्वेद महाविद्यालय बीकानेर' अपने ११ वें वर्ष में पदार्पण कर चुका है। नवीन छात्रों का प्रवेश १ जोलाई को होगा। सुयोग्य और असमर्थ छात्रों के लिये विद्यालय की ओर से भोजन निवास,रोशनी तथा जल की निःशुल्क सुव्यवस्था की जाती है। छात्रों को अपने आवेदनपत्र शीघ्र प्रिन्सिपल के पास भेजने चाहिये तथा आवेदन पत्र की स्वीकृति के बाद १ जुलाई को विद्यालय में उपस्थित होना चाहिये।

– श्री. दीनानाथ वैद्य

—व्यवस्थापक।

× × ×

देहरादून में आयुर्वेद शिक्षा की उन्नति

गत वर्षों से आयुर्वेद सेवा सदन देहरादून के अन्तर्गत संचालित आयुर्वेदिक कालिज बोर्ड आफ इण्डियन मैडिसिन उत्तर प्रदेश के ७ वर्ष सहायक वैद्य एवं गृह स्वास्थ्य विशारद, ४ वर्ष बी० आई० एम० एस० कोर्स की शिक्षार्थी द्वारा जनता और देश की सेवा करता आ रहा है।

समशीतोष्ण पर्वतीय प्रदेशस्थ इस देहरादून नगर के उत्तम जलवायु प्रभाव से यहां प्रत्येक शिक्षार्थी के स्वास्थ्य और सौंदर्य में स्वभावतः विकास होजाता है। देहरादून जड़ी-बूटियों का उत्पत्ति स्थान, विश्वविख्यात विशाल वन अनुसंधानशाला, राजयक्ष्मा सेनोटोरियम, कुष्ठ चिकित्सालय, दून सिविल हास्पिटल प्रभृति गवर्नमेन्ट संस्थायें तथा देहरादून म्युनिसिपल बोर्ड संचालित सुप्रसिद्ध जच्चा-बच्चा एवं संक्रामक रोग हास्पिटल के अतिरिक्त ४ आयुर्वेदिक ३ एलोपैथी यूनानी जैसे उपयोगी सार्वजनिक चिकित्सालय होने से आयुर्वेदिक कालेज शिक्षार्थियों को प्रैक्टीकल ट्रेनिंग लाभ अनायास और सुगमता से मिलता रहता है। आयुर्वेदिक कालेज देहरादून की उन्नति में उपरोक्त प्राकृतिक कारण अत्याधिक महत्वशाली हैं।

इस वर्ष कालेज ने अपनी आवश्यकता तथा जनता की सेवा भावना से एक उत्तम फार्मेसी और (२० आयुर्वेदीय मेडिसन १० शल्यकर्म सर्जिकल) ३० रोगी शैयाओं के इण्डोर हास्पिटल का संचालन कर दिया है। साथ ही साथ स्वतन्त्र महिला आयुर्वेदिक कालेज, आयुर्वेदिक सैनोटोरियम, वनस्पति उद्यान, अनेक विधि उपयोगी औषधि उपज की कृषि व्यवस्था, फारेस्ट रिसर्च संस्था में ही आयुर्वेद अनुसंधान कार्य आरम्भ व्यवस्था हेतु प्रान्तीय और केन्द्रीय गवर्नमेन्ट सम्बन्धित उच्चतम अधिकारियों से पत्रव्यवहार होरहा है। प्रसन्नता का समाचार है कि स्वतन्त्र महिला आयुर्वेदिक कालेज, वनस्पति उद्यान, जड़ी बूटी कृषी उत्पत्ति योजनाओं की अन्तिम स्वीकृति अति शीघ्र अगस्त ५५ तक प्राप्त हो जाने की पूर्ण आशायें हैं। आयुर्वेदिक कालेज देहरादून की उपरोक्त चहुँमुखी विस्तृत योजनाओं

का अनुभव करते हुए देहरादून में "आयुर्वेद यूनीवर्सिटी" की स्थापना सम्बन्धी वातावरण की स्वयमेव जागृति होती जारही है।

कालेज वार्षिक ग्रीष्मावकाश में नवीन शिक्षार्थियों का प्रवेश कर रहा है जिसकी नियमित शिक्षा जुलाई ५५ से प्रारम्भ करदी जायेगी। कालेज सम्पूर्ण प्राचीन शिक्षार्थी यथा समय आयुर्वेदिक कालेज १५ ई० सी० रोड देहरादून नवीन बिल्डिंग में उपस्थित होजायें।

प्रिन्सिपल—आयुर्वेदिक कालेज, देहरादून।

× × ×

मुरादाबाद नगरपालिका के कृत्यों के प्रति घोर असंतोष

मुरादाबाद २४ मई। स्थानीय टाउनहाल के मैदान में दिनाङ्क २४ मई ५५ को नगर वैद्य सभा तथा अंजुमन तिब्बिया की ओर से एक पबलिक जल्सा किया गया जिसमें एक प्रस्ताव द्वारा म्युनिसिपल बोर्ड द्वारा संचालित आयुर्वेदीय और यूनानी चिकित्सालयों के बन्द किए जाने पर बोर्ड के प्रति घोर असंतोष व्यक्त किया गया। बोर्ड के इस कृत्य की भर्त्सना की गई और म्युनिसिपलबोर्ड तथा नगर के उच्चाधिकारियों से प्रार्थना की गई कि इस बारे में पुनः विचार करें और जनता के हित में शीघ्र आवश्यक कार्यवाही करें। बोर्ड के इस कृत्य से नगर के हित की महती क्षति हुई है तथा जनता बहुत असन्तुष्ट है। भारतीय चिकित्सा पद्धति की महान् एवं अनुपम विशेषताओं का भी वर्णन किया गया। जनता ने मन्त्र-मुग्ध होकर ३ घण्टे तक भाषण सुने। सर्वश्री वैद्यराज पं० भोलादत्त जी पन्त, मनुदत्त जी शास्त्री, वैद्यराज सुदर्शन जी शास्त्री देहरादून, मास्टर रामकुमार जी, डा० बी० एम० भट्टाचार्य, राममोहन लाल जी एडवोकेट आदि वक्ताओं के ओजस्वी और सामयिक भाषण हुए। जल्से की अध्यक्षता भू० पू० म्यूनिसिपल कमिश्नर श्री जगन्नाथ जी सिंहल ने की। नगर के अनेक गण्यमान्य व्यक्तियों ने उपस्थित हो कर अपनी सहानुभूति प्रदर्शित की।

प्रस्ताव—

आज दिनाङ्क २४ मई ५५ की यह सर्वसाधारण की मीटिंग म्युनिसिपल बोर्ड द्वारा संचालित आयुर्वेदिक और यूनानी दवाखाने बन्द करने के निर्णय पर घोर असन्तोष प्रकट करती है और बोर्ड के इस लोकहित विरोधी कार्य को घृणा की दृष्टि से देखती है। म्युनिसिपल बोर्ड के इस निश्चय से सर्वसाधारण के हृदय को बहुत आघात पहुँचा है इसलिये आज की यह बैठक म्युनिसिपल बोर्ड के अधिकारियों से आशा करती है कि वे अपने निर्णय पर पुनर्विचार कर उसे तत्काल बदल दें और जिलाधीश महोदय से भी सानुरोध प्रार्थना करती है कि वे अपने विशेष अधिकार द्वारा इन भारतीय चिकित्सा पद्धति-आयुर्वेद और यूनानी के चिकित्सालयों को पूर्ववत् ही खुले रहने के लिए निर्णय दें।

हम यह भी निवेदन करेंगे कि उक्त चिकित्सालयों के संरक्षण के साथ साथ इन्हें अधिकाधिक साधन-सामग्री एवं आधुनिकतम सुविधायें भी प्रदान की जायँ।

\+ \+ \+

ग्राम पंचायतों में
स्वास्थ्य स्वावलम्बन
जनता और सरकार के सहयोग द्वारा सम्पन्नता की प्राप्ति सम्भव !

१—ग्राम पञ्चायत की जनता एक एकड़ भूमि दान दे और ग्राम पञ्चायतों के नाम लिख दे। उसमें जलवायु और आवश्यकता के अनुसार अनुभूत जड़ी बूटियां रोपी जायँगी। बनस्पतियों के नीचे उनके प्रयोग का विधान लिखा रहेगा। भैषज्योद्यान की सम्पन्नता के लिए श्रमदान प्रधान साधन रहेगा।

२—उद्यान में ही एक औषधालय रहेगा जिसका निर्माण खर्च आधा सरकार देगी तथा आधा खर्च पञ्चायत से लिया जायगा। उसके चिकित्सक निःशुल्क कार्य करेंगे। औषधालय में या उनके घर

जाकर रोगियों को देखेंगे। चूंकि मनुष्य के दोष दूष्य तथा व्याधियों के समान ही पशुओं के दोष दूष्य एवं व्याधियां होती हैं, इसलिए न्यूनाधिक मात्रा के प्रयोग द्वारा पशुओं की चिकित्सा भी उन्हीं को करना होगा। उदाहरणार्थ–बकरी भेड़ों के लिए मनुष्य के समान मात्रा, गाय और घोड़े के लिए दूनी भैंस, ऊंट के लिए तिगुनी और हाथी के लिए चौगुनी मात्रा होनी चाहिए।

३—शारीरिक स्वस्थता के लिए एक व्यायाम-शाला और मानसिक स्वस्थता के लिए गांधी, विनोबा साहित्य और तत्सम अन्य साहित्य का वाचनालय होगा। चिकित्सक उसके सदुपयोग का प्रबन्ध करेंगे।

४—परिवार के सदस्यों के अङ्ग-प्रत्यगों के उपचय और अपचय की एक पुस्तिका होगी उसकी वृद्धि ह्रास को साम्यावस्था में लाने की चिकित्सा की जायगी। वर्ष में तीन वार चिकित्सक परिवार के स्वास्थ्य का परीक्षाफल उसमें अङ्कित कर आवश्यकतानुसार उसकी चिकित्सा कर देंगे। ऐसी व्यवस्था का खर्च परिवार को वहन करना होगा।

५—बिहार सरकार का राजस्व १२ करोड़ रु० है यदि उसमें प्रति रुपया दो आने की वृद्धि कर दी जाय तो डेढ़ करोड़ रुपये आय होंगे। बिहार की जन संख्या चार करोड़ है, प्रति व्यक्ति दो आने वार्षिक स्वास्थ्य कर लगा देने से पचास लाख रुपये उपलब्ध होंगे। इस प्रकार दो करोड़ रुपया में राज्य के आबाल वृद्ध नर नारी और पशु वर्ग के स्वास्थ्य का संरक्षण सर्वतोभावेन निःशुल्क सम्पन्न होजाता है और ग्रामवासियों की शारीरिक एवं मानसिक शक्ति का कल्याणकारी स्तर भी ऊंचा होजाता है।

६—धन संरक्षण और बेकारी की भी समस्या कुछ सुलझ जाती है। [illegible] टहलने का स्वास्थ्य-प्रद साधन होजाता है। तथा उसमें चिकित्सा का साधारण ज्ञान भी प्राप्त होजाता है।

७—ए० एम० एस०, बी० ए० एम० एस०, आयुर्वेदाचार्य और सरकार द्वारा स्वीकृत अन्यान्य संस्थाओं के आयुर्वेदाचार्यों से चिकित्सकों की संख्या पूरी हो जायगी। महाविद्यालयों को बन्द नहीं रखने से चार पांच वर्षों की पढ़ाई दो तीन वर्षों में समाप्त हो जायगी और इस प्रकार शेष संख्या पूरी करली जायगी। पञ्चवार्षिक योजना में पांच वर्षों का समय मिलता है इसलिए संख्या की कमी का कोई भी प्रश्न नहीं उठेगा।

(८) बिहार की जनसंख्या ४ करोड़ है आय राजस्व वृद्धि से डेढ़ करोड़ और पञ्चायतों से स्वास्थ्य-कर पचास लाख कुल योग दो करोड़ अर्थात् प्रति व्यक्ति आठ आने खर्च पड़ेगा। साधारणतः प्रत्येक ग्राम पञ्चायतों की जनसंख्या पांच सहस्र होती है उसमें ढाई सहस्र रु० प्रत्येक पञ्चायत के भाग में वार्षिक खर्च पड़ेगा।

औषधालय के खर्च का विवरण इस प्रकार है

चिकित्सक का वेतन—१५०) प्रति मास।
१ वर्ष का वेतन—१८००) रु० होंगे।
व्यवस्था खर्च—२००) रु० वार्षिक।
औषधि के लिए—५००) रु० वार्षिक।

कुल – २५००) रु०

इस प्रकार दो करोड़ आय में चार करोड़ नर-नारी एवं पशु वर्ग की चिकित्सा सुसम्पन्न होजाती है। उपर्युक्त विवरण से बिहार सरकार के स्वास्थ्य विभाग के पत्रांक ११३७६ तिथि २२-४-५५ का भी समाधान होजाता है।

(९) मन्त्री-गण पर "नराणां च नराधिपम्" भगवान की वाणी के समान ही कल्याण करने का दायित्व है। इसे निभाने में तन मन बुद्धि विवेक विचार लगा कर यथा शीघ्र करने का कष्ट करें। उपर्युक्त मार्ग पसन्द न हो तो पैसे प्राप्ति का दूसरा मार्ग निकालिए अथवा स्वास्थ्य और चिकित्साविभाग के खर्च का आधा इसमें देने की दया कीजिए।

हे ग्राम पञ्चायत के अधिकारियो और लोगो !

उक्त कल्याणकारी योजना चालू करने में सरकार का सहयोग कीजिये और उसे करने के लिए विवश भी कीजिये।

निवेदक—
भृगुरायाश्रम मिश्र वैद्य
सभापति—बिहार आयुर्वेदिक एवं यूनानी अधिकाय, मोतिहारी

× + ×

महाराष्ट्र प्रांतीय वैद्य संमेलन

[दशम अधिवेशन]

महाराष्ट्र प्रान्तीय दशम वैद्य सम्मेलन भुसावल में डी. एस. स्कूल के शानदार विशाल मंडप में गत १६-१७-१८ मई को पूना के आयुर्वेदाचार्य श्री पांडुरंग शास्त्री देशपाण्डे जी की अध्यक्षता में सफल सम्पन्न हुआ। माननीय श्री देवकीनन्दन जी, श्री अण्णासाहेब दास्ताने तथा आयुर्वेदाचार्य वेणीमाधव जोशी नागपुर, भिषक्केशरी श्री गोवर्धन शर्मा छांगाणी जी नागपुर, तथा भिषग्वर डिग्वेकर शास्त्री जी जबलपुर, अ. भा. वैद्य महासम्मेलनाध्यक्ष वैद्यरत्न पं० शिवशर्मा जी व बम्बई के डायरेक्टर आफ आयुर्वेद माननीय श्री हरिदत्त जी शास्त्री आयुर्वेदाचार्य, शोलापुर के वैद्य कागेवाडीकर शास्त्रीजी, यूनिवर्सल हैल्थ इन्स्टीट्यूट के प्रमुख श्री पारीख महोदय तथा सूरत के आयुर्वेद विभाग के प्राध्यापक महोदय श्री रणजितराय जी वैद्य आदि प्रमुख तथा नागपुर, बेलगांव, पूना, नगर, गुजरात कोकण आदि प्रान्तों में से बहुसंख्यक वैद्यवर्ग उपस्थित था।

महाराष्ट्र प्रान्तीय वैद्य सम्मेलन के भूतपूर्व अध्यक्ष वैद्य श्री दत्तात्रय शास्त्री जलूकर जी ने नूतन नियोजित अध्यक्ष को अधिकार प्रदान करने पर स्वागताध्यक्ष श्री आयुर्वेदाचार्य ब्रह्मदत्त शास्त्री जी का स्वागत भाषण हुआ।

अधिकार ग्रहण करने पर आयुर्वेदाचार्य पांडुरंग शास्त्री देशपान्डे का बड़ा ही उत्साहपूर्ण विद्वत्तापूर्ण शुद्ध आयुर्वेद के आन्दोलन के प्रोत्साहन पर भाषण हुआ। सम्मेलन के साथ आयुर्वेद भव्य-प्रदर्शनी भी जिसका उद्घाटन दे. म. श्री देवकीनन्दन जी ने किया। आपने अपने उद्घाटन भाषण में गरीबों के लिये औषधियों का स्वल्प मूल्य में प्रबन्ध होने की आवश्यकता का प्रतिपादन किया।

वर्धा के कुष्ठ धाम संयोजक श्री डा० शिवाजीराव पटवर्धन जी का सुश्राव्य भाषण हुआ, जिसमें डाक्टर महोदय ने महारोगियों की ओर से जनता तथा वैद्यवर्ग को मानवता का प्रदर्शन करने की अपील की।

सम्मेलन के साथ आयुर्वेद अध्यापक चर्चा परिषद का भी आयोजन किया गया था, जिसका उद्घाटन बम्बई राज्य के डायरेक्टर आफ आयुर्वेद पं० हरिदत्त जी आयुर्वेदार्य जी ने किया, इस अवसर पर आयुर्वेद को अब एलोपैथिक के मुकाबिले में केवल कायचिकित्सक बनकर रहने से काम नहीं चलेगा, अष्टांग आयुर्वेद अर्थात् शल्य, शालक्य सर्वांग सम्पूर्ण बनने की आवश्यकता प्रतिपादन की। पं. श्री हरिदत्त जी का हृदय विषय पर प्रभावशाली शास्त्रीय विवेचनपूर्ण व्याख्यान हुआ, इस अध्यापक परिषद के स्वागताध्यक्ष वैद्य श्री दत्तात्रय शास्त्री जलूकर जी ने संस्कृत भाषण में चर्चा का विषय १ ही लेकर उसका पूरा विवेचन शंका-समाधान के साथ होने की आवश्यकता प्रतिपादन की।

इस परिषद के साधारण नियोजक वै. वि. म. गोगटे जी ने शुद्ध आयुर्वेद पाठ्यक्रम में ही विषयों पर चर्चा का आयोजन भिन्न भिन्न तज्ञ अध्यक्षों की अध्यक्षता में किया था, किन्तु पर्याप्त अवसर चर्चा को न मिलने से केवल द्रव्यगुण, रसशास्त्र, दोष धातु मल विज्ञान, न्यायशांख्य मीमांसा और शारीर विषयों पर ही पर्याप्त चर्चा हुई, वै. वागेवाडीकर शास्त्री वैद्य पुरोहित, वै. एकतारे जी वैद्य रणजितराय, वै. डिग्वेकर शास्त्री तथा वैद्य वेणीमाधव शास्त्री चर्चा-विषयों के नियुक्त अध्यक्ष थे।

"आमवात" विषय के ऊपर भी चर्चात्मक तज्ञ व्याख्याताओं के व्याख्यान हुए, जिनमें वै. गोगटे वै. वेणीमाधव शास्त्री, वै. देशपाण्डे और अध्यक्ष श्री पाण्डुरंग शास्त्री देशपाण्डे ने भाग लिया था, कविराज का. सी. भावे जी ने सर्व प्रथम जिस चर्चा विषय का उद्देश्य निवेदन किया, उसमें व्यवच्छेदक निदान की अपेक्षा उन्होंने प्रकट की थी।

म. प्रान्तीय वैद्य सम्मेलन के उद्घाटक महोदय मध्यप्रदेश के स्वास्थ्य मंत्री श्री कन्नमवार जी थे, जिन्होंने अपने भाषण में शुद्ध आयुर्वेद की मुक्तकंठ से प्रशंसा कर बम्बई राज्य में इसके लिये जो भी प्रयत्न हो रहे हैं और बम्बई सरकार जो भी अनुकूल पथ पर कदम उठा रही है उसके लिये गौरवोद्गार प्रगट किये। जब तक आयुर्वेद कार्य के लिये हम मिशनरियों की तरह काम नहीं करेंगे तब तक आयुर्वेद के प्रति जनता और सरकार में गौरव बढ़ना कठिन है, इस लिये उत्तमोत्तम औषधियां और अपने अनुभव वृद्ध वैद्यों द्वारा आज की पीढ़ी को बिना संकोच किये देना अपेक्षित है, घोषित किया।

\+ \+ \+

श्री मारवाड़ आयुर्वेद प्रचारिणी सभा—

जोधपुर दिनाङ्क ९-४-५५। आज मध्याह्न २ बजे श्री मारवाड़ आयुर्वेद प्रचारिणी सभा का वार्षिक अधिवेशन सम्पन्न हुआ। विभिन्न जिलों के प्रतिनिधियों की उपस्थिति भी पर्याप्त थी, अनेक उपयोगी प्रस्तावों की स्वीकृति के बाद नवीन चुनाव इस प्रकार सम्पन्न किया गया—

सभापति—कविराज श्री मामचन्द जी वैद्य।
उपसभापति—श्री वैद्य माधवलाल जी।
प्रधानमन्त्री—वैद्य अम्बालाल जोशी।
उपमन्त्री—श्री गणेशीलाल जी रंगा।
कोषाध्यक्ष—श्री मुनि देवेन्द्रचन्द्र जी।
कार्यालय निरीक्षक—श्री सुगनचन्द्र जी वैद्य।

कविराज श्री विष्णुदत्त जी पुरोहित, श्री ईश्वरलाल जी जोशी, श्री आनन्दीलाल जी माथुर, श्री माधवप्रसाद जी शास्त्री, मंशाराम जी शास्त्री, बदरीनारायण जी शर्मा बाली, रामनिवास जी शर्मा बालोतरा, मोहनलाल जी शर्मा फलोदी, टीकमदत्त जी व्यास पोकरन, श्यामविहारी जी रैण को कार्यकारिणी का सदस्य चुना गया।

राजस्थान प्रान्तीय वैद्य सम्मेलन की कार्यकारिणी के लिए कविराज मामचन्द्र जी वैद्य, अम्बालाल जोशी, माधवप्रसाद जी शास्त्री, श्यामविहारी जी रैण, बदरीनारायण जी बाली, नेमीचन्द्र जी यति बालोतरा के नाम स्वीकार किये गये।

\+ \+ \+

राजकीय आ० चिकित्सालय गौचर के विषय में—

अपनी लोक प्रिय सरकार से हार्दिक अपील

गत अप्रैल, जब से यह चिकित्सालय खुला तब से जो सेवा जनता की इस चिकित्सालय द्वारा होरही है उसके लिये यहां की समस्त जनता सम्पूर्ण अधिकारी वर्ग व सरकार की अत्यन्त आभारी है।

गत नवम्बर मास में चिकित्सालय में जगमोहन सिंह जी नेगी डि० मिनिस्टर उ० प्र०, डिस्ट्रिक्ट सिविल सर्जन महोदय, जिला स्वास्थ्याध्यक्ष श्री भट्ट जी और श्री बदरीप्रसाद जी पुरोहित चीं० आ० ऑफीसर पधारे और चिकित्सालय के कार्य को देख कर प्रसन्नता एवं संतोष प्रगट किया।

गत ९ अप्रैल से ३१ दिसम्बर ५४ तक चिकित्सालय में ८९१४ कायरोगी, १४७ शल्यरोगी, सर्वयोग ९०६१ रोगिय की सफल चिकित्सा की गई। श्री सीतारामशर्मा ध्यानी, आयुर्वेदाचार्य प्रधान चिकित्सक एक कर्त्तव्य-परायण, विश्वासपात्र, सुयोग्य एवं अनुभवी व्यक्ति हैं। यही कारण है कि बहुत दूर-दूर से यहां रोगी आकर लाभान्वित होरहे हैं।

मैं समस्त जनता की ओर से सरकार एवं सम्बन्धित अधिकारी वर्ग को कोटिशः धन्यवाद देता

हुआ सेवा में हार्दिक अपील करता हूँ कि चिकित्सालय में अन्तःरुग्ण परिचर्या प्रवन्ध शीघ्रातिशीघ्र करने की महती कृपा की जाय।

—गोविन्दप्रसाद जोशी,
जनता का प्रतिनिधि घोलतीर, गढ़वाल।

+ + +

तोरावाटी एवं श्रीमाधोपुर

तहसील वैद्य सभा—

ता० २४-४-५५ को श्री रामेश्वरलाल जी वैद्य रींगस की अध्यक्षता में तोरावाटी तहसील एवं श्रीमाधोपुर तहसील वैद्य सभा का जनरल अधिवेशन हुआ जिसमें करीब ५० वैद्यों ने भाग लिया सर्वप्रथम आगामी वर्ष के लिए निम्नलिखित कार्यकारिणी का चुनाव हुआ—

सभापति—वैद्य श्री पूर्णानन्द जी शास्त्री, श्रीमाधोपुर।
उपसभापति—,, ,, हरिप्रसाद जी डोल्या, खेडोला।
प्रधानमंत्री—,, ,, विश्वेश्वरप्रसाद जी लोकनाथ का श्रीमाधोपुर।
संयुक्तमंत्री—,, ,, धनपति जी, कांवट।
,, —,, ,, गिरधारीलाल जी, श्रीमाधोपुर।
कोषाध्यक्ष—,, ,, ब्रजमोहन जी शास्त्री, रींगस।
आयव्यय निरीक्षक—,, ,, महाबल जी,अजीतगढ़।
सदस्य—,, ,, धर्मदत्त जी, नीमकाथाना।
,,—,, ,, रामनारायण जी, चला।

तदनन्तर श्री. पूर्णानन्द जी शास्त्री,विश्वेश्वरप्रसाद जी, ब्रजमोहन जी शास्त्री, नन्दकिशोर जी लाटा, बृजमोहन जी लारेडा, लक्ष्मीनारायण जी आदि विद्वानों ने आयुर्वेद के महत्व पर प्रकाश डालते हुए आयुर्वेद के अनुसन्धान एवं शल्य-शालाक्य पर आगे बढ़ने पर बल दिया और जो वैद्य बिना सोचे समझे एलोपैथिक औषधियाँ काम में लाते हैं उनको काम में न लेने का आग्रह किया।

पश्चात् सभापति श्री रामेश्वरलाल जी ने श्वेत-हरिताल भस्म एवं श्वेत ताम्रभस्म बनाने वाले को २००) रुपये पारितोषिक देने की घोषणा की। एक तीन आदमियों की पुरुष्कार समिति और ४ आदमियों की रजिस्ट्रेशन समिति का निर्माण कर धन्वन्तरि भगवान् की जयघोष के साथ सभा विसर्जित की गई।

+ + +

त्रिवेन्द्रम् में आयुर्वेद-सम्मेलन

विगत सप्ताह त्रिवेन्द्रम् में सम्पन्न अखिल भारतीय आयुर्वेदिक कांग्रेस के ४० वें अधिवेशन के अवसर पर आयुर्वेद-सम्बन्धी अनेक प्रश्नों पर विचार किया गया है। इस अधिवेशन से आयुर्वेद के समर्थकों और विरोधियों को गम्भीर विचार के लिये पर्याप्त सामग्री मिल सकती है। अधिवेशन के सभी वक्ताओं ने अपने अनुभव के आधार पर जो विचार व्यक्त किये हैं, वे प्रत्येक विचारशील व्यक्ति को इस दिशा में विचार करने के लिए प्रेरित कर रहे हैं।

श्री मुरार जी देसाई

अधिवेशन का उद्घाटन करते हुए बम्बई के मुख्य मन्त्री श्री० मुरार जी देसाई ने कहा—"यदि भारतीय जनता के आरोग्य को स्थिर बनाना हो, तो हमें आयुर्वेदोक्त औषधियों का अधिकाधिक उपयोग करना ही पड़ेगा और आयुर्वेदिक पद्धति से चिकित्सा करने वाले वैद्यों को जन-सेवा का सुअवसर देना ही पड़ेगा। भारतीय जनता का शरीर भारतीय जल-वायु और अन्न से निर्मित हुआ; अतः उसके लिये भारतीय औषधियां ही अनुकूल और लाभदायक हो सकती हैं।"

अनुभूत चिकित्सा-पद्धति

निस्सन्देह आयुर्वेद भारत का अति प्राचीनतम चिकित्सा शास्त्र है और इसके प्रणेता ऋषि-महर्षियों ने अपने दीर्घकालीन अनुभवों के बाद जो व्यवस्था स्थिर की है, उसकी उपयोगिता वर्तमान विज्ञान-युग में भी यथावत् सिद्ध है। फिर भी, उसमें वर्तमान वैज्ञानिक पद्धति के अनुसार कुछ सुधार-संशोधन

किये जायें, तो अनुचित न होगा। पश्चिमीय चिकित्सा प्रणाली का प्रणयन पश्चिम के अनुभव और वहां की जनता की प्रकृति के आधार पर किया गया है; अतः वह भारतीय जल-वायु और भारतीय जनता की प्रकृति के साथ कैसे मेल खा सकता है। फिर भी, विदेशी शासन की छत्रछाया पाकर यहां विदेशी चिकित्सा प्रणाली का प्रसार हुआ और वह यहां खूब फूली फली। आज वैदेशिक (डाक्टरी) पद्धति के चिकित्सकों का एक बहुत बड़ा दल देश में तैयार हो गया है और कुछ लोग इन डाक्टरी दवाओं के अभ्यस्त हो गये हैं, अतः उन्हें पसन्द भी करते हैं, किन्तु कालान्तर में उनका यह अभ्यास दूर हो सकता है और वे पुनः पवित्र स्वदेशी औषधियों के अभ्यस्त बन सकते हैं।

श्री० शिवशर्मा की आपत्ति

प्रसन्नता की बात है कि अब भारत की निर्दोष चिकित्सा-पद्धति की पुनः प्रतिष्ठा होने जा रही है और इस दशा में कुछ प्रान्तीय सरकारों ने सक्रिय नेतृत्व ग्रहण किया है। किन्तु उनकी कार्य-पद्धति के विषय में उपर्युक्त अधिवेशन के अध्यक्ष श्री० शिवशर्मा ने आपत्ति उठाई है और समग्र पद्धति को ही बदल देने की सलाह दी है। आशा है, प्रान्तीय सरकारें श्री० शिवशर्मा के उक्त सत्परामर्शपर अवश्य विचार करेंगी और जनहित के इस कार्य में आवश्यक कदम उठायेंगी। श्री० शिवशर्मा के कथनानुसार "आयुर्वेद के शिक्षा-कार्य की देख-रेख पश्चिमीय चिकित्साविद् (डाक्टर) करते हैं और सरकार उन्हीं की सलाह का अनुसरण करती है। वस्तुतः आयुर्वेद की शिक्षा-व्यवस्था की बागडोर आयुर्वेदिक विद्वानों के हाथ में रहनी चाहिये" श्री० शर्माजी ने स्पष्ट घोषित किया है कि आयुर्वेदिक शिक्षापर एलोपैथीका नियन्त्रण अनुचित है, और उसे अविलम्ब हटा लेना चाहिये। जब तक ऐसा किया नहीं जाता, तबतक आयुर्वेद की उन्नति कदापि सम्भव नहीं और इस दिशा में राष्ट्र के धन का व्यय ही अपव्यय होगा। यह कार्य आयुर्वेदविशेषज्ञों के हाथ में सौंपने पर ही उसकी प्रगति हो सकेगी। उन्होंने कहा—"कुछ राज्यों में आयुर्वेदसम्बन्धी खोज चल रही है। कुछ वनस्पति के प्रयोग-परीक्षण किये जा रहे हैं और इस कार्य को आयुर्वेदिक खोज कहा जा रहा है।

शर्मा जी का सुझाव

शर्मांजी ने भारत-सरकार के स्वास्थ्य-मन्त्रालय पर भी आक्षेप किया और कहा कि मन्त्रालय की समिति और परिषद् आयुर्वेद विशेषज्ञों से सर्वथा शून्य है। आयुर्वेद के अभ्युदय के सम्बन्ध में शर्मांजी ने कुछ सुझाव उपस्थित किये हैं, जिनमें से मुख्य यह है कि आयुर्वेद-पारंगत वैद्यों की एक समिति संगठित की जाये और भारत-सरकार के आरोग्य-विभाग में आयुर्वेद के विद्वान् वैद्यों का समावेश किया जाये। आयुर्वेद के विधान-संचालन का कार्य आयुर्वेद विदों को ही सौंपा जाये, डाक्टरों को वहां से हटाया जाये। तात्पर्य यह कि जिनके हृदय में आयुर्वेद के प्रति प्रेम-भाव होगा, जो इसके जानकार हैं, वही उसका अभ्युत्थान कर सकते या वे लोग, जो आयुर्वेद से सर्वथा अपरिचित हैं तथा जिनका आयुर्वेद के प्रति तनिक भी प्रेम और आकर्षण नहीं है।

जो हो; आयुर्वेद एक व्यापक चिकित्साविज्ञान है और आधुनिक चिकित्सा-पद्धति का समावेश उसमें सरलता से किया जा सकता है साथ-साथ सरकार भी उसके प्रचार-प्रसार में अपना सम्पूर्ण सहयोग प्रदान करे तथा आयुर्वेदिक पद्धति को आधुनिक आवश्यक साधनों से सम्पन्न बना दिया जाये; तो जनता एलोपैथी या डाक्टरी दवाओं से पराङ्मुख होकर अपनी राष्ट्रीय चिकित्सा प्रणाली की ओर स्वभावतः आकर्षित होगी; इसमें तनिक भी सन्देह नहीं।

(श्रीवेङ्कटेश्वर समाचार से साभार)
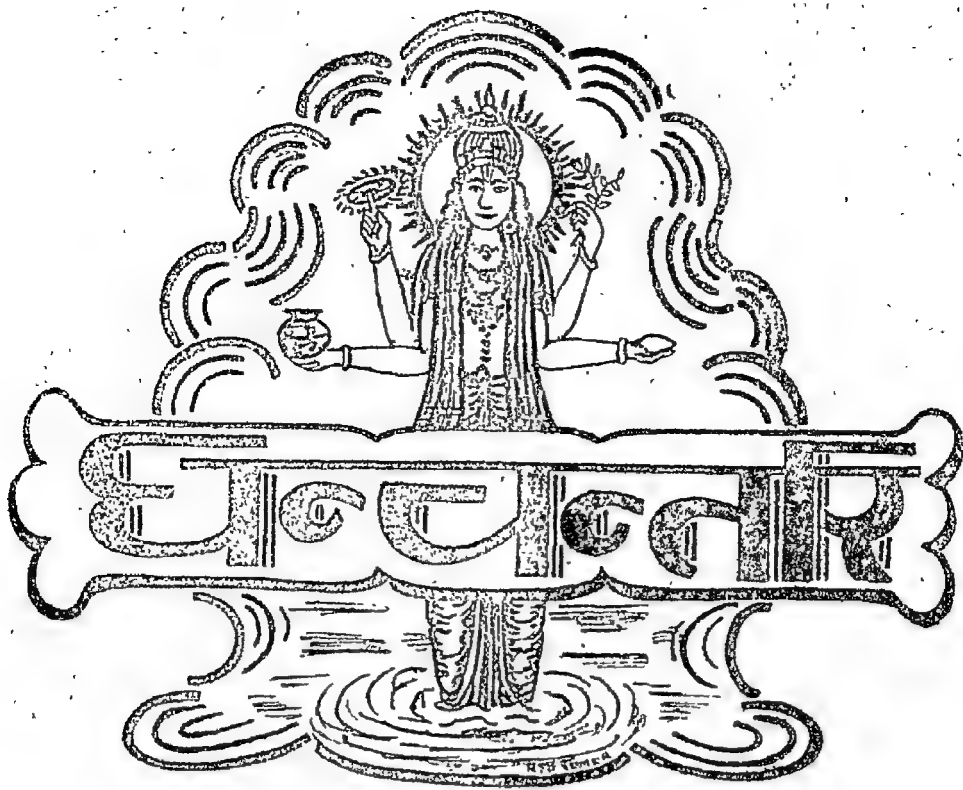
तदेव युक्त भैषज्यं यदारोग्याय कल्पते।
स चैव भिषजां श्रेष्ठो रोगेभ्यो यः प्रमोचयेत् ॥ —च० सू० १-१३२.

भाग २६	धन्वन्तरि कार्यालय विजयगढ़	जून
अङ्क ६	का मुखपत्र	१९५५

आयुर्वेदीय-चिकित्सा की उत्कृष्टता

"मैं जहां भी जाता हूँ वहां ही आयुर्वेद की उत्कृष्टता की बात करता हूं। मुझे यह देखकर विस्मय और क्लेश होता है कि इस अद्भुत प्राचीन स्वास्थ्यप्रद विज्ञान के विषय में भारतवर्ष के अधिकांश बुद्धिजीवी और मिथ्याज्ञानी किस प्रकार सर्वथा अनभिज्ञ हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि इस प्रकाश से वंचित पश्चिमी संसार के जनदल की भांति यह लोग भी पाश्चात्य चिकित्सा-पद्धति के झूठे मायाजाल से पूर्णतया अभिभूत होकर मोहनिद्रा को प्राप्त हो गये हैं। लेशमात्र भी यह अनुभूति नहीं उन्हें, कि आयुर्वेद के रूप में भारतवर्ष के हस्तगत एक अद्वितीय चिकित्सा-विज्ञान है जो सहस्रों वर्षों के अभ्यास द्वारा परीक्षित और प्रमाणित हो चुका है और एलोपैथी के भद्दे और भयङ्कर विधानों से अनेक प्रकार से अतुलनीय उत्कृष्टता प्राप्त है। एलोपैथी चिकित्सा से एक रोग आराम होकर दूसरा नया रोग उत्पन्न होजाता है। पाश्चात्य चिकित्सक एलोपैथी के भयङ्कर विषैले कीटाणुनाशक द्रव्यों के बुरे प्रभाव को न जान अपने रोगियों की जान खतरे में डाला करते हैं।"

—डा० अलेक्जेण्डर मार्की (अमेरिका)

सिद्ध योग पद्यावली

राजवैद्य सरयूप्रसाद भट्ट 'मधुमय' विशारद।

सहदेवी धूप (नि. र.)

योग — सहदेवी, वच, रास्ना, हल्दी, सब समभाग।
यह सहदेवी धूप है, रखें सहित अनुराग॥

लाभ — धूप देंय तन में मलें, तो ज्वर हों सब दूर।
किन्तु विषमज्वर में अधिक, गुणकारी भरपूर॥

दशांग धूप (बा. भ.)

योग — सेंधा निमक, विडङ्ग, वच, पाठा और अतीस।
मिर्च, सोंठ, गजपिप्पली, हींग, सभी सम पीस॥

लाभ — धूप देंय इस धूप की, यह दशांग प्रिय धूप।
होय बालग्रह नष्ट सब 'मधुमय' धूप अनूप॥

निशादि लेप (वं. से.)

योग — दारुहल्दी, हल्दी, खस, लें सिरस-छाल को मिश्रित कर।
चन्दन, नागरमोथा लेंवे, लोध नागकेशर लेकर॥
सब समान ये द्रव्य आठलें, जल से इनको पीसे फिर।
यह निशादि है लेप कीजिए, लेपन इन-इन रोगों पर॥

लाभ — व्रण, विसर्प औ दाह पसीना, तन दुर्गन्धि कुष्ट विस्फोट।
हरे शीतला रोमान्तिक सब, या कुछ भी होवे तन-चोट॥

हिरण्याख्य लेह (वृ. मा. बाला.)

योग — कूठ, हर्र, वच, ब्राह्मी स्वर्णभस्म समभाग।
बड़े यत्न से खरल कर रखें सहित अनुराग॥

लाभ — विषम भाग घृत, शहद से, बालक को दें नित्य।
वर्ण, आयु, बल, काँति की, होवे वृद्धि अवश्य॥

त्रिकुटा चूर्ण (वं. से.)

योग — चतुर्जात,+ कुस्तुम्बरू,× त्रिकुटा सर्व समान।
गुड़ में चूरण देंय यह वैद्य पुराने, सान॥
मात्रा चूरण की कहें, माशा एक प्रवीण।
गुड़ का मिलित प्रमाण है, माशा निश्चित तीन॥

लाभ — त्रिकुटा चूरण दिव्य अति, प्रसवा का सुखमूल।
उनके हिय, शिर, वस्ति का हरता सक्कल शूल॥

—क्रमशः।

(लेखक की अप्रकाशित रचना सिद्धयोग पद्यावली से)

+ चतुर्जात—दालचीनी, इलायची, तेजपात, नागकेशर।

× कुस्तुम्बरू—नेपाली धनियां।

जीवनिका (VITAMINS)

लेखक—वैद्य श्रीकृष्णचन्द्र महन्तो, निराकारपुर (उड़ीसा)

पाश्चात्य वैद्यक शास्त्रों में जैसे प्रति द्रव्यों के जीवनिका (Vitamin) और उसका स्नेह आदि उपादानों के (fats, carbohydrate, protien, mineral salts) अनुपात उपलब्धि होती है, ऐसे ही आयुर्वेद वर्णित द्रव्यों के रस, विपाक और वीर्य की मात्रा निर्णय, परिमाण स्वरूप सम्भव होता तो, रस आदि विज्ञान और दोषों की अशांशकल्पना और उनका उपक्रम संशयरहित होजाता। ये भाव मेरे चित्त में वारम्बार उदय होने पर, प्राचीन ग्रन्थों के ऋषि वचन अवलम्बन से उपलब्ध वक्ष्यमाण अनुपात जो स्थिरिकरण किया हुआ है, सो नीचे वर्णित होगा।

जीवनीय–

जीवनम् आयुः "शरीरेन्द्रियसत्त्वात्मसंयोगोधारि जीवितम् । नित्यगश्चानुबन्धश्च पर्यायैरायुरुच्यते ॥" (च० सू० अ० १) इत्युक्त लक्षणं तस्मै हितं जीवनीयम् । जीवनीय शब्दे नेहायुष्यत्वमभिप्रेतम् । यत्र च मधुररस ‡ गुणे "आयुष्यो जीवनीयः" (च० सू० अ० २६) "जीवकर्षभौ मेदा महामेदा काकोली क्षीरकाकोली मुद्गपर्णी माषपर्णी जीवन्ती मधुकमिति दशेमानि जीवनीयानि भवन्ति ।"

शरीरेऽस्मिन् प्रतिक्षणं धातोग्निपरिपाकक्रियया धातवः क्षयमापद्यन्ते; तत्क्षयपरिपूर्त्या प्राणधारणार्थं जीवनीयद्रव्याणां क्षीरशालि-गोधूमादीनां प्रत्येहमुपयोग आवश्यक एव। सत्यपि क्षीरादीनां जीवनीयत्वेऽस्मिन्नौषधद्रव्यसंग्राहके गणेऽनुक्ति स्तेषामाहारप्रधानद्रव्यत्वात् । एवं बृंहणादिगणेष्वपि बृंहणादिकर्मप्रधानानां मांसादीनामनुक्तौ हेतुर्ज्ञेयः × × × (च० द०) मुञ्जातक विदारीकन्द-मृद्वीका-खर्जूर-फल्गु-तालफल-नारिकेल वातामभिषुका क्षोड़-मुकूलक निकोचकोरुमाणि बृंहणान्युक्तानि, सुश्रुतेनैतदतिरिक्तानि आम्र-पनस-मोचफलानिवातामाबिमज्जानः काकोल्यादिगणश्च बृंहणान्तुकानि ॥

"गुरुशीतं मृदु स्निग्धं बहुलं स्थूलपिच्छिलम् । प्रायो मंदं स्थिरं श्लक्ष्णं द्रव्यं बृंहणमुच्यते ॥" (च० सू० अ० २६) "पृथिव्ययां गुणैर्युक्तं जीवनीयमिति स्थितिः ।" (र० वै० अ० ४ सू० ३० भाष्य) ।

जो द्रव्य जीवन के (आयुष्य के प्राणधारण के) लिए हितकर (आयुष्य को स्थिर रखने वाला) हो, उसको जीवनीय या जीवन कहते हैं। जहां पर मधुर ‡ रस-गुण (गुरु-शीत-स्निग्ध और मृदु) हो वह आयुष्य-जीवनीय है। जैसे-जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, काकोली आदि।

शरीर से प्रतिक्षण धात्वग्नियों की परिपाक क्रिया से धातुओं का क्षय होता रहता है। उसकी पूर्ति के लिये जीवनीय द्रव्यों का प्रति दिन प्रयोग करना आवश्यक है। यद्यपि जीवनीय द्रव्यों में दूध,

---

‡ मधुररस (मधुररसवाला द्रव्य) जन्म से ही मनुष्य के शरीर को निरुपाधिक सात्म्य होने से रस-रक्त-मांस मेद-अस्थि-मज्जा-ओज-शुक्र को बढ़ाने वाला, आयुष्य को टिकाने और बढ़ाने वाला, मनसहित छः इन्द्रियों को प्रसन्न करनेवाला, बलकारक, शरीर की कान्ति को अच्छा करने वाला, पित्त-विष तथा वायु का नाश करने वाला, तृषा और दाह का शमन करने वाला, त्वचा-केश और कण्ठ के लिये हितकर, शरीर को पोषण करने वाला अभिघातादि से मूर्च्छित को जीवन देने वाला, तृप्तिकर, बृंहण, शरीर को दृढ़ करने वाला, उरःक्षत और भग्नअस्थि का संधान करने वाला, घ्राणेन्द्रिय-मुख-कण्ठ और जिह्वा का आनन्द देने वाला, दाह और मूर्च्छा का नाश करने वाला, भौरों और चींटियों का अत्यन्त प्रिय, स्तन्यवर्धक, स्निग्ध, शीत और गुरु है।

चावल, गेहूं आदि द्रव्य प्राणधारणोपयुक्त होने से जीवनीय हैं, तथापि वे आहार-द्रव्य होने से उनका यहां औषध द्रव्यों के गण में संग्रह नहीं किया है। इसी प्रकार बृंहण आदि गणों में बृंहण कर्मप्रधान मांस आदि के न लिखने में हेतु जानना चाहिए।

चरक ने सालमसिश्री, विदारीकन्द, मुनक्का, खजूर, अंजीर, ताल के फल, नारियल, बादाम, अखरोट, पिस्ता, चिलगोजा और खुरमानी को बृंहण कहा है, सुश्रुत ने एतद्भिन्न आम, पनस, केला, बादाम की मज्जा और काकोलादि गण को बृंहण लिखा है।

जो द्रव्य गुरु, शीत, मृदु, स्निग्ध, बहल (घनगाढ़ा), स्थूल (स्थूलावयव), पिच्छिल (लुआबदार), मन्द, (चिरकारि), स्थिर और श्लक्ष्ण हो वह प्रायः बृंहण होता है। जीवनीय द्रव्य पृथिवी और जल की अधिकता वाला होता है। अर्थात पृथिवी और आप्यों के जो गुण-कर्म गुरु-शीतादि कहे गये हैं, जीवनीय द्रव्य इन गुण-कर्म से युक्त होता है। जीवनीय - जीवतिक्ति-जीवनिका. पाश्चात्य वैद्यक शास्त्रोंमें Vitamins विटामिन का अर्थ गुरु, शीत, मृदु, स्निग्ध, बहल, स्थूल, पिच्छिल, मन्द, स्थिर और श्लक्ष्ण इन पार्थिव-जलीय मधुररसवाला द्रव्यों की शक्ति हैं। ये जीवनिका सब सजातीय होने पर भी इनमें से जो मधुररसवाले द्रव्य में रहता है वह मोक्ष और जो मधुर रस से भिन्न अपर अम्लादि रस वाले द्रव्यों में रहते हैं ये गौण हैं, इन सबसे आहार द्रव्यों में गुरु, शीत और स्निग्ध जीवनिका-शक्ति अधिक परिमाण में रहती है। इनके भिन्न जो मृदु, बहल, स्थूल, पिच्छिल, मन्द, स्थिर और श्लक्ष्ण आहार द्रव्यों में कम रहता है। आयुर्वेदीय द्रव्यगुण विज्ञान शास्त्रों में इन जीवनिका नाम अन्य से पृथक किया हुआ है। परन्तु मूल श्लोक में जहां पर मृदु वीर्य है वहां पर स्निग्ध होने द्वारा स्मरण और पठन के लिए सुकर और सुबोध होता है। इसी कारण से गुरु और शीत आदि क्रम के स्थान में क, ख आदि वर्ग का क्रम रखा हुआ है। अर्थात् जीवनिका गुरु क, शीत ख, स्निग्ध ग, मृदु घ, बहल ङ, स्थूल च, पिच्छिल छ, मन्द ज, स्थिर झ और श्लक्ष्ण को ञ समझना चाहिए।

क आदि जीवनिका के गुण—

१—जीवनिका 'क' (गुरुवीर्यवाला द्रव्य) वल, तृप्ति और शरीर की पुष्टि करने वाला, साद (अवसाद-शरीर की ग्लानि-शिथिलता) उपलेप (मल की वृद्धि और चिकनाहट) कफ करने वाले तथा चिरपाकी (देरी से पचने वाला) और वातनाशक है।

२—जीवनिका 'ख' (शीतवीर्यवाला द्रव्य, के शरीर पर प्रह्लादन (उष्म-पीड़ित को सुख उत्पन्न करना), स्राव को रोकना, स्थिर करना, प्रसन्नता करना (स्वच्छ करना, क्लेद को सुखाना, मूर्च्छित आदि को सञ्ज्ञा प्रदान करना, स्तम्भन करना, रक्त-पित्त स्वेद और तृष्णा का नाशक है। श्लेष्मा और वात को बढ़ाता है।

३—जीवनिका 'ग' (स्निग्धवीर्य द्रव्य) शरीर में स्नेह और मार्दव (मृदुता) करने वाला, बल और वर्ण को बढ़ाने वाला, वाजीकरण, वय-स्थापन, श्लेष्मकर और वातनाशक है।

४—जीवनिका 'घ' (मृदुवीर्यवाला द्रव्य) शरीर में मृदुता, स्नेह, बल और वर्ण को बढ़ाने वाला, श्लेष्मकर, वातहर और वाजीकरण है।

५ - जीवनिका 'ङ' (बहल गुणवाला द्रव्य) शरीर को आर्द्र करने वाला और सब जगह व्याप्त होने वाला होता है।

६—जीवनिका 'च' (स्थूलगुण वाला द्रव्य) शरीर में स्थूलता लाने वाला, पाक में गुरु और स्रोतों का अवरोध करने वाला है।

७ जीवनिका 'छ' (पिच्छिलगुण वाला द्रव्य) जीवन, बलकर, सन्धान (टूटी हुई हड्डी आदि को जोड़ने वाला) कफकारक गुरु (शरीर में भारीपन लाने वाला) और पिच्छिल है।

८—जीवनिका ज (मन्दगुणवाला द्रव्य), शमन कर्म में शक्ति हो, सब कर्म करने में शिथिल और

अल्पकार्य करने वाला है।

९—जीवनका 'भ' (स्थिर गुणवाला द्रव्य) वात और मल (मूत्र पुरीष स्वेदादि) को धारण-स्तम्भन करने वाला और अधिक समय तक रहने वाला है।

१०—जीवनिका 'ब' (श्लक्ष्ण गुणवाला द्रव्य) पिच्छिल, सन्धानकर, बलकर और जीवन और चिकना होता है।

रसादिकों का स्वाभाविक बल निर्णय—

रसं विपाक स्तौवीर्यं, प्रभावस्तान्यपोहति, बलसाम्ये रसादीनामिति नैसर्गिकं बलं। (अ. हृ. सू. अ. ९)

जहां रस, विपाक, वीर्य और प्रभाव समान बल वाले होते हैं वहां अपने नैसर्गिक (स्वाभाविक) बल से विपाक रस का, वीर्य रस और विपाक दोनों का पराभव करके अपना कार्य करता है।

मधुररसादिकेभ्योऽपरे स्निग्धवृष्यादयो गुणा बहुतरा विद्यन्त इति केचित्तु रसनिरपेक्षा एवगुणाः द्रव्ये निवसन्तीति। (अ. हृ. सू. अ. ५ अरुणदत्त)

मधुर आदि रसों में स्निग्ध-वृष्य आदि गुण बहुसंख्यक रहता है। परन्तु कुछ गुण रसनिरपेक्ष होकर द्रव्यों में रहता है।

औषध और आहार भेद में दो भेद—

(औषधाहारभेदेनापि) द्रव्यतावद् द्विविधं—वीर्यप्रधानमौषध द्रव्यं, रसप्रधानमाहारद्रव्य च तत्राप्यौषधद्रव्य त्रिविधं वीर्य भेदात् तीक्ष्ण वीर्यं, मध्यवीर्यं, मृदुवीर्यं चेति। (च. सू. अ. २ चक्रदत्त)

द्रव्यों के औषधि और आहारभेद से दो भेद होते हैं, जो द्रव्य वीर्यप्रधान हो अर्थात् जिसके उपयोग से शरीर में वीर्य संज्ञक शीत उष्ण आदि गुण की उत्पत्ति प्रधानतया होती हो शरीर के रसादि धातुओं का पोषण जिसका प्रधान कार्य न हो, उसको औषधि द्रव्य कहते हैं, जो द्रव्य रसप्रधान हो अर्थात् जिसके उपयोग से शरीर में रस तथा रस के पुष्ट होने वाले रक्तादि धातुओं के पोषण प्रधानतया होता हो, शीत, उष्ण आदि वीर्य-संज्ञक गुणों की उत्पत्ति (गुण का असर) प्रधानतया न होती हो उसको आहार-द्रव्य कहते हैं जैसे-चावल, गेहूं आदि। औषध द्रव्यों के (उनके) शीत-उष्ण आदि वीर्यों के तारतम्य-भेद से तीक्ष्णवीर्य, मध्यवीर्य और मृदुवीर्य ये तीन अवान्तर भेद होते हैं। (ऐसे ही मधुर आदि अन्य रसों के भी तारतमभेद से तीन भेद होते हैं) जैसे—

मध्योम्लः, पटुकश्चान्त्यः, स्निग्धानां मधुरः परः। (च० सू० अ० २६)

स्निग्धरसों में मधुर श्रेष्ठ (स्निग्धतम) अम्ल मध्यम (स्निग्धतर) और लवण अवर (स्निग्ध) है।

आयुर्वेदेषु रसविपाकवीर्य्यप्रभावाणामुत्तरोत्तर बलियस्त्वंस्वीक्रियते। परन्तु अचिन्त्य शक्तित्वात् प्रभावस्य बलनिर्णयो न सुकरः। अतः रसविपाकवीर्य्याणामेव मात्राः निर्णेतुमत्र मे प्रयासः। तेषांबलव्यञ्जकाश्च मात्राः यथासंख्य एका द्वौ चतस्रः स्युरिति अनुमीयते। परन्तु आहार द्रव्येषु प्राधान्यात् रसस्यबलमान चतुर्गुणं विपाकवीर्य्ये बलोने॥

अर्थात् आयुर्वेद शास्त्रों में रस, विपाक, वीर्य और प्रभावों के उत्तरोत्तर बलवान् स्वीकार है। परन्तु अचिन्त्य शक्ति के लिए प्रभाव का बल निर्णय करना, सुकर न होने के कारण से, रस, विपाक और वीर्यों के मात्रा निर्णय करने का मैंने प्रयास किया। इनके बल-व्यञ्जक मात्रा क्रमशः यथासंख्या एक दो चार रिति (धारा) अर्थात् रस, विपाक और वीर्य का अपना-अपना अधम, मध्यम और उत्तम मात्रा क्रमशः १, २, ४, और रस, विपाक और वीर्य उत्तरोत्तर बलवता कारण से, इनके स्वाभाविक बल क्रमशः १, २, ४ होता है। जैसे—

मधुर	आदि	रसों के	अधम शक्ति	मात्रा	६$\frac{1}{4}$	मध्यम	मात्रा	१२$\frac{1}{2}$	उत्तम	मात्रा	२५
,,	,,	विपाक	,,	,,	२५	,,	,,	३७$\frac{1}{2}$	,,	,,	५०
गुरु	,,	वीर्य	,,	,,	५०	,,	,,	७५	,,	,,	१००

परन्तु आहार द्रव्य में रस की प्राधान्यता के कारण से बल (स्वाभाविक) से चार गुण अधिक है, विपाक और वीर्य बलहीन होते हैं। हीन का अर्थ ४ भाग से १ भाग होगा।

कुछ आहार द्रव्यों के रस-विपाक-वीर्य (जीवनि का-शक्ति) के मान

द्रव्य नाम	मधुररस	मधुरविपाक	क	ख	ग	घ
१–गाय का दूध	,, २५	,, ५०	५०	५०	१००	५०
२–भैंस का दूध	,, २५	,, ५०	१००	१००	७५	...
बकरी का दूध	,, २५	...	...	५०	६२	...
भेड़ का दूध	,, २५	...	५०	...	३७	...
गाय का दधि	,, २५	...	...	५०	१००	...
भैंस का दधि	... ...	...	५०	...	७५	...
गाय का मक्खन	म.र. २५	म. वि ५०	...	५०	१००	...
भैंस का ,,	... ...	... ...	५०	...	...	...
गाय का घी	म. र. २५	म. वि ५०	५०	५०	१००	...
भैंस का ,,	,, २५	... ...	५०	५०	...	...
एरण्ड तेल	... ...	... ...	५०	...	...	...
पोस्त का ,,	म. र. २५	म. वि ५०	५०	५०	५०	...
गेहूँ	,, २५	,, ५०	५०	५०	५०	...
शालिधान्य	...	...	...	५०	५०	...
षष्ठिक ,,	,, २५	...	...	५०	५०	५०
ईख का रस	म. र. २५	म. वि. ५०	५०	५०	५०	...
,, का नूतन (गुड़)	,, २५	...	...	५०	...	...
चीनी	,, २५	...	...	५०	...	...
३-मिश्री	,, २५	...	...	१००	...	...
४-बकरा का मांस	,, २५	म. वि. ५०	५०	७५	७५	...
हरिण का मांस	,, २५	,, ५०	५०	५०	...	...
भेड़ा का मांस	...	...	५०	...	...	...
५-भाकुट मछली	,, २५	म. वि. ५०	१००	...	१००	...

द्रव्य नाम	मधुररस	मधुर विपाक	क	ख	ग	घ
चितलमछली	,, २५	... ...	१००	...	१००	...
मोद्गुर ,,	,, २५	... ...	...	...	१००	...
सेंधा नमक	,, २५	म. वि. ५०	५०	५०	५०	...
उड़द	,, २५	,, ५०	५०	५०	...	...
पोइका शाक	...	...	...	५०	५०	...
पालक शाक	...	...	५०	५०	...	...
कच्चा केला	म. र. २५	म. वि. ५०	५०	५०	५०	...
कच्चा कटहर	,, २५	...	५०	...	...	...
श्वेतआलु	,, २५	म. वि. ५०	५०	५०	...	...
लालआलु	...	,, ५०	५०	...	५०	...
प्याज	म. र. २५	,, ५०	५०	५०	...	...
निम्बु	,, २५	,, ५०	५०	५०	...	...
पका आम	,, २५	,, ५०	५०	...	...	...
मधुर बेर	,, २५	...	५०	५०	...	...
पका कटहर	,, ...	...	५०	५०	...	...
पिण्डखजूर	,, ...	म. वि. ५०	५०	...	५०	...
नारियल	,, २५	...	५०	५०	...	...
जामुन	,, २५	...	५०	...	...	...
पकाकेला	,, २५	म. वि. ५०	५०	५०	...	...
बादामकीमज्जा	,, २५	...	५०	...	५०	...
सेव	,, २२	म. वि. ५०	५०	५०	५०	...
पका बेल	,, २५	,, ५०	५०	...	५०	...
६-द्राक्षा	,, २५	,, ५०	५०	५०	१००	

(१) गव्यं स्नेहोत्तमं क्षीरं गव्या तच्च पयसा पयः । पयोत्तरं स्नेहहीनमौरभ्रछागमाहिषम् ॥

(२) गुरुशीततरं गव्यात्स्वप्नलं माहिषं पयः । चतुर्थभाग स्नेहनं पित्तघ्न च विशेषतः ॥ (अ० हृ० सू० अ० ५ हेमाद्री टीका) ।

(३) यथा यथैषामैरल्यं मधुरत्वं तथा तथा, स्नेहगौरवशैत्यानि रसत्वं च तथा तथा ॥

(४) नातिशीतं गुरुस्निग्धं मांसमाजमदोषलम् ।

(५) गुरुत्वास्निग्धमधुरावर्गाश्चातो यथोत्तरम् × × पयोत्तरं विलेशयेभ्यः प्रसहा गुर्वविगुणयुक्ता ततो महामृगास्ततो जलचरास्ततो मत्स्याः इति ॥

(६) द्राक्षा फलोत्तमावृष्याः × × × × (अ० हृ० सू० अ० ६ हेमाद्री टीका) ॥

—क्रमशः

आयुर्वेद और इंजेक्शन

लेखक—श्री० पं० हरिनारायण जी शर्मा आयुर्वेदाचार्य, प्रतापगढ़।

मनमानी आहार विहार करने, स्वास्थ्य के नियम न मानने से शरीर के अन्दर की कोई भी वस्तु जब विकृतावस्था में परिणत होजाती है तो शरीर में उसका कोई उपयोग नहीं रह जाता। वह वस्तु बेकार होजाती है, शरीर के भीतर वह जब तक रहती है तब तक शरीर के अन्दर रहने वाली अन्य अविकृत वस्तु को विकृत करने लगती है। इसी लिये प्रकृति-कुदरत उस विकृत-विजातीयता प्राप्त वस्तु को बाहर निकालना शुरू कर देती है। उसी विकृति के निकलते समय शरीर में जो पीड़ा या बेचैनी अनेक रूप में प्राणी को अनुभूत होने लगती है उसी का नाम रोग है।

ज्वर में—शरीर की गरमी बिगड़ जाने पर वह रोम-रोम से निकलने लगजाती है।

अतिसार ग्रहणी छर्दि में—आम मल बाहर निकलने लगता है। कुष्ठ, वातरक्त, रक्तपित्त में—विकृत खून, पाण्डु कामला में—विकृत पित्त, कास—श्वास में—विकृत कफ वायु। उन्माद भ्रम अपस्मार में—विकृत वायु। वात-व्याधि में—दूषित वायु। प्रतिश्याय में—विकृत कफ पित्त बाहर निकालने का उपक्रम करता है। इसी प्रकार सभी रोगों में समझना चाहिए। यदि प्रत्येक रोग के विषय में सूक्ष्म विचार किया जाय तो बड़ी भारी पुस्तक तैयार होजाय। शरीर से विजातीय द्रव्य के बाहर निकलने का स्वरूप भिन्न भिन्न होने से रोगों का भी स्वरूप पृथक् पृथक् होजाता है और हर एक रोगों के नाम भी उसके स्वरूपानुकूल अलग-अलग ही रक्खे गये हैं।

आयुर्वेदिक चिकित्सा विधान की विशेषता—

इस विजातीय शारीरिक पदार्थों के रोग रूप में बाहर निकलते समय आयुर्वेदीय पद्धति प्रकृति को विजातीय द्रव्यों के शरीर से बाहर निष्कामनक्रिया में भरपूर सहायता देती है, जिससे शरीर विकृतिहीन होकर शुद्ध होजाता है। इसी का नाम चिकित्सा है।

इस प्रकृति सहायता—चिकित्सा के सहस्रों प्रकार आयुर्वेद में निर्दिष्ट किये गये हैं। इसलिए आयुर्वेदिक चिकित्सा से रोगांश शरीर में अल्परूप में भी रह नहीं जाता।

अन्य विदेशी चिकित्सा पद्धति में यह बात नहीं है। उन पद्धतियों द्वारा होने वाली चिकित्सा से तत्काल में रोगाभाव का आभास मात्र ज्ञात होता है। शरीर सर्वथा रोगरहित नहीं होता जिसका दुष्परिणाम यह होता है कि कुछ ही काल के बाद रोग अनेक प्रकार से फिर प्रकट होकर शरीर को अशक्त कर देता है।

आजकल इन्जेक्शन प्रणाली का अपने देश में-शहर ग्राम-सभी स्थानों में बहुत अधिक प्रचार होरहा है। उससे चिकित्सकों को अर्थलाभ भी विशेष रूप से होता है। चार छः आने की दवा. और दो रुपये लगवाई तथा इन्जेक्शन व दवा का दाम अलग। कम से कम एक इन्जेक्शन लगाने से ३ रु० प्रत्येक रोगी से तो मिल जाने में सन्देह ही नहीं। मरीज को भी तत्काल-में रोग दब जाने के कारण बहुत ज्यादा आराम मिल जाता है। सूई लगवा कर रोगी-जनता भी अपने को बहुत धन्य-धन्य समझने लग जाती है, किन्तु उसका उत्तरकालिक फल यह होता है कि थोड़े ही दिनों के बाद फिर रोग उपद्रवों के साथ बृहत् रूप में अपना कुप्रभाव व्यक्त करने लगता है। यदि दुर्भाग्य से उस समय पुनः इन्जेक्शन लगा तो फिर रोग दबा। कालान्तर में तिबारा रोग उभड़ने पर पुनः सूई लगी। अब इसका नतीजा क्या होगा, विज्ञजन स्वयं विचार लें। इन्जेक्शन से कोई रोगियों का मस्तिष्क बिगड़ते और कई रोगियों की मृत्यु तक

देखी गई हैं।

सौभाग्यवश यदि इन्जेक्शन वाला मरीज़ किसी शुद्ध आयुर्वेदिक चिकित्सक के पास पहुँच जाता है तो वह वैद्य मरीज़ की सब बातें सुनकर आयुर्वेदिक शुद्ध पद्धति से रोग समूहों को उसके शरीर से निःशेष बाहर निकालकर उस प्राणी को सर्वथा स्वस्थ बना देता है।

ये बातें मैं दूसरों से सुनी-सुनाई नहीं लिख रहा हूँ। ३५ वर्षों से आयुर्वेदिक चिकित्सा करते हुए जो मेरे अनुभव में आई हैं वे ही लिखी गई हैं, और समय पड़ने पर इसका प्रत्यक्ष प्रमाण दे सकता हूँ। कहना नहीं होगा कि जब से भारत में इन्जेक्शन प्रणाली के प्रचार की बहुलता हुई है तभी से यहां रोगों का बहुत अधिक प्रसार अवगत होरहा है कारण स्पष्ट है इन्जेक्शन चिकित्सा से रोग निर्मूल तो होता नहीं। रोग का अनुबन्ध बना ही रहता है। स्वस्थता आरोग्य की अधिकता देख पड़े तो कहां से ?

इसी अर्थलोभ में पड़ कर हमारे आयुर्वेदिक कालेज सरोवर से सुस्नात होकर निकले हुए वैद्य नहीं-नहीं डाक्टर पदाभिलाषी सज्जन भी इन्जेक्शन के प्रचार में अग्रदूत का काम कर रहे हैं। उदार पोषण एवं परिवार-पालनार्थ वेतन पायें सरकार से, देहाती आयुर्वेदिक चिकित्सालयों में और प्रचार करें सरकार से निषेध होने पर भी विदेशी और असुखोदर्क इन्जेक्शन चिकित्सा का। अनुभव के अभाव में उन लोगों की जब यह बात सुनी जाती है कि तात्कालिक लाभ पहुँचाने वाली दवा आयुर्वेद में नहीं होने से इन्जेक्शन का आश्रय लेना पड़ता है तो उनकी अज्ञानता पर दया आती है। आलस्यवश अन्वेषणाभाव से उन्हें यह मालूम ही नहीं कि वस्तुतः आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धति ही तात्कालिक सुख देकर सद्यः हंसाने वाली है। मालूम भी कैसे हो ? गुरु सुश्रूषा का तो गन्ध नहीं। प्रत्युत अवसर आने पर गुरुओं के प्रतिकूल हड़ताल आदि का प्रयोग होने लगता है।

मैं सत्य प्रमाणित करने को तैयार हूँ कि "यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत्क्वचित्"। आयुर्वेदाचार्य चरक की यह घोषणा अक्षरशः सत्य है। तात्कालिक रोग शान्ति करने वाली औषध आयुर्वेद में भरी पड़ी हैं। श्रद्धा से उनके प्रयोग करने पर ही उनके गुणों का परिचय हो सकता है। 'हर्रा लगै न फिटकिरी और चोखा रंग' के अनुसार कार्य करने से आयुर्वेद की उत्कृष्टता का ज्ञान कथमपि नहीं हो सकता। यदि यही बेढंगी रफ्तार रही तो आयुर्वेद के राष्ट्रिय चिकित्सा होने में कई युग लग जायंगे।

एक नूतन आयुर्वैदिक स्नातक से यह सुना कि कुनैन के अतिरिक्त मलेरियानाशक औषध आयुर्वेद में है ही नहीं। सप्रमाण मेरे यह कहने पर कि मैंने केवल आयुर्वैदिक औषध द्वारा मलेरिया से शतशः रोगियों को छुटकारा दिलाया है, उन्हें स्वीकार करना पड़ा।

टाइफाइड (मियादी) ज्वर के नूतन आविर्भूत विदेशी औषध टिकिया १ सप्ताह भर में ही ज्वर उतार देती है यह सत्य है परन्तु इसका परिणाम जानिये, ज्वर उतर जाने पर बहुत काल तक मन्दाग्नि, अरुचि और यकृत् वृद्धि से रोगी दुःखी रहता है, जो कि आयुर्वैदिक चिकित्सा से ही नीरोग होता हुआ देखा गया है। एलोपैथिक चिकित्सा में उसके चार सौ रुपये खर्च होगये थे। ऐसे कई रोगी साक्षी के रूप में वर्तमान हैं।

इस प्रकार देश के हित के ध्यान से, भारतीय उत्कृष्टता, एवं महर्षियों के ज्ञान-वैभव के संरक्षणार्थ हम वैद्यों का कर्तव्य होना चाहिये कि विदेशी चिकित्सा पद्धति का आश्रय एक दम छोड़ कर पवित्र सस्ती और सुखपरिणामकारी आयुर्वैदिक पद्धति ही प्रधान रूप से प्रचारित करें। यदि हमें आयुर्वेद में कोई उपाय न मिले तो दूसरे का आश्रय

(शेषांश पृष्ठ ८५६ पर)

जरानाशक उपदेश (ब्रह्मवैवर्त्त पुराणे)

लेखक—श्री० नानकचन्द्र वैद्यशास्त्री ए. वी. सी.।

आजकल मनुष्यों का आहार, व्यवहार तथा आचार नियमपूर्वक न होने से समय से पूर्व ही जरा (बुढ़ापा) व्याप्त होजाती है। यह बात तो निर्विवाद है कि मनुष्य देह में प्रायः तीन अवस्था अर्थात् बाल्य युवा, तथा जरा अपने समय पर अवश्य आती हैं। परञ्च जिस व्यक्ति का आहारादि नियमानुकूल न हो उसे जरा का प्रादुर्भाव शीघ्र होजाता है। अतः इस लेख में उन उपायों का वर्णन करेंगे जिनके प्रयोग से बुढ़ापा शीघ्र न व्याप्त हो।

सर्वसाधारण के ज्ञानार्थ भगवान विष्णु के वचन द्वारा यह दर्शाया है कि "जरा क्या है"।

विष्णुरुवाच—"मृत्यु कन्या सुताश्चै जरा तस्यश्च कन्यका।
जरा च भ्रातृभिः सार्द्धं शश्वद् भ्रमति भूतले" ॥

अर्थात्—रोग तथा जरा मृत्यु के पुत्र तथा जरा कन्या है, जरा अपने भाईयों के साथ निरन्तर भूमण्डल पर भ्रमण करती रहती है और सर्वसाधारण में अपना प्रभाव दर्शाती है।

एतेचोपाय वेत्तारं न गच्छन्ति च संयतम्।
पलायन्ते च तंदृष्ट्वा वैनतेयमिवोरगाः ॥

जो इन वक्ष्यमाण उपायों को जानते हैं और संयम से रहते हैं उन मनुष्यों को यह जरा या रोग कभी कष्ट नहीं देते अर्थात् उन मनुष्य को रोग कभी व्याप्त नहीं होते जैसे गरुड़ को देख कर सर्प भाग जाते हैं।

केचते उपायाः—"चक्षुर्जलं च व्यायामः पादाधस्तैलमर्दनम्।
कर्णयोर्मूर्ध्नितैलञ्च जरा व्याधिविनाशनम्" ॥

अर्थात्—नेत्रों में जल के छींटे मारना, कसरत नित्य करना, पैरों के नीचे तैल मलना तथा कान और सिर पर तैल मलना जरा, व्याधि को नाश करता है।

वाग्भट्टाचार्य भी लिखते हैं:—

"अभ्यङ्गमाचरेत् नित्यं सजरा, श्रमवातहा।
शिरः श्रवणं पादेषु तं विशेषेण शीलयेत्" ॥

नेत्रों में जल लगाने का नियम यह है कि मुख में पानी भर कर नेत्रों में छींटे लगाये तो इससे नेत्र-रोग नष्ट होकर दृष्टि तेज होती है।

अन्यच्च—वसन्तेभ्रमणं वह्नि सेवां स्वल्पांकरोतियः।
बालाञ्च सेवते काले जरा तंनोपगच्छति" ॥
प्रातः शीतोदक स्नायी सेवते चन्दन द्रवम्।
नोपयाति जरातंचनिदाघेऽनिलसेवनम्" ॥

अर्थात्—वसन्त ऋतु भ्रमण (सैर) करना, स्वल्पाग्नि का सेवन, ऋतुकाल में (चतुर्थादि दिनों में) अपनी स्त्री का सेवन जो मनुष्य करता है उसे वृद्धावस्था नहीं होती। प्रातःकाल शीतल जल से स्नान करना, चन्दन का तिलक या लेप करना, जो व्यक्ति ग्रीष्म ऋतु में शुद्ध वायु का सेवन करता है उसे जरा नहीं आती।

अन्यच्च—प्रावृष्युष्णोदक स्नायी घनतोयं च सेवते।
समयेचसमाहारी जरातन्नोपगच्छति" ॥
"शरद्रौद्रंनगृह्णाति भ्रमणं तत्रवर्जयेत्।
खातस्नायी समाहारी जरातंनोपगच्छति" ॥
खातस्नायी च हेमन्ते कालेवह्निञ्च सेवते।
भुङ्क्ते न चान्त मुष्णञ्च जरातंनोपगच्छति" ॥
शिशिरे शुक वह्निञ्चनवोष्णान्नं च सेवते।
तत्र चोष्णोदकस्नायी जरातंनोपगच्छति" ॥

अर्थात्—प्रावृट् ऋतु में उष्ण जल से, मेघ जल का सेवन, समय पर भोजन करने वाले को जरा नहीं होती, शरद् ऋतु में तेज धूप में भ्रमण न करना पुष्करणी में स्नान करे, समय से भोजन करे तो जरा नहीं बाधा देती।

हेमन्तऋतु में उष्ण जल में स्नान तथा अग्नि का सेवन, तथा जो ताजा और उष्णान्न का सेवन करता है उसे जरा कष्ट नहीं देती।

शिशिर ऋतु में उष्ण वस्त्र, अग्नि का सेवन, ताजा तथा उष्ण भोजन, तथा जो उष्ण जल से स्नान करता है उसे जरा नहीं होती।

अन्यच्च—"सद्योमांसं नवान्नञ्च बालास्त्री क्षीरभोजनम्।
घृतं च सेवते यो हि जरातन्नोपगच्छति॥"
स्पष्टम् भुंक्ते सदन्न क्षुत् काले तृष्णायां पीयते जलं।
नित्यं भुंक्ते पताम्बूलं जरा तंनोपगच्छति॥"
दधि हैयं गवीनं च नवनीतं तथा गुडम्।
नित्य भुंक्ते संयमी यो जरातंनोपगच्छति॥"

अर्थात् जो व्यक्ति ताजा मांस, ताजा अन्न, षोडश वर्षीया स्त्री का सेवन, तथा जो दुग्ध भोजन करता है और पवित्र घृत का सेवन करता है वह वृद्ध नहीं होता।

जो मनुष्य भूख लगने पर अच्छा आहार करता है तथा प्यास लगने पर जल पीता है और नित्य पान खाता है वह वृद्ध नहीं होता।

जो पुरुष दधि, ताजा मक्खन, घृत तथा गुड़ नित्य खाता है और संयमी रहता है उसे जरा कभी नहीं बाधा देती।

त्याज्यम्—' पूति मासं स्त्रियं वृद्धां बालार्कं तरुणं दधि।
संसेवन्तंजराऽयाति प्रहृष्टा भ्रातृभिःसह रात्रौ ये दधि सेवन्ते पुंश्चलीश्च रजस्वला। तानुपैति जरा हृष्टा-भ्रातृभिः सह सुन्दरि।"

अर्थात् सड़ा हुआ वासी मांस, वृद्धा स्त्री, उदय होता हुआ सूर्य का देखना, तथा दिन में जमाया हुआ दधि जो मनुष्य इन उक्त बातों का सेवन करता है उसे वृद्धावस्था अपने अनेक भाइयों (रोगों) के साथ आक्रमण कर देती है।

जो व्यक्ति रात्रि में दधि खाते हैं, व्यभिचारिणी तथा रजस्वला नारियों का सेवन करते हैं उनमें जरा अपने भाइयों के साथ आकर व्याप्त होजाती है। अतः संयमी बुद्धिमान मनुष्यों को ऐसे पापों से बचना चाहिये।

दीर्घायुःप्रद तथा जरा हरणो पायानाह स्वास्थ्य-संहितायाम्—पुनर्नवस्यार्धपलं न वस्य पिष्टं पिबेद्यः पयसार्धमासम्। मासद्वयं तान्त्रेणसमां वा जीर्णोऽपि-भूयः सपुनर्नवः स्यात्॥"

अर्थात् जो मनुष्य पुनर्नवा (सांठी) Hogweed के मूल को लेकर जो श्वेत वर्ण की हो उसे धोकर सुखाकर पीसलें, उसकी मात्रा बलाबल देखकर २ तोला नित्य १५ दिन, २ मास, ६ मास, एक वर्ष तक सेवन करता है वह व्यक्ति यदि वृद्ध भी हो तो इस औषधि के सेवन करने से फिर युवा होजाता है। इसको सेवन करने से पूर्व देह का शोधन कर लेना चाहिये।

२—समूलं भृंगराजञ्चछाया शुष्कन्तु कारयेत्।
तत्समं त्रिफला चूर्णं सर्वतुल्यासिता भवेत्।
पलेकं भक्षयेच्चैतद्वल्यं मृत्यु जरापहम्॥"

अर्थात् मूलसहित भांगरे का पञ्चांग लेकर उसे छाया में सुखाकर चूर्ण करलें, उसके बराबर त्रिफले का चूर्ण मिलाकर और दोनों के समान मिश्री मिलाकर एक पल (४ तोले) नित्य दुग्ध के साथ सेवन करने से मृत्यु तथा वृद्धावस्था नष्ट होती है इसका सेवन निरन्तर करना हितकर होता है। इसमें मनुष्य के बलाबल को अवश्य ध्यान में रखना चाहिये।

पृष्ठ ८५७ का शेषांश

लेना उचित है। किन्तु आयुर्वेद में सब कुछ है और वह स्वयं विज्ञानस्वरूप है। दूसरे प्रकार के विज्ञान से तोला नहीं जा सकता। इन्जेक्शन का बीज आयुर्वेद में भी विहित है, परन्तु वह हर समय हर रोग में प्रयुक्त नहीं हो सकता। शारीरिक जीवन सत्ता के नाशप्राय समय में ही उनका प्रयोग किया जासकता है "सर्वत्रवैपद्धलानि" के सदृश नहीं। आमाशय में पहुँची हुई औषध से ही भली भांति रोग निर्मूल हो सकता है।

महर्षि चरक का काल तथा चरकसंहिता का उदय

लेखक—विद्यावारिधि श्री ऋषिमित्र शास्त्री साहित्यरत्न।

महर्षि अग्निवेश कृत संहिता (तन्त्र), का प्रतिसंस्कार ही चरक-संहिता है, किन्तु इसके प्रतिसंस्कर्त्ता ऋषि चरक कब उत्पन्न हुये थे, इसका सर्वमान्य निर्णय हमारे इतिहास तथा साहित्य-ग्रन्थों के (मध्यकाल में) विनाश करने के कारण उपलब्ध नहीं हैं; जो कुछ शेष है भी, वह हम भारतीय शिक्षितों में अधिक लोगों (जो प्रामाणिक भी माने जाते हैं) के युरोपियन दृष्टिकोणों के शिकार होजाने के कारण विरुद्ध परिणाम उपस्थित कर देता है; वह दृष्टिकोण अप्रत्यक्ष रूप से भारतीयता के लिये घातक तथा प्रत्यक्ष रूप से उसका पोषक सिद्ध किया जाता है।

महर्षि चरक का काल

१—एक नये विचार से आदि सृष्टिकालीन यजुर्वेद के अध्याय ३० के १८ वें मन्त्र में 'दुष्क्लताय' चरकाचार्यम्' आया है। किन्तु आजतक के किसी भी वेदभाष्यकार ने चरक के उक्त प्रतिसंस्कर्त्ता की ओर इस वचन का कुछ भी निर्देश नहीं किया है; जबकि इसी वेद के इसी अध्याय के १० वें मन्त्र में 'पवित्राय भिषजम्' के शब्दों में भिषक् के लिये श्लाघनीय 'पवित्र' का प्रयोग हम देखते हैं। हां इस 'चरकाचार्य' का एक अभिप्राय गलित (या श्वेत) कुष्ठ है, यह अभिप्राय काशी की एक पत्रिका में देखने को मिला है। इस वाक्य को सुधी जन के विचारार्थ मैंने यहां प्रस्तुत किया है। बात यह है कि श्री भावमिश्र (भावप्रकाशकार) ने चरक की उत्पत्ति आदि सृष्टि में कही है। हो सकता है कि कोई मनीषी इन दोनों का समन्वय कर सके।

२—सम्मान्य मित्रवर श्री० पं० भगवद्दत्त जी ने लगभग आज से ३० वर्ष पूर्व अपने वैदिक वाङ्मय के इतिहास में पाणिनीय अष्टाध्यायी की वृत्ति काशिका में कथित ४-३-१०४ सूत्र पर 'चरक इति वैशम्पायनस्याख्या; तेन सर्वे तच्छिष्याः चरका उच्यन्ते।' का अनुबन्धान करके युरोपियन लोगों के अनर्गल प्रचार को रोक दिया। तथा इससे यह भी स्पष्ट सिद्ध किया कि ये चरक ही अग्निवेशतन्त्र के प्रतिसंस्कर्त्ता हैं। इस विषय में उनके निर्देश से रचित 'आयुर्वेद का इतिहास प्रथमभाग (कविराज सूरमचन्द्र बी० ए० कृत) की युक्तियां ज्ञातव्य हैं—१—ये वैशम्पायन ही पराशर ऋषि के पुत्र व्यासमुनि के शिष्य थे। एतदर्थ महाभारत शान्ति पर्व अ० ३३५ के श्लोक २६-२७ देखिये कि 'एकान्त पर्वत की उपत्यका में पाराशर्य महातपा व्यासमुनि ने सुमन्तु, वैशम्पायन, जैमिनि तथा पैल को पढ़ाया +। २—ये ऋषि वैशम्पायन वे ही हैं, जिन्होंने जनमेजय के सर्पसत्र में राजा को महाभारत का उपाख्यान कथा के रूप में सुनाया था, वह कथा भी इन्हें महर्षि व्यास से ज्ञात (पठित) हुई थी। तदनुसार सैकड़ों(अनेक) स्थानों पर इन्होंने महाभारत में आयुर्वेद के तत्वों का निर्देश किया है; उनमें से अन्यतम देखिये—'शीतोष्णे चैव वायुश्च त्रयः शरीरजाः गुणाः तेषां गुणानां साम्यञ्च तदाहुः स्वस्थ लक्षणम्। शान्तिपर्व अ. १६ श्लोक ११

वैशम्पायन मुनि यहां भीमसेन के मत से स्वस्थ का लक्षण कह रहे हैं श्लोक में 'शीतोष्ण' से क्रमशः—कफ और पित्त का तात्पर्य इष्ट है। इसकी तुलना के लिये यह स्थान एवं काल अनवसर है। ३—चरकसंहिता का प्रतिसंस्कार कलि के आरम्भ में हुआ था।

+विविक्ते पर्वत तटे पाराशर्यो महातपाः।
वेदानध्यापयामास व्यासः शिष्यान् महतपाः ॥२६॥
सुमन्तुं च महाभागं वैशम्पायन मेव च।
जैमिनिं च स महाप्राज्ञं पैलं चापि तपस्विनम् ॥

यह समय महभारतकालीन है। इस विषय में चरक के ही दो अन्तःसाक्ष्य है-जिनमें एक तो मनु के वचनानुसार क्रमशः सतयुग,त्रेता, द्वापर एवं कलि में 'आयुर्ह्रसति पादशः' अर्थात् सतयुग में मनुष्यों की आयु ४ सौ वर्ष है, वह क्रमशः एक-एक चरण ह्रसित होती है। तदनुसार कलि का आयुपरिमाण १०० वर्ष है जिसे हम चरक के शा० ६–२६ में 'वर्षशतं खल्वायुषः प्रमाणमस्मिन् काले' के रूप में देखते हैं। दूसरा प्रमाण लाहौर संस्करण की भूमिका में पं० जयदेवजी ने उल्लिखित किया है-चरक के ज्वराधिकार में 'विष्णु सहस्र नाम, के जप का विधान है। यह विष्णु-सहस्रनाम' महाभारत से पूर्व (अन्यत्र) कहीं भी नहीं देखने में आता है। अतः इन दोनों ही ग्रन्थों का कोई मौलिक एकत्व होना ही चाहिए।

३—पूर्व निर्देशानुसार भावप्रकाश के आरम्भ में मत्स्यावतार में श्री० विष्णु के वेदोद्धार के साथ ही अथर्ववेदान्तर्गत् आयुर्वेद की उपलब्धि का वर्णन है। इसके आगे ही 'चरक' शब्द की व्युत्पत्ति भी वहीं दी हुई है-'यतश्चर इवायातो न ज्ञातः केनचिद्यतः, तस्माच्चरकनाम्नाऽसौख्यातश्चक्षितिमंडले।" अर्थात् (गुप्त) चर के रूप में आने के कारण विष्णु को कोई न जान सका; इसलिये वे चरक के नाम से प्रसिद्ध हुये। इसके आगे चरक की प्रशंसा में उनको द्यु लोक के देवाचार्य की उपमा देकर 'चरकेणात्मनो नाम्ना ग्रन्थोऽयं चरकः कृतः' कहा है। इससे चरक का काल नितान्त पुरातन सिद्ध होता है।

४—भारतीय वाङ्मय के विद्यार्थी इस बात को स्पष्टतया जानते हैं कि हमारे ऋषियों का काल महाभारत के पश्चात् समाप्त होजाता है। क्योंकि इसके पश्चात् हमारी दृष्टि में ऋषि एक भी नहीं आते है,तथा बौद्ध आचार्य वाग्भट्ट अपने अष्टांगहृदय में एक शंका प्रगट करते हुये कहते हैं—

'ऋषि प्रणीते प्रतिश्चेन्मुक्त्वा चरकसुश्रुतौ; भेडाद्याः किन्न पाठ्यन्तेतस्माद् ग्राह्यं सुभाषितम्।' अर्थात् लोग ऋषिप्रणीत चरक-सुश्रुत ग्रन्थों को छोड़ भेडादि को क्या नहीं पढ़ते हैं? बात यह है कि उनकी प्रीति ऋषिप्रणीत ग्रन्थों में विशेष है इसलिये मेरे भी सुभाषित ग्रन्थ को सुधीजन पढ़ें। इससे यह स्पष्ट है कि चरक और सुश्रुत ऋषिप्रणीत हैं; साथ ही इनके कर्त्ता (प्रतिसंस्कर्त्ता) ऋषि हैं। इसी ऋषित्व के भाव का प्रतिपादन अब से लगभग ६०० वर्ष पूर्व के यात्री अलबेरूनी ने अपने यात्रा-विवरण के प्रथम भाग में किया है। उसमें उसने चरक ऋषि की स्थिति द्वापरान्त में कही है।

इस प्रकार हमें यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि चरक का प्रतिसंस्कार महर्षि चरक ने द्वापरान्त में किया। ये चरक ही आयुर्वेद के साथ अनेक अनेक वेदों की शाखाओं के विद्वान् थे। इसके लिये मीमांसादर्शन के १–१–३० सूत्र पर शवरस्वामी ने भाष्य में किसी पुराने ग्रन्थ का उल्लेख करके कहा है—'स्मर्यते च-वैशम्पायनः सर्व शाखाध्यायी।' अर्थात् कुछ लोगों ने वैशम्पायन ऋषि को वेद की सारी शाखाओं का विद्वान् माना है। इसी की पुष्टि काण्डानुक्रमणिका से भी होती है। उसमें वैशम्पायन ने यह ज्ञान पैंगियास्क को दिया, और यास्क ने तित्तिरि को तथा उख को तित्तिर ने पढ़ाया— कहा है।

चरक काल पर युरोपियनों की भ्रान्ति—

अब ऋषि चरक वैशम्पायन का काल तथा उनकी चरकसंहिता का भी प्रतिसंस्कार काल महाभारत सिद्ध हो गया। किन्तु उनके जीवन की घटनाओं का उल्लेख करने से पूर्व कुछ युरोपियन तथा उनके भारतीय अनुगामियों के मतों का विचार आवश्यक है —

१—शायद सर्वप्रथम फ्रांस के प्रो० सिल्वन लेवी ने उन्नींसवीं शती के अन्तिम वर्षों में बौद्ध ग्रन्थ 'संयुक्त रत्न पिटक' के चीनी अनुवाद का आधार लेकर चरक को कनिष्क की राज सभा का वैद्य सिद्ध किया, जिससे कि ऋषि चरक का काल ईसा पश्चात् प्रतीत होने लगा। यह हम भारतीयों के सौभाग्य की

को व्यास जी ने यजुर्वेद की शिक्षा दी। वायु, ब्रह्माण्ड तथा भागवत पुराण के अनुसार वैशम्पायन ने यजुर्वेद की ८६ शाखाओं का विस्तार किया। किन्तु विष्णु तथा अग्निपुराणों ने २७ ही शाखाओं का उल्लेख है।

इस प्रकार चरक उपनाम महर्षि वैशम्पायन ने यजुष् की ८६ संहिताओं का निर्माण किया; और उन्हें ८६ शिष्यों को पढ़ाया। श्री० पं० भगवद्दत्त जी अपने 'वैदिक वाङ्मय का इतिहास' प्रथमभाग में वैशम्पायन द्वारा ८६ संहिताओं के प्रणयन की पुराणों वाली बात का खण्डन करते हुए कहते हैं कि आपस्तम्बादि अनेक शाखाओं की संहिताओं का समग्र आज तक उपलब्ध वैदिक साहित्य में कहीं निर्देश भी नहीं है। फिर भी वैशम्पायन वेद की अनेक शाखाओं के प्रवक्ता थे इसे उक्त पं० जी भी स्वीकार करते हैं।

महर्षि चरक (वैशम्पायन) के ८६ शिष्यों में से याज्ञवल्क्य अलग होगये अतः उनके शिष्यों की संख्या ८५ ही शेष रही। किन्तु याज्ञवल्क्य द्वारा परित्यक्त वेद का तित्तिरि आदि ने पुनः ग्रहण किया इससे उनकी ८६ संख्या यथापूर्व बनी रही। ये यजुष् की ८६ शाखायें ही कृष्ण यजुष् कही जाती हैं। किन्तु यजुष् का शुक्ल भाग इससे भिन्न है जो कि याज्ञवल्क्य ऋषि के द्वारा विस्तृत किया गया था। उसकी १५ शाखायें हैं। इस प्रकार इस यजुर्वेद की कुल १०१ शाखायें कही जाती हैं।

विष्णु पुराण में याज्ञवल्क्य के अपने गुरु (चरक-वैशम्पायन) से अलग होने की घटना का उल्लेख इस प्रकार किया गया है - एक बार सारे ऋषियों ने यह निश्चय किया कि जो (ऋषि) आज वाली सभा में-जो कि मेरु पर्वत पर होने वाली है-नहीं उपस्थित होगा, उसके हाथ से किसी न किसी प्रकार सात दिन के अन्दर ही ब्रह्महत्या हो जायगी। इस नियम का उल्लंघन अभाग्यवश केवल चरकाचार्य से अकस्मात् होगया। तदनुसार उनके चरण-स्पर्श के कारण उनकी बहिन के पुत्र की मृत्यु होगई। महाभारत में तो ब्रह्महत्या के साथ बाल-हत्या का भी उल्लेख है। तो, इस हत्या के प्रायश्चित करने के लिये गुरु चरक-वैशम्पायन ने अपने सारे शिष्यों को कहा। यह सुनकर उनके पटु शिष्य याज्ञवल्क्य ने कहा-'गुरो! सबसे प्रायश्चित कराने की क्या आवश्यकता है? मैं एकाकी सबका प्रायश्चित कर डालूंगा।' शिष्य की यह दर्पोक्ति सुन आचार्य परम क्रुद्ध हुये और अपनी दत्त-विद्या का परित्याग करने के लिए कहा। याज्ञवल्क्य को यह दण्ड स्वीकार करना पड़ा; और उक्त प्रकार से तित्तिरि आदि शेष शिष्यों ने उनकी वान्त विद्या का चयन किया।

पारिक्षित जनमेजय ने अश्वमेध यज्ञ किया; उसमें आचार्य चरक को न बुलाकर (याज्ञवल्क्य की) वाजसनेय शाखा वालों को यज्ञ का ब्रह्मा बनाया। महर्षि वैशम्पायन ने क्रोध से उसे शाप दिया कि इसके पश्चात् ब्राह्मणगण क्षत्रियों का पौरोहित्य (ऋत्विजादि कार्य न करेंगे। किन्तु राजा जनमेजय भी हठ से वाजसनेयों के द्वारा ही एक और भी अश्वमेध यज्ञ कर डाला। राजा स्वतः बड़ा पराक्रमी था अतः अन्य क्षत्रियों ने भी जनमेजय का ही अनुसरण किया। किन्तु महर्षि चरक (वैशम्पायन) भी कम प्रभावशाली न थे। उसी समय से इन्हीं के आदेशानुसार वाजसनेयों के अतिरिक्त ब्राह्मणों ने क्षत्रियों के सम्बन्ध की आजीविका का परित्याग कर दिया। महर्षि ने इससे भी आगे बढ़ कर अनेक ब्राह्मणों की सहायता से जनमेजय को पदच्युत करके ही दम लिया। अकेले आचार्य ने इस आन्दोलन का नेतृत्व किया। एक ओर तो वे वाजसनेयों से शास्त्रार्थ करते व अपने शिष्यों से शास्त्रार्थ कराते थे. दूसरी ओर जनमेजय को पद-भ्रष्ट कराने के प्रयत्न में भी अनवरत लगे रहे। परिणाम यह हुआ कि जनमेजय को राज्य छोड़ वन का मार्ग ग्रहण करना पड़ा। तो भी उस हठधर्मी ने अपना निश्चय न छोड़ा। इसलिये इतिहास (पुराणों) में उसे महावाजसनेयक पद दिया गया।

महर्षि चरक की इस घटना से यह अवश्य प्रतीत होता है कि सारा जगत् उनका सिक्का मानता था। मानता भी क्यों न? जबकि वेदज्ञान के साथ-साथ वे आयुर्वेद तथा राजनीति एवं विज्ञानादि में भी परम निपुण थे। महर्षि चरक के उपनाम वैशम्पायन के नाम से जो नीति संग्रह उपलब्ध है; उसमें बन्दूक के बारूद आदि का पूर्ण विवरण प्रस्तुत किया गया है। कहने का तात्पर्य यह है कि महर्षि चरक की इस प्रसिद्धि के अनेक आधारों में आयुर्वेद ज्ञान भी मुख्य था। इस प्रकार महर्षि विशंपि के वंशज उपनाम चरकाचार्य ने सारे ज्ञान जगत् का महर्षि व्यास जैसे गुरु से अवगाहन किया; और जिस प्रकार एक वृक्ष असंख्य बीजों का निर्माण करता है, उसी प्रकार चरकाचार्य ने भी अपने लगभग १०० शिष्यों में उस ज्ञान महोदधि का दान कर दिया। पूर्वोक्त घटनानुसार वे पहले राजा जनमेजय के पुरोहित थे किन्तु उस राजा की अन्यवृत्ति देख प्रथम तो उससे अपना सम्बन्ध विच्छेद किया; तदनन्तर उसका राजस्व भी समाप्त कर दिया। इसके पश्चात् उनका जीवन तपोमय ही बीता—ऐसा पुराणों से आभासित होता है।

ऊपर महर्षि चरक का वैशम्पायन भी नाम था; इसका उल्लेख किया गया है। कुछ लोगों को भ्रम होगा कि यजुष् की चरक शाखा का अध्ययन करने के कारण ही इनका शायद चरक नाम पड़ा हो किन्तु काशिका वृत्ति के उक्त प्रमाण का मनन करने पर पता यही चलता है कि प्रथम चरक नाम से वैशम्पायन ऋषि को ही सम्बोधित किया गया; फिर उनके शिष्य भी बाद में (शिष्य होने के कारण) चरक कहे जाने लगे।

हो सकता है कि उस महान् मनीषी ने पूर्वोक्त 'दुष्कृताय चरकाचार्य' पद को देख कर दुष्कर्मों से उत्पन्न रोगों की चिकित्सा में विशेष आविष्कार कर के यह नाम या उपाधि पाई हो। क्योंकि मनुस्मृति के अनुसार प्रथम लोग सारी वस्तुओं (व्यक्ति, नगर, नदी आदि) का नाम वेदों में से ही निकाल कर रखते थे।

इस प्रकार महर्षि चरक-वैशम्पायन का कालक्रम महाभारत के समय का सिद्ध होता है। अतः उनके साथ ही अग्निवेशतन्त्र ने भी उसी काल में 'चरक-संहिता' का नाम प्राप्त किया। उसी काल से उसकी ख्याति अनुदिन बढ़ने लगी। शायद इसी लिये दृढ़बल को 'यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत्क्वचित्' की दर्पोक्ति चिकित्सा के विषय में करनी पड़ी। 'चरकस्य चिकित्सितम्' सुभाषित भी इसी की पुष्टि करता है। सुधीजन इससे भी अधिक सामिग्री अन्वेषण करने पर पा सकते हैं। तदर्थ हमें प्रयत्नशील होना चाहिये।

चरक चिकित्सा की विशेषताएं।

लेखक—आयुर्वेद वृहस्पति साहित्याचार्य वैद्य घनानन्द पन्त विद्यार्णव, देहली।

चिकित्सा वह्निवेशस्य स्वस्थातुरहितं प्रति।
यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत्क्वचित्॥
च० सि० श्लो० ६३॥

इससे चरक चिकित्सा की सब चिकित्साओं से विशेषता प्रतीत होती है। वेद अपौरुषेय हैं। पौरुषेय पक्ष में भी ऋगवेद और अथर्ववेद में आयुर्वेद के मूल सूत्र हैं। सुश्रुत तथा कश्यपसंहिता में—

अनुत्पाद्यैवप्रजाः श्लोकशतसहस्रमध्यायसहस्रं च कृतवान स्वयंभूः। सु० सू० १. ३.

इसी अभिप्राय का वचन कश्यपसंहिता में भी है। इन वाक्यों से प्रजा की सृष्टि से पूर्व ही ब्रह्मा जी ने अपनी संहिता बनाई, ब्रह्मसंहिता से—

ब्रह्मास्मृत्वायुषोवेदं प्रजापतिमजिग्रहत।
सोऽश्विनौतौसहस्राक्षं सोऽत्रिपुत्रादिकानमुनीन॥

इस प्रकार अत्रिपुत्रादि मुनियों को आयुर्वेद का सङ्क्रमण हुआ। आत्रेय के छै शिष्य थे; अग्निवेश, भेल, जतूकर्ण, पराशर, हारीत, क्षारपाणि। इनमें अग्निवेश विशेष बुद्धिमान होने से आत्रेय के प्रधान शिष्य थे। अतः अग्निवेश ने सबसे प्रथम अपने नाम से अग्निवेश संहिता बनाई।

बुद्धेर्विशेषस्तत्रासीन्नोपदेशान्तरंमुनेः।
तन्त्रप्रणेता प्रथममग्निवेशो यतोऽभवत्॥

अग्निवेश-संहिता का ही चरक ने प्रतिसंस्कार किया अर्थतः चरकसंहिता भी उत्तम तन्त्र सिद्ध हुई ऐसी लोक में मान्यता है भी।

अग्निवेश का समय—द्रोणाचार्य जो पाण्डव कौरवों के अस्त्र विद्या के गुरु थे, उन्होंने अग्निवेश के परम्परागत अग्निवेश्य से अस्त्रविद्यासीखी थी यथा—

आग्निवेश्यं महाभागं भरद्वाजः प्रतापवान्।
प्रत्यपादयदाग्नेय मस्त्रमस्त्रविदांवरः॥

अग्निवेश ने ऋषि भरद्वाज से आग्नेयास्त्र प्राप्त किया। —महाभारत १-४०।४१

अगस्त्यस्य धनुर्वेदे शिष्यो मम गुरुः पुरा।
आग्निवेश्य इति ख्यातः तस्य शिष्योऽस्मि भारत॥
महाभारत १५२।१०

द्रोणाचार्य कहते हैं मेरे गुरु अग्निवेश ने अगस्त्य से सीखा। अन्यत्र भी द्रोणाचार्य कहते हैं—

महर्षेरग्निवेश्यस्य सकाशमहम च्युत।
अस्त्रार्थमगमंपूर्वं धनुर्वेदजिघृक्षया॥ महाभारत।

पाण्डवों का समय ५२०० वर्ष पूर्व माना जाता है। आसन्मघासु मुनयःशासति नृपतौ युधिष्ठिरे पृथिवीम्। इस वाक्य से। यहां प्रसङ्गतः अग्निवेश का समय दिया है। महाभारत में आत्रेय का नाम—'कृष्णात्रेयश्चिकित्सिते, कृष्णात्रेय नाम से मिलता है। आत्रेय के शिष्य अग्निवेश का नाम आ ही चुका है।

चरकसंहिता की विशेषतायें

सर्वात्मना चातुराणामारोग्याय प्रयतितव्यम्।
जीवितहेतोरपिचातुरेभ्यो नाभि द्रोग्धव्यम्॥
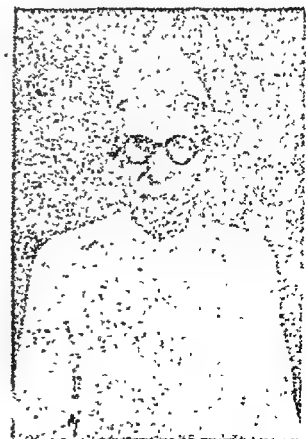
मनसापि परस्त्रियो नाभिगमनीयास्तथा सर्वमेव परस्वम्। चरक विमान अ० ८।

ऐसे उत्तम मननीय अनुकरणीय उपदेश चरक में ही हैं। इस अति गम्भीर प्रकरण का वैद्य व वैद्यक के विद्यार्थियों को विशेष मनोयोग से स्मरण करना चाहिये।

सूत्रस्थान आरग्वधीयाध्याय में—

इहात्रिंश: सिद्धतमानुवाच। द्वात्रिंशतं सिद्धमहर्षिपूज्य:।
चूर्णप्रदेहान्विविधानयघ्ना। नारग्वधीयेजगतोहितार्थम्।

इस अध्याय में ३२ सिद्धतम प्रयोग दिये हैं। सिद्धतम शब्द का अर्थ यहां जो औषध रोगी को किसी अन्य प्रकार के उपद्रव न कर रोग को जड़-मूल से ठीक करदे उस औषधि को सिद्ध औषधि कहा जाता है। यहां सिद्ध शब्द से अतिशय अर्थ में तमप् प्रत्यय है। इससे सिद्ध से भी अतिशय सिद्ध औषधियों का उक्त प्रकरण में निर्देश है। उक्त श्लोक में–जगतोहितायपद दुनियां के उपकार के लिये उक्त सिद्धतम प्रयोग महर्षि ने लिखे हैं नकि विज्ञापनार्थ। प्राचीन वैद्य इस अध्याय के योगों को विशेषकर व्यवहार में लेते थे। इस प्रकरण के कतिपय योगों को मैं भी बराबर व्यवहार में लेता हूँ और अच्छा फल मिलता है।

उनमें से दो योग—मनःशिलाले मरिचानि तैलमार्कं पयः पिष्टहरः प्रदेहः इसका प्रयोग विचर्चिका, किटिभ, पामा आदि में निश्चित लाभ देता है। एवं–तक्रेणयुक्तं यवचूर्ण मुष्णं सुक्षारमतिजठरस्य हन्यात्। यह प्रयोग तो उदरशूल के लिये सर्व वैद्यों के व्यवहार में आता है। इससे आगे सूत्रस्थान के चतुर्थाध्याय में ६०० विरेचन के प्रयोग पृथक् प्रथक् रोग विशेष में चरक ही में इस प्रकार से मिलते हैं। इसी अध्याय में ५० महाकषायों से एक एक रोग में १०-१० औषधियों का प्रयोग सूत्ररूप से किया गया है। इन दसों में से गण की एक औषधि भी उक्त रोगों में कार्य करती है। इस प्रकार पचास रोगों में ५०० औषधियों का प्रयोग सूत्ररूप से वर्णन किया है।

'मन्दानां व्यवहाराय बुधानां बुद्धि वृद्धये' यह लेखन सौष्ठव है। इन्द्रियोपक्रमणीय में जो सद्वृत्त का वर्णन है वह रोगों की अनुत्पत्ति के लिये सदा अभ्यसनीय है, ऐसे प्रकरण अन्य चिकित्साओं में देखने में नहीं आते। इसके कुछ चुने वाक्य यहां देते हैं–औषधीः प्रशस्ताधारयेत, मलायतनेष्वभीक्ष्ण पादयोश्चवैमल्यमादध्यात्, पूर्वाभिभाषी सुमुखः, कालेहितमितमधुरार्थवादी, सर्व प्राणिषुवन्धुभूतः क्रुद्धानामनुनेता, भीतानामा श्वासयिता, प्रशमगुणदर्शी, रागद्वेश हेतूनां हन्ता इत्यादि। इस प्रकरण को पुनः-पुनः मनन करना चाहिए। तिस्रैषणीय में–भवति चात्र–से पूर्वाचार्यों का यह वचन उद्धृत किया है। मानसं प्रति भैषज्यं त्रिवर्गस्या वेक्षणम्। तद्विद्य सेवाविज्ञान मात्मादीनां च सर्वशः एवं ज्वर प्रकरण में विष्णुसहस्रनाम का पाठ, दैवव्यपाश्रय चिकित्सा--वलि, मन्त्र, होमादि मानसरोग चिकित्सकों के दिन पर दिन विचारणीय विषय हो रहे हैं। वास्तव में इत्यादि वाक्य मन के तोषार्थ अमृत तुल्य है। वातकलाकलीयाध्याय में तथा आत्रेय भद्रकापीय में--ऋषियों ने आपस में मिलकर जो ऊहापोह किया है, यह भारत की अपनी उपज अनुकरणीय है। कहा जाता है आर्ष शैली की चिकित्सा में रोग दूर होने में अधिक समय लगता है सो—गन्धर्व पुर्वन्नाशंयद्विकारा सुदारुणा। यान्ति यच्चेतरे वृद्धि माशूपाय प्रतीक्षिणः।

जिस प्रकार आकाश में हवा चलने से बादल शीघ्र लुप्त होजाते हैं इसी प्रकार कठिन रोग शीघ्र उपाय करने से शान्त होजाते हैं।

तैल और घृतों में पाक से औषधि गुणों का संक्रमण यह भी आयुर्वेद की अपनी उपज है। एवं एक ही औषधि के स्वरस, कल्क, क्वाथ, हिम, फाण्ट यह कल्पना भी चरकोपज्ञा है। गाय को पुष्टिकर अन्न तथा तत्तद्रोगहर औषधि खिलाकर दुग्ध, मल, से चिकित्सा की दिशा — 'माषपर्णभृतांधेनुम्' इत्यादि से निर्दिष्ट की गई है ये भी आर्ष कल्पना अब तक

चिकित्साओं में है कि नहीं। इसी प्रकार क्षीरपाक विधि से दुग्ध में औषधि का गुण संक्रमण कर ली, बाल वृद्धातुरों के लिये सरल उपाय हैं। वस्ति क्रिया से तो अनेक प्रकार की तत्तद्रोगहर औषधों का प्रयोग अपूर्व ही है। वस्तिचिकित्सा संसार को ५ हजार वर्ष से ही आयुर्वेद की देन है। पञ्चकर्म विधान तो चरक का कठिन से कठिन रोगों को जड़ से उखाड़ने का अद्वितीय है। जो तन्त्रान्तरों में नहीं है। इसी प्रकार कल्पविधान भी चरक का अपना ही एक है। आसव-अरिष्टों द्वारा वर्षों तक औषधि के गुण को बनाये रखना और शीघ्र गुणकारित्व आदि क्रम भी चरक का ही प्रथम अपना आविष्कार है।

यह बात तो निश्चित है सुश्रुत चरक के पश्चात् बना; चरक और सुश्रुत दोनों में रसायन और वाजीकरण प्रयोगों में प्रथम उल्लेख चरक का ही हो सकता है अतः वाजीकरण रसायन कल्पना भी चरक की अपनी ही है।

चरक के निम्नश्लोक-द्वय बुद्धिमान वैद्य को बड़े धैर्य दिलाने वाले हैं। अयोग्य वैद्य की मूर्खता बढ़ाने वाले भी हैं—

विकारनामाकुशलो न जिह्रीयात्कदाचन।
नहि सर्व विकाराणां नामतोऽस्ति ध्रुवागतिः॥
स एव रोग समुत्थान मशक्य मिहकेनचित्।
परिहर्तुं न तत्प्राप्य शोचितव्यं मनीषिणा॥

इस प्रकार के तथा अन्यविध उपयोगी उपदेश चरक में स्थान स्थान पर दिये गये हैं, जो अतिरमणीय हैं।

उपसंहार में—चरक ब्रह्मसंहिता की परम्परा में से है। ब्रह्मसंहिता के उत्तर आत्रेयादि ने भी अपने गुरुज्ञान को विस्तृत किया ही होगा। तदनन्तर अग्निवेश ने भी अपने नवीन अनुभव अपनी संहिता में दिये ही होंगे। इसके बाद चरक ने भी अपने अनुभवों से इसकी श्रीवृद्धि की होगी। चरक के बाद दृढ़बल ने अपनी पूर्त्ति की।

१—मूल ब्रह्मसंहिता से २—प्रजापति, ३—अश्विनीकुमार, ४—इन्द्र, ५—आत्रेय, ६—अग्निवेश ७—दृढ़बल।

इस प्रकार सात बार गुरुशिष्य परम्परा से वर्तमान चरक का प्रतिसंस्कार, आपूरण, परिबृंहण कुछ न कुछ होता ही रहा।

चरक में—१—इदंरसायन चक्रे ब्रह्मा वार्षसहस्रिकम्।

२—पञ्चानां पञ्चमूलानां'' इति ब्राह्मं स्वयंरसायनम्।

३—यथोक्त गुणानामामलकानाम्'' इति द्वितीयब्राह्मरसायन योगः। ये रसायन साक्षात् ब्रह्मसंहितोक्त हैं।

१—ऐन्द्री ब्राह्मी पयस्या'' इति इन्द्रोक्तं रसायनम्।

२—प्रयोज्य मिच्छद्भिरिदं यथावद्रसायनं ब्राह्ममुदारवीर्यम् इतीन्द्रोक्तं रसायनमपरम्।

यह ब्रह्मसंहिता से इन्द्र को मिला ऐसा अनुमान होता है। पूर्व नं० १ इन्द्रोक्त रसायन इन्द्र का ही है ऐसा विदित होता है।

आयुर्वेद और जल-चिकित्सा

लेखक—आयुर्वेदाचार्य पं० कृष्णदत्त शास्त्री "साहित्य भूषण" बिल्हौर (कानपुर)

"धर्मार्थ काम मोक्षाणामारोग्य मूल कारणम् ।"

अर्थात् धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों पदार्थों की प्राप्ति के अर्थ आरोग्यता मूल कारण है। इसमें संशय नहीं कि आरोग्यता कितनी आवश्यक है, और आरोग्यता का साधन आयुर्वेद ही है।

इसके साथ ही इससे भी इन्कार नहीं किया जा सकता कि आयुर्वेद का प्रादुर्भाव अथर्ववेद से है अतः वह उसका उद्‌गम स्थान है।

अथर्ववेद के प्रथम काण्ड में जल विषयक "विद्‌मा शरस्य पितरम्" आदि पांच मन्त्र मुख्य हैं यद्यपि और भी अनेक मन्त्र इसी परक के हैं। इनके ज्ञान से भास होता है कि यदि कोई रोग असाध्यावस्था को प्राप्त दीखता है तो भी जल की शरण उसको जीवन दान देने की सामर्थ्य रखती है।

इसी प्रकार यजुर्वेद के अध्याय ३६ मंत्र १२ में भी "शन्नोदेवी रभिष्टय आपो भवन्तु पीतये, शयोरभिजवन्तु नः" मंत्र में जल परम कल्याणकारी दिव्य गुणयुक्त बताया है, हमारे लिए शौचता प्रदान करे और रोगों का विनाश करे ऐसा ही जल पर्जन्य द्वारा हमें प्राप्त हो प्रार्थना की गई है। महीधराचार्य ने भी इस मन्त्र के यही अर्थ किए हैं अर्थात दिव्य जल से प्राणीमात्र रोगमुक्त हो सकता है।

तब प्रश्न उठता है कि दिव्य जल कौन है ?

ऋग्वेद मंत्र १ सूक्त २३ मंडल १८ में "आपो देवी रुपह्वये यत्र गावः पिबन्ति नः सिन्धुभ्यः कर्त्वं हविः" अर्थात् जैसे—

(गावः) सूर्य की किरणें (सिन्धुभ्यः) समुद्र, नदी और तालावों से (देवीः) दिव्य गुण वाले (आपः) जलों को पीती हैं (नः) हमारे (हविः) शौच स्नानादि तथा रोगों (कर्त्वम्) दूर करने को हैं उनको मैं (उपह्वये) स्वीकार करता हूं। महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने भी इसका यही अर्थ किया है।

अब यह जानना है कि दिव्य गुण वाला जल जिसकी प्रशंसा वेद करता है किन-किन गुणों वाला होता है ?

"शीतं शुचि शिवं मृष्ठं विमलं लघु षड्‌गुणम्।
प्रकृत्या दिव्य मुदकं मृष्ठं पात्रमपेक्षते।"

—चरक अ० २७-१९२।

अथर्ववेद मन्त्रानुसार आकाशी जल ही दिव्य गुण वाला होता है जिसको चरक ने छः गुण वाला कहा है। अर्थात् उसके भूमि भेद से मिलकर जल में भेद हो जाते हैं—

"श्वेते कषायं भवति पाण्डुरेचैव तिक्तकम् । कपिले कटुकं तोयमूषरे लवणान्वितम् । कटु पर्वत विस्तारे मधुरं कृष्णमृत्तिके। तथा व्यक्तरसं विद्यादैन्द्रं हिमकरं च तत् ।"

—चरक सूत्र स्थान अ० २७-१९३-१९४।

अर्थात् अन्तरिक्ष से गिरा जल श्वेत भूमि में कषाय, पाण्डु में तिक्त, कपिल में कटु, ऊसर में लवणान्वित, पर्वतों का कटु, काली भूमि में मधुर होजाता है। आकाश जल अव्यक्त रस शीतल तथा उत्तम गुणकारी होता है इसको ऐन्द्र जल भी कहते हैं।

तो अब शुद्ध जल कैसे प्राप्त हो ? यह प्रश्न होता है—

"यदन्तरिक्षात्पततीन्द्र सृष्टं च।
उक्तं च पात्रे परिगृह्यतेऽम्भः।"

अर्थात् पत्थरादि के पात्रों में ही ग्रहण किया जाय, इसके अर्थ राजप्रबंध होना चाहिए।

दिव्य जलों की भांति उन नदियों का जल भी उत्तम होता है जो—

नद्यः पाषाण विच्छिन्ना, विक्षुब्धा विमलोदकाः।
हिमवत् प्रभवाः पथ्याः पुण्याः देवर्षि सेविताः।
नद्यः पाषाण सिकता वाहिन्यो विमलोदिकाः।
मलयं प्रभवाश्च जलं ताल्दमृतोपमम्॥ —चरक।

जहां यह जल भी अप्राप्य हो वहां उत्तम कूप जल अथवा गरम कर शुद्ध जल सिकतादि द्वारा ग्रहण करे।

साधारणतया पीने में काम आने के सिवा विशिष्ट जल से कौन रोग नाश होते हैं यह वेद बतलाया है।

यजुर्वेद के अ० ४ मन्त्र १२ में (श्वान्ना पीता-भवत पूयमायो अस्मास्कमन्तरुदरे सुशेवाः आदि में) दिव्य जल ज्वरादि, राजयक्ष्मा कुष्ट, प्रमेह, उदरादि रोगों के दोषों को नष्ट करता है।

तो क्या आयुर्वेद में वर्णित और औषधियां बेकार है? नहीं। पर जल में अन्य औषधियों का भाग भी विद्यमान है अत: वह अधिक उत्तम है। यथा—

"अप्स्वन्तर मृतमप्सु भेषजम्। अपामुत प्रशस्ति भिरश्वा भवथ वाजिनो गावो भवथ वाजिनीः।

—अथर्व० १-४-२१।

अर्थ—(अप्सु+अतः+अमृतम) जलों के मध्य अमृत जीवन है (अप्सु+भेषजम) जल में औषधियां हैं (अपाम्+उत+प्रशस्तिभिः) जल योग से रोग नष्ट होकर (अश्वा भवथ+वाजिनः) प्राणादि वायु बलवान होते हैं और (गावः भवथ वाजिनी) दशों इन्द्रियां बलवती होती हैं।

यजुर्वेद, ऋग्वेद में ऐसे ही अनेक उपदेश हैं। यथा—अप्सुमे सोमोऽब्रवी दन्तर्विश्वानि भेषजा, अग्निं च विश्व शंभु-वमापश्च विश्व भेषजीः। ऋग्वेद १-२३-२०।

अर्थात (सोमः) कायाकल्प सोमरस जिसके सामने (विश्वानि+भेषजानि) सम्पूर्ण रोगों की औषधि में (अन्तः) अवस्थित है उसको (च) और (विश्वशम्भुवम्) सबको सुख देने वाली (अग्निम्) अग्नि को (च) भी (अप्सु) जलों में (अब्रवीत) कहा है अत: (ये) मेरे लिए (आपः) केवल जल ही (विश्वभेषजीः) समस्त रोगों की औषधि है।

प्रश्नः—क्या जल से ही मानवरोगरहित और पुष्टि-मान होसकता है ऐसा कोई वैज्ञानिक प्रमाण है?

उत्तरः—हां! विचारो कि शरीरों को बलवान पुष्टिमान करने वाले कौन पदार्थ हैं! अन्वेषण से पता चलेगा कि प्राण बलावान और रयि पुष्टिमान करने वाले यह दो पदार्थ हैं। तभी प्राण और रयि के सम रहने से शरीर निरोग रहता है, और विषम भाव में रोग उत्पन्न होते हैं। आयुर्वेद में दो प्रकार के रोग हैं-१-धातुपाक २-मलपाक।

प्राणों की विषमता से होने वाले रोगों को धातुपाक और रयि की विषमता से होने वाले रोगों के नाम मलपाक हैं। अत: जब कोई रोग न हो तो समझना चाहिए कि प्राण व रयि सम हैं।

प्राण व रयि दोनों शक्तियां जल में ही रहती हैं। ऐसा अनेक आख्यायिकाओं में वर्णन है देखो—छांदोग्योपनिषद प्र० ६ खंड ५ प्रया० २ आदि-आदि। पुनः फिर कभीः—

आशा है इस पर विद्वत्मण्डली विचार विमर्श करेगी और वैदिक "आपः" शब्द से विश्व को लाभ पहुँचावेंगे।
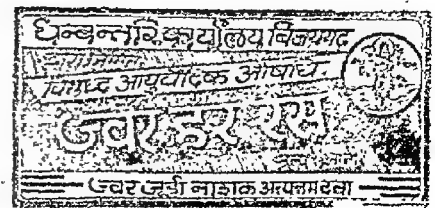
आयुर्वेद की एलोपैथी पर विजय।

लेखक—कविराज काव्यतीर्थ पं० उमादत्त शर्मा त्रिवेदी वैद्यशास्त्री आयुर्वेदाचार्य
अध्यक्ष-आयुर्वेदिक आरोग्य भवन, राजा का रामपुर (एटा)
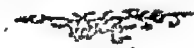
आज भारत में स्वराज्य होने पर भी नेताओं की मानसिक परतंत्रता के कारण पश्चिमीय सभ्यता की वृद्धि ही होरही है। जिस बात में देखो पश्चिमीय सभ्यता की तरफ ही उनका झुकाव उत्तरोत्तर वृद्धि पारहा है। चिकित्सा विषय में भी यही हाल है। आयुर्वेद को अवैज्ञानिक कहकर उसकी उन्नति की ओर कुछ भी ध्यान नहीं दिया जाता है। प्रत्युत उत्तरोत्तर एलोपैथिक को उसके प्रचार में विपुल धन द्वारा प्रोत्साहन दिया जारहा है, और उसका परिवर्द्धन किया जारहा है। इसीलिये जनता का भी झुकाव नवीन आविष्कारों की चकाचौंध में एलोपैथी की ही ओर विशेष हो रहा है। रोगी भी शीघ्र अच्छे होने की लालसा से उसी ओर झुक जाता है। और वहाँ पर परेशानी के अतिरिक्त कुछ भी नहीं पाता है। अन्ततोगत्वा हताश होकर उसी प्राचीन अवैज्ञानिक कही जाने वाली पद्धति आयुर्वेद की ओर विवश होकर आना पड़ता है जबकि स्वास्थ्य एवं धन दोनों ही की लूट हो चुकती है।

नवीन आविष्कार बुरे नहीं, सदा अनुसंधान एवं आविष्कार होना उत्तरोत्तर शुभ लक्षण हैं। पर पाश्चात्य पद्धति के अनुसार अभी तक जो भी आविष्कार हो चुके हैं, वह सभी पूर्णतया सफल सिद्ध नहीं हो पाये।

याभिः क्रियाभिर्जायन्ते शरीरे धातवः समाः।
सा चिकित्सा विकाराणां कर्मतद् भिषजां मतम् ॥१॥
या ह्युदीर्णं शमयति नान्यव्याधिं करोति च ।
सा क्रिया नतु या व्याधिं हरत्यन्यमुदीरयेत् ॥२॥

अर्थात् जिन क्रियायों से शरीर स्थित धातु समता को प्राप्त हो सके वही चिकित्सा एवं वैद्यों का कर्म है। जो क्रिया उदीर्ण (दोष-लक्षणों) को शान्त करे और अन्य व्याधि को उत्पन्न न करे वही चिकित्सा है। किन्तु जो एक व्याधि को शान्त कर दूसरी को उत्पन्न करे वह चिकित्सा नहीं कही जासकी है। इस कसौटी पर कसने पर वर्तमान विज्ञानानुमोदित एलोपैथिक के सभी आविष्कार खरे नहीं उतरते हैं। आज जितने भी आविष्कार हुए हैं वह सभी एक रोग के लक्षणों को शान्त करके कुछ ही समय बाद दूसरे रोगों को उत्पन्न कर देते हैं। अर्थात् उनसे शरीरस्थ दोष धातु जो विकृत होकर रोगों को उत्पन्न करते हैं समता को प्राप्त नहीं होते हैं।

किसी पैथी की उत्तमता की परीक्षा केवल व्याधि-विपरीत औषधों द्वारा लक्षणों को शान्त कर देने से नहीं होती है किन्तु उस पैथी द्वारा चिकित्सित व्यक्ति फिर कितने दिनों तक पूर्ण स्वस्थ रहता है और उसे फिर कोई दूसरी व्याधि तो नहीं होती है इस प्रकार परीक्षा से होती है।

आज के युग में पेन्सिलीन तथा सल्फा श्रेणी की विभिन्न औषधियां एवं एरोमाइसीन, स्टेप्टोमाइसीन, आदि द्वारा चिकित्सा करने पर केवल कुछ समय के लिए ही रोग शान्त दिखलाई देते हैं। किन्तु कुछ ही समय बाद वह विकार फिर किसी दूसरे रूप में प्रकट अवश्य होते हैं। जैसाकि वर्तमान समय में प्रत्येक चिकित्सक अनुभव करता है।

एलोपैथी द्वारा चिकित्सित ऐसे रोगी बहुत ही कम होते हैं जो कि फिर ४-६ वर्ष तक किसी भी बीमारी से पीड़ित होकर चिकित्सकों की शरण में न जावें।

इसके लिये केवल आयुर्वेदिक पद्धति ही ऐसी है जिससे चिकित्सा करने पर फिर स्वस्थ रोगी कुछ समय तक किसी बीमारी का शिकार नहीं बनता है, यही उत्तमता इस आयुर्वेदिक पद्धति में है।

इसीलिये आज एलोपैथी के प्रचार के कारण जितने प्रबल वेग से डाक्टर बढ़ रहे हैं; उससे भी अधिक प्रबल वेग से रोग भी बढ़ रहे हैं। और हमारी राष्ट्रीय सरकार प्रति वर्ष करोड़ों रुपये देश के व्यक्तियों के स्वास्थ्य संरक्षण पर व्यय कर रही है। पर उसका कोई भी सन्तोषजनक परिणाम नहीं निकलता है। उत्तरोत्तर रोग परम्परा प्रबल वेग से सुरसा के शरीर की तरह बढ़ रही है।

ऐसी दशा में हमारी जनप्रिय राष्ट्रीय सरकार इसका सही निदान न कर सकने ही के कारण भ्रमित होकर एलोपैथी की ही अन्धभक्त बनती जारही है। अस्तु।

अभी मुझे अपनी चिकित्सा में एक ऐसा रोगी मिला जो कि एलोपैथी के कारण अधिक दिन तक रोग से पीड़ित रहा और अन्ततोगत्वा आयुर्वेद की शरण में आकर फिर स्वास्थ्य लाभ कर सका है।

फरुखाबाद नगर निवासी श्री पं० लालबिहारी जी शुक्ल मुहल्ला घमण्डी कूंचा के रहने वाले हैं आयु करीब ६८ वर्ष है, इसी विगत फाल्गुण मास में आंख में मोतियाबिन्दु का आपरेशन कराने (खैराबाद) सीतापुर (नेत्र चिकित्सालय) में गये थे, लगभग १ मास वहां रहने पर आंख ठीक होजाने पर अकस्मात् ही उनको वहीं पर वृक्कशूल (दर्द गुर्दा) प्रबल वेग से उत्पन्न हुआ, किसी भी एलोपैथी चिकित्सा से शान्त न होने पर मार्फिया का इन्जेक्सन दिया गया, २-३ सूचीवेध करने पर शूल शान्त हो गया, परन्तु इसके बाद ही वमन होने लगा, कोई भी वस्तु यहां तक जल (बरफ चूसने पर भी) वय होने लगी। इसी प्रकार कई दिन व्यतीत होने पर वह चैत्र शुक्ल पक्ष में घर वापस लौटे। फर्रुखाबाद आकर एक प्रतिष्ठित वैद्य (लल्लू हकीम) जी की चिकित्सा में रहे। वैद्यजी भी बी० आई०एम० एस० के स्नातक होने के कारण ठीक ठीक निदान न कर सकने पर केवल व्याधि-विपरीत लाक्षणिक चिकित्सा ही करते रहे। वमनकुठार आदि कुछ आयुर्वेदक औषधि भी देते रहे और ग्लूकोज ५० सी.सी. प्रतिदिन सूचीवेध द्वारा देते रहे। पर कोई लाभ न हुआ।

इस बीच मैं भी बुलाया गया, ३-४ दिन वहां पर रह कर उनके चिकित्साक्रम को देख कर मैंने कहा कि वैद्य जी इस प्रकार लाक्षणिक चिकित्सा से रोगी अच्छा नहीं होगा, महर्षि चरक के चिकित्सा सूत्र के आधार पर चिकित्सा करने पर ही इसे लाभ होगा अन्यथा नहीं।

आमाशयोत्क्लेशभवा हि सर्वाश्छर्द्यो-
मताल्लङ्घनमेव तस्मात्।
प्राक्कारयेन्मारुतजां विमुच्य-
संशोधनं वा कफपित्तहारि॥

इसके अनुसार कफ एवं पित्त दोनों की विकृति तथा अपान वायु भी दूषित है अतः उसके लिए वमन विरेचन द्वारा शोधन करना उचित है, अथवा वस्ति द्वारा मलशोधन करने पर ही वमन सर्वथा शान्त हो सकेगा। ऐसा (शोधन) न करने पर शान्त होने पर भी अन्य उपद्रव उत्पन्न होकर रोगी को और कष्ट बढ़ जावेगा।

ऐसी अवस्था में उपरोक्त चिकित्सकों के अतिरिक्त कई एक प्रमुख पाश्चात्य चिकित्सक भी बुलाये गये। सभी के सामने मैंने वही पूर्वोक्त अपनी सम्मति रखी, पर डाक्टरों ने उसे मानने से सर्वथा इनकार कर दिया और सूचीवेधादि पाश्चात्य लाक्षणिक चिकित्सा ही चालू रही, वातपित्तादि दोषों का सिद्धान्त ही दूषित है कह कर अपनी चिकित्सा आरम्भ करदी। निदान अपनी बात न मानी जाने पर और एलोपैथी चिकित्सा प्रारम्भ होने पर मैं वहां से अपने घर चला आया। इस प्रकार कई दिन तक (२०० सी.सी. प्रतिदिन ग्लूकोज शिरा द्वारा पहुँचाने पर तथा विटामिन

वी के भी २-३ इन्जेक्शन देने पर) वमन बन्द होगई, पथ्य में कुछ फलों का रस एवं दही की लस्सी बरफ डाल कर पीजाने लगी। घरवा ले प्रसन्नतापूर्वक एलोपैथी के गुणगान करते हुए नहीं थके।

दूसरे या तीसरे ही दिन फिर वृक्कशूल उत्पन्न हो गया उसके यथाकथंचित् बन्द होने पर मूत्राघात हो गया, रबर कैथीटर अथवा स्टीलकैथीटर के प्रयोग करने पर पेशाब आने लगा, दिन में ३-३-४-४ घण्टे पर कैथीटर प्रयोग किया जाने लगा, डाक्टरों की राय के अनुसार मूत्रनली में शोथ हो जाने पर मूत्राघात है ऐसा कहा गया। उसके साथ ही मूत्र लाने वाले सूचीवेध भी दिये जाते रहे पर मूत्र कैथीटर द्वारा ही होता रहा, कभी कभी कैथीटर द्वारा भी मूत्र नहीं आता था।

इस प्रकार करीब एक सप्ताह क्रम चलने पर सर्वाङ्ग में शोथ उत्पन्न हो गया—और एक दिन अकस्मात् १०० के करीब पतले आम मिश्रित दस्त आने लगे। ऐसी दशा में रोगी नितान्त असमर्थ हो गया। चारपाई पर ही टट्टी होने लगी, कुछ वायु बढ़ने के कारण त्रिदोष के लक्षण भी उत्पन्न हो गए, ऐलोपैथी उपचार निष्फल होने पर और हालत ज्यादा गिरने पर फिर मेरे पास बुलाने के लिए आदमी भेजा गया।

निदान मैं भी तुरन्त ही दूसरी गाड़ी से वहां पहुँचा और रोगी को बड़ी ही क्षीण दशा में पाया। एलोपैथी के इलाज से थक चुके थे करीब १५००) रुपये के व्यय भी हो चुके थे। अतः अब हताश होने पर आयुर्वेदिक चिकित्सा करने की ही सम्मति प्रकट की।

इस समय की दशा—

सर्वाङ्ग में थोड़ा थोड़ा शोथ, मूत्राघात (मूत्रकृच्छ्) दस्तों की आममिश्रित अधिकता अर्थात् हर समय गुद द्वार से प्रवाह जारी, गुद द्वार पर दोनों तरफ आमलकी फलवत् अर्शांकुरों का होना तथा उनमें दर्द आदि, लक्षण विद्यमान थे। नाड़ी क्षीण तथा कुछ वायु की वृद्धि भी थी।

मैंने उसी दिन से चिकित्सा प्रारम्भ करदी प्रथम तो मकरध्वज की २-३ मात्रा रात्रि में दी जिससे वायु शान्त हुई।

२-३ दिन पूर्णतया लंघन कराने के बाद पथ्य में गौ का(तक्र)मट्ठा की व्यवस्था की गई। क्योंकि सभी लक्षण इसी प्रकार के थे जिनमें तक्र के अतिरिक्त कोई भी पथ्य समुचित नहीं जान पड़ा अतः तक्र देना ही प्रारम्भ कर दिया। प्रथम दिन १ छटांक अथवा दो छटांक तक्र दिया गया।

उसमें सैंधव लवण, भुना जीरा, भुनी हींग का चूर्ण डाल कर दिया गया।

औषध—

प्रातः सायं स्वर्णपर्पटी क्रमवृद्ध, भुनी हींग, भुना जीरा सफेद के साथ तथा तक्र के साथ दिन में ३ बार बृहत् नायिका रस, एवं मूत्राघात को दृष्टि में रखकर शुभ्रपर्पटी और यवक्षार का सम्मिश्रण पानी के साथ दिन रात में ३ बार देने की व्यवस्था की गई।

४-५ दिन मैं वहां पर रहा उपरोक्त औषध क्रमानुसार तक्र बढ़ना गया। मूत्राघात के लिए जब कभी कैथीटर भी प्रयोग किया जाता रहा। पर आदेश यही था कि पेशाब बैठ कर ही करने की चेष्टा करो, ५ दिन बाद ही थोड़ा थोड़ा पेशाब स्वयं कई बार आने लगा, अतः कैथीटर बन्द करवा दिया गया। शोथ भी कम हो गई अर्शांकुर भी कुछ कम हुए, दस्त बिलकुल बन्द हो गये, रात दिन में २ बंधे हुए आने लगे, वायु १०-५ बार घूमने लगी, पेशाब भी १०-१५ बड़े वेग से आने लगे। मूत्राधिक्य से जब रोगी परेशान हुआ तब शुभ्रपर्पटी आदि औषध बन्द कर दी, भूख उत्तरोत्तर बढ़ने लगी। तक्र १०-१२ दिन में ही २ सेर २॥ सेर चलने लगा। रोगी भी टट्टी पेशाब चारपाई से उठ कर परनाले पर करने लगा और घर में ही कुछ कुछ टहलने लगा। अर्शांकुर बिलकुल समाप्त हो गये, शोथ भी नहीं रहा और रोगी अपने लिए पूर्ण अच्छा हूँ ऐसा कहने लगा।

'लू' का सांघातिक आक्रमण
कारण और निवारण

(लेखक—श्री० प्रकृतिप्रेमी)

ग्रीष्म-ऋतु में प्रायः इस आशय के संवाद वृत्तपत्रों में प्रकाशित होते रहते हैं कि अमुक स्थान में, अमुक संख्या में मानव और पशु 'लू' के हिंसक आक्रमण को सहन न कर सके और अपनी ऐहिक जीवन-लीला-संवरण कर दी। जो लोग लू जैसे उत्तप्त वाताणुओं से परिचित नहीं; उन्हें उक्त संवादों को पढ़कर आश्चर्य होगा और वे सोचेंगे, कि 'लू' है कौनसी बला? उसके सांघातिक अणुपरमाणु किस प्रकार मानव और पशु-शरीर में प्रविष्ट हो जाते हैं। लू किस प्रकार लगती है? किसे लगती है? क्यों लगती है?

वस्तुतः 'लू' ऐसी कोई वस्तु नहीं, जो मनुष्य को लगती है और मनुष्य उसके प्रहार से चेतनाहीन हो जाता है। हैजा, शीतला तथा इस प्रकार के ऋतु-दोषजन्य,जल-वायुजन्य रोगों की तरह 'लू' भी एक रोग ही है। ग्रीष्म-ऋतु में—विशेषतया वैशाख-ज्येष्ठ मास में भयङ्कर गरमी होती है। इस ऋतु में जब कि कुछ वायु सेवन के शीतल स्थानों में भी ताप मान बढ़कर ८५ डिग्री फेरनहीट तक पहुँच जाता है, तब दिल्ली, अहमदाबाद, कानपुर, बेलगांव और ऐसे अन्य स्थानों में विकट गर्मी पड़ती है और ताप-मान १०५ से ११० डिग्री तक जा पहुँचता है। इस प्रकार वातावरण के तापमान का परिणाम मानव-शरीर के उत्ताप की तुलना में जब कुछ अधिक बढ़ जाता है, तब मानव-मस्तिष्क का उत्ताप केन्द्र निश्चेष्ट हो जाता है। बाह्य वातावरण में शीताधिक्य का जैसा प्रभाव होता है; वैसा ही प्रभाव उष्णताधिक्य का नहीं होता, बल्कि उसके सर्वथा विपरीत होता है। दिन के भयंकर उत्ताप के कारण मानव-शरीर में विष उत्पन्न होता है और वह रक्त में मिल जाता है अथवा सूर्य की उत्तप्त किरणें मस्तिष्क के ताप-केन्द्र को संतप्त कर देती हैं। शरीर की इस अव्यवस्थित दशा—बेचैनी का नाम है—लू लगना या शरीर में लू के प्रभाव की सर्वांगीण व्याप्ति।

विशेषकर धूप में खुले शरीर, मस्तक और खुले स्थान पर भटकने वाले मानवों पर ही 'लू' का आक्रमण सफल होता है। इनमें से जिन मानवों का शरीर बलशाली होता है और जिनके शरीर से पर्याप्त परिमाण में क्षार और जल प्रस्वेद-पथ से निकल सकता है; वे 'लू' के घातक आक्रमण का सफलतापूर्वक सामना कर सकते हैं, किन्तु जिन निर्बल व्यक्तियों के शरीर में क्षार और जल की मात्रा अधिक नहीं होती; जो कुछ होती है उसका भी भयङ्कर धूप शोषण कर लेती है, उन पर लू का प्रभाव सरलता से होजाता है। उनकी नाड़ियां शिथिल हो जाती हैं और रक्त गर्म होने लगता है। मस्तक की रक्तवाहिनियां भी फूलने लगती हैं, अतः मस्तक भी गर्म हो उठता है और उसके केन्द्र शिथिल होजाते हैं, फलतः उसकी कार्य-प्रणाली की गति में विक्षेप उत्पन्न होने लगता है। इस स्थिति को 'लू' का लक्षण कहा जाता है।

'लू' की तीन अवस्थायें मानी गई हैं-प्रथम और द्वितीय अवस्था में रोगी की स्थिति खतरनाक नहीं होती, लेकिन तृतीय अवस्था खतरनाक मानी जाती है। 'लू' लग गई हो और साथ ही वह तृतीय अवस्था-पर पहुँच गई हो, तो अत्यन्त प्रभावशाली उपचार भी व्यर्थ साबित होते हैं। इस स्थिति पर पहुँचे हुए रोगी की दशा सुधरने की आशा बहुत कम होती है। 'लू' के प्रभाव का तृतीय अवस्था पर पहुँच जाने का कारण अज्ञानता और असावधानी के अति-

रिक्त शायद ही और कुछ होता हो। यदि ऐसा नहीं; तो यह स्थिति हो ही नहीं सकती; क्योंकि जब 'लू' लगना होता है; तब पहले से ही उसके चिह्न प्रकट होने लगते हैं। शरीर में भयङ्कर गरमी लगती है, गला सूखता प्रतीत होता है; शिर पीड़ा होती है; चक्कर आने लगते हैं और ऐसा प्रतीत होता है कि उलटी होना चाहती है। इस प्रकार के लक्षण दृष्टि-गोचर होते ही यदि सावधानी के साथ चिकित्सा की जाये, तो खतरा दूर होजाता है। उक्त लक्षण 'लू' लगने के पूर्वरूप के समान होते हैं।

'लू' के प्रभाव के अन्तर्गत आते ही मनुष्य अचेत होजाता है और शरीर अग्नि-ज्वाला में जलता-सा प्रतीत होता है, शिर कठोर हो जाता है और बेचैनी बढ़ जाती है, मूर्च्छा आने लगती है, श्वासोच्छ्वास की गति बढ़कर हांपनी चढ़ जाती है। त्वचा शुष्क और उष्ण हो जाती है। आखें गहराई में धँस जाती हैं और सामने अन्धकार-सा प्रतीत होने लगता है। नाड़ी की गति तीव्र हो जाती है। उन्माद, बकवाद, पक्षाघात आदि लागू हो जाते हैं। कभी-कभी हृदय की संचालन-क्रिया स्तम्भित हो जाती है और कभी-कभी दो-तीन दिन में रोगी की मृत्यु हो जाती है।

इस स्थिति से त्राण पाने के लिये सम्पूर्ण स्वस्थ व्यक्तियों को भी इन गरमी के दिनों में ऋतु के अनुकूल अपने आहार-विहार में परिवर्तन करना चाहिए; इसलिये स्कूल कालेज और विभिन्न सरकारी कार्यालय वैशाख-ज्येष्ठ की ऋतु में छुट्टी मनाते हैं। कुछ संस्थाओं के कर्मचारी अपने काम का समय बदल कर प्रातः-सायं काम कर दोपहर को घर में रहते हैं। इसका मुख्य रहस्य यही है कि इन भयङ्कर गरमी के दिनों में मध्याह्नकाल में राजमार्गों पर चलना-फिरना उचित नहीं। फिर भी सभी मनुष्यों की स्थिति एक-सी नहीं होती। अधिकांश मानव ग्रीष्म-काल में ऐसी जगह वायु-सेवन के लिये नहीं जा सकते, जहां तापमान कम हो अथवा अपने मकान में खसखस की छत बना कर विश्राम कर सकें। ऐसे व्यक्तियों को चाहिये कि ग्रीष्म-काल में अधिकाधिक जल पीने का अभ्यास डालें; घर से बाहर निकलते समय तृषा न होने पर भी कुछ पानी पीकर बाहर निकलें। तत्पश्चात् दिन भर में अधिकाधिक पानी पेट में जाये; इस प्रकार पानी पीना चाहिये। ऐसा करने से आतें गरम न होकर शीतल रहती हैं। जल से शरीर में शीतलता रहती है; इसी प्रकार भोजन द्वारा अधिकाधिक लवण पहुँचाना भी अत्यावश्यक है, क्योंकि धूप में चलते समय जल और लवण प्रस्वेद रूप में बाहर निकलते हैं। यदि यह प्रस्वेद नहीं होता, तो गरमी से आन्तरिक भाग पर प्रभाव होता है—लू लग जाती है। मार्ग में घूमते-फिरते समय शिर में लगने वाली गरमी से बचने के लिये शिर पर पगड़ी साफा या ऐसी टोपी पहननी चाहिये, जो गरमी का प्रतिकार कर सके। धूप में एक साथ बहुत न चलकर थोड़े-थोड़े अन्तर पर थकावट मिटाते तथा विश्राम लेते रहना चाहिये। किन्तु इस विश्राम-काल में शीतल जल या कोई पेय नहीं ग्रहण करना चाहिये; क्योंकि शरीर का रक्त परिश्रम और धूप से गरम होजाता है, उसे शान्ति और शीतलता पहुँचाने के लिये कुछ मिनट देना आवश्यक है। थकावट के लिये रुक कर या दोपहर को घर में नीबू निचोड़ कर शक्कर मिश्रित जल (शर्बत) अथवा आमका शर्बत या सन्तरे का रस और यह सब न हो सके, तो अन्ततः मिट्टी के घड़े का शीतल जल पीना हितकर है। विशेष उल्लेखनीय बात तो यह है कि विकट गरमी में यात्रा करके वापस लौटा हुआ मनुष्य तृषा दूर करने के लिये पानी के स्थान पर गरम चाय या काफी का प्याला पीता है, किन्तु इससे किसी प्रकार की हानि दिखाई नहीं देती; बरफ संमिश्रित शीतल जल तत्काल पीने से प्रतिक्रिया-मूलक हानि होती है। गाय के दही की छाछ अथवा मट्ठा 'लू' की ऋतु में मानव की तृषा शान्त करने के लिये लाभदायक होता है।

पानी के सम्बन्ध में यह सिद्ध हो चुका है कि

गरमी के दिनों में बरफ का पानी पीने से प्यास कम होने के बदले बढ़ती है। मिट्टी के पात्र में पानी अच्छा शीतल होता है। इनमें भी जो मिट्टी के बर्तन शीत ऋतु में बनाये गये हों, उनमें पानी अधिक शीतल होता है और बर्तन ऐसे स्थान पर रखे जायें जहां सूर्य का उत्ताप नहीं पहुंचता।

'लू' से बचने और गरमी के आहार-विहार की सामान्य चर्चा ऊपर की जा चुकी है। अब 'लू' लग जाने के उपरान्त रोगी को किस प्रकार औषधि देना उचित होगा, इसका भी थोड़ा-सा उल्लेख किया जाता है।

कोई व्यक्ति यदि 'लू' के प्रभाव में आ गया हो तो यथासम्भव तुरन्त डा० या वैद्य को बुलाना चाहिए, किन्तु जहां तत्काल ऐसा सम्भव न हो, वहां रोगी को तुरन्त खुले छाया-पूर्ण स्थान में ले जाना चाहिये और इस प्रकार विश्राम दिलाना चाहिए कि उसे हवा मिल सके। रोगी के वस्त्र कड़े हो गये हों, तो उन्हें नरम कर देना चाहिए, जिससे प्रस्वेद निकल सके और शरीर को हवा भी मिल सके। कोमल शय्या पर रोगी को शयन कराने के पश्चात् ताड या खस के पंखे से हवा करनी चाहिए।

जल पीने की आवश्यकता होने पर थोड़ा सा चन्दन घिसकर उसमें थोड़ी शक्कर मिलाई जाये और यह सब पानी में मिलाकर पीना चाहिये। ग्लुकोज, सन्तरा या मीठे नीबू का रस भी पिया जा सकता है। शरीर का तापमान १०० डिग्री से कम हो जाने पर इस प्रकार के उपचार बन्द कर दिये जायें। इस रोग में तापमान न्यूनाधिक्य होता रहता है।

१—दाह, तृषा, उलटी, जुलाब आदि अधिक प्रतीत हो तो पुदीना या सौंफ का अर्क थोड़ी-थोड़ी देर में पानी में मिलाकर देना चाहिए। कपूरका अर्क भी पानी मिलाकर देना उचित होगा।

२—कभी प्रस्वेद या शीत उपचार के कारण शरीर ठण्डा होता हुआ प्रतीत हो, तो प्रवालपिष्टि या मकरध्वज मधु के साथ देने से शरीर में गरमी आती है।

३—मूर्छा के समय गले तथा छाती के आसपास फेफड़ों के निकट यूकीलिप्टस तेल लगाकर उस पर गरम जल में भीगा हुआ ऊन का कपड़ा या फलालेन रखकर दूसरा सूखा कपड़ा बांध देना चाहिए।

४—सूर्य-ताप से उत्तप्त जल से स्नान करना भी 'लू' के रोग के लिये लाभदायक है। सवेरे शीतल जल से परिपूर्ण बड़े बर्तन को समस्त दिन धूप में गरम कर सायंकाल यह जल शीतल हो जाने पर उससे स्नान करना लाभदायक होगा।

५—कच्चे आमों को आग में पकाकर शीतल जल में कुछ समय तक रखना चाहिये। तत्पश्चात् छिलके गुठली निकालकर पानी में मथना चाहिये। फिर उसमें सेंधा नमक, पुदीना, शक्कर आदि मिला कर पीने से लाभ होता है। इसे आम का पना भी कहते हैं। पकी इमली में १६ गुना जल मिलाकर और मसलकर चौथाई भाग शक्कर डालना चाहिये। फिर चूल्हे पर चढ़ाकर उफान आते ही उतार लेना चाहिये और छानकर शीतल करने के बाद उसमें से दो-दो घण्टे में दो तोला पीने से भी 'लू' के रोगी को लाभ होता है।

'लू' का सम्पूर्ण प्रभाव मिट जाने के बाद भी कुछ दिन तक रोगी को खान-पान में पथ्य रखना उचित होगा—विशेषकर स्निग्ध पदार्थ, शीघ्र पच जाने वाली वस्तुऐं, चन्दन आदिका शर्बत, दूध, मीठे नीबू शीतल जल, फालसा, बार्ली, साबूदाना. भलीभांति परिपक्व गेहूँ की रोटी, पुराने चावल का भात, मूंग की दाल, पालक का साग, आम-इमली का पना, आमला, पुदीना या हरी धनिया की पत्तीकी चटनी, कागजी नीबू आदि वस्तुओं का उपयोग लाभदायक होगा।

अखाद्य वस्तुओं में चाय, काफी,शराब, तम्बाकू, तैल, मिर्च और गुड़ आदि से बचना इष्ट है। अग्नि के उत्ताप या टीन के मकान की उष्णता में रहना भी हानिप्रद है।

—श्री वैंकटेश्वर समाचार से साभार।

मानसिक स्वास्थ्य

लेखक—कविराज श्री श्यामदास जी प्रपन्नाश्रमी-आत्मिक-चिकित्सक।

शरीर से मन को अलग कर देना मुश्किल की बात है। शरीर और मन ये दोनों ही आपस में एक दूसरे से अलग नहीं हो सकते हैं। इन दोनों का सम्मेलन ही मनुष्य की सत्ता यानी अस्तित्व है। इन दोनों की सत्ता या अस्तित्व की रक्षा करने के लिए मन व शरीर का स्वस्थ रहना बहुत ही जरूरी है। परन्तु शरीर की स्वस्थता के लिए जितना ध्यान मनुष्य देता है; उतना मानसिक स्वस्थता के ऊपर नहीं देता।

मन ही अन्दर से शरीर को संयम-नियम से रखता और चलाता है। पर यह समझने वाले मनुष्य बहुत कम होते हैं। वास्तव में दैहिक स्वास्थ्य मानसिक स्वास्थ्य का प्रतीक है। काम-प्रवृत्ति, क्रोध, लोभ, भय, हिंसा, ईर्षा, अहंकार, घृणा और नाना प्रकार की चिन्ता (दूसरों के ऊपर बुरी तरह से असर डालने वाली) द्वारा मन की स्वस्थता पर बहुत हानि पहुँचती है। परन्तु ये सब मन की स्वाभाविक वृत्तियां होने के कारण मनुष्यों की अस्तित्व-रक्षा के बावजूद भी रहना खास जरूरत है। खास-खास मौकों पर इनका उचित स्तेमाल दोषयुक्त भी नहीं होता है। इनके सतत उपयोग द्वारा ही मन व शरीर पर अधिक प्रभाव पड़ता है।

मन के अन्दर जितनी दुष्प्रवृत्तियां होती हैं, उनमें काम-स्प्रहा ही सबसे बलवती है। जिस मन के अन्दर इसी प्रकार की काम-स्प्रहा निरन्तर प्रबला व जाग्रता है; वह कमजोर तथा बीमार कहलाता है। केवल शुक्र के क्षय से शरीर को हानि पहुँचती है यह नहीं—परन्तु शुक्र-क्षय की चिन्ता से मानसिक शक्ति का अपचय अधिक होता है। जितनी बार ऐसी चिन्ता मनुष्य करता है, उतनी बार उसके मस्तिष्क से ओज और मानसिक शक्तियों का नाश होता रहता है। इसलिए इसी प्रकार की बुरी भावनाओं को हर हालत में मानसिक स्वास्थ्य का बड़ा शत्रु समझकर त्याग देना चाहिये।

क्रोध भी मनुष्यों का परम शत्रु है। लोभ इसका जनक यानी जन्मदाता है। काम के बाद इसका स्थान अद्वितीय कहा जाता है। किसी मनुष्य के द्वारा किसी की स्वार्थ की हानि होने से किम्वा किसी व्यक्ति के किसी के साथ अनुचित व्यवहार होने से, क्रोध की उत्पत्ति होनी स्वाभाविक है। इसकी उत्तरोत्तर वृद्धि होने से मस्तिष्क (दिमाग), हृत्पिंड (कलेजा) व स्नायु आदि में अधिक उत्तेजना आजाती और उसी कारण से बेहोश होजाना किम्वा मौत का शिकार बनना, कोई बड़ी बात नहीं है। यह तो हमेशा ही देखने में आता है।

क्रोध से आग बबूला होने पर शरीर के अन्दर बहुत गड़बड़ी हो सकती है। चार्लस गिलबर्ट (Dr. Charles Gilbert) साहब ने अपनी 'फिलोसोफी आफ लाईफ" किताब में लिखा है—"क्रोध से जो अनर्थ उत्पन्न करने वाली दुर्घटनायें उपलब्ध हो सकती हैं; उसका विषमय परिणाम—मुझे कई बार देखने को मिला। ज्यादा गुस्सा होने से शरीर की मांस-पेशियां व ग्रन्थियां दुर्बल हो जाती हैं। मैं यह भी देख चुका हूं कि, झगड़े-झंझटों से हमेशा फंसे हुए कोई-कोई नन्हें बच्चे वाली मां जब गुस्से में भरी हुई दशा में अपने बच्चों को स्तन का दूध पिला देती हैं तब उन बच्चों को असाध्य रोगों ने ग्रस लिया अथवा मौत के घाट पर उनको उतरना ही पड़ा। क्रोधी मनुष्य सदा ही बदहजमी, अनिद्रा, मूर्च्छा, संन्यास (Apoplexy) आदि तरह तरह की कठिन बीमारियों का शिकार बने रहते हैं। उनको जीवन-यात्रा में शान्ति-सुख का रसास्वादन कभी भी नहीं मिलता।

भय मन की दुर्बलता और साहस (हिम्मत) उसकी शक्ति है। भय मन को संकुचित और साहस उसको प्रसारित करता है। जो जिस विषय से भयातुर होता है, वह वस्तु या विषय उसके जीवन में कदाचित् ही संघटित हो सकते हैं। परन्तु तब भी उन सब विषय-वस्तुओं की आतङ्कजनक कल्पना मन को उत्कण्ठित करके ही रखती है। समय-समय पर यह कल्पना व्याधि का भी कारण बन जाती है। किसी स्थान पर किसी प्रकार की महामारी (मड़क) किम्बा प्राकृतिक दुर्घटना आदि के घटने से वहां के रहने वाले मनुष्य उन सब दुर्दैवों से आतंक ग्रस्त तथा भयभीत होजाते हैं। यहां तक कि, बहुत से मनुष्य उल्लिखित कल्पित विभीषिकाओं के शिकार बनकर स्वर्गधाम को पधार जाते हैं। ऐसी सभी मन की कल्पनायें मनःशक्ति के विकास में बड़ी भारी रुकावट पैदा कर देती हैं। दुर्बल मन को व्याधिग्रस्त कहा जाता है;इसलिए जहां तक हो,कोशिश करके अपने हृदय में सत्साहस बढ़ाकर उसे ताकतवर बनाना चाहिये।

हिंसा भी बड़ी भारी हानि पहुँचाने वाली मनोवृत्ति है। शरीर या मन के द्वारा किसी प्राणी को शारीरिक व मानसिक हानि पहुँचानी ही हिंसा है। किसी प्राणी के ऊपर प्रहार करना या अन्य किसी प्रकार शारीरिक यन्त्रणा देना अथवा मार डालना हिंसा का कार्य है। किसी के प्रति ऐसी भावना का कार्य करने से उसे जो दुःख प्राप्त होता है; उसीकी प्रतिक्रिया के फलस्वरूप तत्तत् भाव-भावनायें, चिन्तायें तथा हनन-क्रिया (हत्या) आदि के प्रभाव में हिंसा करने वाले स्वयम ही फंस जाते हैं। परिणाम यह होता है कि वह मनुष्य शारीरिक, वैषयिक व मानसिक अवनति तथा दुःख-कष्ट के-साथ नाना प्रकार की आधि-व्याधियों से घिर जाता है।

आध्यात्म-वादियों का कहना है कि, मांस-भक्षण के अभिप्राय से जब किसी प्राणी की हत्या की जाती है तब तात्कालिक विभीषिका पूर्ण परिस्थिति उत्पन्न करने वाला आतंक जो उस असहाय पशु के मन व शरीर पर संचारित होता है वही उसके मांसपिंड को स्तब्ध कर डालता है और इसी मांस को भक्षण करने से मनुष्य को विभिन्न प्रकार के रोग, शोक, दुःख-दुर्दशा आदि को भोगना अनिवार्य होजाता है।

ईर्षा, मत्सरता और अहंकार ये सभी मन की दुष्प्रवृत्तियां हैं, और ये ही सद्वृत्तियों के विकास पर रोड़ा अटकाती हैं। परोपकारी, निस्वार्थ मानव जिन्होंने जगत् के सभी प्राणियों के लिए सुख-समृद्धि और शान्ति-कामना की कल्पना की है, और इसके विपरीत ईर्षा-परायण दुर्भावनाओं का दास-दानव जो कि दूसरों के सुख-सौभाग्य को देखकर जलते रहते हैं। उल्लिखित दुष्प्रवृत्ति जो केवल भय के समान संकोचक ही नहीं, प्रत्युत मन को नितान्त कलङ्कित, कलुषित व जघन्य कर डालती है।

जिसका मन प्रबल ईर्षायुक्त होता है उनका शारीरिक, मानसिक व आध्यात्मिक सभी विषय में अधःपतन होना अनिवार्य है। केवल दूसरों के लिए मङ्गलमयी भावनाओं के अभ्यास द्वारा ही इन नीच मनोवृत्तियों का दमन हो सकता है

किसी जीव के प्रति घृणा करनी कभी भी उचित नहीं है। कारण, ईश्वर-आत्मा के रूप में सर्व जीवों में सदैव विद्यमान रहते हैं। किसी को घृणा करने से प्रकारान्तर में ईश्वर ही को घृणा करना सिद्ध होता है। मनुष्यों में किसी न किसी प्रकार का कोई दोष अवश्य ही रहता है। परन्तु आश्चर्य का विषय है कि जो व्यक्ति जिस किसी को, जिस दोष से घृणा करता है, वह स्वयं ही अल्पाधिक परिमाण में उस दोष से युक्त रहता है, अगर मनुष्य किसी कार्य या विषय पर दूसरों को घृणा करेगा तो स्वभावतः एक रोज उसे भी उक्त दोष से सम्बन्धित होना पड़ेगा।

निन्दा से लाभ तो कुछ भी नहीं होते हैं; पर पापों का संचय अवश्य हो जाता है। इसलिए सज्जन व्यक्ति कदापि किसी को न तो निन्दा ही करते हैं और न दोष-दर्शन।

कुप्रवृत्ति मनुष्य को अपना दास बनाकर रखती है; और उसकी जादूगरी के प्रभाव में पड़कर मनुष्य अपनी स्वतन्त्रता को भी खो बैठते हैं। नाना प्रकार के मादक द्रव्य (नसीले चीजें), जैसे—अत्यधिक परिमाण में चाय, कोफी, बीड़ी, सिगरेट, तम्बाकू, भांग, गांजा, सुलफा, शराब आदि का स्तैमाल होना, बेमतलब ज्यादा बातें करनी और बहस करना, अचानक गुस्से के मारे आग-बबूला होना तथा इसी प्रकार की आदतों से मजबूर होना मानसिक स्वास्थ्य के प्रतिकूल है। फिर भी इनमें से कोई-कोई आदत इतनी बुरी होती है कि, वह जीवनी-शक्ति को भी क्षीण कर देती है। अधिक मादक द्रव्य के सेवन से स्मृति-शक्ति का नाश, बुद्धि का ह्रास, मनोविकार (mental disorder), उन्मत्तता (Insanity) आदि रोग उत्पन्न हो जाते हैं।

सभी आदत मन से ही पैदा हुआ करती हैं। मन हमारे ज्ञान या अज्ञान के वश दूसरे मनुष्य से जो कुछ शिक्षा प्राप्त करता है, उसका संस्कार उसमें जड़ जमा लेता है। संस्कार से ही आसक्ति या भोगेच्छा की उत्पत्ति होती और चिन्ता व कर्मेन्द्रिय की सहायता से पूर्णत्व प्राप्त करती है। कोई भी भोगेच्छा पुनः-पुनः चरितार्थ यानी बार-बार कामयाब होते रहने से वह अभ्यास में परिवर्तित हो जाती है। अच्छा या बुरा हर किस्म की आदत यानी अभ्यास इसी तरीके से बना करती है और कई किस्म की आदतें मिलकर ही चरित बनता है।

सदभ्यास (अच्छी आदत) द्वारा जो चरित्र का निर्माण होगा उससे शरीर व मन दोनों को ही अधिकतर लाभ पहुंचेगा। इसके विरोध में, बुरी नियत के असर से शरीर व मन दोनों ही बीमार और अलहड़ बन जायेंगे। सर्वविध सद्भावना, सदभ्यास व शुभ कर्मों के सदनुष्ठान तथा अनुशीलन द्वारा मन की दुर्बलता, संकीर्णता, हीनता-नीचता आदि अवगुणों को हटाने के लिए निरन्तर प्रयत्नशील होना अत्यावश्यक है। इसी प्रकार की प्रचेष्टा से मन स्वस्थ और सुदृढ़ हो उठते हैं। तथा उसके अन्दर रहने वाली छिपी हुई आत्मिक शक्तियों को विकसित होने से मदद मिलती है। स्वास्थ्य से सम्पन्न मनःशक्ति अत्यन्त प्रखर होती है और अस्वस्थ मन हमेशा ही कमजोर रहने के कारण उसके द्वारा किसी भी शक्ति का विकास नहीं हो सकता है। मन की स्वस्थता के बिना पूरे तौर पर शरीर की तन्दुरुस्ती नहीं हो सकती है। मन अस्वस्थ व शरीर स्वस्थ या मन स्वस्थ व शरीर अस्वस्थ है ऐसा कभी सम्भव नहीं। यानी शरीर स्वस्थ है तो मन भी स्वस्थ है और नहीं तो शरीर के साथ मन पीड़ित होगा। जब शरीर व मन दोनों ही स्वस्थ ही स्वस्थ हों, उसी दशा को पूर्ण स्वस्थावस्था कहते हैं। जो मनुष्य दिलचस्पी के साथ अपने अन्दर छिपी हुई आत्मिक शक्ति को जगाने की इच्छा रखते हैं उन्हें इन सब बातों पर अवश्य ध्यान देना चाहिए।

दूसरों की शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक उन्नति के बारे में अनिष्ट पहुंचाने वाली चिन्ता कभी भी नहीं करनी चाहिए। जो मनुष्य ऐसा करता है वही पहले उस दुर्भावना के वश में फंसकर उसके विषमय फल को भोगा करता है। दूसरों के बारे में अशुभ चिन्ता करने से उस व्यक्ति यानी चिन्तक को स्वतः ही भारी हानि पहुंचती है। फिर भी अगर चिन्ता के अनुकूल कार्य नहीं हुआ यानी जिस मतलब से चिन्ता की आराधना की गई और उसमें कुछ भी सफलता नहीं मिली तो वह बुरी भावना वापस लौट कर चिन्तक को ही बुरी तरह से घायल कर बैठेगी। सर्व प्रकार की भावनायें चाहे ये अच्छी हों या बुरी; उनके अपनाने वाले को तदनुसार ही फल प्राप्त होगा। केवल यही नहीं, उनकी प्रतिक्रिया के रूप में तरह-तरह की बीमारियां, शोक-सन्ताप, मुसीबतों और तकलीफों से तमाम जिन्दगी ही बिगड़ जायगी।

किसी एक आदमी के साथ एक लोहार की बड़ी भारी दुश्मनी थी, जब हर तरह से वह अपने दुश्मन को दबाने में असफल रहा तो उसने दिल ही दिल में

दुश्मनाई निभाने को हीन उपाय से काम लेने की ठानी।

अब उसका विचार यह बना कि, जब वह भट्टी पर लोहे का सामान, औजार वगैरा बनाने बैठता तो लौहे को तपाकर निहाई पर जितनी बार चोट मारा करता, उतने ही बार मन ही मन यह सोचा करता कि, उसका एक-एक चोट उस दुश्मन के छाती पर पड़ रहा है और दुश्मन का कलेजा इसी चोटों से टुकड़े-टुकड़े हो रहे हैं।

यह क्रम कुछ दिनों चलता रहा। दुश्मन के कलेजे को टुकड़ा करने वाली चिन्ता कुछ दिन बाद लोहार में जोर पकड़ गई। हर वक्त बुरी चिन्ता करने से उसे एक ऐसी बीमारी ने आकर घेर लिया जो तरह तरह के उपाय व उपचार करने पर ठीक नहीं हुई। आखिर परेशान होकर जब बेचारा मेरे मनोविज्ञान के शिक्षक प्रोफेसर आर० एन० रुद्रजी के पास गया तो उन्होंने एक होम्योपैथी के डाक्टर के पास भेजा। डाक्टर साहब ने बहुत कोशिश करके दवाइयां दी। पर लाभ कुछ भी नहीं हुआ।

बेचारा लोहार फिर से जब प्रोफेसर रुद्र महाशय के पास आया तब उन्होंने स्वयं ही उसका इलाज करने का वचन दिया और बाद कई महिने तक बहुत करते कराते लाभ तो होने लगा पर स्थाई नहीं हुआ। दुबारा इस बात पर गौर किया और उसकी चिन्ता तथा कर्मों का इतिहास लिखा लेने से पता चला कि; अधिक समय से दुर्भावना द्वारा उसका मन व मस्तिष्क इतना कलुषित हुआ कि दुश्मनी जो उसके दिल में बैठी हुई है उसके बारे में एक मुहुर्त भी भूल जाना बहुत ही मुश्किल की बात थी। यह बात खुल जाने के बाद उसे यही समझाया गया तथा आदेश दिया गया कि जब तक वह उसके दुश्मन के प्रति दुर्भावना और नुकसान पहुंचाने वाले सभी विचार को त्याग न देगा तब तक उसे शान्ति प्राप्त करना बहुत दूर की बात है। इसके बाद जब उक्त रोगी इसी बात और विचार पर आया तब "सम्मोहन विद्या" से सम्बन्धित "मानसिक चिकित्सा" Mental Healing शुरू कर दी गई। कई बैठकों Sittings से रोगी ने आरोग्य-लाभ किया।

प्रत्येक चिकित्सक को मैं यह अनुरोध करता हूं कि, वे जब पुराने व कष्ट-साध्य रोगियों का इलाज करें तब औषधियों के साथ-साथ "आत्मिक या मानसिक चिकित्सा" का आश्रय लेने का प्रयत्न अवश्य करें। इससे लाभ यह होगा कि थोड़े ही दिनों में धन तथा यश आदि सौभाग्य के अधिकारी अवश्य बन जायेंगे। साथ-साथ जनता-जनार्दन के आशीर्वाद प्राप्त करके संसार के इतिहास में अपने नाम को उज्ज्वल अक्षरों में लिखा हुआ देख सकेंगे।

आयुर्वेद की एलोपैथीं पर विजय

(पृष्ठ ८७२ का शेषांश)

पर्पटी का क्रम चलता रहा, उसके बाद एक मास व्यतीत हो जाने पर ता० १६-५-५५ को जब रोगी को पूर्ण रूपेण स्वस्थ समझ लिया तब मूंग की दाल के पानी से पथ्य दिया गया। प्रातः दस बजे दाल का पानी और फिर भूख लगने पर पूर्वोक्त क्रमानुसार तक्र ही दिया जाता रहा। आज ता० २२-५-५५ तक दाल रोटी थोड़ी-थोड़ी दी जाने लगी है, औषध अब भी पूर्वोक्त चालू है, रोगी पूर्णतया स्वस्थ है, अब चलने-फिरने की भी सामर्थ आगई है।

रोगी तथा उसके परिवार के सभी व्यक्ति एवं उनके इष्ट मित्र जो कि कुछ दिन प्रथम एलोपैथी के परम भक्त थे अब आयुर्वेद के भक्त बन गये हैं और आयुर्वेद का गुणगान करने लगे हैं।

इस प्रकार आयुर्वेद की एलोपैथी पर विजय ही है; अतः वैद्यों को दत्तचित्त होकर अपने शास्त्रों की आज्ञानुसार ही चिकित्सा करनी चाहिए।

मेरी वैद्य समुदाय से प्रार्थना है कि आयुर्वेद का अनन्त औषधभण्डार है उसमें सभी कुछ विद्यमान है—उसी का स्वाध्याय कर उसमें से ही औषध रत्न ढूंढ निकालने चाहिए। तभी आयुर्वेद का उत्थान सम्भव है।

नारूरोग एवं आपबीती

लेखक—वैद्य मोहरसिंह यादव सूचीवेध चिकित्सक, स्थान—मिश्री, डालमिया दादरी।

जाके पैर फटी न बिवाई। वह क्या जाने पीर पराई॥

लिखने को तो कोई भी वह व्यक्ति लिख सकता है जिसने इस दुष्ट रोग से पीड़ित किसी मानव का हृदय विदारक दृश्य देखा हो। कल्पना के आधार पर भी लेखनी को रंग सकता है। परन्तु वास्तविकता को तो वही जानता है 'जाके पैर फटी बिवाई हो !'

हां तो आज मैं अपनी ही कहानी सुना रहा हूं ! मैं चतुर्थ श्रेणी में पढ़ता था, बात तो २४ वर्ष पुरानी है किन्तु आज भी है तरोताजा। उस दिन वालीबाल खेल कर आया, नित्य कर्मों से निवृत हो सो गया। प्रातःकाल उठा तो पैर के टखने के निकट बड़ी पीड़ा सी विदित हुई, विचार आया कल कहीं चोट लग गई होगी किन्तु मध्यान्ह तक इतनी शोथ आगई कि पैर पृथ्वी पर रखना कठिन होगया। अगले दिन तो चारपाई ही पकड़ली। उसी दिन डाक्टर महोदय का भी दौरा था। डाक्टर साहब ने सबसे प्रथम मुझे ही बुलाया और पूंछने पर मैंने वही वालीबाल की कहानी कह सुनाई। फिर क्या था दिन में तारे दिखाई दिये कि डाक्टर ने दो विद्यार्थियों को बुलाया और मालिश पर लगा दिये। अनुनय-विनय कर उनसे मुक्ति पाई और खटिया की शरण ली। डाक्टर साहब चले गये ज्वर देवता आ पधारे। घर पर सन्देश भेजा तो चाचाजी (श्री० वैद्य गुगन राम यादव) आये और मेरी बुरी गति देख डाक्टर पर क्रोधित हो उठे। श्री वैद्य जी ने भी देखा और फोड़ा निश्चित किया। तीसरे दिन ही उस फोड़े से श्वेत रंग का धागा (सूत्र) सा निकाला। मैं देख कर घबरा गया किन्तु अन्य देखने वालों ने बतलाया यह तो 'नारु' है।

आइये इस रोग पर विचार करें कि यह क्या है ? माधव निदान में लिखा है:—

जिस रोग में जंघा आदि के वात-पित्तादि दोष कुपित होकर विसर्प के समान शोथ उत्पन्न करदें, तो शोथ स्थान में घाव हो जाता, दोष ऊष्मा के साथ मिल क्षत स्थान के क्षत को सुखा कर मांस को सूत्र की भांति पतला कर देते, और तक्र तथा सक्तु द्वारा पिण्डाकृति का प्रयोग करने से यह सूत्र स्थान से शनैःशनैः निकलने लग जाते हैं। आघातादि द्वारा छिन्न हो कर ये सूत्र टूटकर गिर जाते हैं तो शोथ विकृत हो जाता है। किन्तु रोग की जड़ निर्मूल न होने कारण दोष कुपित होकर शरीर के अन्य स्थान में रोग उत्पन्न करके मांस को सूत्र सूत्र कर देते हैं। उसी को स्नायु रोग कहते हैं। विसर्प रोग के समान ही इस रोग की भी चिकित्सा करनी चाहिये। इस रोग में यदि बाहुगत सूत्र आघातादि द्वारा छिन्न हो जाता है, तो इससे बाहु सिकुड़ जाता है तथा जंघागत सूत्र के छिन्न हो जाने से खंजता (लंगड़ापन) आ जाता है।"

यह तो रही शास्त्र और पूर्वजों की बात, अब अपने अनुभव की बातें लिखता हूं जिसको मैं २० वर्ष से देखा एवं दो बार भुगता भी है। उपरोक्त निदान से साधारण व्यक्तियों को भली भांति पता नहीं लग सकता। अतः जैसा, जिस रूप रंग में देखा है, सविस्तार यहां पढ़ियेगा।

नाम

संस्कृतः—स्नायु रोग, स्नायुक, गुजरातीः—वाला, राजस्थानः—नारू, नाहरूआ, अंग्रेजीः-Guinea worm (ग्वीनिया वर्म)।

कारण

१—यह रोग वर्षा ऋतु में ही अधिक देखने में आता है। वर्षा ऋतु में भी उस भू-भाग में जहां कूप जल मिलता ही नहीं या असुविधा हो, यथाः—बीकानेर, जैसलमेर आदि मारवाड़ और हरियाणा

प्रान्तों में ऐसे कुछ ग्राम हैं। अतः वहां के निवासी खाड़ी (खेड़) या छोटे छोटे जोहड़ (तालाब) का पानी पीते हैं, उनमें यह रोग पाया जाता है।

२– गन्दा (अस्वच्छ) जल पीने से—देखा गया है ग्रामीण लोग एक स्थान पर अपने पीने के लिए छोटा तालाब (जोहड़, बावड़ी) बना लेते हैं और बंजर भूमि का जल वहां एकत्रित करते हैं। किन्तु उसकी स्वच्छता पर कोई ध्यान नहीं देते, जिस भूमि से पानी एकत्रित किया जाता है उसी भूमि में शौचादि भी जाते हैं तथा गोबरादि भी डालते हैं, जिससे गन्दा पानी संचित होता है। अतः गन्दा पानी पाने से भी यह रोग होता है।

३—प्रायः देखा गया है जो तालाब जंगल में होते हैं, उनका पानी वर्षा ऋतु के एक दो मास पश्चात् स्वयं स्वच्छ हो जाता है। उस पानी के पीने से यह रोग नहीं होता। इसलिए कि उसमें गन्दा पानी बहकर एकत्रित नहीं होता है।

४—कई विद्वानों का मत है कि गन्दे पानी में नारु के कीटाणु होते हैं जो कि मुख द्वारा शरीर में जाते हैं तथा रक्त में मिलकर त्वचा के नीचे फैलकर बढ़ते हैं।

पूर्वरूप—

१—जहां स्नायु निकलता अर्थात् मुंह करता है वहां थोड़ी शोथ हो जाती है।

२—किसी किसी को छाला पड़ जाता है उसी प्रकार का जैसे अग्निदग्ध से होता है!

३—जहां यह मुंह करता है वहां खुजली होती है तथा शनैः शनैः हाथ फेरने से अर्थात् स्पर्श करने से आनन्द सा प्रतीत होता है।

४—स्थान (जहां मुंह करता है) लाल वर्ण का हो जाता है।

५—शरीर में शीतपित्त निकल कर बेचैनी हो जाती है।

६—जहां मुंह करता है वहां चींटी की भांति काटना ऐसा भासता है।

७—त्वचा के नीचे नाड़ी की भांति दीखता है।

नाड़ी एवं स्नायु में भेद

नाड़ी	स्नायु
१—नाड़ी नरम एवं पोली (थोथी) होती।	१—स्नायु ठोस (सख्त) होता है।
२—नाड़ी दबाने पर लोप हो जाती है तथा दब जाती है।	२—स्नायु दबाने से लोप नहीं होता और न दबाता ही है।
३—नाड़ी (नस) पकड़ने पर हाथ नहीं आती। स्थानच्युत हो जाती है।	३—पकड़ने पर हाथ आजाता है स्थान नहीं छोड़ता।
४—नस पर उंगली फेरने से नरम मालूम होती है।	४—नारू सख्त मालूम होता है।
५—नाड़ी (नस) रक्त से भरी हुई विदित होती है।	५—धागे (सूत्र) की भांति नारू सख्त मालूम होता है।

अतः इसको भली-भांति पहचान भी सकते हैं।

रूप—

१—छाला (फफोले) के फूटने पर नीलवर्णयुक्त श्वेत पीप निकलता है।

२—छाला फूटने पर नारू (तन्तु) सूत्ररूप में दीखता है।

३—शोथ बढ़ जाती है।

४—वेदना भी बढ़ जाती है।

५—नारू का अग्रभाग (मुख जो निकलता है वह भाग) दीखता है।

६—किसी को शोथ तथा वेदनारहित भी निकलता देखा है।

कैसा होता है (हुलिया)

आपने अवश्य ही वर्षा ऋतु में सड़कों के किनारे या गड्ढों में, गन्दे पानी में, नालियों में देखा होगा वहां मटियाले रंग के बरसाती कीड़े लम्बे-लम्बे पैरादि अस्थि रहित होते हैं। ठीक इसी प्रकार का स्नायु भी होता है। अन्तर केवल इतना ही है कि स्नायु का रंग किञ्चित नीलवर्ण श्वेत होता है, लम्बाई में अधिक एवं सख्त होता है। इसकी लम्बाई लगभग १ फुट से ३ फुट तक देखी जाती है। मुटाई एक सूत्र अथवा यव की मुटाई के समान होती है। इसके पूंछ तथा मुख की कोई विशेष पहचान नहीं है। यह दोनों ओर से रेंगता (चलता) है। यदि इसको बिना टूटे ही निकाल लिया जावे तथा पानी में छोड़ा जाये तो यह सर्प की भांति बल खाता है। पानी से बाहर निकालने पर नहीं चल सकता।

निकलने के स्थान—

निकलने का कोई विशेष स्थान नहीं है। जैसा कि आचार्य माधव "बाहु वा जंघा आदि" में लिखते हैं पर देखने से विदित हुआ यह तो सर्व शरीर व्यापी है। मेरे चाचा जी (श्री. वैद्यराज गुनन रामजी) ने बतलाया कि उन्होंने जिह्वा तक में देखा है। पेट तथा कमर एवं पार्श्वों में स्वयं मैंने देखा है। अधिकांशतः यह पैरों में ही निकलता है। मैंने अपनी जंघा में देखा तथा पैर की पिण्डली में मुंह किया। इसका कारण यही है कि यह रक्त के साथ नीचे की ओर चलता है। और विद्वान विचार करें।

इसका प्रभाव—

१—आघातादि द्वारा छिन्न हो जाने से यदि बाहु में हो तो बाहु सिकुड़ जाता है। यदि जंघा में हो तो खजंता आ जाती है।

२—जब यह रोग सन्धि-स्थानों (यथा घुटना टखना, कूर्पर आदि) में निकलता है तो की श्लेष्मा को नष्ट कर देता है तथा उस को विकृत कर देता है।

३—हमारे ग्राम मिश्री में एक व्यक्ति (श्री. को यह रोग घुटने में हुआ था। उसका सीधा ही रह गया अर्थात् घुटने से है। अंग विकृत कर देता है। लंगड़ा अपाहज बनाकर बेकार कर देता है।

रोग होने पर क्या करें?

सबसे उत्तम तथा सरल एवं शीघ्र मुक्ति पाने की एक विधि ही है और वह है कि इसको चीर-फाड़ कर निकाल दिया जाये। केवल आधा में मुक्ति मिल जाती है।

निकालने की विधि—

सामान—जो सर्व साधारण भी जुटा सकते हैं।

१—वस्त्र सीने की सूचिका (सूई) जिसका अग्र भाग तेज हो।

२—तेज धार वाला उस्तरा (छुरा)

३—रूई ४ शीतल जल ५—स्प्रिट ६—साबुन

सब वस्तुवें स्वच्छ एवं पूतिकृत होनी चाहिये। अब रुग्ण को खाट पर लिटादें। हिलने-डुलने न पाऐं। तत्पश्चात् जहां नारू त्वचा के नीचे स्पष्ट दृष्टीगोचर होता हो वहां स्प्रिट से साफ करलें, फिर साबुन लगाकर धो डालें। फिर स्थानीय शून्यता उत्पादनार्थ बोरोकेन Borocaine (B. D. H.) एक सी. सी. अधस्त्वगीय प्रयोग करें। तत्पश्चात् ठीक जहां स्नायु दीखता है उसके ऊपर सूचिका को ऊपर की त्वचा के नीचे प्रविष्ट करें, फिर ऊपर की ओर उठाऐं तथा उस्तरे से काट दें। रक्त आने पर रुई को पानी में भिगोकर कटे स्थान पर लगाऐं इससे रक्त बन्द हो जायेगा। पुनः कटे हुए स्थान में छोटे छोटे शिरा-जाल दीखते हैं, उन्हें भी साव-

ग्गनी से काटते जाएं तथा रक्त को बन्द करते जाएं तब स्नायु दीखने लगे तब सूई का दूसरा भाग उसके नीचे तिरछा रखते हुये प्रवेश करें तथा शनैः शनैः मालिश करते हुये ऊपर की ओर उठाएं। तब ऊपर आ जाये तो हाथ से पकड़ धीरे धीरे मालिश करते हुये निकालें। यदि निकलते समय कुछ रुकावट भी पड़ जाये तो क्षत स्थान (कटे) से ३ इञ्च तक चारों ओर सरसों का तैल लगा कर मालिश करें तथा पुनः हल्के-हल्के झटके देकर निकालें। जितना स्नायु निकले उसे किसी रूई की वर्ति अथवा वस्त्र पर लपेटते जायें। अवश्य ही सफलता मिलेगी। खूब परीक्षित है। हमारे गांव में भी श्री० चन्दगीराम धाणक इसी विधि से निकालता है।

सावधान्

निकालते समय टूट न जाए। नरम हाथ से काम लीजियेगा। यदि टूट गया तो रुग्ण को नारकीय यातनाएं भोगनी पड़ेगी। नारू का पीप क्षत स्थान पर लगने से २४ घण्टे के भीतर ही शोथ उत्पन्न कर रोगी को शय्या पर ही बैठा देता है।

यदि टूट भी जाये तो उसी समय उसे धागे से बांध दें ताकि पीप न निकलने पाये। यदि पीप क्षत-स्थान पर न लगे तो विशेष कष्ट नहीं होगा। यदि भीतर स्नायु टूट जाए तब दवा करें।

टूट भी जाय तब—

शुद्ध हींग ४ रत्ती शीतल जल के साथ दें तथा १ तोला मिश्री उसी समय खिलाकर २ तोले गोघृत पिलायें। यह योग बड़ा ही उपयोगी है। २१ दिन तक दें तो फिर कभी स्नायु रोग नहीं होगा। मेरी (लेखक की) पिण्डली में इसी प्रकार नारू टूट गया था, उपरोक्त प्रयोग के २१ दिन सेवन करने से नारू वहीं सूख गया। १२ वर्ष हो गये आज भी मेरी पिण्डली में वह स्नायु है किन्तु कष्ट नाम मात्र भी नहीं है। यह योग श्री० वैद्य गुगनराम यादव प्रदत्त है।

आपरेशन तथा मैं

मैंने बतलाया है कि मुझे भी इस पाजी रोग से दो बार टक्कर लेनी पड़ी है मेरे बायें पैर की पिण्डली में-नारू दीख पड़ा। मैंने विचार किया कि डाक्टर अवश्य निकाल देगा। एक सर्जन के पास गया और समझाया। डाक्टर साहब ने चीर-फाड़ आरम्भ की, विचार तो था कष्ट से मुक्ति मिल जायगी किन्तु हुआ ठीक विपरीत। महाशय जी ने पूरा ४ इञ्च लम्बा घाव बना दिया। मैंने विचार किया यह तो चोटी तक काटते ही जायेगा किन्तु धन्यवाद भगवान का कि स्नायु ही कट गया और डाक्टर ने कहा सौरी sorry (खेद)। बस इसी ऑप्रेशन से सीख लेकर मुझे नारू निकालने में सफलता मिली। विधि ऊपर लिख दी है।

बचने के उपाय

१—तालाबों का गन्दा पानी न पिया जाये।

२—वर्षा ऋतु में तो भूल कर भी यह पानी न पीयें।

३—यदि पानी पीना ही पड़े तो:-

१-पानी को उबाल कर शीतल कर पीवें।

२-फिटकरी डालकर स्वच्छ किया पानी पीयें।

४—साग तरकारी में हींग का प्रयोग किया जाए।

औषधि

अनुभूत पेटेन्ट वा गुप्त सिद्ध कुछ भी समझियेगा जिन प्रयोगों द्वारा मुझे सफलता प्राप्त हुई है, लिख रहा हूँ।

१-अवस्थाः-जब केवल फोड़े की भांति शोथ ही हो और स्नायु बाहर नहीं निकला हो तबः-

शण (सन) के बीज, राई साबुन इन्गुदी (हिंगोट हिंगल) मूलत्वक, प्याज सम भाग आवश्यकतानुसार लें। सबको कूट-पीस लुगदी बना गोमूत्र में रांध (पका) कर लेप करदें। ऊपर एरण्ड या धतूरे के पत्ते रख कर पट्टी बांध दें। दिन में दो बार बांधते रहें।

२-अवस्था-मुंह न किया हो तथा छाला न हुआ हो तब-

साँठ (सांठी, गदहपूर्णा, पुनर्नवा) की जड़ तथा पत्र १ तोला, जंगली गोभी १ तोला, प्याज १ तोला,

कुचिला ३ नग, हिंगोट-मूलत्वक १ तोला, सन के बीज ६ माशा, सहंजन ६ माशा, शिरीष फूल १ तोला लें। विधि उपरोक्त ही है।

२- अवस्था-मुंह करने पर-

सांठी जड़ सहित १ तोला, प्याज ६ मा., भिलावा पक्का १ नग, साबुन १ तोला, बन्दगोभी १ तोला, कबूतर की वीट ६ मा., को भली प्रकार कूट-पीस लुगदी बनालें। गोमूत्र में पकाकर सुहाता-सुहाता बांधें। दिन में दो बार प्रातः सायंकाल दें। यह योग मेरे गुरु श्री० वैद्यभूषण मंगलचन्द जी हिंडोल से मिला है। अनेकों बार का परीक्षित है।

खाने के लिये-

१-शुद्ध हींग ४ रत्ती, अजवाइन ६ मा., शंख-भस्म ४ रत्ती तीनों का बारीक चूर्ण करलें। गुड़ में वटी बनालें।

२ माशे की एक वटी प्रातःकाल गौघृत से दें तथा ऊपर दो तोले मिश्री खानेको दीजिए। यह योग माघ मास में २१ दिन तक सेवन किया जाये तो कभी नारू नहीं निकलेगा। योग वयोवृद्ध गुगनराम यादव (लेखक के चाचा जी) से मिला है।

यदि नारू निकाला अथवा उपचार न किया जाये तब-तब तो रुग्ण को नारकीय यातनाएं भोगनी ही पड़ेंगी। यह स्नायु जहां कहीं भी हाथ-पैर तथा अन्य अङ्गों में निकलता है वहां अति तीव्र शोथ व वेदना होती है। त्वचा के नीचे जिस भाग में स्नायु रोग होगा उधर ही पिटिकाएं (छाले) होंगे या सख्त फोड़ा होकर पक कर फूटने पर व्रण के समान लक्षण मिलते हैं। इन व्रणों में स्नायु का मुंह या टूटा गला-सड़ा स्पष्ट दीखता है। उसके भीतर से पीप आती है जो विष का काम करती है क्षत स्थान पर।

परिषेक—

१—दशमूल से सिद्ध गोमूत्र से परिषेक करें।

२—सांठी मूलसहित एरण्ड मूल त्वक नीमपत्र पानी में उबाल कर परिषेक किया करें।

माधवाचार्य जी लिखते हैं "विसर्प रोग के समान ही इस रोग की भी चिकित्सा करनी चाहिये। अपना अनुभव-प्रलेप सेक आदि बहिः परिमार्जन आदि क्रिया दोनों में समान ही हैं। किन्तु मैंने कई विसर्प रोगियों की चिकित्सा की है। उन्हें केवल पेनिसिलिन (Pencillin procaine) के इन्जेक्शन देने से शीघ्र ही लाभ हुआ है किन्तु स्नायु रोग में बेकार रही है।

स्नायु तथा विसर्प में भेद-

स्नायु	विसर्प
१-स्नायु की पिटिकायें (छाले) केवल नारू (तन्तु, सूत्र, तान्त) जहां तक होगा वहीं तक सिमित रहती हैं।	१-विसर्प की पिटिकाएं दोषों के संसर्ग से बाहर भीतर सब स्थानों में होती हैं।
२-एक बार मुंह करने पर (जहां किसी २ को छाला पड़ता है किसी को ग्रन्थि सी होती है) दूसरे स्थान पर छाला नहीं पड़ता अपितु शोथ होकर ग्रन्थि बन कर पक कर फूट जाती है व्रण बन जाता है।	२-विसर्प की पिटिकाएं फैलने वाली होती हैं। चाहे जहां तक फैल सकती हैं।

अतः विसर्प के समान चिकित्सा में भी भेद जानें। तथा विद्वान् भी विचार करें। मैंने केवल आप-बीती लिखी है, इसके साथ साथ अपना अनुभव भी जो १२-१३ वर्ष से है, लिखा है।

अङ्कोल (Alangium Lamorokii)

लेखक—श्री० पं० कृष्णप्रसाद जी त्रिवेदी, बी० ए० आयुर्वेदाचार्य ।

विशिष्ट विवरण—यह बूटी भारतवर्ष को छोड़ अन्य देशों में प्रायः नहीं होती। आकुली, अंकुली, अङ्कोली, अंकुल आदि शब्द अङ्कोल वाचक हैं। अंकुली और आकुली शब्दों का प्रयोग कामरत्न प्रभृति तन्त्रग्रन्थों में बहुत बार हुआ है। स्वर्गीय स्वामी हरिप्रपन्नाचार्य जी ने इसके रहस्य को बतलाते हुए लिखा था कि "अंकुर अस्मिन्नसीति अंकुरी शब्द सिद्ध होता है, और रकार के स्थान में लकार का परिवर्तन प्रायः भाषा में हुआ करता है। इसके बीज के तेल में आम्रादि के बीजों (गुठलियों) को विशेष रूप से भावित करके बाजीगर अपने पास रक्खा करते हैं, और उस पर पानी छिड़क कर तत्काल उसकी अंकुरित एवं फलितावस्था दर्शाकर लोगों को आकुल या चकित किया करते हैं। यह प्रकार इन्द्रजाल विद्या में बहुत विस्तृत रूप से वर्णित है। इसी तरह 'आकुलयति लोकानां विचित्र घटनाभिश्चेतांसि अर्थात् आश्चर्य युक्तानि करोति' इस व्युत्पत्ति से 'आकुली' शब्द सिद्ध हो सकता है।"

यह भारतीय पैदावार होने से इसका वर्णन प्रायः सभी प्राचीन आयुर्वेदीय ग्रन्थों में पाया जाता है। यूनानी प्राचीन ग्रन्थों में इसका वर्णन नहीं है।

इस वनौषधि के संस्कृत नाम के अपभ्रंशरूप में ही प्रायः अन्यान्य भाषा के नाम पाये जाते हैं।

नाम—

संस्कृत—अङ्कोल, अङ्कोट, कोलक, दीर्घकीलक, विषघ्न इ.।

हिन्दी— अङ्कोल, अकोसर, अङ्कोड, ढेरा, अकोला इ.।

मरेठी - अङ्कोली वृक्ष, आंकुल, अङ्कोली इ.।

गुजराती—आकोल, अङ्कोल्य, ओकला इ.।

बंगाली— आंकोट, आंकड, धल आंकोर दुलाकुरा इ.।

तैलंगी—अङ्कोलमु, ऊड़गु, उड़ीके इ.।

कनाड़ी—अङ्कोले, अङ्कोलायमरा,

अंग्रेजी—सेजलीव्हड अलेंजियम Sage-leaved Alangium।

लेटिन—एलेंजियम लमारकिआई १।

" " हेक्सापेटेलम २।

उत्पत्ति स्थान—

वनों, पर्वतों में, विशेषकर ऊंचे और सूखे स्थानों में बिना बोये स्वयं उत्पन्न होता है। इसके लिये पथरीली, कंकरीली एवं रेतीली भूमि अधिक उपयोगी है। हिमालय की घाटी से लेकर गंगा तक उत्तर प्रदेश, अवध तथा बिहार, बङ्गाल, राजस्थान, बर्मा और उष्ण-कटिबंध में स्थित दक्षिण भारतवर्ष के कोकण, गुजरात, पोरबन्दर आदि प्रान्तों के वनोपवनों में बहुतायत से पाया जाता है। पर्वतीय

प्रदेशों में विशेषतः झरनों के आसपास यह देखा जाता है। बम्बई में म्युनिसिपाल्टी की सड़कों पर दोनों ओर शोभा के लिये इसके वृक्ष लगाये गये हैं।

विवरण—

श्वेत और काला भेद से अङ्कोल वृक्ष प्रायः दो प्रकार का होता है। कोई-कोई इसे लाल और पीला भी बतलाते हैं। डाक्टर मोहन शरीफ आदि कई महानुभावों का कथन है कि जिसके फूल बैंजनी या श्याम वर्ण के, छाल गम्भीर धूसर वर्ण की होती है, वह काला अङ्कोल, श्वेत अङ्कोल की वास्तव में एक जाति विशेष है। ठीक है, इसे चाहे जाति विशेष कह लो या भेद, बात एक ही है। कारण दोनों में अन्य सर्व लक्षणों की समानता है। विशेष भेद यह है कि श्वेत की अपेक्षा काला अङ्कोल परम प्रभावशाली है, और इसका प्राप्त होना भी सर्वत्र सुलभ नहीं है। जहां तहां श्वेत ही देखने में आता है। कहीं वातावरण और जमीन के भेद से उसमें पीलापन दिखाई देने पर पीला और लालिमा दिखाई देने पर लाल अङ्कोल कह दिया करते हैं।

चारों ओर फैली हुई आढ़ी-टेढ़ी और लम्बी शाखाओं से सुपल्लवित यह वृक्ष बहुत ही सुहावना होता है। ऊंचाई इसकी २५ से ४० फीट तक, और पिण्ड की गोलाई २॥ फीट होती है। शाखाओं का रङ्ग प्रायः श्वेत, आरम्भ में कण्टकरहित होती हैं। पुराने या युवावृक्ष के प्रकाण्ड से निकलती हुई आरम्भिक शाखायें भी कण्टकरहित होती हैं। किन्तु पश्चात् जहां पत्र निकलते हैं वहीं पर प्रायः कांटे हो आते हैं। अर्थात् पत्र के स्थान में टहनियों पर छोटे छोटे कांटे निकल आते हैं।

मूल—इसकी मुख्य जड़ वृक्ष या जमीन के प्रमाण से छोटी या बड़ी हुआ करती है। बड़े वृक्ष की मूल जमीन में बहुत ही गहरी गई हुई और वजनदार होती है। इसमें उपमूल या अन्य शाखायें बहुत कम होती हैं जो इधर-उधर आड़ी या तिरछी जमीन में धंसी हुई होती हैं। मूल को चौड़ाई की रुख काटने से अन्दर मध्य भाग की लकड़ी भूरे वर्ण की सच्छिद्र दिखाई देती है, और आसपास चक्राकार चिह्न से दीख पड़ते हैं।

छाल—मूल की ऊपरी छाल दालचीनी के समान, गहरी खाकी वर्ण की, खुरदरी तथा खड़ी धारियों वाली होती है। अन्दर की छाल श्वेत और मुलायम होती है। इसमें एक प्रकार की गन्ध आती है; तथा स्वाद में नीम जैसी कड़ुवी और कुछ कसैली होती है। यह छाल आध इञ्च तक मोटी होती है। ऊपर के पिंड और शाखाओं की छाल पर छोटे-छोटे कांटे होते हैं। इसका गन्ध विशेषतः उत्क्लेदजनक होता है।

लकड़ी—मजबूत, हलकी तथा वर्ण में पीलापन लिये हुये होती है। इसका बीच का हिस्सा बादामी रङ्ग का सुगन्धयुक्त होता है।

पत्र—विषमवर्ती, लम्बे संकरे, कनेर पत्र जैसे, कुछ बर्छीनुमा होते हैं। ये ३ इञ्च से ६ इञ्च लम्बे और १ इञ्च से २ इञ्च चौड़े होते हैं। ये प्रायः बिल्वपत्र जैसे त्रिदलाकार भी होते हैं। पत्र का ऊपरी भाग फीके हरे वर्ण का और दूसरी ओर का भाग कुछ पीत वर्ण का होता है, जिसमें सिरायें मोटी-मोटी, आड़ी-टेढ़ी स्पष्ट दिखाई देती हैं, उनमें बीच की सिरा या नस प्रायः श्वेत होती है। अति कोमल पत्र पर कुछ रोयें से होते हैं।

ये पत्र शीत ऋतु के अन्त में पतझड़ या पुष्पागमन के समय जब झड़ जाते हैं, तब पत्रहीन किन्तु पुष्पों से लदा हुआ यह वृक्ष ऐसा मालूम देता है, मानों सूखे वृक्ष में कृत्रिम पुष्प लगा दिये गये हों। चैत्र या वैशाख मास में पुष्पों के झड़ जाने पर इसमें पुनः नवीन पत्र आते हैं। पत्तों की उग्र गन्ध तथा स्वाद अम्ल-कटुयुक्त होता है।

पत्तों के डंठल चिकने, लघु कुछ टेढ़े और अत्यन्त सूक्ष्म रोमयुक्त होते हैं, तथा लगभग चौथाई से तिहाई इञ्च लम्बे होते हैं।

पुष्प—मध्यवर्ती, सूक्ष्म, श्वेताभयुक्त पीतवर्ण के, झुमकों में लगते हैं। वृक्ष की कोमल शाखा प्रतिशाखाओं पर जहां-जहां के पत्र झड़ गये हों, उसी स्थान पर दो-दो फूल एक ही साथ निकलते हैं। पुष्प का व्यास १ से १॥ इञ्च का और सुगन्ध चमेली के पुष्प जैसी मधुर होती है। प्रत्येक पुष्प में ६ से १० पंखुड़िया-अण्डाकार एवं न्यानाधिक परिवर्तित या उलटी हुई होती हैं। शीत के अन्त में, प्रायः माघ से चैत्र तक इसमें पुष्प आते रहते हैं।

पुष्प वृन्त या डंठल—लघु, सामान्य, हरितवर्ण का तथा धूसर रोमों से युक्त होता है।

पुष्प बाह्य कोष—यह कोष ५ से १० पत्र या पंखुड़ियों से बना हुआ होता है। उन पर रोयें होते हैं, तथा ये पंखुड़ियां नीचे की ओर परस्पर में जुड़ी हुई होती हैं।

पुष्पाभ्यन्तर कोष—इस कोष की पंखुड़ियां भी ५ से १० तक ही होती हैं, तथा वे ३/४ इञ्च लम्बी और लगभग ½ से ३/४ इञ्च तक चौड़ी होती हैं। इन पर भी रोयें होते हैं। उनका रङ्ग बाहर की ओर से कुछ पीला भासता है, अन्दर की ओर श्वेत होता है।

पुं-केसर और स्त्री-केसर—स्त्री-केसर प्रायः १ ही होता है, किन्तु पुं-केसर बहुत होते हैं। उनका तन्तुमय परागकोष श्वेत रङ्ग का होता है। स्त्री-केसर की नलिका (Style) श्वेत वर्ण की और पुंकेसर के तन्तु से कुछ जाड़ी होती है। नलिकाग्रमुख (Stigma) भी श्वेत वर्ण का, किंचित जाड़ा और चौड़ा होता है। पुष्प में से पंखुड़ियां और पुंकेसर को निकाल देने पर स्त्री-केसर-नलिका के नीचे का गर्भाशय (Ovary) का भाग श्वेत रङ्ग का चपटा पड़दा जैसा स्पष्ट दिखाई देता है।

फल—लगभग रीठा या जङ्गली बेर बराबर २/३ इञ्च लम्बा गोलाकार, चिकना, डंठल में झुका हुआ लगता है। ये फल प्रायः वैसाख से सावन मास तक लगते और पकते रहते हैं। ज्येष्ठ या आषाढ़ मास में पूर्णतया पक जाते हैं।

कच्ची अवस्था में फल हरे वर्ण का तथा ऊपर खड़ी रेखाओं से युक्त होता है। छाल चीवट, तथा स्वाद में कडुवा होता है। इसका व्यास ½ इञ्च से ५/८ इञ्च तक होता है। ऊपर का भाग चेपयुक्त (चिपचिपा) एवं झलकता हुआ सा दीखता है, जिस पर धूसर रोम या रज सा होता है, तथा माथे पर गोल सा छिद्र पड़दा या छत्र सा होता है (वह उक्त पुष्प वाह्यकोष का भाग है जो कुछ मोटा सा होकर फल के माथे पर रह जाता है) और उस पर भूरे वर्ण के रोयें होते हैं।

परिपक्व होने पर लाल वर्ण का कुछ कलौंछ लिये हुए या जामुन जैसा काला होजाता है। माथे पर का उक्त पत्र एकदम शुष्क और कड़ा होजाता है। इस समय इसकी छाल इतनी मुलायम होजाती है कि थोड़ा दबाते ही उसमें कांजी जैसा रस और अन्दर का गूदा बाहर निकल आता है। गन्ध मछली जैसी स्वाद में मधुर होजाता है। यदि ठीक-ठीक न पका हो तो इसकी मिठास में कुछ खटास और कसैलापन रहता है।

उक्त गूदे के अन्दर भूरे रङ्ग की कड़ी, अणीदार गुठली होती है। यह गुठली दोनों ओर से चिपटी होती है। इसे तोड़ने पर अन्दर से एक बीज निकलता है।

बीज—गोलाकार, ऊपर और नीचे की ओर कुछ चिपटा रहता है। इसके ऊपर की छाल पतली तथा फीके बादामी रङ्ग की होती है। इसे नाखून से खुरचने पर अन्दर रसभरा, तेलिया, श्वेत वर्ण का बीज दिखलाई देता है। इससे तैल निकाला जाता है, जो औषधि कर्म महान उपयोगी है। बीज का व्यास ½ से ¾ इञ्च तक होता है। गन्ध उग्र होती है।

गुणधर्म—

आयुर्वेदानुसार—किंचित चरपरा, कसैला, कडुवा, तीक्ष्ण, उष्ण, स्निग्ध, पचने में हलका, दस्तावर तथा कृमि, शूल, आम, सूजन, ग्रहपीड़ा, विसर्प, कफ,

पित्त, रुधिर-विकार, स्थावर और जङ्गम विषों को दूर करता है। अतिसार, संग्रहणीनाशक और पारे को शुद्ध करता है।

फल—शीतल, स्वादिष्ट, पुष्टिकारक, भारी, बलवर्धक, दस्तावर, तथा कफ, वात, पित्त, दाह, क्षय, रक्तविकारनाशक है; और लूता (मकड़ी) आदि दोष एवं विषनाशक, शुद्धिकारक है।

रस—वान्तिजनक, विषविकार, कफ, वात-शूल, कृमि, सूजन, आम, पित्त, रुधिर-विकार, विसर्प, स्थावर-जङ्गमविष, कटिशूल, अतिसार और पिशाच पीड़ानाशक है।

बीज—शीतल, धातुवर्धक, स्वादिष्ट, मंदाग्निकारक, भारी, रस और पाक में मधुर, बलकारक, कफकारी, सारक, स्निग्ध, वीर्यवर्द्धक तथा दाह, वात, पित्त, क्षय, रक्तविकार, पित्तविकार और विसर्प को दूर करता है।

अर्क—शूल, आम, सूजन, अङ्गग्रह और विषनाशक है।

तैल—वातकफनाशक तथा मालिश करने से चर्मरोग नाशक है। रसायन कार्य एवं पारद के रञ्जन कार्य में आता है।

नोट—आयुर्वेद के बङ्गसेन, चिकित्सासार आदि संग्रह ग्रन्थों में, तथा अन्यान्य चिकित्सा ग्रन्थों में भी अतिसार, संग्रहणी आदि रोगों में अङ्कोल का व्यवहार देखा जाता है। तथा निघण्टुकारों ने इसे रेची (दस्तावर) माना है। यह विरोधाभास केवल इसकी मात्रा के भेद से है। इसे यथोचित छोटी मात्रा में सेवन कराने से इसकी क्रिया पचन नलिका की श्लेष्मल त्वचा पर योग्य प्रमाण में होकर आमाशय और पित्ताशय की यथायोग्य क्रिया-शक्ति बढ़ती है, ग्रहणी यन्त्र की पुष्टि होती है, तथा दूषित मल का शीघ्र ही निःसरण होकर अतिसार और संग्रहणी में लाभ होता है। इसीसे इसे श्री डल्लनाचार्य जी ने 'संग्राही' लिखा है। इसे बड़ी मात्रा में देने से यह अत्यधिक पित्त-स्राव कराता है, तथा पित्त मिश्रित जुलाब होने लग जाते हैं, या कफ पतला होकर वमन होने लगते हैं। इसीसे इसे रेची, वामक और विषनाशक कहा गया है।

यूनानी मतानुसार—

पहले दर्जे में—कोई-कोई दूसरे दर्जे में—इसे गरम तर मानते हैं। यह जिगर को ताकत पहुँचाने वाला, जहर, वायु-विकार, उदरशूल, शोथ और कृमिनाशक है। इसके ज्यादा उपयोग से आमाशय निर्बल होकर मन्दाग्नि होती है, कफ ज्यादा पैदा होता है, सिर में झनझनाहट के साथ दर्द शुरू होता है। गुदा में जलन, आंखों में पीलापन, निद्रानाश और चिंतनशीलता (दिमाग में गौर करने की ख्वाहिश) आदि विकार होने लगते हैं। ऐसी दशा में शंखपुष्पी का चूर्ण ४ मासे दूध १ पाव में उबाल कर ठण्डा कर मिश्री इच्छानुसार मिला कर पिलाने से फौरन सब खराबी दूर हो जाती है।

इसकी जड़ गरम और चरपरी होती है। फल इसका ठण्डा, पौष्टिक, बदन को मोटा करने वाला होता है, यह खाने के काम में आता है, लेकिन ज्यादा खाने से गरमी करता है।

इसके जड़ की छाल का चूर्ण ३ माशे की फंकी देने से कै (वमन) सहूलियत से होती है, पूरी मिकदार में न देने से जी मतलाने लगता है।

इसकी ताजी छाल १ माशा से ४ माशे तक यदि गाय के दूध में पीसकर पिलावें तो कै और दस्त बगैर तकलीफ के लाता है, और बच्चों की मिर्गी या 'अपस्मार' को बहुत फायदा पहुँचाता है।

जड़ की छाल का चूर्ण अडूसे के काढ़े के साथ सेवन कराने से तपेदिक में मुफीद है। दर्द और सूजन पर जड़ को पीस कर लेप करने से फायदा होता है।

इसकी लकड़ी का फर्श बनाकर यदि इस पर सोया जाये तो कोई कीड़ा-मकोड़ा पास नहीं आवेगा। इसका लकड़ी के चूर्ण में उचित दवाइयां जैसे पिया रांगा, कागजी नीबू के बीज, दरयाई नारियल आदि मिलाकर हैजे के मरीज को खिलाया जाय तो आराम

हो जाता है। नासूर में इसकी लकड़ी की राख भरने से लाभ होता है।

जिस्म की दाह पर फलों को पीस कर लेप करने से फायदा होता है। इसके तल को तिल-तैल में मिला कर लगाना बालों को बढ़ाता है और सिर के जुओं को दूर करता है।

कालीमिर्च और शीतल व रूक्ष वस्तुयें अंकोल के दर्प को नष्ट करती हैं। किसी किसी रोग में कुकरौंधा को इसके अभाव में लिया जाता है।

यदि अंकोल का छिलका और बीज समभाग लेकर कूट-पीस कर चना जैसी गोलियां बना एक माशा से दो माशा तक सेवन करायें तो वमन व रेचन सरलतापूर्वक लाता है और आमाशय की सूजन तथा वदन के नीचे के भागों के दर्द और जलोदर में बहुत मुफीद है।

आधुनिक मतानुसार--

अंकोलमूल की छाल १ रत्ती से २॥ रत्ती तक देने से धातुपरिवर्तक (Alterative) और २० से २५ रत्ती की मात्रा में वमनकारक होती है। डाक्टर देसाई जी का कथन है कि, "इसे केवल वमनार्थ बड़ी मात्रा में देना उचित नहीं। कारण इससे वमन कुछ देर में होता है और व्यर्थ में बहुत देर तक जी मचलाते रहता है। वमन होते समय और वमन के पश्चात् हृदय और रक्त-वाहनियां बहुत शिथिल हो जाती हैं। वमन के समय इसकी क्रिया आमाशय की श्लेष्मल-त्वचा पर प्रत्यक्ष विशेष होने से तहां दाह और कभी-कभी शोथ भी होती है। अतः इसका उपयोग बड़ी मात्रा में करना श्रेयस्कर नहीं। इसीसे (शायद) आयुर्वेद में इसकी गणना वामक द्रव्यों में नहीं की गई है।

यह स्वेदजनक, शोधक, त्वग्दोषहर, अनुलोमक और विषहर है। इसमें काम (स्त्री-संग इच्छा को) हरने का विशेष धर्म है, तथा दाहजनक और वामक ये दोष हैं। मात्रा—मूलछाल १ रत्ती से ३ रत्ती तक देने से प्रस्वेद हो, उबकाई सी आने लगती है, और कफ ढीला हो जाता है। ४ रत्ती से ८ रत्ती तक की मात्रा में देने से पतले दस्त होते हैं। अनुपान में चावल का माण्ड या धोवन देते हैं। सर्पविष पर इसकी मात्रा २० से २५ रत्ती तक दी जाती है। यद्यपि डाक्टर कैस और मस्कर ने इसे सर्पविष पर निरुपयोगी माना है, तथापि प्राचीन अनुभवों से मालूम होता है कि वैद्यलोग विषनाशक औषधियों में इसका प्रयोग सफलतापूर्वक करते रहे हैं।"

हलकी मात्रा में यह ज्वर, विशेषतः प्रवाहिक-ज्वर को नष्ट करता है। इसकी छाल बहुत कडुवी है, और चर्म रोगों में बहुत लाभ पहुंचाने वाली सिद्ध हुई है।

यदि इसे पर्याप्त काल तक लगातार उपयोग में लाया जाय तो आक (मदार) की अपेक्षा उन पर इसका प्रभाव अधिक होता है। तथा यह 'हिपिके-क्वाना' (दक्षिण अमेरिका में होने वाली एक प्रसिद्ध बूटी जो अपने श्लेष्म निस्सारक और वामक धर्मों से जाहिर है) की एक उत्तम प्रतिनिधि है, और प्रवाहिका के अतिरिक्त उन समस्त रोगों में लाभदायक सिद्ध होता है, जिनमें इपीकेक्वाना व्यवहृत है।

उपदंश और 'कुष्ठ' रोग में भी यह उपयोग में ली जाती है। इसके फलों के गूदे और तिल के क्षार को शहद में मिलाकर देने से 'सुजाक' में लाभ होता है।

बम्बई की ओर संधिवात की पीड़ा-शमनार्थ अंकोल की पत्तियों का पुलटिस व्यवहार किया जाता है। इसके मूल की छाल के योग से बनाया हुआ तैल संधिवात में मालिश आदि बाह्योपयोग में लाया जाता है।

अङ्कोल कम मात्रा में रासायनिक गुणों को करता है। हैजा (विसूचिका) नाशक है, श्वास (दमा) को दूर करता है, तथा कूकर खांसी की प्रथमावस्था में प्रयोग करने से लाभ करता है। दर्द और शोथ पर

इसकी जड़ का पीस कर लेप करने से लाभ होता है। इसके पत्तों को उबाल कर अण्डकोषों पर बांधने से जल निकल कर 'अण्डवृद्धि' दूर होती है। इसका फल शारीरिक दाह, राजयक्ष्मा और रक्तपित्त को लाभकारी है। शारीरिक दाह में फलों को पीसकर लेप करने से और रक्तपित्त में मिश्री के साथ पीस कर पीने से लाभ होता है। मुख आदि द्वारा होने वाला रक्तस्राव बन्द होजाता है।

नवीन शोधों से मालूम हुआ है कि इसके बीजों से जो तैल निकाला जाता है उसमें काफी विद्युत्-शक्ति पायी जाती है। इसी से शायद हमारे यहां के तांत्रिक ग्रन्थों में इसकी प्रसिद्धि है, और कहा गया है कि अङ्कोल का १ बूंद तेल यदि मृतक के मुख में डाल दिया जाय तो वह एक प्रहर के लिये सजीव होजाता है। +

रासायनिक विश्लेषण–से मालूम हुआ कि इसमें, विशेषतः इसकी जड़ में एक तिक्त, रवा रहित क्षारीय सत्व है, जिसे अलेन्जीन (Alangine) कहते हैं। यह जल में नहीं घुलता। अल्कोहल, क्लोरोफार्म और ईथर में घुलता है। इस क्षारीय सत्व के अतिरिक्त इसमें पोटेसियम क्लोरिड (Potasium chloride) भी कुछ प्रमाण में रहता है। इसके रस को शरीर में इञ्जेक्ट करने से वह रक्तचाप या ब्लडप्रेशर पर कुछ देर के लिये फायदा पहुँचता है। रक्त की तेज रफ्तार को कम कर देता है।

'प्रयोगांश' – मूल, मूल की छाल, पत्र, पुष्प, फल, बीज और तैल।

तैल निकालने की विधि–

अङ्कोल के बीजों का चूर्ण कर उसमें इतना तिल तैल मिलावें कि वह अच्छी तरह कीचड़ सा होजाय। फिर उसे धूप में रख देवें। सूख जाने पर उसमें पुनः तिल तैल मिला अच्छी तरह तर कर धूप में सुखावें। इस प्रकार ७ भावनायें तिल तैल की देने के पश्चात, एक चीनी के चौड़े मुख के पात्र के मुख पर कपड़ा कस कर उस कपड़े पर उक्त भावित बीज चूर्ण को फैला कर रक्खें। उस पर एक श्वेत अबरक पत्र रख कर कोयले की अग्नि रख दें। इस क्रिया से सब तैल टपक कर अन्दर पात्र में आजावेगा। उसे शीशी में भर रक्खें।

(२) उक्त प्रकार से तिल तैल की भावना न देते हुये वैसे ही बीजों का तैल उक्त विधि से ही निकालने का एक तरीका है। किन्तु उससे तैल ठीक-ठीक नहीं निकलता। किन्तु पातालयंत्र द्वारा यह तैल बड़ी सुगमता से स्पष्ट सुनहला पीत वर्ण का निकल आता है।

मुख्य प्रयोग–

(१) जलोदर, शोथ, ग्रन्थि आदि पर–

इसकी जड़ के चूर्ण को १॥ माशा से ३ माशा तक की मात्रा में देने से पतले दस्त होकर यकृत के सुधार के साथ यकृदुदर, जलोदर और मूत्रपिण्डोदर पर भी लाभ होता है। इन विकारों में मूत्र का प्रमाण अधिक बढ़ाने के लिये काले तिल के पौधे का क्षार अथवा जवाखार की योजना इसके साथ कर देना आवश्यक है। इससे अजीर्णजन्य कोष्ठबद्धता और कृमिरोग में भी लाभ होता है। अथवा—

इसके मूल का रस या क्वाथ जितनी मात्रा में सहन हो सके उतना पिलाने से मूत्र साफ होने लगता है, तथा रोगी को आराम मालूम देता है।

'ग्रंथी या गांठ' चाहे जैसे बड़ी हो, चाहे जैसी सख्त 'सूजन' हो, चाहे वह प्लेग की हो या साधारण इस की जड़ को पानी में घिस कर गर्म कर उस गिल्टी पर ३–४ बार लेप कर देने से परम लाभ होता है।

साथ ही साथ इसके पत्रों को बांबी की मिट्टी के साथ कुचल पीस कर वस्त्र की पुटली में बांध कर सेंक करने से और भी शीघ्र लाभ होता है।

+ "अथ वक्ष्ये बिन्दु मात्रं तत्तैलं निक्षिपेद्यदि।
एक यामं सजीवः स्यान्नान्यथा शंकरोदितम्॥"
—शिवोक्त इन्द्रजाल।

(२) श्वास (दमा) रोग पर–

इसकी जड़ को नीबू के रस में घोटकर जब गाढ़ा गाढ़ा घोल सा होजाय तब छोटा चम्मच (चाय का) आधी प्रमाण में भरकर भोजन से दो घंटे पूर्व प्रातः और सायं पिलाने से बहुत लाभ होता है। अथवा–

इसकी छाल, राई और लहसन तीनों ६-६ माशे खूब महीन कर उसमें ३ वर्ष का पुराना गुड़ सबके समभाग मिलाकर १ गोली बनावें। रोगी को प्रथम दूध पिलाकर यह गोली खिलाने से अन्दर से पीड़ा-दायक कफ का गोला निकल पड़ता है। पुराने से पुराना श्वास रोगी आराम की नींद लेता है। कभी एक ही गोली से वमन द्वारा कफ निकल जाता है, कभी दो या तीन गोलियां देनी होती हैं। रोगी को घृत और चावल का पथ्य देना चाहिये। किन्तु यह प्रयोग बड़ी सावधानी से, स्नेह, स्वेदनादि कर्मों के बाद कराना श्रेयस्कर होता है।

(३) ज्वर, दाह, इन्फ्ल्युएञ्जा आदि पर–

जड़ की छाल का चूर्ण मात्रा ३॥ रत्ती से ५ रत्ती तक जल के साथ खूब महीन कर पिलाने से पसीना आकर प्राकृतज्वर (मौसमी ज्वर) में लाभ होता है। अरुचि दूर होजाती है।

दाह ज्वर पर–इसकी जड़ और सोंठ को पानी में पीस कर, शरीर पर लेप करने से शीघ्र ही ज्वर और दाह की शांति होती है। यदि इसमें सोंठ न मिलाया जाय, केवल अङ्कोल मूल को ही, या इसके फलों को पानी में पीस कर ज्वरावस्था में समस्त शरीर पर धीरे धीरे मला जावे तो भी लाभ होता है। छोटे बच्चों के शरीर पर यह इसी प्रकार लगाया जाता है, और उनके ज्वरों की शांति होजाती है।

जुकाम, या संधियों में वेदना होकर आने वाले डेंगू ज्वर पर इसकी मूल को बच या सोंठ के साथ चावल के मांड में पकाकर सेवन कराने से लाभ होता है, वेदना स्थान पर इसके पत्तों को पीस कर और गरम कर बांध देना चाहिये। यह इन्फ्ल्युएञ्जा पर भी लाभकारी है। अथवा—

इसकी जड़ १ तोला, कूट और पीपल ३-३ माशे यथा बहेड़ा ६ माशे, इनका अष्टमांश क्वाथ बनाकर, ठंडा होने पर उसमें थोड़ी मिश्री मिला पिलाने से इन्फ्ल्युएञ्जा या संक्रामक-प्रतिश्याय पर लाभ होता है।

(४) अतीसार और संग्रहणी पर–

इसकी जड़ की छाल को छाया शुष्क कर, महीन चूर्ण तैयार मात्रा ४ रत्ती से १ माशा तक तण्डुलोदक (चावल के धोवन) के साथ महीन पीसकर (तण्डुलोदक चौगुना लेवें) सेवन कराने से सर्व प्रकार के अतीसार और संग्रहणी में लाभ होता है। (चक्रदत्त)

यदि उक्त प्रयोग में थोड़ा शहद भी मिला दिया जाय तो और भी उत्तम लाभ होता है। अतीसार के साथ ही साथ 'विषविकार' भी दूर होते हैं×।

उक्त प्रयोग से पचन क्रिया में सुधार होकर अतिसार आदि प्रायः कतिपय विकार नष्ट हो जाते हैं। कोई कोई इस प्रयोग में समभाग कुड़ा की छाल का चूर्ण भी मिला देते हैं। दोनों चूर्ण समभाग कुल एक माशा के प्रमाण में लेकर तण्डुलोदक के साथ उक्त प्रकार से सेवन कराने से बहुत शीघ्र लाभ होता है।

आमातिसार रोगी को इसके पत्तों का रस ६ माशे तक के प्रमाण में, दूध के साथ पिलाने से प्रथम दस्त होकर, कोष्ठ शुद्धि होती है, और अतिसार में लाभ होता है।

शास्त्रोक्त 'अङ्कोट वटक' नामक प्रयोग भी इस विकार पर प्रसिद्ध है।

(५) विष प्रतिकारार्थ–

विष चाहे जंगम हो या स्थावर-अङ्कोल मूल की

× "अंकोट मूल कल्कश्च सक्षौद्रस्तण्डुलाम्बुना।
अतीसार हरः प्रोक्तस्तथा विषहरः स्मृतः।।"
—शार्ङ्गधर।

छाल का रस बड़ों को ४ तोले और छोटों को २ तोला की मात्रा में बार बार पिलाने से दस्त या वमन के द्वारा निकल जाता है। खास प्रयोग—

सर्पविप पर—इसकी जड़ १॥ तोला कूटकर दो सेर जल में पकावें। १॥ पाव जल शेप रहने पर, छानकर, प्रति १५ मिनट पर ५-५ तोले की मात्रा में गरम किये हुये समभाग गोघृत में मिला पिलाने से वमन और दस्तों द्वारा विप निकल जाता है। विप के उतर जाने पर ८ दिन तक नीम की अन्तर छाल के क्वाथ में अङ्कोल मूल की छाल का चूर्ण १॥ माशे मिला प्रातः सायं पिलाते रहने से उसका सूक्ष्म असर भी जाता रहता है। (नीचे देखो श्वान विप पर चौथा प्रयोग)

श्वान विप—

(१) पागल कुत्ते के काटने पर इसके मूल की छाल को गोदुग्ध के साथ पीसकर पिलाने से; अथवा—

(२) इसके मूल का शीत कपाय या क्वाथ में घृत मिलाकर पिलाने से; अथवा—

(३) मूल छाल का चूर्ण १॥ माशा में समभाग सुदर्शन चूर्ण मिला दो मात्रायें कर प्रातः सायं दूध के साथ पिलाने से; अथवा—

(४) मूल छाल ३-४ तोले और काली मिर्च ७ दाने, इन दोनों को तक्र (मट्ठा) १० तोले के साथ पीस कर पिलाने से वमन और विरेचन होकर रोगी स्वस्थ हो जाता है। इसे ३ दिन तक प्रयोग करना चाहिये। यही प्रयोग 'सर्पविप पर' भी सफलता पूर्वक किया जाता है। यदि दंशित व्यक्ति मूर्च्छित हो तो (नवसादर-चूना कपूर का) उग्रवीर्य नस्य बनाकर सुंघावें और दांती खुलते ही इसको पिलादें। (पं० उमादत्त जी आचार्य) अथवा—

इसकी छाल को एक छटांक पानी के साथ ७ नग काली मिर्च मिला घोट-छानकर पिलावें, यदि आवश्यकता हो तो २-३ बार भी दे सकते हैं। यदि वमन में खून आने लगे तो इसके बाद दूसरा प्रयोग न करें। (५) इसके पत्तों को जल के साथ पीस छान कर उसमें काली मिर्च का चूर्ण मिला पिलाने से भी श्वान विप में लाभ होता है।

मूषिक विष—

इसकी जड़ को जल के साथ पीस कर दिन में दो बार पिलाने से चूहे का विप नष्ट हो जाता है, तथा विकृत हुआ रक्त साफ होजाता है। मूषिक विप का असर शरीर पर वातरक्त विकार जैसा ही प्रायः होता है। अतः ऊपर से जहां शरीर पर चट्टे या लाल धारियां सी उठी हों वहां इसको घिसकर लगाना चाहिये। अथवा—

इसके मूल की छाल को बकरी के मूत्र में पीसकर पिलाने और इसी का लेप करने से चूहे का विप एवं तज्जन्य दाहादि विकारों की शांति होती है।

बिच्छू के डंक पर—

इसकी जड़ की छाल जल में पीसकर डंक स्थान पर लेप करें। अथवा जल से घिसे हुये इसी लेप में सरसों का तेल मिला कान में डालने से बिच्छू का जहर शीघ्र ही नष्ट होजाता है।×

मत्स्य दंश पर—

इसके पत्तों की धूप देने से मछली के दंश पर आराम होता है।

मामूली 'स्थावर विपों' पर उपर्युक्त प्रयोग नं० ४ विशेप लाभदायक है।

विपैले अंजन से नेत्रों में अन्धता उत्पन्न होने पर इसके फूलों का अञ्जन लगाने से लाभ होता है।

× अंकोल मूलस्य प्रलेपमाशु जलेन वृश्चीकविषं निहन्ति। कर्णे निषिक्तं सहसार्षपेन तैलेन तद्वच्छतशोऽनुभूतम्॥
—भैपज्यसार।

गरविष अर्थात् उपविष सेवन जन्य-उपद्रवों पर—

इसकी मूल छाल के क्वाथ का घनसत्व तैयार कर उचित मात्रा में गौघृत के साथ सेवन करावें, किन्तु इसके पूर्व रोगी के शरीर को तिलतैल मर्दित कर स्वेदित कर लेना चाहिए। शीघ्र लाभ होता है।

(६) खाज, व्रण आदि त्वग्रोगों पर—

(अ) इसके बीजों को मकोय के रस में पीस-कर लेप करने से खाज, चट्टे आदि दूर होकर शरीर सुन्दर कांतियुक्त हो जाता है। (वैद्य-मनोरमा)

(आ) इसके पत्तों को पीसकर टिकिया बना, सरसों तैल के साथ कड़ाही में डाल आग पर रख जला लें। जब जल जाय तो नीचे उतार कर उसमें थोड़ा काली मिर्च का चूर्ण मिला, खूब खरल करें। मलहम जैसा होजाने पर इसे लगाने से सर्व प्रकार के व्रण, खुजली, खरचा आदि अच्छे हो जाते हैं। अथवा—

(इ) इसके बीजों का तेल १ पाव और मोम ५ तोले इन दोनों को हलकी आंच पर गरम करें। जब दोनों एक रस होजांय, तब उसमें भूना हुआ नीला-थोथा लगभग दो माशे तक मिलाकर उतार लो। ठंडा होने पर चौड़े मुंह की शीशी में भर लो। इस मलहम से खुजली, दाद, भगंदर, नासूर, फोड़ा, फुंसी आदि समस्त त्वचा-सम्बन्धी रोगों पर लाभ होता है।

(ई) फुड़ियां बगल के नीचे या गले में जो महान कष्टदायक, मर्मान्तिक पीड़ायुक्त प्रायः वर्षाऋतु में हो जाया करती हैं, उनके निवारणार्थ प्रारम्भ में ही प्रातःकाल इसका एक फल खिलाने तथा एक फल का पानी निकाल कर गिल्टियों पर मल देने से तुरन्त लाभ हो जाता है।

(उ) उपदंश के व्रण या शीतपित्त के मण्डल वर्ण के चट्टे शरीर पर उठने पर— इसके मूल-छाल के चूर्ण की मात्रा आधी रत्ती से १ रत्ती तक दिन में ३ बार सेवन कराते हैं, और बीजों के तैल का अथवा— इसकी जड़ को जल में पीस कर प्रलेप किया जाता है। इस प्रकार छोटी मात्रा में बहुत दिनों तक दिया जाता है। (डॉ॰ देसाई)

(ऊ) घाव पर—यदि किसी शस्त्र से जख्म होजाय तो इसके तैल में रुई भिगोकर उस पर रखदें और ऊपर से पट्टी बांध दें। खून का बहाव बंद होकर शीघ्र ही घाव अच्छा होजाता है।

(ए) चोट के दर्द पर—इसके पत्तों को जल में उबाल कर उसकी भाप उस स्थान पर देने तथा उन पत्तों को गरमागरम बांध देने से शीघ्र आराम होता है।

(ऐ) चेचक के दागों पर—इसका तैल, गेहूं का आटा और हल्दी इनमें थोड़ा पानी मिलाकर उबटन करने से लाभ होता है।

(७) कुष्ठ पर—

कुष्ठ-विकार पर करंज और मदार की अपेक्षा अङ्कोल अत्यधिक लाभकारी है। इसकी मूल-छाल की मात्रा १ माशा तक जल के साथ पीस कर प्रातःसायं नित्य ६ मास तक सेवन कराने तथा उसी छाल को जल में पीस ऊपर लगाने से बढ़ा हुआ कुष्ठ एवं तज्जन्य शोथ, और विशेषतः मंडलकुष्ठ में आशा-तीत लाभ होता है। शीघ्र ही स्पर्शहीन मंडल कुष्ठ में स्पर्श की अनुभूति होने लगती है। अथवा—

अङ्कोल की मूल-छाल, जायफल, जावित्री और लौंग इनके समभाग चूर्ण को, २॥ माशे की मात्रा में सेवन करने से कोढ़ का बढ़ना रुक जाता है। अथवा—

अङ्कोल के तैल में, शुद्ध पत्री हरताल को घोटकर टिकड़ी बना, एक हांडी में पीपल वृक्ष की छाल की राख भरकर, उस पर वह टिकड़ी रख, ऊपर से फिर राख को जमाकर, बारह प्रहर की आंच देने से जो भस्म होती है वह कुष्ठरोग पर परम लाभकारी है।

रसरत्नाकर ग्रंथ का 'अङ्कोलादिचूर्ण' भी कुष्ठ पर सेवन कराया जाता है।

(८) प्रमेह, निर्बलता आदि पर—

(अ) अङ्कोल पुष्प की कलियों को छाया शुष्क महीन चूर्ण कर रक्खें। इसकी मात्रा ५ रत्ती के साथ समभाग हल्दी और १ माशा आमला चूर्ण मिला, शहद के साथ; प्रातः सायं सेवन करने से प्रमेहादि मूत्र-सम्बन्धी विकार दूर होते हैं। अथवा—

(आ) इसकी अन्तर छाल का चूर्ण शहद के साथ चाट कर, ऊपर से मिश्री मिला हुआ दूध पीने से प्रमेह एवं तज्जन्य कटिशूल आदि अन्यान्य शारीरिक वेदनायें दूर होकर पुष्टि प्राप्त होती है। अथवा—

(इ) इसके तैल की ५ बूंदें, मिश्री मिले हुये गर्म दूध में डाल कर कुछ दिनों सेवन करने से कमजोरी, सिर में चक्कर आना आदि प्रमेह जन्य विकार नष्ट होते हैं।

(९) अर्श पर—

मूल-छाल चूर्ण १ माशा में, समभाग काली मिर्च का चूर्ण मिला सेवन करें। और मस्सों पर इसके पत्तों की राख १ तोला में, काली मिर्च २५ नग भुना नीलाथोथा ३ माशे और हरताल १ मासा मिला खूब खरल करें। फिर इसमें मोम मिश्रित तिल तैल मिला खरल करें। मलहम जैसा होजाने पर इसे लगाने से वे सूख कर झड़ जाते हैं।

(१०) सिर दर्द—जो किसी उपाय से दूर न हो तो इसके तैल की मात्रा १० से २० बूंदें, बकरी के एक पाव दूध में थोड़ा शहद मिला पिलाने से शीघ्र लाभ होता है। मस्तिष्क पुष्ट होता है।

(११) 'पारद और ताम्रभस्म' अङ्कोल के योग से करने का विधान इस प्रकार है—अङ्कोल की जड़ के स्वरस में शुद्ध पारा और शुद्ध गंधक समभाग को एक दिन खरल कर, भूधर यंत्र में पुट द्वारा फूंक देने से पारद की भस्म होजाती है (रसरत्न) शुद्ध ताम्र चूर्ण या शुद्ध ताम्र के पैसे को अङ्कोल की मोटी जड़ में छेद कर उसके अन्दर रख, ऊपर से शुष्क अङ्क की छाल को दबाकर कपरोटी कर गजपुट में फूंक देने से श्वेत ताम्रभस्म होती है, ऐसा कहा गया है।

(१२) आम्रादि बीज एवं वृक्षवर्धनार्थ—

आम की गुठली को अङ्कोल तैल की ७ पुटें देकर उसे जमीन में गाढ़ दें, और ऊपर से जल का सिंचन देते रहने से शीघ्र ही आम्रवृक्ष उग उठता है। इसी प्रकार अन्यान्य वृक्षों को शीघ्र उगाया जा सकता है।

अङ्कोल के पक्व फलों में वच का चूर्ण और शहद मिला खूब कूट-पीस कर जल में सबका मिश्रण कर इस जल से आम के पौधे को सींचने से वह शीघ्र ही बढ़कर फूलने लग जाता है।

(आयुर्वेद महोपाध्याय शङ्कर शास्त्री पदेजी)

आम

लेखक—आयुर्वेदकेशरी कविराज पं० युगलकिशोर द्वारिकाप्रसाद जी शर्मा आयुर्वेदशास्त्री
दधिमथि आयुर्वेद भवन, राजगांगपुर ।

भारत वसुन्धरा अपनी अपरिमित धन-राशि के कारण रत्नगर्भा के नाम से विश्व-विख्यात थी। इस गये गुजरे जमाने में भी वह अपने विविध प्रकार के शस्य भांति के सुस्वादु मनोहारी, गुणकारी, पौष्टिक उत्तम फलों के कारण मां अन्नपूर्णा है। हम अपनी अज्ञानतावश उसके अमूल्य दातव्यों के महत्व को न आंक सकें—यह दूसरी बात है। प्रकृतिकोष के अलभ्य उपहारों में फलों का महत्व बहुत बढ़-चढ़कर है।

उनमें रसाल का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। यह जहां पूर्ण आहार के तत्वों से सुसंपन्न है, वहां पौष्टिक, पाचक और मृदुरेचक रूप में हमारी शारीरिक व्याधियों को नष्ट करने में भी लासानी है। रसाल पादप जहां वर्ष के बारह मास हरा-भरा रह कर वन-बागों को श्री-सम्पन्न रखता है वहां ग्राम और नगरों को फेफड़े-रूप में प्रदान करता है प्रचुर प्राणवायु। यह उत्तम फलाहार और अद्भुत औषधि के गुण धारण कर हमारे शरीर को पुष्ट और निरोग रखता है।

संस्कृत पर्याय—आम्र, रसाल, सहकार, अतिसौरभ, कामांग, मधुदूत, माकंद, पिकवल्लभ, मृपालक, चूत, षटपदातिथि, वसंतदुभ, माधवद्रुमु, मदाख्य, मनोज्ञ, मध्वावास, मोदाख्य, मन्मथलय, कामवल्लभ आदि-आदि इसके संस्कृत नाम हैं।

हि०—आम बं०—आम मराठी—आंबा, गु०—आंबो, कर्नाटकी—मानिव फल, तैलगु—मामिडि। फा०—आम्बा, अंग्रेजी—Mango, लैटिन—Mangifera Indica।

विवरण—ईश्वर ने भारतवर्ष में उत्तम फल देने वाला सारवी जाति का वृक्ष आम उत्पन्न किया है। ऐसा कि जिसकी प्रशंसा करना व्यर्थ है भूलोक का अमृत ही है, इसका वृक्ष अशोक वृक्ष से मिलता-जुलता है, सिर्फ पत्तों में भेद है। अशोक का पत्ता किनारों में अनीदार कांटे होते हैं और आम के पत्ते सीधे चिकने होते हैं और चिरौंजी के सदृश लगते हैं।

आम्रपुष्प—शीतल, रुचिकारी, ग्राही, वातकारक, अतिसार, कफ, पित्त-प्रमेह और रुधिर-विकार को विनष्ट करने वाला है।

कच्चा आम—कसैला गर्म, खट्टा, मलरोधक, रूखा, त्रिदोष को उत्पन्न करने वाला, रक्तदोषकारक, कण्ठ-रोग, योनिदोष, व्रण, अतिसार और प्रमेह को हरने वाला है।

अमचूर—खट्टा, स्वादिष्ट, कसैला, मलभेदक, कफ और वात को जीतने वाला, दस्तावर।

—ये गुण-दोष छिलके उतार कर धूप में सुखाये हुये कच्चे आम के हैं।

पक्का आम—मधुर, वीर्यवर्द्धक, स्निग्ध, बलदायक, भारी, वातनाशक, हृदयप्रिय, त्वचा की रङ्गत को निखारने वाला, अग्नि, कफ को बढ़ाने वाला, व्रण और रुधिर के रोगों को दूर करने वाला, अपित्तल और पुष्टिकारक है।

आम्रावर्त—दस्तावर, रुचिकारक, तृषा, वमन, वात और पित्त को नाश करने वाला है।

भेद—कलमी और तुख्मी दो साधारण भेद हैं। इसमें कलमी की अपेक्षा तुख्मी अधिक स्वास्थ्यप्रद होते हैं। दोनों के अनेक उपभेद हैं। मालदा, सफेदा, लंगड़ा, फजली, बहेरी, सिन्दूरी आदि।

विश्लेषण—तरल पदार्थ-६०.४० सेल्युलोज ४.७७ पानी २०. ६८ राख-१.६१ टारटरिक और सायट्रिक ऐसिड-७.४१. ।

अभी हाल ही में डा० सालिन ने प्रयोगशाला में परीक्षा और विश्लेषण कर यह घोषित किया है कि विटामिन्स 'ए' और 'सी' सर्व-साधारण आमों में प्रचुरता के साथ पाये जाते हैं। आम की एक जाति 'जाफरी' में सबसे छै गुना और सन्तरे से ३० गुना अधिक विटामिन 'सी' पाया जाता है। ये जीवन तत्व (Vitamins) केवल आम के गूदे में नहीं प्रत्युत छिलके में भी मिलते हैं।

विशेष सूचना—वृक्ष पर पके हुए आम, कृत्रिमता-पूर्वक पकाये गये आमों की अपेक्षा कहीं अधिक हितकर है। आम को कुछ घंटों तक पानी में डालने के पश्चात् चूसकर खाना ही श्रेयष्कर है। चाकू आदि से काटकर आम को यथाशक्य नहीं व्यवहार करना चाहिये। पक्के आम के खाने के पश्चात थोड़ा गर्म दूध और कच्चे आम के पश्चात् जीरा और नमक, मिलाकर सोंठ का पानी व्यवहार में लाना चाहिये।

प्रयोग—(१) आम की एक आध मंजरी को नित्य प्रति दोनों हथेलियों के बीच में रखकर दो चार मिनट मसलते रहने से रक्त शुद्ध होता है।

(२) आम के नव किसलय रुचिकारक और त्रिदोषनाशक है। इन्हें चिलम में रखकर पीने से हिचकी आना बन्द हो जाती है।

(३) आम की अन्तर छाल का लेप शिर दर्द को १५ मिनिट में शान्त करता है चाहे कैसा ही शिर दर्द क्यों न हो।

(४) आम की अन्तर छाल योनिशोधक, पित्त, प्रमेह नाशक है। इसके क्वाथ की गर्म कुल्ली करने से मसूढ़ों को भी लाभ होता है।

(५) आम की गुठली, कसैली, अम्ल, मधुर, वमन, अतिसार और हृदय की दाह को रोकने वाली है।

(६) पके आम के रस में मधु थोड़ी मात्रा में मिलाकर पीने से प्लीहावृद्धि दूर होती है। यह राजयक्ष्मा, वात और श्लेष्मा को भी शमन करने वाला है।

(७) परिपक्व आम के एक पाव रस को एक छटांक घी का तड़का लगाकर नित्य प्रति व्यवहार करने से शारीरिक बल का विकास होता और कान्ति बढ़ती है।

आम्रपाक—पके आमों का रस ८ सेर लेकर मृदु अग्नि पर पकालें, मावे की भांति होने पर, १ सेर घी में भून ले। ढाई सेर खांड की चासनी बनाकर इसे मिलादे। साथ ही निम्नांकित औषधियों का चूर्ण मिलाकर पाक तैयार करलें। सूसली सफेद १॥ तो. शकाकुल २॥ तो. बहमन सुर्ख और सफेद २॥-२॥ तो. केशर १ तो. वंशलोचन २ तो. पिप्पली १ तो. केशर १ तो, सालबमिश्री २ तो. जावित्री ६ मा. भीमसेनी कपूर ३ मा. वंगभस्म २॥ तो.।

मात्रा—६ माशा से २ तोला तक प्रातःसायं दोनों समय गोदुग्ध के साथ प्रयोग करें। एक मास के व्यवहार से ही शरीर पुष्ट बलिष्ठ और कुन्दन के समान दमकने लगता है। स्तम्भन शक्ति भी काफी बढ़ जाती है।

आमकल्प—स्वर्णपर्पटी को आधी रत्ती से आरंभ कर पाव रत्ती प्रति दिन १६ दिन तक बढ़ाते जावें। आहार में केवल आम चूसें और दूध पीवें। १६ दिन के पश्चात् इसी क्रम से कम करते जांय; फिर १६ दिन बाद बढ़ावें। इस भांति ४८ दिन तक इस योग को करें। इससे शरीर की समस्त अनियमितताएं दूर होकर एक प्रकार से नवजीवन नूतन स्फूर्ति और नवीन शक्ति उत्पन्न होकर कायाकल्प सा हो जाता है।

मैं पाठकों से अनुरोध करूंगा कि वे शैल-शिखर पर वायु सेवन के बजाय एक बार आम की फसल में देहात का मजा लूटें।

♦♦

श्री सरयूप्रसाद भट्ट 'मधुमय' साहित्य-वैद्यविशारद

मुवाबिछिया (मंडला)

— लेखक—

पिता का नाम— श्री. पं० कालीचरण भट्ट वैद्यभूषण

आयु—३७ वर्ष चिकित्साकाल—१५ वर्ष

प्रयोग विषय—१—नासूर २—शीतज्वर ३—कर्णश्राव ४—कर्णशूल ५—शीताङ्ग सन्निपात

"श्री मधुमय जी सफल चिकित्सक, योग्य लेखक तथा सरस कवि हैं। आपकी कविताओं से धन्वन्तरि के पाठक भली भांति परिचित हैं। आपने ६ पुस्तकें—अजतत्व (पद्य), निदान-पद्यावली, नाड़ी-निदान पद्यावली, भगवान आत्रेय के स्वास्थ्यसूत्र (पद्य), आयुर्वेदिक चर्यायें (निबन्ध) तथा स्वास्थ्य-सौन्दर्य तथा आमन लिखी हैं जो अभी अप्रकाशित हैं। आपके निम्न प्रयोग अति सरल और सफल प्रमाणित हैं, पाठक लाभ उठावें।" —सम्पादक।

१ नासूर—

गाड़ी की कीट जो काले रङ्ग की होती है, व्रण-रोपण पद्धति से मरहम की भांति भीतर तक भर दें, कुछ ही दिनों में नासूर जड़ से अच्छा हो जावेगा। गुप्त खान्दानी योग है।

२ शीतज्वर—

करंज की मींगी २ तोला, अर्क (आक) की छाल २ तोला, फिटकरी का फूला २ तोला, छोटी पीपल १ तोला, द्रोणपुष्पी (गूमा बूटी) के स्वरस में घोटकर ४-४ रत्ती की गोलियां बनावें। पेट साफ़ करके ज्वर आने के पहिले पानी से ४-४ घण्टे से १-१ गोली देने से शीतज्वर रुक जाता है। स्वानुभूत है।

३ कर्णश्राव—

कीकर के फूल २॥ तोले, सरसों का तैल ५ तोले, समुद्रफेन १ माशे सबको मिला तैल पाक करें। पदार्थ जल जाने पर तैल उतार छानलें, २-२ बून्द प्रति दिन कान में डालने से, कर्णश्राव को निश्चित आराम होता है।

४ कर्णपीड़ा, कान के फोड़े फुन्सी—

अर्क (आक) के पीले-पीले सुपक्व बड़े बड़े पत्ते लें, दोनों में चिकने पृष्ठ पर लगभग १-१ माशे घी लगावें, १ पत्ते को जरा सा आग पर सेंककर दोनों हाथों से मसलकर गरम-गरम रस एक कान में निचोड़ दें, इसी तरह दूसरा पत्ता दूसरे कान में। यह क्रिया दिन में २ बार करें। कान दर्द, फोड़े-फुन्सी खुजली को शीघ्र आराम होता है।

—शेषांश पृष्ठ ८६६ पर।

श्री पं. रामकृष्ण शर्मा "कौशिक"

राजपुराटाउन, पैप्सू।

पिता का नाम— श्री० पं० दाताराम जी

"श्री कौशिक जी उत्साही एवं कर्मठ युवक हैं। आपने पैप्सू राजकीय आयुर्वेद विभाग में कार्य करते हुए आयुर्वेदरत्न (सा० सम्मेलन प्रयाग) आयुर्वेदाचार्य (महामण्डल) संस्कृत-शास्त्री (पंजाब) परीक्षायें उत्तीर्ण की हैं। आपके ये प्रयोग उपयोगी प्रतीत होते हैं। पाठक लाभ उठावें।"

—सम्पादक।

—लेखक—

१— अर्शनिग्रह

बृहत्कण्टकारी, अर्क (आक) हरमल —तीनों के पञ्चांग १-१ सेर

सोंठ १० तोला
गेरू २ तोला
निबौली नागकेशर श्वेतकत्था
गौदन्ती भस्म —चारों १-१ तोला
जल १५ सेर

निर्माण विधि—पहले बृहत्कण्टकारी से सोंठ तक के द्रव्य यवकुट करके जल १५ सेर में रात्रि को भिगो दें। प्रातः इसे पकावें। एक सेर पानी शेष रहने पर मसलकर छानलें। गेरू कपड़छन कर प्रथक रखलें। अब नागकेशरादि शेष द्रव्यों को भी चूर्ण करके कपड़े में छानलें। क्वाथ को गुडपाक विधि से पाक करके नागकेशरादि द्रव्यों के चूर्ण को प्रक्षेप रूप से डाल कर चना बराबर गोली बना-बना गैरिक (गेरू) चूर्ण में डालते जांय और उसमें मिलाते रहें जिसमें कि गोलियां आपस में मिल कर इकट्ठी न होसकें। छाया में शुष्क होजाने पर व्यवहार करें।

प्रयोगविधि—अर्श रोग में मूली के पत्तों के अर्क या शीतल जल के साथ। उदरशूल एवं आध्मान में उष्ण जल के साथ, दिन में २-३ बार १-१ गोली दें।

२—ज्वरघ्नी—

कालीमिरच काली तुलसी के पत्ते
छाया शुष्क अर्कमूलत्वचा द्रौणपुष्पीपञ्चांग

—बराबर-बराबर लें। काली मिरच अर्कमूल त्व और द्रौणपुष्पी-पञ्चांग को वस्त्रपूत करलें और तुलसीपत्तों के साथ खरल कर दो मूंग बराबर गोली बनालें। छाया में सुखाकर रखलें।

प्रयोग विधि—कास और ज्वर में गरम पानी, शहद अथवा आर्द्रक स्वरस किसी भी एक के साथ लें। अथवा एक पान में थोड़ा शहद, अद्रक का टुकड़ा और १ गोली रख कर दें। ऊपर से गुनगुना दूध पिलादें।

मात्रा—दिन में ३-४ बार १-१ गोली।

नोट—गर्भिणी को न दीजिए।

३—ज्वरांकुश गुटी—

शु० फेनाश्म (श्वेत संखिया) १ माशा
कृष्ण मरिच २ तोला
अहिफेन (शुद्ध) १ तोला
कन्या (ग्वारपाठा) स्वरस २॥ तोला

निर्माण विधि—स्वच्छ खरल में शुद्ध संखिया डाल १-१ कृष्ण मरिच डालते हुए भली प्रकार मर्दन करें। एक दूसरे खरल में अहिफेन को ग्वारपाठा-

स्वरस में मर्दन करें। रस सूखने से पूर्व फेनाश्म-मरिच चूर्ण मिश्रित कर मूंग समान वटी बनालें। छाया में सुखा रखलें।

प्रयोग—विषमज्वर में—रेचन-क्रिया के पश्चात् तथा ज्वरवेग के ३ घण्टे पूर्व गरम जल से दें।

मात्रा—१ गोली। अतिसार-संग्रहणी में १-१ गोली दिन में दो बार दें। सगर्भा को नहीं देना चाहिए।

नोट—इसमें संखिया की मात्रा अधिक प्रतीत होती है अतएव चिकित्सकों की देख-रेख में उनके आदेशानुसार ही इस औषधि का प्रयोग करना चाहिए।

—सम्पादक।

४—ज्वरकेशरी—

शु० हिंगुल	१ तोला
शु० संखिया	१ माशा
शु. टंकण	१ तोला
कणा (पीपल)	१ तोला
जायफल	२ तोला

निर्माण विधि—प्रथम कणा (पीपल) व जायफल को वस्त्रपूर्ण करलें। फिर खरल में इस चूर्ण के साथ हिंगुल आदि शेष द्रव्यों को ४८ घंटे मर्दन करके मूंग समान गोली बनालें। छाया में सुखाकर रक्खें।

व्यवहार विधि—सान्निपातिक ज्वर, श्वास-कास, जीर्ण आमवात, उपदंशादि में उष्णदूध पीने के पश्चात् गरम जल से लें।

मात्रा—१-१ गोली दिन में दो या तीन बार।

निषेध—सगर्भा स्त्री तथा बालकों को प्रयोग नहीं करावें।

५—गदकुठार—

गुग्गुल	शुद्ध हीराहींग
नीम की गिरी	खुरासानी अजमाइन
गैरिक	एलवा (मुसब्बर)

—प्रत्येक समान भाग

निर्माण विधि—गेरू का वस्त्रपूत चूर्ण करलें। खुरासानी अजमाइन, शुद्ध हींग, निंबोली गिरी तथा एलवा को पृथक कूटकर चूर्ण करलें। गुग्गुल को बला क्वाथ द्वारा दोलयंत्र में शुद्ध कर आग पर पकावें, जब गुग्गुल गुड़-पाक की स्थिति में उपस्थित हो उसमें—उक्त चूर्ण मिलाकर ३ से ४ रत्ती की गोली बना-बना कर गैरिक चूर्ण में डालता जाय और हिलाता जाय। छाया शुष्क करलें।

व्यवहार विधि—

विबन्ध में—रात्रि को भोजन के २॥ घंटे बाद २ से ४ गोली दूध से लें।

ज्वर में—गरम पानी या दूध से।

उदर शूल, विशूचिका तथा आध्मान में—गरम पानी से।

अर्श में—शीताम्बु या मूली स्वरस से।

असृग्दर में—शीताम्बु या तण्डुलोदक से।

रजःकृच्छ्र में—इन्द्रायण क्वाथ से।

कृमि, उदरकृमि, पार्श्वशूल, दन्तशूल में—गरम जल से।

मात्रा—२-२ गोली दिन में २-३ बार दीजिये। ♦♦

(पृष्ठ ८६७ का शेषांश)

५ शीतांग सन्निपात—

सन्निपात की उस अन्तिम अवस्था पर जब हाथ-पैर ठंडे हो रहे हों, शीघ्र जादू सा असर करने के लिए यह प्रयोग करें—

लहसुन का रस   धतूरे पत्ते का रस
हींग असली   —ये तीनों १-१ माशे।

—इन तीनों को मिला लेप जैसा द्रव तैयार करें, अब इस द्रव को हाथ पैर के २० (बीसों) नाखूनों पर लगादें, इसके लगाने से शरीर में गर्मी और नाड़ी में बल आ जाता है, और वैद्य को एक बार ऊंची दवा देने का अवसर मिल जाता है। यह गुप्त प्रयोग है। ♦♦

अनुभवी चिकित्सक अपनी सम्मति दें।

बीमारी—नाक पर लाल रंग का चकत्ता (दाग) बढ़ना, व नासूर।

उम्र ३३ साल, शरीर मोटा, वजन १ मन ३५ सेर, फरवरी १६५४ ई० में नाक पर लाल रंग की त्वचा (चमड़ी) होने लगी, एलोपैथी डाक्टरों ने एकजीमा बताया और इसके नक्सोदम मलहम लगाने के लिये कहा गया। नक्सोदम करीवन १ माह से ज्यादा प्रयोग किया गया कोई फायदा न हुआ, फिर ददुहरअर्क व ददुहासव (धन्वन्तरि वर्ष २३ पृष्ठ ७४०) का भी प्रयोग किया गया। ददुहर मरहम से धूप की गर्मी से त्वचा जलने लग गई और फायदा न होने से वायोकेमिक साइलिसिया का प्रयोग से फायदा न होने से नैट्रमम्यूरियेटिकम २००×का सेवन व नैट्रमम्यूरियेटिकम २००× व साइलिसिया २००× की ११-११ टेवैलेट ४ औंस गर्म पानी से मिला कर रुई को भिगोकर नाक पर लगाने से १० दिन में बहुत हल्का दाग रहगया और दवा का प्रयोग वन्द कर दिया। सिर्फ बहुत ही गौर से देखने से हल्का दाग मालूम होता था। इस साल मार्च १६५५ में पुनः होगया है और साथ जुकाम भी जोर से हुआ। काफी कोशिश करने पर भी कोई फायदा न हुआ, जुकाम में तो कैल्केरिया फ्लुओरिया ६× व १२× का प्रयोग से ठीक होगया लेकिन नाक की त्वचा में कोई फायदा न हुआ, बहुत हल्की खुजली भी चलती है, नैट्रमम्यूर इत्यादि से अब फायदा न हुआ फिर डाक्टर को वताने पर एक मलहम सफेद रंग का लगाने के लिये, खाने के वास्ते गोली दी गई और कहा गया कि यदि दवा से आराम न होगा तो नाक का आपरेशन किया जावेगा, दवा से कुछ फर्क तो है लेकिन पूर्ण आराम होने की आशा नहीं है।

जुलाई ५४ में जीना से नीचे उतरते समय पैर रपट कर गिरने से मलद्वार के ऊपर और पीछे की तरफ जोर की चोट लगी। सीधा बैठ नहीं सकता था। १५-२० दिन गरम नमक से तो फायदा हुआ, एक महीने के बाद दर्द नहीं रहा चोट के स्थान पर नवम्बर के अंत में शोथ के गांठ होकर फूट गई, उस पर Emplastrum Resinae, Adhesive tape, जिंक Zinc oxide और तिल्ली का तेल का मरहम, डावर घारित मरहम, वायोकेमिक-साइलिसिया पानी में डाल करके रुई को भिगोकर नासूर पर बांधना, इसी तरह कैल्केरिया फ्लुओरिका, को भी बांधा गया, हलदी घृत को रुई के साथ गरम करके बांधना और खाने के लिये कैल्केरिया फ्लुओरिका ६× व १२×, कैल्केरिका सल्फ्युरिका ३०× व २००×, नैट्रम म्यूरियेटिकम २००× साइलिसिया १०००× कैलिम्युरियेटिकम १०००× का प्रयोग किया गया लेकिन अभीतक कुछ भी फायदा न हुआ है।

अब आपसे प्रार्थना है कि नाक पर लाल रंग की त्वचा का और नासूर पर क्या प्रयोग किया जाय सो सूचित करने की कृपा करें। यह दोनों बीमारियां एक ही व्यक्ति को हैं।

—श्री ग्राम सेवा संघ आयुर्वेदिक औषधालय
जवाजा (अजमेर)

१–बहता हुआ खून बंद करने की दवा

शरीर का कोई सा भी भाग कट जाय और खून निकले तो निम्नांकित योग रामबाण का कार्य करता है—

फिटकिरी	१ तोला
लाहौरी नमक	१ माशा
पानी	१० तोले

—फिटकरी और नमक को बारीक पीसकर पानी में मिला लिया जाय और शीशी में बन्द करके रक्खे। बहते हुये खून के स्थान पर इसमें रुई भिगोकर रखिये, तुरन्त बन्द हो जायगा।

२ – बिच्छू काटे पर—

कास्टिक सोडा	१ तोला
पानी	१० तोला

— सोडा को पानी में मिलाकर शीशी में बन्द कर लीजिये और जिस स्थान पर बिच्छू बर्र और ततैया काट खाये वहीं पर इसमें से रुई की फुरैरी भिगोकर काटे हुए स्थान पर लगादें, तुरन्त ठीक हो जावेगा।

योनि संकोचक—

गुलाबी फिटकरी	१ तोला
माजूफल	१ तोला

—पीसकर कपड़छन कर लीजिये। एक साफ मलमल के छोटे कपड़े में इतनी बड़ी पोटली बनाइये जिसमें लगभग ३ माशे उपरोक्त योग आजावे। शाम को सोते समय गुप्तांग में रख लीजिये। इससे योनि संकुचित होजाती है और प्रदर रोग भी नष्ट होजाता है।

—श्री रतनलाल वैद्य विशारद, रतन फार्मेसी,
नगला पृथ्वीनाथ (आगरा)

कामला पर—

तुख्म कासनी	५ माशे
सौंफ	५ माशे
किशमिश	१ तोला

विधि—ठंडाई की तरह रगड़ कर आध पाव पानी बनाकर प्रातः-सायं पीवें। १ सप्ताह में रोग समूल नष्ट हो जायगा।

अर्श (बवासीर पर)—

शुद्ध रसौत	५ तोला
मुरमकी गौंद	५ तोला
एलुवा	५ तोला

—सब चीजों को बराबर लेकर पत्ते-रहित मूली के द्विगुण रस में खरल कर चने से कुछ बड़ी बटी बना प्रातः-सायं ताजे पानी से निगले।

शंखद्राव (यकृतप्लीहा रोग पर)

शोराकलमी	नीलाथोथा
फिटकरी	कसीस हरा

—चारों २०-२० तोला।

—सब चीजों को कूटकर डमरूयन्त्र से द्राव बनाले। यकृत-प्लीहा उदरविकार की अमोघ औषधि है। इसमें लोहा व शंख द्रव होजाते हैं।

मात्रा—किसी आसव या पानी में मिलाकर १॥ माशा की मात्रा में भोजनोपरांत दें।

शीतपित्त तथा रक्तविकारों पर—

सौंफ	धनियां	२-२ तोला
त्रिफला		६ तोला
मकोय	चन्दन लाल	उसवा
ब्याहतरा	गोरखमुण्डी	सरफोंका
निसोथ	—आठों १-१ तोला।	

विधि—इन सब दवाइयों को ३ सेर पानी में रात को भिगोकर सुबह पकाकर तीन पाव शेष रहने पर छानकर बोतल में भर रखें। इसमें से आधपाव दवा ४ तोला शहद मिला प्रातः पीवे।

अग्नि से जलने पर—

तैल गोला	१० तोला
मोंम	२॥ तोला
सिंदूर	१ तोला,
जस्ता का फूला	१ तोला

विधि—प्रथम मोंम तैल में गरम कर सिंदूर व जस्ता छान कर मिलादें। जले हुये पर लगाने से बरफ की समान ठंडक पहुँचाता है। पकने नहीं देता, जल्द घावों को सुखा देता है। यह फकीरी मरहम आजमाइश शुदा है।

—वैद्य रामस्वरूप शर्मा दयालपुर
पो० भगवानपुर (सहारनपुर)।

नेत्ररोगनाशक प्रयोग

नेत्र ज्योतिवर्द्धक अर्क—

पलास (ढाक) की ताजी जड़ का वारुणी यन्त्र (भवके) द्वारा अर्क खीचलें।

नोट—जड़ में लगी मिट्टी को वस्त्र से पोंछकर छोटे-छोटे टुकड़े करके अर्क खीचलें। जल न मिलावें।

उपयोग—प्रातः-सायं १-१ बूंद डालने से उतरते हुए मोतियाबिन्द को रोकता और ज्योति बढ़ाता है।

तिमिरनाशक प्रयोग—

बच	हींग	सौंठ सत्व
सौंफ	—प्रत्येक २-२ तोला।	

—कूट-पीस कपड़छन चूर्ण करलें। २० तोला उत्तम शुद्ध शहद में भली प्रकार मिलाकर किसी कांच पात्र में बन्द कर तीन दिन धूप में रखें।

मात्रा—३-३ माशा प्रातः-सायं लें।

अनुपान—बकरी का दूध।

गुण—तिमिर रोगनाशक एवं नेत्रज्योतिवर्द्धक उत्तम प्रयोग है।

स्वदेशी आर्जिरौल—

शु० रसौत	२० तोला
उत्तम गुलाबजल	६० तोला

—दोनों को मिला २४ घण्टे रखा रहने दें। बाद में दो बार फिल्टर कर उपयोग में लावें।

व्यवहार विधि—प्रातः-सायं १-१ बूंद नेत्रों में डालना चाहिये।

गुण—दर्द करने वाली लाल आंखों के लिए उत्तम है। जलन शान्त करने तथा मोतियाबिंद के अतिरिक्त अन्य कारण से उत्पन्न दृष्टि की अस्पष्टता को दूर करने में विशेष उपयोगी है।

दृष्टिप्रद वटी—

ताजी चमेली पुष्प की कोमल कलियां
मिश्री (सितोपला) —प्रत्येक १०-१० तोला

—दोनों को भली भांति मर्दन कर बड़े बेर जैसी वटी बनालें।

व्यवहार विधि—किसी चिकने स्वच्छ पत्थर पर गुलाबजल की २ बूंद डालकर उक्त गोली थोड़ी घिसलें और अञ्जनवत् नेत्रों में प्रातः सायं लगावें।

गुण—समस्त नेत्ररोगों को नष्ट कर नेत्रज्योति बढ़ाता है।

श्वेतपुष्पा वटी -

जस्त-पुष्प (जसता का फूला) १ सेर को पानी १ सेर के साथ खरल में घोटें। इसे मलमल के बारीक कपड़े में छान लें। इसे ढंक कर रखदें। जब पात्र में जस्त नीचे बैठ जाय तब पानी को प्रथक कर नीचे बैठे हुए जस्त को सुखालें। अब इस सूखे जस्ता में–

चमेली पुष्प	५ तोला
बबूल का गोंद	३ माशा
काली हरड़	१ तोला
तुलसी पत्र	१ तोला
इलायचीदाना	३ माशा
पीपल छोटी	१ माशे

—इनका बारीक चूर्ण करके इस चूर्ण को तथा भीमसैनी कपूर १ तोला को उक्त जस्त में मिलाकर गुलाबजल के साथ १ दिन घुटाई करें और मटर जैसी गोली बनावें।

उपयोग—उक्त वटी जल के साथ घिसकर प्रातःसायं अंजनवत् लगाने से समस्त प्रकार के नेत्ररोग नष्ट होकर ज्योति बढ़ती है।

—वैद्य गनपतिलाल चुन्नीलाल भटनागर
नेत्ररोग विशेषज्ञ, भीलवाड़ा।

अर्श पर चमत्कारी प्रयोग—

अच्छी भांग का पञ्चाङ्ग चूर्ण	२॥ तोले
जमीकन्द सूखा	२॥ तोले
सफेद फिटकरी का फूल	१॥ तोले

—इन तीनों को महीन पीस चूर्ण बनालें। रात को सोते समय २ अञ्जीर आधा सेर गौदूध में औटाकर पीवें। और एक अच्छा पुष्ट प्याज लेकर उसको बीचों-बीच चाकू से खोकलाकर उसमें उपरोक्त भांग आदि के चूर्ण को उतना भर देवें तथा उसका मुंह बन्द करके चार कपर-मिट्टी दें। अग्नि के खीरों में पकावें जब देखें कि पक गया होगा तब कपर-मिट्टी को हटा जरा गरम-गरम अर्श के ऊपर रख पट्टी बांध लेवें। तथा प्रातः काल तक रक्खें। यह प्रयोग १ दिन करने से अर्श खूनी वेदनायुक्त ठीक हो जावेगा। यह प्रयोग मेरे लगभग १०० रोगियों पर आजमाया हुआ है।

—कविराज वैद्यरत्न प्रभुदत्त शर्मा आयुर्वेदाचार्य
दूधवाखारा (चूरू)।

वर्षाऋतु और सर्प–

वर्षाऋतु आई; सर्पराज भी निकले, हरे-हरे लहराते घास में अन्धेरे के समय अचानक ही खेत में गए किसान को तब पता लगता है जबकि विषधर जी सरसराहट करते हुए अपनी फुंकार से उसे जताते हैं कि मैं तुम्हें काट चुका हूँ चिकित्सा कराओ कांटे के ख्याल में मत रहना, फूं-फूं (सावधान!) जाओ। इस प्रकार सर्पविष से भारत में हजारों मानव काल का ग्रास बन जाते हैं। विषधारी के विष से बचाने के लिए निम्न योग प्रत्येक औषधालय के संचालक वैद्य को ग्रीष्मऋतु में ही तैयार करके रखना चाहिए। जनता जनार्दन के हित किसी सज्जन की देन है।

योग–

सर्प कैंचुली	२ रत्ती
दालचिकना	स्वेत सोमल
स्वेत घुंघची (रत्ती, गुञ्जा)	शिंगरफ
मैनशिल	नौसादर
तुत्थ	हरताल वर्किया
मुर्दासंग	लोटा सज्जी

—प्रत्येक एक-एक तोला

विधि—सबको अलग-अलग महीन पीसकर इकत्र करके शीशी में भरलें। आवश्यकता के समय दंश स्थान से ऊपर और नीचे उस्तरे से पच्छने लगाकर आठ चावल दवा भरदें, बाद में दंश स्थान पर जहां दवा भरी है अग्नि से ५-१० मिनट तक सेकें। रोगी को ३ घण्टे जल न पीने दें।

नोट—१ रोगी असाध्य हो तो २ रत्ती दवा घृत में मिलाकर चटादें।

२—यदि उपरोक्त औषधी को काले सर्प के विष की भावना दे ली जाये तो सर्पविष की अचूक औषधि बन जाती है।

नेत्ररोग पर—

योग—सफेद फिटकरी कलमी शोरा
जवाखार (यवक्षार) सोहागा
—प्रत्येक एक-एक तोला

—लेकर बारीक पीसलें, एक बड़ा गोल बैंगन वजन में छः छटांक या ८ छटाक, डण्डी की तरफ से गहरा टुकड़ा काटकर भीतर का गूदा निकालदें, उसमें औषध डालकर गूदा भरदें और किसी बड़े पात्र में उस बैंगन को एक सप्ताह बन्द पड़ा रहने दें। बाद में गूदे सहित औषधि निकालकर मसलें और साफ कपड़े से (या फिलटर पेपर से) छानकर शीशी में भरदें। आवश्यकतानुसार २ बूंद नेत्र में डालें।

गुण—यह औषधि रोहे, लाली और जाले-फोले के लिए अक्सीर है।

आनन्दकारी मिक्श्चर—

गर्मी के दिनों में जब रक्त उबाल खाकर किसी न किसी मार्ग द्वारा गिरने लगता है तब आप आनन्द-कारी मिक्श्चर सेवन कीजिये—

अर्क गुलाब	६ छटांक
अर्क सौंफ	४ छटांक
अर्क कासनी	२ छटांक
सत् मुलहठी (मधुयष्टि)	२ तोले
छोटी इलायची के बीज	१ तोला
सत् पोदीना (पिपरमेंट)	३ माशा

विधि—तीनों अर्क एक बोतल में भरदें; बाद में दूसरी औषधें महीन पीसकर अर्क में मिलादें। बस मिक्श्चर तैयार

मात्रा—½ औंस से १ औंस तक दिन में दो बार।

रोग—उदरशूल, खांसी, अर्श, रक्तश्राव, प्यास, गर्मी की थकान को हितकारी है।

—वैद्य कृष्णमूर्ति शर्मा "देवगुण"
आयुर्वेद भिषक्, भूषण, मादुरौ।

सिद्ध औषधियाँ

लेखक—श्री० दारोगाप्रसाद मिश्र व्याकरण-सांख्य-योगाचार्य, साहित्यशास्त्री,
प्रिन्सिपल-आयुर्वेद कालेज, मोतिहारी (चम्पारण)।

संग्रहणी—

संग्रहणी रोग पर यह दवा रामबाण है।

अफीम शुद्ध कलमीशोरा लौंग (लवङ्ग)
जाफर (जायफल) —प्रत्येक ३-३ माशा।

निर्माण—इन सबको पानी से महीन पीसकर सरसों के बराबर गोलियां बनाकर सुखाकर रखलें।

गुण-व्यवहार विधि—हजारों पखाना हों, इस गोली को चार-चार घण्टे पर अरवा चावल के धोवन १ तोला में घोलकर पिलावें। निश्चित लाभ करेगा। मैंने इसका नाम ग्रहणी मानमर्दन रस, रक्खा है। मेरे घर में इस दवा का प्रयोग भी १०० वर्षों से होरहा है। संग्रहणी रोगों पर मेरे घर में इसी दवा के बल पर ठीका लिया जाता है। मैं भी प्रयोग करता हूं। मेरे शिष्यगण भी इस दवा का प्रयोग कर रहे हैं, जिन्हें पूरी सफलता मिली है।

—क्रमशः

समाचार एवं सूचनाएँ

आयुर्वेद कालेज मोतिहारी में—

शास्त्री जी का स्वागत

पं० रामानन्द शास्त्री, एम० ए०, पट्शास्त्री का गद्य, पद्य रूप में आयुर्वेद के गम्भीर अंशों पर ता० ८-६-५५ को आयुर्वेद कालेज मोतिहारी में सुन्दर भाषण हुआ।

इस अवसर पर कालेज के आचार्य पं० दारोगाप्रसाद मिश्र, उपाचार्य पं० इन्द्रासन पाण्डेय साहित्यरत्न, जी० ए० एम० एस० (पैथियोलोजीष्ट पटना मेडिकल कालेज से) एवं डा० रामानन्द गुप्ता, ए० एम० एस, श्री पं० रमाकान्त मिश्र व्याकरण-साहित्यायुर्वेद धर्मशास्त्राचार्य साहित्यालङ्कार बी० ए० आदि प्रोफेसर गणों ने भी अपना मत प्रगट करते हुए शास्त्री जी का स्वागत किया।

श्री गणेश शर्मा, लक्ष्मीकान्त मिश्र, लाल बाबू गिरि, वैद्यनाथ मिश्र, नागेश्वर पाठक (मन्त्री) आदि छात्रों ने स्वागत में पूर्ण सहयोग दिखाया।

प्रवेश में सरलता

बम्बई सरकार से मान्यता प्राप्त 'शुद्ध आयुर्वेदिक' संस्था के छात्रों के सुविधार्थ प्रवेश-योग्यता में और अधिक सरलता कर दी गई है। एस० एस० सी० परीक्षा में बैठने वाला छात्र, जिसे संस्कृत में ४५ प्रतिशत् अङ्क प्राप्त होचुके हों अथवा एस० एस० सी० से कोई भी ऊंची परीक्षा एवं क्वीन्स-कालेज की प्रथमा परीक्षा पास कर चुका हो या इसके समकक्ष और कोई परीक्षा में उत्तीर्ण हो चुका हो, तो उसे इस पाठ्यक्रम में सम्मिलित किया जायगा। अब तक इस पाठ्यक्रम में प्रवेश करने के लिए एस० एस० सी० में बैठने वाले छात्रों के लिये संस्कृत में ५० प्रतिशत् अङ्क प्राप्त करना आवश्यक था।

मध्यभारत में आयुर्वेद चिकित्सा के विस्तार की योजना

मध्यभारत शासन ने आयुर्वेदिक चिकित्सा-प्रणाली के विस्तार के लिए द्वितीय पंचवर्षीय योजना का प्रारूप तैयार कर लिया है और उस पर योजनाकाल में ६० लाख रुपया व्यय करने का प्रस्ताव रखा गया है। योजनानुसार राज्य में विभिन्न स्थानों पर २०० नए आयुर्वेदिक दवाखाने खोले जाएंगे। इसी प्रकार ग्वालियर स्थित आयुर्वेदिक कालेज की विकास योजना भी तैयार की गई है जो इसी अवधि से कार्यान्वित होगी। आयुर्वेदिक फार्मेसी का पुनर्गठन करना, अनुसंधान कार्य को प्रोत्साहन देना आदि की योजना भी बनाई गई है तथा आयुर्वेदिक दवाखानों को अ, ब और स तीन श्रेणियों में विभाजित किया जाएगा।

बिना मस्तक बिना नाक के और एक आंख का बालक

कोटा। स्थानीय विक्टोरिया जनाना अस्पताल में एक मुस्लिम युवती के एक विचित्र बालक का जन्म हुआ, जिसके मस्तिष्क बिल्कुल नहीं तथा दोनों आंखों के बजाय बालक के सिर पर दोनों भौंहों के बीच में केवल एक ही आंख थी, एवं नाक नहीं थी। बालक के सिर पर एक-एक इञ्च लम्बे बाल थे। बालक पैदा होते ही मर गया। इस विचित्र बालक को कोटा शहर के काफी स्त्री-पुरुषों ने देखा तथा प्रकृति की इस लीला पर आश्चर्य प्रकट किया। बालक की मृत देह स्थानीय जनरल अस्पताल में एक कांच की बरनी में रखी हुई है। (हिन्दुस्तान)

श्री परशुरामपुरीया राजस्थान आयुर्वेद कालेज सीकर के

समाचार

प्रतियोगिता में सर्वप्रथम—

राजस्थान प्रान्तीय वैद्यसम्मेलन के अवसर पर बीकानेर में सम्पन्न आयुर्वेद कालेजों की वाद्-विवाद प्रतियोगिता में आयुर्वेद कालेज, सीकर के दो छात्रों—मणिमनोहर भारद्वाज तथा गोपालप्रसाद जोशी को क्रमशः सर्वप्रथम एवम् सर्वद्वितीय विजयी घोषित होने के उपलक्ष्य में सुवर्ण पदक तथा तीन रजत पदक प्राप्त हुए। तथा कालेज को स्वामी श्री. जयरामदास जी द्वारा स्व० आयुर्वेद मार्तण्ड स्वामी लक्ष्मीराम जी महाराज की स्मृति में चल-विजयोपहार के रूप में ५०० तोला चांदी की श्री धन्वन्तरि की सुन्दर प्रतिमा प्रदत्त की गई।

वैद्य श्री यादव जी का अभिनन्दन

श्री राजस्थान आयुर्वेद सोसायटी वम्बई तथा आयुर्वेद कालेज सीकर, ट्रष्ट के अध्यक्ष—आयुर्वेदोद्धारक भारत प्रसिद्ध श्री यादव जी त्रिकम जी आचार्य की हीरक जयन्ती के उपलक्ष्य में उनकी सेवा में ललित संस्कृत भाषामय अभिनन्दपत्र समर्पित किया गया।

राजकीय सहायता तथा मान्यता में वृद्धि

यह कालेज राजस्थान शिक्षाविभागीय सर्वोच्च उपाधि परीक्षा "भिषगाचार्य" पर्यन्त मान्यता प्राप्त कर चुका है। संस्था के कार्य से सन्तुष्ट होकर गतवर्ष राजस्थान सरकार ने ७५००) रुपया वार्षिक सहायता प्रदान की।

पुस्तकालय को सहायता

यह उल्लेखनीय है कि, बम्बई के सुप्रसिद्ध व्यवसायी सेठ राजाश्री मुकुन्दलाल जी, तथा राजा श्री गोविन्दलाल जी पित्ती की धर्मपत्नी सौ० शान्तीबाई तथा सौ० राजबाई पित्ती द्वारा कालेज के पुस्तकालय की अभिवृद्धि निमित्त २०२०) रु० प्रदान किया गया। तथा प्रतिवर्ष इसके उत्तरोत्तर विकास के लिए सहायता दी जाने का आश्वासन भी प्राप्त हुआ।

"ज्योत्स्ना" का प्रकाशन

इस वर्ष कालेजीय छात्र परिषद् की ओर से गोपालप्रसाद व शंकर शुक्ल के सम्पादकत्व में ज्योत्स्ना पत्रिका विशेषांक बड़ी सजधज से प्रकाशित किया गया।

अ. भा. आयुर्वेद विद्यापीठ परीक्षाकेन्द्र।

आयुर्वेद कालेज सीकर में संस्थापित विद्यापीठीय परीक्षाकेन्द्र में भारतभर के केन्द्रों की अपेक्षा सर्वाधिक परीक्षार्थी सम्मिलित हुए। परीक्षार्थियों के लिये निःशुल्क निवास जल व प्रकाश की व्यवस्था कालेज की ओर से की गई।

राजस्थान शिक्षाविभागीय आयुर्वेद परीक्षा केन्द्र भी इस वर्ष सीकर में स्थापित हुआ है आयुर्वेद की प्रयोगात्मक परीक्षायें आगामी वर्ष से इसी कालेज में सम्पन्न होंगी। सभी परीक्षाओं में यहां के छात्रों का परीक्षाफल सर्वोत्तम रहा है।

नवीन सत्र प्रारम्भ—

प्रतिवर्ष की भांति संस्था का नूतन सत्र ता० १ जुलाई से प्रारम्भ होता है। प्रवेशार्थी छात्रों को मुद्रित आवेदन पत्र जून में ही प्राप्त करके भेजने होते हैं। छात्रावास में—निवास, जल, रोशनी, आदि का निःशुल्क प्रवन्ध है। किसी प्रकार का शिक्षा शुल्क भी यहां नहीं लिया जाता। गरीब व सुयोग्य विद्यार्थियों को छात्रवृत्ति दीजाती है। अन्तिम-प्रवेशावधि ७ अगस्त तक है।

इस संस्था के सभी स्नातक राजस्थान आयुर्वेद विभाग विविध जिला वोर्ड तथा सार्वजनिक उच्च संस्थाओं में नियुक्त होकर सफलतापूर्वक राष्ट्रिय स्वास्थ्य सेवा कर रहे हैं।

—वैद्य प्रभुदत्त जी, प्रधानाध्यापक।

आयुर्वेद चिकित्सा पर

सरकार अधिक खर्च करे

अवसर मिलने पर वैद्य भी डाक्टरों की तरह दक्ष बन सकते हैं।

राजस्थान चिकित्सा पंजीयन बोर्ड के कार्यवाहक अध्यक्ष कविवर माधवप्रसाद शास्त्री ने यहां एक पत्रकार सम्मेलन में बताया कि राजस्थान में आयुर्वेद का स्थान अन्य प्रान्तों की अपेक्षा कम है। यहां प्रति आयुर्वेदिक औषधालय को आठ आना प्रतिदिन औषधि वितरण के लिये दिया जाता है जो कि एलोपैथी के अन्य अस्पतालों में होरहे व्यय से बहुत ही कम है। उन्होंने आयुर्वेद चिकित्सा के सम्बन्ध में बताया कि आयुर्वेद चिकित्सा स्थायी चिकित्सा है तथा आयुर्वेद में ऐसे रोगियों को भी ठीक करने की दवाइयां हैं जिन्हें एलोपैथी द्वारा भी ठीक नहीं किया जा सकता। अगर आयुर्वेदिक वैद्यों को अवसर दिया जाय तो वे एलोपैथी के डाक्टरों की तरह विशेषज्ञ बन सकते हैं। उन्हें प्रशिक्षण दिया जाय तो वे चीरफाड़ में भी दक्ष हो सकते हैं।

एक प्रश्न के उत्तर में उन्होंने बताया कि एलोपैथी और आयुर्वेदिक चिकित्सा के समन्वय से आयुर्वेद की प्रगति संभव नहीं। आयुर्वेदिक चिकित्सा और एलोपैथी चिकित्सा में मूलभूत अन्तर है। राजयक्ष्मा के सम्बन्ध में उन्होंने बताया कि बी. सी. जी. के टीके क्षय रोग को रोकने में पर्य्याप्त नहीं। आज धातु रोग के कारण राजयक्ष्मा अधिक फैल रहा है अतः हमें धातु सम्बन्धी रोगों को रोकने की अति आवश्यकता है।

राजस्थान चिकित्सा पंजियन बोर्ड के संबंध में श्री शास्त्री ने बताया कि बोर्ड राजस्थान के वैद्यों का पंजीयन (रजिस्ट्रेशन) करवाने में संलग्न है तथा वैद्यों के लिए एक व्यवस्थित पाठ्यक्रम भी बनाये जा रहे हैं ताकि विभिन्न तरह की आयुर्वेदिक परीक्षायें उत्तीर्ण करने वाले वैद्यों में भेदभाव न रह सके। बोर्ड ने अनुसंधानशाला खोलने की योजना भी सरकार के समक्ष रखी है। अगर सरकार आयुर्वेद चिकित्सा के सम्बन्ध में अधिक व्यय करना प्रारम्भ कर दे तो आयुर्वेद चिकित्सा के द्वारा लोगों को बहुत लाभ पहुँच सकता है।

श्री, शिवशर्मा जी का अभिनन्दन–

बम्बई में घटित वैद्यों की एक विशेष समिति शिवशर्मा अभिनन्दन समिति ने निश्चय किया है कि वैद्यरत्न श्री पंडित शिवशर्मा जी को, उनकी आयुर्वेद के प्रति की गई सेवाओं के लिए वैद्यसमाज की ओर से उनका सार्वजनिक स्वागत किया जाए। निकट भविष्य में यह शानदार समारोह बम्बई की महानगरी में होगा। सहयोग के इच्छुक वैद्य बन्धु संयोजक के पते पर पत्रव्यवहार करें।

संयोजक—

श्री० वैद्यरत्न पं० शिवशर्मा अभिनन्दन समिति
४१, कोलभाट स्ट्रीट, बम्बई नं० २

––मूलसुधार––

गत अङ्क ४ (अप्रैल १६५४) में परीक्षित प्रयोग स्तम्भ में प्रथम प्रयोग "सर्वज्वरों पर" प्रकाशित हुआ है। लेखक ने सूचित किया है कि उसमें भूल है। पाठक प्रयोग निम्न प्रकार बनावें—

शु. मनसिल छोटी पीपल १-१ भाग
नीम की निबौली कच्ची २ भाग

—इनको करेले के फल के रस में (केले का फल भूल से छप गया है) खरल करें और १-१ रत्ती की गोली बनावें।

मैट्रिक पास विद्यार्थियों को स्वर्ण अवसर

(Matric with Gen. Science or Sanskrit)
Five years Degree Course.

स्वतंत्र, सम्मानपूर्ण, लाभकारी, जनोपयोगी व्यवसाय आयुर्वेद की डिग्री B. I. M. S. (Bachelor of Indian Medicine and Surgery) सरकार द्वारा पूर्णतया मान्यता प्राप्त है। इसे पास करके आप सरकारी मैडिकल अफसर भी बन सकते हैं। समस्त एलोपैथिक औषधियों का भी उपयोग करने तथा सर्जरी करने का अधिकार प्राप्त कर सकते हैं।

बुन्देलखण्ड आयुर्वेदिक कालेज झांसी में

Dissection hall, Operation theatre, Laboratories, Hospitals, Botanical Gardens, Library, Hostels & Playgrounds etc, with special and elaborate tuitional arrangements for Dentistry, Opthalmology, Surgery, Injection & Research etc. का खास प्रबन्ध है।

यह कालेज भारत भर का एक मात्र सर्वाङ्गपूर्ण आयुर्वेदिक शिक्षा का केन्द्र है। B. I. M. S. degree Curse में प्रवेश पाने के लिए विद्यार्थी ११) रु० (प्रवेश तथा अध्ययन शुल्क) (एक मास का) भेजकर अपना स्थान सुरक्षित करावें। यदि छात्रावास में स्थान चाहिए तो ५॥) रु० एक मास का शुल्क भी भेजिए। योग्य विद्यार्थियों को अनेक सुविधायें (निःशुल्क, अर्द्धशुल्क, छात्रवृत्तियों आदि के द्वारा) दी जाती हैं। Scheduled and Backward class विद्यार्थियों को अनेक सरकारी छात्रवृत्तियां मिलती हैं। उत्तर प्रदेश सरकार तथा अन्य प्रदेशीय सरकारें भी बहुत सी छात्रवृत्तियां देती हैं।

Advanced English अथवा High School (Eng.) के साथ विद्या-विनोदिनी पास की हुई महिला छात्राएँ भी प्रवेश हो सकती हैं। प्रवेश ६ जुलाई से प्रारम्भ हो गया है। Prospectus तथा Admission form मंगाइए।

प्रधानमंत्री, बुन्देलखण्ड आयुर्वेदिक कालेज, झांसी।

आयुर्वेद छात्रों को वृत्तियां

श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि. के मालिकों के जन्मस्थान में स्थापित आयुर्वेद विद्यालय के १० छात्रों को १०) प्रतिमास की छात्रवृत्ति मिलेगी।

छात्र संस्कृत की मध्यमा या संस्कृत की विशारद पास हो व सच्चरित हों। जैपुर राज्य-वासी गौड ब्राह्मणों को प्राथमिकता दी जावेगी। विद्यालय में निवास और शिक्षा निःशुल्क है। विद्यालय ३० वर्ष से स्थापित है। निम्न पतेपर प्रार्थना पत्र लिखें—

पं० शिवनारायण जी जोशी विद्यालय
मु० पो० कांसली (वाया कोटपुतली)
जिला जयपुर।

नवीन पुस्तकें

इच्छाशक्ति ...	१।)
कैंसर रोग की चिकित्सा–रियायती मूल्य	५)
हरिहर-संहिता ...	८)
एलोपैथिक मटेरिया मैडिका (डा. शिवदयाल गुप्ता) ...	१२)
बबूल चिकित्सा विधान ...	।=)
नीम चिकित्सा विधान ...	॥=)
तुलसी चिकित्सा विधान ...	।=)
योगरत्नाकर (सटीक) २ भाग	१८)

अन्य पुस्तकों के लिए

चरक चिकित्सांक के अन्त में लगी पुस्तक सूची अवलोकन कीजियेगा।

पता—

धन्वन्तरि कार्यालय विजयगढ़ (अलीगढ़)

विशिष्ट विज्ञापन स्तंभ

स्वर्ण वसंत मालती नं० १

यह महौषधि स्वर्णभस्म, मुक्तापिष्टी, यशदभस्म, हिंगुल (इसके स्थान पर हम सि. मकरध्वज नं०१ डालते हैं) और मक्खन आदि का संयोग है। यह शरीर के प्रत्येक अंग को बल देती है और अनेक रोगों का नाश करती है। यह निरोग के लिये रसायन और रोगी के लिये फलप्रद है।

जीर्णज्वर, धातुगतज्वर, मस्तिष्क की निर्बलता, मंदाग्नि आदि दूर होने के बाद की कमजोरी, पांडुरोग, अन्त्रक्षय, राजयक्ष्मा, फुफ्फुसकला-शोथ, बाल-शोष, हृदय-रोग, धातुक्षीणता और खांसी आदि में विशेष लाभदायक है। यह जठराग्नि और धात्वग्नियों की परिपाक-क्रिया को सुधारकर उनकी विकृति से होने वाले सर्व रोगों को दूर करती है, और शरीर को बल-वर्णयुक्त और पुष्ट करती है। मस्तिष्क में स्फूर्ति और बल पैदा करना इसका विशेष कार्य है।

व्याधि के कारण शरीर अतिक्षीण और निर्बल हो जाता है, भूख नहीं लगती और पाचक रस की उत्पत्ति भी न होने के कारण अजीर्ण सा बना रहता है, जिससे रक्तादि धातु पुष्ट नहीं होने पाते। ऐसी अवस्था में स्वर्णवसंतमालती का सेवन करने से बहुत लाभ होता है, क्योंकि यह जठराग्नि को प्रदीप्त कर अजीर्ण को नष्ट करती है, पाचन क्रिया सुधार कर रसरक्तादि धातुओं को बल देती है, धीरे-धीरे कमजोरी दूर होने पर रोगी स्वस्थ और कान्तिपूर्ण हो जाता है।

राजयक्ष्मा की प्रथम अवस्था में सूखी खांसी, रस, रक्तादि धातुओं की क्रमशः क्षीणता होने से धीरे-धीरे कमजोरी होजाना आदि अवस्था में इसका सेवन करने से अच्छा लाभ होता है। अनुपान में प्रवालभस्म चंद्रपुटी, गुडूचीसत्व १-१ रत्ती मिलाकर आंवले के मुरब्बे के साथ दें।

पुराने रोग में इसका सेवन करने से निश्चित ही लाभ होता है। बालकों के हाथ-पैर छोटे और पेट बड़ा, केल्शियम की न्यूनता, अशक्त निर्माण और सूखा रोग में यह अच्छा फायदा पहुँचाती है।

बालक वृद्ध स्त्री सबके लिये, सभी ऋतुओं में और प्रत्येक प्रकार की प्रकृति-वाला इसे निर्भयतापूर्वक सेवन कर सकता है।

इसकी मात्रा १-१ रत्ती और चौसठ पहरापीपल २-२ रत्ती मधु में मिलाकर सुबह शाम दें या च्यवनप्राश के साथ दें। ऊपर से गाय का दूध दें।

नं० १—१ तोला का मूल्य २१) रु.। नं. २ (शास्त्रोक्त विधि से निर्मित)—१ तोला १२)

निर्माता—धन्वन्तरि कार्यालय विजयगढ़ (अलीगढ़)

औद्भिद् शास्त्र

(धारावाही लेख)

लेखक—
वैद्य महेन्द्रकुमार जी शास्त्री बी० ए० आयुर्वेदाचार्य
(Head of Ayurvedic Pharmacology Dept.)
आर० ए० पोद्दार मैडीकल कालेज, बम्बई ।

श्री० महेन्द्रकुमार जी शास्त्री बी० ए० आयुर्वेदाचार्य, बम्बई, धन्वन्तरि के पुराने एवं विद्वान लेखकों में से हैं । धन्वन्तरि के पाठक आपकी लेखनी का रसास्वादन समय-समय करते रहते हैं । आपने "औद्भिद् शास्त्र" नामक ग्रन्थ की रचना संस्कृत भाषा में की है । हमारे आग्रह से इसे हिन्दी में लिखकर धन्वन्तरि में लेखमाला के रूप में प्रकाशित करने के लिए प्रस्तुत किया है । इस ग्रंथ को हम धन्वन्तरि के प्रत्येक अङ्क के अन्त में ८ पृष्ठों में नियमित प्रकाशित करेंगे । इसकी पृष्ठ संख्या भी क्रमशः पृथक रहेगी, जिससे कि ग्रंथ पूरा होने पर हर अङ्क से १-१ फार्म निकाल कर पाठक पृथक जिल्द तैयार करा सकें । इस प्रकार कुछ समय में ही धन्वन्तरि के पाठकों को एक सुन्दर एवं उपयोगी पुस्तक अनायास ही प्राप्त हो जायगी ।

यह लेखमाला आधुनिक वनस्पति शास्त्र एवं आयुर्वेद में वर्णित वनस्पति-विज्ञान दोनों के आधार पर सरल भाषा में लिखी जारही है हमको विश्वास है कि पाठक इसे अवश्य पसन्द करेंगे । —सम्पादक ।

औद्भिद् शास्त्र
लेखमाला
के
लेखक
★

तदेव युक्तं भैषज्यं यदारोग्याय कल्पते।
स चैव भिषजां श्रेष्ठो रोगेभ्यो यः प्रमोचयेत् ॥ —च० सू० १-१३२.

भाग २९ अङ्क ८	धन्वन्तरि कार्यालय विजयगढ़ का मुखपत्र	अगस्त १९५५

महर्षि सुश्रुत का स्वास्थ्य-सूत्र

अति, स्त्रियं प्रयोगाच्च रक्षेदात्मान मात्मवान।
शूल, कास, ज्वर, श्वास, कार्श्य, पाण्डवा मय क्षया ॥

—अनुवाद—

मानव, अपनी तन-रक्षा-हित, करे न अति दारा-संभोग।
अधिक भोग से पड़े भोगना विविध व्याधियों का दुख-भोग ॥

क्षय, निर्बलता, दुखद ज्वर।
अति दुखदायक श्वांस ॥
शूल—वेदना शूलवत्।
औ' अति दुर्जर कास ॥

—श्री० सरयूप्रसाद भट्ट 'मधुमय'।

चरक चिकित्सा पर मेरे अनुभव

लेखक—प्राणाचार्य पं. हपु ल मिश्र प्रवीण बी० ए० (आनर्स) आयुर्वेदरत्न, बालाघाट।

चरक की चिकित्सा एक गहन सागर है। इस सागर को कोई अपने अनुभव की गागर में उतना ही भर सकता है जितना उसकी गागर में आसकता है। कहने का तात्पर्य यह कि चरक के चिकित्सा सागर से अपनी छोटी सी अनुभव की गगरी में, वर्षों के परिश्रम के बाद जो कुछ भर पाया है, वह इतना लघु है कि विशाल वैद्यजगत के समक्ष इसे उड़ेलने में संकोच होरहा है। महान् वैद्यों के महान् अनुभव के सामने मेरा अनुभव क्षुद्र और अकिंचन सा है। मेरा अनुभव जितना लघु है, उतना ही चरक की चिकित्सा का तथ्य महान् है। महा पुरुषों के अनुभव का अणु जहां मेरु से भी विशाल लगता है, वहां साधारण पुरुषों का मेरु सा विशाल अनुभव भी अणु से भी लघु होजाता है। मेरा अकिंचन अनुभव, इस लेख में, जिस तथ्य की ओर संकेत करता है, वह तथ्य चरक की चिकित्सा का अणुमात्र है, लेकिन हम सब वैद्यों के लिये गौरव की सामग्री है और महान् है, इसलिये चरक की चिकित्सा पर अपना अनुभव विनीत भाव से उपस्थित कर रहा हूं—

ज्वर की चिकित्सा

आयुर्वेद शास्त्र में ज्वर को 'सर्वरोगाग्रजो बली' कहा है, इसलिये सर्वप्रथम ज्वर की चिकित्सा में, मेरे द्वारा प्रयोग की जाने वाली चरक चिकित्सा पद्धति का वर्णन करता हूँ। संक्षिप्त में चरक की ज्वर-चिकित्सा के १२ प्रकार हैं:–१ लंघन २ पाचन ३ संशमन ४ वमन ५ विरेचन, ६ वस्ति ७ अंजन ८ नस्य ९ अभ्यंग १० उद्वर्तन ११ अवगाहन १२ परिषेक। स्नेहन, स्वेदन, धूप, धूम्रपान, शिरोवस्ति, शस्त्र-क्रिया, क्षारक्रिया, अग्निक्रिया, जलौका, शृंगी आदि कई चरकोक्त चिकित्सा पद्धतियां हैं, जिनका रोगानुसार चिकित्सा में प्रयोग किया जाता है। ज्वर के चिकित्सा प्रकारों में से भी अनेक प्रकार अन्य रोगों की चिकित्सा में भी उपयोग में लाये जाते हैं। उपर्युक्त १२ ज्वर-चिकित्सा प्रकारों के अतिरिक्त स्वेदन, शिरोवस्ति, शिरावस्ति, शस्त्रक्रिया, धूप, अग्निक्रिया, जलौका आदि का भी प्रयोग ज्वर चिकित्सा में होता है। ज्वर चिकित्सा ही ऐसी है, जिसमें चरक की अधिकांश चिकित्सा-पद्धतियों का सफलतापूर्वक प्रयोग किया जा सकता है। प्रधान व्याधी के रूप में ज्वर एक रोग है, परन्तु वास्तव में गौण व्याधियों के रूप में अनेक रोगों का समूह है। इसलिये ज्वर की चिकित्सा में चरकोक्त अधिकांश चिकित्सा-पद्धतियों का सुन्दर समन्वय होजाता है। इसलिए बानगी के रूप में ज्वर की चिकित्सा ही मैं पाठकों के सामने सर्व प्रथम रख रहा हूँ।

ज्वर के सौम्य आग्नेय लक्षणों को समझने की आवश्यकता–

ज्वर की चिकित्सा प्रारम्भ करते समय ज्वर के सौम्य और आग्नेय लक्षण अवश्य ध्यान में रखना चाहिए।

"वातपित्तात्मकः शीतमुष्णं वातकफात्मकः।"

अर्थात् वातपित्तात्मक ज्वर में सौम्य अथवा शीतल औषधि और उपचार करना चाहिए। वातकफात्मक ज्वर में उष्ण औषधि और उपचार करना चाहिए। चरकाचार्य इस बात को भी स्वीकार करते हैं, कि ज्वर की तीन प्रधान अवस्थाएं होती हैं×:–

× वातपित्तात्मकः शीतमुष्णं वातकफात्मकः।
इच्छत्युभयमेतत्तु ज्वरो व्यामिश्रलक्षणः॥
—च० चि० श्लो० ३४ अ० ३

(१) ज्वर की अधिकतम अवस्था जिसमें तीव्र संताप के प्रभाव से विकलता बढ़ती है, रक्तपित्त, प्रलाप, मूर्च्छा, श्वसनक पीड़ा, मन्यास्तंभ आदि उपद्रव होते हैं। (२) ज्वर की न्यूनतम अवस्था, जिसमें शीतगात्र के प्रभाव से हृदयावसाद, शीतल स्वेद-प्रवर्त्तन आदि उपद्रव होते हैं (३) ज्वर की क्षण क्षण में शीतोष्ण अवस्था, जिसमें ज्वर का तापमान प्रति क्षण घटता बढ़ता है। ज्वर की ये तीनों अवस्थायें उचित चिकित्सा के अभाव में प्रायः प्राणघातक होती हैं। स्वेदावरोध, स्वेद-प्रवर्त्तन, प्रलाप, मूकत्व, अतिसार-मलावरोध, रक्तपित्त-कफष्ठीवन, मूत्रप्रवर्त्तन, मूत्रावरोध, हिक्का-श्वास, कास, हृदस्पंदनवृद्धि, हृदयावसाद, उष्णगात्रता, शीतगात्रता, वमन, विरेचन, अङ्गमर्द-अङ्ग शिथिलता, तृष्णा, विकलता, तन्द्रा, मूर्च्छा आदि ज्वर के उपद्रव और गौण लक्षण हैं, जिन्हें हम चरक के मतानुसार ज्वर के सौम्य और आग्नेय लक्षण कह सकते हैं।

ज्वर की साम और निराम अवस्था—

जब दोष उत्तरोत्तर बढ़ते हैं अथवा बढ़कर उसी वेग से कुछ काल तक शरीर में स्थिर रहते हैं, तब रस रक्त आदि जीवनतत्वों को वहन करने वाले स्रोत दोषों से अवरुद्ध होजाते हैं, जिससे स्वेदावरोध हो जाता है। ज्वर का वेग उत्तरोत्तर बढ़ता है। आध्मान, अरुचि, अविपाक, हृदय में उष्णता, तन्द्रा-आलस्य, मुंह से लार गिरना, हृल्लास, क्षुधानाश, श्लेष्मा से लिपा हुआ मुख, अंग में स्तब्धता शिथिलता और भारीपन, बहुमूत्रता, अपक्व मल आदि लक्षण होते हैं। दोषों के बढ़ने की इस अवस्था का नाम सामज्वर है। इसके विपरीत जब दोष क्षीण होने लगते हैं तब भूख लगना, शरीर में हलकापन स्वेद-प्रवर्त्तन, ज्वर का तापमान कम होना, मन में उत्साह मालूम होना आदि लक्षण दिखाई देने लगते हैं। दोषों के घटने की इस अवस्था का नाम निरामज्वर है। चरकोक्त चिकित्सा पद्धति के सफल प्रयोग के लिये साम और निराम ज्वर के लक्षणों को विवेचनात्मक बुद्धि से समझने का प्रयत्न करना चाहिये। इसके बाद ज्वर का आदि मध्य और अंत काल को समझकर उपचार और औषधि की योजना करनी चाहिये।

ज्वर का आदि मध्य और अन्त काल—

जिस समय ज्वर चढ़ता है और तापमान उत्तरोत्तर बढ़ता रहता है, उस समय को ज्वर का आदि काल कहते हैं। जब ज्वर का तापमान चढ़ता उतरता नहीं स्थिर बना रहता है, तब उसे ज्वर का मध्य काल कहते हैं। जब दोष क्षीण होजाते हैं और ज्वर क्रमशः उतरने लगता है, तब उसे ज्वर का अंतकाल कहते हैं। जब ज्वर छोड़ देता है और शरीर का तापमान स्वाभाविक होजाता है, तब उसे ज्वर की मुक्तावस्था कहते हैं।

क्रमशः ज्वर की आदि मध्य अन्त और मुक्तावस्था के अनुसार ही मैं चरक-चिकित्सा-पद्धति का प्रयोग करता हूँ। जिस ढंग से मैं उसका प्रयोग करता हूँ उसी ढंग से मैं वैद्य बन्धुओं के समक्ष विवेचनार्थ रख भी रहा हूँ :—

लंघन चिकित्सा—

> ज्वरे लंघनमेवादावुपदिष्टमृते ज्वरात्।
> क्षयानिलभयक्रोध कामशोक श्रमोद्भवात् ॥१३४॥
>
> —च. चि. अ. ३

ज्वर के आदि में लंघन करना हितकर है किन्तु क्षय ज्वर, वातज्वर, क्रोधज्वर, कामज्वर और शोकज्वर में लंघन नहीं कराना चाहिये। ज्वर के आदि काल में लंघन कराने से बिना किसी औषधि के शरीर ज्वररहित होकर हल्का मालूम होने लगता है और भूख मालूम होने लगती है। लंघन चिकित्सा करने के पहिले लंघन का शास्त्रीय आशय क्या है समझ लेना आवश्यक है। लंघन का अर्थ है:—

"शरीर लाघवकरं यद्द्रव्यं तल्लंघनं प्रोक्तम्"

शरीर को हलका करने वाले जो द्रव्य हैं, उनका प्रयोग लंघन कहलाता है। अन्न अथवा स्वाभाविक भोजन का अभाव और लाघवकर द्रव्यों का सुखावह प्रयोग ही वास्तविक लंघन है। पोषण तत्वों से

रहित रख कर रोगी को भूखा रखना लंघन नहीं है, प्रत्युत लंघन का दुरुपयोग है। वातज्वर जीर्ण-ज्वर आदि में लंघन से रूक्षता बढ़ती है, जिससे रोगी लंघन सहन नहीं कर सकता, इसलिये वात-प्रधान ज्वरों में रोगी को लंघन नहीं कराना चाहिये। हमारे अनुभव के अनुसार शरीर लाघवकर द्रव्यों के नियमित और सीमित प्रयोग के साथ ज्वर के आदि काल में लंघन कराने से रोगी शीघ्र ज्वर से मुक्त हो जाता है। लंघन के समय मीठे अनार, सेव, द्राक्ष, मुसम्मी आदि फलों के रस, खजूर का यूष, फटे हुए दूध का निर्मल जल। गरम क्वाथ्यमान जल तथा समय यथा मात्रा में शरीर लाघवकर द्रव्यों के रूप में प्रयोग करना चाहिये। इस प्रकार लंघन चिकित्सा करने से अति लंघन के प्रतिक्रिया की संभावना नहीं रहती। वातकफज्वर में केवल गरम जल पिलाकर लंघन कराना पर्याप्त है, परन्तु पित्त-ज्वर में नागरमोथा, पित्तपापड़ा, खस, चन्दन, नेत्र-वाला और सोंठ से सिद्ध किया हुआ क्वाथ्यमाण शीतल जल पिलाना चाहिये। धान की लाई का जल, ज्वरनाशक फलों (जैसी खजूर, आलूबोखारा अंजीर द्राक्ष आदि) के क्वाथ वा रस में मिश्री और शहद मिलाकर तर्पण (शर्बत) के रूप में तृष्णा लगने पर चम्मच से नियमित और सीमित मात्रा में यथाकाल पिलाना चाहिये। तर्पण एक बार में इतनी कम मात्रा में पिलाना चाहियें कि वह पाचन-प्रणाली में पहुंचते ही शोषित होजाय।

लंघन चिकित्सा के साथ साथ दोषों को पाचन करने वाली चिकित्सा—

जब ज्वर स्थिर होजाय ज्वर का तापमान घटना और बढ़ना बंद होजाय, तब दोषों को पाचन करने वाली चिकित्सा प्रारंभ करना चाहिये। मुनक्का अनार, खजूर और चिरौंजी के समान भाग क्वाथ की १० तो० से २० तो० की मात्रा में आधी मिश्री मिलाकर तर्पण बनालें, फिर इस तर्पण को तीव्र ज्वर में चम्मच से यथाविधि न्यूनतम मात्रा में प्रति घंटे के अन्तर से पिलाने से ज्वर वेग कम होने लगता है। इसके पीते ही शरीर में हलकापन और शांति मालूम होने लगती है। अतिसारयुक्त पित्तज्वर में अनार २॥ तो० स्वरस में मधु १। तोला मिलाकर पिलाने से अतिसार और ज्वर दोनों का वेग शांत होजाता है। धानकी लाई के १० तोला पेया (पेज) में २ रत्ती सोंठ २ रत्ती पिप्पली १ माशा सेंधव का चूर्ण मिलाकर पिलाने से ज्वर का सम्यक् पाचन होता है। बच्चों को आधी मात्रा।

ज्वर की अंतिम अवस्था में संशमन चिकित्सा—

जब ज्वर का वेग कम होने लगे, तब समझना चाहिये कि ज्वर का अब अंतिम समय आगया। ज्वर के अंत में कोई भी ज्वरनाशक क्वाथ या औषधि का प्रयोग करें। चिरायता, कुटकी, नागरमोथा पित्तपाड़ा, अमृता सबको समान भाग लें सब कूटकर क्वाथ विधि से क्वाथ बनालें। मात्रा—बच्चों के आधा तोला से १ तोला, बड़ों को २ तोला। इसक प्रयोग बार-बार आक्रमण करने वाले ज्वर में करने से ज्वर तुरन्त रुक जाता है। अतिसारयुक्त ज्वर में इसी क्वाथ में कुटकी निकालकर, इन्द्रयव अथव बिल्व मिलादें। ज्वर के मध्यकाल में दिये जाने वाले तर्पण जब भलीभांति पचने लगें और दोष क्षीण होने लगें अथवा सामज्वर निरामज्वर होने लगे अथवा ज्वर शनैः शनैः किन्तु उत्तरोत्तर कम होने लगे, तब चरक के मतानुसार वात या वातकफ ज्वरी को मुद्गयूप शुंठी और सैंधव के साथ, पित्त ज्वरी या ज्वरातिसारी को मसूर यूप में इन्द्रयव चूर्ण जीरा और थोड़ा सेंधव या शर्करा बुरककर कुनकुना पिलाना चाहिये। वातपित्तज्वर में गोदूध में इन्द्रयव चूर्ण और सर्करा बुरकाकर पिलाना चाहिए। सुंठी और सर्करा भी बुरकाकर दूध पिलाया जा सकता। दूध को सुपाच्य करने के लिये, उबलते हुए दूध में उबलता हुआ समानभाग जल मिलाना चाहिए और यथा समय यथा मात्रा में कुनकुना करके धीरे धीरे पिलाना चाहिये। दुर्बल रोगी को लिटाकर धीरे धीरे चम्मच से समस्त पेय पदार्थ पिलाना चाहिये। इस विधि से पिया हुआ पेय

आमाशय में यथाविधि और यथासमय रहकर आमाशय के पाचन रसों को प्राप्त कर क्लेदित अवस्था में पक्वाशय में पहुँचता है। वहां भी यथा-समय उसका परिपाक होजाता है और उससे यथा विधि शरीर को पोषण तत्व प्राप्त होते हैं। बहुतसा पेय या पथ्य रोगी को एक दम पिलाने और खिलाने से आहार का पाचन और उससे पोषण तत्वों की शरीर को प्राप्ति यथा विधि नहीं हो पाती और रोगी की पाचकाग्नि एकदम नष्ट हो जाती है। जिससे अनेक उपद्रव होने की संभावना रहती है।

आमातिसार को ज्वर सहित तीन दिन में आराम करने वाली पेया–

बेल की गिरि, बला, तंतडीक, बेर का चूर्ण, पृष्ट-पर्णी, शालपर्णी सब एक एक तोला, जल एक सेर। क्वाथ करने के बाद अवशिष्ट जल एक पाव। इस पेया में थोड़ा सेंधव बुरक कर धीरे धीरे थोड़ा थोड़ा पिलाना चाहिये। बड़ों को प्रति बार में ५ से १० तो० तक, बच्चों को २॥ तोला से ५ तोला तक कुनकुना पिलाना चाहिये। अधिक से अधिक यह पेया ६ घंटे के अंतर से दिन में दो बार देना चाहिये। ×

अतिसारयुक्त पित्तज्वर में खट्टे अनार के २॥ तोला स्वरस में सवा तोला शहद मिलाकर पिलाने से अतिसार का वेग तुरन्त कम हो जाता है, साथ ही दाह भी शांत हो जाती है, तृष्णा और विकलता कम हो जाती है। इस तर्पण (शर्बत) का प्रयोग ज्वर की मध्य और अंत दोनों अवस्थाओं में बार-बार किया जासकता है।

ज्वर की अन्तिम अवस्था में पुराने चावलों की पेया अथवा मण्ड में मुनक्का ५ दाना, पीपलामूल २ रत्ती, चव्य २ रत्ती, सोंठ २ रत्ती, आंवला ४ रत्ती सेंधव १ माशा का महीन पिसा हुआ कल्क (चटनी) मिलाकर पिलाने से ज्वरी के शरीर को उत्तम पोषण तो मिलता ही है साथ ही उसकी पाचकाग्नि प्रदीप्त होती है और मल विसर्जन खुलकर होता है। विषम-ज्वर अथवा मंथरज्वर में अतिसार होने पर मसूर के यूष में बिल्व या इन्द्रयवचूर्ण और सेंधव बुरक कर पिलाना चाहिये। इस पथ्य से ज्वरोत्पन्न अतिसार और अधोगत रक्तपित्त अथवा रक्तातिसार तुरन्त रुक जाता है।

औषधि–

ज्वर को शमन करने के लिये आयुर्वेदोक्त ज्वर नाशक क्वाथों का प्रयोग करना चाहिये। जैसे कफ-ज्वर पर भूनिंबादिक्वाथ, पित्तज्वर में द्राक्षादिक्वाथ, वातज्वर पर अमृतादिक्वाथ, सन्निपातज्वर में अष्टादशाङ्गक्वाथ, ज्वरातिसार पर नागरादिक्वाथ, कासयुक्त ज्वर पर वासादिक्वाथ, प्रसूतिज्वर पर देवदार्व्यादिक्वाथ, शीतज्वरों पर क्षुद्रादिक्वाथ, वात कफज्वर, सन्निपातज्वर, श्वसनक पीड़ा, मोतीझरा, निमोनियां,इन्फ्लुएंजा(टाइफाइड,आदि में दशमूलादि क्वाथ का प्रयोग चरक-चिकित्सा पद्धति के अनुसार ज्वर की अन्तिम अवस्था में ज्वर को शांत करने के लिये सफलतापूर्वक किया जासकता है। उपर्युक्त समस्त क्वाथ शार्ङ्गधरोक्त हैं। चरकाचार्य ने विषमज्वर नाश करने के लिये, जिन पांच क्वाथों का वर्णन किया है, उन क्वाथों के लगभग सभी द्रव्य उपर्युक्त क्वाथों में आजाते हैं, इसलिये हमने अपनी चिकित्सा में उनका स्वतंत्र उपयोग नहीं किया है। हां मन्थरज्वर में हम चरक का सन्निपात ज्वरनाशक बृहत्यादिक्वाथ नियमपूर्वक प्रयोग करते हैं। हम इस क्वाथ का प्रयोग ज्वर की मध्यावस्था और अंतिम अवस्था दोनों में करते हैं। इस क्वाथ के मिलते रहने से मंथरज्वर (आंत्रज्वर-टाइफाइड) या कोई भी मर्यादित सन्निपात ज्वर बिगड़ने नहीं पाता। ज्वर की दाह और दोषों का पाचन यथा क्रम से होता है। ज्वर की हालत में चिरायता, नागरमोथा, गिलोय, पाठा, खस और सुगन्धबाला का समान भाग का क्वाथ बच्चों को आधा तोला

× पिबेत्सबिल्वां पेयां वा ज्वरे सपरिकर्त्तिके।
बलावृक्षाम्लकोलाम्ल कलशी धावनी शृताम्॥
—च. चि. अ. ३।१८०

और वयस्कों को एक तोला से दो तोला तक प्रति तीन चार घंटे के अन्तर से पिलाने से ज्वर का वेग क्रमशः कम होकर ज्वर निश्चयपूर्वक उतर जाता है। यही काढ़ा चलता रहे तो ज्वर का आक्रमण भी रुक जाता है।

(४) वमन चिकित्सा

वमन—कफज्वर तथा वात-कफज्वर (निमोनिया-बच्चों का डब्बा-उल्फुक्षिका) में जब दोष अत्यन्त बढ़े हुए हों श्वसनक पीड़ा हो और रोगी जरा बलवान हो तो उसे वमन कराना चाहिए। लंघन की अवस्था में वमन नहीं कराना चाहिए और न दुर्बल रोगी को ही वमन कराना चाहिए। मैनफल का चूर्ण १ माशा से ३ माशा तक रोग और रोगी के बलाबल के अनुसार मिश्री और गरम जल के साथ पिलाने से वमन होकर सारे दोष बाहर निकल जाते हैं। बच्चों के आक्षेपक ज्वर में भी वमन-चिकित्सा लाभप्रद हैं। बच्चों को ज्वर में वमन करने के हेतु, हम उशारे-रेवन्द की आधा रत्ती से एक रत्ती की मात्रा देते हैं। जहां रोगी को तुरन्त लाभ पहुँचाना होता है और बढ़े हुए दोषों को तुरन्त शरीर से बाहर करने की आवश्यकता होती है, तभी वमन या विरेचन कराना श्रेयस्कर है। लंघन के अभाव में वमन और विरेचन कराया जाता है। वमन कराने के पहिले रोगी को थोड़ा कुनकुना दूध पिला देना चाहिए इसके बाद वमन की औषधि सेवन कराना चाहिए। ज्वर में अधोगामी रक्तपित्त होने पर वमन कराते ही रक्तपित्त रुक जाता है।

(५) विरेचन चिकित्सा

पित्तज्वर अथवा वातपित्तज्वर में अथवा जब ज्वर में आग्नेय लक्षण प्रधान हों और ज्वर किसी प्रकार न कम होता हो, दोष प्रतिलोम होरहे हों और रोगी बलवान हो तो ज्वर की मध्यमावस्था में जब ज्वर के चढ़ने का क्रम रुक गया हो किन्तु ज्वर उतरता न हो तो रोगी को निशोथ का चूर्ण ३ माशा से ६ माशा तक घृत और शहद के साथ चटाना चाहिए। इससे विरेचन होकर वायु अनुलोम हो जाती है और सब विकार बाहर निकल जाते हैं। विषमज्वरों में तथा साधारण ज्वरों में बलवान रोगी के लिए ही विरेचन का प्रयोग करना चाहिए, ज्वर की हालत में विरेचन नहीं देना चाहिए। ज्वर उतरने के बाद ज्वर की मुक्तावस्था में विरेचन अवश्य देना चाहिये। इससे परिपक्व दोष बाहर निकल जाते हैं। आध्मान, मलावरोध, अजीर्ण और उदरशूल में वायु को अनुलोम करने के लिए विरेचन का प्रयोग तत्काल लाभप्रद है। ज्वर में ऊर्ध्वगामी रक्तपित्त होने पर, 'विरेचन चिकित्सा' रक्तपित्त को रोकती है।

(६) वस्ति चिकित्सा

मंथर ज्वर (टाइफाइड) में मर्यादित सन्निपात ज्वर में, अत्यन्त तीव्रज्वर में सामज्वर में, जब रोगी को वमन विरेचन की औषधि सेवन कराकर वमन और विरेचन करना सरल नहीं मालूम होता अथवा रोगी अत्यन्त दुर्बल होने के कारण वमन-विरेचन के योग्य नहीं समझा जाता, तब शरीर के मलों को बाहर निकालने के लिए वस्ति (इनेमा) का प्रयोग किया जाता है। चरक की चिकित्सा पद्धति में वस्ति का सर्वोपरि स्थान है। चरक के मतानुसार ही हम उपर्युक्त ज्वरों में गरम दूध की निरूहणवस्ति और दोषघ्न औषधियों से सिद्ध किये हुए तैल या घृत की अनुवासन वस्ति प्रयोग करते हैं। कभी-कभी चरकोक्त औषधि सिद्ध तैल और घृत के अभाव में हम आधुनिक ग्लिसरिन का अनुवासन वस्ति में प्रयोग करते हैं।

अनुवासन वस्ति के लिए, अनुभूत औषधि सिद्ध तैल या घृत-

+पटोल, नीम की छाल, गिलोय, मुलहठी और मैनफल के समान भाग से बने चतुर्थांश अवशिष्ट क्वाथ में तिल तैल या घृत डालकर तैल या घृत विधि से क्वाथ को पकाकर तैल और घृत सिद्ध कर लीजिए,

---

+पटोल पिचु मन्दाभ्यां गुडूच्या मधुकेनच।
मदनैश्च घृतः स्नेहो ज्वरघ्नमनुवासनम्॥

फिर इनको थोड़ा गरम करके अनुवासन वस्ति में प्रयोग करिए, बच्चों को १ औंस से २ औंस तक, बड़ों को २ औंस से ४ औंस तक। ज्वर में प्रायः मूत्रावरोध हो जाता है। मूत्र मूत्राशय में संचित होता रहता है। किन्तु वायु के प्रतिलोम होने से मूत्र विसर्जन नहीं होता। उस समय उत्तर वस्ति (कैथेटर) जननेन्द्रिय अथवा लिंगेन्द्रिय द्वारा प्रविष्ट कर मूत्र विसर्जन कराया जाता है। यह उत्तरवस्ति उस समय कुछ काम नहीं करती, जब वृक्कमूत्र करना बन्द कर देते हैं और मूत्र की थैली में मूत्र नहीं उतरता। उस समय मूत्रल औषधि का प्रयोग करना चाहिए।

नोट—ज्वरी के लिए सर्वोत्तम मूत्रल औषधि-लशुन-स्वरस १। तोला और शहद १। तोला दोनों को मिलाकर नित्य पिलाते रहने से मूत्रावरोध कदापि नहीं होता।

(७) अञ्जन चिकित्सा
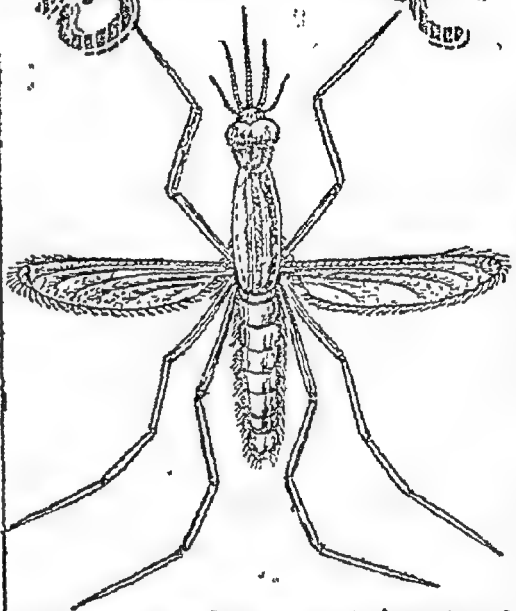
चरकाचार्य ने आंखों में अञ्जन आंजकर विषम-ज्वर अच्छे करने की व्यवस्था दी है। हमने भी अपनी चिकित्सा में इन अञ्जनों का चमत्कार देखा है। चरक की अञ्जन-चिकित्सा को आधार मानकर हम अपने तीव्र विषमज्वर के रोगियों पर अर्धनारी-नटेश्वर अञ्जन प्रयोग करते हैं। चरकोक्त "सैंधवं पिप्पलीनाञ्च तण्डुलाः समनःशिला। नेत्राञ्जनं तैल पिष्टं शस्यते विषमज्वरे" के अनुसार सेंधा-नमक, मधु, पिप्पली के कण, मनःशिल इनको तिल के तैल में खूब महीन मर्दन करके आंखों में आंजने से पारी से आने वाला विषमज्वर अवश्य आराम होजाता है किन्तु अर्धनारीनटेश्वररस में यह चमत्कार है कि आप इस अञ्जन को यदि रोगी के दाहिनी आंख में आजेंगे तो ज्वर शरीर के दाहिने अङ्ग में तुरन्त कम मालूम होने लगेगा। दोनों आखों में लगाने से ज्वर निश्चयपूर्वक उतर जायगा। यह अर्धनारीनटेश्वर रसराजसुन्दर ग्रन्थ का है। ज्वराधिकार में देखें।

(शेष आगामी अंक में)

विशूचिका

लेखक—आयुर्वेदाचार्य वैद्य पं० जगदीशप्रसाद पासीरिया, बडनेरा।
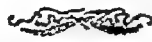
इस रोग में वायु प्रकुपित होने पर उदर में सुई से वेधन के समान पीड़ा होती है इसी लिये इस रोग को विद्वानों ने विसूचिका कहा है। यथा—

विविधैर्वेदनाभेदैर्वाय्वादिभृशकोपतः ।
सूचिभिरिवगात्राणि भिनत्तीति विसूचिका ॥

इस रोग को पाश्चात्य भाषा में Cholera कॉलरा एवं लोक भाषाओं में महामारी, हैजा, पटकी कहते हैं।

यह रोग प्रायः ग्रीष्म, वर्षा, कचिद् शरद् के पूर्वार्द्ध में, अस्वच्छ स्थानों में, अशिक्षित समाज में, भोजन पर भोजन करने से, अस्वच्छ जल के पीने से एवं (महामारी के समय) विसूचिका के प्रकोप के समय आहार-विहार में असावधानी रखने से होता है।

यह रोग दो प्रकार से होता है–एक अजीर्ण जन्य और दूसरा दूषित जल वायु द्वारा विसूचिका के जन्तु शरीर में प्रवेश कर जाने से होता है। इस रोग के कीटाणुओं को Becillus Spirillum वेसिलस स्पिरिल्यम् कहते हैं। इस कीटाणु की आकृति कोमा (,) इस चिह्न के समान होती है इसलिये इसको Becillus coma भी कहते हैं।

इस रोग में मूर्च्छा अतिसार वमन प्यास शूल भ्रम हाथ-पैर टूटना उवासी दाह मालिन्यता कम्प हृदय में वेदना और शिरःशूल इत्यादि लक्षण प्रतीत होते हैं।

अजीर्ण से होने वाले विसुचिका का रूप मंद होता है। परन्तु जो विसूचिका किटाणुजन्य होता है वह अति भयङ्कर संक्रामक जानपदिक तीव्रगति से बढ़ने वाला और मारक होता है। यह कीटाणुजन्य विसूचिका बलवान् मनुष्यों को एवं अच्छे स्वच्छ स्थान में रहने वाले को भी इस रोग के कीटाणुओं को प्रवेश मिल जाने से हो सकता है। यदि रोगाक्रान्त की शक्ति सवल होगी तो रोगजन्य कीटाणु नष्ट होजाते हैं। कभी-कभी अन्तर शक्ति कीटाणुओं के अधिक प्रावल्य से नष्ट होजाती है और रोग अपना आक्रमण कर लेता है।

अजीर्णजन्य विसूचिका में वमन अतिसार अधिक होने पर भी शक्ति का विशेष ह्रास नहीं होता है एवं मूत्रावरोध भी नहीं होता है। किन्तु कीटाणुजन्य विसूचिका में शक्ति का ह्रास ६-७ घंटे में सहसा होजाता है। उष्णता कम होजाती है मूत्रावरोध होजाता है, आवाज बैठ जाती है।

कीटाणु क्षुद्रान्त्र की श्लैष्मिक कला को विकृत कर उदर में बढ़ जाते हैं। रोगी के मलमूत्र और वमन में कीटाणु अत्यधिक मात्रा में पाये जाते हैं मक्खियां रोगी के मल और वमन पर बैठ कर रोग के कीटाणुओं को दूसरी जगह खाने पीने के स्थान पर पदार्थों में पहुँचा देती है जिससे कि स्वच्छता न रखने वाले निरोगी मनुष्यों को सहसा यह रोग होजाता है। जब कभी कहीं पर जनसमूह का मेला कई दिनों का लगता है तो वहां यह रोग गन्दगी के कारण शुरू होकर धीरे धीरे बड़ा रूप धारण कर लेता है। वहां से जब मुसाफिर लोग अपने-अपने गांवों को जाते हैं तो कपड़े पर भी जीवित रहने वाला विसूचिका का कीटाणु उन गांवों में पहुँच जाता है। इसी तरह से यह मारक रोग एक घर से दूसरे घर में एवं एक गांव से दूसरे गांव में फैल जाता है।

इस रोग का चयकाल कीटाणु प्रवेश से लेकर १२ घंटे से १५ दिन तक का माना जाता है। किन्तु

जब यह रोग फैल रहा हो तो उन दिनों में इस रोग का चयकाल तीन दिन से अधिक नहीं होता है।

इस रोग की तीन अवस्थाएँ हैं—आक्रमणावस्था, पतनावस्था और तीसरी प्रतिक्रियावस्था, जिनके अलग-अलग लक्षण निम्न हैं।

आक्रमणावस्था—यह अवस्था प्रथम अतिसार, जीभ चलाना, वमन और प्यास से शुरू होती है। अतिसार प्रथम पीले रंग के पतले आते हैं, बाद में पतले और सफेद होते हैं, फिर जल्दी जल्दी सड़े हुए मांस की दुर्गन्धी जैसे होते हैं। वमन द्वारा भी प्रथम आमाशयिक रस फिर चुद्रान्त्र के पित्त आदि द्रव पदार्थ निकलते हैं। फिर तीन घंटे बाद इस वमन का रंग भी चावल के धोये पानी के समान होता है। अतिसार और वमन में जो श्वेत रंग का द्रव पदार्थ है वह श्लैष्मिक-कला के परमाणु हैं।

विसूचिका के प्रकोप काल में इस रोग का निर्णय होना अति सरल है परन्तु प्रवाहिका, अतार्ह के वमनातिसार और सोमल, पारद विषविकार से भेद करना कठिन होजाता है। ऐसे समय में मल-परीक्षा के बिना निर्णय कठिन होता है। किन्तु इस रोग में मूत्रक्षय होजाना यही एक प्रबल पहिचान है।

वमन और अतिसार में जैसे जैसे द्रव पदार्थ निकलता जावेगा वैसे वैसे रक्त काला और गाढ़ा होता जावेगा। रक्त का आपेक्षिक घनत्व (१,५५ से बढ़कर १,६५ तक होजाता है। इसी लिये वृक्कों में मूत्र का बनना बन्द होजाता है और रस रक्त मांस मेदादि सप्तधातुयें शुष्क होती जाती हैं।

नाड़ी की गति अशक्त, श्वासप्रश्वास में तीव्रता, अति तृषा, अङ्गमर्द, जंघा में पीड़ा होना, नेत्र लाल या विशेष श्वेत होना, बल का क्षय होजाना, पेट में दर्द होना, बाहर से शीतता एवं आन्तरिक उष्णता का बढ़ जाना, तापमान बगल में देखा जाय तो ९५ डिग्री से कम मालूम होता है। गुदा का तापमान १०० डिग्री से १०३ डिग्री तक भी हो सकता है।

द्वितीयावस्था—जिसे पतनावस्था कहते हैं। जो कि ६ घंटा से २४ घंटा तक रहती है। रोगी निश्चेष्ट एवं बिलकुल अशक्त होजाता है। शरीर बिलकुल ठंडा हो जाता है, आँखें अन्दर चली जाती हैं, गाल बैठ जाते हैं, ओष्ठ दन्त नाखून काले से होजाते हैं, त्वचा पर न लिसा आजाती है और त्वचा में झुर्रियां पड़ जाती हैं विशेष कर हाथों की अंगुलियों में झुर्रियां शीघ्र समझ में आजाती हैं। मूत्रक्षय हो जाता है। आवाज बैठ जाती है। नाड़ी की गति बिलकुल मंद और टूटती सी प्रतीत होती है। अतिसार प्रायः बन्द से हो जाते हैं। वमन में केवल उबाकें आती हैं, क्वचित पानी वमन से गिरता भी रहता है अन्त में हिक्का और मूर्च्छा होकर मृत्यु हो जाती है।

तृतीयावस्था जिसे प्रतिक्रियावस्था कहते हैं अतिसार और वमन का रंग बदल जाता है तथा वे बन्द होने लगते हैं, मूत्र आने लगता है। शरीर गरम हो जाता है। रोगी कुछ खाने को चाहता है, निद्रा आने लगती है, रोगी शनैः-शनैः सुधरता मालूम होता है। इस अवस्था में यदि रोगी को सम्भाल कर नहीं रखा गया एवं खाने के लिये देने में यदि शीघ्रता की गई तो पुनः वमनातिसारादि लक्षण शुरू होकर रोग का प्रकोप होजाता है और रोगी की मृत्यु होजाती है।

विसूचिका का एक घातक प्रकार और भी होता है जिसमें वमनादि लक्षणों के आरम्भ होने से पूर्व ही रोगी का बल सहसा नष्ट हो जाता है। मूर्च्छा होकर अवसाद के बाद मृत्यु होजाती है। इसको शुष्क विशूचिका कहते हैं।

रुग्ण की चिकित्सा कर उसे स्वस्थ बनाने के सिवा स्वस्थ व्यक्ति के स्वास्थ्य की रक्षा करना परमावश्यक है इसलिये स्वस्थ पुरुष को रोगकाल में निम्न नियमों पर अवश्य ही ध्यान देना चाहिये।

सर्व साधारण के लिए

(१) रोगकाल में खाने-पीने की चीजों पर स्वच्छता का पूर्ण ध्यान होना चाहिए।

(२) रोगकाल में भोजन समय पर, भूख से थोड़ा कम, ताजा और हलका करना चाहिए।

(३) रोगकाल में प्रातःकाल कुछ अवश्य खा लेना चाहिये। रोगी के पास भूखे पेट नहीं जाना चाहिये।

(४) रोगकाल में अपने रहने के स्थान को शुष्क बनाए रखने की कोशिश करते रहना चाहिये।

(५) बाजारू मिठाइयां, सड़े-गले फल, एवं हरे साग उपयोग में नहीं लाना चाहिये।

(६) रोगकाल में निम्बु, कांदा, लहसन और अदरख इन चीजों का प्रयोग भोजन के साथ अवश्य करना चाहिये।

(७) रहने के स्थान के आसपास की नालियों को एवं आस-पास की जगह को स्वच्छ बनाये रखना चाहिये।

(८) रोगी के पास रहना या जाना पड़े तो कपड़ों की एवं हाथों की सफाई बार-बार करते रहना चाहिए।

(९) रोगकाल में कोई भी सुगन्धित चीजों का प्रयोग एवं जन्तुनाशक धूप का प्रयोग अवश्य करना चाहिए।

(१०) पानी उबाल कर या पानी में पोटास परमेंगनेट डालकर पीना चाहिये।

(११) दूध को व्यवहार में लाने के पूर्व उसे उबाल लेना चाहिये एवं थोड़ा गरम-गरम ही पीना चाहिये।

(१२) घर में मक्खियां न हों इसके लिये फिनाइल का प्रयोग दिन में १-२ बार फर्श धोने के लिये अवश्य करना चाहिये।

(१३) रोगकाल में रोग होजाने का भय रखने से भी रोग होजाता है।

सार्वजनिक (स्थानीय शासन के) नियम

(१) कुवे—बावड़ी में पोटास परमेंगनेट या ब्लिचिंग पाउडर या चूना आदि डालकर बार-बार साफ करते रहना चाहिये।

(२) कॉलरा वेक्सिन लगवा देना चाहिये।

(३) कूड़ा ऊपर का ऊपर उठवाते रहना चाहिये।

(४) नालियां रोज साफ करवाते रहना चाहिये।

(५) यदि रोग अधिक फैल रहा हो तो मिठाई की दूकानें, होटलों और वैसे साग की दूकानें जिनसे रोग वृद्धि होने की सम्भावना हो बन्द करवा देनी चाहिये।

(६) ग्राम के कसाईखाने बन्द करवा देने चाहिए।

(७) यदि ग्राम में विसूचिका शुरू हो तो रुग्ण के मूत्र को गाढ़ देने के लिये आदेश किया जाय ताकि रास्ते पर मल फेंकने से रोग की वृद्धि होने का भय न रहे।

रोग की हर अवस्था की पृथक्-पृथक्

चिकित्सा

(१) रोग का प्रारम्भ होते ही कांदे (प्याज) का रस आधा तोला बार-बार पिलाना चाहिये। सौंफ का अर्क पोदीना अर्क १०-१० बूंद इनमें समभाग निम्बु का अर्क मिला पिलाना चाहिये। संजीवनी वटी २-२ गोली शहद और निम्बुरस के साथ घंटे घंटे से देते रहना चाहिये। संजीवनी वटी केवल उबाल-ठण्डे किये हुए जल के साथ भी दे सकते हैं। इन प्रयोगों से वमन अतिसार जीभ चलाना उदर-शूल आदि में फायदा होता है।

(२) १ तोला जायफल या आधा तोला लवङ्ग को १ सेर जल में औटा, शीतल कर पिलाने से प्यास कम होती है। बर्फ का टुकड़ा भी मुंह में चूसते रहने से प्यास कम लगती है। इमली या आलूबुखारा मुंह में रखने से प्यास कम होती है। पीपल की सूखी छाल को निर्धूम कर पानी में बुझा कर थोड़ा-थोड़ा पानी देते रहने से प्यास और वमन दोनों कम होजाती हैं।

(३) वमन को रोकने के लिये सुवर्ण सूतशेखर रस व सुवर्णमाक्षिक भस्म यथा मात्रा में अदरख रस में मिलाकर चटाने से वमन में लाभ होता है।

आमाशय पर राई का प्लास्टर १५-२० मिनट लगावें जब जलने लग जाय तब उतार घी का हाथ लगा देने से भी वमन में लाभ होता है।

पैरों की ऐंठन अधिक बढ़ जाने पर—

(१) सोंठ का चूर्ण पैरों पर मालिश करें।

(२) ब्राण्डी को पिण्डलियों पर लगावें।

(३) तारपीन तैल में १६ वां हिस्सा कपूर मिला मालिश करने से ऐंठन दूर होती है।

(४) राई पीस पोटली बना गरम कर सेंक करने से भी ऐंठन दूर होती है।

शरीर अधिक शीतल होने लगे तो—

(१) आध-आध रत्ती कस्तूरी, शहद और पान के रस के साथ देनी चाहिए।

(२) सिद्ध लक्ष्मीविलास और सुवर्ण सूतसेखररस दोनों अदरख स्वरस से या शहद और पान के रस से देने से लाभ होता है।

(३) रोगी को ऊनी वस्त्र चढ़ाकर रखना चाहिए।

(४) गर्म जल से भरी बोतल द्वारा सेंक करना चाहिए।

(५) कायफल के वस्त्रपूत चूर्ण को रगड़ने से भी शीतलता कम होती है।

(६) मृतसंजीवनीसुरा के साथ में पूर्ण चन्द्रोदय रस देने से सत्वर लाभ होता है।

(७) विषगर्भतैल या नारायणतैल की मालिश भी हितकर है।

मूत्रावरोध को दूर करने के लिये—

(१) वृक्क स्थान पर थोड़ा सेंक करें।

(२) कलमीशोरा और पलास के फूलों को पीसकर लेप करना चाहिए।

(३) कलमीशोरा, सागबीज चूहे की लेंड़ियां, गेरू और हजरती बोर इन पांचों को पानी में घिसकर लेप करने से मूत्रोत्पत्ति होती है।

(४) मूत्रेन्द्रिय में कपूर की डेली रखें।

(५) पेडू पर राई का प्लास्टर लगाने से भी मूत्रावरोध दूर होता है।

कभी-कभी तृतीयावस्था में ज्वरवेग अचानक बढ़ जाता है, दाह, प्रलाप आदि होने लगते हैं। इस हालत में प्रवालपंचामृतरस २-२ रत्ती शहद के साथ देने से लाभ होता है। सुवर्णसूतशेखर संजीवनी शंखभस्म सुवर्णमाक्षिक देने से अन्य उपद्रवों सहित विसूचिका में लाभ होता है।

एक बार का विशेष अनुभव यह है कि मृत-तुल्य रोगी को पार्ष्णी और गुल्फ के पास में तप्तसलाका द्वारा दाह करने से रोगी करीब ८-१२ अंगुल ऊंचा झटके से चमक कर उठा, नाड़ियां चलने लगीं, रुग्ण पानी पानी कहने लगा, आंखें खोलने लगा। बाद में दाह वाले स्थान पर घृतयष्टिमधु मिश्रित लगाया, सिद्ध लक्ष्मीविलास रस आध रत्ती शहद के साथ २-२ घण्टे से देते रहने के लिए कहा गया। मूत्रावरोध की चिकित्सा द्वारा मूत्र रोग के शुरू काल से २२ घण्टे के बाद हुआ, उक्त हालत १६ घंटे बाद की थी।

रोगी को स्वस्थ हो जाने के बाद भी निम्न नियमों का पालन करना चाहिए।

(१) पूर्ण स्वस्थ हुए बिना खाने को न दिया जावें। कुछ समय के बाद अच्छी क्षुधा लगने पर लघु पाचक भोजन या छाछ भात बहुत थोड़े परिमाण में देना चाहिए।

(२) पानी कुछ दिनों तक उबाल कर ठण्डा कर पीना चाहिए।

(३) अधिक वायु वाले स्थान में रोगी को नहीं रहना चाहिए। दूध भी उबाल कर पीना चाहिए।

(४) रोगी को कुछ समय तक मिथ्या आहार और मिथ्या विहार से दूर रहना चाहिए। तले हुए पदार्थ, मिर्च, खटाई, विष्टम्भी भोजन, स्नान, मैथुन, परिश्रम, अग्निताप सेवन, चिन्ता आदि कुपथ्यों से सावधान रहना चाहिए। ★★

अर्बुद एवं साघातिक अर्बुद (Tumour & Cancer)

लेखक—वैद्य मुन्नालाल गुप्त [illegible] M., पुरानी दालमण्डी, कानपुर।

कैंसर नाम से प्रचलित व्याधि से पीड़ित अनेक मानवों को देखकर जिज्ञासा हुई कि इसके निदान व चिकित्सा के सम्बन्ध में विचार किया जाय।

जहां तक ज्ञात हुआ, इसकी चिकित्सा का यदि ठीक ठीक प्रबंध है तो वह बम्बई में है जहां इसके इलाज के लिए स्पेशल हॉस्पीटल्स हैं।

प्रथम हमें इस रोग के निदान के सम्बन्ध में विचार करना है—

परिचय—पाश्चात्य मतानुसार यह माना जाता है कि यह रोग शरीर की किसी भी धातु में उसकी अत्यन्त वृद्धि से उत्पन्न होता है। यह एक प्रकार की स्थानिक अति-वृद्धि होती है जिसका शरीर में कोई विशेष कार्य नहीं होता और न कोई अन्त ही होता है। उसकी वृद्धि भी शरीर की वृद्धि पर निर्भर नहीं करती। यह "व्रण शोथ" से भिन्न होते हैं, क्योंकि "व्रण शोथ" का अन्त पाक में होता है। अर्बुद की व्याख्या इस प्रकार की गई है—नवीन रचना या रचनाओं का समूह जो वृद्धि करता है और जिसका शरीर में न कोई विशेष कर्म है और न अन्त ही होता है।

कारण—कहा जाता है कि अर्बुद की उत्पत्ति के कारण पूर्णतया निश्चित नहीं हैं। सम्भव है कई प्रकार की दशा मिलकर अर्बुद की उत्पत्ति का कारण हो। कुछ अर्बुद किसी विशेष धातु के सम्भवतः विकृत दशा में उत्पन्न होते हैं, कुछ विद्वानों की सम्मति है कि कभी कभी भ्रूणावस्था की धातुओं के कुछ भाग उसी दशा में रह जाते हैं, उनका विकास नहीं होता, अतएव उनमें वृद्धि करने की अत्यन्त क्षमता होती है। जब किसी कारण से उत्तेजित हो जाते हैं तब उनकी अतिवृद्धि के कारण अर्बुद उत्पन्न हो जाता है। पैतृक प्रभाव अर्बुद को कहां तक कर सकता है इसमें संदेह है, किन्तु ऐसे अनेक परिवार देखने में आते हैं जिनमें कैंसर या अर्बुद अधिक व्यक्तियों को आक्रांत करते हैं। इसी प्रकार कुछ सामान्य अर्बुद भी एक ही परिवार की कई पीढ़ियों में निरंतर उत्पन्न होते देखे जाते हैं। व्यवसाय से इसकी उत्पत्ति का अधिक सम्बन्ध प्रतीत नहीं होता।

आयुर्वेदीय ग्रंथों में अर्बुद की उत्पत्ति के सम्बन्ध में लिखा है—

> गात्रप्रदेशे क्वचिदेव दोषाः
> सं मूर्च्छिता मांसमभिप्रदूष्य।
> वृत्तं स्थिरं मन्दरुजं महान्तं
> मनल्पमूलं चिरवृद्ध्यपाकम्॥
> कुर्वन्ति मांसोच्छ्रयं शोफं
> तदर्बुदं शास्त्रविदो वदन्ति॥
> (सुश्रुत)

अर्थात् शरीर के किसी भी स्थान में दोष (वातादि) कुपित होकर मांस को दूषित कर, वहां गोल, स्थिर, मंद पीड़ा वाला, जो मूल (जड़) में अत्यन्त विस्तार वाला धीरे धीरे बढ़ने वाली तथा जो स्वयं पके नहीं, ऐसी ग्रंथि को आयुर्वेदज्ञ अर्बुद कहते हैं।

वातादि दोषों के अनुसार इसके अनेक भेद हैं—इसकी धातुओं के अनुसार रक्तज और मांसज दो भेद किए हैं।

जिस स्थान पर प्रथम अर्बुद हुआ हो (उसके अच्छा होने के पश्चात् मूल शेष रहने पर) उसी स्थान पर जो दूसरा अर्बुद हो उसे अधि-अर्बुद कहते हैं।

जो एक ही स्थान पर एक साथ या आगे पीछे उत्पन्न हो उसे द्विरर्बुद कहते हैं।

रक्तज अर्बुद—

दुष्ट वातादिक दोष शिरा और नसों को सिकोड़ कर

के पश्चात् दोष शेष रह जायगा तो वे दोष फिर शीघ्र ही अर्बुद को उत्पन्न कर देंगे। इसलिए उसका पूर्ण-रूपेण मूल-छेदन करते समय दोष शेष नहीं छोड़ने चाहिए–क्योंकि शेष दोष विषाग्नि के समान मानव को नष्ट कर देंगे। यथा—

सशेष दोषाणि हियोऽर्बुदानि करोति तस्याशु पुनर्भवन्ति।
तस्माद शेषाणि समुद्धरेतु हन्युः सशेषाणि यथा विषाग्नी॥

—सुश्रुत।

संयोजक धातु से उत्पन्न हुए

सामान्य-अर्बुद

वसार्बुद (Lipoma)

यह शरीर की साधारण वसा से बने होते हैं प्रत्येक अर्बुद में वसा कई भागों में स्थिति होती है। जिसके बीच में सौत्रिक धातु के फलक रहते हैं जो परिवेष्टन के साथ मिले रहते हैं। इन अर्बुदों के आकार में बहुत भिन्नता पाई जाती है। यह सब अवस्थाओं में उत्पन्न हो सकते हैं। दबाने से यह दब जात हैं। यदि यह छोटे होते हैं तो अंगुली के नीचे से फिसल जाते हैं। इनमें पूय तरङ्ग की भांति प्रतीत होती है। यद्यपि यह शरीर में किसी भी स्थान पर हो सकते हैं, जिस पर भी स्कंध पीठ और नितम्ब पर अधिक पाये जाते हैं।

पीतार्बुद (Zanthoma)

इसमें वसा और सौत्रिक दोनों प्रकार की धातु मिली रहती हैं। और लालिमायुक्त गहरे पीले रंग के कण पाये जाते हैं। यह दो प्रकार का होता है। (१) अर्बुद में चर्म पर उभरे हुए पीले रंग के भाग दिखाई देते हैं जो पक्ष्म के चर्म पर अधिक मिलते हैं (२) द्वितीय प्रकार के अर्बुद में चर्म से उत्सेधित और पीत रंग से युक्त दिखाई देते हैं। यह बाल्य तथा प्रारम्भिक युवावस्था में अधिक पाये जाते हैं। कभी कभी इनका आकार बढ़ जाता है। काटने पर भीतर से यह नारंगी रंग के दिखाई देते हैं। यह पैत्तिक अर्बुद है।

कार्टिलेज-अर्बुद (Chondroma)

यह अर्बुद कार्टिलेज के बने होते हैं। इन पर एक कोष होता है। यह दाबने पर लचीले किन्तु दृढ़ प्रतीत होते हैं जब इनमें चूने के लवण एकत्र हो जाते हैं तब यह कड़े अस्थि की भांति प्रतीत होते हैं। कभी कभी कार्टि-लेज अस्थि में परिणत हो जाता है। ऐसी अवस्था में भी अर्बुद अत्यन्त कठिन होजाता है। एक ही अर्बुद में कठिन और कोमल भाग पाये जा सकते हैं।

यह अर्बुद धीरे धीरे बढ़ता है और इससे प्रायः किसी प्रकार की पीड़ा नहीं होती। यदि इससे कोई नाड़ी दबती है तो पीड़ा होने लगती है इस प्रकार के अर्बुद घातक रूप ले सकते हैं। यह अर्बुद लघु और दीर्घ दोनों प्रकार की अस्थियों के सम्बन्ध से उत्पन्न होते हैं, प्रायः अंगुलियों की अस्थियों के सम्बंध में अधिक उत्पन्न होते हैं। युवा व्यक्तियों के हाथों की अस्थियों में यह बहुधा देखे जाते हैं और एक ही समय में कई अर्बुद उपस्थित होते हैं। जिस स्थान पर अर्बुद होता है वहां की अस्थि चौड़ी हो जाती है जिससे अंगुलियां विकृत दिखाई देने लगती हैं इन अस्थियों में अर्बुद प्रायः इनके सिरों के पास उत्पन्न होते हैं।

लम्बी अस्थियों में अर्बुद की उत्पत्ति अस्थिवेष्ट के नीचे होती ह। इस प्रकार के उस कार्टिलेज से जो अस्थियों के सिरों में होते हैं स्वतन्त्र रहते हैं। यद्यपि कुछ विद्वानों की सम्मति के अनुसार इन अस्थियों के सिरों से उत्पत्ति काल में कार्टिलेज क कुछ भाग वहां पहुंच जाते हैं। यदि अर्बुद केवल अस्थि के बाहरी संहत भाग में परमित रहता है तो वहां की अस्थि गलकर पतली हो जाती है जिससे 'भग्न' हो सकता है। कभी-कभी अर्बुद भीतर की ओर अर्बुद की नलिका में फैल जाता है जिससे अस्थि चौड़ी हो जाती है।

इन अर्बुदों को काटने से वह भीतर से हलकी नीलिमायुक्त अर्ध पारदर्शी दिखाई देते हैं उसके भिन्न-भिन्न भागों के बीच में बाहरी कोष से जाते हुए फलक उपस्थित होते हैं। एक्स-रे (x ray) चित्रण में इन अर्बुदों की छाया नहीं दिखाई देती, किन्तु चूने के एकत्र होने अथवा अस्थिकृत हो जाने पर उनकी अस्थि ही की भांति छाया बनती है।

चिकित्सा—इस अर्बुद के बहुधा घातक रूप लेलेने के कारण इसका छेदन करना ही उत्तम है। जहां होसके कोष सहित अर्बुद को निकाल देना चाहिए। यदि कोष इतना स्पष्ट नहीं हो तो अर्बुद के चारों ओर की अस्थि के कुछ भाग को भी काट कर निकाल देना उचित है। कई अंगुलियों में अर्बुद होने से हाथ के छेदन का प्रश्न उपस्थित होता है किन्तु अंग-छेदन से पूर्व एक्स-रे का उपयोग कर लेना चाहिए।

अस्थ्यर्बुद (osteoma)

यह अर्बुद अस्थि धातु का बना होता है और अस्थियों की सन्धियों में पाया जाता है। यह दो प्रकार का होता है—

(१) सुषिर (Cancellous), और

(२) संहत (Compact)

सुषिर प्रकार का अर्बुद लम्बी अस्थियों के सिरों के पास उत्पन्न होता है जहां से वह एक उत्सेध या प्रवर्धन की भांति निकला करता है। इस पर स्वच्छ-कार्टिलेज (Hyaline cartilage) का एक स्तर चढ़ा रहता है। कभी-कभी इसका आकार बहुत बढ़ जाता है। यह बालकों या तरुण अवस्था वाले युवाओं में मिलता है, जिनमें अस्थि का सिरा पूर्णतया अस्थिकृत नहीं हुआ है। कभी-कभी यह जन्म ही से उपस्थित होता है। पूर्ण युवावस्था पर पहुंच जाने के पश्चात् इसकी वृद्धि हो जाती है और यह कभी-कभी पृथक् हो जाता है इसकी वृद्धि बहुत धीमी होती है और जब तक यह किसी नाड़ी को नहीं दाबता तब तक इससे कोई पीड़ा नहीं होती।

'संहत' प्रकार का अर्बुद संहतास्थि का बना होता है और प्रायः करोटि की अस्थियों से उत्पन्न होता है, जहां से वह मस्तिष्क के भीतर की ओर पूर्विका के वायु विवर अथवा नासिका या नेत्र-गुहा में वृद्धि कर सकता है। कर्ण-विवर में उसको उत्पन्न होते हुए देखा गया है। इस प्रकार वह अत्यन्त विकृति उत्पन्न करने के अतिरिक्त दृष्टि श्रवण तथा घ्राणशक्ति सबको बिगाड़ सकता है।

मज्जार्बुद (Myeloma)—

यह अर्बुद अस्थियों की मज्जा से उत्पन्न होता है। काटने से यह भीतर से अत्यन्त गहरे लाल रंग का पाया जाता है। इसमें रक्त-संचार बहुत अधिक होता है और प्रायः रक्तस्राव के कारण इसके भीतर सिस्ट बन जाती है यह लम्बी अस्थियों की वृद्धि करते हुए, सिरों के पास अधिक पाया जाता है, अन्तर्जंघिका के ऊर्ध्वप्रान्त में यह अर्बुद विशेषतया होता है। जिस स्थान पर यह उत्पन्न होता है वहाँ पर अस्थि चौड़ी और भीतर से खोखली हो जाती है। किन्तु वहां बाहर की ओर नवीन अस्थि बन जाती है। यह अस्थि धीरे-धीरे पतली होती जाती है। यहां तक कि उस स्थान पर अस्थि का केवल एक पतला स्तर रह जाता है। जो दाबने से भीतर दब जाता है और अण्डे के छिलके की भांति प्रतीत होता है। कभी-कभी कण्डराओं के परिधान के सम्बन्ध में भी यह अर्बुद उत्पन्न होजाता है किन्तु वहां पर इसका रंग गहरा पीला या नारंगी होता है। छेदन के पश्चात् स्प्रीट में रखने से उसका रंग भूरा हो जाता है।

यह अर्बुद केन्द्र की बृहद् कोषाणुओं का बना होता है। जिनके चारों ओर गोल कोषाणु तथा तर्क्वाकार कोषाणु उपस्थित होते हैं। इन कोषाणुओं के आकार में बहुत भिन्नता पाई जाती है। किन्तु केन्द्रकों की संख्या सदा अधिक होती है। यह अर्बुद प्रायः घातक रूप धारण नहीं करते। वे कोमल होते हैं और दाबने से सहज में दब जाते हैं, रक्त-संचार की अधिकता से कभी-कभी इनमें स्पन्दन प्रतीत होता है। इनसे गौण-वृद्धि उत्पन्न नहीं होती।

चिकित्सा—

जहां हो सके, उसके सम्पूर्ण (समूल) छेदन कर देना चाहिए। यदि यह न होसके तो उसको खुरचकर निकाल देने के पश्चात् चारों ओर के स्थान पर कार्बोलिक एसिड व प्रतिक्षारणोपक्षार लगाकर गौज से भर दिया जाय। अर्बुद के अधिक विस्तृत हो जाने पर अस्थि का आक्रान्त भाग काटना पड़ता है।

मांसार्बुद—(Myoma)

यह अनाच्छक मांस-सूत्रों के बने होते हैं। यह उन

न्तरिक वस्तु कम होती है। रचना में बहुत कुछ भ्रूण-धातु के समान होता है किन्तु कोषाणु एक दूसरे से कोषाण्यन्तरिक वस्तु के द्वारा भिन्न रहता है। यह अर्बुद प्रावरणी, चर्म अस्थिवेष्ट तथा अस्थिमज्जा से प्रायः उत्पन्न होते हैं। कभी कभी इनके चारों ओर कोष प्रतीत होता है। किन्तु वास्तव में यह केवल चारों ओर की धातु होती है, जिसमें अर्बुद के कोषाणु फैले रहते हैं। इसमें रक्त-संचार अधिक होने से कभी २ उनमें स्पन्दन प्रतीत होता है; रक्त संचार के लिए कोई विशेष नलिकायें नहीं होतीं, किन्तु अर्बुद की वस्तु के भीतर कोषाणुओं के बीच में खुले हुए स्थान होते हैं जो केवल अन्तर्कला (Endothelium) से वेष्टित होते हैं। पास की धमनी और शिरायें भी प्रसारित पाई जाती हैं। रक्त-संचार की अधिकता के कारण अर्बुद से रक्तस्राव की आशंका रहती है। अर्बुद भीतर के रक्त-मार्गों का पास की शिराओं से सम्बंध होता है।

अर्बुद के कोषाणुओं का विस्तार इन शिराओं ही के द्वारा होता है। अर्बुद के कोषाणु अथवा अर्बुद के छोटे-छोटे भाग अर्बुद से पृथक् होकर शिराओं द्वारा दूरवर्ती अङ्गों में पहुँच कर वहां गौण वृद्धि आरम्भ कर देते हैं। यह वृद्धियां प्रायः फुफ्फुस व यकृत में होती हैं। गुण और रचना में ये मुख्य अर्बुद के समान पाई जाती हैं। फुफ्फुस तथा यकृत से वह दूरवर्ती अङ्गों में फैल सकते हैं। कभी-कभी इनकी विस्तृति लसिका वाहिनियों द्वारा भी हो जाती है।

इनकी घातकता और इनके विस्तार की शक्ति में बहुत भिन्नता पाई जाती है कुछ अर्बुदों की वृद्धि अत्यन्त धीमी होती है। इस प्रकार के अर्बुद प्रायः कठिन होते हैं और उनमें सौत्रिक अथवा कोषाण्यन्तरिक वस्तु अधिक होती है। किन्तु कोमल प्रकार के शीघ्रता से बढ़ते हैं और उनमें विस्तार की शक्ति भी अधिक होती है। इस कारण घातक भी अधिक होते हैं।

यह अर्बुद बाल, युवा और प्रौढ़ावस्था में उत्पन्न होते हैं। ये जन्म से भी उपस्थित हो सकते हैं। इनके रंग में रक्तसंचार के अनुसार हलके भूरे [illegible] गहरे लाल तक भिन्नता पाई जाती है। रक्त[illegible]तना अधिक होगा उतना ही रंग गहरा होता है और उतनी ही कोमलता तथा घातकता अधिक होती है।

अर्बुद कोषाणुओं के आकार, आकृति तथा स्थिति क्रम के अनुसार, कई-कई उपजातियों में विभक्त किए गए हैं। इस प्रकार कोषाणुओं के आकार के अनुसार वह लघु गोल कोषाणवीय (Small round-celled) बृहत् गोल-कोषाणवीय (Large round-celled) लघु तर्क्वाकार कोषाणवीय (Small spindle celled) तथा बृहत्तर्क्वाकार कोषाणवीय (Large Spindle-celled) सारकोमा कहे जाते हैं। इनके अतिरिक्त अर्बुद में जिस धातु की अधिकता पाई जाती है, उसके अनुसार ही नाम दिया जाता है जैसे—

सौत्रिक-सारकोमा (Fibro-sarcoma) अस्थि-सारकोमा (Osteo-sarcoma) मांस-सारकोमा (myo-sarcoma) इत्यादि।

कुछ अर्बुदों का नामकरण रंग के अनुसार भी होता है-जैसे—

क्लोरोमा (Chloroma) अथवा मिलेनोटिक सारकोमा (milanotic-Sarcoma) इस नाम का अर्बुद गहरे भूरे या काले रंग का होता है और अन्य प्रकारों की अपेक्षा अधिक घातक होता है। इससे समीपवर्ती लसीका ग्रन्थि तथा आन्तरिक अङ्गों में शीघ्र ही गौण वृद्धियां उत्पन्न हो जाती हैं।

सारकोमा को सामान्य अर्बुद, कैंसर, सिफलिस तथा अन्य शोथयुक्त दशाओं से पृथक करना पड़ता है।

चिकित्सा—

जितना भी शीघ्र अर्बुद को छेदन द्वारा निकाला जा सके उतना ही उत्तम है। अर्बुद के कोषाणुओं के विस्तार करने के पश्चात् अर्बुद की पुनरुत्पत्ति का भय रहता है। इस कारण उसकी विस्तृति के आरम्भ होने के पूर्व ही छेदन करना आवश्यक है। यह जानना कि विस्तार कहां तक होगया है असम्भव है। इस कारण अर्बुद के साथ चारों ओर के स्वस्थ भाग का भी पर्याप्त छेदन कर देना चाहिए।

छेदन के पश्चात् पुनरुत्पत्ति का भय रहता है। इसके लिए 'रेडियम और ऐक्सरे' दोनों का उपयोग किया जाता है। छेदन के द्वारा रेडियम की एक छोटी नलिका को धागे से बांध कर उस स्थान के भीतर रख दिया जाता है जहां से अंकुर निकाला गया था। 'रेडियम की दूसरी नलिका को चर्म के नीचे रक्खा जाता है। दस या बारह दिन के पश्चात् इस नलिकाओं को निकाल दिया जाता है। इससे चारों ओर की धातुएं सिकुड़ती हैं और उनसे स्राव होता है। जिसके निकालने के लिए प्रथम ही आयोजन कर देना चाहिए। यदि 'रेडियम न मिल सके तो 'एक्सरे" का व्रण पर उपयोग करना चाहिए।

अर्बुद के अधिक विस्तृत होजाने पर वह अच्छेद्य हो जाता है। ऐसी अवस्था में अर्बुद में एक छेदन करके रेडियम की एक नलिका को गहराई पर और दूसरी को चर्म के नीचे रखना चाहिए। प्रत्येक दूसरे या तीसरे दिवस इन नलिकाओं को इधर-उधर हटाया जाय। यदि इससे अर्बुद का आकार घट कर वह छोटा होजावे तो उसको निकाल देना चाहिए। यदि आवश्यक हो तो रेडियम का कई बार उपयोग किया जा सकता है।

उपकला से उत्पन्न अर्बुद

इसके निम्न भेद हैं—

(१) सामान्य अर्बुद-(अ) अंकुरार्बुद (आ) ग्रंथ्यार्बुद

(२) घातक अर्बुद (Cancer)।

अ-अंकुरार्बुद (Papilloma)—इन अर्बुदों की रचना साधारण अंकुरों की भांति है। बीच का अक्ष संयोजक धातु का बना होता है, जिसमें रक्त-नलिकाओं की सूक्ष्म शाखाएँ भी उपस्थित रहती हैं। इस अक्ष के चारों ओर उसी प्रकार की उपकला चढ़ी रहती है। जैसी उस धातु को आच्छादित किए हुए है, जिसमें अर्बुद स्थित है। यदि वह चर्म में होता है तो उपत्वचा (Epidermis) अर्बुद को ढंके रहती है। आन्त्र इत्यादि के अर्बुद पर श्लैष्मिक उपकला चढ़ी रहती है। इस प्रकार शरीर के भिन्न-भिन्न स्थानों में भिन्न प्रकार की उपकला अर्बुद को आच्छादित करती है, प्रायः इस उपकला में अतिवृद्धि होजाती है और कभी-कभी वह कड़ी पड़ जाती है किन्तु यह सदा नहीं पाया जाता। बहुधा अर्बुद के पृष्ठ से बहुत से अंकुर स्वतः निकले रहते हैं। सारा अर्बुद शहतूत के गुच्छों की भांति दिखाई देता है।

यह अर्बुद मूत्राशय में अधिक पाये जाते हैं। स्वरयन्त्र तथा ग्रंथियों के सम्बन्ध में भी उत्पन्न होते हैं तथा अन्य अङ्गों में भी पाये जा सकते हैं।

यद्यपि यह अर्बुद सामान्य होते हैं किन्तु कभी-कभी विशेषकर अधिक अवस्था वाले व्यक्तियों में घातक रूप ले लेते हैं। इन अर्बुदों में यह विशेषता होती है कि यह अङ्ग के पृष्ठ से बाहर की ओर निकलते हैं। भीतर की ओर स्थिति में अथवा उस धातु की ओर वृद्धि नहीं करते।

आ—ग्रंथ्यार्बुद (Adenoma)—इन अर्बुदों की रचना उद्रेचक ग्रन्थियों के बहुत कुछ समान होती है और उन्हीं के सम्बन्ध में यह उत्पन्न भी होते हैं किन्तु इनमें कोई नलिकाएँ नहीं होतीं और न उनमें उस ग्रंथी का जिससे वह उत्पन्न हुई है, उद्रेचक ही उत्पन्न होता है। इसके अतिरिक्त वह भाग भी, जिनसे उद्रेचक उत्पन्न होता है पूर्णतया नहीं बनते। कभी-कभी वह उपकला से भरे होते हैं, उनमें संयोजक धातु भी रहती है। जिसकी भिन्न-भिन्न अर्बुदों में भिन्न मात्रा पाई जाती है।

यह अर्बुद प्रायः अकेले होते हैं, यद्यपि अनेक अर्बुद भी एक ही समय उत्पन्न हो सकते हैं। इन पर प्रायः कोष चढ़ा रहता है। बहुधा यह जिस ग्रंथी से उत्पन्न होते हैं उनके साथ एक डण्ठल से जुड़े रहते हैं, इस डण्ठल में होकर रक्तनलिकाएँ अर्बुद के भीतर प्रवेश करती हैं। यह भी अङ्ग के पृष्ठ से बाहर को निकले रहते हैं। प्रायः इनमें बहुत सी सौत्रिक धातुएँ मिली रहती हैं। जिससे वह "सौत्रिक ग्रंथ्यार्बुद" कहलाते हैं।

इसी प्रकार उनमें अन्य प्रकार की धातु भी पाई जा सकती है, यह अर्बुद सामान्य होते हैं। किन्तु वृद्धा स्त्री के स्तनों में कभी-कभी इनको घातक रूप धारण करते हुए देखा गया है। इस कारण इनका छेदन कर देना ही उत्तम है।

कैन्सर (Cancer)

यह घातक अर्बुद उपकला से उत्पन्न होता है। उपकला के कोषाणुओं में जो पहले ही से उपस्थित होते हैं, अति शीघ्र गति से विभाजन होता है। और इस प्रकार उपकला के कोषों का एक नवीन समूह उत्पन्न होकर चारों ओर की धातुओं में फैल जाता है। इस कारण वह धातु नष्टप्राय होकर उसी समूह में मिल जाती है। यह नवीन कोषाणु स्तम्भों के आकार में स्थित होते हैं। इस प्रकार चारों ओर की धातु में इन स्तम्भों के गुच्छे पाये जाते हैं। इन कोषाणुओं का विशेष गुण उनकी विभाजन की अपरिमित शक्ति है। जिसके कारण वह उस स्थान या अङ्ग भर में, जहां अर्बुद उत्पन्न हुआ है फैल जाते हैं और अङ्ग की धातु का नाश सा कर देते हैं। जो अर्बुद अधिक घातक नहीं होते उनके कोषाणुओं में अङ्ग के कोषाणुओं से कुछ समानता पाई जाती है। इन कोषाणुओं के रूप में अङ्ग की धातु के कोषाणुओं से जितनी अधिक भिन्नता होती है उतना ही अर्बुद घातक होता है। यह कोषाणु न केवल चारों ओर की धातुओं ही में विस्तृत होजाते हैं, वरन उनके समूह दूरवर्त्ती अङ्गों में पहुंच कर वहां "गौण वृद्धियों" उत्पन्न करना आरम्भ कर देते हैं। जिन अर्बुदों में यह शक्ति अधिक होती है, वह भयंकर होते हैं।

इन अर्बुदों के कोषाणुओं का विस्तार रक्त-नलिकाओं से नहीं होता अथवा बहुत ही कम होता है। इनका सम्बंध लसीका स्थानों से होता है और इस कारण कोषाणु-समूह भी लसीका वाहिनियों द्वारा प्रवाहित होकर दूरवर्ती अंगों में पहुंच जाता है। अतएव अर्बुद के समीप की लसीका ग्रंथियां शीघ्र ही आक्रान्त हो जाती हैं और आकार में बढ़ी हुई पाई जाती हैं। स्तन के अर्बुद में कक्ष की ग्रंथियां, ओष्ठ से ग्रीवा की ग्रंथियां जननेन्द्रियों के अर्बुद से वंक्षणी ग्रंथि तथा आमाशय के अर्बुद से उसके बाहर उन्नतोदर-धारा पर स्थित ग्रंथियां आक्रान्त होकर बढ़ जाती हैं। स्वयं लसीका-वाहिनियां ही आक्रान्त हो जाती हैं और चर्म पर आक्रान्त वाहिनियों का जालसा दिखाई देने लगता है। यह हाथ को पतली कड़ी रज्जु की भांति प्रतीत होती है। स्तन के अर्बुद में वक्ष पर यह दशा अधिक पाई जाती है। लसीका वाहिनियों पर यतस्ततः सूक्ष्म कड़ी ग्रंथियां भी प्रतीत होती हैं। कभी-कभी सारे स्थान का चर्म मोटा और कड़ा पड़ जाता है। लसीका ग्रंथियों के अतिरिक्त यह गौण वृद्धियां यकृत, फुफ्फुस, श्लैष्मिक कला और अस्थि मज्जा में अधिक होती हैं।

कैंसर किसी भी स्थान से, जो उपकला से ढंका हो, उत्पन्न हो सकता है। ग्रंथियों के सम्बंध में भी वह बहुधा उत्पन्न होता है। किन्तु शरीर के कुछ विशेष स्थान या अंगों में उसकी उत्पत्ति अधिक होती है। पुरुषों में अन्य अंगों की अपेक्षा आमाशय अधिक आक्रान्त होता है। तत्पश्चात् क्रमानुसार अर्बुद अंत्रियों, जिह्वा और मुख में उत्पन्न होता है। जननेन्द्रियां और चर्म पर भी बहुधा अर्बुद उत्पन्न हो जाता है। पित्ताशय, पौरुष-ग्रंथि, अवटुका ग्रंथि, स्वर-यन्त्र इत्यादि में भी अर्बुद उत्पन्न होते देखा गया है। यद्यपि उपर्युक्त अंगों की अपेक्षा कम होता है। पुरुषों में ८० प्रतिशत अर्बुद आमाशय और अंत्रियों में उत्पन्न होता है। किन्तु स्त्रियों में गर्भाशय, अन्य जननेन्द्रियों तथा स्तनों में ८० प्रतिशत या इससे भी अधिक अर्बुद की उत्पत्ति होती है।

कैंसर के उत्पन्न होने के लिए उपयुक्त-समय भिन्न-भिन्न धातुओं में भिन्न होता है। जिस समय उस विशेष धातु के कर्मकाल के समाप्त होने पर उसकी शक्ति का ह्रास आरम्भ होता है उसी समय कैंसर की उत्पत्ति अधिक होती है। स्त्रियों में गर्भाशय का कैंसर उस समय अधिक होता है, जिस समय उनका प्रजनन-काल समाप्त होता है अर्थात् ४५ या ५० वर्ष की आयु में। इससे अधिक आयु में अर्बुद की उत्पत्ति इतनी अधिक नहीं होती। आमाशय में कैंसर चर्म की अपेक्षा पहिले उत्पन्न होता है।

आरम्भ में कैंसर चर्म या श्लैष्मिक कला में एक छोटे अंकुर, सूक्ष्म कठिन ग्रंथि अथवा केवल विस्तृत शोथ जिसमें चर्म मोटा किन्तु ताप और पीड़ारहित होता है उसके चारों ओर कोई कोप नहीं होता और न उसके

विस्तार की सीमा ही परिमित होती है। इसी कारण अर्बुद का छेदन करते समय उस समस्त अंग का, जिसमें अर्बुद स्थित है छेदन कर दिया जाता है। बहुधा यह देखा गया है कि अर्बुद के कोषाणु उस अंग की सीमा को पार करके अन्य समीपवर्ती अंगों में पहुंच जाते हैं स्तन के कैंसर में वक्ष का चर्म तथा ग्रंथियां शीघ्र ही आक्रान्त होजाती हैं। वक्ष की पेशियों में भी अर्बुदोत्पत्ति होने लगती है।

जब अर्बुद के ऊपर की चर्म या श्लेष्मिक कला क्षत होती है तब अर्बुद अंग के पृष्ठ पर स्पष्ट दिखाई देते हैं और उनका आकार भी बढ़ जाता है, जिसके नीचे का भाग एक फल या गोभी के फूल के समान दीखता है। इसको Fungating Cancer कहा जाता है।

शिश्न का अर्बुद इसी प्रकार का होता है। यदि चर्म के क्षत होने पर अर्बुद में गलन होने लगती है तो वहां एक व्रण बन जाता है ऐसे व्रण के किनारे मोटे, क्रमहीन, और अर्बुद धातु-युक्त होते हैं उसका तल प्रायः चिकना और समान होता है। वहां गलित धातु का कुछ अंश भी मिल सकता है। ऐसे व्रणों से पतला स्राव होता रहता है जो पूयोत्पादक जीवाणुओं के प्रवेश के कारण अत्यन्त दुर्गन्धित होसकता है। आंतरिक अंगों में जैसे गर्भाशय, गुदा इत्यादि के अर्बुद में रक्तस्राव भी होता रहता है।

कैंसर की संक्रामकता ज्ञात करने के लिए अनेकों प्रयोग हुए हैं किन्तु इससे कोई परिणाम नहीं मिला। एक जन्तु के शरीर के अर्बुद के एक भाग को दूसरे जन्तु की धातुओं में स्थापित करने से उसके शरीर में अर्बुद सर्वदा उत्पन्न नहीं होता। वास्तव में एक श्रेणी के जंतु के शरीर के अर्बुद दूसरी श्रेणी के जन्तु में उत्पन्न नहीं होता। किन्तु कभी-कभी एक ही श्रेणी के जन्तु में उत्पन्न हो जाता है।

इन प्रयोगों के परिणामों के अनुसार अर्बुद को संक्रामक नहीं माना जा सकता। वह एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति का सम्पर्क होने से उत्पन्न नहीं होता। किन्तु अर्बुद का छेदन करते समय यह ध्यान रखना आवश्यक है कि जिस चाकू से छेदन किया जाय वह अर्बुद के सम्पर्क में न आने पावे। शस्त्रकर्म के समय अर्बुद तौलियों से ढका रहे और छेदन के पश्चात् तौलिए से ढके हुए अंग को दूर हटा दिया जाय। चाकू के अर्बुद के सम्पर्क में आने पर उसके द्वारा कोषाणुओं का दूसरे स्थानों में पहुंचना और गौण वृद्धि उत्पन्न होना सम्भव है। जहां अर्बुद तौलिए से न ढंका जासके वहां चाकू को अर्बुद की सीमा से पर्याप्त दूर रखना चाहिए। यदि अर्बुद श्लेष्मिक कला या चर्म से ढंका हुआ हो तो उसका इसी दशा में छेदन करना उचित है। ऊपर के चर्म या श्लेष्मिक कला को क्षत करना उचित नहीं।

—क्रमशः।

श्लेष्मक ज्वर (INFLUENZA)

लेखक—कविराज एस० एन० बोस, एल. ए. एम. एस., भिषग्रत्न, इन्दौर।

संज्ञा—आयुर्वेदीय प्राचीन ग्रन्थों में श्लेष्मक ज्वर के नाम से किसी व्याधि का उल्लेख नहीं है। महामहोपाध्याय गणनाथसेनकृत सिद्धान्त निदान में पाश्चात्य शास्त्रोक्त इनफ्लुयेंजा (Influenza) नामक व्याधि का आयुर्वेदीय नामकरण के रूप में इस व्याधि का वर्णन मिलता है। यह एक वातकफज तरुण ज्वर है—जिसमें दोषों के अत्यन्त समावेश के कारण सान्निपातिक रूप का भी प्रगट होना दिखाई पड़ता है, अतः महामहोपाध्याय गणनाथसेन महोदय ने इसे प्राथमिकतः वातश्लेष्मोल्वण सन्निपात कहा है। वस्तुतः श्लेष्मकज्वर जिस रूप में सचराचर दिखाई पड़ते हैं—वह उसका साधारण रूप है—जिसे हम द्वन्द्वज व्याधि कह सकते हैं, परन्तु श्लेष्मकज्वर के और कई विशिष्ट रूप होते हैं—जोकि वास्तविक रूप से सान्निपातिक व्याधि का ही परिचायक है। यह एक विशिष्ट संक्रामक व्याधि है—जोकि साधारणतःस्थानिक रूप से प्रगट होती है—कभी कभी व्यापक रूप से, कभी कभी जनपदध्वंसी रूप से भी प्रगट होती है। विगत प्रथम महायुद्ध के पश्चात् १९१८—१९ में यह व्याधि करीब करीब समस्त विश्व में जनपदध्वंसी रूप में फैल गई थी जिसमें लाखों लोगों की जीवन हानि हुई थी। इस व्याधि के विशिष्ट लक्षणों में से आकस्मिक आक्रमण, सन्तापवृद्धि, सर्वशरीरव्यापी वेदना—विशेषतः हाथ-पैरों में, पीठ-कमर में अत्यधिक दर्द, शिरोवेदना तथा श्वासवाहिनियों में प्रदाहजन्य लक्षणों को प्रगट होना आदि प्रधान हैं।

निदान तथा सम्प्राप्ति—यह एक वातकफोल्वण सान्निपातिक व्याधि है—जिसमें शरीर के सारे वात-कफ स्थान आक्रांत हो सकते हैं। श्लेष्मवर्द्धक मिथ्याहार विहार से प्रवृद्ध श्लेष्मा वायुवाही स्रोतों को अवरुद्ध करने के कारण प्रकुपित वायु श्लेष्मधराकलाओं में प्रदाह उत्पन्न करता है जिससे निम्नोक्त लक्षण प्रगट होते हैं। पाश्चात्य दृष्टि से इस व्याधि का कारण एक Virus माना जाता है—जिसमें से दो विभिन्न प्रकार अभी तक पृथक किये गये हैं—परन्तु अभी तक इनके अलावा और कुछ प्रकार की वर्त्तमानता के सम्बन्ध में अनुमान किया जारहा है। इस व्याधि में अनुसंक्रमण का काफी महत्व है। अधिकांश क्षेत्र में अनुसंक्रमण के कारण लक्षणों की तीव्रता तथा जटिलता प्रगट होती है। अनुसंक्रमण में मुख्यतः Haemophilus Influenza एवं गौणतः Streptococci, Pneumococci, N. Catarrhalis तथा Staphylocoecus aureus आदि रोग जीवाणु साधक माने जाते हैं। सांघातिक श्लेष्मकज्वर में प्रधानतः Streptococcus अथवा Staphylococcus जनित श्वसनक सन्निपात रोग की तीव्रता अथवा रोगी की मृत्यु का कारण प्रतीत हुआ है।

पूर्वरूप—इस व्याधि का रोग प्रजनन काल—जहां तक निर्णय किया जा सका—१ दिन से २ दिन तक माना जाता है। व्याधि का आक्रमण अत्यन्त आकस्मिक होने के कारण विशिष्ट रूप से पूर्वरूप प्रगट होने का अवसर कम मिलता है, तो भी सारे शरीर तथा सिर में भार वोध, अव्यक्त वेदना, किसी कार्य में अनिच्छा, आलस्य, अकारण दुर्बलता, प्रतिश्याय तथा शुष्क कास आदि लक्षण प्रधानतः पूर्वरूप के रूप में पाये जाते हैं।

रूप या लक्षणः—आकस्मिक रोगाक्रमण इस व्याधि का प्रधान चिन्ह है। कभी-कभी स्वस्थ व्यक्ति कई घण्टों के अन्दर एक तीव्र रोगाक्रान्त व्यक्ति के

माफिक पीड़ित होजाते हैं। स्वस्थ व्यक्ति रात को सो जाते हैं—सवेरे उठते ही उनके सारे शरीर में असह्य वेदना, तीव्र शिरोवेदना, कमर तथा पैरों में तीव्र पीड़ा, शुष्क कास आदि लक्षणों के साथ मामूली ज्वर तापवृद्धि किन्तु अस्वाभाविक दुर्बलता आदि लक्षण प्रगट होते हैं-जिससे शय्या-त्याग करने की इच्छा तक नहीं होती है। शीघ्र ही शारीरिक ताप बढ़ने लगता है—कभी कभी ज्वरारम्भ में शीत-बोध के साथ कम्प तक हो सकता है।

श्लेष्मकज्वर में यद्यपि नानाप्रकार के लक्षण प्रगट होते हैं-परन्तु पाश्चात्य दृष्टि से विशिष्ट यन्त्रों के आक्रान्त होने के कारण उनमें प्रस्तुत क्रिया-व्याघातों को ध्यान में रखकर श्लेष्म ज्वर के निम्नलिखित भेद बताये गये हैं।

(१) ज्वरानुबन्धिक या ज्वरप्राधानिक (२) श्वास-कासानुबन्धिक या श्वास-कासप्राधानिक (३) सांघातिक (४) आमाशयान्त्रानुबन्धिक। किसी-किसी ग्रन्थ-कर्त्ताओं ने वातानुबन्धिक के नाम से पंचम प्रकार के श्लेष्मकज्वर का वर्णन किया है।

(१) ज्वरानुबन्धिक—इस श्रेणी के श्लेष्मकज्वर में शारीरिक तापवृद्धि ही प्रधान लक्षण के रूप में पाई जाती है। ज्वरताप १०२ से १०४ डिग्री तक बढ़ जाता है। साथ ही साथ अङ्गमर्द, तीव्र शिरोवेदना, कमर तथा हाथ-पैरों में पीड़ायुक्त वेदना, प्रतिश्याय तथा शारीरिक दुर्बलता आदि लक्षण प्रगट होते हैं। श्लेष्मज्वर से ज्वरानुबन्धिक श्लेष्मकज्वर का भेदज्ञान श्लेष्मकज्वर में आकस्मिक आक्रमण, ज्वरताप का आधिक्य, अस्वाभाविक दुर्बलता तथा वाताधिक्य के कारण प्रतिश्याय की शुष्कता आदि से किया जा सकता है। आंखों में लालीपन के साथ अक्षिगोलकों में दर्द रहता है। नाक, मुँह आदि से तरल स्राव, शुष्क कास, मुखमण्डल में तथा मुखमार्ग में रक्तिमाभा, कभी-कभी रक्तवर्ण कोढ़ों के उद्गम आदि अन्यान्य लक्षण हैं। नाड़ीगति में आपेक्षिक मन्दता तथा आकृति में स्थूलता इस व्याधि की विशिष्टता है। ज्वर का स्थितिकाल अनिश्चित है-परन्तु साधारणतः ४ से ६ दिन तक रहने के बाद ज्वरमोक्ष होता है, कभी-कभी सहसा ज्वरमोक्ष भी दिखाई पड़ता है। इसके बाद भी शारीरिक तापवृद्धि होने से अन्यत्र रोग संक्रमण अथवा अनुस[illegible] सन्देह करना चाहिए।

(२) श्वास-कासानुबन्धिक—साधारणतः विध्वंसी रूप में इस श्रेणी का श्लेष्मकज्वर का होना दिखाई पड़ता है। इसी श्रेणी से ही [illegible] ज्वर में सबसे अधिक मृत्यु होती है। इस रोग [illegible] प्रारम्भ ज्वरानुबन्धिक श्लेष्मकज्वर के ही समान परन्तु साधारणतः रोगाक्रमण के चतुर्थ दिन के पास यह प्रगट होजाता है-कि यह [illegible] रण ज्वरानुबन्धिक नहीं है। श्वासमार्ग में [illegible] की विशिष्टता, तीव्र शुष्क तथा [illegible] रूप में प्रगट होती है। कभी-कभी तृतीय या [illegible] दिन के आस-पास ज्वरवेग कम होकर फिर से [illegible]रिक ताप में वृद्धि होती है-जिससे रोग [illegible] सूचना प्राप्त होती है। यह आक्रमण केवल [illegible] नलिकाओं में सीमित न रहकर फुफ्फुस-कोषों [illegible] पहुँचकर वहां रक्ताधिक्य की सृष्टि होती है-और क्रमशः उभय प्रकार के श्वसनक सन्निपात अथवा फुफ्फुसधराकला का शुष्क अथवा आर्द्र प्रदाह की सृष्टि होती है। कभी-कभी परिणामस्वरूप कला[illegible]न्तराल में पूयस्राव तक हो सकता है। इसमें श्वास-नलिकाओं के अन्तिमांश में प्रदाह तथा फुफ्फुस कोषों में अत्यधिक रक्तसंचय विशिष्ट लक्षण है-जिसमें चिह्न पर्याप्त सूक्ष्म चिट्‌चिट् ध्वनि, बुद्‌बुद ध्वनि की न्यूनता और कभी-कभी ताड़न-ध्वनि की मृदुता आदि हैं। फुफ्फुसों में काठिन्य इस श्रे[illegible] के श्लेष्मकज्वर में सबसे अधिक विपज्जनक मानी जाती है।

शुष्क कास इस व्याधि में एक [illegible] लक्षण है। कभी कभी तो मामूली आक्रमण में [illegible] ही पीड़ादायक कास वर्त्तमान रहता है जिसमें

कफस्राव हो सकता है, कभी-कभी फुफ्फुस में गम्भीर वैकारिक परिवर्त्तन होते हुए भी कफ निर्गम बिलकुल मामूली होता है-कभी-कभी नहीं भी होता है। आक्रमण के स्थान-भेद से स्रावित कफ के रूप-रङ्ग में परिवर्त्तन पाया जाता है-जैसेकि श्वसनिका के प्रदाह में मामूली जलीय तरलस्राव, श्वासनली के प्रदाह में चिकटापन लिये हुए कभी सफेद, कभी हलके गुलाबी रङ्ग के, शहरवासियों में काले या धूसर रङ्ग के कफस्राव तथा फुफ्फुस प्रदाह में हलके लाल या ईंट के रङ्ग के कफयुक्त स्राव होता है। परन्तु साधारणतः इस श्रेणी के श्लेष्मकज्वर में दो निम्नलिखित विशिष्ट प्रकार के कफस्राव मिलते हैं—

(क) बिलकुल हलके गुलाबी रङ्ग के फेनयुक्त उज्ज्वल कफ, जो कि अधिक मात्रा में निकलता है। कभी-कभी २४ घंटे में डेढ़पाव-आधा सेर तक निकलता होगा, कभी-कभी इसका रंग अच्छा गुलाबी भी होसकता है-जो कि फुफ्फुस स्थित प्रदाह-जनित शोथ के कारण ही होता है। यह कफ खांसी के साथ कभी-कभी नासामार्ग से भी आप ही आप निकलता है।

(ख) चिकटापन लिये हुये अपेक्षाकृत तरल कफस्राव जो कि और भी अधिक परिमाण में निकलता होगा—और जिसमें एक ही साथ लाल, बादामी, केशरिया तथा नानाप्रकार के रंग मिले हुये होते हैं। श्वेत पात्र में इस प्रकार के कफ का एक विशिष्ट रूप दिखाई पड़ता है—जिसमें रोग निर्णायक विशिष्टता मिल सकती है।

(३) सांघातिक—श्लेष्मकज्वर का यह रूप केवल जनपदध्वंसी एवं कभी-कभी व्यापक आक्रमण के क्षेत्र में ही दिखाई पड़ता है—जिसमें रोगाक्रमण के साथ ही साथ रोगी अति तीव्र रूप से पीड़ित प्रतीत होता है, विषक्रिया के लक्षण तीव्र रूप से प्रगट होते हैं, मुखमण्डल तथा सारे शरीर में एक विशिष्ट प्रकार की नीलआभा छाजाती है एवं श्लेष्मक ज्वर के विशिष्ट लक्षणों के प्रगट होने के पहले या मामूली प्रगट होने के साथ हृदयावसाद के लक्षण प्रगट होते हैं। साधारणतः इस रूप में २ दिन से लेकर ७ दिन तक रोग भोगने के पश्चात् रोगी की मृत्यु होजाती है। कोई भी चिकित्सा-कितनी ही जल्दी क्यों नहीं शुरू की जाय-इस व्याधि में लाभदायक सिद्ध नहीं होती। कभी-कभी रोगाक्रमण के २४ घंटे के अन्दर भी रोगी की मृत्यु होजाती है—ऐसा देखा गया है। इस व्याधि में हृद्‌पिण्ड की मांसपेशियों में विष-संक्रमणजनित प्रदाह होने के कारण ऐसी परिणति होती है।

(४) आमाशयान्त्रानुबन्धिक—किसी किसी ग्रन्थकार ने आमाशय तथा अन्त्र संक्रमण का पृथक-पृथक वर्णन करना अधिक उचित माना है—किसी-किसी ग्रन्थकार ने श्लेष्मकज्वर के इस रूप को श्लेष्मक ज्वर के अन्तर्गत मानने में सन्देह प्रगट किया है, क्योंकि अधिकांश क्षेत्र में स्थानिक अथवा स्वल्प व्यापक आक्रमण में श्लेष्मकज्वर के रोग जीवाणु नहीं मिलते हैं। परन्तु श्लेष्मकज्वर का आमाशयानुबन्धिक आक्रमण सचराचर दिखाई पड़ता है—जिसमें उक्त रोग जीवाणुओं के अलावा इस रोग के विशिष्ट लक्षण निर्दिष्ट रूप से प्रगट होते हैं। इसमें साधारणतः आकस्मिक रोग प्रगट होने के साथ वमन, अतिसार, तीव्र अरुचि, नाभिमण्डल के आस-पास तथा आमाशयोर्द्ध भाग में स्पर्शासहत्व एवं शारीरिक अवसाद आदि लक्षण पाये जाते हैं। ऐसे आक्रमण के क्षेत्रों में कई रोगी एक साथ मिलने पर भी रोगनिर्णय होना दुःसाध्य होजाता है-एवं श्लेष्मक ज्वर के रोग जीवाणु संक्रमणजनित आमाशयिक प्रदाह के सम्बन्ध में निःसन्देह होना मुश्किल हो जाता है।

(५) वातानुबन्धिक—श्लेष्मक ज्वर के रोग जीवाणु कभी-कभी शरीरस्थ नाड़ी केन्द्रों में आक्रमण करते हैं—जिसमें विशिष्ट रूप में वाताधिक के लक्षण प्रगट होते हैं। इसमें

शुरू से ही शिरःपीड़ा इतने प्रबल रूप में प्रगट हो सकती है जिससे पाकल सन्निपात का सन्देह तक हो सकता है। वायु प्रकृति वालों को प्रलाप होना स्वाभाविक है। मानसिक अवसाद, कभी-कभी आंशिक पक्षाघात, एक ही वस्तु को देखना, कोष्ठबद्धता, मूत्रवेग धारण क्षमता इत्यादि लक्षण प्रगट हो सकते हैं। इस व्याधि में मस्तिष्क व सुषुम्ना काण्ड में प्रदाहादि कई प्रकार की विकृतिज परिणति हो सकती है- जिससे रोगमुक्ति के बाद भी दीर्घ दिन तक मानसिक अवसाद (शारीरिक अंगावसाद) लूलापन आदि उपसर्ग वर्त्तमान रह सकते हैं। श्लेष्मकज्वर के साथ कभी-कभी पाकल-सन्निपात के लक्षण तथा चिन्ह होते हैं—परन्तु वह श्लेष्मक रोग जीवाणु-जनित न समझ कर Pfeiffer's bacillus जनित समझना चाहिए।

भेदाभेद ज्ञान—

साधारणतः श्लेष्मज्वर को श्लेष्मक ज्वर के रूप में ही माना जाता है—जो कि अनुचित है। श्लेष्मज्वर में श्लेष्मक ज्वर के रोग जीवाणु की अनुपस्थित के अलावा कुछ लाक्षणिक भेद भी वर्त्तमान हैं -जो निम्न प्रकार हैं-श्लेष्मकज्वर में रोगाक्रमण की आकस्मिकता, पूर्वरूप के रूप में प्रतिश्याय, शुष्क कास, गले में प्रदाह व जलन आदि प्रगट होते हैं—श्लेष्मज्वर में रोगाक्रमण धीरे धीरे होता है—उसमें पहिले पहल मामूली सा ज्वर होता है। श्लेष्मक ज्वर में प्राथमिक लक्षण सार्वांगिक रूप से प्रगट होता है-श्वासानुवन्धिक रूप से नहीं। श्लेष्मक ज्वर में स्वल्पकाल स्थायी शुष्क कास मिलता है—श्लेष्मज्वर में सामयिक आक्षेपात्मक कास जिसमें पीड़ा होती है-और सचराचर कफ भी निकलता है। श्लेष्मक ज्वर में गले में प्रदाह व जलन दीर्घ स्थायी नहीं होता है--श्लेष्मज्वर में वह लक्षण दीर्घ स्थायी होता है। श्लेष्मकज्वर में स्वरभंग कभी-कभी मिल सकता है—परन्तु तीव्र स्वरभंग श्लेष्म ज्वर का स्वाभाविक विशिष्ट लक्षण है। दोनों प्रकार के ज्वर में फुफ्फुस तथा श्वास-नलिकाओं के प्रदाह उपसर्ग के रूप में आसकते हैं—परन्तु श्लेष्मक ज्वर में साधारणतः फुफ्फुस तल में रक्तसंचय तथा एक पार्श्विक श्वसनक सन्निपात लक्षण प्रगट होते हैं- और श्लेष्म ज्वर में फुफ्फुस तलस्थ श्वासनलिकाओं में प्रदाह तथा उभयापर्श्विक श्वसनक सन्निपात के लक्षण सचराचर प्रगट होते हैं। उपसर्गयुक्त श्लेष्मक ज्वर में रक्तस्थित श्वेतकणिकायों की संख्याल्पता स्वाभाविक मानी जाती है। कभी-कभी श्लेष्मक ज्वर के साथ मस्तिष्क सुषुम्नाकाण्ड का प्रदाहजनित ज्वर समसामयिक रूप से वर्त्तमान रह सकता है—परन्तु उसमें केवल श्लेष्मक ज्वर के कारण ही नाड़ी केन्द्रों की विशिष्ट हानि का निर्णय करना वस्तुतः अनुचित होगा।

साध्यासाध्यत्व विचार—

साधारणतः श्लेष्मकज्वर मारात्मक व्याधि के रूप में नहीं गिना जाता है। बालक व वृद्धों में मृत्यु की संख्या उपसर्गहीन श्लेष्मक ज्वर में १ प्रतिशत के आस-पास है। श्लेष्मकज्वर में प्रौढ़ों तथा वृद्धों में जो मृत्यु होती है—वह साधारणतः श्वासानुवन्धिक उपसर्गों के कारण ही होती है। बल्कि ऐसे क्षेत्रों में जहां प्राथमिक श्वसनक-सन्निपात को ही मृत्यु का कारण माना जाता है—वहां प्राथमिक श्लेष्मक ज्वर के अनुसंक्रमण के रूप में ही श्वसनक सन्निपात को मानना चाहिये। इस व्याधि में पुनराक्रमण की आशंका बहुत ही कम रहती है—परन्तु प्राथमिक आक्रमण से रोग प्रतिषेधिका शक्ति की सृष्टि बहुत ही मामूली है—कभी-कभी बिलकुल ही नहीं होती होगी, तो भी रोग प्रतिषेध के लिये virus का टीका लगाया जाता है।

उपसर्ग व परिणति—श्लेष्मकज्वर के उपसर्ग नाना प्रकार के तथा विशेष महत्व के हैं। पहिले ही बताया गया है कि श्लेष्मकज्वर में श्वासानुवन्धिक तथा सांघातिक रूपों के अलावा जितनी मृत्यु होती हैं-उसके अधिकांश उपसर्गों के कारण ही होती हैं। श्वसनक सन्निपात तथा उरस्तोय के सम्बन्ध में पहिले

ही बताया गया है। इसके सिवा श्वासरोग की प्रथम उत्पत्ति श्लेष्मज्वर के आक्रमण में से हो सकती है। श्लेष्मकज्वर के अन्त में कभी-कभी यक्ष्मारोग के प्राथमिक लक्षण प्रगट हो सकते हैं। कभी-कभी श्लेष्मकज्वर के वैकृतिक परिवर्तन में जो फुफ्फुस-तल में रक्तसंचय होता है-वह अवस्था जीर्ण रूप लेकर निश्चित ऋतु में प्रवृद्ध अथवा क्षीण होती रहती है-फलस्वरूप श्वासनलिकाओं में प्रत्यानावस्था का प्रारम्भ होता है। श्लेष्मकज्वर के उपसर्ग के रूप में पूतिकर्ण सचराचर दिखाई पड़ता है। श्लेष्मकज्वर में श्वासानुवन्ध रहने से हृद्पिण्ड में कियत् परिमाण प्रत्यानावस्था की सम्भावना अति प्रवल है-जो कि दीर्घ दिन तक रोगी को व्याकुल बनाए रखता है। इस अवस्था से निरामय होने की सम्पूर्ण सम्भावना रहते हुए भी रोगी को निरामय होने के पश्चात् स्वाभाविक कार्यारम्भ में हृद्पिण्ड की जो दुर्वलता धीरे-धीरे प्रगट होने लगती है उससे रोगी अशक्त होजाते हैं। हृदय में धड़कन, हृदय के सम्मुख भाग में वेदना तथा स्वल्प श्रम में अकारण कान्ति व अवसाद से वे पीड़ित रहते हैं। स्त्रियों में इन लक्षणों के अतिरिक्त वायु के अन्यान्य लक्षण जैसे कि श्वासावरोध या मूर्च्छा की आशंका होना, मानसिक अवसाद आदि प्रगट होते हैं। इन लक्षणों के कारक रूप से हृद्पिण्ड में विशेष कुछ वैकृतिक परिवर्त्तन के चिन्ह कम या नहीं मिलते हैं। यद्यपि सुचिकित्सा से आरोग्य लाभ होना असम्भव नहीं है-परन्तु कई रोगी ऐसी अवस्था से स्थायी रूप से अशक्त बन जाते हैं। हृद्पिण्ड की मांसपेशियों में विषसंक्रमणजनित प्रदाह के कारण तथा साथ ही साथ नाड़ी-क्रिया में विकृति के कारण ऐसी परिस्थिति का उद्भव होता है-परन्तु इसमें कौन परिवर्त्तन विशिष्ट क्रियाशील है, यह कहना मुश्किल है। श्लेष्मकज्वर के उपसर्ग के रूप में जो मानसिक अवसाद उत्पन्न होता है-वह दीर्घ दिन तक स्थायी रह कर रोगी की मानसिक पीड़ा का कारण बन जाता है-जिससे रोगी सदा ही मानसिक अस्वस्थता का अनुभव करते रहते हैं-कभी-कभी इस अवस्था की परिणति में आत्महत्या का विवरण तक सुनाई पड़ता है। वातानुवन्धी अन्यान्य विकारों के सम्वन्ध में श्लेष्मकज्वर के वातानुवन्धिक रूप में चर्चा की गई है। श्लेष्मकज्वर में एक अथवा वहु नाड़ी मार्ग में प्रदाह उत्पन्न होकर रोगी की पीड़ा के कारण वन जाना सचराचर दिखाई पड़ता है।

चिकित्सा—

प्रतिरोधात्मक—पाश्चात्य चिकित्सा विज्ञान की दृष्टि से इस रोग का निदान सम्यक् ज्ञात न होने के कारण प्रतिरोध के लिए किसी विशिष्ट उपाय को अपनाने के लिए नहीं कहा गया है। परन्तु रोग का व्यापक आक्रमण शुरु होने से रोगी को अलग कर देना, उनके कफ वस्त्र आदि को विशोधित करना, शीघ्रातिशीघ्र रोग निर्णय के पश्चात् सुचिकित्सा का आश्रय लेना, पृथक् अस्पतालों में भर्त्ति हो जाना आदि उपायों से रोग विस्तार को रोका जा सकता है। इस व्याधि में सवल-दुर्वल भेद से रोगाक्रमण नहीं होता है, अधिकन्तु स्वस्थ सवल व्यक्तियों में वेपरवाही से अधिकतर आक्रमण दिखाई पड़ता है। श्लेष्मकज्वर के लिए एक प्रकार का टीका निकाला गया है—जिसके सम्बन्ध में अभी तक निःसन्देह प्रमाण अपेक्षित है। आयुर्वेदोक्त दृष्टि से वायु तथा कफवर्द्धक आहार-विहार से दूर रहना, विशेषतः महामारी के प्रकोप के समय उपयुक्त विहार, तथा वस्त्रादि धारण, वातकफनाशक औषधियों का प्रयोग हितकर माना जाता है। महामारी के समय चन्द्रोदय अथवा महालक्ष्मीविलास एवं प्रवालभस्म का सम्मिलित प्रयोग आर्द्रक, तुलसी की पत्ती का रस, शहद अथवा पंचकोलयुक्त दशमूल का क्वाथ अनुपान से प्रयोग करते रहने से श्लेष्मकज्वर के आक्रमण से वचने की उम्मीद की जासकती है। तुलसी पत्ती की चाय में आर्द्रक का रस अथवा सोंठ का चूर्ण डालकर पीना भी लाभदायक सिद्ध होगा।

प्रतिविधानात्मक साधारणोपचार—श्लेष्मकज्वर का आक्रमण होते ही रोगी को पूर्ण विश्राम के लिये

शय्याश्रय करना चाहिए—जब तक कि ज्वर ताप उतर जाने के पश्चात् कम से कम २ दिन से लेकर ७ दिन तक स्वाभाविक न रहे, श्वासनुवन्धिकता अथवा हृद्‌दौर्वल्य का कोई लक्षण प्रगट न होने से रोगी को उठने-बैठने की अनुमति नहीं दी जासकती है। रोगाक्रमण तीव्र होने से अथवा रोगी वालक, वृद्ध अथवा दुर्वल होने से इस नियम का पालन करना अत्यावश्यक है। रोगी को स्वच्छ हवा तथा रोशनी युक्त कमरे में गरम कपड़े ओढ़ाकर पलंग पर लिटा रखना चाहिए। खिड़की-दरवाजा खुली रखकर शुद्ध हवा के अवाध प्रवेश की व्यवस्था करना विशेष आवश्यक है। कमरे में उष्ण आवहवा वनाये रखने के लिये निर्धूम अंगार अथवा विजली के सन्तापक यन्त्र की व्यवस्था रखनी चाहिए। परन्तु किसी प्रकार से हवा को रोक कर अथवा धूम आदि से कमरे की आवहवा दूपित न होने पावे इस ओर ध्यान रखना आवश्यक है। शुद्ध वायु के अवाध प्रवाह रहने से रोग के उपसर्ग के रूप में श्वास-मार्ग में रोगाक्रमण की आशङ्का कम हो जाती है—और श्लेष्मकज्वर में यह उपसर्ग ही सबसे अधिक विपज्जनक माना जाता है।

औपधोपचार—पहिले ही वताया गया है कि श्लेष्मकज्वर वात-कफोल्वण सन्निपातज व्याधि है, सुतरां साधारण श्लेष्मकज्वर समझकर इसकी अव-हेलना कदापि उचित नहीं है। इस व्याधि में रोगी अत्यन्त दुर्वल हो जाते हैं—इस वात को ध्यान में रखकर प्रारम्भ से ही रोगी की वलरक्षा के ऊपर विशेप ध्यान देना आवश्यक है। इसलिये स्वल्प-कस्तूरीभैरव एक आदर्श औपधि है। इसमें अन्यान्य औपधियों के साथ कस्तूरी तथा वत्सनाभ का एकत्र समावेश रोगी की वलरक्षा तथा दोप प्रशमन की दृष्टि से अत्युत्तम माना जाता है। इसके वाद ही ज्वराधिकारोक्त कस्तूरीभूपणरस तथा रसायना-धिकारोक्त महालक्ष्मीविलास का स्थान है। कस्तूरी-भूपणरस अभ्रक, कस्तूरी आदि के संयोग के कारण वालरक्षा की दृष्टि से तथा श्वासमार्ग में आक्रमण-प्रतिरोध की दृष्टि से उत्तम है। वैसे ही महालक्ष्मी-विलास में स्वर्ण तथा अन्यान्य धातुओं के भस्म के साथ धतुरावीज आदि रहने से इसकी उपयोगिता कम नहीं है। परन्तु दोनों में ही वत्सनाभ का अभाव श्लेष्मक ज्वर की प्राथमिक प्रयोजनीयता की अनुपस्थिति को सूचित करता है—इसलिए अग्नि-मान्ध अधिकारोक्त श्रीरामवाणरस का संमिश्रण अधिकतर लाभदायक प्रतीत होगा। श्री रामवाणरस अग्निमान्द्य के लिये लाभकारी औपधि होने के कारण आमाशयान्त्रिक रोग संक्रमण के प्रतिरोध में सहायता करेगी ऐसा अनुमान किया जाता है। अवश्य ज्वरमोक्ष के २ दिन के पाश्चात् कफप्रकोप तथा शारीरिक दुर्वलता के ऊपर ध्यान रखकर वत्स-नाभ घटित औपधि वन्द कर उसके वदले में मोती प्रवाल आदि की भस्म संमिश्रित करना उचित होगा। अवश्य रोग के स्वल्पाक्रमण के क्षेत्र में संजीवनी वटी+गोदन्ती, सौभाग्यवटी+गोदन्ती, आनन्दभैरव रस, कफकेतु आदि का प्रयोग पर्याप्त होसकता है। अनुपान के लिए प्रयोजनानुसार आर्द्रक, तुलसी-पत्ती, पान का स्वरस, दशमूल, त्र्युपणादि अथवा पंचकोल क्वाथ अच्छा है। रोगी का कोष्ठगत वायु विकार के नाश तथा मूत्राधिक्य द्वारा ज्वरताप के ह्रास के लिये शुभ्रपर्पटी का प्रयोग लाभदायक प्रतीत होगा। शुभ्रपर्पटी के साथ रससिन्दूर मिश्रित कर धनियां, सौंफ का फांट, तृण-पंचमूल क्वाथ अथवा पडंग पानीय के साथ प्रयोग करने से उक्त लाभ अधिकाधिक मिल सकता है। रोगी को कोष्ठवद्धता रहने से ज्वरतापाधिक्य की अवस्था में अथवा रोगी की दुर्वलता तथा आमाशयान्त्रिक अनुवन्धिता के ऊपर ध्यान रखकर कभी भी जुलाव नहीं देना चाहिए। न्यूनतमज्वरावस्था में शोधन वस्ति प्रयोग से मलवद्धता को नष्ट करने की प्रचेष्टा करनी चाहिए। कस्तूरीभूपण रस में दन्तीमूल की उप-स्थिति के कारण स्वाभाविक मलभेद की आशा की जा सकती है—इस दृष्टि से कोष्ठबद्धता के क्षेत्र में कस्तूरीभूपण रस की उपयोगिता उत्तम प्रतीत होती

है। श्वासानुवन्धिक तथा आमाशयानुवन्धिक आक्रमण में यथोपयुक्त चिकित्सा करनी चाहिए, तत्सम्बन्ध में उन रोगों के अध्याय में चर्चा की गई है। परन्तु यहां आमाशयनुवन्धिक क्षेत्र में दो विशिष्ट औषधियों का उल्लेख किया जा रहा है। संजीवनी वटी ऐसे ज्वरातिसार के क्षेत्र में गरम जल के अनुपान से विशेष लाभदायक प्रतीत होगी। आनन्द-भैरव—जो कि भंग की पत्ती के स्वरस अपना क्वाथ से भावना देकर बनाई जाती है वह ज्वरातिसार के लिये अत्यन्त फलदायी औषधि मानी जाती है। नागरमोथा का स्वरस तथा तण्डुलोदक के साथ प्रयोग करने से ऐसे क्षेत्रों में चमत्कारी फल मिलता है। गंधप्रसारणी उपलब्ध होने पर इसका स्वरस भी उसमें संमिश्रित करने से आनन्दभैरवी अत्यन्त लाभदायक प्रतीत होगी। पाश्चात्य चिकित्सा विज्ञानोक्त औषधियों में से किसी भी औषधि श्लेष्मकज्वर के लिये विशिष्ट नहीं मानी जाती है। Aspirin and Dover's Powder १० ग्रेन की मात्रा में दिन में एक या दो बार ६-८ घण्टे के अन्तर में दिया जाता है। Sodium Salicylate भी मिक्श्चर के रूप में दी जाती है। अनुसंक्रमण के क्षेत्र में तथा श्वासानुवन्धिक रूप में Sulphonamides तथा Penicillin का प्रयोग विशेष लाभदायक है। अधिकांश क्षेत्र में अनुसंक्रमण रहने के कारण Sulphadiazine, Cibazol आदि दवा प्रयोग में लाई जाती हैं—परन्तु श्लेष्मक ज्वर के विषाणु के ऊपर Penicillin की कोई घातक क्रिया नहीं है—बल्कि कई क्षेत्र में श्लेष्मक ज्वर में Penicillin का प्रयोग हानिकारक सिद्ध हुआ है।

इस व्याधि में लाक्षणिक चिकित्सा के ऊपर विशेष जोर देना पड़ता है। पीड़ादायक शुष्ककास के लिये श्लेष्मज्वरोक्त उपायों का अवलम्बन करना चाहिए। पोदीना का सत्व तथा अजवाईन का सत्व मिश्रित कासौषधियों को चूसने से सामयिक लाभ हो सकता है। पोदीना का सत्व अथवा युकेलिपटस तेल उबलते हुए पानी में डालकर उसका वाष्प गले में लगाते रहने से गले की उत्तेजना में कमी होकर शुष्क-कास निवृत्त हो सकता है। कभी-कभी अहिफेन घटित कासौषधि—जैसे कि भैषज्यरत्नावली में उक्त सिंहास्यादिवटी, शशिप्रभावटी आदि के प्रयोग से भी लाभ होता है-परन्तु जहां श्वासनलिकायों में आश्लेष के कारण खांसी होती है वहां ही इन औषधियों के प्रयोग से अधिक लाभ मिलता है। निद्रानाश के लिये रसराजरस आदि वायुनाशक औषधि जटामांसी का शीतकषाय, बड़ी इलायची का चूर्ण, खुरासानी अजवाईन के क्वाथ आदि के साथ प्रयोग करने से निद्रा आती है। पाश्चात्य औषधियों के भीतर chloral hydrate तथा Bromide दिया जाता है। Barbitone group की औषधियां जहां तक हो सके श्लेष्मक ज्वर में उपयोग में नहीं लेना चाहिये। क्योंकि इससे हृत्पिण्ड की दुर्बलता से घोरतर विपत्ति आसकती है। तीव्र ज्वरयुक्त विष-क्रिया के क्षेत्रों में ज्वरताप कम करने के लिये प्रबन्ध करना चाहिये। कमरे के अन्दर शुद्ध हवा का आवागमन बिलकुल अबाध कर देना चाहिये। गरम पानी से रोगी के गात्रमार्जन के बाद उसे अच्छी तरह ओढ़ाकर रखने से काफी पसीना आकर ज्वरताप कम होजाता है-साथ ही साथ पसीने के साथ शरीरस्थ विष पर्याप्त मात्रा में निकल जाता है। इससे ज्वरताप कम न होने से रोगी के सिर पर वर्फ की थैली तथा सारा शरीर शीतल जल से मार्जन कर देना चाहिये। श्वासानुवन्धिक क्षेत्र में अगर फुफ्फुस में रक्तसंचय अधिक हुआ है तो आक्रान्त अंश में अलसी का अथवा विशेष प्रयोजन होने से राई का प्रलेप भी लगाया जाता है। एण्टिफ्लोजिष्टीन का प्रलेप भी लाभदायक है। पेनिसीलिन के सम्यग् प्रयोग से विशेष लाभ होता है। हृदय के अवसाद के गुरुत्व निर्णय के लिये नाड़ी गति की द्रुतता तथा अन्यान्य चिन्हों के ऊपर विशेष निर्भर न कर रोगी की मुखाकृति, श्वासकष्ट, प्रलाप, मुखमण्डल तथा हाथ-पैरों की अंगुलियों में नीलाभा तथा रोगी का आसन (बैठक)

के ऊपर अधिकतर ध्यान देना चाहिये। कुचिला युक्त वृ० कस्तूरीभैरव रस, नागार्जुनाभ्र, जवाहर-मोहरा, हेमगर्भ पोटली रस, मृगमदासव, मृतसंजीवनी सुरा आदि का प्रयोग विशेष लाभदायक प्रतीत होगा। पाश्चात्य औषधियों के भीतर Coramine, Strychnine आदि का सूचीवेध, Brandy आदि दिया जाता है। प्रयोजन होने पर इन क्रियाओं के सहायक रूप में stropanthin 1/500 gr. (in २० minims of sterile normal Saline solution धीरे-धीरे से सिराद्वारा प्रयोग किया जा सकता है। प्रयोजन होने से ८ से लेकर १२ घंटे के भीतर पुनरपि इसका प्रयोग किया जासकता है। ज्वरान्तिक दुर्बलता तथा अन्य उपसर्गों के लिये विशेष सावधानी की आवश्यकता है। पूर्ण स्वस्थ न होने तक शय्यात्याग करना उचित नहीं है। विशेष सावधानी से रोगी को बलकारक पथ्य, उत्तेजक तथा बलवर्द्धक औषधियां—जैसे कि वसन्तमालती, प्रवाल तथा मोतीभस्म, द्राक्षारिष्ट, मृतसंजीवनी सुरा आदि देते रहना चाहिये।

पथ्य—श्लेष्मक ज्वर में प्रथम से ही शुष्क तथा लघु भोजन देना चाहिए। यद्यपि लंघन का यह उपयुक्त क्षेत्र माना जाता है—परन्तु वर्त्तमान युग के मानवों में साधारणतः लंघन सहन शक्ति के अभाव के कारण सम्पूर्ण लंघन कराया नहीं जासकता है। विशेषतः श्लेष्मकज्वर में होने वाली दुर्बलता को ध्यान में रखते हुए रोगी को हल्का बलवर्धक भोजन देते रहना ही उचित है। शुण्ठी साधित दुग्ध के प्रयोग से श्लेष्मक ज्वर में कोई हानि नहीं होती है। ज्वर ताप मामूली रहने से धान या चावल की लाई, बिस्कुट, सेंकी हुई डबल रोटी आदि दी जासकती है। परन्तु ज्वर ताप अधिक रहने से स्थूल पदार्थ का उपयोग नहीं करना ही अच्छा है। ऐसे क्षेत्र में शुण्ठी साधित दुग्ध अथवा पंचकोल साधित यवागू आदि का प्रयोग किया जाता है। फलों में से मिट्ठा अनार सन्तरा, मुसम्मी आदि का रस दिया जा सकता है। तुलसी पत्ती की चाय में सोंठ या काली मिर्च का चूर्ण डालकर अथवा दूध शक्कर मिली चाय दी जासकती है। जब तक रोगी का ज्वरताप स्वाभाविक न हो तब तक स्थूल तथा भारी पदार्थों का उपयोग भोजन के रूप में कभी नहीं करना चाहिए, इससे आमाशयान्त्रिकानुबन्धिता तथा अन्यान्य उपसर्ग आने की आशंका की जाती है। ज्वर मोक्ष के बाद लघु तथा बलवर्धक अन्नपान की व्यवस्था करने से रोगी शीघ्र ही स्वस्थ हो सकते हैं।

ज्वर संप्राप्ति-चिकित्सा विधान

लेखक - श्री.दारोगाप्रसाद मिश्र जी. ए. एम. एस., व्याकरण-सांख्य-योगाचार्य,
काव्यतीर्थ, साहित्यशास्त्री, मोतिहारी (चम्पारण)

निखिल स्थावर-जंगम विषयक होने से, एवं जन्म-मरण के अन्दर अवश्यम्भावित्व स्थान रखने के कारण और सम्पूर्ण रोगों में पूर्व दृष्टिगोचर होकर मूलतः सारी धातुओं का विनाशक यह ज्वर, रोगों के मध्य में प्रधान रोग कहा गया है।

शंका हो सकती है कि यक्ष्मा आदि व्याधियों में ज्वर की तो प्रधानता नहीं रहती फिर वह स्वतन्त्र व्याधि तो नहीं गिना जायगा, पर देखा गया है कि ज्वर अगर यक्ष्मा में है तो उसे प्रलेपक संज्ञा देकर चिकित्सा भी उसकी पृथक् ही की जाती है। ज्वर-जन्य धातुक्षय का प्रभाव यक्ष्मा पर पड़ता है। सर्पों की तरह ज्वर की संख्यायें भी असंख्य हैं अतः इसकी प्रधानता कतई समाप्त नहीं होती।

'ज्वरस्त्वेक एव संतापलक्षणः' इस चरकानुशासन से धूप के द्वारा सन्तप्त त्वचि-सन्ताप लक्षण को ज्वर नहीं कहा जा सकता चूंकि "देहेन्द्रियमनस्तापी" लक्षण भी ज्वर का प्रधान और समवाय लक्षण है।

त्वग्गत सन्ताप का ज्ञान तो प्रत्येक व्यक्ति स्पर्शेन्द्रिय के द्वारा कर सकता है, पर आभ्यन्तरिक सन्ताप का ज्ञान तो वैद्य और रोगी ही के द्वारा हो सकता है।

सुश्रुत वचनोद्धारो माधवकर ने ज्वर का लक्षण "स्वेदावरोधः संतापः सर्वाङ्ग ग्रहणं तथा, युगपद् यत्र रोगे तु स ज्वरो व्यपदिश्यते" किया है।

यहां पर डल्हण ने "स्वेदावरोधः" शब्द का अर्थ स्वेदानिर्गमः किया है, परन्तु पैत्तिक ज्वर के लक्षण में 'स्वेदश्च जायते, के द्वारा स्वेद-निर्गम लक्षण स्पष्ट है। चरक ने "युगपद् यत्र रोगे 'तु' का 'तु' शब्द को प्रायिक मान कर कहीं कहीं पर स्वेदनिगर्म और कहीं कहीं पर स्वेदानिर्गम लक्षण बताते हैं। तरुण ज्वर प्रकरण में चरक ने तो स्पष्ट कहा है कि—

> स्रोतसां सन्निरुद्धत्वात् स्वेदं ना नाधिगच्छति।
> स्वस्थानात् प्रच्युते चाग्नौ प्रायशस्तरुण ज्वरे॥

अतः यहां पर विजयरक्षित (मधुकोप व्याख्या) का कथन ही हमें व्यावहारिक प्रतीत होता है। स्विद्यतेऽनेनेति स्वेदोऽग्निः तस्यावरोधः मन्दाग्नीति सुस्पष्ट। कोई कोई आचार्य स्वेदावरोधः का अर्थ वेगावरोधः भी करते हैं, पर तेरह वेगों की परिगणना में स्वेद शब्द का अन्तर्भाव कहीं भी नहीं है, देखिये उदावर्त-प्रकरण माधवनिदान का प्रथम श्लोक 'वातविण्मूत्र जृम्भाश्रु" आदि। अतः मन्दाग्नि अर्थ ही पर विद्वान चिकित्सकों एवं मेरा भी सुस्पष्ट शोध है। मन्दाग्नि होने के कारण ही ज्वर में लंघन कराया जाता है।

भेद

निज और आगन्तु भेद से ज्वर दो हैं। निज का अर्थ है अपने द्वारा मिथ्याहार-विहार से प्रकुपित दोषों के द्वारा, एवं आगन्तुक का अर्थ अभिघात-अभिचारादि से उत्पन्न पीडा और पश्चात् दोष-प्रकोप का संचार बताया गया है। परञ्च ज्वर में तो दोषकृत् भेद, धातुकृद् भेद और जातिकृत् भेद की गणना करनी चाहिए। यही कारण है कि चरक चिकित्सा स्थान में विधिभेद से ही ज्वर का संख्यान्तर निर्देश किया गया है। यथा—

विधिभेद से—
दो=शारीर—मानस,
दो=सौम्य—आग्नेय
दो=अन्तर्वेग—बहिर्वेग
दो=प्राकृत—वैकृत
दो=साध्य—असाध्य

पुनश्च दोष-काल के बलाबल को देखते हुए पांच तरह के भेद किए जाते हैं:—यथा—

सन्तत-सतत-अन्येद्यु:-तृतीयक और चतुर्थक।

पुनश्च आश्रय भेद से सात धातुगत ज्वरों की गणना पृथक् ही की जाती है। रसगत-रक्तगत आदि सात।

कारण के भेद से ज्वर आठ होते हैं:—यथा वातज पित्तज कफज आदि।

इसके अतिरिक्त चरक का केवल १३ सन्निपात होते हैं। सुश्रुत और वाग्भट ने केवल अभिन्यास ज्वर बतलाया है। उन्होंने कहा है कि यदि कफाधिक्य हो तो "अभिन्यास ज्वर" यदि वात-पित्त की अधिकता हो तो "हतौजस" ज्वर माना जाय। हंसराज निदान में शीताङ्ग, तन्द्रिक, प्रलापक, रक्तष्ठीवी, भुग्ननेत्र, अभिन्यास, जिह्वक, सन्धिक, अन्तक, रुग्दाह, चित्तविभ्रम, कर्णक, कण्ठग्रह (कण्ठकुब्ज) रूप में तेरह माना गया है।

इनमें शीताङ्ग और तन्द्रिक को वातकफ-प्रधान इन्फ्लुएञ्जा से समानता होती है। प्रलापक को वात-पित्त प्रधान टाइफस फीवर से, रक्तष्ठीवी को कफ-पित्त प्रधान निमोनियां से या निमोनिक प्लेग से समानता है। भुग्न नेत्र ज्वर को गर्दनतोड़बुखार (सेरिब्रोस्पाइनल फीवर) मेनिञ्जायटिस से सामान्य है। सन्धिक को सन्धिक ज्वर (रयूमेटिक फीवर) या दण्डक ज्वर से मेलजोल खाता है। रुग्दाह ज्वर की समानता पित्त प्रधान मोतीझरा (टायफायड फीवर) से होती है। इसके अलावे—आन्त्रिकज्वर, प्रलापकज्वर, श्वसनकज्वर, दण्डकज्वर, सन्धिकज्वर, उत्फुल्लिकाज्वर, वातश्लैष्मिकज्वर (श्लैष्मिकज्वर=इन्फ्लुएञ्जा) ककचज्वर, मसूरिकाज्वर, ...न्तिका, अंशुघातज्वर, कालज्वर, जीर्णज्वर, बलासकज्वर, प्रलेपकज्वर, श्लैपदिकज्वर, अर्द्धनारीश्वरज्वर, परिवर्तितज्वर, दुर्जलजनितज्वर, औपद्रविकज्वर, (१) भयज्वर (२) ...। क्रोधज्वर (४) कामज्वर (५) तीक्ष्ण औषधी (६) विषजन्यज्वर ये अभिषङ्ग अभिघात और अभिचार-अभिशाप से जायमान कहे जाते हैं।

ज्वर की उत्पत्ति के बारे में कहा गया है कि दक्ष के अपमान से क्रुद्ध भगवान शंकर के कोप से ज्वर हुआ है। यहां पर यह विचार करना है कि ज्वर के लिए तो हमें लौकिक ही हेतु अपनाना चाहिए, अलौकिक हेतु से क्या मतलब ? इस पर मेरा विचार है कि दक्ष: भगवान् वायु: तस्य अपमानो पादकं कर्म्म तेन संक्रुद्ध: रुद्र: पाचकाग्नि: तस्य नि:श्वासो वहिर्निक्षेप: तत् सम्भव: ज्वर:। अर्थात् वायु की विषमता से प्रकुपित्त पित्त जब बाहर निक्षिप्त हो जाता है तब ज्वर होता है।

सम्प्राप्ति

पृथक्-पृथक् वा द्वन्द्व और समस्त दोष जब प्रकुपित होकर रस का आश्रय कर लेते हैं तब वह रस जो आमाशय, अन्त्र से रसायनियों द्वारा आकर्षित होकर प्रतिहारिणी होकर यकृद् में और पयस्विनी होकर रसप्रथा में जाकर बाद दोनों ओर से हृदय में पहुँचता है एवं रक्त-संवहन के द्वारा सर्वाङ्ग में व्याप्त कर जाता है और ज्वर की उत्पत्ति हो जाती है। इसी चीज को चरक सुस्पष्ट कहे हैं कि समप्रकुपित: प्रविश्यमामाशयमुष्मण: स्थानं, उष्मणा सहमिश्रीभूत आद्याहार परिणामधातु रसनामागमन्ववेत्य रस स्वेदवहानि च स्रोतांसि पिधाय, पक्तिस्थानात् उष्माणं वहिर्निरस्य यदा सम्पूर्ण शरीरं सर्पति तदा ज्वरं अभिनिर्वर्तते।

सुश्रुत भी—दुष्टा: स्वहेतुभि: दोषा: प्राप्यामाशयमूष्माणा भी समन्वित है।

माधवकर ने मिथ्याहार विहाराभ्यां दोषा: ह्यामाशयाश्रिता:, वहिर्निरस्य कोष्ठाग्नि ज्वरदा स्यु

रसानुगाः । इसमें तथ्य यह है कि आमाशय, अग्न्याशय, पित्ताशय और क्षुद्रान्त्र स्थित क्रमशः हाइड्रोक्लोरिक एसिड, रेनेट पेप्सिग रुपी पालक पित्त एवं अग्न्याशयिक पाचक रस और यकृद् स्थित पित्ताशय का पित्त और क्षुद्रान्त्र का पेप्टोन रुपी सारे पित्तज भाव प्रतिहारिणी पयस्विनी द्वारा रसांकुरिकान्त्रों से रसायनियों से खींचा जाकर जब यकृद् रसप्रया में पहुँचते हैं । यकृद् से याकृती सिरा द्वारा अधरा महासिरा में बाद हृदय के दक्षिण अलिन्द में चला जाता है । रसप्रयासे वामारसकुल्या द्वारा वह रस वामा गलमूलिका सिरा में, बाद उत्तरा महासिरा द्वारा हृदय के दक्षिण अलिन्द होकर हृदय के समीप वाले अनाहतचक्र एवं प्राणदा नाड़ी स्थित प्राण वायु के द्वारा प्रेरणा प्राप्त करके महाधमनी से केशिकाओं में व्याप्त होकर शरीर को संतप्त कर देता है । रक्त में पित्त बाहुल्य हो जाता है यहां तक कि आग्न्याशय का इन्सुलीन जो साधकपित्त के नाम से पुकारा जाता है भी अपनी क्रिया समाप्त करके रक्त में प्रवेश पा जाता है । उस हालत में मधुर रस रूपी ग्लूकोज का अंश रूपान्तर में परिणत होकर पेशीश्रम में जल जाता है और रक्त पतला होकर रक्त कण के ऊपर रक्त कण का घर्षण प्रारम्भ हो जाता है । रक्त कण में १०० भाग में सात भाग लोहा का है । अतः रक्त कण के घर्षण में लोहे पर लोहे का घर्षण होकर विद्युत रूपी आग्नेय अंश का बाहुल्य होकर रक्त में गर्मी और भी बढ़ जाती है । एवं १०३-१०४ डिग्री ज्वर हो जाता है । न्यूनाधिक में यह क्रिया सभी ज्वरों में होती है । जहां पर रक्त में माधुर्य्य अंश का जलन नहीं होता चूंकि साधक पित्त के क्षरण के अभाव अगर हो तो वहां मन्दताप होता है और कफ का लक्षण दीखता है ।

पित्तज्वर में सारा पित्त तो रक्त में मिल ही जाता है पुनः रक्त कण के घर्षण से विद्युत् पैदा हुई और उधर साधक पित्त की क्रिया से ग्लूकोज मध्वीज-द्राक्षवीज माल्टोज रूपी मधुर अंश का अभाव उष्णता का मूल कारण होकर पित्तज्वर बनाता है । वात ज्वर में नाड़ीजन्य विकार अधिक देखे जाते हैं चूंकि वायु का संवहन स्थान नाड़ी ही है । सर्व प्रथम समान वायु ही नाभिस्थान स्थित मणिपूर चक्र से प्रेरणा प्रदान करके पित्तों को सिराओं द्वारा हृदय में भेजती है अन्त में तो पाचों वायु प्रकुपित होकर पूरे वातज्वर के वेपथु विषमो वेगः आदि लक्षण पैदा करते हैं ।

नोट—यह लेख क्रमशः चलेगा और चिकित्सा के बाद ज्वर प्रकरण समाप्त हो जायेगा ।

नागबला

लेखक—साहित्याचार्य वैद्य घनानन्द पन्त विद्यार्णव आयुर्वेद बृहस्पति D. Sc. A.
बाजार सीताराम, देहली।

काश्यप-संहिता चिकित्सास्थान यक्ष्म-चिकित्सा प्रकरण में (पृ० ७६ यादव जी द्वारा प्रकाशित)

शरन्मुखे नागबलामूलान्युद्धृत्य शोषयेत् ॥
सन्निधाय नवेभाण्डे ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः।
स्त्री शूद्रवर्जो विजने चूर्णं क्षीरेण पाययेत् ॥
प्रथमे दिवसे कर्षं ततश्चोर्ध्वं विवर्धयेत्।
ततः पलं पलं नित्यं पाययेत् पयसा शुचिः ॥
जीर्णेतस्मिन् पिबेत् क्षीरं भक्तोदक विवर्जितः।
मासात् सोपद्रवं शोषं हन्ति नागबला नृणाम् ॥
प्रजामायुर्बलं मेधां प्रयताय ददात्यपि।
षण्मासेन श्रुतधरः सर्वरोग विवर्जितः ॥
अतीतिकोऽपिच युवा भवेत् संवत्सरान्नरः।

यहां मासात् सोपद्रवं शोषं हन्ति नागबला नृणाम् अर्थात् श्वासकासादि उपद्रव सहित शोष (क्षय) को अन्नजल का त्याग कर केवल दुग्ध पथ्य से एक मास में दूर करती है। सुश्रुत में भी—'रसोनयोगं विधिवत् क्षयार्तः क्षीरेणवानागबला प्रयोगम्' सु० उ० तं० अ० ४१। ऐसा मिलता है।

चरक रसायनों में नागबला का प्रयोग निम्न प्रकार है—

अबालान्यजीर्णान्यधिगतवीर्याणिशीर्ण पुराणपर्णान्यसंजातान्यपर्णानितपसि तपस्येवा मासे नागबला मूलान्युद्धरेत्। तेषां सुप्रक्षालितानां माम्रमात्रमक्ष मात्रं वा श्लक्ष्णपिष्टमालोड्य प्रातः प्रयोजयेत्, चूर्णीकृतानि वा पिबेत् पयसा, मधु सर्पिर्भ्यां वा संयोज्य भक्षयेत् जीर्णे च क्षीरसर्पिर्भ्यां शालि-षष्टिकमश्नीयात्। संवत्सर प्रयोगादस्य वर्षशतमजरं वयस्तिष्ठति' च० चि० अ० १ पा० २।

यदि रसायन सेवन करना हो तो साथ में शालि (धान) षष्टिक (सट्टी) का भी सेवन कर सकते हैं। तथा—

पिबेन्नागबलामूलमर्धकर्षं विवर्धितम्।
पलंक्षीरयुतं मासंक्षीरवृत्तिरनन्नभुक् ॥
एष प्रयोगः पुष्ट्यायुर्बलारोग्य करः परः।
च० चि० अ० ११।

यहां क्षतक्षीण पर जो कि एक प्रकार क्षय के समान ही है—क्षीरवृत्तिरनन्नभुक्—अन्न को छोड़ कर केवल दूध का ही पथ्य दिया है। जतूकर्ण ने भी

नागबलामूलमर्धकर्षवृद्धया पलमानं मासं पेयं क्षीरमात्रवृत्तिना' इति चरक चक्रपाणि टीका। उपरोक्त अभिप्राय का समर्थन किया है। वाजीकरण औषधियों में भी नागबला का प्राधान्य है। अन्यान्य औषधियों में भी घृत, तैल, चूर्ण, आसवादिकों में तथा स्वतन्त्र भी इसके प्रयोग मिलते हैं।

आजकल गुरुपरम्परा प्राप्त सङ्केत वाली नागबला नहीं मिलती। मैंने आन्ध्र, मद्रास, कलकत्ता, बनारस, बम्बई आदि के अनेक प्रसिद्ध वैद्य और बौटानिस्टों से इसके विषय में पत्र-व्यवहार किया है आगे भी कर रहा हूं। खर्पर की तरह वैद्यक समुदाय में नागबला पर सन्देह ही है। खर्पर का तो कुछ वर्ष पूर्व मैंने विचार कर पत्रों में निश्चय निकाल दिया था कि यशद का मूल धातु खर्पर है, खर्पर के अभाव में यशद को व्यवहार में लाना इत्यादि। खर्पर का विशेष विवरण मैंने अपने रसेन्द्रसार संग्रह की टीका में दिया है। पर नागबला अभी अनिश्चित ही है।

कविराज वीरेन्द्र मोहनराय बनारस का कहना है कि नागबला का बङ्गला नाम गोरक्षचाकुले है। श्री भागीरथ स्वामी जी इसको फरीद बूटी कहते हैं। अभी हमने बाजार से फरीद बूटी मगाकर देखा तो यह पाठा के किस्म की बेल है इसमें नागबला के चिह्न नहीं मिलते। हरमेखला जिसका मूल प्राकृत में है संस्कृत में भी इसका अनुवाद है अन्त में हरमेखला में आये हुए शब्दों का निघण्टु दिया है वहां इस प्रकार है–ना अबला=गंगीतई। नागबला=गंगेतकी। हरमेखला-निघण्टु पृ० ८३ पंक्ति ४।

अमरकोष में भी—गाङ्गेरुकी नागबला झषा ह्रस्व गवेधुका–इस प्रकार नागबला का पर्य्याय है। यह नाम हरमेखला के नामों से सादृश्य रखता है। श्री अन्तू भाई जी ने भी अपने वनस्पति परिचय निघण्टु में नागबला का प्रसरण-शील लता रूप में चित्र दिया है पर वे स्वयं ही सन्दिग्ध हैं। कैयदेव निघण्टु की भाषा में-नागबला का अभी कुछ निश्चय नहीं ऐसा लिखा है–श्री यादव जी ने नागइव बलते सञ्चलति इति नागबला। जमीन पर फैलने वाली भूमिबला को नागबला कह कर श्री भगीरथ स्वामी जी के निर्णय की पुष्टि की है। परन्तु अमरकोष की रसाला टीका में-गाङ्ग जलमीरयतिगाङ्गेरुः सैव गाङ्गेरु की नागानां हस्तिनां बला नागबला झषति-वातमितिझषा (कटुतिक्ता च वातघ्नी। रा. नि.। वातघ्न गुण निघण्टु ने भी कहा है) (झष् धातु हिंसार्थक एवं दूसरा झषधातु झष् आदान संवरणयोः ये दोनों भुवादि हैं) गविभूमावेधते गवेधुः सैव गवेधुका ह्रस्वा चा सौ'गवेधुका चेति चत्वारि ककहीं' गगेरन इति ख्यातायाः। ऐसा मिलता है। गाङ्गं जलमीरयतीति और नागानां हस्तिनां बला–यह व्युत्पत्ति ध्यान देने योग्य है। पञ्जाब में यह भी कहावत है कि नागबला की वेल मकान में लगाने से सर्प का भय नहीं रहता। यह वेल वृक्षारोही होती है। राजनिघण्टु में—

> भद्रौदनी नागबला खरगन्धा चतुष्फला।
> महोदया महाशाखा महापत्रा महाफला।
> विश्वदेवा तथाऽरिष्टा सर्वाह्रस्व गवेधुका।
> देवदण्डा घण्टेत्याह्वारतुषोडश। रा० नि०

ये सोलह नाम नागबला के दिये हैं। यहां चतुष्फला चारफल वाली सम्भवतः इसके फल चार एक दण्ड पर लगे रहते हैं। महाशाखा बड़ी शाखावाली महापत्रा बड़े पत्ते वाली, महाफला बड़े फल वाली। शाखा, पत्र, फल का महत्व अन्य बलाओं की अपेक्षा जानना चाहिये। महादण्डा–इससे विदित होता है अन्य बलाओं की अपेक्षा इसका तना मोटा होता है। घण्टा शब्द से घण्टाकार पुष्प होना सम्भव है। इन विशेषणों से नागबला जमीन में फैलने वाली लता नहीं विदित होती है।'''नागबलामूलान्युद्धरेत्। तेषां सुप्रक्षालितानां त्वक्पिण्डमामुमात्र सक्तमात्रं वा श्लक्ष्णपिष्टमा-लोड्यपयसा प्रातः प्रयोजयेत्, यहां त्वक्पिण्ड शब्द से नागबला की त्वचा का मोटा होना और वृक्ष का बड़ा होना विदित होता है।

कर्नल चोपड़ा ने इण्डिजिनस ड्रग्स में नागबला Sida Spinosa सीडा स्पिनोसा लैटिन नाम दिया है। अपने वर्णन में बला के आठ भेद लिखे हैं। Watt ने S. Spinosa. U. C. Dutt ने S. Alba नागबला को लिखा है। —वनौषधि दर्पण।

—शेषांश पृष्ठ १०२१ पर

आयापान (Eupatorium-Ayapan)

लेखक—श्री० पं० कृष्णप्रसाद जी त्रिवेदी बी० ए० आयुर्वेदाचार्य ।

यह शतपत्री वर्ग (Compositae) की एक दिव्य वनौषधि है। इस वर्ग का वर्णन आगे गुलदाऊदी (सेवती) के प्रकरण में देखिए।

यह बूटी खासकर बंगाल प्रान्त में विशेष प्रचलित है। 'आयापान' यह इसका बंगला भाषा का नाम नहीं है। आजकल यह इसी नाम से सर्वत्र प्रख्याती पा रही है। किंतु खेद है कि इसका वर्णन आयुर्वेदीय निघण्टु में स्पष्ट रूप से नहीं मिलता। इसका कारण यह हो सकता है कि अति प्राचीन काल में यह यहां न होती हो। कहा जाता है कि दक्षिण अमेरिका या ब्राजील देश इसका मूल निवास-स्थान है। मारीशस तथा दक्षिण अमेरिका की अमेजान नदी के किनारे यह बहुत होती है, तथा फ्रेंच लोगों के द्वारा यह सर्व प्रथम भारत वर्ष में लाई गई है। ब्राजील देश की भाषा में इसे 'अयापान' कहते हैं। इसी लिये यह यहां अयापना, अयापनम् व आयापान नाम से प्रख्यात् हुई।

इस बूटी को प्राचीन भारतीय रंग रूप देने के लिये हमारे यहां के पंडितों ने इसका संस्कृत नाम—विशल्यकर्णी रख लिया है। इतना ही नहीं कईयों की तो यह मान्यता हो गई है, कि लंका युद्ध के अवसर पर श्री लक्ष्मण जी को जब शक्ती लगी थी, तब इसी बूटी के प्रभाव से वे शक्ति-शल्य से मुक्त हो चंगे हो गये थे। हमारे ख्याल से तो यह बूटी विशल्यकर्णी नाम को सार्थक नहीं कर सकती, शरीर में प्रविष्ट हुए शल्य को बाहर नहीं निकाल सकती। यह केवल सांघातिक चोट, घाव एवं रक्तस्राव को बन्द कर सकती है। अस्तु।

रत्नमाला ग्रन्थ में जो विशल्यकृत बूटी का उल्लेख आया है, वह भूपलाश, आस्फोत या बंगला हापरमाली नामक अन्य औषध है। किसी किसी ने भ्रम से इसे ही आयापान मान लिया है। इसका वर्णन 'भूपलाश' के प्रकरण में देखिये।

किसी ने विदेशी भांगरा (Tridax procumbens) को ही आयापान माना है। आगे 'भांगरा' प्रकरण देखिये।

आयापान की युपेटोरियम परफोलिएटम (Eupatorium perfoliatum) युपे० आरोमारिक्स

(E. Aromaticus) युपे. ट्रिप्लीनर्व्ह (E.Tripli-nerve) ये तीन जातियां अमेरिका में प्रसिद्ध हैं। भारत में केवल युपे. आयापान ही पाई जाती है।

नाम—

संस्कृत-विशल्यकर्णी। हिन्दी व बंगला-आयापान, आयापानी। मरेठी-अयापान, अयापानम्। गुजराती-अल्लाप, अल्लापा। पंजाबी-अरकल, तत्री। तेलगू व तामील-अयपानी, अयपन्नै। अंग्रेजी-बोनसेट (Benecet), थरोवर्द (Thorough-wort) लेटिन-युपेटोरियम आयापान।

उत्पत्ति स्थान—

अमेरिका, ब्राजील, मारीशियस ये इसके मूल उत्पत्ति स्थान हैं। अब भारतवर्ष में बंगाल, बम्बई कोंकण आदि प्रान्तों के आर्द्रस्थानों, झील एवं नदी के तटों पर बहुतायत से होता है। यह बगीचों में भी लगाई जाती है। सुमात्रा, जावा और सीलोन में भी यह प्रचुरता से पाया जाता है। उत्तरचीन और जापान में भी यह होता है।

विवरण—

इसका पौधा फैला हुआ सा क्षुप के आकार का, सुगंधित, ५ से ६ फीट तक ऊंचा होता है। मूल बहुत कम होती है। शाखायें सरल और बिखरी हुई कुछ लाल वर्ण की तथा अल्प रोवों से व्याप्त होती हैं।

पत्र—

सम्मुखवर्ती, एक साथ दो दो लगते हैं, जो ४ से ५ इञ्च लम्बे व पौन या ३/४ इञ्च चौड़े, दलदार, चिकने, भालाकार, दोनों किनारे आरे के समान कतरनदार होते हैं—पत्र का ऊपरी भाग खुरदरा नीचे का भाग कुछ ल्हेसदार व रोवों से व्याप्त होता है। पत्र की मध्य सिरा, कुछ लालवर्ण की वा बैंगनी रंग की तथा मोटी होती है। पत्र-डंठल शाखा या टहनी के चारों ओर वेष्टिन सा होता है। पत्तों के मलने पर उत्तम सुगंध आती है।

पुष्प—

तुर्रेदार, बैंगनी रंग के, छोटे छोटे होते हैं। किंतु तुर्रों में पुष्पों की संख्या बहुत कम होती है। इनमें मंद सुगंध या महक आती है।

स्वाद में संपूर्ण पौधा किंचित चरपरा और कसैला होता है। इसका कसैला स्वाद एक अजब प्रकार का होता है। प्रायः इसके ताजे या सुखाये हुये पत्ते औषधि प्रयोग में लाये जाते हैं। इसमें से जो सत्व निकाला जाता है, उसे अंग्रेजी में अयापनीन (Ayapanin) कहते हैं। वैसे तो संपूर्ण पौधा (पत्र, पुष्पान्वित शाखायें, कलिकायें, कोंपल आदि) औषध कार्य में आता है। ताजे पत्रों की अपेक्षा सूखे पत्तों में औषधि धर्म की मात्रा कम रहती है।

गुणधर्म—

यह रोचक, उत्तेजक, चेतनाकारक, पौष्टिक, व्रण संधानकारी, रक्तातिसार आदि किसी भी कारण से होने वाले रक्तस्राव को बन्द करने वाली है। अधिक मात्रा में यह प्रस्वेदक, विरेचक व वमनकारक है। थोड़ी और उचित मात्रा में–उष्णता निवारक, शांतिकारक, हृदय को शक्ति देने वाली है। इसका उष्ण क्वाथ-वमनकारक, और ज्वर-निवारक है। विषमज्वर (मलेरिया) में अच्छा काम करता है। इसका प्रतिनिधि-पाठा है।

"रक्तस्राव बन्द करने के लिए यह एक अमोघ औषधि है। रक्तातिसार, रक्तप्रदर, रक्तार्श आदि के कारण शरीर के किसी भी भाग से गिरने वाले रक्त के लिए इसके पत्तों का रस पीने से अत्यन्त लाभ होता है।"

—कविराज श्री० हरलाल जी गुप्ता।

"जिस मनुष्य को शस्त्र का गहरा घाव लगा हो उसे आयापान के पत्तों का रस पिलाने से, तथा इसी रस को घाव के स्थान पर लगाने से रक्तस्राव बन्द होजाता है। इसी प्रकार इसका रस पीने से आमाशय में से गिरने वाला खून भी बन्द हो

जाता है।"

—कविराज श्री० द्वारकानाथ जी विद्यारत्न।

"यह एक लघु क्षुप है, जो सर्व प्रथम फ्रांसीय द्वीपों से भारतवर्ष में लाया गया। देशी चिकित्सकों को अब भी इसके विषय में बहुत कम ज्ञात है। यद्यपि इसके प्रिय, किंचित सुगंधिमय, किन्तु विशेष गन्ध के कारण इसमें औषधीय गुण होने का उन्हें विश्वास है। मॉरीशियस में यह बहुत विख्यात है, और वहां इसे परिवर्तक (Alterative) तथा स्कर्वीनाशक मानते हैं। इसने अन्तःरूप से औषधीय उपयोग करने के लिए यूरुपीय चिकित्सकों को अब तक सर्वथा निराश रक्खा है। इसकी पत्तियों के शीतकषाय का स्वाद ग्राह्य एवं कुछ-कुछ मसाले के समान होता है, तथा यह एक उत्तम पथ्यरूप से पेय है। ताजी अवस्था में इसके पत्तों आदि को कुचलकर चेहरे (मुखमण्डल) के व्रण, क्षत आदि के परिमार्जनार्थ यह सर्वोत्तम व्रणशोधक है"।

—डा० ऐन्सली।

"प्रभाव में यह गुले बाबूना के समान है। सूक्ष्म मात्रा में यह उत्तेजक व बल्य है, तथा पूर्ण मात्रा में कोठे को मुलायम करने वाला है। इसका उष्ण क्वाथ वमन और पसीना लाने वाला है। शीतपूर्व ज्वर की शैत्यावस्था में तथा उग्र प्रदाहजन्य विकारों से पूर्व होने वाली शिथिलता (Depression) में इसका लाभदायक उपयोग किया जा सकता है। इसका शीतकषाय-आयापान पञ्चाङ्ग की मात्रा १ औंस को १ पाइण्ट पर्यन्त पानी में मिलाकर बनाया जा सकता है, तथा ३-३ घण्टे पर २-२ औंस की मात्रा में दिया जा सकता है। बॉटन (Bouton) के कथनानुसार मारीशियस (Mauritius) के औषधीय पौधों में यह सर्वश्रेष्ठ प्रतीत होता है। अजीर्ण तथा आन्त्र या फुफ्फुस के अन्य विकारों में शीतकषाय रूप से यह वहां नित्य ही उपयोग में लाया जाता है। उक्त द्वीप की सन् १९५४-५६ की विशूचिका या हैजा में शरीर के बाह्य भाग की ऊष्मा के पुनरावर्तन तथा रक्तसंभ्रमण की शिथिलता को दूर करने के लिए इसका अधिकता के साथ उपयोग किया "सर्पदंश" के प्रतिविष स्वरूप इसका अन्तः वहिः प्रयोग सफलता के साथ किया जा चुका

—डा० डाइमॉक

"आयापान के पत्र व पुष्प कैलम्बा के समान अमूल्य तिक्त, बल्य रूप से प्रभाव करते हैं, तथा इसमें स्वेदक गुण की भी विशेषता है। इसका कषाय, मद्य ग्लास पूर्ण की मात्रा में प्रति दो-दो घण्टे पश्चात् देने से अत्यन्त पसीना निकलता वायुप्रणालीय-कास, संक्रामक प्रतिश्याय तथा मांसपेशीय आमवात में उत्तम लाभ करता है, और कद्दूदाना तथा केचुओं को निकालने के लिए यह विरेचक गुण से फायदा पहुंचाता है।"

—डा० ह्विटल।

"यह एक उत्तेजक औषधि है। कम मात्रा में पौष्टिक, तथा अधिक मात्रा में विरेचक है।...... इण्डोचायना और गायना में इसके पत्तों का सत्व ज्वरनिवारक और पसीना लाने वाली औषधि के रूप में दिया जाता है। गायना, ब्राजील, फिलिपाइन और हिन्दुस्तान में यह औषधि "सर्पविष" को दूर करने के काम में ली जाती है। इसके लिए इसके सर्वाङ्ग का काढ़ा व पत्तों का रस पिलाया जाता है, तथा दंश स्थान पर लगाया जाता है।"

—कर्नल कीर्तिकर व मेजर बसु।

नोट—डाक्टर म्हसकर व केस का कथन है कि सर्पविष को दूर करने की इसमें बिल्कुल शक्ति नहीं है।

"इसके गुणधर्म बाबुना के समान हैं। अल्प प्रमाण में रोचक, उत्तेजक, चेतनाकारक व पौष्टिक; अधिक प्रमाण में इसके फॉंट को गरम-गरम पिलाने से स्वेदजनन और भी अधिक मात्रा में एकदम पीने से वामक है। इसके फॉंट को थोड़ी-थोड़ी मात्रा में देते रहने से शरीर में उष्णता आती है, हृदय की क्रिया स्पष्ट व जोरों से होने लगती है, नाड़ी जोरों

से होने लगती है, और किञ्चित् पसीना आने लग जाता है। इसका लेप उत्तम व्रणशोधन एवं व्रणरोपण है। इसके ताजे पत्तों को पीसकर व्रण पर बांधने से उत्तम लाभ होता है।

शारीरिक कमजोरी में और नूतन या तरुण शोथ प्रधान रोगों में 'थकावट' को दूर करने के लिये चाय के स्थान में इसका फांट दिया जाता है। तैसे ही 'विषमज्वरों' की शीतावस्था में, अथवा शीतावस्था के प्रारम्भ में ज्वर के वेग को मिटाने के लिए इसका गरम फांट दिया जाता है। यह फांट उत्तम उत्तेजक व बल्य होता है। हैजा की अवस्था में शरीर में उष्णता लाने के लिये तथा रक्ताभिसरण के सुधारणार्थ यह फांट विशेष उपयोगी है। 'अजीर्ण' या कुपचन जन्य रोगों में चाय के स्थान में इसका फांट दिया जाता है। चाय कुपचन को बढ़ाती है, और यह उसे दूर करता है। रक्तपित्त में भी यह फांट गुणकारी है। —डॉक्टर देसाई (औषधि-संग्रह)

रासायनिक-संगठन—

डाक्टर डाइमॉक के विश्लेषणानुसार इसमें दो सत्व पाये गये। इनमें से (१) एक वर्ण रहित उड़नशील तैल है, जो ताजे पौधे को जल के साथ परिश्रुत करने से प्राप्त हुआ, और (२) एक स्फटिक जैसा रवादार न्यूट्रल (उदासीन) सत्व, जिसका नाम उन्होंने अयापनीन (Ayapacin) रक्खा। जल में यह नहीं घुलता, ईथर या मद्यसार में घुल जाता है। इसके नुकीले दीर्घ स्फटिक या रवे होते हैं। यह १५८ या १६० डिग्री के उत्ताप पर सरलता से ऊर्ध्वपातित हो जाता है।

मात्रा—पत्र के स्वरस की मात्रा–३ माशे से १ तोला तक। शुष्क पत्र की मात्रा–१० से ३० रत्ती तक। तरल-सत्व–१ से २ फ्लु. ड्राम। घन-सत्व–५ से १२॥ रत्ती। शीत-कषाय आधी से २ फ्लु. आऊंस (या आवश्यकतानुसार) युपेटोरीन (घन)—१ से ३ ग्रेन (आध से १॥ रत्ती)।

शीतकषाय की निर्माण विधि–१ भाग आयापान को १० भाग उष्ण जल में, ३० मिनिट तक भिगोकर छान लें। यही फांट भी (Infusion) कहलाता है।

प्रयोग—

(१) थकावट, शैथिल्य आदि पर—

उक्त फांट अथवा आयापान के शुष्क ताजे पत्तों का मोटा चूर्ण २॥ तोला को खूब गरम जल, एक पाव में, मिट्टी के पात्र में डालकर, आध घण्टा तक ढांककर रक्खें। फिर छानकर शीशी में भरलें। मात्रा–२॥ तोले से ५ तोले तक। यह बहुत सुगन्धित चाय की तरह मसालेदार मालूम देती है। शरीर में उत्साह, चैतन्यता को भर देती है। इससे दस्त भी साफ होता है।

(२) क्षत, व्रण तथा अन्य बाह्य रक्तस्रुति पर —

इसके पंचांग को या पत्तों को पीसकर बांधने से से अथवा इसके पत्र-स्वरस में रूई का फाया तरकर रखने से परम लाभ होता है।

(३) सर्प या बिच्छू के दंश पर—

इसके पंचांग को या पत्तों को पीसकर प्रलेप करें, तथा इसके स्वरस का पान करावें।

: पृष्ठ १०१७ का शेषांश :

चरक मधुर स्कन्द में बला के छै भेद हैं। इनमें नागबला भी है।

एक प्रसङ्ग हम यहां देते हैं–हमें प्रतिदिन भ्रमण करने में रायबहादुर प्यारेलाल जो कि भारत सरकार के किसी डिपार्टमेंन्ट में बड़े ऑफीसर थे चिकित्सा प्रसङ्ग में कहने लगे कि हमारे दफ्तर के एक दफ्तरी जो बहुत दिन से ज्वर खांसी से पीड़ित था। आखिर उसकी डाक्टरों के बोर्ड ने परीक्षा कर क्षय निर्णय किया और एक दम छै मास की लम्बी छुट्टी दिला दी। वह काङ्गड़े की तरफ अपने गांव में चला गया। वहां अपने ग्राम के वैद्य जी की चिकित्सा की। वैद्य जी ने ३०-३५ दिन में केवल दूध पिलाकर निरोग कर दिया। ठीक छै माह पूरे होने पर निश्चित तारीख पर वह हाजिर होगया लोगों को अचरज हुआ, फिर डाक्टरों का बोर्ड बैठा, बोर्ड ने रोग-मुक्त करार दिया और वह नौकरी करने लगा।

वै० दौलतराम जी सोनी आयु०

आचार्य—महाकौशल आयुर्वेद महाविद्यालय,
दीक्षितपुरा, जबलपुर।

"धन्वन्तरि के पाठक श्री सोनी जी से सुपरिचित है। आपके अनेक लेख धन्वन्तरि में प्रकाशित हो चुके हैं। महाकौशल आयुर्वेद महा विद्यालय में आप योग्य अध्यापक हैं, आपकी लेखन शैली बड़ी ही सुन्दर और सरस है। जिस विषय पर अपनी लेखनी उठाते है उसे हर पहलू से सरल भाषा में समझाते हैं और आपके लेखों से पाठकों के ज्ञानवर्द्धन में पर्याप्त सहायता मिलती है। आपने धन्वन्तरि में प्रकाशनार्थ अपने अनुभूत पांच प्रयोग भेज कर बड़ी कृपा की है। प्रयोगों की व्यवहार विधि बड़ी विस्तार से समझाकर लिखी है। आशा है पाठक इन प्रयोगों से अवश्य ही लाभान्वित होंगे।"

—सम्पादक।

वेतालेश्वर रस

हिंगुलोत्थ पारद	शुद्ध गंधक
शुद्ध वर्की हरताल (कच्ची)	स्वर्णभस्म
मुक्तापिष्टी	शुद्ध वच्छनाग
कालीमिर्च	सुहागा चौकिया भुना हुआ

—प्रत्येक समभाग

पारद और गंधक की निश्चन्द्र कज्जली करें। हरताल, वच्छनाग और सुहागा अलग खरल में लेकर सूक्ष्म चूर्ण करें। कज्जली में प्रथम स्वर्णभस्म और मुक्तापिष्टी मिला कर भली भांति खरल करें। फिर हरताल, वच्छनाग और सुहागा का मिश्रित चूर्ण मिलाकर खरल करें। अन्त में कालीमिर्च का चूर्ण मिलाकर २ घंटे अच्छी तरह खरल करके शीशी में भरलें।

मात्रा—१ रत्ती प्रति ३ या ४ घंटों पर शहद के साथ। इसके साथ अन्य कोई भी औषधि न मिलाई जावे तो अधिक अच्छा है। बालकों एवं क्षीण व्यक्तियों के लिये बलानुसार कम मात्रा में दें। रत्ती

भर यह दवा तौलकर मात्रा का अनुभव करलें अन्यथा भूल होने की संभावना है।

उपयोग—इस महौषधि का उपयोग मस्तिष्क और सुषुम्ना में उत्पन्न क्षोभ पर अत्यन्त आश्चर्य जनक होता है। सन्निपात में जब दोष मस्तिष्क में प्रविष्ट होकर प्रलाप की अवस्था उत्पन्न करते हैं तब इसका प्रभाव अमृत-तुल्य होता है। रोगी कितना भी प्रलाप क्यों न कर रहा हो, उठकर भागता हो, मारता काटता हो. इसकी ३ मात्राएँ ३-३ घंटे पर शहद से दीजिये। पहिली ही मात्रा से लाभ होगा और तीसरी मात्रा देने के बाद रोगी सो जावेगा। अधिकांश रोगी सोकर उठने पर ज्वर मुक्त पाये जाते हैं और उन्हें भूख इतनी तीव्र लगी हुई होती है कि तुरन्त पथ्य देना आवश्यक होता है। इस प्रकार के एक रोगी ने तो भूख से व्याकुल होकर इतना उपद्रव मचाया था कि अन्य वैद्यों को सन्निपातज प्रलाप का भ्रम हो गया था। उन्होंने पथ्य देने से मुझे रोका किन्तु मैंने अपनी जिम्मेदारी पर उसे मूंग की दाल के साथ दलिया खिलाया। खाते ही उसका प्रलाप बन्द होगया। कुछ रोगी ऐसे भी मिलते हैं जिनके दोष अत्यन्त प्रवृद्ध हुआ करते हैं, उन्हें इतने शीघ्र लाभ नहीं होता। ऐसी दशा में धैर्यपूर्वक औषधि देते रहना चाहिये, अवश्य लाभ होगा।

मस्तिष्कावरण प्रदाह (Meningitis) और गर्दनतोड़ बुखार (Cerebro-Spinal fever) में भी इसके प्रयोग से निश्चित लाभ होता है। यदि चिकित्सा उचित समय पर आरंभ की जावे तो रोगी का मरना असंभव है। लगभग १ सप्ताह तक इस औषधि के सेवन से उपर्युक्त दोनों रोग अच्छे होते हैं। राजयक्ष्मज मस्तिष्कावरणप्रदाह (Tubereculous Meningitis) में इसका प्रयोग करने का अभी तक अवसर प्राप्त नहीं हुआ, किन्तु आशा है कि उसमें भी लाभ करेगा।

जिस सन्निपात में रोगी निश्चेष्ट और अचेत पड़ा रहता है अथवा ठंडा पसीना आता हो, उसमें इसका प्रयोग कदापि न करें।

यह मेरे स्वर्गीय पितामह का प्रयोग है। इसके द्वारा मैंने सन्निपात (प्रलापक) के सैकड़ों रोगी स्वस्थ किये हैं।

२—मुक्ताभस्म विशेष—

अनबिंधे मोती	१ तोला
सफेद संखिया	३ माशे

—कुमारी स्वरस में घोट टिकिया बना सराव संपुट में रख, १ सेर कंडों की आग में फूंक दें।

मात्रा—१/२० से $\frac{1}{8}$ रत्ती तक पान के बीड़े में अथवा शहद से। विशेष अवस्थाओं में आध रत्ती तक। २४ घण्टों में ४ या ६ से अधिक मात्रायें न दें।

उपयोग—स्वरभंग और गले की पीड़ा में इसकी ३-४ खुराक पर्याप्त होती हैं। जहां पेनिसिलीन लाजेंजेज़ से लाभ न हुआ हो वहां भी इसका प्रयोग सत्वर लाभप्रद होता है। किन्तु यह ध्यान रहे कि मुख और गले के रोगों के लिये सदैव इसका प्रयोग पान के बीड़े में ही करें।

पायोरिया की नवीन अवस्था में इसके नियमित प्रयोग से कीटाणु नष्ट होकर, पूय की उत्पत्ति बन्द होती है।

बहुमूत्र में इसका प्रयोग शहद से करने से मूत्र की मात्रा कम हो जाती है।

चिरकारी कफप्रकोप जिसमें हमेशा कफ थोड़ा बहुत निकलता ही रहता है, बार-बार जुकाम होता है, खांसी भी आती है—इसके कुछ दिनों के प्रयोग से जड़ से जाता है।

शीत ऋतु में मक्खन या मलाई के साथ इसका प्रयोग अत्यन्त बल-वीर्यवर्धक है।

उष्ण ऋतु में और पित्त प्रकृति वाले रोगियों में इसका प्रयोग अत्यन्त सावधानी से करें। घी दूध का सेवन पर्याप्त मात्रा में करावें।

३—शक्तिवर्धक चूर्ण—

लौहभस्म	१ तोला
शंखभस्म	२ तोला
अश्वगन्धा	३ तोला
चावल का कोंढ़ा	४ तोला
बकरे का पित्त	१० तोला

(भुसी दूर किये हुये चावलों को कूटने पर जो मटमैले रंग का चूर्ण निकलता है उसे "चावल का कोंढ़ा" कहते हैं।)

विधि—प्रथम चारों वस्तुओं को खरल में भलीभांति मिलाकर पश्चात् पित्त मिलावें। फिर ३ घण्टे घुटाई करके धूप में सुखाकर चूर्ण करके रखलें।

उपयोग—अत्यन्त शक्तिवर्धक, रक्तवर्धक और दीपन-पाचन है। किसी भी रोग से उत्पन्न क्षीणता को दूर करने के लिये अत्युत्तम एवं सस्ता प्रयोग है। सामान्य श्वेतप्रदर में भी लाभ पहुँचाता है।

मात्रा—२ रत्ती से ४ रत्ती तक शहद के साथ अथवा किसी आसव में घोलकर, प्रत्येक भोजन के पश्चात्।

४—जीरकाद्य चूर्ण—

जीरा सफेद भुना हुआ	४ तोला
हरड़ छोटी भुनी हुई	४ तोला
सोंठ	४ तोला
चित्रकमूल छाल	२ तोला
काला नमक	७ तोला
नीबू का सत	१ तोला

विधि—सबको एकत्र कर चूर्ण करके रखलें।

मात्रा—१ माशा से २ माशे तक जल, तक्र अथवा जम्भीरीद्राव के साथ प्रति ४ घण्टे पर किन्तु तीव्र अवस्थाओं में १-१ घंटे पर।

उपयोग—यह चूर्ण अत्यन्त सस्ता और बनाने में सरल होते हुए भी अत्यधिक गुणकारी है। यह उत्तम दीपन पाचन और अपान वायु निस्सारक है। साधारण पाचक चूर्ण के समान तो इसका प्रयोग होता ही है किन्तु नीचे लिखी हुई अवस्थाओं में इसका प्रयोग विशेष महत्वपूर्ण है—

१—तीव्र आंत्रशूल और वायुगुल्म-इसके २ प्रकार होते हैं—अ—आध्मानयुक्त और आ—वमन-अतिसार युक्त। प्रथम प्रकार अधिक मिलता है और दूसरा यदा-कदा। आध्मानयुक्त शूल या वायुगुल्म के लिये उक्त जीरकाद्य चूर्ण १-१ माशा और शंखभस्म २-२ रत्ती की अलग अलग पुड़ियां बनावें और रोगी को निम्न लिखित निर्देश दें—

"दोनों प्रकार की १-१ पुड़िया खोलकर उनकी दवायें अच्छी तरह मिलाकर तुरन्त फांक लो। पानी का गिलाश हाजिर रहे। दवा मुंह में जाते ही फौरन पानी के घूंट से निगल जाओ। 'चवाने या स्वाद लेने की सख्त मनाई' है।

यदि दर्द अत्यन्त भयंकर प्रकार का है तो पीने के पानी में १-१ तोला जम्भीरीद्राव भी मिला सकते हैं।

इसकी पहली ही मात्रा से डकार आती है, अपान वायु का अवरोध दूर होता है और इस प्रकार आध्मान-युक्त उदर पीड़ा तत्काल शमन हो जाती है। यदि पहली ही मात्रा से रोगी को पर्याप्त लाभ हो जावे तो ३-३ घण्टे पर दुहरावें, यदि अल्प लाभ हो तो १-१ घंटे पर और यदि लाभ न प्रतीत हो तो १५-१५ मिनट पर भी दुहरा सकते हैं। इसके लिए शंखभस्म उत्तम और नई होना चाहिए जिसे जीभ पर रखने से छाला पड़ जावे। यदि शंखभस्म में उपयुक्त गुण न होंगे तो लाभ भी न होगा। यहां कुछ लोग सोचेंगे कि इस योग के सेवन से मुंह में छाले आ सकते हैं, किन्तु यह सोचना गलत है। यदि ऊपर बतलायी हुई विधि का अक्षरशः पालन किया जावेगा तो छाले कदापि नहीं आ सकते। किन्तु यदि दोनों दवायें भलीभांति मिलायी नहीं गई अथवा यदि दवा को देर तक मुंह में रोका गया तो छाले अवश्य आ

जावेंगे। इस लिये रोगी को निर्देश देते समय जरा भी लापरवाही न करें।

वमन-अतिसारयुक्त शूल रोग जिसकी शास्त्रीय संज्ञा 'विशूचिका' (कालरा नहीं) है-उसमें इसके सेवन से लाभ नहीं होता। इसके लिये 'समीरगज केशरी' का प्रयोग तत्काल फलदायक है।

२—आध्मानयुक्त अतिसार-कुछ रोगी ऐसे मिलते हैं जिन्हें भोजन करने के थोड़ी देर बाद आध्मान हो जाता है। १-२ घंटे आध्मान रहने के बाद पतले दस्त लगने लगते हैं और आध्मान दूर हो जाता है। नित्य यही क्रम चलता रहता है। इसके लिये ऊपर बतलायी हुई विधि से शंखभस्म के साथ इस चूर्ण की ४ मात्रायें प्रतिदिन देते रहने से और भोजन में केवल मूंग की दाल और गेहूँ का दलिया देते रहने से ८-१० दिनों में रोग निर्मूल हो जाता है, लाभ पहले ही दिन प्रतीत होने लगता है। पथ्य पालन की ओर अत्यन्त सतर्क रहें अन्यथा कुछ भी लाभ न होगा। दूध कदापि न दें, चाय पीने की आदत हो तो पानी में चौथाई दूध मिलाकर बनाई हुई चाय दे सकते हैं। यदि रोगी लंघन सहन करने योग्य हो तो १ दिन लंघन कराना अधिक गुणकारी होगा। इस प्रयोग से अनेक निराश रोगी लाभ उठा चुके हैं। एक रोगिणी जो सरकारी अस्पताल में २ महीने भरती रही और किंचित मात्रा में भी लाभ न होने पर डाक्टर ने असाध्य कहकर डिस्चार्ज कर दिया था, उसे इस औषधि की पहली ४ मात्रायें लेने के बाद न पेट फूला और न दस्त ही लगे। १ सप्ताह में ही वह पूर्णतया स्वस्थ हो गयी।

३—अन्नजा हिक्का-जीरकाद्य चूर्ण जल के साथ दें। एक ही मात्रा पर्याप्त है। आवश्यकता होने पर आधे घंटे बाद दूसरी मात्रा दी जा सकती है।

४ अरुचि—इस चूर्ण को आवश्यकतानुसार लेकर दाल में मिलाकर खावें अथवा जल मिलाकर चटनी के समान प्रयोग में लेवें।

५—प्रवाहिका-प्रथम रात्रि को सोते समय १ माशे जीरक चूर्ण में ३ रत्ती इच्छाभेदी रस मिलाकर ठंडे जल से दें। इससे दूषित मल निकल जाता है और मरोड़ आदि में कमी आ जाती है एवं बार-बार शौच के लिये जाने की आवश्यकता में कमी आ जाती है। इसके बाद दही या मठे के साथ दिन में ४ मात्रायें देते रहें। २-३ दिनों में पाचन क्रिया बिलकुल ठीक हो जावेगी।

पथ्य—दही भात अथवा मूंग की दाल या गेहूँ का दलिया। यह प्रयोग साधारण प्रकार की प्रवाहिका के लिये है। तीव्र प्रकार में इसके प्रयोग से लाभ की आशा न करें।

ज्ञातव्य-यदि इस चूर्ण में नीबू के सत के स्थान पर नीबू के स्वरस की ७ भावनायें दी जावे तो इसके गुण बहुत अधिक बढ़ जाते हैं।

५ खाज-नाशक मलहम—

गन्धक	१ तोला
वेसलीन अथवा शतधौत घृत	१० तोला

विधि—गंधक का अत्यन्त सूक्ष्म चूर्ण करके वेसलीन या शतधौत घृत मिलाकर भली भांति फेंटकर मलहम तैयार करें।

उपयोग—यह मलहम अत्यन्त साधारण होते हुए भी खाज को नष्ट करने में अद्वितीय है। भयंकर से भयंकर खाज को भी यह जड़ से नष्ट कर देती है। किन्तु अन्य चर्मरोगों पर इसका कोई विशेष प्रभाव नहीं होता। खाज से मेरा आशय उस चर्म रोग से है जो अंगुलियों की जड़ों के आस-पास से प्रारम्भ होकर सारे शरीर में फैलता है, पिडिकायें अरहर की दाल के बराबर पीले रंग की होती हैं, फूटने पर पीला मवाद निकलता है और असह्य कण्डू होती है।

यदि सारे शरीर में यह रोग हो तो पहले साबुन लगाकर खूब नहाना चाहिये और खुरदरे कपड़े से रगड़ कर सब फुंसिया फोड़ डालना

चाहिए। स्नान के पश्चात् शरीर भलीभांति शुष्क हो जाने पर उपर्युक्त मलहम थोड़ा थोड़ा लेकर सारे शरीर में मले, फुंसियों वाले स्थान पर विशेष रूप से अधिक रगड़ें। ३ दिनों तक मलहम का प्रयोग दिन में २-३ वार करें, नहाना और कपड़े वदलना वन्द रखें। चौथे दिन गर्म पानी और सावुन से स्नान करें और पहिनने ओढ़ने के सब कपड़े उवाल कर धो डाले।

इस प्रकार इस मलहम का प्रयोग करने से भयंकर से भयंकर खाज ३ दिन में दूर होजाती है। यदि कुछ फुंसियां शेष रह जावे तो उन पर २-३ दिन मलहम लगाते रहने से वे भी ठीक होजाती हैं। कुटुम्ब के जितने भी व्यक्तियों को यह रोग हो उन सबको इसका प्रयोग एक साथ करावें अन्यथा एक से दूसरे को संक्रमण होता रहता है।

यदि खाज थोड़े से ही स्थान में हो तो उपर्युक्त कोर्स की आवश्यकता नहीं पड़ती। केवल फुंसियां फोड़कर गर्म पानी और सावुन से धोकर मलहम रगड़ते रहने से २-४ दिनों में पूर्णलाभ हो जाता है।

(पृष्ठ १०२७ का शेषांश)

योग—शंख भस्म प्रवाल भस्म
शुक्ति भस्म कपर्दिका भस्म
—प्रत्येक १-१ तोला

शृंग भस्म	६ माशा
अभ्रक भस्म	३ माशा
मण्डूर भस्म	१ तोला
अकीक भस्म	६ माशा
अमृतासत्व	१ तोला
श्वेत मिर्च	३ माशा

अर्क गुलाब घुटित करे।

मात्रा—४ रत्ती से ६ रत्ती तक। दूध, या पानी के साथ।

पायोरिन—

मात्र-पायोरिया के लिये सर्वोत्कृष्ट।

योग—नीम के पत्ते	१ सेर
फिटकिरी	१ छटांक

—दोनों को हांडी में कपड़मिट्टी कर फूंक दे। स्वांग शीतल होने पर निकाल पीस लें। इसे मंजन के प्रकार दिन में तीन-चार वार उपयोग करें। इससे पायरिया नहीं जाने की धारणा मिथ्या हो सकती है।

(पृष्ठ १०२८ का शेषांश)

शंकर वटी—

तुलसी की पत्ती	६ तोला
कालीमिर्च	१ तोला
लवङ्ग	आधा तोला

विधि—सव चीजों को खरल में कूट कर थोड़ा सा जल देकर मटर वरावर गोलियां वनाकर छाया में सुखालें।

मात्रा—१ गोली से ४ गोली प्रतिदिन सेवन करना।

गुण सभी प्रकार की खांसी में लाभदायक है।

दाद की दवा—

सुहागा	२ तोला
नवसादर	१ तोला
कल्मी शोरा	आधा तोला
फिटकरी	३ माशा

विधि—सव चीजों को एक में मिलाकर खूब खरल करलें। फिर ८ तोला साफ पानी में मिलाकर शीशी में रख दो।

प्रयोग प्रथम दाद को किसी वस्तु से थोड़ा खुजला कर दवा फुरहरी से लगाना चाहिए। यह पुरानी दाद को भी नाश करती है।

नोट—यह दवा प्रथम वार थोड़ी लगती है फिर ज्यों ज्यों रोग दूर होता है, कम लगती है।
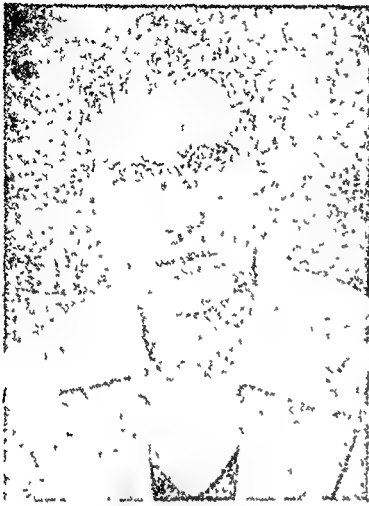
कविराज रामकिशन गुप्ता आयुर्वेद विशारद

रामकृष्ण आयुर्वेदिक फार्मेस्युटिकल वर्क्स,

विछोर (गुड़गांवा),

"आप उत्साही, योग्य एव -अन्वेषण-प्रेमी व्यक्ति हैं। आपके हृदय में आयुर्वेद की उन्नति करने की तीव्र लगन है। सरस कवि भी हैं। आप हजार-पुटी अभ्रक के स्थान पर सरल, अल्प मूल्य अभ्रकभस्म के निर्माण में जुटे हैं तथा आपको आशा है कि आपकी अभ्रकभस्म हजार पुटी अभ्रकभस्म के समकक्ष गुणशाली होगी। आपके निम्न प्रयोग उपयोगी हैं।"

—सम्पादक।

रोका

जायफल	लवंग फूलदार	सैंधा नमक
इन्द्रजौ मीठा		१-१ तोला

—अधकुट कर मृतसंजीवनीसुरा १० तोला मिला १ सप्ताह धूप में बोतल में बन्द रखें। पश्चात् छान अमृतधारा (कपूर, पिपरमेंट, अजवाइन,-सत) १६० बूंद मिश्रण कर स्वरक्षित रखें।

मात्रा—१॥-१॥ माशा अर्क लवङ्ग या प्याज के रस में या पानी में ३-३ घण्टे पर दें।

गुण—कै-दस्त चाहे हैजा से हों या अजीर्ण से तत्काल बन्द कर देता है।

पेचीना—

हर प्रकार के पेचिश के लिये लाभप्रद—

गोंद कीकर	१ औंस
कास्ट्रायल (अरण्डी का तैल)	१ औंस
कर्पूररस	१२ रत्ती
शंखभस्म	१२ रत्ती
पानी शुद्ध या अर्क सौंफ	१२ औंस

—प्रथम शुद्ध अरण्डी के तैल में गोंद पीसकर खरल करें, कपूररस और शंखभस्म भी मिला दें। पश्चात् थोड़ा-थोड़ा अर्क डालते जांय और चलाते जांय। इस प्रकार तमाम अर्क मिलादें। शीशी में भर रखें।

मात्रा—पूर्ण १ औंस, तीन या चार बार में लें।

जूड़ीना—

तुलसी प्रवाही	१ औंस
किरात प्रवाही	१ औंस
निम्ब प्रवाही	१ औंस
सोंठ का तैल	३ माशा
कुचला सत्व	६ रत्ती
पीपरमिण्ट का तेल	३ माशा
शहद उत्तम	१ औंस

—तमाम एकत्रकर औषधि सिद्ध करें।

मात्रा—६ माशा से १ तोला तक पानी मिला करदें।

गुण—विषमज्वर (मलेरिया) के लिये अनोखी दवा है।

खटिका—

गुण—रक्त की कमी और चूने की पूर्ति के लिये महान योग।

—शेषांश पृष्ठ १०२६ पर।

श्री पं. रामानुग्रह शास्त्री, आयुर्वेद विशारद

श्री० शंकर औषधालय, बांसगांव (आजमगढ़)।

आयु—३१ वर्ष चिकित्साकाल - १२ वर्ष जाति—ब्राह्मण

प्रयोग विषय-१—सामयिक रोग २-नेत्ररोग ३-हिक्का ४—खांसी ५—दाद रोग

"श्री० शास्त्री जी संस्कृत एवं ज्योतिष के भी ज्ञाता हैं। शंकर संस्कृत विद्यालय में अध्यापक हैं तथा प्राइवेट रूप से आयुर्वेद-चिकित्सा द्वारा जनता की सेवा कर रहे हैं। स्थानीय रामराज्य परिषद के प्रधान मन्त्री हैं। कई पुस्तकें भी लिखी हैं। आपके प्रयोग उपयोगी और सफल प्रतीत होते हैं। पाठक अवश्य लाभ उठावें"

—सम्पादक।

शंकरधारा—

सत् अजवाइन	१ तोला
सत् पिपरमेंट	१ तोला
देशी कपूर	१ तोला
लवङ्ग तैल	¼ तोला

विधि—प्रथम तीनों वस्तुओं को एक साफ शीशी में डालकर धूप में कार्क लगाकर रखदें। घुल जाने पर लवङ्ग तैल मिलादें। औषधि तैयार होगई।

मात्रा—२ बूंद से ८ बूंद तक है, बच्चों को चौथाई बूंद से १ बूंद तक।

अनुपान—गर्म जल, अदरख स्वरस, चीनी, ताजा जल, अर्क सौंफ, शहद तथा दूध यथावश्यक अनुपान के साथ व्यवहार कर सकते हैं। वाह्य प्रयोग में वैसे ही लगा सकते हैं या घी-तैल-वेसलीन तथा मक्खन आदि में मिलाकर दें।

गुण—विशूचिका (हैजा), उदरशूल, गठिया, आमातिसार, कफरोग, खांसी, नजला, जुकाम, व्रण, कृमि, चोट, दाद, खाज इत्यादि पर वैद्य अनुपान भेद से प्रयोग कर सकते हैं। अत्यधिक लाभप्रद है।

नेत्ररक्षक—

घृतकुमारी रस	२ तोला
नीम के पत्तों का रस	१। तोला
अफीम	२ रत्ती
श्वेत फिटकरी	४ रत्ती

विधि—सभी वस्तुओं को मिलाकर खूब खरल करे और छान कर शीशिओं में भर दे। औषधि अर्क रूप में तैयार होगई।

मात्रा—प्रतिदिन सुबह-शाम आंख में ४-४ या ५-५ बूंद डालें।

गुण—दुखी हुई आंखें, लाली, पानी का बहना, फूली और माड़ा इत्यादि नेत्ररोगों में लाभकारी है।

हिक्का—

आम की हरी पत्ती	१ तोला
धनियां	१ तोला

विधि—दोनों चीजों को एक में कूट कर चिलम में रखकर तम्बाकू की तरह पीने से हिक्का तत्काल बन्द हो जायगी।

—शेषांश पृष्ठ १०२६ पर।

पं० रामनरेश मिश्र "साहित्यरत्न"

परमानन्द आयुर्वेदीय महौषधालय, कचनामा पो० मखदुमपुर (गया)

"श्री मिश्र जी शाक द्वीपीय ब्राह्मण हैं। आपने शैशव काल से ही साहित्य युर्वेदाचार्य एवं हरिगोविन्द शास्त्री बी०ए० एवं पं० अंशुमान जी शर्मा एम० ए० के पास रहकर आयुर्वेद का अध्ययन किया है। अब तीन वर्षों से उपयुक्त औषधालय में चिकित्सा कार्य कर रहे हैं। निम्न-प्रयोग आपने हजारों ही रोगियों पर व्यवहार किये लिखे हैं। पाठक लाभ उठावें। —सम्पादक।
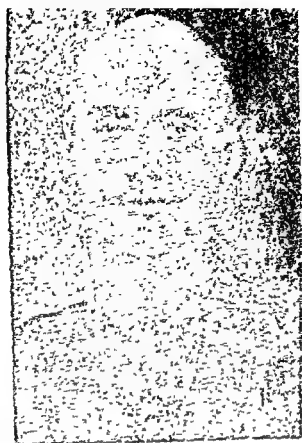
१–सर्पविष-मोचन—

दधि	पीपल	मधु
सोंठ	मक्खन	मरिच

—प्रत्येक १-१ तोला।

सेंधानमक १/८ तोला

—इन सबको मिलाकर दो तोले की मात्रा से आधा घण्टे के अन्तर से रोगी को ३ खुराक देने से भयानक सर्पविष भी उतर जाता है।

२–बिवाईनाशक मलहम—

स्त्री का दूध		गुड़
घी	मधु	गेरू

—समानभाग लेकर बिवाई पर लगाने से बिवाई का फटना बन्द हो जाता है और पैर कमल के समान हो जाते हैं। (शा०)

३–ठर्रे की दवा–

बरगद के सूखे पत्ते को जला दें। जब जलकर उजला हो जाये तो चूर्णकर बराबर भाग सोड़ा (कपड़ा धोने का) मिलाकर घाव पर लगाये। फिर नारियल का तेल चुपड़ दें। ठर्रे का घाव कुछ ही दिनों में आराम हो जाता है।

४–दादरिपु–

अपामार्ग-पंचाग लेकर केले की जड़ के रस में पीस कर टिकिया बनालें। फिर संपुट कर गजपुट की अग्नि में फूंक दे। बस दवा तैयार है। नारियल के तेल में खरलकर लगावें। दाद को अवश्य ही दूर करता है। यदि दवा लगाने के पूर्व घाव को गोमूत्र से धो दिया जाये तो अत्युत्तम है।

(रसेन्द्रसारसंग्रह)

५–कमलवातनाशक अंजन–

हल्दी	गेरू	आंवला

—तीनों को समभाग ले गोघृत की सहायता से थाली आदि के पृष्ठ भाग पर घिसें। उस अंजन को किसी पात्र में रख काम में लावें। आंख में लगाने से कमलवात को दूर करता है। यदि रोगनाशक कषाय या मण्डूर भी साथ खिलाया जाय तो शीघ्र कामकरता है।

६–अर्शहर योग–

नील	१ तोला
मिश्री	२० तोला

—दोनों को मिलाकर १ तोला दवा को शीतल जल के साथ सेवन करने से २१ दिन में दोनों प्रकार के अर्श नष्ट होते हैं। यह एक सन्यासी का बताया हुआ योग है।
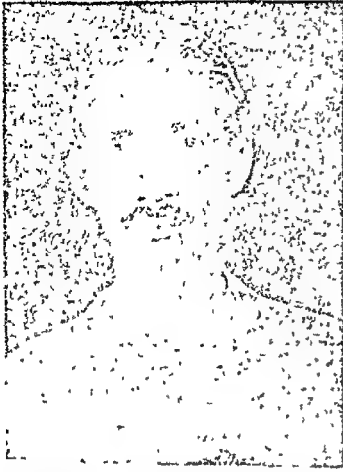
श्री पं. रामटेक पाण्डेय आयुर्वेद शास्त्री

H. M. B. (Home^.)
भारत सेवक समिति दातव्य औषधालय,
अमिलोधा पो० घोरावल (मिर्जापुर)।

"श्री पाण्डेय जी पं० शिवनाथ पाण्डेय, ग्राम सुभागपुर जिला गौंडा के सुपुत्र हैं। आपने संस्कृत की मध्यमा तथा आयुर्वेद-शास्त्री परीक्षायें उत्तीर्ण कर १० वर्ष स्वतंत्र चिकित्सा व्यवसाय किया है। ६ वर्ष से सर्वेंट आफ इण्डिया सोसाइटी द्वारा संचालित दातव्य औषधालय में नियुक्त होकर जनता की सेवा करते हुए आयुर्वेद-प्रचार में संलग्न हैं। आप अनुभवी एवं सफल चिकित्सक हैं, अतएव आपके निम्न प्रयोग भी अवश्य उपयोगी प्रमाणित होंगे।" —सम्पादक।

गर्मी (आतशक) की दवा -

अर्कमूलत्वक	३॥ तोला
कालीमिर्च	२ तोला
तीन वर्ष का पुराना गुड़	६ तोला

—सबको खरल में घोट २-२ रत्ती की गोली बनालें।

मात्रा—१-१ गोली प्रातः सायं थोड़े ताजी शीतल जल से लें।

पथ्य—चना की रोटी गाय के घी और मिश्री से लें। गाय का दूध पीवें।

गुण—एक सप्ताह के व्यवहार से गर्मी शान्त होती है अनुभूत है।

नोट—प्रथम कोष्ठ-शोधन (विरेचन देकर) अवश्य कर देना चाहिए।

मूत्रकृच्छ्र पर—

अ—अर्क (आक) की सूखी लकड़ी जलाकर श्वेत भस्म करलें। इस भस्म को २-२ माशे की मात्रा में मिश्री कूजा की १ तोला तथा पानी आधा पाव के साथ लें।

पथ्य—पुराना चावल का गीला भात व गाय का दूध पीवें।

आ—

सिरस की कोमल पत्ती	१ तोला
काली मिर्च	५ दाने
मिश्री	१ तोला

—ठंडाई की तरह घोट-छानकर दोनों समय पीवें।

पथ्य—जौ की रोटी और गाय का दूध।

गुण—मूत्रकृच्छ्रनाशक अनुभूत प्रयोग है।

मलेरिया-ज्वर नाशक—

कुटकी	खांड	६—६ माशे

—चूर्ण करलें। सायंकाल भोजन के बाद १ तोला उक्त चूर्ण को फांक कर ताजी जल पीलें। प्रातः-काल आम-मिश्रित विरेचन होगा। २-३ दिन ऐसा करने से मन प्रसन्न होगा तथा ज्वर नहीं आवेगा। अनुभूत है।

सेहुवां रोग पर—

वंदाल का चतुर्थावशेष क्वाथ करलें। इस क्वाथ में से ५ तोला लें उसमें १ तोला टंकणभस्म मिलाकर लेप करें तो सेहुवां रोग नष्ट होता है।

प्रदररोग पर—

फिटकिरी भस्म	१६ तोला
सोना गेरू	१ तोला

—भली प्रकार खरल कर रखलें।

मात्रा—२-२ माशा प्रातः सायंकाल बकरी के दूध के साथ फंकी लें।

भोजनोपरान्त—अशोकारिष्ट पीवें।

पथ्य—जौ की रोटी, मूंग की दाल, गाय या बकरी का दूध लें।

समाचार एवं सूचनाएँ

निखिल भारतवर्षीय आयुर्वेद विद्यापीठ कार्यालय

ऋषिकेश से देहली परिवर्तित

वैद्य समाज एवं आयुर्वेद-जगत की विशेष जानकारी के लिए सूचित किया जाता है कि ४० वें अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन, त्रिविन्द्रम के प्रस्तावानुसार, नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ कार्यालय, ऋषिकेश से देहली को परिवर्तित होगया है। विद्यापीठ कार्यालय का पता भविष्य में निम्नलिखित होगा।

—नि. भा. आयुर्वेद विद्यापीठ,
महालक्ष्मी मार्केट, चांदनी चौक, देहली।
—श्रीदत्त शर्मा विद्यापीठ मन्त्री।

योगमाया-स्वर्णपदक

विहार स्टेट आयुर्वेदिक एण्ड यूनानी मेडिसिंस फैकल्टी के १९५५ ई० का सर्वश्रेष्ठ पुरस्कार श्रीमती योगमाया देवी आयुर्वेदाचार्य-स्वर्णपदक श्री० शिवकुमार मिश्र जी ए० एम० एस० अयोध्या शिवकुमारी आयुर्वेदिक कालेज, वेगूसराय (मुंगेर) को मिला है। श्रीयुत मिश्र जी ने चिकित्सा, शल्य, रस, फार्मेसी, अरिष्ट, हाइजिन और पैथोलोजी में आनर्स प्राप्त किया है। वेगूसराय आयुर्वेदिक कालेज में यह सम्मानपूर्ण पदक सर्वप्रथम आपको ही मिला है।

—श्री सत्येन्द्र नारायण कदमकुंआं, पटना।

बूटी चित्रांक—

कुछ वर्ष पूर्व धन्वन्तरि मासिक का 'बूटी-चित्रांक' निकला था, उसकी हमें जरूरत है। जो देना चाहे मूल्य से सूचित करें।

-वैद्य बी० आर० बोरकर, आयुर्वेद भवन
मु० पो० मंगरूलपीर जि० अकोला।

आयुर्वेद ही राष्ट्रीय चिकित्सा हो सकती है

मेडीकल आफीसर के विदाई समारोह में वैद्यराज ओमप्रकाश जी का भाषण।

(हमारे प्रतिनिधि द्वारा)

श्रीनगर (अजमेर) के लोकप्रिय मेडिकल आफीसर डाक्टर रामस्वरूप जी माथुर का विदाई समारोह प्रदेश कमेटी अजमेर में इस क्षेत्र के प्रतिनिधि वैद्यराज श्री० ओउमप्रकाश जी के सभापतित्व में बड़े समारोहपूर्वक मनाया गया। श्री० वैद्य जी ने अपने भाषण में कहा कि चिकित्सा का धन्धा उन्हीं व्यक्तियों को करना चाहिए जिनके हृदय में सेवा की भावना हो, मानव समाज की सेवा ही इस धन्धे की पवित्रता है। जिसके हृदय में मानव के प्रति प्रेम और दया नहीं है उसमें और कसाई में कोई भेद नहीं है। कसाई का काम भी अङ्गों को काटना है और डाक्टर का भी। एक की भावना हिंसा की है और दूसरे की भावना कल्याण की। जिस चिकित्सक का हृदय रोगी का दुख देखकर द्रवित नहीं होता वह चिकित्सक समाज का अभिशाप है। आगे चलकर श्री वैद्य जी ने कहा कि यह अनुभव से माना गया है कि देहाती क्षेत्रों में आयुर्वेदिक चिकित्सा प्रणाली अधिक लाभकारी सिद्ध हुई है, इस पर भी प्रान्तीय तथा केन्द्रीय सरकारों की ओर से उसकी बिलकुल उपेक्षा की जाती है। यदि सरकार का पूरा सहयोग प्राप्त हो तो वह दिन दूर नहीं कि आयुर्वेद राष्ट्रीय चिकित्सा का स्थान पा सकता है।

आपके भाषण के पश्चात् श्री० डाक्टर माथुर को नगर निवासियों की ओर से अभिनन्दन-पत्र भेंट किया गया तथा समारोह के बाद एक भोज दिया

गया जिसमें सभी सरकारी कर्मचारी तथा प्रतिष्ठित नागरिक सम्मिलित हुये।

सीकर में चुनाव--

ता० ३।७।५५ को दिन के ४ बजे राजस्थान आरोग्य सदन सीकर में आगामी वर्ष के लिये निम्नलिखित कार्यकारिणी का चुनाव सम्पन्न हुआ।

सभापति—श्री विजयचन्द जी यति फतेहपुर

उप० ,,--१-श्री विश्वम्भर प्रसाद जी श्रीमाधोपुर

,, ,,--२-श्री रामसुख जी मिश्र फतेहपुर

प्रधानमंत्री—श्री पूरणानन्द शास्त्री श्रीमाधोपुर

स. मंत्री--१-श्री हनुमत्सहाय जी, सीकर

,, ,,—२-श्री शिवदत्त जी, नीमकाथाना

कोषाध्यक्ष--श्री प्रभुदत्त जी शास्त्री, सीकर

सदस्य—सर्वश्री व्रजमोहन जी शास्त्री, रींगस

,, ,, व्रजमोहन वोहरवाडा

,, ,, मूलचन्द जी बहड

,, ,, भवानीशंकर जी

रा० प्रा० वै० सम्मेलन की कार्यकारिणी के लिये सदस्य—श्री पूर्णानन्द शास्त्री

हरनन्दराय रुईया आयुर्वेद कालेज के बन्द करने पर खेद प्रकट करते हुए कालेज के संचालकों से पुनः चालू करने की प्रार्थना का प्रस्ताव पास हुआ और अर्जुनलाल जी जोशी लक्ष्मणगढ़ के आकस्मिक देहावसान पर शोक प्रकट करते हुए दिवङ्गत आत्मा को शांति प्रदान करने की परमात्मा से प्रार्थना की गई।

—पूर्णानन्द शास्त्री प्र० मन्त्री।

सूरतगढ़ तहसील वैद्य सभा का चुनाव–

सूरतगढ़ (श्री गंगानगर) तहसील वैद्य सभा का चुनाव ता० १०-६-१९५५ को वैद्य श्री बालकराम जी स्वामी के सभापतित्व में सम्पन्न हुआ। निम्न पदाधिकारी चुने गये।

सभापति वैद्य—श्री बद्रीप्रसाद जी शर्मा भिषग्रत्न

उपसभापति ,, ,, विष्णुराम जी

मन्त्री ,, ,, रामकृष्ण जी

उपमन्त्री ,, ,, बलवन्त सिंह जी

कोषाध्यक्ष ,, ,, कुंभाराम जी स्वामी

—मन्त्री वैद्यसभा, सूरतगढ़।

रोहतक में एसोसियन स्थापित--

२०।७।५५ को योग्यता प्रमाणित वैद्यों व हकीमों की एक मीटिंग श्री कविराज अमरनाथ जी की अध्यक्षता में हुई जिसमें आयुर्वेद एवं यूनानी ग्रेजुएट्स एसोसियेशन रोहतक की स्थापना की गई और उसके पदाधिकारियों का चुनाव निम्न प्रकार किया गया–

प्रधान—कविराज आनन्दस्वरूप जी रोहतक

मन्त्री—हकीम जितेन्द्रस्वरूप जी कामिल तिव्वोजराहत

उपमन्त्री–वैद्यराज कृष्णचन्द भिषगाचार्य धन्वन्तरि

कार्यकारिणी समिति –

वैद्य रामलभाय जी

कविराज ज्योतिप्रकाश जी

हकीम वजीरचन्द जी

कविराज अमरनाथ जी

स्वर्गवासी कविराज श्री ज्ञानेन्द्रनाथसेन
के लिये

शोक प्रस्ताव

आज तारीख ५।८।५५ को श्री स्वर्गवासी कविराज ज्ञानेन्द्रनाथ सेन भूतपूर्व प्रिन्सिपल ऋषिकुल आयुर्वेद कालेज हरद्वार के स्वर्गवास पर शोक मनाने के लिये श्री विष्णुदत्त शास्त्री के सभापतित्व में हृषीकेश वैद्य सभा ने निम्नलिखित शोक प्रस्ताव पास किया —"वैद्य सभा हृषीकेश की यह सभा श्री कविराज ज्ञानेन्द्रनाथसेन के देहावसान पर हार्दिक शोक प्रकट करती है। दिवंगत आत्मा की शान्ति और पारिवारिक जनों को धैर्य प्रदान करने की ईश्वर से प्रार्थना करती है तथा परिवार के साथ हार्दिक समवेदना प्रकट करती है।"

—प्रधानमन्त्री वैद्यसभा, हृषीकेश।

तदेव युक्तं भैषज्यं यदारोग्याय कल्पते।
स चैव भिषजां श्रेष्ठो रोगेभ्यो यः प्रमोचयेत्। —च० सू० १-१३२.

भाग २६ अङ्क १० | धन्वन्तरि कार्यालय विजयगढ़ का मुखपत्र | अक्टूबर १९५५

विद्वान लेखकों से—

आगामी वर्ष का विशाल विशेषाङ्क—सचित्र प्रसूति विज्ञानाङ्क प्रकाशित होगा। इसकी विस्तृत सूचना एवं विषय सूची गत अङ्क में प्रकाशित की जा चुकी है। इसमें प्रायः सभी लेख विद्वान लेखकों द्वारा लिखे हुए प्रकाशित करने का विचार है, जिस विषय पर लेख प्राप्त नहीं होंगे उसकी पूर्ति इस विशेषांक के सम्पादक द्वारा की जायगी। अतएव साग्रह एवं सविनय निवेदन है कि विद्वान लेखक महोदय शीघ्र ही इधर ध्यान दें और अपने-अपने लेख शीघ्रातिशीघ्र लिख कर भेजने की कृपा करें जिससे कि इस विशेषांक को समय पर प्रकाशित किया जासके। आप किस विषय पर लेख देंगे उसकी सूचना अविलम्ब दीजियेगा। शीघ्रता के लिये पुनः पुनः निवेदन है।

—वैद्य देवीशरण गर्ग।

हमारे देश में आयुर्वेद की परिस्थिति।

कविराज सतीन्द्रप्रसाद वसु भिषग्रत्न, एल. ए. एम. एस., इन्दौर।

आयुर्वेद की उन्नति तथा राज्याश्रय प्राप्ति के लिए हमारे देश में करीब-करीब गत ५० वर्ष से आन्दोलन चल रहा है। स्वाधीनता लाभ के पश्चात् इस आन्दोलन में और भी तीव्रता आगई, फलस्वरूप देश में आज अवश्य ही कुछ प्रगति की ओर आयुर्वेद बढ़ रहा है। परन्तु आयुर्वेद की उन्नति के लिए एक सुनियन्त्रित तथा सुसंबद्ध ठोस कार्यपन्था अपनाई गई है, अथवा इस ओर की प्रगति आशानुरुप है, ऐसा कहा नहीं जा सकता है। केवल इतना ही नहीं, आज भी हमारे सामने ऐसी कोई सर्वसम्मत, सुसंबद्ध ठोस कार्यपन्था नहीं है जिसे हम अदूर भविष्य में भी आशानुरुप प्रगति कर सकेंगे, ऐसी न्याय-संगत आशा पोषण कर सकते हैं। यह निराशा क्यों छा रही है—वह इस लेख में मैं प्रस्तुत करना चाहता हूँ—और चाहता हूँ कि देश के चिन्ताशील आयुर्वेदीय प्रेमी नागरिक तथा आयुर्वेद के हितचिन्तक वैद्य समुदाय व शुभानुध्यायी-अधिकारी वर्ग इस ओर ध्यान देकर आयुर्वेद के लुप्त गौरव के पुनरुद्धार में सहयोग दें ताकि फिर से सभ्यता के प्राथमिक युग के समान आयुर्वेद समग्र पृथ्वी को अपने ज्ञानालोक से उद्भासित कर सके।

आज करीब-करीब सब ही प्रान्तों में (पश्चिम बङ्ग छोड़ कर) तथा आंशिकतः केन्द्र में भी आयुर्वेद के लिये कुछ कार्य व अर्थव्यय होरहा है-परन्तु सर्व भारतीय अथवा केन्द्रीय योजना के अभाव में प्रत्येक प्रान्त अपने-अपने ढङ्ग से आयुर्वेद के लिए अल्पाधिक कुछ न कुछ कर रहा है, परन्तु नानाविध कारणों से वह कार्य सन्तोषजनक अथवा आशानुरूप नहीं हो रहा है। उदाहरणस्वरूप निम्नलिखित कुछ विषयों की चर्चा की जा सकती है।

प्रति प्रान्त में साधारणतः आयुर्वेदीय कार्यकलाप को सम्हालने के लिए देशीय औषधि परिषद (Board of Indian Medicine) तथा अथवा आयुर्वेदीय संचालक पद की स्थापना हो चुकी है। परन्तु अखिल भारत आयुर्वेद महा सम्मेलन के अध्यक्ष तथा आयुर्वेदीय राजनीतिज्ञ पं० शिवशर्मा जी अपने प्रत्येक भाषण में इन परिषदों तथा संचालकों को पाश्चात्य चिकित्सा विज्ञान के अधिकारियों से प्रभावित कहते आरहे हैं। उनका कहना यही है कि इन परिषदों तथा संचालकों में उस स्वाधीन भावधारा के प्रकट होने का अभाव है—जिससे आयुर्वेद की सच्ची प्रगति के लिए ठोस कदम उठाया जा सकता है। कुछ दिन पहले राजस्थान में आचार्य नित्यानन्द के आयुर्वेद-संचालक पद से त्यागपत्र देने के अवसर पर इस आशय की परिपुष्टि हुई थी। वस्तुतः विभिन्न प्रान्तों में आयुर्वेद के लिए जिन कार्यपन्थाओं को अपनाया गया है और उन प्रान्तों में आयुर्वेदीय कार्यकलाप का भाग जैसे ख्यातनामा व्यक्तियों पर अवलम्बित है—उससे यह संदेह होना स्वाभाविक ही है। परन्तु साथ ही साथ एक आचार्य नित्यानन्द को छोड़कर हमारे पास एक भी सबूत नहीं है जिससे हम निःसंदेह कह सकते हैं कि वे सब पाश्चात्य चिकित्सा विज्ञान के अधिकारियों से प्रभावित हैं। इसके दो कारण हो सकते हैं—एक तो वे अपने पद व मर्यादा-लोलुपता के शिकार बन गये हैं और नहीं तो वे यही सोचकर हटे हुए हैं कि आज शासन से जो कुछ भी थोड़ी बहुत सुविधायें आयुर्वेद के लिए मिल रही हैं—उसका लाभ उठाया जाय, और आगे प्रचेष्टा जारी रखी जाय जिससे अधिकतर सुविधायें भविष्य में मिल सकती हैं। असहयोग के बदले में वे सहयोग से काम लेना चाहते हैं। परन्तु आज की परिस्थिति को देखते हुए हमें यह कहना ही पड़ेगा कि उनकी सहयोग की नीति समर्थनीय होते हुए भी उसमें दृढ़ संकल्प तथा सुसंबद्ध योजना के अभाव में आयुर्वेदीय प्रगति में आशानुरूप फलप्रसू नहीं हो पाई है। आज इन परिषदों तथा संचालकों को चाहिए कि समवेत रूप से एक दीर्घकालीन आयुर्वेद प्रगति योजना बनाकर प्रत्येक प्रान्त में स्वीकृति प्राप्ति के लिए अधिकारियों से विचार-विमर्श करें, प्रभाव डालें, आयुर्वेदीय सेवियों की ओर से दावी उपस्थित करें और सफलता लाभ के पश्चात् सर्वभारतीय रूप से उस योजना के अनुसार आगे बढ़ें। इस तरह "जितने प्रान्त उतनी योजना" से आयुर्वेद की सच्ची प्रगति कभी भी

सम्भव नहीं है—यह बात दोहराना अनावश्यक प्रतीत होता है। आज अगर हम योजनाबद्ध रूप से अग्रसर होवें तो मुझे पूर्ण विश्वास है कि हमारी दावी अग्राह्य कभी भी नहीं हो सकती है। आज जब हमारे आदरणीय राष्ट्रपति आयुर्वेद के परम पृष्ठपोषक हैं, उत्तर प्रदेश के राज्यपाल माननीय श्री के० एम० मुन्शी, मध्यप्रदेश के राज्यपाल माननीय डा० पट्टाभी सीतारामाया, बम्बई के मुख्यमन्त्री माननीय श्री मोरार जी देशाई तुलनात्मक दृष्टि से आयुर्वेद का ही गुणगान कर रहे हैं—तो हमें निराशा का स्वप्न क्यों देखना पड़ रहा है—यही सबसे अधिक आश्चर्य की बात है? आज यह हमारी ही कमजोरी है—कि हम उन सहानुभूतिशील अधिकारी वर्गों की उदारता का लाभ नहीं उठा पा रहे हैं। अतः हमें चाहिए कि एक केन्द्रीय आयुर्वेद परिषद की स्थापना कर सम्पूर्ण भारत के ख्यातनामा व उदारमना आयुर्वेद सेवियों को उसके सदस्य नियुक्त करें और उनके अभिज्ञतापूर्ण परिचालना में सर्व भारतीय आयुर्वेद योजना बनाकर आगे बढ़ें। प्रति प्रान्त में उस योजना को लागू किया जाए और उस केन्द्रीय परिषद के ऊपर अपने उत्तरदायित्व रख कर पूर्णोद्यम से आयुर्वेदोन्नति में अपना-अपना कर्तव्य पालन किया जाय। यह है आयुर्वेद प्रगति का प्रथम सोपान।

आज प्रति प्रान्त में (पश्चिम बङ्ग छोड़कर, वह तो एक अधूरा ही प्रान्त है, क्योंकि पाश्चात्य चिकित्सा विज्ञान के ख्यातनामा विद्वान वहां के मुख्यमन्त्री हैं—जो परिस्थिति और किसी भी प्रान्त में नहीं है) आयुर्वेद-शिक्षा के लिए शासकीय आयुर्वेद कालेज तथा सरकारी सहायता प्राप्त आयुर्वेद कालेजों की प्रतिष्ठा हो चुकी है। कई विश्वविद्यालयों में भी आयुर्वेद फैक्ल्टी की स्थापना की गई है—परन्तु अफसोस तो यही है कि वहां भी "जितने प्रान्त उतनी ही योजना"। प्रति प्रान्त के आयुर्वेदीय पाठ्यक्रमों को देखने से उसमें नीतिगत तथा पद्धतिगत विभिन्नता स्वतः ही प्रकट होती है। इसके अलावा बम्बई तथा सौराष्ट्र प्रान्तों में शुद्ध आयुर्वेदीय पाठ्यक्रम के नाम को अपना कर आयुर्वेदीय शिक्षा परिस्थिति में और एक जटिलता की सृष्टि की है। अन्य प्रान्तों में तथा विश्वविद्यालयों में भी शुद्ध आयुर्वेदीय पाठ्यक्रम को अपनाने के लिए प्रभाव डाला जा रहा है—आंशिक सफलता भी शायद मिल चुकी है। आज करीब करीब ४० वर्षों से प्रचलित मिश्रित पद्धति से शिक्षित आयुर्वेदीय स्नातक हमारे आयुर्वेद-कर्णधारों के अनुसार Hall vaids & Half doctors बनते जारहे हैं—जिस अधोगति को रोक कर Full vaids or no vaids बनाने का शुभ संकल्प किया जारहा है, परन्तु यह देखने का अवसर ही नहीं है—कि फल क्यों कडुवे हो रहे हैं, बीज हमने मीठा बोया या क्या जमीन में तो कुछ खराबी नहीं थी, पानी जो डाला जाता था वह तो विषाक्त नहीं था, वहां की आबहवा तो दूषित नहीं थी? फल जब कडुवा ही निकला तो झाड़ ही काट डालो दूसरा बीज बोया जावेगा, परन्तु उसका फल भी मीठा ही निकलेगा—इसकी जमानत कौन देगा।

आज शासन की ओर से आयुर्वेद शिक्षा के सम्बन्ध में मार्गदर्शन के लिए कई कमेटियां नियुक्त की गई थीं इनमें से चोपड़ा कमेटी सर्व प्रधान कही जा सकती है। सारे भारतवर्ष में दीर्घ दिन तक विभिन्न मतों के संग्रह के पश्चात् शिफारिशों के रूप में इसकी जो रिपोर्ट प्रकाशित होचुकी है उसे अमल में लाने के लिए आज किसी प्रान्त में कुछ भी प्रचेष्टा नहीं है। केन्द्र में तो आयुर्वेद के प्रति उदासीनता छाई हुई है। परन्तु प्रान्तों में जहां आयुर्वेद के लिये कुछ उत्साह नजर आता है वहां भी चोपड़ा कमेटी की सिफारिशों को अमल में लाने की प्रचेष्टा नहीं है—यह खेद का कारण है। सभी प्रान्तों में आयुर्वेद कालेज की प्रतिष्ठा हो चुकी है। और कई वर्ष हुये प्रतिष्ठा हुई है परन्तु अफसोस से यह कहना ही पड़ेगा—कि आज भारतवर्ष में एक भी आयुर्वेद कालेज एसा नहीं है—जो सर्वाङ्गपूर्ण—सर्वसाधन सम्पन्न कहा जा सकता है—जो हमारे देश के किसी भी मेडिकल कालेज की तुलना में दीन-हीन-दरिद्र परिस्थिति का नहीं है। एक भी आयुर्वेद कालेज आज यह गर्व नहीं कर सकता है कि उनके कालेज में मिश्रित शिक्षा पद्धति के लिये पाश्चात्य चिकित्सा-शास्त्र के विद्वानों का मुंह ताकना नहीं पड़ता है या उनकी आयुर्वेदीय शिक्षा पद्धति उतनी उच्चतर की है जिससे वहां के स्नातक चिकित्सा क्षेत्र में मेडिकल ग्रेजुयटों से मुकाबला कर सकें। आज किसी किसी प्रान्त में ४-५ या उससे भी अधिक संख्या में आयुर्वेद कालेज पाये जाते हैं-जिन्हें सरकारी मान्यता

भी दी गई है। परन्तु क्या जरूरत है-इस तरह से आयुर्वेद की बदनामी फैलाने की ? आज अधिकारियों को यह सबक फिर से सिखाना पड़ेगा कि "एकश्चन्द्रस्तमो हन्ति न च तारागणैरपि"। आज के आयुर्वेद कालेजों में से कुछ तो प्राथमिक पाठशाला के उपयुक्त और कुछ माध्यमिक शाला के उपयुक्त हैं—जबरदस्ति उन्हें कालेज कहकर उच्च शिक्षा का अपमान करना कदापि उचित नहीं है। क्या है आज के आयुर्वेद कालेजों में शिक्षा का स्तर और क्या है वहां की परिक्षाओं का मान दण्ड। यह तो राशि के यूपकाष्ठ में गुण के बलिदान के सिवा और कुछ नहीं है। कुछ दिन पहले लखनऊ में तथा बनारस में आयुर्वेदीय पाठ्यक्रम के सम्बन्ध में एक एक पृथक कमेटी की बैठक हुई थी—वहां भी सर्वसम्मत अथवा बहुसम्मत रूप से कुछ पाठ्यक्रम को तालिकाबद्ध किया गया, परन्तु हमारे नेताओं के दिमाग में यह बात क्यों नहीं आती है कि एक सर्व-भारतीय सम्मेलन बुलाकर विभिन्न प्रान्तों के विभिन्न विषयाधिकारी व्यक्तियों के द्वारा—आवश्यक होने से आयुर्वेद के ऊपर सहानुभूति सम्पन्न पाश्चात्य चिकित्सा विज्ञान के विद्वानों के परामर्श से—एक सर्व भारतीय आयुर्वेद-पाठ्यक्रम बनाया जाय और जिसे अपनाकर सारे भारत में एक ही प्रकार की आयुर्वेदीय शिक्षा प्रणाली चालू की जाय। मैं इस प्रस्ताव को लेकर आयुर्वेद-भक्त तथा आयुर्वेदोन्नति में अर्थव्ययेच्छु धनी-दाता, श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन के मालिक वैद्यराज श्री रामनारायण जी शर्मा के पास पहुंचा था—कुछ उत्साहजनक आशा भी मिली थी-परन्तु न जाने क्यों सब ही शून्य में मिल गया। इसके अलावा दो एक ख्यातनामा प्रवीण तथा नवीन आयुर्वेद विद्वानों के पास भी पहुंचा था-किन्तु सब ही नीरव। मेरा वह सब अरण्य रोदन ही रहा। हमारे मार्गदर्शक व कर्णधार आयुर्वेदज्ञों में भी जब इतना मतभेद, गुटबन्दी, आधिपत्यपरायणता विद्यमान है तब आयुर्वेद की सच्ची उन्नति कैसे होगी ? गुटबन्दी व आधिपत्यपरायणता आज के युग में यद्यपि निन्दनीय है—परन्तु अंशतः क्षमार्ह भी है। परन्तु मौलिक विज्ञान की कसौटी पर इस तरह का मतभेद शायद ही इतिहास में मिल सकेगा। उदाहरणस्वरूप एक विषय को उपस्थित करना चाहता हूं। यह सर्ववादी सम्मत है कि आयुर्वेद की भित्ति वायु-पित्त-कफ त्रि. पर अवस्थित है। इस सिद्धान्त का स्वरूप क्या है आयुर्वेद-विद्वानों में यह एक प्रधान मतभेद का विषय है। कई वर्ष पहिले पूना में इस विषय पर विचार विमर्श के लिये एक सर्व भारतीय सम्मेलन बुलाया गया था। भारत के ख्यातनामा आयुर्वेद विद्वानों ने वहां उपस्थित होकर एक सर्वसम्मत समन्वयात्मक त्रिदोष स्वरूप स्वीकार किया था। जिसे पुस्तिका के रूप में प्रकाशित भी किया गया था यद्यपि उस स्वरूप निर्णय में सब ही परिस्थितियों को (वायु को) पूर्णतया स्पष्ट नहीं किया गया था—तथापि वह निर्णय निर्दिष्ट गन्तव्य स्थान के निकटतम स्थल में पहुंच चुका था-यह कहा जा सकता है। परन्तु सबसे आश्चर्य की बात तो यह है कि अखिल भारत आयु० महासम्मेलन के सभापति श्री पं० शिवशर्मा जी ने गत २३ मई १९५५ को फ्री प्रेसजर्नल में एक निबंध प्रकाशित कर आयुर्वेदीय त्रिदोष सिद्धान्त के ऊपर आलोकपात करते हुए उसे Psycho-Physico-Physiological organismal Phenomena Complex कहकर उसकी घोर जटिलता को प्रकट किया था—उसी दिन त्रिवेन्द्रम में पं. शिवशर्मा जी के समक्ष निखिल भारत आयुर्वेद विद्यापीठ (आयुर्वेद शिक्षा के सर्वोच्च प्रतिष्ठान !) के माननीय सभापति श्री भी. वि. गोखले जी ने आयु० त्रिदोष सिद्धान्त की व्याख्या इतनी सरलता से की थी कि जिससे यह प्रतिपन्न हुआ कि "शरीर वात द्रव्य बाह्य सृष्टिगत पांचभौतिक वायु द्रव्य (Air Atmosphere) से अभिन्न है," कफ व पित्त के सम्बन्ध में उनका मत भी अति स्थूल वस्तु जैसे थूक व पित्ताशय स्थित पित्त ही होगा। इससे सरल सिद्धान्त और क्या हो सकता है ?

यह है हमारे आयुर्वेद की परिस्थिति—इसी का पुनरुद्धार हमें करना है। आज हमें मिश्रित चिकित्सा विज्ञान की शिक्षा प्रदान में सर्व प्रधान आवश्यकता है—समन्वयात्मक ग्रन्थ निर्माण तथा समन्वयात्मक शिक्षा प्रदान। परन्तु अफसोस की बात यह है कि आज तक हम इस दिशा में स्वयं सम्पूर्ण नहीं हो पाये हैं। आज भी समन्वयात्मक शिक्षा की पूर्ण व्यवस्था शायद ही किसी आयुर्वेद कालेज में मिली होगी। प्राच्य व पाश्चात्य विषयों की शिक्षा उभय विज्ञानों

के विभिन्न अध्यापकों द्वारा दी जाती है—उन दोनों विज्ञानों के समन्वय का भार छात्रों के अपरिपक्व मस्तिष्क पर जा पड़ता है, फलस्वरूप हम देखते हैं अधिकांश स्नातक डाक्टरी औषधियों से ही चिकित्सा करते हैं। इसका कारण क्या है ? आयुर्वेद कालेज में छात्र तो अवश्य ही आयुर्वेद पढ़ने के लिये ही आये थे, आपने उनके सामने आयुर्वेद और एलोपैथी—दोनों ही रख दिया था। अगर आपके आयुर्वेद शिक्षक अपनी विद्वत्ता के द्वारा उनको आकर्षित नहीं कर पाये और पाश्चात्य-विज्ञान के शिक्षक की विद्वत्ता से छात्र उनकी ओर आकर्षित हुये तो यह कसूर किसका है—छात्रों का या अपने आयुर्वेद शिक्षकों का ? आयुर्वेदीय ग्रन्थों को इस तरह से बनाइये जिससे वे सरलता से ज्ञान लाभ के साधन बन जावें, उससे समन्वात्मक ज्ञान लाभ आसानी से हो सके, उन ग्रन्थों को पढ़ाने को ऐसे प्रभावशील अध्यापकों को नियुक्त कीजिये जिससे आयुर्वेद के छात्र एलोपैथी को सम्मान की दृष्टि से देखें परन्तु अन्धभक्त न बन जावें, आयुर्वेद के ऊपर श्रद्धावान बनकर देश सेवा तथा आयुर्वेद की उन्नति में जुट जावें—इसीसे ही आयुर्वेद का स्तर उच्च से उच्चतर होता जावेगा, आयुर्वेद का सच्चा पुनरुद्धार होगा।

सभी प्रान्तों में शासकीय आयुर्वेदीय दातव्य चिकित्सालय खोले जारहे हैं। किसी किसी प्रान्त में ५।६०० तक आयुर्वेदीय चिकित्सालय प्रति ५ मील के फासले पर एक एक इस तरह स्थापित किये जा चुके हैं या किये जारहे हैं। परन्तु उनकी क्या परिस्थिति है—इस ओर पाठकों का ध्यान आकृष्ट करने के लिये "आयुर्वेद गौरव" द्वितीयवर्ष, एकादश संख्या, अगस्त १९५५ में प्रकाशित कविराज श्री वीरेन्द्रमोहन भट्टशास्त्री, बी. ए. एम. एस. आयुर्वेदाचार्य, प्रधान चिकित्सक राजकीय आयुर्वेदिक चिकित्सालय, पो० बतौली (सरगुजा) मध्यप्रदेश, का "आयुर्वेद और सरकारी पंचवर्षीय योजना" शीर्षक निबंध का उल्लेख करना चाहता हूं। उस लेख को उद्धृत करने में इस लेख का कलेवर अति विवृद्ध हो जावेगा, परन्तु उसमें ऐसे आयुर्वेदीय चिकित्सालयों की जो दुर्गति तथा दुरवस्था का वर्णन है—यह विन्दुमात्र भी अतिरंजित नहीं है—और केवल मध्यप्रदेश में ही नहीं, सब ही प्रान्तों में यही परिस्थिति है। वहां भी "राशि के यूपकाष्ठ में गुणधर्म का ही बलिदान" हो रहा है। यह आयुर्वेद की बेइज्जती है, इस तरह से आयुर्वेद को लोकसमक्ष में दीन-हीन प्रतिपन्न करने की अपचेष्टा को रोकना ही चाहिए। आयुर्वेदीय चिकित्सालय खोलना है—तो साधन संपन्न आयुर्वेदीय चिकित्सालय ही खोला जाय, चाहे उससे आयुर्वेदीय चिकित्सालय की संख्या घटकर कितनी ही कम क्यों नहीं होजाय, परवाह नहीं, परन्तु कविराज भट्टशास्त्री की वर्णना के समान एक भी आयुर्वेदीय चिकित्सालय नहीं चाहिए। आजप्रान्त के आयुर्वेदीय कालेजों से संलग्न आयुर्वेदीय आतुरालयों की भी वही दुरवस्था है। अधिकांश आयुर्वेद कालेजों में विद्यार्थियों को प्रत्यक्ष शिक्षा तथा कर्माभ्यास के लिये मेडिकल कालेजों के आतुरालयों में जाना पड़ता है। वहां वे पाश्चात्य चिकित्सा प्रणाली को देखते हैं, सीखते हैं—बाद में उसको ही अपनाते हैं। आज भारतवर्ष में मेडीकल कालेजों से संलग्न आतुरालयों के मुकाबिले में एक भी सर्व-साधन सम्पन्नआयुर्वेद कालेज संलग्न आतुरालय नहीं है—जहां विद्यार्थी समन्वयात्मक चिकित्सा पद्धति को प्रत्यक्ष कर सकता है। यह आयुर्वेद के नाम पर एक तमाशा हो रहा है—इससे आयुर्वेद की हीनता ही प्रकट होती है, आयुर्वेदीय स्नातकों में Inferiocity Complex की सृष्टि होती है—आयुर्वेदोन्नति के लिये यह मनोवृत्ति घातक होती है इससे हमारे विद्यार्थियों को बचाना ही चाहिए।

वैसे ही करीब करीब सभी प्रान्तों में आयुर्वेदीय औषधि निर्माणशाला की स्थापना हो चुकी है। इन निर्माणशालाओं की परिस्थिति भी अच्छी नहीं है। आज आयुर्वेदीय औषधि निर्माण एक विराट समस्या का विषय है। आज भारतवर्ष में सर्ववादी सम्मत एक भी भेषज-संस्कार ग्रन्थ (Pharmacopea) उपलब्ध नहीं है—जिसके अनुसार आयुर्वेदीय औषधि निर्माणशाला औषधि निर्माण कर सके। आयुर्वेदीय औषधियों के पहिचान में सन्दिग्धता, विभिन्न प्रदेश के विभिन्न जलवायु से प्रभावित औषधियों के गुणधर्म के सबन्ध में अज्ञानता, औषधि संग्रह में विज्ञान सम्मत दृष्टिकोण तथा साधु संस्थाओं का अभाव, आयुर्वेदीय औषधि निर्माण में पूर्णाभिज्ञ व्यक्तियों की नियुक्ति का अभाव स्वल्प वेतन के कारण अभिज्ञ प्रवन्धकर्ता का अभाव आदि विभिन्न कारणों

से आज आयुर्वेदीय निर्माणशाला की परिस्थिति अच्छी नहीं है—परन्तु इसमें कुछ तो सर्व भारतीय समस्या है—जिन्हें हल करने का उपाय भी सर्व भारतीय रूप से ही सोचना चाहिए—और इसमें विशिष्ट आयुर्वेदीय अनुसंधान की भी आवश्यकता है। परन्तु सैकड़ों की संख्या में आयुर्वेदीय चिकित्सालय खोलकर उन्हें किसी तरह से जीवित रखने के लिए मनुष्य के व्यवहारोपयोगी न भी हो, नहीं सम्पूर्ण गुणधर्म युक्त हो—कुछ आयुर्वेदीय औषधि बनाकर भेजना चाहिए, इसी दृष्टि से आयुर्वेदीय औषधि निर्माणशाला खोली गई है जिससे हमें आपातः दृष्टि लाभ के बदले में वस्तुतः ही आयुर्वेद के लिए हानि ही पहुंचाई जा रही है। आज आयुर्वेदीय औषधि निर्माणशालाओं के लिये एक सर्व भारतीय भेषज संस्कर ग्रन्थ (Phramacopea) की आवश्यकता अत्यधिक है, इसके बिना हमारी निर्माणशालायें पंगु कही जा सकती हैं, परन्तु सर्वभारतीय रूप से इस ओर एक भी ठोस कदम उठाया नहीं गया। उत्तर प्रदेश में एक फार्माकोपिया-कमिटी की स्थापना कई वर्ष पहिले हो चुकी है—और सुना जारहा है वहां से शीघ्र ही फार्माकोपिया निकलने वाली है—परन्तु उस फार्माकोपिया में सर्व भारतीय रूप नहीं होगा—इसमें कोई सन्देह नहीं है। उत्तर व उत्तर पश्चिम प्रान्तों के लिये वह फार्माकोपिया कार्यकारी हो सकती है—परंतु बंगाल उत्कल प्रदेश तथा दक्षिण भारत के लिये वह फार्माकोपिया ग्रहणीय तथा उपयोगी होगी यह उम्मीद नहीं की जा सकती है। फार्माकोपिया कमिटी में कम से कम उत्तर व उत्तर पश्चिम प्रान्तों के अन्य प्रतिनिधियों को शामिल कर लेना आवश्यक था—जिससे कम से कम अर्द्धभारत के लिए वह फार्माकोपिया अविसंवादित रूप से कार्यकरी हो सकती थी—अभी भी उसका समय है इस तरह से वह फार्माकोपिया को भित्ति बनाकर सर्व भारती फार्माकोपिया बनाने का कार्य सरल हो सकता था। उत्तर प्रदेश की फार्माकोपिया कमिटी थोड़ी सी उदारता दिखाकर बम्बई, सौराष्ट्र, पेप्सू, दिल्ली, राजस्थान मध्यभारत, मध्य प्रदेश, हिमाचल, विन्ध्यप्रदेश तथा विहार प्रान्तों से प्रतिनिधियों को आह्वान कर एक कम से कम अर्द्ध भारतीय फार्माकोपिया बना सकती थी—और मुझे पूर्ण विश्वास है कि चूंकि इन प्रान्तों में औषधि निर्माण तथा औषधि निर्वाचन के सम्बन्ध में काफी समानता विद्यमान है—अतः इस तरह से कम से कम इन प्रान्तों में मान्य होने को उपयुक्त फार्माकोपिया सरलता से बन सकती थी। अभी भी अगर इन प्रान्तों से प्रतिनिधियों को सम्मिलित कर लिया जाय तो कुछ विलम्ब तो अवश्य ही होगा—परन्तु मेरे ख्याल से औषधि निर्माण में सामान्य तथा आयुर्वेदीय—औषधि नियन्त्रण समस्या का आंशिक हल हो सकता है। यह विषय भी अविसंवादित सत्य है—कि आयुर्वेदीय औषधि नियन्त्रण औषधि निर्माण विज्ञान के स्तर को ऊपर उठाने में एक परम आवश्यक उपाय है—और आज की परिस्थिति में जितनी ही जल्दी आयुर्वेदीय औषधियों पर नियन्त्रण लागू किया जाय उतना ही आयुर्वेद जगत के लिये मंगलसाधन त्वरान्वित होगा—क्योंकि नियन्त्रण के अभाव में लोभी साधन विहीन धोखेबाज औषधि निर्माताओं तथा संस्थाओं की संख्या में परिपुष्टि हो रही है—आयुर्वेद के हित के लिये इन संस्थाओं की उन्नति अथवा नाश होना परमावश्यक है। फार्माकोपिया निर्माण के बाद ही औषधि निर्माणशालाओं का ध्यान औषधि संग्रह तथा औषधि संरक्षण के ऊपर आकर्षित होना चाहिये। असन्दिग्ध औषधियों के संग्रह के लिये विभिन्न निर्माणशालाओं की सहयोगिता तथा सहकारिता से औषधि संग्रह-संस्थाओं को कायम करना चाहिए तथा आयुर्वेदीय आधुनिक विज्ञान के सहारे औषधियों का निर्णय तथा संरक्षण की व्यवस्था होनी चाहिए। इस तरह से सन्दिग्ध औषधियों के सम्बन्ध में अनुसंधान कार्य भी निर्माणशालाओं के द्वारा परिचालित हो सकता है। सभी को चाहिए सर्वभारतीय रूप से इन समस्याओं को देखना तथा इनको हल करने के लिये सच्ची लगन से सुसंबद्ध योजना के अनुसार आगे बढ़ना। यह कार्य केवल केन्द्रीय शासन की ओर से ही सफलता पूर्वक हो सकता है।

आयुर्वेदीय अनुसंधान की परिस्थिति भी वैसी ही डांवाडोल है। केन्द्र की ओर से जामनगर में एक केन्द्रीय अनुसंधानशाला की प्रतिष्ठा हो चुकी है। इसके अलावा करीब-करीब सभी प्रान्तों में आयुर्वेदीय अनुसंधान का कार्य थोड़ा बहुत शुरू होगया है। गत पंचवर्षीय योजना में ३७॥ लाख रुपया आयुर्वेदीय अनुसंधान के लिये रखा गया था, जिसमें से १५ लाख रुपया खर्चकर जामनगर में अनुसंधान

शाला स्थापित हुई है। बाकी २२॥ लाख रुपया केन्द्रीय स्वास्थ्य विभाग से प्रान्तीय स्वास्थ्य विभागों में कुछ शर्त पर देने का निश्चय हुआ था। वह शर्त ऐसी थी कि प्रान्त आयुर्वेदीय अनुसंधान के लिये योजना बनाकर भेजें। उक्त योजना अगर अनुमोदन योग्य प्रतीत हुई तो उस योजना के अनुसार केन्द्रीय शासन प्रथम वर्ष का शत प्रतिशत तथा द्वितीय वर्ष के प्रथमार्द्ध के लिये द्वि-तृतीयांश तथा अन्तिमार्द्ध के लिए ५० प्रतिशत खर्च देगी बाकी खर्च प्रान्त को उठाना पड़ेगा और शर्त यह रहेगी कि बाद में प्रान्त को योजना के अनुसार अनुसंधान कार्य चालू रखना पड़ेगा। फल यह हुआ कि कोई भी प्रान्त शायद उस रुपया का सदुपयोग नहीं कर पाया। अगर किसी प्रान्त में कुछ हुआ होगा तो कुल २।४ लाख रुपया से ज्यादा उपयोग नहीं हो पाया। बाकी रुपया Lapse हो गया है। इन रुपयों का उपयोग क्यों नहीं हुआ इसका जवाब कौन देगा। आज Indian council of medical Research के समान एक Indian Council of Ayurvedic Research बनाकर उसके हाथ में यह धन सौंपकर आयुर्वेदीय अनुसंधान की क्रमबद्ध तथा उपयुक्त योजना की व्यवस्था की जासकती थी। जामनगर में केवल एक अनुसंधानशाला न बनाकर उत्तर प्रदेश, बंगदेश अथवा आसाम तथा मद्रास प्रान्तों के प्रत्येक स्थान में ७॥ लाख रुपया खर्चकर और तीन केन्द्रीय अनुसंधानशाला की शाखायें स्थापित की जा सकती थीं। आयुर्वेदीय अनुसंधान का क्षेत्र इतना विशाल तथा व्यापक है कि एक अनुसंधानशाला में कार्य चालु करना निरर्थक सा होजाता है, क्योंकि आयुर्वेद के आठों अंगों पर अनुसंधान केवल अपेक्षित नहीं है, नितान्त आवश्यक भी है। इसके अलावा जो कायचिकित्सा आज आयुर्वेद में बची हुई है केवल उसमें अनुसंधान के लिये-औषधि निर्णय, संग्रह, निर्माणात्मक अनुसंधान; औषधियों का गुणधर्म निर्णयात्मक अनुसंधान, रोगियों पर प्रायोगिक अनुसंधान तथा रसायन-चिकित्सालय अनुसंधान की विशेष आवश्यकता है। इस तरह से हम कम से कम उन ४ अनुसंधान शालाओं का लाभ उठा सकते थे-जिन से कुछ ठोस कार्य भी हो सकता था। आज आयुर्वेदीय अनुसंधान के नाम पर जो कार्य विशेषतया हो रहे हैं वह बहुलांश में आयुर्वेदीय औषधियों की परीक्षा ही कहनी चाहिए। इसकी भी जरूरत नहीं है यह कहा नहीं जा सकता है, क्योंकि आयुर्वेदीय औषधियों की निर्माण विभिन्नता व प्रयोग विभिन्नता औषधि निर्णय में सन्दिग्धता तथा औषधियों के गुणधर्म वर्णन में व्यापकता को देखते हुये-इस परीक्षण का भी काफी महत्व है, परन्तु सुसम्बद्ध योजना के बिना अधिकांश क्षेत्र में व्यर्थ श्रम व अर्थ-व्यय हो रहा है। प्रान्तों में जो अनुसंधान कार्य हो रहा है वह केन्द्र अर्थात् जामनगर से सम्बन्धित न होने के कारण अथवा केन्द्र के आधीन न होने के कारण जहां तहां अपनी मनमानी योजना के अनुसार कार्य हो रहा है और कहां क्या होरहा है इसका भी पूरा पता दूसरे प्रान्त को नहीं है। केन्द्र को भी नहीं है। केन्द्र का भी पता प्रान्तों में नहीं है। एक के ऊपर दूसरे की जिम्मेदारी न रहने से भी ऐसी परिस्थित होती है-सहयोग के अभाव से भी सब कार्य अधूरा होजाता है। मैंने इस असुविधा को देखते हुए व्यक्तिगतरूप से केन्द्रीय अनुसंधानशाला के डायरेक्टर श्रद्धेय डा० प्राणजीवन मेहता महोदय को यह सुझाव भेजने का दुःसाहस किया था कि जब प्रान्त के आयुर्वेदीय अनुसंधान विभाग केन्द्र के अधीन अथवा उससे सम्बन्धित नहीं हैं तो भी केन्द्रीय अनुसंधानशाला के डायरेक्टर के नाते वे अगर कम से कम प्रान्तीय शासकीय अनुसंधान विभागों का एक सम्मेलन बुलाकर योजना-बद्ध कार्यक्रम बनालें और प्रत्येक प्रान्तीय शासनों से तदनुसार कार्य पद्धति बनाने के सुझाव के रूप में अनुरोध करें तो अनुसंधान क्षेत्र में निश्चित ही प्रगति व प्रेरणा मिलेगी। यद्यपि उन्होंने इस प्रस्ताव की सराहना की तथा इसमें अपनी सम्मति भी प्रगट की थी-परन्तु आज तक इस ओर किसी प्रकार का कदम उठाया गया इसकी जानकारी मुझे प्राप्त नहीं है। मुझे दुःख होता है कि सारे भारत में आयुर्वेद के लिए जो कार्य हो रहे हैं-इनमें योजनात्मक प्रगति नहीं हो रही है जिससे इसे वस्तुतः रचनात्मक कहना असम्भव हो जाता है। हमारे आयुर्वेद कर्णधार व नेतागण इस ओर सोचते नहीं हैं यह भी नहीं कह सकता हूं-फिर भी इसका कार्यरूप क्यों नहीं नजर आता यह समझ में नहीं आता है। अभी-अभी आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका से पता लगा है कि द्वितीय पंचवर्षीय योजना में आयुर्वेद योजना की कल्पना क्या होगी इस विषय पर श्री गुलजारीलाल जी नन्दा ने

पं० शिवशर्मा जी से सुझाव मांगा—और एतदर्थ महासम्मेलन की ओर से श्री कांतिनारायण मिश्र की अध्यक्षता तथा श्री पुरुषोत्तमदेव मुलतानी के मन्त्रित्व में एक योजना समिति बनाई गई है। मुझे आश्चर्य होरहा है कि महासम्मेलन इस तरह के सुयोग का अपव्यवहार क्यों कर रहा है। आज पं० शिवशर्मा जी को चाहिए था एक कि सर्वभारतीय सम्मेलन में आयुर्वेद के विभिन्न विषयों के प्रवीण विद्वानों की उपसमितियां बनादें और केन्द्रीय समिति की स्थापना कर उन उपसमितियों की सिफारशों के अनुसार एक व्यापक योजना श्री नन्दाजी के समक्ष उपस्थित करें और उसे द्वितीय पंचवर्षीय योजना में सम्मिलित करने के लिये दावी रखें। केन्द्रय स्वास्थ्य विभाग में अथवा योजना समिति में आयुर्वेदभिज्ञ व्यक्तियों के अभाव से जो गड़बड़ी होती है उसे मिटा दें। आज पं० शिवशर्मा जी आयुर्वेद महासम्मेलन के अध्यक्ष नहीं हैं-अतः समर्थावान नहीं है अथवा इन विषयों पर दिलचस्पी नहीं या उत्साह व शक्ति नहीं है-यह भी बात आयुर्वेद जगत मानने को तैयार नहीं है। वे अगर चाहें तो खुशी से तथा आसानी से यह कार्य कर सकते हैं। किसी भी प्रान्त के उत्साही आयुर्वेद विभाग के संचालक शासन से सम्मति लेकर इस कार्य में अग्रसर हो सकते हैं। मुझे पूर्ण विश्वास है कि प्रान्तीय शासन अथवा स्वास्थ्य मंत्री महोदय ऐसे रचनात्मक कार्य में पूर्ण सहयोग देंगे तथा इसके लिये जो कुछ व्यय होगा उसे भी सहर्ष मंजूर करने में कार्पण्य नहीं करेंगे। सिर्फ उनके पास इस तरह का सुझाव पेश कर इस प्रस्ताव के रचनात्मक दृष्टिकोण के सम्बन्ध में उनकी प्रतीति दृढ़ करना ही संचालक महोदय से अपेक्षित है। सहयोग मिलने पर विभिन्न प्रान्तों में आयुर्वेद संचालकों अथवा परिषदों के जरिये शासन से तथा शिक्षा प्रतिष्ठानों से सम्पर्क साधनों से इस कार्य में अवश्य ही सफलता मिल सकती है।

मुझमें आयुर्वेद के बड़े बड़े महारथियों को परामर्श अथवा सुझाव देने की धृष्टता नहीं है, मैं तो सिर्फ अपना भाराक्रान्त हृदय का बोझ हल्का करने के लिए तथा उसके सामने निवेदन के रूप में यह लेख लिख रहा हूं। अगर वे मेरी बातों में जरा सा भी सत्य का अनुसंधान करते हैं-तथा इन समस्याओं के हल में मेरे प्रस्तावित पन्था न भी सही- दूसरी पन्था को उपयुक्त समझते हैं तो एक सर्व भारतीय योजना के रूप से आयुर्वेद के पुनरुद्धार के लिए महत्तर स्वार्थ के यूपकाष्ठ में व्यक्तिगत अथवा दलगत क्षुद्र स्वार्थ बलिदान देकर कटिबद्ध होजांय यही प्रार्थना है।

उपनिषद् और आयुर्वेद

लेखक—श्री भवनाथ झा व्या० आ० सा० न्या० शास्त्री हि० मै० सा० रत्न

बृहदारण्यकोपनिषद् के छठे अध्याय में चतुर्थ-ब्राह्मण पटल का विधान आज के युग के लिए भी परमोपकारक प्रतीत होता है, इसलिये मैं आज बृहदारण्यकोपनिषद् का ही सार अंश कहने चला हूं। यह उपनिषद् शुक्लयजुर्वेद की काण्वी शाखा के बाजसनेयि ब्राह्मण के अन्तर्गत है। आकार में यह सबसे बड़ी है एवं वन में अध्ययन की जाने से इसे आरण्यक कहा जाता है। इस प्रकार "बृहत्" और "आरण्यक" होने के कारण इसका "बृहदारण्यक" नाम हुआ।

इसमें चतुर्थ ब्राह्मण पटल का विधान इसलिए हुआ कि-विज्ञानों को प्रमुख मानने वाले आज के लोगों को भी इससे कुछ लाभ होसके। जैसे कि इच्छानुसार सद्गुणयुक्त सन्तान उत्पन्न करना, इच्छा न रहे तो उत्पन्न ही न करना और साथ ही संयम-युक्त जीवन-यापन कर सकना आदि की ही इसमें विषद चर्चा है। विस्तार भय से मन्त्र प्रयोग का उपादान न कर आधुनिक वैज्ञानिकों की रुचि इस ओर बढ़े, अतएव इस लेख में कथाऽऽत्मक दिग्दर्शन मात्र है। वह कथा ऐसी है कि-इस चराचर समस्त भूतों का रस-अर्थात् आधार पृथिवी है, पृथिवी का रस जल है, जल का रस-उस पर निर्भर करने वाली औषधियां हैं और औषधियों का सार पुष्प है, पुष्प का रस फल है, फल का रस-आधार पुरुष है, और उन पुरुषों का रस-सार शुक्र है। प्रजापति ने अब विचार किया कि-इस शुक्र की प्रतिष्ठा के लिए कोई आधार चाहिए, इसलिये उसने स्त्री की सृष्टि की; और उसके अधोभाग सेवन का विधान किया। यहां यह सन्देह सम्भव है कि-इस पाशविक क्रिया के लिये जोकि-प्राणि मात्र की स्वाभाविक प्रवृति ही है, विधान की क्या आवश्यकता थी तो इसका उत्तर यही जंचता है कि-जिससे पुरुषों की स्वेच्छाचारिता का निरोध हो, और इस विज्ञान से परिचित पुरुषों के द्वारा केवल श्रेष्ठ सन्तानों की ही उत्पत्ति की जाय अतः प्रजापति ने जननेन्द्रिय बनाया, अतएव यह घृणित कदापि नहीं कहा जा सकता। इसके सम्बन्ध में अरुण के पुत्र विद्वान उद्दालक आदि कतिपय ब्रह्मर्षियों ने कहा है किजो निरिन्द्रय, सुकृतहीन, मैथुन विज्ञान से अपरिचित होकर मैथुन कर्म में आसक्त होते हैं उनकी परलोक में दुर्गति होती है। तो उक्त विधानानुसार ब्रह्मचर्य धारण पूर्वक पुरुषों को पत्नी के ऋतुकाल की प्रतीक्षा करनी चाहिए, और ब्रह्मचर्य धारण करने के लिए, किम्वा स्वप्नदोषजनित शुक्रक्षय को पूर्ति करने के लिए मन्त्रों का पाठ करने का विधान इसमें किया गया है, इससे स्वप्नदोषादि व्याधियों का नाश, और क्षरित शुक्रों की पूर्ति होती है। उक्त ऋतुकाल की प्रतीक्षा के तीन दिनों बाद सुन्दर वेष भूषाओं से सुसज्जित स्त्री को लक्ष्मी रूप में समझते हुए समीप जाकर "हम दोनों सन्तानोत्पत्ति की क्रिया करेंगे" कह कर आमन्त्रित करे, और तब उस समय परस्पर निस्सङ्कोच निश्चिन्त मन से सङ्ग करने का परिणाम अवश्य ही तेजोमय पुत्ररत्न का प्रदायक सिद्ध होता है। इसी तरह इसमें ये भी मन्त्र हैं कि-यदि स्त्री उक्त समय लज्जाभिभूत होकर सङ्ग न करने का हठ ठान ले तो अमुक मन्त्र से उसे आकृष्ट किया जाय तो वह सर्वाङ्ग प्रदर्शन पुरस्सर सङ्ग करने को तुल जाती है। इसी तरह आजकल जो ये गर्भनिरोध के लिए तामसी क्रियाएं की जाती हैं ये हैं असंयम की वृद्धि के लिए। हमारे उपनिषद् काल में तो अपनी धर्मपत्नी को कभी गर्भधारण न कराना हो तो उसके लिये भी मन्त्रों का प्रयोग किया जाता था। किन्तु,

स्मरण रहे उक्त मन्त्रादि का प्रयोग उन संयमियों के लिए ही संभव था जो कि उपर्युक्त लिखे गये नियमानुसार चलते थे, और आज भी हम उक्त नियमानुसार उसका प्रयोग कर सकते हैं। इतना ही नहीं, उक्त गर्भ निरोधक मन्त्रों से निरुद्ध गर्भों को यदि वे तोड़ देना भी चाहते थे तो सङ्गकाल में फिर एक मन्त्र का जापकर सङ्ग करने से अवश्य ही गर्भ उन्मुक्त हो जाता था। जो आज के विज्ञान में कतई संभव नहीं। उपनिषद् काल में भी "आचार विरुद्ध" व्यभिचार कहीं न कहीं कुछ न कुछ था ही, क्योंकि इसमें उसके निवारण का भी विधान है। पर था, आधुनिक युग के अतुलनीय सा नहीं। उक्त विरल होने वाले व्यभिचार को रोकने के लिये भी कहा गया है कि यदि कभी पत्नी के साथ जार का सम्भव होजाय तो उसे दण्ड देने के लिये पहले कच्ची मिट्टी के बरतन में आग रखकर सभी कर्मों को विपरीत रीति से किया जाय, और कुछ सरके तिनकों के अग्रभाग को घी में भिगोकर विपरीत क्रम से ही उसका होम किया जाय। तब एक मन्त्र जो इसमें है पाठकर अन्त में प्रत्येक बार 'असौ" कहते हुए उक्त जार का नाम लिया जाय तो उसकी निश्चित ही मृत्यु हो जाती थी।

बृहदारण्यकोपनिषद् के इस पटल में मन्त्रादिवल से गर्भ धारण करना, एवं न करना, स्वस्थपुत्र का उत्पन्न करना, एवं उत्पन्न सन्तानों की संस्कारादि क्रिया करने का विधान के साथ ही कुछ ऐसे उपचारों के भी उल्लेख मिलते हैं जो आयुर्वेद एवं चिकित्सा शास्त्रों के भी पथप्रदर्शक कहे जा सकते हैं। वे यह हैं कि गौरवर्ण एवं दीर्घायु पुत्र की कामना हो तो दूध में चावल पकाकर खाना खिलाना चाहिए एवं कपिलवर्ण, वेदाध्ययनी और पूर्णायु पुत्र की कामना हो तो दही में चावल पकाकर स्वयं खाना और अधिकतर सुधियों को खिलाना चाहिए, यदि श्यामवर्ण, रक्तनेत्र वाला, विद्याभ्यासी पूर्णायु सन्तानों की कामना हो तो घी मिलाकर भात पत्नी-सहित अधिक खाना चाहिये, और यदि विदुषी कन्या की चाह हो तो तिल एवं चावल की खिचड़ी पकाकर पत्नी सहित खाना चाहिए, और जो चाहता हो कि-मेरा पुत्र प्रसिद्ध पण्डित, सभासदों को रंजित करने वाला, सुन्दर वाणी बोलने वाला और पूर्ण आयुष्मान हो तो वह उड़द और चावल की खिचड़ी पकाकर उसमें "उक्षन्" और "ऋषभ" नामक बल-वीर्य वर्द्धक दवा मिलाकर घृत सहित पति-पत्नी भोजन करे तो अवश्य ही मनोकामना पूर्ति हो सकती है।

इस "उक्षन्" शब्द के कोष में विभिन्न अर्थ हैं, किन्तु प्रसिद्ध अंगरेज विद्वान् सर मोनियर विलियम्स ने अपने बृहत् अंगरेजी कोष में इसे "सोम" नामक पौधे का पर्याय माना है, जो वास्तविक बल-वीर्यवर्धक है यह आयुर्वेद विशेषज्ञों का भी सिद्धान्त है। "ऋषभक" नामक औषध का तो आयुर्वेद के अत्यन्त प्राचीन एवं प्रामाणिक ग्रन्थ 'सुश्रुत संहिता' के 'सूत्रस्थान' नामक प्रथम खण्ड के ३८ वे अध्याय में सैंतीस द्रव्यगणों के अन्तर्गत उल्लेख हुआ है। 'भावप्रकाश' नामक प्रसिद्ध संग्रह ग्रन्थ में भी इसकी कई जगह चर्चा की गयी है। सारांश इन उपनिषदों में न केवल ज्ञान ही अपितु विज्ञान भी भरे पड़े हैं, और उक्त ज्ञान भी सच्चिदानन्द ब्रह्मस्वरूप का साक्षात्कार से लेकर ऐहिक युग के भोगविलास के भी सभी साधनों से भरपूर। आवश्यकता है, हम लोग उपनिषदों के बताये मार्ग पर चलकर कुछ लाभ करें। कहे हुए बिना करने से लाभ नहीं हो सकता। ऐच्छिक आचरण से फलोत्पत्ति नहीं हो सकती, और "सत्" साक्षात्कार करना तो दूर की बात बनी ही रहेगी।

बी० सी० जी० के टीके के लिए यह हठधर्मी क्यों !

ले० वैद्य पं० गोवर्द्धन शर्मा, आयुर्वेदविशारद, मारवाड़ी बाजार, हैदराबाद ।

किसी भी देश के उत्थान और पतन का कारण उस देश के नेता तथा शासकों पर निर्भर होता है। नेता और शासक अग्नि की तरह तेजस्वी, सत्यवान, जन-कल्याण की कामना वाले, सदाचारी, परोपकारत, कर्तव्यपरायण, धी, धारण और स्मृति से विवेकपूर्ण नेतृत्व करते हों, तब उस देश के देशवासी सदासुखी, स्वस्थ, धन--धान्यादि से सुसम्पन्न होते हुए पूर्णायु को भोगते हैं।

जब यही शासक शासन के मद में मदोन्मत हो अन्यों को हेय, विद्वानों की अवहेलना करता हुआ अपने स्वार्थों की रक्षा में संलग्न होते हैं, और अपनी अयोग्यता के कारण ही अपने आधीनों की आधीनता में आबद्ध होते हुए जैसे वे ऊठाबैठ करवाते हैं वैसे ही वे करते हैं; इसी प्रकार चापलुसों की चातुर्यता से चर्चित हो चटकने लगते हैं तब अन्य देशवासी भी उनकी मूर्खता से लाभ उठाते हैं, और वे अपने पतन के साथ देश का भी अधः पतन कर बैठते हैं, उस देश के जन निर्धन (कंगाल) रोगाक्रान्त हो नाना विध दुःख उठाते हैं।

देश को स्वतंत्र हुए आज आठ वर्ष होते हैं पर वही आई० सी० एस० की शासकता (हुकुमत) यथावत् स्थिर है. हमारी शिक्षा दीक्षा रहन-सहन भाव भाषा तक विदेशी बनाई जा रही है, इसी प्रकार विज्ञान के नाम पर देश के स्वास्थ्य का सर्वनाश कर रहे हैं। अरबों रुपयों की औषधियां, बाहर से आ रही हैं, हम अपने करांची कांग्रेस अधिवेशन के स्वीकृत प्रस्ताव की भी अवहेलना कर भारत को ९० प्रतिशत जनता के स्वास्थ्य की रक्षा करने वाले वैद्यों से दुर्भाव बरतते हैं। उनके भाग्य विधाता विदेशी शिक्षा ओत-प्रोत एलोपैथी डाक्टरों को बना दिया जाता है, वे कालत्रय में आयुर्वेद की भलाई नहीं सोच पाते। यदि भूलचूक से कोई डाक्टर जो सत्यान्वेशी है वह आयुर्वेद के प्रति आदर प्रकट करता है तो उसे अछूतों की तरह पृथक् कर दिया जाता है। इसका उदाहरण स्वयं चौपड़ा कमेटी है। चौपड़ा कमेटी आयुर्वेद की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए आयु- को राजकीय चिकित्सा घोषित करने की सिफारिश की थी किन्तु राज्य को यह सहन न हो सका और इस पर पण्डित कमेटी का निर्माण किया गया, इसने भी विवश हो आयुर्वेद के पक्ष में कहा तब एक और कमेटी बना डाली। इसकी पृष्ठ भूमि में कौनसा कौटिल्य छिपा हुआ था क्या यही 'सत्यमेव जयते' का आदर है. क्या यही न्याय है जिसके विषय में विचार किया जा रहा हो और उसमें उसके विशेषज्ञ ही न हों, ये कहां तक ठीक है।

भारत एक गरीब देश है इसके वासी अन्धाधुन्ध व्यय भार उठाने में असमर्थ हैं, विदेशी दूषित औषधियों के विष अपने शरीर में लेने को तैयार नहीं हैं। बी० सी० जी० के टीके को स्वयं ब्रिटेन और अमेरीका ने अपूर्ण कहा है, जिसके कतिपय उदाहरण अधोलिखित हैं।

डाक्टर प्राइस की सुप्रसिद्ध पुस्तक में बी० सी० जी० के संबंध में लिखा है। "यह ट्युबकुलर बेसिलस" (क्षय कीटाणु) से, जिसके रोग उत्पन्न करने की शक्ति क्षीण कर दी गई है; तैयार किया गया सजीव टीका है, फ्रांस में रोग की रोकथाम के लिए इसका काफी उपयोग हुआ है, फ्रांस में लगभग १ लाख बच्चों को जिनमें मुख्यतः क्षय रोग ग्रसित माता पिता के बच्चों को ये टीके लगाये गये, इसके परिणामों का अभी तक ठीक-ठीक अन्दाजा नहीं लगाया जाता सका किन्तु इस रीति के सम्बन्ध में एक बड़ी आपत्ति है और वह यह है कि इसमें यह सम्भावना रहती है कि बाद में मनुष्य के शरीर में जाकर कहीं यह दुर्बल कीटाणु फिर से सबल न होजाय।

डा० प्राइस की अन्तिम पंक्ति विशेष रूप से महत्वपूर्ण है, इस टीके में भय है। यह किसी टीके विरोधी की राय नहीं है, अपितु एक प्रामाणिक चिकित्सा विशेषज्ञ की अनुमति है।

न्यूयार्क कार्नेल युनिवर्सिटी मेडीकल कालेज के डा० डब्ल्यू० जी० स्माइली द्वारा अपनी प्रमाणिक पुस्तक में प्रकट की हुई अनुमति (राय) को पढ़िये, उन्होंने लिखा है कि "व्यक्तियों के क्षय रोग के प्रतिरोध की शक्ति को प्रदान करने के लिये अनेक रीतियां अपनाई गई, मृत कीटाणुओं या निर्वीर्य कीटाणुओं से तैयार किए गये विभिन्न वस्तुयें प्रयोग में लाई गईं किन्तु कोई आश्चर्यदायक सफलता अभी तक नहीं पाई गई, इस विषय पर अभी और लाभकारी अनुसंधान की आवश्यकता है।"

क्या इसी अनुसंधान के आधार पर भारत के होनहार बालकों के प्राण लिये जा रहे हैं, इन उदाहरणों से ठीक स्थिति का स्पष्टीकरण हो जाता है, पहले उदाहरण में इन टीकों से उत्पन्न खतरा एवं उनकी संदिग्धता का संकेत खुले तौर पर है।

और एक डा० लिखते हैं कि इन कीटाणुओं के मानव देह में जाकर पुनः सवीर्य हो जाने का भय है, अमेरिका और ब्रिटेन दोनों ने ही अभी तक सामूहिक रूप से बी० सी० जी० के टीके को नहीं अपनाया है।

केन्द्रिय स्वास्थ्य मंत्रणालय के स्वास्थ्य सलाहकार डा० बेजमिन ने अपने वक्तव्य में लिखा है कि गाय की लस्सी के टीके ने खूब अच्छा काम किया है यह भी एक सजीव विष है, इस लिए सजीव विषों के टीके लगाने में कोई निश्चित हानि नहीं है, आगे आप और लिखते हैं कि बी० सी० जी० के टीके अब ब्रिटिश स्कूलों में अनिवार्य कर दिए हैं। क्या यह वास्तव में सत्य है। एक उच्च पदाधिकारी द्वारा ऐसी अनर्गल घोषणा करना कितना उचित है, कितना शोभनीय है।

इसी टीके के विषय में अमेरिका के स्वास्थ्य मन्त्री का कथन है कि बी० सी० जी० के टीके को इस सीमा तक न बढ़ाया जाय कि स्वस्थ्य सेवायें उससे उत्पन्न दायित्वों को न संभाल सके।

बी० सी० जी० के टीके से मस्तिष्क में सूजन हो जाती है। मास्तिष्क सब नाडियों का केन्द्र है इससे जिस नाड़ी पर ज्यादा दबाव पड़ेगा उस इन्द्री के नाश होने की संभावना है, तथापि अन्धापन पक्षाघात वात के ८० रोगों में से किसी को भी जन्म देना तथा मस्तिष्क विकृत होना तो स्पष्ट दृष्टिगोचर है, यदि सलाहकार डा० साहब का यह मत हो कि 'विषमस्य विषमौषधम्' जहर की जहर औषधि हो तो यह मान लिया जाय तब भी दोष से नहीं छूटेंगे क्योंकि जिसे टी० बी० है ही नहीं उसके शरीर में उक्त विष प्रवेश कराना कितना घातक होगा।

इसी टीके में भय, संदिग्धता, भारत के लिए उपयुक्त है वा नहीं आदि विचारणीय विषय हैं अभी ब्रिटेन तथा अमेरिका ने भी इसे मान्यता नहीं दी है इन सब उक्तियों से सिद्ध होता है कि बी० सी जी० के टीके हमारे लिए ठीक नहीं हैं।

पुराणों में आयुर्वेद

वैद्य नारायण दत्तात्रय कालेकर, कांचन औषधालय, काशी।

वर्तमान युग में आयुर्वेद शास्त्र के मूल आधार बृहद्त्रयी और लघुत्रयी के अन्तर्गत गिने जाने वाले सुश्रुत, चरक, वाग्भट, माधवनिदान, भावप्रकाश, शारङ्गधर इत्यादि ग्रन्थ माने जाते हैं। आयुर्वेद विज्ञान प्राचीन काल में केवल इतने ही ग्रन्थों तक सीमित नहीं था। वैदिक साहित्य, बौद्धग्रन्थ तथा पुराण वाङ्मय आयुर्वेदीय ज्ञान से भरे पड़े हैं, इस निधि के आलोडन के बिना हमारा ज्ञान पूर्ण नहीं हो सकता, उदाहरणार्थ अग्निपुराण को लें।

वर्तमान सभी विद्वानों के मतानुसार पुराणों का अन्तिम संकलन गुप्त काल में अर्थात् लगभग छठवीं शताब्दी में हुआ, अग्निवेशीय संहिता का प्रथम संस्कार महर्षि चरक ने (लगभग ई. पू. ५४२ में) किया था, दूसरा संस्कार नागार्जुन ने कनिष्क के समय (लगभग ई. स. ७८) किया, उसी प्रकार सुश्रुत के प्रथम व द्वितीय संस्कारकर्ता क्रमशः नागार्जुन व तीसट पुत्र चन्द्रट थे, इतने संस्करणों के बाद भी मालूम पड़ता है कि पुराणों में किया गया संकलन अछूता ही रहा।

अग्निपुराण में अध्याय २७८ से २८२ तक कषाय, नस्य, चूर्ण, घृत इत्यादि का उल्लेख मिलता है, तथा मत्स्य पुराण में (अध्याय २१६ से २१६ तक) अनेक कीटाणु नाशक धूप मिलते हैं, ये सभी योग मेरी स्वल्पमति के अनुसार हमारे लघु और बृहद्त्रयी के बाहर के हैं, इन कषायों में तथा चूर्ण, गुटिका, तैल आदि में कई तो ऐसे हैं जिनका उपयोग हम दैनिक जीवन में सरलता से कर सकते हैं, इन सभी योगों का विवेचन इस छोटे से लेख में नहीं हो सकता, नमूने के लिये केवल तीन काढ़े, एक लेप तथा एक तैल का विवरण प्रस्तुत करने की चेष्टा की जा रही है, वैद्य बन्धुओं से मेरी प्रार्थना है कि यदि किसी को इनके विषय में अधिक जानकारी प्राप्त हो तो मुझे लिखकर या धन्वन्तरि में प्रकाशित कर उपकृत करें।

रक्तपित्त पर कषाय

रक्तपित्ती पिबेद् वासा सुरसं क्षुसितं मधु।
वरी द्राक्षा बला शुण्ठी साधितं वा पयः पृथक्॥

—अ० पु० अ० २८२ श्लोक २०।

अडूसे का स्वरस निकाल कर उसमें शहद मिलाकर पीने से अथवा शतावरी, द्राक्षा, गंगेरन, सोंठ इनको छोड़कर अलग-अलग अथवा एकत्रकर कषाय बनाकर पीने से रक्तपित्त रोग का नाश होता है।

कामला तथा पाण्डुरोग पर कषाय

फलत्रयामृतावासा तिक्तं भूनिम्बक तथा।
कषायः समाक्षिकोहन्यात् पांडुरोगं सकामलाम्॥

—अ० पु० अ० २८२ श्लोक १६।

हरड़, बेहड़ा, आंवला, गुरुच, अडूसा, चिरायता, बकायननीम, इनका काढ़ा मधु मिलाकर पीने से पांडु तथा कामला रोग का नाश होता है।

मूत्रकृच्छ्र पर कषाय

पथ्या गोक्षुरदुस्पर्शराजवृक्ष शिलाभिदाम्।
कषायः समधु पीतो मूत्रकृच्छ्रं व्यपोहति॥

—अ० पु० अ० २८२ श्लोक ३४।

हरड़, बड़ा गोखरू, अमलतास की गुद्दी, लकड़ी पाषाण भेद, इनका काढ़ा शहद मिलाकर पीने से मूत्रकृच्छ्र रोग दूर होता है।

भगन्दर रोग पर लेप

त्रिवृता जीवनी दन्ती मंजिष्ठा शर्वरीद्वयम्।
तार्क्ष्यजं निम्ब पत्रं च लेपः शस्तो भगन्दरे॥

—अ० पु० अ० २८२ श्लोक २३।

—शेषांश पृष्ठ १११४ पर

नहरुवा रोग

लेखक— कविराज माधवप्रसाद शास्त्री, प्रधानसम्पादक—जयआयुर्वेद, जोधपुर।

यह राजस्थान, मालवा और पंजाब में विशेष रूप से कृषकों को होने वाला महान् कष्टदायक रोग है। वर्षा के दिनों में जहां एक ओर कृषक खेतों की ओर अभियान करते हैं, वहां दूसरी ओर इस भीषण और दुखदाई रोग से अपने स्वर्णिम स्वप्नों को समेटते भी देखे जाते हैं। वर्षा की रिमझिम बेला, दामिनी की दमक और बादलों के घनघोर गर्जन उनके शरीर में उस नारकीय यंत्रणा को और भी सजग करते हैं, जो नहरुवा रोग के कारण वसीयत के रूप में उन्हें मिली है।

यद्यपि इस रोग से मृत्यु संख्या में कोई खास अभिवृद्धि नहीं हुई, किन्तु प्रतिवर्ष कितने बालक-वृद्ध अपंग बनकर अकर्मण्य जीवन यापन करते हैं इस पर कोई विचार नहीं करता। उस व्यक्ति का जीवन वास्तव में नारकीय यंत्रणा से कम नहीं जिस के हाथ-पैर, पीठ और अंडकोषों में एक साथ नहरुवा का आक्रमण होता है। एक साथ ४० नहरुवे जब बेचारे कृषक पर एक ही ऋतु में हमला बोलते हैं तो उसकी यंत्रणा का तो अंदाज ही क्या लगाया जा सकता है।

इस बार भी राजस्थान में नहरुवा रोग का उत्पीड़न कम नहीं है। प्रत्येक ग्राम के प्रत्येक घर में इस रोग से पीड़ित लोगों के दर्शन आप आसानी से कर सकेंगे। खेद इसी बात का है कि आधुनिक विज्ञान, जो प्रकृति पर विजय पाने का दम भरता है, नहरुवा रोग पर अभी तक भी काबू नहीं पा सका है। देश की सरकार भी यक्ष्मा पर विजय पाने के लिये तो १२ करोड़ की योजना बना सकती है, किन्तु इस यंत्रणादायक महान् रोग को अपनी पंच-वर्षीय योजना में कहीं भी स्थान न दे सकी है। आज अकेले राजस्थान में लगभग पांच ल[illegible] रोगी "नहरुवा" के कारण नारकीय जिंदगी बसर कर रहे हैं। न उनके पास खाने को भरपेट अन्न है और न आवश्यकता की पूर्ति के लिए धन ही। बेचारे खाट पर पड़े साधन और समुचित चिकित्सा के अभाव में केवल ईश्वर के सहारे दिन काट रहे हैं।

रोग परिचय

इस रोग का मुख्य कारण स्नायुक या गिनी वर्म नामक कृमि होता है। यह श्वेत वर्ण का गोल, १ से ३ फुट लम्बा, गण्डू आकार, पतला और गोल कृमि होता है। इसकी पुरुष और स्त्री भेद से दो जातियां मानी गई हैं। इनमें स्त्री जाति ही विशेष रूप से रोग का प्रसार करती है। स्त्री का शरीर गर्भ प्रणालि से भरा रहता है जिसमें असंख्य अंडे होते हैं, ये अंडे पानी का सम्बन्ध प्राप्त कर जल-पिस्सुओं में लीन हो जाते हैं। अंडेयुक्त वे जल-पिस्सू (साइक्लोप) जब मानव शरीर में पहुँचते हैं तो रोग का कारण बन जाते हैं।

रोग प्रसार

जिस पानी में उक्त प्रकार के पिस्सू होते हैं उस पानी के उपयोग से अंडों के साथ वे मनुष्य के आमाशय में पहुँच जाते हैं। वहां आमाशयिक रस से पिस्सू तो विनष्ट हो जाते हैं, और वे कृमियों के बच्चे स्वतन्त्र होकर आमाशय की दीवार को लांघ कर वहां पीछे परिवर्द्धित होते रहते हैं। इनमें से पुरुष कृमि पुनः स्त्री कृमि को गर्भित कर स्वयं मर जाते हैं और स्त्री कृमि जिस अंग में पानी का सम्बन्ध विशेष है, उस ओर चल देती है। उस क्रिया में लगभग एक वर्ष व्यतीत हो जाता है।

जब इस कृमि का मुख त्वचा के नीचे पहुँच जाता है तो इसके मुख से एक प्रकार का विष निकलता है, जिसके कारण वहां फफोला हो जाता है। कुछ घंटों के बाद ही फफोला फूट जाता है और कृमि बाहर निकलने लग जाता है।

विविध-लक्षण

कई बार ऐसा होता है कि कृमि घूमता हुआ रास्ते में ही कहीं मर जाता है और त्वचा तक नहीं पहुँच पाता। जिससे कृमि के चारों ओर तान्तव व खटकी भवन "कैल्शिफिकेशन" हो जाता है, और आजीवन कठोर गंड के समान बन जाता है। कई बार नाड़ीशूल, पेशीशूल, सन्धिपीड़ा और सन्धिशोथ आदि स्थायी विकार भी उक्त कारण से पैदा हो जाते हैं। यदि नहरुवा प्रमादवश निकलते समय कहीं टूट जाय तो असह्यवेदना के साथ ही सदैव के लिये लूला और लंगड़ा भी बना देता है। शास्त्रकारों ने स्पष्ट लिखा है।

वाह्वोर्यदि प्रमादेन जङ्घयोस्त्रुटयति क्वचित्।
संकोचं खंजतांचैव छिन्नतन्तुः करोत्यसौ॥
—योगरत्नाकर।

सामान्य लक्षण

रोग का संचय काल एक वर्ष है अतः इस अवधि में प्रायः कोई विशेष लक्षण नहीं होते। जब कृमि अपना जीवन चक्र पूर्ण कर त्वचा के समीप आता है तब जी मचलाना, वमन, प्रवाहिका, श्वास कृच्छ्र, शीतपित्त, चक्कर और ज्वर आदि सार्वदेहिक लक्षण होते हैं, और कुछ घंटों बाद जहां कृमि निकलता है वहां खुजली, जलन या पीड़ा होकर अन्त में फफोला बन जाता है। बाद में इस फफोले से गाढ़ा पानीदार श्वेत स्राव निकलता है, जिसमें कृमि के अंडे होते हैं। पैरों का सम्बन्ध पानी के साथ विशेष होने के कारण प्रायः नहरुवा पैरों में टखने के पास या पिंडलियों में निकलता है। कभी-कभी हाथ, चूतड़, पीठ व वृषण में भी निकलते देखे गये हैं। जिस अंग में कृमि निकलता है उसमें सूजन और असह्य वेदना होती है, अतः रोगी चल-फिर नहीं सकता।

सामान्य चिकित्सा

जैसे ही नहरुवा का मुख बाहर निकले, उसको बहते पानी के प्रवाह में रखना चाहिये। ऐसा अवसर न मिल सके तो लोटा या गिलास का पानी धारा रूप में पीड़ित अंग पर डालना चाहिये। ऐसा करने से नहरुवा स्वतः ही बाहर आने लग जायगा। बाहर को निकले हिस्से को दियासलाई आदि किसी वस्तु पर लपेट कर, उस लिपटे हुये भाग को पानी और तैल से सदैव तर रखना चाहिये। कई चिकित्सक नहरुवा के मुख के बाहर निकलते ही उसमें मरक्यूरी परक्लोराइड १-१००० का इंजैक्शन कर देते हैं। इससे २४ घंटों में कृमि मर जाता है। जब तक कृमि जीवित रहता है सिरा, कण्डरा धमनी व मांसपेशियों में इतस्ततः लिपटा रहता है इस कारण सुगमता से निकल नहीं पाता। इंजैक्शन से मरने के बाद वह सुगमता से बाहर निकाला जा सकता है।

शल्य चिकित्सा की सफलता—

शल्य चिकित्सा द्वारा कुछ मिनटों में ही रोगी को व्याधि मुक्त किया जा सकता है। नहरुवा का निश्चित निदान होने के बाद स्प्रीट और शक्कर के घोल से पीड़ित स्थान को विसंक्रमित कर के हजामत बनाने की पत्ती-ब्लेड से कृमि के स्थान पर चीरा लगाकर शनैः शनैः उसे बाहर निकालना चाहिए। अभ्यास करने पर यह क्रिया सुगम रहती है। नहरुवा को बाहर निकाल देने के बाद अन्य व्रणवत् चिकित्सा करने से जल्दी आराम मिल जाता है।

औषधि व्यवस्था—

व्यवहार से यह देखा गया है कि उचित चिकित्सा व्यवस्था द्वारा भी लोगों को नहरुवा की नारकीय यंत्रणा से मुक्त किया जा सकता है। भावमिश्र ने हींग इसके निराकरण के लिये विशेष रूप से निर्दिष्ट की है। प्रायः ग्रामीण लोग हलवे के साथ

हींग मिलाकर गरम पुल्टिस नहरुवे के स्थान पर बांधते हैं और भोजन में भी हींग का विशेष प्रयोग करते हैं। शास्त्रकारों ने इसी महत्ता को देख कर ही लिखा है—

स्नेह स्वेद प्रलेपादि कर्म कुर्याद्यथोचितम्।
रामठं शीत तोयेन पीतं स्नायुकरोगनुत्॥

सुप्रसिद्ध चिकित्सकों के अभिमत में सीप की भस्म इस रोग को समूल नष्ट करने में अद्वितीय है। नदी के साधारण सीप के टुकड़ों को नींबू के द्रव में शुद्ध कर, आक के पत्तों के रस में तीन पुट देकर भस्म बनालें। प्रति दिन ८ से १६ रत्ती की मात्रा में इस भस्म को सेवन कराने से केवल तीन ही दिन में आश्चर्यजनक गुण लक्षित होगा। औषधि सेवन-काल में रोगी को केवल दही या छाछ का ही सेवन करना चाहिये।

धन्वन्तरि मिशन राजस्थान भी नहरुवा की चिकित्सा के सम्बन्ध में पर्याप्त खोज कर रहा है। अब तक के अन्वेषण से उन्होंने धन्वन्तरि मासिक में प्रकाशित निम्न प्रयोग सफल घोषित किये हैं—

शंखभस्म अर्कपुटी ४ रत्ती, संजीवनी वटी २ गोली, मिश्री ३ माशे, सीपभस्म ४ रत्ती, शुद्ध कपूर ३ रत्ती। यह एक मात्रा है, प्रति दिन प्रातः काल गाय के मट्ठे के साथ ३ से ७ दिन तक इस प्रयोग को सेवन करावें। इससे नहरुवा या तो अन्दर ही खत्म हो जावेगा या शीघ्र ही बाहर निकल जायगा।

छाला पड़कर स्नायु तन्तु जब मुंह बनाले तब निम्न मरहम का उपयोग करना चाहिए। कुचला भीगा हुआ २ नग, सनलाइट साबुन २॥ तोला, मयूरपुच्छ भस्म ३ माशा और कपूर १ माशा लेकर पीले आक के पत्तों के स्वरस में पहले कुचला को पीसे फिर साबुन मिलाकर घोटे। अन्त में भस्म मिलाकर मरहम तैयार कर पीड़ित स्थान पर इसे लगावे और ऊपर पीले आक के पत्ते गरम करके चिपकादे। इस की दो-तीन पट्टी ही नहरुवा के सम्पूर्ण विष को बाहर निकालने में समर्थ सिद्ध होंगी। जब नहरुवा अन्दर टूट गया हो तो यह प्रयोग अच्छा लाभ करता है।

सावधानी—

यह तो निश्चित है कि नहरुवा रोग दूषित जल के कारण ही उत्पन्न होता है और उसके संसर्ग से ही लोगों को तकलीफ देता है। अतः सदैव गहरे कूप वा नालों के पानी को ही व्यवहार में लाना चाहिए। तालाब और वर्षा ऋतु का जल बिना गरम किये और छाने कभी भूल कर भी प्रयोग में नहीं लाना चाहिए।

: पृष्ठ ११११ का शेषांश :

निशोथ, जीवन्ती, डोडी, दांती की जड़, मंजिष्ठ, हल्दी, दारुहल्दी, खिरेटी, कड़ुए नीम की पत्ती, इनको महीन पीसकर लेप लगाने से भगन्दर रोग ठीक होता है।

व्रणरोपण तैल

श्यामा यष्ठीनिशा लोध्र पद्मकोत्पल चन्दनैः।
समरिचैः घृतंक्षीरे स्याद् व्रणरोपणम्॥

—अ० पु० अ० २८२ श्लोक २५।

तुलसी, हल्दी, लोध्र, पद्माख, कमल सफेद, सफेद चन्दन, काली मरिच के साथ पहले दूध में पकाकर जिस प्रकार तैल सिद्ध किया जाता है उसी प्रक्रिया से तैयार कर व्रण पर लगाने से आराम होता है।

नाड़ी व्रण रोग पर ऊपर लिखे काढ़े के सदृश भावप्रकाश में भी काढ़ा मिलता है—

रसांजन हरिद्रव्दे मंजिष्ठा निम्बपल्लवा।
त्रिवृते जीयन्ती दंती कल्को नाड़ी व्रणापहः॥

उपदंश रोग पर मेरे अनुभव

लेखक—स्वामी मनोहरदास "ज्ञानतीर्थ" दीनवा।

(१)

रोगी का नाम शिवनारायण आयु-२८ वर्ष, ग्राम-झूंझुनू। रोग-उपदंश। ता० २८।३।४६ को प्रातःकाल मेरे पास चिकित्सा के लिये आया।

रोग लक्षण —

तमाम शरीर पर लाल लाल चकत्ते पड़े हुए थे, पेशाब में चीस और पेशाब के आदि और अन्त में मवाद, इन्द्रि पर घाव जिसमें भी मवाद आता था, छः माह से यही हाल था। रोगी से पूंछने पर पता चला कि कई तरह की दवाइयां भी उसने सेवन की हैं।

चिकित्सा —

पहिले पहल दो दिन तक रोगी को इच्छाभेदी रस दो दो रत्ती गर्म जल के साथ दिया गया जिससे कोष्ठ शुद्धि हो गई। उसके बाद तीसरे दिन उपदंश कुठार रस एक गोली सुबह ठंडे जल के साथ। और बकरी के दूध को उबाल करके २ सी० सी० का इन्जेक्शन चूंतड़ पर दिया गया। सायं को वही उपदंशकुठार वटी जल के साथ दी जाने लगी। लगातार तीन दिन के उपचार से रोगी के शरीर एवं इन्द्रि के चकत्ते मिट गये और मवाद का आना भी रुक गया ?

चौथे दिन से दूध का इन्जेक्शन एक दिन बीच देकर दिया जाने लगा और उपदंशकुठार वटी प्रातः सायं ठंडे जल के साथ दी जाती रही। एक सप्ताह यह प्रयोग चालू रखने के पश्चात् दूध का इन्जेक्शन हफ्ते में दो बार दिया जाने लगा और उपदंशकुठार पूर्ववत् चालू रहा। इस प्रकार २० या २२ दिन के उपचार से रोगी पूर्ण स्वस्थ होगया। पथ्य में कच्चा दूध शक्कर बिना नमक के गेहूँ की रोटी, आदि से अन्त तक रहा। कभी कभी शक्कर के साथ घृत मिला कर भी रोटी खालिया करता था। चिकित्सा के बाद आज दिन तक रोग की कोई शिकायत नहीं हुई।

(२)

नाम रोगी—सुखराम खटीक। गांव-लक्ष्मणगढ़, आयु २५ वर्ष, ता० ३।३।४६ को मेरे चिकित्सालय में आया। बीमारी पुरानी ५-६ वर्ष की थी।

रोग लक्षण—

इन्द्रि करीब करीब गल गई थी, कहीं-कहीं शरीर पर चकत्ते चारों ओर से घाव फूला हुआ बीच में गड्ढा मुह में छाले शरीर का रंग एक दम काला पड़ गया था। उसके कारनामों ने जाहिर कर दिया कि उसके उपदंश ही है।

चिकित्सा—

पहिले पहल इच्छाभेदी रस कोष्ठ शुद्धि के लिए दिया गया, दो दिन के पश्चात् उपदंश सूर्य प्रातःसायं एक एक गोली गौघृत के साथ दिया जाने लगा, साथ में बकरी का दूध उबाल करके २ सी. सी. से बढ़ाकर ५ सी. सी. तक क्रम से एक एक दिन दो दो दिन एवं हफ्ते में दो वक्त और अन्त में हफ्ते में एक इन्जैक्शन दिया जाने लगा, उपदंशसूर्य, आदि से अन्त तक चालू रक्खा गया। घृत और शक्कर जितनी वह खा सक्ता था खिलाया गया। पथ्य में गेहूँ के फुलके बिना नमक के, कच्चा गोदुग्ध दिया गया। एक माह के उपचार से रोगी पूर्ण स्वस्थ हो गया तब से अब तक उसे किसी प्रकार की शिकायत नहीं हुई।

नाम रोगिणी-धापू, जाति-खटीक, आयु-२२ वर्ष, ग्राम-फतेहपुर। ता० ११-१-५० को सूर्योदय के समय मेरे पास आई। पूछने पर पता चला कि उसके पति को उपदंश रोग था उसी के कारण रोगिणी को भी उपदंश रोग होगया है।

रोग लक्षण - तमाम शरीर पर घाव यहां तक कि आंगुली रखने तक को बिना घाव की जगह नहीं थी, योनि का तो बहुत ही बुरा हाल बताया गया लगातार २ साल से करीब करीब यही स्थिति रही इससे उसके स्वसुराल वालों ने घर से निकाल दी। पिहर में एक गरीब रंडवे भाई के अलावा और कोई भी नहीं था, रोगिणी की दशा दयनीय थी।

चिकित्सा—

इच्छा भेदी रस ३ दिन देकर कोष्ठशुद्धि कर दी गई। चौथे दिन उपदंशसूर्य एक वटी सुबह एक दुपहर को और एक सायं गोघृत के साथ दी जाने लगी, और बकरी का दूध २ सी. सी. से ५ सी. सी. तक उबाल कर के मांसपेशी में दिया जाने लगा। शुरु शुरु में पांच इंजेक्शन प्रति दिन २ सी. सी. लगाये गये, पश्चात् २ दिन बीच में देकर तीन इंजेक्शन बनाये हफ्ते में दो इंजेक्शन २ सी. सी. से बढ़ाकर पांच सी. सी. तक दिया जाने लगा। अन्त में ५ सी. सी. का हफ्ते में एक इन्जेक्शन बनाकर बंद कर दिया गया। दस या ग्यारह दिन तक उपदंश सूर्य तीनों टायम दिया गया। शरीर में उष्णता अधिक बढ़ जाने के कारण उपदंशसूर्य बंद करके केशरादिवटी दोनों समय घृत में लपेट कर दी गई। सात दिन केशरादि वटी देकर पुनः उपदंश सूर्य ही दिया गया। करीब २५-२६ दिन के उपचार से रोग एक दम मिट गया। रोगिणी अब तक तरोताजा है।

पथ्य में सिर्फ बिना नमक के जौ की रोटी बकरी के दूध के साथ दी गई। डेढ़ महिने तक निमक मिर्च तैल खटाई से दूर रखी गई।

नाम रोगी—हेमाराम, जाति-जाट, आयु-४२ साल, ग्राम-दीनवां, ता० १०-६-५४ को मेरे चिकित्सालय में आया।

रोग के लक्षण—इन्द्रि पर घाव और इन्द्रि के अन्दर भी घाव। हर वक्त मवाद टपकना तमाम शरीर सूजकर कुप्पा होगया, खाना पीना बंद, जिह्वा पर अधिक शोथ होने से बोलने में रुकावट। रोगी को पूछने से पता चला कि उसकी काली करतूतों ने उसे यह दिन दिखाया है।

चिकित्सा —

कोष्ठ शुद्धि के पश्चात् एक एक रत्ती शुद्ध रस-कपूर का जौहर, दिन में एक समय प्रातःकाल दूध की मलाई के साथ दिया जाने लगा और साथ में बकरी के दूध को टेस्टट्यूब में बाइल करके २ सी. सी. की मात्रा में मांसपेशी में प्रति दिन दिया जाने लगा। पांच दिन देने के बाद एक दिन बीच में देकर बनाये गये, तीन इन्जेक्शन दे देने के पश्चात् हफ्ते में दो इंजेक्शन बनाये गये, अन्त में ५ सी. सी. दूध को बाइल कर हफ्ते में एक बार बनाया गया। कुल एक महिने के उपचार से रोगी पूर्ण स्वस्थ होगया।

रसकपूर सिर्फ ७ दिन ही दिया गया बाद में पारदादि वटी एक तोला चीनी मिलाकर उष्ण जल के साथ प्रातःकाल ७ दिन दी गई। इसके पश्चात् फेणाश्म वटी १० दिन तक दोनों समय ठंडे जल में सेवन कराई, दवाई सिर्फ २० दिन दी गई पथ्य में कच्चा दूध शक्कर घृत गेहूँ के फुलके दिये गये।

नोट—रस कपूर को धूम्र रहित आगपर डालकर ऊपर कांच का गिलास ढक देने से गिलास में जौहर लग जाता है उसमें मलाई मिलाकर खूब रगड़लें और बाद में चाटलें।

(५)

नाम-रिड़मलराम, जाति जाट ग्राम दीनवा आयु-३२ साल, ता० १।५।५५ को मेरे पास चिकित्सा को आया। रोग बहुत पुराना नहीं था।

लक्षण—इन्द्रि में पेशाब के समय चीस चलना और एक एक आधा औंस के करीब मवाद आजाना।

चिकित्सा—

सिर्फ विरोजा का चोया दस बूंद बताशे के साथ दोनों समय-दो इन्जेक्शन Cry. Panicillin पांच लाख के इन्जेक्शन किये और तीन इन्जेक्शन बकरी के दूध को बाइल करके २ सी. सी. के बनाये रोग एक हफ्ते में जाता रहा। रोगी पूर्ण स्वस्थ है।

पथ्य में सिर्फ गेहूं के फुलके बिना नमक के और कच्चा दूध दिया गया।

(६)

नाम-पीथाराम जाति-जाट आयु-६० साल ग्राम-डागरां। करीब १०-१२ साल से पेशाब में चीस चलती थी और कभी कभी मवाद भी।

लक्षण—पेशाब में चीस और इन्द्रि के अन्दर से मवाद का आना, शरीर कृश, भूख की कमी साथ कफ खांसी और श्वास, शरीर का रंग श्वेत।

चिकित्सा—

रोगी को हल्का सा जुलाब देकर कोष्ठशुद्धि करादी गई। बाद में उपदंशसूर्य सुबह शाम ठंडे जल के साथ दिया जाने लगा, दस दिन के उपचार से रोगी के पेशाब में जलन ज्यादा होगई और खांसी स्वास बढ़ गया। मैंने दवा के उष्ण होने का अनुभव कर बन्द करदी और केशरादि वटी दी जाने लगी। एक हफ्ते तक केशरादि वटी ले लेने पर कोई फायदा नहीं हुआ। साथ में मैंने इन्जेक्शन चिकित्सा भी शुरू रक्खी। एक दिन बीच में देकर २ सी. सी. उबाला हुआ दूध का इन्जेक्शन बनाता रहा, इस प्रकार १७ दिन के उपचार से कोई फायदा नहीं हुआ। तब क्रम से पारदादि वटी और फेणाश्म वटी दी गई और साथ में Cry. penicilline पांचलाख के दस इन्जेक्शन भी बना दिये, फायदा नहीं के बराबर रहा।

उपरोक्त चिकित्सा के बाद मुझे शक हुआ कि रोगी के अश्मरी तो नहीं है? जांच करने पर कुछ भी पता नहीं चला, पुनः चिकित्सारंभ की।

सिर्फ विरोजे का चोया २० बूंद सुबह और बीस बूंद सायं देते रहे। ५ वें दिन रोगी के पेशाब की चीस में कुछ फायदा हुआ और मवाद भी कम हो गया। लगातार यही बेरोजा का चोया प्रातः सायं बताशे में २० दिन तक देते रहे। पथ्य में—दूध गर्म करके ठंडा किया हुआ शक्कर गेहूं के फुलके अलुनी-दाल दी गई। पूरे बीस या इक्कीस दिन के उपचार से रोगी पूर्ण स्वस्थ होगया। पेशाब में चीस और मवाद कतई बंद होगई।

नोट—इस बाइस वर्ष के चिकित्सा काल में मैंने उपदंश के अनेक इलाज किये हैं जिसमें करीब करीब मैंने दूध के इन्जेक्शन अवश्य ही बनाये और प्रायः सफलता ही मिली है।

किन्हीं किन्हीं रोगियों को दूध के इन्जेक्शन से बुखार आजाता है और कइयों को बेहोशी भी होती देखी गई है। इन्जेक्शन के लिये दूध निरोग बकरी का ही लेवे।

सुराइसिस (PSORIASIS)

लेखक—कविराज गौरीशंकर श्रीवास्तव आयुर्वेदाचार्य ।

सुराइसिस एक प्रकार का चर्मरोग है जिसमें साफ, रक्तिम किन्तु शुष्क चकत्ते शरीर के अनेक स्थानों पर एकाएक उभर आते हैं और अनायास ही कुछ काल पश्चात् अदृश्य हो जाते हैं। यह व्याधि अनेक शताब्दियों से मनुष्यों में देखी जारही है इसलिए यह प्राचीन रोग ही माना जाता है और इस रोग पर अनेक डाक्टरों ने अपने अपने अभिमत व्यक्त किए हैं; किन्तु डाक्टर विलियम ने जो कुछ इस सम्बन्ध में खोज-बीन की है उसी पर वर्तमान एलोपैथी का मत आधारित है।

यह रोग एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पैतृक दोष के रूप में भी आता देखा जाता है। इसलिए कुछेक डाक्टरों का मत है कि इसे जन्मजात उपदंश (Heriditory syphilis) के अन्तर्गत माना जाए।

सुराइसिस में चकत्तों का सन्धियों के ऊपर फैलाव और उनमें दर्द होता है इसलिए कुछ ऐलोपैथों का मत है कि इसे आमवातज व्याधि (Rheumatoid) माना जाए।

इस रोग में हलके और सुपाच्य भोजन से जिसमें प्रोटीन कम हों रोगी को लाभ पहुंचा है। इस लिए कुछ लोग इसे Nitrogen जन्य व्याधि मानते हैं।

एलोपैथिक चिकित्साक्रम

सुराइसिस के चकत्तों में पसीना नहीं आता इसलिए कितने ही डाक्टर इसे वफारा द्वारा पसीना लाकर ठीक करते हैं।

डाक्टर बकले और ब्रांक ने प्रथम महायुद्ध के अनुसन्धानों के आधार पर यह निर्णय दिया था कि सुराइसिस के रोगियों को स्वल्प और अपौष्टिक भोजन लाभप्रद होते हैं और भारी तथा चिकने पदार्थ रोगी को अहितकर साबित होते हैं।

अल्ट्रा व्हायलेट किरणों (Ultra voilet light) के द्वारा इस रोग की चिकित्सा की जाने पर रोगी को अच्छा लाभ देखा जाता है।

डाक्टर गोल्ड फार्ट का अनुभव है कि इस रोग में Vitamin C&D की भारी खुराक (Massive doses) देने से रोगी को अधिक और जल्दी लाभ पहुंचता है।

आजकल साधारणतया इस रोग में पेनीसिलीन Penicillin, vitamin B. complex और Riboflovin आदि औषधियों की व्यवस्था की जाती है।

आयुर्वेदिक दृष्टिकोण

इस रोग का प्रादुर्भाव साधारणतया वसन्तऋतु (फाल्गुन-चैत्र) में देखा जाता है जब रोगी के शरीर पर यत्र-तत्र एकाएक लाल-लाल जल युक्त चकत्ते निकल आते हैं। इसके चकत्ते शीतपित्त के चकत्तों से भिन्न होते हैं क्योंकि इनकी अवधि लम्बी होती है और इनके ऊपर खुरन्ट (Scales) पड़ते जाते हैं और साथ ही इनका आकार बढ़ता भी जाता है। इनमें दाह होती है और सुई भोंकने सा दर्द मालूम पड़ता है। रोगी को नींद नहीं आती और बेचैनी का अनुभव होता है। साथ ही ज्वर सिर दर्द, ग्लानि, मर्मस्थानों में पीड़ा आदि के उपद्रव भी रहते हैं। इसलिए इस चर्मगत व्याधि को वातरक्त के अन्तर्गत मानना पड़ेगा क्योंकि इसमें कफ और वायु के योग से रुधिर की विकृति विशिष्ट है।

पूर्वरूप

रोग के पूर्वरूप में शरीर में कृशता, स्पर्शज्ञान की न्यूनता, संधियों में शिथिलता, आलस्य, अङ्गों में जड़ता, फुंसियों का निकलना, जानु जंघा, कटि, हाथ, पांव की सन्धियों में सुई छुभने जैसी पीड़ा, भारीपन, ग्लानि, खुजली, दाह आदि उपसर्ग होते हैं।

वातरक्तोपद्रव

अस्वप्नारोचक श्वास मांसकोथ शिरोग्रहाः ।
मूर्च्छाचाऽमन्द रुक्तृष्णा ज्वरमोह प्रवेपकाः ॥
हिक्का पाँगुल्य वीसर्प पाक तोद भ्रम क्लमा ।
अंगुली वक्रता स्फोट दाह मर्म ग्रहार्बुदाः ॥

निद्रा का अभाव, अरुचि, श्वास, मांसकोथ, सिर में दर्द, चक्कर आना, कम दिखना, तृषा, ज्वर, मोह, कम्प हिचकी, पंगुता, चकत्तों का होना, पकना, सुई भोंकने की सी पीडा होना, ग्लानि, अंगुलियों का टेढ़ा पड़ जाना, दाह, मर्मस्थानों में पीड़ा गठान आदि उपद्रव इस वातरक्त में होते हैं।

चिकित्साक्रम

सुराइसिस के रोगी को पहिले स्नेहयुक्त विरेचन देकर मलरहित कर लेना चाहिए। चकत्ते को नर्म करने के लिए उनके ऊपर किसी औषधियुक्त तैल की मालिश कर लेना आरामप्रद होता है।

परहेज—दिन में सोना, धूप का सेवन, व्यायाम, मैथुन, कड़वे रसयुक्त, भारी, अभिष्यन्दी, नमकीन और अम्ल रसयुक्त पदार्थों का त्याग करना चाहिए।

पथ्य—पुराने जौ अथवा गेहुओं की चपातियां, पुराना चावल, अरहर, चना, मुंग की दाल, बथुआ, पोई, शतावर, परवल, लौकी आदि का शाक। शतावरी अथवा गुडूची घृत का सेवन।

औषधि

क्वाथ—हल्दी तथा गिलोय का क्वाथ शहद डाल कर पीजिए।

लागुली गुटिका—कलिहारी का कन्द यत्न पूर्वक लाकर उस कन्द के बराबर गिलोय लीजिए। हर्र, बहेड़ा, आंवला, सोंठ, मिर्च, पीपल, लौह चूर्ण इन्हें समानभाग लेकर डाल लीजिए।

फिर गूगल के अथवा त्रिफले के रस की भावना देकर बेर प्रमाण गोलियां बना लीजिए।

मात्रा—एक-एक गोली सुबह शाम शहद के साथ।

निम्न गुग्गुल योगों में से किसी भी योग का उचित अनुपान के साथ सेवन कीजिए—

१. पुनर्नवादि गुग्गुल।
२. किशोर गुग्गुल।
३. त्रिफलादि गुग्गुल।

चकत्तों की दाह पर—

१. तिलों को भूनकर पीस लीजिए और फिर दूध में पकाकर उनका लेप कीजिये।

२. अलसी को दूध में पकाकर उनका लेप करिए।

३. गुडूची अथवा मुलहठी द्वारा सिद्ध किया हुआ तैल वातरक्त के चकत्तों को नष्ट करने वाला है।

सुराइसिस का यदि दोष दूष्य को ध्यान में रखकर इलाज किया जाए तो आयुर्वेदिक चिकित्सा से स्थाई लाभ होते देखा जाता है।

मसान रोग

लेखक—वैद्य मोहरसिंह यादव, मिश्री, डालमिया दादरी।

यह रोग वास्तव में बच्चों की दिक (यक्ष्मा) ही है! दिक शब्द का अर्थ बारीक (पतला, कृश) होता है। इस रोग में भी बालक मृत्यु से पूर्व अस्थि पंजर मात्र रह जाता है।

मसान, सूखा रोग, सुखण्डी, Marasmas बाल शोष, आदि नामों से पुकारते हैं।

कारण

१-जीव तिक्त (विटामिन) ए तथा डी की कमी से।

२-दरिद्रता तथा अस्वास्थ्यकर निवास।

३-सूर्य प्रकाश का अभाव (विशेषतः बड़े-बड़े नगरों में एसे मकान देखे गये हैं, जहां कभी भी आंगन में सूर्य प्रकाश नहीं पड़ता।

४—गर्भकाल में शिशु को स्तनपान कराने से (मैंने अनेकों ऐसी शिक्षित एवं अशिक्षित देवी देखी हैं, जो एक शिशु को आंचल से दुग्ध पिला रही हैं और दूसरे कुमार का गर्भ में पोषण कर रही हैं)

५—दूषित अन्न पान तथा स्तन्य दुष्टि से।

६—एक बालक को जन्म देकर शीघ्र ही दूसरा गर्भ धारण करने से (अपने ग्राम की ही बात कहदूं, एक स्त्री की दो लड़कियां हैं, बड़ी की आयु ११ मास और छोटी की आयु १ मास, दोनों बच्ची दुग्ध पीती (स्तन पायी) हैं। चलना फिरना तो दूर बैठ भी नहीं सकती हैं।

अनेकों स्त्रियां ऐसी देखने को मिली हैं। अब विचार कीजिये, अपराध किस का है, बच्चों का या माता पिता का।

७—दूषित वायु सेवन से तथा गन्दे एवं तंग स्थान में रहने से।

८—अन्त्र द्वारा शोषण के कार्य में विकृति होने से

९—माता की रोगावस्था में गर्भ धारण करना विशेषतः प्रदर तथा रक्ताल्पता।

१०—उचित पोषक तत्वों के अभाव से।

११—यह रोग वंश परम्परा से भी होता है।

१२—बच्चों को मुख पर वस्त्र डालकर सुलाने से।

१३—मूर्खता भी एक विशेष कारण है।

पूर्व रूप

१—बालक का उद्विग्न तथा क्षुब्ध सा रहना।

२—स्वाभाविक चपलता न्यून हो जाना।

३—शरीर का शिथिल हो जाना।

४—दुग्ध व भोजन का पाचन योग्य नहीं होना

५—बालक प्रतिदिन गलता जाता है।

६—शनैः शनैः बालक सूखने लगता है।

७—पतले दस्त आने लगते हैं।

रूप

१—प्रथम पैर सूख जाते हैं।

२—स्वभाव में चिड़चिड़ापन आ जाता है।

३—नितम्ब (चूतड़) मांसल प्रदेश में झुर्रियां पड़ जाती हैं।

४—उदर, शिर तथा मुख की वृद्धि हो जाती हैं।

५—पेट फूला रहता है।

६—बच्चे में चलने फिरने की असामर्थ्य। हाथ पैरों की सन्धियां शिथिल होजाती हैं तथा पतले पड़ जाते हैं।

७—कनपटियां बैठ जाया करती हैं।

८—चेहरा सूख कर बन्दर जैसा हो जाता है।

रक्ताल्पता, नेत्र पीत वर्ण के हो जाते हैं।

मल मूत्र दुर्गन्ध युक्त हो जाते हैं।

मल में आम की प्रतीति होती है।

मल कभी हरित कभी पीत वर्ण का आता है।

चावलों के पीच सा कभी कभी रक्त मिश्रित आंव भी आती है।

-मल फटा हुआ आया करता है।

-अन्तिम अवस्था में मल वस्त्रों में ही निकल जाता है।

-कभी कभी दुग्ध वा भोजन पान करते ही वमन हो जाती है।

-कभी कभी रात्रि के समय मन्द मन्द ज्वर तथा किसी किसी को हर समय ही ज्वर बना रहता है।

-मांस तो शरीर पर रहता ही नहीं।

-कृशता, क्षीणता के कारण अस्थियां दुर्वल होकर वक्र (तिरछी) हो जाया करती हैं।

-बालक हर समय रें रें करता रहता है।

-शुष्क, दुर्बल हाथ पैर, निस्तेज मुख मण्डल।

उदर वृद्धि ग्लानि शरीर नितम्ब पै होत सल॥

-अग्निमान्ध, अरुचि, अपचन, मलावरोध आदि होते हैं।

-विशेष पहचान:-बच्चे की कान की लोर (कान के नीचे जो मांस लटकता रहता है) को हाथ से खूब दबाकर देखियेगा, बच्चे को तनिक भी दर्द नहीं होगा और नहीं बालक रोयेगा, कितना ही दबा लीजियेगा।

-त्वचा पीली पड़ जाती हैं।

-पेट निकल आता है।

-निद्रा कम आती है।

उपद्रव

अतिसार आध्मान वमन, हों उपद्रव अनेक।
कास श्वास शोथ को भी, अन्त समय में देख॥

देखा गया है, कान में दर्द होने से पर्दे विकृत हो जाते हैं। आंख आजाने से फूटने का भय रहता है। अस्थि में शोथ होने से अस्थि क्षय हो जाता है। दांतों में कीड़े लग जाते हैं और खराब कर देते हैं।

चिकित्सा सूत्र

शुद्ध वायु का सेवन करायें, प्रातः सूर्य प्रकाश में।
गोद में शिशु हो मां की, चतुर हो मर्दन अभ्यास में॥

माता ध्यान दें

१—यदि बालक स्तन पान करता है तो नमकीन, मसालेदार, चटपटी तरकारी या, गरिष्ट पदार्थ, अधिक गरम तथा खट्टी वस्तुओं से सदैव बचें।

२—भोजन बनाने के तत्काल बाद ही बच्चे को स्तन पान नहीं करायें।

३—अधिक देर अग्नि के पास रहने के पश्चात, कहीं धूप से चल कर आने के बाद (ग्रामीण स्त्रियां जो खेतों में कार्य करती हैं) तथा चक्की चुल्हे के काम के बाद शीघ्र ही बालक को दूध न पिलाएं, आंचल का।

४—शरीर पर स्वेद आ रहा हो और देह गरम हो तब ऐसी अवस्था में भी आंचल का दूध (स्तन-पान) न करायें।

५—प्रायः ऐसी स्त्रियां देखी हैं जो रसोई घर में आग के सामने बैठी भोजन बनाती हैं तब उसी समय छोटा सा लल्लु जाग उठता और रोता है तो ममता की मारी मां दौड़ कर आती है तथा बच्चे को गोद में ले झटपट कमर को थपथपाती हुई स्तन (दूधी, चूंची) मुख में दे, आग के पास बैठ जाती है। ऐसा न किया करें। लल्लु को रोने दें, इससे व्यायाम होता है और इतनी देर में आप भी ठण्डी हो जायेंगी तब प्रेम से चूंची दें।

६—जब तक दूध पीता है, दुर्बल है, तब तक भोग विलास से मुंह मोड़ लें। ब्रह्मचर्य का पालन करें।

७—सन्तान से अधिक प्रेम करने वाली माताओं को देखा है, जो स्वयं भोजन करती हैं और लल्लु को भी स्तनों पर चिपटाये रखती है। ऐसा करने से बच्चे का स्वास्थ्य डावाडोल हो जायेगा।

८—बच्चे को स्नान आदि कराना माता का ही काम है।

याद रखो बहन

१—मैं मानता हूँ, बहन को भ्राता बहुत ही प्रिय होता है। किन्तु फिर भी इस नन्ही मुन्नी कली को गोद में न दबाए रख! इसे बढ़ने दे और खिलने दे।

२—गोद में हर समय रखने से इस की पचन क्रिया विकृत हो जायेगी, स्वास्थ्य बिगड़ जायेगा, रोग आ दबायेगा तब क्या होगा? यही न कि फिर लल्लु न गोद में होगा न खटिया में, खेलना, हंसना-हंसाना तो स्वप्न बन जायगा।

३—भ्राता को बैठाकर खिलाया कर, बैठता नहीं तो खाट (चारपाई) में लिटाकर हंसाया कर किन्तु काख (कक्ष) में बीन सी न दबायाकर।

४—लल्लू यदि शेरसिंह बन गया है तो उसकी अंगुली पकड़ कर प्रातः सायंकाल खुली हवा (स्वच्छ वायु) में घुमाया कर।

५—हव्वा से मत डराया कर अपितु मीठी-मीठी लोरियां सुनाया कर।

६—तब फिर क्यों नहीं नीरोग रहेगा लल्लु भैया?

सावधान

यदि पहले इन बातों का ध्यान नहीं रहा हो तब और लल्लू का पेट टामक सा होगया हो तब ...तब तो उस की चिकित्सा करायें।

याद रहे—आसेब, चुड़ैल की फटकार नहीं है यह। यह तो रोग है, रोग। झाड़-फूंक गण्डे डोरी और तावीजों से काम नहीं चलेगा किसी योग्य वैद्य से चिकित्सा करायें।

समय पर वैद्य महाशय न मिले तो; आज मैं अपना अनुभव धन्वन्तरि के द्वारा पाठकों की भेंट कर रहा हूँ। इससे लाभ उठाएं।

१—बालहितैषी गुटिका—

जहर मोहरा खताई पिष्टी प्रवाल पिष्टी
गोदन्तीभस्म वंशलोचन

६-६ माशा

लघु एला मुक्ताशुक्ति भस्म
अतीस काकड़ासींगी ४-४ माशा
शृंगा भस्म ३ माशा
सोंठ जीरा ४-४ माशा

निर्माण विधि—भस्मों को छोड़ कर सभी वस्तुओं का वस्त्र पूत चूर्ण करलें। फिर ३ दिन मधु में घोटकर ४-४ रत्ती की गोलियां बना लें।

मात्रा—१ से २ गुटिकाएं, अवस्थानुसार, दोनों समय दें।

अनुपान—मधुमें घोट कर सन्तरे का रस मिलाकर पिलाएं। वा गो दुग्ध वा बकरी दुग्ध से दें।

स्तन पायी शिशु को दिन में दो बार एडेक्सोलिन (Adexolin) की २-४ बूंद एक चम्मच दुग्ध में मिलाकर पिला दिया करें।

भोजन करने वाले बच्चे को भोजनोपरान्त अरविन्दासव सम भाग पानी मिला अवस्थानुसार मात्रा बना, पिला दिया करें।

मर्दनार्थ—लाक्षादि तैल, जब बच्चे को प्रातःकाल धूप में लिटाएं तब धीरे-धीरे मालिश करें।

सप्ताह में २ बार डीकाडोक्सलीन वा कैलशियम विद विटामिन डी का सूची वेध अवस्थानुसार मात्रा में मांसान्तर्गत विधि से दें। केवल ४-६ सूचीवेध पर्याप्त हैं। यह दस्त तथा निर्बलता में भी लाभप्रद है।

२—शिशु हितैषीवटी—

गिलोय सत्व वंशलोचन
जहरमोहरा खताई पिष्टी बीजगावजवां

इन्द्रयव मीठे	कहरवापिष्टी
कमलगट्टा	बड़ी हरड़ का छिलका
—प्रत्येक	३-३ माशा
दरियाई नारियल	करंजबीज गिरी
हब्बुल यहूद	—तीनों ४-४ माशा
स्वर्ण वर्क	१ माशा
चांदी वर्क	२ माशा

—इनको गुलाब जल में खरल कर मटर प्रमाण गोलियां बनाएं।

मात्रा—१-१ गोली प्रातः सायं।

अनुपान—माता के दुग्ध वा अर्क गांवजवां से दें।

३–कुकुटाण्ड जरदी–

मुर्गी के अण्डे की जरदी को चार तह किए काले कम्बल पर डाल उस पर बच्चे को इस प्रकार बैठाए कि गुदा जरदी पर ठीक बैठ जाए। यह जरदी थोड़ी देर में ही गुदा मार्ग से चढ़ जायेगी तीन चार दिन ऐसा ही करें। खूब परीक्षित है।

४–बालशोषहर योग–

घटक-स्वर्णमालती बसन्त	४ रत्ती
सितोपलादि चूर्ण	६ माशा
प्रवालपिष्टी	३ माशा
जहरमोहरा खताई पिष्टी	६ माशा
शृंगभस्म	१॥ माशा

निर्माण विधि—पांचों औषधियों को खरलकर रखलें।
उपयोग—सूखे रोग की खूब परीक्षित औषधि है।
अनुपान—मधु में घोटकर चटाएं।
मात्रा—२ रत्ती या अवस्थानुसार।

इसके साथ "कोलायड कैलशियम विद विटामिन डी"(colloid calcium with vita. D.)का सूचिवेध अवस्थानुसार मात्रा बना मांस-पेशीगत दें। ४-६ इञ्जेक्शन पर्याप्त हैं।

५–होमियोपैथिक–

सुखण्डी रोग में एब्रोटेनम तथा कलकेरिया फौस दोनों दवाओं की ३०, २०० शक्ति लक्षणानुसार खूब कार्य करती है।

: पृष्ठ ११३१ का शेषांश :

(९) संखिया विष के प्रतिकारार्थ—

इसबगोल को जल में भिगो और छान कर लुआब पृथक कर लें, तथा उस लुआब में बिहीदाना हल्दी और गुलाबजल मिला बार-बार पिलावें,अथवा–उक्त लुआब में केवल दही मिलाकर बार बार पिलावें। संखिया के विष की शांति हो जाती है।

(१०) कास और श्वास पर—

इसबगोल १ तोला तक मात्रा में सूखा ही बार-बार चबाकर खाते रहने से सूखी खांसी और श्वास रोग में लाभ होता है।

गर्भावस्था के रोग

(गर्भावस्था के रोग और उनकी सामान्य चिकित्सा)

लेखक—वैद्य रामेश्वरप्रसाद दाधीच, मु० खलाना पो० खाचरियावास (सीकर)

गर्भावस्था में साधारण अवस्था के सभी स्त्री-रोग उत्पन्न होते हैं परन्तु हमारा मतलब यहां उन रोगों से है जो केवल गर्भ की अवस्था में गर्भिणी के स्वभाव के वदलने के कारण उत्पन्न होते हैं। उनमें भी बहुतसे रोग तो ऐसे हैं जो स्वास्थ्यरक्षा के नियमों को उल्लंघन करने से उत्पन्न होते हैं और बहुत से ऐसे हैं जो गर्भ को प्रकट करने के लिये अथवा गर्भ की सूचना देने के लिये उत्पन्न होते हैं। साधारण रोगों की अपेक्षा गर्भावस्था के रोगों में विशेष विभिन्नता देखी जाती है। इसी कारण उनकी चिकित्सा भी साधारण रोगों की अपेक्षा भिन्न रीति से की जाती है।

साधारणतः गर्भावस्था के रोगों में एक साथ किसी प्रकार की औषधि नहीं सेवन करनी चाहिये, जब तक बन पड़े बिना ही औषधि सेवन कराये केवल आहार विहार में कुछ फेरफार कर रोग को दूर करने का प्रयत्न करना चाहिये। यदि आहार विहार पर अच्छे प्रकार ध्यान रखने पर भी रोग अधिक बढ़ता जाय तो साधारण औषधि सेवन करानी चाहिये। गर्भिणी को कभी भी तीक्ष्ण उत्तेजक और ज्यादा गरम औषधि नहीं देनी चाहिये। तीक्ष्ण और उत्तेजक औषधियां सेवन करने से गर्भ गिर जाता है उसी प्रकार विरेचन (जुलाव) की औषधियां विशेषकर जिन औषधियों को खाने से मल पानी के समान पतला हो जाता है, ऐसी औषधियों कभी भी भूलकर नहीं देनी चाहिये। यदि विरेचन (जुलाव) की औषधि सेवन करने की अधिक आवश्यकता समझी जाय तो बहुत हलकी साधारण औषधि सेवन करानी चाहिये। यदि रोग भयंकर रूप धारण करता जाय और सामान्य उपचारों से शमन न हो तो किसी सुयोग्य वैद्य द्वारा उसकी चिकित्सा कराना उपयुक्त होगा।

वमन (उलटी)

वमन गर्भ का एक विशेष लक्षण है, गर्भ रहने के बाद प्रायः सभी स्त्रियों को वमन हुआ करती है बहुत स्त्रियों को प्रातःकाल ही वमन की इच्छा उबकाई, जी का मिचलाना आदि विकार होते हैं। भोजन में रुचि नहीं होती और भोजन करने के बाद भी प्रायः वमन हो जाती है।

इस अवस्था में वमन का होना एक साधारण बात है इसलिए इसमें बिलकुल न डरना चाहिये। यदि प्रातःकाल वमन अधिकता से हो तो प्रातःकाल में स्नान कर कुछ थोड़ा सा पथ्य रूप भोजन कर लेना चाहिये इससे विशेष लाभ होता है। वमन की अधिकता में प्रतिदिन कोठा साफ रहे इस पर अधिक ध्यान रखना चाहिए। इस अवस्था में पति का प्रसंग भी अधिक वमन होने का एक प्रधान कारण है। इसी लिये इस विषय में खूब सावधान रहना चाहिये। कभी-कभी वमन की शिकायत इतनी बढ़ जाती है कि किसी भी उपाय से कम नहीं होती। जो कुछ औषधि या पथ्य खाया जाता है वह सब वमन होकर निकल जाता है। वमन की अधिकता में नीचे लिखी औषधियां सेवन करानी चाहिये।

१—एक मासे धनियां को आधी छटांक जल में थोड़ी देर तक भिगो देवे फिर उसको छानकर उसमें थोड़ी मिश्री मिलावें। अथवा धनिये को जल में पीस कर चावलों के पानी के साथ पिलावे इससे गर्भिणी की वमन कम हो जाती है।

२—सत गिलोय २ माशे, कमलगट्टे की गिरी २ माशे, अनारदाना २ मासे, धनिये के चावल दो

माशे, इन चारों औषधियों को इकट्ठा पीसकर सबकी बराबर मिश्री मिलाकर दिन में तीन चार बार अनार के शर्बत के साथ चाटे। इससे वमन कम हो जाती है।

३—दो तोला खीलों का यूप बनाकर उसमें धनियां, सफेद इलायची, सफेद जीरा और थोड़ा नमक का चूर्ण तथा अनार का रस या नारंगी का रस डाल कर पिये। इससे गर्भावस्था की वमन दूर होती है।

४—थोड़े मुनक्कों को या किशमिशों को शीतल जल में पीसकर वस्त्र में छानकर उसमें मिश्री डाल-पीने से वमन की बाधा कम हो जाती है।

५—सोंठ कालीमिर्च सैन्धानमक सम भाग लेकर चूर्ण करलें और ६ माशा चूर्ण ताजा जल के साथ सेवन करने से वमन दूर हो जाती है।

वमन की अधिकता में गर्भिणी को बहुत हलका और रुचिकारक पथ्य देना चाहिये। पुराने बारीक चावलों का भात का मांड, खीर, गेहूँ का दलिया साबूदाना आदि हलके भोजन पथ्य हैं। भोजन के नियमों का अच्छी प्रकार पालन करने से मन्दाग्नि अरुचि वगैरह रोग स्वयं दूर हो जाते हैं। अनार नारंगी नीबू सन्तरा वगैरह खट्टे मीठे फलों को अधिकता से खाने से अरुचि दूर होती है। वमन रोग में नं० ५ का प्रयोग सेवन करने से भी अधिक लाभ होता है। अथवा उसी प्रकार की अन्यान्य हलकी औषधियां सेवन करानी चाहिये।

अर्श (बवासीर)

गर्भावस्था में कोष्टबद्धता (कब्ज) के कारण बवासीर होजाती है, यदि गर्भ रहने से पूर्व भी यह हो तो गर्भावस्था में और अधिक बढ़ जाती है। गर्भावस्था में उत्पन्न होने वाली बवासीर प्रसव के हो जाने पर अपने आप शान्त होजाती है। बवासीर की अधिक पीड़ा में नीचे लिखे अनुसार चिकित्सा करनी चाहिये। सबसे पहले ऐसा यत्न करना चाहिये कि जिससे प्रतिदिन टट्टी साफ होती रहे। दो तोला दाखों को पाव भर दूध में पकाकर पान करें अन्यथा ४ माशे त्रिफले का चूर्ण थोड़ी मिश्री मिलाकर दें। इससे दस्त साफ आने लगता है। मस्सों के ऊपर माजूफल का बारीक चूर्ण बनाकर किंचित अफीम मिलाकर लगाना चाहिये या रसौत और हरड़ का लेप करें और जो मस्सों में खुजली सूजन वगैरह हो तो भांग को जल में पीसकर उसकी टिकिया बना कर घी में सानकर कुछ गरम करके बांधनी चाहिये।

अतीसार या पेचिश

गर्भावस्था में प्रायः अतीसार की भी शिकायत देखी जाती है। भोजन की अनियमितता ही इसका प्रधान कारण समझना चाहिए। इस कारण इस रोग के उत्पन्न होने पर खूब सोच समझकर भोजन करना चाहिये। भोजन के अजीर्ण में कभी भोजन नहीं करना चाहिये। जब अच्छे प्रकार भूख लगे तभी भोजन करना चाहिये। जिन पदार्थों के खाने से पेट में पीड़ा या अजीर्ण की आशंका हो वे छोड़ देने चाहिये। रोग की भयंकरता में सामान्य चिकित्सा करनी चाहिये।

१—केवल बकरी के दूध का सेवन करने से गर्भिणी का अतिसार दूर होता है।

२—चार माशे ईसबगोल को दो तोला जल में भिगोकर थोड़ी मिश्री डालकर भोजन के मध्य में खाने से गर्भिणी का अतिसार दूर होता है। आम की पुरानी गुठली की मींग, बेलगिरी, लोध और धनियां ये चारों औषधियां समान भाग लेकर सबका चूर्ण बनाकर और चूर्ण की बराबर मिश्री मिलाकर इसमें से ३-३ माशे की मात्रा से दही में मिलाकर सेवन करने से गर्भावस्था का अतिसार अवश्य दूर होता है।

३—सूखे आमले, धनियां और छोटी इलायची सबको समान भाग लेकर एकत्र पीसकर ३-३ माशे की मात्रा से बेल के शर्बत के साथ खाने से विशेष लाभ होता है।

४—भुनी भांग ४ रत्ती, जीरा एक माशा, अनारदाना एक माशा, सोंठ एक माशा और धनियां ३ माशा, इन सबको एकत्र पीसकर इसमें से

दो-दो माशे गाय के मीठे मट्ठे के साथ खावे, इससे सब प्रकार के दस्त बन्द होते हैं, अग्नि दीपन होती है।

कोष्ठबद्धता (कब्ज)

गर्भावस्था में यह शिकायत भी अधिकता से हो जाती है। इसको भी गर्भावस्था का एक लक्षण ही समझना चाहिए। गर्भावस्था में निरन्तर कब्ज के रहने से प्रसव के समय अजीर्ण वमन वगैरह तरह-तरह के रोग पैदा हो जाते हैं। सदैव सोते रहना या पड़े रहना, किसी प्रकार का कुछ भी परिश्रम का काम नहीं करना, नियम विरुद्ध भोजन और मन की चंचलता इत्यादि कब्ज होने के कारण, एक साथ छोड़ देने चाहिये। कब्ज में जहां तक हो सके बहुत ही हल्का और शीघ्र पचने वाला भोजन करना चाहिये। भोजन में भुने गेहूं का दलिया या सूजी का दलिया, सूजी की रोटी, मूंग का यूष पुराने चावलों की पतली खिचड़ी और भात वगैरह अधिक पथ्य हैं, तथा अंगूर, सेव नासपाती, अमरूद, केला, अनार नारङ्गी, अंजीर, ईख आदि फल भी अधिक हितकारी हैं और सब प्रकार के भोजनों को छोड़ कर केवल फलों का ही अधिक उपयोग किया जाय तो बहुत लाभ होता है, गरम दूध भी अच्छा गुण करता है। परवल लौकी तोरई पालक आदि शाक भी इसमें पथ्य हैं।

यदि कब्ज की शिकायत अधिक बढ़ गई हो तो साधारण हलकी दस्तावर औषधि सेवन करनी चाहिये परन्तु तेज दवायें चाहे कितनी ही कब्ज क्यों न हो कभी नहीं खानी चाहिये।

यह बात पहले भी लिखी गई है कि तेज दवा खाने से गर्भ गिर जाता है और फिर किसी प्रकार नहीं रुक सकता। साधारण दस्तावर औषधियों में दाख अंजीर गुलाव तुरञ्जबीन शीरेखिस्त आदि अनेक उत्तमोत्तम औषधियां हैं। दाखों के बीज निकाल कर उनको दूध में या पानी में काढ़ा बनाकर मिश्री मिला पीने से सहज में ही एक या दो दस्त हो जाते हैं इसी प्रकार ३-४ सूखे अंजीरों को खाकर ऊपर से गरम दूध पीने से दस्त साफ होजाता है। गुलाब के फूलों का चूर्ण बनाकर उनको जल में पकाकर मिश्री मिलाकर पीने से या दो तीन दिन तक बराबर तीन-तीन तोला गुलकन्द गरम जल या सौंफ के अर्क के साथ खाने से भी वही फल होता है। तुरंजबीन या शीरेखिश्त दस्तों के लिये लेनी हो तो शीतल जल में भिगोकर पीना चाहिये। इन दोनों औषधियों की मात्रा दो-तीन तोले तक की है। यह पूर्वोक्त औषधियों की अपेक्षा कुछ अधिक दस्तावर हैं परन्तु किसी प्रकार हानिकारक नहीं हैं।

लाला-स्राव

अर्थात् मुख से लार या पानी गिरना गर्भावस्था का यह साधारण लक्षण है। इसमें किसी प्रकार की औषधि खाने की आवश्यकता नहीं। बबूल मौलश्री गोंदनी आदि कषैली औषधियां के क्वाथ के कुल्ले करने से मुख से लार का गिरना बन्द होता है।

दन्त रोग

गर्भावस्था में प्रायः अनेक स्त्रियों के समय-समय पर यह भी शिकायत होजाती है। यह पहले महीने से पांचवें महीने तक रहती है। सदैव दांतों को स्वच्छ रखना ही दांतों की सर्वोत्तम औषधि है।

१—मस्तंगी और जली हुई सुपारी दोनों को एकत्र पीसकर मलने से दांतों की पीड़ा दूर होती है।

२—पीली कौड़ी की भस्म को दांतों से मलकर गरम जल से कुल्ले करने से गर्भिणी के दांतों की पीड़ा दूर होती है।

कास (खांसी)

गर्भिणी को कास का होना भी स्वाभाविक है परन्तु यह कास फेफड़े की खराबी से नहीं होती इसलिये यह शरीर को कुछ भी हानि नहीं करती। परन्तु इसके अधिक बढ़ जाने पर गर्भ को धक्का लगता है और गर्भिणी को अधिक कष्ट होता है।

१—गर्भावस्था की खांसी में थोड़ा कीकर का गोंद या मुलैठी का सत मुख में डालने से अधिक लाभ होता है।

२—अथवा मुलैठी मुनक्का शहद और मिश्री इन चारों वस्तुओं को एकत्र पीसकर चाटने से

गर्भिणी की खांसी दूर होती है।

३—बड़ी इलायची को आग में भूनकर शहद में मिलाकर खाने से तत्काल फायदा होता है।

गर्भ पीड़ा का उपाय

स्त्रियों का गर्भावस्था का समय बड़ा ही नाजुक होता है। इस समय जरा भी आहर विहार में किसी प्रकार की खराबी हो जाने से अनेक प्रकार के प्राण-घातक रोग उत्पन्न होजाते हैं। अनेक स्त्रियों के गर्भ-शूल उत्पन्न होकर गर्भपात होजाया करता है। कितनी ही स्त्रियों के यह गर्भशूलकी पीड़ा नियमित रूप से उत्पन्न हुआ करती है। अतएव गर्भशूल की पीड़ा से बचने के लिए तथा गर्भ की रक्षा के लिये प्रत्येक महीने की चिकित्सा नीचे लिखी जाती है।

पहिले महीने में

मुलैठी चार माशे सागौन के बीज चार माशे, विदारीकन्द चार माशे, देवदारु चार माशे, इन सब को एकत्र चांवलों के जल में पीस कर प्रातःकाल गाय के पके दूध के साथ पान करे, इससे गर्भशूल की पीड़ा और गर्भस्राव दूर होता है।

दूसरे महीने में

कमलकन्द ४ माशे, मजीठ ४ माशे, तिल ३माशे और शतावर ३ माशे, इन सबको जल में पीसकर गाय के कुछ गरम दूध के साथ सेवन करें इससे दूसरे महीने के गर्भ की पीड़ा और गर्भस्राव का भय दूर होता है।

तीसरे महीने में

बांदा ४ माशे, (वृक्ष पर जो वृक्ष उत्पन्न हो जाता है) असगन्ध ४ माशे, फूल प्रियंगू ४ माशे, और अनन्तमूल ४ माशे, इन सबको दूध में पीसकर दूध के साथ पान करें। इससे तीसरे महीने की गर्भ की पीड़ा दूर होती है।

चौथे महीने में

अनन्तमूल ३ माशे, उसवा ३ मांशे, पद्माख ३ माशे, और मुलैठी ३ मांशे, इन सबको एकत्र जल में पीसकर गाय के दूध के साथ पान करें, इससे चौथे महीने की गर्भ की पीड़ा दूर होकर गर्भस्राव का भय दूर होता है।

पांचवे महीने में

छोटी कटेरी ३ माशे, बड़ी कटेरी ३ मांशे कुंवेर ३ मांशे, और बड़ आदि वृक्षों के अंकुर और छाल ६ माशे, और इन सबको एकत्र दूध में पीसकर १ तोला घृत मिलाकर आध पाव दूध के साथ पान करें। इससे पांचवें महीने की पीड़ा दूर होती है।

छठे महीने में

पृष्टपर्णी ३ माशे, खिरैंटी की जड़ ३ माशे, सहजना ३ माशे, गोखरू ३ माशे और मुलेठी ३ माशे इन सब को चावलों के जल में पीसकर एक छटांक दूध के साथ पान करें इससे गर्भ का शूल नष्ट होता है गर्भ की रक्षा होती है।

सातवें महीने में

सिघाड़े ४ माशे, भसींड़े (कमल) की जड़ ४ माशे, दाख ४ माशे, कसेरू ४ माशे और मुलेठी ४ माशे इन सबको जल में पीसकर एक तोला मिश्री मिलाकर छटांक भर दूध के साथ पीने से गर्भ की पीड़ा दूर होती है।

आठवें महीने में

कैंथ ४ माशे वेलगिरी ४ माशे और बड़ी कटेरी ४ माशे इन सबको आध सेर जल और आध पाव दूध में खीर की तरह पकावें। जब पककर केवल दूध बाकी रह जाय तब उतार कर छान लें। फिर मिश्री मिलाकर पीवें। इससे गर्भ की पीड़ा दूर होती है।

नवें महीने में

मुलैठी ४ माशे, अनन्तमूल ४ माशे, असगन्ध ४ माशे और उसवा ४ माशे, इन सबको जल में पीस कर दूध के साथ सेवन करें। इससे नवे महीने की पीड़ा दूर होती है।

दशवें महीने में

सोंठ ६ माशे को आध पाव दूध में पकाकर फिर ठण्डा करके १ तोला मिश्री डालकर पीवें अथवा सोंठ ३ माशे मुलहठी ३ माशे और देवदारु ३ माशे इन सबको आध पाव दूध में पकावें। जब पककर केवल दूध बाकी रह जाय तब उतारकर छान लें। इसमें दो तोला मिश्री मिलाकर पान करें इससे गर्भशूल की पीड़ा दूर होती है।

इसबगोल (PLANTAGO OVATA)

लेखक—श्री पं० कृष्णप्रसाद त्रिवेदी B. A. आयुर्वेदाचार्य।

(अङ्क ६ से आगे)

इसबगोल शीतल, स्नेहन और किंचित संग्राहक है। यह शरीर की उष्णता को कम करती है। यह प्राय: ज्वर और अभिष्यन्द युक्त रोगों में दी जाती है। इसका फांट खांसी में दिया जाता है, इससे कंठ और श्वासनलिका की खुश्की दूर होती है।

'आंत्र" के पित्तजन्य और कफयुक्त विकार अर्थात् शोथ में इसका बहुधा प्रयोग किया जाता है। इसके बीजों को ठीकड़ी पर थोड़ा गरम कर खाने के लिये देते हैं। सेंकने या गरम करने से इसमें ग्राही (संकोचक) गुण की उत्पत्ति होती है, तथा इसमें लुआब जल्दी नहीं छूटता। गरम कर सेवन करने से, यह अन्तड़ियों में जाकर फूलती है, तथा इसमें से निकलने वाला लुआब, स्थानीय आंत्र व्रणों को ढक देता है। "रक्तप्रवाहिका" और जीर्ण अतिसार में यह विशेप गुण दायक है। "मूत्रपिण्डों (वृक्क) के दाहयुक्त रोगों में इसका फांट दिया जाता है।

—डा० देसाई (औ. संग्रह)

"वीर्य" सम्बन्धी योगों में प्राय: इसबगोल की भूसी ही विशेप उपयोगी है। इसका प्रभाव छोटी अन्तड़ियों पर खास तौर में होता है। वीर्य विकार ग्रस्त रोगी की कोष्ठबद्धता निवारणार्थ इसका मृदुरेचन गुण विशेप उपयोगी सिद्ध हुआ है। इसके प्रयोग से विकृत पक्वाशय पर इसके लुआब का एक पर्तसा जम जाता है, जो आराम के साथ, आसानी से मल को नीचे सरका देता है। तथा आंतों के विप या दूपित द्रव पदार्थों को यह चूसकर अपने साथ बाहर निकाल लाता है, उन दूपित द्रव्यों का प्रवेश रक्त में नहीं होने पाता और न शारीरिक विकृत ऊष्मा की वृद्धि होने पाती है। वीर्याशय में गरमी का संचय नहीं होने पाता। —लेखक।

सिद्ध साधित प्रयोग

(१) चूर्ण—

इसबगोल २ भाग, छोटी इलायची और धनियां १-१ और मिश्री ४ भाग लेकर सबका एकत्र चूर्ण बना रक्खें।

मात्रा—२ से ६ माशे तक, दिन में दो या तीन वार, जल या गरम दूध के साथ सेवन से, ज्वरातिसार, जीर्णातिसार, पित्तातिसार, रक्तातिसार, रक्तार्श, रक्तस्राव, प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र और कोष्ठबद्धता में लाभ होता है। अतिसारों की अवस्था में इस चूर्ण को केवल जल के ही साथ देना ठीक होता है।

बड़ी जाति का इसबगोल
(बाररंग)

२ तोला मिश्री मिला पीने से "रक्तस्राव" सिर की गरमी, उपदंश जन्य चट्टे आदि दूर होते हैं। यह पेया या हिम आम के दस्त, मरोड़, रक्तातिसार, पेट की जलन, पित्त विकारों को दूर करता है।

(३) शर्वत—

इसबगोल २। तोला ६ रत्ती लेकर २७ तोला ४॥ माशे पानी में भिगोकर लुआब निकालें। फिर उसमें ४२ तोला ६॥। माशा शक्कर या मिश्री मिला, आग पर धीमी आंच पर पकावें। शर्वत की चाशनी आजाने पर सुरक्षित रक्खें।

उचित मात्रा—१ से ४ तोला तक सेवन करने से फुफ्फुसों का कड़ापन, तथा पित्त और खांसी में, एवं पित्त जन्य मूर्च्छा में लाभ होता है।

(४) लप्सी—

इसबगोल की भूसी २ से ६ मासे तक और सालब मिश्री का चूर्ण १ से ३ माशे तक लेकर, दोनों को १० से २० तोला तक दूध में पकावें। स्वाद के लिए इसमें कम से कम शक्कर मिलावें। जब पक कर गाढ़ी लप्सी बनजाय, तो प्रातः और दुपहर दिन में दो वार सेवन करने से—

(२) पेया—

इसबगोल २ से ४ तोले तक रात्रि के समय एक पाव (२० तोला) तक जल में भिगो रक्खें, दूसरे दिन प्रातःकाल इसे अच्छी तरह मसल कर और

शुक्र मेह, वीर्य का पतलापन; स्वप्नदोष, स्तंभन शक्ति का अभाव आदि वीर्य विकारों में, तथा स्त्रियों के श्वेत प्रदर में लाभ होता है।

(५) खीर—

इसबगोल १ तोला लेकर, एक पाव गाय के दूध में पकावें। जब खीर के समान पक जाय, तो उसमें एक चुटकी सेलखड़ी पीस कर मिलादें। स्वाद के लिए शक्कर बहुत ही कम मिलावें।

प्रातः इस खीर को खाने, और फिर भूख लगने पर भोजन करने से एक मास में ही प्रमेह, धातुक्षीणता, स्वप्नदोष आदि वीर्य विकार दूर हो जाते हैं।

(६) पाक—

इसबगोल आध सेर लेकर, ३ सेर दूध में पकावें। मावा सा हो जाने पर, उसे आध सेर घृत में भून कर उसमें सोंठ, कालीमिर्च, हरड़ बहेड़ा, आमला और दालचीनी में पाक जमा देवें।

मात्रा—२ तोले नित्य प्रातः सायं सेवन करने से शरीर में वीर्यादि धातुओं की पुष्टि होती है। रक्तातिसार और रक्तपित्त में विशेष लाभ दायक है।

रोगानुसार मुख्य प्रयोग

(१) आमरक्तातिसार, ज्वरातिसार, प्रवाहिका आदि पर—

(अ) इसके लुआब के साथ बिहीदाने का लुआब सम भाग मिला, और उसमें दूनी मिश्री मिला, दिन में कई बार थोड़ा थोड़ा पिलाने से आम रक्तातिसार में लाभ होता है। अथवा—

इसबगोल २ से ४ तोला तक रात्रि के समय जल में भिगो, प्रातः अच्छी तरह मसल कर उसमें मिश्री २ तोला मिला सेवन करें। इससे ज्वरातिसार, रक्तार्श प्रमेह, और दाह पर भी लाभ होता है। अथवा—

इसबगोल के साथ तुख्मबालंगा घी में भूना हुआ, मुलैठी, उन्नाव, धाय के फूल, और इन्द्रजव प्रत्येक १॥-१॥ मासे लेकर, ४० तोले जल में चतुर्थांश काथ सिद्ध कर, उसमें आधा तोला मिश्री मिला, प्रातः सायं पिलाने तथा ऊपर से अर्क सौंफ और अर्क पुदीना २-२ तोला मिलाकर पिलाने से, पुरातन आम रक्तातिसार और ज्वरयुक्त "प्रवाहिका में पर्ण लाभ होता है।

(आ) केवल अतिसार या आमातिसार हो तो—इसबगोल १। तोला लेकर १। सेर जल में पकावें, आधा शेष रहने पर उसे दिन भर में, थोड़ा थोड़ा करके पिलावें। अथवा—

इसबगोल ६ माशे और शुद्ध रेंडी तैल २ तोला दोनों को १० तोला गाय के दूध में मिला पिलावें, मल के सुद्दे निकाल कर पेचिस बन्द हो जाती है। अथवा—

इसबगोल १ मासे और जल १० तोला दोनों को पका कर उसमें १ तो० शक्कर मिला पिलावें। अथवा—इसबगोल ३ मासे लेकर ५ तोले जल में भिगो दें। अच्छी तरह भीग जाने पर उसमें ६ माशे मिश्री मिला (यह १ मात्रा हुई) दिन में ३ बार सेवन करावें। स्त्रियों के प्रदर पर भी इससे लाभ होता है।

(इ) प्रवाहिका पर—इसबगोल १ तोला और मिश्री १ तोला दोनों को अच्छी तरह मिला (यह बड़ों के लिए १ मात्रा है) दिन में २ से ४ बार अच्छी तरह चबाकर खावें। इसी प्रकार बालकों को भी खिलाने से प्रवाहिका और रक्त संग्रहणी में लाभ होता है।

(२) संग्रहणी पर—

इसकी भूसी, सस्तंगी और छोटी इलायची के दाने, समभाग एकत्र कूट पीस कर, उसमें सबके बराबर मिश्री मिला ४ मात्रा करें। इसे चावलों के मांड के साथ ३-३ घण्टे के बाद सेवन कराने से आम, रक्त और पीड़ा युक्त संग्रहणी नष्ट होती है। अथवा—

इसबगोल ४ माशे को ४ तोला गरम जल में भिगो दें। शीतल होजाने पर उसमें १ तोला नारंगी या अनार का शर्बत मिला कर पिलाने से आंतों की भयङ्कर दाह और पीड़ा युक्त संग्रहणी में लाभ होता है। अथवा—

इसबगोल के पानी (पतले लुआब) के साथ इन्द्रजौ का चूर्ण ३ मासे तक की मात्रा में, दिन में २-३ बार और इसबगोल को दूध में पकाकर नित्य

प्रति भोजन से पूर्व सेवन करने से इस रोग में बड़ा लाभ होता है।

(३) कोष्ठबद्धता पर —

इसबगोल के बीज ३॥ माशे से ७ माशे तक लेकर ५ तोले जल में भिगोकर निचोड़ लेवें, और उसमें १ तोला तक बादाम तैल और थोड़ी शक्कर मिला सेवन करें। अथवा —

रात्रि में १ तोला इसबगोल को ५ तोला जल में भिगोकर प्रातःउसमें आधपाव दूध और दो तोलेमिश्री या शक्करमिला सेवन करें। (देखें नं०५ काप्रयोग)।

(४) मूत्रकृच्छ्र पर—

इसकी भूसी ८ माशे लेकर, ४० तोला जल में मिला, ढांक कर १० मिनिट तक आग पर रखें, फिर उसे छान और निचोड़कर, इस जल को लगभग ५ तोले की मात्रा में, दिन में ३-४ वार पिलाने से वस्ति और वृक्क के दाह जन्य या उपदंश जन्य मूत्र-कृच्छ्र में परम लाभ होता है।

(५) शूल (उदरशूल) पर—

इसबगोला लुआब ६। तोले और बादाम तैल १४ माशे एकत्र मिश्रण कर खिलाने से शूल में लाभ होता है, कोष्ठबद्धता दूर होती है। इसे रोगन-बन-फशा के साथ पिलाने से भी मलावरोध दूर होकर शूल की शांति होती है।

(६) स्वप्नदोष और प्रमेह पर—

इसकी भूसी ६ माशे और मिश्री चूर्ण १ तोला, दोनों को मिला फांकलें, और ऊपर से धारोष्ण (तत्काल का दुहा हुआ ताजा) गौ दुग्ध पीवें। यह दस्त साफ लाता है, तथा स्वप्नदोष और प्रमेह को कुछ दिनों में ही दूर करता है।

इसके लप्सी, खीर और पाक के प्रयोग भी सेवनीय हैं।

(७) शक्तिवृद्धि और पुष्टि के लिये—

इसबगोल दो भाग, छोटी इलायची के बीज १ भाग और मिश्री ३ भाग इनके एकत्र चूर्ण की मात्रा १ से १॥ तोला तक फांक कर ऊपर से गौदुग्ध १० तोले तक पीवें। अथवा—

इसबगोल १ या १॥ तोला तक, सायंकाल जल में भिगो, प्रातः उसके लुआब में १० तोला दूध और थोड़ी शक्कर मिला, तथा गरम कर पीने से शक्ति-वृद्धि और धातु पुष्टि होती हैं।

इसका पाक या खीर बनाकर सेवन करना भी परम लाभ दायक है।

(८) संतति निरोधार्थ—

यह योग परीक्षणीय है—जब स्त्री को ८ मास का गर्भ हो(और अब आगे कभी गर्भाधन न होनेपीवे ऐसी परम इच्छा हो) तब—इसबगोल १ सेर लेकर चक्की से पीस लें। दो सेर गेहूं को भट्टी में भुना लें, और गर्म गर्म गेहूं के बीजों में इस इसबगोल के चूर्ण को बांध कर रख दें, आठ पहर के बाद गेहूं को भी चक्की से पीस कर, अब दोनों को मिलालें। और किसी घी के चिकने मिट्टी के पात्र में डालकर, मुंह अच्छी तरह कपड़े से बांध कर अन्न के ढेर में रखदें। ४० दिन बाद, एक सेर उत्तम घृत लेकर अच्छी प्रकार गर्म करलें, और उसमें यह चूर्ण जो स्निग्ध पात्र में रक्खा था डाल दें, तथा उसमें दो सेर शक्कर मिला सुरक्षित रक्खें। बस औषधि तैयार हो गई। ध्यान रहे, जब स्त्री को ८ मास का गर्भ हो, तब उपर्युक्त औषधि का चूर्ण बना अन्न के ढेर में रखना चाहिए, और जब स्त्री के बालक उत्पन्न हो जावे, तीसरे दिन से इसे (घृत और शक्कर में उप-र्युक्तानुसार मिला) यथा शक्ति, गर्म दूध के साथ सेवन कराना आरंभ करदें, स्त्री उपरोक्त औषधि को सेवन करले, बस कार्य सिद्ध हो जावेगा।

—मोतीराम, भारतीनन्दन जी वैद्यराज

[शेषांश पृष्ठ ११२३ पर]

समालोचक—श्री. पं. मदनमोहनलाल चरोरे आयुर्वेदाचार्य।

औषधि स्वावलम्बन—

ले० कविराज विश्वनारायण शास्त्री। प्रकाशक—श्री अनन्त आयुर्वेद प्रकाशन पथरगामा (सन्थाल परगना) पृष्ठ संख्या—१८२ मूल्य २)।

प्रस्तुत रचना में लेखक ने ऐसी औषधियों को चुना है जिनमें अधिकांश तो सहज ही देहात में हर जगह मिल सकती है और कुछ वे द्रव्य लिये हैं जो मामूली ग्राम के पंसारी के पास भी रहते हैं, जैसे—लौंग, इलाइची, कपूर सोहागा फिटकरी आदि। यद्यपि निघण्टु में इनके गुण धर्म भली भांति लिखे हैं परन्तु ग्राम्य जीवन में उपयोग की दृष्टि से ऐसी ७६ औषधियों का संग्रह उनके गुण धर्म के साथ साथ भिन्न भिन्न रोगों पर उनके चुने प्रयोग दिये हैं; इस संग्रह द्वारा सामयिक औषधियों से लाभ उठाया जा सके इसी दृष्टि से यह संग्रह लिखा गया है।

आयुर्वेदीय हितोपदेश—

लेखक वैद्य रणजितराय देसाई आयुर्वेदालंकार आयुर्वेदाचार्य। प्रकाशक—श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० कलकत्ता। पुस्तक साइज, पृ० संख्या ३०७ मूल्य २॥)

आयुर्वेद ग्रन्थों में ऋषियों द्वारा लिखित एक एक वाक्य उपदेश से भरा है। ये वैद्यों के द्वारा सद्उपदेश मनुष्य मात्र को स्वास्थ्य रक्षण तथा रोग निवारण दोनों दशाओं में एक समान समादरित हैं। पर फिर भी वैद्य रणजितराय ने हितवचनों का यह विशाल संग्रह आयुर्वेद वाङ्मय में से जो यत्र तत्र विशृंखलित था एक सूत्ररूप में चुन कर ग्रथित किया है। वैद्य समाज को लाभान्वित होगा ऐसी हमारी धारणा है। आयुर्वेद में ऐसी एक पुस्तक की अत्यन्त आवश्यकता थी। श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन ने उस कमी की पूर्ति की है। पुस्तक का लक्ष्य आयुर्वेद के वे विद्यार्थी हैं जिनको संस्कृत का बोध कम है या बिलकुल नहीं है। आज आयुर्वेद विद्यालयों में अन्य पाठ्य विषयों के साथ साथ संस्कृत भी एक विषय के रूप में स्वीकृत है और तद्ज्ञान के लिये कुछ ग्रन्थ भी निर्धारित हैं। इस पुस्तक का उद्देश्य भी लेखक ने उसी प्रकार रखा है, विचार अत्यन्त महत्वपूर्ण है पर, उन प्रारम्भिक विद्यार्थियों को यह विषय इतना सरल नहीं बन पाया जो वे समझ सकें और सहज बुद्धिगम्य बना सकें। कारण यह संग्रह स्वयं एक ग्रन्थ बन गया है। प्रारंभिक विद्यार्थी को ऐसी सरल कथानक रूप सामग्री चाहिये जिसे वह अल्पप्रयास से कौतूहल रूप से पढ़ सके और ग्रहण कर सके।

यह संग्रह किस वर्ष के कक्षा में निर्धारित किया जा सकता है? इसका वर्गीकरण हो या अंश विशेष अमुक वर्ष में हो, ऐसा सिद्धि के लिये अभीष्ट है। या फिर यह संग्रह अन्तिम वर्षों में ही निर्धारित किया जा सकेगा।

प्रस्तुत संग्रह में वेदों उपनिषदों संहिताओं तथा अन्य आयुर्वेदीय ग्रन्थों से हित वचनों को चुना गया है।

साथ ही तत्सम शब्दों की टीका भी दी है जिससे आयुर्वेदीय साहित्य पर एक खास प्रकाश

पड़ता है। यह हितोपदेश विद्वानों के लिये वास्तव में सुन्दर संग्रह है वे इसको मनन करते हुए हार्दिक प्रसन्नता अनुभव करेंगे ऐसी हमारी आशायुक्त सम्मति है।

आयुर्वेदीय हितोपदेश में अध्याय में प्रकरणों का चयन अवश्य होना चाहिये था। यद्यपि वर्गीकरण किया है पर पाठकों को स्पष्ट नहीं होता। उसी प्रकार उपदेशों की किसी प्रकार की सूची न होना भी खटकता है। पुस्तक सजिल्द पूर्ण सुन्दर, टाइप की दृष्टि से भी दर्शनीय और मूल्य भी अधिक नहीं है। संग्रहणीय संग्रह है।

निदानात्मक प्रयोग विधियां तथा विवेचन—

ले० डा० एस. वी. व्यास। प्रकाशक स्वयं लेखक, बेगम ब्रिज रोड मेरठ। २०×३०=१६ पेजी पृ. संख्या ३१० मू. ४॥) सजिल्द।

आयुर्वेद साहित्य में रोग परीक्षा के लिये पंच लक्षण निदान का विधान है। दर्शन स्पर्शन प्रश्न आदि के द्वारा रोग का निर्णय करे ऐसा कहा है। आधुनिक वैज्ञानिक युग में दर्शन का विषय इतना सूक्ष्म होगया है कि हमारी साधारण आखें शारीरिक अंगों के सूक्ष्म भागों तथा जीवाणु कीटाणु की सूक्ष्म रचना का अध्ययन करने में असमर्थ हैं। हमारा दृष्टिकोण भिन्न-भिन्न यंत्रों और रासायनिक प्रक्रियाओं के सहारे इतना सरल होगया है कि आज रोग निर्णय करने में हमें बड़ी सुगमता अनुभव होती है। इस विषय की कई पुस्तकें प्रकाशित हैं। लेखक ने उन्हीं प्रयोग विधियों को हिन्दी भाषा में जहां तक सरल हो सकता है विवेचन किया है। यह पुस्तक मिश्रित आयुर्वेदिक विद्यार्थियों को लाभकर है तथा उन अंगरेजी पढ़े वैद्यों को जिन्हें प्रारम्भिक साइंस की परिभाषाओं का बोध है। केवल भाषा के बल पर ही इन प्रयोगों को वैद्य नहीं कर सकते हैं इसके लिए इन्टर साइंस की योग्यता अवश्य चाहिये। रचयिता महोदय ने यंत्रों का प्रयोग तथा विधियों को सरल से सरल भाषा में देने का प्रयत्न किया है पुस्तक निसन्देह एलोपैथिक का एक अंग है और उससे उसी आधार पर लाभ उठाया जा सकता है। प्रकाशक ने पुस्तक सुन्दर व दर्शनीय बनाने पर तथा शुद्धि अशुद्धि पर विशेष ध्यान दिया है।

आयुर्वेद-विज्ञान—

लेखक-डा. कमलाप्रसाद मिश्र। प्रकाशक-मेडीकल पुस्तक भवन बनारस। साइज २०×३०=१६ पेजी पृ. ४१६। मू. ३॥)

इस पुस्तक का नामकरण तदनुकूल ही हुआ है यह आयुर्वेद के किसी एक या दो अंगों के रूप में न होकर चिकित्सा के सभी अंगों तथा निघण्टु आदि का सैद्धान्तिक रूप से प्रतिनिधित्व करती है। आयुर्वेद की उत्पत्ति से लेकर उसके सूक्ष्म इतिहास, मूल पंचमहाभूत, त्रिदोष, धातु, शारीरिकज्ञान, नाड़ी, द्रव्य ज्ञान, वनस्पति गण, चिकित्सा, काष्टादि रसादि मुख्य मुख्य योग दिये हैं। स्वस्थ्य-वृत्त तथा आयुर्वेद के दूसरे अंग भी इस पुस्तक में कुछ न कुछ सन्निहित हैं। लेखक ने यह ध्यान रखा है कि साधारणतया कोई भी बात वह चाहे किसी ग्रन्थ में हो किसी रूप में संग्रह में आजाय। इन्होंने प्रायः सभी आयुर्वेद के ग्रन्थों से संग्रह किया है जिनकी तालिका स्वयं उन्होंने दी है। साथ ही इसमें विशेषता लाने की दृष्टि से नवीन ज्ञान प्रणाली एलोपैथिक के विषय भी स्थान स्थान पर सम्बन्धित विषय के साथ ही दिए हैं। तथा एलोपैथिक चिकित्सा के योग भी दिये हैं। इस को पूर्ण बनाने की दृष्टि से ही ऐसा किया है। संग्रह करने में लेखक ने परिश्रम किया है यह मान्य है आयुर्वेद पर उनकी पूर्ण आस्था है ऐसा हमारा विश्वास है, एलोपैथी विषय केवल संग्रह की दृष्टि से ही दिया है। आयुर्वेद के बहुत बड़े स्वरूप को इतने छोटे रूप में प्रस्तुत करने में वे सफल कहे जा सकते हैं।

यह रचना किस वर्ग की पूर्ति हेतु की गई है नहीं जान पड़ता कारण पाठक की जिज्ञासा शान्त नहीं होती

उसको कुछ और चाहिए, वह उसे विस्तृत ग्रन्थों में मिलेगा उसके लिए उसे वहीं जाना पड़ेगा। प्रस्तुत पुस्तक आयुर्वेदिक पाठ्य क्रम में निर्धारित हो नहीं सकेगी, क्योंकि आधुनिक कालेजों में विषयानुसार शिक्षा निर्धारित है। रचना नवीन ज्ञान, एलोपैथिक उपकरण, निदान तथा चिकित्सा सहित आयुर्वेद की संक्षिप्त रूप से लघु डायरी है जिसे प्रत्येक आयुर्वेदज्ञ अपने पास रख सकता है। पुस्तक छापे तथा कागज दोनों दृष्टियों से सौन्दर्ययुक्त है।

परिभाषा-प्रबन्ध—

लेखक आयुर्वेद-बृहस्पति पं० जगन्नाथ प्रसाद जी शुक्ल आयुर्वेदपञ्चानन। प्रकाशक—चौखम्भा विद्याभवन, बनारस १। २०×३०=१६ पेजी, पृष्ठ-संख्या २०८ मू० २॥)

पं० जगन्नाथ प्रसाद शुक्ल आयुर्वेद साहित्य के पुराने योग्य लेखकों में से हैं। वे अपनी रचनायें एक गति से आयुर्वेद जगत को देते रहे हैं इसी प्रकार यह प्रस्तुत पुस्तक भी उनकी 'परिभाषा प्रबोध' का नवीन परिष्कृत स्वरूप है। इस विषय की कई पुस्तकें हैं जिनमें पहिले 'परिभाषा प्रदीप' कई आयुर्वेद के पाठ्य क्रमों में निर्धारित थी। परिभाषाओं का विषय निघण्टु तथा फार्मेसी विषय के साथ आवश्यक रूप में सन्निविष्ट है। शुक्ल जी की यह रचना उसी पूर्ति के हेतु प्रस्तुत हुई है। दूसरे सभी वर्ग के वैद्यों के लिये जो औषधि निर्माण करते हैं पुस्तक उपादेय है। आधुनिक सभी दृष्टि से सब विषयों की पूर्ति हो सके इसका विचार रखा है। पुस्तक में १७ अध्याय हैं। हर अध्याय में कुछ न कुछ नवीन विवेचन है। इसमें नई व पुरानी दोनों तथा अंगरेजी यूनानी भी, मानपरिभाषा, कालमान, औषधियों का संग्रह औषधि निर्माण में प्रक्रियाओं का पालन, भेषज कल्पना, पथ्य-सम्बन्धित विषय तथा सर्व साधारण के लिए आहार निर्माण, पकान्न, पान समूहों के पारिभाषिक संकेत शब्द, गुण क्रियादर्शक परिभाषाओं का वर्णन, चरक के महा कषाय गण, सुश्रुत के ३८ गण तथा वाग्भटोक्त शोधनादि गणों का विवेचन है। इसके बाद ही रस संस्कारों से सम्बन्धित रसतंत्रोक्त परिभाषायें दी गई हैं, रस औषधि निर्माण के उपकरणों का, भेषज ग्रहण काल की परिभाषायें, पंचकर्म, व्रण, शस्त्रकर्म तथा ऊपर के अङ्गों सम्बन्धी परिभाषायें दी गई हैं। अन्त में पारिभाषिक शब्द कोष देकर पुस्तक समाप्त की है। परिभाषा सम्बन्धी सभी बातों का संग्रह कर पुस्तक सर्वाङ्गीण सुन्दर बना दी है।

पं. शिवदत्त शर्मा वैद्यशास्त्री

चिरंजीवी औषधालय छोंक, पो. हाथरस जं. (अलीगढ़)

पिता का नाम— स्वर्गीय पं. वासुदेव जी शर्मा वैद्यराज

"श्री. वैद्य जी ने प्रारम्भिक आयुर्वेद की शिक्षा धन्वन्तरि के प्रधान सम्पादक श्री वैद्य देवीशरण जी गर्ग से प्राप्त की तथा उनकी प्रेरणा से ही आपने वैद्यशास्त्री की परीक्षा उत्तीर्ण करके अपने ग्राम में चिकित्सा कार्य प्रारम्भ किया है। आप ७ वर्ष से चिकित्सा कार्य कर रहे हैं तथा निकटवर्ति जनता में सफल चिकित्सक माने जाते हैं। आपके निम्न प्रयोग उपयोगी हैं, पाठक लाभ उठावें।"

—सम्पादक।
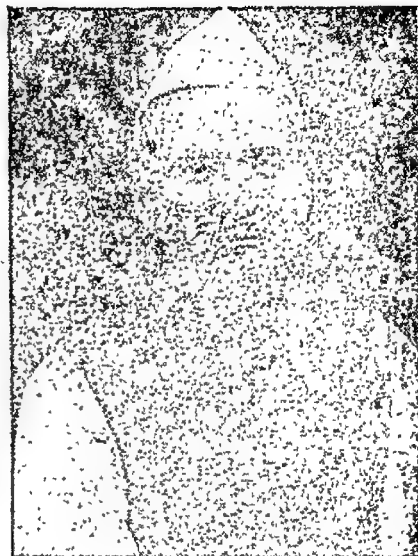
१ डब्बा विनाश—

आरग्वधभस्म	१ तोला
फिटकरी का फूला	६ माशे
सुहागे का फूला	४ माशा
बंगभस्म	२ माशा

—सबको एकत्र खरल कर सुरक्षित रक्खें। आवश्यकता के समय इसमें से बच्चे की अवस्थानुसार १ से ४ रत्ती तक मधु एवं धात्री दुग्ध में मिलाकर ४-४ घण्टे पश्चात् दें।

गुण—इससे बालकों का डब्बा, श्वास, पसली चलना, गले की घरघराहट, खांसी आदि शीघ्र दूर होती है। पार्श्व भाग में कर्पूर मिश्रित तारपीन का तेल लगावें। धात्री को हल्का सुपाच्य भोजन दें।

२ विषूचिका नाशक—

यह योग मेरे पूज्य पिता जी का शतशोनुभूत है। विषूचिका के शूल एवं वमन को तत्क्षण शांत करता है। योग निम्न है:—

मक्की का सूत १। तोला जल ऽ।। में डालकर क्वाथ करें। चतुर्थांश शेष रहने पर छान लें और सैंधा नमक १।। माशा मिलाकर संजीवनी वटी के अनुपान रूप में पिलादें। फिर रोगी को दवा देने की आवश्यकता (यदि भगवान धन्वन्तरि ने चाहा तो) नहीं पड़ेगी। प्रयोग अतीव आशुफलप्रद एवं सरल है। मक्की का सूत आर्द्र एवं शुष्क दोनों प्रकार का लिया जा सकता है॥

३ जंगली मरहम—

नीम की पत्ती	६ माशा
लसोड़े के पत्र	६ माशा
बबूल के पत्ते	६ माशा
महुआ पत्र	३ माशा

—शेषांश पृष्ठ ११३७ पर देखें।

पांच रोगियों की सफल चिकित्सा

लेखक—पं० हरीराम जी मिश्र आयुर्वेद-विशारद
जनता हितैषी औषधालय, फुटुक पो० लोटन (बस्ती)

"श्री मिश्र जी सफल चिकित्सक हैं। प्रस्तुत लेख से प्रतीत होगा कि आयुर्वेदीय शास्त्रीय प्रयोगों को यदि बुद्धि एवं धैर्यपूर्वक व्यवहार किया जाय तो कष्टसाध्य रोगों में भी अवश्य ही सफलता मिलती है। रोगी की अवस्थानुसार औषधियों में उचित फेर फार करना ही चिकित्सक की सफलता का रहस्य है।"

—सम्पादक।

(१)

रोगी नाम—श्रीराम मिश्र आयु० २१ वर्ष
रोग—यकृत-प्लीहा वृद्धि
औषधि—

माण्डूर भस्म	२ रत्ती
अभ्रक भस्म	१ रत्ती
शंख भस्म	१ रत्ती

—सुबह शाम शहद के साथ चटाया गया।

भोजनोपरान्त—लोहासव	१ तोला
कुमारी आसव	१ तोला

—बराबर जल मिलाकर दिया गया।

दो माह निरन्तर यही प्रयोग चालू रक्खा गया और भोजन में केवल रोटी दाल पुराने चावल का भात गोदुग्ध और पपीते का साग, हरी तरकारियां दिया दी गई। रोगी बिल्कुल स्वस्थ होगया।

(२)

रोगी-बादू, जाति-यवन, आयु-२५ वर्ष, रोग-संग्रहणी

औषधि—

शंखभस्म २-२ रत्ती प्रातः-सायं नीबू के रस के साथ या शहद से। भोजन के प्रथम ग्रास में हिंग्वाष्टकचूर्ण १ माशे घी के साथ। सुबह-शाम, भोजन के बाद-कुटजारिष्ट २ तोला बराबर जल मिलाकर दिया गया और भोजन मठा, मूंग की दाल पुराने चावल का भात, शाक वगैरह दिया गया। इस प्रकार चिकित्सा करने पर रोगी की हालत सुधर गई और स्वस्थ होगया, परन्तु रक्ताल्पता थी। इसलिए लोहासव २-२ तोले बराबर जल के साथ भोजन के बाद देते रहे।

(३)

रोगी—जयनारायण रोग—कास-श्वास
औषधि—

सितोपलादि चूर्ण १ माशा प्रातः सायं घी १ माशे और शहद ३ माशा के साथ दिया गया।

भोजन के बाद—द्राक्षासव	१ तोला
कनकासव	१ तोला

इस प्रकार चिकित्सा करने पर रोगी की हालत सुधर गई और यह प्रयोग १॥ माह चालू रहा। बाद में इसे बन्द करके पुनः च्यवनप्राश अवलेह ६ माशे गोदुग्ध से प्रातः सायं दिया। भोजन—लघु सुपाच्य पौष्टिक दिया गया। अब रोगी सानन्द है।

(४)

रोगी-शान्तीदेवी रोग-श्वेत प्रदर

औषधि—

प्रदरान्तक लौह १-१ गोली प्रातः सायं १ माशे घी और मिश्री ३ माशे शुद्ध शहद के साथ दिया गया।

भोजन के बाद—अशोकारिष्ट १ तोला

पत्रांगासव १ तोला

—एक मात्रा बराबर जल मिलाकर दोनों समय पिलाया गया और ४१ दिन यही प्रयोग चालू रहा। इससे रुग्णा की हालत बिल्कुल ठीक हो गई।

पथ्य—हरी तरकारी, मूंग की दाल, रोटी भात, मट्ठा और गो दुग्ध। अपथ्य—मिर्च तेल, खटाई, मीठाई, मैथुन इत्यादि वर्ज्य था।

(५)

रोगी नाम—अबीबुल जाति-मुसलमान

रोग-जीर्ण ज्वर

औषधि –

महा सुदर्शन चूर्ण ३ माशे ठण्डे जल से प्रातः-सायं दिया गया।

भोजन के बाद दोनों समय—अमृतारिष्ट २ तोले बराबर जल मिलाकर पिलाया गया। तीन हफ्ते में ही रोगी की हालत सुधर गई। किन्तु कमजोरी अधिक थी इसलिए स्वर्णबसन्त मालती नं० १, एक रत्ती सितोपलादि चूर्ण १ माशे, शहद के साथ चटाया गया।

पथ्य—हल्का सुपाच्य भोजन दिया।

: पृष्ठ ११३५ का शेषांश :

छौंकर (अग्निमंथ) पत्र	६ माशा
जामुन पत्र	६ माशा
गूलर पत्र	१ तोला

—सबको बारीक पीसकर स्वरस निकालें। फिर गोघृत २॥तो० देशी मोंम ६ मा. व स्वरस मिलाकर अग्नि पर रक्खें। स्वरस जल जाने पर उतार लें। इसमें कबीला ३ माशा मिलाकर रखलें। हर प्रकार के फोड़े फुंसी दूषित व्रणों पर प्रयोग करें। प्रातः नीम के पानी से साफ करके फाये पर लगा कर चिपकादें।

४ नयनांजन वर्ति—

दारूहल्दी १ तोला लेकर प्रथम सत्यानाशी के क्षुप के मोटे कांड में चाकू से एक स्थान बनालें फिर उक्त औषधि को उसमें रखकर सूत्र से बंधन करदें तथा २१ दिन बाद उसे निकाल कर सत्यानाशी के रस में ही घोटकर छोटी छोटी वर्ती बना लेवें। आवश्यकता के समय पत्थर पर घिस कर अंजन करें।

गुण—इसके प्रयोग से धुंध जाला फूली नेत्रस्राव. कंडु रतौंधी आदि निश्चय दूर होते हैं।

५ श्वेत प्रदर –

आम के वृक्ष की छाल जो किंचित कृष्णवर्ण की हो।	२॥ तोला
नागकेशर	१ तोला
समुद्रफेन	१ तोला
चौलाई की जड़	१ तोला
सेलखरी	१ तोला
मिश्री	२॥ तोला

—सबको इकत्र कर सूक्ष्म चूर्ण कर लेवें।

सेवन विधि—३-३ माशा प्रातः सांय गोदुग्ध के साथ २५ दिन सेवन करने से श्वेत तथा सब प्रकार के प्रदर रोग में आशातीत लाभ होता है। सेवन काल में मिर्च गुड़ तेल खटाई मैथुन व्यायाम वर्जित हैं।

विष पर प्याज

लेखक—श्री श्याम शर्मा, श्री माधव संस्कृत आदर्श विद्यालय, गोवर्धन।

प्याज प्रायः सारे भारतवर्ष में पैदा होती है। प्रमुखतः यह "कंदों" की गणना में आती है। भारतीय जनता अधिक संख्या में इसका उपयोग करती है। वस्तुतः यदि देखा जाय तो यह गुणों की खान है। इसके गुणों का विवेचन करना तो "छोटा मुंह बड़ी बात" को यथार्थ करना है। अतएव मैं रासायनिक विश्लेषण के आधार पर, इसका विष पर अपूर्व उपयोग को दृष्टिगत कराता हूँ।

इसका उपयोग तो यद्यपि अनेक रोगों पर होता है, किन्तु हिन्दुओं में ब्राह्मण आदि दैनिक भोज्य पदार्थों में इसका उपयोग नहीं करते। क्योंकि मनुस्मृति में इसका भोजन में निषेध बतलाया है और बहुत से दुर्गन्धयुक्त होने के कारण इसका व्यवहार नहीं करते। खैर, गुण ग्राहकों को इसके गुणों के कारण इसका व्यवहार करना ही चाहिये।

'संस्कृत' में इसको पलांडु, दुर्गन्ध, शूद्रप्रिय, यवनेश आदि कहते हैं। तथा 'हिन्दी' में प्याज 'मराठी' में पांढरा, पातीचार, कांदा, पातीचाकांदा, 'गुजराती' में डूंगरी, 'फारसी' में प्याज, 'उर्दू' में प्याज कहते हैं। अस्तु;

इसका उपयोग प्रायः प्रत्येक विष पर होता है किन्तु सर्पविष पर यह हतप्रभ सिद्ध हुई है।

बिच्छू-विष—

"वृश्चिक" बिच्छू का विष पीड़ाजनक तो होता ही है; और इसकी पीड़ा कई दिन तक उपस्थित रहती है। इस विष पर प्याज के स्वरस की मालिश करना चाहिये, इससे आराम होता है। भयंकर जलन तथा दाह शान्त होती है। इसको पीस कर लेप करने से आश्चर्यजनक लाभ होता है। तत्काल ही इसका स्वरस छंटाक भर पिलाने से रोगी हंसने लगता है। इसके अलावा इस विष पर शर्तिया एवं तात्कालिक उपचार के लिये प्याज को काटकर और प्याज के अधो भाग पर बुझा चूना लगाकर डंक के स्थान पर रगड़ने से बिच्छू का जहर शीघ्र ही उतरता है।

पागल कुत्ते के विष पर—

पागल कुत्ते के काटे स्थान पर भी यह अचूक लाभ करती है। काटे स्थान पर इसके स्वरस की मालिश करना एवं रस को ही पिलाना चाहिये। अपूर्व लाभ होता है।

ततैया का विष—

ततैया के विष पर इसको पीस कर लेप करना चाहिये तथा रस का पान भी कराना चाहिये।

कानखजूरे का विष—

कानखजूरे के विष पर लहसुन और प्याज को पीस कर लगाना चाहिये। शीघ्र जहर उतरता है।

इसके अलावा अन्यान्य जहरीले कीड़ों के दन्तच्छद स्थान पर इसके रस को मलना चाहिये तथा त्वचा संबन्धी दाह और खुजली आदि पर भी लाभ करती है। इसको पीसकर दाद एवं छाजन पर लेप करना चाहिये। स्याह दाग वाली छाजन में अचूक फायदा करता है।

प्याज के अन्दर "कैलशियम" सल्फाइड पदार्थ से भी उत्तम तत्व होने के कारण प्रत्येक कीट गुओं के विष पर अच्छा लाभ करता है। प्याज में "एसिड" का अंश भी उपलब्ध होता है, इसी कारण यह प्रत्येक "विष" पर उपयोगी है।

सकमूनिया वटी—

(आमवात रोग नाशक योग)

एलुवा काला नमक सकमोनिया
सुरञ्जान मीठी इन्द्रायण का निर्बीज गूदा

—सबको समानभाग लेकर घृतकुमारी के रस से भावना देकर १-१ रत्ती की गोलियां बनालें।

सेवन विधि—इसे दिन में ३ बार १-१ गोली की मात्रा में सोंठ तथा गिलोय के क्वाथ से दें।

यदि कष्ट अधिक हो तो इस योग की ३ गोली रात को रास्नासप्तक क्वाथ से दें। दिन में निम्नलिखित योग की ३ मात्रा सोंठ गिलोय के क्वाथ से दें। योग—शूलवज्रिणि वटी, अग्नितुण्डी वटी, इनकी दो-दो वटी की एक मात्रा बनाकर दिन में तीन बार दें। आमवात तथा शरीर में किसी प्रकार का भी वातिक सन्धिशूल हो या सन्धियों में शब्द हो तो यह सकमूनिया वटी दें!

२-श्वेत प्रदर पर "प्रदरान्तक योग"—

लोहभस्म शुक्तिभस्म
वङ्गभस्म राल

—सब समान भाग। दो रत्ती की मात्रा में उचित अनुपान के साथ दें। पीने को अशोकारिष्ट। यह एक विशेष योग है जिसकी उपमा दी नहीं जा सकती। प्रदरान्तक योग की मात्रा दिन में तीन बार दें। यदि रक्त प्रदर हो तो चावल के धोवन से दें और इसमें मोचरस और मिलालें तो शीघ्र लाभप्रद सिद्ध होता है।

३-वीर्यश्राव "धातु" मेहारि योग—

पलाश का गोंद (कमरकश)	१ तोला
राल	१ तोला
गोखुरू	४ तोला

—सबके समान नमक मिला दें। १ माशा की मात्रा दिन में तीन बार ताजे जल के साथ दें। यदि मूत्र में जलन होती हो नमक के स्थान पर खांड (चीनी) मिलालें और योग को दूध से दें। यदि रोगी विद्यार्थी हो तो भोजनोपरान्त अश्वगन्धारिष्ट दें, तथा विचार शुद्ध रखने का आदेश दें। यदि रोगी विवाहित है या रोग तीव्रावस्था में है तो शुक्रमात्रिका वटी (भैषज्य) पानी के साथ दें।

अपथ्य—तेल, खटाई, मिर्च का निषेध कर दें तथा स्त्री-प्रसङ्ग भी बन्द करादें।

४-एक्ज़ीमा विचर्चिका की मलहम—

शुद्ध पत्रज हरताल (कूष्मांड स्वरस से शुद्ध की हुई)	२ तोला

कज्जली हल्दी गैरिक
—तीनों १-१ तोला

सिंदूर	१ तोला
शुद्ध मनशिल	६ माशे
सिक्थ तैल या वैसलीन	३० तोला

—इनकी खरल में मलहम बनालें। सब औषधियों को पृथक-पृथक खरल में भली-भांति पीसलें नहीं तो फिर वैसनील में कण दिखते रहेंगे। जो

अच्छे नहीं होते। खाने को रसमाणिक्य दिया जा सकता है परन्तु सावधानी से, क्योंकि मलहम में भी हड़ताल होने से कई बार हड़ताल की मात्रा रक्त में अधिक पहुँच जाने से शिरोभ्रम तथा नेत्रों का लाल होजाना उपद्रव होजाते हैं। तब रसमाणिक्य बन्द कर के दूध-घृत प्रयोग करावें। हमारा यह शतशः अनुभूत योग है। जो कभी खाली नहीं जाता, जबकि बाजार में मिलने वाले एक्जीमा के योग प्रायः निष्फल रहते हैं। इससे भी अच्छा गुणकारी विना कष्ट लाभ करने वाला किसी का अपना अनुभूत योग हो तो धन्वन्तरि द्वारा प्रकाशित करें, हम उनका हृदय से स्वागत करेंगे।

५–तीक्ष्ण वटी––

(उत्तेजक, बलवर्धक, उदर-रोगनाशक योग)

बीज सहित लाल मिर्च — रससिंदूर
शुद्ध कुचिला — -समानभाग लें।

विधि––पहिले मिरचों को पानी से खूब दो-तीन घण्टे पीसे, फिर कुचला डाल कर रगड़े। पश्चात रस सिंदूर डालकर ६ घण्टे रगड़ाई करे। एक-एक रत्ती की बटी बनालें।

गुण––यह अजीर्णजन्य उदरशूल को तत्काल शांत करता है। यह पाचक, बल्य, ग्रहणी, अजीर्ण, शूल, उदावर्त, कम्पज्वर, अत्यन्त अवसाद, और तीव्र मद पानेच्छा को कम करता है। प्रलाप कम्प इत्यादि रोगों में तथा अफीम छुड़वाने में इसका उपयोग करना चाहिए। समुद्र यात्रा की यन्त्रणा (Sea Sickness), मलेरिया, जीर्णज्वर, वात, विषूचिका में लाभकारी है। यह मकरध्वज से भी अधिक उत्तेजक है। नाड़ी को बल देती है। वृष्य है। जननेन्द्रिय को उत्तेजक है। ध्वजभङ्ग, शुक्रमेह, शुक्राशय के श्लेष्मिक विकार में वृष्य रूप से व्यवहृत होती है। वृक्क रोगों में अलब्युमेन के क्षय को बन्द करती है। किं बहुना यह अत्यन्त लाभकारी योग है और मेरा विशेष योग है जो आज तक किसी को भी नहीं बताया गया।

प्रयोग विधि––इस योग की ३ मात्रा दी जा सकती हैं, दूध या पानी के साथ, १-१ गोली की मात्रा है। उत्तेजना के लिये ३ गोली एकदम दूध के साथ रात को दी जा सकती हैं।

उदरशूल तथा विशूचिका में भी ३ गोली की एक मात्रा दी जा सकती है। मलेरिया रोकने के लिए ३-३ गोली की ३ मात्रा ज्वर आने से ३ घण्टे पूर्व दी जा सकती हैं।

— कविराज रामलुभाया धन्वन्तरि
आयुर्वेदाचार्य, रोहतक।

+ + +

प्रसूति (सूतिका) रोग पर—

बकरी का दूध	२॥ सेर
एक कली लहसुन	आधा सेर
सोंठ (शुण्ठी)	पाव भर
गुड़	आधा सेर

निर्माण-विधि––दूध कढ़ाई में जब गरम होने लगे तो लहसुन कुचल कर डालदे, और लाल होने पर सोंठ, गुड़ डाल कर पाक बना लेना चाहिए।

अनुपान और मात्रा––प्रातः-सायंकाल दोनों समय सुपारी के बराबर दुग्ध से। भोजन दूध-भात-बकरी का दूध।

संग्रहणी-(ग्रहणी) पर दुग्ध वटी––

शु० वत्सनाभ, अफीम	१॥-१॥ माशा
अभ्रकभस्म	६ रत्ती
लोह भस्म	५ रत्ती

––सबको दूध में खरल कर १-१ रत्ती की गोली बनालें।

अनुपान और मात्रा––दो गोली दिन में प्रातः-सायं दुग्ध के साथ। जब तक रोगी अच्छा न होजाय तब तक केवल दुग्ध ही दें। अन्न पानी और नमक आदि वर्जित हैं।

विषमज्वर मलेरिया पर—

शुण्ठी	मोथा	कुटकी
कटेरी की जड़	पित्तपापड़ा	नीम की छाल
चिरायता	जवासा	देवदारु

—प्रत्येक १०-१० तोला

—कुल दवा ९० तोला को जवकुट कर ४० सेर पानी डालकर क्वाथ करना चाहिए। ८ सेर जल शेष रहने पर छान कर निम्न चीजें डालना चाहिए। कुल आठ सेर क्वाथ में—

गुड़ मधु	—दोनों २॥-२॥ सेर
शुद्ध वच्छनाभ	२ तोला
शुद्ध कुचिला	१ तोला
शुद्ध धतूर बीज चूर्ण	२ तोला
गोदन्ती हरताल भस्म	१ तोला
संखिया भस्म	आधा तोला
ताम्रभस्म	१ तोला
स्वर्णमाक्षिकभस्म	२ तोला
त्रिफला	६ तोला
पीपल छोटी	३ तोला

—इन चीजों को डालकर मृत्तिका पात्र में जमीन में गाड़ दें। २१ दिन बाद निकाल कर छान कर बोतलों में रखें। इसमें से दिन में तीन बार १-१ ड्राम की मात्रा में पिलावें।

—श्री वैद्य श्रीनिवासदास जी
मु० नामण पो० नापा (खेड़ा)

निमोनियां पर क्वाथ—

दशमूल	सैन्धा नमक
जवाखार	पोहकरमूल

—समान भाग पानी में उबाल कर पिलावे।

निमोनियां पर लेप—

सूंठ (सोंठ)	१ तोला
मैथी	१ तोला
गेरू	६ माशा
अफीम	१ माशा
साबर का सींग	१ तोला

—बारीक महीन पानी में रगड़ कर गरम कर लेप करें।

पुरानी खांसी—

वंशलोचन	१ तोला
इलायची छोटी	६ माशा
दालचीनी	१ तोला
मुलहठी	१ तोला
सूंठ (सोंठ)	१ तोला
मिश्री	५ तोला

—कूट कर कपड़छान कर ३ माशा की खुराक बना कर शहद या शर्बत बनफसा के साथ प्रातः सायं खाएं।

पथ्य—खटाई, लाल मिर्च, गुड़, तेल की वस्तुऐं आदि वर्जित हैं।

—पं. कुरड़ाराम शर्मा वैद्य
तोशाम (हिसार)

समाचार एवं सूचनाएँ

आयुर्वेद एवं पथ्य पर भाषण—

स्वदेशी औषधि भण्डार कुंजल के संस्थापक एवं संचालक द्वारा २७ अगस्त शनिवार को विश्वकीर्ति हायर एलीमेंटरी स्कूल में निखिल कर्णाटक आयुर्वेद मण्डल के अध्यक्ष डा० एस० गोपालकृष्णराव एल० ए० एम० एस० का "आयुर्वेद और पथ्य" विषय पर भाषण का प्रबंध किया गया। श्री अध्यक्ष महोदय ने उपस्थित महानुभावों को बड़ी ही सरल भाषा में समझाया कि पथ्य की कहां तक आवश्यकता है एवं अपथ्य करते हुए औषधि सेवन करने पर भी बीमारी किस प्रकार बढ़ती है। एलोपैथी के कुछ डाक्टरों का ध्यान इधर न होने से रोगी को बहुत दिनों तक रोग का कष्ट सहना पड़ता है। यह भी स्पष्ट घोषित किया कि केवल उचित पथ्य व्यवस्था से रोगों को दूर किया जा सकता है। आयुर्वेद की आज्ञा है कि अपथ्य करने वालों की चिकित्सा न की जाय। पथ्य की आवश्यकता आयुर्वेद के लिए या अन्य किसी पैथी के लिए नहीं, अपितु रोग निवारण के लिए है यदि रोगी पथ्य को औषधि के लिए या अपने वैद्य के लिए समझता है तो यह उसकी भूल है। रोगी को यह समझ लेना चाहिए कि रोग से छुटकारा पाने के लिए पथ्य का पालन अनिवार्य है।

दूसरे दिन २८ अगस्त को वैद्यों की सभा स्वदेशी औषधि भण्डार के कार्यालय में हुई जिसमें आयुर्वेद की उन्नति के लिए अनेक प्रस्ताव उपस्थित हुए एवं विचार विनिमय के बाद उनको कार्य रूप में लाने का सर्वानुमत निर्णत किया गया।

—स्वदेशी औषधि भण्डार, कुंजल।

प्रकाशयुक्त वृक्ष—

हमारे गांव के समीप पहाड़ पर लगभग १५-२० फीट ऊंचा १॥-२ फुट परधि कांचन वृक्ष के समान किन्तु चौगुने बड़े पत्ते वाला वृक्ष है। कृष्ण पक्ष में रात्रि के समय वृक्ष में से पेट्रोमैक्स में हवा कम होने पर मेण्टल जैसा प्रकाश होता है। ऐसा प्रकाश देखने में आता है जिससे पेड़ से २-३ फुट के अन्तर पर भूमि पर की वस्तु पहिचानी जासके। यह प्रकाश स्वयं मैंने २-३ बार देखा है। धन्वन्तरि के पाठकों एवं वनस्पति विशेषज्ञों से निवेदन है कि यदि वे जानते हों तो बतावें कि यह अद्भुत वृक्ष क्या है?

—वैद्य र० वा० पाथरे, मु० पो० नाते (कुलाबा)

सर्पविष की सफल औषधि?

नव जीवन प्रकाशन मन्दिर अहमदाबाद द्वारा प्रकाशित श्री० एस० पी० शुक्ल की 'सांप' नामक पुस्तक में सांप सम्बन्धी सम्पूर्ण साहित्य है। उसमें सविष और निर्विष सांप के भेद बतलाये गये हैं। उसमें लिखा गया है कि 'हाफकिंस इन्स्टीट्यूट की ओर से ३२५ वनस्पतियों के प्रयोग सांप के विष पर जो किये गये हैं वे सब निष्फल साबित हुये हैं। हर प्रकार के मन्त्र तन्त्र और मोहरा, शास्त्रोक्त औषधि, खानगी नुस्खे अर्थात् मनुष्य से मुमकिन प्रयोग हो चुके हैं। अन्त में उन लोगों ने ऐसी घोषणा की है कि यदि सचमुच ही जहरीले सांप हों तो उसके जहर या विष के निवारण रूप "एण्टीविनम्" के सिवा और कुछ भी अचूक इलाज जगत में नहीं है। हाफकिंस इन्स्टीट्यूट की ओर से १०,०००) दस हजार रु० का इनाम हर कोई मन्त्र तन्त्र और औषधि द्वारा विष निवारण करने वालों को देने की घोषणा की गई है।

बीकानेर में भरे हुए निखिल भारतीय आयुर्वेद सम्मेलन में डा० म्हसकर ने भी उस विषय पर

वैद्यों को चैलेञ्ज दिया है। किन्तु अभी तक प्रस्तुत चेलेञ्ज के सामने वैद्यराजों ने प्रत्युत्तर क्यों प्रदान नहीं किये हैं?

प्रातः स्मरणीय अंशावतार भगवान श्री चरक प्रभु के गन्धनाम, अगदहस्ति, महागन्ध हस्ति, अगद जैसे अनेक प्रयोग सर्पविष निवारण के लिये असफल मालूम हो चुके हैं। तक्षक और वासुकि विषधरों के विष निवारण के अनेक प्रयोग जो आर्य मुनियों ने बतलाये हैं क्या वे सब गलत हैं?

क्या डा० म्हस्कर की जबान बन्द करने वाले कोई प्रबल भारतीय वैद्यराज विद्यमान नहीं हैं? और यदि हैं तो हाफकिंस इन्स्टीट्यूट से दस हजार का इनाम प्राप्त करने वाले कोई वैद्यराज प्रकाश में क्यों नहीं आते?

आयुर्वेद की आवाज दिगन्त में पहुँचाने वाले आप स्वयं और आपका विद्वद् मण्डल मेरी इस शंका का निवारण अवश्य कीजिएगा।

—वैद्य नर्मद व्यास, जामजोधपुर (सौराष्ट्र)

\+ \+ \+

राजकीय आयु. औष० धौलपुर का त्रिवर्षीय विवरण

अप्रैल ५२ से मार्च ५३ तक—

नवीन रोगी ४११७०, प्राचीन ५२६६४ सम्पूर्ण ६२८३४। शल्यकर्म १०२, आतुरालय ६१।

अप्रैल ५३ से मार्च ५४ तक—

नवीन रोगी ४१५६६, प्राचीन ४७३६७, सम्पूर्ण ८८६६३। शल्यकर्म ११७८, आतुरालय २२४।

अप्रैल ५४ से मार्च ५५ तक—

नवीन रोगी ४५५४८ प्राचीन ५४६१४ सम्पूर्ण १००१६२। शल्यकर्म २२४० आतुरालय १६०।

रोगी संख्या के अनुसार औषधियां नहीं मिल पातीं। जितना भी बजट स्वीकार किया जाय उसके अनुसार भी औषधियां समय पर प्राप्त होसकें तो उपरोक्त रोगी संख्या में पर्याप्त वृद्धि हो और जनता का अधिक हित हो।

—वैद्यराज रविनन्दन शर्मा
प्र० चिकि० आयुर्वेदिक प्रधान कार्यालय, धौलपुर।

× × ×

श्री प्रताप आयुर्वेदीय औषधालय श्रीमाधौपुर का

द्वादशाधिवेशन

हमेशा की भांति "श्रीप्रताप आयुर्वेदीय औषधालय श्रीमाधौपुर का द्वादशाधिवेशन सोमवार तदनुसार दिनांक १६-६-५५ श्री गणपति जयन्ति को बड़े धूम धाम से मनाया गया। इसमें एक सभा का आयोजन भी किया गया, जिसमें चिकित्सक समुदाय व नागरिक भी उपस्थित थे।

श्री वैद्य पूर्णानन्द जी आयुर्वेदाचार्य की अध्यक्षता में उक्त सभा का कार्य आनन्द मंगल से सम्पन्न हुआ। उसी समय उक्त औषधालय के दातव्य विभाग की कार्यकारिणी का भी चुनाव किया गया। कार्यकारिणी के सदस्य निम्नोक्त हैं:—

अध्यक्ष व कोषाध्यक्ष—श्री० वैद्यभूषण पं० विश्वेश्वरप्रसाद जी आयु०
उपाध्यक्ष—श्री० सेठ प्रभूदयाल जी टेमाणी
मन्त्री—श्री० सेठ रामप्रताप जी कसेरा
उपमन्त्री—श्री० सेठ श्रीनारायण जी रींगस्या
आयव्यय निरी०—श्री. सेठ जगन्नाथ जी हरभजनका
सदस्यगण—
१—श्री हरीनारायण जी कावरा
२—श्री रामनारायण जी टेमाणी
३—श्री मंगलचन्द जी ठेकेदार
४—श्री रामेश्वर प्रसाद कूलवाल
५—श्री भगवानसाय जी पटेल

—मन्त्री।

× × ×

पदमपुर तहसील सभा का चुनाव—

तहसील पदमपुर (गंगानगर) आयुर्वेद० एण्ड यूनानी मण्डल का नवीन चुनाव—

प्रधान—वै० कवि० अमृतलाल जी
उपप्रधान—वैद्य तुलाराम जी
मन्त्री - वैद्य सुदर्शनलाल आहूजा
सहा० मन्त्री—हकीम निहालसिंह जी —मन्त्री।

वनस्पति तैल को रंगने के लिए रंग

प्रेमनगर (देहरादून), २७ सितम्बर। वनस्पति विज्ञानवेत्ता कविराज पं० अमरनाथ वैद्यशास्त्री, ने वनस्पति तैल को रंगने के लिये उत्तम रंग राज्य सरकार को भेजा है।

यह वनस्पतिजन्य रंग सात्विक, स्वास्थ्यवर्द्धक सस्ता, सुविधा से रंगने वाला और निर्दोष निर्विकार, निर्गन्ध एवं विशुद्ध है। इस रंग के मिश्रण से शुद्ध घी में होने वाली मिलावट रुक जायगी।

वैद्य जी ने यह भी बतलाया है कि यदि स्वास्थ्य विभाग ने इसको स्वीकृत कर पुरस्कृत किया तो उक्त द्रव्य आयुर्वेदिक सेवा कार्य में प्रयोग किया जायगा।

वैद्य हकीमों के अधिकारों में वृद्धि

ज्ञात हुआ है कि उत्तर प्रदेश में बोर्ड आफ इंडियन मेडिसन से रजिस्टर्ड वैद्यों और हकीमों द्वारा प्रदत्त प्रमाणपत्रों की मान्यता देने की राज्य सरकार ने घोषणा कर दी है। वैद्य और हकीमों द्वारा प्रदत्त चिकित्सा विषयक प्रमाणपत्र सरकारी कर्मचारियों की बीमारी की छुट्टी आदि में मान्य होंगे। लेकिन एलोपैथ डाक्टरों द्वारा प्रदत्त प्रमाणपत्रों के समक्ष उनको नहीं समझा जायेगा। इसके अतिरिक्त अदालतों में विशेषज्ञ की हैसियत से वैद्य हकीमों के प्रमाण पत्रों को मान्यता मिल गई है तथा चिकित्सा प्रसूति तन्त्र, या शल्य तन्त्र विषयक किसी मामले में साक्षी देने का पूरा अधिकार है।

—नवभारत टाइम्स।

क्लोरोमाइस्टीन

मियादी बुखार के लिये बेकार सिद्ध
रिलैप्स्ड-टायफाइड के मरीजों में असाधारण वृद्धि

लखनऊ, ३ सितम्बर। मियादी बुखार (टाइफाइड) की नव आविष्कृत अमेरिकी औषधि क्लोरोमाइस्टीन मरीजों पर प्रभावहीन सिद्ध हो रही है और लखनऊ में आजकल ऐसे दर्जनों मरीज हैं जिन पर दवा का प्रयोग किया गया और क्षणिक लाभ के बाद बुखार ने फिर दबा लिया।

बलरामपुर अस्पताल, मेडिकल कालेज तथा घरों में ४ वर्ष के बच्चों से लेकर दर्जनों युवक टाइफाइड से ग्रसित हैं। उन पर जब क्लोरोमाइस्टीन का प्रयोग किया गया तो तेजी के साथ बुखार एक-दो दिनों में ही उतर गया किन्तु पूरी एहतियात बरतने पर भी मीयादी बुखार फिर चढ़ आया और डाक्टर यह देखकर चक्कर में पड़ गए कि क्लोरोमाइस्टीन खाने वाले मरीजों का टाइफाइड तीन-तीन, चार-चार बार "रिलैप्स" हो गया। इस प्रकार जिस मीयादी बुखार को एक या दो सप्ताह के अन्दर उतर जाना चाहिए था उसे 'नार्मल' तक पहुँचाने में दो-दो महीने से भी अधिक लग गये।

मेडिकल कालेज में एहतियात

पता चला है कि मेडिकल कालेज में क्लोरोमाइस्टीन की प्रभावहीनता दूर करने के लिए उनके साथ ही मीयादी बुखार दूर करने वाले इंजेक्शन भी लगा दिये जाते हैं। डा० भाटिया के इस प्रयोग से कुछ मरीजों को लाभ भी पहुँचा। किन्तु साधारण तौर पर क्लोरोमाइस्टीन मीयादी बुखार को जड़ से दूर करने में असफल सिद्ध हो चुकी है। यह औषधि इतनी कीमती है कि साधारण जन इसका प्रयोग भी नहीं कर सकते।

सरकारी मान्यता रहित चिकित्सा शिक्षा-संस्थाओं की वृद्धि

भर्ती होने वाले विद्यार्थियों को चेतावनी

नई दिल्ली, ३ सितम्बर। स्वास्थ्य मन्त्रालय की विज्ञप्ति में बताया गया है कि कुछ साल से नये

चिकित्सा शिक्षालय खुल रहे हैं। जिनमें कुछ गैर-सरकारी हैं इन शिक्षालयों में लड़के धड़ाधड़ भर्ती हो रहे हैं। इन विद्यार्थियों को आगे चल कर पछताना न पड़े, इसलिए सरकार उन्हें यह बताना चाहती है कि भारत सरकार को कैसे शिक्षालयों की उपाधियां मान्य हैं।

भारत सरकार केवल उन्हीं चिकित्सा शिक्षालयों की उपाधियों को स्वीकार करती है जो भारतीय चिकित्सा प्रतिमानों को पूरा करते हैं, जिनमें पूरा साज-समान, अच्छी प्रयोगशाला, गवेषणा और अस्पताल की सुविधाएं और योग्य अध्यापक होते हैं। अतः जो लोग नए चिकित्सक शिक्षालय खोलना चाहते हों उनको इस सम्बन्ध में भारत सरकार से सलाह लेनी चाहिए। यही नहीं, इस कार्य को शुरू करने से पहिले उन्हें यह भी देख लेना चाहिए कि उनके पास काफी रुपया है या नहीं। ऐसे चिकित्सा शिक्षालयों में भर्ती होने से पहले विद्यार्थियों को भी यह जान लेना चाहिए कि जिस शिक्षालय में वे भर्ती होना चाहते हैं, वह किसी विश्वविद्यालय द्वारा स्वीकृत है या नहीं और भारत सरकार उसकी उपाधियों को मानती है या नहीं।

भारत सरकार यह स्पष्ट कर देना चाहती है कि वह चिकित्सा शिक्षा के स्तर को नीचे नहीं गिरने देगी।

कुष्ठ निरोधक योजना

नयी दिल्ली। भारत सरकार की कुष्ठ निरोध योजना के अन्तर्गत चिकित्सा एवं अध्ययन केन्द्र और उप-केन्द्र खोलने का विचार है। मद्रास, मध्य-प्रदेश, पश्चिम बंगाल तथा उत्तर प्रदेश में एक-एक चिकित्सा और अध्ययन केन्द्र खुलेगा।

उपकेन्द्र मद्रास में २, मध्य प्रदेश में ४, पश्चिम बंगाल में १, उ०प्र० में १, बिहार में ८, उड़ीसा में २, बम्बई में १, आंध्र में २. आसाम में १, विन्ध्य प्रदेश में १, सौराष्ट्र में १, तिरुवांकुर-कोचीन में ४, हैदराबाद में ३, हिमांचल प्रदेश में १ और मणिपुर में एक खुलेगा।

आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति पूर्णतः वैज्ञानिक

बीकानेर राजस्थान सरकार के हाल ही में निर्मित 'स्टैंडिंग बोर्ड इंडियन सिस्टम ऑफ मैडिसिनस, राजस्थान का श्री सनातनधर्म आयुर्वेद विद्यालय बीकानेर में उद्घाटन करते हुए राजस्थान के मुख्य मन्त्री श्री मोहनलाल सुखाड़िया ने कहा कि आयुर्वेद चिकित्सा पूर्णतः वैज्ञानिक चिकित्सा है जिसे छोड़कर हिन्दुस्तान आर्त्त जन-समुदाय का त्राण नहीं कर सकता। किन्तु एक शिकायत मुझे अवश्य है और वह यह कि एक एलोपैथ डाक्टर के मुकाबले में आयुर्वेद का विद्वान् वैद्य अपने को हीन समझता है। अतः मैं वैद्यों को सलाह दूंगा कि वे अपने मानदण्ड को ऊंचा उठावें।

उक्त सम्मेलन की अध्यक्षता करते हुए राजस्थान के स्वास्थ्यमन्त्री श्री बद्रीप्रसाद गुप्त ने कहा कि मैं स्वयं आयुर्वेद व प्राकृतिक चिकित्सा का अनुयायी हूँ और मेरी मान्यता है कि देश की अधिकांश जनता की सेवा इसी चिकित्सा पद्धति के द्वारा संभव है अतएव राजस्थान सरकार आयुर्वेद के स्तर को ऊंचा उठाने में प्रयत्नशील है। हमारे पास धन की कोई कमी नहीं है और न ही रुपये की कमी से कोई काम रुक सकता है। दरअसल काम करने वाले चाहिए।

मुख्य मन्त्री से बोर्ड के प्रथम अधिवेशन का उद्घाटन करने की प्रार्थना करते हुए उसके अध्यक्ष श्री गौरीशंकर आचार्य ने अपने जीवन के आगामी पांच वर्ष आयुर्वेद को समर्पित करने की घोषणा की जिनका उपयोग विश्वविद्यालय की अखिल भारतीय मांग को राजस्थान राज्य के सहयोग से बीकानेर की आरोग्यदायिनी मरुभूमि में सफल बनाने में किया जायगा।

आयुर्वेद विभाग राजस्थान के डाइरेक्टर श्री प्रेमशंकर भिषगाचार्य ने समारोह के उद्घाटनकर्त्ता व अध्यक्ष का आभार मानते हुए द्वितीय पंचवर्षीय

योजना में बीकानेर नगर में २० शय्याओं के आयुर्वेदिक आतुरालय के स्थापना की घोषणा की।

दूसरे दिन नगर के गणमान्य वैद्यों व नागरिकों की उपस्थिति में श्री स्वामी केवलदास आयुर्वेद सेवा निकेतन ट्रस्ट द्वारा माननीय स्वास्थ्यमंत्री के सम्मान में आयोजित स्वल्पाहार कार्यक्रम में संस्था का परिचय देते हुए जिला वैद्य सभा के मंत्री वैद्य ठाकुरप्रसाद शर्मा ने अपील की कि सरकार को आयुर्वेद चिकित्सा को गांवों में ही सीमित करने की अपनी नीति में परिवर्तन करना चाहिये और कस्बों व नगरों में भी सुव्यवस्थित आतुरालय व औषधालय अधिकाधिक संख्या में खोलने चाहिए।

स्वास्थ्यमंत्री ने इसके उत्तर में हर संभव सहयोग का आश्वासन देते हुए कहा कि मुझे आयुर्वेद की इस प्रकार की संस्था देखकर गर्व होता है।

—हिन्दुस्तान।

भारत में कुनैन—

मद्रास में कुनैन बनाने की जो फैक्टरी है उसमें प्रति वर्ष लगभग ८८ मन कुनैन बनती है। इसी प्रकार ३७५ मन कुनैन की छाल का उत्पादन सिनकोना तैयार होता है। सारे देश में १ लाख ४० हजार पौंड अर्थात् १७५० मन कुनैन तैयार होती है।

रजिस्टर्ड वैद्य—

इस समय भारतवर्ष में ८९११८ रजिस्टर्ड आयुर्वेदिक वैद्य हैं। नियमों की कड़ाई से अभी बहुत से वैद्य रजिस्टर्ड नहीं हो सके।

बम्बई बोर्ड का चुनाव—

बम्बई के इण्डियन मेडिसिन बोर्ड में चार वैद्य और एक हकीम वैद्य हकीमों के वोटों से चुने जाते हैं और ६ सदस्य सरकार चुन कर देती है। प्रसन्नता की बात है कि महाराष्ट्र प्रान्तीय वैद्य सम्मेलन के उद्योग से वैद्य-हकीमों द्वारा चुने जाने वाले सदस्यों का चुनाव बिना प्रतिद्वन्द्विता के सर्व सम्मति से हो गया है। आयुर्वेदाचार्य पं० ब्रह्मदत्त शर्मा भुसावल, वैद्य यशवन्त नावेली कर कागल, वैद्य अमरप्पा वीरप्पा गदग, वैद्य गोविन्द प्रसाद गोमतीपुरा, वैद्य प्रतापकुमार पोपट भाई सुलेश्वर और हकीम गोपालसिंह रामसिंह कालरा ३८८ सैंडहर्स्ट रोड चुने गये हैं। बधाई। इस समय बम्बई प्रान्त में ८२६४ वैद्य और ६०९ हकीम रजिस्टर्ड हैं। रिन्यूअल फीस न देने के कारण ४१६१ वैद्यों की रजिस्ट्री खारिज हो गयी है। १०० वैद्यों की मृत्यु हो गयी है। २ वैद्य निकाले गये हैं और ३ ने अपना नाम वापस लिया है।

उ० प्र० वैद्य सम्मेलन

१८ वां अधिवेशन दिसम्बर में होगा

यद्यपि मेठर अधिवेशन में निश्चय हुआ था कि अक्टूबर में सम्मेलनोत्सव किया जावे परन्तु कुछ असुविधाओं के कारण स्वागत समिति प्रबन्ध न कर सकी, अब वह दिसम्बर में करने का आयोजन कर रही है। यह तो गतांक में सूचित किया ही जा चुका है कि श्री. बाबूराम जी मिश्र आयुर्वेदाचार्य हापुड़ इस सत्र के सभापति निर्विरोध निर्वाचित होगए हैं। प्रत्येक जनपद सभाओं को अपने प्रतिनिधि चुनकर १५ दिसम्बर से पूर्व ही देहरादून के पते से अवश्य भेज देने चाहिए। आवश्यक प्रस्तावादि न्यून से न्यून १५ दिन पूर्व भेजने चाहिए जिससे कि उनको विषय निर्धारिणी समिति में स्वीकृत कराकर सम्मेलन में उपस्थित किया जासके।

—श्री अमरनाथ जी वैद्य, वनस्पति भवन,
११ न्यायालय मार्ग, देहरादून।

तदेव युक्तं भैषज्यं यदारोग्याय कल्पते।
स चैवं भिषजां श्रेष्ठो रोगेभ्यो यः प्रमोचयेत् ॥ —च० सू० १-१३२.

भाग २६ अङ्क १२ | धन्वन्तरि कार्यालय विजयगढ़ का मुखपत्र | दिसम्बर १९५५

धन्वन्तरि महान्

धन्वन्तरि ! ओ धन्वन्तरि !
तुम प्राण दान दोगे क्या ?
मरते हुए प्राणी को ?
असंभव ! आश्चर्य !
सत्य ? बिलकुल असत्य।
काल से ? व्याल से ?
नितान्त भ्रम-मूलक, झूठ
तुम्हारा चिकित्सा-श्रम।
वृथा है कुविचार या
एक सार हीन भाव
एक तथ्य हीन चाव—
मन में तुम्हारे—
यह, उद्दीप्त जो होरहा है
स्फुटित हो रहा है
क्या ? कौन ?
सृष्टि मौन।
मृत्यु समक्ष देख कर
भाग्य का लिखा कभी
मेट न सका कोई।
बचा नहीं कभी नहीं
व्याल का डसा कोई।
जाओ। लौट शीघ्र दूर—

इतनी दूर जहां से फिर
लौट कर न आ सको।
प्राण को बचा सको।
अन्यथा, फुंसकार से भस्म स्वयं
हो जाओगे।

"भस्म तो कल्पना है"
सरल भाव उत्तर था
"जिस पर भी प्रकोप होगा,
शान्त उसे करूंगा मैं,
जीवन बचेगा अवश्य !
असफल नहीं हूँगा।
असमर्थ नहीं हूँगा।
साहस यही लिये–
चिकित्सा करूंगा मैं।
धन तो मिलेगा ही
धर्म भी बढ़ेगा अवश्य
तुम्हें ही कहूंगा मैं
तुम्हीं क्यों न फिर जाओ ?
अपनी असफलता पर
असमर्थता विषमता पर
लाज स्वयं होगी तुम्हें।
तुम्हारा बल और पौरुष
पल में लुट जायंगे।
व्यर्थ हो जायेंगे।
तुम्हारी चुनौती पर
मुझे नहीं कहना कुछ
यही है बस, तक्षकराज !"
दोनों के नैन मिले
विश्वास पूर्ण मानो हुआ
दर्प चूर्ण 'तक्षक' का,
भाव पूर्ण, शंका का
तक्षक के मन में हुआ उत्पन्न
किञ्चित 'सोच'
कदाचित सत्य न कहीं
उतर जाय ? तो सोचा–
'शृङ्गी ऋषि श्राप का
महत्व घट जायगा,
बात रह जायगी, इसकी–
चिकित्सा का मान बढ़ जायेगा,
मुझसे फिर कौन भय ?
कुल से सब हों अभय,
मानव करेगा नहीं
लघु से लघु जीव जन्तु
गणना करेगा नहीं
फिर भी परीक्षा तो लेनी अवश्य होगी
जानूंगा तभी तो मैं
औषधि का चमत्कार।
चिकित्सक का दंशोपचार'।
बोल उठा-तक्षक
तम गर्व भरे स्वर से तब
"सुनो ! अच्छा जी वैद्यराज !
सम्मुख इस तरुवर को
हराभरा पल्लवित जो
भरता हूँ विष से मैं
दूर कर दोगे यदि–
विष, पूर्व रूप उसका
पुनः कर दोगे यदि
जानूंगा मानूंगा
अवश्य 'प्राण-दान' दोगे।
जग में यशदान लोगे"।
"उचित बात जँचती है
मुझे भी अवश्य ठीक,
निज निज कार्य का
ज्ञान हो जायेगा।
अपनी अपनी शक्ति का
भान हो जायेगा।
वापिस तुम्हीं फिर या
मैं ही पराजित हो
शीघ्र लौट जाऊंगा"।
आव-न-ताव देखा
कूद कर डस ही लिया
उस सुकुमार सुघर

हरे भरे तरुवर को
पल में व्रह श्याम हुआ
मुस्करा कर बोल उठा—
"चलो वैद्यराज ! बढ़ो ! अपना उपचार करो
देखूं तो चमत्कार
तुम्हारा कौशल व्यापार
कहां तक वह सही, सत्य
देना तुम्हारा प्राण-दान।
धन्वन्तरि गंभीर हुए,
कुछ कुछ विचार किया
शान्तशील मुद्रा में
झोली एक खोल दी
औषधि के तीन बिन्दु
लेकर तरु पर छिड़क दिये
वाहरे ! आयुर्वेद !
धन्य श्री धन्वन्तरि !
ठूठ प्रथम श्वेत हुआ
श्वेत से हरित-प्रभा,
साथ ही फूल उठा
फूल से फलित हुआ,
इतनी विशेषता ! ऐसी महानता !
प्रसन्न हुए गद्‌गद हुए
आनन्दातिरेक में
औषधि को चूम लिया
आश्चर्यान्वित थे।
लज्जा से निज नत मुख
किये तक्षक यह बोला !—
"मान गया मान गया
धन्वन्तरि ! चमत्कार।
एक सफल चिकित्सक को धन ही तो चाहिए।
मैं तुम्हें धन दूंगा"।
"धन नहीं चाहिए"
क्रोध पूर्ण स्वर था वे

बोले धन्वन्तरिदेव—
"धर्माधिकारी नृपति को मैं
प्राण दान दूंगा तो
धन तो मिलेगा ही
धर्म भी बढ़ेगा ही
नाम भी त्रैलोक्य में मेरा छा जायेगा।"
"नाम के भूखे बस !
'नाम जो कोई लेगा
कोई भी रोग, शोक,
उसे नहीं व्यापेगा"
शृंगी ऋषि श्राप की
अवहेलना मत करो तुम
वह भी तो ऋषिकुमार,
'भगवान का भक्त है
धर्म का नाश होगा तथा श्राप का भय फिर
नहीं किसी को भी
कभी कहीं नहीं होगा
अत्याचार नित्य ही
बढ़ते यों जायेंगे,
'धन मैं बताता हूँ
जीवन तुम्हारा क्या
पुत्र पौत्रादि सभी
सात पीढ़ी और भी'
नीचे इस मूल में
है, वृक्ष जहां स्थित खड़ा
'अथाह अक्षय धन भण्डार'
आशान्वित मैं हूं, ध्यान
दोगे मेरी आशा पर
और मेरी बात पर" यों
जाता हूं कह कर वह तक्षक चला गया
और सर सर चला गया !

—श्री रामपालसिंह।

उत्तर प्रदेश में मिलने वाले आयुर्वेदीय औषधोपयोगी
खनिज द्रव्य

लेखक—श्री रामेश्वर बद्रीसिंह सूर्यवंशी, कोविद, वैद्य विशारद,
महावीरपुर, अलीगंज, कुर्सी मार्ग, लखनऊ।

उत्तर प्रदेशीय वैद्य समाज को अपने प्रान्त में पाए जाने वाले आयुर्वेदीय औषधोपयोगी खनिज द्रव्यों का ज्ञान रखना आवश्यक है। खनिज वैज्ञानिकों की भावना है कि उत्तर प्रदेश कृषि प्रधान प्रान्त है और उसमें खनिज द्रव्य कम मिलते हैं। अधोलिखित आयुर्वेदीय औषधोपयोगी खनिज उत्तर-प्रदेश में प्रमुखतः पाए जाते हैं।

१—पाद्यारम (अक़ीक़)—बांदा जिला में केन नदी के पात्र में पाया जाता है।

२—नीलाञ्जन (Atnimonite, stibnite)—हिमालय पर्वतीय जिलों में मिलता है।

३—ताम्र—झांसी जिले के ललितपुर परगने में ताम्र-प्राप्ति का प्रतिवेदन किया गया था। उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में अलमोड़ा तथा गढ़वाल जिले का खननोद्योग (Copper mining) प्रसिद्ध था।

४—कृष्णाञ्जन (Galena)—अलमोड़ा और झांसी जिले में मिलता है।

५—वैक्रान्त (Harnet तामड़ा)—अलमोड़ा जिले के सुभाजामय पट्टा (Schistose belt) में मिलता है।

६—सुवर्ण—बांस बरेली और बिजनौर जिले में मिलता है।

७—गोदन्ती (Gypsum इसौठ)—टेहरी गढ़वाल में लक्ष्मण झूला के आस-पास मिलती है। वहां पर १२००० टन गोदन्ती का संचय है ऐसा अनुमान है।

८—लौह खनिज (Iron ore)—नैनीताल जिले में रामगढ़ और मुक्तेश्वर में हैं। अलमोड़ा और गढ़वाल में छोटे-छोटे अवसादन (Small depo-

९—सुधा पाषाण (Limestone)§—गढ़वाल जिले में देवलधर और देहरादून जिले में राजपुर के उत्तर में मिलता है।

१०—अभ्रक (Mica)—अलमोड़ा के आस-पास और मिरजापुर जिले में मिलती है। यहां अभ्रक पत्रों का आकार बहुत बड़ा नहीं होता है।

११—हरताल (orpiment)—हिमालय पर्वतीय जिलों में प्राप्त होता है।

---

§ "कालमुष्ककशम्याककदलीपारिभद्रकान् ॥८॥
अश्वकर्णमहावृक्षपलाशास्फोतवृक्षकान् ।
इन्द्रवृक्षार्कपूतीकनक्तमालाश्वमारकान् ॥९॥
काकजङ्घामपामार्गमग्निमन्थाग्नितिल्वकान् ।
सार्द्रान् समूलशाखादीन् खण्डशः परिकल्पितान् ॥१०॥
कोशातकीश्चतस्रश्च शूकं नालं यवस्य च ।
निवाते निचयीकृत्य पृथक् तानि शिलातले ॥११॥
प्रक्षिप्य मुष्कचये सुधाश्मानि च दीपयेत् ।"

अष्टाङ्गहृदय, सूत्रस्थान, अध्याय २०.

मोखा, अमलतास, केला, फरहद, अश्वकर्ण, सेंहुड़, छूल, आस्फोता, कूड़ा, इन्द्रवृक्ष (अर्जुन अथवा जिसका इन्द्रजव मीठा होता है), मदार, पूतीकरंज, नाटाकरंज, कनेर, चक्रसेनी, लटजीरा, अग्निमन्थ, चीता, तिल्वक इनको गीला ही मूल और शाखाओं के साथ लाकर टुकड़े टुकड़े बनालें। दवेड़, बामागंव, पटोली तथा देवदाली नामक चारों कोशातकी, जव के सींकुर और नाल इनको वायु रहित स्थान पर एकत्रित करके तथा मुष्कक आदि को शिलापृष्ठ पर एकत्रित करके तिलों के कुतलों (मूल एवं नाल समेत शुष्क तिल—तिल काण्डों से) अलग-अलग जलायें। जलाते समय मुष्कक के ढेर में सुधापाषाण (चूने के पत्थर) भी डाल देवे।

१२–रौप्यमाक्षिक (**Pyrite** श्वेतमाक्षीक)–अल्मोड़ा जिले में चौकोड़ी और शिमला में तारादेवी में मिलता है। शिमला निवासी डॉ० केदारनाथ ने यूरोपीय द्वितीय महायुद्ध काल में रौप्यमाक्षीक से गन्धक तैयार किया था, किन्तु अमेरिका से उत्सवसादीय गन्धक (**Spring deposit sulphur**) सस्ते दर भारत में आयात होने से वह उद्योग बन्द हो गया।

१३–स्वर्जिका (**Sodium carbotnate**)—यह वास्तविकतः में रेह लवण में मिलने वाला एक क्षार है। इसका प्रमाण रेह में १.७५% रहता है। उत्तर प्रदेशीय समस्त क्षारीय भूमि (**Alkaline soil**) का क्षेत्रफल १,८१७ वर्ग मील है। प्रति वर्ग मील २,६५६ टन स्वर्जिका पाई जाती है। अलीगढ़, बाराबंकी, इटावा, लखनऊ, मुरादाबाद, मुजफ्फरनगर और रायबरेली जिले में रेह (**Reh**) मिलती है।

१४–स्फटिक मणि (**Rock crystal**)–अल्मोड़ा जिले के मल्ला जोहार क्षेत्र में प्रतिवेदना किया गया।

१५–शंखजीरक (**Soapstone, Tac** संगजराहत)—अल्मोड़ा और झांसी जिले में मिलता है। मृच्छिल्प (**Ceramic**), पत्र (**Paper**) और प्रसाधन (**Toilet**) इत्यादि के उद्योगों में उपयुक्त होता है।

पूर्वोक्त खनिजों के अतिरिक्त कुछ झरनों (**Springs**) तथा कूपों के जल में कुछ दिन तक केवल स्नान करने मात्र से ही रोगों का शमन होता है। उत्तर प्रदेशान्तर्गत बाराबंकी जिले में बाराबंकी के दक्षिण जैदपुर नामक एक कस्बा है। इसके दक्षिण में लगभग २ मील पर बीबीपुर नामक एक ग्राम है। इस ग्राम के 'कांवरहा कुआं' नामक एक कूप के जल में स्नान करने से कामला रोग में लाभ होता है। इसी प्रकार का लाभ लखनऊ जिला की मोहनलालगञ्ज तहसील के समेसी नामक ग्राम के कूप जल स्नान द्वारा होता है ऐसी ख्याति है।

उत्तरीय लोहमार्ग (**Northern railway**) पर लखनऊ (**Lucknow**) से रायबरेली (**Raebareli**) जाने वाली शाखा (**loop**) पर निगोहाँ (**Nigohan**, प्राचीन नाम नागहृद) नामक एक रेलवे स्टेशन है। स्टेशन की पूर्व दिशा में, स्टेशन से लगभग ३ मील पर नन्दौली (**Nandauli**) नामक एक गांव है। यहां के ग्राम-वासियों को कामला रोग कभी नहीं होता है। कुछ लोगों का वैज्ञानिक अनुमान है कि नन्दौली ग्राम का भूमि जल कामला की प्राकृतिक चिकित्सा करता है।

देहरादून जिले में 'सहस्रधारा' गांव समीपस्थ गन्धकोत्स (**Sulphur springs**) के जल में लगभग एक पक्ष या मास तक स्नान करने से कच्छू (**Scabies, Itches**) इत्यादि चर्म रोग अच्छे हो जाते हैं।

शास्त्रीय सितोपलादि चूर्ण पर सन्देह निवारण।

लेखक—वैद्यराज आयुर्वेदाचार्य पं० मदनमोहनलाल जी चरौरे, वैद्यभूषण, B. A. M. S. सोरों।

—❖—

धन्वन्तरि मासिक पत्र भाग २६ अङ्क ४, मार्च सन् ५५ के प्रकाशित अङ्क में सफल शास्त्रीय योग 'सितोपलादि चूर्ण' नामक मेरा लेख प्रकाशित हुआ था जिस पर हमारे मित्र कविराज दुर्गानन्द जी शास्त्री को कुछ सन्देह हुआ है। आपका कहना है कि सितोपलादि योग में इलाइची बड़ी डालनी चाहिये, छोटी इलाइची नहीं। सितोपलादि चूर्ण की बनावट में जहां तहां 'एला' 'बहुला' नाम आया है वह बड़ी इलाइची है और उस दृष्टि से इस योग में बड़ी इलाइची ही लेनी चाहिये। प्रमाण में कविराज जी भावप्रकाश का "एला स्थूला च बहुला पृथ्वीका त्रिपुटापि च" उद्धरण देते हैं। उनका सन्देह अति उत्तम है। उनके इस सन्देह निवारण के लिए हम कुछ निम्न पंक्तियां 'धन्वन्तरि' के पाठकों के समक्ष उपस्थित कर रहे हैं।

पूर्व प्रकाशित लेख में जिस समय मैं इस सफल प्रयोग पर विचार करने बैठा तो मेरे विचार में भी यह शंका उत्पन्न हुई जैसी कि शास्त्री जी को हुई है कि—सितोपलादि चूर्ण में 'एला' या 'बहुला' शब्द से कौन सी इलाइची लेनी चाहिए? क्योंकि ये दोनों नाम बड़ी इलाइची की नामावली में आते हैं। इसकी बनावट के तीन मूल पाठ मिलते हैं। मैंने इसके विषय में चरक पाठ दिया है जो यों है—

सितोपलां तुगाक्षीरीं पिप्पलीं बहुलां त्वचम्।
अन्त्यादूर्ध्वं द्विगुणितं लेहयेन्मधु सर्पिषा॥

आदि। चरक चि० अ० ८।

यही योग वाग्भट् ने अष्टाङ्गहृदय में 'त्वगेलादि चूर्ण, नाम से दिया है:—

त्वगेला पिप्पली क्षीरी शर्करा द्विगुणाः क्रमात्।
चूर्णिता भक्षिता क्षौद्र सर्पिषा वाऽव लेहिता॥

स्वर्या कास क्षय श्वास पार्श्व रुक्कफ नाशनः।

—चि० अ० ५।

अब देखिये शाङ्गधर-संहिता का पाठ—

सितोप षोडश स्यादष्टौ स्याद्वंश रोचना।
पिप्पली स्लाच्चतुष्कर्षा, स्याददेला च द्विकार्षिकी॥

एकः कर्ष स्त्वचः कार्यश्चूर्णयेत सर्वमेकतः।
सितोपलाऽऽदिकं चूर्णं मधु सर्पिर्युतंलिहेत्॥

उपरोक्त तीनों मूलपाठों में चरक में 'बहुला' अष्टांगहृदय और शाङ्गधर में 'एला' शब्द से इलाइची का बोध कराया गया है। इन तीनों ही पाठों में बहुला और एला शब्द भावप्रकाश के अनुसार बड़ी इलाइची की नामावली में आते हैं। मैंने जैसा इस चूर्ण का वर्णन किया है, यह योग बहुत ही व्यापक है। आयुर्वेद-विहीन व्यक्ति भी और किसी योग को चाहे न जानता हो पर इससे उसका बहुत कुछ परिचय है। स्वयं लेखक जब आयुर्वेद में प्रवृत्त न था इस योग को बचपन से जानता है उस काल में वृद्ध वैद्यों से घर में अनेक बार इसे बनते देखा था और छोटी इलाइची को ही उस योग में डालते थे। जब से आयुर्वेद में जानकारी प्राप्त हुई तो उन पूर्व विचारों को पुष्टि मिली। यह योग ज्यों का त्यों सभी जगह तब से अब तक देखा है। इस योग पर इतनी गहरी दृष्टि से कभी विचार नहीं किया था जितना इस चूर्ण पर लिखने से पूर्व करना पड़ा।

इस योग के विषय में उपरोक्त तीन मूलपाठों में से हमें एक पाठ उद्धृत करना था। उसके द्रव्यों का तथा भाग अनुपात का पाठकों को बोध कराना था अतः एक चरक का पाठ उठाकर उद्धृत कर दिया।

उस पाठ के नीचे ही इस चूर्ण की निर्माण विधि दी गई है जिसमें छोटी इलाइची का ग्रहण है वह इसकी मौजूदा चालू व्यवस्था है दृढ़ विचार युक्त शैली है जो ग्रन्थ अवलोकन करने से निश्चित हुई थी।

आयुर्वेदिक ग्रन्थों में दो प्रकार की इलाइची का उल्लेख मिलता है 'एला' छोटी इलाइची और बृहदेला अर्थात् वड़ी इलाइची। इलाइची शब्द संस्कृत के एला+ची (फारसी प्रत्यय च) के द्वारा बना है। एला शब्द में दोनों का उल्लेख भी मिलता है। इस एला शब्द के साथ बृहद् और सूक्ष्म दो विशेषणों से बड़ी और छोटी संज्ञायें हो जाती हैं। चरक में कई जगह एला नाम से उल्लेख है और इनका मन्तव्य वहां छोटी इलाइची से ही है। चरक के (सू० अ० ४) के विषघ्न वर्ग में "हरिद्रामञ्जिष्ठासुवहासूक्ष्मैला" आदि, श्वासहर वर्ग में, 'शठीपुष्करमूलाम्लवेतसैलाहिंग्वगुरु" आदि और अङ्गमर्दप्रशमन वर्ग में "विदारीगन्धपृश्निपर्णीबृहतीकण्टकारिकैरण्ड काकोलीचन्दनोशीरैलामधुकानीति" पाठ दिया है जिसमें विषघ्न वर्ग में 'सूक्ष्मैला' तथा श्वासहर और अङ्गमर्दप्रशमन वर्ग में 'एला' शब्द है। दोनों ही शब्दों से छोटी इलाइची का ग्रहण है। चरक की श्री जयदेव जी विद्यालंकार प्रणीत टीका देखी जा सकती है उनको इन तीनों वर्गों में छोटी इलाइची ही अभीष्ट है। विद्यालंकार जी इसी यक्ष्माधिकार में तालीसादि चूर्ण में "त्वगेला चार्धभागिके। पाठ से छोटी इलाइची ग्रहण करते हैं। आगे एकादश अध्याय में भी एलादि गुटिका में एला से छोटी इलायची ग्रहण करते हैं।

सुश्रुत, में भी एला संज्ञा से छोटी इलायची का उल्लेख किया है। सूत्र-स्थान के अ० ३८ में 'एलादि गण' पढ़ा है "एलातगरकुष्ठमांसीध्यामकत्वक्पत्र"...... इस एला का सूक्ष्मैला से अभिप्राय है। जैसा टीकाकार श्री अत्रिदेव जी भी अपनी सुश्रुत की टीका में ग्रहण करते हैं।

अष्टांग हृदय में (सूत्र. अ० १५) एलादिगण और उसका गुण—

एलायुग्म तुरुष्क कुष्ठ फलिनी मांसी जलध्यामकं। इत्यादि...

इसमें एलायुग्म शब्द पर ध्यान दें। ग्रन्थकार ने एला शब्द केवल इलायची के अर्थ में प्रयुक्त किया है जो युग्म से दोनों (छोटी और बड़ी का) निर्देश करता है यहां पर एला शब्द दोनों का ही प्रतिनिधि है। परन्तु टीकाकार अत्रिदेव जी एला से यहां छोटी इलायची और युग्म पाठ होने से दूसरी बड़ी इलायची मानते हैं।

आगे यही गुप्त जी इसी संहिता के चिकित्सा यक्ष्माधिकार के 'एलादि घृत, में एलाजमोदात्रिफला सौराष्ट्रीव्योषचित्रकान्' आदि में एला से छोटी इलायची का ग्रहण करते हैं। इसी अध्याय में उपरोक्त जो त्वगेलादि चूर्ण दिया है उसमें भी छोटी इलायची का ही ग्रहण है। व्यवहार विधि कहते हुये उसके निर्माण में वे इलायची छोटी लेकर छिलकों समेत कूट कर छानने को कहते हैं। इलायची हरी ताजी यानी सूखी लेनी चाहिये। यहां बड़ी लाल इलायची ग्रहण कदापि नहीं है।

शार्ङ्गधर संहिता का पाठ ऊपर दे चुके हैं उसके अनुसार भी एला शब्द से प्रयागदत्त जी शर्मा शास्त्री छोटी इलायची ही लेते हैं। शार्ङ्गधर पर इनकी टीका है जिस पर श्री० लक्ष्मीपति जी त्रिपाठी की टिप्पणी है और ब्रह्मशंकर जी शास्त्री ने संशोधन किया है। इसके साथ ही तालीसादि चूर्ण में भी एला से छोटी इलायची का ग्रहण है। 'एला प्रयंगु मुस्तानि कोलमज्जा च पिप्पली।' आदि इस एलादि चूर्ण में एला से छोटी इलायची का ग्रहण किया है।

पाठकों के सम्मुख हमने वे ही उद्धरण प्रस्तुत किये हैं जिनमें स्पष्ट रूप से एला को छोटी इलायची कहा है जहां एला से केवल इलायची कही है ऐसा प्रमाण प्रस्तुत नहीं किया है।

इन बहुत से टीकाकारों ने यह भी किया है कि एला को केवल इलायची लिखा है वे जानबूझ कर इस उलझन से बचे हैं। अष्टांग संग्रह के एक टीकाकार

ने कई जगह एला को इलायची और त्रुटि जो छोटी इलायची है उसे भी केवल इलायची संज्ञा दी है। ऐसा क्यों? यदि वे एला से बड़ी इलायची लेते हैं तो उन्हें स्पष्ट ही उसके लिये बड़ी इलायची लिखना चाहिये था जबकि दूसरी छोटी इलायची को भी जिसका कि नाम त्रुटि है केवल इलायची संज्ञा दी है जबकि उन्हें छोटी इलायची टीका में लिखनी चाहिये थी। अतः यदि कहीं एला को केवल इलायची लिखा है तो वहां बड़ी का ही ग्रहण नहीं होजाता।

संस्कृत टीकाकार 'एला' शब्द का अर्थ सूक्ष्मैला करते हैं (देखिए भानुमती एलादिगण तथा आयुर्वेदीय विश्वकोष) अस्तु यह तो रहा आयुर्वेदिक ग्रन्थों का मत इसके अलावा काव्य-ग्रन्थों में देखें—

भावप्रकाश निघण्टु में जहां से कविराज जी ने एला और बहुला नाम लेकर शंका व्यक्त की है उस पर पं० विश्वनाथ जी द्विवेदी ने अपना मत स्पष्ट किया है। देखिए (भाव प्रकाश निघण्टु पं० विश्वनाथ जी द्विवेदी की ललितार्थ करी टीका, प्रकाशक मोतीलाल बनारसी दास) द्विवेदी जी ने माघ महाकाव्य के ३ सर्ग का उद्धरण दिया है "एलालतास्फालनलब्ध गन्ध" यहां पर एलालता शब्द से सूक्ष्मैला का ग्रहण है। यदि ऐसा यहां न समझा जाय तो अर्थ ही ठीक नहीं होगा क्योंकि छोटी इलायची की ही लता अधिक सुगन्धित होती है स्थूलैला की नहीं"।

अब कुछ संग्रह ग्रन्थों को देखें उनसे क्या निष्कर्ष निकलता है। भैषज्य-रत्नावली योगों का विशाल संग्रह है इसमें से एक नहीं अनेक प्रमाण दिये जा सकते हैं। इसमें जो सितोपलादि चूर्ण का योग दिया है वह चरक का वही पाठ है जो मैंने उद्धृत किया है। सितोपलां त्वगाक्षीरीं पिप्पलीं बहुलां त्वचः। टीकाकार ने इसमें बहुला शब्द से छोटी इलायची का ग्रहण किया है। इस योग के बाद तीसरा तालीशाद्य मोदक नामक योग है:—

तलीश पत्रं मरिचं नागरं पिप्पली शुभा।
यथोत्तरं भाग वृद्धया त्वगेले चार्द्ध भागिके॥

इसमें एला शब्द से छोटी इलायची ही ली है। फिर इसी अधिकार में एलादि चूर्ण में 'एला पत्रं नागपुष्पं लवङ्ग' श्लोक में एला के लिये छोटी इलायची कहा है यह भैषज्य-रत्नावली श्री० कविराज नरेन्द्रनाथ मित्रपाद द्वारा संस्कृत, परिवर्द्धित, आयुर्वेदाचार्य श्री० जयदेव विद्यालंकार द्वारा व्याख्या आयुर्वेदाचार्य पं० हरिदत्त शास्त्री द्वारा संशोधित व विशेष वचनों द्वारा विवर्द्धित तथा श्री० पं० लालचन्द्र जी वैद्य प्रधानाचार्य अर्जुन आयुर्वेद विद्यालय काशी द्वारा सम्पादित व संवर्द्धित है। इसके प्रकाशक मोतीलाल बनारसीदास बनारस हैं।

यही उपरोक्त सितोपलादि चूर्ण पर चरक का पाठ वैद्य श्री यादव जी त्रिकम जी आचार्य बम्बई ने अपने "सिद्धयोग संग्रह" में दिया है जिसमें उनको इस योग में छोटी इलायची लेना ही अभीष्ट है यह योग उनके संग्रह में पृष्ठ ७८ पर दिया है और वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड से प्रकाशित है। इसी पृष्ठ पर एलादि गुटिका भी दी है उस योग में भी एला, शब्द से छोटी का ग्रहण किया है।

'योग रत्नाकर' में यही योग शार्ङ्गधर संहिता के पाठ से संग्रहीत किया गया है जिसमें "... एला स्याच्च द्विकर्षिकी'। ऐसा पाठ है। 'एला' शब्द से टीकाकार छोटी इलायची का ग्रहण करते हैं। इस संग्रह ग्रन्थ के टीकाकार हैं आयुर्वेद केसरी श्री लक्ष्मीपति शास्त्री व संपादक हैं श्री ब्रह्मशंकर जी शास्त्री। यह संग्रह ग्रन्थ चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस से प्रकाशित है।

'योग चिन्तामणि' में सितोपलादि चूर्ण का शार्ङ्गधर वाला पाठ है। टीकाकार इसमें 'एला' के लिए छोटी सफेद इलाइची लेते हैं देखें पृष्ठ सं० ८१ भार्गव पुस्तकालय गाय घाट बनारस से प्रकाशित। व्याकरणाचार्य 'विद्यारत्न, पण्डित माधवप्रसाद व्यास द्वारा परिष्कृत व संशोधित है। उन्होंने एलादि चूर्ण में भी सफेद इलाइची तथा दूसरा एलादि चूर्ण (प्रमेह पर) एलारसभेद शिलाजतु पिप्पलीनां। में भी एला के लिए छोटी सफेद इलाइची लेते हैं।

उपरोक्त सभी मूल ग्रन्थों तथा संग्रह ग्रन्थों के सिवाय कुछ और भी संग्रह देखें जिनमें उक्त योग का वर्णन है। उनमें से कुछ का दिग्दर्शन कराते हैं।

'रसतन्त्रसार व सिद्धयोग संग्रह' कार ने अपने विशाल योग संग्रह में सितोपलादि चूर्ण का योग चरक संहिता से संग्रह किया है वे इस योग में छोटी इलाइची के लेने को स्वीकार करते हैं। चूर्ण प्रकरण, सि. यो. सं.।

'सिद्ध भैषज्य संग्रह' ले० आयुर्वेदाचार्य कविराज युगलकिशोर गुप्त, सम्पादक आयुर्वेदाचार्य साहित्य रत्न श्री गङ्गासहाय पाण्डेय जो चौखम्बा संस्कृत सीरीज बनारस से प्रकाशित है, उसमें यह योग शा.- सं०, भै० र०, चक्र०, से संकलित है। इस योग में छोटी इलाची सम्मिलित करते हैं।

बनौषधि चन्द्रोदयकार—श्री. चन्द्रराज भण्डारी विशारद अपने विशाल इस संग्रह में सितोपलादि चूर्ण की बनावट में छोटी इलाइची का ही निर्देशन करते हैं।

आचार्य रघुवीरप्रसाद त्रिवेदी आयुर्वेदाचार्य आयुर्वेद वाचस्पति अपने 'राजकीय औषधि योग संग्रह' नामक संग्रह ग्रन्थ में सितोपलादि में छोटी इलाइची ही डालने का विधान करते हैं।

आयुर्वेद सार संग्रह—जो वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० का निजी विशाल संग्रह है। अपने संग्रह के चूर्ण प्रकारण में इस सितोपलादि चूर्ण का योग दिया है। उन्होंने इस योग का पाठ शा० सं० से लिया है। वे उन द्रव्यों की गणना में छोटी इलाइची का ग्रहण करते हैं। शा. सं. का पाठ ऊपर कई जगह दिग्दर्शन करा चुके हैं जिसमें 'एला' शब्द आता है।

उपरोक्त इन ग्रन्थों और आचार्यों के सिवाय और भी कितने ही उदाहरण दिए जा सकते हैं मगर मैटर बढ़ने का भय है। बहुत कुछ खोजा जिनसे हमारे मत की ही पुष्टि होती है। हमें जब पूर्ण निश्चित होगया कि इस योग में छोटी इलाइची का ही विधान है तभी हमने अपनी निर्माण विधि में जैसा कि चरक पाठ के नीचे दी है छोटी इलाइची का ग्रहण किया है। इन सारे प्रकरणों को देखने से यह विश्वास अवश्य होता है कि इतने सभी आयुर्वेद के आचार्यों ने यों ही प्रमादवश एला और बहुला से छोटी इलाइची का ग्रहण सितोपलादि चूर्ण में नहीं किया है। उन्होंने अत्यन्त मनन और गंभीरता से इस योग निर्माण में छोटी इलाइची को स्थान दिया है। सितोपलादि चूर्ण के विषय में तो प्राय: सब एक मत ही जान पड़ते हैं। सम्भव है कविराज जी या अन्य कोई वैद्यबन्धु इस योग में बड़ी इलाइची लेते हों। मैंने अब तक कहीं इस योग में बड़ी इलाइची को लेते किसी को नहीं देखा है। भिन्न भिन्न फार्मेसियों को भी जो औषधि निर्माण तथा विक्रय का कार्य करती हैं इस योग में एला से बड़ी इलाइची को डालते नहीं देखा। कविराज जी ने एला के गुणों की दृष्टि से भी कुछ अपने मत की पुष्टि करनी चाही है। अब हम आगे कुछ इसके गुणों पर भी विचार करेंगे।

छोटी इलाइची के गुण—रस में चरपरी शीतल हल्की और वात कफ श्वास कास बवासीर और मूत्र कृच्छ्र नाशक है। भा० प्र०

छोटी इलाइची मूत्रकृच्छ्र नाशक श्वास कास तथा क्षय में हित कर है। शीतल मीठी हृद्य रुचिकर तथा दीपन है। ध० नि०

सुश्रुत और वाग्भट् के अन्दर इसे मूत्रकृच्छ्र नाशक बताया है। वंगसेन में हृदयरोग नाशक। तथा राजनिघण्टु में इलाइची कफ पित्त नाशक है तथा शूल कोष्ठबद्धता तृषा वमन और वायु को नाश करने वाली है।

द्रव्य रत्नाकर में अश्मरी नाशक लिखा है। मदनपाल निघण्टु में छोटी इलाइची को वस्ति प्रणाशिनी लिखा है।

अब बड़ी इलाइची के गुण और प्रभाव देखें—

बड़ी इलाइची—पाक तथा रस में चरपरी वातकारक हल्की रूक्ष गरम है कफ रुधिर विकार

खुजली श्वास तृषा हृल्लास विष मूत्राशय के रोग शिरोरोग वमन और खांसी को नष्ट कर देती है।
—भावप्रकाश।

सितोपलादि चूर्ण में 'केवल बड़ी इलाइची गरम है इस लिये उसे ग्रहण करना चाहिए तथा छोटी इलाइची शीतल है इसलिये इस योग में नहीं लेनी चाहिए, कविराज जी का तर्क अधिक वजनदार नहीं है। इस योग में केवल गरम द्रव्यों का ही संग्रह नहीं है गरम और शीतल दोनों तरह के द्रव्यों से यह योग निर्मित है। जहां मधुररसयुक्त शीतल सिता और वंशलोचन हैं वहां उनके साथ दालचीनी और छोटी पीपल उष्णवीर्य तथा पाचन दीपन हैं उन द्रव्यों का कुछ गुण वर्णन मैं पूर्व अङ्क ४ में उस लेख में कर चुका हूं पाठक वहीं देखें तथा निघण्टु भी। यहां कुछ थोड़ा तुलनात्मक विवेचन है।

सितोपलादि चूर्ण का योग यक्ष्माधिकार का है यह ध्यान में रखें और उसी दृष्टि से तुलना करते समय इसके घटकों कोपरखें। इसका अनुपान मधु और घृत भी विचार करने योग्य हैं। दालचीनी पौष्टिक और वायुनाशक, हृदय के रोग नष्ट करती है–पीपल वीर्यवर्धक है और वात कफ को नष्ट करती है श्वास कास, उदर रोग को तथा क्षय को दूर करती है। वंशलोचन शीतल होते हुए भी वात को नष्ट करता है क्षय श्वास कास, मन्दाग्नि दाह को शान्त करने वाला है। दोनों इलाइचीयों में से इस चूर्ण में छोटी इलाइची का ही ग्रहण है। छोटी इलाइची वातकफनाशक श्वास कास मूत्रकृच्छ्र को दूर करती है, क्षय में हितकर है हृद्य रुचिकर दीपन है। जबकि बड़ी इलाइची रूक्ष और वातकारक है। यद्यपि गुणों में कोई एसा खास विरोधात्मक अन्तर नहीं है और ये दोनों एक दूसरे का प्रतिनिधित्व भी करती हैं पर जो कुछ अन्तर है वह शीतल और उष्ण वीर्य का तथा वायुनाशक और वायुवर्धक का ही है। इस योग में इलाइची दोनों तरह के द्रव्यों में बीच की वस्तु है। खास कर इलाइची की इसमें मूत्रल प्रतिक्रिया है जो रोगी में होनी ही चाहिए जिससे उसके भीतर के विजातीय द्रव्य मूत्र के द्वारा बाहर निकल कर उसका शोधन करते रहें। मूत्रल गुण दोनों में ही हैं पर छोटी इलाइची कुछ गुण विशिष्ट होने के कारण इसी का समावेश है और इसी दृष्टि से आचार्यों ने उसे ग्रहण किया है।

एला से साधारण समाज में भी छोटी इलाइची का ही संकेत मिलता है। जहां ताम्बुल है वही एला है और वहीं छोटी इलाइची है। बड़ी इलाइची को एला कहकर इसके साथ ग्रहण नहीं करते।

हमने एला शब्द पर इतना प्रकाश डाला है। बहुला पर भी कह चुके हैं तीनों पाठ एला और बहुला के एक ही हैं जिन दो में एला है उनमें स्पष्ट है कि छोटी इलाइची है परन्तु चरक का बहुला वाला पाठ भी अब दोनों के साथ ही है क्योंकि एला तथा बहुला से दूसरा योग कदापि नहीं हो सकता।

इस उपरोक्त विवेचन निष्कर्ष से ज्ञात यह होता है कि मूल चरक पाठ के अनुसार सितोपलादि चूर्ण में बड़ी इलाइची ली जाती थी पर इधर शास्त्रकारों ने छोटी इलाइची के गुणों का अधिक मन्थन किया तो उसे रुचिकारक, अधिक सुगन्धित, श्लेष्मघ्न आदि गुणों को पाकर बड़ी के स्थान पर इसी का उपयोग करने लगे। आजकल व्यवहार में और परम्परानुसार छोटी इलाइची ही चल रही है। मुसलमा नशासकों के शासन काल में यूनानी हकीमों ने भी छोटी इलाइची को बड़ी के स्थान पर अधिक प्रमुखता दी है। अस्तु चरकीय बड़ी इलाइची शास्त्र सम्मत होते हुए भी छोटी इलाइची का उपयोग व्यवहार सम्मत परम्परा सम्मत और गुण दृष्ट या उचित ही है अस्तु वैसा ही विचार हमने पूर्व लेख में व्यक्त किया था। पाठक दोनों प्रकार के योग बना कर देखें और उनके गुणों पर प्रकाश डाल कर अनुगृहीत करें। हम कविराज जी के अत्यंन्त आभारी हैं जिनके सन्देह के कारण हमें अपने विचार धन्वन्तरि परिवार के समक्ष पहुँचाने का सुअवसर मिला है। पाठक मंथन कर सन्तुलन दृष्टि से निर्माण कर सकेंगे ऐसी आशा है।

सन्निपात (आन्त्रिक) ज्वर (TYPHOID FEVER)

लेखक—वैद्य श्री धीरेन्द्र मोहन भट्ट शास्त्री जी० ए० एम० एस०, आयुर्वेदाचार्य
प्रधान चिकित्सक-राजकीय जनपद आयुर्वेदिक औषधालय, बतौली, सरगुजा (म. प्र.)

ज्वर शब्द से केवल ताप-वृद्धि मात्र का बोध होता है जो ज्वर जन्म और मरण का कारण होता है एवं सम मात्रा में रह कर शरीर का उपकार करता है। और वही ज्वर मिथ्याहार-विहार के करने से आपाद मस्तक तक भीषण रूप में बढ़ कर मृत्यु का कारण होता है। ज्वर होने के पूर्व उष्मा की वृद्धि होती है जिससे रस दूषित होकर स्वेद मल मूत्रादि का ह्रास कर देता है। एवं प्यास अधिक लगती है तथा नाड़ी की गति तीव्र हो जाती है। 'ज्वर यति शरीराणीति ज्वरः, ज्वरयति संतापयति इति चक्रपाणि, नान्ये व्याधस्तथा विद्या दारुणाः सोपद्रवा दुश्चिकित्स्याश्च यथायमिति। ससर्व रोगाधिपतिः नानातिवेग योनिषु बहुविधै शब्दैरभिधीयते; सर्वप्राण भृतश्च स ज्वरा एवं जायन्ते स ज्वरा एव म्रियन्ते इत्यादि।'

ज्वर प्रधानो रोगाणां त्वचि संताप लक्षण।
देहेन्द्रिय मनस्तापी निजश्चागन्तुश्चस॥ —चरक।

माधवाचार्य ने ज्वर की निरुक्ति इस प्रकार की है—

स्वेदावरोधः संतापः सर्वांगग्रहणं तथा।
युगपद्यत्र रोगे च स ज्वरोऽभिधीयते॥

अर्थात् सभी प्रकार के ज्वरों में संताप वृद्धि करना प्राकृत पित्त का कर्म है, जो अग्नि रूप पित्त शरीर के धातुओं को जला कर उष्मा रूपी संताप को उत्पन्न करता है। यथा—

दर्शन पक्तिरूष्माश्च क्षुत्तृष्णा देहमार्दवम्।
प्रभा प्रसादो मेधाश्च पित्तकर्मा विकारजम्॥

९७·४° से ९८° तक स्वाभाविक संताप माना गया है। इससे अधिक हो जाने पर प्राणी ज्वरी कहलाता है। चरक ने निम्न रूप में स्पष्ट किया है।—

नास्ति पित्तादृते उष्मा न चोष्मादृते ज्वरे।

और भी—

देहेन्द्रिय मनस्तापी त्वचि संताप लक्षणः

आयुर्वेद के संहिता ग्रन्थ में वर्णित सन्निपात ज्वरों में आंत्रिक ज्वर का लक्षण कुछ-कुछ मिलता जुलता है। लेकिन आंत्रिक ज्वर या मंथर ज्वर करके कहीं संज्ञा नहीं मिली है। जो ग्रन्थ पिछले ५०० वर्ष में बने हैं उनमें मंथर ज्वर करके एक ज्वर लिखा गया है जिसका लक्षण प्रायः आंत्रिक ज्वर से मिलता है। आंत्रिक ज्वर संज्ञा महामहोपाध्याय जी ने दी है जो एनेट्रीक का दूसरा शब्द है। इससे ज्ञात होता है कि प्राचीन समय में यह ज्वर भारत-वर्ष में नहीं होता था। इतिहास के देखने से पता चलता है कि भारत में यह सबसे पहले १५० वर्ष पूर्व पश्चिमी पंजाब में इस रोग का आक्रमण हुआ और धीरे धीरे सम्पूर्ण देश में फैलता गया। यद्यपि यह सम्पूर्ण ऋतुओं में पाया जाता है फिर भी ग्रीष्म वर्षा और शरद में अधिकतर होता है।

देहेन्द्रिय मनस्ताप लक्षण युक्त ज्वर को आंत्रिक ज्वर कहते हैं। जिसे प्राचीन आचार्यों के द्वारा वर्णित सन्निपात की विशेष अवस्था का द्योतक कहते हैं। महर्षि चरक ने १३ प्रकार तथा भालुकि ने दो दो दोषों की अधिकता से सन्निपात को बताया है। कई विद्वानों के मत से वर्तमान संतत ज्वर को भी आंत्रिक ज्वर करके मानना होता है। क्योंकि आचार्यों ने दो तरह से संतत ज्वर को बताया है। यथा—

"सन्निपाता रव्धस्य संतत ज्वरस्य सप्तमे दिवसे प्राप्ते इत्यादि ना मोक्ष बोधयो। वधिमविधाये

दाहोमेक दोषज द्विदोषस्थ विसर्गा वधिकारेण लक्षण माह सप्ताहं वा दशाहं वा द्वादशाहं मथापिवा। संतत्यायोऽविसर्गी सन्ततः स निगद्यते। अपरं च सुखसाध्यः प्रकीर्तितः। चरक मा प्रायशः सन्निपातेन द्रष्टः पंच विधो ज्वरः। सन्निपातेन यो भूयात सदोष परिकीर्तितः।"

सन्तत ज्वर में वातादि दोष दूषित होकर धातुओं के साथ मल मूत्रादि को भी दूषित करता है। तथा सशुध्या वाप्य शुध्या वा न वा शुध्यति सर्वशः इत्यादि वाक्यों से दोष को शुद्ध होने में २४ दिन एवं इससे भी अधिक समय लगता है।

सन्निपात ज्वर का लक्षण—

क्षणे दाहः क्षणे शीतमस्थिसंधिशिरोरुजा।
सास्रावे कलुषे रक्ते निर्भुग्ने चापि लोचने॥
सस्वनौ सरुजौ कर्णौ कण्ठ शूकैरिवावृतः।
तन्द्रा मोहः प्रलापश्च कासः श्वासोऽरुचिर्भ्रमः॥
परिदग्धा खरस्पर्शा जिह्वास्रस्ताङ्गता परम्।
ष्ठीवनं रक्तपित्तस्य कफोनोन्मिश्रितस्य च॥
शिरसो लोठन तृष्णा निद्रानाशो हृदि व्यथा।
स्वेदमूत्रपुरीषाणां चिराद्दर्शन मल्पशः॥
कृशत्वं नातिगात्राणां प्रततं कण्ठकूजनम्।
कोठानां श्यावरक्तानां मण्डलानां च दर्शनम्॥
मूकत्वं श्रोतसां पाको गुरुत्वमुदरस्य च।
चिरात् पाकश्च दोषाणां सन्निपातज्वराकृतिः॥

असाध्य लक्षण—

दोषे विबद्धे नष्टेऽग्नौ सर्वसम्पूर्णलक्षणः।
सन्निपातज्वरोऽसाध्यः कृच्छ्रसाध्यस्ततोऽन्यथा॥

उपद्रव—

सन्निपात ज्वरस्यान्ते कर्णमूले सुदारुणः।
शोथः संजायते तेन कश्चिदेव प्रमुच्यते॥
(माधव निदान)।

सुश्रुत ने सन्निपात ज्वर का लक्षण निम्न रूप में किया है—

निद्रानाशो भ्रमः श्वासस्तंद्रा सुप्तांगऽरुचिः। तृष्णामोहोमदः स्तम्भो दाहःशीतं हृदि व्यथा॥ पक्तिश्चिरेणदोषाणान्मुमदः श्यावदंतता। रसना परुषा कृष्णा संधिमूर्द्धा स्थिजा रुजः॥ निर्भुग्न कलुषे नेत्रे कर्णौ शब्द रुगान्वितौ। प्रलापः स्रोतसां पाकः कूजनं चेतनाच्युतिः॥ स्वेद मूत्र पुरीषाणामल्पशः सुचिरात्सृतिः। सर्वजे सर्व लिंगानि विशेषं चात्रमे शृणु॥

विशेष लक्षण—नात्युष्णशीतोऽल्प संज्ञोभ्रांतपेक्षी हत स्वरः। खर जिह्वा शुष्क कंठः स्वेद विण्मूत्र वर्जितः॥ सास्रनिर्भुग्न हृदयो भक्त द्वेषी हतप्रभः। श्वसन्निपतितः शेते प्रलापोपद्रवायुतः॥ सन्निपात ज्वरं कृच्छ्रमसाध्यमपरे विदुः। निद्रोपेत मभिन्यासं क्षीणमेनं हतौजसम्॥ संन्यासगात्रं संन्यासं विद्यात्सवलिके ज्वरे। ओजो विस्रंसते यस्य पित्तानिल समुच्छ्रयात्॥ सगात्र स्तंभ शीताभ्यां शयने स्यादः चेतनः। अपि जाग्रत्स्वपंजतुस्तंद्रालुश्च प्रलापवान्॥ संहृष्ट रोमास्तस्तागों मंद संताप वेदनः। ओजोनिरोधनं तस्यजानीयात्कुशलोभिपक्। —(सु० उ० अ० ३९)

कफ की अधिकता से अभिन्यात्मक सन्निपात और वात-पित्त की अधिकता से एवं श्लेष्म के भाग (सोम्यधातु) ओज को नष्ट करते हैं उसे हतौजस सन्निपात कहते हैं।

अग्निसोमात्मक संसार होने के कारण सन्निपात ज्वर का मुख्यतया दो ही भेद किये गये हैं।

अर्थात्—सन्निपात ज्वर तीनों दोषों (वात-पित्त कफ) के दूषित सम्मिलन से होता है और जिनमें जिस दोष की प्रधानता रहती है उसमें उन्हीं दोषों के लक्षण दृष्टिगोचर होते हैं—अतः उसी की उल्वणता समझनी चाहिए। इसलिये भगवान् धन्वन्तरि; वाग्भट् एवं माधवाचार्य ने अलग-अलग उल्लेख नहीं किया है। परन्तु महर्षि चरक ने १३ प्रकार का उल्लेख किया है जो निम्न है—

वातोल्वण, पित्तोल्वण, श्लेष्मोल्वण, वात पित्तोल्वण, वात श्लेष्मोल्वण, श्लेष्म पित्तोल्वण, त्रिदोषो-

लवण, वाताधिकमध्यपित्तहीनश्लेष्मा, वातमध्य पित्ताधिकहीनकफ, वातहीनपित्तवृद्धकफमध्य, वाताधिकहीनपित्तमध्यकफ, वातमध्यपित्तहीनकफाधिक एवं वातहीनमध्यपित्तकफाधिक। इस तरह १३ का वर्णन आया है।

लेख के विस्तारभय के कारण उपरोक्त १३ का लक्षण पृथक्-पृथक् न देकर आंत्रिक ज्वर के आधुनिक कारणों पर ध्यान आकृष्ट करना आवश्यक है जो नीचे दिया जारहा है।

इस रोग का कारण एक प्रकार का जीवाणु है जो प्रायः अधिक रास्ता चलने से, अधिक उपवास करने से तथा दुर्गन्ध के समीप रहने वालों में, शरीर की रोग क्षमता शक्ति के घट जाने से जीवाणु उनके शरीर पर आक्रमण करके रोग का शिकार बनाता है। इस जीवाणु के आंत तक पहुंचने का मुख्य कारण दूषित अन्नपान ही बताया जाता है। यह रोगी के आंत्रिक व्रण, मूत्राशय, पित्ताशय, प्लीहा एवं रक्तादि में विद्यमान रहता है, जिससे रोगी के मल मूत्र तथा यदा-कदा स्वेद में उपस्थित रहता है। आन्त्रिक ज्वर से मुक्त होने के बाद ही कई दिनों तक रोगी के मल, मूत्रादि में यह जीवाणु देखा गया है। निम्न प्रकार से जीवाणु आहार द्रव्यों में जाकर रोग का कारण बनता है—

(१) रोगी के मल मूत्रादि से स्पर्श करने के बाद हाथ को साफ किये बिना भोजनादि करने से।

(२) मक्खी द्वारा, (३) रोगी के वस्त्र द्वारा, (४) दूषित मल नदियों द्वारा जाकर सम्पूर्ण जल को दूषित कर देता है (जल से) एवं (५) मल का शुष्क कण भी संभवतः खाद्य पदार्थों तक पहुँच सकता है।

भेद—

जीवाणुओं में भेद होने के कारण इसका भी नम्न भेद किये गये हैं—

(१) आंत्रिक ज्वर (Typhoid fever)

(२) लघ्वांतरिक ज्वर (Para-Typhoid fever) (क)

(३) „ „ („ „ „) (ख)

(४) „ „ („ „ „) (ग)

(५) „ „ („ „ „) (घ)

सम्प्राप्ति—

यह निर्विवाद सिद्ध है कि इनके जीवाणु प्रायः मुख द्वारा आंत्र में जाकर उसको अपना केन्द्र बनाते हैं उसके बाद समीपस्थ लसीका ग्रन्थियों को शोथमय कर देते हैं। यह शोथ धीरे-धीरे बढ़कर दूसरे सप्ताह में व्रण (अलसक) का रूप धारण करता है और व्रण के बढ़ने से समीपस्थ रक्तवाहिणी के फट जाने से रक्तश्राव होने लगता है। इस समय यदि आमदोष उपस्थित रहे तो दोष बढ़कर लक्षण भी तीव्र हो जाता है। जीवाणु वृद्धि करके रक्त तक पहुंचता है जिसके मृत्यु से एक प्रकार का विष उत्पन्न होता है, जिसका बाह्य चिह्न ज्वर होता है।

पूर्वरूप—

शिरःशूल, अरुचि, मल विबन्धता, मन्द ज्वर, आलस्यता, धुंधलापन इत्यादि लक्षण १ सप्ताह तक बना रहता है।

लक्षण (प्रथम सप्ताह)—

ज्वर सहित पूर्वरूप ही प्रायः ८ वें दिन स्पष्ट हो जाता है एवं प्रतिदिन ज्वर का ताप सीढ़ी के समान बढ़ता जाता है। इस सप्ताह तक संध्या समय प्रायः शारीरिक तापमान १०२° फा० तक रहता है और सुबह में १००° फां० तक रहता है। शिरःशूल, अङ्गमर्द, अनुत्साह, ज्वराधिक्य, नाड़ी की गति मन्द, जिह्वांकुरता, कोष्ठबद्धता या अतिसार, पीड़ा, प्लीहा-वृद्धि आदि लक्षण के अतिरिक्त गात्र (विशेषतः उदर और जंघा) में रक्तवर्ण का गोलाकार चिह्न देखा जाता है जो गौरांग पुरुषों में अधिक साफ मालूम होता है। सबसे विचित्र तो यह है कि अतिसार रहने पर भी आध्मान बना रहता है।

द्वितीय सप्ताह—

इस सप्ताह तक ज्वर अपनी सीमा (१०४° और १०५° फा०) तक पहुँच कर स्थिर रहता है। प्रातः-कालीन तापमान १०२° फा० से कम नहीं होता है। पूर्व सप्ताह के लक्षण मौजूद रहते हैं। तन्द्रा, प्रलाप, प्रमूढ़ावस्था, दुर्बलता, कास, उरुशोथ आध्मान आदि लक्षण विशेष रूप से पाये जाते हैं। स्पर्श परीक्षा से जिह्वा खर स्पर्श मालूम होती है और वह किनारे से लाल अंकुर युक्त रहती है। शारीरिक तामपान ८ बजे दिन से बढ़कर ८-१० बजे रात्रि तक अपनी सीमा तक पहुंचकर पुनः प्रातः घटने लगता है। इसके विष के कारण रक्तचाप कम होने से हृदय में शिथिलता अनुभव होती है। रक्तश्राव होने का भय भी रहता है। विष एवं दोष तीव्रता के कारण मृत्यु भी होते देखा गया है।

तृतीय सप्ताह—

यदि दोष का पाचन हो चुका है तब इस सप्ताह में क्रमशः तापमान घटने लगता है। ज्वर के साथ-साथ उपद्रव भी घटने लगते हैं। २२ वें दिन प्रायः रोगी ज्वर रहित होजाता है। शाम को तापमान कुछ बढ़ता है जो २८ वें दिन तक ठीक हो जाता है। यह देखा जाता है कि इस समय ज्वर रहित होने पर भी मिथ्या आहार-विहारादि से दोष पुनःबढ़कर आरोह क्रम से क्रमशः ज्वर बढ़ता है और ४२ वें दिन मनुष्य ज्वरमुक्त होता है। किसी में ६५ दिन भी लग जाता है। अतः पथ्यादि व्यवस्था में काफी सावधानी रखनी चाहिये।

योगरत्नाकर आदि ग्रन्थों में मंथरज्वर करके लक्षण आया है जो लघ्वान्तरिक ज्वर से मिलता जुलता है। आधुनिकों के मतानुसार दोनों में निम्न भेद बताया गया है।

विभेदक लक्षण—

मंथर ज्वर	आंत्रिक ज्वर
(१) यह भारत, मिस्र आदि देशों में अधिक होता है।	(१) यह यूरोप में अधिक होता है।
(२) प्रायः १५ वर्ष की आयु तक विशेष होता है।	(२) प्रायः १५ से २५ वर्ष तक की आयु में अधिक होता है।
(३) एक बार होने के बाद पुनः हो सकता है।	(३) एक बार होने के बाद शरीर में प्रतिविष उत्पन्न होता है जिससे आंत्रिक ज्वर पुनः नहीं होता।
(४) आंख मीचे तन्द्रावस्था में रोगी प्रायः पड़ा रहता है।	(४) निश्चित नहीं कि रोगी आंख मूंदे पड़ा रहे।
(५) प्रायः मल बद्धता रहती है और ज्वर के अन्त में मल मलीन रङ्ग युक्त निकलता है।	(५) अतिसार, आटोप और रक्तश्राव प्रायः होता है।
(६) गर्दन पर मुक्तावत दाने निकल आते हैं जोप्रायः इसके आराम होने का चिह्न है।	(६) लाल चकत्ते उदर और वक्षस्थल पर निकलते हैं जो दबाने से समाप्त होजाते हैं। यह चकत्ते ७ से १२ वें दिन के अन्दर स्पष्ट होते हैं।
(७) यकृत वृद्धि।	(७) प्लीहा वृद्धि।

सन्निपात ज्वर की चिकित्सा—

सन्निपात ज्वर की चिकित्सा पर काफी सतर्क होकर विचार करना होगा और तब फिर इसकी चिकित्सा में पूर्वोक्त लंघनादि के पश्चात् इन पर ध्यान देते हुए चिकित्सा शुरू करे।

वर्धनेनैक दोषस्य क्षपणेनोच्छ्रितस्य वा।
कफस्थानानुपूर्व्या वा सन्निपात ज्वरं जयेत् ॥
(च० चि० अ० ३३)

अर्थात्—एक दोष को बढ़ाकर बढ़े हुये दोषों को घटा कर अथवा श्लेष्म स्थान के अनुक्रम से चिकित्सा करे। और दोष जब वृद्ध, वृद्धतर, वृद्धतम हो या क्षीण हो तो उस अवस्था में वृद्ध दोष को बढ़ाते हुये वृद्धतर और वृद्धतम दोष को घटाना भी आवश्यक है यथा कफ वृद्ध हो, वात पित्त क्रमशः वृद्धतर या वृद्धतम हो तो मधुर द्रव्य दे। इसी तरह जब कफ वृद्ध हो और वात पित्त दोनों वृद्धतर हों तब भी मधुर द्रव्यों का उपयोग करे। क्योंकि मधुर रस यदि कफवर्द्धक है, तो वात पित्त को क्षीण करने वाला है। यदि तीनों दोष बराबर हैं तो पहले कफ स्थान की चिकित्सा करे। कफ स्थान से कफ का भी ग्रहण हो जाता है। अतः स्थानीय दोष की अपेक्षा स्थान मुख्य है। जैसा कि—"स्थानं जयेद्धिपूर्वम्"। लंघन आदि के द्वारा ही आमाशय एवं कफ की चिकित्सा करे। क्योंकि दोष आमाशय को दूषित कर ज्वर उत्पन्न करता है। और फिर उसके बाद क्रमशः पित्त एवं वात की चिकित्सा करे।

सन्निपात ज्वरे पूर्वं कुर्यादाम कफापहम्।
पश्चात् श्लेष्मणि संक्षीणेशमयेत्पित्त मारुतौ ॥

ज्वर के अतिरिक्त सन्निपातों में यह क्रम नहीं होता है। वहां पहले वात और पित्त एवं बाद में कफ की चिकित्सा करते हैं। क्योंकि—

वातस्यानुजयेत्पित्तं पित्तस्यानुजयेत्कफम्।

एकोल्वण सन्निपातों में सनद्ध एक दोष को कम करके एवं जो क्षीण है उसे अल्प वृद्धि क्रमशः चाहिये।

"न्यूनैक दोषसवृद्धिरेकवृद्धिजयोऽपि।
सन्निपाते पृकत्तंव्यः सन्निपात,वचेन तु ॥

कई टीकाकारों ने पश्चात् पदलोपी समास करके कफ स्थान का अर्थ पित्त करते हैं (कफ स्थान (आमाशय) रूप है स्थान जिसका अर्थात् पित्त) यहां पर एकस्थान पद का लोप हो चुका है। उसके कथनानुसार पूर्व पित्त की चिकित्सा करनी चाहिये। जिसके प्रमाण स्वरूप सुश्रुत की निम्न पंक्तियों को देते हैं—

शमयेत्पित्तमेवादौ ज्वरेषु समवायिषु।
दुर्निवारतरं तद्धि ज्वरार्तेषु विशेषतः ॥

चक्रपाणि के मतानुसार सुश्रुत का यह वाक्य जीर्ण त्रिदोष ज्वर के लिये समझना चाहिये। परन्तु यदि नव ज्वर हो तो पहले कफ स्थान की ही चिकित्सा होनी चाहिये।

अनेक विद्वान् 'वर्धनेनैकदोषस्य' में वर्धन का अर्थ छेदन करते हैं। (छेदन से अभिप्राय संशोधन से है) अर्थात् एक एक दोषों का नाश संशोधन द्वारा करना चाहिये। यदि किसी कारण से संशोधन न हो सके तो प्रवृद्ध दोष का संशमन करे।

वृद्ध दोष सन्निपातों की भांति क्षीण दोष सन्निपात भी तेरह प्रकार के होते हैं। परन्तु यह ज्वर का आरम्भक न होकर सिर्फ अपने लक्षणों का त्याग रूप विकार को करता है। जैसा कि वचन भी है क्षीणाजरति लिङ्गस्वम्" जिसकी चिकित्सा का उल्लेख करना आवश्यक नहीं है। एक सन्निपात वह होता है जिनमें अलग अलग दोषों की युगपत् वृद्धि और क्षय होता है जो १२ प्रकार के होते हैं। इनमें से छः में समदोष की चिकित्सा की जरूरत नहीं है शेष एक क्षीण और एक वृद्धतर रह जाता है। इसमें से वृद्ध दोष को उस औषध द्वारा कम करना चाहिये जिससे साथ-साथ क्षीण दोष का क्रमशः उपचय हो। "क्षपणेनोच्छ्रितस्य" द्वारा ही पहले इनकी चिकित्सा कहदी है। इसी तरह शेष ६ जिनमें दो वृद्ध, एक क्षीण और एक वृद्ध हो दो क्षीण हैं, उनमें वृद्ध दोष व दोषों को घटाते हुए चिकित्सा

की जाती है और उसके साथ साथ क्षीण दोष वा क्षीण दोषों को क्रमशः प्रकृति में लाना होता है।

क्षीण दोष सन्निपात एवं युगपत् वृद्ध क्षयकृत सन्निपातों की चिकित्सा का प्रकरण नहीं रहने से इसकी चिकित्सा का वर्णन नहीं किया जाता है। क्यों कि इन २५ सन्निपातों का ज्वरोत्पादक रूप में लेना व्यर्थ है। ये क्षीण और समज्वर के उत्पादक नहीं होते हैं, परन्तु वृद्ध दोष वा दोषों के साथ विशेष लक्षण हो सकते हैं, पर वहीं पर वृद्ध दोष वा दोषों की चिकित्सा से ही लाभ हो जाता है। उनमें विशेषतः एक दोषज द्विदोषज ज्वर चिकित्सा ही की जाती है।

सन्निपात के ज्वर के अंत में (कर्णमूल में) दारुण शोथ हो जाता है जो असाध्य है। फिर भी उसकी चिकित्सा का उल्लेख किया जाता है।

ज्वर के अंत में कर्णमूल में शोथ होजाने पर शीघ्र ही जलौकापात आदि द्वारा रक्तावसेचन, घृत-पान, कफपित्तनाशक प्रदेह, नस्य और कवल धारण द्वारा उसकी चिकित्सा करे। यथा—

रक्तावसेचनैः शीघ्रं सर्पिष्पानैश्च तं जयेत्।
प्रदेहैः कफपित्तघ्नैर्नावनैः कवलग्रहैः॥
(च. चि. अ. ३)

"अंशांश यत्र दोषाणां विवेक नैवशक्तनुपात किंवा साधारण विदध्यान्तु चिकित्सकः"—अतः ज्वर के सामान्य चिकित्सा सूत्र को ध्यान देते हुये रोगी के दोषों पर अंशांश कल्पना का विचार करते हुये पाचन कषाय का व्यवहार सर्वप्रथम रोगी को कराना चाहिये।

यथा पाचन कषाय—सोंठ, देवदारु, रोहिष, कंटकारीद्वय आदि को पाचन कषाय के लिये व्यवहार करे।

ज्वर में जल व्यवस्था पर भी ध्यान देना है जो प्रायः उष्ण जल दिया जाता है। यथा—ज्वरितस्य-काय समुत्थान देश कालानभिसमीक्ष्य पाचनार्थं-पानीयमुष्णं प्रयच्छान्ति भिषजः। ज्वरोध्यामाशय-समुत्थः प्रायोभेषतानि चामाशय समुत्थानां विकाराणां पाचन शमनाय तर्पण समर्थानि भवन्ति पाचनार्थं च पानीयमुष्णं तस्मादेव ज्वरितेभ्यः प्रयच्छान्ति भिषजो भूयिष्ठम् (च० वि० अ० ३)। रक्तातिसार यदि हो तो ह्रीवेरादि क्वाथ और मुक्तापिष्टी का व्यवहार करावे। प्रलापावस्था को दूर करने के लिये तगरादि क्वाथ, बृ० वातचिन्तामणिरस, प्रवालभस्म आदि का व्यवहार करावे। मलावरोध में देवदार्व्यादि लेप और क्वाथ का प्रयोग करावे। हृदयशूल और शिरःशूल में प्रवालभस्म, शृङ्गभस्म, गोदन्ती भस्म, मौक्तिकभस्म, शिरोवज्ररस देना ठीक है। मूत्रकृच्छ्र-नाशार्थ क्षार पर्पटी का प्रयोग अच्छा रहता है। सिद्धप्राणेश्वर रस उष्णोदक से व्यवहार कराने पर ताप को कम करता है। बृ० कस्तूरीभैरव रस, सन्निपातभैरवरस आदि का भी व्यवहार युक्ति-संगत है।

आंत्रिक ज्वर का सामान्य चिकित्साक्रम ऊपर बताया जा चुका है। जिसमें चिकित्सक रोगी की अवस्थानुसार परिवर्त्तन और परिवर्द्धन कर सकते हैं। तृष्णा को दूर करने के लिये षडङ्ग पानीयम "मुस्तपर्पट कोशीरचन्दनोदीच्यनागरैः। शृतशीतं जलंदद्यात्पिपासा ज्वरशान्तये"—अर्थात् नागर-मोथा, पित्तपापड़ा, खस, चन्दन, सुगन्धवाला, एवं सोंठ को उबाल कर ठण्डा करके तृष्णा और ज्वर शांति के लिये दे। नीचे पथ्यव्यवस्था का उल्लेख कर फिर आधुनिक एलोपैथिक चिकित्सा पर विचार करेंगे।

पथ्यव्यवस्था—उष्णोदक, जवासा, कटेरी तथा गोखुरु के क्वाथ से पकाई हुई पेया अथवा दशमूल से सिद्ध किया हुआ मंड का व्यवहार करे, और अग्नि के बलाबल के अनुसार लाव, तीतर, बटेर, बतक, खरगोश आदि का मांस दे।

पाश्चात्य चिकित्सक भी दो तरह से इसकी चिकित्सा करते हैं। प्रथम रोग प्रतिषेधात्मक और दूसरा रोगोन्मुलनात्मक।

प्रतिषेधात्मक—

रोग का तत्काल निर्णय करने के बाद रोगी को किसी अस्पताल में अलग कर दें, अगर किसी कारण से अस्पताल तक न जा सके तो मकान में ही उसको पृथक करके रखना आवश्यक है। कमरे से अनावश्यक वस्तुओं को हटा देना चाहिए। रोगी को मकान के एक स्वच्छ हवादार और अन्य भागों से दूर स्थित कोठरी में स्थान देना चाहिये। रोगी के वमन मल श्लेष्म और वस्त्र इत्यादि की ओर विशेष ध्यान देना चाहिये। क्योंकि रोग के विस्तार में ये मुख्य कारण हैं। अतः वमन मल इत्यादि के लिये अलग-अलग वर्तन रखदें जिसमें रसकपूर या कारबोलिक अम्ल का विलयन रहे। जिन वस्त्रों का प्रयोग रोगी करता हो उन्हें २४ या ४८ घण्टे तक विसंक्रामक द्रव्यों में भिगो कर उबलते हुये जल में धो डालें। रोगी के वर्तनों को एवं उसकी कोठरी और समीपस्थ क्षेत्रों को बराबर साफ रखना चाहिए।

रोग को रोकने के लिये महाशय राइट और सैंपिल द्वारा आविष्कृत सूची का प्रयोग किया जाता है, जिसमें प्रथम वार ०·५ c.c. और दूसरी वार १ c.c. देते हैं।

रोगोन्मुलनात्मक—

रोगी के रक्त को निकाल कर विडाल परीक्षा द्वारा Bacillus Typhosus नामक रोग के जीवाणु का दर्शन किया जाता है। परन्तु इस परीक्षा के द्वारा रोग आक्रमण के करीब दो सप्ताह वाद जीवाणु का दर्शन होता है।

आज से तीन-चार साल पूर्व से Chloromycetin नामक दवा के आविष्कार से आधुनिक चिकित्सकों के लिये इसकी चिकित्सा कुछ आसान है। रोग निर्णय के पश्चात् क्लोरोमाइसेटिन १ कैप्सुल के रूप में ६ मात्रा नित्य व्यवहार करने से दो-तीन दिन में ज्वर उतर जाता है और रोगी अपने को आराम अनुभव करने लगता है। अस्तु नीचे कुछ एलोपैथिक दवाओं का नाम दिया जाता है जो अवस्थानुसार व्यवहार में लाई जाती हैं।

१—टर्पेन्टाइन १० बूंद कैप्सुल में, २-३ मात्रा दें जो रक्तस्रावरोधक है।

२—पल्वइपीकाक १२ ग्रेन की दो मात्रा यह अनिद्रा एवं प्रलापनाशक है।

३—सिनेमन आइल — ३ से ५ बूंद
जल — १ औंस
—ऐसी ४–५ मात्रा। यह आध्मान को दूर करता है।

४—सोडाबाईकार्व — ५ ग्रेन
लाइकर पोटेशाई — १० बूंद
सैकेरीन — १ ग्रेन
लवङ्ग तैल — २० बूंद
जल — १ औंस
—दिन में ३-४ मात्रा के सेवन से मल ढीला होकर निकलता है।

रक्तमिश्रित प्रवाहिका को दूर करने के लिये निम्न औषधों का व्यवहार किया जाता है।

१—पिलुला प्लमबाई कम ओपियाई २ से ४ ग्रेन की १ गोली, ऐसी ३ मात्रा।

२—विस्मथ कार्व — ५ ग्रेन
कैल्शियम लैक्टेट — १० ग्रेन
स्पि० क्लोरोफार्म — १० ग्रेन
सोडाबाई कार्व — ५ ग्रेन
जल — १ औंस
—३ मात्रा दिन में।

३—टेनिक एसिड — १० ग्रेन
स्पि० टर्पेन्टाइन — १० बूंद
टि० क्लोरोफार्म को० — १५ बूंद
टि० ओपियम — १० बूंद
आयल मैंथपिप — ४ बूंद
जल — १ औंस
—इसकी ६ मात्रा बनावें। इसके सेवन से रक्तश्राव दूर होता है।

(शेषांश पृष्ठ १२३० पर)

श्वसनक ज्वर की सफल चिकित्सा

लेखक—वैद्य पं. रेवाशंकर शर्मा, आरोग्य मन्दिर, रटलाई (झालावाड़)

रोगी का नाम—बाबूलाल, जाति-गूजर,

आयु २५ वर्ष

इसी वर्ष की घटना है, १३ फर्वरी को लगभग १० बजे मैं अपने चिकित्सालय में बैठा, रोगियों को औषध वितरण कर रहा था कि, यकायक एक युवक पसीने से तर हांफता हुआ बिना कुछ बोले, रोगियों को धक्का देते हुये मेरे समक्ष, जूतों सहित ही आ खड़ा हुआ। उसकी आकृति से विदित था कि किसी विशेष परिस्थितिवश वह एसा कर रहा था। नम्र वाणी में कहा "आप मेरे गांव तक चलिए, मेरा भाई बहुत बीमार है, बचने की कोई आशा नहीं। मैंने धैर्य बंधाते कहा "भाई! इन उपस्थित बीमारों को निबटाने बाद आता हूं। तुम चलो मैं साइकल से आता हूं। शीघ्रता से कार्य से निवृत्त हो चला। और जाकर रोगी को देखा।

रोगी की दशा

रोगी संज्ञाहीन, नथनों से बहुत जल्दी जल्दी आवाज के साथ सांस जारी। नेत्र बंद, मुख खुला हुआ, मुख से श्वास प्रश्वास क्रिया जारी थी, दोनों नथनों में, कफ रक्तमय भरा हुआ, सूख जाने के कारण, शब्दयुक्त श्वास आता था। यही दशा ओष्ठ व मुख की थी। रोगी प्रलाप करता हुआ कभी खांसता और गुनगुनाता। कभी उठ उठ भागने का प्रयत्न करता, थोड़ी थोड़ी देर से खांसी आती और वह पार्श्वों की ओर हाथ लाने की चेष्टा करता, खांसी लम्बी रहती। रजाई उठाकर देखा तो अति द्रुत गति से श्वास क्रिया जारी थी। ध्यानपूर्वक देखने से विदित हुआ कि दाहिना पार्श्व कुछ कम ऊपर उठता है और आगे की ओर उभरा हुआ है।

स्पर्शन—स्पर्श करते ही मुझे बड़ा तीव्र ज्वर मालूम हुआ, तापमापक यंत्र द्वारा देखने पर १०५·९० था, Pulse १२५ प्रति मिनिट, श्वास की गति प्रति मिनिट ५०, अनुपात १:२·५ था नाड़ी तीव्र भरी हुई थी। जिह्वा कर्कश, विवर्ण-युक्त थी। तथा रक्त से आवेष्ठित थी। मुख से घर्षण शब्द जारी था कण्ठ कूंज रहा था।

ठेपन—अधिक ठोस था।

श्रवन—घर्षण शब्द स्पष्ट था। प्रलाप जारी था।

प्रश्न—परिचारकों से प्रश्न किया तो विदित हुआ कि सर्व प्रथम ४ दिन पूर्व खूब पतले पतले दस्त आये, तत्पश्चात् तीव्र ज्वर फिर खांसी जोरदार होगई और धीरे धीरे अब यह स्थिति है। मल मूत्र, प्रवृत्ति वैषेयिक प्रश्न पर उत्तर मिला कि आज ही संज्ञाहीन स्थिति में मूत्र व मल त्याग किया था।

निदान—मुझे निम्न श्लोक का ध्यान हो आया।

"संहत्या तुङ मूलतः फुपफुस्याऽसव्येपार्श्वो स व्यतोवाद्वयोर्वा।
जिघांसन्तिश्वासयन्त्र विषोरया वोषास्तस्माच्छ्वासकष्टज्वरः

तत्पश्चात् ध्यान से विचार करने पर निम्न श्लोक का ध्यान कर रोगी की स्थिति से तुलनात्मक दृष्टि-पात किया।

> पार्श्वार्तिः श्वासकासौ च क्वचित् कम्पोऽवसन्नता।
> प्राग्रूपमाहुर्निपुणा प्राय श्वसनके ज्वरे॥
> प्राकप्रायः शीतमरयर्थं ज्वरस्तत्रोऽरुचिस्तृषा।
> पार्श्वशूल मयो कासः श्वास वृद्धि क्रमेण च॥
> कासतः शोणितं श्यावं मुहुः सांद्रं प्रवर्तते।
> श्वसतो नासिका पार्श्वौ स्फूज्जतश्च निरन्तरम्॥
> स्वेदो ललाटे गात्राणि भृशं स्विद्यति चानिशम्।
> गौर सर्षपवत् स्वेद पिड़िकोच दर्शनम्॥
> दौर्बल्यं सदनं मोहः प्रलाप कण्ठकूजनम्।
> परुषा कर्कशः जिव्हा मलिना च भवेद भृषम्॥

वमनि युग्मलामेति कोमलां स्थूल चंचलः।
यावन्न ज्वर मुक्ति स्याद ज्वरं मुक्तेन्तरम्॥

साध्यासाध्य विचार करने पर निम्न श्लोक से सहायता ली।

एकतः फुफ्फुसे दुष्टे ज्वरेऽतीव्रे स्थित बले।
सम्यक् पावन्य लदेध मन्तव्या सुख साध्यता॥
स्वेदे श्रम ज्वरस्तीव्रो वृद्ध क्षीणोऽथवातुरः।
पाद भयस्य संपत्या सतु जीवेत कदाचनः॥

अब निदान हुआ कष्टसाध्य "श्वसनक ज्वर"

चिकित्सा क्रम

सर्व प्रथम सुखोष्ण, वायुमय, झोपड़ी के बाहर के भाग में लिटाया, वस्त्रादि की समुचित व्यवस्था की। तत्पश्चात्, उसके मुख नासिका में लगे हुये कीचड़ को शुद्ध कराया। रोगी के आस-पास थोड़े नीम के पत्तों को जलवाया ताकि वायु शुद्ध हो। पश्चात् निम्न व्यवस्था की।

इन्जेक्शन—(१) **Penicilline (Sodium salt)** 2 **Lakh Unit** मांसपेशीगत २४ घंटे में एक बार।

(२) **Coramine 1 Ampule** २४ घंटे में एक बार मांसपेशीगत।

(३) **Adrenal Effedrine, 1 Ampule** २४ घंटे में एक बार मांसान्तर्गत।

अन्तः प्रयोगार्थ—(१) त्रिभुवनकीर्ति रस १ रत्ती
(२) वृहत् कस्तूरीभैरव रस १ गोली
(३) शृङ्गभस्म ३ रत्ती
(४) स्वर्ण चन्द्रोदय १ रत्ती

ऐसी १ मात्रा प्रति ४ घंटे में, बबूलादि स्वरस, अद्रख स्वरस एवं मधु से, तथा—

प्रति ६ घंटे के अन्तर से–हिंगुकर्पूर वटी, १-१ गोली तगरादि क्वाथ से।

मर्दनार्थ (बाह्य प्रयोग)—मल्ल तैल, सरसों का तैल ऊपर रुई पार्श्वों पर बांधने को।

पीने का जल – सुखोष्ण।

भोजन—गेहूं के आटे की पेया।

यथोऽचित निर्देश देकर आ गया। दूसरे दिन प्रातः वही युवक (परिचारक) मुंह पर मुस्कान लिए चिकित्सालय में आया। वह कहने लगा स्थिति कुछ ठीक है फिर आप चलेंगे और देख ही लेंगे।

मैंने देखा तो लगभग २४ ही घंटे में—

ज्वर, १००-२० **Pulse**-१०४, श्वास–३५, रोगी चैतनावस्था में था, अब उठ-उठ कर भागना बिलकुल नहीं, रक्तप्रवृति नहीं, केवल कफ से मिश्रित आता था। कफ अब टूटने लग गया, कण्ठ कूंजन बन्द था, प्रलाप में काफी अन्तर हो चुका था। इस आश्चर्यजनक स्थिति से मुझे संतोष हुआ। पार्श्व पीड़ा, अनिद्रा व कास की अधिक शिकायत रोगी के परिचारकों ने की।

मैंने वही क्रम चालू रखा, केवल उपरोक्त योग में ब्राह्मी वटी १ प्रति मात्रा और बढ़ा दी, शेष पूर्ववत् व्यवस्था के अतिरिक्त शयन कास गोजिव्हादि क्वाथ १ तोला, और देने का निर्देश किया। २ दिन वही क्रम जारी रखा, किन्तु, स्थिति में कमअन्तर प्रतीत हुआ। मैंने, पुनः दूसरी व्यवस्था की :—

निमोनिया प्रकाश (र. त. सा. कालेड़ा-बोगला द्वि० खण्ड)	१ गोली
केशरादि वटी (ज्वर)	½ रत्ती
त्रिभुवनकीर्ति रस	१ रत्ती
शृङ्गभस्म	४ रत्ती
वांसा क्षार	२ रत्ती

—मधु अदरख स्वरस से।

ऐसी एक एक मात्रा ४-४ घंटे बाद।

हिंगुवटी तगरादि क्वाथ से पूर्ववत्, शयनकाल गोजिह्वादि पूर्ववत्। इजेक्शनादि पूर्ववत्।

मर्दनार्थ—मल्लतैल तथा **Antiflamine** का

प्लास्टर चढ़ाया, भोजन पथ्य वैसा ही।

२ दिन यह क्रम चालू रखने पर, रोगी को केवल 'कास' की शिकायत ही शेष रही, मलावरोध की शिकायत हुई, मैंने व्यवस्था विना अन्तर किये, ग्लिसरीन की Anema (वस्ति) देकर प्रस्थान किया। २ दिन बाद ही, रोगी को पर्याप्त लाभ हो गया। अब केवल सामूली 'कास' प्रातःकाल रहने लगा। शेष सभी बातें ठीक रहीं, अब निम्न व्यवस्था आवश्यक समझ कर प्रयोग की।

प्रातः-सायं—कफकुठार रस २ गोली
शृङ्गभस्म २ रत्ती
लोहभस्म २ रत्ती
अभ्रकभस्म (शतपुटी) १॥ रत्ती
वसंतकुसुमाकर रस १ रत्ती

—च्यवनप्राशावलेह १ तोला में मिलाकर, ऊपर से ताजा दुग्ध।

भोजन से पूर्व—विड् लवण १ माशा
अदरख स्वरस २ माशा

भोजनोत्तर—शंखवटी आचूषणार्थ।

शयनकाल—गोजिह्वादि क्वाथ।

पथ्य में—गेहूँ की रोटी मूंग की दाल के साथ देना आरम्भ किया, भोजन के प्रथम ग्रास में, हिंग्वाष्टक चूर्ण १ माशा देने को निर्देश किया।

६ दिनों में ही रोगी पूर्णतः स्वस्थ हो गया, कमजोरी भी विशेष नहीं रही। धीरे-धीरे पथ्य में ही अन्तर कर चिकित्सा मुक्त किया। इस प्रकार ऐसा कष्टसाध्य रोगी कुल ११ दिन में पूर्णतया स्वस्थ हो गया।

(१) लेख विस्तार भय से डरकर भी मैं पाठक वृन्द से निवेदन करता हूं कि, अपनी कष्टसाध्य चिकित्सा यथाक्रम पत्र में प्रकाशित होने से वैद्यसमाज में संगठन होगा और विचारात्मक संगठन ही हमें प्रगति के पथ पर ले जा सकता है।

(२) इसमें अधिकांश औषधियां 'धन्वन्तरि कार्यालय की ही निर्मित थीं जो विश्वस्त साबित हुईं यह कहते मुझे तनिक भी संकोच नहीं।

(पृष्ठ १२२७ का शेषांश)

रक्तस्रावरोध के लिये Morphine इञ्जैक्शन की सूची ⅙ ग्रेन की मात्रा में त्वचागत व्यवहार करना चाहिए। इसके अतिरिक्त कैलसियम लैक्टेट १ गोली मिलाकर ३-४ मात्रा देने से रक्तस्राव दूर होता है।

हृदयावसाद को दूर करने के लिये 'स्ट्रिकनीन' सूची के रूप में त्वचागत व्यवहार किया जाता है। इसके अतिरिक्त ग्लुकोज, कैलशियम विथ विटामिन बी. और एण्टी-टाइफाइड सीरम का सूची के रूप में चिकित्सक अवस्थानुसार व्यवहार करते हैं।

दो यकृत रोगी

(लेखक-वैद्य मोहरसिंह यादव, मिश्री-निवासी, डालमिया दादरी)

अनेकों यकृत तथा प्लीहा रोगियों में से केवल यहां दो का ही वर्णन किया जायगा। दोनों रुग्ण भिन्न भिन्न लक्षणों से युक्त देखने में आए अतः दोनों का ही वर्णन कर देना उपयुक्त समझता हूँ।

नाम रोगी:-चन्द्र, आयु-१५ वर्ष,

व्यवसाय—विद्यार्थी रोग काल—१॥ वर्ष

लक्षण—

पेट तना हुआ रहता था, थोड़ा सा भोजन करने पर भी पेट भरा सा प्रतीत होना, भोजनोपरान्त पेट फूल जाना, हर समय वेदना रहना, मुख का स्वाद फीका, मलावरोध, परिश्रम करने, व चलने फिरने पर वेदना, शिरःशूल, वमन, शरीर का वर्ण श्वेत पीताभ, कभी कभी रात्रि के समय ज्वर भी आता था। यकृत बढ़ा हुआ था, मूत्र घोर पीले रंग का, मूत्र में नीचे कुछ मल सा जम जाता था, दायें स्कन्ध में वेदना, जिह्वा हरियाली मायल पीली तथा मल से लिपटी हुई, जिह्वा पर श्वेत लेप सा किन्तु अग्र भाग में लाली, मल का रंग मटमैला व हरित वर्ण का, मल का वेग मालूम होना किन्तु मल साफ नहीं होता था।

चिकित्सा—

प्रातः काल—माण्डूरभस्म ६ माशा, यकृतप्लीहारि लोह १ तोला दोनों को मिलाकर ३-३ रत्ती की मात्रा में गोमूत्र से दें। (इससे दस्त साफ आयेगा और दो-चार दस्त काले काले से आयेंगे)

भोजनोपरान्त—कुमारी आसव+अमृतारिष्ट समभाग पानी मिला २ तोले की मात्रा में दें।

सायं काल—फिटकरी का फूला, सोहागे का फूला, गिलोयसत्व, लोहभस्म, शंखभस्म १-१ तोला एलवा तथा शुद्ध गन्धक २-२ तोले।

सोडा बाई कार्ब	१ तोला
नौसादर	१ तोला
सैन्धा नमक	२ तोले
काली मिरच	१ तोला
काला नमक	१ तोला
हींग शुद्ध	६ माशा

—को नीम्बू के स्वरस में घोट कर सुखा लें, फिर घृत कुमारी के स्वरस में एक दिन खरल करके मटर प्रमाण गोलियां बनालें यह है "यकृत हितैषी बटी"।

मात्रा—यकृत हितैषी वटी एक गोली तथा सुवर्ण वसन्त मालती १ रत्ती मिला कर गरम जल के साथ दें।

भोजनोपरान्त—लोहासव+पुनर्नवासव दें।

हर तीसरे दिन विटामिन बी. कम्पलेक्स १ सी. सी. लीवर एक्सट्रेक्ट १ सी. सी. मिलाकर गहरे मांसान्तर्गत (नितम्ब प्रदेश में) दें।

अपथ्य—गुड़ तथा तैल के बने पदार्थ, आलू आदि गरिष्ठ पदार्थ, दीर्घ पाकी वस्तुओं से परहेज करायें। मांस अण्डा मछली मधुर एवं स्निग्ध आहार से बचें, उड़द अरवी कचालू भिंडी न खाने दें। गरम मसाला, लाल मरिच, बैंगन, दूध (भैंस का) दही, मक्खन प्याज तथा चाय न खाने को दें। अधिक शीतल एवं ठण्डा जल से भी बचायें।

पथ्य:—अनार अंगूर सेब (छिलका उतार कर) नाशपाती आदि फल देवें। हरी तरकारियां, ताजे फल, पतले तथा शीघ्रपाकी आहार दें। मूंग की नरम खिचड़ी।

रोटी में सोड़ा तथा नमक (सैंधा) मिलाकर देवें। बकरी का शोरबा (मांस रस) भी दे सकते हैं। किन्तु इस शोरवा में घी नहीं हो, जीरा आदि मसाले डाल सकते हैं।

एरण्ड कर्कटी (पपीता) मूली तथा अंजीर विशेष लाभदायक हैं। भोजनोत्तर सेवन करायें। ऊंटनी का दुग्ध भी इस रोग में हितकर है।

गेहूं का पतला दलिया, अरहर की दाल, साबूदाना की खीर चपाती नरम हल्की, पालक आदि दें।

अधिक शोथ होने पर यह लेप भी कर दिया जाये:-

मुरमुकी (बोल) अफसतीन, चिरंजासिफ, नागरमोथा, वालछड़, नाखूना, सूखी मकोय, बाबूना के फूल ३-३ माशे, जदवार, रसवत २-२ माशे को हरे मकोय के रस में पीस कर सुहाता सुहाता लेप करें। (गुरु-प्रदत्त)।

दोनों प्रकार के विकार पर—

कैलीम्यूर ३× विचूर्ण को ओलिव आयल (Olive oil) में मिला कर मालिश करें या—

कार्डुअस मेरी० मूलार्क १ औंस, ओलिव आयल १ ड्राम मिला कर दिन भर में ३-४ वार मालिश करें।

(२)

नाम रोगी—हरि, आयु—२० वर्ष व्यवसाय—कृषि, रोग काल—२ वर्ष।

रुग्ण को लगभग ५-६ मास तक मलेरिया ज्वर आता रहा, काम की अधिकता के कारण आहार-विहार पर कुछ ध्यान नहीं दिया गया। अन्ततः ज्वर तो कृपा सी कर गया किन्तु यकृत विकृत होगया। रोगी कई डाक्टरों के पास भी गया किन्तु उन्होंने यकृत रोग होने से इन्कार कर दिया। इसी प्रकार रोगी कई मास तक इधर-उधर भटकता रहा। एक दिन वह हमसे मिला और सब बीती हुई बतलाई। पीतवर्णयुक्त अस्थि पिंजर मात्र शेष दीख रही थी। निम्न लक्षण देखने में आये—

(१) पेट में दर्द होता था किन्तु हर समय नहीं।

(२) हिलने-डुलने, चलने-फिरने की इच्छा प्रायः नगण्य थी।

(३) परिश्रम के नाम से थक जाता था।

(४) दायें पार्श्व में खिंचाव रहता था।

(५) कभी भी रोगी सीधा बैठ या खड़ा नहीं रह सकता था। अपितु बाईं ओर झुका रहता था।

(६) दायीं करवट सोने पर दर्द होता था।

(७) यकृत को हाथ से दबा कर देखने से असह्य वेदना होती थी।

(८) खांसते समय देह सुकड़ जाती थी, रुग्ण दायीं ओर झुक कर तथा हाथ से पार्श्व पकड़ कर ही खांस सकता था।

(९) थोड़ा सा भोजन करने पर भी वेदना एवं पेट फूल जाता था।

(१०) मलावरोध रहता था।

(११) कभी-कभी मन्द-मन्द ज्वर भी रहता था।

(१२) स्निग्ध पदार्थ खाने पर वेदना बढ़ जाती थी।

प्रथम तो हम भी डाक्टरों की रिपोर्ट देख कर चक्कर में पड़े किन्तु जब उपर्युक्त लक्षणों को देखा

—शेषांश पृष्ठ १२३४ पर

प्रसूता और घी

लेखिका—डा० कृष्णलता ओहरी

आजकल बहुत से लोगों की धारणा है कि प्रसव के पश्चात प्रसूता को घी का प्रयोग न कराया जाय, विशेषत: आधुनिक मत वाले इस विषय पर अधिक जोर देते हैं कि प्रसव में घी का प्रयोग हानिकर है। अपने प्रमाण की पुष्टि के लिये तर्क भी उपस्थित करते हैं "कि यह ठीक है घी रक्त को जो कि अशुद्ध होता है निकाल देता है लेकिन अशुद्ध रक्त के साथ-साथ वह शुद्ध रक्त को भी निकालता है और प्रसूता तो आगे भी दुर्बल होती है अग्निमन्द होने से वह घी को पचा नहीं सकती अतः प्रसूता को घी का प्रयोग न कराया जाय" उक्त कथन आरोग्य निकेतन के संचालक श्री राजेन्द्रप्रताप जी ने स्वर्गीय डाक्टर राजू की प्राकृतिक प्रसव पद्धति पर प्रशंसात्मक लेख लिखते हुये कहे। लेकिन यह कहां तक सत्य है क्या सचमुच प्रसूता के लिए घी का प्रयोग हानिकर होता है? अगर वह हानिकर है तो किस अवस्था में? अगर वह लाभप्रद है तो किस अवस्था में? यह एक विचारणीय विषय है। सब से पहले यह देखो कि प्रसव की कैसी अवस्था है कहीं प्रसव अकाल प्रसव तो नहीं जो स्त्री सुखपूर्वक नौ मास के पश्चात शिशु को जन्म देती है वह तो स्वस्थ प्रसव और काल-प्रसव हुआ अर्थात् समय पर प्रसव हुआ। जो तीन या चार मास में, सात मास में, इस प्रकार का प्रसव अकाल प्रसव कहा जाता है क्योंकि इन मासों में जन्म लेने वाला शिशु अपने जन्म समय से पूर्व ही किसी भी कारण से गर्भशय्या का उल्लंघन कर जाता है। जैसे चोट लगने से कच्चा फल गिर जाता है इस प्रकार की यह तीनों अवस्थायें यथा गर्भस्राव **Abortion** गर्भपात **Misscarriage** अथवा पूर्व प्रसव **Pribirth** अकालप्रसव की है। अतः देखना चाहिये कि किस अवस्था पर प्रयोग कराया जाये अथवा नहीं।

इसके लिये सबसे पहले दोषों की अशांश कल्पना करो, क्योंकि प्रायः प्रसव में और उसके पश्चात् वात की ही प्रधानता होती है शेष दोष भी रहते हैं अगर क्लेद अधिक तो नहीं क्योंकि आम गर्भ में क्लेदता अधिक होती है ऐसी अवस्था में घी का प्रयोग किसी भी प्रकार से लाभ नहीं करता, केवल घी ही नहीं इस अवस्था में किसी भी स्निग्ध पदार्थ का प्रयोग न करायें, क्योंकि घी के गुणों को देखने से वह मधुर रस वाला मधुर विपाक होने से कफ और मेद को बढ़ता है। अतः धातु तो पहले ही क्लेदित है और घी का प्रयोग करने से घी की स्निग्धता से और भी क्लिन्न हो जांयगें और वह पिच्छिल गुण के कारण अन्दर ही रह जांयगे, मार्ग को रोक लेंगे और दोषों का बहाव पूर्ण नहीं हो सकेगा, इससे प्रसूता को हानि होती है। इस अवस्था पर घी का प्रयोग न करायें लेकिन ठीक इसके विपरीत जब कि प्रसव सुखपूर्वक हो गया हो तो बलाबल को विचार कर उसे घी का ही प्रयोग करायें, प्रसव के पश्चात् और प्रसव में रक्त का स्राव होता है चाहे वह अशुद्ध ही होता है परन्तु प्रसूता को निर्बलता हो जाती है उसकी अग्नि मन्द हो जाती है। सबसे बड़ा कारण यह है कि उस समय प्रसूता में प्रायः वात की प्रधानता होती है और घी के प्रयोग न कराने से वह वात-रोगों से पीड़ित हो जाती है। प्रसूता के होने वाले रोग प्रायः कष्टसाध्य होते हैं। और घी अपनी मधुरता और स्निग्धता से वात को जीतता है और उन्माद अपस्मार मूर्च्छा गरविष, जीर्ण ज्वर, योनिशूल, कर्णशूल आदि वात रोगों को नष्ट करता है। इन रोगों में प्रायः वात की ही प्रधानता रहती है और प्रसूता में वात की ही प्रधानता रहती है, इस अवस्था में घी का प्रयोग न करने से इन रोगों के होने का सन्देह होता है अतः घी इस अवस्था में लाभप्रद होता है। अग्नि

दीपक गुण होने से अग्नि को बढ़ाता है, रुचिकारक होने से रुचि को बढ़ाता है, आयुर्वेद के प्राचीन ग्रन्थों पर दृष्टिपात करने से घी का प्रयोग सर्वत्र दिखाई देता है यथा चरक में—

"सूतिकां तु खलु बुभुक्षितां विदित्वा स्नेहं पाययेत्" । —च० शा०८ सूत्र ७७।

अतः प्रसूता को घी हानिकर होता तो कहीं पर किसी न किसी स्थान पर इसका उल्लेख अवश्य मिलता, क्योंकि ऋषियों की शैली थी कि वह गुणों के साथ-साथ दोषों का भी वर्णन करते थे, परन्तु सुश्रुत के वचनों से भी देखें कि वह भी घृत का प्रयोग यथा रीति से करने को कहते हैं—

धन्वभूमिजाता तु सूतिका घृत तैलयोरन्यतरस्य मात्रां पाययेत् । —सु० शा० १०।

इस प्रकार के उद्धरणों से स्पष्ट है कि प्रसव में प्रसूता को घी का निषेध नहीं है परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि बलाबल का विचार किये बिना ही घी का प्रयोग करायें, औषधियों से सिद्ध घृत का पान, अभ्यङ्गादि सब विधियों से प्रयोग करना चाहिये, यवागू सिद्ध करके देने का विधान है अतः प्रसूता को अवस्थानुसार घी हानिकर नहीं है और उसको घी का प्रयोग अवश्य कराना चाहिये।

पृष्ठ १२३२ का शेषांश।

तो विदित हुआ यकृत विकार है। कारण कि जिस प्रकार यकृत बढ़ता है उसी प्रकार सुकड़ भी जाता है। संकोचन की अन्तिमावस्था में यकृत में फोड़ा भी हो जाया करता है।

चिकित्सा—

महा मृत्युञ्जय रस १ तोला, लोहभस्म ६ माशा, नौसादर ६ माशा, सोडाबाई कार्ब ६ माशा, हींग ३ माशा, एलुवा १ तोला। सबको कूट-पीस मटर प्रमाण गोलियां बनाएं।

एक गोली प्रातः गोमूत्र से दें तथा एक गोली सायंकाल गरम जल से दें। भोजनोत्तर अमृतारिष्ट-कुमार्यासव समभाग जल मिलाकर दें।

सप्ताह में दो बार १० सी. सी. ग्लुकोज को १ सी. सी. कोरामीन में मिलाकर शिरान्तर्गत सूचिवेध किया गया।

विटामिन 'बी' कम्पलेक्स (टी. सी. एफ.) एक सी. सी. दस दिन तक दें। पथ्यापथ्य पूर्ववत्। मालिश एवं लेप वही जो पहले लिख दिये हैं।

इस प्रकार मैंने अनेकों रुग्णों की चिकित्सा की है जो अनुभव हुआ वह समर्पित है।
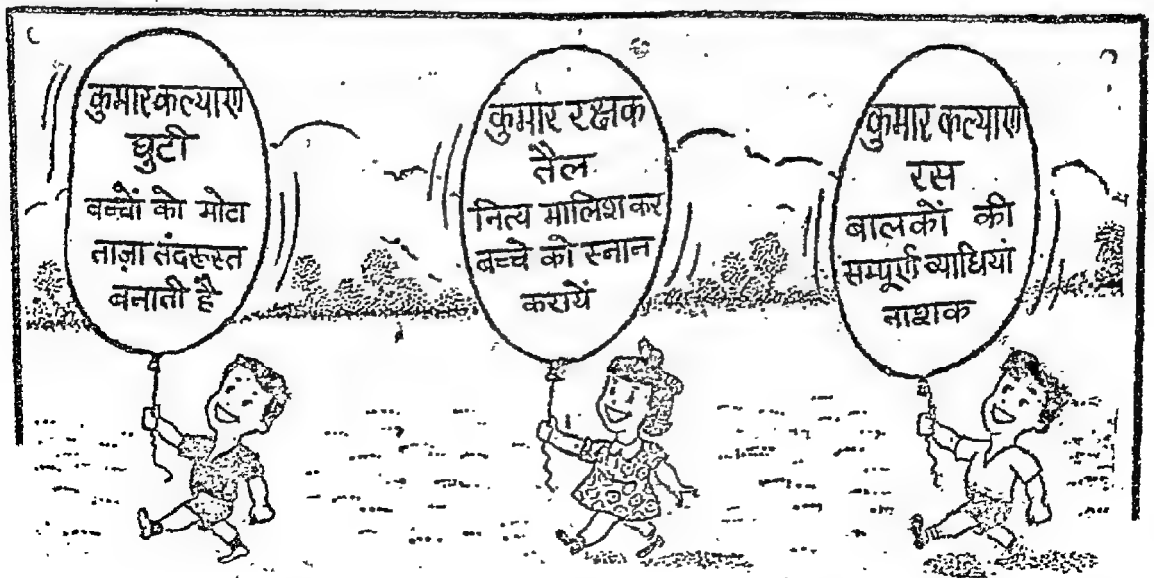
विविध लाभप्रद चूर्ण व गोलियां

संग्रहकर्ता—वैद्य पं० दामोदरप्रसाद सारस्वत, चूरू ।

आज हमारे भारत में ही नहीं अन्य देशों में भी अनेक रोग पाये जाते हैं। अजीर्ण व मन्दाग्नि आदि रोगों में पूर्ण लाभ दिखलाने वाली औषधि भी बहुत हैं, उनमें से ही जो लाभप्रद हैं उनको यहां पर मैं आपके सामने दर्शा रहा हूँ। मैंने प्रयोग करके इनको (गोली व चूर्ण आदि को) पूर्ण रूप में ठीक और लाभप्रद पाया है। औरतों के प्रदर रोग के लिए भी यहां पर प्रयोग दिया गया है।

दुरलभा बटी—

शुद्ध संखिया — शुद्ध पारद
शुद्ध गंधक — कत्था

—प्रत्येक १-१ माशा।

दुरलाभा का रस — ५ तोला

विधि—सबको मिला कर रस के संयोग से गोली बना लेवें। इसे कठिन वात-व्याधि में देवें। बहुत बार की परीक्षित हैं।

मनमोहन चूर्ण—

अनारदाना — मिश्री — जीरा सफेद

—तीनों १५-१५ तोला।

अकरकरा	२ तोला
काली मिरच	३ तोला
पीपल	३ तोला
सैंधानमक	५ तोला
नीबू सत्व	२ तोला

—इन सबको कूटकर बारीक चूर्णकर लेवे। यह खाने में स्वादिष्ट और अजीर्ण को नष्ट करता है।

रोचक चूर्ण—

नीबू सत्व — काली मिरच
कालानमक — जीरा

—प्रत्येक ५-५ तोला।

हींग — पेपरमेंट — २-२ रत्ती

सैंधानमक	२० तोला
चीनी (खांड)	४० तोला

—इसको कूटकर चूर्ण बनाकर अजीर्ण व अपची तथा मन्दाग्नि और भोजन न पचना, भूख का न लगना इन पर इसको काम में लावें।

गंधक वटी—

शुद्ध गन्धक — सैंधानमक — २-२ तोले
सौंठ — ४ तोला

विधि—इन तीनों चीजों का महीन चूर्ण करके तीन दिन तक नीबू के रस में अच्छी तरह घोटो। फिर चने के बराबर गोलियां बना लें।

मात्रा—दिन रात में १-१ करके ४-५ गोली लें।

गुण—मन्दाग्नि को नष्ट करने में ये गोलियां बहुत अच्छी हैं, खाने में भी बहुत ही स्वादिष्ट होती हैं।

प्रदरान्तक—

इलाइची — मस्तङ्गी — शीतलचीनी
हाथी दांत का चूर्ण — शंख — बबूल का गोंद
आमली (इमली) की मींगी — आम्र पुष्प

—प्रत्येक १-१ तोला

चीनी — ६ तोला

—इन सबका चूर्ण बना लेवें।

मात्रा—१ से ३ माशा तक लेवें।

मधुकादि चूर्ण—

सौंफ — सनाय — मुलहठी
शुद्ध गंधक — मिश्री

—प्रत्येक १-१ तोला।

—इनका चूर्ण बनाकर मलावरोध (मल रुक जाना) व अर्श की कब्जियत में लाभप्रद है, आममल बाहर निकालता है।

विशेष—गरम पानी या दूध के साथ में देवें।

मात्रा—३ माशा से ६ माशा तक की है।

भयंकर एलोपैथिक दवाएँ

लेखक—स्वर्गीय आयुर्वेदाचार्य पं० शिवराम जी शर्मा द्विवेदी।

"यह लेख लखनऊ से प्रकाशित होने वाले पाक्षिक 'आयुर्वेद संदेश' में प्रकाशित हुआ था। एलोपैथिक औषधियों के अन्धभक्तों की आँखें खोलने के लिए यह लेख अत्युपयोगी है। पाठक इस लेख को पढ़ कर विचार करें तथा एलोपैथी विषैली औषधियों के अन्धाधुंध प्रयोग से अपना हाथ खींचें।"

—सम्पादक।

आधुनिक विज्ञान की युग परिवर्तन कारी तीन औषधियो १-स्टेप्टोमाइसीन २-क्लोरोमाइसीटीन और ३-पेन्सिलीन है; नव विज्ञान के नाम पर इनका ढिंढोरा पीटा गया इनके प्रयोग से मानव समाज पर बड़ा भयंकर विपत्तियां आई अनेक आदमी लुंजपुंज हो गये अनेकों के प्राण गये। इन आधुनिक वैज्ञानिक औषधियों की प्रतिक्रिया का थोड़ा दिग्दर्शन इस लेख में हम उन्हीं के निर्माताओं और प्रयोक्ताओं के मुख से करायेंगे।

स्टेप्टोमाइसीन की १६ प्रतिक्रियायें

(१) सिर में दर्द होना (२) भूख न लगना (३) जी मिचिलाना (४) कय होना (५) दस्त आना (६) त्वचा पर दाने आजाना (७) जोड़ों में दर्द, सन्धिवात, (८) इन्जेक्शन के स्थान पर दर्द (९) त्वचा के एक स्थान या पूरे शरीर में दाने पड़ जाना (१०) जबान, ओठों या गाल में जख्म हो जाना (११) रक्त के श्वेताणुओं का विनाश, श्वेत कोषों की कमी (१२) एनिमियां पाण्डु हलीमक होना (१३) हाथ पैर कांपने लगना; सर्वाङ्ग कंप (१४) हाथ-पैर बेकार हो जाना (१५) अर्द्धसुप्तावस्था अचेतन होना (१६) कान में भनभनाहट, बहिरापन, इत्यादि १६ प्रतिक्रियाओं को तो एलोपैथ स्वीकार करते है किन्तु यह प्रतिक्रियाएं क्यों, किन पर, कैसे होती है यह वे समझ ही नहीं पाये हैं न तज्जन्य बढ़ते हुये विकारों अथवा मृत्युओं का लेखा-जोखा ही भारतीय डाक्टर रख सके है; हां- इन्जेक्शन बराबर देते जा रहे है। पाश्चात्य डाक्टर जहां तक उनके देशीय व्यापार को हानि न पहुंचे सच्चाई को बात अवश्य कर दिया करते है। स्टेप्टोमाइसीन के सम्बन्ध में लंदन की चिकित्सा अनुसंधान परिषद् का कहना है कि जिस स्टेप्टोमाइसीन का बहुत शोरगुल है वह साधारण रूप से कीटाणुओं को मारने में भी समर्थ नहीं सिद्ध हुआ है इतना ही नहीं इसके व्यर्थ ही जाने पर इसी दवा में कीटाणु पलने लगते है इससे अच्छा दूसरा आहार भी उन्हें नहीं मिलता कीटाणुओं की आहार पूर्ति के लिए स्टेप्टोमाइसीन की जरूरत पड़ा करती है। डाक्टरों ने आगे कहा कि कई रोगियों में देखा गया है कि राजयक्ष्मा से उनकी रक्षा तभी हो सकी जब स्टेप्टोमाइसीन छुड़ाकर उनको दूसरी दवा दी गई। यहां कई रोगी हमारी जानकारी में ऐसे हैं जो स्टेप्टोमाइसीन की प्रतिक्रिया के परिणामों को भुगत रहे है। जिन रोगियों में क्षय के कोई लक्षण न मिले किन्तु क्षयांश के भ्रम वश जिन्हें स्टेप्टोमाइसीन का प्रयोग कराया गया वे फिर क्षय-ग्रस्त हो ही गये, उनकी मृत्यु बड़ी ही दुखदायक हुई। उपर्युक्त १६ प्रतिक्रियाओं के परिणाम बहुत से भुगत रहे हैं।

क्लोरोमाइस्टीन की ११ प्रतिक्रियायें

(१) सिर में दर्द होना (२) जीमिचलाना (३) कय होना (४) दस्त आना (५) त्वचा पर दाने हो जाना (६) मुंह सूखना (७) मुंह में दाने पड़जाना (८) स्वाद खराब होना (९) एनीमियां पाण्डु, कामला, हलीमक हो जाना (१०) श्वेतकणों का नष्ट हो जाना (११) मृत्यु। इन ११ प्रतिक्रियाओं को डाक्टर स्वीकार करते हैं। २४ घंटे में ही आंत्रिक ज्वर टाइफाइड को उतार देने वाली यह प्रसिद्ध दवा है।

इसकी बड़ी भयंकर प्रतिक्रिया होती है। २४ घंटे में ही ज्वर उतार देने के बाद श्वेताणु क्षय होकर फुफ्फुस क्रिया आघात और ज्वर के तीव्र पुनरागमन के साथ मृत्यु होती है अथवा क्षयरोग राजयक्ष्मा की उत्पत्ति जिसका लेखा

लेखा भी भारतीय डाक्टर नहीं रखते। पाश्चात्य डाक्टर हेनरीवलश साहब जो रक्त परीक्षा के विशेषज्ञ हैं उन्होंने अनेकों रोगियों की परीक्षा करके बताया है कि क्लोरोमाइस्टीन रक्त को दूषित कर देती है श्वेताणुओं को नष्ट करती और रक्त सुखा देती है। हमारे देखते ही देखते कई रोगी मरे और कइयों को इसके प्रयोग से ज्वर उतरने के थोड़े ही दिन बाद एकादश लाक्षणिक राजयक्ष्मा हुआ, वे उसी से मरे। लखनऊ के प्रसिद्ध एडवोकेट सिटी आर्य समाज के अध्यक्ष बाबू अनन्तबिहारी निगम के नवयुवक पुत्र को टाइफाइड हुआ, क्लोरोमाइस्टीन के प्रयोग से ज्वर तो उतर गया किन्तु थोड़े ही समय के बाद उसको राजयक्ष्मा हो गया, जिसमें उस बच्चे के प्राण ही गये।

गत १० नवम्बर १९५४ की बात है डा० श्रीगोपाल नारायण भार्गव असिस्टेन्ट सर्जन बांदा के बहनोई श्री श्यामसुन्दर भार्गव को टाइफाइड हुआ था उन्हें क्लोरोमाइस्टीन की भयंकर प्रतिक्रिया हुई। उनके शरीर में भी श्वेताणु नहीं रहा। ज्वर फिर बढ़ा। फुफ्फुस रक्तशोधक क्रियाविहीन हो गए। डा० गोपालनारायण मुझे मेडिकल कालेज बुला ले गये थे मेरे सामने ही श्री श्यामसुन्दर का प्राणान्त हुआ। पैसे की हमदर्दी के कारण कई डाक्टर उनकी देखभाल कर रहे थे खास परिचर्या में डा० गोपाल नारायण थे ही। एतत् विषयक एक पत्र मैंने केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्रिणी को लिखा था। मेरे देखते ही देखते ऐसी अनेकों मृत्युयें हुई हैं।

पेन्सिलीन की ९ प्रतिक्रियायें

पेन्सिलीन के निर्माताओं और प्रयोक्ताओं का कहना है कि शुद्ध पेंसिलीन का साधारणत: कोई दुष्परिणाम नहीं होता, फिर भी वे पेन्सिलीन की ९ प्रतिक्रियें तो मानते ही हैं। १–इन्जेक्शन के स्थान पर दर्द २–सूजन ३–सिर में दर्द ४–ज्वर ५–सारे शरीर में दर्द ६–जबान का रङ्ग काला पड़ जाना ७–सारे शरीर पर दाने ८–हाथ पैर कांपने लगना ९–कंपवात मस्तिष्क को क्षति पहुंचना, बिगड़ जाना। इन प्रतिक्रियाओं को डाक्टर मानते हैं। किन्तु किन शरीरों पर कब, कैसे, और कहां मनुष्यों पर होती है भारतीय डाक्टर उसका कोई हिसाब नहीं रखते। मेरे देखते अनेकों व्यक्ति इन भयंकर प्रतिक्रियाओं में फंसे और उनके प्राण भी गये। लखनऊ के प्रसिद्ध एडवोकेट जयकृष्णजी टंडन कांग्रेस के अच्छे कार्यकर्ता थे। हाथ की हड्डी में दर्द होने के कारण वह हाथ काट डाला गया। पेंसिलीन का प्रयोग हुआ जिससे उन्हें तीस करोड़ पेन्सिलीन दी गई, भयंकर प्रतिक्रिया हुई उनका सारा शरीर मर्माहत, शुष्क हो गया। लखनऊ के कई डाक्टर उनकी देखभाल में थे और मेडीकल कालेज के क्षय विभाग के सुपरइटेन्डेन्ट डाक्टर टण्डन की खास देखरेख में ३० करोड़ पेन्सिलीन उन्हें दी गई। पेन्सिलीन की भयंकर प्रतिक्रिया से उनके प्राण गये।

आधुनिक विज्ञान जगत की यह तीन दवायें १–स्ट्रेप्टोमाइसीन २–क्लोरोमाइस्टीन और ३–पेन्सिलीन इनका ढिंढोरा पीटा जा रहा है और भारतीय डाक्टर इनका बेतहाशा प्रयोग मानव जीवन पर इनकी प्रतिक्रिया और प्राण हानि को देखते हुए भी कर रहे हैं। इनकी एक लाचारी समझ में आ सकती है। जिन विकारों की दृष्टि से वे इन दवाइयों का प्रयोग करते हैं उनके अतिरिक्त उस रोग की अन्य दवाइयों का इन्हें ज्ञान भी नहीं किन्तु मानव प्राण हानि को देखते हुए इस पापपूर्ण व्यवसाय को इन्हें त्याग देना चाहिये।

सल्फाड्रग्स के अनेकों संस्करण हमारे सामने आये, फेल हुए, नये बने, बिसाती की दुकान की भांति यह नहीं अच्छा है तो यह लीजिये, कहते हुए विदेशी एलोपैथिक कम्पनियों की लूट जारी रही। भारत का अरबों रुपया विदेश गया, रोग बढ़ते गये, आजकल जैसी रोगों की भरमार कभी नहीं हुई, नये नये रोग पैदा हो रहे हैं हर शिक्षित सम्पन्न घर जिसे एलोपैथिक औषधियों की सुविधा है एक छोटा हास्पिटल बन गया है। इन दवाइयों की विभिन्न प्रतिक्रियाएं अपरिचित रोगों का जन्म दे रही हैं। हार्टफेल होने की बात साधारण हो गयी है। जहां देखो हार्टफेल की बीमारी बढ़ रही है। ऐसे ही अन्य रोग भी। भारतीय स्वास्थ्य जर्जर हो रहा है। हमारे भारतीय डाक्टरों का मानवता की दृष्टि से इस पर विचार करना चाहिए पैसे की दृष्टि से नहीं।

इलायची (छोटी) (Elettaria Gardamomum)

लेखक—श्री० पं० कृष्णप्रसाद जी त्रिवेदी बी० ए० आयुर्वेदाचार्य।

आयुर्वेदानुसार यह कर्पूरादि वर्ग की मानी गई है। पाश्चात्य मतानुसार इसकी गणना हरिद्रा वर्ग (Scitamineae) में की गई है।

सर्वसाधारणतः छोटी वड़ी भेद से इलायची दो प्रकार की मानी जाती है, तथा आयुर्वेद और यूनानी में इन दोनों का ही व्यवहार किया जाता है। बड़ी की अपेक्षा छोटी का उपयोग अत्यधिक होता है। संस्कृत में 'एला' शब्द से प्रायः छोटी इलायची का ही ग्रहण किया जाता है। काव्य-ग्रन्थों में भी 'एला' शब्द का व्यवहार छोटी इलायची के लिये किया गया है। जैसे 'एला लता स्फालन लब्ध गन्धः (माघ)' छोटी इलायची की लता (पत्रादि) जैसी सुगन्धित होती है तैसी वड़ी इलायची की नहीं होती।

चरकसंहिता (सू० अ० ४) चिपघ्न, श्वासहर और अङ्गमर्द प्रशमन वर्ग में तथा सुश्रुतसंहिता में भी 'एला' नाम छोटी इलायची का उल्लेख आया है★एलादिगण में छोटी और वड़ी दोनों इलायचियां ली गई हैं। छोटी इलायची कर्णाटक, ट्रावनकोर, मदुरा आदि द्रविड़ देश में बहुलता से होती है। अतः इसे 'द्राविड़ी' कहा गया है। कुर्ग प्रान्त से यह इलायची गुजरात होकर अन्यान्य प्रान्तों में जाती थी इसीलिये इसे 'गुजराती इलायची' कहते हैं।

कोई कोई यूनानी हकीम उक्त छोटी और बड़ी के अतिरिक्त एक मध्यम प्रकार की (क़ाक़िलहे मुत्वस्सित) इलायची और मानते हैं। कदाचित् यह मैंगलौर की इलायची हो। हकीम इब्नसीना ने छोटी इलायची का उल्लेख 'क़ाक़िलह' और 'हेलबवा' के नाम से किया है आयुर्वेदीय विश्व-कोषकार के कथनानुसार ज्ञात होता है कि यूनान देशवासी भारतीय 'एला' से सुपरिचित थे, जो उन्हें सर्व प्रथम पारस्य (परसिया) देश से सीरिया व आरमीनिया होकर प्राप्त हुई थी।

योरुप में पहिले इलायची नहीं होती थी। पीछे भारतवर्ष से वहां लोग इसे लेगये। अब भी इङ्गलैंड जर्मनी, अरब, अदन और ईरान प्रभृति देशों में भारतवर्ष से ही इलायची का निर्यात होता है। यूरोपीय डाक्टरों ने छोटी और बड़ी के अतिरिक्त इलायची के तीन भेद और माने हैं, यथा (१) गोल इलायची, जो जावा, श्याम, चीन आदि देशों से आती है। (२) बङ्गाल देश की इलायची, और (३) पङ्खवाली इलायची। किन्तु वे अपनी डाक्टरी चिकित्सा में छोटी इलायची का ही व्यवहार करते हैं।

★प्राकृत भाषा में 'एला' नाम का एक कांटेदार वृक्ष होता है तथा एक प्रकार की कटीली लता भी होती है, जिसे 'रसौल' भी कहते हैं। आगे 'एला' प्रकरण देखिये।

छोटी इलायची के भी कई भेद हैं, जैसे—लंका की जंगली या देशी इलायची (Ceylon wild Cardamoms) जो कुछ बेलनाकार लम्बी, देखने में झुर्रीदार व गहरे भूरे रङ्ग की होती है। मलाबारी इलायची, जो आकार में गोल, खुरदरी और अन्य इलायचियों से छोटी होती है तथा पृष्ठभाग में श्वेत सूक्ष्म रोवों से व्याप्त होती है। 'मैसूरी इलायची' आकार में गोल किन्तु मलाबारी से बड़ी व चिकनी होती है,इसकी पत्तियां मलाबारी से बड़ी तथा रोवों से रहित होती है। 'मेंगलोरी इलायची'मलाबारी इलायची के समान ही गोल, किन्तु उससे बड़ी और खुरदरी होती है। इत्यादि, ये सब असली छोटी इलायचियों के भेद हैं। ये प्रायः ऊपर से हरे वर्ण की तथा इनके दाने काले होते हैं। कई स्थानों में यन्त्रों द्वारा इनके बीजों का तैल निकाल कर, फिर खड़िया मिट्टी में रगड़ और सुखा कर (या किसी तेजाब से धोकर) सफेद इलायची के नाम से ऊंचे दामों में बेची जाती है। वास्तव में यह नकली (सार रहित) होती है। बङ्गाल के जंगलों में भी एक नकली इलायची (Amomum aromaticum) पाई जाती है, जिसके गुण धर्म बड़ी इलायची के समान हैं।

नाम–

संस्कृत – सूक्ष्मैला, उपकुंचिका, वयस्था, त्रुटि, कोरंगी इत्यादि।

हिन्दी—छोटी या गुजराथी इलायची, लाची।

मरेठी—वेलाचे, वेलदोड़ा।

गु०—एलची कागदी, नानी एलची।

बंगला–छोटा एलाच, गार्टी।

ते०–एलकलु, एल्लकाय इत्यादि।

तामील–एलका, एलकाय।

कनाड़ी—यालक्कि।

द्राविड़ी–एलोकुल्लकायु, चिन्नएलं।

मल.—एलट्टरि, ऐलमचेड्डय।

अरबी–काकिलह, काकिले सिगारा, हेल।

फारसी–काकिलहे खुर्द, हेल, हाल, खैरबोआ।

अङ्गरेजी–दि लेसर कार्डमाम The Lesser Cardamom आफिसनल या मलाबार कार्डमाम Officinal or Malabar cardamom।

"लेटिन"–एलेटेरिया कार्डमोमम्।

उत्पत्ति स्थान—

भारत के दक्षिण में—मलाबार पश्चिमघाट की पहाड़ी तरी उपजाऊ जमीन में, तथा कुर्ग, कर्नाटक, ट्रावनकोर, कोचीन, मदुरा, मैसूर और लंका के उपजाऊ जंगलों में यह स्वयं होती है। मलाबार में सबसे अधिक होती है। कहीं कहीं लगाई भी जाती है। रबर और चाय के प्रान्तों में इसकी खेती की जाती है। दार्जिलिंग के पास कालिमपोंग में, चार हजार फीट की ऊंचाई पर इसकी अब खूब खेती होने लगी है। ब्रह्मदेश के जंगलों में भी यह पाई जाती है।

विवरण –

इसके सदैव हरे रहने वाले पौधे, अदरख के पौधे जैसे होते हैं, और वे प्रायः ऐसे ही स्थानों में होते हैं, जहां की जमीन तर छायादार होती है; जहां जमीन में पानी नजदीक होता है। मलाबार में इसके पौधे कुहरा और समुद्र की शीत वायु से खूब पनपते हैं।

इसके पौधे की जड़ के नीचे कन्द होता है, उसमें से पत्रों से युक्त खड़ी शाखा या डंडी निकलती है, जो ४ से ६ फुट तक ऊंची बढ़ती है। इसके पौधे को वर्षा और धूप से बचाना पड़ता है। आश्विन, कार्तिक में यह बोई जाती है। एक या १॥ वर्ष बाद जब इसके पौधे ४ फुट ऊंचे हो जाते हैं, तब वे उखाड़ कर प्रायः सुपारी के पेड़ों के नीचे लगाये जाते हैं, और उन्हें पत्ती की खाद दी जाती है। इसके पत्ते १ से २ फुट तक लम्बे और ३ इंच चौड़े होते हैं।

उखाड़ कर अन्यत्र लगाने के एक वर्ष पश्चात् चैत्र या वैशाख मास में यह फूलती है। फूल नलिका-

कार ओष्ठयुक्त श्वेत और लाल रंग के होते हैं, जिनसे इलाइची की सुगन्ध आती है।

आषाढ़ श्रावण में यह फलती है। गुच्छों में इसके डोड़े या बीजकोष हरे रंग के लगते हैं। तीन माह बाद ये डोड़े जब पक कर पीले रंग के हो जाते हैं, तो इनके गुच्छे के गुच्छे तोड़ लिये जाते हैं। दो या तीन दिन बाद जब ये गुच्छे सूखकर कुछ सफेद से हो जाते हैं, तब इन्हें मसल कर डोड़ों को अलगकर लेते हैं। एक पौधे में जो गुच्छे आते हैं, उनमें से प्रायः एक पाव तक डोड़े निकलते हैं।

प्रत्येक डोड़े के अन्दर कुछ त्रिकोणाकार, झुर्रीदार लगभग ⅛ इंच लम्बे कई बीजे होते हैं। ये बीजे रंग में बाहर से लालिमायुक्त काले और भीतर श्वेत होते हैं। स्वाद में ये बड़ी इलायची के बीजों की अपेक्षा अधिक चरपरे, मनोरम सुगन्ध युक्त होते हैं। और औषधि प्रयोगों में प्रायः ये ही अधिकतर लिये जाते हैं। ये बीज बाहरी हवा से विगड़ जाते हैं, अतः आवश्यकतानुसार ही ये छिलकों से बाहर निकाले जाते हैं। छिलकों के अन्दर प्रायः तीन वर्ष तक ये नहीं विगड़ते। बीजों से एक प्रकार का तेल निकाला जाता है, जो हलके पीले रंग का स्वाद और सुगन्ध में इलायची बीज जैसा ही होता है।

गुजराती इलायची के छिलके पतले तथा अधिक बीजों से भरे हुए होते हैं, और दूसरी जो चौहरा इलायची कहाती है, उसके डोडे के छिलके मोटे और बीज कम होते हैं। भारत के और भी अन्य स्थानों के बाग बगीचों में जो इलायची के पौधे बोये जाते हैं, उनमें केवल फूल ही लगते हैं, फल नहीं लगते।

गुणधर्म—

आयुर्वेदानुसार—इसका रस और विपाक कटु होता है, वीर्य शीत है। यह मधुर, हृद्य, रुचिकर, सुगन्धित, दीपन, लघु, (हलकी), है, तथा वमन, मूत्रकृच्छ्र, श्वास, कास, क्षय, मन्दाग्नि, तृषा, शूल, कोष्ठबद्धता, अर्श, अश्मरी, हृद्रोग, विषविकार, और कफ पित्त नाशक है। विसूचिका में हितकर है किंतु कफ, सर्दी एवं वात का प्राबल्य हो तो इसका प्रयोग नहीं करना चाहिए। यह कुछ रूक्ष होने से गर्भावस्था में हानिकर है।

बीजों का चूर्ण —

मद्य या आमले के रस के साथ अथवा गोमूत्र या केले के रस के साथ सेवन से कफजन्य पूयमेह 'सुजाक' मूत्रकृच्छ्र में, बीज चूर्ण के साथ पीपरामूल का चूर्ण समभाग मिलाकर गोघृत के साथ सेवन से कफजन्य 'हृद्रोग' और 'गुल्म' में, बीज चूर्ण को अनार के रस या शर्बत के साथ देने से मतली और 'वमन' में, बीज चूर्ण को खीरा ककड़ी के बीजों के साथ सेवन से गुर्दे व वस्ति की 'अश्मरी' (पथरी) रोग में, बीज चूर्ण के साथ सेंधा नमक, घृत और मधु मिला सेवन करने से 'कफ रोगों' में, बीज-चूर्ण को मद्य के साथ देने से 'उदावर्त' में, बीज चूर्ण को नमक के साथ देने से 'आमातिसार' में तथा बीज चूर्ण को बकरे के मूत्र के साथ तीन दिन घोटकर नेत्रों में आंजने से तिमिर आदि 'नेत्र रोगों' में लाभ होता है।

बीजों को महीन पीसकर नस्य लेने से 'सिर दर्द' में, इन्हें अन्य चरपरी चीजों के साथ सेवन से 'आध्मान' और 'उदर शूल' में, बीजों का क्वाथ बना पिलाने से 'तृषा' में बीजों का अवलेह बना चटाने से 'वमन' में, बीजों को दही के पानी के साथ घोट पीस कर पिलाने से 'मूत्रकृच्छ्र' में, बीजों के क्वाथ से कुल्ले कराने से 'दंत पीड़ा' और हिचकी में, बीजों को पान के साथ खाने से मुख 'दुर्गन्धी' में, और बीजों को खाने से केले के अजीर्ण में लाभ होता है।

इलायची डोड़ों को भूनकर मस्तङ्गी के साथ पीस, दूध के साथ सेवन करने से 'वस्तिप्रदाह' दूर होता है। डोड़ों की छाल को जलाकर मधु के साथ चटाने से 'वमन' में लाभ होता है। बीजों के तेल की ४-५ बूंदें अनार शर्बत के साथ देने से 'पित्तप्रकोप' जन्य मतली, वमन दूर होती है, तथा विसूचिका में भी लाभ करता है।

यूनानी मतानुसार--

यह दूसरे दर्जे में, किसी किसी के मत से तीसरे में गरम और रूक्ष है। कोई कोई इसे पहले दर्जे के अन्त में गरम और दूसरे में रूक्ष मानते हैं।

इसमें तिर्याकी और धारक गुण की विशेषता होने से यह तबियत को प्रफुल्लित, हराभरा करती है। यह वायु को विलीन कर छाती, कंठ और आमाशय के द्रवों को सुखाती है। यह पाचन है, तथा मस्तिष्क, उदर व हृदय को बल पहुंचाती है। मुख के दुर्गन्ध को तथा मितली, उबकाई, मूत्र की रुकावट और पेट के अफारे को दूर करती है। यह आमाशय के दोषों को नष्ट करती, डकार लाती और भूख पैदा करती है। प्रायः सभी औषधि कार्यों में बड़ी इलायची की अपेक्षा यह विशेष प्रभावशाली है।

इसे पीस कर जोर से सूंघने से छींकें आती हैं, तथा अपस्मार, मूर्च्छा और वातजन्य सिर पीड़ा दूर होती है। भूनी हुई इलायची गुर्दे और मूत्राशय की पथरी को निकालती है, तथा संग्राही होती है। इसके डोड़े को जौकुट कर गुलाब अर्क या पानी में पका कर पीने से कै, मितली और हैजा में लाभ होता है। यह मस्तङ्गी और अनार के रस के साथ देने से भी कै मितली को दूर कर आमाशय को शक्ति देती है। इसके बीजों के चूर्ण को तबाशीर, खटमीठे अनार के रस और शर्बत गुलाब के साथ देने से पित्त जन्य 'वमन' में लाभ होता है।

इसके छिलकों को चबाकर मलने से मसूढ़े मजबूत होते हैं। इसका तैल आंखों में आंजने से रतौंधी को शर्तिया दूर करता है, इसे सिर पर मलने से सिर दर्द शीघ्र मिटता है और कान में डालने से 'कानों' की पीड़ा दूर होती है।

किन्तु ध्यान रहे यह उष्ण प्रकृति वालों के छाती, फेफड़े और आंतों के लिए हानिकर है। इसके सेवन से यदि छाती और फेफड़ों में हानि हो, तो कतीरा या तबाशीर का सेवन करें, तथा आंतों में यदि हानि हो, तो खुर्फा का सेवन करें।

इसके प्रतिनिधि-सम भाग लौंग और बड़ी इलायची, तथा अर्धभाग कबाबचीनी और हब्बबलसां हैं। इसकी मात्रा २ से ४ माशे तक है।

आधुनिक मतानुसार:-

इसमें एक स्थिर तैल १० प्रतिशत, तथा एक उड़नशील तैल (जो इसका क्रियात्मक सार The active Principle है) ५ प्रतिशत पाया जाता है। इसके अतिरिक्त इसमें टर्पिनीन नामक एक तारपीन पर्याप्त मात्रा में (Fre terpineol), तथा पोटासियम साल्ट्स ३ प्रतिशत, श्वेतसार (Starch) ३ प्रतिशत, नेत्रोजनीय लुआब (Nitrogenous mucilage) २ प्रतिशत, पीतरंजक पदार्थ, काष्ठतंतु (Ligneous Fibre) ७७ प्रतिशत, और मैंगनीज मिश्रित राख ६ से १० प्रतिशत पाई जाती है।

यह लौंग और कालीमिर्च के समान उष्ण या उत्तेजक, आमाशय को बलप्रद, वायुनिस्सारक या अफरा को दूर करने वाली तथा आक्षेपहर हैं। यह अजीर्ण में उपयोगी है। इसका टिंचर सुन्दर सुगंधित होने के कारण प्रायः अजीर्णनाशक योगों में मिलाया जाता है। कई विरेचक औषधियां जो पेट में मरोड़, शूल और अफरा को पैदा करती हैं, उनके साथ इसका मेल कर देने से वे उपद्रव नहीं होने पाते।

—डा० आर. एन. खोरी (म. मे. इंडिया)

पचन नलिका के शैथिल्य प्रधान विकारों में या दाहयुक्त रोगों में इसका विशेष उपयोग किया जाता है। मितली और उबकाई में इसका फांट दिया जाता है। आंतों में रसोत्पत्ति कम होती हो, तथा पित्तस्राव ठीक ठीक न होता हो, तो यह एक अमूल्य औषध है। पेट में ऐंठन, शूल और आध्मान की दशा में इसका अर्क उपयोगी होता है। आमातिसार में या 'प्रवाहिका' में जब बार बार शौच (दस्तों की) प्रवृत्ति हो, तो इसके चूर्ण को मक्खन के साथ देते हैं। 'यकृत' की क्रिया ठीक न हो अथवा यकृत में शोथ हो, तो ५ रत्ती की मात्रा में इसे देने से

बहुत लाभ होता है। दांतों और मसूड़ों के रोगों में इसके काढ़े से कुल्ले कराये जाते हैं।

मूत्रपिंडों (वृक्क) के पीड़ादायक रोगों में इसे खरबूज के बीजों के साथ देते हैं. इससे मूत्र का प्रमाण बढ़ता है। पूयमेह में तथा वाजीकरणार्थ इसका प्रयोग किया जाता है। 'मज्जातंतु शूल' (या स्नायु शूल) में इसे १५ रत्ती की मात्रा में, थोड़ी कुनैन के साथ देने से बहुत लाभ होता है। मस्तिष्क और मज्जातंतु की थकावट में यह गुणकारी है।

—डा० देसाई (औषधी-संग्रह)

यह विशेष सुगंधित, उत्तेजक, दीपन, कोष्ठवात प्रशमन (Carminative) और मूत्रल है। ये गुण इसके बीजों में रहने वाले प्रभावशाली तेल के कारण हैं।......छिलके सहित इसके बीजों के साथ थोड़ा गुड़ मिलाकर तैयार किया हुआ काढ़ा पित्त-जन्य शिरोभ्रमण के लिये एक प्रसद्धि घरेलू दवा है।

—डा० नाडकर्णी (इं. म. मेडिका)

सिद्ध साधित प्रयोगः-

(१) एलादि चूर्णः—

(अ) छोटी इलायची के बीजों के साथ समभाग जटामांसी. लौंग, सोंठ, पीपल, नागरमोथा, लालचन्दन, धनियां, खजूर, तमालपत्र, मुलैठी, खस और अनारदाना लेकर चूर्ण बना रक्खें। यह उचित मात्रा में सेवन करने से हिक्का, कामला, पांडु, मूत्र की दाह और प्रमेह को नष्ट करता है। यह बृंहण भी है।

(आ) इलायची का चूर्ण ३ माशे, भूनी हींग १ रत्ती और घृत १ तोला इनको एक पाव दूध में मिला (यह १ मात्रा है) दिन में दो बार सेवन करने से मूत्रकृच्छ्र, हृद्रोग और शुक्रदोष नष्ट होते हैं।

क्षय, वमन, मूत्रकृच्छ्र, उदररोग, श्वास, शूल, प्रदर, अम्लपित्त आदि विकारों पर एलादिचूर्ण के प्रयोग शास्त्रों में देखिये।

(२) एलादि गुटिकाः—

छोटी इलायची, तेजपात, दालचीनी १-१ तो. पीपर ४ तो. तथा मिश्री, मुलैठी, छुहारा और मुनक्का ६-६ तोले, लेकर यथा विधि चूर्ण कर शहद में घोट १०-१० मासे की गोलियां बना रक्खें। इनके सेवन से कास, श्वास, ज्वर, हिक्का, वमन, मूर्च्छा, रक्तपित्त आदि कई व्याधियां नष्ट होती हैं। अन्य प्रयोग शास्त्रों में देखिये।

(३) एलादि क्वाथ,

(४) एलादि मंथ,

(५) एलादि घृत,

(६) एलादि तैल,

(७) एलादि लेह,

इनके प्रयोग शास्त्रों में देखिये

(अ) इलायची २ भाग, तथा नागकेसर, तेजपात, पद्माक, किसमिस, नागरमोथा, मुलैठी और खजूर १-१ भाग सबको कूट पीसकर सबके बराबर खांड मिलाकर और अन्दाज से शहद मिला अवलेह बनावें।

इसे यथोचित मात्रा में सेवन करने से रक्तपित्त, दाह, ज्वर, श्वास, मोह, तृष्णा, मूर्च्छा और रक्त वमन का नाश होता है।

(आ) इलायची, पटोलपत्र, मोथा, चन्दन, धनियां, आमला, वंसलोचन, दालचीनी, तेजपात, गजपीपल और हरड़, समभाग लेकर चूर्ण करें तथा उसमें मिश्री, घृत और शहद मिला अवलेह बनावें। इसमें मिश्री सबके समभाग डालनी चाहिये।

इसके सेवन से पित्त, अम्लपित्त, अरुचि ज्वर, दाह, शोष दूर होते हैं।

(८) एलादि मोदक या पाकः—

इलायची, चित्रक, हल्दी, दारुहल्दी, त्रिफला, लालधान, पीपल, मुनक्का, छुहारा, तिल, जौ, विदारीकंद, गोखरू, सनाय और सतावर समभाग, चूर्ण

कर, तथा सबसे दोगुनी मिश्री की चाशनी कर यथा विधि मोदक या पाक तैयार करें।

मात्रा–१० माशे, धारोष्ण गोदुग्ध या मूंग के यूष के साथ सेवन करने से अपस्मार तथा मद्यपान-जनित समस्त विकार एवं अन्य दुःसाध्य बीमारियां शीघ्र नष्ट होती हैं।

एलादिपाक व अन्य प्रयोग हमारी पुस्तक 'बृहत् पाक संग्रह' में देखिये।

(६) एलाद्यरिष्ट—

(अ) छोटी इलायची ८ तोला तथा जावित्री, बड़ी इलायची, धाय के फूल, लौंग, दालचीनी, नागकेशर और क्षीर काकोली (अभाव में असगन्ध की जड़) प्रत्येक का चूर्ण ६-६ माशे, मृत संजीवनी सुरा १६ तोले और जल ८ तोला सब को एकत्र कर बोतलों में भर, दृढ़ काग लगा कर १५ दिन तक सुरक्षित रक्खें। पश्चात् छानकर शीशियों में भर रक्खें।

मात्रा—१ से ३ माशे तक अथवा ३० से ६० बूंदों तक, दुग्ध या जल में मिला सेवन से घोर उदरशूल, अग्निमांद्य, अजीर्ण, अरुचि, अम्लपित्त व ग्रहणी आदि विकार शीघ्र नष्ट होते हैं।

(आ) इलायची के बीज, धनिया और लाल चन्दन ७-७ मासे, दालचीनी १४ माशे तथा बीज निकाली हुई काली मुनक्का ५ तोले इन सबको कूट पीसकर, २५ तोले मद्य के साथ एक बोतल में भर कर दृढ़ काग लगा कर दो दिन (४८ घण्टे) सुरक्षित रक्खें। पश्चात् उसे फिल्टर करें, या महीन वस्त्र में छानना शुरू करें, जब सब मद्य छन जाय और ऊपर थोथा रहे, उस पर और २५ तोला मद्य धीरे २ छोड़ते हुये छान लें। थोथे को अच्छी तरह निचोड़ कर अलग कर दें। इस प्रकार कुल ५० तोला आसव तैयार होगा।

मात्रा—आधे ड्राम से एक ड्राम तक सेवन करावें। यह छोटे बालकों के लिये विशेष उपयोगी है। ऐंठन, उदर शूल और अफरा में यह शीघ्र लाभ करता है।

इसके आसव और अरिष्ट के अन्य प्रयोग हमारे 'बृहदासवारिष्ट संग्रह' पुस्तक में देखिये।

रोगानुसार मुख्य प्रयोगः—

(१) मूत्रकृच्छ्र और मूत्राघात पर—

इलायची बीज का चूर्ण दो माशे तक, दूध और शक्कर के मिश्रण में मिला, लस्सी जैसा तैयार कर सेवन करने से मूत्रवह स्रोतसों पर इसका शामक कार्य होकर मूत्र का प्रमाण बढ़ता है, मूत्र साफ होता है, तथा बस्ति स्थान की वेदना भी मिटती है। अथवा—

इलायची, पाषाणभेद और पीपल के चूर्ण को चावलों के पानी के साथ, थोड़ा शिलाजीत मिला पिलावें। अथवा—

इलायची बीज ३ तोला के साथ समभाग बंशलोचन मिला कपड़छन चूर्ण कर, चन्दन तैल में खरल कर १४ गोलियां बनावें। प्रातः सायं १-१ गोली ५ तोला शीतल जल के साथ सेवन करें। अथवा—

इलायची के डोंडे (छिलके सहित इलायची) ५ नग और तरबूज के बीज २१ नग, दोनों को कूट पीस कर, दूध और जल १-१ पाव मिला धीमी आंच पर पकावें। दूध मात्र शेष रहने पर छान कर ठण्डा हो जाने पर पीने से मूत्र-दाह आदि की शांति होती है। अथवा—

इलायची २ भाग, धमासा, रेंडीमूल, हरड़ और पाषाणभेद १-१ भाग लें, जौकुट कर चतुर्थांश क्वाथ सिद्ध करें, और उसमें गोखरू, ककड़ी बीज और इन्द्रजौ का चूर्ण मिला सेवन करावें। इससे मूत्राघात या मूत्रावरोध भी दूर हो जाता है।

(२) वमन, अतिसार और विसूचिका पर—

इलायची का चूर्ण १ से २ माशे तक अथवा इसका तैल ५ बूंद तक अनार के शर्बत के साथ पिलाने से उबकाई और वमन शांत होजाता है।

विसूचिका या हैजा की वमन में यदि पित्त की प्रबलता हो, शरीर शिथिल हो रहा हो, तो भी उक्त प्रयोग लाभ करता है।

वमन में प्रायः इलायची का फांट या अवलेह उत्तम कार्य करता है। इसकी क्रिया आमाशय और उदान वायु दोनों पर शामक रूप से होती है। कफ प्रधान वमन में छिलके सहित इलायची को जलाकर उसकी भस्म ५ रत्ती तक शहद के साथ बार२ चटाने से शीघ्र लाभ होता है। अथवा—

इलायची चूर्ण के साथ लौंग, दालचीनी और तेजपात का चूर्ण समभाग मिला, मात्रा—१-१ मासा एक-एक घण्टे से दिन में ५-६ बार शहद के साथ चटावें।

बच्चों की वमन, तृषा व अतिसार पर—इलायची सुगन्धवाला और मोथा के चूर्ण को शहद के साथ बार २ चटाना चाहिये।

विसूचिका पर—इलायची के छिलके ४ तोला, जौ-कुट कर एक सेर जल में चतुर्थांश क्वाथ सिद्ध कर ठण्डा होजाने पर रोगी को २-२ तोला बार-बार पिलाने से वमन, तृषा आदि बन्द होकर मूत्र की रुकावट भी दूर हो जाती है।

अजीर्ण या बदहजमी से वमन हो तो लगभग १० इलायचियों को छिलके सहित जौकुट कर आध सेर जल में अष्टमांश क्वाथ सिद्ध कर, उसमें थोड़ी शक्कर मिला आधा-आधा तोला के प्रमाण में १-१ घण्टे से पिलावें। सम्पूर्ण काढ़ा एक दम न पिलावें, अन्यथा उल्टी और बढ़ जावेगी। यदि केवल अजीर्ण हो तो एक दम काढ़ा पिला सकते हैं, अजीर्ण दूर हो जावेगा।

(३) दृष्टि दौर्बल्य अशक्ति और स्वप्नदोष पर—

(अ) इलायची के बीज ५ तोले और वंशलोचन ५ तोले दोनों को बादाम और पिस्ता ५-५ तोले के साथ (बादाम और पिस्ता भिगोकर छील लेना चाहिये) सिल पर खूब महीन पीस लें। फिर दो सेर दूध में पकावें। जब गाढ़ा हो जाय तो ३ पाव मिश्री मिला धीमी आंच से पकावें। हलुवा सा हो जाने पर उसमें चांदी के वर्क दो तोला मिला कर किसी शुद्ध चीनी के पात्र में रक्खें। नित्य २-२ तोले दूध के साथ सेवन करने से नेत्र की रोशनी बढ़ती है। अथवा—

इलायची बीज और मिश्री समभाग एकत्र महीन चूर्ण कर, मात्रा ४ माशे तक, शुद्ध रेंडी तेल आधा तोला में मिला नित्य प्रातः काल सेवन करने से 'मस्तिष्क की तथा नेत्रों की उष्णता दूर होकर नेत्र ज्योति बढ़ती है। अथवा —

इलायची के बीज ६ माशे, खसखस ३ मासे और बादाम की मींगी ७ नग इनको एक छटांक जल में खूब महीन पीस कर, उससे मिश्री चूर्ण ११ तोले और मक्खन ५ तोले मिला, ऊपर से चांदी के वर्क चढ़ादें। और चीनी के पात्र में सुरक्षित रक्खें।

नित्य प्रातः सायं इसमें से एक चम्मच औषध चाटकर ऊपर से गर्म दूध पीने से दिमाग की कमजोरी दूर होती है, और नेत्रों की शक्ति बढ़ती है।

धातु या वीर्य पुष्टि के लिये—इलायची बीज २ मासे, जावित्री १ मासा और बादाम की मींगी ५ नग, इन्हें थोड़े से जलमें खूब महीन पीसकर गाय का मक्खन और मिश्री १-१ तोला मिला (यह १ मात्रा है) नित्य प्रातः सेवन करें।

स्वप्नदोष पर—इलायची बीज का चूर्ण और ईसबगोल की भूसी समभाग को आंवले के रस में खरल कर बेर जैसी गोलियां बनालें। १-१ गोली प्रातः सायं गाय के दूध से लेवें।

(४) कास, श्वास और हृद्रोग पर—

(अ) कफजन्य खांसी पर इलायची के बीजों का महीन चूर्ण ४ रत्ती के साथ समभाग सोंठ चूर्ण

मिला शहद के साथ बार बार चटावें। अथवा केवल इलायची बीज चूर्ण को ही १ मासा तक शहद के साथ चटाने से कफ शीघ्र निकल जाता है, और खांसी का वेग कम हो जाता है।

(आ) वात के कारण यदि शुष्क खांसी हो, खांसते में गला जोर से बजता हो, तो छिलके सहित इलायची के डोड़े ५-५ नग जलाकर, उसकी भस्म को घृत और शक्कर के साथ बार बार चटाने से शीघ्र लाभ होता है। अथवा इलायची के चूर्ण को ही घृत और शक्कर के साथ चटावें।

नोट—श्वास मार्ग में वात का प्रकोप होने से जब प्राणवह स्रोतसों का संकोच या निरोध होने लगता है, तब इलायची चूर्ण अपने श्वासहर एवं वातशामक प्रभाव से महान उपयोगी कार्य करता है। ऐसी दशा में इलायची के तैल को केवल शक्कर के साथ देने से भी उत्तम कार्य होता है।

(इ) श्वास पर—इलायची, तेजपात, सोंठ, खस पीपल, भारंगी, तुलसी, अगर, चन्दन और खांड समभाग लेकर चूर्ण बना रक्खें।

मात्रा—१ से ३ मासे तक, ताजे जल के साथ सेवन करने से ऊर्ध्व श्वास और तमक श्वास में लाभ होता है।

(ई) हृद्रोग पर—इलायची, पीपलामूल और पटोल समभाग चूर्ण कर, मात्रा-१ से ३ मासे तक, घृत के साथ सेवन करने से उपद्रव सहित कफज हृद्रोग नष्ट होता है।

(५) रक्तस्राव पर—

इलायची बीज, केसर, जायफल, वंसलोचन, नागकेसर और संगजराहत (शंख जीरक) समभाग का चूर्ण, मात्रा-२ मासे, प्रातः सायं शहद २ मासे, गौघृत ६ मासे और मिश्री ३ मासे के साथ मिश्रण कर, १४ दिन सेवन करने से रक्तप्रदर, रक्तार्श और रक्तमेह में लाभ होता है। रात को सोते समय इसकी मात्रा फांक कर, ऊपर से शक्ति अनुसार, पकाया हुआ गौदुग्ध आधसेर तक, थोड़ी शक्कर मिला पीवें। गुड़, नारीयल की गिरी आदि उष्ण पदार्थ तथा तैल, मिर्ची आदि से परहेज रक्खें।

नकसीर—या नाक से खून जाता हो, तो इलायची का अर्क १॥ या २ माशे की मात्रा में, ७ या ८ बार में कुल एक तोला तक पिलाने से लाभ होता है।

(६) शूल पर—

इलायची ६ मासे, जवाखार और सैंधानमक ३-३ माशे और हींग ४ रत्ती, जौकुट कर एक पाव जल में पकावें, चतुर्थांश शेष रहने पर, छानकर उसमें शुद्ध रेंडी तेल ६ माशे से १ तोला तक मिला सेवन करने से उदर, नाभि, कमर, हृदय, पीठ, पार्श्व, मस्तक, कान और नेत्र का शूल शीघ्र शमन हो जाता है।

केवल उदर शूल हो तो—इलायची चूर्ण २ तोला अजवायन चूर्ण ३ माशे, काली मिरच और सोंठ का चूर्ण १-१ तोला एकत्र खरल कर ३ या ४ मासे की मात्रा में, सुखोष्ण दूध या ताजे जल के साथ सेवन करें।

केवल मस्तक शूल हो, तो—२१ नग इलायची डोड़ों का महीन चूर्ण, और छोटी पीपल का महीन चूर्ण ४ या ६ रत्ती, दोनों को एकत्र मिला शहद के साथ चटाने से मज्जागत वात प्रकोप जन्य सिर की पीड़ा शीघ्र ही दूर हो जाती है।

(७) उदावर्त और आध्मान पर—

(अ) इलायची के डोड़ा १० नग लेकर आधे घृत के दीपक की लौ पर भून लें, फिर शेष आधे डोड़ों के साथ उन्हें पीस कर शहद के साथ दो बार प्रातः सायं चटाने से क्षुधा, निद्रा, तृषा, वमन आदि के निरोध से उत्पन्न हुआ उदावर्त शमन हो जाता है। ७ या ८ दिन यह प्रयोग करें।

(आ) आध्मान या पेट के अफारे पर—इलायची का चूर्ण कपड़छन किया हुआ ४ रत्ती के साथ हींग (भुनी हुई) २ रत्ती मिला, नीबू के रस के साथ सेवन करावें।

(८) यकृत शोथ और कामला पर—

(अ) यकृत में शोथ हो, या उसकी क्रिया ठीक यथा योग्य न होती हो, तो इलायची बीज ५ रत्ती को जौकुट कर आध सेर जल में अष्टमांश क्वाथ सिद्ध कर, प्रातः सायं पिलाने से शीघ्र लाभ होता है।

(आ) कामला पर—

इलायची २ भाग, जीरा, भुंई आमला और मिश्री १-१ भाग, इनके चूर्ण को गोदुग्ध की भावना देकर मात्रा, ३ से ६ माशे तक नित्य प्रातः गोदुग्ध के साथ सेवन करावें।

(६) प्रमेह, उपदंश और नपुंसकता पर—

(अ) इलायची, शिलाजीत, पीपल और पाषाण-भेद समान भाग लेकर चूर्ण करें। इस एलादि चूर्ण को यथोचित मात्रा में चांवलों के धोवन के साथ सेवन करने से 'प्रमेह' अवश्य नष्ट होता है।

(हारीत संहिता)

(आ) इलायची २ भाग तथा दारुहल्दी, शंखनाभी रसौत और लाख १-१ भाग इनका महीन चूर्ण करें, तथा गाय के गोवर का रस, तिल तैल, शहद घी और दूध समान भाग लेकर, सबको एकत्र मिला, खूब खरल करें, खरल करते करते ऊपर जो फेन या स्नेह आवे उसे पृथक कर शीशी में रक्खें। इसका लेप करने से उपदंश के व्रण और दाह का शमन होता है।

(इ) इलायची, जावित्री, सफेद करनेर की जड़, सेंमल की छाल और अफीम ६-६ माशे लेकर महीन पीसकर १ तोला तिल तैल में मिला, गर्म कर शिश्न पर लेप करें। ऊपर से पान लपेट कर कच्चे सूत से बांध दें। नित्य २१ दिन तक इस एलादि लेप से 'नपुंसकता' अवश्य नष्ट होती है। शिश्न पर शीतल जल न लगने दें और मैथुन से दूर रहें।

(१०) शीत पित्त और कुष्ठ पर—

(अ) इलायची चूर्ण ५ तोला सोनागेरू ४ तोला और जवाखार ६ तोला एकत्र मिला खूब खरल कर शीशी में रक्खें। मात्रा–६-६ माशे, प्रातः सायं ताजे जल से लेने से 'शीतपित्त' में शीघ्र लाभ होता है।

(आ) इलायची, कूठ, दारुहल्दी, सोयाबीज, चित्रक, वायविडंग, रसौत और हरड़ (कोई कोई हरड़ के स्थान में दंतीमूल और दारुहल्दी के स्थान में वच या खरैटी की जड़ लेते हैं) इनके मिलित चूर्ण को पानी में पीस कर लेप करने से 'कुष्ठ' नष्ट होता है। —चरक संहिता और वंगसेन

(११) प्रदर पर—

इलायची बीज २ तोले, श्वेत चंदन, खस, सरिवन (शालपर्णी) की मूल छाल, सारिवा और लोध १॥-१॥ तोला, तथा कुटकी और कालानमक १-१ तोला इन सबके चूर्ण को द्राक्षा रस की भावना देकर शीशी में भर रक्खें।

मात्रा—१ से ३ माशे तक, थोड़े से दही के साथ पीने से वातज प्रदर, और शहद के साथ सेवन करने से पित्तज प्रदर नष्ट होता है।

(१२) मुख रोग—

इलायची बीजों का चूर्ण २ भाग और फिटकरी भुनी हुई १ भाग दोनों को एकत्र खरल कर रक्खें। मुख के अन्दर छाले आदि हों, तो इस चूर्ण की १ या २ चुटकी मुख में रख कर लार गिरा दें, पश्चात् मुख को जल से साफ करलें। दिन में ४-५ बार ऐसा करने से मुख पाक आदि रोग दूर होते हैं।

(१३) बिच्छू और जयपाल के विष पर—

(अ) बिच्छू ने डंक मारा हो, अत्यन्त वेदना हो रही हो, तो इलायची को मुख में चबाकर रोगी के कानों में जोर से फूंक मारने तथा इलायची के तैल को वेदना पर लगाने से शीघ्र लाभ होता है।

(आ) जयपाल (जमालगोटा) की विष-बाधा निवारणार्थ रोगी को, दही के साथ इलायची के बीजों को पीस कर दिन में ३ बार पिलावें। ३ दिन तक।
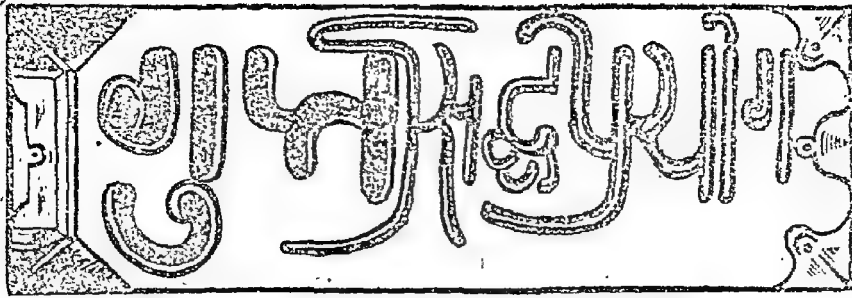
कविराज श्रीराम शर्मा एल० ए० एम० एस०

संजीवन औषधालय मानकपुरा करौल बाग, दिल्ली।

पिता का नाम— स्व० पं० हरवंसलाल वैद्य

जाति—गौड़ ब्राह्मण आयु—४२ वर्ष

"प्राचीनकाल से ही आपके वंश में चिकित्सा तथा अन्वेषण का कार्य चला आया है, आपके दादा तथा पिता ने कई पुस्तकें प्राचीनकाल की चिकित्सा प्रणाली और रसायन विषय पर लिखीं जिनमें से कुछ पुस्तकें सैकड़ों वर्ष पहले की हैं जो हस्त लिखित हैं। आपने श्री सनातन धर्म प्रेम-गिरि आयुर्वेदिक कालेज लाहौर से कविराज, एल० ए० एम० एस० की परीक्षा पास की है। निम्न सिद्ध प्रयोग हस्त-लिखित प्राचीन पुस्तकों में से लेकर आपके द्वारा आजमाये गये हैं जो सरल और लाभप्रद हैं। आशा है पाठक गण इन प्रयोगों से लाभान्वित होंगे।"

—सम्पादक।
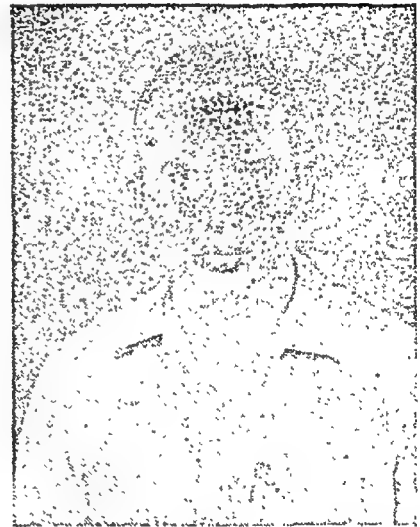
— लेखक —

नेत्र रोगों पर—

संख श्वेत	८ माशे
मैनसिल	४ माशे
काली मिर्च	२ माशे
सैंधानमक	१ माशे

विधि—संख को बारीक पीस कर गाय के दूध में खरल करें और कपड़े में से छान लें। मैनसिल को बारीक पीस कर बकरी के दूध में खरल करें और कपड़े में से छान लें। काली मिरच को बारीक पीस कर स्त्री के दूध में खरल करें और कपड़े में से छान लें। सैंधा नमक को बारीक पीस कर जल में खरल करें और कपड़े में से छान लें। पश्चात् सबको एकत्र करके खरल में डालें और खूब मिलायें। थोड़ा जल डाल कर गोली या बत्ती या छोटे छोटे जौ से बनालें।

सेवन विधि—सायंकाल गोली या बत्ती लेकर कर किसी कांसे या पत्थर के पात्र पर थोड़ा पानी डालकर घिसें और आंखों में लगावें।

गुण—आंख के समस्त रोग जाला, फूला, मोतिया-बिन्द पानी बहना, अंधापन इस विष्णु नाम की वर्तिका से दूर हो जाते हैं। एक वर्ष तक इसे

कोई अन्धा मनुष्य आंजे तो उसे भी दिखाई देने लगता है ।

हैजे तथा शीतज्वर पर—

आक (अर्क) की जड़ का छिलका सूखा	१ तोला
काली मिरच	४ तोला
अदरख का रस	५ तोला

विधि—आक की जड़ के छिलके और काली मिरच को बारीक पीस कर खरल में डालें और अदरख के रस में खरल करें और झाड़ी बेर प्रमाण गोलियां बनालें । छाया में सुखावें ।

सेवन विधि—एक से दो गोली तक उचित अनुपान से (शीतल जल दूध आदि से) ।

गुण—हैजे रोग के लिये रामबाण है, शीतज्वर को बहुत लाभप्रद है परन्तु चढ़े ज्वर में गोली नहीं देनी चाहिए । ज्वर चढ़ने से पहले एक गोली शीतल अथवा गर्म जल से देनी चाहिए । यह गोली प्रत्येक प्रकार के दर्दों में हितकर है । पेट का दर्द, आमवात अथवा गठिये का दर्द और न्यूमोनिये के दर्द में लाभदायक है, भूख लगती है और मेदे को ताकत देती है । सूतिका रोग और बच्चों के पसली चलने को मिटाती हैं प्रत्येक प्रकार के ज्वरों में भी गुण करती हैं और वाजीकरण भी है । कितना सरल प्रयोग है ।

खुजली दाद बवासीर पर मलहम्—

कैलोमल Calomal	३६ प्रतिशत
जिंक आक्साईड	११$\frac{2}{10}$ प्रति.
कार्वोलिक एसिड	१$\frac{3}{10}$ प्रतिशत
मोंम सच्ची Bees wax	२$\frac{3}{10}$ प्रतिशत
साफ्ट पैराफीन	४९$\frac{2}{10}$ प्रति.

विधि—किसी शीशे अथवा चीनी की चौड़े मुंह वाली शीशी अथवा डिब्बी में कैलोमल और जिंक आक्साईड को डालकर कार्वोलिक एसिड और सच्चीमोम डाल दें और साफ्ट पैराफीन डालकर किसी छुरी से मिला लें । स्वेत रङ्ग की मरहम तैयार हो जायगी ।

सेवन विधि—किसी नरम कपड़े या उंगली से दाद अथवा बवासीर के मस्सों पर लगावें ।

गुण—इसके लगाने से खुजली, बवासीर, सर्दी के कारण से सूजे हुए अङ्ग और मुहांसे अच्छे हो जाते हैं । दाद (दध्र) और त्वचा सम्बन्धी अन्य रोगों में भी यह मलहम उपयोगी है । खूनी बवासीर के कारण चाहे कितनी ही तकलीफ हो पहली बार लगाते ही आराम मालूम देता है ।

नज़ले पर (क्वाथ)—

मुलहठी	३ माशा
दालचीनी	१ माशा
छोटी इलायची	७ नग
मिश्री	२ तोला

विधि—मुलहठी, दालचीनी, छोटी इलायची (पहली तीन चीजों) को डेढ़ पाव पानी में पकायें, जब पानी आधा रह जाये उतार कर छान लें और मिश्री डाल कर मामूली गर्म रहने पर रोगी को पिलादें । प्रातः सायं दोनों समय सेवन कर सकते हैं । तीन दिन सेवन करने से नजला (प्रतिश्याय) ठीक हो जाता है । इसे पीने के पश्चात किसी प्रकार की पाबन्दी नहीं है (कपड़ा ओढ़ कर सोना या छाया में सोना आवश्यक नहीं) खाने में परहेज आवश्यक है ।

अपथ्य—तैल, खटाई, लाल मिर्च ।

सब रोगों पर कपूर तैल—

सत अजवायन	३ माशे
पेपरमेंट	३ माशे
कपूर देशी	६ माशे

विधि—सब वस्तुओं को शीशी (मजबूत डाट वाली) में डाल दें । थोड़ी देर में स्वेत रंग का तैल तैयार हो जाएगा ।

सेवन विधि—दो से चार बूंद तक बताशे में दे सकते हैं । खांड में डाल कर या पानी में दो

चार बूंद डाल कर रोगी को पिलाएं, दर्द वाले स्थानों पर दो बून्द डाल कर मालिश करें अपनी बुद्धि अनुसार रोगी को प्रत्येक रोग में दे सकते हैं।

सिर दर्द—एक दो बूंद मस्तक पर लगावें। बद-हजमी या पेट का दर्द, मरोड़ आदि में। दो बूंद आधी छटांक सौंफ के अर्क में डाल कर रोगी को पिलावें।

खुजली दाद आदि पर—फुरेंरी से लगावें। बिच्छू, भिड़, ततैया, बालू कीड़ी के विष पर दंश स्थान पर एक दो बूंद डाल कर मालिस करें।

छोटे बच्चों के दस्तों पर—एक बूंद या आधा बूंद आयु के अनुसार जल या मीठी वस्तु में मिला कर खिलावें।

दमे वाले को—एक दो बूंद पान में डाल कर खिलायें।

दांत दर्द पर— फुरैरी से दर्द स्थान पर लगावें और नीचे को मुहं करादें। दर्द बन्द हो जायेगा।

खूनी बवासीर पर—एक दो बूंद बताशे में डालकर प्रातः सायंकाल दें। खून शीघ्र बन्द होगा।

यह तैल कृमिनाशक भी है इसमें तारपीन का तैल मिलाकर घर में अथवा गंदे स्थान पर छिड़क दें। कृमि मर जायेंगे,वायु शुद्ध होगी।

यह एक ऐसा सरल योग है जिसका प्रत्येक घर में रखना आवश्यक है। अकस्मात् हो जाने वाले नये रोग तथा पुराने अनेक रोगों पर रामबाण है।

पृष्ठ १२५० का शेषांश।

गुण—श्वास को जड़ से खोता है अगर घी दूध से कुछ कफ की अधिकता मालूम होवे तो दूध में काली मिर्च डाल कर दूध पीवें।

बालरक्षक योग—

पीपलत्वक भस्म	५ तोला
वंशलोचन	बड़ी इलायची
शुक्ति भस्म	—तीनों १-१ तोला

—कपड़छन कर रख लेवें।

प्रयोग—१-१ रत्ती दवा मां के दूध से देवें।

गुण—बच्चों को होने वाला ज्वर अतिसार वमन अपच सूखा रोग पर लाभकारी है, सूखा रोग पर दवा के साथ-साथ चूने का पानी भी देना चाहिये।

चर्मरोगनाशक तैल—

सरसों	आधा सेर
डामर काला	बिच्छुआ फल
निबौली	—तीनों पाव-पाव सेर
शीशम लकड़ी का बुरादा	आध पाव
नरेटी	१ सेर

—सबको एक मटके में बन्द कर पाताल यन्त्र से तैल निकालें।

इसके लगाने से खाज, खुजली, दाद, छाजन आदि ठीक होते हैं। गलित कुष्ठ पर भी कभी-कभी लाभ होते देखा गया है।

वैद्य लक्ष्मीचन्द्र जमौरिया

प्रधान चिकित्सक—श्री परमार्थ जैन औषधालय
नसीराबाद (अजमेर)

—लेखक—

"श्री वैद्यराज जी अनुभवी एवं सफल चिकित्सक हैं। आपके निम्न प्रयोग अनेकों बार के पूर्ण परीक्षित हैं। प्रथम चार प्रयोग तो आपके वंशानुगत हैं और पर्याप्त लाभप्रद हैं। आशा है पाठकों को इन प्रयोगों से प्रदर, मधुमेह और श्वास जैसे कष्ट-साध्य रोगों की चिकित्सा करने में अवश्य सहायता मिलेगी।"
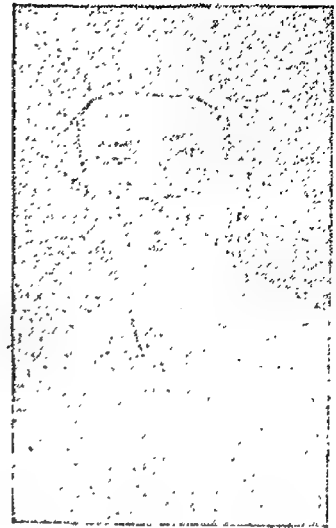
—सम्पादक।

प्रदरनाशक चूर्ण—

चिकनी सुपारी मोचरस खूनखराबा
कमरकस धाय के फूल ५-५ तोला
श्वेत राल बनतुलसी के बीज
पठानी लोध २-२ तोला

—सभी को कूट-छान कर शीशी में रख लेवें।

प्रयोग—३-३ माशा सुबह शाम दवा फांककर ऊपर से चावल का धोवन (पानी) पीवें।

गुण—हर प्रकार का प्रदर श्वेत या लाल, पीला, काला इसके पीने से ठीक होता है। रक्त प्रदर में लाल चन्दन व मिश्री पीसकर दवा लेना चाहिये।

मधुमेहान्तक चूर्ण—

गुड़मार बूटी शंखाहोली मुलैहठी
भृङ्गराज —चारों ५—५ तोला

—सभी चीजों को पीसकर जामुन के रस की भावना देवें।

प्रयोग—३-३ माशा सुबह-शाम लेकर ऊपर से धारोष्ण दूध पीवें।

गुण—कैसा भी पुराना मधुमेह होवे एक महिने में ठीक हो जाता है।

नोट—अधिकतर डाक्टर बन्धु कहते सुने गये हैं कि मधुमेह की अभी तक कोई पेटेण्ट दवा नहीं निकली है। अतः डाक्टर बन्धु भी इस प्रयोग से लाभ उठावें, शतप्रतिशत् लाभकारी सिद्ध प्रयोग है।

श्वासहारी—

जिस प्रयोग के कारण दाहोद, गोधारा (पंचमहल) की अधिकांश जनता हमें भूल नहीं सकती है—हमारा यह प्रयोग डाक्टरों के लिए हमेशा एक चुनौती रहा है।

घी गाय का अद्रक का रस
अरण्डी का तैल —तीनों ५—५ तोला
पीपर छोटी २ तोला
गुड़ पुराना १० तोला

विधि—पहले गुड़ पुराने की एक तार की चासनी कर उसमें तीनों चीजें डाल देवें। थोड़ा और गर्म होने पर पीपर पिसी हुई कपड़छन मिलाकर दवा नीचे उतार लेवें।

प्रयोग—३-३ माशे दवा सुबह-शाम चाटकर ऊपर से घी मिला दूध पीवें।

—शेषांश पृष्ठ १२४६ पर

श्री पं० सोहनलाल शर्मा आयुर्वेदाचार्य आयुर्वेद भास्कर

प्रधान—लक्ष्मी आयुर्वेदिक फार्मेसी दलालपुरा, पटियाला (पैप्सू)

"आपने विशारद गवर्नमैन्ट आयुर्वेदिक कालेज पटियाला तथा वैद्याचार्य (सम्पूर्ण) नि.भा. आयुर्वेद विद्यापीठ, आयुर्वेदाचार्य अ. भा. संस्कृत विश्व विद्यालय बनारस तथा आयुर्वेद भास्कर गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर हरिद्वार से संस्कृत तथा आयुर्वेद की शिक्षा ग्रहण की हैं। इस समय स्वतन्त्र चिकित्सा कर रहे हैं।

निम्न प्रयोग आपके चिरकाल से अनुभूत हैं। आशा है पाठक लाभ उठावेंगे।"

—सम्पादक।

—लेखक—

प्लीहान्तक—

राई यवक्षार कलमीशोरा
सुहागा नवसादर —पांचों १-१ तोला
सज्जीखार नमक चारों ४-४ तोला
कलौंजी १ तोला

—उपरोक्त औषधियों को कूट कर चूर्ण बनायें।
मात्रा—१-१ माशा। अनुपान—प्रातः सायं जल से।
गुण—प्लीहा तथा उदर रोग के लिए लाभकारी है।

लक्ष्मीदन्त मन्जन—

निरविसी कालीहरड़
सोंठ लौंग कत्था
नागरमौथा माजूफल
—प्रत्येक १-१ तोला
बबूल की फली फिटकिरी २-२ तोला
नवसादर ४ तोला
सेलखड़ी ४० तोला
कपूर १ तोला

—उपरोक्त औषधियों में कपूर के अतिरिक्त सबका चूर्ण कर फिर कपूर पीसकर मिलादें।
गुण—सब प्रकार के दन्तरोगों पर लाभकारी हैं।

पूयमेह नाशक वटी—

राल शु० बहरोजा तवासीर
पाषाणभेद —चारों ६-६ माशे
रंगवरद १ माशा
चिकनी सुपारी २ तोला

—इन सबका चूर्ण कर सन्दल तैल में गोली बनावें।
मात्रा—प्रातः सायं १-१ गोली कच्चे दूध की लसी के साथ ७ दिन खायें।
पथ्य-चावल दूध, गेहूँ का दलिया दूध के साथ खायें।

मासिक धर्म लाने के योग—

गोखरू कपास के फूल १॥-१॥ तोला
सोंफ गाजर बीज इन्द्रायण मूल
सोये के बीज मंजीठ २-२ तोला
काले तिल खरबूजा बीज
छिलका अमलतास ४-४ तोला

(शेषांश पृष्ठ १२६८ पर)

धन्वन्तरि महोत्सव समाचार

धन्वन्तरि त्रयोदशी का उत्सव ता० ११।११।५५ तथा १२।११।५५ को समस्त भारत में स्थान-स्थान पर बड़ी धूम-धाम से मनाया गया। इसके विषय में अनेक स्थानों से प्रकाशनार्थ समाचार प्राप्त हुए हैं उनको यथावत् प्रकाशित करना कठिन है, अतएव कतिपय स्थानों के संक्षिप्त समाचार नीचे प्रकाशित कर रहे हैं। इनके अतिरिक्त भी बहुत से समाचार प्राप्त हुए एवं प्रेस कापी तैयार करते समय नित्य-प्रति इस महोत्सव के समाचार प्राप्त हो रहे हैं, किन्तु स्थानाभाव एवं समयाभाव के कारण हम उन सभी समाचारों को धन्वन्तरि में प्रकाशित करने में असमर्थ हैं, अतएव समाचार-प्रेषकों से निवेदन है कि वे इसके लिए हमको क्षमा करेंगे।

—सम्पादक।

रतनगढ़ से—

ता० १२-११-५५ शनिवार को सायंकाल ४ बजे श्री धन्वन्तरि मन्दिर रतनगढ़ में समस्त विश्व को स्वास्थ्य प्रदान करने वाले भगवान् धन्वन्तरि की जयन्ती का माङ्गलिक पर्व पं. कृष्णचन्द्र जी आचार्य के सभापतित्व में सानन्द सम्पन्न हुआ।

मंगलगान पं. गजानन्द जी शास्त्री ने किया तत्पश्चात् भगवान् धन्वन्तरि का पूजन हुआ।

वै. पं. मणिराम जी भिषगाचार्य ने अपने भाषण में आयुर्वेद के मौलिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन करते हुये वात, पित्त, कफ, (त्रिदोष) पर विशद रूप से प्रकाश डाला।

चूरू से—

गत मिति कार्तिक कृष्णा १३ तदनुसार दिनांक १२-११-५५ के प्रातःकाल वैद्य सभा चूरू की ओर से श्री धन्वन्तरि जयंती बड़े समारोह के साथ मनाई गई, जिसमें चूरू के प्रायः सभी वैद्यों ने भाग लिया। श्री धन्वन्तरि के पूजनान्तर कई विद्वान चिकित्सकों के आयुर्वेदीय उन्नति पर सुन्दर भाषण हुए। इसके बाद आगामी वर्ष के पदाधिकारियों का चुनाव हुआ।

सभापति—आयुर्वेदाचार्य पं. शान्तशर्मा जी
उपसभापति—वैद्यराज पं. रूपरामजी शास्त्री
मंत्री—कविराज वासुदेव जी जोशी काव्यतीर्थ
उपमंत्री—वैद्य श्री महावीर प्रसाद जी सहल शास्त्री
कोषाध्यक्ष—वैद्यसागरमल जी आयुर्वेदाचार्य
आय-व्यय निरीक्षक—वैद्य चिरंजीलाल जी ओझा
प्रबन्धक—वैद्य जयदेव जी ओझा

—श्री. वा० कृ० जोशी काव्यतीर्थ।

धौलपुर से—

भगवान धन्वन्तरि के कृपा कटाक्ष से राजकीय आयुर्वेदिक चिकित्सालय में धन्वन्तरि त्रयोदशी समारोह मनाया गया। विद्वान वैद्यों के आयुर्वेद की महत्ता पर सारगर्भित भाषण हुए और भगवान धन्वन्तरि से प्रार्थना की कि प्राणाचार्यों को इतना साहस प्रदान करें कि वे आयुर्वेद यशोवैजयन्ती दिग्दगन्त में फहराते हुए आयुर्वेद को भारत राष्ट्र की राष्ट्रीय चिकित्सा पद प्राप्त कराने में पीछे न हटें।

—वैद्यराज पं० रविनन्दन शर्मा, प्रधान चिकित्सक।

बीकानेर से—

विगत धन्वन्तरि त्रयोदशी को श्री सनातन धर्म आयुर्वेद महाविद्यालय बीकानेर स्थित श्री धन्वन्तरि मन्दिर में बीकानेर के वैद्यों का एक बड़ा समुदाय पूजा के लिये समुपस्थित हुआ। इस अवसर पर राजवैद्य श्री जीवनराम जी व्यास के सभापतित्व में एक सभा का भी आयोजन किया गया। सामयिक चर्चा के अनन्तर सभा में यह विचार प्रस्तुत किया गया कि इन पूजन समारोहों में कुछ नवीनता आनी चाहिए।

सर्व सम्मति से यह निश्चय किया गया कि आयुर्वेद चिकित्सा को अधिकाधिक सफल बनाने के लिए वैद्य महानुभावों को सम्भाषापरिषद के रूप शास्त्रीय सिद्धांत चर्चा या बहुकालीन यशस्वी चिकित्सा से प्राप्त अनुभव के आधार पर आपस में विचार विनिमय करना चाहिये। इस प्रकार हम सहज ही एक दूसरे के ज्ञान का आदान-प्रदान कर सकते हैं। जो कि हमारे लिये अत्यन्त आवश्यक है।

इसका नाम 'चरक सम्भाषापरिषद्' रखने का सुझाव स्वीकार किया गया। इस परिषद् के संयोजक वैद्य विद्याधर शर्मा निश्चित किये गये। यह भी निर्णय किया गया कि विद्यालय के तत्वावधान में इसका अधिवेशन यथासम्भव मासिक हुआ करे। —श्री० वैद्य विद्याधर जी शर्मा, प्रिंसीपल।

कोड़ा (जहानाबाद) में—

दिनांक ११ नवम्बर १९५५ कार्तिक कृष्णा त्रयोदशी शुक्रवार को श्री भगवान धन्वन्तरि का पूजन-हवन आदि शास्त्रोक्त विधि के द्वारा मनाया गया। श्री पं. जगन्नाथप्रसाद आ० पंचानन प्रयाग निवासी लिखित श्री भगवान धन्वन्तरि पूजन किया। श्री पं०शम्भूनाथ शास्त्री आचार्य आयुर्वेदालंकार प्रिंसीपिल आयुर्वेद महा विद्यालय कानपुर के द्वारा आयुर्वेद उपदेश, स्वास्थ्य-विज्ञान बताया गया। पं०रामऔतार त्रिपाठी आचार्य के द्वारा स्वस्तिवाचन हुआ, पश्चात् प्रसाद वितरण किया, निशुल्क चिकित्सा भी की गई।

—चिकित्सक रामगोपाल गुप्त ए० बी० एस०।

महेन्द्रगढ़ में—

आज ता० ११-११-५५ तदनुसार मिति कार्तिक कृष्णा (१३) त्रयोदशी शुक्रवार को दिन में २ बजे श्री ताराचन्द्र धर्मार्थ आयुर्वेद औषधालय में श्री जोशी जगदीश प्रसाद जी आयुर्वेदाचार्य के सभापतित्व में श्री धन्वन्तरि महोत्सव पूर्ण समारोह से सम्पन्न हुआ, जिसमें सर्व प्रथम भगवान् धन्वन्तरि का वेदध्वनि से पूजन हुआ।

१-श्री भोलानाथ जी वैद्य द्वारा झण्डाभिवादन।

२—वैद्यमार्तण्ड श्री शंकरदत्त जी द्वारा देववाणी में सुन्दर कविता एवं प्रभावशाली आयुर्वेद-विषयक भाषण।

३—प्रधानमंत्री जिला सभा द्वारा वार्षिक रिपोर्ट सुनाई गई तथा एलोपैथिक इन्जेक्शन और औषधियों के विरोधक प्रस्ताव पास हुये।

४—श्री पं. मदनमोहन जी संगीताचार्य द्वारा मधुर-गान हुआ। —प्र. मंत्री।

सतना में—

कार्तिक वदी १३ शुक्रवार को ३ बजे सायंकाल शहर के वयोवृद्ध श्री प्रयागदत्त जी राजवैद्य के यहां धन्वन्तरि जयन्ती बड़े धूमधाम से मनाई गई। जिसमें शहर तथा आसपास के ग्रामीण वैद्य व शहर के सम्मानित महानुभाव उपस्थित थे। भगवान् धन्वन्तरि के पूजन-अर्चन के बाद प्रसाद वितरण होकर समारोह समाप्त हुआ।

गुसाईगंज में—

राजकीय आयुर्वेदिक चिकित्सालय गोसाईगंज की ओर से ११-११-५५ के दिन श्री महावीर प्रसाद जी एम० एल० ए० की अध्यक्षता में धन्वन्तरि जयन्ती बड़े धूम-धाम से मनाई गई जिसमें भजन, स्वास्थ्य सम्बन्धी प्रवचन, प्रदर्शन और सरकार से एक प्रस्ताव द्वारा वर्त्तमान चिकित्सालय को ब्लाक में लेने व चिकित्सालय भवन बनवाने की प्रार्थना की गई।

सभापति महोदय ने अपने भाषण में आयुर्वेद की उपयोगिता पर प्रकाश डाला और चिकित्सा भवन-निर्माण-हेतु एक निर्देशक कमेटी बनाने की सलाह दी। —पं. महेशचन्द्र शर्मा चिकित्साधिकारी।

छतारी (बुलन्दशहर) में—

सदैव की भांति इस वर्ष भी धन्वन्तरि त्रयोदशी के दिन धन्वन्तरि जयन्ती वैद्य मंडल सभा की ओर से समारोह के साथ मनाई गई। श्री धन्वन्तरि का

पूजन करके श्रद्धांजलि समर्पित उनके द्वारा संसार के प्रति की गई उपकारिता की व्याख्या हुई एवं आगन्तुक वैद्यों को अध्यक्ष मंडल वैद्य सभा पं० सागरदत्त स्वामी की ओर से जलपान कराकर धन्वन्तरि जी को कोटानुकोटि धन्यवाद देकर सभा विसर्जित हुई। —अध्यक्ष मण्डल वैद्य सभा।

साटापारा में—

दिनांक ११-११-५५, तदनुसार मिती कार्तिक कृष्णा त्रयोदशी दिन शुक्रवार को शाम के ५ बजे स्थानीय वैद्यों के द्वारा बड़े समारोह के साथ धन्वन्तरि जयन्ती मनाई गई।" —वैद्य चिरंजीलाल शर्मा

काशी में—

अर्जुन आयुर्वेद विद्यालय काशी में श्री त्रिभुवन नारायणसिंह एम. पी. की अध्यक्षता में धन्वन्तरि जयन्ती मनायी गयी। श्री बालकृष्ण जेतली एवं श्री शम्भुनाथ बुचके के वेदपाठ के पश्चात् श्री हेमराज भाई एवं श्री ब्रजलाल मेहता ने मंगलाचरण किया। श्री पं. ताराशंकर वैद्य के स्वागत भाषण के पश्चात् श्री शिवविनायक मिश्र वैद्य; कविराज ब्रजमोहन दीक्षित, आचार्य शिवदत्त शुक्ल, श्री सुरेन्द्रनाथ शास्त्री एवं श्री कविराज प्रतापसिंह के भाषण हुए। अन्त में सभापति पद से बोलते हुए श्री सिंह ने कहा कि आयुर्वेद की उन्नति के लिये एलोपैथों का व्यावसायिक दृष्टिकोण भी अपनाना अनिवार्य है एवं सस्ती, सुलभ तथा सरलता से व्यवहार में आने योग्य औषधियां गांव में भेजना चाहिये जिससे आयुर्वेद का अधिकतम प्रचार हो। वक्ताओं ने इस बात पर असन्तोष प्रकट किया कि सरकार वैद्यों की बातों पर समुचित ध्यान नहीं देती। —श्री० ताराशंकर वैद्य।

गोरखपुर में—

जिला आयुर्वेद मण्डल गोरखपुर द्वारा दिनांक ११-११-५५ को ११ बजे दिन से स्थानीय कालीबाड़ी मन्दिर के प्रांगण में धन्वन्तरि समारोह बड़े उत्साह के साथ मनाया गया। नगर तथा जिले के वैद्यों की उपस्थिति अच्छी थी। सर्व प्रथम भगवान श्री धन्वन्तरि जी महाराज का पूजन, हवन, प्रार्थना आदि सामूहिक रूप से सम्पन्न हुआ। तदनन्तर श्री पं० मालीराम जी आयुर्वेदाचार्य के सभापतित्व में कार्यवाही प्रारम्भ हुई, सर्व प्रथम श्री पं० रावारमण शास्त्री ने धन्वन्तरि अवतार पर प्रकाश डाला। तत्पश्चात् श्री पं० सूर्यदेव जी प्राणाचार्य ने अपने सारगर्भित भाषण में आयुर्वेद की महत्ता के सम्बन्ध में विदेशी विद्वानों के मत का उद्धरण देते हुए आयुर्वेद की प्राचीनता सिद्ध की और "हेतुव्याधि विपर्यस्त विपर्यस्तार्थ कारिणां" की व्याख्या करते हुए कहा कि संसार की सभी चिकित्सा पद्धतियां आयुर्वेद के केवल एक-एक अंश की पूरक हैं। आयुर्वेद ही एक ऐसा शास्त्र है जिसमें आयु और चिकित्सा के सम्बन्ध में पूर्ण विचार किया गया है। भगवान् धन्वन्तरि का आविर्भाव शल्य प्रधान विधि के प्रचार के लिये ही हुआ था जैसा कि स्वयं उन्होंने सुश्रुत संहिता में प्रारम्भ में ही कहा है।" अन्त में वैद्यों के संगठन पर जोर देते हुए भाषण समाप्त किया।

आगरा से—

"श्री शिव-आयुर्वेद विद्यालय का उत्सव"

यह उत्सव विद्यालय के छात्रों की ओर से श्री निहालसिंह जी शर्मा मंत्री जिला बोर्ड के सभापतित्व में श्री शिव चिकित्सालय भवन में बड़े समारोह के साथ १२-११-५५ को सायंकाल मनाया गया। इस अवसर पर नगर के गण्यमान वैद्य तथा नगर के कतिपय प्रमुख नेता भी उपस्थित थे। श्री ब्रह्मानन्द जी विद्यालंकार, श्रीमहेन्द्र जी आदि अनेक विद्वानों ने आयुर्वेद महत्व पर सारगर्भित भाषण दिये। समस्त वैद्यों की सम्मति से श्री प्रयागदत्त जी वैद्य ने एक प्रस्ताव श्रीमहेन्द्र जी के समक्ष प्रस्तुत किया कि अन्य उत्सवों के साथ श्री धन्वन्तरि जयन्ती भी नागरी प्रचारणी सभा द्वारा मनाई जाया करे। श्रीमहेन्द्र जी ने इस प्रस्ताव का स्वागत किया तथा आश्वासन दिया कि मैं इसके लिये पूरा प्रयत्न करूंगा।

प्रतापगढ़ (राजस्थान) में—

दिनांक ११ नवम्बर को नगर वैद्य सभा की ओर से धन्वन्तरि जयन्ती महोत्सव म्यूनिसिपल बोर्ड के चैयरमन श्री अमृतलाल जी वकील साहब की अध्यक्षता में बड़े ही समारोह पूर्वक मनाया गया। भगवान धन्वन्तरि का पूजन एवं आरती होने के उपरान्त सभा की कार्यवाही प्रारम्भ हुई। सर्व प्रथम वैद्य श्री चन्द्रशेखर जी व्यास ने संस्कृत पद्यों द्वारा धन्वन्तरि वन्दना की, तदुपरान्त नगर वैद्य सभा के अध्यक्ष श्री वैद्य प्रहलादराय देवाश्री B. I. M. S. साहित्यायुर्वेदरत्न का धन्वन्तरि एवं आयुर्वेद पर बड़ा ओजस्वी भाषण हुआ जिसका जनता पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा।

जूनागढ़ में—

जुनागढ़ के श्री धन्वन्तरि प्रसाद औषधालय संचालित-श्री धन्वन्तरि आरोग्य भवन में—धन्वन्तरि जयन्ती महोत्सव मनाया गया। श्री धन्वन्तरि मन्दिर में भगवान् श्री धन्वन्तरि का पूजन हुआ।

पूजाविधि के समय यहां का वैद्य समाज और प्रतिष्ठित नागरिक उपस्थित थे। जिनके समक्ष प्रासंगिक प्रवचन भी हुआ।

इस्लामपुर (राजस्थान) में—

ता० ११-११-५५ को स्थानीय श्रीमाहेश्वरी आयुर्वेदीय औषधालय भवन में धन्वन्तरि जयन्ती महोत्सव के साथ स्वास्थ्य संरक्षण सप्ताह का कार्य-क्रम समाप्त हुआ। आयुर्वेद वाचस्पति वैद्य विरञ्चीलाल जी शास्त्री भिषग्रत्न अध्यक्ष थे। स्वास्थ्य संरक्षण सप्ताह में आस पास के ग्रामों में दौरा करते हुए बिना फीस रोग परीक्षण तथा मुफ्त औषधि वितरण के साथ स्वास्थ्य संरक्षण के सूत्र बतलाये गये तथा अपने देश में होने वाली औषधियों की उपयोगिता बतलाई गई, आयुर्वेद केसरी नागरमल जी वैद्य द्वारा चरक का साप्ताहिक पारायण समाप्त करने के बाद धन्वन्तरि पूजन हवन तथा प्रसाद वितरण किया गया। —मंत्री।

भिवानी में—

सुश्रुत नेत्र चिकित्सालय में श्री धन्वन्तरि महोत्सव बड़ी धूमधाम से मनाया गया तथा प्रो० गंगाचरण जी, मोहनकृष्ण आयुर्वेदाचार्य सदस्य बोर्ड आ० यू० पंजाब तथा गंगादत्तआयुर्वेदाचार्य डा०बी एन० शर्मा आदि ने धन्वन्तरि महोत्सव पर भाषण दिया तथा वैद्य बन्धुओं से संगठन की प्रार्थना की तथा आयुर्वेद उन्नति के साधन बताये गये।

मांडल (भीलवाड़ा) में—

दिनांक ११ नवम्बर सन् १६५५ ई० को धन्वन्तरि जयन्ती समारोह के उपलक्ष में श्री उन्मत्त भैरव चौक में मांडल नगर भीलवाड़ा में स्थानीय राजकीय आयुर्वेदिक औषधालय की ओर से एक सार्वजनिक सभा का आयोजन किया गया।

प्रातः श्रीमान् जोशी साहब श्री जटाशंकर जी की अध्यक्षता में ध्वजवन्दन मंगलाचरण तथा श्री धन्वन्तरी प्रादुर्भाव एवं आयुर्वेद प्रादुर्भाव पर श्री वैद्य हीरालाल जी प्रधान चिकित्सक ने प्रकाश डाला और कई मान्यगण विद्वानों के देशी चिकित्सा पर सारगर्भित भाषण हुये और भगवान् श्री धन्वन्तरि की पूजन-आरती से कार्य पूर्ण हुआ।

—पं० जटाशंकर जोशी।

समाचार एवं सूचनाएँ

फतेहपुर ज़िला वैद्य सम्मेलन का

वार्षिकोत्सव—

२-११-५५ को किशुनपुर में मेले के शुभ अवसर पर जिला वैद्य सम्मेलन का वार्षिकोत्सव पं. कालीचरण जी वैद्य नागपुर के सभापतित्व में मनाया गया। सभा का उद्घाटन प्रयाग के प्रसिद्ध वैद्य, ब्रह्मर्षि पं. जगन्नाथ प्रसाद जी शुक्ल आयुर्वेदपञ्चानन तथा आयुर्वेद वृहस्पति ने किया। आपने अपने भाषण में डाक्टरों की आयुर्वेद के प्रति कुटिल नीति का दिग्दर्शन कराते हुए कहा कि डाक्टरों का आयुर्वेद के विनाश का प्रयास देश-द्रोह है। वैद्यों को जोशीले शब्दों में आह्वान किया गया कि वे सजग और संगठित होकर आयुर्वेद की रक्षा और उसके उत्कर्ष के कार्यों में जुट जायें। आपने जनता जनार्दन का प्रेम और सहानुभूति प्राप्त करनी परमावश्यक बताया। श्री महादेव प्रसाद जी वैद्य सदस्य डिस्ट्रिक्ट बोर्ड, श्री पं. रामगोपाल जी वैद्य कार्यकर्त्ता जिला कांग्रेस कमेटी, श्री पं. रामदत्त जी प्रचारक और महावीर प्रसाद शर्मा वैद्य प्रधानमन्त्री के भाषण उल्लेखनीय हैं। चुनाव-सभापति श्री पं. हरिश्चन्द्र जी शुक्ल वैद्य, प्रधान मन्त्री महावीर प्रसाद शर्मा वैद्य और कार्याध्यक्ष श्री महावीर प्रसाद त्रिपाठी चुने गये।

—महावीर प्रसाद शर्मा वैद्य "आयुर्वेदावतंस"
प्रधान मन्त्री, एकडला (फतेहपुर)

शिमला आयुर्वेद कांग्रेस का

उद्घाटन भाषण

शिमला आयुर्वेद कांग्रेस का उद्घाटन करते हुए आयुर्वेद वृहस्पति पं. कान्तिनारायण मिश्रा ने कहा कि जैसे भारत स्वतन्त्रता के पश्चात् संक्रमण काल से गुजर रहा है; उसी प्रकार आयुर्वेद भी परिवर्तन काल से गुजर रहा है। प्रत्येक देश के इतिहास में यह एक नाजुक स्थिति रही है। इस लिये इस परिवर्तन काल में रहने वाले व्यक्तियों का कर्त्तव्य हो जाता है कि वे भावी सन्तति के भाग्य को एक उत्तम ढांचे में ढाल दें, क्योंकि परिवर्त्तन काल रचनात्मक काल भी माना जाता है। आयुर्वेदिक चिकित्सा प्रणाली का जहां तक सम्बन्ध है हमें मालूम है कि भारतीय जनता इस पर मुग्ध है क्योंकि आर्थिक व्यवहारिक तथा स्वाभाविक दृष्टि से यह उनके अनुकूल पड़ता है। उत्तम प्रकार की औषधियां जो सस्ती भी हों उनकी जनता में अधिकाधिक मांग बढ़ रही है। मेरा यह अनुभव है कि यही एक ऐसी चिकित्सा पद्धति है जो कि प्रत्येक दृष्टिकोण से प्रभावशाली रूप में जनता की हर मांग को पूरा करने की क्षमता रखती है। भारत सरकार ने जिन जिन वस्तुओं की प्राथमिकता दी है उनकी उसने एक सूची तैयार की है, उस सूची के अनुसार आयुर्वेद का स्थान पिछड़ा हुआ प्रतीत होता है।

अधिकारी वर्ग में से कुछ व्यक्ति हमारे ऊपर केवल इस आधार पर आक्षेप करते हैं कि आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति किसी समयविशेष में लाभदायक रही होगी किन्तु अब यह समय के अनुकूल नहीं है और नहीं इसमें कुछ नवीनता लाई गई है।

अतएव प्रगतिशील पाश्चात्य चिकित्सा प्रणाली से न तो इसकी तुलना की जासकती है और नहीं इसके साथ उसकी प्रतिद्वन्दिता मानी जा सकती है। वे अनुभव करते हैं कि इस दिशा में जो प्रयत्न किया जावेगा वह समय, धन और शक्ति का व्यर्थ में दुरुपयोग ही होगा। हमें आयुर्वेद के हित चिन्तकों की सहायता से तथा सब वैध उपायों एवं साधनों से

इस प्रकार के पक्षपातपूर्ण व्यवहार से लड़ना है जिससे कि आयुर्वेद अपने प्राचीन गौरव को प्राप्त कर सके। सर्व प्रथम हमें एक स्वर से संगठित मांग मांगनी चाहिए कि आजकल की जो विश्वविद्यालयों की पाठ्यप्रणालियां हैं उनमें आमूल परिवर्त्तन की आवश्यकता है। जैसे आयुर्वेद के महाविद्यालयों में प्रवेश नियम केवल दशमकक्षा या एफ. एस-सी. उत्तीर्ण करना है किन्तु दशमकक्षा या एफ. एस-सी. तक के पाठ्यक्रम में आयुर्वेद संबन्धी विषय नहीं पढ़ाये जाते। जैसे कि–डाक्टरी के प्रवेश नियमों में एफ. एस-सी. मैडिकल विषय में उत्तीर्ण करना परमावश्यक है। इसलिए विश्वविद्यालयों से मांग की जाए कि मैट्रिक के पाठ्यक्रम में सांख्य न्याय और योग तीन विषय उन विद्यार्थियों के लिये रख दिये जावें जो आयुर्वेद पढ़ना चाहते हैं। तथा प्राज्ञ विशारद शास्त्री और इनके समान दूसरी परीक्षाओं में भी सांख्य न्याय और योग के साथ साथ अंग्रेजी भाषा मैट्रिक के स्तर (योग्यता) तक पढ़ाई जानी परमाश्यक है। इस प्रकार के विद्यार्थी सचमुच आयुर्वेद के धुरन्धर विद्वान बन सकेंगे। फिर उनके मन पर पाश्चात्य विज्ञान की ओर झुकने की प्रवृतियां न होंगी। इस प्रकार पाठ्य निर्माण करने से आयुर्वेद को पुनर्जीवित किया जा सकता है।

सब विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम में समानता होनी चाहिए, उन्होंने आगे कहा कि–मैं इस बात को बहुत आवश्यक नहीं समझता कि आपको यह बताऊं कि आयुर्वेद का कितना महत्व है और परमादरणीय महर्षिगण इस दिशा में किस प्रकार महत्वपूर्ण अन्वेषण कर चरमसीमा तक पहुँच गये थे, परन्तु फिर भी यह कहना पुनरुक्ति सी होगी कि भारतवर्ष में अन्यान्य विज्ञान और कलाओं की तरह भैषज्य तथा शल्य चिकित्सा में भी इतना विकास हो चुका था कि दूसरे देश इस दिशा में अपने पथ प्रदर्शन के लिए तथा परामर्श के लिए भारतवर्ष को गुरू की दृष्टि से देखते थे। नालन्दा और तक्षशिला के विश्वविद्यालय ऐसे शिक्षण के प्रमुख केन्द्र थे जहां कि दूसरे देशों के प्रमुख विद्वान् हमारे पूर्वजों के चरणों में शिक्षा प्राप्त करने आते थे। यह एक साधारण बात समझी जाती है कि पाश्चात्य शल्य चिकित्सा प्रणाली ऐरेबिक हैलेनिक शल्य चिकित्सा पर अवलम्बित है। और यह भी एक तथ्य माना जाता है कि हैलेनिक और ऐलेनिक शल्य चिकित्सा का अपना मूल उद्गम सुश्रुत संहिता से ही है। खलीफा अलमनसूर ने सातवीं शताब्दी में चरक और सुश्रुत संहिता का ऐरेबिक भाषा में अनुवाद कराया था। यह सुश्रुत संहिता का भाषानुवाद कलिलेशाहे सूरआलहिन्दी के नाम से प्रसिद्ध है। तदनन्तर यह भाषानुवाद लैटिन भाषा में अनुदित किए गये। भारतीय औषधि निर्माण कला तथा शल्य चिकित्सा की शिक्षा में विदेशों में प्रचार का कारण यह भी था कि प्राचीन काल में प्रचारक लोगों ने दूर दूर की यात्रा करते हुए बौद्धधर्म द्वारा प्रचारित शान्ति तथा पारस्परिक प्रेम का लोगों में उपदेश किया और जिन जिन स्थानों की उन्होंने यात्रा की थी वहां के निवासियों के रोगों को आयुर्वेद चिकित्सा द्वारा निर्मूल करने के लिए प्रयत्न किए।

बहुत से पाश्चात्य वैज्ञानिक डाक्टर और अन्वेषक यह देखकर आश्चर्यान्वित हैं कि अति प्रचीन काल में भारत के निवासी अन्वेषण के साधनों के विना तथा आधुनिक ढंग की प्रयोगशालाओं के अभाव में भी किस प्रकार अपने उच्चकोटि के अन्वेषण करने में सफल हो सके। इन डाक्टरों ने इस सम्बन्ध में भारतवर्ष के ऋण को स्वीकार किया है। और लिखते हैं कि योरुप की सम्पूर्ण प्लास्टिक शल्य चिकित्सा ने एक नई उड़ान ली जब कि हमें भारतीय शल्यों के चातुर्यपूर्ण आविष्कारों का ज्ञान हुआ। अन्त में उन्होंने बताया कि पैप्सू राज्य सरकार इस ओर प्रगतिशील है, और केवल ३-४ वर्षों में ही एक विशाल आयुर्वेदीय संस्था का निर्माण कर चुकी है। पचास शय्याओं का एक आतुरालय औषध निर्माणशाला आदि आदि। तथा आगामी द्वितीय पञ्चवर्षीय

योजना में ३० लाख रुपये व्यय करने की स्वीकृति प्रदान की है, यह द्रव्य निम्न लिखित योजनाओं को पूर्ण करने के लिये व्यय किया जावेगा।

(१) पैप्सू राजकीय आयुर्वेद कालेज का छात्रावास।
(२) आतुरालय में पच्चीस शय्याओं की वृद्धि।
(३) औषधि निर्माणशाला का विकास।
(४) ५० चिकित्सालय।
(५) वनौषधियों का उद्यान (जहां पर कि भिन्न-भिन्न स्थानों में पैदा होने वाली वनस्पतियों को लगाया जाएगा। वनौषधियों की विद्यार्थियों को जानकारी तथा गुणान्वेषण होगा।

अन्त में उन्होंने पैप्सू सरकार का बहुत धन्यवाद किया और कहा कि आयुर्वेद को पुनः समृद्ध करने के लिए जो प्रशंसनीय कदम पैप्सू सरकार ने उठाए हैं वे प्रत्येक प्रान्त के लिए आदर्श एवं अनुकरणीय हैं।

श्री व्यास जी का स्वर्गवास—

बोहड़ा कलां (गुड़गांव) निवासी प्रसिद्ध राजवैद्य पंडित रामचन्द्र जी शर्मा 'व्यास', १३ अक्टूबर १९५५ को प्रातः ११॥ बजे अपनी जीवन-लीला समाप्त कर लगभग ९० वर्ष की आयु में बिना किसी कष्ट के गोविन्द धुन में लीन परमधाम को सिधार गए।

स्वर्गीय वैद्य जी आयुर्वेद शास्त्र के तो प्रकांड पंडित थे ही, साथ ही साथ ज्योतिष में भी आपका ज्ञान कुछ कम न था। चारों ओर कई-कई मीलों तक सम्भवतः ही कोई अन्य आप जैसा निदानज्ञ हो। आपका शास्त्राध्ययन बहुत ही गहन था। विषय की तह तक पहुंचने की आपमें अद्भुत शक्ति थी।

चिकित्सा में आपको बहुत बड़ा अनुभव प्राप्त था। १८ वर्ष की आयु में आप सर्व प्रथम चिकित्सक के रूप में आए। तभी से अपनी तीव्र बुद्धि द्वारा लोक प्रिय होने लगे और कुछ दिनों बाद ही आप एक सफल चिकित्सक के रूप में चांदनी चौक दिल्ली में चिकित्सा कार्य करने लगे। यहां आपको एक नया मार्ग मिला और आप चिकित्सालय में न रह बड़े-बड़े रईसों और राजा महाराजाओं के चिकित्सक बने और प्रायः सारे ही समय अपने चिकित्सालय से बाहर रहने लगे। इसी अवस्था में ब्रिटिश राज्य ने आपको 'कुर्सीनशीन' की पदवी दी। ४० वर्ष तक आप इसी प्रकार काम करते रहे, परन्तु फिर परिस्थियों वश आपकी विचार धारायें परिवर्तित हो गईं और आप दिल्ली छोड़ गांव लौट गए।

आप बहुत दिनों तक ग्राम कांग्रेस कमेटी के प्रधान रहे। आपने अपनी सहायता से गांव वालों को अपना बना रखा था, किन्तु बहुत दिनों से यह कार्य भी आप नहीं करते थे। अतिथि सत्कार के लिए आप गांव भर में प्रसिद्ध थे। आपकी अनुपस्थिति बहुत दिनों तक गांव वालों को अखरेगी। भगवान आप की आत्मा को शान्ति दें, यही प्रार्थना है। —पं० गजराज शर्मा व्यास।

(पृष्ठ १२५१ का शेषांश)

—उपरोक्त औषधियों को कूट कर चूर्ण करें।
मात्रा—प्रातः सायं ६-६ माशा जल के साथ लें।
गुण—मासिक धर्म लाने के लिये लाभकारी है।

आयुर्वैदिक चाय—

बड़ी तुलसी		१ सेर
दालचीनी		सुगन्धवाला
तेजपत्र		—तीनों १०-१० तोला
सौंफ	ब्राह्मी बूटी	मुलहठी
गुलबनफसा		—तीनों १-१ पाव
पीपल		नागरमोथा
लौंग		—तीनों ५-५ तोला
जायफल		१ तोला

—उपरोक्त सबको अधकूट कर कार्य में लावें।
मात्रा—३ माशा से ६ माशे तक।
गुण—प्रतिश्याय, कास, कफज्वर, मस्तिक दुर्बलता, हृदय को प्रसन्नता और शरीर को बलदायक है।
नोट—बाजार की चाय से अत्यन्त लाभकारी है।

वनस्पति शास्त्र
और
आयुर्वेद

नव्य वनस्पति विज्ञान का आयुर्वेद के साथ क्या सम्बन्ध है और वह इस चिकित्सा विज्ञान की उन्नति में कहां तक उपयोगी हो सकता है। यह बात अभी तक अधिकांश वैद्यों को ज्ञात नहीं है। वनस्पति शास्त्र का ठीक अभिप्राय भी प्रायः उन्हें ज्ञात नहीं होता। संभवतः निघण्टु जैसा ही यह शास्त्र भी समझते हैं। अतः इसके महत्व के विषय में भी उन्हें कुछ भ्रम रहता है। अतः वनस्पति शास्त्र सम्बन्धि लेखमाला के प्रारम्भ में इस शास्त्र का परिचय देना उचित ही है।

जिस प्रकार शारीर-शास्त्र, मनुष्य शरीर की रचना के साथ उसमें होने वाली क्रियाओं को भी समझाता है। ठीक इसी प्रकार वनस्पति शास्त्र निघण्टु शास्त्र के समान वनस्पतियों के गुणों का वर्णन न करके उनकी रचना, आकार प्रकार तथा उनके पोषण प्रकार तथा उनमें होने वाली अन्य क्रियाओं का वर्णन करता है। इस शास्त्र के निम्नलिखित भाग हैं।

१—स्थूल आकृति विज्ञान (morphology)
२—औतिकी या सूक्ष्माकृति विज्ञान (histology)

+ आयुर्वेद में एनाटॉमी तथा फिजियोलोजी दोनों के लिये सम्मिलित शब्द "शारीर" का प्रयोग किया गया है। (देखो सुश्रुत शारीर)

३—क्रिया विज्ञान (physiology)

४—पारिस्थिकी (ecolygy)

५—वर्गीकरण (Systemic Botany)

यह शास्त्र बहुत विस्तृत होरहा है। अब तक सब मिलाकर वनस्पतियों की ३१८,६२० उपजातियां ज्ञात होचुकी हैं। इसीसे इसकी विशालता का अनुमान लगाया जा सकता है। किन्तु आयुर्वेदज्ञ के लिए इतना सब जानने की आवश्यकता नहीं। वैद्य के गुणों को गिनाते हुए किसी आचार्य ने कहा है—

निघण्टुना विना वैद्यो विद्वान् व्याकरणं विना।
विनाभ्यासेन धानुष्को त्रयो यान्ति हास्यताम् ॥

अतः वैद्य को वनस्पतियों का ज्ञान होना ही चाहिए। न केवल नाम मात्र से और गुणों की दृष्टि से ही अपितु स्वरूप की दृष्टि से भी उसे वनस्पति-विज्ञ होना चाहिये। जैसा कि भगवान् अग्निवेश ने उपदेश दिया है।

न नाम ज्ञान मात्रेण न रूपमात्रेण वापुनः।
ओषधीनां परां प्राप्तिं कश्चिद्वेदितुमर्हति ॥
ओषधं ह्यनभिज्ञातं नामरूप गुणैस्त्रिभिः।
विज्ञातं चापि दुर्युक्तमनर्थायोपपद्यते ॥

—चरक सूत्र

इसी प्रकार हमारा कहना है—

अरूपविन्मोहमुपेति वैद्यो, न वेत्तिपश्यन्नपिभेषजानि
क्रियाक्रमोनेष्वलमूलमेव, तदर्भपलं चाप्यौद्भिच्छास्त्र-मूलम् ॥

औषधि सामने होते हुए भी यदि वैद्य उसके रूप का ज्ञाता नहीं है तो उससे लाभ उठाना तो अलग, पहचानना भी कठिन है। औषधियों का स्वरूप विज्ञान तो केवल नव्य-वनस्पति शास्त्र (औद्भिद् शास्त्र) द्वारा ही हो सकता है। अतः प्रत्येक चिकित्सक को कम से कम औषधियों के स्थूल रूप का परिचय कराने वाले इस शास्त्र का परिचय होना ही चाहिए। स्थूल या बाह्याकृति विज्ञान से यह ज्ञात होता है कि मूल किसे कहते हैं, उसके कितने प्रकार हैं; उनका स्वरूप तथा मुख्य कार्य क्या है। इसी प्रकार काण्ड (तना) पत्र पुष्पादि के सम्बन्ध में भी इस शास्त्र से ज्ञान होता है। इस ज्ञान का मुख्य लाभ तो यह है कि इसके द्वारा वनस्पतियों के मूल, तना, पत्र-पुष्पादि की आकृति का इस प्रकार वर्णन किया जा सकता है कि उस वर्णन को पढ़कर स्वयं वनस्पति को पहचाना जा सकता है। यदि कोई नवीन वनस्पति मिले तो इस शास्त्र के अनुसार उसका वर्णन इस प्रकार किया जा सकता है कि इस शास्त्र का ज्ञाता विना दिखाए भी उसे पहचान सकता है। अतः प्रत्येक वैद्य को कम से कम बाह्य आकृति विज्ञान का ज्ञाता होना चाहिए। इस ज्ञान के अभाव में क्या गति होती है इस भाव को किसी हास्य-प्रिय कवि ने निम्न पद्य में दर्शाया है।

यस्य कस्य तरोर्मूलं येनकेनापि पेषितम्।
यस्मै कस्मै प्रदातव्यं यद्वा तद्वा भविष्यति ॥

अभी तक आयुर्वेद की दृष्टि से किसी भी प्रकाशक ने सचित्र रूप से समस्त 'स्थूलाकृतिविज्ञान' को आयुर्वेद संसार के सन्मुख उपस्थित नहीं किया है। यह बहु-व्ययसाध्य कार्य है। चित्रों में पर्याप्त व्यय होता है और विना चित्रों के इसे समझना कठिन है। जब तक अध्यापक स्वयं प्रत्यक्ष दर्शन न करावें। अतः लेखमाला का सचित्र होना परमावश्यक है। इस भार को आयुर्वेद जगत् के पुराने सेवक तथा सुपरिचित धन्वन्तरि परिवार विजयगढ़ ने वहन करने का संकल्प किया है अतः वे धन्यवाद के भागी हैं। लेखक तो निमित्तमात्र है।

वनस्पतियों के भाग

पौधों का अध्ययन करने से पहले उसके स्थूल

अङ्गों की जानकारी आवश्यक है। यथा शरीर का अध्ययन करते समय हाथ, पैर, शिर, धड़ आदि मुख्य एवं प्रत्यक्ष दिखाई देने वाले अंगों का ज्ञान परमावश्यक है। साधारणतः वैद्य बन्धुओं ने औषधियों के पंचाङ्ग का नाम अवश्य सुना होगा। इस पंचाङ्ग में समग्र पौधे का समावेश होजाता है। यह पंचाङ्ग है-(१) मूल (२) स्कन्ध या तना (३) पत्र, (४) पुष्प (५) फल। वनस्पतियों के अन्य अङ्ग तैल, गोंद निर्यास, सत्व आदि इसी के अन्तर्गत आजाते हैं। इन पंचांगों का अध्ययन करने के लिए हमें ऐसा पौधा लेना चाहिए जो सर्व सुपरिचित हो और सब स्थानों में मिलता हो यथा एरण्ड, आलु, मटर, चना, आम, सरसों आदि।

(१) जड़ें या मूल वनस्पति को स्थिर रखती हैं। साथ ही साथ मिट्टी में से जल और जल में घुले खाद्य पदार्थों और लवणों को भी चूसती रहती हैं। वे ही वृक्ष के लिए आहार संग्रह करती हैं। और इसी संग्रहीत आहार को प्राणि भी अपने काम में लाते हैं और वैद्यजन औषधि निर्माण में भी।

(२) तना वनस्पति को स्थिरता प्रदान करने के साथ-साथ आहार का संवहन भी करता है। तने द्वारा ही आहार पत्तियों और फूलों तथा फलों तक पहुँचता है। औषधि-निर्माण में काम आने वाले अनेक सत्त्वों का संग्रह भी इसमें रहता है। यथा गिलोय का सत्त, खदिर सत्त्व आदि।

(३) पत्र या पत्तियां भोजन को आत्मसात करती है और फेफड़ों का भी काम करती हैं। ये पौधों पर इस प्रकार लगी रहती हैं कि प्रत्येक पत्ती को सूर्य का प्रकाश मिलता रहे। सूर्य प्रकाश में ये वायु में से कार्बन द्विओषित (अंगाराम्ल) नामक वायव्य को सोखती हैं और पृथ्वी से जड़ द्वारा शोषे आहार का संश्लेषण जल की सहायता से करती हैं। इस प्रकार अशुद्ध कार्बन द्विओषित(Carbon-di-oxide) को ग्रहण कर ओषजन या प्राणवायु (Oxygen) को स्वतन्त्र कर देती है। जिससे वायु-मण्डल शुद्ध होता रहता है और प्राणियों को शुद्ध वायु मिलती है। तथा अनेक प्रकार के तैल एवं अन्य पदार्थ उनमें से चिकित्सा के लिए वैद्य को प्राप्त होते हैं। उक्त तीनों अङ्गों को वानस्पतिक (Vegetative) कहा जाता है। पुष्प उत्पादक (Reproductive) अङ्ग है।

पुष्प रङ्ग-आकार-डील-डौल में 'वानस्पतिक' भाग की अपेक्षा बहुत भिन्न होते हैं और उनकी आयु भी स्वल्प ही होती है। पुष्पों से साधारणतः फल बनता है। फल में एक या अधिक बीज पाए जाते हैं। बीज पौधे का सूक्ष्म रूप है। जिसे 'अविकसितभ्रूण (Embryo) कहते हैं। इस बीज में भ्रूण के लिए आहार भी संचित रहता है। संक्षेप में बीज वनस्पति का सूक्ष्म संस्करण है। जिसमें सूक्ष्म रूप में उसके पांचों अङ्ग, मूल, तना, पत्ते आदि रहते हैं। अतएव संस्कृत में "यद् यदण्डे तद् तद् ब्रह्माण्डे" प्रसिद्ध होगया है भगवान् कृष्ण ने भी गीता में कहा है।

"बीजं मां सर्वभूतानां विद्धि पार्थ सनातन॥
अ० ७।

बीज में विचक्षण सहन शक्ति होती है। यह ठंड तथा शुष्कता दोनों को ही खूब सह सकता है और बहुत दिनों तक जीवित रहता है। बीजों द्वारा वनस्पतियों की संख्या ही नहीं बढ़ती अपितु उनके द्वारा ऋतुओं आदि की कठिनाईयों से भी 'भ्रूण' की रक्षा होती है। योग्य दशा में बीज उगते हैं और पितृ पौधे के समान नए पौधे को जन्म देते हैं। इस प्रकार पुष्प, फल और बीज मिलकर नयी वनस्पितियों को उत्पन्न करते हैं। अतः वे 'प्रजनक' अङ्ग कहे जाते हैं। आइए बीज से ही हम वनस्पति का अध्ययन प्रारम्भ करें।

अथ औद्भिद्-शास्त्र परिचय

सर्वात्मा सच्चिदानन्दो विश्वादिर्विश्वकृद्विभुः ।
भूयात्तमां सहायो नः सर्वेशो न्यायकृच्छुचिः ॥१॥
उद्भिदाकृतिज्ञानाय, लाभाय च सुभेषजाम् ।
प्रवृत्ता "औद्भिदीविद्या" वैद्यानां हितकारिणी ॥२॥
पाश्चिमात्यैरथाचार्यैः विहितोऽत्र बहुश्रमः ।
तेषां मतमनुसृत्य, प्राचीनानां तथैव च ॥३॥
रच्यते 'औद्भिदं शास्त्रं' महेन्द्रेण भिषग्जिता ।
नामूलंलिख्यते किञ्चिन्नानपेक्षितमुच्यते ॥४॥

इस ग्रन्थ के लिखने का प्रयोजन पहले ही बताया जा चुका है। उसके विषय में अधिक लिखना पिष्ट-पेषण ही होगा। अतः उस पर अधिक न लिखते हुए "औद्भिद शास्त्र" के मूल में निहित तथ्यों की ओर संक्षेप में निर्देश करना उचित है।

औद्भिद् शास्त्र का अर्थ है उन पदार्थों के ज्ञान का शास्त्र जो पृथिवी को फोड़ कर (उद्भिद्यपृथिव्यां जायन्ते इत्यौद्भिदः) निकलते हैं। यथा वृक्ष, लता गुल्मादि।

दो प्रकार के पदार्थ

"नानौषधिभूतंजगत (वाग्भट्ट) यह आचार्य वचन सुप्रसिद्ध है। न केवल द्रव्यमय जगत् ही, अपितु भावमय पदार्थ यथा लंघन, क्रोध, शोक आदि भी औषधि के अन्तर्गत आजाते हैं। यह सब पदार्थ दो श्रेणियों में विभक्त हो सकते हैं (१) स्थावर (२) जङ्गम। गति वाले पदार्थों को 'जङ्गम' कहा जाता है। समस्त प्राणिवर्ग इस संज्ञा के अन्तर्गत आजाता है। गतिरहित पदार्थों की 'स्थावर' (तिष्ठतीति स्थावरः एक स्थान पर रहने वाला) संज्ञा है। वनस्पतियां तथा खनिज आदि जड़ पदार्थ 'स्थावर' हैं। यद्यपि वनस्पतियों में कई प्रकार की गतियां देखी जाती हैं, जैसा कि आगे चलकर स्पष्ट किया गया है तथापि प्राणियों के समान स्थानान्तर रूपी गति न होने से इन्हें स्थावरों में गिना गया है। न केवल आयुर्वेद प्रवर्त्तक ऋषियों ने ही दो प्रकार के पदार्थ माने हैं अपितु श्रुति भी कहती है "सूर्य आत्मा जगतस्तथुषश्च" (यजुर्वेद १३-४६) तथा "य ईशिरे भुवनस्य प्रचेतसो विश्वस्य स्थातुर्जगतश्च मन्तवः" (ऋग्वेद १०-६३)।

स्थावर के ही 'पार्थिव और' औद्भिद्' दो भेद हो जाते हैं। यथा—

तत्तु पुनस्त्रिविधं जांगमौद्भिद्पार्थिवम्"

—च. सू. अ. १।

इसमें पार्थिव से अचेतन का तात्पर्य है। वैदिक वाङ्मय में वनस्पतियों या औद्भिदों के लिये "औषध" संज्ञा का व्यवहार आया है। मंडूकोपनिषद् में" यथा—पृथिव्यामोषधयः सम्भवन्ति" द्वारा 'औद्भिद' शब्द की अति सुन्दर और पूर्ण व्याख्या की गई है। यद्यपि आधुनिक आयुर्वेद में फल-पाकान्त वनस्पतियों के लिए ही "औषधि" संज्ञा का

व्यवहार किया गया है।

इस प्रकार ये त्रिविध द्रव्य जड़ और चेतन (वनस्पतियां भी चेतन हैं) दो प्रकार का मूलतः है जड़ की अचेतन, निरिन्द्रिय, पार्थिव, निरशन संज्ञाएं भी हैं। चेतन को सेन्द्रिय, साशन नाम भी है।

चेतन पदार्थों के भेद

"तासां स्थावराश्चतुर्विधाः। वनस्पतयो, वृक्षाः वीरुधः, ओषधयः इति। तासु अपुष्पाः फलवन्तो वनस्पतयः। पुष्पफलवन्तो वृक्षाः। प्रतानवत्यः स्तम्बिन्यश्च वीरुधाः। फलपाकनिष्ठा ओषधय इति।

जंगमाः खल्वपि चतुर्विधाः जरायुजाण्डज स्वेदजोद्भिज्जाः। तत्रमनुष्यपशु व्यालादयो जरायुजाः। खगसर्पसरीसृप प्रभृतयोऽण्डजाः। कृमिकीटपिपीलिकाः प्रभृतयः स्वेदजाः। इन्द्रगोप मण्डूक प्रभृतयो उद्भिज्जाः॥

—सु० सू० अ० १

"स्थावर पदार्थ चार प्रकार के हैं (१) वनस्पतियां (२) वृक्ष (३) वीरुध (४) औषधि।

१—जिनका पुष्प साधारणतः दिखाई नहीं देता (वनस्पतिविद्या से अजान लोगों के लिए गुप्त रहता है) वह 'वनस्पतियां' कहाती हैं। यथा गूलर, बड़, पीपल, प्लक्षादि।

२—जिन पर फल और पुष्प दोनों स्पष्ट होते हैं, उन्हें 'वृक्ष' कहा जाता है।

३—तानवाली और लटकने वाले पतले काण्ड वाली उद्भिज्जों की 'वीरुध' संज्ञा है, यथा गिलोय की बेलादि।

४—जो उद्भिद् केवल फलों के पकने तक रहती हैं और इसके बाद नष्ट हो जाती है वे "औषधि" कहाती है। यथा तिलादि।

जंगम पदार्थों के भी चार भेद किए जाते हैं—

(१) जरायुज—मनुष्य, गायादि जो माता के गर्भ के जरायु (झेर) से उत्पन्न होते हैं।

(२) अण्डज—पक्षीगण, सांप, छपकली आदि प्राणि जो अण्डों से उत्पन्न होते हैं।

(३) स्वेदज—जूं, चींटी, कृमि, कीट (खटमलादि) जो स्वेद-पसीना-मलादि से उत्पन्न होते हैं।

(४) उद्भिज—मेंढक, इन्द्रगोप (वीरवहूटी) गिजाई आदि पृथिवी में से उत्पन्न होते हैं। वर्षा के दिनों में इन्हें प्रायः देखा जा सकता है।

वक्तव्य—यद्यपि यहां जंगमों का भेद 'उद्भिज' बताया गया है। क्योंकि वे भी पृथिवी को फोड़कर उत्पन्न होते देखे जाते हैं। किन्तु प्राणियों में इनकी संख्या नगण्य है। अतः 'उद्भिज' शब्द का प्राधान्यतः व्यवहार वनस्पतियों के लिये ही किया गया है। किसी नियम बनाने के लिये 'बहुमत' का ध्यान रक्खा जाता है, अपवादों का नहीं।

अतएव भगवान् मनु ने "उद्भिज्जाः स्थावराः सर्वे बीजकाण्ड पुरोहिताः" (अ १।४६) कहा है।

+वनस्पतियां (उद्भिज) सजीव हैं या निर्जीव ?

यह प्रश्न बहुत प्राचीन काल से विवाद का विषय रहा है उपनिषदों में भी इस विषय पर प्रकाश डाला गया है। उस समय की प्रवृत्ति वनस्पतियों को सजीव मानने की दीखती है। जैसा आजकल के वैज्ञानिक मानते हैं। अब तो यह बात सर्वथा निश्चित हो चुकी है कि वनस्पतियां चेतन हैं। किन्तु उनकी चेतना प्राणियों से भिन्न प्रकार की है। जैसा मनु महाराज ने भी कहा है।

"अन्तश्चेतनाः भवन्त्येते सुखदुःख समन्विताः"

सुख और दुःख से युक्त ये वनस्पति अन्तश्चेतन है। अर्थात् इन्द्रियों द्वारा प्राणियों के समान कर्म नहीं कर सकतीं। अतएव इन्हें 'निरिन्द्रय' इन्द्रियां से रहित कहना सर्वथा उचित है। नीचे उपनिषदों के तीन वचन दिये गए हैं, जो वनस्पतियों में चेतनता सिद्ध करते हैं।

+ 'उद्भिज्ज' संज्ञा अधिक प्रचलित नहीं है। प्रायः वनस्पति शब्द का व्यवहार सब प्रकार के वृक्षादिकों के लिए किया जाता है। अतः इसी का व्यवहार इस ग्रन्थ में सौकर्यार्थ किया गया है।
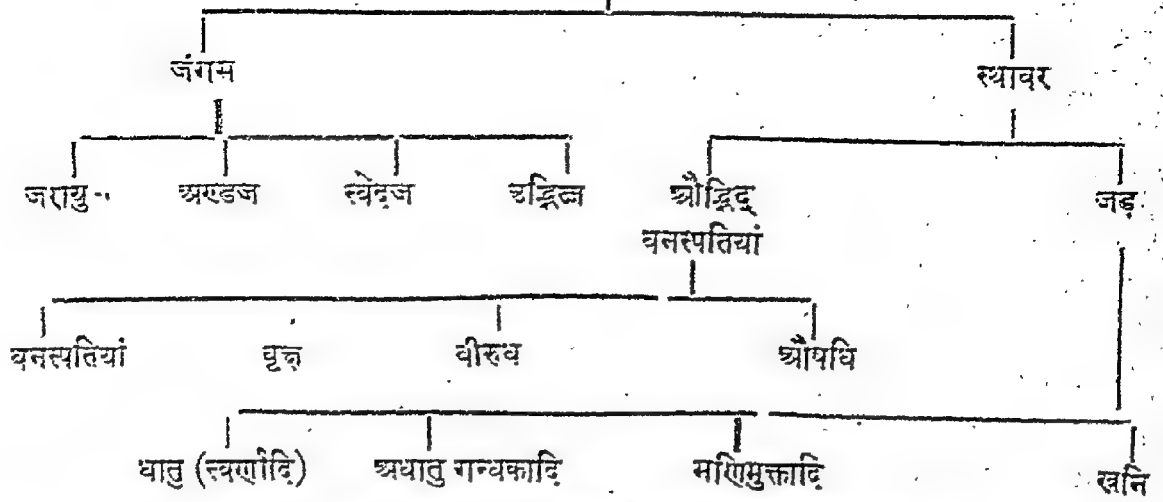
"अस्य यदेका 'शाखां' जीवो जहाति अथ सा शुष्यति। द्वितीयांजहात्यथसा शुष्यति। तृतीयांजहात्यथ सा शुष्यति सर्वंजहाति सर्वः शुष्यति। एवमेव खलुसौम्य! विद्धीति होवाच। जीवापेतं वावकिल म्रियते न जीवो म्रियते इति"

—छान्दोग्य प्रपाठक ६ खण्ड ११।

जीव यदि एक शाखा को छोड़ देता है तो वह सूख जाती है, दूसरी छोड़ देता है तो वह सूख जाती है और तीसरी को त्यागने पर वह भी सूख जाती है। समग्र वृक्ष को छोड़ देने पर सारा ही सूखा जाता है। इसी प्रकार सौम्य! तुम समझो। जीव के छोड़ देने पर शरीर मर जाता है। जीव नहीं मरता।

"अथ यत्नेन दानेन तपसा लोकान् जयति, ते धूममभिसम्भवन्ति। धूमाद्रात्रीं, रात्रेरपक्षीयमाणपक्षाद्यान् षण्मासान् दक्षिणादित्य एति। मासेभ्यः पितृलोकं पितृलोकाच्चन्द्रं ते चन्द्रं प्राप्यान्नं भवन्ति। तांस्तत्र देवा यथा सोमानं राजानमाप्याय स्वापक्षीयस्वेत्येवं मेनांस्तत्रभक्षयन्ति। तेषां यदा तत्पर्यवैति अथमेवाकाशमभि निष्पद्यन्त। आकाशाद् वायुं वायोर्वृष्टिं वृष्टेः पृथिवीं, ते पृथिवीं प्राप्यान्नं भवन्ति। ते पुनः पुरुषाग्नौ हूयन्ते ततो योषाग्नौ जायन्ते। लोकान् प्रत्युत्थायिनस्तएवमेवानुपरिवर्त्तन्तेऽथ य एतौ न विदुस्ते कीटपतंगायदि दंदशूकम्।

(बृहदारण्यक अ० ६ ब्रा० २ कण्डिका १६)

उक्त उद्धरण में पुण्यवान् जीवों का पुनर्जन्म मार्ग बताया गया है। पुण्यशाली जीव मृत्यु के उपरान्त विविध मार्गों से जाते हुए चन्द्र लोक में जाकर अन्न बन जाते हैं। उस अन्न को देवता सेवन करते हैं। यह भुक्त अन्न पुनः यथा समय आकाश में आता है और आकाश से वायु में, वायु से वर्षा द्वारा पृथ्वी में पहुँच कर अन्न का रूप धारण करता है। इस अन्न का सेवन पुरुष करता है। उससे वीर्य बनता है तथा स्त्री में डिम्ब। और पुरुष का वीर्य योनि में जाकर डिम्ब के साथ मिलकर गर्भाधान करता है। इस प्रकार पुण्य क्षीण होने पर ये आत्मायें पुनः मनुष्य शरीर को प्राप्त होती हैं। पुण्य-हीन जीव कीट पतंगे आदि की योनि में जाते हैं।"

"हन्त त इदं प्रवक्ष्यामि गुह्यं ब्रह्म सनातनम्।
यथा च मरणं प्राप्यात्मा भवति गौतम॥
योनिमन्ये प्रपद्यन्ते शरीरत्वाय देहिनः।
स्थाणुमन्येऽनुसंयन्ति यथाकर्म यथाश्रुतम्॥ कठ०

'हे गोतम! मरने के पश्चात् आत्मा का क्या होता है। यह मैं तुम्हें बताता हूँ। कर्मानुसार अनेक आत्मायें तो प्राणियों की योनि (गर्भाशय) में चले जाते हैं। दूसरी आत्मायें स्थाणु (स्थावर वनस्पतियां) रूप को प्राप्त होती हैं।

आधुनिक वैज्ञानिक तो वनस्पतियों को सजीव मानते ही हैं। उनके मतानुसार जीवन के निम्न लक्षण इनमें पाए जाते हैं।

१–जीवनचक्र (Cycle of life)—

समग्र चेतन पदार्थों में जन्म मरण, बाल, कौमार, प्रौढ़, वृद्धावस्था का चक्र दिखाई देता है। वनस्पतियों में ये सब चिन्ह पाए जाते हैं। अन्य प्राणियों के समान वनस्पतियां भी सन्तान उत्पन्न करती हैं।

२–जीवनसार–(protoplasm)—

यह जीवन का आधारभूत द्रव्य है। मछली जिस प्रकार जल में ही सारी क्रियायें पूरा करती हैं, इसी प्रकार प्राणिजीवन की सब चेष्टायें इस जीवनसार में ही होती हैं। गति सम्बन्धी या वेदना सम्बन्धि सब क्रियाए प्राणियों के समान ही वनस्पतियों में भी देखी जाती हैं। हां, उनकी मात्रा में भेद होता है।

३–श्वासोच्छ्वास (Respiration)—

जंगमों के समान वनस्पतियां भी सांस लेती हैं। अन्दर श्वास लेते समय प्राणि ओषजन (oxygen) नामक वायु को ग्रहण करते हैं तथा–कार्बन द्विओषित् (Carbon-di-oxide) नामक दूषित वायु का परित्याग; किंतु दिन में वनस्पतियां इससे उलटा ही कार्य करती हैं। अर्थात् दूषित कार्बन-द्वि-ओषित् नामक वायु का ग्रहण करके सूर्य प्रकाश की सहायता से उनसे आहार निर्माण करती हैं तथा ओषजन नामक वायु को बाहर छोड़ती हैं। इस श्वास के द्वारा शुद्ध वायु प्राणियों को प्रदान करती हैं, जिसके बिना उनके लिए जीना कठिन हो जाये, वनस्पतियों का प्राणियों पर यह महान् उपकार है।

४–सात्म्यीकरणम् (Metabolism)—

चेतन पदार्थ बाह्य जगत् से आहार पदार्थ ग्रहण कर अपनी पाचनसम्बन्धी क्रियाओं द्वारा उन्हें इस योग्य बना लेते हैं कि वे उनके शरीर का अङ्ग बन जाऐं। वनस्पतियों में भी यह क्रिया होती रहती है।

५–पोषण तथा वर्धन (Nutrition and Growth)–

उपरोक्त के अनुसार सात्म्यीकृत खाद्य पदार्थों द्वारा प्राणिमात्र के समान वनस्पतियां भी अपना शरीर बढ़ाती है। जड़ों द्वारा मिट्टी और जल से तथा विशेष मूलों द्वारा वायु से आहार पदार्थों का ग्रहण करके वनस्पतियां बढ़ती है। जड़ों से तने की छाल तथा तने द्वारा आहार रस पत्तियों और फूलों तक जाता है। जिससे वनस्पतियों के सब भाग बढ़ते रहते हैं।

यद्यपि पत्थर आदि जड़ पदार्थों का आकार भी बढ़ता–घटता रहता है किन्तु उनकी वृद्धि ऊपर से होती है। अर्थात् उनपर धूलादि जमा होते रहते हैं। जिससे उनका आकार बढ़ता रहता है। अन्दर से पाचन, सात्म्यीकरण और आहार रस के संवहन द्वारा वे अपनी वृद्धि नहीं करते यही जड़ों में तथा चेतन पदार्थों में भेद है।

६–गतियां (Movements)—

प्राणियों के समान गतिशीलता तो इनमें नहीं है। तथापि विशेष प्रकार की गतियां इनमें देखी जाती हैं। ये दो प्रकार की होती हैं (१) 'स्वेच्छागतियां'–जो वनस्पति की अपनी इच्छानुसार होती हैं। वनचाण्डालादि, कतिपय उद्भिज्जों में देखी जाती हैं। (२) संचारित गतियां,–ये प्राणियों या अन्य पदार्थों के स्पर्श से उत्पन्न होती हैं। यथा छुईमुई आदि में। इसी प्रकार सूर्य और चन्द्रमा की किरणों के स्पर्श से गतियां उत्पन्न होती हैं।

(७) प्रजनन (Reproduction)—

चेतन पदार्थों में ही यह विशेषता है कि अपनी जाति की वृद्धि करने के लिए सन्तान उत्पन्न कर सकते हैं. जड़ नहीं। वनस्पतियों में यह विशेष क्रिया होती रहती है। अतः वे भी चेतन हैं।

प्राणियों और वनस्पतियों में भेद

चेतनता सामान्य होते हुए भी प्राणियों से वनस्पतियों में भेद है। ये विशेषतायें निम्नलिखित हैं।

	कार्य	वनस्पतियों में	प्राणियों में
१	वृद्धि	वनस्पतियों में मूलाग्र से कलियों या तने से बढ़ते हैं। इनमें मृत्यु पर्यन्त वृद्धि होती रहती है।	प्राणियों का सारा देह एक साथ बढ़ता है। इनमें वृद्धि एक विशेष अवस्था में जाकर रुक जाती है।
२	हरीतिमा	शैवाल जैसे पूर्ण परजीवी वनस्पतियों को छोड़कर सब में हरा वर्ण पाया जाता है। जो एक विशेष वस्तु 'हरीतिमा' (chloro-phyl) के कारण होता है।	प्राणियों में हरीतिमा का सर्वथा अभाव पाया जाता है।
३	कोशावरण	इनके घटक (cells) एक विशेष प्रकार के आवरण से आवृत्त होते हैं।	इनमें इसका अभाव होता है।
४	कोशाणु (cellulose)	केवल वनस्पतियों में पायाजाता है।	प्राणियों में इसका अभाव होता है।
५	आहार निर्माण	वनस्पतियां केवल तरल (जल) में घुले पदार्थों को ही आहार रूप में ग्रहण करती हैं। और उससे ही खाद्यपदार्थों का निर्माण सूर्य प्रकाश में करती हैं।	प्राणि कठोर और शुष्क वस्तुओं को भी आहार रूप में ग्रहण कर लेते हैं।
६	वायु का विश्लेषण	वनस्पतियां दुष्ट वायु को ग्रहण कर उसमें अवस्थित कार्बन (आंगाराम्ल) को ग्रहणकर लेती हैं और सूर्य प्रकाश की सहायता से उससे शर्करा श्वेत-सारादि बनाती हैं तथा शुद्ध प्राणवायु को पुनः छोड़ देती हैं। इस प्रकार वायु शोधन और प्राणियों के लिए आहार पदार्थों का निर्माण करती हैं।	प्राणियों में ये दोनों शक्तियां नहीं हैं। न तो वे वायु का शोधन कर सकते हैं और न ही खाद्य का निर्माण ही। वनस्पतियों द्वारा निर्मित खाद्य पदार्थों का भक्षण अवश्य कर सकते हैं।
७	गतियां	ये एक स्थान से दूसरे स्थान पर नहीं जा सकते। किन्तु विशेष प्रकार की गतियां इनमें भी पाई जाती हैं। शैवाल या काई जाति की कुछ वनस्पतियों में एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाना भी पाया जाता है।	प्राणि गति में स्वतन्त्र होते हैं। जहां चाहें जाएं।
८	अंग-प्रत्यंग विभाग	प्राणियों के समान इनमें अंगों और प्रत्यंगों का विकास नहीं हो पाता।	इनमें प्रत्येक अंग उपांग का पृथक् पृथक् विकास होता है।

बीज में होते हैं उन सबके लिए भी जल की आवश्यकता रहती ही है। बीजावरण को भी मृदु करने के लिए जल आवश्यक है। मृदु होने पर ही भ्रूण बीजावरण को फाड़कर बाहर आता है।

(२) वायु—अंकुरोत्पत्ति के समय पौधे की श्वसन-क्रिया बहुत तीव्र होती है। उसके लिए प्राण वायु की

चित्र सं० ११—उद्भेदन के लिए आवश्यक सामिग्री का प्रभाव।

नीचे का बीज जल में डूबा है। वायु ताप के पर्याप्त न मिलने पर अंकुरण ठीक तरह से नहीं होरहा। मध्य का बीज जल, वायु तथा ताप के उचित संपर्क में है अतः प्ररोह बढ़ रहा है। ऊपर के बीज को जलका अभाव है। अतः उसका भी उद्भेदन ठीक प्रकार से नहीं हो रहा है।

अत्यन्त आवश्यकता रहती है इसी लिये बहुत गहरी भूमि में डाले गए बीज भी नहीं उगते।

(३) ताप—अनुकूल ताप (२५° c. से ३०° c.) में ही बीजों का उद्भेदन होता है। बहुत कम या अधिक ताप में नहीं। चित्र द्वारा इन तीनों पदार्थों की आवश्यकता स्पष्ट हो जाती है।

बीज पत्रकों के कार्य

१—अबीजपोषी बीजों में इनमें ही आहार का संचय होता है।

२—सबीजपोषी बीजों में इनमें से पाचक रस निकल कर बीजपोष से आहार ग्रहण करते हैं।

३—उपरिभौमिक प्रकार में पृथिवी के ऊपर आकर सूर्य प्रकाश की सहायता से अंकुर के लिए आहार का निर्माण करते हैं।

४—एक बीजपत्रकों में भ्रूण के पोषण के लिए बीज-पोष से आहार ग्रहण करते हैं और भ्रूण-मूल तथा अंकुर की गोप के रूप में रक्षा करते हैं। तृण जातीय पौधों में वरुथिका द्वारा यही कार्य होता है।
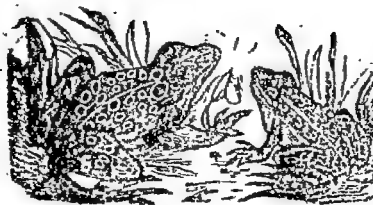
औद्भिद-शास्त्र

(द्वितीय अध्याय)

मूल (जड़ें) THE ROOT

उच्च वर्ग की वनस्पतियों की रचना दो संस्थानों से मिलकर होती है (१) मूल संस्थान (२) प्ररोह या अंकुर संस्थान। वनस्पति का जमीन की ओर जाने वाला भाग 'मूल' कहाता है। मूल के दो मुख्य कार्य हैं।

(१) उद्भिद् को स्थिरता प्रदान करना।

(२) भोजन सामग्री का संचय करना।

भूमि से ऊपर की ओर जाने वाले भाग नाम 'प्ररोह' है। इस भाग से शाखा, पत्ते, पुष्प, फलादि निकलते हैं। क्योंकि वनस्पति मूल के आश्रय पर रहती है। अतः प्ररोह संस्थान से पूर्व मूल की ही व्याख्या करनी उचित है। बीज म अवस्थित 'भ्रूणमूल' ही विकसित होकर वनस्पति की 'मूल' वन जाती है।

मूल तथा काण्ड में भेद

मूल	काण्ड
(१) यह प्रकाश से विपरीत दिशा में, भूमि में भागने वाला भाग है।	(१) यह प्रकाश की ओर भूमि से परे विकसित होने वाला भाग है।
(२) यह हरीतिमा-रहित होता है यदि बहुत समय मूल प्रकाश में रहे तो हरीतिमायुक्त होजाती है। यथा गिलोय, सिंघाड़ा आदि।	(२) प्रायः हरीतिमांयुक्त ही होते हैं।
(३) पुष्प, कलिका और अक्षियों का प्रायः इनमें अभाव होता है। यद्यपि परवल, गुलाब आदि में रोहाक्षियां अपवाद रूप से पाई जाती हैं।	(३) पुष्पकलिका और प्ररोहाक्षियां अवश्य पाई जाती हैं। और उन्हीं से यह भाग बढ़ता है।
(४) मूलों की रक्षा 'मूलाग्रगोप' नामक कवच रता है।	(४) प्रकाण्ड या प्ररोहाक्षियों का अग्रभाग तो किसलय (कोपलों) से आवृत होता है।
(५) मूल के अग्रभाग में एक कोष वाले ही रोम होते हैं। जो पुराने और कठोर भाग से झड़ जाते हैं। अधिक से अधिक सात दिन इनकी आयु होती है। इनका कार्य आहार का संचय करना है।	(५) इनके रोम प्रायः एक से अधिक कोश वाले होते हैं। ये सारे ही काण्ड पर पाये जासकते हैं। कुछ स्थूल तथा कठोर भी होते हैं।
(६) मूल से पार्श्वमूलों की उत्पत्ति उसके अन्दर	(६) काण्ड में शाखा प्रशाखायें पत्रकोण के

के भाग से होती है। अतएव बाह्य पृष्ठ पर वे क्रम-रहित होने पर भी अन्दर से क्रमबद्ध होती हैं। अत-एव इन्हें 'अन्तरोद्भव' कहा जाता है।

(७) इनमें पोरुओं और उनके अन्दर का स्थान नहीं होता।

(८) श्वसन छिद्र (सांस के छेद का) इनमें बिल्कुल अभाव होता है।

बाहरी स्तर से उत्पन्न होती है। अतः उन्हें 'बहि-र्जात' संज्ञा दी गई है।

(७) इनमें पर्व गांठे तथा अन्तःपर्व भी पाये जाते हैं।

(८) श्वास के लिए छेद पाये जाते हैं।

मूल संस्थान संहति

मूल संस्थान का संगठन या संहति दो प्रकार की होती है। (देखिये चित्र नं. १२-१३)

(१) वेधकमूल संहति (The tap root system)।

(२) सौत्रिकमूल संहति (The fibrous root system)

वेधक मूल संहति—

१—प्रधानमूल (Primary roots)—'भ्रूणमूल' ही यदि लम्बी होती जाए तो वही प्रधान मूल कहाती है। द्विबीज पत्रकों में यह विशेषता होती है।

२—वेधकमूल (Tap roots)—उक्त प्रधान मूल ही जब भूमि को वेधती हुई चली जाती है और वनस्पति को स्थिरता प्रदान करती है तो उसे ही 'वेधकमूल' संज्ञा दी जाती है।

३—गौणमूल (Secondary roots)—प्रधान या वेधकमूल से ही पार्श्वों से जो मूलें निकलती है वे 'गौणमूल' कहाती है।

४—सहायकमूल (Tertiary roots) गौणमूल से उत्पन्न मूल सहायकमूल कहाती है।

ये सब मूलें 'गाय की पूंछ' के समान क्रम से निकलती है। अतः इस क्रम को "गोपुच्छाकृति" (A cropetal succession) कहते हैं। अर्थात् बड़ी शाखाएँ वेधक भाग से दूर ऊपर को तथा लम्बी और छोटी छोटी शाखाएँ वेधक भाग के पास और छोटी होती हैं।

सौत्रिक मूल संहति—

(Fibrous root system)

यह प्रकार प्रायः एक बीजपत्रकों में पाया जाता है इसमें भ्रूणमल कुछ दूर तक भूमि में जाती है और वहां सूत्रमय मूलों को उत्पन्न कर स्वयं नष्ट होजाती है। मक्का जौ गेहूँ आदि में यह प्रकार देखा जाता है। ये जड़ें गहराई तक जमीन में नहीं जाती हैं। इनका प्रसार दो प्रकार से होता है।

(१) गभीरप्रसर—भूमि में कुछ गहराई तक ये मूलें जाती हैं। मूली शलगम, गाजरादि में।

(२) उपरिप्रसर—यह जमीन में ऊपर ही ऊपर रहती हैं अतः छिछली जड़ें कहाती है। यथा गेहूं आदि में।

मूल के भाग

मूलों के पांच भाग या अङ्ग होते हैं। मूल के अगले भाग से उपर की ओर उनकी गणना की जाती है ये पांच भाग इस प्रकार हैं। (देखिए चित्र संख्या १४)

(१) मूलाग्रगोप (Root Cap)
(२) वर्धिष्णुभाग (Growing Region)
(३) लम्बमानभाग (Region of Elongation)
(४) आशोषकभाग (Region of Root hairs)
(५) परिपक्वभाग (Region of Lateral roots)

(१) मूलाग्रगोप—भ्रूणमूल के अगले हिस्से में उसकी रक्षा के लिये एक कवच होता है। भूमि का वेधन करते समय यह कवच मूल के अग्रभाग की रक्षा करता है। जब-जब मूल बढ़ने लगती है तभी-

तभी पुराना 'गोप' झड़ जाता है और नया बनता जाता है। जल में उत्पन्न होने वाली वनस्पतियों में तो उनका अभाव होता है। क्योंकि वहां उसकी आवश्यकता ही नहीं होती।

(२) वर्धिष्णुभाग—मूलाग्रगोप के ठीक ऊपर का भाग है।

(३) लम्बमानभाग—यह भी बढ़ते हुए (वर्धिष्णु) भाग का ही हिस्सा है। यहां पर मूल कोश या घटक (Cell) बढ़ते हुए लम्बे दिखाई देते हैं।

(४) आशोषकभाग—लम्बमान भाग के ऊपर स्थित यह भाग रोमों से भरा रहता है। ये रोम ही भूमि में जाकर जल में घुले पोषक तत्त्वों, खनिजों को ग्रहण करते हैं। जैसे-जैसे मूल बढ़ता जाता है वैसे-वैसे ही पुराने झड़ते जाते हैं और नवीन उत्पन्न होते जाते हैं।

(५) परिपक्वभाग—आशोपकभाग से लेकर काण्ड पर्यन्त यह भाग है। इसी भाग से पार्श्व मूलें, सहायक और गौण दोनों ही प्रकार की निकलती हैं। अन्य चार भागों के समान इस भाग के घटक (Cell) नाशवान् नहीं होते।

इस परिपक्व भाग के तीन कार्य हैं:—

(१) वनस्पति को स्थिरता प्रदान करना—वेधक मूलें इस कार्य में विशेष उपयोगी हैं। नीम, आम आदि द्विबीजपत्री उद्भिद् इसी कारण जमीन में बहुत दिनों तक स्थिर रहते हैं। सौत्रिक मूलें इस कार्य को अधिक अच्छी तरह नहीं कर सकतीं।

(२) आहार का आशोषण और संवहन (Absorption and Conduction)—मूलें भूमि में जाकर जल में घुले हुए भोजन के तत्वों, खनिजों और लवणों को चूस लेती हैं और उसे तने तक पहुँचा देती हैं।

(३) पार्श्वमूलों का उत्पादन।

मूल द्वारा आहार का आशोषण और संवहन कुछ महत्व का विषय है। अतः संक्षेप में उस पर कुछ प्रकाश डाला जाता है।

मूलों में पाए जाने वाले छोटे छोटे सूक्ष्म रोमों द्वारा इन पदार्थों को चूसा जाता है। इन रोमों की रचना में यह विशिष्टता होती है कि उनमें जल के प्रति तीव्र आकर्षण होता है। जिससे वे मिट्टी के कणों में पानी की पतली तहों के साथ चिपकते रहते हैं। इस प्रकार वे मिट्टी में मिलने वाले जल में घुले तत्त्वों को सोख लेते हैं। जड़ के अगले भाग में ही वे रोम पाये जाते हैं। पुराने झड़ते जाते हैं और नए उगते जाते हैं। पुनः यही सोखा हुआ भाग जड़ से काण्ड तक पहुँचता है और वहां पत्तियों फूलों आदि सब अंगों तक।

मूलों के भेदः—

(देखिये चित्र नं० १२ १३)

ये दो प्रकार की होती हैं—

(१) नियमित (Normal) प्रधान मूलादि वेधकमूल संहति की मूलें प्रायः नियमित वर्ग में आती हैं।
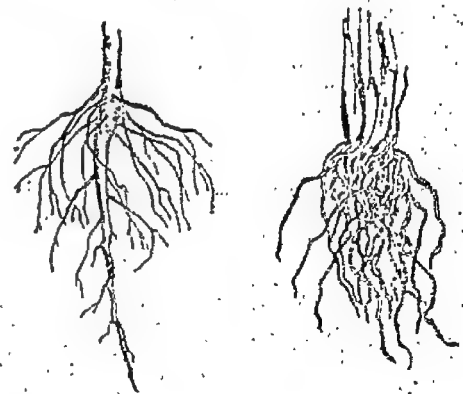
चित्र १२　और　१३

(१२) वेधकमूल संहति—द्विबीजपत्रकों में।

(१) प्रधानमूल　(२) गौणमूल

(३) सहायकमूल　(४) वेधक मूल

(१३) सौत्रिक मूल संहित (एक बीजपत्रकों में)

(२) आगन्तुक मूल (Adventitious root) ये मूलें अधिकतर सौत्रिक-मूलसंहति में देखने में

आती है। ये मूल उद्भिद् के काण्ड, पत्रकोण पर्व गांठे आदि अंगों में से भी उत्पन्न हो जाती है। बड़ की शाखाओं से, केतकी के काण्ड (तने) से, पाषाण भेद के पत्ते से ये मूलें निकलती देखी जाती हैं।

वक्तव्यः-नियमित तथा आगान्तुक दोनों ही प्रकार की मूलों के कार्य एक जैसे ही हैं। परिवर्तित मूलें भी दोनों ही प्रकारों में पाई जाती है। इनका वर्णन आगे किया गया है।

चित्र १५ A. १५ B

पत्रज मूलें

१५ A पाषाणभेद (घाव पत्ता) १५ B ब्राह्मी।

आगान्तुक मूलों के भेद

(१) सौत्रिक मूलें (चित्र नं० १४)—पलाण्डु-गेहूँ आदि एक बीज पत्रकों में ये मूलें पाई जाती हैं। भ्रूणमल के अतिरिक्त ये पौधों के पर्व (गांठों) से यथा तिनकों में, ईख में काण्ड (तने) के भूमि की ओर वाले भाग से, भी उत्पन्न होजाती हैं। 'शिफा' (चोटी) की आकृति का होने से इन्हें 'शिफा' मूल भी कहा जाता है।
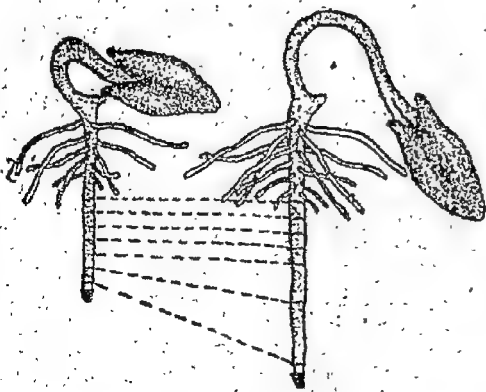
चित्र संख्या १४

मूल के भाग—(१) प्ररोह (२) गौणमूल (३) रोमश भाग (४) मूलाग्र गोप।
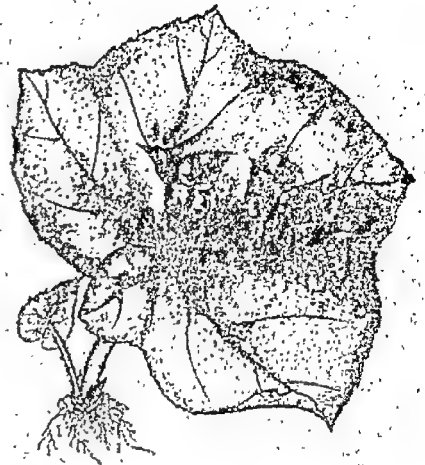
(२) पत्रज मूलें या पर्णमूलें—(चित्र सं० १५A) पाषाणभेद (पत्थरचट्टा) हिमसागर (घाव पत्ता) आदि में ये जड़ें पत्तों के भूमि वाले पार्श्व से उत्पन्न होजाती हैं।

शाखीय या पर्वजा मूलें—(चित्र सं० १५ B) ब्राह्मी, चांगेरी, गुलाब, चूका आदि में तनों की शाखाओं या पर्व की गांठों से ये मूलें उत्पन्न हो जाती हैं।

परिवर्त्तितमूलें (Modified roots)-वनस्पति की आवश्यकतानुसार विशेष कार्यों को करने के लिए इनकी आकृति में परिवर्त्तन आजाता है। यथा आहार एकत्र करना, वृक्ष को सहारा देना आदि।

आहार संचय के लिये परिवर्तित मूलें

परिवर्तित नियमित मूलें—

(चित्र सं० १६ अ से १६ ई)

(१) मूलकाकार (चित्र सं०१६ अ (Fusiform) इन्हें 'तर्क्वाकार' भी कहा जाता है। मूली आदि में

यह रूप मिलता है इनमें मूल का अग्रभाग ही मूल का कार्य करता है। ऊपर का भाग तो आहार के इकट्ठा होने के कारण फूल जाता है और मोटा होजाता है।

(२) गृञ्जनकाकार (चित्र सं० १६ आ) (शलजमाकार) (Napoform) शलजम या चुकन्दर में यह भेद पाया जाता है। इनमें ऊपर के भाग में बहुत ही अधिक मोटापा आजाता है। वह प्रायः गोल हो जाते हैं। घड़े के जैसे दीखने के कारण उन्हें 'कुम्भी रूप' भी कह दिया जाता है। इसी कारण 'मन्याकार' भी इनका नाम है।
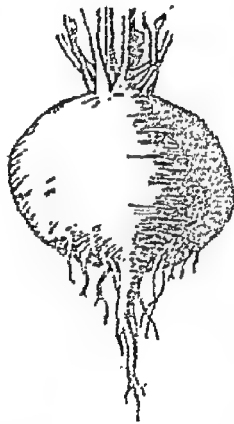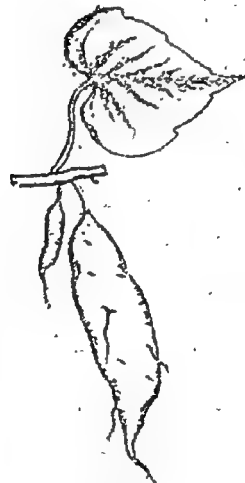
नियमित परिवर्तित मूलें।
(१६ अ) मूलकाकार यथा मूली (१६ आ) गृञ्जनकाकार यथाशलजम (१६ इ) शंक्वाकार यथा गाजर (१६ ई) कन्दाकार यथा शकरकन्दी।

(३) शंक्वाकार (चित्र सं० १६ इ) (Cornical) गाजर या अंग्रेजी मूली इसके उदाहरण हैं। इनमें मूलाग्रभाग से ही मूल की मोटाई आरम्भ होती है और ऊपर तक अनुपात के अनुसार चली जाती है। अर्थात् इसमें सारा ही मूल मोटा हो जाता है।

(४) कन्दाकार—(चित्र सं० १६ ई) (Tuberous or tubercular root) इस प्रकार में बिना किसी नियम के मूलें कन्द के रूप में परिणत हो जाती है। यथा शकरकन्दी आदि। सहायक तथा गौणमूलों में भी परिवर्त्तन आजाता है।

उक्त परिवर्त्तित मूलें प्रायः दो वर्ष तक की आयु वाले उद्भिदों में ही देखी जाती हैं। पहले साल में बढ़ने के साथ साथ भोज्य पदार्थों का संचय भी करती हैं। दूसरे वर्ष उत्पत्ति के समय पूरी मात्रा में ये आहार को उत्पन्न नहीं कर सकतीं अतः पहले वर्ष के संचित आहार को खाती रहती हैं। उत्पत्ति काल में कन्दाकार मूलों की आंखों से नयी कलिकाएँ उत्पन्न हो जाती हैं, यथा श्वेत पुनर्नवा में।

परिवर्तित आगन्तुक मूल—

(चित्र सं० १७ अ० से १७ ई० तक)

१—कन्दाकार (चि० सं० १६ ई)—उपर्युक्त परिवर्तित नियमित मूलों के समान।

२—कन्दगुच्छाकार मूलें—(Fasciculated Roots) (चित्र १७ अ०) इस प्रकार में एक मूल में ही अनेक कन्द उत्पन्न होजाते हैं और इस प्रकार कन्दों का गुच्छा बन जाता है। शतावरीमूल, मूसली इसके उत्तम उदाहरण हैं।

२—मूलाग्रकन्द (Nodulose)—(चित्र १७ आ०) इनमें मूलभाग काफी लम्बा होता है। और उसका अग्रभाग ही गांठदार हो जाता है। यथा—आंबाहल्दी (आम्रगन्धि हरिद्रा) और अरारुट में।

२—सान्तर कन्दाकार (Moniliform)—(चित्र १७ इ०) इस प्रकार में मूल में कन्द कुछ अन्तर पर पाये जाते हैं और माला के समान लगते हैं। द्राक्षा की लता और करेले में यह रूप पाया जाता है।
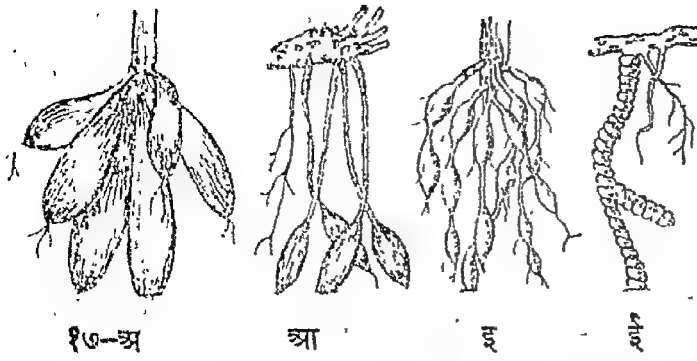
आगन्तुक परिवर्तित मूल

(१७अ) कन्द गुच्छाकार यथा शतावरी में (१७आ) मूलाग्रकन्द यथा आमा हल्दी में (१७इ) सान्तर कन्दाकार यथा द्राक्षा की लता में (१७ ई) मालाकन्दाकार यथा एपीकाक में

(१) स्तम्भ मूलें या प्रभेद मूलें (Prop roots) (चित्रसं० १८) बड़ आदि में ये मूलें दिखाई देती हैं। शाखाओं से उत्पन्न होकर भूमि में चली आती है और वृक्ष को सहारा देती हैं। कलकत्ते के वानस्पतिक उद्यान के प्रसिद्ध बड़ में अब तक ८५१ ऐसी जड़ें हैं इसकी आयु का अनुमान १८२ वर्ष और परिधि १,१७५ फीट है।

४—मालाकन्दाकार मुद्रिकाकन्द (Annulated Roots) (चित्र १७ ई०) इसमें सारी मूल ऐसी मालूम होती है मानों बहुत सारी अंगूठियां (मुद्रिकायें) एक सूत्र में पिरोदी गई हैं। एपीकाक नामक औषधि में यह प्रकार पाया जाता है।

५—करतलाकार—हाथ के पंजे जैसे आकृति वाली मूलें, यथा सालमपंजा में।

परिवर्तित धारक मूलें—ये मूलें प्रधानतः वनस्पति को स्थिरता प्रदान करने के लिए परिवर्तित हो जाती हैं।

(२) धारक या जटा मूलें (Stilt roots) केवड़ा आदि में उसके तने के कई ओर से ये मूलें निकलती हैं और ऐसी लगती हैं, मानों उसे उठाए हुए हों।

(३) आरोहक मूलें (Climbing roots) पान, पिप्पली, कालीमिर्च आदि की लताओं में ये मूलें पाई जाती हैं। इनके सहारे वे वृक्षों पर चढ़ जाती हैं। ये मूलें काण्डों से या पर्व की गांठों से निकलती हैं। लताओं में प्रायः ये पाई जाती हैं और उन्हें सहारा (अवलम्बन) देने के कारण अवलम्बक मूलें भी नाम

चि० १८-१०

धारक तथा स्तम्भ मूलें

(१८) स्तम्भमूलें यथा बड़ में।

(१९) धारक मूलें यथा केतकी में।

दिया गया है। प्रतान वाली वनस्पतियों में पाई जाती हैं। अतः इन्हें प्रतानी जड़ भी कहते हैं।

जीवन कार्यों के लिए परिवर्तित मूलें

(१) परजीवी मूलें—(Sucking roots or

चित्र संख्या २०-२१ (२०) आरोहक मूलें (२१) श्वसनक मूलें

Haustoria) जो वनस्पतियां दूसरों के ऊपर रहती हैं और उनमें से ही चूस-चूसकर अपना आहार प्राप्त करती है। उन्हें परजीवी या पराश्रयी कहा जाता है। वृत्तादनी (बन्दा) अमरबेल (सुवर्णलता) आदि। ये अपनी जड़ों को अपने आश्रय--भूत उद्-भिद् में गाढ़ देती हैं और उसके द्वारा अपना भोजन प्राप्त करती रहती हैं।

(२) श्वसनक मूलें – (Respiratory roots) श्वास ग्रहण करना इनका प्रधान कार्य है। जल में उत्पन्न वनस्पतियों में तथा कीचड़ वाली भूमि में उत्पन्न होने वाली वनस्पतियों में पायी जाती हैं। ये वर्णरहित, मृदु, लघु तथा छेदवाली होती हैं।

(३) अध्यारुढ़ (वात लम्बी) जड़ें—(Epiphytic roots) ये जड़ें पररोहि वनस्पतियों पर होती हैं। जो पौधा दूसरे पौधे पर होता है उसे 'पररोही' कहा जाता जाता है। यथा आरकिड जाती की वनस्पतियां। इनमें तथा परजीवियों में भेद यह होता है कि ये अपनी जड़ों द्वारा दूसरे पौधे पर चिपक जाते हैं और केवल मात्र जल का आशोपण करते हैं, भोजन का नहीं। अपना भोजन वे सूर्यप्रकाश से हरी पत्तियों द्वारा बनाते रहते हैं। परजीवियों में हरीतिमा (Chlorophyl) नहीं होता।

(४) हरितमूल—(Assimilatory roots) गिलोय आदि में आकाश में लटकती हुई जड़ें हरी हो जाती हैं और इनमें उपलब्ध हरीतिमा कार्बनद्विओषित का विश्लेषण कर अपना आहार बनाती है तथा वायु शोधन भी करती है।

मूलों के कार्य

ये कार्य दो प्रकार के हैं। सामान्य और विशेष। सामान्य कार्य तीन हैं। वे प्रायः भौतिक ढङ्ग के हैं।
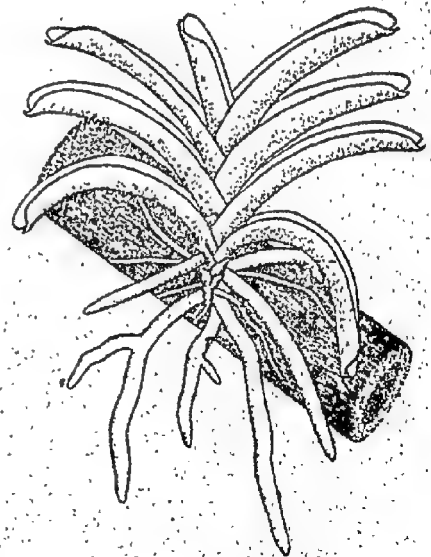
चित्र—संख्या २२

अध्यारुढ़ मूल।

एक शाखी परिमित शाखाक्रम में जब छोटी-छोटी शाखाएँ एक अन्तर से दायें-बायें निकलती हैं तो वह क्रम "उभयतोविकासी परिमित शाखाक्रम" कहते हैं यथा, अस्थि संहार (हाड़ जोड़) Vitis quadrangularis में। यदि छोटी-छोटी शाखाएँ एक ही ओर उत्पन्न होती जाएं तो उसे "एकतो विकासी शाखाक्रम" कहा जायगा। इन दोनों क्रमों में आदि रूप के शाखाक्रम से एक मोड़दार (Zigzag) आकृति बन जाती है। किन्तु प्रकृति में ऐसी शाखाएँ देखने में नहीं आती। अपितु वे सीधी होती हैं। और क्रमबद्ध छोटी शाखाओं के आधारी भाग से एक आदि अक्ष जैसे सरल अक्ष (कलियां) बनाती है। वस्तुतस्तु यह कूटाक्ष False axis or sympodium) है (चि० सं० ३१)। कूटाक्ष शाखाक्रम का पता सूक्ष्म निरीक्षण से स्पष्ट होजाता है। कूटाक्षियां (कलिकाएँ) पत्तियों की मूल में से न निकलकर उनके सामने (अभिमुख) निकलती हैं।

परवर्त्तित काण्ड

तनों के साधारण कार्यों के अतिरिक्त विशेष कार्यों को करने के लिये काण्डों में परिवर्तन आजाता है। यथा (१) दीर्घायु के लिये (Perennation) विपरीत ऋतु में पत्रों से रहित काण्ड सुषुप्ति अवस्था में कई वर्षों तक निष्क्रिय पड़े रहते हैं।

(२) प्रारोहिक प्रजनन (Vegetative propagation) बिना बीज की उत्पत्ति के लिए तनों से लम्बी पतली शाखाएँ विविध दिशाओं में फैलती हैं।

(३) परिवर्त्तित रूप में विशेष कार्यार्थ।

इन परिवर्त्तित स्वरूपों के अनुसार काण्डों को निम्नलिखित श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है—

(अ) अधोभौमिक (भूमि के नीचे रहने वाले Under-ground)।

(आ) भूस्तरीय (भूमि पृष्ठ पर रहने वाले Sub-aerial)।

(इ) वायवीय (वायु में भूमि के ऊपर रहने वाले) aerial)।

अधोभौमिक परिवर्त्तित काण्ड

पौधे में दीर्घायु के लिये काण्ड पृथ्वी के नीचे चला जाता है और कुछ समय निष्क्रिय रह कर समय-समय पर वायवीय अंकुरों को उत्पन्न करता रहता है। ये बहुधा मोटे, मांसल, सरस होते हैं और इनमें पर्याप्त मात्रा में आहार द्रव्यों का संचय रहता है। यद्यपि स्थूल दृष्टि से ये मूल ही प्रतीत होते हैं किन्तु अधोलिखित लक्षणों से इन्हें पहचाना जा सकता है।

(१) पर्व और पर्व गांठें (२) वल्कपत्र (३) कलिकाएँ या अक्षियां—अग्रकलिका और पार्श्वीय कलिकाएँ दोनों ही पाई जाती हैं।
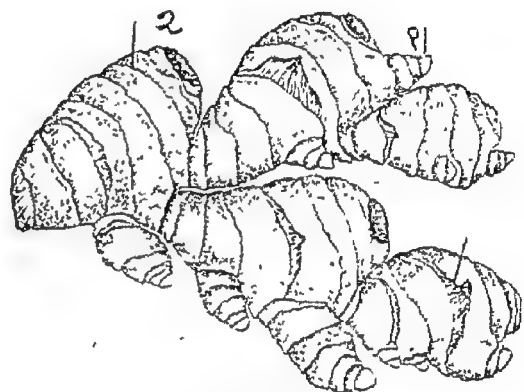
चित्र संख्या ३२
मूलाभास कन्द (अदरक का कन्द)
(१) कलिका (२) गांठ (पर्व)

यह परिवर्तन (अ) दीर्घायु (आ) आहार संचय (इ) प्रारोहिक प्रजनन के लिए होता है। इनके भेद निम्न हैं—

(१) मूलाभास कन्द (Rhizome)—यह भूमि के तल में क्षैतिज ढङ्ग से बढ़ने वाला सबसे अधिक पाया जाने वाला पौधे का काण्ड है। यह एक ओर (पीछे की ओर) सरता जाता है और आगे की ओर बढ़ता जाता है। आहार संचय के कारण काफी मोटा हो जाता है। स्थूल रूप में यह मूल के समान ही लगता है। अतः 'मूलाभास' संज्ञा इसे दी गई है।

साधारणतः इसे 'कन्द' भी कह दिया जाता है। इसमें काण्ड के सब लक्षण-पत्र, कलिका, पर्व, पर्व-ग्रन्थियां आदि पाई जाती हैं। हल्दी, अदरक,अरारुट कमल, आदि में। यद्यपि इनकी वृद्धि प्रायः क्षैतिज ढङ्ग की होती है तथापि मानकन्द आदि कुछ कन्दों में यह ऊपर की ओर भी बढ़ते हैं। इनकी वृद्धि शुंगा (शीर्ष या अग्र कलिका) द्वारा तथा पत्तों के कोनों में उपस्थित कलिकाओं द्वारा भी होती है। जिनसे वसन्त में प्रायः वायव्य अंकुर निकलते हैं जो गरमी में झड़ जाते हैं और एक गोल चिन्ह (मेखला) छोड़ जाते हैं जिनको गिन कर काण्डों की आयु बताई जा सकती है। पर्व से काटकर अक्षियों के भाग को पृथक कर दूसरा पौधा भी उगाया जा सकता है। अधिकांश में शाखाक्रम एक शाखी होता है। जिसमें मूल एक ही दिशा में शुंगा (अग्रकलिका) द्वारा बढ़ता रहता है और पार्श्व अक्षियों द्वारा वायवीय अंकुर निकलते रहते हैं। यह कूट शाखा क्रम है।
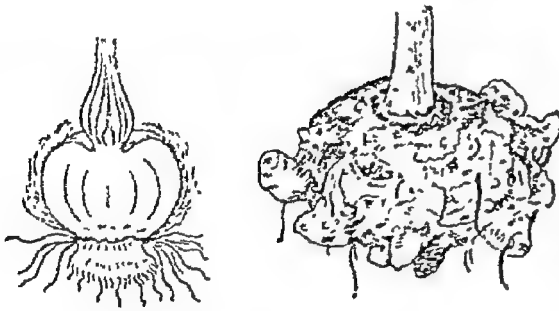
चित्र सं० ३३
वज्रकन्द
केसर तथा सूरण (जिमीकन्द का)

(२) वज्रकन्द (Corm)—यह मूलाभास काण्ड का ही घनीभूत रूप है। यह दृढ़ स्थूल तथा मांसल होता है। जिस पर कभी-कभी बहुत से रक्षक पत्र वल्कपत्र पाए जाते हैं। खाद्य पदार्थों के संचय के कारण ये बहुत मोटे हो जाते हैं। इनकी वृद्धिप्रायः ऊपर की ओर होती है। ये प्रायः गोल अथवा ऊपर से नीचे की ओर चपटे होते हैं। इनमें अक्षियां या कलिकायें वल्कपत्रों के कक्ष में पाई जाई जाती हैं। जिनमें कोई कोई कलिका स्वतन्त्र कन्द के रूप में भी उत्पन्न हो जाती है प्रायशः आधार स्थल से तथा कभी कभी पार्श्व से भी आगन्तुक मूलें उत्पन्न हो जाती हैं। जिमीकन्द (सूरण), कचालू,केशर, अरवी, (घुईया) तथा सुरंजा (Meadow Saffron) इनके उदाहरण हैं। कन्द में पुष्पकाल के बाद ही पूर्णता आती है।

चित्र० सं० ३४
पलाण्डु का पत्रकन्द

(३) वल्की कन्द या पत्रकन्द (Bulb)—ये अन्य भूमिगत काण्डों की अपेक्षा बहुत छोटा होता है। यह उन्नतोदर (गोल या कोणाकार बिम्ब जैसा होता है। इस भाग में से रस वाले या सूखे पत्ते जो एक दूसरे को ढंके रहते हैं, उत्पन्न होते हैं जिनमें आहार का संचय रहता है। इस उन्नतोदर भाग के निचले हिस्से से आगन्तुक मूलें निकलती हैं। पलाण्डु (प्याज) रसोन (लशुन) आदि इसके उदाहरण हैं। इनमें दो प्रकार के पत्र पाये जाते हैं। एक तो वायवीय—जो हरे पत्ते होते हैं और ऋतु आने पर यथा समय निकलते हैं। दूसरे वल्क या शल्क पत्र-जिनमें आहार पदार्थों का संचय होता है।

ग्रन्थिमय स्कन्धकन्द (Stem Tuber)—आलू आदि में इस प्रकार पाया जाता है। यह भूमिस्थ काण्ड-शाखा का अग्रभाग होता है। जो वायवीय काण्ड के पत्ते की एक तनी से निकल कर नीचे मिट्टी में चले जाते हैं। ये कन्द आहार संचय और वानस्पतिक उत्पादन दोनों ही कार्य करते हैं। इनमें काण्ड का परिचय न केवल पत्रकोण से उत्पन्न होना ही है अपि तु उन पर उपस्थित शल्कपत्रों से भी होता है। उन्हीं शल्क पत्रों के कक्ष में कलिकायें या अक्षियां

(जिन्हें आलु की आंखें भी कहते हैं) पाई जाती हैं। इनसे ही नये पौधों की उत्पत्ति होती है। आलु के समान अरबी का कन्द भी झिल्ली जैसे भूरे शल्कपत्रों से घिरा रहता है और अक्षियों से नये पौधे उत्पन्न करता है।
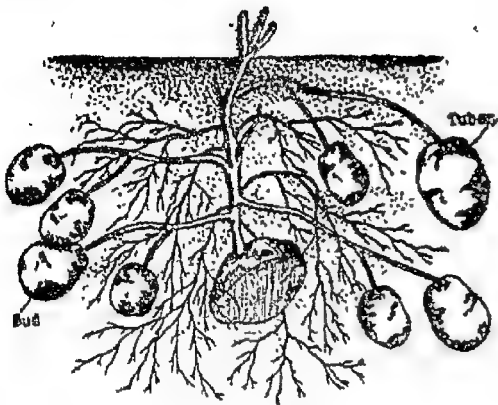
चित्र संख्या ३५
भूमिगत आलू का ग्रन्थिमय,काण्ड।

परिवर्तित भूस्तरीय काण्ड—इन काण्डों में वानस्पतिक या प्रारोहिक प्रजनन (अर्थात् बीज बिना तने से ही पौधा उत्पन्न होना) के लिए काण्डों में परिवर्त्तन होता है। ये काण्ड पृथ्वी पृष्ठ पर या उसके जरा नीचे बढ़ते रहते हैं। इनके फैलने के प्रकार के अनुसार इनका नामकरण किया गया है। इनके नाम हैं—(१) संसर्पि (Runner) (२) संसरणि (Stolon) (३) नतमूलिनी (Offset)(४) उत्प्ररोही (Sucker)।
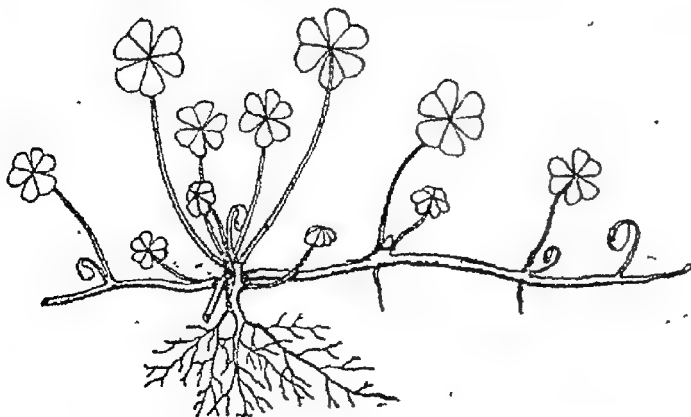
चित्र संख्या ३६ **चांगेरी का संसर्पि काण्ड**

(१) संसर्पि—यह पतला दुर्बल प्रणत तना होता है जिसमें पर्व लम्बे लम्बे होते हैं तथा पर्वग्रन्थियों से आगन्तुक मूलें निकलती हैं। यह पत्ती की अक्ष में से निकलता है तथा भूमिपर कुछ दूर तक फैल कर नयी आगन्तुक मूल उत्पन्न करता है तथा नये पौधे को जन्म देता है। इस प्रकार के कई संसर्पि मातृ पौधे से उत्पन्न होकर चारों ओर फैल जाते हैं। इस प्रकार ये वानस्पतिक या प्रारोहिक प्रजनन कार्य करते हैं। दूब (दर्भ) चांगेरी (खट्टी पत्ती चौपतिया) चुक्र सुनिषण्णकशाक में, ब्राह्मी आदि में यह प्रकार पाया जाता है। भूमि के ऊपर फैलने के कारण ही इन्हें 'संसर्पि और भूस्तारी" संज्ञा दी गई है।

चित्र सं० ३७
कचालु (अरबी) का
संसरणि काण्ड

(२) संसरणि—(प्राण्युत्पादे संसरणम् इत्यमरः) इनमें काण्ड का मूल भाग जमीन के कुछ अन्दर दबा रहता है तथा क्षैतिज क्रम (लम्बाई के रुख) से बढ़ता है। यह छोटा, मोटा और लम्बा होता है। शाखाऐं इतस्ततः कुछ दूर तक फैलती हैं और उनकी शुंगा (अग्रकलिका) से नया पौधा उत्पन्न होकर पृथ्वी के ऊपर आजाता है। संसर्पि तथा

संसरणि में इतना ही भेद है कि पहला भूमि के ऊपर फैलता है और दूसरा पृथ्वी के नीचे । संसरणि के उदाहरण कचालू, अरारूट आदि में पाया जाता है।
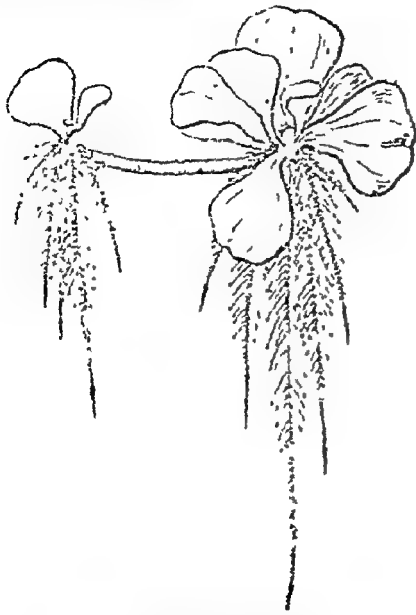
चित्र सं० ३८
जलकुम्भी का नतमूलिनी तना

(३) नतमूलिनी—यह भी भूस्तारी या संसर्पि जैसा होता है। यह पत्र के कोण से उत्पन्न होता है। मोटा, सरल, प्रणति, शिखा या अग्रभाग पर ऊपर को पत्तों का समूह तथा नीचे को छोटी छोटी पतली मूलों का गुच्छा यदि नतमूलिनी मातृ पौधे से अलग होजाए तो स्वतन्त्र रूप से नया पौधा उत्पन्न करती है। यथा जलकुम्भी (water Letuce) से संसर्पि की अपेक्षा ये काण्ड छोटे तथा मजबूत होते हैं अतएव लघुभूस्तारी भी कहा जाता है।

(४) उत्प्ररोही - संसरणि काण्ड के अनुसार इनमें भी भूमि के नीचे रहने वाले तने से पार्श्विक शाखाएं निकलती हैं। किन्तु इनमें नई शाखाएं तिरछी तथा पृथ्वी के ऊपर को निकलती हैं। कभी कभी कुछ दूर तक यह चैतिज क्रम से चढ़ता है, किन्तु शीघ्र ही ऊपर को निकल आता है। इनमें मूलों की उत्पत्ति उनके उत्पत्ति स्थान पर या उससे कुछ दूरी पर ही होती है। इनका उत्तम उदाहरण चन्द्रमल्लिका-गुल-

चित्र संख्या ३९
'गुलदाऊदी' का उत्प्रोही तना
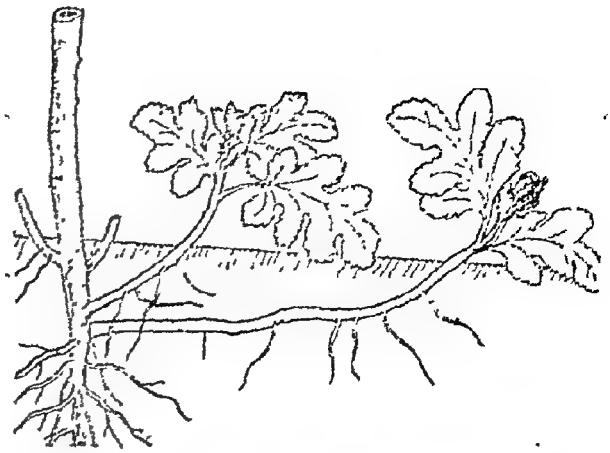
दाउदी (Chrysanthenum), पोदीना, गुलाब आदि हैं।

परिवर्तित वायवीय काण्ड

किन्हीं उद्भिदों में प्रारोहिक (उत्पादक) और पुष्पकलिकाओं में विशेष प्रयोजनार्थ बहुत परिवर्त्तन हो जाता है। जिनका स्वरूप इतना परिवर्त्तित हो जाता है कि स्थूल दृष्टि से उन्हें काण्ड कहना कठिन है। वस्तुतः हैं वे काण्ड ही।
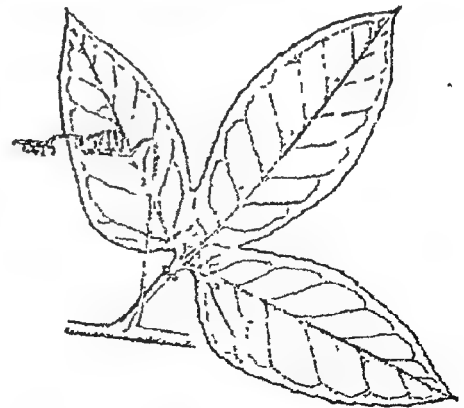
चित्र संख्या ४०
झुमका लता का सौत्र स्कन्ध

(१) सौत्रस्कन्ध (Stem Tendrils) यह काण्ड का पतला, सूत्ररूपी, पत्तियों से रहित लपेटदार भाग है। इसके द्वारा आरोहक पौधे साथ के वृक्षादि पर चढ़ते हैं। द्राक्षालता, झुमका लता (Passion

flower) आदि इनके उदाहरण हैं। सौत्रिक स्कन्ध केवल आरोहक वनस्पतियों में ही पाया जाता है; क्योंकि यह आरोहण के लिए ही होता है। कभी-कभी इस पर छोटे छोटे शल्क पत्र मिल सकते हैं। निम्न लिखित चिन्ह इन्हें काण्ड सिद्ध करते हैं।

(१) इनकी उत्पत्ति पत्रकोण से या शाखा के अग्रभाग से होती है। कुम्भकालता में ये सूत्र पार्श्विककलिका से और द्राक्षा में शाखा की अग्रकलिका से उत्पन्न होते हैं।
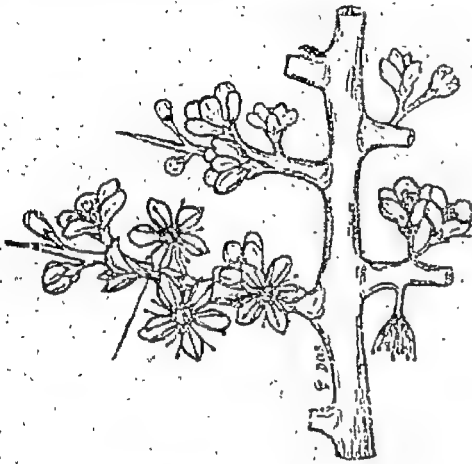
चित्र संख्या ४१
भून का स्कन्ध कंटक

(२) स्कन्ध कंटक (Thorn)—ये कठोर, सीधी, तीक्ष्ण और नोकदार परिवर्त्तित शाखाएँ हैं। सौत्रिक स्कन्धों के समान ये भी पत्रकोण की अक्षियों से या शाखा की अग्र कलिका से उत्पन्न होते हैं। कुरण्टक सैरेयक-नील कांटा (Duranta) में कक्षीय अक्षियां और करोंदा में शुंगाएं (शाखा-अग्र-कलिका) कांटों के रूप में परिवर्त्तित हो जाती हैं यह भी अन्य परिवर्त्तित काण्डों के समान कलिका से उत्पन्न होता है विरलतया इन कांटों से पत्र और पुष्प भी उत्पन्न होते देखे जाते हैं यथा कटसरैय्या (कुरण्टक) में। ये कंटक काण्ड में छाल से भी गहरे भाग से उत्पन्न होते हैं अतः साधारण बल से पृथक नहीं होते। बेल, नीबू, अनार आदि इसके सामान्य उदाहरण हैं। कंटक वनस्पति की पशुओं से रक्षा भी करते हैं और विरलावस्था में उन्हें अपने आश्रय पर चढ़ने में सहायता करते हैं।

कील तथा कंटकों में भेद

यद्यपि दोनों ही रक्षण के लिए तथा नोकदार और तीक्ष्ण होते हैं तथा कभी-कभी आरोहण में सहायता करते हैं। तथापि इनमें निम्न भेद हैं–
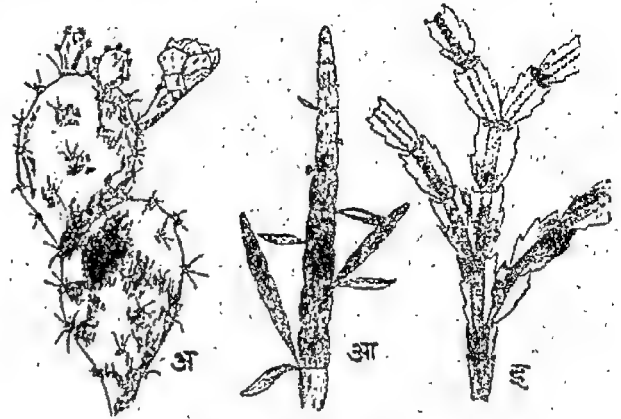
चित्र संख्या ४२

(अ) शातला (थोहर चपटी) मांसल तथा सरस काण्ड जो पत्तों जैसे लगते हैं। पत्र कांटों के रूप में परिवर्तित होगये हैं।

(आ) अस्थि संहार (वज्र वल्ली) का सन्धिमय काण्ड।

(इ) त्रिकोणीय (तीन कोणों वाला) स्नुही का संघित काण्ड।

कंटक (Thorn)

(१) यह कक्षीय कलिका का परिवर्तित स्वरूप है।

(२) प्रायः पत्र, पुष्प, फल, धारण करता है और शाखायें भी देता है।

(३) यह कक्षीय (कोण) स्थिति में ही पाया जाता है।

(४) छाल से गहरे स्तर से उत्पन्न होता है।

(५) ये बिल्व, कटसरैय्यादि में पाये जाते हैं।

कील (Prickles)

(१) यह केवल मात्र अधिवृद्धि (outgrowth) है।

(२) पत्र पुष्पादि धारण नहीं करता।

(३) कहीं पर भी उत्पन्न हो सकता है।

(४) ऊपर के स्तर से उत्पन्न होता है।

(५) ये गुलाब, शाल्मलि आदि में।

(३) पर्ण कोष्ठीय स्कन्ध (Phylloclade) ये हरे चपटे या गोल काण्ड हैं। हरे होने के कारण ये पत्तों का कार्य करते हैं (अतएव इन्हें पर्ण-कार्य-स्कन्ध संज्ञा भी दी गई है) क्योंकि इनमें पत्ते या तो बहुत छोटे होते हैं या कांटों के रूप में परिणित होजाते हैं। यथा नागफणी या थोहर,या झाडमें। यदि पर्ण कोष्ठ केवल एक ही पर्व का हो तो उसे,एकपर्वीय पर्ण कोष्ठ, कहा जाता है। शतावर त्रिधारा सेहुण्ड आदि इसका उदाहरण है। यह परिवर्त्तन मरुभूमि में पाए जाने वाले पौधों में विशेषकर देखा जाता है। क्योंकि जल की कमी के कारण उनमें जल का वाष्पीभवन यूनतम रखना पड़ता है। अतः यह परिवर्त्तन प्रकृति में किया जाता है।
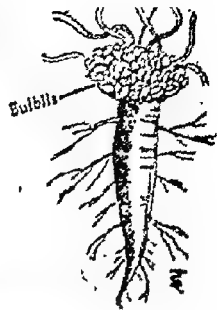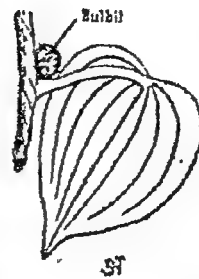
चित्र संख्या ४४ कन्दक के प्रकार
(अ) उसवा में (इ) चांगेरी का कन्दक
(आ) रामबांस में (American agave)

कन्दक (Bulbes) यह विशेष प्रकार की प्रारोहक कलिका या पुष्प कलिका का परिवर्तित रूप है। प्रयोजन उत्पादन है। यह मातृ वनस्पति पृथक् होकर गिर पड़ता है तथा स्वतन्त्र पौधे के रूप में विकसित होता है। रामबांस चांगेरी आदि इसके उदाहरण हैं।

परिवर्तित काण्ड बोधक सरजि

काण्ड

१ अधोभौमिक	२ भूस्तरीय	३ वायवीय
(१) मूलाभास (Rhizome) यथा अदरक।	(१) संसर्पि (Runner) यथा चांगेरी	(१) सौत्रिक काण्ड Tendril यथा द्राक्षा.
(२) ग्रन्थिमय कन्द (Tuber) यथा आलु	(२) संसरणि (Stolon) यथा कचालू	(२) कंटक (Thorn) यथा कुरण्टक
(३) वल्लीकन्द (Bulbes)	(३) नतमूलिनी (offset) यथा जलकुम्भी	(३) पर्ण कोष्ठीय (Phylloclade) यथा नागफणी
(A) सकलकन्द (Scally) यथा लिली	(४) उपरोही (Sucker) यथा गुलदाउदी	(४) एकपर्वीयपर्ण कोष्ठ (Cladode) यथा शतावरी
(B) कंचुकीकन्द (Tunicated) यथा पलाण्डु (प्याज)		(५) कन्दक (Bulbil) रामबांस
(C) वज्रकन्द (Corm) यथा सूरण		

औद्भिद्-शास्त्र

(चतुर्थ अध्याय)

पर्ण या पत्र

पत्ते वनस्पतियों के सबसे महत्त्वपूर्ण अंग हैं। द्रव्यगुण शास्त्र की दृष्टि से ये द्रव्यों के परिचय में सबसे महत्त्वपूर्ण हैं। संस्कृत साहित्य में "पत्रं पलाश छदनं दलं पर्णं छदः" (पुमान, इन्यमरः) ये पत्तों के नाम हैं। इनमें ही आहार पदार्थों का निर्माण होता है। वस्तुतः काण्ड या शाखा ही बढ़कर पत्र का रूप धारण कर लेती हैं। उक्त 'पर्ण' शब्द उसके कार्य को भी बताता है। 'पृ' पालन पूरणयोः अथवा पृण-प्रीणन धातु से "पिपर्त्ति पर्णं" (पालन करने वाला) अथवा "पृणातीति पर्णं" (तर्पित करने वाला) इन अर्थों में 'पर्ण' शब्द बनता है।

साधारणतः जब हम पत्रों की बात करते हैं तो प्रायः हरे पत्तों (Foliage) का ध्यान आजाता है। किन्तु इनके अतिरिक्त कुछ अन्य प्रकार के पत्ते भी पाए जाते हैं।

(क) बीज पत्रक—(Cotyledons) वनस्पति के उद्भेदन के समय ये पत्ते बीज में से निकलते हैं।

(ख) बल्क या शल्क पत्र—ये छोटे, भूरे, झिल्ली के समान होते हैं। इनमें हरीतिमा (हरा पदार्थ) नहीं होता। कलिका या शुंगा का रक्षण इनका कार्य होता है। यथा पीपल की कलियों पर।

(ग) पुष्पच्छद (Bracts) पुष्प पत्रों का वर्णन यथा स्थान किया जायगा।

चित्र संख्या ४५

पत्र या पर्णम्

(१) पत्राग्र या पत्र शिखर।
(२) पत्र धारा या पर्ण प्रान्त (किनारा)।
(३) पत्रफलकम्।
(४) शिरा।
(५) मध्य शिरा।
(६) शिराका (छोटी शिराएं)।
(७) पत्र दण्ड (डंठल)।
(८) उपपत्र।
(९) पत्राधार।

पर्ण के भाग

(१) पत्राधार—(leaf base) यह भाग पत्ते को तने के साथ जोड़ता है। कई वनस्पतियों में यह भाग कुछ चौड़ा हो जाता है तथा कोश (Sheath) रूप में परिवर्तित होकर काण्ड के चारों ओर लिपट जाता है। एक बीज पत्रक वनस्पतियों में गेहूँ आदि में यह प्रायः देखा जाता है। केले में भी ऐसा ही

'कोश' पाया जाता है। द्विबीज पत्रक वनस्पतियों में यह दोनों ओर पार्श्वों में बढ़ जाता है और उसे 'उप पत्र' (Stipule) या अनुपत्र-संज्ञा दी जाती है। यदि पत्राधार फूला हुआ मांसल हो तो उसे पीनाधार (Pulvinus) नाम दिया जाता है। यथा छुईमुई, सेमादि में।

(२) पत्रदण्ड (Petiole) यह पत्ते का डंठल या वृन्त है जो पत्ते के फलक को काण्ड के साथ जोड़ता है। जिन किन्हीं पत्तों में इसका अभाव होता है उन्हें अवृन्तीय(Sessile) पत्र कहते हैं। इनमें पत्राधार दो भागों में विभक्त होकर पूर्ण रूप में या अर्धांश में काण्ड को घेरे रहता है। यह प्रकार अधिकांशतः एक बीज पत्रकों और कुछ द्विबीज पत्रकों में भी पाया जाता है।

पत्रदण्ड का काम पत्तों को ऊपर उठाकर भलीभांति सूर्य प्रकाश के सन्मुख रखने का है। अधिकतर पत्तों में यह नालीदार होता है। जिससे परनाला सा बन जाता है। इसके द्वारा पत्तियों का सारा पानी तने पर ढरक जाता है।

(३) पत्रफलक (Leaf Blade or Lamina) यह पत्ती का हरा और फैला हुआ भाग होता है। इसका अध्ययन करते समय निम्न बातों को देखना चाहिए। (१) पत्राग्र (Apex) (२) पत्रप्रांत या पत्रधारा (Margin) (३) पत्रपृष्ट (Surface) (४) पत्राकृति (Shape) (५) शिराओं की स्थिति (६) पत्र का प्रकार और उसका परिवर्चित रूप।

पत्र-फलक के मध्य में वृन्त से पत्राग्रभाग तक जो मुख्य शिरा पाई जाती है उसे "मध्य-शिरा" कहते हैं। इसी से 'पार्श्विक शिरायें' निकलती हैं।

अवृन्तीय पत्रों के प्रकार

(१) पालीवत (Auriculate)–आक (मदार) आदि में यह प्रकार देखा जाता है। इसमें पत्र के दो खण्ड हो जाते हैं और वे आधा काण्ड घेरे रहते हैं। (चित्र ४६ में आ)

(२) पूर्ण श्लेषी (Amplexicaul)–काण्ड पूर्णरूप से पत्र खण्डों के बीच में घिरा रहता है। यथा

चित्र संख्या ४६

अवृन्तीय पत्रों के प्रकार
(अ) काण्ड सम्पृक्त अवृन्तीय पत्र
(आ) अर्क (मदार) के पालीवत पत्र
(इ) पूर्ण श्लेषी पत्र।
(ई) मिलितमूलक पत्र।
(उ) परिवेष्टी पत्र।

अनेक घासों, गेहूँ आदि में। किन्तु यदि पत्र खण्ड द्वारा तना चारों ओर से घिरा नहीं रहता तो उसे 'अर्धाश्लेषी' संज्ञा दी जाती है यथा ताड़ में।

(३) परिवेष्टी (Perfoliate) इस प्रकार में पत्र खण्ड (चित्र ४६ में उ.) काण्ड के आस-पास लिपटकर पीछे की ओर आपस में इस प्रकार मिल जाते हैं मानों काण्ड पत्र के बीच से पार हो रहा हो। यथा हिरणखुरी में।

(४) मिलित मूलकम् (Connate)–जब दो आमने सामने के पत्र काण्ड को पार कर (चित्र ४६ में ई) एक दूसरे में मिल जाते हैं।

(५) काण्डसम्पृक्त (Decurrent)–इस प्रकार में उपपत्र तथा पत्राधार पंख वाले होते हैं और वे काण्ड पर नीचे की ओर इस प्रकार लगे रहते हैं, मानों काण्ड भी पंखवाला हो।

उपपत्र या अनुपत्र (Stipule)

पत्राधार के पार्श्वों में ये पत्र पाये जाते हैं। जो प्रायः हरे होते हैं। किन्तु कभी-कभी पीले या अन्य वर्ण के भी होते हैं। उपपत्र किन्ही वनस्पतियों में तो पत्तों के साथ ही झड़ते हैं। किन्ही में पत्रफलक के विकसित होने से पहले ही, तथा दूसरों में फलक के

पाणिवत संयुक्त पत्र के भेद-

पाणिवत् या करतलाकार संयुक्त पत्र उसे कहते हैं जिसमें पत्रवृन्त या ठण्डल से शाखाएं निकलकर चारों ओर फैल जाते हैं और ऐसे लगते हैं मानों हाथ की अंगुलियों के समान एक केन्द्र विन्दु से निकले हुए हों । यथा-शाल्मली (सिम्बल सेमल) भांग, सुवर्चला (हुरहुर) आदि में ।
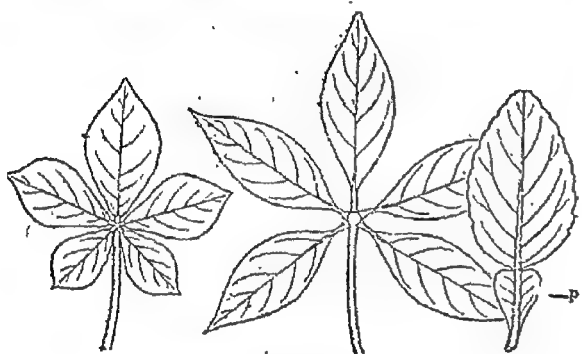
चित्र संख्या ५७
पाणिवत् या करतलाकार संयुक्तपत्र
(अ) सुवर्चला (हुरहुर) का बहुदलीय पाणिवत्
(आ) शाल्मली का बहुदलीय संयुक्त पाणिवत्
(इ) नारंग का संयुक्त एक दलीय पत्र
(p) पक्षयुक्त पत्रदण्ड

इस प्रकार में भी फलक पत्रकों (फलक-खण्डों)की संख्या के अनुसार एक दलीय यथा-सन्तरा (नाग-रंगम्) निम्बु आदि में (चित्र ५७ में इ) द्विदलीय, त्रिदलीय यथा—चांगेरी, बिल्वादि में । चतुर्दलीय यथा—सुनिषण्णक शाक एवं बहुदलीय (**Multi-foliate or Digitate**) संज्ञाएं दीजाती हैं । (चित्र ५७ में अ.आ.)

पाणिवत् तथा पत्त्रवत् त्रिदलीय पत्रों में भेद—

पत्त्रवत् में यथा पारिभद्र और सेम में पत्रवृन्त ही मध्य सिरा के रूप में बढ़ जाता है तथा उसके अग्रभाग-पर एक पत्रक होता है । पाणिवत् में तीनों खण्ड या पत्रक सीधे एक ही स्थान (पत्रवृन्त) से उत्पन्न होते हैं । यथा—बिल्व में ।

पत्रों की आयु-

(१) शीघ्रपाती (**Caducous**)—जब पत्र उत्पन्न होने के थोड़े समय पश्चात ही गिर जाता है । यह प्रायः एक ऋतु तक रहता है ।

(२) वार्षिक (**Deciduous or Annual**)—जब एक ऋतु के बाद भी रहे तो वार्षिक कहाता है ।

(३) दीर्घायु या सदा हरित (**Persistent or evergreen**)—जब साल भर से भी अधिक समय पत्ता न गिरे तो दीर्घायु कहाता है ।

परिवर्तित पत्र-

विशिष्ट कार्यों के लिए पत्रों में परिवर्तन होजाता है । उनके भेद ये हैं ।
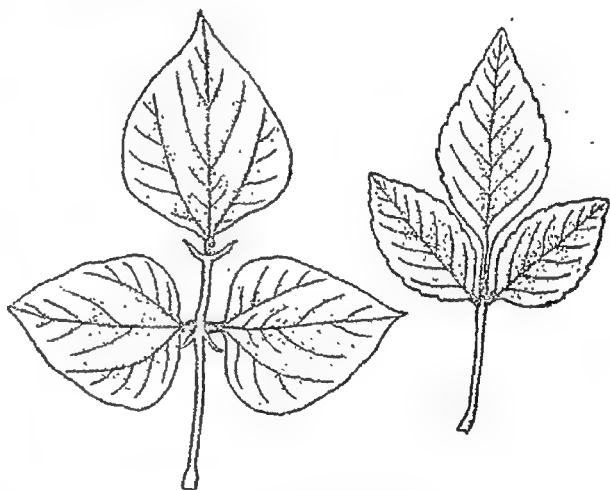
चित्र संख्या ५८
(अ) पक्षाकार त्रिपत्रक संयुक्त पत्र
(आ) करतलाकार त्रिपत्रक संयुक्त पत्र
(दोनों के भेद को समझने का यत्न करें ।)

(१) पत्र संजनी या सूत्र (**Leaf tendril**)—इनमें पत्र ही या उसका कोई एक भाग सूत्र या संजनी के रूप में बदल जाता है । जो उन्हें वृक्षों या अन्य आश्रय की चीजों पर चढ़ने में सहायता देता

(२) पत्रबडिश (**Hooks**)—मछली पकड़ने के कांटे के आकृति के रूप में कई पत्र परिवर्तित होजाते हैं। जिन्हें वृक्षादि आश्रय में घुसाकर उस पर चढ़ जाते हैं। यथा—बिगनोनिया में (चित्र ६१ में)

(३) पत्रशल्य (**Leaf Spines**)—अनेक पत्र कांटों के रूप में बदल जाते हैं। ये पत्र के समान अक्षीय स्थिति में पाए जाते हैं तथा इनमें भी कक्षीय
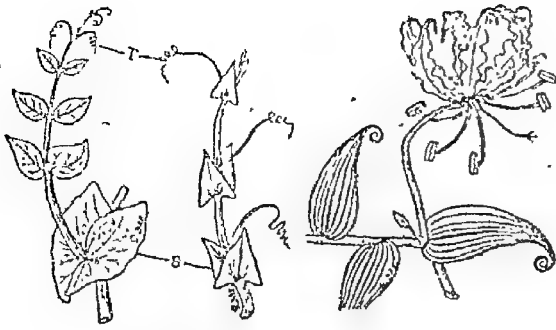
चित्र संख्या ५६
सूत्ररूप में परिवर्तित पत्र
(अ-आ) मटर तथा जंगली मटर
(इ) उपपत्र (T) सूत्र
(ई) कलिहारी के पत्राग्र सूत्ररूप में परिवर्तित।

है। यथा—जंगली मटर में, पूरी पत्ती ही सूत्र रूप में परिणत हो जाती है। कलिहारी (लांगली) में
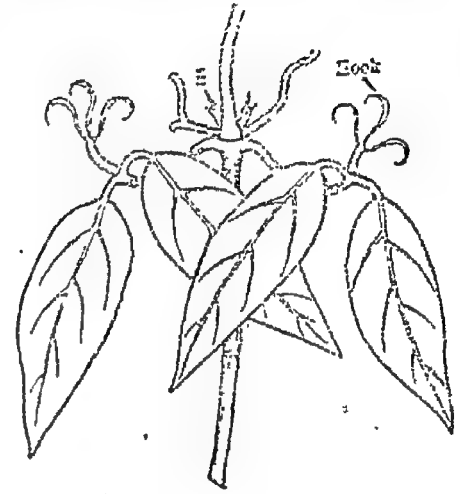
चित्र संख्या ६१
(अ) पत्र सूत्ररूप में परिणत
(आ) पत्रबडिश (बागान विलास में)
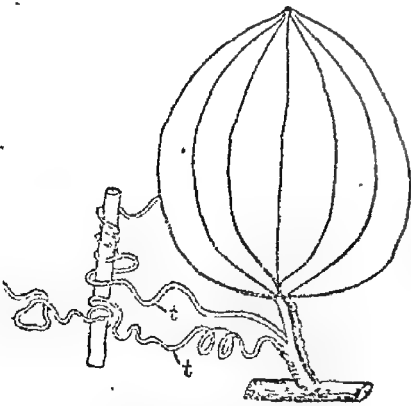
चित्र संख्या ६०
उशबा का पत्रदण्ड सूत्ररूप में परिणत

पत्र का अग्र भाग। उशबा (**Smilex**) में पत्र दण्ड के मूल से ही शाखाएं निकल कर सूत्र का रूप धारण कर लेती हैं। (चित्र ६०)

चित्र संख्या ६२
(अ) दारुहरिद्रा के पत्र कंटकरूप में परिवर्तित
(आ) स्वर्णक्षीरी (सत्यानाशी) के कंटकित प्रान्त

कलिका पाई जाती है। ये रक्षा का कार्य करते हैं। यथा—नागफणी या खजूर आदि में। नागफणी में साधारण पत्र शीघ्र ही गिर जाते हैं और उनकी जगह कक्षीय कलिका सूक्ष्म पत्र शल्य के रूप में परिवर्तित हो जाते हैं। पत्राग्र भी कंटक रूप में बदल जाते हैं यथा—खजूर, स्वर्णक्षीरी (सत्यानाशी) कुमारी (घीक्वार या ग्वारपाठा) में पत्राग्र और पत्र प्रान्त दोनों ही स्थानों पर शल्य पाए जाते हैं।

वल्क पत्रः—(**Scale leaf**) या शल्क पत्र—ये पतले सूखे वृन्त रहित कलामय (झिल्ली जैसे) भूरे रंग के होते हैं, कभी कभी वर्ण रहित भी होते हैं। इनका कार्य कक्षा (बगल) में अवस्थित कलिका की रक्षा करना है। कभी कभी ये पत्र मांसल हो जाते हैं। यथा पलाण्डु (प्याज) में। इनका कार्य जल तथा भोज्य सामग्री का संचय करना भी है। भूमि के अन्दर रहने वाले कन्द, ग्रन्थि आदि में प्रायः पाए जाते हैं। शतावरी आदि में भी विशेष प्रकार के वल्क पत्र पाए जाते हैं। यथा चित्र सं. ६३ में।

वृन्त स्फीतिः—(**Phyllode**) आस्ट्रेलियन कीकर आदि कई वनस्पतियों में वृन्त या प्राक्ष या उसका कोई अंश विशेष मांसल (चौड़ा) हो जाता है। इसे
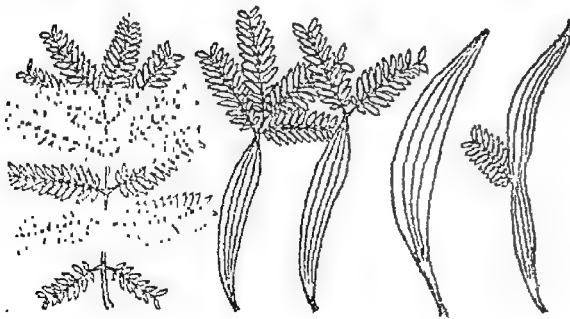
चित्र संख्या ६३
वृन्तस्फीति (बब्बूल की आस्ट्रेलियन जाति)

'वृन्त स्फीति' कहते हैं। साधारण पत्र जो पत्रवत् प्रकार के होते हैं, कई पौधों में शीघ्र ही झड़ जाती हैं। आस्ट्रेलिया में इस प्रकार के कीकर (बब्बूल) की ३०० जातियां पाई जाती हैं। (चित्र ६३)

(५) पत्रघट (**leaf pitcher**) कुछ कीटभक्षी वनस्पतियों में पत्र घड़े या जग के रूप में परिवर्तित हो जाते हैं। यथा नेपेन्थीस में। इन घटों में ढक्कन भी पाए जाते हैं। जिनकी सहायता से ये कीड़ों को पकड़ते हैं।
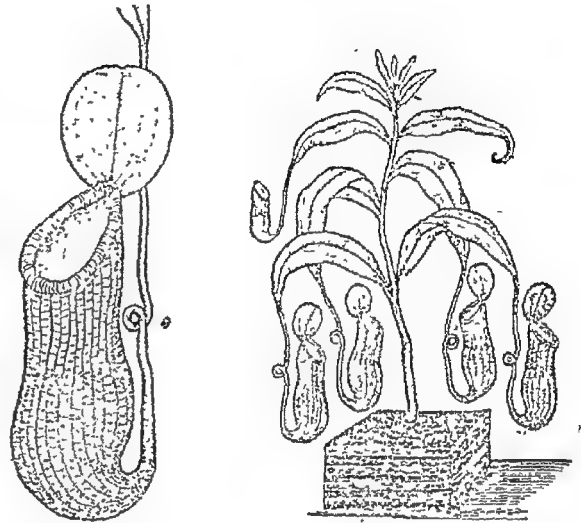
चित्र संख्या ६४
घटाकृति पत्र

(६) पत्राशय (**leaf bladders**) झंजी (**Bladderwort**) आदि कुछ जलीय वनस्पतियों में आशय (थैले) के रूप में परिवर्तित होजाते हैं। इनमें जो कीड़े एक बार घुस जाते हैं वे बाहर नहीं निकल सकते और उनके मरने पर उनके तत्त्वों को ये सोख लेते हैं।

पत्रों के कार्य

पत्तों के कार्य निम्नलिखित हैं—

(१) आहार निर्माणः—यह पत्ते का मुख्य कार्य है। विशेषतः श्वेतसार और शर्करा का निर्माण कार्य। सूर्य प्रकाश की सहायता से ही ये आहार का निर्माण करते हैं।

(२) वायव्यों का आदान प्रदानः—पत्तों द्वारा ही वायु मंडल तथा वनस्पति देह में वायव्यों (गेसों)

चित्र संख्या ६५
पत्र विविधता

और उसे वाष्पी भवन द्वारा वायुमण्डल में छोड़ते रहते हैं।

(४) आहार का संचय–घृतकुमारी (घीग्वार) कुलफा (लोणी शाक) प्याज आदि में पत्र आहार संचय का काम भी करते रहते हैं।

(५) प्रारोहिक प्रजनन—कभी कभी पत्ते नए पौधों को भी उत्पन्न करते हैं। यथा पाषाणभेद, हिमसागर आदि में।
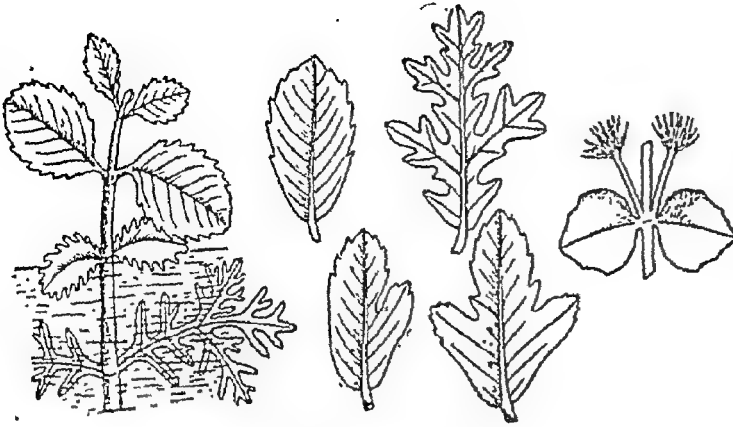
का आदान प्रदान होता रहता है। येल्पत्तियों में पाए जाने वाले सूक्ष्म छेदों से वायव्यों में यह अदला बदली होती रहती है। यह प्रक्रिया श्वासप्रश्वास तथा आहार निर्माण के लिए होती है। कार्बन द्विओषित से वनस्पति भोज्य द्रव्यों की रचना करते हैं।

(३) वाष्पीभवनः—पत्तों में पाए जाने वाले रोम हमेशा उद्भिद् का अधिक पानी सोखते रहते हैं

पत्रविविधता (Heterophylly) प्रायः एक वनस्पति पर एक ही प्रकार के पत्र लगते हैं किन्तु कभी कभी एक ही उद्भिद् पर अनेक प्रकार के पत्र भी पाए जाते हैं। यथा अतीस में। प्रायः जलीय द्रव्यों में वह पत्र विविधता देती है।
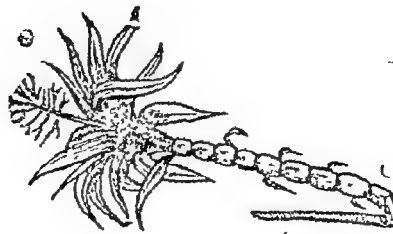
औद्भिद्-शास्त्र

(पञ्चमो अध्याय)

पुष्पम्

पुष्प-प्रसून या फूल में समग्र सृष्टि की सुकोमलता, सरसता और सौन्दर्य मानों मूर्त्तिमान् हो उठा है। 'सत्यं', शिवं, 'सुन्दरम्' के साक्षात् स्वरूप पुष्प जिस प्रकार अपनी सुगन्ध और विविध वर्णों से मन को मोह लेते हैं ठीक इसी प्रकार उनकी रचना और परिचय भी मनोरंजन की सामग्री है।

'पुष्प विकसने' धातु से 'पुष्पयतीतिपुष्पं' की निरुक्ति के अनुसार वनस्पति का प्रफुल्लरूप या खिलने वाला भाग फूल कहाता है। यह वनस्पति का उत्पादक अङ्ग है। जिसमें पुरुष और स्त्री दोनों प्रकार के प्रजनन अङ्ग पाए जाते हैं। ये दोनों प्रकार के सूत्र एक ही पुष्प में भी पाए जाते हैं और पृथग्-पृथग् भी। जब पौधा निश्चित अवस्था और नाप पर पहुँचता है तो उसमें फूल खिलते हैं। पुष्प विकास के समय पुष्प पर बहुत जोर पड़ता है और इस कार्य को करने से पूर्व वह पर्याप्त खाद्य सामग्री एकत्र कर लेता है। पुष्प से ही फल और बीज उत्पन्न होते हैं।

पुष्प के भाग

फूल की उत्पत्ति भी अक्ष से होती है। यह अक्ष लम्बा या छोटा दोनों प्रकार का हो सकता है। इस अक्ष के दो भाग होते हैं। पुष्पवृन्त या फूल का डंठल (Pedicel) इस लम्बे वृन्त का ऊपर का भाग कुछ फूला हुआ होता है जिसे "पुष्पासन" (**Receptacle or Thalamus**) कहा जाता है। जिन पुष्पों में पुष्पवृन्त होता है वे सवृन्त (**Pediculate**) और जिनमें वृन्त नहीं होता वे अवृन्त (**Sessile**) कहाते हैं। एक आदर्श पुष्प में निम्नलिखित चार भाग होते हैं। देखिए चित्र संख्या ६६।
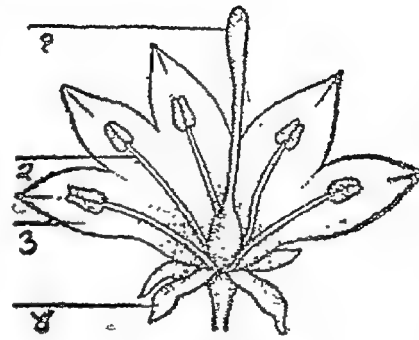
चित्र संख्या ६६
पुष्प के भाग

१—योनि स्त्रीचक्र (Gynaeceum)
२—लिंगसूत्र पुंचक्र (Androecium)
३—दलपत्र दलचक्र (Corolla)
४—पुटपत्र पुटचक्र (Calyx)

(१) पुटचक्र (Calyx)—यह भाग हरे पत्तों का बना होता है, जिन्हें पुटपत्र या पुष्पपर्ण या अंखड़िया (Sepals) कहते हैं। यह पुष्प का सबसे निचला चक्र है और उसकी रक्षा करना इनका कार्य है।

(२) दलचक्र (Corolla)—यह पुष्प का दूसरा चक्र है प्रायः अनेक वर्णों के आकर्षक पत्ते इस चक्र में पाए जाते हैं। जिन्हें दलपत्र या पुष्पदल Petals (पंखुड़िया) संज्ञा दी गई है।

टिप्पणी—कभी-कभी पुटपत्र तथा दलपत्र दोनों एक ही वर्ण के होते हैं। तब इन्हें पृथक् करना कठिन होता है। उस दशा में दोनों चक्रों को 'परिपुष्पचक्र' (Perianth) की संज्ञा दी जाती है। यथा केला, रसोन, पलाण्डु में।

(३) पुंचक्र (Androecium)—यह पुष्प का तीसरा चक्र है। जो पुष्प केसरों लिंग सूत्रों (**Stamens or Micro Sporophylls**) से बना होता है। यह पुष्प के पौरुष अङ्ग समझे जाते हैं।

(४) नारिचक्र या गर्भाशय चक्र (Gynoecium or **Pistil**) यह पुष्प का सबसे अन्तरङ्ग चक्र है।

जो केसर रूपी रजःकणों या डिंपत्रों (Carpolls or Megasporophylls) का बना होता है। पुंचक्र और नारिचक्र दोनों मिलकर 'प्रजनन चक्र' कहे जाते हैं, और पुटचक्र तथा दलचक्र 'सहायक चक्र' समझे जाते हैं।

पुष्प सम्बन्धी कुछ संज्ञायें

(१) पूर्ण पुष्प—जब चारों चक्र पाए जायें।

(२) अपूर्ण पुष्प—जब चारों में से किसी एक चक्र का अभाव हो।

(३) उभयलिंगी (Bisexual or Hermophrodite) जब एक ही पुष्प में पुंचक्र और नारीचक्र दोनों पाए जायें।

(४) एक लिंगी (Unisexual)—जब पुष्प में प्रजनन चक्रों में से एक ही चक्र पाया जाये। यदि उसमें पुंचक्र उपस्थित हो तो पुमान् (Staminate) और नारिचक्र की उपस्थिति होने पर उसे स्त्री पुष्प (Pestillate) कहा जाता है।

(५) नपुंसक—जब पुष्प में नारिचक्र और पुंचक्र दोनों का अभाव हो।

(६) बहुलिंगी (Polygamous)—जब एक ही वनस्पति से पुमान् नारी, तथा नपुन्सक पुष्प पाये जायें तो उस वनस्पति को 'बहुलिंगी' कहा जाता है, यथा आम में।

(७) चक्राकार पुष्प (Cyolic)—जब पुटपत्र, दलपत्र लिंग सूत्र और डिम्बपत्र पुष्पासन के चारों ओर चक्राकार में लगे हों।

(८) आवर्त्तनी या कुण्डलाकार (cyclic or Spiral) जब ये चारों चक्र सांप की कुण्डली के समान लगे हुए हों यथा चम्पक में।

(९) अर्ध चक्रीय (Hemicylic) जब पुष्प में कुछ चक्र चक्ररूप में और दूसरे कुण्डलीरूप में पाए जायें यथा गुलाब में, तब उन्हें अर्धचक्रीय कहा जाता है।

पुष्पासन (Thalamus or torus)

पुष्पासन या पुष्पाधार पुष्पदण्ड का चपटा दबा और फूला हुआ अन्तिम सिरा है। जिस पर उक्त
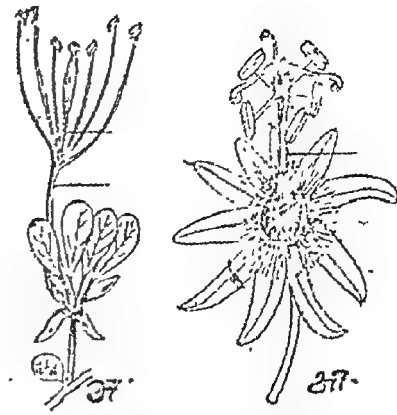
चित्र संख्या ६७

(अ) पर्वोवाला पुष्पाधार।

(आ) सुर्वचला का पुष्पाधार।

चारों चक्र लगे रहते हैं। विरल पुष्पों में ही यह लम्बा होता है। उस अवस्था में इसमें पर्व और पर्व ग्रन्थियां दोनों ही पाई जाती हैं पुटचक्र और दलचक्र के बीच का पोरुआ (पर्व) पुष्पपर्व (Anthophore) कहा जाता है। यह प्रकार सुवर्चला (हुरहुर) और कृम-कालता में पाया जाता है।

दलचक्र और पुंचकों के बीच के पर्व को पुमंग पर्व (Androphore) संज्ञा दीगई है यथा मुचुकन्द में। चित्र संख्या ६७।

जब पुंचक्र और स्त्रीचक्र के मध्य में दीर्घ पर्व पाया जाता है। तो उसे जायांग पर्व (Gynophore) संज्ञा दी जाती है। यदि पुंचक्र और नारिचक्र दोनों

चित्र संख्या ६८

(अ) वरुण पुष्प का पुष्पासन।

(आ) गुलाब का ,,

(ई) कमल ,, ,,

एक साथ पाए जाएं तो उन्हें "प्रजननोभयचक्री" (**Gynandrophore**) कहा जाता है। चम्पा में पुष्पासन मांसल (**Fleshy**) तथा लम्बा होता है तथा पुष्पासन के चारों ओर कुण्डली आकार या कुन्तलाकर लगे रहते हैं। कमल में पुष्पासन सुपिर (स्पंजी) और ऊपर से चपटा होता है।

जब पुष्पासन ऊपर को लम्बा हो जाता है और डिंपत्र इसमें लगे रहते हैं तो उसे डिंपत्रीय वृन्त (**Carpophore**) कहते हैं। धनियां, जीरा, अनीसी आदि में यह प्रकार पाया जाता है। गुलाब में यह नतोदर और नासपाती की आकृतिवाला होता है।
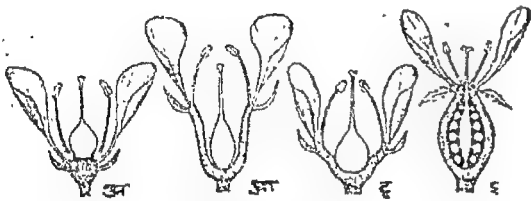
चित्र संख्या ६६

पुष्पासन पर पुष्पचक्रों की स्थिति

(अ) अधोजाय

(आ) परिजाय

(इ) परिजाय

(ई) उपरिजाय

पुष्पासन पर पुष्पचक्रों की स्थिति–

पुष्पाधार पर पुष्प के चारों चक्रों की स्थिति में भी बड़ी भिन्नता होती है। विशेषकर पुष्पपत्र और पुष्प गर्भाशय की स्थिति में। तदनुसार इनके तीन भेद होते हैं। (१) अधोजाय (Hypogyny) (२) परिजाय (Perigyny) (३) उपरिजाय (Epigyny)। (चित्र संख्या ६६)

अधोजायी पुष्प––

इस प्रकार के पुष्प में पुष्पासन शंक्वाकार होता है तथा डिम्बाशय सबसे ऊपर के भाग में पाया जाता है। शेष तीनों चक्र लिंगचक्र दलचक्र और पुटचक्र क्रमशः नीचे की ओर लगे रहते हैं। यथा बैंगन, सरसों, गुडहल (गया) धतूरा आदि में।

परिजायी पुष्प—

इस प्रकार में पुष्पासन कुछ कुछ नतोदर (प्याले की आकृति का) होता है। स्त्री चक्र इसके केन्द्र में स्थित होता है तथा किनारे पर स्त्री चक्र के चारों ओर और उससे ऊपर क्रमशः अन्य चक्र पाये जाते हैं। गुलाब, मटर अलूचा, गोल्डमोहर आदि में यह क्रम पाया जाता है।

उपरिजायी पुष्प—

इस प्रकार में पुष्प पुष्पासन न केवल प्यालाकृति ही होता है अपितु स्त्री-चक्र के निचले भाग अर्थात् डिम्बाशय की दीवार से पूरी तौर पर जुड़ा भी होता है। इनमें डिम्बाशय निम्न होता है। जैसे अमरूद सूर्यमुखी है–

पुष्पोपदल (BRACTS)

ये उपदल अकेले या पुष्पस्तवक (फूलों का गुच्छा) की अक्ष में से निकलते हैं। यदि पुष्पवृन्त (Pedicel) में कहीं भी छोटा सा पत्र या शल्क पत्र पाया जाता है तो उसे 'पुष्पोपदलक' (Bracteole) संज्ञा दी जाती है। ये भिन्न-भिन्न वर्ण, प्रमाण (नाम) तथा आयु के पाए जाते हैं। इनका मुख्य कार्य पुष्पकलि की धूप और वर्षा से रक्षा करना है। एतदर्थ वे लम्बे हो जाते हैं तथा समग्र पुष्पस्तवक के ऊपर छा जाते हैं। यदि वे वर्ण में हरे होते हैं तो साधारण पत्र की तरह भोज्य पदार्थों का निर्माण भी करते हैं। यदि वे बहुत आकर्षक वर्ण वाले हुए तो परागण या गर्भाधान में भी सहायता करते हैं।

पुष्पोपदलों के प्रकार

वर्ण, आकार तथा स्थिति (Arrangement) के अनुसार इनके निम्न लिखित भेद होते हैं।

(१) पर्णोपदल (Leafy Bracts) ये हरे चौड़े साधारण पत्तों के आकार के होते हैं यथा वासा (अडूसा) हुरहुर आदि में। (यथा चित्र सं० ६७)

(२) शल्कोपदल (Scaly Bracts) ये शल्क या वल्क पत्रों के समान पतले और सूक्ष्म होते हैं यथा सूर्यमुखी के बीच के पत्ते।

(३) शूकी उपदल (Spathe)—जब पुष्पोपदल पुष्प को या पुष्प स्तबक को पूरी तरह घेर लेता है और फूलों की रक्षा करता है तो उसे शूकी उपदल या परिगोप्ता उपदल भी कहते हैं। यथा केले, ताड़, नारियलादि में।

(४) दलपत्रीयोपदल (Petaloid Bracts)—जब ये उपदल सुन्दर और आकर्षक वर्ण वाले हों। यथा बागान विलास में (Glory of the garden) यथा चित्र ७० में अ।

(५) निविष्टोपदल (Involucre)—जब उपदल के एक से अधिक चक्र पुष्प को घेरे हुए हों, यथा सूर्यमुखी में। यथा चित्र ७० में आ।

चित्र संख्या (७०) पुष्पोपदलों के प्रकार
(अ) दलपत्रीयोपदल। (आ) निविष्टोपदल।

(६) वलयोपदल (Epicalyx)—जब उपदलकों के एक या एक से अधिक पुटचक्र के मूल में पाए जाएं यथा कपास, गुड्हल (जया में)।

(७) तुषीयोपदल (Glumes)—ये विशेष प्रकार के छोटे और सूखे उपदल घासों में पाए जाते हैं।

पुष्प भी एक परिवर्तित अंकुर है—

इसकी सिद्धि के लिये निम्न लिखित तथ्य स्मरणीय हैं—
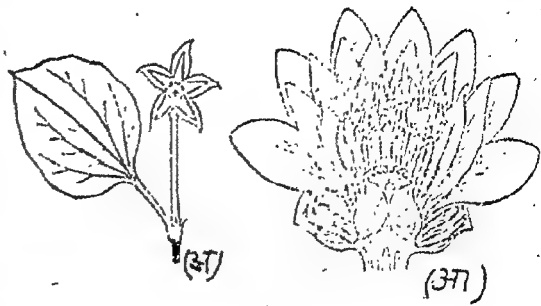
चित्र संख्या ७१ परिवर्तित पुष्पपत्र
(अ) नागकेशर पुष्प, (आ) गुलाब

(१) पुष्पासन बढ़ती हुई शाखा का ही सिरा है (यथा चित्र संख्या ७२ में)

और पुटपत्र, दलयन्त्र, लिंगसूत्र, तथा डिंपत्र, साधारण पत्रों के ही परिवर्तित रूप हैं। और सारा पुष्प प्रारोहिक कलिका का परिवर्तित रूप है। गुलाब और नागकेशरों से पुष्प से यह बात स्पष्ट होजाती है।

पुष्प संमिति (Symetry of Flowers)—

पुष्पों के विविध भागों का नाप करना "संमिति है। वे फूल जिनमें किसी श्रेणी के भाग, नाम व आकार समान होते हैं, नियमित (Regular) कहाते हैं। इनमें पुटपत्र एक समान होते हैं और इसी दलचक्र भी एक समान पाये जाते हैं। यथा प्याज गुलाब आदि के फूल।

इन फूलों को केन्द्र से गुजरती हुई किसी भी रेखा द्वारा दो समान क्षेत्रों में विभाजित किया जा सकता है। इस प्रकार के फूलों को "अरसम्मितीय या नियमित" (Actinot-morpbic) संज्ञा दी गई है।

इसके विपरीत मटर आदि लार्कस्पर आदि पुष्पों में किसी चक्र के कुछ पुष्पों पत्रादि औरों से भिन्न होते हैं। इनको अनियमित (Irregelar) कहते हैं। जब इसे ऊपर से नीचे तक (Verticaly) दो समान भागों में बांटा जाए तो इसे 'एकसम्मितीय' (Zygomorphic) कहते हैं यथा मटर, सेम आदि के फूल। जब किसी अनियमित पुष्प को किसी समक्षेत्र में दो भागों में न बांटा जा सके तो उसे असम्मितिक (Asymmetrical) कहते हैं यथा सेहुण्ड का पुष्प।

धन्वन्तरि

मार्च

१९५६

भाग ३०   अङ्क ३

श्री धन्वन्तरिः

कल्लोलाऽकुलपाशि लोकललना–लोलालकव्याकुल-
व्यालव्यूह विलोलवैधवकलातुल्याननाऽलोकितः ।
पीयूषाद विषाद दानव दल व्यालोलितालोकनै,
लीलाकल्पित लोकपालनुतिभिर्दिव्योभिषक्प्रोद्बभौ ॥१॥

ध्वान्तध्वस्तसमस्तदैवतकुलाभ्यस्तस्तलतवाभ्यर्थित-
स्त्रस्यन्मानवतोप ताप तपन प्रोद्यत्प्रभाभासुरः ।
संपत्सर्प विपद्विधान् विषमाऽभावाऽनुकम्पोदयः,
कल्याणैक परम्परापरिचितो दिव्योभिषक् प्रोद्बभौ ॥२॥

संदह्यदेववृन्द प्रतिदिनदयितादैन्य दावानलाभ्रः,
संसर्पत्सर्पसम्पत्समनुमित विपत्सत्प्रतीकारबन्धुः ।
सम्पच्यत्पापताप प्रततदवथु मन्मानवानन्द चन्द्रः,
क्षीरोदन्वत्प्रदेशादवनितल मितो देववैद्योऽनवद्यः ॥३॥

—श्री गिरिजादत्त पाठक आयुर्वेदाचार्य ।

त्रिदोष विचार

लेखक—डा० डी० एम० भोसेकर, हैदराबाद।

भारतवर्ष में संसार की उत्पत्ति निम्न प्रकार बताई गई है।

सबका मूल जो ब्रह्म उसमें जो स्फुरण हुआ वही शक्तिमयी माया का स्वरूप बना। माया चंचल है इसलिए संसार की चलन वलन और उत्पत्ति-नाश आदि क्रियाएँ उसी के कारण होती हैं। यह शक्ति, जिसे हम माया कहते हैं, तीन प्रकार की रहती है–सत्व, रज और तम। तीनों के संयोग से ही अनन्त ब्रह्माण्ड की रचना आरम्भ होती है। प्रत्येक पल में कुछ न कुछ कार्य चलता रहता है। उसके बिना एक क्षण भी नहीं बीतने पाता। इस शक्ति के कार्य से उसके दो रूप, एक व्यक्त और दूसरा अव्यक्त, अपने सामने आते हैं। इसी शक्ति द्वारा उत्पत्ति, स्थिति, लय,संयोजन,विभाजन, संचालन आदि कार्य होते रहते हैं। हर एक जीव का जन्म, अस्तित्व और मृत्यु अथवा हर एक वस्तु की उत्पत्ति, स्थिति अथवा लय, यह त्रिविध कार्य सतत चलते रहते हैं।

अपने यहां इन तीन शक्ति रूपी देवताओं की भी कल्पना की है। जैसे ब्रह्मा, विष्णु और महेश। संसार में कार्य करने वाले तीन प्रमुख घटक सूर्य, चन्द्र और वायु हैं। ये तीन शक्तियां यद्यपि भिन्न मालूम होती हैं तथापि वे तीनों मिलकर ही काम करती हैं। उसमें किसी का आधिक्य और किसी का न्यूनत्व रहता है। इसलिए वैशिष्ट्याधिक्य रूप से वह एक ही नाम से पहचानी जाती है। जैसे अधिक उष्णता से (पित्त), अधिक शीतता से कफ अथवा अधिक वायु के संचलन से वात कहलाया जाता है। इसलिए पृथ्वी का भ्रमण, ऋतुओं के फेरे, समुद्र में उष्ण और शीत पानी के बहने वाले स्रोत, या शीत-उष्ण वायु से होने वाली मेघों की हलचल और वर्षा दृष्टिगोचर होती है। हम विद्युत शक्ति को देखें तो उसमें भी तीन प्रकार के अवस्था भेद हैं। जैसे 'पाझि टिह्व' 'नगेटिह्व' और 'करंट'। इसमें उलट-पुलट क्रिया भी होती है। हम जिसमें पानी गरम करते उस 'बायलर' को ही देखिये। उसमें जब हम ठंडा पानी डालते हैं, उतना ही गरम पानी ऊपर से बाल्टी में गिरता है। इसमें भी तीन प्रकार का कार्य दिखाई देता है। ठंडे पानी का नीचे जाना, गरम पानी का ऊपर आना और पानी में जो अणु रहते हैं उसकी गतिमान क्रिया। सारांश प्रकृति में इसी प्रकार की तीन ही क्रियाएं चलती रहती हैं। मानव में भी इसी प्रकार का त्रिगुणात्मक कार्य चलता है, इसको त्रिदोष कहते हैं। ये क्रियाएँ जब शरीर का पोषण और धारण के उपयुक्त होती हैं, तब उसे 'त्रिधातु' कहते हैं। जब इसमें कुछ विकार उत्पन्न होते या वैसे कुछ चिह्न दिखाई देते हैं, तब उसे 'त्रिदोष' कहते हैं क्यों कि वे अपने शरीर में रहने वाले धातु को दूषित करते हैं, और इसी कारण अपनी अवस्था गिरने लगती है। त्रिगुण, त्रिदोष और त्रिधातु ये वही तीन शक्तियां हैं और वे एक ही हैं। शरीर में जो मल है वह भी धातु है। इसलिये एक प्राणी का मल दूसरे का आहार होता है। उनके कार्य के अनुसार उनके भिन्न नाम रखे गये हैं। औषधियों से रोगों की चिकित्सा की जाती है और ये 'त्रिदोष' सुधार सकते हैं। फिर भी हम दवाओं को उतना महत्व नहीं दे सकते, क्योंकि हरएक दवा में यह शक्ति व्यक्त या अव्यक्त रूप में रहती है। अव्यक्त रूप में दी गई औषधियां बीमार को देते ही उसका व्यक्त रूप प्रगट होना पड़ता; मतलब, शरीर को वह दवा ठीक जंचनी चाहिए। औषधि के और शरीर के गुणों को

एकरूप होना पड़ता है । उसके मूल धातु में योग्य बल मिलकर बीमारी का नाश होता है। उदाहरणार्थ किसी भी धातु का भस्म में रूपान्तर होना पड़ता है तब शरीर में काम करने वाली शक्ति की मदद मिलती है। इस दृष्टि से देखें तो वनस्पति के रस और कषाय रोग निवारणार्थ थोड़े परिश्रम से बहुत गुणकारी होते हैं।

रोग निवारण के लिए केवल औषधियों को ही महत्त्व न देने का दूसरा कारण रोग-निवारण मंत्र, तन्त्र, भस्म और बड़ों के आशीर्वाद से भी होता है। पूर्व काल में संक्रामक रोगों के निवारणार्थ नगाड़े पर एक विशेष प्रकार की औषधि लगाकर आवाज करते थे। अब भी तिब्बत में एक विशेष प्रकार की धातु की घण्टी की आवाज से बीमारी को दूर करने का रिवाज है। ऐसा वहां देखकर आये एक सज्जन से मुझे मालूम हुआ। और एक बात देखिए। एक चार साल का लड़का आनन्द से खेलते समय एक विशिष्ट प्रकार की रागदारी सुनते ही वह रोने लगता था। एक दम 'गाना बन्द करो, मत गाओ' कहता था। यह बात स्वयं लेखक ने देखी है। मनुष्य में इच्छाशक्ति नाम की जो चीज़ है वह बहुत ही प्रभावशाली है। एक पल में वह अमेरिका, इंग्लैंड में घूमकर वापिस आ सकती है; एक पल में यदि वह एक सुन्दर मूर्ति पर केन्द्रित होगी तो वह मूर्ति छिन्न-भिन्न हो सकती है। इच्छाशक्ति से आदमी कुछ भी कर सकता है। इसलिए त्रिधातु (त्रिदोष) पदार्थ हैं और वे कुछ पदार्थों से ही दुरुस्त हो सकते हैं, ऐसा हम कैसे कह सकते हैं? पहले मनुष्य के मन में इच्छा उत्पन्न होती है और बाद में वैसी क्रिया होती है। इसलिए हम कह सकते हैं कि व्यक्त शक्ति के द्वारा ही संसार में सब कार्य चलता रहता है।

इस त्रिगुणात्मक शक्ति से ही आगे पंचमहाभूतों का निर्माण हुआ; इसी प्रकार संसार में स्थावर जंगम आदि पदार्थों की उत्पत्ति हुई ऐसा कहा गया है। यह त्रिगुणात्मक शक्ति का व्यक्त स्वरूप है। जब सारे संसार का लय होता है तब पंचमहाभूतों का भी नाश होता है और त्रिगुणात्मक शक्ति का रूप रहता है; आगे उसका भी महा माया में रूपान्तर होता है। उदाहरणार्थ आदमी मरते समय उसका आत्मा वायु रूप बनकर बाद में वासनायुक्त बनकर शरीर त्याग देता है। यही शक्ति प्रसव के समय परब्रह्म में लीन होती है, ऐसा अपने शास्त्रों में बताया है।

आयुर्वेद शास्त्र की उत्पत्ति अथर्ववेद से मानी जाती है। वेद अत्यन्त पुराने हैं इसलिए यह शास्त्र भी उतना ही पुराना है। इस शास्त्र के मुख्य आधार स्तम्भ योग और सांख्यशास्त्र हैं। अपने ऋषियों ने संसार में उत्पन्न अनन्त पदार्थों के गुण-धर्म सिद्ध किये हैं। उस पर से देखें तो प्रत्येक पदार्थ में रस, गुण, वीर्य, विपाक आदि भिन्न होने पर भी शरीर में उसका तीन रसों में ही रूपान्तर होता है। मीठा, कड़वा और तीखा, अथवा वीर्य के प्रभाव से उष्ण वीर्य और शीत वीर्य ऐसे दो भेद दिखाई देते हैं। अपने हर रोज के व्यवहार में हम कहते हैं कि यह चीज खाने से सर्दी होती है और वह चीज खाने से गर्मी। किसी चीज को जब शरीर अपने में मिला लेता है और जब उसका प्रभाव मालूम होता है, वही शक्ति है। यही वह त्रिगुणात्मक शक्ति है। इस शक्ति को कार्यक्षम रखने के लिए प्राणियों को अन्न और औषधियों की आवश्यकता रहती है। उसके सिवाय शरीर का चलन-वलन बन्द हो जायेगा।

यह शक्ति स्थावर पदार्थों में भी रहती है यह सिद्ध हुआ है। उदाहरणार्थ बड़े-बड़े पहाड़ भी कुछ काल के बाद बढ़ते हैं। पेड़ पौधों को भी राग-द्वेश, सुख-दुःख आदि भावनाएं रहती हैं यह शास्त्रज्ञों ने सिद्ध किया है। सारे संसार में शक्ति का वास्तव्य है। यही शक्ति (अथवा माया) परब्रह्म में विलीन होने के कारण केवल एक ब्रह्म, सत्तत्त्व बाकी रहता है। यह ब्रह्म सारे संसार में अन्तर्बाह्य व्याप्त है, उसके सिवाय दूसरी चीज ही नहीं है, ऐसा कहा गया है। फिर भी कर्तृत्व शक्ति के कारण माया

पृथक् समझनी पड़ती है; इसलिए समझ, असमझ अथवा सर्व प्रकार के प्रयोग उसी के द्वारा साध्य हो सकते हैं।

शक्ति पदार्थ में रहती है। वह स्वतन्त्र नहीं रह सकती ऐसा हम वहें तो पदार्थ से या किसी चीज से कुछ कार्य नहीं होता। किसी चीज का अत्यन्त सूक्ष्मरूप (अणु का स्फोट देखिए) बनता है तब वह प्रगट होती है। उसी समय उसकी कार्य शक्ति भी दिखाई देती है। शक्ति और चीज या पदार्थ मूलतः यदि एक हैं फिर भी उनके अस्तित्व के कारण उनमें भेद होता है। पञ्चमहाभूतों में आप, तेज और वायु ये शक्ति के अमूर्त रूप हैं, वे ही स्थूल दृष्टि से मूर्त्त-रूप पदार्थ बनते हैं। इसलिए रोग निवारण के लिए यदि औषधियों के रूप में अनेक पदार्थों की आवश्य-कता रहती है, फिर भी इस त्रिविधात्मक शक्ति के सिवाय बीमारी दूर नहीं हो सकती। कौनसा विकार और दोष उत्पन्न हुआ है इसका ठीक ज्ञान होना चाहिए, तभी उचित मात्रा में औषधियों का उपयोग कर सकते हैं। पाश्चात्य पद्धति द्वारा रोग दूर नहीं होते इसका कारण दृश्य चिन्हों को देखकर रोग निदान करना और नई-नई प्रयोगावस्था में रहने वाली औषधियों के उपयोग से रोगियों की कीजाने वाली चिकित्सा यह ठीक चिकित्सा नहीं कहला सकती। इनकी औषधियों से दोष साम्यसाध्य नहीं होता। रोगों के चिन्ह अनेक हैं, उस पर से की गई चिकित्सा और निदान ठीक न होकर उसके बदले दूसरा ही एक रोग उत्पन्न हुआ वह नजर आता है। इसलिए इस पर आधारित संशोधन शास्त्र कितना ही आगे बढ़ने दो पर वह त्रिदोष के समान नहीं बना सकता। त्रिदोष पहचानकर उस पर उपाय योजना करने पर भी कुछ रोगी मरते हैं, ऐसा एक आक्षेप त्रिदोष चिकित्सा पर लगाया जाता है। ऐसा क्यों होता है तो इसके लिए शक्ति का अचिंत्यत्व भी मानना पड़ता है। इसी को हम ईश्वरी सत्ता या ईश्वरी संकेत कहते हैं। रोग मुक्ति के लिए चिंत्य शक्ति द्वारा सर्व प्रकार के दृश्य पदार्थों की याने औषधियों की आवश्यकता रहती है, ऐसा नहीं। उसके साथ-साथ मन्त्र-तन्त्र, आशीर्वाद आदि का भी उपयोग होता है, ऐसा बताया जा चुका है। इसलिए आयुर्वेदशास्त्र को *Pathology, physiology* इ. शास्त्रों को जानने की आवश्यकता नहीं पड़ी। थोड़ी शरीर विज्ञान की जानकारी करने से काफी होता था। द्रव्यगुण शास्त्रदृष्टि से पदार्थों के गुणधर्म, उनके रस, वीर्य, विपाक आदि पर से बनाये गये हैं। उस पर से शरीर में औषधियों से संतुलन रख सकते थे। उसमें भी ज्यादा कम होने से पाश्चात्य औषधियों की तरह दूसरा रोग होना अपरिहार्य ठहरता है। जैसे नार्मल टेंपरेचर के नीचे या ऊपर गया सो शरीर का उष्णतामान शरीर में कुछ दोष का होना बतलाता है। दोषों का बढ़ना अथवा कम होना बीमारी का लक्षण होता है। क्योंकि एक रोग जाकर दूसरी व्यवस्था में अड़चनें उत्पन्न करता है। ऐसे स्थान में बढ़े हुए दोषों को कम करना और कम हुए दोषों को बढ़ाना पड़ता है। बीमारी के कारण मनोविकारों का भी शरीर पर प्रभाव रहता है। इस प्रकार आयुर्वेद चिकित्सा शास्त्र उलझा हुआ रहने पर भी अभ्यासपूर्ण है। बीमारी उत्पन्न करने के लिये और उसका निवारण करने के लिये भी शक्ति ही कारण होती है यह योग दृष्टि से भी सिद्ध कर सकते हैं। इडा, पिंगला और सुषुम्ना इस प्रकार की वायु की गति से रोगों की उत्पत्ति और निवारण हो सकता है। जैसे एक नाड़ी की गति सतत चलने से शरीर पर होने वाला दुष्परिणाम दूसरी नाड़ी चलने से उसका निवारण हो सकता है। अथवा योग्य प्राणायाम करने से शारीरिक दोषों को दूर कर सकते हैं। औषधियों की आवश्यकता नहीं रहती।

इस लिए त्रिदोष एक शक्ति है। उसी के कारण शरीर में कार्य होता रहता है। वही संसार की सभी चीजों को उत्पन्न करती है और उसका नाश भी करती है। यह सब कार्य उसकी इच्छानुसार होता रहता है। सो त्रिदोष यह एक त्रिकालाबाधित सत्य तत्व है और सारे संसार का एक महान् शास्त्रीय सिद्धान्त है। ♦

आयुर्वेद के मुजरिम

लेखक—कविराज हरिकृष्ण सहगल, बागीची अलाउद्दीन, देहली।
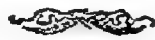
सोवियट रूस के नेता श्री बल्गानिन और खुश्चेव १४ दिसम्बर १९५५ को १० बजे प्रातः भारत से अपने देश को लौट गये। भारत में उनका जहां भी स्वागत हुआ वह पत्रों में छपा। भारत में उन्होंने बड़े बड़े डैमों, प्राजैक्टों और कारखानों को देखा, उन्होंने जो कुछ भी देखा वह पत्रों द्वारा जनता के सामने आगया। और भारत भ्रमण काल में दोनों महान् नेताओं ने जो कुछ भी कहा, वह भी पत्रों का शृंगार बना।

इन दोनों महान् नेताओं ने भारत भ्रमण काल में किसानों, मजदूरों, इन्जीनियरों और अन्य सैकड़ों व्यक्तियों को रूस आने के निमंत्रण दिये, परन्तु भारत की सर्वोत्तम और प्राचीन चिकित्सा आयुर्वेद के किसी दिग्गज महारथी की इनसे भेंट, किसी आयुर्वेदिक यूनिवर्सिटी का इनके द्वारा निरीक्षण, किसी कारखाने के अवलोकन का वर्णन व भारत की किसी आयुर्वेदिक संस्था द्वारा इन महान नेताओं के आतिथि सत्कार की कोई चर्चा पत्रों में नहीं आई।

इनके भारत निवास काल में भारत के लोगों ने इनको अपने कला-कौशल का परिचय कराया। लोक नाच दिखाये, गायन सुनाया। भारतीय फिल्मसाजों ने अपनी फिल्में दिखाई, कश्मीरियों ने लकड़ी और पश्मीने के काम दिखाये.राजस्थान वालों ने पत्थर की कला पूर्ण कृतियां प्रस्तुत कीं, मगर भारत के आयुर्वेदिक चिकित्सक जिनके पास शायद दिखाने को कुछ न था, या कि किसी ने कुछ दिखाने की ओर कोई ध्यान न दिया।

यह दोनों रूसी नेता संसार के रङ्गमञ्च के विशेष मोहरे थे। इनके सम्मुख जो कुछ भी उपस्थित हुआ वह संसार के सम्वाददाताओं द्वारा संसार में फैल गया। दुनियां ने उसे देख लिया। परन्तु भारत के आयुर्वेदिक हितेच्छु होने के दावादारों में से भारत भर में कोई भी ऐसा न हुआ जो इस अवसर से लाभ उठा सकता।

आपने पत्रों में पढ़ा होगा कि सोवियट नेताओं ने भारत भूमि पर पांव रखते ही नमस्ते का शब्द कहा। मैंने सोवियट नेताओं के भाषण को रेडियो पर सुना वह हिन्दी में था। आयुर्वेद वेद का एक अङ्ग है। आयुर्वेद भी भारतीय कल्चर का एक भाग है। रूसी नेताओं के हृदय में भारतीय संस्कृति कल्चर के लिए मान था। उन्होंने भारत से प्रस्थान करने के पूर्व भारतीय कल्चर की तारीफ की और अपनी अन्तिम भेंट में श्री खुश्चेव ने कहा कि रूस में हम हिन्दी को प्रोत्साहन देंगे। श्री बुल्गानिन और श्री खुश्चेव के सामने यदि आयुर्वेदिक चिकित्सा को लाया जाता तो निश्चय ही वे भारतीय कल्चर के एक भाग को जानकर इसकी प्रशंसा करते। भारतीय वैद्यों को रूस आने का निमंत्रण देते। परन्तु चहार दिवारी के अन्दर लीडर-शिप के लिये झगड़ा करने वाले आयुर्वेदिक नेताओं के पास पार्टीबाजी के कारण कोई समय ही न बचा था कि वह इस ओर ध्यान देकर लाभ उठा सकता।

अब यह तो निश्चय हो गया कि रूसी नेताओं को सम्पर्क में न लाकर एक भारी हानि की गई है। अब देखते हैं कि इस गफलत का उत्तरदायित्व किस पर है।

नम्बर एक, इन नेताओं को क्या देखना है उन्हें क्या दिखाना है। इसका प्रबन्ध भारतीय सरकार के विदेश विभाग व अन्य विभागों ने रूसी राजदूत के साथ मिलकर तय किया होगा। वैद्य अगर चाहते

तो उनके प्रोग्राम में इसे सम्मिलित करा सकते थे। अगर भारत सरकार उद्यत न होती तो रूसी राजदूत से प्रार्थना की जा सकती थी। भारत सरकार ने जहां रूसी नेताओं को भारत का कला-कौशल दिखाया था वहां वह जामनगर का आयुर्वेदिक रिसर्च केन्द्र, बनारस यूनिवर्सिटी, झांसी आयुर्वेदिक यूनिवर्सिटी और अन्य शिक्षण केन्द्रों को दिखाना भी प्रोग्राम में रख सकती थी। शिमला में रूसी नेताओं को संसार प्रसिद्ध सर्पगन्धा और हिमालय की बहुत सी प्रसिद्ध वनस्पतियां को दिखाया जा सकता था। देहली में रस की सहायता से निर्मित स्वर्ण जो बिरला जी के पास है उसके दर्शन कराये जा सकते थे। इसी तरह आयुर्वेदिक सम्बन्ध में अनेक चीजों को रूसी नेताओं और संसार के सामने लाया जा सकता था मगर भारत सरकार इस विषय में चूक गई। भारत के सरकारी अधिकारी भूल के शिकार हो गये।

दूसरे नम्बर पर आल इण्डिया आयुर्वेद महा मण्डल है। मेरी दृष्टि में आल इण्डिया आयुर्वेद महा मण्डल सबसे बड़ा मुजरिम है। रूसी नेताओं के भारत आगमन से पूर्व एक स्पेशल प्लैनिंग इजलास बुलाया जा सकता था। एक स्पेशल सैशन भी बुलाया जा सकता था और उसमें रूसी नेताओं को निमन्त्रित भी किया जा सकता था। परन्तु हमारे नेता तो योगों की तरह से आयुर्वेद चिकित्सा को भी गुप्त रखना चाहते हैं। उन्हें फुरसत ही कहां है कि वह ऐसी आवश्यक बातों की ओर ध्यान दें।

तीसरे मुजरिम भारत के आयुर्वेदिक औषध निर्माता हैं। आयुर्वेद के प्रचार और प्रसार से सब से अधिक लाभ इन औषध निर्माताओं को होता है। यद्यपि कभी-कभी पत्रों में पढ़ते हैं कि इस सम्मेलन में आयुर्वेदिक औषध निर्माताओं का भी वार्षिक अधिवेशन हुआ परन्तु रूसी नेताओं के यात्रा काल में यह औषध निर्माताओं का संघ पूर्ण रूप से सोता रहा। इसका सबसे अधिक उत्तरदायित्व था कि वह जागृत होता, एक फण्ड इकट्ठा किया जाता। रूसी नेताओं को निमन्त्रित किया जाता, उन्हें आयुर्वेदिक औषधियों और ग्रन्थ भेंट किये जाते और इस तरह रूस के चिकित्सकों के साथ सम्बन्ध स्थापित किया जाता।

विदेशों में औषध निर्माताओं की सुसाइटियां औषधियों की प्रसिद्धि के लिए बहुत कुछ करती हैं। मिल कर प्रचार के ढङ्गों पर विचार किया जाता है। संघ की ओर से प्रचार पर संयुक्त धन राशि में से खर्च किया जाता है। दूर नहीं जाइये इसी देश की चाय कम्पनियों ने मिलकर एक चाय बोर्ड बना रखा है। इसमें चाय कम्पनियों का चन्दा एकत्र करके चाय का प्रचार आरम्भ किया गया। आज चाय का प्रचार बढ़ जाने से उन्हें बहुत अधिक आर्थिक लाभ हो रहा है। चाय का प्रचार चाय से नहीं बल्कि बोर्ड की ओर से मुफ्त चाय पिला कर दीवारों पर विज्ञापन लगवा कर, सिनेमा में स्लाइडें चलवा कर पत्रों में विज्ञापन छपवा कर तथा रेडियों द्वारा प्रचार से हुआ है। परन्तु भारत के आयुर्वेदिक औषधि निर्माताओं में कभी ऐसी आवश्यकता को अनुभव नहीं किया गया। भारत के औषधि निर्माता सबसे बड़े पाप के भागी बने हैं।

चौथे मुजरिम भारत के आयुर्वेदिक पत्रकार हैं। पत्रकार दूसरी सरकार होते हैं। अगर भारत के पत्रकार कुछ ठीक हों तो कोई वजह नहीं कि कोई भूल करे। पत्रकार जो चाहें करवा सकते हैं। आयुर्वेद के पत्रकारों का (सब ही नहीं) उद्देश्य ही शायद आयुर्वेद प्रचार से अन्य कुछ और है। या तो इनकी लेखनी में बल नहीं या फिर यह कलम का प्रयोग नहीं जानते। भारत के आयुर्वेदिक पत्रकारों को चाहिए था कि वह रूसी नेताओं के भारत आगमन से पूर्व एक संघ बनाते। रूसी नेताओं के साथ आने वाले पत्रकारों की पार्टी को निमन्त्रित करते और इस तरह से वह संसार के सामने आयुर्वेदिक चिकित्सा को रखते। दुख है कि इस समय में यह भी चूक गये।

क्या मैं आशा करूं कि भविष्य में सभी वर्ग अपने उत्तरदायित्व का ध्यान रखेंगे।

विटामिन और उसके गुण

लेखक—श्री महावीर साहित्यालंकार, विशारद।

बींसवी सदी विज्ञान का युग है। इस युग ने विश्व में असंख्य अद्भुत एवं अलौकिक वैज्ञानिक अनुसंधान तथा आविष्कार किये हैं, जिनसे विश्व का बहुत बड़ा कल्याण हुआ है साथ ही महाभयंकर क्षति भी। उन वैज्ञानिक कल्याणप्रद अनुसंधानों में भोजन के पौष्टिक तत्त्वों का भी अनुसंधान एक है। आधुनिक वैज्ञानिक बहुत लगन, अनवरत परिश्रम, कठिन त्याग एवं तपस्या के पश्चात् इस निष्कर्ष पर पहुंचा है कि भोजन में अनेकानेक पौष्टिक तत्व हैं जिनमें विटामिन का स्थान सर्वोत्कृष्ट है।

विटामिन के विभिन्न नाम

विटामिन अंग्रेजी शब्द है इस शब्द की उत्पत्ति 'विटा' शब्द से हुई है जिसका अर्थ है 'जीवन तत्व'। अब लोग इसे जीवनतत्व, पौष्टिक तत्व, पोषक तत्व, पोष्य तत्व, प्राण-तत्व, खाद्य तत्व, खाद्य प्राण, खाद्य सार, खाद्य सत्व, जीवनीय कण प्रभृति नामों से सम्बोधित करते हैं।

विटामिन का इतिहास

विटामिन के अन्वेषण के साथ एक कथा छिपी है। बहुत दिन पूर्व की बात है समुद्र में जो लोग नाव, जहाज, बेड़े आदि से व्यापार-वाणिज्य तथा यात्रा करते थे, उन लोगों को पर्याप्त पौष्टिक शाक-फलादि सात्विक भोजन न मिलने के कारण उनके मसूड़ों से खून आना आरम्भ हुआ। शनैः शनैः शारीरिक दुर्बलता बढ़ती गयी। कार्य-क्षमता कम होती गयी। उनके शरीर में अनेक व्याधियां तथा विकार उत्पन्न हो गयें। इसका परिणाम यह हुआ कि लोग इस कारण की काफी छान-बीन, जांच-पड़ताल करने लगे। तदुपरान्त अन्वेषकों ने यह परिणाम घोषित किया कि यात्रियों को फल शाक आदि न मिलने के कारण तथा सड़ी गली बासी, अपौष्टिक वस्तुओं के प्रयोग से ही शरीर में विकार उत्पन्न हुआ। साथ ही उन लोगों ने पता लगाया कि ताजे शाक-फलादि में एक ऐसा तत्व है जो बासी सड़ा गला हो जाने पर उसके आकार-प्रकार में परिवर्तन हो जाता है। उनके पोषण तत्व नष्ट हो जाते हैं। जिसके सेवन से अनेक बीमारियां उत्पन्न हो जाती हैं। उस पौष्टिक तत्व का नाम विटामिन (जीवन-तत्व) रखा। बस यहीं से विटामिन (*vitamin*) शब्द का अन्वेषण प्रारम्भ होता है।

विटामिन क्या है?

विटामिन एक प्रकार का रासायनिक पदार्थ है जो हमारे भोज्य पदार्थों में उपस्थित रहता है और हमारे शरीर के अंग-प्रत्यंग, रक्त, मांस मज्जा आदि के रूप में परिवर्तित हो जाता है। यह एक पौष्टिक तत्व है जो हमारे जीवन को अक्षुण्ण बनाये रखता है, इसे भोजन का सार ही समझना चाहिए। यह हमारे स्वास्थ्य के लिये परमोपयोगी वस्तु है जिसकी कमी सदा खटकने वाली है।

यदि हमारे भोजन में सभी तत्व वर्तमान हों किन्तु विटामिनों का अभाव हो तो उस भोजन से हमारे स्वास्थ्य की रक्षा असम्भव है। वास्तव में विटामिन रहित भोजन हमारे शरीर के लिये स्वास्थ्यप्रद नहीं है।

विटामिन हमारे सभी भोज्य पदार्थों में कम या ज्यादा पाया जाता है। भोजन का उद्देश्य ही है शरीर की सारी शक्तियों का विकास। भोजन के द्वारा हमारी शारीरिक और मानसिक दोनों प्रकार की शक्तियों का सम्वर्द्धन एवं पोषण होता है। कार्य

क्षमता बढ़ती है पुरुषत्व का विकास होता है। सारांश यह कि भोजन ही जीवन है, पर हां, विटामिनरहित भोजन मृत्यु है।

यों तो जीवन निर्वाह के लिये साधारण भोजन भी परियाप्त है। पर विटामिन रहित भोजन से रोग निवारण और प्रतिषेधक शक्ति का संचय संभव नहीं है। इसके लिए प्राकृतिक शाक-तरकारी फलादियुक्त पौष्टिक भोजन की आवश्यकता है अत: ताजी और कच्ची तरकारियां प्रतिदिन खानी चाहिए।

इसके लिए नींबू, प्याज, गाजर, ककड़ी, मूली, पालक, गोभी आदि बहुत सी वस्तुएं हैं जो बिलकुल कच्ची खायी जा सकती हैं। विटामिन का सत्व तरकारियों के छिलके पर रहता है, इस लिए तरकारी छीलकर नहीं बनानी चाहिये।

कच्चे प्राकृतिक भोजन में विटामिन अधिक रहता है, यह ताप को सहन नहीं कर सकता है। उबालने या आग में पकाने से विटामिन विनष्ट हो जाता है। हां. उन विटामिनों में कुछ अधिक स्थायी होते हैं। जो ताप को अधिक सहन कर सकते हैं, किन्तु कुछ तो केवल वायु के अधिक सम्पर्क में रहने से ही नष्ट हो जाते है। प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध किया जा चुका है कि भिन्न-भिन्न प्रकार के विटामिनों का प्रभाव शरीर पर भिन्न-भिन्न होता है।

विटामिनों के अभाव में हानि

विटामिनों की अनुपस्थिति में खाये हुए पदार्थ हमारे शरीर के अन्दर पहुँचते हैं, पर उनसे हमारा जीवन अक्षुण नहीं रह सकता। हम दीर्घायु नहीं हो सकते। भोज्य पदार्थों में विटामिन की यही उपयोगिता और महत्ता है।

विटामिन के भेद

आजतक वैज्ञानिकों ने अनेक अनुसंधान के पश्चात् विटामिन के १५ भेद निश्चित किये हैं जिनमें मुख्यत: ६ को प्रधानता दी जाती है जिनका संक्षिप्त वर्णन निम्न लिखित है —

विटामिन 'ए'

यह घुलनशील विटामिन है। खासकर वसा, चर्बी और तैलीय पदार्थों में आसानी से घुल जाता है। यह शरीर का पोषक है, रक्षक है इससे शरीर की वृद्धि होती है, मांस पुष्ट होता है। इसमें रोगों से रक्षा करने की शक्ति है। इससे रगें, मांस-पेशियां सुदृढ़ एवं पुष्ट होती हैं। इसलिये बालकों के भोजन में इसकी उपस्थिति वांछनीय है। विटामिन 'ए' नेत्र की ज्योति को बढ़ाने वाला है। इसकी अधिकता से, हर तरह के रोग कोसों दूर रहते हैं, इससे नपुंसकता मिटती है। माताओं के भोजन में विटामिन 'ए' रहने से दूध की मात्रा बढ़ जाती है।

विटामिन 'ए' की कमी होने से शरीर रोगों का घर हो जाता है। इसके अतिरिक्त खाल खुरदरी और सूखी हो जाती है। खाल का रङ्ग भी गहरा हो जाता है। आंखों का प्राकृतिक तरल सूखने लगता है। शरीर के रोम कूप सूखे और मोटे पड़ जाते हैं। इसके अभाव में कान, नाक, गले, फेफड़े और नेत्र के अनेक रोग पैदा होजाते हैं इतना ही नहीं, निमोनियां, खांसी, तपेदिक, क्षय, आंतों की सूजन, चर्मरोग, पेचिश, जलोदर, रतौंधी आदि रोग इसी की कमी से होते हैं।

विटामिन 'ए' की कमी से बच्चों के दांत देर से निकलते हैं और कमजोर होते हैं। इसके अभाव में शरीर नाटा होजाता है। शरीर की शक्ति कम होजाती है, स्तनों में दूध की कमी हो जाती हैं।

विटामिन 'ए' गेहूं, चोकर समेत आटे, चावल घर का कुटा हुआ, जौ, जई-बाजरा, मकई भुट्टा, अरहर, उरद, खेसारी, चना मटर मसर, मूंग, सोयाबीन, अजवायन का पत्ता, करमकल्ला, पातगोभी, गेनारी साग, धनिया, चौराई लाल, नीम की पत्ती, पालक, पुदीना, मैथी, सलाद, सहजन, अरई, आलू, गाजर, जमीकन्द, शकरकन्द, करेला, कुम्हड़ा, केला, गोभी, टमाटर, तोरई, परवल, प्याज का डंठल, खिरड़ी, लौकी, सिंघाड़ा, सेम, अखरोट,

काजू, तिल, तीसी, पिस्ता, मूंगफली, राई, अदरख, इमली, जीरा, हरी मिर्चा, अंगूर, अंजीर, अनन्नास, अमरूद, आम, कटहल, किशमिश, नाशपाती, संतरा नीबू, पपीता, बेर, दूध, दही, पनीर, मट्ठा, घी, वत्तक और मुर्गी का अण्डा, मांस, केकड़ा और मछली में पाया जाता है।

इसके अतिरिक्त ईख का रस, कॉडलिवर-आइल, खमीर, गुड़, नीरा, पान, लालखजूर, साबूदाना, हैरसीयटलिवर आइलक्रीम, केक, चर्बी, तेल और मक्खन में पाया जाता है।

विटामिन "बी"

विटमिन 'बी' घुलनशील तत्त्व है। पर यह विटामिन 'ए' के समान चर्बी या तैलीय पदार्थों में नहीं बल्कि पानी में घुलता है। यह सब्जी या अनाज के छिलके में पाया जाता है और अनाजों को पानी में भिगोने से यह उस पानी में घुल जाता है।

शरीर में जितनी मानसिक व शारीरिक क्रियायें हैं उन सबसे विटामिन 'बी' का सीधा सम्बन्ध है। यह नाड़ी संस्थाके लिए अति आवश्यक है।

यह विटामिन-ज्ञान तन्तुओं को बल देता है और पाचन-शक्ति सुदृढ़ करता है। इससे शरीर में अत्यधिक वृद्धि होती है। यह जीवन को स्थिर रखता है बच्चों को इसकी अधिक आवश्यकता है। इसकी अधिकता से शरीर के अन्दर रस उत्पन्न करने वाली ग्रन्थियां जैसे थाइराइड, पिच्यूटरी प्रभृति में उत्तेजना होती है और इसकी क्रिया ठीक रहती है।

यह हृदय, रग तथा मस्तिष्क को बल और स्फूर्ति देता है। पाचन-शक्ति बढ़ाता है। हृदय, दिमाग और नसों को तन्दुरुस्त और ठीक रखता है। क्षुधा और पाचनशक्ति बढ़ाता है। बेरीबेरी आदि रोगों से बचाता है।

विटामिन 'बी' की शरीर में न्यूनता होने से मनुष्य की शिराएँ, मांसपेशियां और मस्तिष्क की शक्ति निर्बल हो जाती है। वह बेकाम होजाती है। इतना ही नहीं, यदि भोजन में इसकी कमी हुई, तो भोजन सुस्वादु नहीं होता। इससे मधुमेह, गरमी, अजीर्ण, सूखा रोग, राजयक्ष्मा, कैन्सर, अपच, अधिक दस्त, रुक रुक दस्त, पेट में फोड़ा, पेट का दर्द, शरीर की दुर्बलता, शरीर की युद्ध शक्ति आदि विकार उत्पन्न हो जाते हैं। मुंह का स्वाद खराब हो जाता है। तबियत में भारीपन मालूम होता है। हाथों, पैरों और आंखों में जलन होती है। दस्त खुलकर नहीं होता है। कभी-कभी पतला दस्त होने लगता है। हृदय कमजोर हो जाता है।

विटामिन 'बी' की कमी से पाचन-क्रिया बिगड़ जाती है। लोग अपचन, मरोड़, आध्मान और भूख की कमी आदि विकार तथा ज्ञान तन्तु सम्बन्धी रोग के शिकार होजाते हैं साथ ही इसके अभाव में मुंह का स्वाद बिगड़ जाता है। शरीर कमजोर और रोगों का घर हो जाता है। लोग बेरी-बेरी रोग से ग्रसित हो जाते हैं।

इसके अतिरिक्त चलने-फिरने में थकावट मालूम पड़ती है। सांस फूलने लगता है, दिल घबराने लगता है। स्मरणशक्ति क्षीण हो जाती है। बुद्धि भ्रमित होजाती है। सारांश यह कि विटामिन 'बी' की कमी से शारीरिक तथा बौद्धिक शक्ति का ह्रास होने लगता है।

विटामिन 'बी' का एक समूह है जिसके मुख्यतः ५ भेद हैं। पांचों का भिन्न-भिन्न गुण अवगुण तथा फलाफल है। विटामिन बी नं० १ से ज्ञानतन्तुओं को बल मिलता है। इसके अभाव में बेरी-बेरी की बीमारी अधिक होती है। रोगी का मुंह आ जाता है। जीभ सुर्ख हो जाती है। उसके किनारे सूज जाते हैं तथा उन पर दांतों के चिन्ह निकल आते हैं।

यह सबसे अधिक खमीरा में मिलता है। यदि भोजन की मात्रा तीन छटांक शाक-सब्जी, डेढ़ छटांक चावल-दाल और आध पाव का आटा लिया जाय तो इस विटामिन की कमी पूरी हो जाती है।

चावल को बार-बार धोने से भी इस विटामिन की कमी हो जाती है। अतः इस ओर सतर्कता की आवश्यकता है। यह विटामिन उष्णता में नष्ट हो जाता है।

विटामिन बी नं० २ का दूसरा नाम रिबोफ्लैविन या लैक्टोफ्लैविन है। इसका कार्य भी विटामिन बी नं० १ के निकोटिनिक एसिड जैसा है। इसकी कमी से एक तरह का मुखपाक हो जाता है जिसमें दोनों ओष्ठों के मिलने के कोनों में जख्म हो जाते हैं और सूज जाते हैं। इतना ही नहीं, इसकी कमी का विशेष परिणाम यह होता है कि दोनों होठों के मुंह के अन्दर वाली और त्वचा के अन्दर गढ़े हुए, बारीक-बारीक सफेद या भुरे रंग के कण प्रतीत होते हैं।

यह खासकर चर्मरोग के लिए परमोपयोगी है। यह अधिकतर शाक, सब्जी, दूध और अन्न में पाया जाता है।

विटामिन बी नं० ३ की कमी से शारीरिक वजन कम हो जाता है यह खासकर कबूतरों के लिए उपादेय है।

विटामिन बी नं० ४ चूहों के शरीर की कमी की पूर्ति करता है यह क्षार उत्ताप और एलकली में नष्ट हो जाता है।

विटामिन बी नं० ५ यह सबसे अधिक पौष्टिक तत्व है। यह विशेष कर खमीरा, दूध, शाक-सब्जी और अंडे में पाया जाता है। उत्ताप और एलकली में देने से इसमें कोई परिवर्त्तन नहीं होता है।

विटामिन 'बी' गेहूँ चोकर समेत, कोदो, कोनी, अरवा चावल, ढेंकी का चावल, चूड़ा, जौ, ज्वार, जई, बाजरा, अरहर, चना, मटर, सोयाबीन, मूंग, मसुर, करमकल्ला, पातगोभी, चौराई लाल, पालक, सहजन, सलाद, मेथी, अमरूद, आलू, गाजर, चुकन्दर, जमींकन्द, प्याज, मूली, साबूदाना करेला, कुम्हड़ा, केला, खीरा, गोभी, टमाटर, तोरई, प्याज का डंठल, भिंडी, लौकी, अखरोट, गरी, मूंगफली, बादाम, करौदा, खजूर, जामुन, नारंगी, सेव, गाय के दूध, कलेजी, गोमांस, भेड़ का मांस और सुअर के मांस में पाया जाता है।

विटामिन 'सी'

यह विटामिन जल में घुलने वाला है। कहा जाता है कि वैज्ञानिकों ने सर्व प्रथम इसी विटामिन का अनुसंधान किया था। यह विटामिन स्कर्वी नामक रोग को रोकने वाला है। विटामिन 'ए' और 'बी' की अपेक्षा यह ताप को भी कुछ सहन करता है। शीत से भी इसका नाश नहीं होता है। वायु के सम्पर्क से इसका जल्दी नाश होजाता है।

विटामिन 'सी' अधिक गर्मी सहन नहीं कर सकता है। अतएव पकाने में इस तत्व का प्रायः विनाश हो जाता है। क्षार के संयोग से भी यह विनष्ट हो जाता है। अम्लयोग से यह बहुत दिनों तक अपरिवर्त्तित अवस्था में रहता है, फिर भी मंद आंच में थोड़ी देर तक तरकारी पका लेने में विशेष हानि नहीं होती।

विटामिन 'सी' शरीर के भीतर यकृत और रक्त में एकत्र है। इससे रक्त शुद्ध रहता है, रक्तवाहिनी नसों से बहकर नहीं निकलता है। यह दांत, हड्डी और त्वचा के लिये हितकर है। यह खून को साफ और दुरुस्त रखता है। हड्डियां और दांतों के मसूड़ों को मजबूत बनाता है, हड्डियां व आंखों को ठीक रखता है। इससे आंख की रोशनी तेज होती है। छूत के रोगों से बचने में सहायता करता है तथा चर्म रोग को भी रोकता है।

विटामिन सी की कमी होने से दांत और हड्डियां कमजोर हो जाती हैं। भूख कम लगती है। खून सूख जाता है। सांस फूलने लगती है। पाचन क्रिया बिगड़ जाती है। पेट और आंतों में छाले पड़ जाते हैं। शरीर के जोड़ों में सख्ती आजाती है और उनमें दर्द होता है। मसूड़े सूज जाते हैं, दांत कमजोर हो जाते हैं, तरह तरह के हड्डी के रोग और चिड़चिड़ापन बढ़ जाता है। वजन धीरे धीरे कम होजाता है। दांत और मसूड़े में पीब आने लगती

है। इतना ही नहीं विटामिनि 'सी' के अभाव में त्वचा पर नीले नीले या बैंजनी रंग के धब्बे प्रतीत होने लगते हैं शरीर के भिन्न भिन्न अंगों में रक्त जम जाता है और यदि कोई अंग कट या छिल जाय अथवा कहीं गहरी चोट लग जाय तो खून खूब गिरता है तथा घाव बहुत दिनों में भरता है।

इसकी कमी से शरीर में झुरियां पड़ जाती हैं। थोड़े परिश्रम से लोगों में थकावट मालूम होती है। दम फूलने लगता है। काम करने की शक्ति क्षीण हो जाती है। हाथ-पैरों में दर्द और जोड़ों में सूजन रहने लगती है। सिर में चक्कर आने लगता है। आंखों के सामने अन्धेरां छा जाता है। इसके अतिरिक्त विटामिन 'सी' के अभाव में संक्रामक रोग का प्रभाव शरीर पर शीघ्र पड़ने लगता है। परिणामस्वरूप राजयक्ष्मा तथा मोतीझला जैसे रोग होजाते हैं।

विटामिन 'सी' मकई के नरम भुट्टे, अंकुरा हुआ चना, मटर, अजवायन का पत्ता, करमकल्ला, पातगोभी, धनियां, चौराई लाल, पालक, सलाद, सहंजन, आलू, चुकन्दर, जमीकन्द, प्याज, मूली, रतालू, शकरकन्द, आंवला, कच्चा आम, करेला, केला, कुम्हड़ा, खीरा, गोभी, सेम, टमाटर, सिंघाड़ा, शलजम, लौकी, भिण्डी, बैंगन, गरी, अदरक, इमली, लहसुन, राई, हरीमिर्च, सूखी मिर्च, जीरा, अंगूर, अञ्जीर, अनन्नास, अनार, अमरूद, अलूचा आड़ू, पक्का आम, कटहल, किशमिश, खजूर, जामुन, नारङ्गी, नाशपाती, खट्टा और मीठा नीबू, पपीता, मकोय, सेब, स्त्री का दूध, बकरी का दूध, गाय का दूध, मक्खन, गोमांस, सूअर का मांस तथा कलेजी में मिलता है। इसके अतिरिक्त पान में विटामिन सी पाया जाता है।

विटामिन "डी"

यह चिकनाई में घुलने वाला विटामिन है। यह विटामिन अधिक गर्मी सहन नहीं कर सकता है। विटामिन 'डी' से शरीर की वृद्धि होती है। खासकर बच्चों की समुचित वृद्धि होती है। यह बच्चों में होने वाला सूखा रोग (रिकेट्स) या बालग्रह को रोकता है। सूखा रोग बच्चों के लिए बड़ा खतरनाक है। इसमें अस्थियां नरम टेढ़ी होजाती हैं। विटामिन 'डी' हमारे शरीर में दैनिक उत्पन्न होने वाले और यकृत में जमा होने वाले विषों को दूर करता है। यह ज्वर को रोकता है। यह शरीर की हड्डियों को मजबूत बनाता है। जो लोग पर्दानशीन हैं, सदा घरों में बन्द रहते हैं उनके लिए इस विटामिन की अत्यधिक आवश्यकता है। इससे रक्त की वृद्धि होती है। चेहरा प्रसन्न चित्त रहता है। जुकाम की शिकायत कभी नहीं होती है।

विटामिन 'डी' की कमी से बच्चों की वृद्धि रुक जाती है। उन्हें सूखा रोग धर दबाता है। हाथ-पांव सूख जाते हैं और पेट निकल आता है। चलने-फिरने की ताकत जाती रहती है।

इसके अतिरिक्त शरीर में रक्त का कम होना, चेहरे का उदास रहना, दौरे का शिकार हो जाना, जुकाम का शिकार होते रहना आदि कई रोग विटामिन 'डी' की कमी से होते हैं। इसके अभाव में कमजोरी, चिड़चिड़ापन और हड्डियों में कमजोरी आती है। शरीर में खून सूख जाता है। चेहरा फीका पड़ जाता है। सर्दी और जुकाम जल्दी-जल्दी होने लगता है। फेफड़े के अनेक रोग हो जाते हैं।

विटामिन 'डी' काडमछली के तेल, मक्खन, घी और अण्डे की जर्दी से प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त मांस, दूध, हरी भाजी, गाजर, प्याज, पपीता, टमाटर, नींबू, सन्तरा, पालक, करमकल्ला, शलजम, शकरकन्द, सेम, नारियल और छेना में पाया जाता है। यह सूखी तरकारियों में तथा अंकुरे हुए अन्न में भी मिलता है।

शरीर में तेल मालिश कर धूपस्नान करने के बाद सूर्य किरणों के द्वारा विटामिन 'डी' स्वतः पैदा हो जाता है

विटामिन 'ई'

यह विटामिन 'ए' और 'डी' की भांति तेल में घुलने वाला है। यह भी अन्य विटामिन की तरह पौष्टिक तत्व है। यह अधिक ताप सहन कर सकता है। २००° डिग्री सेन्टीग्रेड पर भी इसका नाश नहीं होता है।

विटामिन 'ई' स्त्रियों एवं पुरुषों की प्रजनन शक्ति की वृद्धि करता है। खासकर स्त्रियों के वन्ध्यापन और गर्भपात को रोकता है। बांझ पशुओं का बांझपन इससे छूटता है।

इसकी कमी होने से पुरुषों में स्वस्थ वीर्य उत्पन्न होना कम हो जाता है या प्रायः वन्द हो जाता है। स्त्रियों में गर्भपात होना प्रारम्भ हो जाता है। मासिक में भी गड़बड़ी हो जाती है। जननेन्द्रियों पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। इस विटामिन के अभाव में सन्तानोत्पादिनी शक्ति नष्ट हो जाती है। पशुओं की प्रजनन शक्ति पर भी बुरा प्रभाव पड़ता है।

विटामिन 'ई' गेहूँ, चावल, अंकुरा हुआ गेहूं, बाजरा, साग-सब्जी, ताजे दूध, मक्खन, मटर, पालक, बादाम, मूंगफली, तीसी, मांस में पाया जाता है। मटर के छोटे पौधे, शकरकन्द और छीमी की तरकारी में बहुत होता है। नारियल में भी काफी मात्रा में मिलता है। इसके अतिरिक्त चोकर समेत आटे में विटामिन 'ई' पाया जाता है।

विटामिन "के"

यह विटामिन भी अन्य विटामिनों की तरह अधिक उपयोगी है। इसमें भी अधिक पौष्टिक तत्त्व हैं। यह विटामिन शरीर के अन्दर वह तत्त्व पैदा करता है जो रक्त को स्वस्थ एवं स्वच्छ रखता है। सदा तरोताजा बनाये रखता है। जिसका खून अच्छा है यदि किसी कारण से उसका कोई अङ्ग कट जाय तो जो रक्तस्राव होगा वह तुरन्त जम जायगा। यह क्रिया विटामिन 'के' की कमी पूर्ति होने से होती है।

इसकी कमी से रक्तपित्त की बीमारी होती है, रक्त कमजोर होजाता है।

यह विटामिन खासकर हरी साग-सब्जियों में पाया जाता है।

विटामिन 'पी'

इस विटामिन की भी अपनी खास महत्ता है। हमारे शरीर को इसकी अत्यन्त आवश्यकता है। यह विटामिन चर्मरोग होने से रोकता है। इससे मसूड़े मजबूत होते हैं। सौन्दर्य की वृद्धि होती है।

इसके अभाव में चर्म रोग हो जाता है। चमड़ा फटने लगता है। मसूड़ों से खून और मवाद आने लगता है जिससे गाल फूल जाते हैं। नाखून में घाव हो जाते हैं और वह विकृत हो जाते हैं। शरीर के रङ्ग में परिवर्तन हो जाता है। सौन्दर्य खराब हो जाता है।

यह विटामिन अन्न, फल तथा हरी साग-सब्जियों में अधिक पाया जाता है।

उल्लिखित विटामिनों के अध्ययन से स्पष्ट ज्ञात होता है कि वास्तव में विटामिन हमारे जीवन को अक्षुण्ण बनाये रखने वाले भोजन का पौष्टिक तत्त्व हैं जिसकी कमी होने से हमारा दम घुटने लगता है। अल्पकाल में हमारी मृत्यु हो जाती है। अतः हमारे भोजन में विटामिनों का अधिकांश हिस्सा रहना परमावश्यक है। ●●

सर्प-विष-चिकित्सा

लेखक—श्री वैद्यराज लधाराम जी पंजाबी हलवाई खाना ग्वालियर।

सर्प प्रायः दीनजनों को काटता है। सर्प वर्षा के दिनों में अधिक काटता है। इसका विष कई तरह का होता है। सर्प मनुष्य को उस दशा में काटता है जब वह तंग होता है। सर्प कई प्रकार के होते हैं और उनका विष भी कई प्रकार का होता है। कई सर्पों का विष आध पाव शरा जितना सौम्य होता है और कई सर्पोंका विष १तोला संखिया जितना भीषण होता है। कई सर्प ऐसे होते हैं जिनका काटना तो एक ओर रहा फुंकार से ही मानव जल जाता है, ऐसे सर्प के विष की कोई चिकित्सा नहीं, क्योंकि आदमी एक मिनट में ही समाप्त हो जाता है। कई सर्पों में बिलकुल विष नहीं होता। सर्पों का विष भी वात, पित्त, कफ त्रिदोष के हिसाब से होता है।

१—वात के विष का प्रभाव प्रायः पांच मिनट में मनुष्य शरीर में हो जाता है। जहां सर्प ने काटा हो उस स्थान पर फफोला पड़ जाता है और कई जगह फफोला नहीं भी पड़ता और फफोला का रङ्ग सब्जी लिए सफेद होता है। शिर, शरीर छाती और दांतों में दर्द होता है गला बंद हो जाता है। नाड़ी वायु युक्त पर बहुत तेज होती है धीरे-धीरे मध्यम होती जाती है और फिर बन्द हो जाती है। जब जहर पूरे बदन में फैल जाता है तो आदमी बेहोश जाता है और हृदय की गति बन्द हो जाती है।

२—पित्त के विष में शरीर में अत्यन्त जलन होती है और फफोला सुर्खी लिए पड़ता है अधिक विष होने पर मुख नाक से रक्त भी आ जाता है और देखने में आया है कई बार रोगी का शरीर भी फूट जाता है। नाड़ी पित्त विकार पर चलती है। साथ में ज्वर भी होता है। रोगी के मरने पर उसके शरीर का रङ्ग काला हो जाता है।

३—जिन सर्पों का विष कफ दोष पर होता है वे प्रायः पानी में रहते हैं या नमदार स्थान में रहते हैं। अनुभव से सिद्ध हुआ है कि ऐसा सर्प जब काटता है तो विष कुछ देर बाद शरीर में असर करता है। जहां सर्प काटे वहां वर्म हो जाता है। कई बार गलाव भी पड़ जाता है। कभी कभी रोगी के सारे शरीर में शोथ भी हो जाता है। पञ्जाब व बङ्गाल के सर्पों का विष बड़ा भयङ्कर होता है। मध्यभारत ग्वालियर के कई सांप भी बड़े खतरनाक होते हैं। प्रायः गवालियर के सांप का जहर बहुत कम होता है।

सर्प काटे हुए की चिकित्सा बड़ी सावधानी से ईश्वर को स्मरण करके करनी चाहिए। अपने हृदय पर अधिकार रखकर ही चिकित्सा में प्रवृत्त हों, घबराना कदापि नहीं चाहिए। वैद्य के घबरा जाने पर रोगी अवश्य मर जाता है। सर्पों के विषय में यदि पूरा पूरा वर्णन किया जाय तो एक बड़ा ग्रन्थ बन सकता है इसलिए जिन साहब को कोई बात ज्ञात करनी हो तो पत्र व्यवहार से विदित कर सकते हैं। जबाब अवश्य दिया जायगा। मैंने १९४८ से लेकर १९५४ तक ग्वालियर के बहुत से लोगों की (स्त्री-पुरुष बालक व गर्भवती स्त्रियों की चिकित्सा की है ईश्वर की कृपा से सब पर सफलता मिली है।

चिकित्सा नं० १

ऊपर लगाने की औषधि जिससे दंश स्थान जल जाता है।

नोट—ईश्वर की शपथ खाकर लिख रहा हूं कि इस योग के लिए कई इच्छुकों ने मुझे परियाप्त दान देने का लोभ दिया मगर मैंने योग नहीं बताया, अब चूंकि मैं वृद्ध हो गया हूं इस लिये

जनता के लाभ के लिए इसे प्रकाशित कर रहा हूँ जिसमें 'धन्वन्तरि' की विशेष प्रेरणा थी।

योग नं.१–टाटरी असली जापानी मोटी ६ मापा
फिटकिरी सफेद ११ मापा
नमक पंजाबी (सेंधा) १॥ मापा
—सब वस्तुओं को अलग अलग पीसकर मिलाकर तुरन्त कांच की शीशी में भर कर कार्क लगा कर बन्द करदें।

योग नं. २—परमेंगनेट बारीक पीसकर १ शीशी में बन्द करके रखें।

प्रयोग विधि–जब कोई रोगी सर्प काटे का आवे सबसे पहिले दंश स्थान पर नं० १ की दवा रख ऊपर से नं० २ वाली दवा डालें। ऊपर से दो बूंद पानी डालें। उसी समय उफान आकर दंश स्थान जल जावेगा, ज़हर शरीर में नहीं जावेगा।

योग नं. ३–ज्येष्ठ मास में उत्तम रीठा लेकर उनकी गुठली निकाल दें। छिलका बारीक पीसकर बोतल में बन्द करलें। मात्रा ६ मापे पानी २॥ तोले में मिलाकर रोगी को पिलावें। इसी प्रकार एक मात्रा दवा और एक मात्रा घी शुद्ध गरम करके पिलाते रहें। इससे वमन होगी और विष शरीर से बाहर निकल आवेगा। इस औषधि को रोगी तब तक पीता रहेगा जब तक उसके शरीर में विष होगा। जब विष उतर जावेगा तब रोगी इस औषधि को पी नहीं सकेगा। कड़वी मालूम पड़ती है जब कड़वी मालूम पड़े समझ लेना चाहिए कि विष नष्ट हो चुका है। मात्रा पर मात्रा औषधि पिलाते जावें घबरावें नहीं। घी एक मात्रा में कम से कम एक छटांक होना आवश्यक है।

योग नं. ४—यदि रोगी मूर्च्छित हो गया है तो नेत्रों में यह औषधि लगावें—स्वर्णगेरू, सोनामक्खी भस्म, शुद्ध नीलाथोथा, शंखभस्म नीबूरस से तयार कीहुई, नमक सेंधा, कालीमिर्च, शु. मैनसिल सबको बराबर लेकर ख़रल करें बारीक होजाने पर इसमें असली शहद मिलाकर मलहम की सूरत में तैयार रखें। यह औषधि तैयार होने पर उफान खाती है इसलिए इस औषधि के लिये बोतल खुले मुंह की होनी आवश्यक है। और जितनी दवा हो उससे कई गुनी बोतल खाली होनी चाहिए, जो उफान से भर जाती है। यह औषधि मूर्च्छित रोगी के नेत्रों में दो-दो रत्ती सलाई से लगानी चाहिए। इससे तुरन्त होश आता है। यदि इससे होश न आए तो निम्न-लिखित प्रयोग काम में लावें।

योग नं० ५—नकछिकनी, रीठा चूर्ण, पीपल बराबर लेकर पीसकर कपड़छन करलें। इस दवा में से चार रत्ती दवा नाक में रख कर रबर की नली या हुक्के की नली से फूंक देने से तुरन्त होश आजाता है। यदि इससे भी होश न आवे तो निम्नलिखित प्रयोग करें।

योग नं० ६—अनबुझा चूना २ तोला
नौसादर देशी २ तोला
अफीम २ तोला
कपूर ३ माषा
थनियां ६ माषा

विधि—सबको बारीक पीसकर इसमें आधा पाव कोई अर्क या भबका के द्वारा खिंचा हुआ पानी डालकर हर समय तैयार रखें। यह बोतल नाक से लगाकर सूंघने पर अवश्य होश आजाता है।

सांप काटे की चिकित्सा करना सरल कार्य नहीं है। बड़ी होशियारी से करना चाहिए। मनुष्य के जीवन और मृत्यु का प्रश्न है।

योग नं० ७—यदि रोगी का गला बन्द होगया है तो कोई रोगी के घर का या उसका सम्बन्धी घी से अंगूठे के पास वाली अंगुली अच्छी तरह चुपड़ कर फिटकरी और लाहौरी नमक बराबर वजन बारीक पिसे हुए को अच्छी तरह अंगुली से लगाकर गले में लगावे। इससे गले का बलगम पानी होजाता है। दो-तीन बार ऐसा

करना चाहिए, यदि फिर भी गला न खुले तो किसी चिड़िया का सख्त-सा पंख लाकर गले में फेरना चाहिए। रोगी को शुद्ध होजाने पर (विष न रहे) कम से कम छः घण्टे तक हरगिज सोने नहीं देना चाहिए।

चिकित्सा नं० २—जो देर से होती है। इससे मनुष्य मर नहीं सकता। ऊपर के प्रयोगों से रोगी अधिक से अधिक चार घण्टे में स्वस्थ हो जाता है। उपरोक्त इलाज हर प्रकार के सर्पविष को दूर करता है। मेरा सैकड़ों बार का अनुभूत है। इसके अतिरिक्त कई सर्पों का विष सप्ताह दो सप्ताह बाद भी असर होते देखा गया है और कई बार सर्प काटे का रोगी ठीक होने पर भी कुछ देर बाद फिर विष फैल जाता है, चक्कर आने लग जाते हैं इसके लिए निम्न योग देने से अत्यन्त लाभ होता है—

योग नं० ८—बिल्लौर असली संगजराहत
जौहर नौसादर लौटा सज्जी
शीशा नमक —प्रत्येक १-१ तोला।

विधि—सब औषधियां अच्छी प्रकार खरल में घोंट कर रक्खें।

मात्रा—४ रत्ती से २ माशे तक दो घूंट पानी से दें।

यह दवा हर प्रकार के सर्प के विष को दूर करती है। यदि विष अधिक हो तो एक-एक घण्टे बाद भी दी जा सकती है, घी हर हालत में साथ देना चाहिए। यदि विष कम हो तो एक मात्रा सवेरे और एक मात्रा शाम को देना चाहिए। सर्प काटे रोगी का कई दिन तक ध्यान रखना चाहिए।

श्वसनकज्वर (Pneumonia)

लेखक—कविराज एस० एन० बोस एल० ए० एम० एस०, भिषग्रत्न, इन्दौर।

संज्ञा—महामहोपाध्याय कविराज गणनाथ सेन सरस्वती जी ने अपने 'सिद्धान्त-निदान' में फुफ्फुस प्रदाहजनित ज्वर को श्वसनकज्वर के नाम से अभिहित किया है जिससे आज यह नाम सुपरिचित है। वस्तुतः आयुर्वेद शास्त्र में सन्निपात ज्वरों के भीतर भावप्रकाशोक्त कर्कटक सन्निपात के साथ इसका समन्वय आंशिकतः सम्भव है, परन्तु कर्कटक सन्निपात में वर्णित लक्षण अधिकांशतः अणुखण्डीय घोर श्वसनक ज्वर की अन्तिमावस्था के अरिष्ट लक्षणों के समान है। उससे मृदु अवस्था का दर्शन श्वसनक ज्वर में सदा ही होता है, अतः इस प्रकार अरिष्ट लक्षणों के वर्णन से छात्रों तथा तरुण चिकित्सकों के हृदय में ऐसी धारणा बद्धमूल हो जावेगी जिससे वे यह सोचेंगे कि श्वसनकज्वर असाध्य व्याधि है परन्तु वास्तव में यह बात सत्य नहीं है। श्वसनक ज्वर पूर्णतः असाध्य व्याधि नहीं है, विशेषतः आज के युग में श्वसनकज्वर अधिकांश क्षेत्र में सुसाध्य व्याधि मानी जाती है। अतः कर्कटक सन्निपात नाम को केवल श्वसनकज्वर में अरिष्ट लक्षणों का सूचक मानकर इस व्याधि का नामकरण श्वसनक ज्वर करना ही उचित है। पाश्चात्य शास्त्र की दृष्टि से यह एक प्रकार की रोगजीवाणु-संक्रमणजनितव्याधि है जिससे प्रधानतः फुफ्फुसखण्ड में प्रदाह तथा ठोसावस्था उत्पन्न होती है। आयुर्वेद शास्त्रानुसार यह व्याधि वातकफोल्वण सन्निपातज मानी जाती है। कर्कटक सन्निपात में मध्यवात,हीनपित्त,अधिक कफ—इस प्रकार दोष प्रकोप माना गया है। परन्तु श्वसनकज्वर में कभी-कभी वायु का प्रकोप भी यथेष्ट पाया जाता है, जिससे सरल भाषा में वातश्लेष्मोल्वण सन्निपात कहना ही श्रेयस्कर होगा। महामहोपाध्याय गणनाथ सेन महोदय ने श्वसनकज्वर की संज्ञा में "लाक्षारसाभं यः ष्ठीवेद् रक्तं श्वासज्वरार्दितः। स्थान-फुफ्फुस मूलस्य तस्य श्वसनक ज्वरः" इस प्रकार वर्णन कर 'श्वसनयन्त्राक्रमणाच्च श्वसनकसंज्ञा निष्पत्तिः" इन शब्दों से श्वसनकज्वर का संज्ञा-निर्देश किया है जो कि सर्वथा उपयुक्त है।

निदान—विप्रकृष्ट निदान—श्वसनकज्वर सब ही उम्र में हो सकता है, परन्तु छः साल से कम उम्र वाले शिशुओं में अधिक पाया जाता है। इस समय पुरुष वा स्त्री भेद से रोगाक्रमण में कुछ विशेषता नहीं रहती है। इसके बाद १५ से लेकर ४० वर्ष की उम्र तक यह व्याधि सबसे अधिक पाई जाती है और इस उम्र में पुरुषों में यह व्याधि स्त्रियों से दो अथवा तीन गुणा अधिक होती है, ऐसी विशेषज्ञों की मान्यता है। स्त्री-पुरुष, उभयों की वृद्धावस्था में अधिकांश क्षेत्रों में श्वसनकज्वर अन्तिम रोग के रूप में उपस्थित होता है। यद्यपि पृथ्वी के सभी देशों में यह व्याधि होती है,परन्तु जिन देशों में सचराचर आवहवा का परिवर्त्तन होता रहता है अथवा शीतल वायु प्रवाहित होती रहती है उन देशों में यह व्याधि अधिक होती है। हमारे देश में शीत ऋतु के प्रारम्भ से लेकर अन्त तक इस व्याधि का प्रकोप अत्यधिक होता है, ग्रीष्म ऋतु में यह व्याधि कम होती है, आर्द्र जलवायु विशिष्ट प्रदेशों में विशेषतः वर्षा ऋतु में भी यह व्याधि हो सकती है। घनी आबादी तथा स्वास्थ्य-रक्षा की सम्पूर्ण व्यवस्था का अभाव, छोटे छोटे वायु-प्रवाहविहीन कमरों में बहु-व्यक्ति का एकत्रवास स्वास्थ्यवर्द्धक खाद्य द्रव्यों का अभाव तथा अविशुद्ध भोजन सामग्री का प्रसार, अतिश्रम, दुश्चिन्ता तथा दारिद्र्य के कारण जीवनी शक्ति का ह्रास,

उपयुक्त वस्त्राभाव आदि से मनुष्यों में इस रोग के आक्रमण के लिये क्षेत्र प्रस्तुत होते हैं। एक बार श्वसनकज्वर का आक्रमण होने के पश्चात् कई बार श्वसनकज्वर का पुनराक्रमण सचराचर होता है ऐसा दिखाई पड़ता है।

सन्निकृष्ट निदान–अधिकांश क्षेत्र में यह व्याधि *Pneumococcus of Frankel* नामक रोग जीवाणुओं के आक्रमण से उत्पन्न होती है, साथ ही साथ *strepto-coccus, staphylococcus, Pfeiffer's bacilus* भी वर्तमान रहते हैं। औपसर्गिक रूप में इन रोग जीवाणुओं के सिवा *friedlander's pneumobacilus, bacillus typohsus, gonococcus* अथवा *bacilus partussis* के कारण श्वसनक ज्वर उत्पन्न हो सकता है, परन्तु यह व्याधि प्राथमिक श्वसनक ज्वर न होने के कारण तत्तद्रोग के औपसर्गिक व्याधि के रूप में ही माननी चाहिये। श्वसनकज्वर के उत्पादक रोगजीवाणु वर्त्तमान पाश्चात्य चिकित्सा शास्त्र वेत्ताओं के मतानुसार ३२ प्रकार के माने जाते हैं। इनमें से प्रथम तथा द्वितीय श्रेणी के रोगजीवाणु रोगी-सहवास के कारण २३ दिन तक संक्रमण योग्य कहलाते हैं, निरामय होने के पश्चात् ६० दिन तक रोगी के मुंह में से संक्रमित हो सकते हैं तथा रोगी के कमरे की धूलि में भी सजीव एवं सक्रिय रह सकते हैं। यद्यपि पाश्चात्य चिकित्सा शास्त्र में रोग जीवाणुओं को श्वसनक ज्वर का सन्निकृष्ट निदान बताया गया है परन्तु इन रोग जीवाणुओं की कर्मशक्ति साधारणतः आकस्मिक शीत सेवा, शैत्य, अतिश्रम अथवा आघात आदि शारीरिक रोग प्रतिपेधिका शक्ति ह्रासकारक कारणों के ऊपर निर्भर रहती हैं ऐसा कहकर क्षेत्र का महत्व अधिकतर माना गया है जो कि आयुर्वेद की विशिष्टता है।

प्रकार भेद—साधारणतः 'श्वसनकज्वर' संज्ञा सब ही प्रकार के फुफ्फुस प्रदाह जनित ज्वर के लिये प्रयुक्त होती है, जिसमें दो विशेप विभाग किये जाते हैं। एक प्रकार में फुफ्फुस का एक बृहदंश आक्रान्त होता है और जो कि साधारणतः एक ही पार्श्व में सीमित रहता है-उसे खण्डीय श्वसनक ज्वर कहा जाता है। स्थान भेद से इसके कई भेद वर्णित हैं। दूसरी प्रकार में फुफ्फुस के एकाधिक क्षुद्रतर अंश आक्रान्त होते हैं–और जो कि साधारणतः दोनों पार्श्वों में ही प्रसारित होजाता है, उसे अणुखण्डीय श्वसनक ज्वर कहा जाता है। यह व्याधि प्राथमिक रूप से तथा अन्य व्याधि के उपसर्ग के रूप में आसकती है जिसके कारण इस प्रकार के दो प्रधान तथा क्षयज एवं आगन्तुक इस तरह से चार प्रकार के भेदों का वर्णन किया गया है। क्षय रोग जीवाणुओं से उत्पन्न श्वसनकज्वर आयुर्वेदीय मतानुसार राजयक्ष्मा कहलाता है अतः इसका विवेचन यक्ष्मा रोगाधिकार में किया जावेगा। प्रथमतः खण्डीय श्वसनक ज्वर का ही वर्णन किया जारहा है।

खण्डीय श्वसनकज्वर (*Lobar Pnenmonia*)

विकृति विज्ञान - साधारणतः श्वास मार्ग के द्वारा श्वसनकज्वर के रोग जीवाणु फुफ्फुस में प्रवेशलाभ करते हैं। इसमें स्वस्थ फुफ्फुस में रोगाक्रमण से लेकर फुफ्फुस में स्वस्थावस्था के आने तक जो जो परिवर्त्तन दिखाई देते हैं उसमें एक विशिष्ट क्रम रहने के कारण उन परिवर्त्तनों को चार अवस्थाओं में विभक्त किया गया है। (१) अरुणावस्था (*engorgement*) (२) रक्तपाकावस्था (*red hepatisation* (३) श्याव पाकावस्था (*grey hepatisation*) (४) विश्लिष्टावस्था (*Perawtion*)।

(१) अरुणावस्था में फुफ्फुस के आक्रान्त खण्ड में अधिक रक्तसंचार होता है, जिसके कारण उसका आकार थोड़ा सा बढ़ा हुआ तथा रङ्ग गहरा लाल दिखाई पड़ता है, वजन में वह स्थान स्वाभाविक से कुछ अधिक भारी परन्तु अत्यधिक वायुपूर्ण रहता है–जिसके कारण पानी में तैरता रहता है। उपरि-

स्थित फुफ्फुसधराकला में अधिक रक्तसंचार दिखाई पड़ता है तथा वह स्थान ज्योतिहीन होजाता है, कभी-कभी उसमें से नालिकामय स्राव भी हो सकता है। आक्रान्त फुफ्फुसांश को काटने से उसमें काफी रक्तसंचार के साथ मामूली शोथ भी दिखाई पड़ सकता है, निचोड़ने पर उसमें से फेनयुक्त रक्त-मिश्रित तरलस्राव निकालता रहता है।

(२) रक्तपाकावस्था में आक्रान्त खण्ड सम्पूर्ण-रूपेण ठोस पदार्थ के रूप में परिणत होजाता है, उस समय पर काटने से उक्त स्थान करीब-करीब यकृत के समान दिखाई पड़ता है-अतः पाश्चात्य-विज्ञान में इस अवस्था को *red hepatisation* कहा जाता है। उक्त आक्रान्त स्थान आकृति में वृहत्तर व अधिकतर भारी होजाता है तथा उसमें पर्शुकास्थिओं के चिन्ह अङ्कित होजाते हैं। काटने से उक्त स्थान गहरे लाल रङ्ग के, बिलकुल ठोस तथा सम्पूर्णरूपेण वायुशून्य दिखाई पड़ता है. यह अंश पानी में डालने पर डूब जाता है। फुफ्फुस-तन्तु स्वाभाविक से अधिकतर भंगुर प्रतीत होते हैं। कटे हुए प्रान्त को छीलने से लाल रङ्ग का एक प्रकार का स्राव वहां संचित होजाता है। इस अवस्था में कैशिक सिराओं के भीतर एक प्रकार का जमा हुआ स्राव मिलता है जिसमें काफी जालिका, अत्यधिक संख्या में लाल रक्तकणिका, अल्प संख्यक श्वेत रक्तकणिका तथा कुछ वृहत्तर कोष सम्मिलित रहते हैं।

(३) श्यावपाकावस्था में आक्रान्त खण्ड में उप-रोक्त सभी परिवर्तन वर्तमान रहते हुए श्याववर्ण में परिवर्तन दिखाई पड़ता है। इस समय यद्यपि फुफ्फुस की घनता में कुछ मृदुता आजाती है, परन्तु उसकी भंगुरता बढ़ जाती है। कटे हुए प्रान्त को छीलने से एक प्रकार का पांडु-पीतवर्ण स्राव निकलता है। इस समय कैशिक सिराओं में अपेक्षाकृत रक्ता-ल्पता नजर आती है, वायुकोषों में से जालिका तथा लाल रक्तकणिका अधिकांशतः अन्तर्हित होगई है उसके स्थान में श्वेत रक्तकणिका तथा स्थानच्युत कोषाणु भर गये हैं, अतः रङ्ग का यह परिवर्तन सम्पन्न होता है।

(४) विश्लिष्टावस्थामें स्राव अधिकतर पतला होजाता है तथा इसके कोषाणुओं में वसामयपरिवर्त्तनआजाता है। तरलस्राव अधिकांश मात्रा में फुफ्फुस में ही शोषित होता हैं आंशिक रूप से यह स्राव खांसी के द्वारा बाहर निकलकर फुफ्फुस को हल्का बना देता है। धीरे-धीरे फुफ्फुस अपनी स्वाभाविक मुलायम तथा सोखने वाली अवस्था में परिवर्त्तित होजाता है। असाध्य रोगियों में विश्लिष्टावस्था में स्राव अधिकतर तरल होने के बजाय पूय जातीय पदार्थ में परिवर्त्तित होजाता है। फुफ्फुस अधिकतर पांडुवर्ण तथा मुलायम होकर उसके चारों ओर पतले स्राव से भरा प्रतीत होता है।

यद्यपि इन चारों अवस्थाओं का वर्णन पाश्चात्य चिकित्सा विज्ञान से हमें प्राप्त होता है, परन्तु इन अवस्थाओं का विशिष्ट प्रत्यक्ष हमें सभी क्षेत्रों में प्राप्त नहीं होता है। फुफ्फुस के एक वृहत्तर अंश में एक विशिष्ट अवस्था की प्राप्ति के साथ अन्यान्य अंशों में विभिन्न अवस्थाओं का प्रत्यक्ष होना भी सम्भव है। अधिकांश क्षेत्रों में फुफ्फुस का तल देश तथा वाम फुफ्फुसापेक्षा दक्षिण फुफ्फुस अधिकतर आक्रान्त होता है, ऐसा ही देखा गया है। फुफ्फुस के अनाक्रान्त अंशों में मामूली रक्तसंचार, शोथ अथवा श्वास नलिकायों में तरुण प्रदाह का प्रत्यक्ष होता है। खण्डीय श्वसनक ज्वर में फुफ्फुसधरा कला का प्रदाह सम्मिलित रहना अति स्वाभाविक है। कभी कभी फुफ्फुसधराकलान्तराल में जलीय अथवा पूयः स्राव तक होकर रोगाक्रमण को गम्भीर बना देता है। इस व्याधि में हृदयावरक कला तथा हृदयाभ्यन्तरकला में प्रदाह. मस्तिष्कधराकला में प्रदाह आदि हो सकता है। हृदय के दक्षिण पार्श्व में रक्तावस्थान-वृद्धि तथा तज्जन्य प्रसारण भी दृष्टिगोचर हो सकता है।

आयुर्वेदोक्त विकृति विज्ञान के अनुसार अरुणा-वस्था में प्रकुपित कफ के साथ अधिकतर वायु का

प्रकोप एवं तज्जन्य पित्त का संचय प्रतीत होता है। रक्तपाकावस्था में कफ व वायु के साथ संचित पित्त का भी प्रकोप सम्मिलित होकर गहरा लाल रंग का परिवर्तन उत्पन्न होता है। बाद में उसके साथ वायु से प्रकुपित कफ के स्थान संचय के कारण श्यावपाकावस्था में परिवर्त्तन सम्भव होता है। विश्लिष्टावस्था में पित्त शान्ति के कारण वायु के शीत गुण के सहारे कफ की स्निग्धता में वृद्धि होती है, जिससे कफ ढीला होजाता है। जहां पित्त शान्ति नहीं होती है, वहां कफ के अत्यधिक पाक के कारण पूयावस्था में परिवर्त्तन होजाता है, वायु में शीतगुण के वापस न आने के कारण रोगी के वातज लक्षणों में कमी नहीं होती—अतः रूक्ष गुण के कारण कफस्राव में वृद्धि नहीं हो पाती है। अन्त में फुस्फुस में अत्यधिक पूयस्राव भर जाने के कारण फुस्फुस तथा हृदय की क्रिया में शिथिलता उत्पन्न होती है—जिससे रोगी की मृत्यु होजाती है।

पूर्वरूप—इस व्याधि का परिणति काल अनिर्दिष्ट होता है, कभी कभी आकस्मिक आक्रमण होता है जिसमें विशेष रूप से कोई पूर्वरूप प्रगट नहीं होपाता है। जहां रोग परिणति काल कुछ दीर्घ—अर्थात् २ से ५-७ दिन तक होता है वहां प्रारम्भ में कुछ सर्दी जुकाम तथा अंगमर्द व अस्वस्थ भाव प्रगट होता है।

रूप—इस व्याधि का आक्रमण साधारणतः अकस्मात् ही होता है। अधिकांश क्षेत्र में ठंड लगकर या कंपकपी के साथ बुखार हो जाता है और साथ ही साथ सूखी खांसी के साथ आक्रान्त पार्श्व में तीव्र वेदना का अनुभव होने लगता है। क्रमशः दर्द बढ़ता ही जाता है और रोगी के लिये खांसना एक भयानक तथा अत्यन्त कष्टदायक कार्य होउठता है जिससे रोगी सदा ही खांसी रोकने के लिये सचेष्ट होजाता है। अति मामूली परिमाण में और बहुत ही तकलीफ से अत्यन्त चिपचिपा थोड़ा कफ निकलता है। श्वास प्रश्वास की गति बढ़ जाती है और इसकी गहराई कम होजाती है। दूसरे या तीसरे दिन से दर्द कम होने लगता है और खांसी में तकलीफ कम होकर थोड़ा ज्यादा कफ निकलने लगता है। यद्यपि कफ की मात्रा कुछ बढ़ जाती है, परन्तु वह वैसा ही चिपचिपा रहता है। इस समय कफ का रंग साधारणतः ईंट के समान फीका लाल होजाता है जिसमें रोग जीवाणुओं (*pneumococcus*) के अलावा लाल रक्तकणिका तथा कुछ फुफ्फुसाभ्यन्तरकला का अंश रहता है। कभी-कभी मामूली रक्त निष्ठीवन हो सकता है। प्रथम तथा अन्तिमावस्था में वायु की वृद्धि के कारण अनिद्रा रोगी को परेशान करती है। वायुवृद्धि से दुर्बल रोगियों में तथा विशेषतः फुफ्फुस-शीर्ष आक्रान्त होने से प्रलाप एक साधारण लक्षण बन जाता है। कभी-कभी यह प्रलाप भयङ्कर रूप धारण कर लेता है—कभी कभी रोगी दिन-रात बड़बड़ाता रहता है। ज्वरताप बढ़ते-बढ़ते १०४° डिग्री तक कभी कभी १०५° डिग्री तक हो जाता है। कभी कभी इससे भी बढ़ सकता है। सुबह साधारणतः २।१ डिग्री ज्वरताप कम रहता है। इस तरह से रोग भोग के पश्चात् साधारणतः सबल रोगियों में पंचम अथवा सप्तम दिन में सहसा ज्वरमोक्ष होता है। इस प्रकार सहसा ज्वर मोक्ष साधारणतः तृतीय दिन के पहिले अथवा नवम दिन के पश्चात् नहीं दिखाई पड़ता है।

दारुण ज्वर मोक्ष (*crisis*)

साधारणतः खण्डीय श्वसनक ज्वर में पंचम अथवा सप्तम दिन में अकस्मात् ज्वरताप कम हो जाता है। और शीघ्र ही स्वाभाविक अथवा स्वाभाविक से भी नीचे उतर जाता है। रोगी गहरी नींद में सो जाता है और उसके शरीर से काफी पसीना निकलता जाता है। श्वास-प्रश्वास की गति तथा नाड़ी की गति मन्द हो जाती है। सभी प्रकार की तकलीफ कम हो जाती हैं। खांसी सरल होकर ढीला कफ निकलता रहता है। रोगी नींद से जब जग जाता है, तब जैसे उसे दुर्बलता के अलावा और किसी प्रकार की तकलीफ ही नहीं रही है ऐसा लगता है। कभी-कभी

दारुण ज्वरमोक्ष के पश्चात् दो एक तरल मल भेद अथवा मूत्र परिमाण में वृद्धि दिखाई पड़ती है। कभी-कभी प्रकृत दारुण ज्वरमोक्ष के पहिले एक प्रकार का कृत्रिम ज्वरमोक्ष दिखाई पड़ता है, जिसमें ज्वर ताप काफी उतर जाता है, परन्तु रोगी स्वस्थता का अनुभव नहीं कर पाता। कभी कभी दारुण ज्वरमोक्ष के पश्चात् कुछ दिनों तक १-२ डिग्री ज्वरताप वृद्धि दिखाई पड़ती है। परन्तु अधिकांश क्षेत्र में कई दिनों तक स्वाभाविक से भी नीचे ज्वरताप रहकर धीरे-धीरे स्वाभाविक तापमान में पहुँचता है। नाड़ी गति कई दिनों तक मन्द रह सकती है। साधारणतः रोगी अति शीघ्र ही स्वाभाविक स्वास्थ्य को प्राप्त करता है परन्तु वायु वृद्धि के कारण अत्यधिक प्रलापयुक्त रोगियों में मोहावस्था १।२ दिन तक रह सकती है।

खण्डीय श्वसनक ज्वर में कभी-कभी अदारुण ज्वरमोक्ष भी होता है--जिसमें प्रतिदिन ज्वरताप थोड़ा बहुत कम होते होते कई दिनों में (साधारणतः ३-४ दिनों में) ज्वरमोक्ष होता है. धीरे-धीरे रोगी के अन्यान्य कष्टों में भी कमी होती जाती है। साधारणतः दुर्बल रोगियों में इस प्रकार अदारुण ज्वर मोक्ष होता है।

रोगी परीक्षा—

रोग की विभिन्न अवस्थाओं में रोग चिन्हों में परिवर्त्तन होता रहता है। प्रथमतः रोगी बहुत ही अस्थिर, व बारबार करवट बदलता रहता है, परन्तु शीघ्र ही वह चित्त अथवा आक्रान्त पार्श्व को दबाकर सोता रहता है, मुख मण्डल मामूली रक्तिमाभ तथा आँखें उज्वल परन्तु वेदना-त्रस्त प्रतीत होती हैं। जिह्वा श्वेताभ मलिन तथा रुक्ष, खरस्पर्श दिखाई पड़ती है। गात्र चर्म अति उष्ण तथा रुक्ष सा अनुभूत होता है। श्वास कष्ट के साथ, नासास्फुरण होता रहता है। बच्चों में प्रश्वास के साथ कुछ आवाज भी होती है। श्वास व नाड़ी गति में वृद्धि होती है और इसके स्वाभाविक क्रम में पार्थक्य आकर स्वाभाविक १:४ अनुपात की जगह में १:३, कभी कभी १:२ अनुपात तक हो जाता है।

अरुणावस्था में साधारणतः निम्नलिखित चिह्न प्रकट होते हैं। आक्रान्त पार्श्व में वक्षःप्राचीर का संचालन मन्द तथा वाचिक तरंग ध्वनि (*vocal fremitus*) मृदु होजाता है। श्वास ग्रहण काल में वायु प्रवेश की स्वल्पता और कभी-कभी सूक्ष्म चिट-चिट ध्वनि (*fine crepitations*) सुनाई पड़ती है। फुफ्फुसधरा कला में प्रदाह के कारण वहां घर्षण ध्वनि सुनाई पड़ती है—वाचिक प्रतिस्वनन (*vocal resonance*) में विशेष कोई परिवर्त्तन नहीं होता है, परन्तु स्वस्थ पार्श्व में वाचिक प्रतिस्वनन में मामूली वृद्धि तथा कर्कश श्वास-प्रश्वास ध्वनि सुनाई पड़ती है जिससे आक्रान्त पार्श्व के निर्णय में संशय उत्पन्न हो सकता है।

रक्त व श्यावपाकावस्था में निम्नलिखित चिह्न दूसरे अथवा तीसरे दिन मिलते हैं, परन्तु गम्भीर आक्रमण के क्षेत्र में जहां प्रधानतः फुफ्फुस का केवल मध्यस्थल ही आक्रान्त होता है—वहां ये चिह्न विलम्ब से प्राप्त होते हैं। आक्रान्त पार्श्व के आकार में मामूली वृद्धि (अन्तःशोथ के कारण) तथा संचालन में मन्दता नजर आती है। आक्रान्त पार्श्व में वाचिक तरङ्ग ध्वनि की तीव्रता विशेष रूप से प्रगट होती है। वाचिक प्रतिस्वनन में स्तब्धता प्रगट होती है, परन्तु वह स्तब्धता दृति के ऊपर ताड़न ध्वनि के समान बिलकुल जड़ नहीं होती है। सौरंगिक श्वास-प्रश्वास ध्वनि सुनाई पड़ती है। तथा कभी-कभी सूक्ष्म चिटचिट ध्वनि अथवा घर्षण सुनाई पड़ सकती है, परन्तु साधरणतः किसी प्रकार की अस्वाभाविक ध्वनि सुनाई नहीं पड़ती है। फुफ्फुस के अनाक्रान्त अंशों में श्वास-प्रश्वास ध्वनि वायु कोषीय अथवा कर्कश तथा वंशी ध्वनि के साथ सुनाई पड़ती है। इस समय हृदय अपने स्वाभाविक स्थान पर अथवा आक्रान्त पार्श्व की ओर कुछ झुका हुआ सा प्रतीत होता है, परन्तु इस अवस्था के अन्त में हृदय के दक्षिण पार्श्व में कुछ प्रसारण के चिह्न प्रगट होते हैं।

दारुण ज्वरमोक्ष के पश्चात् अथवा अदारुण ज्वरमोक्ष के आरम्भ से विश्लिष्यावस्था शुरू होजाती है। श्वास-प्रश्वास ध्वनि की सौरङ्गिक तीक्ष्णता दूर हो जाती है और क्रमशः स्वाभाविक अवस्था आने लगती है। श्वास व प्रश्वास काल में स्थूल बुद्बुद ध्वनि सुनाई पड़ती है। वाचिक प्रतिस्वनन में जो स्तब्धता पहले सुनाई पड़ती थी वह दूर होकर स्वाभाविक हो जाती है, वाचिक तरङ्ग ध्वनि भी स्वाभाविक हो जाती है। फुफ्फुस के तलदेश के आक्रमण में महाप्राचीरा से सम्बन्धित फुफ्फुसधरा कला आक्रान्त होने से वहां वेदना, स्पर्शासहत्व तथा उदर प्राचीर में काठिन्य (कड़ापन) आ जाता है जिससे अन्त्रधराकला अथवा उण्डुक प्रदाह या अन्त्र-भेद का सन्देह हो सकता है। रक्त परीक्षा में श्वेतकणिकाओं की वृद्धि २०००० से लेकर ५०००० तक हो सकती है। मूत्राल्पता तथा मूत्र के साथ मामूली लसीका स्राव (*albuminuria*) ज्वरावस्था में प्रायशः दिखाई पड़ता है। रक्तचाप श्वसनक सन्निपात की उत्तरावस्था में कम हो जाता है, परन्तु सहसा वृद्धि देखने से वायुवृद्धिजनित उपसर्ग जैसे प्रलाप आदि होने की सम्भावना हो जाती है और सहसा ह्रास देखने से वायुक्षयजनित हृद्दौर्बल्य प्रगट होने का अनुमान किया जाता है।

खण्डीय श्वसनक सन्निपात में निम्नलिखित कई प्रकार के रूप प्रगट होते हैं:—

(१) फुफ्फुस शीर्षक—जिसमें रोगाक्रमण केवल फुफ्फुस शीर्ष में अथवा उत्तरी खण्ड में सीमित रहता है। यह प्रकार खास तौर से शिशुओं में, वृद्धों में तथा मद्यपायी व्यक्तियों में ही मिलता है और इसमें मस्तिष्कगत वायु विकार के लक्षण अधिकतर प्रगट होते हैं।

(२) संचरणशील - इसमें एक के बाद दूसरे इस तरह से फुफ्फुस के विभिन्न अंशों में आक्रमण होते हैं। कभी-कभी यह आक्रमण दोनों फुफ्फुसों पर भी हो सकता है। विभिन्न समय पर विश्लिष्टावस्था आने से इस प्रकार की व्याधि में प्रकृत दारुण ज्वरमोक्ष नहीं होता है—विभिन्न अंशों में नवीन आक्रमणों के कारण विभिन्न समय पर ज्वरताप में वृद्धि होती है और अन्त में अदारुण ज्वरमोक्ष से ही रोगी आरोग्य लाभ करते हैं।

(३) केन्द्रीय—इस प्रकार में प्रगट लक्षणों से रोगी एक पार्श्विक श्वसनक सन्निपात से पीड़ित प्रतीत होता है, परन्तु फुफ्फुस परीक्षा में उक्त व्याधि के चिह्न नहीं मिलते हैं। फुफ्फुस के केन्द्र स्थान के गम्भीर प्रदेश में रोगाक्रमण होता है और रञ्जन रश्मि की सहायता से इसका पता लग सकता है। साधारणतः इस प्रकार में दारुण ज्वरमोक्ष ही दिखाई पड़ता है।

(४) व्यापक—इस प्रकार में श्वास नलियों में तथा वायु कोषों में जालिकामय-स्राव भर जाता है—जिससे फुफ्फुस कलान्तर में स्राव संचय का सन्देह होता है। वाचिक तरङ्गध्वनि अस्पष्ट तथा श्वासप्रश्वास ध्वनि मृदु अथवा अनुपस्थित प्रतीत होता है। परन्तु शेषोक्त व्याधि के समान इस प्रकार के आक्रमण में साधारणतः हृत्पिण्ड स्वस्थानच्युत नहीं होता है। कभी-कभी मामूली रूप से हो भी सकता है।

(५) शस्त्र क्रिया के पश्चात्—शायद शस्त्र-क्रिया के पश्चात् फुफ्फुस के किसी खण्ड में क्रिया-नाश की उत्पत्ति को पहिले इस प्रकार का श्वसनक सन्निपात कहा जाता था। कभी-कभी पूर्ण संज्ञानाश की औषधि के प्रयोग से खण्डीय श्वसनक सन्निपात उत्पन्न होसकता है। परन्तु इसमें कोई विशिष्ट लक्षण प्रगट नहीं होते हैं।

(६) अभिघातज—वक्षःप्राचीर में आघात प्राप्ति के कुछ दिनों के पश्चात् श्वसनक सन्निपात का आक्रमण हो सकता है। यह साधारणतः रक्तस्रावजनित होता है—जो कि सुसाध्य होता है। परन्तु रक्तस्राव केन्द्र में बाद में रोग-जीवाणुओं के संक्रमणजनित जो श्वसनक सन्निपात की उत्पत्ति होती है वह साधारणतः असाध्य होता है।

(७) शैशवीय—इस प्रकार में कुछ विशिष्ट लक्षण प्रगट होते हैं-जैसे कि कफ का अनिर्गम, (शिशु साधारणतः कफ निगल लेता है) रोग के प्रारम्भ में आक्षेप आदि। पहिले ही बताया गया है कि शिशुओं में खण्डीय श्वसनक सन्निपात साधारणतः फुफ्फुस शीर्ष में ही होता है-जिसमें मस्तिष्कगत वायु विकार के लक्षण अधिकतर प्रगट होते हैं।

(८) वार्द्धक्यकीय—वृद्धावस्था में यह व्याधि साधारणतः अन्तिम व्याधि के रूप में उपस्थित होती है जिसमें रोगारम्भ धीरे-धीरे प्रगट होता है तथा रोग के चिन्ह भी मामूली रहते हैं।

(९) उन्मादों में श्वसनक सन्निपात—होता है जिसमें ज्वर के अलावा विशेष कोई लक्षण प्रगट नहीं होते हैं।

(१०) औपसर्गिक—कई तरुण व्याधियों के उपसर्ग के रूप में खण्डीय श्वसनक सन्निपात का आक्रमण हो सकता है-जिसमें आन्त्रिक ज्वर, श्लेष्मक ज्वर, ग्रन्थिक ज्वर, टाईफस आदि प्रधान हैं।

उपसर्ग—इस व्याधि में विलम्बित विश्लिष्टावस्था साधारणतः दिखाई पड़ती है जिसमें फुस्फुस में ठोसावस्था कई सप्ताह तक चल सकती है। फुफ्फुसधरा कला में शुष्क प्रदाह अधिकांश क्षेत्रों में ही मिलता है-कभी कभी कलान्तराल में मामूली स्राव भी हो सकता है। कभी कभी यह स्राव पूयःस्राव में परिवर्त्तित होजाता है। श्वासनलिकाओं में प्रदाह हो सकता है। हृत्पिण्ड का क्रिया शैथिल्य एक सांघातिक उपसर्ग है-जिसमें मुखमण्डल तथा नख आदि में श्यामाभा तथा श्वासकष्ट के साथ हृत्पिण्ड के दक्षिणपार्श्व में प्रसारण तथा हृदय-ध्वनि की मृदुता आदि चिह्न प्रगट होते हैं। हृदयधराकला में प्रदाह तथा उसमें जलीय अथवा पूयःस्राव इस व्याधि के उपसर्ग के रूप में आने से विपज्जनक अवस्था मानी जाती है। उदर में अन्त्रधराकला का प्रदाह, वृहदन्त्र का प्रदाह अथवा वृक्कप्रदाह कभी कभी मिलता है। तीव्र आनाह तथा कामला के लक्षण भी प्रगट हो सकते हैं इस व्याधि के रोगजीवाणु कभी-कभी प्रसारित होकर मस्तिष्कधराकला में प्रदाह उत्पन्न कर सकता है। शिशुओं में पूतिकर्ण तथा सन्धि प्रदाह के लक्षण प्रगट होते हैं।

परिणति—इस व्याधि में प्रधानतः प्रथम आक्रमण रोगी को पुनराक्रमण के लिए साहजिक प्रवण बना देता है, यही परिणति साधारणतः नजर आती है। कभी-कभी फुफ्फुसधराकला में स्थूलता अथवा बन्धनियों की सृष्टि हो सकती है।

रोग निर्णय—साधारणतः इस व्याधि में जहां रोग का इतिहास तथा लक्षण स्पष्ट है वहां रोग निर्णय सरलता से हो जाता है, विशेषतः द्वितीय अथवा तृतीय दिन में रोग निर्णय आसानी से होसकता है। शिशुओं में जहां प्रारम्भ से ही फुफ्फुस शीर्ष में आक्रमण होता है वहां सिर में काफी दर्द, वमन, आक्षेप, मस्तिष्क की पश्चान्नति तिरछी आंख तथा मामूलीतौर पर कर्निङ्ग चिह्न की उपस्थिति से मस्तिष्कधराकला का प्रदाह का सन्देह हो सकता है परन्तु वक्षः तथा पार्श्व देश में वेदना के साथ कास, श्वास व नाड़ी गति के अनुपात में परिवर्त्तन तथा वक्षः परीक्षा में कुछ-कुछ अस्वाभावि चिन्ह की उपस्थिति से रोग निर्णय सम्भव हो जाता है।

कभी-कभी खण्डीय श्वसनक सन्निपात की प्रारम्भिक अवस्था में उण्डुक प्रदाह अथवा आमाशय व्रण-विदारण के लक्षण प्रगट होते हैं, जिसमें उदर प्राचीर की कठिनता तथा उदरगुहा में सम्प्रसारित वेदना (*referred pain*) के कारण रोग निर्णय में सन्देह होता है, परन्तु रोग का इतिहास, श्वास व नाड़ी गति के अनुपात में परिवर्तन, मल मार्ग से परीक्षा में वेदनाभाव तथा कुछ न कुछ फुफ्फुसीय चिन्ह की उपस्थिति आदि से रोग निर्णय सम्भव हो सकता है। श्लेष्मक ज्वर में श्वसनक सन्निपात के लक्षण प्रारम्भ से ही प्रगट हो सकते हैं, परन्तु श्लेष्मक ज्वर में सारे शरीर व्यापी लक्षणों से तथा कफ परीक्षा के द्वारा रोग निर्णय सम्भव होता है। आन्त्रिक ज्वर में भी कुछ भ्रम उत्पन्न हो सकता है परन्तु श्वसनक

सन्निपात में शीघ्र ही अभिन्यासावस्था आ सकती है अथवा आन्त्रिक ज्वर के प्रथम सप्ताह में ही उपसर्ग के रूप में श्वसनक सन्निपात का आक्रमण हो सकता है, इस बात को भी ध्यान में रखना चाहिए।

इनके अलावा खण्डीय श्वसनक सन्निपात में फुफ्फुस में ठोसावस्था आने के पश्चात् रोग निर्णय में निम्न लिखित व्याधियों से भ्रम उत्पन्न हो सकता है—

१—अणुखण्डीय श्वसनक सन्निपात—इसमें प्रारम्भ धीरे-धीरे होता है—रोग की प्रगति लम्बी होती है, उभय पार्श्व के फुफ्फुसों में विक्षिप्त आक्रमण, तथा श्वासनलिकाओं में आक्रमण के चिन्ह अधिकतर प्रगट होना आदि भेदाभेद निर्णय में सहायक होता है।

२—औपसर्गिक श्वसनक सन्निपात—इस व्याधि से रोग प्रारम्भ का इतिहास, प्रधान व्याधि के अन्यान्य लक्षण तथा रोगजीवाणुओं की परीक्षा के द्वारा भेदज्ञान हो सकता है।

३—*Friedlander's Pneumonia*—यह व्याधि सचराचर नहीं होती है और इसका भोगकाल स्वल्प तथा परिणति साधारणः खतरनाक होती है। रोग जीवाणुओं की परीक्षा ही भेदाभेद ज्ञान का एक मात्र उपाय है।

४—फुफ्फुसखण्ड में क्रियानाश—खण्डीय श्वसनक सन्निपात में साधारणतः हृत्पिण्ड के स्पन्दन-स्थान में पार्थक्य नहीं आता है—परन्तु फुफ्फुसखण्ड के क्रियानाश में वह स्पन्दनस्थान आक्रान्त फुफ्फुस की ओर खिंच जाता है। पूर्वोक्त व्याधि में ओष्ठों के ऊपर व्रण तथा रक्त मिश्रित कफ का निर्गम दिखाई पड़ता है—परन्तु दूसरे में ये लक्षण प्रगट नहीं होते हैं।

५—क्षयज श्वसनक सन्निपात—इस व्याधि में रोगारम्भ तथा रोग के लक्षण एक पार्श्विक श्वसनक सन्निपात के समान ही होते हैं—परन्तु दीर्घदिन तक ज्वरताप उपस्थित रहना, कभी कभी ज्वर उतर जाना, फिर चढ़ना तथा कुछ दिनों के बाद निशाघर्म आदि विशिष्ट लक्षण प्रगट होने से क्षयरोग का सन्देह होना चाहिए एवं कफ परीक्षा में क्षय रोग जीवाणु को ढूढ़ना चाहिये।

६—फुफ्फुस कक्षान्तराल में जलीय अथवा पूयः स्राव—इस व्याधि से भेदाभेदज्ञान सरल है। व्यापक श्वसनक सन्निपात में कुछ असुविधा हो सकती है परन्तु हृत्स्पन्दन का स्थान वाचिक तरंग ध्वनि व प्रतिस्वनन आदि से इस रोग से भेदाभेदज्ञान सम्भव होता है।

७—हृद्रोग के कारण फुफ्फुसीय धमनी में रक्त जम जाने से अथवा रक्तपिण्ड अटक जाने से उक्तस्थान में वेदना, कास, रक्तमिश्रित कफ निष्ठीवन, श्वासकष्ट आदि लक्षण प्रगट होकर श्वसनक सन्निपात का भ्रम उत्पन्न कर सकता है, परन्तु ज्वरताप वृद्धि का अभाव, प्राथमिक हृद्रोग की उपस्थिति तथा स्थानिक रोग चिह्न प्रगट होना आदि से रोग के सत्यरूप का पता लग सकता है।

८—फुफ्फुसीयतरुणशोथ, विशेषतः द्विकपाटिका संकोचनामक(*mitral stenosis*) हृद्रोगजनित क्षेत्र में श्वसनक सन्निपात के लक्षण उपस्थित कर सकता है—परन्तु पूर्वोक्त व्याधि में ज्वरताप वृद्धि का अभाव, प्राथमिक हृद्रोग की उपस्थिति तथा इस व्याधि का विशिष्ट कफ जो कि फेनयुक्त पतला तथा हलका गुलाबी रंग का होता है तथा अत्यधिक परिमाण में नाक, मुंह से निकलता रहता है इस व्याधि के भेदाभेदज्ञान में सहायक होगा।

रोगप्रगति—खण्डीय श्वसनक सन्निपात में रोग प्रगति आक्रमण की तीव्रता तथा प्रकार की विभिन्नता के ऊपर तथा रोगी की रोगप्रतिषेधिका शक्ति व प्रारब्ध चिकित्सा प्रणाली के ऊपर निर्भर रहती है। बलवान् रोगी में मामूली आक्रमण होने से नियमित समय पर दारुण ज्वरमोक्ष होकर दो सप्ताह के अन्दर रोगी पूर्ण स्वस्थ हो सकता है। दुर्बल रोगियों

में रोग प्रगति साधारणतः असाधारण ही होती है। और अदारुण ज्वरमोक्ष से ही रोगमुक्ति होती है। मारात्मक रोगाक्रमण में साधारणतः चतुर्थ व दशम दिन के भीतर मृत्यु होजाती है, कभी कभी प्रथम अथवा द्वितीय दिन में ही मृत्यु होजाती है। दशम दिन के बाद साधारणतः मृत्यु उपसर्गों के कारण ही होती है।

साध्यासध्यत्व निर्णय—खण्डीय श्वसनक सन्निपात एक सांघातिक व्याधि मानी जाती है। अति शिशु व वृद्धों में मृत्यु संख्या अधिक रहती है, इसके अलावा रोगी की प्रकृति तथा पूर्व रोगेतिहास से भी साध्यासाध्यत्व निर्णय में सहायता मिलती है, जैसे कि जीर्ण मदात्यय के रोगी में यह व्याधि साधारणतः असाध्य होती है तथा मधुमेह, वृक्कप्रदाह,हृद-रोग दुर्बल तथा मेदोरोग ग्रस्त रोगियों में यह व्याधि खतरनाक मानी जाती है। रोग प्रगति काल में अगर विषसंचार के लक्षण तीव्र रूप से प्रगट होते हैं अथवा नाड़ी गति दीर्घ समय तक १३० अथवा ततोधिक रहती है, रक्तचाप नाड़ी गति से कम (*milliemeter of mercury* के हिसाब से) है, ज्वरताप लगातार १०५° डिग्री या ततोधिक रहता है तो रोग खतरनाक समझना चाहिए। इस व्याधि में स्वभावतः श्वेत रक्त कणिकाओं की संख्यावृद्धि होती है परन्तु जहां इस प्रकार संख्या वृद्धि का अभाव दिखाई पड़ता है वहां रोगी का भविष्य अच्छा नहीं है—ऐसा ही समझना चाहिए। दक्षिण हृदय का प्रसारण और तज्जनित शरीर में छाई हुई श्यामाभा अत्यन्त विपज्जनक समझना चाहिए। अनुसंधान द्वारा यह सिद्ध हुआ है कि प्राचीन विश्वास के अनुसार आशु ज्वरमोच का एक लक्षण ओष्ठों पर व्रण निकल आने से खण्डीय श्वसनक सन्निपात के रोगियों को स्वस्थ होने की आशा अधिक बढ़ जाती है। रोग की मध्यावस्था में तीव्र प्रलाप अथवा मस्तिष्क धरावला के प्रदाह के लक्षण प्रगट होने से रोगी की जीवनाशंका बढ़ जाती है।

चिकित्सा–साधारण–रोगी को शुष्क हवादार कमरे में पलंग पर रखना चाहिए। ठंडकाल में घर को गर्म रखने की व्यवस्था करना आवश्यक है। रोगी के कमरे में दिन रात दरवाजे खिड़कियां खुली रहनी चाहिए, परन्तु रोगी के शरीर पर वायु सीधा न प्रवाहित हो इसके ऊपर ध्यान रख कर रोगी का पलंग योग्य स्थान पर रखना चाहिए। सर्वदा ही उसका शरीर गरम कपड़े या कम्बल से ढंक कर रखना आवश्यक है, ठण्डकाल में प्रयोजन होने से गर्म पानी की थैली रखकर रोगी को गर्म रखना चाहिए। इस व्याधि में रोगी के लिये आराम व निद्रा अत्यन्त प्रयोजनीय हैं–अतः जहां तक हो सके रोगी के आराम में बाधा नहीं डालनी चाहिए। एतदर्थ रोगी के कमरे में चिकित्सक व सेवा कारियों के अलावा और किसी का आवागमन बन्द कर देना चाहिए। रोगी को शय्या पर लेटे रहना ही चाहिए-परन्तु एक ही करवट में या केवल चित्त न लेटा रहे इसकी ओर ध्यान रखना विशेष आवश्यक है क्योंकि इससे फुस्फुसतल में रक्तसंचय की आशंका रहती है। वक्षःप्राचीर में प्रलेप लगाने की प्रथा प्राचीन काल से ही प्रचलित है, इससे वेदना कम हो जाती है, विश्लिष्टावस्था आने में शीघ्रता आ सकती है, कफ ढीला होकर कुछ आसानी से निकलता रहता है; जिससे रोगी को कुछ अधिक आराम भी मिलता है। परन्तु प्रलेप से आर्द्रताप को पहुंचना चाहिए-न कि शुष्कताप को। शुष्क ताप से विश्लिष्टावस्था आने में तथा कफ ढीला होने में विलम्ब हो सकता है। एतदर्थ आर्द्रक का स्वरस तथा कपूर या तार्पिन का तेल डाल कर सरसों का तेल गर्म करके मालिश कर गर्म पानी का सेंक किया जाता है। अलसी को कूटकर गर्मपानी में उबालकर प्रलेप दिया जाता है; परन्तु इसमें यह ध्यान रहे कि प्रलेप ठंडा हो जाने के पहिले ही उसे निकालकर दूसरा प्रलेप लगाना चाहिए। किसी भी तरह से ठंडा प्रलेप लगा नहीं रहे अन्यथा उससे काफी हानि की शंका रहती है। इन सब उपायों से बार बार रोगी को व्यस्त करना पड़ता है—एतदर्थ एण्टिफ्लोजिष्टीन

नामक एक पाश्चात्य औषधि का प्रलेप आजकल बहुत ही जनप्रिय है—क्योंकि यह लगाना भी सरल है और एक बार लगाने के बाद २४ घण्टे तक बदलने की आवश्यकता नहीं पड़ती है-जिससे रोगी के आराम में भी बाधा नहीं पहुंचती है। इस तरह से प्रलेप लगाने के पश्चात् रोगी को एक गर्म कपड़े की बण्डी पहिना देने से रोगी को काफी आराम मिलता है। किसी-किसी रोगी में गर्म की अपेक्षा ठण्डा प्रलेप अधिक अच्छा लगता है और पाश्चात्य चिकित्साशास्त्र में बर्फ की थैली से ठण्डे सेंक के लिए भी उपदेश दिया गया है।

पथ्य—रोगी को तरल पेय ही देना चाहिए। एतदर्थ बार्ली का पानी, सोंठ साधित दुग्ध, साबूदाने के पानी के साथ मिलाकर, मीठा अनार, मुसम्बी या सन्तरे का रस काफी मात्रा में दिया जाना चाहिए। इसके अलावा गोक्षुरयुक्त तृणपञ्चमूल काढ़े में तालमिश्री अथवा ग्लूकोज डालकर दिन भर में थोड़ा-थोड़ा पिलाते रहने से मूत्र साफ रहता है-रोगी की बलरक्षा भी होती है। इसके अलावा रोगी के इच्छानुसार केवल उबाला हुआ पानी, अच्छा सोडा लेमनेड का पानी आदि देकर पेय का परिमाण पूरा करना चाहिए। आवश्यक होने से अर्थात् उदरगत वायु में सौंफ मिलाकर अथवा शिरोगत वायु में जटामांसी डालकर पूर्वोक्त काढ़ा बनाने से और भी अधिक लाभ होता है। दिन भर में १ छटांक ग्लूकोज अथवा मिश्री एक पूर्ण वयस्क व्यक्ति के लिए पर्याप्त होता है। तरल पेय दिन रात में कम-से-कम २ सेर तक रोगी के शरीर में पहुंचाना चाहिए। पेशाब साफ रखना इस व्याधि में विशेष आवश्यक है, क्योंकि रोग-विष मूत्रमार्ग से ही अधिकतर निकाला जाता है। कोष्ठ साफ न रहने से दुग्ध या साबूदाना बनाते समय उसमें मुनक्का डालकर अथवा अलग से मुनक्का व अञ्जीर का पानी बनाकर दिया जा सकता है। इससे अधिक जोरदार जुलाब श्वसनक सन्निपात में देना उचित नहीं है। कोष्ठबद्धता रहने से साबुन के पानी से अथवा जैतून का तैल मिश्रित ग्लिसरिन से वस्ति प्रयोग किया जा सकता है। प्रतिदिन मलशुद्ध हो इस ओर ध्यान रखना विशेष आवश्यक है।

औषधि प्रयोग· पहले ही बताया गया है कि यह व्याधि वातश्लेष्मोल्वण सन्निपात है। और इसमें आने वाले दारुण ज्वरमोक्ष के लिए पहिले से ही रोगी को तैयार रखना चाहिए। रोगी का बलक्षय होने से दारुण ज्वरमोक्ष सरलता से पार हो सकता है। एतदर्थ श्वसनक सन्निपात के प्रारम्भ से ही बल-रक्षक व त्रिदोष ज्वरनाशक औषधियों का प्रयोग करना चाहिए। ऐसे क्षेत्रों के लिए वृ० कस्तूरीभैरव रस एक श्रेष्ठ औषधि है। रोग के प्रारम्भ से ही इस औषधि का प्रयोग चालू रखने से रोगी में हृद्-दौर्बल्य नहीं आ सकता है तथा दारुण ज्वरमोक्ष भी निरापद हो जाता है। प्रतिदिन २ रत्ती से लेकर प्रयोजनानुसार ४ रत्ती तक सुबह व शाम में विभाजित कर प्रवालभस्म २-३ रत्ती अथवा विशेष दुर्बल रोगियों में १ रत्ती या १/२ रत्ती षड्गुणबलिजारित मकरध्वज मिलाकर पान का रस, शहद अथवा आर्द्रक व पान का रस, शहद के साथ देते जाना चाहिए। फुफ्फुसीय व्याधि में अभ्रकभस्म का उपयोग आयुर्वेद शास्त्र के अनुसार श्रेष्ठ प्रयोग माना जाता है, परन्तु श्वसनक सन्निपात में केवल अभ्रकभस्म के संयोग से बना हुआ शृङ्गाराभ्र एक परम हितकर औषधि है। प्रथमावस्था में शृङ्गाराभ्र २-३ रत्ती की मात्रा में शुद्ध नौसादर ३-४ रत्ती के साथ मिलाकर दिन में २ बार गर्म पानी से देते रहने से फुफ्फुस में विश्लिष्टावस्था आकर कफ ढीला होने में काफी मदद मिलती है। अष्टांगावलेह शहद के साथ चटाने से कफ ढीला होने में मदद मिलती है, इससे खांसी का वेग कम हो जाता है। कफ आसानी से ढीला हो जाता है। इसके अलावा तालीसादिचूर्ण, सितोपलादिचूर्ण आदि का प्रयोग भी विशेषतः शिशुओं में विशेष लाभदायक होता है। चन्द्रामृतरस की गोलियां तालमिश्री के साथ चूसने के लिए देने से गले की उत्तेजना

तथा प्रदाह कम होकर कष्टदायक खांसी में आराम मिलता है। पाश्चात्य शास्त्र के अनुसार पेनिसिलीन की गोली चूसने के लिए दी जाती हैं। दिन में २ बार श्वेतपर्पटी २-३ रत्ती की मात्रा में १ रत्ती या १/२ रत्ती रससिंदूर के साथ मिलाकर पूर्वोक्त तृणपञ्चमूल काढ़ा अथवा प्रयोजनानुसार धनियां, सौंफ आदि के फाण्ट के साथ मिलाकर देने से उदरगत वायु शान्त होता है तथा मूत्र साफ रखने में मदद मिलती है। नौसादर मिश्रित श्वेतपर्पटी (कलमीसोरा १ भाग फिटकरी ⅛ भाग तथा नौसादर $\frac{1}{16}$ भाग) इस क्षेत्र में अधिक लाभदायक प्रतीत होगी। साधारणतः उपसर्गविहीन श्वसनक सन्निपात में यह चिकित्साक्रम काफी लाभदायक सिद्ध हुआ है।

वायुजनित उपसर्गों में से शिरोगत व उदरगत वायु के लिए सुबह एक बार कृष्णचतुर्मुख सेंका हुआ परवल का रस और शहद के साथ देने से काफी लाभ होता है। सेंका हुआ परवल वात-पित्तनाशक होने के कारण यह योग उत्तम माना जाता है, इसके अलावा प्रलाप आदि के लिए शाम को रसराज रस २ रत्ती की मात्रा में जटामांसी का शीत कषाय, बड़ी इलायची का चूर्ण व शहद अथवा खुरासानी अजवाइन, जटामांसी व बड़ी इलायची का क्वाथ एवं शहद-सह देने से लाभ होता है। एतद्व्यतीत वृ० वातचिन्तामणि, योगेन्द्र रस, आदि वातव्याधि अधिकारोक्त औषधियां विशेषतः हृद्दौर्बल्य आदि रहने से प्रयोग में लाकर लाभ उठाया जा सकता है।

विश्लिष्टावस्था आने से शृङ्गराभ्र के साथ नौसादर के बदले में प्रवालभस्म २-३ रत्ती की मात्रा में मिलाकर दिन में २ बार देना चाहिए, इससे शीघ्र फुफ्फुसीय परिवर्त्तन में सहायता मिलती है। खांसी ज्यादा रहने से पीपलचूर्ण भी इसमें मिलाया जा सकता है।

इन औषधियों के अलावा सन्निपात ज्वराधिकारोक्त और कई औषधियां जैसे प्रतापलंकेश्वर रस, मृत्युञ्जय रस, सन्निपातभैरव रस, सौभाग्य वटी आदि के प्रयोग के लिए भी उपदेश मिलते हैं, परन्तु इन औषधियों में अमृत का भाग रहने से श्वसनक सन्निपात में उपयोगी नहीं मानी जाती है क्योंकि इस बीमारी में खासतौर से हृद्दौर्बल्य हो जाता है। जब तक अनुसंधान द्वारा यह सिद्ध न हो कि आयुर्वेदोक्त विधि से शोधित अमृत हृद्दौर्बल्यजनक नहीं होता है, बल्कि जैसे कि दावा किया जाता है कि शोधन के कारण वह हृदय के लिये बल्य बन जाता है, तब तक अमृत घटित दवाईयां श्वसनक सन्निपात में प्रयोग नहीं करनी चाहिए। इस व्याधि में हृद्दौर्बल्य दूर करने के लिये तथा रोग के कारण हृदय के ऊपर जो दबाव पड़ता है उसे निभाने के लिये मृगमदासव के अभाव में मृतसंजीवनी सुरा का सम्यग् उपयोग लेना चाहिये। इसके नियमित उपयोग से दारुण ज्वरमोक्ष काल में विपदाशंका कम हो जाती है।

दारुण ज्वरमोक्ष की चिकित्सा—इसके लिए विशेष ध्यान रखना चाहिये, कारण सामयिक उपयुक्त उपचार के अभाव में बहुत सी जीवन हानियां हो सकती हैं। शीघ्रातिशीघ्र ज्वरताप उतर जाते रहने से (अर्थात् १ घण्टे में १ डिग्री से अधिक) तथा पसीना आते रहने से दारुण ज्वरमोक्ष का सन्देह होना चाहिए। रोगी की नाड़ी के ऊपर विशेष ध्यान देना चाहिए। उत्तेजक औषधियों का प्रयोग खुलकर करना चाहिये। पसीना बन्द करने के लिये बारबार सूखे कपड़े से पसीना पोंछते रहना, कपड़े गीले होने पर कम से कम तकलीफ से रोगी के कपड़े बदल देना, सारे शरीर में गुलाल अथवा टायलेट पावडर लगाते रहना तथा स्वल्प कुमुदेश्वररस (कपर्दक भस्म ३ माशा, मकरध्वज १ भाग) ४ रत्ती की मात्रा में अनार के रस के साथ २-२ घण्टे में देते रहने से पसीना कम होजाता है। अत्यधिक पसीना निकलते रहने से उसे रोकना परमावश्यक है, एतदर्थ एट्रोपीन १/१०० से लेकर १/६० ग्रेन का त्वचा में सूचीवेध देने से आशा-

नुरूप लाभ होता है। प्रयोजन होने से इसकी पुनरावृत्ति कई बार की जासकती है। वृ० कस्तूरी-भैरव-प्रवालभस्म व मकरध्वज के साथ मिलाकर अनार या पान के रस, शहद से देने से भी लाभ होता है। हृत्पिण्ड की उत्तेजना के लिये मकरध्वज ½ रत्ती, कर्पूर २ रत्ती, शुद्ध कुचिला १ रत्ती मृग-नाभि १/८ रत्ती से १/४ रत्ती तक तथा सहस्रपुटी अभ्रकभस्म ½ रत्ती, मोतीभस्म ½ रत्ती मिलाकर शहद के साथ चटाने से काफी लाभ होता है। प्रयोजनानुसार इन औषधियों की मात्रा कम ज्यादा की जा सकती है। वस्तुतः श्वसनक सन्निपात में शुद्ध कुचिला एक परम आवश्यक औषधि है। इससे श्वास-प्रश्वास संस्थान में उत्तेजना मिलती है, पाचन-संस्थान में गतिवृद्धि के कारण वायुनाश में सहायता मिलती है, हृद्दौर्बल्य में लाभ पहुँचता है। अतः शुद्ध कुचिला १ रत्ती की मात्रा में प्रारम्भ से ही अगर १ रत्ती षड्गुणाबलिजारित मकरध्वज के साथ मिलाकर शहद के साथ प्रयोजनानुसार १ या २ बार प्रयोग किया जाय तो श्वसनक सन्निपात में विपदाशंका कम होजाती है, रोगी अपेक्षाकृत सरलता से इस रोग से मुक्ति पा सकता है। इनके अलावा पाश्चात्य शास्त्रोक्त *coramine* (*I.7 c.c.*), *strychnine & digitalis* (*1/60 gr.+1/100 gr.*), *camphar-in-oil* (*iii gr. in 1 c. c.*) इत्यादि हृदयोत्तेजक औषधियों के सूचीवेध से काफी लाभ मिलता है। इनके अलावा *adrenalin (1 in 1000) 1/2 to 1 c.c. pituitrin (posterior lobe) 1/2 to 1 c. c.)* आदि के सूचीवेध भी प्रयोग किये जाते हैं। शीतांगावस्था में *Camphor & musk in ether* के सूचीवेध से तुरन्त लाभ मिलता है। हृद्दौर्बल्य के लिये *Coramine liquid* भी नियमित रूप से १०-१५ बूंद की मात्रा में नियमित प्रयोग करने से लाभ पहुँचता रहता है। प्रयोजन होने से शिरा द्वारा ग्लुकोज व कोरामिन का प्रयोग भी किया जा सकता है। इस अवस्था में रोगी को गरम रखने के लिए गरम कपड़े से ओढ़ाना, गरम पानी की थैली रखना, सेंक करना, आदि के साथ कटफल का चूर्ण भी मालिश किया जाता है। कभी-कभी थोड़ासा सोंठ का चूर्ण भी उसमें मिलाया जाता है। इससे काफी लाभ मिलता है। परन्तु उत्तेजक औषधियों के मात्राधिक्य से रोगी को तकलीफ न हो इस ओर ध्यान रखना भी चिकित्सक का कर्त्तव्य होता है। ऐसे क्षेत्रों में सर्पविष का प्रयोग श्रेष्ठ उपाय माना जाता है। इसलिए आयुर्वेद शास्त्रोक्त सूचिकाभरण रस, अघोरनृसिंहरस आदि प्रधान औषधि हैं। परन्तु आज सर्पविष चिकित्सा में साधारण चिकित्सकों की अनुभवहीनता तथा रोगी के कुटुम्बीजनों की अस्वीकृति इन औषधियों के प्रयोग के लिये प्रधान बाधा है। परन्तु इन औषधियों से जो विशिष्ट लाभ मिलता है—इसका प्रत्यक्षप्रमाण अभी भी पल्लीग्रामों में मिलता है, ग्रामीण वैद्य अभी भी इनके प्रयोग से चमत्कारिक फल दिखाते रहते हैं।

गत ८-१० वर्ष से पेनीसिलीन के आविष्कार के कारण श्वसनक सन्निपातज्वर की चिकित्सा में एक युग परिवर्तन हुआ है। पेनीसिलीन के आविष्कार के बाद आज श्वसनक सन्निपात बिलकुल खतरनाक व्याधि नहीं मानी जाती है। वस्तुतः पेनीसिलिन के प्रयोग द्वारा पहिले की मृत्यु संख्या से वर्तमान मृत्युसंख्या काफी कम होगई है। औषधियों के साथ प्रयोग करने से पेनिसिलीन का सूचीवेध किसी प्रकार की हानि नहीं पहुंचाती, बल्कि इससे रोग मुक्ति में केवल पेनिसिलीन की प्रयोगापेक्षा शीघ्रता व सरलता मिल सकती है, रोगी ज्वरमोक्ष के बाद किसी प्रकार की दुर्बलता अनुभव नहीं कर पाते हैं और अधिक शीघ्र स्वस्थ हो जाते हैं, फुफ्फुस में स्वस्थावस्था वापस आना त्वरान्वित हो जाता है, किन्तु पेनिसिलीन का सूचीवेध भी वैज्ञानिक दृष्टिकोण से दिया जाना चाहिए। यद्यपि श्वसनक सन्निपात के घटक रोग जीवाणुओं में से अधिकांश ही पेनिसिलीन से प्रभावित होते हैं, तो भी कफ परीक्षा के बाद ही पेनिसिलीन का सूचीवेध देना ही अधिकतर युक्तिसंगत होता है। बाजार में (*crystaline penicillin, procaine penicillin*

penicillin in oil, penicillin tablets) आदि पेनिसिलीन के कई प्रकार भेद मिलते हैं। इसमें से तरुणावस्था में (*Crystaline penicillin*) ही विशेष उपयोगी है। यह औषधि दिन में प्रति ३ घंटे में ३०,००० यूनिट लगाने के लिए उपदेश दिया जाता है, परन्तु प्रति ४ घण्टे में ५०००० यूनिट से लेकर १ लाख यूनिट तक देने से ही पूर्ण लाभ होता है। पूर्ण वयस्क व्यक्तियों के लिए दिन भर में कम-से-कम ५ लाख यूनिट से लेकर १० लाख यूनिट तक तब तक दिया जाता है जब तक ज्वर ताप बिलकुल स्वाभाविक न हो जाय। प्रोकेन पेनिसिलीन दारुण ज्वरमोक्ष के बाद सुबह शाम ४-४ लाख की मात्रा में देने से रोग निरामय में पर्याप्त सहायता मिलती है। रोगी को *Cryrtaline penicillin* के कई सूचीवेध के कारण तकलीफ कुछ ज्यादा होती है एतदर्थ अनिच्छुक अथवा अल्पगम्भीर क्षेत्र में प्रारम्भ से ही प्रोकेन पेनिसिलीन का सूचीवेध सुबह शाम ४-४ लाख यूनिट की मात्रा में दो बार दिया जा सकता है, इससे भी काफी लाभ होता है। विशेषतः आयुर्वेदीय औषधि के प्रयोग के साथ दो बार ४-४ लाख यूनिट प्रोकेन पेनिसिलीन का सूचीवेध पर्याप्त माना जाता है, ज्वरमोक्ष के बाद १ बार ४ लाख यूनिट का सूचीवेध रोग निरामय में यथेष्ट लाभ पहुँचाता है। किसी-किसी क्षेत्र में पेनिसिलीन के सूचीवेध से पूर्णतया लाभ नहीं मिलता है, उसका कारण कुछ सम्बन्धित रोग जीवाणुओं को पेनिलीन से अप्रभावित होना ही है, इस अवस्था को दूर करने के लिए *Streptomycin* के साथ (*Penicillin*) को मिलाकर दिया जाता है। बाजार में (*Streptomycine*) नाम से ऐसी सम्मिलित औषधि मिलती है जिसमें *Streptomycin* ½ से लेकर १ ग्राम तक, *Penicilline* ४ लाख यूनिट के साथ मिला हुआ रहता है। १/२ ग्राम *Streptomycin* मिश्रित ४ लाख *Penicilline* दिन में दो बार देने से काफी लाभ हो सकता है।

सल्फाड्रगस् भी श्वसनक सन्निपात में दिये जाते हैं बल्कि पेनिसिलीन के आविष्कार के पहिले सल्फाड्रगस् ही सन्निपात की परमौषधि मानी जाती थीं। परन्तु आज सल्फाड्रगस् का स्थान पेनिसिलीन से बहुत ही नीचे है। अधिकन्तु आयुर्वेदीय औषधियों के साथ सल्फाड्रगस् का समन्वय उतना अच्छा नहीं है। विशेषतः पेनिसिलीन की उपस्थिति में आयुर्वेदीय औषधियों के साथ सल्फाड्रगस् के प्रयोग की आवश्यकता ही नहीं है।

रोगी का श्वासकष्ट दूर करने के लिए ऑक्सिजन प्रयोग की व्यवस्था की जाती है। इससे काफी लाभ होता है। प्रयोजनानुसार ऑक्सिजन लगातार अथवा बीच-बीच में दिया जा सकता है सबल रोगियों में दक्षिण हृदय में रक्त-संचय के हेतु श्यावाभा उत्पन्न होने से १०-१२ औंस तक रक्तमोक्षण कराकर लाभ पहुंचाया जा सकता है। अधिक ज्वरताप वृद्धि में (१०४°—१०५°) सद्यज्वरशामक औषधि जैसे एस्पिरिन आदि का उपयोग नहीं करना चाहिए। शीतल अथवा कदुष्ण जल से गात्र मार्जन इस अवस्था में काफी लाभदायक सिद्ध होगा।

उदराध्मान अधिक होने से गर्म पानी में तार्पिन का तेल डालकर सेंकना, साबुन के पानी में थोड़ा-सा तार्पिन का तेल डालकर वस्ति प्रयोग आदि सामयिक लाभ पहुंचाता है। पेट के ऊपर समभाग देवदारु, सोया के बीज, कुड़, वच, हिंगु, सैंधानमक कांजि में पीसकर मामूली गरम करके प्रलेप देने से विशेष उपकार होगा। उदराध्मान ज्यादा रहने से विशेषतः ज्वर वृद्धि के समय दुग्ध न देना ही इस उपसर्ग से बचने का प्रधान उपाय है।

दारुण ज्वरमोक्ष के पश्चात् दो चार दिन अनियमित रूप से मामूली ज्वरताप वृद्धि हो सकती है परन्तु यह कुछ विशेष महत्व की बात नहीं है। पेनीसिलीन अगर दिया जा रहा होगा तो ३-४ दिन तक ४ लाख प्रोकेन पेनीसिलिन का सूचीवेध दिन में १ बार देते रहना चाहिए। साथ ही साथ आयुर्वेदीय औषधियों का प्रयोग पूर्ववत चालू रखना चाहिए।

— शेषांश पृष्ठ ५३५ पर।

पीलिया रोग और उसकी आयुर्वेदीय चिकित्सा

लेखक—वैद्य मूलचन्द वहड़, आयुर्वेदाचार्य।

आज चारों तरफ पीलिया रोग की भयानक विभीषिका ने बड़े बड़े आधुनिक विज्ञान का दम भरने वाले डाक्टरों एवं उनके अनुयायी वर्ग को चीं बुला दिया है। उत्तर भारत में बहुत से नगर और प्रान्तों में तथा राजस्थान के जयपुर आदि प्रसिद्ध नगरों में भी दो-तीन मास से इसका भयंकर प्रसार देखा जारहा है। दिल्ली में इस रोग ने भयानक रूप धारण कर रखा है। सरकारी और गैर-सरकारी आंकड़ों के अनुसार पीलिया रोगियों की संख्या ५० हजार के करीब अनुमानित है। इसके कारणों की जांच के लिए भी काफी प्रयत्न होरहे हैं। डाक्टर लोग अटकल-पच्चू ढंग से दूषित जल आदि को इसका कारण बतला रहे हैं। स्वास्थ्य मन्त्रिणी भी अब मारो-दौड़ो-भागो की तरह कुछ उटपटांग सी बातों का ही प्रसार कर रही हैं तथा उसके बढ़ते हुए प्रकोप को रोकने का प्रयत्न कर रही हैं। बड़े बड़े डाक्टरों के यूं कहने पर भी कि पीलिया रोग की कोई दवा हमारे पास नहीं है स्वास्थ्य मंत्रिणी किस आधार पर ऐसा कह रही हैं यह वे ही जानें। विषाक्त तत्वानुसंधान केन्द्र के डा० टेलफोर्ड का भी यही खयाल है कि इस रोग की कोई सफल दवा नहीं मिली है। बड़े ही दुख की बात तो यह है कि स्वास्थ्य मंत्रिणी और स्वास्थ्य विभाग के विद्वान् अधिकारी आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति को चिकित्सा पद्धति ही कहने को तैयार नहीं हैं। मैं तो इसे उनका बुद्धिभ्रम ही समझता हूँ जो कि भारतीय घर की धरोहर आयुर्वेदीय चिकित्सा पद्धति में इन्हें कुछ भी तथ्य नहीं दीख रहा है, आयुर्वेदीय दृष्टिकोण ने इसी को अतत्वाभिनिवेश रोग कहा है। दावे के साथ कहा जाता है कि आयुर्वेद में इस रोग की सफल चिकित्सा चिरकाल से पर्याप्त मात्रा में मौजूद है और अब भी चलती आरही है। जो डाक्टर सज्जन चाहें तो यहां आकर खुशी से देख सकते तथा जानकारी भी प्राप्त कर सकते हैं। पर हमें बड़ा दुःख है कि केन्द्रिय स्वास्थ्य मंत्रालय में ऐसे ही अधिकारियों का बोलबाला है जो ऐलोपैथी के सिवाय कुछ भी नहीं जानते हैं। वे ही इस प्रकार का गलत आतंक जनता में फैला रहे हैं। मैं अपने ३० वर्ष के अनुभव के आधार पर यह डंके की चोट कह सकता हूँ कि आयुर्वेद में इस रोग की अनेक सफल दवायें भरी पड़ी हैं। मैं जनता तथा स्वास्थ के अधिकारियों को पूर्ण विश्वास दिलाता हूँ कि वे इसमें आतंकित न होवें। यदि जनता में आयुर्वेदीय स्वस्थवृत्त का पूर्ण प्रचार और पालन कराया जावे तो पीलिया क्या कोई भी रोग अपना सिर नहीं उठा सकता है। आइये, मैं आपको आयुर्वेदीय सिद्धान्तानुसार इस रोग की चिकित्सा का दिग्दर्शन करादूं जो हर हालत में जनता की सेवा में सदा से ही जागरूक रही है।

पीलिया रोग का निवारण—

सुश्रुत संहिता में "पाण्डुना वर्णेन उपलक्षितो रोगः" कह कर पीलेपन को ही इसका खास लक्षण माना है। इस रोग में अनेक बाहरी कारणों से विकृत होकर बढ़ा हुआ पित्त ही प्रधान कारण होता है। वायु और कफ इसके संयुक्त मंत्री हो जाते हैं। ये तीनों क्रान्तिकारी रूप में आकर शरीर रूपी राष्ट्र के शाखा (रक्तादि धातु और त्वचा) रूपी प्रान्तों में आक्रमण प्रसार और स्थान संश्रय करते हैं। धमनी और शिराओं द्वारा शरीर के सभी घटकों को प्रभावित कर हृदय की क्रियाओं को भी मन्द कर देते हैं। बस यही इस रोग की सम्प्राप्ति (बनावट) है।

इसके फलस्वरूप रोगी की आंख,त्वचा, नाखून आदि बाहरी चीजें पीली होजाती हैं, इस रोग की दूसरी अवस्था में रोगी को दृश्य वस्तु भी पीली दिखाई देने लगती है। मूत्र हल्दी जैसा पीला होजाता है। खून के लाल कण बिल्कुल कम होने पर मल भी श्वेत, पीत एवं दुर्गंधयुक्त आने लगता है। वर्ण मेंढक के समान होजाता है। इसमें कोष्ठ और शाखा (रक्तादि धातु और त्वचा) में खूब शक्तिशाली पित्त के भयंकर तूफान होते हैं। शरीर में ढीलापन, काम करने में असामर्थ्य आदि बहुत सी बातें इस लिए होजाती हैं कि उपरोक्त पित्त प्रधान दोषों के दल ने इन धातुओं में से चिकनाई के हिस्से को क्षीण कर दिया है। इससे चेहरा फीका पड़ने लगता है और ताक़त कम होती हुई सी दीखने लगती है, शरीर पर रूखापन भासने लगता है। इसके बाद यहां तक स्थिति आजाती है कि ओज के स्निग्ध आदि गुण क्षीण होने तथा मेद (चर्बी) आदि स्निग्ध पदार्थ सूखने लग जाते हैं रोगी दुर्बलेन्द्रिय तेजहीन तथा मुरझाया हुआ सा होजाता है हाथ पैरों में शक्ति ह्रास, भूख बन्द, आंखों के नीचे के हिस्से में सूजन, चक्कर आना, बालों का उड़ना, स्वभाव में चिड़चिड़ापन, शरीर में जहां तहां दर्द, हृदय में अधिक स्पन्दन तथा जलन और शीत द्वेष आदि लक्षण परीक्षा काल में देखने में आसकते हैं। इस रोग की पाण्डु, कामला, कुम्भकामला, हलीमक तथा आधुनिक जगत् में प्रचलित प्रदाशोथ जन्य कामला, अश्मरीजन्य कामला, शिशु कामला आदि अनेक जातियां होने पर भी पीलापन, हरापन तथा हरित पीत मिश्रित रंग इसका साकार स्वरूप होता है जैसा कि कवि भट्ट जी ने लिखा है।

कनक कलेवर कान्तिः कपालधारी क्रमेण बलहारी।
मूशल प्रयोग कुशलः वर्जित भोगः स कामला रोगः ॥

हमारे वेद और पुराणों में तो इसे साकार सत्ताधारी माना है, इस विषय पर फिर कभी प्रकाश डाला जावेगा। अस्तु

कारण

खानपान की चीजों में अत्यधिक क्षार, तीव्र खटाई, विरुद्ध भोजन, असात्म्य भोजन, कठिन फली आदि का शाक, तेल की वस्तुओं का सेवन, मिट्टी खाना, चाय, मद्य, अजीर्ण अवस्था में मैथुन, दिन में सोना, दस्त आदि वेगों को रोकना, सिनेमा जागरण आदि इसके कारण होते हैं।

चिकित्सा

इसकी चिकित्सा में सबसे पहिले रोगी के बलाबल के अनुसार गोमूत्रानुपान से दस्त लगाने चाहिए (मूत्रविरेचन, शिरोविरेचन भी अत्यावश्यक है) इससे शरीर का क्षेत्रियकरण होजाता है।

(१) रोगी को प्रातःकाल काफी देर तक तिल तेल के गण्डूष करने चाहिए। (२) प्रातः आध सेर दही के मट्ठे में दो माशा लाल फिटकरी के फूले का चूर्ण डालकर पिलाने से तीन दिन में आंखों का पीलापन शर्तिया चला जाता है, इसी प्रकार पापड़ खार या सोडा खार का भी प्रयोग किया जा सकता है। (३) त्रिफला १ तोला रात को जल में भिगोकर सुबह घोटकर शहद मिलाकर पिलाना चाहिए। (४) गोमूत्र की भावना से बनाया हुआ लोहभस्म अथवा मण्डूरभस्म २ से ५ रत्ती तक देना चाहिए। (५) गिलोय स्वरस, निम्ब स्वरस और अंगूर का रस शहद या मिश्री मिलाकर पृथक् पृथक् पिलाना चाहिए। (६) रोगी की हृदय गति बढ़ी हुई हो और भूख बन्द हुई हो तो नवायसचूर्ण २ रत्ती, प्रवालपञ्चामृतरस २ रत्ती, जहरमोहरा पिष्टी १ रत्ती शहद और घृत (असमान भाग में) मिलाकर चटानी चाहिए। (७) रोगी के मूत्र में फासफोरस (अजरक) दीखता हो तो दो समय मण्डूरवटक शंखभस्म मिलाकर अजवायन के अर्क के साथ देना चाहिए। (८) किसमिस को रात में भिगोकर सुबह फांट बनाकर शहद या मिश्री मिलाकर उसके साथ मण्डूरभस्म ४ रत्ती प्रवालपिष्टी २ रत्ती देने से हृद्दाहयुक्त पीलिया

मिट जाता है। (९) दुपहर में गाजर का, संतरे का मौसम्बी का, सेव का, खासकर गन्ने का रस मूत्रकृच्छ्र-युत पीलिया में आशातीत लाभ करता है (१०) कड़वी तूम्बी के जाले को जल में भिगोकर हाथ से मलकर नाक में बूंदे डालने से नाक के द्वारा पीला स्राव स्रुत होकर शीघ्र ही पीलिया मिट जाता है। (११) कुटकी १ तोला रात को जल में भिगोकर प्रातः घोट-छानकर या बिना छाने ही मिश्री मिलाकर पिलाना चाहिए। इसके १ सप्ताह के प्रयोग से पूरा लाभ होता है। खाने के लिये गेहूँ की थूली, हरा पोदीना, हरा धनियां और किसमिस की चटनी के साथ फुलका खाना चाहिए (१२) मूली के स्वरस में मिश्री मिलाकर ७ या ६ दिन तक पिलाने से पीलिया मिटता है। (१३) बच्चों को मिट्टी खाने से पैदा हुये पीलिया में मण्डूरभस्म २ तोला, हरड़ चूर्ण १ माशा, कुटकी चूर्ण १ माशा गोमूत्र में विलोडित कर पिलाने से कोठे में से मिट्टी निकलकर साफ होजाती है। (१४) सुबह मट्ठे में केवल ६ मासा भास्कर लवण और रात में ६ माशा हरीतकी चूर्ण जल या दूध से लेकर शयन करने से १ सप्ताह में रोग समाप्त होता है। (१५) यकृत् में कड़ापन, पैरों में शोथ के साथ कब्ज भी रहती हो तो यकृदरिलोह २ रत्ती, आरोग्यबर्द्धिनी २ रत्ती, शङ्खभस्म २ रत्ती, दिन में दो बार शहद से चटाकर ऊपर से पुनर्नवादि क्वाथ पिलाना चाहिए। इसी प्रकार और-और संकीर्ण लक्षणों का मेलक होने पर आवश्यिक चिकित्सा में पथ्याघृत, द्राक्षाघृत, अभयारिष्ट, धात्रीअरिष्ट, लोहासव, कुमारीआसव, तारामण्डूर, कोलादिमण्डूर, रामवाण रस, वड़वानलरस आदि-आदि स्निग्ध और आनुलोमिक औषधों का प्रयोग हितकर है।

इस रोग में पथ्य—विरेचन (शिरोविरेचन, कोष्ठविरेचन, मूत्रविरेचन) चावल, मूंग, गेहूँ की थूली, परवल, चौलाई, तोरई, पुनर्नवा और आंवला शाक, गोमूत्र, मट्ठा, तक्र, हल्दी, नागकेशर, सुमधुर फलों का रस, खासकर गन्ना चूसना, पूर्ण विश्राम और उचित व्यायाम पथ्य होते हैं।

इस रोग में अपथ्य—रक्त निकालना (फस्त खोलना, शृङ्ग जोंक आदि से). धूम्रपान, वेगरोध, पसीना, फली शाक, सरसों का शाक, राई, लालमिर्च, उड़द, हींग, पान, मद्य, भांग, गांजा, चाय, मिट्टी खाना, दिन में सोना, उष्ण तीक्ष्ण द्रव्य, अम्ल विदाही, गुरुपदार्थ, तली हुई चीजें, बाजारू मिठाई, वेजीटेबिल घृत, बासी भोजन, धूप, मैथुन, क्रोध से पूरा परहेज रखना चाहिए। ♦♦

पृष्ठ ५३२ का शेषांश

बाद में रोगी के स्वास्थ्य लाभ के लिये स्वर्ण मालिनी बसन्त, च्यवनप्राश, वृ० बांसावलेह, अभ्रकभस्म मकरध्वज, मोतीभस्म, प्रवालपंचामृत, द्राक्षारिष्ट, अश्वगन्धारिष्ट आदि बलवर्द्धक तथा फुस्फुसीय बृंहण औषधियों का प्रयोग करना चाहिये जिससे फुफ्फुस पूर्ण स्वस्थावस्था प्राप्त कर सकें एवं पाश्चात्य शास्त्र में जैसा कहा गया है कि एक बार श्वसनक सन्निपात हो जाने से दुबारा श्वसनक सन्निपात की प्रवणता हो जाती है, इस परिस्थिति से रोगियों को बचाया जा सके। ♦♦

नींबू और स्वास्थ्य

लेखक—डा० कुलरञ्जन मुखर्जी, कलकत्ता।

यों तो सभी फल जनप्रिय होते हैं किन्तु नींबू (*lime*) उनमें अन्यतम है। सभी प्राच्य देशों में यह यथेष्ट रूप में उत्पन्न होता है, एवं धनी तथा दरिद्र सभी के द्वारा परम परितृप्ति के साथ ग्रहण किया जाता है। प्राच्य देशों में साधारणतः लोग पाती नींबू व्यवहार करते हैं, एवं पाश्चात्य देशों में प्रधानतः जमीर (*lemon*) व्यवहृत होता है। सन् १९५१ में अमेरिका के संयुक्त राष्ट्र में ५,०६००० टन जमीर उत्पन्न हुआ और उस वर्ष पाती नींबू उत्पन्न हुआ केवल १०,००० टन।

पुष्टिकारिता की दृष्टि से कागजी नींबू एवं जमीर में कोई विशेष फर्क नहीं है, एवं उनके रासानिक उपादान भी प्रायः समान ही हैं। किन्तु कागजी नींबू को अधिक दिनों तक सुरक्षित नहीं रक्खा जा सकता और जमीर ठण्डे स्थान में रखने पर ६ महीनों से भी अधिक दिनों तक ताजा रह सकता है। इसलिए विश्व के बाजार में लाभजनक व्यवसाय के रूप में जमीर ने जो ऊंचा स्थान प्राप्त किया है वह पाती नींबू नहीं प्राप्त कर सकता।

कागजी नींबू भारत की मिट्टी से उत्पन्न होने वाला फल है, एवं हिमालय के ग्रीष्म प्रधान अंचल में अभी भी यह वन्य अवस्था में दिखाई देता है। किन्तु वर्तमान समय में यह भारतवर्ष सिंहल, मलाया द्वीपपुंज, वेस्ट इण्डीज. एवं मारक्को आदि नाति शीतोष्ण एवं समशीतोष्ण देशों में व्यापक रूप से उत्पन्न होता है। अमेरिका के ग्रीष्म प्रधान अंचल में भी यह कुछ परिमाण में उत्पन्न होता है।

कागजी नींबू साइट्रिक एसिड युक्त फल के अन्तर्गत होता है। यह कमला नींबू का ही समजातीय है अन्तर केवल इतना है कि इसमें मीठा रस कम एवं अम्ल की मात्रा अत्यधिक है। नींबू विभिन्न श्रेणी का होता है, एवं आकार में वर्ण में तथा त्वचा की स्थूलता में ये परस्पर पृथक् होते हैं। विगत कई वर्षों में इस प्रकार कई एक श्रेणी का नींबू उत्पादन किया गया जो सम्पूर्ण रूप से बीज शून्य है। नींबू का पेड़ रोपने के ३ से ६ वर्षों के भीतर फल देने लगता है। यदि आवहवा नम हो और सूर्य्य का प्रकाश वर्तमान हो तो यह आश्चर्य्य रूप से फलने लगता है। इस पेड़ में हमेशा फूल खिलते हैं, अतः इसमें साल भर नींबू प्राप्त हो सकता है। फूल खिलने के १२० दिनों से १४० दिनों के भीतर फल पक जाता है। किंतु साधारणतः नींबू हरा रहते ही तोड़ लिया जाता है।

बहुत दिनों से नींबू एक स्वास्थ्यकर फल के रूप में समादृत होता आ रहा है। वर्तमान समय में वैज्ञानिक गवेषणाओं द्वारा भी यह निःसन्देह प्रमाणित हो गया है कि जनता का यह विश्वास भ्रांतिमूलक नहीं है। विभिन्न खाद्य उपादानों से यह समृद्ध है। इसके अन्दर प्रोटीन का अंश १.५, चर्वी १.०, धातवलवण ०.७, छिबड़ा जातीय पदार्थ १.६, शर्करा १०.६, कैलसियम ०.०६, फासफोरस ०.३, लोहा ०.३, तथा जल का भाग ८४.६ प्रतिशत है।

नींबू में विटामिन सी हर १०० ग्राम के पीछे ६३ मिलीग्राम होता है। जमीर से इसमें बिटामिन सी अत्यधिक पाया जाता है। इसके अन्दर बहुत थोड़े रूप में बिटामिट 'ए' एवं नायाचिन (एक प्रकार का विटामिन 'बी') भी वर्तमान रहता है।

नींबू अपने स्कर्वी रोग प्रतिषेधक गुण के कारण सर्वापेक्षा अधिक समादृत होता है। अतीत काल में स्कर्वी रोग को समुद्र का प्लेग कहा जाता था। समुद्रगामी जहाज के सहस्र-सहस्र नाविकों ने इसी रोग में प्राण त्याग किया। उसके बाद जब नाविकों को नियमित रूप से नींबू का रस देने की व्यवस्था की गई तब यह रोग खत्म हो गया। आंतर्जातिक वाणिज्य नियामक संस्था ने यह बाध्यतामूलक कर दिया है कि जब साग-सब्जी दुर्लभ हो जाय तब नाविकों को प्रति दिन नींबू का रस देना होगा।

जब वास्कोडिगामा ने समुद्र यात्रा करते हुए उत्तमाशान्तरीय की परिक्रमा की उस समय उसके नाविकों में दो तृतीयांश लोगों ने इसी स्कर्वी रोग के कारण प्राण त्याग किया। किन्तु इस प्रकार की घटनाओं की पुनरावृत्ति असम्भव है।

'सी' विटामिन की प्रचुरता के कारण अन्यान्य रोगों में भी यह महोपकारी खाद्य के रूप में स्वीकृत हुआ है।

गठिया एवं सन्धिप्रदाह में नींबू का रस प्रतिषेधक एवं आरोग्यकर औषधि के रूप में बहुत दिनों से व्यवहृत होता आ रहा है। देखा गया है कि 'सी' विटामिन शरीर की संयोगकारी पेशियों को सबल बनाकर आक्रान्त सन्धि को रोगमुक्त करता है। यह भी उल्लेख किया जा सकता है कि नींबू के भीतर जो साइट्रिक एसिड है वह यूरिक एसिड के द्रावक पदार्थ के रूप में परिणत हो जाता है। शरीर के भीतर यही यूरिक एसिड जमा हो जाने के कारण गठिया एवं इसी तरह की और दूसरी बीमारियां उत्पन्न होती हैं।

दांत एवं शरीर की और दूसरी हड्डियों की रक्षा के लिए सी विटामिन विशेष रूप से हितकर है। कारण यह है कि सी विटामिन दांतों का क्षय, दांत हिलना, दांत में दर्द, मसूड़ों से रक्त गिरना, हड्डियों की भंगुर अवस्था एवं संधियों (जोड़ों) का दर्द दूर करता है। इसके अलावा खाद्य में सी विटामिन रहने पर खाद्य का कैलशियम भी यथेष्ट रूप में शरीर के काम आता है।

कई एक बार यह परीक्षा करके देखा गया है कि डिप्थेरिया, टायफायड, तथा दूसरे रोगों के जीवाणु नींबू के रस में डालने पर कुछ ही काल के पश्चात् मर गये। इसके अलावा नींबू का सी विटामिन शरीर की रोग प्रतिरोधक-क्षमता की वृद्धि करता है; कुछ लोगों का कहना है कि, नींबू का रस लेने पर इन्फ्लुएंजा एवं न्यूमोनिया नहीं हो सकता, साथ ही यह सर्दी में भी उपकारी है और दूसरे संक्रामक रोगों में भी यह अत्यधिक रूप में लाभदायक है।

सी विटामिन के पश्चात् साइट्रिक जातीय अम्ल ही नींबू का सर्वापेक्षा श्रेष्ठ उपादान है। पाती व कागजी नींबू का खट्टा स्वाद इसी अम्ल के द्वारा उत्पन्न होता है। किंतु यद्यपि नींबू का स्वाद खट्टा है तथापि परिपाक के पश्चात् यह क्षार जातीय पदार्थ में परिणत होजाता है एवं रक्ताल्पता दूर करता है।

यह स्मरण रखना आवश्यक है कि नींबू का औसतन अम्लत्व दूसरे खट्टे फलों से बहुत ज्यादा है। औसत के हिसाब से बिजोरा का अम्ल १'४२ से २'१३ प्रतिशत है। कमला नींबू का ०-६८ से १-२३, जमीर का ५'६६ से ६'४०, एवं पाती नींबू का आम्ल ७'२० प्रतिशत है।

नींबू के अंदर साइट्रिक एसिड होने पर वह शरीर को ठंडा रखने में विशेष रूप से सहायता करता है ज्वर में जब कभी नींबू व्यवहार किया जाता है उस समय यह केवल तृष्णा ही दूर नहीं करता साथ ही ज्वर के तीव्र ताप का शमन करता है।

मधुमेह के रोग में प्यास बुझाने के लिए शीतल जल की अपेक्षा, नींबू के रस के साथ जलपान करना अधिक लाभदायक है।

पाकस्थली की उत्तेजित अवस्था में नींबू के रस के साथ शीतल जलपान करने पर उसी समय उपकार होता है।

स्नायविक उत्तेजना में भी नींबू यथेष्ट उपकार करता है। नींबू के रस के साथ जलपान करने पर

क्रोध आदि के द्वारा उत्तेजित स्नायु उसी समय शांत होजाती है। द्रुत हृत्कम्प बन्द हो जाता है।

जब फुफ्फुस, पाकस्थली, आंत, मूत्रयंत्र, मूत्राशय, एवं शरीर के दूसरे अंशों से रक्तस्राव होता है उस समय नींबू शरीर को शीतल कर रक्तस्राव बन्द करता है। नींबू के भीतर जो पी विटामिन है वह धमनियों को सबल बनाकर पुराने रोगों में रक्त का निकलना बन्द करता है। इसीलिए ब्लैडप्रेसर की बीमारी में यह विशेष रूप से लाभदायक है। कारण इस रोग में मस्तिष्क के अन्दर रक्तस्राव होने के फलस्वरूप पक्षाघात उत्पन्न होता है एवं कभी कभी रोगी की मौत हो जाती है।

नींबू का रस परिपाक कार्य में भी विशेष रूप से सहायता करता है। यह मुंह की लार एवं पाचक रस को निकलने में सहायता करता है। इसी लिए भूख को बढ़ाने में इसके बराबर और दूसरी वस्तुयें बहुत कम हैं।

नीबू स्थित साईट्रिक एसिड पाकस्थली में एवं आंत के भीतर खाद्य को सड़ने नहीं देता एवं जितने पेट के भीतर खाद्य सहज ही विकृत हो उठता है नींबू व्यवहार करने पर उन्हें बहुत उपकार प्राप्त होता है।

प्रातःकाल १ ग्लास ठंडा जल के साथ नींबू का रस मिलाकर पीने पर कब्जियत में अत्यन्त लाभ होता है, पुराने कब्जियत में नींबू पित्त के निकलने में सहायता कर आंत की क्रमिगति को बढ़ाता है। इन सभी कारणों से यह अनुमान लिया जाता है कि, पित्त कोप में पिथ-पथरी के उत्पादन को रोकता है।

कामला रोग में भी यह हितकर खाद्य के रूप में माना गया है।

नींबू का रस मूत्रस्राव परिष्कार रखने में विशेष रूप से सहायता करता है। इसी लिए शोथ के रोग में यह अत्यन्त लाभप्रद है।

यह देखा गया है कि हमारे शरीर में जो विष उत्पन्न होता है, वह सभी एक अम्ल जातीय पदार्थ है। नींबू का रस इन अम्ल विषों को नष्ट कर देता है, इसी लिए प्रत्येक रोग में नींबू को उपकारी कहा ज सकता है।

मुसलमानों के धर्म ग्रन्थ में कहा गया है कि जिस घर में अम्ल जातीय फल रक्खा जाता है उस घर में शैतान प्रवेश नहीं कर सकता।

नींबू कई तरह से व्यवहार किया जाता है एवं खासकर इसका रस ही ग्रहण किया जाता है।

नींबू का रस ग्रहण करने का सर्वश्रेष्ठ उपाय है, इसे जल के साथ मिलाकर ग्रहण करना। एक समूचे नींबू का रस ८ औंस वाले १ ग्लास जल के साथ मिलाकर पान करना उचित है। विभिन्न प्रकार के शर्वतों के साथ यह हमेशा ही ग्रहण किया जाता है। नींबू रसयुक्त लस्सी का शर्वत सारे भारतवर्ष में एक जनप्रिय पानीय है।

फल के रस के साथ नींबू का रस मिलाने पर उसका स्वाद बढ़ जाता है।

सलाद के लिए नींबू का रस अनिवार्य्य है। फल के सलाद में इसका रस सेव तथा अन्य फलों का स्वाभाविक रंग अविकृत रखता है, एवं उसके स्वाद व सुगन्धि को बढ़ाता है।

दाल व सूप आदि के साथ प्रायः ही नींबू का रस मिलाया जाता है। इससे उसका स्वाद बढ़ जाता है।

ज्याम, जेली एवं मोरब्बा आदि को सुगन्धित करने के लिये नींबू का रस व्यापक रूप से व्यवहृत होता है।

नींबू का छिलका भी विभिन्न औषधि गुणों से समृद्ध है। इसके छिलके में जो तेल जातीय पदार्थ रहता है वह पेट की वायु दूर करने के लिये एवं पाचक शक्ति को बढ़ाने के लिए औषधि के रूप में व्यवहृत होता है। कई बार इसके द्वारा भेषज गुणयुक्त अचार भी तैयार किया जाता है। नींबू का अचार तैयार करने के लिए समूचा नींबू ही काम में लाया जाता है।

इसके ऊपर का छिलका पहले किसी पत्थर पर घिस कर छुड़ा दिया जाता है। उसके बाद दूसरे नींबुओं का रस निचोड़ कर उसमें इन नींबुओं को डाल दिया जाता है तथा थोड़ा सा नमक मिलाकर धूप में रख दिया जाता है। कुछ दिनों के पश्चात् जब नींबू कुछ नये एवं बादामी रङ्ग के हो जाते हैं तब उन्हें अलग एक कांच के पात्र में सुरक्षित किया जाता है। भारतीय औषधियों में इसने एक विशिष्ट स्थान अधिकार कर लिया है। अतिरिक्त भोजन करने के कारण एवं विशेषकर गुरुपाक द्रव्य आहार करने के फलस्वरूप पेट की पीड़ा उपस्थित होने पर यह अत्यन्त लाभदायक सिद्ध होता है।

आहाररूप में घर-घर में नींबू के व्यवहार के अलावा कारखानों में साइट्रिक एसिड तैयार करने के लिए नींबू की यथेष्ट आवश्यकता होती है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए साधारणतः निकृष्ट श्रेणी का नींबू ही काम में लाया जाता है।

१७८४ में सर्वप्रथम नींबू के रस से साइट्रिक एसिड अलग किया गया। उसके बाद से ही इसका उत्पादन क्रमशः बढ़ने लगा। वर्तमान समय में चीनी के अर्क तथा अनार रस के छिबड़े से प्रचुर परिमाण में साइट्रिक एसिड उत्पन्न किया जाता है तथापि इस व्यवसाय में नींबू व जमीर की उपयोगिता लुप्त नहीं हुई।

सरसों का साग व उसके अवगुण

लेखक—वैद्य दुलीचन्द आर्य आयु० विशारद, आर्य आयुर्वेदिक औषधालय आर्यनगर।

कई बार देखने सुनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है कि इस देश के लोग सरसों के साग को बड़ी रुचि व प्रेम से खाते हैं। उनका अपना विचार है कि सरसों का साग बड़ा ताकतवर व स्वास्थ्यवर्द्धक है, लेकिन उन सब लोगों का यह विचार बिलकुल निराधार व ग़लत है। क्योंकि ऐसे लोग आयुर्वेद के बिलकुल परे हैं, उन्होंने शायद किसी भी आयुर्वेद ग्रन्थ का अध्ययन नहीं किया है।

देहाती लोगों के अतिरिक्त पढ़े लिखे कहे जाने स्कूल व कालेजों के विद्यार्थी अध्यापक तथा दूसरे सभ्य आदमी भी इस साग में विटामिन होने का सहारा लेकर खाने की दलीलें पेश करते हैं, लेकिन सरसों का शाक उष्ण, तीक्ष्ण, गुरु और रूक्ष है।

रूक्ष होने के कारण वायु को, गुरु होने के कारण कफ को, उष्ण और तीक्ष्ण होने के कारण पित्तको बढ़ाता है। तथा मल-मूत्र का रोधक और अहितकारी पदार्थ है। जैसे धन्वन्तरि जी महाराज ने सुश्रुत सूत्र स्थान अ० ४६ श्लोक २३८ में कहा है—

विदाहि बद्ध विण्मूत्रं रूक्षं तीक्ष्णोष्णमेव च।
त्रिदोषं सार्षपं शाकं गाण्डीरं वेग नाम् च॥

सरसों का शाक, गाण्डीर और वेग (मारवाल फल) विदाही, मलमूत्रअवरोधक, रूक्ष, तीक्ष्ण और उष्ण तीनों दोषों को उत्पन्न करते हैं।

इसी प्रकार महर्षि चरक जी ने चरक सूत्र स्थान अ० २५ में अहितकर द्रव्यों का उपदेश करते हुए श्लोक ३८ में कहा है—

वर्षानादेयमुदकानाम्, औषरं लवणानां, सर्षप शाकं शाकानां, गौमांस मृगमांसानां।

जलों में वर्षा के दिनों का नदी का जल, लवणों में ऊषर भूमि का नमक, शाकों में सरसों का शाक, पशुओं के मांस में गौमांस आदि।

इसी प्रकार भावमिश्र भी भावप्रकाश पूर्व-खण्ड प्रथम भाग के श्लोक ४५ में लिखते हैं—

शिम्बी धुमाषान् ग्रीष्मतोर्लवणोत्थोषरं त्यजत्।
फलेषु लकुचंसाके सार्षपं न हितम्मतम्॥
गौमांसं ग्राम्य मासेषु न हितं महिषीवसा।
मेषीपयः कुसुम्भस्य तैलस्यज्यञ्चफाणितम्॥

(शेषांश पृष्ठ ५४३ पर)

बच्चों का पोषण

गाय, बैल, घोड़ों आदि के पोषण में हम कितने सावधान रहते हैं। हम उन्हें अच्छा चारा देते हैं और समय का भी पूरा ख्याल करते हैं जिससे हम उन्हें अधिक-से-अधिक उपयोगी बना सकें। वे अंट-संट कुछ भी नहीं खाते। पर बच्चों के पालन-पोषण में हमारी ये सावधानी पता नहीं कहां चली जाती है। हम उन्हें मिठाई, चाक्लेट, मलाई का बरफ, बिस्कुट वगैरह पता नहीं क्या-क्या खाने को देते हैं, क्योंकि ये सारी चीजें उन्हें 'अच्छी' लगती हैं। और जब वे बीमार पड़ते हैं, अकाल ही मौत की भेंट हो जाते हैं तो हम किस्मत को कोसना शुरु करते हैं। हर साल बेशुमार बच्चे पैदा होते है, लाखों मरते हैं और हजारों बचपन से ही मरियल हो जाते हैं। यदि थोड़ी-सी सावधानी बरती जाय, उनके पालन-पोषण पर उचित ध्यान दिया जाय, उन्हें अस्वास्थ्यकारी चीजें खाने से रोका जाय तो वे बड़ी आसानी से लहलहा उठें। बच्चों के पेट को मालगोदाम समझकर उसे उल्टी-सीधी चीजों से भरकर हम चाहें तो उन्हें हड्डियों का ढांचा बना दें, या उन्हें उचित एवं नियमित आहार देकर फूल-सा ताजा एवं आकर्षक बनने का मौका दें।

—आरोग्य।

❖ ❖ ❖

सिनेमा और उसका दुष्प्रभाव

उन दिनों मैं आगरे रहता था, अक्सर अपनी श्रीमती को लेकर सिनेमा का शो देखने जाता था, इत्तिफाक से उन दिनों मेरी मां भी वहीं थी और प्रायः हम दोनों को सिनेमा जाते देख कर मां कहने लगी, बेटा! यह सिनेमा कौन सी बला है, हमें भी दिखला दे। मैंने सोचा जिसमें अष्टांग मैथुन की कला न हो ऐसी तस्वीर को ढूंढ कर मां को ले जायेंगे, मगर बद-किस्मती ऐसी रही कि मां के लायक कोई भी तस्वीर छह माह के अन्दर मेरी नजर में नहीं आई, बल्कि मैं स्वयं श्रीमती जी की मौजूदगी में भी अपने आपको बचा नहीं पा रहा था, सिनेमा की अमुक देवी के रूप के साथ जब मैं अपनी श्रीमती की तुलना करता तो, अमुक देवी अपनी मद भरी आंखों से मुझको भी खींच ले जाना चाहती थी, गाना मेरी श्रीमती भी गाती थी पर सिनेमा की किन्नर कण्ठी जब 'आजा मेरे बलमुआ' कह कर पुकारती थी तब मेरी आंख और कान के साथ मन की क्या दशा होती थी, मैं क्या बताऊं। श्रीमती के पहनांव से इत्र की महक जरूर मेरी नाक में आरही थी, पर मेरी कल्पना की नाक में अमुक देवी के शरीर से जो खुशबू आ रही थी उसे कहां छिपाऊं। मेरी रसना मेरी श्रीमती के लिए रिजर्व जरूर थी, पर प्रत्यक्ष रीति से नायक नायिका जो कुछ कर रहे थे उसे देख कर भी अगर मेरा मन उधर न जाता तो मेरा नाम जरूर महाभारत में लिखा रहता और लोग मुझे बृहन्नला कहकर पुकारते। इसी भांति हाथ पैर त्वचा, मन, बुद्धि और उपस्थ इन्द्रिय आदि की हालतें होने लगीं। अगर आयुर्वेद के सद्वृत्त से परिचित होकर भी मुझ जैसे चरित्रवान् की ऐसी मानसिक

दुर्दशा हो सकती है तो, जो लोग सिनेमा की तस्वीर की बदौलत शारीरिक और मानसिक धीरज खो देते हैं उन लोगों के शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य के साथ चारित्रिक पतन जो शरीर-धातुओं में विकृति उत्पन्न होकर अनेकों प्रकार के रोग जन्म ले रहे हैं। जिनकी बदौलत वीर्य धातु के अतिक्षय से देश में यक्ष्मारोगियों की तादाद बढ़ती जा रही है। घी, दूध, मक्खन के अभाव से पीड़ित, नीति और चारित्रिक शिक्षा के अभाव से उच्छृंखल समाज की रक्षा के लिए फिल्म सुधार तो जरूरी है, यह सुधार आयुर्वेद के सद्वृत्त या सदाचार रसायन से ही हो सकता है। —स्वास्थ्य।

❖ ❖ ❖

नमक

अधिक नमक खाना शरीर के लिए बहुत हानिकारक होता है। जो हम नमक खाते हैं आखिर वह क्या है ? यह नमक हम उस नमक के अलावा खाते हैं जो हमारे खाद्य पदार्थों में मौजूद रहता है। प्रत्येक पौधे में कुछ लवण वाले पदार्थ रहते हैं और अगर बचपन में ही नमक खाने की आदत डालकर हमारी रुचि खराब न कर दी गई होती तो पौधे से प्राप्त होने वाला नमक हमारे लिए बहुत काफी होता। इसके सबसे अच्छे उदाहरण मैदानों और जङ्गलों में रहने वाले जानवर हैं जिन्हें यह नमक कभी नहीं मिलता और जो हमारे घरेलू जानवरों की अपेक्षा अधिक स्वस्थ और बलवान होते हैं।

नमक से हानि

नमक का आविष्कार और उसके प्रयोग का आरम्भ कब और किसने किया इसका पता लगाना तो बहुत मुश्किल है, पर यह निश्चित है कि एक समय रहा होगा जब कहीं इसका व्यवहार न होता रहा होगा और उस युग के लोग अधिक दीर्घायु और स्वस्थ होते रहे होंगे। बहुत से लोगों को काफी अधिक नमक खाने की आदत होजाया करती है और वे इस बुरी लत के यहां तक बस में हो जाते हैं कि वे बने हुए पदार्थों में नमक अवश्य मिलाते हैं और इसके परिणामस्वरूप आमाशय आदि के अनेक रोगों के शिकार हुआ करते हैं। नमक आमाशय और आंत के पर्दे को ठीक उसी तरह खा जाता है जैसे घुन काठ को। अगर इसे प्रत्यक्ष देखना चाहें तो दो सूती रूमाल ले लीजिए। एक को नमक मिले हुए पानी में और दूसरे को साफ पानी में भिगोकर सुखा डालिए और यही क्रिया दो सप्ताह रोज करते रहिये। इस समय के बाद आप देखेंगे कि साफ पानी में भिगोया जाने वाला रूमाल तो ज्यों का त्यों है पर दूसरे रूमाल को नमक बिल्कुल चट कर गया है। नमक रखने के बोरे के सम्बन्ध में भी यही बात देखने में आती है—यह आटे के बोरे के बराबर नहीं टिकता। जब नमक सूत और सन के धागों को इतनी शीघ्रता से नष्ट कर देता है तो आमाशय और आंत के नाजुक पर्दे को कितनी क्षति पहुँचाता होगा इसका आसानी से अनुमान किया जा सकता है। रक्ताभाव से ग्रसित लोग तेज नमक वाली और खट्टी चीजें खाना ज्यादा पसन्द करते हैं और इसके परिणामस्वरूप उनका आमाशय बहुत कमजोर हुआ करता है।

इस लत को एकाएक छोड़ना बहुत कठिन होता है। इस पर धीरे-धीरे काबू करने का प्रयत्न करना अच्छा होता है। एकाएक परिवर्तन करने का असर बुरा हो सकता है। हर हफ्ते नमक की मात्रा कुछ कम करते जाइए। इस प्रकार चलने पर कोई क्षति पहुंचने की सम्भावना नहीं रहेगी।

श्रीनिशिकान्तः —आयुर्वेद, नासिक।

❖ ❖ ❖

हाई ब्लडप्रेशर को शीघ्र दूर करने वाला

एक पोदी रसोनकन्द

यह रसोनकन्द देहरादून में पाया जाता है। अन्य प्रान्तों में भी यदाकदा कहीं-कहीं पाया जाता है पर सर्वत्र सुलभ नहीं है। इस कन्द में गन्ध तो लहसुन

जैसी होती है पर लहसुन जैसी दाहकता इसमें नहीं पाई जाती है। इसका रस दस बिन्दु से साठ बिन्दु तक क्रमशः बढ़ाकर मीठे दूध के साथ प्रातःकाल में लेने से शीघ्र ही ब्लडप्रेशर स्वाभाविक होजाता है। निद्रा आने लगती है, शरीर में बल का संचार होने लगता है और मल का भी शोधन होता है। सुकुमारों और लहसुन न खाने वालों के लिए मैं नीचे लिखा प्रयोग करता हूं।

एक पोटी लहसुन को छीलकर बारीक-बारीक काटकर १० तोले लें, बाद में पांच पाव गोदुग्ध में मिलाकर मन्द आंच पर खोआ बनालें, जब अच्छा खोआ बन जावे तब खोये के बराबर चीनी मिलाकर २-२ तोले की मात्रा में पेड़े बनालें। एक पेड़ा प्रातः काल दूध, चाय या काफी के साथ सेवन करें। इस पर पाश्चात्य देशों में अब अनुसन्धान होने लगा है। भारत के हिन्दू विश्वविद्यालय में भी अधिक अनुसन्धान करने की व्यवस्था की जारही है।

श्री० हरिकृष्ण सहगल, दिल्ली —रसायन।

❖ ❖ ❖

देहलावण्य

अन्य प्राणियों से नितान्त भिन्न सम्भवतः मानव मात्र को देह को सुडौल और सुन्दर बनाये रखने की विशेष इच्छा होती है। अन्य प्राणी इस इच्छा से मुक्त होते हैं, परन्तु अपनी क्रियाओं द्वारा शरीर को सुगठित और स्वस्थ रखते हैं।

केवल इच्छा से कोई कार्य नहीं होता। देह को बलवान बनाने के लिए कार्यसंलग्नता की अनिवार्य आवश्यकता है। शरीर की वृद्धि पोषण से होती है, परंतु यह वृद्धि ऐच्छिक भी हो सकती है और अनैच्छिक भी। स्थूल देह भी देखने में सुन्दर होती है, परन्तु स्वास्थ्य की दृष्टि से उसका कोई मूल्य नहीं है। कार्य न करते पोषक द्रव्यों का सेवन करते रहने से शरीर के सभी अवयव शिथिल और मेदसी हो जाते हैं। वे कार्यक्षम नहीं रहते और धीरे-धीरे सम्पूर्ण शरीर एक दिखाने की वस्तु रह जाता है।

प्रकृति सदा मानवों को पुष्ट रहने की देती है। बचपन में प्रत्येक शिशु अपने आपको भर खेल-कूद करके स्वस्थ बनाये रखता है, मनुष्य शरीर को स्वस्थ बनाये रखने के लिए की प्रकृति से ही काम लें तो वह सदा स्वस्थ सकता है।

शरीर का पोषण आहार से होता है आहार का पाचन शरीर की क्रियाओं पर आश्रित जो खाकर पड़े रहते हैं वे अजीर्ण, आमवात, वृद्धि, हृदयरोग, मधुमेह आदि रोगों से पीड़ित हैं। अतः शरीर को आहार ग्रहण करने के बनाने के लिए उसको सक्रिय रखना आवश्यक है।

घूमने-फिरने से लेकर अनेक प्रकार के रिक व्यायाम शरीर को सक्रिय और चंचल रखने के साधारण साधन हैं।

मानव शरीर आदतों के बने हुए होते हैं इन्हें जैसा भी बनाया जाय ये वैसे ही बन जाते तथापि किसको किस प्रकार का व्यायाम हितकर यह प्रत्येक मनुष्य अपने आप निश्चित करले और शरीर को व्यायाम द्वारा नित्य नवीन बनाये रक्खे व्यायाम करने वाले को अति स्त्री-प्रसंग, मद्य धूम्रपान, क्रोध, शोक, भ्रम, दुष्ट विचार आदि त्याग करना चाहिए।

पण्डित नेहरू की रूस यात्रा काल में कुछ प्रतिनिधियों ने रूस के उपप्रधान मन्त्री श्री मिको से प्रश्न पूछा "आप अपने देहलावण्य को इतना तरुण किस प्रकार बनाये रखते हैं?" तब उन्होंने दिया, "परिश्रम से।"

श्री० हरस्वरूप शर्मा, अहमदाबाद —रसायन।

❖ ❖ ❖

मटर से गर्भ-निरोध

कलकत्ता रोगाणु अनुसंधान संस्था के डा। एस० एन० सान्याल ने १३ फरवरी को

तिनिधियों को बताया है कि साधारण मटर,
की भारत में बहुत खेती की जाती है, गर्भ-
पक के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है।

उन्होंने कहा कि ७२७ स्त्रियों पर प्रयोग करके
गया है कि मटर से तैयार किये गये कैप्सूल
से उनकी गर्भ-धारणा की गति में बहुत कमी
ाई। एक कैप्सूल दो आने में तैयार हो सकता
भारत सरकार ने इस विधि पर परीक्षण करने
निश्चय किया है और इसके लिए १ लाख
हजार रु० की रकम मंजूर की है।

—हिन्दुस्तान।

पृष्ठ ५३६ का शेषांश

शिम्बी धान्यों में उर्द ग्रीष्म ऋतु में अहित है, लवणों में पांगा त्यागने के योग्य है, फलों में बड़हल और शाकों में सरसों का शाक अहितकर है, गांव के पशुओं के मांस में गौ मांस और भैंस की चर्बी अहित है, भेड़ी का दूध, कुसुम का तैल, ईख की वस्तुओं में फाणित आदि अहित कर हैं।

ऊपर के प्रमाणों को देखते हुए सरसों के शाक को एक स्वस्थ मनुष्य के लिए हितकर नहीं कहा जा सकता। अतः इस लेख के प्रमाणों से लाभ उठाकर भले व समझदार मनुष्य जीवन लाभ उठावें तथा दूसरे साथियों को भी इससे सावधान करें।

अन्य फलों से नींबू की विशेषता

अनेक प्रामाणिक खोज से यह साबित हो चुका है कि नींबू में जीवन पोषक खटाई के तत्व (*Vitalizing acids*) दूसरे फलों की अपेक्षा अधिक प्रमाण में रहते हैं। दूसरे फल कच्चे होने पर खट्टे रहते हैं और पकने पर मीठे हो जाते हैं और बहुत अधिक पकने पर उनमें कई प्रकार की एसिड जैसे एसेटिक एसिड लेक्टिक एसिड ब्यूटीरिक एसिड और ओक्सेलिक एसिड इत्यादि शरीर की जीवन क्रियाओं को नुकसान पहुँचाने वाली बहुत सी एसिड रहती हैं मगर नींबू की खटाई इस प्रकार की नहीं होती। नींबू अच्छी तरह से पक जाने के पश्चात् भी अपनी खटाई नहीं छोड़ता। इससे ऐसा मालूम होता है जैसे संसार की प्रयोगशाला में प्रकृति ने इसकी रचना विशेष तत्वों के मेल से की है। नींबू की यह खटाई दूसरी खटाई से बिलकुल भिन्न प्रकार की होती है। इसकी यह खटाई बिलकुल प्राकृतिक है।

—वनौषधि चन्द्रोदय।

अखिल भारतीय मैडीकल कान्फ्रैन्स का आयुर्वेद विरोधी प्रस्ताव

लेखक—आचार्य नारायण 'निराला' प्रधान चिकित्सक—
जिलाबोर्ड चिकित्सालय, भांखरोटा (जयपुर)

कुछ दिन हुए मैडीकल कान्फ्रेंस जो जयपुर में आयोजित की गई थी उसमें देशीय चिकित्सा प्रणाली आयुर्वेद के विनाश का एक घातक प्रस्ताव पास किया गया है। जिसमें एक सूत्री चिकित्सा प्रणाली के ठेकेदार डाक्टरों ने एक गुट होकर जो भीषण हमला आयुर्वेदपर किया है, वह एक विचारणीय प्रश्न है। तथा यह प्रस्ताव प्रत्येक आयुर्वेदप्रेमी तथा राष्ट्रहितैषी मानव के मानस पटल पर एक विषाद, दुःख, सन्ताप की रेखा डाल चुका है। डाक्टर लोग देश में एक सहयोगात्मक रुख छोड़कर चिकित्सा जैसे रचनात्मक देशहितैषी विषय को भी राजनैतिक अखाड़ा बना देना चाहते हैं। आयुर्वेदज्ञ तथा देशचिन्तक होने के नाते कुछ पर्दे के पीछे होने वाले एक तमाशे और नाटक का रिहर्सल करने को मुझे भी बाध्य होना पड़ रहा है। जिस प्रकार नाटक में किस प्रकार आदर्श-वाद का आयोजन किया जाता है और वह अभिनय करने वालों का चरित्र-चित्रण उन मर्यादाओं की कसौटी पर कितना खरा उतरता है यह बता देना आवश्यक हो गया है। समस्त वैद्य समाज को यह प्रस्ताव एक चुनौती है, जिसको स्वीकार करना ही चाहिए। अतः वह स्वीकार करके ही सत्य की कसौटी पर परीक्षण तथ्य तथा आयुर्वेद का आधुनिक पूर्ववर्ती जीवन और उसकी अच्छाई के विषय में कहूंगा तथा अपनी कमजोरी पर भी प्रकाश डालूंगा। यह एक गम्भीर मसला है तथा बहुत बड़ा आघात भी। आयुर्वेद के लिए यह प्रस्ताव कोई नवीन नहीं है; पहले भी इन्हीं डाक्टरों के गुरू अङ्ग-रेजों ने 'चौपड़ा कमेटी' का निर्माण करके देश में एक चिकित्सा पद्धति एलोपैथिक कायम करने का अपनी साम्राज्यावस्था में आयुर्वेद की कमर तोड़ने का प्रयत्न किया था। आयुर्वेद के साथ जनबल तथा जनता जनार्दन की शुभ कामनाएं और और श्रद्धायें सदैव रही हैं। यह यों ही नहीं बल्कि उसकी लोक प्रियता का परिचायक और प्रमाण है। उस समय भी आयुर्वेद नहीं मरा वे स्वयम् ही चले गए। बाद में हमारे देश के स्वास्थ्य की भाग्य विधायिका श्रीमती अमृतकौर ने तो आयुर्वेद को अव्यवहारिक, अवैज्ञानिक और समय तथा देश के विपरीत न जाने क्या-क्या कह डाला, यह भी एक घातक वार था आपका। किन्तु आयुर्वेद ने अपने विशाल गर्भ में उन वाक्यों को भी अपने नैतिकता के बल पर पचा लिया। अब के यह प्रस्ताव पास करने का तोहफा डाक्टरों ने अपनी अखिल भारतीय मैडीकल कान्फ्रेंस में आयुर्वेद को दिया है। यह प्रस्ताव उनकी सङ्कीर्णता और स्वयम् की कमजोरी का स्पष्ट परिचायक है। वे अपनी चिकित्सा प्रणाली के कौशल्य से जनता का हृदय जीतने में तो असमर्थ रहे तथा कानून के द्वारा सरकार से जबरन आयुर्वेद की हत्या का षड्यन्त्र मात्र करना उनका उद्देश्य रहा। आयुर्वेद के सिद्धान्तों का पञ्चमहाभूतात्मक प्रकृति और पुरुष की साधर्म्य और वैधर्म्यता के साथ समन्वय है। यदि इनका विनाश सम्भव होगा तो आयुर्वेद का भी हो जायगा वरना आयुर्वेद का विनाश संसार की कोई शक्ति नहीं कर सकती यह हमारी पहली चुनौती है। आयुर्वेद के उच्चतम सिद्धान्तों का परीक्षण डाक्टरों का एक टैस्ट ट्यूब (कांच की नलिका) द्वारा सम्भव नहीं है। उसके लिए चाहिए आध्यात्मिक दार्शनिक ज्ञान के साथ प्रकृति और मानव को समझने की गुरुतर कुञ्जी। मैं उन डाक्टरों से पूछना चाहता हूं कि बिना आयुर्वेदका ज्ञान अर्जित किए ही इसकी आलोचना मिथ्या तथा सत्य को एक असत्य के आवरण द्वारा छुपा देना है। स्वयम् की प्रखरता तथा पूर्णता की डींगमारने की अपेक्षा विपक्षि के विचार ध्येय और सिद्धान्तों में गहन ज्ञान की आवश्यकता है। यह तो उस कहानी का ही एक अंश हो सकता है जिसमें एक बहरा एक लूला और एक अन्धा था और हाथी के परीक्षण का उनका ज्ञान था, उक्ति केवल मात्र वैसी ही एक यह उक्ति हमारे डाक्टर बन्धुओं की है। बेहतर होता यदि प्रस्ताव पास करने के पहले हमारे बन्धु इस विषय का

समीचीनतया अध्ययन कर लेते, बाद में जबान खोलते। मैं डाक्टर बन्धुओं को दावे के साथ कहता हूँ तथा साधन मिलने पर सत्य की कसौटी पर परीक्षण करा सकता हूँ कि आयुर्वेद की एक एक पंक्ति में तथा एक एक शब्द में विज्ञान और रोगशमन का अक्षुण्ण भण्डार निहित है। आयुर्वेद को यदि एलोपैथी के समान आधी भी सुविधा और साधन उपलब्ध होजाते तो हम एलोपैथी की १०० वर्ष की गति वाली दौड़ को १० वर्ष में पीछे छोड़ देते और विश्व को चमत्कृत ही कर देते, परन्तु क्या करें विदेशीयता का काला पर्दा हमारी सरकार के मस्तिष्क पर इतना पड़ चुका है कि वह यह सोचने को तैयार भी नहीं हो सकती कि हमारे देश के पास कुछ निधि है। विज्ञान है। जो अपने अन्तर तल में छुपाए हुए है वह सामने लाकर धर देने की शक्ति और सामर्थ आज भी हमारे में है। प्राच्य इतिहास और हमारे हजारों वर्ष पूर्व की आयुर्वेद की पंक्तियां यह पर्दाफाश भी कर रही हैं कि आपने यह चुराया किससे है, प्रेरणा किससे ली है। स्थूल उदाहरण यहां तो यह ही दूंगा कि जिस शल्य चिकित्सा का आपको गर्व है उन यन्त्र-शस्त्रों की बनावट अच्छाई और निर्माण विधि जो अपने आपका आविष्कार आप बताते हैं आज भी हजारों वर्ष पूर्व निर्मित उन आयुर्वेद की पुस्तकों में लेखबद्ध है।

चरक जो आयुर्वेद का एक मौलिक ग्रंथ है उसको आपके देन देने वाले वैज्ञानिकों द्वारा भारत से लेजाने की गवाही आज भी पुरातन इतिहास देता है। फाइयान जैसे अन्य विदेशी यात्रियों द्वारा यहां से पुस्तकों के रूप में सामग्री लेगए वह आज भी आपके विज्ञान की सही स्थिति तथा मूल ज्ञान का पर्दाफाश कर देते हैं। यदि आयुर्वेद न होता तो एलोपैथी कहां होती यह तो समय ही बताता। भारत के साथ अमेरिका इंग्लैंड व अन्य देशों ने करोड़ों अरबों रुपये पानी की तरह बहाया, यदि इसका चतुर्थांश भी आयुर्वेद के अनुसंधानार्थ खर्च किया जाता तो समय ही यह बात भी बताता, अतः यह स्वयं सिद्ध है, कि आपने साधनों और पैसे के बल पर चुराकर नए कलेवर के साथ आयुर्वेद के ही एक अङ्ग को स्पष्ट किया है। वह एक उसी प्रकार का रूप है जिस प्रकार का कि अन्य लेखक की रचना चुराकर तोड़-मरोड़ कर नये कलेवर में अन्य लेखक द्वारा अपने नाम से छपना देता।

अस्तु और जिस प्रकार की गंभीर अर्थाभाव की समस्या आयुर्वेद के सामने आई यदि यह एलोपैथी के साथ होती तो न आज आपका पता चलता न आपकी ऐलोपैथिक चिकित्सा प्रणाली का ही। अतः मेरे सद्परामर्श को मान कर पहले आप आयुर्वेद का अध्ययन करें। पहले ही जिस प्रकार एक मेंढक कूप में टर्र टर्र करके कल्पना करता है कि मैं कितने गहरे पानी में हूं जब कूप से तालाब में, तालाब से झील, और फिर समुद्र में जाता है तब वास्तविक वस्तु-स्थिति का पता पड़ता है मेंढक को। अतः योंही कल्पनाओं के मैदान में आप अपनी स्वार्थ साधना में सफल नहीं हो सकते।

आयुर्वेद चिकित्सा चिरस्थायी लाभ के साथ साथ मानव को दीर्घजीवी तो बनाती ही है साथ ही उसमें कायाकल्प जैसे उपकरणों का अगाध भण्डार भी है। यहां एक छोटा सा उदाहरण देना ही काफी होगा कि आयुर्वेद का जब व्यापक प्रचार और प्रसार था उस समय भारतीय मानव की औसत आयु १०० वर्ष थी, जब कि आज २७ वर्ष है। एलोपैथी ने देश को गरीबी, अपव्यय, कम उमर और कृत्रिमता के वातावरण में जकड़ कर अप्रत्यक्ष से मौत ही तो दी है।

अब यदि आप सच्चे मन से अपने हृदय पर हाथ रखकर अपनी चिकित्सा प्रणाली में अस्थायित्व पर गंभीरता से विचार न करें तो आपकी निर्बलता है। मैं एक उदाहरण देता हूं जिसके ऊपर आपको नाज और गर्व है वह है पैनेसलीन। इस पर स्वयम् के अनुभव के आधार पर शतप्रति सत्य घटना पर प्रकाश डालता हूं जो ऐसा हो नहीं सकता कि आपके समक्ष यह समस्या न आई हो। हरेक बीमारी में जिस पैनेसलीन को आप देते हैं विशेषतः न्युमोनिया, सुजाक, गर्मी, रक्तविकार की अचूक दवा की घोषणा आप अपने पैनसलीन के प्रचार के समय करते हैं परीक्षण के रूप में मैंने २५ रोगियों को जिनमें १० रक्तविकार के ८ सुजाक के ५ गर्मी (उपदंश) के रोगियों को पैनेसलीन इंजेक्शन और टिकिया तथा पाउडर तीनों चीजें काम में लीं। उनमें २० रोगी ऐसे हैं जिनमें प्रतिवर्ष या किसी किसी के तो ६ माह से ही वह बीमारी कई बार हुई, अब तो वह ही दवा देते देते स्थिति यहां तक आ पहुंची है कि वह पैनसलीन उनमें कोई फायदा ही नहीं करता।

उक्त रोगियों को पूरे कोर्स के रूप में पेनेसिलीन दिया गया था। बल्कि उस पेनेसलीन ने अनेक भयङ्कर व्याधियां अपने देन के रूप में और दी हैं। यह एक कटु सत्य है यह ही हाल आपके क्षयनिरोधक टीके (बी० सी० जी०) का है जिस पर हमारा स्वास्थ्य मन्त्रालय अन्धा होकर लाखों करोड़ों रुपये बर्बाद कर रहा है। न जाने इस टीके ने कितने मानवों को नपुंसक बनाया है, कितनी स्त्रियों को वन्ध्या तथा अनेक अन्य बीमारियां दी हैं और टीके ने कितना फायदा किया यदि यह सत्य गणना दी जायगी या दी गई होगी तो स्पष्ट होगा। इस बी० सी० जी० के सम्बन्ध में देश के प्रसिद्ध वैज्ञानिक दार्शनिक और तत्वचिन्तक राजगोपालाचार्य जो बी० सी० जी० के सम्बन्ध में निर्भीक राय प्रकट की है। राजाजी जैसे ईमानदार और सच्चे आदमी के विचारों को शायद ही कोई सत्यप्रिय मानव असत्य कहने का साहस कर सके, उनका लेख प्रत्येक मानव को पढ़ना चाहिए। उन्होंने इस टीके की सारी पोल खोलकर असत्य के आवरण को सत्य के प्रकाश से आलोकित कर दिया है।

यह ही हाल सल्फा श्रेणी की तमाम औषधियों का है। इन सल्फा श्रेणी की औषधियों ने तो मानव-जीवन के साथ खिलवाड़ ही किया है। एलोपैथिक के समस्त उपकरणों की आलोचना करना मेरा ध्येय नहीं है। मैं यह भी कहे बिना नही रहूंगा कि एलोपैथिक का जो आज विकसित रूप है उसमें खूबियां भी हैं। उनको हमें सीखना होगा। हम पूर्णता का दावा डाक्टर बन्धुओ! आपकी तरह नहीं करते हैं; कमी प्रत्येक में है, अपूर्ण ही पूर्णता को प्राप्त करता है तो भी अपूर्णता तो विद्यमान रहती है. पूर्णत्व की प्राप्ति मानव के लिए अनन्त काल से एक गम्भीर समस्या है तो भी वह अपने आपको अपूर्ण मानता है। आज वैज्ञानिक इतनी पूर्णता पर अपूर्णता का आभार होता ही है वह होता ही रहेगा। हम आपकी तरह पूर्णता की ठेकेदारी नहीं करते क्योंकि अपूर्ण अपने आपको पूर्ण कहने का दुस्साहस करता है। इतिहास इसका साक्षी है। पूर्ण अपूर्णता को पचा लेगा किन्तु कहेगा नहीं। खामियां आपमें ही हैं यह भी मैं नहीं कहूंगा। कमी हमारे में भी हो सकती है। हम यह भी महसूस करते हैं कि हमें आयुर्वेद को समयानुकूल बनाना होगा। हम यह भी मानते हैं कि प्रकृति और मानव की अवस्थाओं, रहन-सहन, आचार-विचार के साथ जिस आयुर्वेद का घनिष्ट सम्बन्ध है इस युग में प्रकृति की अवस्थाओं (परमाणु युग) के कारण तथा कृत्रिम आहार विहार, आचार विचार, रहन-सहन के कारण तथा पृथ्वी से परमाणु शक्ति का तथा उर्वरा शक्ति का जो ह्रास हुआ है उसी के स्तर के अनुसार वर्तमान चिकित्सा के उपकरणों और रोग प्रशमन उपायों का सामञ्जस्य बिठाना होगा। पुरातन बलिष्ट और शतम् जीवी मानव के उपचार में और वर्तमान अल्पजीवी और कृत्रिम उपायों के अवलम्बन करने वाले मानव के लिए औषधि शक्ति की तीव्रता में गति लानी होगी। यह गति हम अभी साधनों के अभाव से, केन्द्रीय स्वस्थ मन्त्रालय की अनुदारता से, स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् भी अपनी सरकार होते हुए अपने आयुर्वेद में नहीं ला सके यह हम जरूर मानेंगे। किन्तु इसमें आयुर्वेद का दोष नहीं है, दोष हमारा उसके समर्थकों का है। आयुर्वेद पूर्ण है अपूर्ण हम हैं। आप किसी दवा का अन्वेषण (रिसर्च) करते हैं। बार-बार अड़चनें आने पर सफल नहीं होते या आप रिसर्च करते ही नहीं तो इसका दोष आपका है न कि एलोपैथी का। दवाओं में जो अपनी अस्थायित्व के परमाणु हैं यह मैं भी मानता हूँ कि यह आपके अनुसन्धान की कमजोरी है। यदि यह प्रहार आप हमारे पर करते और उस अन्वेषण में हमारा सहयोग करते हमको देते और हम से लेते तो अपने विशाल दृष्टिकोण का ही परिचय नहीं देते बल्कि चिकित्सा जगत् को एक क्रान्तिकारी नया फार्मूला भी देने में सफल होते। आयुर्वेद की खूबियों को समझने वाले और उसकी प्रशंसा करने वाले आज भी अनेक समर्थकों की सम्मितियां ही नहीं बल्कि शोध और खोज कार्य के भी अनेकों उदाहरण हैं। आयुर्वेद जगत् उनका आभारी है। डा० घाणेकर, डा० उपेन्द्रनाथदास डा० शिवशर्मा तथा अनेक विद्वानों ने आयुर्वेद का मनन तथा चोटी के नेताओं ने तथा भारतीय सम्माननीय राष्ट्रपति उपराष्ट्रपति, डा० सम्पूर्णानन्द, श्रीप्रकाश जैसे विद्वानों ने आयुर्वेद की खूबियों का वर्णन किया है। अतः इतना समर्थन प्राप्त होने में सत्यता जरूर है यह आपको सोचकर ही

आयुर्वेद पढ़ना चाहिए, साथ ही मैं अपने वैद्य-बन्धुओं से भी निवेदन करूंगा कि वे इस महान वैज्ञानिक विषय को जिसकी समस्त शक्ति पुस्तकों में छुपी पड़ी है प्रयत्नतः लाकर चिकित्सा जगत में एक आमूलचूल क्रान्ति लाने में तन मन धन तीनों का होम करदें तथा अपने मस्तिष्क व सारी बुद्धी अन्वेषण और अनुसंधान में लगादें। आज जो आयुर्वेद ७० प्रति. मानवों की चिकित्सा प्रणाली है उसीके अनुसार भारतीय पंचवर्षीय योजना की तरह आयुर्वेदोद्धारक योजना बना कर योजनाबद्ध व्यापक रिसर्च में जुट जाना है। तथा आगामी १० वर्षीय योजना बनाकर हमें नया क्रांतिकारी आश्चर्यजनक विश्व में तहलका मचा देने वाले आविष्कार करके शतप्रतिशत मानवों के हृदयों को अपनी सत्यता की आधार शिला पर जीतना होगा। अकर्मण्यता, लापरवाही का परित्याग करना होगा। अपने बूढ़े बाबा आयुर्वेद का कायाकल्प करके दीर्घजीवी बनाना होगा। यह आघात प्रत्याघात संक्रमण काल की घड़ियों से गुजर रहे हैं पर हम इसी प्रकार सुस्त रहे तो हमारा पतन अवश्यम्भावी है। इस विज्ञान की दौड़ में अनुसंधान के मोजे पहन कर दौड़ने में ही हमारा व भारतीय जनता का कल्याण है। साथ ही सरकार के कर्णधारों तथा श्रीमती अमृतकौर जी को पक्षपात न करके आयुर्वेद को प्रोत्साहित और उन्नत बनाने की अपील करूंगा। सरकार का भी पूर्ण कर्तव्य है क्योंकि जिस सरकार को अपनी राष्ट्रीय निधि के प्रति गौरव नहीं वह सही माने में इस राष्ट्र की सरकार नहीं हो सकती। हमें यह विश्वास है कि केन्द्रीय सरकार देश के सच्चे नुमायन्दों कर्णधारों के हाथ में है। किंतु आयुर्वेद के साथ सौतेला व्यवहार उनकी नीति में संदेह पैदा करता है। जिस देश का इतिहास, भाषा, संस्कृति और साथ में जीवन विज्ञान उपकरण (चिकित्सा) उन्नत नहीं वह देश कभी उन्नति नहीं कर सकता। स्वाभिमान का संदेश और प्रेरणा जाग्रत हो ही नहीं सकती। वैसे औद्योगिक दृष्टि से भी देशवासियों को रोजगार मिलेगा, बेकारी का वास्तविक समाधान होगा। पूज्य बापू की स्वदेशीनीति का पालन होगा तथा साथ में ही जो करोड़ों अरबों रुपये देश के मानवों से खून की एक-एक बूंद की तरह इकट्ठा कर इतने बड़े परिमाण में विदेशों को लुटा दिया जाता है वह देश में रहेगा। चूंकि एक मात्र पैनेसलीन ही हिन्दुस्तान में बनता है अन्य दवाओं आदि समस्त उपकरणों का रुपया विदेशों को आज भी देना पड़ रहा है। साथ में ही आयुर्वेद प्रकृति के उपकरणों द्वारा देश में ही उत्पन्न सामग्रियों द्वारा दीर्घजीवी कम खर्चीली अधिक फायदा करने वाली दवा देगी। यह एक बहुत बड़ा उद्योग औद्योगिक दृष्टि से भी पनप सकता है। क्यूंकि आयुर्वेद के मतानुसार देश की समस्त वनस्पतियां धातु उपधातु बल्कि पत्थर लकड़ी ईंट कोयला मिट्टी तथा समस्त पञ्चभूतों द्वारा निर्मित वस्तुयें दवा हैं। उपरोक्त समस्त चीजें देखने में चाहें साधारण हों परन्तु उनमें रोगोपशमन की अदम्य शक्ति छुपी पड़ी है। साथ में ही उसमें अनुसंधान की बहुत ज्यादा सामग्री है। उनके विकसित उपकरण समक्ष लादेने मात्र से चिकित्सा जगत में एक क्रांतिकारी तहलका मच सकता है। अतः ऐलोपैथिक की तरह आयुर्वेदिक औषधि निर्माण का कण्ट्रोल करके आयुर्वेद को उन्नत बनाने में क्या अब भी सरकार सहयोग देगी यह आशा करनी चाहिए। ♦ ♦

सर्पविष की सफल औषधि

लेखक—वैद्य नर्मद व्यास, जामजोधपुर (सौराष्ट्र)

उपरोक्त शीर्षक के अन्तर्गत मैंने अपनी एक शंका 'धन्वन्तरि' के अक्टूबर १९५५ के अङ्क में पाठकों के समक्ष प्रस्तुत की थी। उस शङ्का पर अनेक सर्पविष चिकित्सक वैद्यों ने मुझे अपने अपने विचार लिख भेजे। जहां तक हो सका पुनः उनके लिए मैंने अपने विचार प्रत्युत्तर में दिये हैं, फिर भी अनेक पत्र आए हैं जिनका उत्तर देना मेरे लिये कठिन सा है। अतः अपने विचार मैं पुनः धन्वन्तरि के द्वारा उन बन्धुओं को दे रहा हूं जिनको मैं सीधा उत्तर नहीं दे सकता। मेरे इस विचार के उत्तर में कि आयुर्वेद में सर्पविष की सफल औषधि है या नहीं जिसमें यन्त्र तन्त्र औषधि भी आ जाती हैं मुझे सभी चिकित्सकों ने लिखा है या उनके पत्रों से ध्वनि प्रकट होती है कि 'हमारे पास सर्पविष निवारण की दिव्य औषधि है, हाफकिन्स इन्स्टीट्यूट का पता भेजिए, नतीजा चाहे जो भी हो 'सफलता या निष्फलता' एक बात स्पष्ट है कि आयुर्वेद के उपासक अपनी खूबी और कमी के प्रति पूर्णतः जागृत अवश्य हैं।

देश के अन्य प्रान्तों की तरह सौराष्ट्र में भी सर्प का विष मन्त्र और औषधि से दूर करने वाले अनेक लोग हैं। राजस्थान के वलीशाह की तरह हमारे गांव में भी 'सीदी रमजान' भी सर्पों को पकड़ते हैं उनके साथ खेलते हैं अपनी जेब में डाल लेते हैं पास खड़े हुए मनुष्य के गले में उसकी माला डाल देते हैं फिर भी सर्प हानिकर नहीं हुआ है। काटने की क्रिया ही भूल गया हो इस प्रकार कुछ भी नहीं करता है। भारत का ऐसा एक भी प्रान्त नहीं है जहां सर्प और विष के साथ किसी न किसी व्यक्ति का जीवन संबन्धित न हो।

सौराष्ट्र में एक व्यक्ति ऐसा है कि जो देश-विदेश में किसी भी सर्प से काटा हुआ व्यक्ति हो उसका सन्देश मिलते ही, वह प्रत्युत्तर भेज देता है और सर्प का विष नष्ट हो जाता है। सौराष्ट्र के 'शाम जी भाई की सलाम' से सौराष्ट्र, गुजरात, खानदेश, वरार, बम्बई जिला और दूसरे प्रान्त भी परिचित हैं। इतना होते हुए भी हाफकिन्स इन्स्टीट्यूट ने दस हजार रुपये का इनाम सर्पविष को मन्त्र तन्त्रादि और औषधियों से दूर करने वाले को देना निर्णय किया है।

शायद विज्ञ पाठक ऐसा मान लेंगे कि ऐसी घोषणा करने वाला यदि पागल नहीं तो नशाबाज तो अवश्य होना चाहिये। या तो हाफकिन्स इन्स्टीट्यूट इस संसार में होगी ही नहीं। यह तो कथा मात्र जैसी बात है। 'धन्वन्तरि' के कई पाठक 'सर्प का विष मन्त्र तन्त्र से दूर होता है, ऐसा होते हमने देखा है' यों कहते हैं और इसे सत्य सिद्ध करने के लिये वे शपथ खाते हैं और जनेऊ हाथ में लेते हैं, फिर भी मैं उनकी बात को मानने के लिये तैयार नहीं हूँ। क्योंकि कितनी ही घटनाओं में सर्प ने केवल स्पर्श ही किया होता है, काटता नहीं है। फिर भी रोगी के मन में सर्प काटने की शङ्का से उसे सर्प के विष के चिन्ह मालूम होते हैं। मन्त्रविद् लोग उस विष को दूर करते हैं। इस किस्से में रोगी का मानसिक आश्वासन ही काम कर लेता है। उसे श्रद्धा का दृढ़ अवलम्बन ही आवश्यक होता है और वह अवलम्बन मन्त्रविद् लोगों के सिवा दूसरे लोग नहीं दे सकते, यह स्वाभाविक बात है, इस प्रकार के विष को महर्षि चरकने 'शंका विष' कहा है।

सच ही है 'सर्प के विष पर मन्त्र सिद्ध कौन कर सकता है ?' इसलिये ही मुनिवर्य सुश्रुत कहते हैं "देव और महर्षियों से कहे हुए मन्त्र भयंकर विष को भी नष्ट करते हैं। जहां औषधि का भी प्रभाव नहीं होता, वहां मन्त्र कार्य करते हैं मगर जो मनुस्य की मांस मदिरा का सेवन नहीं करता, जो पवित्र है आहार विजयी है, दर्भ के आसन पर सोने वाला है वही मनुष्य मन्त्र सिद्ध कर सकता है।"

इस काल में सुश्रुत वर्णनानुकूल मनुष्य मिलना कठिन है। इसलिए सर्प के विष पर मन्त्र की विजय है ही नहीं, यही मान लेने में कल्याण है।

भारत में ३३० प्रकार के सर्प होते हैं। इनमें से जमीन पर उड़ने वाले सर्पों में से सिर्फ ४० प्रकार के सर्प ही जहरीले होते हैं।

सर्प को पकड़ कर खेल करने वाले, सर्प के आभूषण धारण करने वाले आदि लोग जो सर्प को पकड़ते हैं उन सर्पों में से 'अजगर, धामण, बिल्ली सर्प, कोड़िया, वृक्ष सर्प आदि महा भयंकर गुस्से वाला तदन्य निर्विष सर्प हैं। उनके काटने से कुछ भी हानि नहीं होती। इस समय दवाएँ, मन्त्र तन्त्र नरमूत्र और नल का पनी सबका एक सा समान प्रभाव होता है।

जिस तरह अनाज का व्यपारी, पाकशास्त्र में निपुण होगा या नहीं यह नहीं कहा जा सकता, उसी तरह सर्प को पकड़ने वाला उसके विष को भी नष्ट करने में समर्थ होगा-यह भी कहा नहीं जा सकता है। यह मानने में ही कितने ही लोगों को जान से हाथ धोना पड़ता है। जिन सर्पों को वे पकड़ते हैं वह तो निर्विष सर्प होते हैं, इसलिए विषधारी सर्पों का विष वे नष्ट नहीं कर सकते। विषधारी सर्पों को पकड़ने में असाधारण चालाकी, दृढ़ हिम्मत, अपार स्फूर्ति आवश्यक होती है। यदि किंचित भी भूल होजाय तो उसकी चालाकी और बहादुरी हवा हो जाती है और उसे जान के लाले पड़ जाते हैं।

जहरीले सर्पदंश की परीक्षा—

१. नीम, मिरच, या निमक खाने से उसका स्वाद विरुद्ध मालूम होता है।

२. काली मिट्टी यदि स्वाद में कटु मालूम हो।

३. नागरवेल के पत्ते को दंश स्थान पर रखने से खूंच कष्ट हो।

हाफकिंस इन्स्टीव्यूट में जो ३२५ वनस्पतियों का प्रयोग किया गया है, वह प्रयोग यदि धन्वन्तरि, के संपादक जी की आज्ञा मिलेगी तो अवश्य भेज दूंगा, तंत्र-मंत्र, शास्त्रोक्त औषधादि, घर के प्रयोग, उसके अलावा प्रसिद्ध हुआ है ऐसा नरमूत्र का प्रयोग, ग्यास तैल, मोरमुरब्बी, छछून्दर आदि के कितने ही प्रयोग हो चुके हैं - सब निष्फल हुए हैं। फिर भी प्रकृति में एसी कोई दवाई नहीं होगी ऐसा मानने का कुछ कारण नहीं है। ईश्वर की सृष्टि सम्पूर्ण है। सिद्ध प्रयोगवीरों को 'काटा हुआ सर्प विषधर है या नहीं' यह निर्णय करने के बाद ही अपना प्रयोग करना चाहिए। सर्प विषधर नहीं होगा तो तुम्हारा केवल नाम भी सिद्ध होकर सर्प के रोगी को चंगा कर देगा मगर आपका अपने मन में सिद्ध माना हुआ प्रयोग किसी समय विश्वास पर रहने वाले की जान ले लेगा और रोगी अन्य इलाज से भी दूर रहेगा।

सच्ची परीक्षा किया हुआ और उसमें से उत्तीर्ण होकर निकला हुआ आपका प्रयोग आप हाफकिंस इन्स्टीव्यूट बम्बई में सिद्ध कर सकोगे। वहां किसी एक विषधर सर्प का विष किसी प्राणी के रक्त में डाल देंगे और आप अपने प्रयोग में सिद्ध हों तो १० हजार रूपये, अपनी प्रसिद्धि, अपना गौरव और जनता का आशीर्वाद दौड़कर आपके पैरों में लुड़कने का गौरव प्राप्त कीजियेगा।

कष्टार्त्तव पर—

स्त्रियां मासिक स्राव के समय शास्त्रोक्त नियमों का पालन नहीं करतीं, ठंडे जल में स्नान और दूषित आहार विहार के कारण उनका मासिक-स्राव बड़ी कठिनता से अल्प परिमाण में होता है। उस समय स्त्रियों के गर्भाशय में इतनी तीव्र पीड़ा होती है कि दांती भिच जाती है। कुछ दिनों बाद गर्भाशय में एक ग्रन्थि भी पैदा हो जाती है जिससे उनके अनियमित समय में भी पीड़ा होने लगती है। गर्भाशय की नसें अकड़ जाती हैं। ऐसी स्त्री संतान जनने में असमर्थ हो जाती है। साधारण प्रयोग काम नहीं देते। अधिकांश स्त्रियां भूतबाधा समझ कर गंडे तावीज और ओझों के चक्कर में पड़ कर निरर्थक धन और समय वर्बाद करती हैं। ऐसी स्त्रियों के उपकारार्थ में एक अत्यन्त गुप्त प्रयोग-रत्न प्रकाशित कर रहा हूँ।

नाखूना	बाबूना
गुलेखतमी	खतमी
मकोय खुश्क	गुलबनफ्सा
अरसी	गुलरोगन का तेल

—प्रत्येक ३-३ माशा।

अमलतास का गूदा	१ तोला
मुर्गी के अंडे की जर्दी पानी निकालकर	१ नग

—तैल से पूर्व की सभी औषधियां मकोय के रस में बारीक पीसकर बाद में तैल गुलरोगन और जर्दी मिला कर आग पर थोड़ा पकाकर सुहाता-सुहाता स्त्री की नाभि से लेकर पेड़ू तक लेप करें।

मात्रा—यह एक दिन के लिये दोनों समय की मात्रा है। ऐसे ११ दिन लेप करना चाहिए। इसी के साथ निम्नांकित क्वाथ भी पिलाना चाहिए।

तुलसी की पत्ती	११ नग
मुनक्का	७ नग

सौंफ दुधवच ऊदसलीव

अजवाइन खुरासानी —प्रत्येक ३-३ माशे

—यह १ मात्रा है। क्वाथ विधि से क्वाथ करके १॥ माशे से ३ माशे तक शीरखिस्त छोड़कर दोनों समय पिलावें।

एक रोगिणी का उदाहरण —

हमारे यहां एक स्त्री जिसकी आयु ३७ वर्ष है। प्रारम्भ से ही उदावर्त्ता योनि रोग था। साथ में प्रदर भी था। गत वर्ष भाद्रपद माह में मलेरिया ज्वर प्रारम्भ में आया। पाचक, शामक और संशोधन औषधियों के देने पर भी २० या २१ लंघनों में ज्वर शान्त हुआ। किन्तु ज्वर शान्त होते ही पसलियों में पीड़ा प्रारम्भ हुई। दो तीन दिन बाद ऊर्ध्वगामी अम्लपित्त के लक्षण दृष्टिगोचर हुए। कई दिनों बाद पेट में तीव्र पीड़ा के साथ गर्भाशय से एक गांठ ऊपर को उठने लगी और दौरा आना प्रारम्भ हुआ। वैद्यों का जमघट शुरु हुआ। योषापस्मार निश्चय किया गया। औषधियों की भरमार होती रही। नामी-ग्रामी वैद्य और औषधियां निष्क्रिय होती गई दौरे बढ़ते ही गए। मकर की संक्रान्ति के कुछ दिन पूर्व उदर पीड़ा बहुत भयंकर होगई, मल पूर्णरूप से और मूत्र दो तिहाई भाग में रुक गया। प्रतिदिन रुग्णा की हालत गंभीर तर तम होती गई।

ग्णा का अन्त्येष्टि संस्कार (वैतरणी गोदान) रा दिया गया। रात्रि होने के कारण शव उसी थान में पड़ा रहा। ठीक चार घण्टे बाद रुग्णा में प्राणवायु का संचार हुआ। चैतन्य होनेपर उसे एनीमा दस्त के लिए दिया गया। प्रथम बार एक दस्त भी नहीं हुआ। दूसरी बार मांस का लोथड़ा जैसा मल निकला बाद में आम निकलने लगी। चार दिन एनीमा लगाया गया। उसके बाद अपने मित्र वैद्य पं० सत्यानारायण जी पाठक द्वारा प्रदत्त उपर्युक्त दोनों प्रयोग लेप और क्वाथ सेवन कराया। इन्हीं प्रयोगों से सफलता मिली तथा ६ मास की रुग्णा को जीवनदान मिला। मेरे मित्र वैद्य ने इस रोग को योषापस्मार न मान कर उदावर्ता योनिरोग का विकृत रूप माना है। मुझे तो यह अनुभव हुआ है कि ये उभय प्रयोग योषापस्मार को भी समूल उन्मूलन करने वाले हैं।

गठिया आदि वातव्याधि नाशक तैल—

कलिहारी की जड़	१० तोला
लहसुन	५ तोला
मदारपत्र स्वरस	१ सेर
मदार दुग्ध	५ तोला
सेंहुंडपत्र स्वरस	५ तोला
हल्दी	२॥ तोले
सेमर का वोकला	५ तोला
धतूरे के बीज	१० तोला
अफीम	१॥ माषा
तैल गोही का	२ सेर

—स्वरस और दुग्ध के अतिरिक्त सभी औषधियों की लुगदी बनाकर तैल और लुगदी एक साथ चढ़ाकर स्वरस और दुग्ध थोड़ा-थोड़ा छोड़ते और पचाते हुए तैल पाक करें। इस तैल से भयङ्कर से भयङ्कर गठिया या जकड़ाहट आदि वातव्याधियां नष्ट हो जाती हैं, पर अधिक दिनों तक प्रयोग करना चाहिए। नारायण तैल से भी अच्छा तैल है। लगाने के बाद धूप में बैठना या सेंकना चाहिए। समय केवल प्रातः और मध्याह्न में ही।

—वैद्य सत्यनारायण शास्त्री
गोपालपुर पो० धाता (फतहपुर)

कान बहने पर प्रयोग

फिटकिरी का फूला बारीक पीसकर २-४ रत्ती लेकर रोगी के कान में डालना चाहिए। दवा इस प्रकार डाली जाय कि रोगी के कान में भीतर पहुँच जाय। उसके लिए एक सुनार की फुंकनी काम में लाई जा सकती है या कोई अन्य पोंगी हो जिससे फूंक के द्वारा दवा सहज ही में चली जायगी। पींव का आना बन्द हो जायगा, चाहे कितना ही पुराना रोग क्यों न हो।

—स्वामी कृष्णनन्द जी चक्रवर्ती, लखनऊ।

सुजाक उपदंश घाव पर घृत

गोरखमुण्डी (पंचांग) का रस	१ पाव
घी	१ पाव
सिन्दूर	१ तोला
गंधक	१ तोला
कपूर	आधा तोला
कत्था	१ तोला
नीलाथोथा	१ माषा

विधि—पहिले घी को गरम करें उसमें गंधक सिन्दूर डालकर पिघलने दें, फिर रस छोड़कर मंदाग्नि से पाक करें। जब पाक तैयार होने लगे तब पिसा हुआ कत्था व नीलाथोथा डाल दें। जब घी मात्र शेष रह जावे तब उतार कर कपूर हल कर दें। गरम ही छान कर चौड़े मुंह की शीशी में रखे।

गुण—घाव को धोकर यह घी लगाया करें, इसके नीचे के भाग को खरल कर घी में मिला कर खाज खुजली में लगावें। शर्तिया लाभ होगा।

खाने की औषधि—फिटकिरी लाल की लावा ४ रत्ती और बबूल गोंद भुना हुआ १ माशा

प्रातः सायं देवे। पीने के लिए गरम गरम ताजा चावल का मांड दें। यह अति अनुभवीय प्रयोग है।

अर्श रोग पर

नागफनी की पत्ती को भूभल (आग) में भून डालें उसका गूदा १ तोला से २ तोला तक सुबह शाम खाकर ऊपर से गेंदे की पत्ती का रस २ तोला तक पीवें। यदि मस्से निकल कर पीड़ा करते हों तो घी में गेंदे की पत्ती को भूनकर टिकिया बना गुनगुना गुनगुना ही पट्टे से बांध देवें, तत्काल आराम मालूम होगा।

रक्तप्रदर या किसी प्रकार भी रक्त गिरना

जङ्गली करोंदा की जड़ सरफोंका की जड़
लजवंती पंचांग का चूर्ण —तीनों १-१ माशे

—दिन में ३ बार गाय के दूध के साथ देने से तीन दिन में ही निश्चय रक्त बन्द हो जाता है।

पथ्य—दूध, चावल आदि हलका भोजन। गरम वस्तुओं से परहेज रखें।

प्रमेह व प्रदर पर

तीनपतिया बूटी बबूल की कोंपल

—ये दोनों एक-एक तोला लेकर ठंडाई की तरह काली मिर्च और मिश्री मिलाकर पीने से शर्तिया लाभ होता है।

परिचय—तीनपतिया बूटी मैदान तथा खेतों के मेड़ों पर भूमि से लगा हुआ बहुत छोटा सा क्षुप होता है। इसकी पत्ती गोल-गोल छोटी दुद्दी की तरह होती हैं। डंठल पर तीन-तीन पत्तियां होती हैं उनका रङ्ग कुछ गुलाबी होता है। पशु इसे लपककर बड़े चाव से खाते हैं। यह बारहों मास मिलती है, पर बरसात और हेमंत में विशेष मिलती है। फूल छोटा गुलाबी रङ्ग का होता है।

आई हुई आंख पर

जब आंख में अधिक ललाई होकर अधिक पा[illegible] करती हो, नेत्र खुलने में बहुत पीड़ा करें प्रकाश [illegible] देख सकें और रोगी पीड़ा के कारण बेचैन हो तो [illegible] की कोंपल की लुगदी बनाकर उसमें थोड़ी सी [illegible] फिटकिरी का चूर्ण और शंखभस्म मिलाकर रात्रि [illegible] आंखों पर पट्टी बांधकर सो जावें। अति शीघ्र पीड़ा सहित दुखती आंख स्वस्थ हो जाती है।

—श्री. मदनसिंह जी शिक्षक वै० भू०
पासागढ़ (बिलासपुर)

नेत्ररोग पर लोशन

घृतकुमारी का गूदा	२ छटांक
सफेद फिटकरी	१ तोला
शुद्ध अफीम	३ माषा

—फिटकिरी को पीसलें फिर तीनों को किसी कलई किये हुए पात्र में डालकर अग्नि पर पकावें जब ये तीनों मिलकर एक जान हो जावें तब नीचे उतार कर ठंडा करके फिल्टर में छान लें। शीशी में डाल समान भाग गुलाबजल मिला देवें और खूब हिलाएं। धूप गर्द से बचाकर रखें।

उपयोग—त्रिफला क्वाथ से नेत्रों को धोकर दिन में २-३ बार ड्रॉपर से दो-दो बूंद डालने से नेत्र पीड़ा, लाली, सूजन और खुजली आदि शान्त हो जाती हैं।

व्रणारि मरहम

मुर्दासंग	राल	तूतिया
कथा	सिंदूर	चारों १-१ तोला
सरसों का तेल		१ छटांक

विधि—तेल को अग्नि पर चढ़ावें। गर्म होने पर थोड़ा-थोड़ा सिंदूर उसमें डालते जायें। जब तेल का रङ्ग काला हो जावे तब दूसरी चारों वस्तुओं को तेल में डालकर तुरन्त नीचे उतार लें। शीतल होने पर डिबिया में रखलें। आवश्यकता पर इसमें से कुछ लेकर लोहे की टाकी

पर लगाकर गरम करके व्रण पर चिपका दें। नीम के क्वाथ के साथ व्रण को प्रथम साफ कर लें। सब प्रकार के व्रणों पर लाभकारी है।

—वैद्य कुलदीपसिंह प्रदेशी
कुलदीप आयुर्वेदिक दवाखाना
मु० पो० महलकलां (पैप्सु)

प्रदरान्तक चूर्ण

पठानी लोध	५ तोला
माजूफल	३ तोला
चूनियां गोंद	५ तोला
मोचरस	३ तोला

—सबको कपड़छान करके ६ माषा मात्रा में दोनों समय गाय के एक पाव दूध के साथ लेने से एक सप्ताह में सफेद प्रदर ठीक होता है।

अपथ्य—तैल, गुड़, खटाई से बचाव करें।

—श्री एम. पद्मराज सिंघवी
पो० सोजत सिटी (मारवाड़)

विविध प्रकार की स्वादिष्ट चटनियां

आजकल अनेक प्रकार की चटनियां भारत में बिक रही हैं। अधिकतर सिर्का, अमचूर, तेजाब एवं इमली की खटाईयों से निर्माण की जाती हैं। यदि इनका अधिक प्रयोग कर लिया जावे तो स्वास्थ्य के लिये हानिकारक सिद्ध होती हैं। लगातार १६ वर्ष के अनुभव से कुछ प्रयोग मैंने प्राप्त किये हैं जो अत्यन्त स्वादिष्ट होते हुए भी स्वास्थ्य के लिए हानिप्रद नहीं हैं। यद्यपि वैद्य बन्धु निर्माण कर इनका विक्रय भी करें तो धन लाभ के साथ ही जनता के रोगों को नष्ट करने में भी हितावह सिद्ध होंगी। हम औषधालय में प्रतिवर्ष निर्माण कर जनता में प्रचार करते हैं। जनता ने इन्हें काफी अपनाया है। कुछ प्रेमी वैद्यों के आग्रह के कारण विना कुछ छिपाए इनके प्रयोगों को जनहितार्थ अर्पित करते हैं।

बिजौरा चटनी

बिजौरा की निकाली हुई केसर	१॥ सेर
बारीक कतरा हुआ अद्रक	१ सेर
शक्कर	२॥ सेर

—ऊपर की तीनों वस्तुओं को कलई किए हुए पात्र में मन्दाग्नि से अवलेह सिद्ध करें सिद्ध होने पर निम्न वस्तुओं का बारीक चूर्ण कर अवलेह में मिश्रण करें।

इलायची पीपलछोटी कालीमिरच
अकरकरा दालचीनी पूर्वादाना
तेजपात —हर एक २-२ तोला
केसर काश्मीरी ६ मापा।

मात्रा—६ मापे से सवा तोला तक भोजन के बाद लें।

उपयोग—खाने में बड़ी ही स्वादिष्ट है। साथ ही जीमिचलना, यकृत, प्लीहा विकार, अजीर्ण, अरुचि आदि पेट के रोगों में हितकर है।

पाचनावलेह

नींबू स्वरस	८ सेर
शक्कर साफ	६ सेर
पिण्ड खजूर गुठली रहित	३ सेर
मुनक्का बीज रहित	१॥ सेर
सैंधव नमक	आधा सेर
पीपल छोटी	एक पाव
अकरकरा	एक पाव
सफेद जीरा	एक पाव
स्याह जीरा	एक पाव

—मुनक्का एवं पिण्डखजूर को नींबू के रस में २४ घण्टे भिगो दें तदपश्चात् नींबू के रस में से मुनक्का एवं पिण्डखजूर निकाल कर साफ सिल पर दोनों को बारीक पीस लें। फिर शक्कर साफ ६ सेर नींबू के रस में मुनक्का पिण्डखजूर पिसी हुई मिलावें। कलई किए हुए पात्र में रख कर मन्दाग्नि में पकावें। सैंधव नमक से स्याह जीरा तक सब औषधियों का बारीक चूर्ण करें, अवलेह सिद्ध होने के बाद चूर्ण मिला दें।

कांच की बरनियों में भर दें।

मात्रा—६ माषा से १॥ तोला तक भोजन के बाद।

उपयोग-मुख का स्वाद, जायका, अन्न पर रुचि नहीं रहना, उल्टी, जी मिचलना, अजीर्ण, उदरवात, कब्ज, शूल आदि उदर सम्बन्धित विकारों को शमन करती है एवं पाचक तथा अत्यन्त स्वादिष्ट है।

टमाटर चटनी

उत्तम पक्के टमाटर लाल	५ सेर
शक्कर साफ	५ सेर
पीपल छोटी	एक छटांक
काली मिरच	एक छटांक
सैंधव नमक असली	आध पाव
अकरकरा	एक छटांक
इलायची	एक छटांक
दालचीनी	एक छटांक
सफेद जीरा	एक छटांक

—पक्के टमाटर को बारीक काट कर शक्कर में मिला कर ५ घण्टे रख दें, जब खूब पतला होजाय तब मन्दाग्नि पर चढ़ा कर अवलेह सिद्ध करें, तत्पश्चात् अन्य औषधियों का बारीक चूर्ण कर सिद्ध होने पर मिश्रण करें। शीतल होने पर कांच की बरनी में भर कर रख दें।

मात्रा—२ तोला से एक छटांक तक भोजन के साथ।

उपयोग—रुचिवर्द्धक, अग्निवर्धक, रक्त साफ करती है, एवं बल देती है।

रुचिकर चटनी

अद्रक, मुन्नका बीज रहित, किसमिश ये तीनों चीज एक-एक सेर नींबू का रस ४॥ सेर में दो दिन तक पड़ी रखें, तीसरे दिन तीनों को सिल पर पीस कर शक्कर ५ सेर में मिला कलई के पात्र में अवलेह सिद्ध करें। अवलेह सिद्ध होने के पश्चात् निम्नलिखित वस्तुओं का बारीक चूर्ण मिश्रण करें।

इलायची अकरकरा सफेदजीरा
स्याहाजीरा दालचीनी —प्रत्येक ३-३ तोला
सैंधव नमक १२ तोला, केसर १ तोला।

मात्रा—एक तोला से ३ तोला तक भोजन के बाद।

उपयोग—पाचक, श्वास एवं खांसी के रोगी को दी जा सकती है। पेट में वायु से गुड़गुड़ाहट होना, अन्न नहीं पचना आदि उपद्रवों को शान्त कर भूख बढ़ाती है। एवं स्वादिष्ट है।

चटनी अनारदाना

उत्तम अनारदाना	१ सेर
शक्कर	३ सेर
अंगूर का रस	सवा सेर
सैंधा नमक	१० तोला
पीपल	५ तोला
सौंठ	५ तोला
काली मिरच	५ तोला
दोनों जीरा	१० तोला
दालचीनी	५ तोला

—पहले अनारदाने का बारीक चूर्ण कर शक्कर मिलावें, बाद में अंगूर का रस मिला कर अवलेह सिद्ध करें। तत्पश्चात् सब वस्तुओं का बारीक चूर्ण सिद्ध होने पर मिश्रण करें शीतल होने पर कांच की बरनियों में रख दें।

मात्रा—½ से १। तोला तक।

गुण—अत्यन्त स्वादिष्ट एवं पाचक है। भूख बढ़ाती है, खाये हुए अन्न का शरीरांश बनाती है। अजीर्ण आदि रोगों को नष्ट करती है।

—श्री वैद्य परशुराम जोशी,
महावीर औषधालय, भीलवाड़ा।

१८ वां उत्तर प्रदेशीय वैद्य सम्मेलन महोत्सव हरिद्वार में सम्पन्न
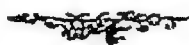
दि० २१, २२, २३ जनवरी, ५६ को १८ वां उत्तर प्रदेशीय वैद्य सम्मेलन का महोत्सव ८ वर्ष के अनन्तर श्री पं० बाबूराम जी मिश्र, आयुर्वेदाचार्य की अध्यक्षता में सफलतापूर्वक हरिद्वार में सम्पन्न हो गया।

दि० २१ को अध्यक्ष महोदय की शोभायात्रा बड़े समारोह से निकली, ऋषिकुल, गुरुकुल, जयभारत संस्कृत पाठशाला के अध्यापक विद्यार्थी और समागत प्रतिनिधि और पंचपुरीवासी विशेष रूप से सम्मिलित हुए।

दि० २२ को प्रातः श्री अमरनाथ जी वैद्यशास्त्री, संयोजक सम्मेलन ने हवन, प्रार्थना, मंगलकामना कार्य करवाया, तदनन्तर श्री पं० सीतावर जी पन्त, आयुर्वेदाचार्य, भू० प्रधान के द्वारा धन्वन्तरि पताका अभिवादन हुआ, तत्पश्चात् श्री पं० रघुवीरशरण जी शर्मा वैद्यराज, बुलन्दशहर ने आयुर्वेद प्रदर्शनी का उद्घाटन किया और संक्षिप्त भाषण हुए।

मध्याह्न को सुसज्जित विशाल मण्डप में वेदपाठ, श्री स्वा० दयानिधि जी आयुर्वेदाचार्य द्वारा संस्कृत स्वागत श्लोक पाठ, कन्या गुरुकुल की छात्राओं ने स्वरसहित संस्कृत स्वागतगीत, गायन किया। श्री पन्नालाल जी भल्ला, नगरपालिकाध्यक्ष, स्वागताध्यक्ष का भाषण श्री पं० शिवशंकर जी वैद्यराज ने पढ़कर सुनाया।

श्री बनारसीदास जी, सभासचिव स्वास्थ्यमन्त्री, उ० प्र० का प्रभावशाली भाषण हुआ, तदनन्तर श्री पं० बाबूराम जी मिश्र, आयुर्वेद बृहस्पति सम्मेलनाध्यक्ष का सारगर्भित सामयिक भाषण हुआ।

दि० २३ को श्री पं० जगन्नाथप्रसाद जी शुक्ल, श्री पं० बदरीविशाल जी त्रिपाठी, श्री पं० दरबारीलाल जी अध्यक्ष भारतीय चिकित्सा परिषद, श्री पं० धर्मदत्त जी एम० एल० ए० के ओजस्वी भाषण हुए और कतिपय अत्यावश्यक उपयोगी प्रस्ताव स्वीकृत हुए, श्री स्वामी गंगेश्वरानन्द जी मंडलेश्वर का प्रभावशाली प्रवचन हुआ।

अन्त में श्री पं० अमरनाथ जी वैद्यशास्त्री, संयोजक कार्यवाहक समिति ने दो वर्ष का संक्षिप्त वृत्तान्त सुनाकर ईश्वर का धन्यवाद किया कि अनेक विघ्नबाधाओं के उपस्थित होते हुए भी आठ वर्षों के पश्चात् सम्मेलन का संगठन होकर आज १८ वां महोत्सव हो सका, संयोजक ने मूलसदस्य नामावलि और संशोधित नियमावलि अध्यक्ष महोदय को समर्पित कर सम्मेलन को सम्हालने तथा संचालित करने का अधिकार सौंपा, शान्तिपाठ के बाद अधिवेशन समाप्त हुआ।

बहुत थोड़े समय, शीतकाल, विघ्नबाधाओं, विरोधियों के होने पर भी आशा से अधिक प्रतिनिधि, प्रतिष्ठित मान्य सज्जन सम्मेलन में पधारे, पंचपुरी वैद्य सभा के सदस्यों मठाधीशों तथा समस्त आयुर्वेद हितैषी सज्जनों के सहयोग से विशाल भाटिया भवन में आनन्दपूर्वक सम्मेलन सम्पन्न हो गया।

१९ वें सम्मेलन के लिए अलीगढ़ का निमन्त्रण स्वीकृत हुआ और प्रथम स्थायी समिति का अधिवेशन कानपुर में होना निश्चित हुआ।

सम्मेलन में स्वीकृत प्रस्ताव

प्रस्ताव नं० १

१८ वें उत्तर प्रदेशीय वैद्य सम्मेलन का यह अधिवेशन २२ अप्रैल, १९५४ को बरेली में सम्पन्न विशेषाधिवेशन द्वारा कार्य संचालनार्थ निर्मित कार्यवाहक समिति की समस्त कार्यवाहियों को पूर्णरूपेण वैधानिक तथा उचित समझता हुआ उसकी सम्पुष्टि करता है तथा कार्यवाहक समिति के संयोजक श्री पं० अमरनाथ जी वैद्यशास्त्री, देहरादून, जिन्होंने कर्मठता और तत्परता के

साथ कार्य संचालन किया है, उनकी तथा समिति के सभी सदस्यों की भूरि भूरि प्रशंसा करता है।

प्रस्ताव सं० २

बरेली अधिवेशन के प्रस्तावानुसार प्रा० वैद्य सम्मेलन की सन् १९५५ में संशोधित नियमावलि को प्रदेशीय वैद्य सम्मेलन का यह अधिवेशन सम्पुष्ट करता है।

प्रस्ताव सं० ३

भारतीय स्वतन्त्रता के इस सर्वाङ्गीण क्रांतियुग में, जब कि भारतीय कला, संस्कृति, विज्ञान अपने विकास से संसार को आश्चर्य चकित कर रहा हो, ऑलइण्डिया मैडिकल एसोसिएशन, जयपुर अधिवेशन में स्वीकृत प्रस्ताव को कि एलोपैथिक चिकित्सा पद्धति के अतिरिक्त आयुर्वेद इत्यादि समस्त चिकित्सा पद्धतियों को सदैव के लिए निर्मूल कर दिया जाये राष्ट्रविरोधी, स्वार्थपूर्ण, संकीर्णभावना का द्योतक एवं सार्वजनिक हित विरोधी समझते हुए, यह उत्तर प्रदेशीय १८ वां वैद्य सम्मेलन उक्त प्रस्ताव पर घोर असन्तोष प्रगट करता है।

प्रस्ताव सं० ४

अठारहवें उ० प्र० वैद्य सम्मेलन का यह अधिवेशन प्रान्तीय सरकार द्वारा द्वितीय पंचवर्षीय योजना में आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति की अवहेलना पर खेद एवं रोष प्रगट करता है, चिकित्सा तथा स्वास्थ्य रक्षा के लिए स्वीकृत २० करोड़ रुपये की धनराशि में से केवल पचास हजार रुपये आयुर्वेद पद्धति के लिए नगण्य समझता है और सरकार से प्रार्थना करता है कि आयुर्वेद विज्ञान की उन्नति के लिए इस योजना में महत्वपूर्ण स्थान दे।

प्रस्ताव सं० ५

इण्डियन मैडिसन एक्ट में जो संशोधन प्रान्तीय सरकार द्वारा किए गये हैं, वह दोषपूर्ण हैं, आयुर्वेद पुनः संगठन समिति की शिफारिसों को पूर्ण रूप से कार्यान्वित न करने, इण्डियन मैडिसन बोर्ड में प्रान्तीय वैद्य सम्मेलन का प्रतिनिधित्व समाप्त करने, सभापति निर्वाचन का इं० मै० बोर्ड का अधिकार समाप्त करने एवं बोर्ड द्वारा ग्रामों में चिकित्सा करने वाले साधारण चिकित्सकों को दी जाने वाली सहायता बन्द कर देने पर प्रा० वैद्य सम्मेलन का यह अधिवेशन रोष एवं असन्तोष प्रगट करता है और सरकार से अनुरोध करता है कि सचिवालय में इस विभाग के संचालनार्थ किसी आयुर्वेदज्ञ को नियुक्त करे।

प्रस्ताव सं० ६

यह सम्मेलन प्रदेशीय सरकार के जी० ओ० संख्या २९३५ वी० १२०६-४८ दिनांक २७ १०-५० का विरोध करता है क्योंकि यह जी० ओ० इंडियन मेडिसन एक्ट १९३९ की धारा ४१ के सर्वथा विरुद्ध है और वैद्यों तथा हकीमों के अधिकारों में हस्तक्षेप करने के साथ-साथ उनकी मान मर्यादा और प्रतिष्ठा को भी ठेस पहुंचाता है, अतः सरकार से प्रार्थना करता है कि इस आदेश को अविलम्ब वापिस ले ले।

प्रस्ताव सं० ७

द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत यह आवश्यक है कि आयुर्वेदीय सुलभ, जनप्रिय, चिकित्सा पद्धति के द्वारा जनता को पूर्ण लाभ पहुंचाने के निमित्त प्रान्तीय वैद्य सम्मेलन का यह अधिवेशन सरकार से प्रार्थना करता है कि प्रदेश के प्रत्येक जिले में एक पूर्ण विकसित चिकित्सालय खोले और कम से कम पांच आयुर्वेदिक चिकित्सालय तथा आतुरालय एवं क्षयरोग का आतुरालय सेनेटोरियम खोलने की तुरन्त व्यवस्था करे।

प्रस्ताव सं० ८

उत्तर प्रदेशीय वैद्य सम्मेलन का यह अधिवेशन केन्द्रीय सरकार से सानुरोध प्रार्थना करता है कि रेलवे, सेना, पोष्टआफिस आदि विभिन्न विभागों में आयुर्वेदिक चिकित्सकों की नियुक्ति कर विभागीय व्यक्तियों को उनकी इच्छानुसार आयुर्वेदिक सस्ती, सुलभ और जनप्रिय चिकित्सा पद्धति का लाभ उठाने का पूर्ण अवसर प्रदान करे।

प्रस्ताव सं० ९

गत वर्षो से चल रहे गतिरोध के कारण प्रान्तीय वैद्य सम्मेलन का यह संगठन छिन्न भिन्न होगया था,

इसको सुदृढ़ करने एवं संस्था में अनुशासन बनाये रखने के लिए यह आवश्यक है कि जिला वैद्य सभाओं को आदेश दिया जावे कि वह जिले में प्रान्तीय वैद्य सम्मेलन से सम्बन्धित वैद्य सभाओं के अतिरिक्त अन्य सभाओं के सदस्य बन कर या अन्य सभाओं के निर्माण में सहयोग न दें, क्योंकि प्रान्तीय वैद्य सम्मेलन द्वारा प्रमाणित सभा ही वैधानिक मानी जावेगी।

प्रस्ताव सं० १०

उत्तर प्रदेशीय सरकार द्वारा इस प्रदेश में ५७० देशी चिकित्सालय बनाये जाने के लिये वैद्य सम्मेलन का यह अधिवेशन सरकार को धन्यवाद देता है, किन्तु जनता इन चिकित्सालयों का पूर्ण लाभ उठाने में असमर्थ है, क्योंकि इन चिकित्सालयों के साथ रोगी शय्याओं, चिकित्सकों के निवास स्थान तथा औषधालयों के भवन का समुचित प्रबन्ध नहीं है, अतः यह सम्मेलन सरकार से अनुरोध करता है कि द्वितीय पंचवर्षीय योजना में इन चिकित्सालयों में भवन, निवास और अन्तरंग रोगी निवास की सुविधा प्रदान करे।

प्रस्ताव सं० ११

बोर्ड आफ इंडियन मेडिसन के द्वारा गत वर्षों में प्रदेशीय आयुर्वेद विज्ञान की जो सेवा की गई है, यह प्रान्तीय वैद्य सम्मेलन उनकी सराहना करता हुआ सरकार से मांग करता है कि इंडियन मेडीसन बोर्ड का रजिस्ट्रार आयुर्वेद का पूर्ण ज्ञाता हो, क्योंकि अन्य समस्त प्रदेशों के इण्डियन मेडिसन बोर्डो के रजिस्ट्रार आयुर्वेद के पूर्ण विद्वान ही हैं।

प्रस्ताव सं० १२

विशुद्ध जड़ी बूटियों का अभाव आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धति के विकास में एक बड़ी बाधा है, अतः उसको दूर करने के लिये यह सम्मेलन आवश्यक समझता है कि सरकारी समिति द्वारा किसी केन्द्रिय स्थान में एक बड़ा बनस्पति भंडार खोला जाये, उसकी पूर्ण योजना बनाने के लिये निम्न व्यक्तियों की एक उपसमिति बनाई जाये जो विवरण तैयार करके आगामी स्थायी समिति की बैठक में प्रस्तुत करे।

श्री पं० सीताबर जी पन्त, संयोजक

श्री पं० योगेन्द्रपाल जी शास्त्री

श्री सुरेन्द्रनाथ जी पाराशर

प्रस्ताव सं० १३

उत्तर प्रदेश वैद्य सम्मेलन का यह अठारहवां अधिवेशन सरकार से अनुरोध करता है कि राजकीय शिक्षा प्रणाली के अन्तर्गत निर्धारित स्वास्थ्य के पाठ्यक्रम में आयुर्वेद को भी उचित स्थान प्रदान करे, और इस प्रकार उसके स्वस्थवृत्त और सदवृत्त द्वारा देश के युवकों के स्वास्थ्य एवं चरित्र की रक्षा करे, जिसके द्वारा अपनी संस्कृति के अनुरूप तथा वैज्ञानिक शिक्षा हो सकेगी।

प्रस्ताव सं० १४

१८ वें उत्तर प्रदेशीय वैद्य सम्मेलन का यह अधिवेशन भारत सरकार से मांग करता है कि बीमा कम्पनियों तथा बैंकिंग कम्पनियों के मेडीकल आफिसर के स्थान पर आयुर्वेदिक स्नातकों को नियुक्त किया जाये, क्योंकि उनको परीक्षा सम्बन्धी पूर्ण अध्यापन कराया जाता है और उनके सिलेबस में भी है।

प्रस्ताव सं० १५

१८ वें उत्तर प्रदेश वैद्य सम्मेलन का यह अधिवेशन प्रदेशीय सरकार से अनुरोध करता है कि प्रदेश में संचालित जन स्वास्थ्य बीमा योजना में वैद्यों को उचित स्थान दिया जाय क्योंकि प्रांत की अधिकतम जनता की रुचि तथा विश्वास आयुर्वेद पर ही है।

प्रस्ताव सं० १६

उत्तर प्रदेशीय आयुर्वेद सम्मेलन का यह अठारवां अधिवेशन सरकार से अनुरोध करता है कि राज्य द्वारा संचालित पाठ्यक्रम में आयुर्वेदिक स्वस्थवृत्त एवं सदवृत्त को उचित स्थान प्रदान करके राष्ट्र के युवकों के बल एवं स्वास्थ्य की रक्षा करे।

प्रस्ताव सं० १७

१८ वें प्रान्तीय वैद्य सम्मेलन के इस अधिवेशन का विश्वास है कि देशी विज्ञान की सर्वाङ्गपूर्ण उन्नति और

—शेषांश पृष्ठ ५६० पर।

बनारस विश्वविद्यालय में

अन्वेषण विभाग का उद्घाटन

बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी में गत ३ फरवरी ५६ को आयुर्वेद रिसर्च इंस्टीट्यूट का उद्घाटन समारोह के साथ हुआ। इस संस्था के डायरेक्टर वैद्य पं० राजेश्वरदत्त शास्त्री (अध्यक्ष आयुर्वेद विभाग *B. H. U.*) नियुक्त हुए हैं। इसमें वैज्ञानिकों का भी सहयोग रहेगा। अभी रिसर्च के लिए चार रोग चुने गये हैं ग्रहणी, जलोदर, प्रमेह और अस्थि-क्षय। आशा है इस संस्था की वृद्धि उत्तरोत्तर होती जायगी। —श्री पं० राजेश्वरदत्त जी शास्त्री।

× × ×

तैल चित्र का अनावरण

२८ दिसम्बर ५५ को सीकर में श्री परशुराम-पुरिया राजस्थान आयुर्वेदिक कालेज में जिले के आयुर्वेदिक चिकित्सकों का विशेष अधिवेशन हुआ जिसमें जिलाधीश, न्यायाधीश, राज्य अधिकारी तथा रावराजा सीकर आदि उपस्थित थे। इस अवसर पर कालेज में आयुर्वेद विभाग के भूतपूर्व सञ्चालक स्व० श्री पं०नन्दकिशोर जी महाराज के तैल चित्र का अनावरण राजस्थान के वर्तमान डाइरेक्टर पं० प्रेमशङ्कर जी महोदय ने अपने कर कमलों द्वारा सम्पन्न किया और आयुर्वेद महत्ता पर अपना ओजस्वी भाषण दिया तथा स्वर्गीय श्री पं० जी का अनुसरण करने की चिकित्सक समाज से अपील की। आपने द्वितीय पञ्चवर्षीय योजना के प्रति ५६ लाख रु० व्यय की घोषणा की जिसमें १०-१० लाख रु० जयपुर और उदयपुर कालेजों को दिया जावेगा जिससे वे सर्वसाधन सम्पन्न बनाए जा सकें। इस समारोह की अध्यक्षता सीकर के जिलाधीश श्री रामेश्वर प्रसाद भार्गव ने की। जिसके अन्त में कालेज के प्रिंसिपल वैद्य प्रभुदत्त जी शास्त्री ने समागत महानुभावों का आभार प्रदर्शन किया और स्व० शास्त्री जी के प्रति सभी वैद्यों तथा संस्थाओं के साथ पुष्पाञ्जलि अर्पित की। —अध्यक्ष

× × ×

आयुर्वेदिक पुस्तकालक का उद्घाटन

सीकर ५-१-५६। श्री परशुराम पुरियाआयुर्वेदिक कालेज के अन्तर्गत राजस्थान जन सेवा आयोग के अध्यक्ष श्री पं० देवीशंकर जी तिवारी की अध्यक्षता में आयुर्वेदिक पुस्तकालय का उद्घाटन अजमेर के मुख्य मन्त्री श्री हरिभाऊ जी उपाध्याय के द्वारा सम्पन्न हुआ। श्री उपाध्याय जी ने बम्बई की पित्ती

परिवार की महिलाओं के प्रति विशेष आभार प्रदर्शन किया जिनकी ओर से संस्था को २००० रु० प्रति वर्ष मिल रहा है. एवं आयुर्वेद कितना गहन है तथा उसकी क्या महत्ता है ऋषियों के ज्ञान की धरोहर है पर सुन्दर विवेचना की तथा कि आधुनिक आयुर्वेद में अनुसन्धान करके उसको अधिक उपादेय बनाया जाय इस समारोह के साथ ही साथ राजस्थान संस्कृत साहित्य सम्मेलन का छठा वार्षिक सम्मेलन भी सम्पन्न हुआ।

यह आयुर्वेद कालेज आयुर्वेद के अनुसन्धान कार्य को हाथ में लेने जा रहा है। उसी के परिणाम स्वरूप यहां भिन्न-भिन्न विभागों की स्थापना हो रही है। उक्त पुस्तकालय भी इसी उद्देश्य से स्थापित हुआ है। इन समाराहों में राजस्थान के लब्ध प्रतिष्ठित व्यक्ति उपस्थित थे जिनमें विधान सभा के अध्यक्ष श्री नरोत्तम जी व्यास, जागीर कमिश्नर, आयुर्वेद विभाग के डाइरेक्टर श्री प्रेमशङ्कर जी, शिक्षा विभाग उपसंचालक आदि महानुभाव मुख्य थे। समारोह ने, एक प्रस्ताव पास करके अखिल भारतीय मैडीकल कान्फ्रेंस के आयुर्वेद विरोधी प्रस्तावों की तीव्र भर्त्सना की।

नोट—यह कान्फ्रेंस कुछ समय पूर्व जयपुर में हुई थी जिसमें डाक्टरों ने आयुर्वेद के प्रति अपनी घृणित मनोवृत्ति पूर्ण प्रस्ताव पास किया था कि देश में एक एलोपैथिक चिकित्सा प्रणाली ही स्थापित की जाए उसी की निन्दा में सीकर में यह प्रस्ताव पास किया है।

—अध्यक्ष

औषधि निर्माण के नियन्त्रण पर विचार

राजकुमारी अमृतकौर का रेडियो भाषण

नई दिल्ली, १५ फरवरी। केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्रिणी राजकुमारी अमृतकौर ने आकाशवाणी के दिल्ली केन्द्र से भाषण प्रसारित करते हुए कहा कि औषधि कानून (ड्रग एक्ट) के अन्तर्गत औषधि निर्माण को अपने नियन्त्रण में लेने और फारमेसी कानून १९४८ को सारे देश पर लागू करने का प्रश्न भारत सरकार के विचाराधीन है।

उन्होंने कहा कि भारतीय औषधि निर्माण विधि (फारमाकोपिया) समिति द्वारा प्रस्तुत विधि को १ जुलाई १९५६ से सरकारी आलेख बना दिया जायगा।

स्वास्थ्य मंत्रिणी ने कहा कि स्वास्थ्य बनाए रखने के लिये भोजन के बाद औषधियों का महत्व है। इसलिये जैसे हम भोजन की शुद्धता के लिये प्रयत्नशील रहते हैं वैसे ही औषधियों को भी शुद्ध रखने का ध्यान रखना चाहिये। उन्होंने औषधि-निर्माताओं से शुद्ध औषधि बनाने की अपील की तथा जनता से विश्वस्त निर्माताओं की दवाईयां खरीदने और खाली शीशियां आदि नष्ट कर देने का अनुरोध किया। —हिन्दुस्तान।

नींद में चार मील की यात्रा

लाहौर १७ फरवरी। बताया जाता है कि सारलान (पश्चिमी पाकिस्तान) का एक कालेज छात्र रात की नींद में ही चलता-चलता चार मील दूर निकल गया और जब उसकी नींद भंग हुई तो उसे मालूम हुआ कि वह अपने गांव फजियाबाद पहुँच गया है। यह छात्र मुजम्मल शाह १० बजे रात सोया था। बाद में रात को नींद में ही वह उठा और बाहर निकल पड़ा और चार मील दूर अपने गांव में अपने घर जा पहुँचा। वहां पहुंच कर जब उसने अपना दरवाजा बंद देखा तो एकाएक अचरज से उसकी नींद खुल गई। —हिन्दुस्तान।

पृष्ठ ५५७ का शेषांश

प्रचार तब तक सफलतापूर्वक सम्भव नहीं है, जब तक प्रान्तों और केन्द्रों में स्वतन्त्र मन्त्रालय की स्थापना न हो, इसलिए यह सम्मेलन केन्द्रीय सरकार और प्रान्तीय सरकार से अनुरोध करता है कि केन्द्र और प्रान्त में पृथक् आयुर्वेद मंत्रालय की स्थापना की जाय तथा डाइरेक्टोरेट की स्थापना की जाय तथा मंत्रालय एवं आयुर्वेद डाइरेक्टोरेट में ही अनुभवी एवं सुप्रसिद्ध आयुर्वेदज्ञ लिए जांय।

लखनऊ में विविध वैद्य सम्मेलन

ता० २७, २८, २६ जनवरी सन् १६५६ को सम्पन्न

ता० २७ जनवरी को अखिल भारतीय आयुर्वेदिक चिकित्सा प्रचारक संघ का तृतीय महाधिवेशन कान्य कुब्ज आयुर्वेदिक कालेज के मैदान में प्रजा-वैद्य कविराज मुरारीलाल जी सक्सैना की अध्यक्षता में प्रारम्भ हुआ। संघ के तृतीय अधिवेशन का उद्‌घाटन उत्तर प्रदेशीय विधान सभा के अध्यक्ष माननीय श्री आत्माराम गोविन्द खेर महोदय के हाथों सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर माननीय खेर महोदय ने अपने भाषण में आयुर्वेद की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा करके उसके प्रति अपनी महान आस्था दर्शाई। आयुर्वेद में दिनचर्या, रात्रिचर्या, ऋतुचर्या आदि का पृथक्-पृथक् वर्णन किया, जो आयुर्वेद की महान विशेषता है। आपने आयुर्वेद के मुख्य सिद्धान्तों पर प्रकाश डालते हुए उपस्थित वैद्यों को इस जनतान्त्रिक युग में संगठित होने की ओजपूर्ण शब्दों में अपील की। इसी अवसर पर संघ के सभापति महोदय कविराज मुरारीलाल का सामयिक आयुर्वेदिक चिकित्सा पर विश्लेषणात्मक भाषण हुआ। आपने सुन्दर शब्दों में आयुर्वेद की महत्ता प्रकट की।

ता० २८-१-५६ को उत्तर प्रदेशीय रजिस्टर्ड वैद्य सम्मेलन के द्वितीयाधिवेशन की कार्यवाही प्रारम्भ हुई, जिसके स्वागताध्यक्ष आयुर्वेदोद्धारक श्री पं० ब्रह्मानन्द जी शर्मा वैद्य ने अपने स्वागत भाषण में अधिवेशन से सम्बन्धित समस्याओं को सामने रखा और आयुर्वेदिक जगत् में आजकल की अड़चनों, अभावों और क्रियाहीनता का समुचित रूप प्रकट किया। इस द्वितीयाधिवेशन की अध्यक्षता आयुर्वेदाचार्य पं० सत्यनारायण जी मिश्र ने ग्रहण की थी तथा इसका उद्‌घाटन उत्तर प्रदेश के विद्वान् ऋषि श्री पं० जगन्नाथ प्रसाद जी शुक्ल आयुर्वेद बृहस्पति के करकमलों द्वारा सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर इस संगठन के नेता के रूप में ऐसा लगता था मानों एक जवान ही इस बूढ़े के रूप में हमारी बागडोर संभालने के लिए आगे बढ़ा आ रहा है। इस संगठन ने कई महत्वपूर्ण प्रस्ताव पास किए।

ता० २६-१-५६ को प्रातः श्री जगन्नाथ प्रसाद जी शुक्ल आयु पंचानन की अध्यक्षता में उ० प्र० लोकल बोर्ड आयुर्वेदिक एण्ड यूनानी एसोसिएशन के द्वितीयाधिवेशन की कार्यवाही प्रारम्भ हुई। इस समारोह का उद्‌घाटन राजकीय आयुर्वेदिक महा विद्यालय के उपाचार्य श्री पं० विश्वनाथ जी द्विवेदी के द्वारा सम्पन्न हुआ। उन्होंने लोकल बोर्ड औषधालयों के अध्यक्षों को अपने संगठन को सुदृढ़ बनाकर भारतीय विज्ञान के प्रति जन प्रियता बढ़ाने को कहा। इस संगठन के स्वागताध्यक्ष पं० रामेशप्रसादजी त्रिपाठी थे तथा इस अधिवेशन ने कई महत्वपूर्ण प्रस्ताव स्वीकृत किए।

ता० २६-१-५६ को इन अधिवेशनों के अवसर से लाभ उठाने की दृष्टि से लखनऊ जिला वैद्य सम्मेलन के द्वितीयाधिवेशन का कार्य सम्पन्न हुआ। इसमें तीनों तहसीलों के वैद्य बड़ी संख्या में उपस्थित हुए, सभापति का आसन माननीय श्री जगन्नाथ प्रसाद जी शुक्ल प्रयाग ने ही ग्रहण किया। जिला वैद्य सभा के नियमित अध्यक्ष पं० लक्ष्मीनारायनजी पाठक वैद्य लक्ष्मी रसायन शाला के अध्यक्ष तथा प्रधानमन्त्री पं० दयाराम जी अवस्थी शास्त्री चुने गये। इसी अवसर पर उत्तर प्रदेशीय वैद्य सम्मेलन की स्थायी समिति के लिए निम्नोक्त प्रतिनिधि लखनऊ जिला वैद्य सभा की ओर से निर्विरोध चुने गए —

१—आचार्य श्री विश्वनाथ जी द्विवेदी।
२—श्री श्रीकान्त जी शास्त्री।
३—श्री पं० रमेशप्रसाद जी त्रिपाठी।
४—श्री पं० विश्वम्भरनाथ जी मिश्र काव्यतीर्थ।
५—श्री पं० सुरेन्द्रनाथ जी दीक्षित।
६—श्री पं० जगन्नाथ प्रसाद जी मिश्र।

अन्त में जगन्नाथ प्रसाद जी शुक्ल ने अपने जीवन के आयुर्वेद सम्बन्धी ठोस तथ्यों को सुनाते

हुए अधिवेशन का विसर्जन किया। इस प्रकार वैद्य जगत में एक प्रभातकालीन नव जागरण के साथ आयुर्वेद के सभी सम्मेलन सफलता के साथ सानन्द समाप्त हुए। —आयुर्वेद संदेश

★ ★ ★

पाठ्यग्रन्थ-निर्माण

बम्बई राजकीय आयुर्वेद अन्वेषण समिति

(बम्बई आफ रिसर्च इन आयुर्वेद, बम्बई)

उपर्युक्त बोर्ड की ओर से बंबई राज्य की 'शुद्ध आयुर्वेद समिति' तथा फेकल्टी आफ आयुर्वेदिक एण्ड यूनानी तिब्बी सिस्टम्स आफ मेडिसिन, द्वारा निर्धारित पाठ्यक्रम के आयुर्वेदीय विषयों के पाठ्यग्रन्थ निर्माण किए जाने हैं, जो विद्वान् यह कार्य करने के लिए उद्यत हों, वे नीचे लिखे पते पर पत्रव्यवहार कर ग्रन्थों कि विषयसूची प्रार्थनापत्र तथा नियम मंगवाएं।

दी सेक्रेटरी, बोर्ड आफ रिसर्च इन आयुर्वेद
गोगेट मॅन्शन, भटवाडी पहली गली,
गिरगांव रोड, बम्बई ४।

ग्रन्थ निर्माण के विषय—

१—आयुर्वेद दर्शन (आयुर्वेदीय पदार्थ विज्ञान)।
२—आयुर्वेदीयं शारीरम् (मुख्यतया रचना शारीर तथा गर्भशारीर)।
३—प्रत्यक्ष रचना शारीरम् (शव विच्छेदन के लिए।)
४—दोष धातुमल विज्ञान (प्राकृत तथा वैकृत क्रिया शारीर)।
५—रसादि विज्ञान—द्रव्य विज्ञान।
६—प्रति द्रव्य विज्ञान—द्रव्य गुण विज्ञान।
७—भेषज निर्माण (परिभाषा के साथ)।
८—रसशास्त्र (जङ्गम द्रव्य विज्ञान)।
९—व्याधि विज्ञान (निदानपञ्चक सहित रोग निदान)।
१०—रोग परीक्षा।
११—काय चिकित्सा।
१२—रसायन (वाजीकरण)।
१३—शल्य-शालाक्य तंत्र।
१४—कौमारभृत्य (प्रसूति तथा बालरोग विज्ञान)।
१५—स्त्री रोग विज्ञान।
१६—मनोविज्ञान तथा मानस रोग।
१७—व्यवहारायुर्वेद।
१८—आयुर्वेद का इतिहास।
१९—स्वस्थ वृत्त।
२०—अगद तन्त्र।
२१—आयुर्वेदीय योग संग्रह (आयुर्वेदीय फार्माकोपिया।
२२—आयुर्वेदीय शब्द कोष।
२३—संस्कृत पाठ्य पुस्तक (आयुर्वेदोपयोगी)

पाठ्य ग्रन्थ सम्बन्धी नियमोपनियम

१. भाषा तथा शैली—

पाठ्य ग्रन्थ की मूल भाषा सरल संस्कृत रहेगी. उसमें प्राचीन संहिता ग्रन्थों के अत्यन्तोपयुक्त वचन ही दिये जाएगे. संस्कृत के नीचे मूल में ही सरल हिन्दी भाषान्तर होगा. पाद टिप्पणीयों में विषय से संवद्ध संपूर्ण संहिता वचन तथा उनकी टीकाओं से आवश्यक अंश दिये जायगे.

२. काल मर्यादा—

स्वीकृत विषयों के अनुसार छः माह से एक वर्ष तक.

३. जो विद्वान पाठ्यग्रन्थ लिखना चाहें वे बोर्ड के कार्यालय से प्रार्थना पत्र मंगा कर भर कर भेज दें। बोर्ड की स्वीकृति प्राप्त होने के पश्चात् लेखक लगभग १५ फुलस्केप पृष्ठ विषय सुवाच्य अक्षरों में लिखकर (संभव हो तो नागरी अक्षरों में टाइप कराकर) बोर्ड को भेजें। आवश्यक हो तो बोर्ड राज्य के उस विषय के अध्यापकों के सम्पर्क से पाण्डुलिपि एवं तद्विषयक विद्वानों के सम्बन्धों में चर्चा विचारणा करेगा तथा अन्तिम निर्णय से लेखक को सूचित करेगा। सम्पूर्ण ग्रन्थ इसी प्रकार अनेक तद्विदों के परस्पर सहकार से लिखा जाएगा। आवश्यकता हुई तो प्रत्यक्ष विचारणा भी की जा सकेगी। चर्चा विचारणा का व्यय बोर्ड वहन करेगा।

ग्रन्थ लेखक के रूप में बोर्ड के अध्यक्ष द्वारा लिखित प्रस्तावना में समस्त तद्विदों का नामतः निर्देश किया जायगा। प्रमुख लेखक का सविशेष उल्लेख किया जाएगा।

४. स्वामित्व—

ग्रन्थ का सम्पूर्ण स्वामित्व (कापी राइट) बोर्ड का रहेगा।

५. पारिश्रमिक—

रायल आक्टेव साइज के प्रत्येक मुद्रित पृष्ठ पर लेखक को सात रुपये दिए जाएंगे।

६. बोर्ड अपने कानूनी सलाहकार के परामर्शानुसार एक एग्रीमेण्ट लेखक के साथ करेगा।

आयुर्वेद गौरव

जयति, जय जय हे आयुर्वेद !

(१)

निज गौरव से जीव जगत को
सुन्दर स्वस्थ बनाया।
तूने ही देवों को अक्षय-
निधि से अमर बनाया।
तेरी इस अक्षुण्ण कीर्ति को गाते हैं सब वेद।
जयति, जय जय हे आयुर्वेद !

(२)

तूने ही मानव सुप्रकृति का
विकृति-ज्ञान कराया।
जन जन के तन मन रोगों का
लिंग, निदान बताया।
तेरे संकेतों पर चलते वात-पित्त-कफ भेद।
जयति, जय जय हे आयुर्वेद !

(३)

तेरे भेद-प्रकार विश्व के
कोने कोने में बिखरे हैं।
मानव बुद्धि कसौटी पर
वे घिसकर चमके अरु निखरे हैं।
मूल-तत्व है अरु यह नव-पल्लव सम तेरे भेद।
जयति, जय जय हे आयुर्वेद !

(४)

गाऊं कैसे ? तेरे अद्भुत-
योग अरु उपचय गान।
जिससे सतत किया है तूने
अकथित जन कल्याण
तेरे उपकारों से मानव-विश्व आज अक्लेद।
जयति, जय जय हे आयुर्वेद !

—वैद्य जगमोहन प्रसाद वाजपेयी, दमोह।

पैथियों का उद्गम स्थान

लेखक—श्री डा० कमलसिंह एम० डी० एस० एच० साहित्यायुर्वेद विशारद, उज्जैन।
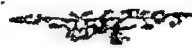
यह निर्विवाद सत्य है कि संसार में सबसे पुरानी पुस्तक यदि कोई है तो वह वेद ही है, और यह भी सूर्य के समान ध्रुव सत्य है कि सब भौतिक एवं आध्यात्मिक विद्याओं का मूल भी वेद ही है। बस. इसी विषय को लेकर आयुर्वेद पर यह लेख लिखा गया है, इसमें यह प्रगट करने की चेष्टा की गई है कि होमियोपैथी, हाइड्रोपैथी, क्रोमोपैथी आदि आदि पैथियों का सम्बन्ध आयुर्वेद से है, और आयुर्वेद का उद्गम स्थान वेद है। फिर लेख के अन्त में स्वास्थ्य प्राप्ति एवं रोग निवारणार्थ शासन को क्या करना होगा इस पर भी कुछ प्रकाश डाला गया है।

१—आयुर्वेद शास्त्र और वेद का सम्बन्ध

अ—इस विषय पर भगवान् सुश्रुत ने कहा है कि—

"इहखल्वायुर्वेदो नाम यदुपाङ्गमथर्ववेदस्य"

—सुश्रुत अ. १ : १०

अर्थात्–आयुर्वेद अथर्ववेद का उपांग है।

आ—श्री पंडित प्रियरत्न जी आर्षवैदिक रिसर्च स्कालर ने अथर्ववेदिय चिकित्सा शास्त्र नामक पुस्तक लिखी है। इस पुस्तक में स्वस्थवृत्त-रोगीचर्या, निघण्टु, शरीर-स्थान, निदान, चिकित्सा, उपचार, सूर्यकिरण चिकित्सा, जल चिकित्सा अग्नि, वायु, होम चिकित्सा, शल्य-चिकित्सा, विष चिकित्सा, कृमि चिकित्सा, रोग चिकित्सा, पशुचिकित्सा विषयों पर पृथक-पृथक् वेद मन्त्र दिये हैं।

इ—आयुर्वेद का अर्थ है आयु का ज्ञान अर्थात् जीवन के तत्वज्ञान का नाम ही आयुर्वेद है, जिसका सम्बन्ध प्रकृति, जीव, ईश्वर तीनों गुण (सत, रज, तम) तथा पंचमहाभूतों से है इसलिये यह शास्त्र है प्रणाली नहीं। सब प्रणालियों का उद्गम स्थान है इस लिये यह आयुर्वेद शास्त्र कहलाता है। फिर इस आयुर्वेदशास्त्र का उद्गम स्थान अथर्ववेद है जिसके प्रमाण में सुश्रुत और पंडित प्रियरत्न जी की पुस्तक के प्रमाण दिए जाचुके हैं। अब आगे पैथियों का वेद से सम्बन्ध है इस विषय का प्रतिपादन किया जायगा।

२—सूर्यकिरण (क्रोमोपैथी) चिकित्सा—

सूर्यकिरण चिकित्सा के लिए प्रथम अथर्ववेद काण्ड १ सूक्त २२ तथा काण्ड ६ सूक्त ८३ की ऋचाओं में हृदयरोग, हलीमक, अपची, गण्डमाला की चिकित्सा विशेष सूर्यकिरणों द्वारा बताई गई है फिर यह भी बताया गया है कि सूर्य अपनी किरणों से सभी रोगों के विषों को नष्ट करता है यथा–

शीर्षक्तिं शीर्षामयं कर्णशूलं विलोहितम्।
सर्वं शीर्षण्यं ते रोगं बहिर्निर्मन्त्रयामहे॥

—अ. ६-८-१

यह विषय अथर्ववेद काण्ड ६ सूक्त ८ मन्त्र १ से लेकर २२ तक में विस्तार से दिया गया है।

३—जलचिकित्सा (हाइड्रोपैथी)

संसार के प्राकृतिक पदार्थों में जल भी एक महौषध है, जीवन शक्ति देने वाला अमृत स्वरूप तथा रोगों को दूर करने का परम साधन है। वेद में जल को भेषज रूप कहा गया है। जल शीत-उष्ण-स्पर्श-मार्जन-टकोर-मर्दन-धारापात तथा भाप प्रयोगों के द्वारा रोगों को दूर करने के लिए उपदेश किया गया है, यथा:—

शंचनो मयश्चनो यावतः किंचनामयत्।
जमा रपो विश्वं नो अस्तु भेषजं सर्वंनो अस्तु भेषजम्॥

—अथर्व ६-७-३

भावार्थ—समस्त रोग दोष हमारे लिये सहन किया हुआ तिरस्कृत हो, समस्त भेषजधर्म वाला जल हमारे लिए रोग दूर करने वाला हो।

प्रथम अथर्व काण्ड ६ सूक्त ५७ के तीन मन्त्र तथा काण्ड ६ सूक्त २४ के मन्त्रों में भी इसी प्रकार का उपदेश है।

४ अग्नि-वायु-होम चिकित्सा

अग्निष्कृ भेषजम् (अथर्व ६-१०६-३) के द्वारा अग्नि चिकित्सा का उपदेश किया गया है, अग्नि में औषधियों को होमकर धूप लेना, सेकना भी अग्नि चिकित्सा ही है।

वायु—वायु भी प्राकृतिक वस्तुओं में प्राणीमात्र के लिये स्वयं औषध रूप है जैसे—

मारुतो मारुतस्य न आभेषजस्य वहता सुदानवः।
—अ. ८-२०-२३

शुद्ध वायु के बिना प्राणी कुछ क्षण भी नहीं ठहर सकता अर्थात् उसका प्राणान्त होजाता है, सुगन्धित वायु से कई रोग दूर किये जाते हैं जब कि दुर्गन्धित वायु से अनेक रोग उत्पन्न भी होते हैं, इस लिये वायु को शुद्ध बनाने के लिए अथर्ववेद में होम चिकित्सा दी गई है जिसके द्वारा वातव्याधि, यक्ष्मा आदि जैसे महा भयंकर रोगों की चिकित्सा होम द्वारा करने का उपदेश है। यथा—

मुचामि त्वा हविषा जीवनाय कमज्ञात यक्ष्मा वुत राजयक्ष्मात् ग्राहिर्जग्राह यद्येत देनं तस्या इन्द्राग्नी प्रमुमुक्त मेषजम्। —अथर्व ३-११-१

भावार्थ—हे रोगी तुझे राजयक्ष्मा तथा अज्ञात् रोग से जीवित रखने के लिए होम के द्वारा मैं कुशल वैद्य छुड़ाता हूं। यदि इसके अंगों को जकड़ने वाली वातव्याधि ने पकड़ लिया है उससे हे विद्युत और अग्नि तुम दोनों इसको छुड़ादो। इसी प्रकार अथर्ववेद काण्ड १६ सूक्त ३८ काण्ड ३ सूक्त ११ तथा काण्ड २० सूक्त ६६ में उपदेश दिया गया है।

५ सौम्य चिकित्सा (होमियोपैथी)

सौम्य चिकित्सा के लिये अथर्ववेद काण्ड ४ सूक्त १७ मन्त्र १ से लेकर ८ तक में उपदेश किया गया है यथा—

ईशानांत्वा भेषजा ना मुज्जेष आरमा महे।
चक्रं सहस्त्र वीर्यं सर्वस्मा औषधेत्वा ॥
—अ. ४:१७।१

भावार्थ—हे औषध तुझको सब प्रकार के रोगों के लिये मैं सहस्र गुणा शक्ति वाला (पोटेनटाइज) करता हूं।

६—जलयंत्र (विद्युत) द्वारा चिकित्सा

जल यन्त्र द्वारा निर्बल स्त्री, पुरुषों को पुनर्युवा बनाने का उपदेश किया गया है। यथा—

अग्नि र्छूतं० वृतं प्रतियद् ब्रवीतनाइचः।
—ऋग्वेद १।१६१:३

७—आयुर्वेद का दूसरे देशों में प्रचार तथा डी मेडिसिना के रूप में बदलना

यह इतिहास से सिद्ध है कि भारत में आयुर्वेद पढ़ने के लिए अन्य देशों से अनेकों विद्यार्थी आया करते थे। उनमें से प्रमाण स्वरूप केवल संसार प्रसिद्ध अलैकजण्डर के गुरु अरस्तु का नाम इस लेख में दिया जाता है। अरस्तु ने भारतवर्ष में आयुर्वेद की शिक्षा प्राप्त की थी तथा चरक, सुश्रुत के आधार पर एक पुस्तक अरबी भाषा में बनाई थी जो अब भी बगदाद में प्रचलित है, यही आयुर्वेद उस समय के अपने ही रूप में (रसादि प्रयोग जो नागार्जुन के पहिले आयुर्वेद में नहीं थे) यूनानी मिश्र में जाकर मिश्रानी बन गया और रोम के मार्ग से यूरोप में बिना नाम के प्रवेश कर गया।

विक्रम की सोलहवीं शताब्दी में पारासेल्स नामक एक प्रतिभाशाली वैद्य जर्मनी में हुआ जिसने रसायन विद्या का अनुशीलन किया तथा रासायनिक धातु व यौगिक औषधियों के प्रयोग की यूरोप में पहिले पहल इसी ने नींव डाली। इसके पूर्व औलु

कर्णेलु शेलसु नामक व्यक्ति जो रोम देश का रहने वाला था इसने डी मेडिसिना नामक ग्रन्थ रचा था। इसके इस ग्रन्थ के रचने के लगभग पांच सौ वर्षों के पश्चात् तत्कालीन चिकित्सकों का ध्यान इस ग्रन्थ की ओर गया। उस समय से आयुर्वेद केवल डी मेडिसिना के रूप में रह गया। तब से अब तक के इन तीन चार सौ वर्षों में भौतिक रसायन और जीव विज्ञान के आविष्कारों ने केवल आयुर्वेद को ही नहीं अपि तु सारे संसार को अध्यात्मवाद से विमुख करके भौतिकवाद के माया जाल में डाल दिया तथा वह डाक्टरी जो आयुर्वेद की नींव पर खड़ी की गई थी वह केवल भौतिकवाद के चक्कर में पड़कर एकदम मानव स्वभाव के विपरीत मार्ग पर चल पड़ी।

८—पैथियों का आविष्कार

लगभग १५० वर्ष हुये जर्मनी के कुछ विद्वानों की दृष्टि इस भौतिक रसायन और जीव विज्ञान के आविष्कारों वाली विपरीत चिकित्सा प्रणाली की बुराईयां पर पड़ी। उन्होंने औषधियां के मिश्रणों से होने वाले बुरे प्रभावों को देखा और घोर निन्दा करके जनता को सचेत किया। इनमें सेम्युअल होने-मन-प्रीसनीट्स-हान-लुईकुने-रिकली आदि ८ व्यक्ति प्रधान थे जिन्होंने होमियोपैथी (सौम्य चिकित्सा), हाईड्रोपैथी (जल चिकित्सा), क्रोमोपैथी (सूर्य किरण चिकित्सा) आदि आदि को अलग-अलग नाम देकर पैथियों के रूप में सच्चे आयुर्वेद को जनता के सामने रखा जिसके फलस्वरूप इन्हें उस समय के शासन से अनेकों कष्ट सजा के रूप में उपहार स्वरुप प्रदान किये गये, फिर भी सारा संसार आज इनके सुफलों से प्रभावित है और लाभ ले रहा है।

सौम्य चिकित्सा (होमियोपैथी) के उद्धारक सेम्यूअल हेनिमन जो सात भाषाओं के पंडित थे फिर जर्मनी की डाक्टरी की सर्वोच्च परीक्षा एम. डी. पास तथा शासकीय सर्जन भी थे ऐसे महान् पुरुष का ध्यान अपने सेवा काल में उस विपरीत प्रणाली की बुराइयों की ओर गया जिससे उन्हें वैराग्य पैदा हो गया। जिसके फलस्वरूप चिकित्सा जगत में संन्यास लेकर बैठ गये, फिर इस संन्यास काल में शीघ्र खोज करते हुए सौम्य चिकित्सा को पुनर्जीवित किया। तब उन्होंने अपनी चिकित्सा प्रणाली का नाम होमियोपैथी (सौम्य चिकित्सा) तथा जिसमें एम. डी. किया था उसका नाम एलोपैथी (उलटी पैथी) दिया।

९—वैद्य समाज का रसों की ओर झुकाव

प्रसिद्ध रसाचार्य नागार्जुन के समय से भारतीय वैद्य समाज रसों के आविष्कार में पड़ गया तथा उसका लक्ष्य प्रकृति उपचार (व्यायाम, रश्मि चिकित्सा, अग्नि, वायु, जल चिकित्सा) जो आयुर्वेद का महत्वपूर्ण अङ्ग था की ओर से हट गया। फलस्वरूप आज का वैद्य समाज सौम्य चिकित्सा, रश्मि चिकित्सा, जल चिकित्सा की पाश्चात्य की भांति भिन्न भिन्न पैथियों के रूप में तथा पाश्चात्य का आविष्कार है ऐसा मान बैठा है, जब कि यह सब वेद प्रतिपादित आयुर्वेद के ही अङ्ग हैं। सबसे बड़ी भयङ्कर भूल तो हमारे मस्तिष्क में यह घर कर गई है कि जिस रस चिकित्सा का आविष्कार अभी अभी पांचसौ वर्षों में ही हुआ है हमारा वैद्य समाज उसको दैवी चिकित्सा अथवा सौम्य चिकित्सा मान बैठा है।

१०—दासता का प्रभाव

एक हजार वर्ष की दासता ने हमारा हमसे सब कुछ छीन लिया, जिस वेद को हम ईश्वर वाणी कहते हैं एक समय जिस वेद का हमारे देश के प्रत्येक घर में निवास था, जिसके नाम से आज भी द्विवेदी, त्रिवेदी, तथा चतुर्वेदी हमारे समाज में आदर से देखे जाते हैं वही वेद हमसे तथा हमारे देश से अप्रसन्न होकर चले गये, उन्हीं वेदों को जो भारत में प्राप्त नहीं हुए महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती को जर्मनी से मंगाने पड़े, परन्तु बाहरी दासता! तूने हमारा विश्वास, हमारी शोध खोज की बुद्धि, हमको महान् बनाने वाले ब्रह्मचर्यादि आश्रम सब कुछ तो

छीन लिये जिसके कारण हम वेद को पढ़ते नहीं सुनते नहीं यहां तक कि उनका आदर भी नहीं करते। जो वेद नहीं पढ़ता, उसके लिये मनु ने लिखा है कि-

योऽनधीत्य द्विजो वेद मन्यत्र कुरुते श्रमम स जीवन्नेव शूद्रत्व माशुगच्छति सान्वयः (मनु २:१६८)

अर्थ—जो वेद न पढ़ कर अन्यत्र श्रम किया करता है, वह अपने पुत्र पौत्र सहित शूद्र भाव को शीघ्र ही प्राप्त हो जाता है।

उपरोक्त मनु वाक्य के अनुसार क्या हम दास नहीं बने, क्या आज हम पाश्चात्य के सल्फाड्रग्स पेन्सलीन एवं अन्य नये एण्टीबायोटिक्स के चकाचौंध करने वाले क्षणिक प्रभावों से प्रभावित होकर उनके आश्रित नहीं हैं जब कि आज वही पाश्चात्य जगत इन कथित अमृत बिन्दुओं से उत्पन्न होने वाले स्थाई दुर्गुणों को प्रकाश में ला रहा है।

११. शासन का झुकाव

आज देश में प्रकृतोपचार के लिए शासन क्या कुछ कर रहा है ? यदि नहीं करता है तो क्यों नहीं करता। इसका सहज बुद्धिगम्य उत्तर यही हो सकता है कि शासन का झुकाव अभी केवल एलोपैथी की ओर ही है जिसका कारण यह है कि एलोपैथी अंग्रेज व्यापारियों से ही हमारे शासन को विरासत में मिली है। आज हमारे देश में प्रकृतोपचार के कोई साधन उपलब्ध नहीं हैं जब कि जनता उनको अधिक-से-अधिक चाहती है तथा उस पर अधिक व्यय भी करती है, परन्तु फिर भी शासन द्वारा एकाधिपत्य से संरक्षित श्वेत हाथी की भांति पालित पोषित एवं साधन सम्पन्न जो मानव स्वभाव के विपरीत ऐसी जो प्रणाली है उसकी शरण में जनता को बाध्य होकर जाना पड़ता है। क्या हमारे शासन में प्रकृतोपचार पर ध्यान देने वाला कोई व्यक्ति नहीं है, यदि नहीं है तो हमारे पिछड़ेपन का इससे अधिक क्या कोई और प्रमाण हो सकता है ?

१२. आज की एलोपैथी

आज की एलोपैथी अपने आपको "माडर्न साइन्स" का नाम देकर गौरव का अनुभव करती है यह उसका एक आदर्श है परन्तु यह आदर्श वह हजारों निर्दोष व्यक्तियों को मृत्यु के अंचल में सुला कर ही अपनाती है ऐसी उसकी परम्परा रही है जिसके लिए इतिहास साक्षी है।

आजकल जल चिकित्सा, विद्युत चिकित्सा आदि कई जनोपकारक कार्य प्रकृतोपचार से लेकर अपनाये हैं, यह एक शुभ चिन्ह है परन्तु इतने से जन कल्याण होने वाला नहीं है। जनकल्याण तो तब ही पूर्ण रूप से सिद्ध होगा जब वह आयुर्वेद के मूलभूत सिद्धान्तों को पूर्णतया अपना लेगी।

१३. हमारा कर्तव्य

हम राष्ट्र के हैं और राष्ट्र हमारा है, आज राष्ट्र की अन्न, जल, वस्त्र, घर, उद्योग-धन्दे, मशीनें, इंजिनियर्स आदि आदि की आवश्यकता ही नहीं किन्तु परम आवश्यकता है। इस समय हमारा देश एक संकटकालीन अवस्था में से निकल रहा है फिर कई साम्राज्य लिप्सु राज्य हमारे राष्ट्र नायकों को उनके लक्ष्य सिद्धि में कई प्रकार के रोड़े अटका रहे हैं। इस पर भी हमारा पंचमुखी शेरों का शेर जवाहर हमें अपने लक्ष्य पर पहुंचा कर ही रहेगा। यह ध्रुव सत्य है फिर भी आयुर्वेद विशेषज्ञों का कर्त्तव्य हो जाता है कि वह स्वास्थ्य के प्रचार द्वारा देश के प्रत्येक व्यक्ति की शरीर से, मनसे, बुद्धिसे, बलिष्ट बनाकर 'जीवेम शरदः शतं' के मन्त्र को घर घर में पहुंचा दें तब ही आयुर्वेद की सेवा होगी और हमारा कर्त्तव्य भी पूरा होगा।

१४. इस शासन के प्रति सुझाव

(अ) स्वास्थ्य प्रचार के लिए हमें पहिले शहरों को ही लेना पड़ेगा क्योंकि कई कारणों से रोगी संख्या शहरों में ही अधिक पाई जाती है फिर शासन से व्यवस्था भी शहरों में ही है।

(आ) प्रत्येक नगर कई क्षेत्रों में विभाजित किया जायगा और प्रत्येक क्षेत्र में एक एक स्वास्थ्य प्रचारक जो कम से कम इस विषय का विशारद होगा रखा जायगा।

(इ)प्रत्येक क्षेत्र के स्वास्थ्य प्रचारक के पास एक पत्रक होगा जिसमें घरों की संख्या तथा उसमें रहने वालों का पूर्ण विवरण होगा ।

(ई)स्वास्थ्य प्रचारक—सुस्वास्थ्य के लिए जनता को सुझाव देता रहेगा जिसका संबंध स्वस्थवृत्त में बताये हुए नियमों से ब्रह्मचर्य की रक्षा के निमित्त बताये हुये उपदेशों से होगा। फिर इसके विपरीत आचरण करने वालों के लिये स्वास्थ्य प्रचारक, शासन को अवगत करायेगा जिसपर से शासन उसके लिए उचित प्रबन्ध करेगा।

(उ)रोग निवारणार्थ प्रत्येक चिकित्सालय में प्रकृतोपचारार्थ, औषधोपचारार्थ तथा शल्योपचारार्थ अलग अलग निष्णात् आचार्य रखे जायंगे ।

(ऊ)इन निष्णात् आचार्यों की सहायता के लिये आवश्यकतानुसार चिकित्सक उपचिकित्सक परिचारिकायें आदि आदि रहेंगे ।

(ए)वर्ष के अन्त में जनता की रुचि का पता चल जायगा कि किस आचार्य के पास कितने रोगी आये, कितनों की किस ज्ञान प्रणाली से लाभ हुआ तथा कितना व्यय हुआ ।

(ऐ)वर्षान्त में पता चलने पर ही प्रणाली विशेष के आय व्यय का बजट बनाना होगा ।

(ओ)कार्य प्रारम्भ करने के लिये अलग से बजट बनाने या अधिक द्रव्य लेने की भी आवश्यकता नहीं होगी, केवल आवश्यकता होगी एक किदवई जैसे साहसिक देश भक्त की जो जनता की भावना को जानता हो और जिसे अपने ऊपर विश्वास हो, कुर्सी का मोह नहीं हो। जनता का सच्चा सेवक ऐसा व्यक्ति ही स्वास्थ्य का तथा आयुर्वेद का उद्धार कर सकता है; फिर यह कार्य शासन का है कि जिसके संकेत मात्र पर यह योजना सफल हो सकती है । ♦♦

: कुटी प्रावेशिक रसायन विधि के कुछ स्वरूप : : पृष्ठ ५७२ का शेषांश :

गोले के साथ वाला खोवा मिलाकर सोंठ नारियल मिलाकर लड्डू विधि से लड्डू बना लेते हैं। आधा पाव का १ लड्डू रोज वातातपिक रसायन विधि से सेवन करते हैं।

आमलकी कल्प

आमलकी कल्प—प्रदर, मूत्रदाह, दाह में किया जाता है। इस कल्प को सात दिन करते हैं। कल्प कुटी प्रावेशिक की पूर्वविधि से करते हैं।

कल्प विधि—एक तोला आमलकी चूर्ण, पांच तोला जल में रात के समय मिलाकर रख देते हैं। सवेरे मलकर छानकर एक तोला मधु मिलाकर पी लेते हैं। कल्पविधि से इस औषधि का अपूर्व प्रभाव देखा जाता है।

दक्षिण भारत के घरों में घरलू दवा के रूप में जनता में प्रचलित आयुर्वेदीय कल्प विधि को देखकर बड़ा आनन्द होता है। जब थोड़े समय में कुटीप्रावेशिक विधि से कल्पौषधों की साधारण औषधों का विचित्र प्रभाव प्रत्यक्ष है। यदि इन्हीं विधियों को संस्कृत कर शास्त्रीय स्वरूप से कुटी प्रावेशिक विधि द्वारा कल्प कराया जाये तो कितना लाभ होगा। इसकी कल्पना करना सहज है।

मैं आयुर्वेदीय आतुरालयों के चिकित्सकों से कल्पविधि के तथ्यों को प्रत्यक्ष करने की प्रार्थना करता हूं। जिन प्रान्तों में आयुर्वेद की परम्पराएं साधारण जनता में व्यवहृत हैं। वहां-वहां के वैद्यों से उन-उन व्यावहारिक तथ्यों को 'धन्वन्तरि' के द्वारा प्रकाश में लाने की प्रार्थना करता हूँ। ♦♦

दक्षिण भारत में प्रचलित—

कुटी-प्रावेशिक रसायनविधि के कुछ स्वरूप

लेखक—वैद्य नागेशदत्त शुक्ल शास्त्री, आयुर्वेदाचार्य, जालना ।

भारत की संस्कृति की तरह आयुर्वेद भी इस देश के प्रान्त प्रान्त और गांव गांव में बिखरा पड़ा है क्योंकि संस्कृति का एक अङ्ग आयुर्वेद भी है। प्रकाशमान आयुर्वेद के गौरव काल की गहरी छाप भारत की परम्पराओं में छिपी पड़ी है। आयुर्वेद की बहुत सी विशेषताऐं जनता में प्रचलित बहुप्रथाओं पर जीवित हैं। आज भी जनता में आयुर्वेद पर अत्यधिक विश्वास है।

जनता में व्यवहृत आयुर्वेदीय औषधि सेवन की प्रथाओं से प्रत्यक्ष में वैद्य विद्वानों से कोई सम्बन्ध नहीं रह गया है। वैद्यों का ध्यान उस ओर बहुत कम गया है। जनता बिना मार्ग दर्शन के यथा तथा प्रथाओं का पालन करती चली आरही है।

विद्वान् वैद्य जिन-जिन प्रान्तों में रहते हैं वहां वहां उन्हें बहुत सी प्रथाऐं ग्रामों में नव सभ्यता असंक्रान्त समाजों में देख पड़ेंगी। आज उनकी सम्यक् जानकारी की अत्यन्त आवश्यकता है। मैं हैद्राबाद राज्य के मराठवाड़े विभाग में रहता हूँ। यहां ग्रामों में सैकड़ों रोगों की चिकित्सा के लिए सिरादाह किया जाता है। ग्रामीण लोग निश्शंक इस का प्रयोग करने में अभ्यस्त हैं। यह क्रिया सद्यःजात शिशु से लेकर युवा शरीर तक प्रयुक्त होती है। दूसरे इस प्रान्त में रसायन शब्द से बड़ी विषैली औषधि का बोध किया जाता है। रसायन सेवन से लोग डरते हैं। यहां की फार्मेसियां खनिज कल्पों को मात्रा के नाम से बेंचती हैं। जनता भी मात्रा नाम से बड़ी अच्छी औषधि मानती है।

पर यहां रसायन विधि से अनेक औषधियों का सेवन किया जाता है। ऐसी विधियों का उल्लेख मैंने इस निबंध में कुटी प्रावेशिक रसायन नाम से किया है। सिरादाह का वर्णन अन्य किसी निबंध में करूंगा।

इस प्रदेश में रसकपूर-अश्वगन्धा-पिपरामूल-हरिद्रा-कट्फल-आमलक-शुण्ठी आदि औषधियों को कुटी प्रावेशिक रसायन विधि से लेने की प्रथा है।

ये रसायन ३ दिन या ६ दिन लेने की प्रथा है। जितने दिन औषधि सेवन की जाती है उतने ही दिन और उसी प्रकार पथ्यपालन किया जाता है।

ये रसायन सेवन करते समय बाहर घूमना फिरना बंद कर दिया जाता है। घर के भीतर अल्प वायु संचार कक्ष में रह कर औषधि सेवन करते हैं। यथा शक्य मलमूत्रोत्सर्ग कक्ष के समीप ही किया जाता है। औषधि सेवन काल में गरम जल पिया जाता है। आहार में रवें (हलवा की सूजी) के बादाम मिले लड्डू और गाय का दूध पिया जाता है।

रसकपूर

रसकपूर का उपदंश की चिकित्सा में सभी वैद्यगण उपयोग करते हैं। वैद्यगण इसे एक समय में १ रत्ती प्रमाण में, मलाई में या कैप्सूल में देते हैं। बिना मलाई आदि के मुंह आजाता है। ज्यादा दिन तक रसकपूर सेवन नहीं कराया जाता। दक्षिण भारत में रसकपूर पपड़ी और डल्ला आता है। रसकपूर पपड़ी ज्यादातर व्यवहार में लिया जाता है। यहां इसे एक शक्तिवर्धक औषधि मानते हैं। साल भर में एक बार सेवन कर लेने पर वर्ष तक शक्ति बनी रहती है ऐसा विश्वास करते हैं।

रसकपूर तीन माशे या दो माशे प्रमाण में कुल मिलाकर सेवन किया जाता है। तेलंगाना के लोग ज्यादातर रसकपूर सेवन करते हैं। एक दिन में एक बार में एक माशा रसकपूर सेवन किया जाता है। इमली के पानी के अनुपान से लेते हैं। रसकपूर लेने के पहिले १ घूंट इमली का पानी पी लेते हैं दूसरे घूंट में रसकपूर को निगल जाते हैं तीसरा घूंट और ऊपर से पी लेते हैं। इस प्रकार ३ माशा ३ दिन में और ६ माशा छै दिन में लेते हैं। पथ्य पूर्व प्रकार से करते हैं। ३ माशा लेने वाले ६ दिन पथ्य करते हैं और छै माशा लेने वाले १२ दिन पथ्य करते हैं।

अश्वगंधा

अश्वगंधा वातरोग और निर्बलता में सेवन किया जाता है। असगन्ध के लड्डू बनाकर खाए जाते हैं। लड्डू बनाने की विधि—असगंध चूर्ण ५ तोला, डेढपाव आटा, डेढपाव शक्कर, पाव भर घी। घी में आटा सेंककर, शक्कर और असगंध मिलाकर ६ छे लड्डू बना लेवें। इन में से एक सवेरे एक सायं, तीन दिन तक सेवन करते हैं। आहार में दूध लेते हैं। तीन दिन औषध काल और तीन दिन पथ्यकाल मानकर छे दिन तक केवल गोदुग्ध सेवन करते हैं। पूर्वोल्लिखित प्रकार से निवास और उष्णोदक पान करते हैं।

इस थोड़े से काल की विधिवत् चिकित्सा व्यवस्था से शरीर में स्फूर्ति, शक्ति आती है और वह रोगहीन होजाता है। चेहरे पर प्रसन्नता भी दौड़ने लगती है।

पिपरामूल

पिपरामूल रसायन अक्सर स्त्रियां सेवन करती हैं। स्त्रियां इसे वातव्याधिनाशक, उदररोगनाशक दिव्य औषध मानती हैं। पिपरामूल सेवन करने वालों को हरिद्रा सेवन करना अनिवार्य होता है। पिपरामूल कल्प पूरा हो जाने पर हरिद्राकल्प किया जाता है। हरिद्रा कल्प तो अकेला भी किया जासकता है पर पिपरामूल कल्प अकेला नहीं।

पिपरामूल कल्प तीन दिन किया जाता है। कुल मिलाकर छः दिन तक कल्प विधि से रहा जाता है।

पिपरामूल ज्यादा गरम कल्प है। इसको लेने का प्रमाण कम होता है।

पिपरामूल कल्प विधि—पिपरामूल २ तोला, आटा-पाव भर, शक्कर और घी पाव-पाव भर, पूर्व प्रकार से छः लड्डू बना लेते हैं। तीन दिन तक इनमें से एक प्रातः एक सायं लेते हैं। आहार में दूध, गृह निवास तथा जल आदि पूर्व कल्प विधि से लेते हैं।

हल्दी कल्प—तीन तोला हल्दी, आटा, शक्कर, घी तीनों पाव पाव भर लेकर लड्डू बनाकर सेवन करते हैं। इससे पिपरामूल के सेवन से शरीर के रक्त में व्याप्त उष्णता का शमन होजाता है। पिपरामूल सेवन का तोड़ हरिद्रा मानी जाती है। जिन्हें किसी प्रकार का रक्त विकार खुजली, छाज, चट्टे आदि या खांसी श्वास से कष्ट रहता है वे स्वतंत्र रूप से भी हरिद्राकल्प सेवन करते हैं।

शुण्ठी कल्प

अग्निमांद्य, उदरशूल, आनाह, वातज उदर व्याधि में शुण्ठी कल्प सेवन किया जाता है।

शुंठी कल्प विधि—६ तोले शुण्ठी, आटा घी, शक्कर आधा-आधा सेर को लड्डू विधि से १२ लड्डू बना लेते हैं। प्रतिदिन दो लड्डू छः दिन तक लेते हैं। सब मिलाकर १२ दिन तक पथ्य सेवन किया जाता है। अन्य समस्त विधि पूर्वकल्पवत्।

शिर की पीड़ा में शुण्ठी सेवन की एक विशेष विधि है। नारियल के अन्दर के एक बड़े गोले में लघु छिद्रकर १० तोले शुण्ठी चूर्ण भरकर, छिद्र को आटे से बन्दकर, नारियल के गोले को १६ सेर दूध में डालकर मन्दी आंच से उबालते-उबालते खोवा बना लेते हैं। गोले को बाहर निकाल कर, सिल पर पीस लेते हैं। बाद में आटा-घी-शक्कर दो-दो सेर,

—शेषांश पृष्ठ ५७० पर।

धूम्र पान

लेखक—कविविनोद वैद्यभूषण पं० ठाकुरदत्त जी शर्मा,
(अमृतधारा), देहरादून।

धूम्रपान भारतवर्ष में ही नहीं, संसार भर में बहुत प्रचलित हो गया है। संख्या-विदों का अनुमान है कि तमाखू समस्त संसार में ३०० करोड़ पौंड वार्षिक खप जाता है। इसके पत्तों को ही यदि लम्बाई की ओर से मिलाया जाय तो पृथ्वी के चारों ओर ४० घेरे पड़ जायंगे। विश्व की जन-संख्या में से कदाचित् १० प्रतिशत ऐसी निकले जिसमें धूम्रपान प्रचलित न हो। भारत में तमाखू का प्रचुर उत्पादन होता है, इस पर भी यहां प्रति वर्ष १४ करोड़ पौंड अमेरिका से आता है।

तमाखू का विष

तमाखू के पौधे के प्रत्येक भाग में एक प्रकार का खारा विष होता है जिसे "निकोटीन" कहते हैं। इसको ($C_{10}\ H_{14}\ N_2$) तमाखू के पत्तों से तैयार किया जाता है। यह बिना रंग का तैल-सा होता है और वायु में रखने से भूरा-सा हो जाता है। मुंह में रखने से तीक्ष्ण दाह होती है और ऐसी दुर्गन्ध आती है जैसी कि हुक्के की नड़ी में से आया करती है। निकोटीन को यदि पानी में डाला जाय तो अन्य तैलों के समान ऊपर तैरता नहीं रहता। इस विष की २, ३ बूंद खा लेने से मृत्यु हो जाती है। यदि किसी कुत्ते को ४ बूंद दे दी जाय तो वह ५ मिनट में ही मर जायगा।

तमाखू या निकोटीन खा लेने के लक्षण

मूर्छा, शिर चकराना, कम्प, पिछले पैरों में निर्बलता, नाड़ी की तीव्र गति, शिर भारी हो जाना, उबकाई, हृदय धड़कना, शब्द भारी हो जाना, पसीना ठण्डा आना, हृदय का डूबते जाना और निर्बल होते जाना, नाड़ी का धीरे-धीरे क्षीण होते जाना और अन्त में कांपने लगना, श्वास का रुक-रुक कर चलना आदि लक्षण तमाखू या निकोटीन के खाने से प्रकट होते हैं। अधिक मात्रा में सेवन करने से तो तत्काल मूर्च्छा आकर ५ मिनट में मृत्यु हो जाती है। धूम्रपान न करने वाले मनुष्य की एक बार ८–१० चिलमें पी लेने से मृत्यु हो जाती है।

चिकित्सा

तमाखू खाने वाले की मृत्यु होने में देर नहीं लगती, इसलिए यथा शीघ्र वमनकरा देना चाहिए। यदि वमन होती भी हों तो वमनकारक औषधियों का सेवन कराकर उन्हें और बढ़ाना चाहिए जिससे पेट में विष का कुछ भी अंश न रहे। स्टमक पम्प (*stomach pump*) से भी पेट धोया जा सकता है। रक्तप्रवाह में तीव्र गति उत्पन्न करने वाली किसी उपयोगी औषधि का भी सेवन कराना चाहिए। विष-दोष से पेट साफ हो जाने पर दर्द कम करने के लिए न्यून मात्रा में अफीम का सेवन भी किया जाता है।

तमाखू से मृत्यु

डाक्टर सी० ई० आरमण्ड सैम्पल लिखते हैं:— "तमाखू की नस्य लेने से भी मृत्यु हुई है और तमा के पत्तों के ढेर के मध्य सो जाने से भी विष प्रभाव कर गया है।"

ऐकाडमी ऑव मैडिसिन पैरिस (फ्रांस) की ओर से की गई छानबीन का परिणाम निम्नलिखित है:—

"जब मजदूर पहले लगाये जाते हैं तो शिरोवेदना और मतली होती है। अतिसार भी कभी-कभी हो जाता है। ये लक्षण ८ दिन से १५ दिन तक

रहते हैं। पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियां अधिक कष्ट पाती हैं। जब वे अभ्यस्त हो जाते हैं तो आगे कष्ट नहीं उठाते। जो लोग दो वर्ष तक काम करते हैं उनके शरीर का वर्ण भूरा हो जाता है जिससे यह ज्ञात होता है कि अनेक परिवर्त्तन हो रहे हैं। इन मजदूरों के रुधिर और मूत्र में किञ्चित् निकोटीन नहीं पायी जाती।"

अभ्यस्तता की विशेषता

परमेश्वर ने मानव शरीर का ऐसा विचित्र निर्माण किया है कि जिस बात का उसे अभ्यासी बनाया जाता है वह उसी के अनुरूप बन जाता है। एक जाट ईंटों पर आनन्दपूर्वक सोता है तो एक धनाढ्य अपने बिस्तरे में नन्हीं-सी कङ्कड़ी के रह जाने से रात भर बेचैन रहता है। एक किसान सारे दिन धूप में काम करता है, परन्तु एक बाबू धूप में आध-घण्टा भी खड़ा नहीं हो सकता। जिस संखिये की १ रत्ती मात्रा भी दारुण कष्ट और मृत्यु तक का कारण बन जाती है उसे एक मनुष्य दो तोले तक खा जाने का अभ्यासी हो जाता है और फिर भी जीवित रहता है। दैनिक ५ तोले अफीम खाने वाले मनुष्य विद्यमान हैं। मिट्टी और कोयले को कौन खाना चाहेगा? परन्तु स्त्रियां अभ्यासवश बड़े मजे से खाती हैं। इसी प्रकार जिस मदिरा में से अप्रिय दुर्गन्ध आती है उसकी कई-कई बोतलें लोग गटक जाते हैं। परन्तु इनमें से कोई अभ्यास भी अच्छा नहीं है। अफीम की मादकता उतर जाने के पश्चात् अफीमची की, मदिरा का नशा उतर जाने पर मद्यप की और तमाखू पीने वाले को किसी दिन तमाखू न मिलने की मनोदशा को यदि आपने देखा है तो नीचे लिखे वाक्य को आप सदैव स्मरण रखेंगे :—

"अन्वेषकों का कथन है कि यदि किसी को हानिप्रद वस्तु को सेवन करने का अभ्यास है तो उचित यही है कि वह उसे शनैः शनैः त्याग दे जिससे वह उसकी हानियों से सुरक्षित रहे।"

हानियां

तमाखू की हानियों की गणना करना वास्तव में एक बड़े ग्रन्थ का काम है। फिर भी यथाशक्ति प्रयास करते हैं। अपचन, मन्दाग्नि, खांसी, फेफड़े के रोग, निद्रा की कमी, दुःस्वप्न, शिर चकराना, नेत्ररोग, मुख की दुर्गन्ध, हृदय की निर्बलता, हृदय धड़कना, उन्माद आदि विकारों की उत्पत्ति तमाखू के सेवन से होती है। नेत्रों के लिए तो धूम्रपान विशेष रूप से हानिकारक होता है।

उच्छिष्टता

धूम्रपान करने वाला चाहे जितना स्वच्छ और साफ सुथरा रहता हो, उसको हुक्का पीते या धूम्रपान करते समय किसी प्रकार की घृणा और अरुचि नहीं होती। छोटे बड़े सबकी जूठन खानी पड़ती है। हुक्के की नड़ी पर प्रत्येक पीने वाले का थूक लगता है जो अनेक रोगों का कारण है। एक हकीम लिखते हैं :—

'एक सज्जन की जीभ पर आतिशक का घाव था जो कि केवल धूम्रपान करते रहने का परिणाम था। दूसरे सज्जन को नेत्र रोग और दन्तपूय (गोश्त खोरा) होगये थे, एक-दो दांत भी जाते रहे थे और मसूढ़े भी खाये जा चुके थे।'

मलावरोध

धूम्रपान से कोष्ठबद्धता होजाती है। परन्तु अभ्यास भी बड़ी चीज है। अभ्यास से ऐसा हो जाता है कि धूम्रपान के पश्चात् मल का त्याग हो जाता है, शौच होने लगता है। धूम्रपान करने वाले भोर होते ही हुक्का या सिगरेट की टोह करने लगते हैं। पीना आरम्भ करते ही मल उतरने लगता है। अधिक दबाव लगने पर उठकर शौचालय की ओर इतनी शीघ्रता से लपक पड़ते हैं कि किसी के रोके भी नहीं रुकते। यह अभ्यास बढ़ते बढ़ते यहां तक होजाता है कि शौचालय में ही हुक्का आदि लेजाना पड़ता है। हुक्का, सिगरेट आदि पीते जाते हैं और मल उतरता रहता है।

हुक्का और चुरट की तुलना

चुरट दो प्रकार के होते हैं—सिगरेट और सिगार।

सिगरेट तो वह है कि एक बहुत पतले कागज में तम्बाकू को लपेट कर ऊपर और नीचे के छोरों को खुला रखा जाता है और उसके एक छोर को जला लिया जाता है। सिगार वह होता कि तमाखू के पत्तों की अनेक परतें परस्पर लिपटी रहती हैं। और एक पाइप इनसे पृथक् होता है जिसको मुख में लगाने की एक नलिका और उसके दूसरे छोर पर तमाखू रख कर सुलगाने के लिए चिलम सी लगी रहती है। इसे प्राय: यूरोपनिवासी सेवन करते हैं। दोनों उपायों से ही धूम्र-पान किया जाता है। परन्तु हमारे देश में हुक्के से धूम्रपान करने का सामान्य प्रचलन है। इसको गुड़-गुड़ी, फरसी, नरेरा भी कहते हैं। कोई भी हो, जल से भरा हुआ एक पात्र सबसे नीचे होता है। उसी में होकर धुआं मुंह में जाता है। कुछ लोग केवल चिलम ही पीते हैं। चिलम की डंडी को गीला वस्त्र लपेट कर मुंह में लगा लिया जाता है और सिगार की भांति धूम्रपान कर लिया जाता है। धूम्रपान करने की देशी और विदेशी विधियों की तुलना करते हुये बरबस यह स्वीकार करना पड़ता है कि विदेशी विधि की अपेक्षा देशी विधि श्रेष्ठतर है। वैसे तो किसी भी दशा में धूम्रपान करना विहित और उचित नहीं है। परन्तु जो लोग किसी की सुनना नहीं चाहते और धूम्रपान करना ही चाहते हैं वे इन दोनों कुरीतितों में से न्यून कुरीति का सेवन करें तो अधिक हानि नहीं है। बुरे तो हुका और चुरट दोनों ही हैं, परन्तु हुक्का अपेक्षाकृत कम बुरा है। हमें अपने देश के उन नव-युवकों पर बड़ा खेद है जो हुक्का पीने की कुरीति का आरम्भ करके फिर उससे भी बढ़ी हुई बुराई में और विदेशियों का अन्धानुकरण करने में प्रवृत्त हो जाते हैं। जिस प्रकार मदिरापान करना प्रत्येक दशा में बुरा है, किन्तु खाली पेट पीना तो 'करेला और नीम चढ़ा' के उदाहरण स्वरुप है। यही दशा चुरट की है। तमाखू स्वत: त्याज्य वस्तु है, किन्तु चुरट द्वारा उसका सेवन करना तो और भी बुरा है। एक विदेशी पत्रिका में एक समय यह प्रकाशित हुआ था कि तमाखू का 'निकोटीन' नामक विष सिगार सिगरेट और पाइप के द्वारा अधिक तीक्ष्णता से प्रभाव करता है। निकोटीन जल में घुल जाता है। इसलिये हुके से धूम्रपान करते समय उसका धुआं पानी को छूकर निकलता है और निकोटीन का अधिक अंश उसमें घुल जाता है। यद्यपि एक विदेशी डाक्टर ने अपने ही अनुसन्धान के आधार पर यह घोषित किया है कि सिगार आदि के धुऐं में निकोटीन नहीं पाया जाता, तथापि ऐसा कोई कारण नहीं है कि धुएँ में निकोटिन का अंश सम्मिलित न रहे। एक दो चिलम पीने के बाद ही हुके का पानी विषैला, सड़ा हुआ और दुर्गन्धयुक्त हो जाता है।

तमाखू की हानियां और डाक्टरों की सम्मतियां—

श्री ऐलबर्ट मैक्स—'तमाखू से स्मरणशक्ति क्षीण हो जाती है।'

डाक्टर गुरगास—'तमाखू ध्यान को केन्द्रित नहीं होने देता।'

डाक्टर सोल—'तमाखू के सेवन से स्नायुएं तप्त होकर उत्तेजित हो जाती हैं और कुछ समय के पश्चात् निर्बल पड़ जाती हैं।'

श्री ऐलबर्ट सैम्सन—'धूम्रपान से स्मरणशक्ति के मार्ग में भय उपस्थित हो जाता है।'

डाक्टर विलियम हैमण्ड—धूम्रपान से युवकों का शारीरिक विकास, बढ़ोतरी, माप आदि मारे जाते हैं।

डाक्टर क्लेयर—'मैंने ऐसा कोई व्यक्ति नहीं देखा जिसके माता पिता तमाखू सेवन करते हों और उसके स्नायु तथा मस्तिष्क निर्बल न होगये हों।'

डाक्टर गुरगास—हृदय शोकातुर एवं दुर्बल, शरीर निर्बल, नेत्रों की ज्योति क्षीण और अपचन आदि विकार हो जाते हैं।'

डाक्टर टेलर—हृदय और मस्तिष्क पर बुरा प्रभाव पड़ता है। हृदय के रोग मृगी आदि भी अनायास हो जाते हैं।

—शेषांश पृष्ट ५८४ पर।

कामला

लेखक—वैद्य आशानन्द जी पञ्चरत्न,
एम० बी० बी० एस०, आयुर्वेदाचार्य, रिटायर्ड वी. एम. एस., एक्स एच. एम. एस. आदि।
रचयिता—आधुनिक चिकित्सा विज्ञान, व्याधिविज्ञान आदि।

पर्याय—यह आजकल पीलिया के नाम से प्रसिद्ध है। अंग्रेजी में इसे *Jaundice* या *Icterus* कहते हैं, यूनानी में यर्कान। डाक्टरी परिभाषा में यह केवल मात्र एक लक्षण है जो अनेक प्रकार के रोगों में होता है। एक विशेष प्रकार की वस्तु जिसके कारण पित्त को हरा-पीला वर्ण प्रदान होता है, रक्त में वह अधिक मात्रा में उपस्थित हो जाती है इस चीज का नाम भी पित्त रंजक (पित्त को रंगने वाली वस्तु) है। इसको साधारण आंगल भाषा में इसी निरुक्ति के अनुसार *bile pigment* कहते हैं।

यह स्मरण रहे कि स्वस्थ अवस्था के रक्त में पित्त-रंजक नियत मात्रा में तो सदा होती है ही, जब यह अपने परिमाण से बहुत बढ़ जाता है, और रक्त इसको सारे शरीर में अधिक मात्रा में पहुँचाता है तभी शरीर में पित्तरंजक की अधिकता प्रकट होती है, शरीर का वर्ण भी पीला सा होजाता है, त्वक्, नख, नयन, कपोल, तालु सब पीले हो जाते हैं। मूत्र का रंग भी अधिक गाढ़ा हो जाता है। जब यह पित्तरंजक रक्त में अधिक बढ़ जाता है तो अश्रुओं, थूक, पसीने एवं दूध में भी आने लगता है।

स्वस्थ अवस्था में मल का जो रंग होता है यह भी पित्त रंजक के कारण होता है। जिस रोग में पित्त अन्त्र तक नहीं पहुँच पाता जैसे अवरुद्ध कामला में, उसके साथ पित्त रंजक भी नहीं आता, तब मल का रंग फीका (श्वेत) हो जाता है।

आयुर्वेद में कामला का परिचय यूं दिया गया है—

> हारिद्रनेत्रः भृशं हारिद्रत्वङ्नखाननः।
> रक्तपीतशकृन्मूत्रो भेकवर्णो हतेन्द्रियः॥

अर्थ—रोगी अधिक हलदी के रंग के से नेत्र, त्वचा, नख और मुख वाला होता है, उसका मल और मूत्र लालिमा लिए पीतवर्ण का होजाता है। उसके शरीर का वर्ण (मेंढक जैसा) भेक सा होजाता है और हतेन्द्रिय होजाता है. अर्थात् उसकी इन्द्रिय अपने अपने विषय को ग्रहण करने में असमर्थ होजाती हैं।

कारण और सम्प्राप्ति—

स्थूल रूप से कामला के दो भेद माने गये हैं—

(१) कोष्ठआश्रय और (२) शाखा आश्रय।

१—कोष्ठ आश्रय में विकार कोष्ठ (उदर गुहा) में होता है। स्रोतोजन्य एवं अवरुद्ध कामला इसके अन्तर्गत हैं।

२—शाखा आश्रय—जिसमें विकार उदर में सीमित न होकर शरीर की समस्त शाखाओं (विभाग, अङ्ग) में होता है।

डाक्टरी मत में कारण अनुसार कामला के निम्नोक्त भेद हैं, उन भेदों का वर्णन आयुर्वेद मत के विपरीत नहीं।

स्रोतोजन्य तथा अवरुद्ध कामला (*obstructive jaundice*) कोष्ठ आश्रय कामला के अन्तर्गत है। इसमें पित्त प्रणाली के मार्ग में रुकावट होजाती है, पित्त यकृत् में बनता तो बिलकुल बराबर है परन्तु पित्त प्रणाली का रास्ता बन्द होने के कारण पित्त आगे नहीं जापाता, यकृत् में जमा रहने लगता है, जब यकृत भी भर जाता है उसमें स्थान नहीं रहता. तो पित्त रंजक रक्त में ही एकत्र होने लगता है और कामला हो जाता है। जैसे-जैसे बन्द मार्ग खुल जाता है कामला भी जाता रहता है। यदि मार्ग सदा के लिये बन्द हो जाय

और न खुलने पाये जैसे यकृद्दारी में, तो कामला उत्तरोत्तर बढ़ता जाता है और रोगी को ले मरता है।

अ—पित्ताशय की अश्मरी (पत्थरी) पित्ताशय से पित्त प्रणाली में सरक कर नीचे कहीं रुक जाती है। पित्त प्रणाली जहां अन्त्र मार्ग में खुलती है वह स्थान तंग होता है वहां ही आकर पत्थरी अटकती है। कदाचित महागुदा (*round worm*) अन्त्र से ऊपर।

आ—पित्त प्रणाली के मार्ग में शोथ होजाती है यह शोथ किसी संक्रमण (*infections*) से होती है और मार्ग बन्द होजाता है। जैसे नासा प्रदाह (जुकाम प्रतिश्याय) में नाक बन्द हो जाती है बिलकुल वैसे ही उस प्रदाह में पित्त प्रणाली बन्द हो जाती है। प्रायः अन्त्र की दीवार से संक्रमण सरक कर पित्त प्रणाली में आता है, इसको आंगल भाषा में *catarrhal jaundice* कहते हैं। प्रायः इसी कामला से पीड़ित रोगी ही अधिक मिलते हैं ये सुख साध्य हैं।

इ—जहां पित्त प्रणाली अन्त्र में खुलती है वहां उसी जगह प्रणाली के मुख पर अन्त्र की शोथ-विद्रधि, अर्बुद, ग्रन्थि आदि के बन जाने से भी पित्त प्रणाली का मार्ग बन्द होजाता है।

ई—यकृत में शोथ, विद्रधि, अर्बुद या ग्रन्थि, इनके दबाव से भी पित्त प्रणाली दब कर बन्द होती है। इसी प्रकार आमाशय, अन्त्र, क्लोम आदि निकटस्थ अंगों के शोथ, विद्रधि, अर्बुद या ग्रन्थि के दबाव से भी पित्त प्रणाली दब सकती है. इन स्थानों के केन्सर में तो यह प्रायः हो ही जाता है।

उ—पित्त प्रणाली में किसी कारण क्षत या व्रण हो जाए तो जब वे क्षत भरते हैं तब कदाचित उनके भरने से पित्त प्रणाली का मार्ग सिकुड़ कर बन्द होजाता है।

विरल ऐसा भी होता है कि जन्म से ही पित्त प्रणाली बन्द होती है अथवा तंग है तो उनमें जन्म से या जन्म से दो चार दिन बाद कामला होजाती है, यह बढ़ती जाती है, ऐसा बालक शीघ्र मृत्यु को प्राप्त जाता है।

ऊ—एक प्रकार के यकृद्दारी रोग में कालान्तर में यकृत बहुत सिकुड़ जाता है यकृत की बहुत सी सैलें भी नष्ट-प्राय होजाती हैं एवं सूक्ष्म पित्त प्रणालियां भी दब जाती हैं, परिणाम स्वरूप पित्त बनता भी कम है जिसके कारण पित्त रंजक सारा प्रयुक्त नहीं होता और रक्त में ही रहता है। नालियों पर दबाव के कारण जितना पित्त बनता है वह भी सारा बाहर नहीं जा पाता, पीछे रहने लगता है जिससे कामला होजाता है। ज्यों-ज्यों रोग बढ़ता जाता है कामला गूढ़से अधिक गूढ़ होता जाता है सूक्ष्म पित्त नालियां भी उत्तरोत्तर अधिकाधिक बन्द होती जाती हैं। इसको आयुर्वेद में कुम्भकामला कहते हैं।

कालान्तरात् खरीभूता कृच्छ्रा स्यात्कुम्भकामला

कीटाणुजन्य अर्थात् संक्रामिक कामला—कई संक्रामिक रोगों अर्थात् कई रोगाणु ऐसे हैं जिनके आक्रमण से यकृत् की सैलें शोथयुक्त होकर कार्य करने में असमर्थ होजाती हैं; पित्तरंजक से पित्त नहीं बना पातीं, वह रक्त में रह कर कामला उत्पन्न करता है। शोथ के बढ़ने पर सैलें मर भी जाती हैं, अतः यदि संक्रमण (*infection*) उग्र हो तो यकृत् के बहुत से भाग की सैलें नष्ट होकर रोगी के प्राण संकट में पड़ जाते हैं।

रोगाणु स्थूलतया निर्माता है।

वाईरस ‡ जन्य यकृत् शोथ, उसे ही *Infective jaundice* नाम दिया गया है।

ये वाईरस रक्त द्वारा ही यकृत् में पहुँचते हैं। कामला उत्पादक वाईरस एक से अधिक जाति के

---

‡ *virus* उन रोगाणुओं को कहते हैं जो अति सूक्ष्म अदृश्य रोगाणु होते हैं, सूक्ष्म यन्त्रों से भी नहीं देखे जा सकते। इनकी सिद्धि और उपस्थिति व पहचान एवं संक्रमण प्रसार प्रयोगशाला के प्रयोगों से सिद्ध होता है, भिन्न रोगों के वाईरस भी भिन्न भिन्न होते हैं।

है। जिनका प्रसार भी विभिन्न प्रकार से होता है। वाईरस यकृन् में पहुँच कर उसकी सैलों में शोथ उत्पन्न कर देते हैं। इनका प्रसार निम्न प्रकार से होना है।

(क) कोई तो नासा और मुख की श्लेष्मा द्वारा प्रसार पाते हैं। रोगी की नासा और श्लेष्मिक कला में ये रोगाणु उपस्थित होते हैं, उससे दूषित रूमाल वस्त्र आदि द्वारा दूसरे व्यक्तियों तक जाते हैं।

(ख) कई एक दूषित जल द्वारा प्रसार पाते हैं, रोगी के मल में ये रोगाणु होते हैं। यदि इस मल से किसी प्रकार पेय पानी सम्पर्क में आ जाये तो उस पानी के प्रयोग से रोग प्रसार पाता है। इसका विस्तृत वर्णन आगे आजकल का पीलिया अर्थात कामला रोग के प्रकरण में आयेगा।

(ग) मक्खियों द्वारा—रोगाणुयुक्त विष्ठा से मक्खियां उड़कर अपने पांव और पंख द्वारा रोगाणु को खाद्य पदार्थों तक पहुंचाती हैं और रोग प्रसार का हेतु बनती हैं।

सामान्य कामला (*Catarrhal jaundice*)

जिसमें पित्त प्रणाली की शोथ होती है, इसमें भी यकृत् के सैलों की शोथ होती है परन्तु पित्त प्रणाली की अपेक्षा कम। इसका प्रसार श्लेष्मा द्वारा अथवा मल द्वारा होता है। इससे पित्त प्रणाली का मार्ग रुक जाता है।

वक्तव्य—यह वाईरस वाला कामला मच्छरों आदि कीट पतंगों के काटने से नहीं फैलता, जैसे मलेरिया फैलता है। और न ही, यह रोग पशु-पक्षियों या क्षुद्र प्राणी, चूहे आदि में जाता है।

२—मूषक विषज कामला—स्पाईरोकीटल जाण्डिस (*Spiro chettal jaundice*) या वेलस डिजीज (*Weil's disease*) के रोगाणु उपदंश के रोगाणु के सदृश्य कर्पणी आकार (स्क्रयू *Screw* की भांति) का होता है। यह रोगाणु मूषकों के विष्ठा में रहता है, उनके सम्पर्क से मनुष्यों में आता है, अतः गटर व मकान आदि में जहां चूहों की मींगनें रहती हैं वहां की सफाई करने वाले महतर, मजदूरों आदि में अधिक होता है।

३—पीतज्वर (*yellow fever*)—यह ज्वर अभी तक भारतवर्ष में नहीं आया। पाठकों को यह याद होगा कि हमारे केन्द्रीय सभा के उपाध्यक्ष श्री अनन्त स्वामी आयंगर अभी हाल ही में विलायत आदि प्रदेशों का दौरा करके जब वापस आये, तब उन्होंने पीतज्वर के प्रति टीका नहीं कराया था इसलिये उन्हें दस दिन तक कारन्टीन में रखा गया। यह सावधानता इसलिए की जाती है कि भारतवर्ष अभी तक इस रोग से बचा है। यह रोग यहां न आने पावे। पीतज्वर भी एक प्रकार के वाईरस से होता है जो मलेरिया की भांति मच्छरों द्वारा फैलता है।

(२) कुछ संक्रामिक रोग ऐसे है जिनमें कामला सामान्यतः नहीं होता, केवल कभी उपद्रव रूप में होता है, वे रोग स्थूल रूप से ये हैं—मलेरिया, आन्त्रिकज्वर (टायफाईड) लघु-आन्त्रिक ज्वर, श्वसनक ज्वर (न्यूमोनिया), रोमान्तिका, उपदंश इत्यादि रोग।

आयुर्वेद में संक्रामिक कामला का वर्णन नहीं है। वस्तुतः स्थिति यह है कि बहुत से संक्रामिक रोग हमारे देश में बाहर से आये हैं। जैसे उनमें से पीतज्वर अभी तक यहां आया ही नहीं, अतः इनका वर्णन आयुर्वेद में नहीं है तो, अचम्भे की कोई बात नहीं, वैसे इन सबका समावेश शाखाश्रय कामला में होता है।

४—विषज कामला (*Toxic jaundice*)

विष यकृत् सेलों में जाकर शोथ उत्पन्न कर कामला को पैदा करता है। विष निम्नोक्त प्रकार के होते हैं:—

(अ) रोगाणु जन्य—इनका वर्णन ऊपर कर आये हैं, वस्तुतः रोगाणु कुछ नहीं करते. अपि तु उनसे विष उत्पन्न होकर सब लक्षण करते हैं, उन्हें

विषज न कहकर कीटाणुज अर्थात् संक्रामक कामला कहते हैं।

(आ) जंगम या प्राणिज विष—जो प्राणियों यथा सर्प, काला बिच्छू आदि प्राणियों के काटने से होता है।

(इ) वानस्पतिक विष—कई वानस्पतिक औषधियां ऐसी होती हैं जिनके सेवन से यकृत् शोथयुक्त होकर कामला उत्पन्न होता है। बासी पर्युषित खाद्य पदार्थों पर एक विशेष प्रकार की काई आ जाती है कदाचित इसके सेवन से।

(ई) पार्थिव और रासायनिक (केमीकल) पदार्थ कुछ ऐसे होते हैं जो यकृत् में बहुत जल्दी और अति अधिक शोथ उत्पन्न कर देते हैं, यथा पारे के योग, संखिया के योग, फासफोरस के योग इत्यादि। यह बात यहां विशेष उल्लेखनीय है कि जितनी पार्थिव केमीकल दवाइयों का ऊपर निर्देश है, यहां जो अन्य इस श्रेणी की औषधियां हैं, वे सब आधुनिक डाक्टरी-चिकित्सा की हैं। वैद्यक की नहीं, यदि कोई है तो विरल।

(उ) पांचवें प्रकार का विष—सगर्भ अवस्था में किसी-किसी रुग्णा में गर्भ स्थिति के कारण कभी-ऐसा विष उत्पन्न हो जाता है जिसका आक्रमण यकृत पर भी होता है, यह कामला उत्पन्न कर देता है। इसको गर्भिणी का विष (*toxins of pregnancy*) कहते हैं। अनेक बार यह विष अत्यन्त घोर होता है अनिष्ट परिणाम मृत्यु का भय रहता है। गर्भपात कराकर ही इससे निवृत्ति करनी पड़ती है। इस विष की गणना यदि चाहें तो प्राणिज विष में हो सकती है, वस्तुतः यह आत्मज विष पृथक् प्रकार का विष है। इसे गर्भज विष भी कहा जाता है। इस विष से सिर दर्द, आक्षेपक, पाण्डुता आदि अन्य लक्षण भी होते हैं।

विष के अनुसार लक्षण मृदु या उग्र होते हैं; जब विष तीक्ष्ण हो या अधिक हो तो यकृत की सारी सैलें मर जाती हैं, रोगी शीघ्र महाप्रयाण कर जाता है।

आयुर्वेद में कामला को पाण्डु रोग का उपद्रव रूप माना गया है। इसका वर्णन आगे आयेगा। इसके अतिरिक्त स्वतन्त्र रूप से भी कामला की उत्पत्ति बताई है, यह विषज कामला स्वतन्त्र रूप से होने वाला कामला मानना चाहिए; वाग्भट निदान स्थान में लिखा है—

भवेत् पित्तोल्बणस्य सो पाण्डुरोगाल् ऋतेऽपि च।

इसकी व्याख्या करते हुए आचार्य विजयरक्षित ने टीका में स्पष्ट लिखा है—

स्वतन्त्राऽपि कामला भवति यथा राजयक्ष्मा स्वतन्त्रेव उपेक्षितेष्वपि कासेषु भवति त्याज्ञ।

५—रक्तनाशज अथवा पाण्डुजन्य कामला
(*Heamolytic Jaundice*)

रक्तकणों के नाश से रक्तरंजक मुक्त होता है, इसी रक्तरञ्जक से ही पित्तरंजक बनता है। स्वस्थावस्था में जितना रक्तरंजक मुक्त होता है सबसे पित्तरंजन बन जाता है, वह सारे का सारा पित्त बनाने में प्रयुक्त हो जाता है। यदि रक्तकण ज्यादा मरें तो उससे जितना पित्तरंजक बनता है, वह सारा पित्त बनाने में प्रयुक्त नहीं हो पाता। परिणामस्वरूप उसके रक्त में रह जाने के कारण कामला हो जाता है। यह केवल उन रोगों में होता है, जहां रक्त-नाश शीघ्रतिशीघ्र हो रहा हो, जीर्ण ज्वरों में या जीर्ण व्याधियों में नहीं होता। यह स्मरण रहे कि रक्तक्षरण से अर्थात् रक्त के बाहर निकलने यथा अर्श, क्षत इत्यादि में क्षरण से होता है उनके मरने से वही रक्त न्यूनता (पाण्डु) में रक्तकण रक्त के साथ बाहर निकलते नहीं अतः इनमें कामला की सम्भावना कदापि नहीं होती। रक्त नाश निम्नोक्त रोग में होता है—

(अ) विषमज्वर (मलेरिया) कालाजार ज्वर, (आ) रक्त कणों को नाश करने वाले विशेष प्रकार के रोग यथा विलोहितता श्रेणी के रोग (*Acholuric jaundice spleenic anaemia*) इनका

वर्णन व्याधि विज्ञान आदि निदान सम्बन्धी पुस्तकों में देखें। विस्तार भय से तथा असम्बन्धित होने के कारण इनका वर्णन यहां नहीं किया जाता।

(ई) असात्म्य रक्त ग्रहण से-जब किसी व्यक्ति को किसी अन्य व्यक्ति का रक्त दिया जाय और दाता का रक्त ग्राही के रक्त से असात्म्य (*incompatible*) बैठे तो इसके जाने से ग्राही के रक्त कण यकायक मरने लगते हैं तभी यह दशा होती है। इसीलिए तो रक्त दान से पहले दाता और ग्राही दोनों के रक्त का मिज्ञान कर देखा जाना आवश्यक है कि वे सम श्रेणी के हैं, इसी के अन्तर्गत नवजात शिशुओं का रक्त नाश(*Erythro-blastosis*) आता है। इसमें पत्नी का रक्त पति के रक्त से सर्वथा विरुद्ध है। इनका परिणाम बालक पर पड़ता है। जन्म के तीसरे या चौथे दिन जब बालक अपने निर्मित रक्त कणों पर आता है जभी दूध भी पीने लगता है तो रक्त कण एकदम असंख्य मात्रा में नाश होने लगते हैं। बालक ३-४ दिन में ही चल बसता है। उसको इतनी अत्यन्त कामला होती है कि उसका सारा शरीर हल्दी की तरह गहरा पीला पड़ जाता है पसीना भी पीले पानी की भांति होता है।

गर्भ में बच्चा माता के रक्त पर जीवित रहता है। बाहर आकर वह अपने रक्तकणों को निर्माण करने लगता है। प्रायः बालक रक्तकणों को पिता से ही ग्रहण करता है। अर्थात् बालक के रक्त कण उसी श्रेणी के होते हैं जो पिता के होते हैं। बालक में पहला रक्त मां का होता है। माता और पिता का रक्त परस्पर विरोधी है। माता अथवा पत्नी का रक्त यदि पिता (पति) को दिया जाय, तो तत्क्षण पिता के रक्तकण समूह रूप में नष्ट होने लगते हैं वह विचारा २-३ दिन में परलोक की राह लेता है। यही हालत बच्चे की होती है, ज्योंही वह अपने निर्माण किये रक्तकणों पर आता है, वह जीवन यात्रा ही समाप्त कर देता है। (पिता के रक्त को *RH*+और माता के रक्त को *RH*—कहते हैं।)

यदि जन्म लेते ही अथवा २-३ या चौथे दिन जब तक उसके अपने कण निर्माण नहीं होते, उस बच्चे का सारा रक्त (जो मां का रक्त है) निकाल दिया जाय और उसके स्थान पर पिता के अनुरूप रक्त दिया जाये तो बालक का जीवन बचाया जा सकता है। कभी ऐसा भी होता है कि बच्चे में बाप के अनुरूप कण न बनकर माता के अनुरूप कण बनते हैं, तो ऐसा बच्चा जीवित रहता है। इसकी संभावना स्थूल रूप से ५ के पीछे १ की है, अर्थात् ४ शिशुओं में पिता के अनुरूप रक्तकण होते हैं, और एक के माता के अनुरूप। यह कोई नियम नहीं कि कौन से बच्चे के रक्त कण किस के अनुरूप हों। लेखक के एक सम्बन्धि पति पत्नी की यही अवस्था है। पहला बालक मेरे अपने अस्पताल में मेरी गोद में मरा, उसका रंग रूप देख कर इसी रोग का संदेह हुआ। आज ८ वर्ष की बात है, तभी नया नया इस रोग के कारण का आविष्कार हुआ था परीक्षार्थ उस का रक्त भी बम्बई से बाहर अमरीका से मंगवाया गया था। पति पत्नी की रक्त परीक्षा से परस्पर विरोधी (**RH**+& **RH**-) रक्त निकले। दूसरी बार भी बालक में यही दशा होने को हुई, उसका रक्त भी **RH**— था उसको कामला के लक्षण प्रादुर्भाव होने लगे, तत्काल मेरे अस्पताल में रक्तदान का प्रबन्ध किया गया, यह न केवल बम्बई बल्कि भारतवर्ष में पहला केस था। दुर्भाग्यवश वह बालक अन्य कारण से मृत्यु का ग्रास बन गया। उस पर माता पिता ने आगे को कुछ भी करने को इन्कार कर दिया और ईश्वर की प्रार्थना करने लगे कि उनको माता के अनुरुप रक्त वाले बालक दें। सो ईश्वर ने ऐसा ही किया उसके बाद के दोनों बालक मातानुरूप रक्तकण वाले हैं, ईश्वर की महान कृपा से दोनों बालक जीवित इलाहाबाद में हैं। इसके गर्भस्थिति का मूल कृत्रिम रूप से उड़ा दिया गया, यह झंझट ही न हो। प्रसंगवश बात आ गई, विषय से कतिपय संगत परकरण का होने से पाठकों की कौतुकता के निवारण की दृष्टि से उसका उल्लेख कर दिया है।

लक्षण और चिकित्सा—कामला के लक्षण सुविख्यात हैं, इनका लिखना यहां अनावश्यक समझ कर छोड़ दिया जाता है। कामला के साथ साथ उन उन रोगों के लक्षण भी होते हैं जिनमें कामला लक्षण रूप में विद्यमान रहता है। उन सब के लक्षणों का वर्णन एक बहुत लम्बा विषय है, सब रोगों के लक्षण पृथक् पृथक् वर्णन करने पड़ेंगे। पाठकों को यही परामर्श है कि व्याधि विज्ञान आदि निदान सम्बन्धी पुस्तकों का अवलोकन करें।

चिकित्सा के सम्बन्ध में भी यही समझें। कारण अनुसार चिकित्सा प्रतिपाद्य होती है, पृथक् पृथक् रोगों की चिकित्सा स्वभावतः पृथक् पृथक् ही होगी, यह भी बहुत विस्तृत विषय है। समय हुआ और सम्पादक महोदय की आज्ञा हुई तो समय समय पर आपकी सेवा करता रहूँगा, अब तो यही उचित समझा जाता है कि आजकल में देहली नगर तथा उसके इतस्ततः में फैली हुई कामला के कारण सम्प्राप्ति तथा चिकित्सा का सविस्तार वर्णन किया जाये।

आजकल का संक्रामिक कामला

(*present day infectious jaundice*)

यही कामला आजकल देहली एवं आस-पास के इलाकों में महामारी के रूप में फैल रहा है, इसी को ही पीलिया रोग के नाम से पुकारा जाता है। इसका प्रसार दूषित जल के प्रयोग से तथा दूषित खाद्य पदार्थों के सेवन से हो रहा है।

रोगियों के आन्तों में रोग के रोगाणु (वाईरस) उपस्थित होते हैं तथा उन व्यक्तियों के आन्तों में होते हैं जो हाल ही में रोग मुक्त हुए हैं अर्थात् जो अभी पुपूप अवस्था (*convalascents stage*) में हैं। ये रोगाणु मल द्वारा बाहर निकलते रहते हैं। जब ऐसी विष्ठा पेय जल के सम्पर्क में आजाये तो वह पानी दूषित (रोगाणु युक्त) होकर रोग प्रसार का साधन बनता है। इस वर्ष जमुना नदी में अभूतपूर्व बाढ़ आई, पानी सर्वत्र फैल गया। नगर के चारों ओर का मल तथा गढ्ढों का मल पीने वाले पानी से मिल गया। यही पानी नलों द्वारा नगर निवासियों को पीने के लिए मिला। पानी के दूषित होने पर रोग सर्वत्र सारे नगर निवासियों तक पहुँच गया।

भारतवर्ष में पहली बार ही इस रोग का इस प्रकार महामारी के रूप में आक्रमण हुआ। अब के बाद समय समय पर इसके महामारी के रूप में फैलने की सम्भावना रहेगी। अब तक भारतवर्ष में इसके एकाकी कहीं कहीं कभी कभी कोई कोई केस होते थे, वे प्रायः घातक न थे, महामारी के दिनों में ही घातक रूप धारण कर लेता है जैसे विशूचिका के विषय में होता है। इसके रोगी भी कहीं न कहीं कभी कभी इधर उधर एकाकी रूप में हुआ करते हैं। समय समय पर २-४ वर्ष बाद कुम्भ आदि भारी मेलों पर यह महामारी का रूप धारणकर लेता है तभी अधिक घातक होता है।

देश, काल, जल और वायु के दूषित हो जाने पर ही ये रोग महामारी के रूप में फैलते हैं तब उन्हें जनपदोध्वंस (*epedemics*) कहते हैं।

यही कामला मक्खियों द्वारा भी प्रसार पाता है। रोगियों, पुपूष अवस्था के व्यक्तियों के मल में रोगाणु होते हैं, वहां पर से मक्खियां उड़कर खाद्य पदार्थों पर जा बैठती हैं, उनको दूषित (रोगाणु ग्रस्त) कर रोग प्रसार का हेतु बनती हैं। साधारणतया रोग के एकाकी रूप में प्रसार का यह कारण होता है परन्तु महामहारी के दिनों में इस कारण से भी रोग प्रसार में पर्याप्त सहायता मिलती है। वैसे भी, परन्तु महामारी के दिनों में, विशेषकर बाजार की मिठाई, पूड़ी, मेवा आदि खाद्य पदार्थ जो नंगे पड़े रहते हैं, जिन पर मक्खियां बैठती हैं नहीं खाना चाहिए। इस वर्ष दिल्ली के पीलिया रोग के प्रसार में मक्खियों का उत्तरदायित्व निस्सन्देह पर्याप्त है।

वक्तव्य—अब न केवल देहली, प्रत्युत देहली के चारों ओर दूर-दूर पंजाब, राजपूताना, यू. पी. के पश्चिम जिलों के ग्रामों में भी इसी कामला के पर्याप्त रोगी देखने में

आये हैं। उनका प्रसार मल द्वारा ही हुआ मानना चाहिए, इनमें अनेक ऐसे हैं जिन्होंने दूषित जल का प्रयोग नहीं किया था तो भी रोग ग्रस्त हुए। वे खाद्य पदार्थों द्वारा रोगग्रस्त हुए। इस समय इन प्रान्तों का वातावरण देश काल (ऋतु) जल, वायु, दूषित हुए इसमें सन्देह का अवसर ही नहीं, इस समय अधिक वर्षा, पात, ऋतु और पानी का एकत्रित रहना ही इस बात को साक्षी है।

सम्प्राप्ति—यह रोग वस्तुतः समस्त शरीर व्यापी है, परन्तु इसके वाइरस (*Virus*) का यकृत् के कोषों (सैलों) पर विशेष आक्रमण होता है। ये वाईरस तथा उनका विष रक्त द्वारा भ्रमण करते हुए यकृत में पहुंच कर उसकी सैलों को शोथयुक्त कर देती हैं, जिसके कारण कामला होता है। शोथ के बढ़ने पर वे सैलें शिथिल हो जाती हैं, अन्ततः मर जाती हैं यथा क्षोभ के कारण। इनमें विशेष पित्त प्रणाली की सैलों में तथा इतस्ततः सौत्रिक तन्तु बन जाते हैं, कभी-कभी यह सौत्रिक तन्तु बहुत बढ़ जाते हैं परिणाम-स्वरूप किसी-किसी रोगी में यकृदारी (*Cirrhosis of liver*) रोग हो जाता है।

जब यकृत की सैलें अति अधिक मात्रा में मर जाती हैं तो गूढ़ कामला हो जाता है और रोगी बेसुध (संन्यस्त) होकर परलोक सिधार जाता है।

लक्षण—सब रोगियों में लक्षण समान नहीं होते और न एक समान उग्र ही होते हैं।

रोग आरम्भ चार प्रकार से होता है—

(१) गुप्त रीति से आरम्भ होता है, रोगी को गुमान तक नहीं होता है कि उसे कामला हुआ चाहता है। रोगी को साधारण अरुचि, ग्लानि, अङ्गमर्द सा होता है, भूख मन्द पड़ जाती है, किसी-किसी को उत्क्लेश और वमन, अथवा किसी-किसी को उदर में गड़बड़ प्रतीत होती है। मन्द ज्वर भी साथ में होता है। तीसरे, चौथे या पांचवें दिन पीलिये की शिकायत होने लगती है तभी असली रोग का सन्देह होता है।

(२) ज्वर अकस्मात् चढ़ जाता है, आरम्भ से ही १०१-२-३ या १०४ डिग्री होता है, प्रायः शीत लगकर चढ़ता है, कभी शीत नहीं भी लगती। ३-५-७ दिन का ज्वर टाईफाइड आदि का सन्देह होता है साधारण ज्वर के सामान्य लक्षण शिरपीड़ा, अङ्गमर्द आदि उपस्थित होते हैं। दूसरे, तीसरे या चौथे दिन कामला का स्वरूप प्रकट होता है।

(३) रोगी की प्रकृति थोड़ी-थोड़ी ढीली रहती है। रोगी को यूं प्रतीत होता है मानो ज्वर होना चाहता है, होता नहीं, रोगी चलता फिरता है। ४-५ या छठे दिन साधारण कामला प्रकट होने लगता है। कभी-कभी तो यह कामलापन (पीलापन) इतना साधारण होता है, कि इसकी ओर ध्यान नहीं जाता। १०-१५ दिन में रोग शान्त हो जाता है। रोगी स्वस्थ प्रतीति करता है।

(४) विरल ही किसी एक रोगी में ऐसा भी होता है कि कामला के दर्शन तक नहीं होते, सामान्य ज्वर ६६-१०० होता है। इसकी पहचान प्रायः असम्भव होती है। कदाचित इन रोगियों में रोमान्तिकवत् बारीक-बारीक पीड़िकायें या शीतपित्तवत चकत्ते, धप्पड़, कोठ आदि प्रगट हो जाते हैं।

वक्तव्य—उपर्युक्त पीड़िकायें, स्फोट, धप्पड़, कोठ आदि अन्य प्रकार के कामला में भी उत्पन्न हो जाते हैं, परन्तु कम।

सामान्य लक्षण—जो संक्रामिक कामला के प्रायः सब रोगियों में समान रूप में होते हैं।

ज्वर—प्रायः आरम्भ से होता है, प्रायः ३-४ दिन या कभी-कभी ५ दिन में उतर जाता है। ज्वर उतरने के कई दिन बाद रोगियों में यकृतशोथ कायम रहती है, यकृत बढ़ा हुआ और शोथयुक्त रहता है, इनको शान्त होते-होते कई दिन लग जाते हैं।

कामला—ज्वर आरम्भ के ३-४ या पांचवें दिन प्रकट होता है, ज्वर उतरने के बाद ही होता है। इस को जाते-जाते ३, ४, ५ सप्ताह लग जाते हैं। कभी-आराम आते-आते १॥-२ माह तक लग जाते हैं।

विरल अवस्था में ऐसा भी होता है कि ज्वर उतरने के बाद कामला उत्पन्न होता है, कामला उत्पन्न होने पर पुनः ज्वर हो जाता है, यह ज्वर चन्द दिनों तक रह कर उतर जाता है।

मल--का कोई नियम नहीं, किसी को विबंध होता है, तो किसी को अतिसार, कइयों को मल ठीक-ठीक उतरता रहता है, विबन्ध की अपेक्षा थोड़ा पतला मल आना श्रेष्ठ है।

उपद्रव—साधारण उपद्रव—कण्डु, स्फोट, पित्त पीड़िकायें, कोष्ठ, उदर्द आदि। भयावह उपद्रव ये हैं:–

(अ) रक्तपित्त–अधोरक्तपित्त गुदा द्वारा अन्त्र से रक्तस्राव।

ऊर्ध्व रक्तपित्त—श्लेस्मा द्वारा फेफड़ों का रक्तस्राव।

तिर्यक् रक्तपित्त—त्वकगत् रक्तस्राव।

(आ) वातिक विकार–शीर्षावरण शोथ, गोर्दशोथ (मस्तिष्क शोथ) पक्षाघात आदि।

रोग परिणाम—साधारण वेग रोग का १-१॥ मास तक जाता है। मृदु वेगवाले में ३-४ सप्ताह में ठीक हो जाता है। उग्रावस्था में अधिक देर २-२॥ मास तक जा सकता है तथा घोर उपद्रव कर देते हैं, यथा यकृत में विस्तृत रूप से सौत्रिक तन्तु वृद्धि (यकृद्दारी रोग) उत्पन्न होकर रोगी की जीवन यात्रा को कष्टमय बना कर घटा देता है।

अति उग्रवेग में रोगी महा प्रयाण कर जाता है, रोगी गुढ़ कामला, मच्छी में बेसुध (संन्यस्त) हो कर चल बसता है अथवा उसे शीर्षावरण शोथ ले चलते हैं, प्रायः मृत्यु संन्यास से ही होती है।

यहां यह बता देना आवश्यक प्रतीत होता है कि मद्यपायियों (शराबियों) को यदि यह रोग हो जाए तो अरिष्ट होता है उनका बचना कठिन होता है। महामारी के दिनों में तो निस्सन्देह चल बसते हैं, विरल भाग्यशाली ही बचता हो।

रोग मीमांसा—रक्त परीक्षा से रक्त के श्वेताणु स्वस्थवत् ही होते हैं, उग्र दशा में घट जाय तो सही, पर बढ़ते कभी नहीं। मूषक विषज कामला की यह बड़ी पहचान है।

एक परीक्षण होता है जिसे *Van-den Berg test* कहते हैं इससे यह स्पष्ट होता है कि कामला यकृत की सैलों के विकार से है। पाजिटिव टेस्ट (*positive test*) या पित्तप्रणाली अवरोध–स्रोतोजन्य या अवरुद्ध कामला के कारण नेगेटिव टेस्ट (*negative test*) इस रोग में यह वानडेन-वर्ग टेस्ट सदा पाजीटिव रहता है।

वक्तव्य—अनेक नवीन संक्रामिक रोगों की भांति इस संक्रमण का भी आयुर्वेदिक पुस्तकों में वर्णन नहीं मिलता। लक्षणों के अनुसार इस संक्रामिक कामला की गणना शाखाश्रय कामला में की जानी चाहिए। पित्तरक्त को विदग्ध कर इसकी उत्पत्ति का हेतु बनता है, यह सिद्धान्त लागू होता है।

चिकित्सा—अभी तक इस रोग की कोई विशेष चिकित्सा ज्ञात नहीं हुई, और न ही पेनिसिलीन आदि श्रेणी की कोई अणुसूदन (*antibiotics*) औषधि का इस वाईरस के लिये आविष्कार हुआ है। अलबत्ता इसके प्रतिरोधक चिकित्सार्थ एक औषधि का ज्ञान आवश्य हुआ है, वह है "गामा ग्लाब्यूलिन् (*Gama globulin*)" इसका प्रयोग केवल मात्र परिपाक काल में (जब कीटाणु शरीर में पहुंच चुके होते हैं। परन्तु अभिवृद्धि काल में होते हैं और अभी रोग के लक्षण उत्पन्न नहीं हुए होते (*incubation period*) ही फल दर्शाता है, रोग प्रादुर्भाव होने पर लाभ नहीं होता। इसके १० *c. c.* का एक इन्जेकशन पर्याप्त होता है। इससे रोग रुक जाता है। अभी हाल ही में अमरीका सरकार ने हमारी सरकार को इस औषधि की १ लाख मात्रा भेजी है ताकि देहली में इसका प्रयोग किया जा सके।

शमन चिकित्सा—जैसे ही रोग के आक्रमण का ज्ञान हो, तभी से रोगी को पूर्ण विश्राम से लिटाये रखें जब तक रोग पूर्णतया शान्त न हो जाये अर्थात् कामला न जाती रहे तथा जब तक यकृत् प्रदेश में पीड़ा एवं यकृत् बढ़ा हुआ प्रतीत हो।

आहार—रोगी को केवल मात्र तरल पेय पदार्थों पर रखें, दूध सबसे उत्तम पेय है, दूध को मथकर मक्खन निकाल देना चाहिये, ऐसा दूध अति श्रेयस्कर रहता है। इस रोग में मक्खन, घी आदि का प्रयोग सबको निषिद्ध है। अण्डे की सफेदी को पानी में फांटकर वही पानी भी दिया जा सकता है। नारियल का पानी, तरबूज का पानी, गन्ने का रस, मीठी मौसमी का स्वरस खुले दिल से दें, ग्लूकोज का पानी उनके साथ या अलग दें। गूढ़ कामला में इनका प्रयोग जितना अधिक करें उतना अच्छा है। ये और पानी सब मिलाकर २-२॥ सेर तो अन्दर जाना ही चाहिये, ग्लूकोज सालूशन ५-१०% *Glucose solution*) अथवा *Normal saline* का ५०-१०० सी० सी० दिन में एक बार तो जरूर अन्यथा दो तीन बार देने से आशातीत लाभ होता है।

यदि रक्तस्राव हो तो निम्नोक्त औषधियां दें—

(१) *Vitamin 'K' 25-50 mg.* के एम्प्यूल १ या २ प्रतिदिन।

(२) *Coagulen ciba*।

(३) *Calcium gluconate 10%-10 c. c.* का इन्जेक्शन दें।

यकृत् की साधारण औषधियां यथा *methonin choline* का कोई लाभ नहीं होता।

आयुर्वेद मतानुसार आहार का वर्णन ऊपर आ चुका है।

औषधि—किसी भी रस औषधि का प्रयोग न करें, नवायस लोह तथा कालमेघ नवायस का प्रयोग कर सकते हैं। उचित काष्ठिक औषधियों का प्रयोग प्रायः हितकर होता है, निम्नोक्त औषधियों को प्रयोग करके देखें—

(१) हरड़, बहेड़ा, आंवला, गिलोय, कुटकी, चिरायता, नीम छाल, बांसा आदि।

(२) पुनर्नवा, अनन्तमूल, देवदारु, धनियां, दारुहल्दी, पटोलपत्र आदि।

(३) शतावर, वायविडंग, मकोय, चित्रकछाल, कासनी के बीज, गुडूची, कालमेघ पचांग।

(४) कड़वी तोरई के पत्ते, गंगेरन, गुल बबूल, अडूसे के पत्ते, दारुहल्दी इत्यादि।

इनमें से कोई सा भी योग देकर देखें, नं० १ अपेक्षाकृत अच्छा है, बाद में नं० २। इन योगों की औषधियां परस्पर जोड़-तोड़कर दशानुसार नया काढ़ा बना सकते हैं, नं० २ विशेष मूत्रल है और १ कामला नाशक। विधि-पूर्वक कुमारी स्वरस के प्रयोग से लाभ होना चाहिए, अथवा कुमारी आसव का प्रयोग करा सकते हैं।

इस रोग की पुपूपृ अवस्था में (आराम आने के बाद की कमजोरी) में बलदायक, पौष्टिक एवं रसायनिक औषधियों का प्रयोग करायें 'धात्री रसायन' प्रयोग बहुत लाभ करता है। मुक्ताभस्म दे सकते हैं। एतदर्थ असंख्य डाक्टरी एवं वैद्यक औषधियां हैं। किसी का प्रयोग करायें। ♦♦

पृष्ठ ५७५ का शेषांश

डाक्टर जॉन वारेन—'मेरे पास होंठ और जीभ के विकारों के जितने रोगी आये, सब के सब धूम्रपान करते थे।'

डाक्टर से—'तमाखू से मुख का शब्द और उसकी ध्वनि बिगड़ जाती है।'

श्री ऑलीवर डब्ल्यू होम्ज—'नौजवानो! मैं तुम्हें यह कभी परामर्श नहीं देता कि आप अपने जीवन पुष्प की पवित्रता को धूम्रपान से कलुषित करें, मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि तमाखू का धुआं हृदय पर कल्पनातीत रूप में बुरा और गहरा प्रभाव डालता है।'

डाक्टर विट्रास—'धूम्रपान से प्यास बढ़ती है, पाचन शक्ति बिगड़ जाती है, पेट में ऐंठन हो जाती है।' ♦♦

गवायुर्वेद या गो-चिकित्सा

लेखक—कविराज श्री मोहनशरण जी मिश्र,

श्रीकमलेश औषधालय, सकरी खुर्द (गया)।

आयुर्वेदिक चिकित्सा मनुष्यों के समान ही पशुओं के लिए भी पूर्ण रूप से लाभदायक है। यह प्राकृतिक होने के कारण पशुओं के लिए अत्यन्त उपादेय है। इस कारण पशु-पालन-कर्त्ता बड़ी सुविधा के साथ अपने पशुओं पर प्रयोग कर सकते हैं।

मूक प्राणी होने के कारण पशु अपने रोग के लक्षण आदि बतला नहीं सकते, अतः उनके बाहरी चिह्न, चेष्टा, विकार, मल-मूत्र आदि देखकर ही अनुमान करना सम्भव है कि वे किस रोग से पीड़ित हैं। मनुष्यों की अपेक्षा पशुओं का आहार-विहार अधिक प्राकृत और संयत है, अतः प्राकृत या वैकृत दोषों के शमन, शोधन और वृद्धि-क्षय के लिए अधिक उपयुक्त है। आयुर्वेदिक रस-भस्म-रसायन न्यून मात्रा में ही अधिक लाभ पहुंचाते हैं, अतः उन्हें छोटे से संपुट या बक्से में भी अपने साथ बराबर रख सकते हैं और देहात में साधारण पढ़े-लिखे व्यक्ति भी निम्न-लिखित दवाओं का व्यवहार कर सकते हैं।

प्रयोग-विधि—

(१) सद्‌योजात बछड़े से तीन मास तक के लिए आधी से एक रत्ती या एक से दो ग्रेन तक एक मात्रा।

(२) तीन से छः मास तक की आयु तक के लिए १ से २ रत्ती और बड़ी आयु के पशुओं के लिए २ से ४ रत्ती या ४ से ८ ग्रेन तक एक मात्रा।

(३) तरल दवा ५ से २० बूंद तक प्रति मात्रा अवस्थानुसार।

(४) अनुपान या सहपान द्रव्य २॥ तोले से आधा सेर तक आवश्यकतानुसार और द्रव्य की गुरुता-लघुता के अनुसार।

पशुओं को औषधि खिलाने की विधि—

आवश्यकतानुसार या दवाओं के साथ लिखे हुए अनुपान, सहपान आदि में मिलाकर बांस की कांडी (यह फांक या खोंखले बांस की बनाई जाती है और इसके मुंह की ओर छीलकर चम्मच जैसा बना देते हैं। पशु की अवस्था के अनुकुल मोटी या पतली कांडी बनाई जाती है)। अथवा बोतल में रखकर उनके मुंह में दवा डाल दी जाती है। यदि कई तरह की दवा पिलानी हो तो कई कांडियां रखनी चाहिए; कांडी जबड़े के पास बगल में डालनी चाहिए, जिससे उनके दांत से हाथ-कटने, कांड़ी टूटने या बोतल फूटने का डर नहीं रहता। गोलियां (सफूफ की हुई) या रस-भस्मों को अनुपान या सहपान में मिलाकर आटे या सत्तू की लुगदी में भी खिला सकते हैं। जीभ पर डाल देने से भी पशु निगल जाते हैं, पर वे गिराने नहीं पावें इसकी सावधानी रखना भी आवश्यक है। पशुओं को चारा खिलाने के कम से कम आधा घंटा पहले या पीछे दवा खिलाना उचित है।

रोगी पशुओं के पथ्य

जल्दी पचने योग्य पदार्थ ही उनके लिए पथ्य हैं। हरी घास, चोकर, जई का आटा, जौ का सत्तू, जौ का आटा, मांड, भुनी हुई तीसी (अलसी) का चूर्ण या कच्ची तीसी का लुवाब, गाजर आदि पथ्य हैं।

पशुओं की नाड़ी की पहिचान

प्रति मिनट ३६ से ४० बार पशुओं की नाड़ी

चलती है। पूंछ या गर्दन की नाड़ी देखनी चाहिए। सावधानी के साथ मुख, गुदा या योनि में तापक्रम देखा जा सकता है।

पशुओं के कुछ रोग और उनके लिए परीक्षित औषधि

(१) दूषित जल पीने से उत्पन्न सर्दी, ज्वर, पेट फूलना, अरुचि आदि – मौसम परिवर्तन के समय या अन्य काल में भी दूषित जल पीने से वायु के कुपित होने के कारण सर्दी, ज्वर, अजीर्ण, अफारा (पेट फूलना), कब्ज, हांफ, ढांसी आदि होने पर पान के पत्तों में लपेट कर या गर्म पानी में मिलाकर १ से ४ गोली तक सुबह-शाम या आवश्यकतानुसार दुर्जलजेतारस खिलाना चाहिए।

(२) सर्दी बुखार—सर्दी के साथ थोड़ा बुखार हो और पशु बार-बार पानी पीने की चेष्टा करे तो 'नवज्वरेभसिंह' या 'मृत्युंजय रस' तुलसी के पत्तो या घी के साथ १ से २ गोली तक खिलाना चाहिए।

(३) गर्भकाल में गले या थन में अनियमित शोथ—कभी-कभी गर्भावस्था में एक या दोनों थन फूल जाते या गले में घुग्घू लटक जाता है, अतः 'कांचनार गुग्गुलु' १-२ गोली तक गर्म जल के साथ खिलाना और गोमूत्र के साथ घोंटकर उक्त गुग्गुलु का उष्ण लेप लगाना चाहिए।

(४) चार छः दांत तक की अवस्था तक पाल नहीं खाना—चार या छः दांत तक की गाय भी यदि पाल नहीं खाय तो उसे काले तिल और गुड़ के (दोनों सम भाग दो-दो छटांक) काढ़े (अष्टावशेष) के साथ दो से चार गोली तक दो-तीन दिनों तक 'नष्टपुष्पांतक रस' खिलाना चाहिए।

(५) गर्भपात—यदि चोट आदि से गर्भपात होने का लक्षण मालूम पड़े तो 'मंजीठ' या त्रिफला के काढ़े के साथ 'गर्भपाल रस' २ से ४ गोली तक एक दिन में ३ बार खिलावें। गर्भपात या गर्भावस्था में ज्वर आदि होने पर दशमूल के काढ़े के साथ 'गर्भचिंतामणिरस' १ से ३ वटी तक १ दिन में दो या तीन बार देवें।

(६) मन्दाग्नि और अरुचि—दूषित जगहों में चरने या वहां की घास खाने अथवा सड़ा गला पदार्थ खिलाने से पशुओं की अग्नि मन्द होजाती है। अतः ऐसी दशा में 'शंखभस्म' या 'वराटिका भस्म' नींबू के रस और काला नमक के साथ देना चाहिए इससे गोबर का कड़ापन या पतलापन भी दूर हो जायगा।

(७) मामूली कब्ज होने पर—'आदित्य रस' तथा सर्दी और दस्त के साथ कब्ज हो तो, अमृतार्णव रस देना चाहिए।

(८) दस्त (बार-बार गोबर करना)—यदि अपच के कारण बार-बार दस्त हों तो 'अमृतार्णव रस' और दस्त के समय रोएं खड़े हों और सिहरें तो 'आनंदभैरव रस' तुलसी के रस में खिलाना चाहिए। गोबर में आंव या रक्त आने और बहुत कूंखने पर केवल खून पाखाना करने पर 'जहरमोहरा खताई पिष्टि' या घनसार ७ से १५ बूंद तक चीनी और चूने के पानी के साथ देना चाहिए। बहुत दिनों से खूनी दस्त हो तो 'कुटजघनवटी' २-४ गोली तक और शीतल चीनी (कबाबचीनी) का चूर्ण ३ माशे भर चीनी के शर्बत में देना चाहिए। यदि पेट फूल जाय और पांगुर करना छोड़ दे तो 'काला नमक' के साथ शंखभस्म या वराटिका भस्म अथवा 'वड़वानल रस' १-४ रत्ती तक सौंफ या अजवायन के चूर्ण १-२ भर तक के साथ देना चाहिए। नाड़ी की कमजोरी और मुंह ठंडा हो जाने पर 'रससिंदूर' १-३ रत्ती तक खूब घोंटकर पान प्याज या अदरख के रस, लहसुन के रस या अजवायन चूर्ण के साथ देना चाहिए। बूंद-बूंद पेशाब होने पर 'घनसार' ७-१५ बूंद तक चीनी के शर्बत के साथ देना चाहिए।

खांसी—सूखी खांसी (ढांसी) या गीली खांसी होने पर लक्ष्मीविलास रस (नारदीय) पान के रस या मधु या दाख के काढ़े के साथ देना चाहिए। पुरानी खांसी होने पर हृदयार्णव रस देना चाहिए।

(१०) सुजाक–इधर उधर आवारा फिरने वाले सांडों को कभी-कभी सुजाक के रोगी के द्वारा मूत्र किये हुए स्थान पर बैठ जाने से सुजाक हो जाता है, अतः ऐसे सांडों के साथ पाल खिलाने से गायों को भी यह रोग लग जाता है। ऐसी दशा में पशुओं को आरंभ में ही पेशाब करने में कठिनाई हो तो हजरुल यहुद भस्म या त्रिविक्रमरस चोपचीनी के चूर्ण या शीतल-चीनी के चूर्ण ६ माशे और चीनी के शर्बत के साथ देना चाहिए। यदि पेशाब का रंग हरा, लाल हो या पीव आवे तो विरोजे का तेल या सत्त्व मिलाकर उपर्युक्त दवाऐं या अमीर रस १–२ रत्ती तक मुनक्के की लुगदी के बीच में रख कर या मंजिष्ठादि काढ़े के साथ पिला देना चाहिए। जब तक अमीर रस दिया जाय तब तक उसे नमक नहीं देना चाहिए। अथवा घी या मक्खन के साथ रसराज रस १–२ गोली तक देनी चहिए। इन सब दवाओं को नारियल के पानी, कुल्थी के काढ़े या गोखरू के क्वाथ के साथ भी दे सकते हैं। श्वेतपर्पटी भी नारियल के जल के साथ दे सकते हैं।

(११) झनक बाय य टनक बाय—यह एक प्रकार की वातव्याधि है। पशु जब थोड़ा थोड़ा लंगड़ाने लगे तो गर्म जल के साथ वातारि रस की दो से चार गुटिका तक खिलानी चाहिए। यदि लंगड़ाने के साथ बुखार भी रहे तो प्रातः लक्ष्मीनारायण रस, अदरख या मधु के साथ और सायंकाल में वातारि रस या योगराज गुग्गुलु देना चाहिए। चलने के आरंभ में जब लँगड़ाये और चलते-चलते लंगड़ाना दूर होता जाय (कम होता जाय) तब शुद्ध किया हुआ कुचला (महीन चूर्ण कर) गर्म जल के साथ और अगर पांव फूल गया हो या जोड़ (संधियां) सूज गये हों तो एकांगवीर रस देवदारु या रास्ना अथवा एरंड की जड़ के काढ़े के साथ देना चाहिए।

(१२) साडू या थनैल—थन के भीतर इस रोग में घाव हो जाता है और दुग्ध ग्रन्थियों पर इसका प्रभाव पड़ता है, अतः इस रोग के होने पर 'कांचनार गुग्गुलु' दो से चार गोली तक दोनों समय कैथ, कांचनार की छाल, गोरखमुण्डी (झुँड़लिया) या हर्रे के काढ़े के साथ खिलाना चाहिये। जब दूध का रंग लाल हो जाय तब गोक्षुरादि गुग्गुलु, पंचतिक्तक घृत गुग्गुलु या पंचविंशति गुग्गुलु गर्म दुग्ध या शतावर के काथ के साथ खिलाना चाहिए।

(१३) खोरहा:—इस रोग में खुर और मुंह में घाव हो जाता है। ऐसा होने पर पंचविंशति गुग्गुलु या पंचतिक्त घृत-गुग्गुलु गिलोय (गुरुच) या त्रिफला के काढ़े के साथ खिलाना चाहिये। त्रिफला की राख, गुडूचीसत्व, कैथ और कपूर गोघृत या भेड़ी के घृत में घोंट कर या घनसार गौघृत में मिलाकर लगाना चाहिए। नीम का पत्ता औंटाकर फिटकिरी मिलाकर धोना चाहिए।

(१४) दूध का बुखार—बच्चा जनने के बाद बुखार होने पर सौभाग्यवटी या सूतिकारि रस दशमूल के काढ़े के साथ देना चाहिए। नाभि(ढ़ोंढ़ी) के पास सूज जाने पर (ऐसी दशा में नाभि छूने से पशु भड़कते हैं) घनसार ७ से १५ बून्द या वातांतक रस गर्म जल के साथ देना चहिए।

(१५) बच्चा देने के बाद यदि पेशाब ज्यादा लाल और बुखार हो तो गुडूची, लालचंदन, पद्मकोष्ठ, धनियां और शतावर का काढ़ा पाव भर से आधा सेर तक प्रतिमात्रा में देना चाहिये। और पेशाब में कष्ट हो तो त्रिविक्रम रस दिया जा सकता है।

(१६) फुफ्फुस प्रदाह, श्वसनकज्वर या निमोनिया—जब नाड़ी तेज और चंचल हो मुंह सूखा और गर्म हो तो शृङ्गभस्म ३ से ८ रत्ती या गौदंतीभस्म और उष्णजल के साथ ज्वरसंहार देना चाहिए। यदि खून जैसा लाल और गाढ़ा कफ नाक से चलता हो तो ज्वरारि-अभ्ररस तुलसी या अदरख या वासा (वासक) के पत्तों के रस (इसके पत्तों को आग में सेक कर मसलने से रस निकलता है) या करेले के पत्तों के रस के साथ देना चाहिए। यदि दस्त भी

—शेषांश ५८८ पर।

एक उपयोगी लेखमाला—

मुझे भी परखिये

अखिल द्रव्य समूह में अनेक द्रव्य ऐसे हैं जो देखने में अति सामान्य जान पड़ते हैं किन्तु उनमें रोगों को दूर करने की ऐसी अद्भुत शक्ति निहित है कि ग्रामीण चिकित्सक तथा साधारण जन उनके उपयोग से कभी-कभी आश्चर्यजनक आशुफलप्रद चमत्कार दिखाते हैं। यदि इन द्रव्योंके गुणों से जनता को परिचित कराया जाय तो गृहस्थ अपने जीवन में आने वाली अनेक आपदाओं का सहज ही निराकरण कर सकते हैं तथा अपने पास पड़ौसियों को भी लाभ पहुंचा सकते हैं। वैद्य समाज भी इनके गुणों से परिचित होने पर समय-समय पर इनसे लाभ उठा सकता है। इस दृष्टि से ही हम धन्वन्तरि में "मुझे भी परखिये" शीर्षक लेखमाला में इस प्रकार की जानकारी पाठकों को देंगे। अनुभवी पाठकों तथा चिकित्सक समाज से निवेदन है कि अपने अनुभव लिखकर भेजने का प्रयत्न करें। प्रति माह केवल एक द्रव्य पर ही विविध व्यक्तियों के अनुभव धन्वन्तरि द्वारा प्रस्तुत करेंगे। अनुभव प्रेषक महानुभाव निम्नलिखित बातों का विशेष ध्यान रक्खें—

१—अपना निजी सफल अनुभव ही लिख कर भेजें। किताबों से पढ़कर या सुना हुआ प्रयोग लिखकर भेजने की आवश्यकता नहीं है। यह तो हम स्वयं ही कर सकते हैं किन्तु यह अभीष्ट नहीं है।

२—प्रयोग सरल ही होने चाहिए जिससे कि सामान्य व्यक्ति भी इनका व्यवहार आसानी से कर सके।

३—अनुभव संक्षेप में लिखते हुए व्यवहार-विधि मात्रा आदि स्पष्ट लिखें।

४—आपको हरेक द्रव्य पर ही लिखना है ऐसा न सोचें। निम्न द्रव्यों में से जिन १-२-४ पर आपका पूर्ण अनुभव हो, १०-५ बार आप व्यवहार कर चुके हों वही लिखें।

प्रत्येक पाठक को चाहिए कि वह अपना अनुभव (यदि उसे इनके विषय में कोई सफल अनुभव हुआ है) अवश्य ही लिख कर भेजे जिससे कि आपके अनुभव से अन्य पाठक भी लाभ उठा सकें। यदि

: पृष्ठ ५८७ का शेषांश :

अधिक होता हो तो रामबाण रस उपयुक्त अनुपान में मिलाकर देना चाहिए।

(१७) चेचक—माता निकलने के प्रारंभ में यदि दस्त और आंव शुरू होजायं, प्यास ज्यादा हो तो मोतीपिष्टि आधा रत्ती से १ रत्ती तक मधु के साथ। आंखें लाल और नाक से कफ गिरे तो यशदभस्म या रौप्यमाक्षिक भस्म दूब के रस के साथ और नाड़ी कमजोर होने पर रजतसिंदूर १-२ रत्ती तक दूब के रस के साथ दीजिए।

(१८) जोंक पड़ना—बच्चों के जोंक पड़ जाने पर धतूरे के पत्ते के रस आधपाव या खुरासानी अजमायन के काढ़े के साथ कृमिकुठार रस या कृमि क्रव्यादि रस (२-४ गोली तक) दीजिए या कृमिपातन चूर्ण १-२ भर तक खेसारी के पोधे के रस या खेंसारी के बेसन के घोल के साथ चीनी मिलाकर खिलाइए।

(१६) पेट फूलना:-पेट फूलने पर गर्म जल के साथ क्रव्यादि रस ३ से ८ गोली तक प्रतिमात्रा में या लशुन वटी २-४ गोली, नाड़ी कमजोर और मुंह टेढा होने पर रससिंदूर आधा से १ रत्ती तक पान के रस के साथ दीजिए। ♦♦

आपकी भाषा सुन्दर नहीं है या आपको लेख लिखने का अभ्यास नहीं है और इस लिये आपको लिखने में संकोच है तब भी हम निवेदन करेंगे कि आप अपना अनुभव जैसे भी लिख सकें लिख कर अवश्य भेजें, हम आपके लिखने के आधार पर आपके अनुभव को परिष्कृत भाषा में लिखकर प्रकाशित करेंगे।

द्रव्य ये हैं—

मिट्टी (सभी प्रकार की), सेलखड़ी, नमक,
कपूर, नवसादर (नौसादर), गौमूत्र,
मिट्टी का तेल (किरासिन), हींग, चूना

इस अङ्क में हम 'फिटकरी' के विषय में अपना अनुभव तथा कुछ पुस्तकों से संकलन कर लेखमाला प्रारम्भ करने की दृष्टि से दे रहे हैं। आगामी अङ्कों में उपर्युक्त द्रव्यों पर पाठकों एवं चिकित्सकों के अनुभव मात्र संकलन करके प्रकाशित करने का विचार है। हमको विश्वास है कि हमारे पाठक इस लेखमाला को उपयोगी बनाने में हमारा सहयोग करेंगे।

फिटकरी—

स्फटिका, श्वेता, सौराष्ट्री, फिटकरी ये इसके नाम हैं। अंग्रेजी में एलम (*Alum*) तथा मराठी में फटकी कहते हैं। पाठक इन नामों से इस द्रव्य को भली भांति पहिचानते हैं। यह एक खनिज द्रव्य है जो एक प्रकार की खनिज मिट्टी 'रोल' से तैयार की जाती है। इसमें रहने वाले सल्फेट आफ एल्यूमिनियम, सल्फेट आफ पोटासियम, आयर्न आफ सल्फेट आदि तत्व हैं। हमारे प्राचीन वैद्यक ग्रन्थों में इसका वर्णन मिलता है; योरुपीय देशों में करीब ५०० वर्ष से इसका बनना प्रारम्भ हुआ। भारत में इसका सब से बड़ा कारखाना कालाबाग सिन्धु नदी के पश्चिम किनारे में था जो अब पाकिस्तान में चला गया। इस समय कुछ जयपुर (खेतड़ी) में तथा शेष बम्बई मद्रास और पंजाब में तैयार की जाती है।

गुणदोष और प्रभाव आयुर्वेदिक मतानुसार— स्वाद में तरतरी, तीखी, स्निग्ध, क्रान्तिवर्धक, पारद को बद्ध करने वाली तथा कुष्ठ व्रण, प्रदर, विषविकार, मूत्रकृच्छ्र, वमन, शोष, त्रिदोष तथा प्रमेह नाशक है।

'मूत्रकृच्छ्र—मूत्रनली की वह अवस्था है जिसमें वह भीतर से व्रणित हो जाती है या व्रण के कारण वह संकुचित होजाती है, मूत्र मार्ग छोटा होजाने के कारण उस स्थान में मूत्र लगता है और उसके वेग से पीड़ा होती है। यही बात उष्णवात, गनोरिया, सुजाक में मूत्रनली की होती है। ऐसी दशा में फिटकरी दोनों प्रकार वाह्य और आभ्यन्तरिक प्रयोग में लाभ पहुँचाती है।

सुजाक को दूर करने के लिये फिटकरी एक अत्यन्त विश्वासी संकोचक महौषधि है इसके हलके सल्यूशन का बार बार प्रयोग करना चाहिए जिससे अच्छा लाभ होता है। पुराने सुजाक में कुछ तीव्र सोल्यूशन का प्रयोग सप्ताह में एक दो बार करना चाहिए।

१—धोने के काम में एक औंस पानी में १ गेहूँ बराबर फिटकरी डालकर पिचकारी से मुत्रेन्द्रिय मार्ग को धोना चाहिए, ऐसा आधा आधा घंटे पर करें सिवाय निद्रा के समय को छोड़ कर। इस प्रयोग के साथ जवाखार या गोखरू या ककड़ी के बीज कोई भी मूत्रल औषधि दूध पानी, या लस्सी के साथ पिलावें।

दूसरे दिन हर २ घण्टे पर पिचकारी देदें। इस प्रकार लगातार दो दिन में इस प्रयोग से पीव आना जलन सूजन आदि दूर हो जाती है। फिर सप्ताह में २-१ बार (यदि पूर्व चिकित्सा से लाभ है) ८ औंस जल में १० गेहूँ बराबर फिटकरी का मिश्रण लेकर पिचकारी देवें, कुछ दिन प्रति सप्ताह भी चिकित्सा चालू रखें, सुजाक ठीक होगा।

२—मुजर्रिबात अकबरी में लिखा है कि सुजाक का रोग यदि किसी औषधि से सफल नहीं होता है तो उसे १ माशा फिटकरी का फूला बराबर मिश्री के साथ प्रातः सायं मूत्र त्याग से प्रथम खाकर ऊपर से दूध पानी मिश्रित लस्सी पीनी चाहिए। इस प्रकार सप्ताह भर नित्य औषधि लेने से और साथ में मूत्रनली

में पिचकारी भी करने से सुजाक में निश्चय सुख मिलता है।

३-यूनानी हकीम जो एक और पिचकारी देते हैं इस प्रकार है-रसौत १ तोला सफेद कत्था आधा तोला और अफीम ४ रत्ती इन सबको आधा सेर पानी में डालकर ६ घंटे तक पड़ा रहने दें। बाद में उस पानी को छान कर उसमें कपूर, रसकपूर, फिटकरी का फूला फुलाया हुआ, नीलाथोथा का चूर्ण ४-४ रत्ती डालकर मिला लेना चाहिए। इसी पानी की पिचकारी रोगी की मूत्रेन्द्रिय में दिनमें ३ बार लगाने से एक ही दिन में सूजन, जलन और पीव का आना बन्द होजाता है। उसके पश्चात् १० दिन तक प्रति दिन एक या दो बार इस घोल का प्रयोग करते रहना चाहिए। साथ में बबूल की अन्तर्छाल के क्वाथ से बना हुआ घन क्वाथ ३ भाग, कबाबचीनी २ भाग. वंगभस्म १ भाग, फुलाई हुई फिटकरी १ भाग, इलायची के बीज १ भाग और शक्कर ८ भाग इन सब औषधियों के कपड़छन चूर्ण में से ६ माशा मात्रा में १० तोले गाय के दूध के साथ पीना चाहिए।

४-एक माशा फिटकरी को तिगुनी शक्कर के साथ मिलाकर एक पाव दूध के साथ लेने से सुजाक में और गुर्दे तथा मसाने की पथरी में लाभ होता है।

विषों पर फिटकरी का प्रयोग।

इसमें विषनाशक गुण होने से यह कई प्रकार के विषों पर अच्छा कार्य करती है सर्पविष पर इसके कई प्रकार के प्रयोग हैं। वैद्य लधाराम पंजाबी का प्रयोग मार्च के अङ्क में सर्प विष चिकित्सा के अन्तर्गत देखें। एक सर्पविष चिकित्सक जो जयपुर राज्य का था फिटकिरी का प्रयोग ऊंट मूत्र के साथ रोगी को पिलाने में करता था। इसका उद्देश्य रोगी को वमन कराना है और वमन के साथ अपने प्रभाव से विष को नष्ट करती है।

५-तीन माशा फिटकरी को २० तोले घी के साथ मिलाकर पिलाने से आधे आधे घंटे के अन्तर से ५-१० बार पिलाने से सर्प के काटे रोगी बचते देखें हैं, जिनको काटे अधिक देर न हुई हो ऐसों को ही ला. करती है भयंकर रोगी को नहीं।

६-बिच्छू के विष पर-१ तोला फिटकरी को ५ तोला पानी में औटाकर उस पानी को बार बार बिच्छू के डंक पर लगाने से और आंख में लगाने से (सलाई से) बिच्छू का विष उतर जाता है।

यदि बिच्छू विष अन्य किसी औषधि से आराम न होता हो तो फिटकरी के एक टुकड़े को चिमटा में पकड़ कर आग के अन्दर प्रवेश करें। जब वह डली गलने लगे तब ज्यों की त्यों उसे काटे डंक स्थान पर चिपका देना चाहिये। ऐसा करने से बहुत भयंकर पीड़ा होती है मगर बिच्छू विष जल जाता है यही स्फटिकादग्ध क्रिया है। इसी प्रयोग से बर्र ततैया मधुमक्खी आदि कीटों के विष नष्ट होजाते हैं।

प्लेग और फिटकरी

७-हमारे विचार से गुलाबी और श्वेत फिटकरी में कोई अन्तर नहीं है दोनों एक ही वस्तु हैं। लिखते हैं लाल रंग की फिटकरी ५ तोला लेकर ग्वारपाठा (घी गुवार) के रस में खरल करके जब वह रस सूख जाय तो फिर एक दिन तक भांगरे के रस में खरल करके टिकियां बनालें और धूप में सुखा लेना चाहिए। जब वे टिकियां खूब सूख जावें तब उन्हें सराव सम्पुट में बन्द कर ५ सेर कण्डों की अग्नि में फूंक देना चाहिए। स्वांगशीत होने पर सम्पुट खोल कर उसमें से फिटकरी भस्म को बाहर निकाल लेवें।

प्लेग के रोगी को इस भस्म में से ३ रत्ती मात्रा में खिलाना है। ऊपर किसी प्रकार का खाना या पानी नहीं देना चाहिए यदि अधिक आवश्यकता पड़ जाय तो दवा लेने के एक घन्टे पश्चात् थोड़ा दुग्ध देना चाहिए अथवा भोजन लेने के लिए ४ घंटे तक दवा बन्द कर देनी चाहिए ये मात्राएँ रोगी की दशानुसार १-१ घंटे या दो-दो या ३-३ घंटे पर दी जा सकती हैं। दवा रात्रि में भी चालू रखनी चाहिए इसके साथ ही उसकी ग्रन्थि पर असगंध की जड़ को

नी में पीसकर या घिस घिस कर दिन में २-३ र लेप करावें। पथ्य में दूध और भात देना चाहिए। प्रयोग से प्लेग के अनेक रोगी बच गये हैं।

८-फिटकरी के 'मलेरिया' नाशक भी अनेक योग । यह आयुर्वेदीय क्निीन ही है। उपरोक्त फिटकरी स्म १ माशे तीन माशे मिश्री के साथ लेने से कतारा, तिजारी, चौथिया, जाड़े वाला बुखार नष्ट जाता है।

नेत्र रोगोंपर फिटकरी

नेत्र रोगों में फिटकरी का प्रमुख स्थान है। शद और फिटकरी दोनों ही मुख्य हैं। फिटकरी ा गुण शोषक होने से नेत्रों के स्राव के लिए यह हुत अच्छी है। इसके लोशन आंख में डालने से ांख की सुर्खी और कीचड़ का आना बन्द हो जाता है।

९-नेत्रों का भयङ्कर रोग परवाल है जिसमें नेत्रों ं भीतर को मुड़े हुए बाल पैदा होते हैं। इस रोग में तोला फिटकरी को लेकर किसी मिट्टी के बरतन में खकर आंच के ऊपर चढ़ाना चाहिए। जब वह ावलकर पानी बन जाए तब उत्तम जाति का तोला सोना गेरू (पिसा हुआ) डालकर लकड़ी , अच्छा हो नीम के डंडे से हिला हिला कर एक ीव कर लेना चाहिए। इसके पश्चात् उसे नीचे उतार र खरल में घोटकर मोटे कपड़े में छान लेना ाहिए। फिर उसको पक्के काले पत्थर के खरल में प्रहर तक घोंटकर १ शीशी में भर देना चाहिए।

आंखों के पलकों के अन्दर जो बाल उगे हों उनको पहिले चिमटी से पकड़ कर उखाड़ डालने चाहिए (सावधानी पूर्वक) तब उपरोक्त औषधि को १ माह तक सबेरे सायं आंजने से आंखों में होने वाले बालों से सम्बन्धित सभी विकार नष्ट हो जाते हैं। पुनः बालों के पैदा होने का भय नहीं रहता। चमत्कारिक महौषधि है इसका प्रयोग कभी व्यर्थ नहीं जाता। ऐसा 'जंगल की जड़ी-बूटी' के लेखक का कहना है।

१०-आंख की 'कील' को मिटाने के लिए फिटकरी अच्छा गुण रखती है। इसके ऊपर एक काजल दे रहे हैं। फुलाई फिटकरी २ तोले, फुलाया लीलाथोथा २ तो. कलमी शोरा २ तोला और कपूर ६ माशा लेकर सबको अलग अलग खरल करके कपड़े में छान लें, फिर गाय का स्वच्छ घी २४ तोले लेकर उसको गरम करके खरलमें डालकर उसी में उपरोक्त चूर्ण को और अरण्डी के तेल से निकाला हुआ काजल ८ तोले डालकर खूब खरल करना चाहिए जिससे वह आंख में कर-कर न करे, बस काजल तैयार है। डिबियों में भर लें।

इस काजल को एक-एक दिन बीच में देकर लगाने से कील नहीं होने पाती। यदि पहिले से है तो उसका पानी भर कर निकल जाता है और दृष्टि का तेज बढ़ता है।

११-आंख जब दुखती हो तो और उससे पीव आता हो तब फिटकरी के पानी से नेत्र को धोने से लाभ होता है। धोने के लिए २ औंस पानी में १ गेहूँ बराबर फिटकरी लें।

व्रणों पर फिटकरी की प्रतिक्रिया

१२-इसमें व्रणनाशक गुण होने से शरीर के व्रण फफोले आदि भरने के लिए कितनी ही प्रकार की मरहमों में इसका प्रयोग किया जाता है। छुरी, चाकू, तलवार, कुल्हाड़ी आदि धारदार हथियारों के कारण कोई व्रण बन गया है और उससे रक्त का प्रवाह है तो बारकी फिटकरी पीस कर घी के साथ मिलाकर उसको घाव में भरने से और ऊपर से रुई का फोआ रख बांधने से (यानी पट्टी) रक्त का निकलना बन्द हो जाता है और वह बिना पके भर जाता है। फिटकरी में ग्राही विषघ्न और चमड़े को संकुचित करने की शक्ति होने से बाहर के कीटाणु घाव में प्रविष्ट नहीं हो सकते तथा उनके दोनों किनारे आपस में शीघ्र चिपट जाते हैं।

यूनानी मतानुसार फिटकरी पहले दर्जे में गरम और दूसरे दर्जे में खुश्क होती है। किसी-किसी के मत से दूसरे दर्जे में गरम और खुश्क है। उनके मत

से जहां तक अन्य औषधियों से लाभ हो वहां तक फिटकरी खाने के काम में कम ही लेना चाहिए।

यदि घाव से खून बहता हो या घाव खराब हो गया हो तो इसका चूर्ण भुरभुराने से वह ठीक हो जायगा। रसकपूर या पारा आदि विषैले पदार्थ से यदि किसी का 'मुंह आ गया हो' या अन्य किसी कारण से या छाले हो गये हों और मसूढ़ों में जखम हो गए हों तो फिटकरी के पानी से कुल्ले कराने से बड़ा लाभ होता है। गर्भाशय से यदि रक्त बहता हो तो गंदना (विरंजसिफा) के पानी में फिटकरी को घोल कर उसमें कपड़ा तर करके गर्भाशय में रखने से खून आना बन्द होता है। इसे विशेषज्ञ ही कर सकता है। गर्भाशय या योनि के बाहर निकल आने पर भी यह प्रयोग लाभ करता है।

जालिनूस के अनुसार यह कुष्ठ पर लाभदायक है। गर्म जल में इसे डाल कर और उस पानी से खुजली वाले को नहलाया जाय तो उसकी खुजली नष्ट होती है। इसको जैतून के तैल में पका कर यदि बहरे के कान में डाला जाए तो बहरेपन में लाभ होता है। इसके नस्य से नकसीर में लाभ होता है। काली मिरच के साथ इसे पीसकर मंजन करने से दांतों का दर्द जाता रहता है, मसूड़े मजबूत हो जाते हैं। आमाशय और यकृत में ताक़त आती है। यह अन्य जलोदर नाशक दवाओं के साथ प्रयोग करने से जलोदर में लाभ करती है। यदि अण्डकोष में दर्द होता हो तो इसके लेप से दूर होता है। बच्चों के ज्वर में यह ज्यादा लाभकर है। जन्म निरोध के लिए स्त्री-प्रसङ्ग से पहिले इसमें ऊनी कपड़ा तर करके गर्भाशय मुख पर रखने से गर्भ नहीं रहता। सोंठ और फिटकरी आधी-आधी रत्ती मात्रा में बताशे में रखकर खिलाने से ज्वर उतर जाता है।

कान बहना—फिटकरी का फूला बारीक पीस कर उस चूर्ण को किसी फुकनी के द्वारा कान बहने में प्रयोग करने से उसका बहना बन्द हो जाता है। यह प्रयोग धन्वन्तरि के मार्च के अङ्क में देखें। स्वामी कृष्णानन्द जी लखनऊ का योग है हमारे चिकित्सा विभाग में यह योग अनेक रोगियों पर परीक्षित किया जा चुका है, तभी इसे हम दे रहे हैं। पाठक स्वयं अजमावें।

रोगी की प्रकृति अवश्य देखनी चाहिये। प्रत्येक दवा प्रत्येक रोगी को लाभकर नहीं होती जिनकी प्रकृति गर्म खुश्क है उनको कभी अधिक मात्रा में यहां तक कि ७ माषा की मात्रा में फिटकिरी दे दी जाय तो शरीर में खुश्की बढ़ जाती है और खुश्क खांसी हो जा सकती है। ऐसा शेख साहब का मत है। 'मुजर्बात अकबरी' का सुजाक का योग एक बार दे चुके हैं यहां पर उसीका एक योग 'बवासीर' का दे रहे हैं।

पाव भर फिटकिरी को पाव भर सफेद कागज में लपेट कर उपलों की अग्नि में रख दिया जाये जब इसका फूला हो जाये तब पीसकर पाव भर गाय के घी में मिला लिया जावे और ऐसे बर्तन में जिसमें २-३ दिन तक दही जमाया गया हो डालकर नीम के डंडे से खूब घोटें यहां तक कि वह रंग में लाल हो जावे। बवासीर का रोगी पहिले दो दिन सोया के बीज को पानी में पकाकर बवासीर पर सुबह से सायंकाल तक बांधलें। उसके पश्चात् फिटकरी की इस मरहम में रुई को गीली करके बवासीर पर बांध दिया करें। सवेरे से शाम तक तथा पुनः सायंकाल से प्रातः काल तक पट्टी बांधकर खोल दिया करें। ऐसा ७ दिन करने से बवासीर के मस्से बैठ जाते हैं।

छाती से रुधिर का बहना—एक माषा फुलाई फिटकरी में ३ माषा बूरा मिलाकर उसकी ४ पुड़िया बनालें। एक-एक पुड़िया २-२ घंटे के अन्तर से लेने से छाती में से बहता रुधिर बन्द हो जाता है।

हुपिङ्ग कफ (कुक्कुर खांसी)—फिटकरी फूला ५-१० रत्ती तक की मात्रा में दिन में तीन बार देने से कुकर खांसी मिट जाती है।

अतीसार—२॥ रत्ती फिटकरी को थोड़ी अफीम के साथ देने से पुराना अतीसार मिटता है।

खांसी और दमा—थूहर के डंडे को पोला करके उसमें फिटकरी भरकर उस पर मिट्टी करदें। बाद में कंडों की आंच में जला दें, ठंडा होने पर उसमें से फिटकरी निकाल लें, इसमें से २ रत्ती मात्रा में पान में रखकर खाने से श्वास खांसी नष्ट होगा।

रुधिर का जमाव—१ तोला फिटकरी को ४ तोला घी में भून लेवें, जब वह घी के अन्दर नीचे बैठ जाय तब ऊपर के घी को निकाल कर उस घी में मैदा भूनकर शक्कर के साथ हलवा बनाकर उस हलवे में उस फिटकरी को मिलाकर उसके तीन हिस्से करके तीन दिन तक खिलाने से चोट और शरीर के रुधिर का जमाव बिखर कर हट जाता है।

चोट लगने पर—यदि किसी के घातक चोट लग जाय और यह आशंका हो कि कुछ रक्त पेट में पहुंच गया है तो ४-६ माषा तक फिटकरी को पीसकर S। या S।= दूध के साथ फंका देनी चाहिए। इससे अन्दर का रक्त भी यदि चोट से जम गया है तो वह भी फटकर अलग हो जाता है।

प्रदर में—फिटकरी का लोशन १ पाव पानी में १॥-२ माषा फिटकरी मिलाकर योनि को पिचकारी से धोने से प्रदर तथा योनि का ढीलापन मिटता है। कोई भी वैद्य प्रदर का इलाजकरते समय इस बात ध्यान रखें कि औषधि मुख द्वारा देने के साथ योनि प्रक्षालन अवश्य किया जाय ऐसा करने से शतप्रतिशत सफलता मिलने की सम्भावना रहती है।

श्वासनाशक उत्तम योग—लाल फिटकरी और सेंधानमक इन दोनों औषधियों को ५ तोला परिमाण में लेकर बारीक चूर्ण करके १ मिट्टी की हांडी में ३ सेर आक (मदार) का दूध भरकर उसमें इस चूर्ण को डालकर हांडी का मुख बन्दकर कपड़ मिट्टी से सन्धि बन्दकर सुखालें, फिर गजपुट में रखकर फूंक देना चाहिये। जब स्वांग शीतल हो जावे तब उसको निकाल कर हांडो खोलें। उसके भीतर की औषधि को खरल में घोटकर रख लेवें।

शरद पूर्णिमा की रात्रि को दमे के रोगी को जितनी खीर खा सके उतनी दूध चावल की खीर तैयार करवाकर उसमें बारह प्रहर तक घुटी हुई लेंडी पीपर का चूर्ण १॥ माषा मिलाकर उस खीर को ३ घंटे तक चन्द्रमा की चांदनी में पड़े रहने देना चाहिए। फिर उपरोक्त औषधि में से २ रत्ती औषधि खिला कर उसके ऊपर वह खीर रोगी को खिलादेवें। रोगी को रात में सोने नहीं देना चाहिए और सवेरे जितनी दूर वह घूम सके उतना घूमने को कहें। तथा ३ माह तक तैल खटाई ठंडी तथा बादी की वस्तुयें तथा स्त्री प्रसंग से बचना चाहिए।

स्मृति भ्रंश—५ तोला फिटकरी को दस घंटे ब्राह्मी के रस में घोटकर टिकिया बनालें। सूखने पर सम्पुट करके दस सेर उपलों की अग्नि दें। मात्रा दो रत्ती प्रातः सायं दूध से खिलावें।

आंखों का लेप—फिटकरी भुनी हुई २ रत्ती अफीम १ रत्ती नीम के पत्ते ५ नग पीसकर थोड़ा सा पानी मिलाकर रात्रि के समय पलकों पर लेप करें, प्रातः आंखें स्वच्छ हो जांयगी।

नेत्रों का अर्क—फूला फिटकरी ४ रत्ती नीलाथोथा १ रत्ती १ औंस गुलाबजल या वर्षा के जल में डाल रखें। आवश्यकतानुसार २-२ बूंद नेत्रों में टपकावें। नेत्र पीड़ा धुन्ध को दूर करता है।

आंखों पर पोटली—फिटकरी भुनी १ माषा अफीम १ रत्ती दोनों को सूक्ष्म पीसकर ४ माषा घृतकुमारी के गूदे में मिलाकर पोटली बनालें और आंखों पर फिरावें।

आई हुई आंखों (नेत्राभिष्यन्द) पर एक योग—६ माषा फिटकरी को एक लोहे की कड़छी में डालकर आग पर रखें। जब फिटकरी गल जाय तो उस पर घृत कुमारी का रस थोड़ा-थोड़ा डालते जांय जब रस सूख जावे तो और डालें, इस प्रकार ३ तोला अर्क जला देवें। फिर उतार कर सुखा कर सूक्ष्म पीस लें और आवश्यकता के समय नेत्रों में डाला करें। यह सलाई से लगाया जायगा।

नेत्र बिन्दु—फिटकरी कच्ची ३ माषा विशुद्ध रसौत मिश्री १॥-१॥ माषा; अफीम ५ रत्ती, नीलाथोथा

३ रत्ती। रसौत और नीलाथोथा को २॥ तोला गुलाबजल में हल करें और अन्य औषधियों को पृथक् पीस कर इसी रसौत वाले पानी में मिलादें फिर साफ मलमल के कपड़े में छान कर शीशी में सुरक्षित रखें। ड्रॉपर से २-२ बूंदें टपकावें। ऐसा करने से पानी बहेगा, १० मिनट बाद पुनः डालें अब प्रथम की अपेक्षा कमपानी निकलेगा। उसी प्रकार फिर २-२ मिनट के बाद डालते जावें ४-५ बार डालना पर्याप्त है। पीड़ा लाली दूर होकर लाभ होगा।

नाक से दुर्गंध—यदि नाक से दुर्गन्ध आती है तो फिटकरी १॥ रत्ती १ औंस पानी में मिलाकर इस द्रव में से पिचकारी से या वैसे ही नाक में डाला करें, इससे लाभ होगा।

कान का जख्म—फिटकरी को पीसकर विशुद्ध शहद में मिलावें और फिर मलमल के कपड़े की एक बत्ती बनाकर इसमें तर करके कान में रखें दिन में २-३ बार बदलें। इस दवा से नया जख्म तो तीनदिन में ही ठीक हो जायगा।

गलशुण्डिका (कवा गिरना)—कारण इसका यह है कि कण्ठ पीड़ा या कफ बढ़ जाने से कण्ठ की भीतरी झिल्ली ढीली होकर कवा गिर जाता है। इसके लिए आप कीकर की कुचली छाल १ छ० ॥ पाव पानी में डालकर १० मिनट जोश दें, छानकर फिटकरी का चूर्ण ६ माषा डाल कर तथा कुछ शहद मिलाकर कुल्ला करने चाहिए, निश्चय आराम होगा।

फूटे हुए जख्मों पर—यदि जख्म फूट गये हों तो केवल फिटकरी को पानी में घोलकर उससे व्रणों को धोने से कुछ दिनों में आराम अवश्य हो जायगा।

खांसी पर मीठी पुड़िया—फिटकरी भुनी हुई १ तोला, खाड़ १० तोला सूक्ष्म पीसकर मिलालें और १४ पुड़ियां बनालें। तर खांसी वाले को गरम पानी के साथ और खुष्क खांसी वाले को गरम दूध के साथ दें। दो सप्ताह के सेवन से पुरानी से पुरानी खांसी भी दूर हो जाती है।

रक्तष्ठीवन (खून थूकने में)—फिटकरी १ तोला कीकर का गोंद एक तोला, गेरु एक तोला तीनों सूक्ष्म पीसकर पुनः रगड़लें और सबकी २१ पुड़िया बनालें और एक पुड़िया प्रातःकाल लुआब बीदाना या ईसबगोल की लार के साथ दें।

पांडु—उत्तम प्रकार की फिटकरी को भून कर उसमें से एक चुटकी दवा खिलाकर ऊपर से दही का १ प्याला पिला दिया करें, दूसरेदिन २ चुटकी तीसरे दिन ३ चुटकी। फिर चार दिन तक ३-३ चुटकी खिलाते रहें और पूर्ववत् ही दही का प्याला दें। इससे कृष्ण और पीत दोनों प्रकार का पांडु यदि एक मास से अधिक का हो तो एक सप्ताह में दूर हो जाता है।

प्लीहा—फिटकरी भुनी एक तोला, नौसादर एक तोला दोनों खरल करें फिर तेजाब गंधक एक तोला विशुद्ध सिरका जामुन चार तोला सबको एकत्र एक शीशी में करके रख छोड़ें और प्रति दिन २ बूंद बताशे में या मिश्री पर डालकर प्रातः सायं दें।

विषूचिका—हैजा को सभी जानते हैं, जिस समय रोगी को कोई दवा हज्म न हो सकती हो और प्यास अत्यधिक हो ऐसे समय में अर्क के पेट में जाते ही रोगी को चैन और आराम हो जाता है।

योग—विशुद्ध जल १ बोतल फिटकरी ३ माशा सूक्ष्म पीसकर मिलाएं और रोगी को घूंट घूंट कर पिलाते रहें।

अनुभूत पेचिश में—फिटकरी १० तोला अफीम शुद्ध १ तोला दोनों को सूक्ष्म पीस कर मिलालें और फिर दो सकोरों में बन्द करके उनके मुंह को कपरोटी करके सूखने पर पांच सेर उपलों की अग्नि दें। इस प्रकार सफेद पौडर मिलेगा, इसकी १ रत्ती की मात्रा गुलकन्द के साथ लेने से या जल के साथ लेने से प्रवाहिका को लाभ होगा।

नाभि टलना—फिटकरी सफेद १ तोला माजूफल हरा या खुश्क १ तोला दोनों को बारीक पीस कर गाढ़ा सा लेप बनालें और नाभि की जगह लेप करें, ऊपर से बारीक कपड़ा रख दें नाभि अपनी जगह

आजायगी, यही योग दांतों पर कार्य करता है फिटकरी और माजूफल का मंजन करें।

वृक्कशूल पर-फिटकरी भुनी ३ माशा कलमीशोरा ७ माषा सूक्ष्म करके ७ पुड़िया बना लें और एक पुड़िया गाय के ताजे दूध से प्रातः सांय दिया करें। पथ्य-मूंग या अरहर की दाल मसालेडाल कर, गेंहू की रोटी। बादी गरिष्ट भोजन चावल उर्द की दाल तथा शीतल जल से परहेज करें।

कांच निकलना(१)—फिटकरी और माईं को उबाल कर उससे गुदा को धोवें और फिटकरी तथा जूते की भस्म (राख) कांच पर लगाकर कांच को भीतर प्रविष्ट करावें।

(२) तीन रत्ती फिटकरी को आधी छटांक पानी में घोल कर उस पानी से शौच निवृत होकर गुदा तथा बवासीर के मस्सों को धोना चाहिये।

(३) फिटकरी को सूक्ष्म पीस कर एक डिबिया या शीशी में रखें, शौच के बाद इस पीसी हुई फिटकरी को मुंह की लार या पानी में हल करके कांच के चारों ओर लगा कर दबा कर अन्दर प्रविष्ट कर दें, प्रथम दिन ही इससे पर्याप्त लाभ होगा।

मलेरिया पर एक अनुभूत योग-फिटकरी भुनी, सुहागा भुना, नौसादर प्रत्येक ३-३ माषा, कलमीशोरा ५ माषा, कुटकी चूर्ण १॥ तोला समस्त द्रव्यों को लगातार १० घण्टे घोट कर सुरक्षित रखें। यह मलेरिया की उत्तम औषधि है। मात्रा इस की तीन रत्ती है। पानी से, दूध से या अर्क सौंफ से देवें। चढ़े ज्वर को उतारता है और उतरे हुए ज्वर को रोकता है।

शय्या व्रण-फिटकरी भूनी दो माषा सूक्ष्म पीसकर अण्डे की सफेदी अच्छी तरह मिला कर घाव पर लेप करें।

गठियां रेंगनवाय पर--फिटकरी भुनी, धतूरे के कोमल पत्ते, लाल एरण्ड के पत्ते, आक की कोपलें सब समान लेकर सूक्ष्म पीसें। चने के बराबर गोली बनालें। मात्रा एक गोली गरम पानी या गरम चाय अथवा दूध के साथ लेवें, इससे भी दोनों रोग ठीक होते हैं।

योनि कण्डु—चार माषा फिटकरी को २॥ तोला पानी में हलकर दिनरात में कई बार धोवें और कपड़ा तर करके अन्दर रखें।

अफीम विष पर — ६ माशा फिटकरी कच्ची गरम पानी में घोल कर पिलादें वमन होकर आराम होगा।

समस्त विषों पर--फिटकरी ५ माषा सुहागा ५ माषा दोनों गरम पानी में मिला कर पिलावें। विष दूर होगा।

अधिक पसीने पर—यदि पसीना अधिक आता है तो पानी में फिटकरी घोलकर उससे स्नान किया करें अनुभूत योग है।

बगल गन्ध—जिसके बगल में अधिक पसीना आता हो और दुर्गन्ध आती हो तो फिटकरी की डेली लेकर साबुन की तरह पानी के साथ उस स्थान पर मलें, बाद में धो डालें इससे पानी निकलना बन्द हो जायगा।

आंख में चूना की छींट— यदि नेत्र में चूना कलई की छींट गिर जाय तो अत्यन्त कष्ट होता है, उस समय फिटकरी को पानी में घोल कर नेत्रों में डालने से आराम होता है।

अन्त में हम एक योग और देते हैं। इस फिटकरी पर योग तो अनेक हैं और सभी बड़े बड़े अनुभूत हैं पर स्थानाभाव से इतने ही पर्याप्त हैं, भविष्य में भी इसी प्रकार योगों का संकलन होगा।

घाव में से रक्त चालू है किसी प्रकार बन्द नहीं हो रहा है या बवासीर के मस्सों से रक्त बह रहा हो उस दशा में निम्न प्रयोग करें—

माजूफल ४॥ तोला कूट कर १० छटांक पानी में जोश दें जब पानी आधा सेर रहे तो उसको उतार कर छान लें और उस पानी में आधा माषा फिटकरी का चूर्ण घोल कर उसमें कपड़े की गद्दी तर कर के प्रवाहित स्थान पर रख दें, जब शुष्क हो जाय तो और रखें आराम होगा। ♦♦

कार्यचिकित्सा-धारावाहिक लेख नं० (६)—

अणुखण्डीय श्वसनक ज्वर (Broncho-Pneumonia)

लेखक—कविराज एस० एन० बोस, एल० ए० एम० एस०, भिषग्रत्न, इन्दौर।

संज्ञा—अणुखण्डीय श्वसनक सन्निपात ज्वर में दोनों तरफ के फुफ्फुसों के छोटे-छोटे खण्डों (*lobules*) में प्रदाह उत्पन्न होता है, खण्डीय श्वसनक ज्वर के समान एक बृहत् खण्ड में आक्रमण सीमित नहीं रहता है। कभी-कभी छोटे-छोटे निकटवर्ती खण्ड आक्रान्त होने के पश्चात् एक साथ मिलकर एक बृहत् खण्ड का रूप ले सकते हैं परन्तु फुफ्फुस के अन्य अंशों में तथा दूसरे फुफ्फुस में भी आक्रमण होता ही है। एतदर्थ इस व्याधि को अणुखण्डीय श्वसनक ज्वर की संज्ञा दी गई है।

यह व्याधि प्राथमिक, औपसर्गिक तथा आगन्तुक रूप में हो सकती है, इस लिए इसका भिन्न-भिन्न वर्णन आवश्यक है। आयुर्वेदीय दृष्टिकोण से ये सभी प्रकार की व्याधियां वातश्लेष्मोल्वण सन्निपात हैं।

प्राथमिक अणुखण्डीय श्वसनक ज्वर
(Primary Broncho-pneumonia)

विप्रकृष्ट निदान—साधारणतः यह व्याधि शिशुओं में, विशेषतः २ वर्ष से कम उम्र वाले बच्चों में ही होती है। स्त्री-पुरुष भेद से इस व्याधि के आक्रमण में विशेष कुछ अन्तर परिलक्षित नहीं होता है। साधारणतः शीत व वसन्त ऋतु में ही इस व्याधि का आक्रमण अधिक नजर आता है। क्लिष्ट, शीर्ण, दुर्बल अथवा रोग क्लिष्ट शारीरिक अवस्था इस व्याधि के आक्रमण के लिये उपयुक्त क्षेत्र बनाती है। कभी-कभी स्वस्थ बच्चों में भी अचानक सर्दी लगने के कारण यह व्याधि हो सकती है।

सन्निकृष्ट निदान—इस व्याधि के कारण रोग जीवाणु साधारणतः *Pneumococcus* ही होते हैं, परन्तु साथ ही साथ खण्डीय श्वसनक ज्वरोक्त अन्यान्य रोग-जीवाणु *strepto coccus, staphylococcus, Friedlander's pneumo-bacillus* तथा *micrococcus cotarrhalis* भी रह सकते हैं।

विकृति विज्ञान—इस व्याधि में साधारणतः उभय फुफ्फुस के, कभी कभी एक फुफ्फुस के भी इतस्तः विक्षिप्त अंशों में ठोसावस्था होती है जो कि साधारणतः छोटे-छोटे तथा पृथक् पृथक् रूप से अवस्थित होते हैं। परन्तु कभी-कभी कई एक छोटे-छोटे आक्रान्त अंश एक साथ मिलकर एक बृहदंश की सृष्टि करते हैं जिससे खण्डीय श्वसनक ज्वर का सन्देह हो सकता है, परन्तु फुफ्फुसों के विभिन्न अंशों में विभिन्न प्रकार की अवस्था तथा बीच-बीच में स्वस्थ अवस्था भी नजर आती है जिससे रोग का प्रकृत रूप निर्णीत हो सकता है। कभी-कभी फुफ्फुस का वहिस्तल तक आक्रमण होने से फुफ्फुसधराकला का प्रदाह भी हो सकता है, परन्तु साधारणतः अणुखण्डीय श्वसनक ज्वर में गम्भीर प्रदेश में आक्रमण के कारण फुफ्फुसधरा कला का प्रदाह खण्डीय श्वसनक ज्वर की अपेक्षा कम दिखाई पड़ता है।

इस व्याधि में भी फुफ्फुसों में परिवर्त्तनक्रम खण्डीय श्वसनक ज्वर के समान होता है परन्तु विभिन्न अंशों में एक ही साथ एक ही प्रकार का परिवर्त्तन नहीं होता है। विभिन्न अंशों में विभिन्न प्रकार की अवस्थाओं की प्राप्ति इस व्याधि का विशेषत्व कहा जा सकता है। सूक्ष्म श्वासनलिकाओं में आक्रमण के कारण सन्निहित वायु-कोषों में भी आक्रमण होता है जिससे उन कोषों में श्वेत रक्त कणिका, कोषान्तःकला, लाल रक्त कणिका व जालिकायुक्त स्राव भरा हुआ नजर आता है।

श्वासनलिकाओं में भी श्लेष्मोल्वण प्रदाह से उत्पन्न परिवर्त्तन दिखाई पड़ता है।

लक्षण—इस व्याधि का आक्रमण अकस्मात् ही होता है परन्तु खण्डीय श्वसनक ज्वर की अपेक्षा कुछ धीरे-धीरे ही होता होगा। शिशुओं में ठण्ड लगना, उल्टियां होना तथा आक्षेप होना प्रारम्भिक लक्षण हो सकते हैं। ज्वरताप क्रमशः १०३° या १०४° डिग्री तक अथवा इससे भी अधिक हो सकता है। कास, श्वासकष्ट तथा श्यावाभा शीघ्र ही प्रकट होती है। शिशु व बच्चे कफ निकाल नहीं सकते हैं बल्कि निगल लेते हैं जिससे खांसी के कफ का निर्णय नहीं होता है। मस्तिष्कधरा कला प्रदाह के समान मस्तिष्कीय लक्षण भी प्रकट हो सकते हैं। साधारणतः ज्वरताप में उतार-चढ़ाव खण्डीय श्वसनक ज्वर के समान अल्प ही होता है परन्तु अणुखण्डीय श्वसनक ज्वर में ज्वरताप कुछ दीर्घ दिनों तक चालू रहता है और विभिन्न अंशों में विभिन्न समय पर आक्रमण के कारण ज्वर ताप कम होकर फिर से २-१ दिन के लिये बढ़ जाता है। इस व्याधि में साधारणतः अदारुण ज्वर मोक्ष ही होता है और धीरे-धीरे ज्वरताप कम होकर स्वाभाविक तापमान में या इससे भी कम तापमान में पहुंच जाता है।

रोगी परीक्षा में साधारणतः अणु खण्डीय श्वसनक ज्वर के चिह्न प्रगट होते हैं, पार्थक्य इतना ही है कि रोगाक्रमण इतस्ततः विक्षिप्त अंशों में तथा उभय फुफ्फुसों में ही नजर आते हैं। वाचिक तरंग में वृद्धि, वाचिक प्रतिस्वनन में स्तब्धता तथा सूक्ष्म चिटचिट ध्वनि तथा सौरंगिक श्वासध्वनि सुनाई पड़ती है। श्वासगति में वृद्धि, द्रुत श्वासप्रश्वास, श्वास की अपेक्षा लम्बा प्रश्वास, मुख मण्डल में श्यावाभा, पसलियां चलना, नासापुट विस्फारण आदि चिह्न प्रकट होते हैं। किसी किसी क्षेत्र में फुफ्फुस परीक्षा में उपरोक्त चिह्न प्रारम्भ में प्रकट नहीं हो सकते हैं, परन्तु वे ध्वनियां इतस्ततः सुनाई पड़ती ही हैं, तथा उभय फुफ्फुस के ऊपर सूक्ष्म चिटचिट ध्वनि तथा वंशीध्वनि साधारणतः सुनाई पड़ती है।

उपसर्ग व परिणति—ये खण्डीय श्वसनक ज्वर के समान हैं।

भेदाभेद ज्ञान—खण्डीय श्वसनक ज्वर से पहिले से श्वास प्रश्वास की तकलीफों के अभाव में अकस्मात आक्रमण के साथ उभय फुफ्फुस में इतस्ततः विक्षिप्त आक्रान्त अंशों की अवस्थिति अणुखण्डीय श्वसनक ज्वर के निर्णय में पर्याप्त सहायता देती है। खण्डीय श्वसनक ज्वर के समान इस व्याधि की प्राथमिक अवस्था में मस्तिष्कीय लक्षणों का प्रकट होना अथवा फुफ्फुसीय चिह्नों का प्रकट न होना रोग निर्णय में कुछ बाधा उत्पन्न कर सकता है परन्तु खण्डीय श्वसनकज्वरोक्त उपायों के द्वारा इस बाधा को दूर किया जा सकता है।

प्रगति—साधारणतः इस रोग में रोग भोग काल स्वल्प ही होता है, तृतीय दिन से लेकर सप्तम दिन के भीतर ज्वर मोक्ष हो सकता है परन्तु इससे भी कुछ अधिक दिन तक रोग भोग हो सकता है। अत्यधिक दिन रोग भोग से अन्य प्रकार विशेषतः क्षयज श्वसनक सन्निपात का सन्देह हो सकता है।

साध्यासाध्यत्व निर्णय—यह व्याधि वात श्लेष्मोल्वण सन्निपातज होने के कारण, विशेषतः शिशुओं में स्वाभाविकतः श्लेष्म प्रकृति के कारण खतरनाक मानी जाती है। विशेषतः अति शिशु अथवा रोग जीर्ण अथवा अपुष्ट शिशुओं में यह व्याधि विपदाशंका को बलवती बना देती है, परन्तु पेनसिलीन के आविष्कार के बाद यह व्याधि अब उतनी घातक नहीं मानी जाती है।

चिकित्सा—इसकी चिकित्सा औपसर्गिक अणुखण्डीय श्वसनक ज्वर के समान होने से परवर्ती अध्याय में एक साथ बताई जावेगी।

मोतीझला की सफल चिकित्सा

लेखक—डा० वसंतलाल तिवारी, जनसेवी धर्मार्थ चिकित्सालय, रामनगर (इटावा)

रोगी नाम—मनोहर नाई उम्र—५ साल
निवासी—रामनगर (इटावा)

उपरोक्त रोगी आन्त्रिक ज्वर से पीड़ित था। दिनाङ्क १ अगस्त को रोगी देखा व चिकित्सा प्रारम्भ की। चिकित्सा क्रम लिखने के पूर्व पाठकों के समक्ष आन्त्रिक ज्वर का निदान लिखना अच्छा समझता हूं। अतः प्रथम आन्त्रिक ज्वर का निदान लिखता हूं जो कि निम्न है—

कारण व संक्रमण—इसका कारण (*B. Typhosus*) है, यह रोगी के मल मूत्र के संसर्ग में आने वाले दूषित खाद्य पदार्थों द्वारा फैलता है। जीवाणु मुख मार्ग द्वारा शरीर में प्रवेश करते हैं। *Mesentery & spleen* में खास तौर से विकृति होती है। समस्त आंत्र में विकृति होती है। परन्तु खास तौर से आंत्र के तृतीयांश भाग के अन्तिम भाग (*Ileum*) में होती है। इसके पश्चात ऊपर की ओर विकृति बढ़ती है।

लक्षण—जीवाणु प्रविष्ट होने के २ सप्ताह के भीतर रोग के लक्षण प्रारम्भ होते है। शिरःशूल अरुचि, आलस्य, नासा रक्तश्राव रोग उत्पन्न होने से पहिले होते हैं। प्रथम सप्ताह में ज्वर धीरे धीरे बढ़ता है। सायंकाल २ अंश चढ़ता है, दूसरे दिन सुबह १ अंश उतरता है। इस प्रकार द्वितीय दिन प्रातः-सायं का ज्वर पूर्व दिन के ज्वर से १ अंश अधिक रहता है। जीभ मैली सूखी तथा श्वेत रहती है। मलावरोध व आध्मान रहता है। कभी-कभी दिन में २-३ दस्त होते हैं। प्रथम सप्ताह में प्लीहा बढ़ जाती है। विस्फोट ६ से १२ दिन के भीतर पड़ जाते हैं। आकार गोल चपटे २-३ मिलीमीटर व्यास वाले होते हैं। अंगुलि भार डालने से कुछ समय के लिए मिट जाते हैं, फिर उत्पन्न होते हैं। उदर छाती पर अधिक दिखाई देते हैं। कभी-कभी खांसी होती है और कफ भी निकलता है। यदि ज्वर तीव्र न हो तो मस्तिष्क विकृति नहीं होती। शिरःशूल प्रथम सप्ताह तक वैसा ही बना रहता है। शूल शिर के अग्रभाग में होता है। १४ दिन तक ज्वर की तीव्रता चर्म सीमा तक बनी रहती है। तथा नाड़ी की गति तीव्र होजाती है। शिरःशूल शान्त हो जाता है। प्रलाप, मानसिक दौर्बल्य, आध्मान आदि लक्षण द्वितीय सप्ताह में बढ़ जाते हैं। उदर भाग छूने से वेदना होती है। तृतीय सप्ताह में ज्वर उतरने लगता है। रोगी कृश और दुर्बल होता है। सौम्य प्रकार में रोगी की दशा में सुधार होने लगता है। चौथे सप्ताह में ज्वर उतर जाता है। शरीर की उष्णता स्वाभाविक अंश से कम रहती है।

रोगी वृतान्त—रोगी ज्वर से पीड़ित हुआ, दिन-रात ज्वर बराबर बना रहा। शिरःशूल बेचैनी आदि लक्षण जब अधिक व्यक्त हुए तो रोगी का पिता रामभरोसे नाई मेरे पास आया और रोगी को देखने के लिए कहा। मैं रोगी को देखने गया तो पता चला कि ७ दिन से बराबर इसी भांति से ज्वर है। रोगी शिरःशूल के कारण बेचैन एवं ज्वर ताप १०४° था ग्रीवा व छाती पर पिण्डिकायें स्पष्ट दिखाई दे रही थीं। रामभरोसे से मैंने कहा कि तुम्हारा बच्चा मोतीझाला (*Interic fever*) से आक्रान्त है और उसे औषधि लेने के लिए चिकित्सालय पर बुलाया। द्वितीय सप्ताह प्रारम्भ हो चुका था, सौभाग्यवटी १/२ रत्ती, प्रवालभस्म १ रत्ती रक्त शुभ्रा भस्म २ रत्ती का मिश्रण दिन रात में ४ बार देने का आदेश दिया तथा उबाल कर ठंडा किया हुआ पानी पीने के लिये बताया।

इस प्रकार से ४ दिन चिकित्सा क्रम चला, एका-एक तारीख ५ अगस्त के ११ बजे रोगी के पेट में दर्द प्रारम्भ हुआ। मैं देखने गया पेट को दबाया त्यों ही रोगी चीखने लगा। वेदना अधिक थी, मलावरोध भी था। पेट दबाने से विदित हो रहा था कि मलाशय में शुष्क मल की गांठे हैं। मैं शीघ्र ही चिकित्सालय पर आया। रोगी को अपने शतशोनभूत मलावरोध नाशक मिश्रण की दो मात्राऐं दीं तथा *Nuclein Solution 5% in 1 c. c.* का पेशीगत इंजेक्शन दिया। साथ ही दालचीनी से साधित जल पीने के लिये कहा। मलावरोध नाशक मिश्रण निम्न है—

Soda bicarb	*5 gr.*
liqr. potassi	*10 m.*
Saccharini	*1 m.*
olive oil	*20 m.*
❖*Aqua kantakari*	*1 oz.*

५ अगस्त को रात्रि के २ बजे के करीब रोगी को दस्त आया और करीब १ सेर तक मल की सूखी गांठे निकलीं। प्रातः रोगी देखने गया तो रोगी प्रसन्न चित्त था। आयुर्वेदीय पूर्व योग (सौभाग्य वटी १/२ रत्ती, प्रवाल १ रत्ती, रक्त शुभ्रा भस्म २ रत्ती) चल ही रहा था। पथ्य में सिर्फ गाय का दूध ग्लूकोज के साथ दिया जा रहा था। ता० ८ अगस्त से रोगी की औषधि में परिवर्तन किया गया। प्रवाल १ रत्ती, रक्त शुभ्रा भस्म २ रत्ती, संजीवनी वटी १ रत्ती का मिश्रण दिन में ३ बार मधु के साथ दिया जाने लगा। ता० ११ को भी देखने गया तो ज्वर ६८ अंश था। रोगी के पिता से १ सप्ताह औषधि देने के लिये कहा। पश्चात् अन्न देने की व्यवस्था की जायगी। औषधि लाकर रख ली गई। रोगी के कहने पर उसे कोई ठोस अन्न दिया गया, करीब ४-५ दिन। ज्वर न रहने के कारण औषधि में भी ढीलापन किया गया। पुनः रोगी को मन्द ज्वर रहने लगा।

ता. १९ को एका-एक शीत के साथ तेजी से ज्वर बढ़ा रोगी का पिता मेरे पास आया। मैं रोगी देखने गया, देखने से ज्ञात हुआ कि भोजन दिया गया है। आध्मान भी था। नाड़ी की गति अति क्षीण थी। रोगी के पिता को डांट-फटकार बता कर मैं चिकित्सालय पर आया। रोगी का पिता किंकर्तव्य विमूढ़ था। इतने में ही रामभरोसे के हितैषी श्री गुलाब चन्द्र आये और कहा यदि आप लोग कुपथ्य न करते तो रोगी अब तक ठीक हो जाता। श्री गुलाब चन्द्र स्वतः इस दुष्ट रोग से पीड़ित रह चुके थे। कई वैद्यों के इलाज के पश्चात मुझे गुलाब की चिकित्सा करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था, और मैं सफल हुआ था। अतः गुलाब को पूर्ण विश्वास था कि रोगी स्वस्थ हो जावेगा। गुलाब रोगी के पिता रामभरोसे को अपने साथ चिकित्सालय पर लाये। प्रार्थना की कि आप जैसा बतायेंगे वैसा ही किया जायगा। अब मैंने पुनः दवा की व्यवस्था की जिसका मिश्रण इस प्रकार से है—कस्तूरीभैरव आधी रत्ती, रक्तशुभ्रा दो रत्ती, प्रवाल एक रत्ती दिन रात में ४ बार मधु के साथ। प्रथम वर्णित मिक्चर दिया और लगातार ३ दिन तक *Nuclein solution* १-१ इन्जेक्सन दिया। रोगी को २-३ दस्त आये ज्वर भी ठीक हो चला। ता. २८ को प्रात रोगी का तापमान ६७ था। औषधि व्यवस्था चलती रही। प्रथम सितम्बर को रोगी को मूंगकी दाल का यूष दिया गया। दो सप्ताह के लिये विषमुद्ध्यासव का मिश्रण देदिया गया। जो कि पथ्य देने के २ घन्टे पश्चात सुवह शाम के लिये था रोगी मनोहर नाई अब चलने फिरने लगा तथा पूर्ण स्वस्थ है। ♦♦

❖ कंटकारी अर्क-कटेरी, गुरुच, पुष्करमूल, सोंठ, हरड़, सम भाग लेकर जौकुट करे, और अर्क विधान द्वारा अर्क खींच लिया जाय। यही कण्टकारी एक्वा है। मात्रा १ से ४ तोला।

आंवला और स्वास्थ्य

[डा० कुलरंजन मुखर्जी]

जो सभी फल स्वास्थ्य के लिए हितकर हैं, उनमें आंवला एक विशिष्ट स्थान रखता है। स्मरणातीत काल से यह मध्यप्राच्य एवं भारतवर्ष में विभिन्न औषधियों के प्रयोजनीय उपकरण के रूप में व्यवहृत होता आरहा है। वर्तमान समय में यह निःसंदेह प्रमाणित होगया है कि आंवले के भीतर जितना सी विटामिन है, पृथ्वी के और किसी भी फल में उतना नहीं है। इसीलिए इसने सर्वत्र नये रूप में सम्मान प्राप्त किया है।

आंवला भारतीय मिट्टी में उत्पन्न होने वाला फल है। यह वर्मा में भी उत्पन्न होता है। इस फल का आकार गोल एवं व्यासार्ध आधे इञ्च से लेकर सवा इञ्च तक होता है। इसमें भीतर त्रिकोणाकृति बादाम की तरह एक बीज होता है। उसे फेंककर अवशिष्ट फल ग्रहण किया जाता है। इस फल का स्वाद कुछ अम्ल व कषाय युक्त होता है।

आंवले का पेड़ साधारणया २० से २५ फुट ऊंचा होता है। वसंत ऋतु में इसमें फूल आते हैं एवं शीतऋतु में फल पक जाते हैं।

यह भारतवर्ष के सभी स्थानों में पाया जाता है। शीत ऋतु में मौसम के समय यह कच्चा ही विक्रय होता है। बाद में इसे शुष्क अवस्था में विक्रय किया जाता है।

साधारणतः आंवला स्वास्थ्य के लिये हितकर एवं रोग आरोग्यकारी औषधि के रूप में व्यवहृत होता है। किंतु खाद्य के रूप में भी यह तुच्छ नहीं है। इसमें २.५ प्रतिशत प्रोटीन, ०.१ प्रतिशत चर्वी, ०.७ प्रतिशत धातव लवण, ३.४ प्रतिशत छिबड़ा जातीय पदार्थ, १४.१ प्रतिशत शर्करा जातीय खाद्य ०.५१ प्रतिशत चूना, ०.०२ प्रतिशत फासफोरस एवं १.२ मिलिग्राम लोहा है। इसका तापमूल्य हर १०० ग्राम में ५६ है। आंवले में बहुत थोड़े रूप में नायाचिन (एक श्रेणी का 'बी' विटामिन) भी मिलता है। किंतु इसमें सी विटामिन ही सबसे अधिक मात्रा में पाया जाता है। हर १०० ग्राम पपीते में २५ मिलिग्राम सी विटामिन रहता है। नींबू के रस में ६३, संतरे में ६८, अनारस में १२०, केले में १७० किंतु आंवले में ६०० मिलिग्राम सी विटामिन रहता है। अमरूद को सी विटामिन का राजा कहा जाता है। उसमें हर १०० ग्राम में २६६ भाग सी विटामिन रहता है। किंतु आंवले में इसका दुगुना पाया जाता है। दूसरे फलों के साथ तुलना करने पर यह कहा जा सकता है कि इसमें पपीते से २४ गुणा, नींबू व कमला नींबू से ६ गुणा, अनाररस से ५ गुणा, एवं केले से प्रायः ४ गुणा सी विटामिन वर्तमान रहता है।

साधारणत: फल अथवा शाक-सब्जी को यूं ही घर में लाकर रख देने पर अथवा इनके सूख जाने पर उनका सी विटामिन बहुत अंशों में नष्ट हो जाता है। किंतु आंवला सूख जाने पर अथवा काफी दिनों तक रक्खा रहने पर भी इसका सी विटामिन यथेष्ट परिमाण में वर्तमान रहता है।

दक्षिण भारत स्थित कुनूर में आंवले के सम्बन्ध में जो गवेषणा हुई है उससे पता चला है कि हर १०० ग्राम ताजे आंवले में ४७० से लेकर ६८० मिलिग्राम तक सी विटामिन रहता है। उसे जल शून्य करने पर वजन के अनुपात में उसमें बहुत अधिक सी विटामिन पाया जाता है। जलशून्य आंवले का चूर्ण व्यवहार करने पर उसके हर १०० ग्राम में २४२८ से लेकर ३४७० मिलिग्राम तक सी विटामिन मिल सकता है। उसे छाया में सुखाकर चूर्ण करने पर भी उसमें १७८० से २६६० मिलिग्राम तक सी विटामिन रहता है।

किंतु धूप में सुखाने पर आंवले का सी विटामिन कुछ अंशों में कम होजाता है। तथापि उसके हर १०० ग्राम में १५५० से लेकर १८४० मिलिग्राम सी विटामिन पाया जाता है। यह छाया में सुखाये आंवले से कम होने पर भी मनुष्य की आवश्यकता के लिये यथेष्ट है।

सी विटामिन की दैनिक आवश्यकता ७५ मिलिग्राम तक निर्धारित की गई है। प्रति दिन थोड़ा आंवले का चूर्ण अथवा कई एक आंवले का रस पीने से ही यह आवश्यकता पूरी हो जाती है।

विटामिन सी शरीर के लिये अत्यन्त आवश्यकीय है। इस विटामिन के अभाव में दांतों का क्षय अस्थियों की भंगुरता मसूड़े की कमजोरी, विभिन्न जोड़ों का दर्द, स्फीति एवं स्कर्वी नामक घातक रोग हो जाते हैं। अन्यान्य रूपों में भी यह बहुत हितकर माना जाता है। यह कहा जाता है कि आंवला दस्त एवं रक्तामाशय आदि रोगों में अत्यंत लाभदायक है। जरायु से अत्यधिक रक्तस्राव होने पर मधु के साथ आंवले का रस सेवन करने का उपदेश दिया जाता है। श्वेतप्रदर रोग के लिये यह एक अच्छी दवा मानी जाती है। साथ ही यह भी कहा जाता है कि आंवला कामला, अर्श, अजीर्ण तथा खांसी आदि रोग नष्ट करता है एवं आंखों की दृष्टि शक्ति को बढ़ाता है। आयुर्वेद में इसे रसायन कहा गया है, अर्थात् यह जरा और व्याधि दूर करता है। सुश्रुत का कहना है कि आंवला सबसे अधिक गुणकारी एवं अम्लजातीय फलों में सर्व श्रेष्ठ है।

इसे विभिन्न रूप में व्यवहार किया जाता है। इसका कच्चा रस शहद के साथ दिया जासकता है। जब ताजा आंवला मिले तब उसे इसी रूप में ग्रहण करना चाहिए। अथवा रस जल के साथ मधु एवं चीनी मिलाकर शरबत बनाकर पिया जा सकता है। यह मूत्रस्रोत की वृद्धि करता है एवं शरीर में शक्तिदान करता है ऐसा माना गया है।

भारतवर्ष के विभिन्न स्थानों में इसके द्वारा अचार तैयार किया जाता है। यह अत्यंत उपकारी है। इसे तैयार करने के लिए कुछ आंवले धोकर खौलते हुए पानी में १० मिनट तक भिगो देना चाहिए। उसके बाद अतिरिक्त जल फेंककर जितने जल में आंवले रहें केवल उतना ही जल रखना आवश्यक है। तदुपरान्त जितना पानी हो उसका चौथाई भाग नमक पानी में छोड़ देना होता है। नमक गल जाने पर उसी नमकीन जल के साथ फलों को एक कांच के बर्तन में अथवा बोतल में रखकर बीच बीच में धूप में रखा जाता है। इस प्रकार रक्षा करने पर यथेष्ट परिमाण में सी विटामिन मौजूद रहता है। एवं ३-४ महीनों तक इसे अविकृत रक्खा जा सकता है। साथ ही यह भी उल्लेख किया जा सकता है। कि नमक मिलाने पर इसका सी विटामिन सहज ही नष्ट नहीं होता। इसके अलावा आंवले के भीतर जो अम्लरस है वह आंवले के सी विटामिन की रक्षा करता है।

आंवले को सुखाकर इसका चूर्ण काफी दिनों तक रक्खा जा सकता है। जिस समय आंवला नहीं मिले उस समय इसे व्यवहार करना चाहिए। आंवला छाया में सुखा लेना आवश्यक है। कारण धूप में सूखाने पर अत्यधिक सी विटामिन नष्ट हो जाता है। सुखाने के समय इसे हलके ढंग से लकड़ी अपना एनामेल के ट्रे के ऊपर बिछा देना चाहिए। यदि हवा चलती रहे तो यह ३-४ दिनों में ही सूख जाता है। सूख जाने पर इसे भली-भांति चूर्ण कर बोतल में रखना चाहिए।

आंवले को उबालकर घी में तलकर नमक मसाले मिलाकर रक्खा जाता है एवं कभी-कभी लोग इसे चीनी के रस में भी रखते हैं। किन्तु इस प्रकार अचार अथवा मुरब्बा तैयार करने पर उसमें सी विटामिन बहुत कम ही मिलता है।

जब ताजा आंवला न मिले तब आंवले के चूर्ण के साथ पानी मिलाकर एवं इसे कपड़े से छानकर शरबत बनाया जाता है। यह अपेक्षाकृत सुस्वादु एवं अत्यन्त उपकारी होता है।

आंवले का रस भी काफी दिनों तक रक्खा जासकता है। आंवलों को बारीक कुचलकर एक छोटे से कपड़े पर रखकर अनायास ही रस निचोड़ लिया जा सकता है। इसमें पानी मिलाकर तथा थोड़ा सा शहद मिला कर व्यवहार करना चाहिए। इसके भीतर जो विटामिन रहता है वह काफी दिनों तक नष्ट नहीं होता।

आंवलों को टुकड़े-टुकड़े काट, नमक मिला सुखा लेने पर यह परम हितकर एवं मुखरोचक मुख शुद्धि प्रस्तुत करने वाला होता है। इसे भी छाया में सुखाना चाहिए।

इसे तरकारी की तरह भी व्यवहार किया जा सकता है। अल्प जल में ढंकी हुई अवस्था में जब यह उबलकर नरम हो जाए, तब तैल अथवा घी के साथ इसे खाया जासकता है, यह भात अथवा रोटी के साथ खाया जाता है। और कभी-कभी उनके बदले में भी ग्रहण किया जाता है। कारण इसके भीतर १४.१ प्रतिशत शर्करा जातीय खाद्य है। आंवले को नमक के साथ उबालकर खाने पर अत्यन्त स्वादिष्ट लगता है। अतएव यह यथेष्ट परिमाण में इस ढंग से खाया जा सकता है, एवं स्वास्थ्य की दृष्टि से यह एक परम प्रयोजनीय खाद्य के रूप में ग्रहण किया जाता है।

आंवले को उबालकर इससे एक प्रकार का हलवा भी तैयार किया जाता है। आंवले को उबालकर उसे सर्वप्रथम तोड़ गुठली अलग कर देवें फिर उसमें घी, चीनी, तेजपत्ता तथा कुछ मसाले मिला कर तैयार करें। यह अत्यन्त उपादेय एवं पुष्टिकर खाद्य है।

हमारा देश इतना गरीब है कि बहुत कम लोग ही फल खरीदकर खा सकते हैं। किंतु अधिकांश स्थानों में आंवला काफी सस्ता और सुलभ है। इसे थोड़ा सा खाने पर ही अधिक फल खाने के बराबर लाभ होता है। आंवले के मौसम में प्रतिदिन कुछ आंवले विभिन्न रूप में ग्रहण किये जा सकते हैं। उसके बाद जब मौसम चला जाय तब चूर्ण व्यवहार करना चाहिये। आंवले का अचार आदि भी पर्याप्त परिमाण में व्यवहार किया जा सकता है। इन सभी वस्तुओं को हमेशा ही सूखे स्थान पर रखना चाहिए। एवं बोतल आदि के कार्क इस प्रकार कसकर बंद किए जायें कि उनमें हवा का प्रवेश न हो सके।

काफी दिनों तक सी विटामिन की रक्षा का यही प्रधान उपाय है। ♦♦

पारिभद्र

लेखक—वैद्याचार्य उदयलाल महात्मा, देवगढ़ (उदयपुर)

पारिभद्र (फरहद) जिसको इधर के लोग 'गाद-फलो' कहते हैं, बहुत होता है। इसकी लकड़ी को किसान लोग बहुधा चड़स निकालने के लिए कुवे पर कोंढ़ बनाकर लगाते हैं। इसका शुष्क काष्ठ थोड़े समय के बाद अपनी नवीन जड़े छोड़कर फिर हरा भरा हो जाता है।

इस वृक्ष का वर्णन शालिग्राम निघण्टु भूषण में इस प्रकार है—

पारिभद्रश्च पालाशो रक्तपुष्पः प्रभद्रकः।
कण्टकी पारिजातः स्यान्मन्दारः कण्ट किंशुकः॥
पारिभद्रो निम्बतरुर्मंदारः पारिजातकः।
(भाव०)।

अर्थात्—पारिभद्र, पालाश, रक्तपुष्प, प्रभद्रक, कण्टकी, पारिजात, मन्दार, कंट किंशुक, निंबतरु, कृमिशत्रु, रक्त कुसुम, कृमिघ्न, बहुपुष्प, रक्त केशर ये पारिभद्र (फरहद) के संस्कृत नाम हैं।

अन्य भाषाओं के नाम—

सं०—पारिभद्र। हिन्दी—फरहद। बंगला—पालते मान्दार। म०—पांगेरा, पानरा। को०—पारिगा। गु०—फरहद। कर्णाटकी—हरिवाला, (भरुकमरम)। तै०—मोलमोत्ति चेट्टु, मोदुगु, वारिदेचेट्टु। द्रा०—पंजीर। ता०—मुराक। लैटिन—एरिथिना इण्डिका (*Erythrina Indica*)।

गुण—

पारिभद्र कृमिश्लेष्म मेदः कफानिलापहः।
(मदन० नि०)।

पारिभद्रः कटूष्णः स्यात्कफ वात निकृन्तनः।
अरोचकहरः पथ्यो दीपनश्चापि कीर्तितः॥
(रा० नि०)।

भावार्थ—पारिभद्र (फरहद) कृमि, कफ, मेद, वातकफ नाशक कटु, उष्ण अरुचि हर, पथ्य और दीपन है। और भी—

पारिभद्रः कटूष्णश्च, पथ्यश्चाग्नि प्रदीपकः।
अरोचकः कफ कृमि, मेह शोफहरः स्मृतः॥
पुष्पं पित्तरुजं हन्ति, कर्ण व्याधि विनाशयेत्।

विशेष यह है कि प्रमेह और सूजन को दूर करता है, इसके फूल पित्त रोग और कर्णरोगनाशक हैं।

परिचय—

इसके वृक्ष जंगल में ढाक के दरख्तों के साथ होते हैं। पत्ते ढाक के समान एक डाली में तीन-तीन पीलापन युक्त होते हैं। फूल लाल रङ्ग के सुन्दर वसंत में आते हैं। इस पर फली आती है। शाखाओं में सूक्ष्म कांटे होते हैं। वृक्ष की बाह्य त्वक् भूरी और फटी हुई होती है। बड़े करीर वृक्ष की तरह।

व्यवहारोपयोगी—छाल, पत्ते और फूल।

मात्रा—३ माषा से ६ माषा।

ढाक और फरहद में अन्तर—

ढाक के पत्ते गहरे हरे होते हैं और फरहद के पीलापन लिये। इसकी बाह्य त्वक् करीर के बड़े वृक्ष के समान भूरी और फटी हुई होती है जब कि पलाश की कालोच लिए पतली होती है। इसकी शाख पर सूक्ष्म कांटे होते हैं परन्तु पलाश की शाख पर नहीं होते। पलाश के फूल पीले लाल होते हैं। जब कि फरहद के सुर्ख। ढाक के फूलों की मूल काली होती है और वैसे ही इसकी भी। पुष्पाकृति में दोनों ही समान हैं।

अनुभवी सज्जन इसके विशेष गुणों पर शीघ्र प्रकाश डालने का कष्ट करें।

ग्राम्यजीवन में अनुभूत प्रयोग

लेखक—डा० सन्तोष कुमार जैन, *A. M. S.* मैडीकल आफीसर, नजीराबाद (भोपाल)

(१) नेत्र और मस्तिष्कोपयोगी धातु पौष्टिक योग—

सामग्री—बादाम पेशावरी की गुली	एक पाव
खसखश के दाने	एक पाव
गोघृत ताजा गरम किया हुआ	आध सेर
भुने हुए चने का आटा	आध सेर
शक्कर मोटे दाने वाली	डेढ़ सेर
भैंस के दूध का मावा ताजा	आध सेर

बनाने की विधि—पहले बादाम की गुठली और खसखश के दानों को साफ करके आपस में महीन पीसकर मिलालें। फिर लोहे की साफ कढ़ाई में घी डालकर कंडों की मंदी आंच जलाकर चूल्हे पर कढ़ाई को घी के गरम हो जाने पर पीसा हुआ सामान कढ़ाई में डालकर खुरपे से इधर-उधर चलाते रहें, जब वह सुर्ख हो जाय तब उसमें मावा और भुने हुए चने का आटा मिलावें और खूब अच्छी तरह इधर उधर हिलाते हुए सबको आपस में मिलावें, जब मिलकर और पककर खूब बादामी रङ्ग जैसी सुर्खी हो जाय तब नीचे उतार लें।

फिर एक साफ कढ़ाई में शक्कर की तीन तार की अच्छी चाशनी बनाकर ऊपर के पके हुए सामान को उसमें मिला दें, खूब अच्छी तरह मिल जाने पर फिर उसमें—

प्रक्षेप द्रव्य—इलायची	६ माशे
किशमिश	एक पाव
पिस्ता कटे हुए	एक छटांक

—इन सबको मिलादें, फिर एक-एक छटांक के लड्डू बनालें। सुबह शाम एक-एक लड्डू खाकर ऊपर से कम से कम पाव भर दूध केशर डाला हुआ अच्छी तरह उबला हुआ पीवें।

अपथ्य—खटाई, तेल, गुड़, मिर्च, गरम मसाला, द्विदल धान्य।

यह प्रयोग पौष माघ महिने की सर्दी में कलकत्ता मारवाड़ी अस्पताल में हाउस फिजीसियन का काम करते हुए सन् ५२-५३-५४ में अपने घनिष्ठ एवं कमजोर मित्रों को बनाकर सेवन कराया तथा सन् ५५ और ५६ की सर्दी में सरकारी अस्पताल नजीराबाद (भोपाल) में मेडिकल आफीसर के स्थान पर कार्य करते हुए कुछ ग्रामीणों को सफलता पूर्वक यह प्रयोग बनाकर दिया। इससे सेवन करने वाले लोगों को काफी स्वास्थ्य में फायदा हुआ और वजन भी बढ़ा है। शरीर स्वस्थ रहने पर उन लोगों को शारीरिक किसी भी व्याधि ने नहीं सताया है। यह मेरा अनुभूत प्रयोग आप विद्वद्वर भी अपनाकर समयानुसार स्वयं और दूसरों को प्रयोग करावें और इसकी सफलता के बारे में अपनी विचारधारा सर्व जन हिताय पठनीय "धन्वन्तरि" पत्रिका में अवश्य प्रकाशनार्थ भेजें।

मैंने इस प्रयोग को आयुष्य-वीर्य-धैर्य्य, स्मरणशक्ति, बल-कान्ति और ओज को बढ़ाने वाला, हृदय को हितकर पाया है। इसीलिए दिल और दिमाग की कमजोरी में तथा धातु तारल्यता और प्रमेह की शिकायत होने पर इसका प्रयोग सर्दी के दिनों में अवश्य करना चाहिए। बीच-बीच में यदि कब्ज की शिकायत हो जाय और पेट में भारीपन हो तो मृदु विरेचन लेने के लिए हफ्ते में एक बार फलत्रिक चूर्ण ६ माशा गरम पानी से सोते समय जरूर प्रयोग करें। फिर भी पेट में किसी को भारीपन रहे और कब्ज ज्यादा मालूम हो तो पंचसकार चूर्ण ६ माशा गरम जल से सोते समय हफ्ते में एक बार सेवन करते रहें। मैंने भी कुछ साथियों को उपरोक्त सेवन

विधि से ही इसका प्रयोग कराया था जिससे अधिक सफलता मिली, आप भी अनुभव करके देखें।

(२) विजया चूर्ण	३ माशा
काली मिर्चें	६ माशा
पेशावरी बादाम की गुली	१ तोला
खशखश के दाने	२ तोला
चारों मग्ज	४ तोला
शक्कर मोटी	८ तोला

इन सबको परस्पर जौकुट करके एक कांच की बरनी में भरलें। रोज सुबह शाम १तोला सर्दी के दिनों में केशरिया दूध कम से कम पाव भर अच्छा गरम किया हुआ के साथ सेवन करें और गर्मी के दिनों में पाव भर जल के साथ धारोष्ण दुग्ध आध पाव की लस्सी बनाकर यथारुचि मिश्री डालकर इसका सेवन करें। यह प्रयोग उत्तम पौष्टिक है। इसका प्रयोग शरीर की कृशता वीर्य क्षय और मस्तिष्क की कमजोरी तथा दृष्टिमांद्य में मैंने ग्राम्य जीवन में ग्रामीण लोगों को कराया है जिससे अच्छी सफलता देखी गई है।

(३) शिरःशूल और नेत्रशूल में—

गोघृत केशर देशी कपूर

इन तीनों को समभाग लेकर खरल में अच्छी तरह घोटलें, फिर इसको दिन में तीनबार नाक द्वारा सूंघें। इससे बार-बार सिर दर्द होना, बारबार सर्दी-जुकाम होना, रतौंधी, दृष्टिमांद्य, नेत्रशूल, अभिष्यन्द और दिमाग की कमजोरी दूर होती है। आधाशीशी (अर्धावभेदक) आधे सिर-दर्द में सूर्योदय से पहले अर्थात् प्रातःकाल ४ बजे से ही एक-एक घंटे पर इसका नस्य लेने से काफी अच्छा लाभ होता देखा गया है। यह मेरा शतशः अनुभूत है, मैं अपनी दैनिक चिकित्सा में सिर दर्द और नेत्र रोगों के रोगियों को इसका नस्य बराबर प्रयुक्त कराता रहता हूं। इससे रोगियों को काफी शान्ति और लाभ पहुँचा है।

(४) श्वास-कास औरबच्चों की कुक्कुर खांसी—
(*Whooping cough*) में—

बादाम की मिंगी	१ तोला
चिलगोजा की मिंगी	१ तोला
काकडासिंगी	६ माशा
भुनी हुई अलसी	१ तोला
छोटी पीपल	३ माशा

इन सबको एकत्र करके बारीक पीसलें और कांच की शीशी में भरकर रखदें। दिन में ३ बार मधु के साथ मिलाकर चाटें। मात्रा—बड़ों के लिये १ से २ माशा है और बच्चों के लिए ३ रत्ती है। मैंने इसका प्रयोग श्वास-कास के रोगियों को अदरख रस और मधु से भी कराया है, जिससे काफी लाभ होता हुआ देखा गया है। इसका खांसी श्वास हिचकी उरःक्षत, स्वरभंग जुकाम और हल्के ज्वर में, जो सर्दी से हुआ हो प्रयोग कर सकते हैं। मुझे दमा और कुक्कुर खांसी बच्चों की इन दो रोगों की चिकित्सा में इस प्रयोग से बहुत अच्छी सफलता मिली है।

(५) दद्रु में (दाद पर)—

आफू, बीज पंवाड़ के, नौसादर और खैर।
नींबू का रस डालकर, करो दाद से बैर॥

अर्थात् अफीम १ भाग, पंवाड़ के बीज ८ भाग नौसादर ४ भाग और कत्था ४ भाग। इन सबको नींबू के रस में खूब अच्छी तरह घोंटकर एक डिब्बी में भरकर रख लें। शरीर में जहां पर दाद हो उसको कंडे से खुजाकर उस पर उपरोक्त मलहम खूब रगड़कर लगावें। इससे किसी भी प्रकार का दाद हो अच्छे हो जाते हैं। इसके प्रयोग के समय नमक खाना बिल्कुल बन्द कर देना चाहिए। ज्यादा मिर्च मसाले और खट्टी चीजों का सेवन करना भी मना है। वक्त पर कब्ज रहने से मृदु विरेचन भी ले लेना चाहिये। मैंने अपने अनुभव में इस प्रयोग को दाद के लिए अच्छा पाया है।

—शेषांश पृष्ठ ६०७ पर।

श्री जगन्नाथ शर्मा कपिल आयुर्वेदाचार्य

आयुर्वेद विभाग, पटियाला (पेप्सू)

"श्री कपिल जी ने वैद्यशास्त्री तथा आयुर्वेदाचार्य गवर्नमेंट आयुर्वेद कालेज पटियाला (पेप्सू) से उत्तीर्ण किया है। इस समय आप पटियाला के आयुर्वेद विभाग में सेवा कार्य कर रहे हैं आयुर्वेद पर आपको अत्यन्त विश्वास है। अभी आपकी आयु २२ वर्ष की है फिर भी आपने अपने चार योग धन्वन्तरि में प्रकाशनार्थ प्रेषित कर अपने आयुर्वेद प्रेम का परिचय दिया है। प्रयोग उपयोगी प्रतीत होते हैं। पाठक लाभ उठावें।"

—सम्पादक।
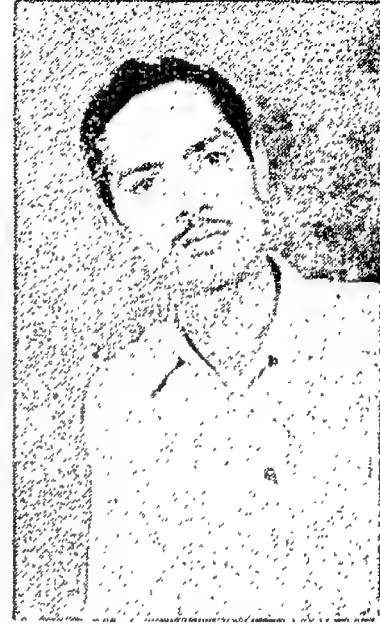
१—मासिक धर्म लाने वाला योग

राई सज्जी खार मालकांगनी
विजयसार बड़ी चौलाई

—सबको सम भाग लेकर बारीक चूर्ण कर शीशी में रखें।

मात्रा—२ माशा से ३ माशा तक बलानुसार गाय के दूध के साथ प्रातः सायं देवें।

उपयोग—बन्द मासिक धर्म में प्रयोग करें, कुछ ही दिनों में खुलकर आने लगता है।

२—इन्द्रिय-विकारहर तैल

बीरबहूटी, केंचुआ इन दोनों के समान भाग तिल तैल लेकर उसको मन्द मन्द अग्नि पर सिद्ध करें। उसके पश्चात् शीशी में रखें।

उपयोग—इस तैल को सुपारी छोड़कर लिङ्ग पर मालिश करने से लिङ्ग स्थूल होता है तथा वर्द्धन करता है और अन्य विकारों को नष्ट करता है।

३—स्वप्नदोषनाशक चूर्ण

काहू के बीज धनियां भांग
नीलोफर कासनी के बीज

—प्रत्येक १-१ तोला

मिश्री १० तोला
ईसबगोल भुसी १० तोला

—सबका बारीक चूर्ण कर मिश्री भी मिलादें। इसके

(शेषांश पृष्ट ६०६ पर)

श्री पं० कुलवन्तराय जोशी,

छत्ता नगनीराम, पटियाला।

"श्री जोशी महोदय वंश परम्परा से वैद्य हैं। आपको कुछ योग अपने वंशानुगत प्राप्त हैं। निम्न चार सरल योग पाठकों के लाभार्थ भेजे हैं। इस समय आप पटियाला शहर में आयुर्वेद चिकित्सक के रूप में जनता की सेवा करते हैं, स्त्री तथा पुरुष रोगों के आप विशेष चिकित्सक हैं। योग अव्यर्थ गुणकारी और सरल हैं।"

—सम्पादक।

(१) वातहर वटी—

सुरजा एलवा हरड़ बड़ी १-१ तोला
कुचला शुद्ध ३ माशा

—इन सबको मिलाकर जल के साथ गोली २-२ रत्ती की बनावें।

मात्रा—२-२ गोली प्रातः सायं, गरम जल या दूध के साथ।

गुण—सब प्रकार के वात रोगों पर अत्यन्त गुणकारी है।

(२) शीतपित्तहर चूर्ण—

शुद्ध पारा शुद्ध गन्धक देशी अजवायन

—सम भाग लेकर सबको बारीक पीसकर कार्य में लावें।

मात्रा—१ माशा से ३ माशा तक।

अनुपान—शहद के साथ।

(३) कण्डूहर चूर्ण—

शुद्ध गन्धक कालीजीरी
गेरू बावची चाकसू (मुकसर)

—समभाग लेकर चूर्ण करें। मात्रा—६ माशा।

अनुपान—लस्सी या दही, नमक मीठा रहित।

गुण—हर प्रकार की कण्डू पर लाभकारी योग है। तेल, खटाई, आम का परहेज करें। कण्डूहर चूर्ण को सरसों तेल में मिलाकर मालिश भी कर सकते हैं।

(४) प्रदरहर चूर्ण—

सुरमा सफेद ५ तोले को १० तोले त्रिफला क्वाथ में पकाकर शुष्क करलें और बारीक पीसकर १ तोला गेरू मिलाकर चूर्ण बनावें। मात्रा—६ माशा प्रातः सायं अनार रस या केवल जल से दें। रक्तप्रदर पर लाभप्रद है। दूध चावल का पथ्य दें। ♦♦

: पृष्ठ ६०५ का शेषांश :

(६) खुजली पर—

अमरबेल कमलगट्टा ।
गांव का ठाकुर और मट्ठा ॥
नगर सुहागन देओ मिलाय ।
दाद खाज सेउआ मिट जाय ॥

अर्थात् अमरबेल, कमलगट्टा, पंवाड़ के बीज और हल्दी इन सबको बराबर लेकर खरल में अच्छी तरह बारीक पीसलें और छाछ में मिला दें। इसका मैंने दाद और खुजली के रोगियों पर प्रयोग किया है, इससे रोगियों को अच्छा लाभ हुआ है।

राजवैद्य पं० ईश्वरीदत्त शर्मा

आयुर्वेदाचार्य काव्यतीर्थ

गवर्नमेंट आयुर्वेदिक औषधालय, पदमाड़ा पो० करनीकोट (अलवर)

"श्री शर्मा जी आयुर्वेद और साहित्य के उच्च विद्वान् हैं। आयुर्वेद के प्रबल प्रचारक, पोषक और उपासक हैं। इस समय आप गवर्नमेंट के आयुर्वेदिक औषधालय में अध्यक्ष पद से जन सेवा कार्य कर रहे हैं। यद्यपि आपका पिप्पली योग शास्त्रीय है पर आपका अनुभूत है इससे दूसरे चिकित्सकों को बल मिलता है। इसलिये उसे हम प्रकाशित कर रहे हैं। उनके अन्य योग भी शतशोनुभूत हैं। पाठक प्रयोग में लायें।"

—सम्पादक

१–अतिसार संग्रहणी पर

अभला-पिप्पली कल्प—

अभया (हरड़)	३ नग
छोटी पीपल	१ नग

विधि—पहिले दोनों को पानी में भिगो देवें, फिर दोनों को सिल पर बारीक पीसकर ऽ– पानी में गर्म करें, तत्पश्चात् सुखोष्ण ही पान करावें। इसे दिन में तीन-चार बार लेवें।

उपयोग—इसके प्रयोग से थोड़ा-थोड़ा रुक-रुक कर दस्त होना, पेट में एंठन मरोड़ होना दूर होता है। यह आम का पाचक दोषानुलोमक, सारक और (पेट घुड़-घुड़ की आवाज) आदि पर शत-शोनुभूत प्रयोग है।

२–उपदंशघ्न धूम्रपान

अर्कमूल त्वक	४ तोला
रूमी सिंगरफ	$1\frac{1}{2}$ तोला

विधि—दोनों द्रव्यों को खरल में घोंटकर ६-६ माशे की टिकिया बनावें।

उपयोग—एक टिकिया चिलम में रखकर धूम्रपान की तरह सेवन करें। इसके प्रयोग से ३-४ दिन में ही उपदंश व्रण सूख जाते हैं और लाभ हो जाता है। बाद में बृहन्मंजिष्ठादि चूर्ण ४ माषा मात्रा में दिन में दो बार लेने से रक्तगत दोष भी कुछ ही दिन में दूर हो जाता है।

पथ्य—चने की रोटी तथा घी। तैल, गुड़, मिर्च, खटाई और नमक का परहेज रखें। इस प्रयोग से बड़े-बड़े कठिन रोगी अच्छे हुए हैं।

नोट—इस प्रयोग को किसी वैद्य के परामर्श से उसकी देख-रेख में प्रयोग करें।

३–रसकर्पूरादि मरहम

रस कर्पूर	१ तोला
सफेदा (जिंक आक्साइड)	४ तो०
शतधौत घृत	१ पाव

विधि—सबको पीस अच्छी तरह मिलाकर शीशी में रख लेवें।

उपयोग—इसे लगाने से सब प्रकार के घाव चाहे उपदंशज, फिरंगज या भरिया-फूटा हों सब अच्छे

हो जाते हैं तथा जलन चीस और चक्कर नहीं रहती, इस मरहम के लगाने से मिट जाती है।

४–गर्भाशय शोधनी वटी

एलुवा	१ तोला
शुद्ध हीरा हींग	३ माशा

विधि—दोनों को पीसकर कीकर गोंद के पानी में बेर (जंगली) बराबर गोली बनावें। शीशी में भरकर अच्छी तरह कार्क लगावें।

उपयोग—मासिक धर्म के प्रथम दिन २-४ वटी प्रातःकाल उष्ण जल से देवें, पूर्ण लाभ न होने पर दूसरे व तीसरे दिन भी देवें, बाद में बन्द कर देवें। आवश्यकता होने पर दूसरे मास भी इसी प्रकार दे सकते हैं। मात्रा—बलाबल देख रक निश्चय करें।

गुण—यह कष्टार्त्तव तथा कृच्छार्त्तव व पीड़ा के साथ हो उसमें विशेष गुण करती है। दूषित आर्त्तव को बाहर लाकर पीड़ा शीघ्र शान्त करती है। गर्भाशय शोधन की सस्ती और सुलभ अव्यर्थ औषधि है।

५–मस्तिष्क-क्रिमिहर तैल

तारपीन तैल	१० तोला
कपूर	१ तोला
वायविडंग	१ तोला

विधि—तारपीन तैल आदि सबको घोंटकर खरल में १० मिनट रख दें तत्पश्चात् छान कर शीशी में भर कर कार्क लगाकर रख दें।

मात्रा—सीधा लिटाकर शिर नीचे करके ३-४ बूंद ड्रोपर से नाक में टपकावें। यह विधि ७ दिन तक एक दिन छोड़कर फिर ७ दिन दो-दो दिन छोड़कर प्रयोग में लावें। साथ में तृणकान्त पिष्टी २-३ रत्ती पानी के साथ दिन में दो बार देवें।

उपयोग—इसके प्रयोग से मगज विशाली के कीड़े मर जाते हैं तथा निकल जाते हैं, शिर की पीड़ा शान्त हो जाती है। धैर्यपूर्वक कुछ दिन इसका प्रयोग करने से रोग सदा के लिए दूर हो जाता है। तैल, गुड़ या अन्य मीठा, लाल मिर्च और खटाई अपथ्य है।

नोट—इसके प्रयोग से दुर्बल और पुराने रोगियों को चक्कर तथा भ्रम मूर्च्छा हो जाती है अतः ऐसे रोगियों पर सावधानी से कम मात्रा में उपयोग में लावें। प्रथम बलवर्धक व हृदय संरक्षणार्थ लक्ष्मीविलास रस आदि की कल्पना करें।

: पृष्ठ ६०६ का शेषांश :

बाद ईसबगोल की भुसी सब चूर्ण में मिलाकर प्रयोग में लावें।

मात्रा—३ माशा प्रातः सायंकाल। गाय के धारोष्ण दूध के साथ जिसमें मिश्री मिली हो लेवें।

गुण—स्वप्नदोष को शीघ्र दूर करता है और वीर्य की गर्मी शीघ्र ही शान्त करता है।

४–नपुंसकतानाशक योग—

जायफल	अकरकरा	लौंग
दालचीनी	घुंघुची	मालकांगनी
कनेरमूलत्वक		जावित्री

— प्रत्येक ४-४ तोला।

केंचुए	८ तोला
बीरबहूटी	८ तोला
कुचला चूर्ण	२ तोला
हाथीदांत चूरा	२ तोला

विधि—सब वस्तुओं को बकरी के दूध में खरल कर पाताल यंत्र द्वारा तैल निकाल लें।

उपयोग—इस तैल से मुर्दा से मुर्दा नसें और पट्ठे पुनः जाग्रत होकर अपना कार्य ठीक करने लगते हैं, मैथुन शक्ति पूर्ववत् होजाती है। इस तैल को थोड़ा सा लेकर गुप्तेन्द्रिय पर धीरे-धीरे मर्दन करें सुपारी और सीमन छोड़ देनी चाहिये और ऊपर से भोजपत्र या पान के पत्ते बांधें। यह नपुंसकता को शीघ्र नष्ट करता है।

♦♦

ले. डाक्टर प्रभाकर प्रसाद सिंहा
एच.एस.एम.बी.बी.आई.
सत्यनारायण औषधालय, तुरांव (शाहाबाद)
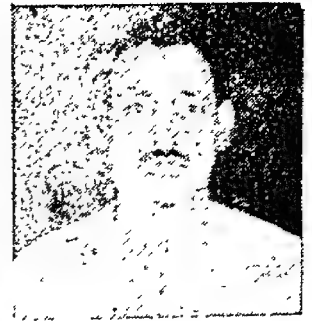
"आप सत्यनारायण औषधालय तुरांव (शाहाबाद) में आयुर्वेद सेवा कार्य करते हैं। वयोवृद्ध वैद्य श्री सत्यनारायण लाल जी के पास से आपने कुछ योग संग्रह किए हैं उन्हीं में से पांच योग अनुभूत प्रकाशनार्थ आये हैं। आशा है पाठक अवश्य इन्हें व्यवहार में लाकर लाभान्वित होंगे।"

—सम्पादक।

१ यकृत प्लीहानाशक—

हल्दी का चूर्ण	२ तोला
चौकिया सुहागा	५ तोला

विधि—सोहागा का लावा फोड़ कर खूब बारीक पीस कर हल्दी का चूर्ण मिलकर एक शीशी में रखलें।

मात्रा—१ रत्ती से २ रत्ती। अनुपान घृतकुमारी के गूदे के साथ।

सेवनविधि—घृतकुमारी (ग्वारपाठा) के ६ माषा का टुकड़ा लेकर छीलकर उसके दो टुकड़े कर एक पर दवा रख कर दूसरे से ढककर निगल लें। ऊपर १ तोला गोमूत्र पीवें। प्रातः सायं इस प्रकार करने से नया रोग २१ दिन में तथा पुराना ४१ दिन में ठीक होजायगा।

उपयोग—प्लीहा तथा कामला रोग में यह महौषधि है।

पथ्यापथ्य—मूंग की दाल, पुराना चावल, रोटी, तथाचना, पालक, बथुआ, टमाटर मूली इत्यादि पथ्य है। लाल मिरच, गरम मसाला, पूड़ी, घृत, तेल, मांस मछली आदि हानिकारक हैं।

२ संग्रहणी या बिगड़े दस्तों में—

गाय का दही   गोदुग्ध   चीनी
—प्रत्येक १-१ पाव

गंगाजल	१ पाव
कुएं का जल	२ पाव
मधु	१ तोला

क्रम क्रम से मथ कर मिलाते जाएं अन्त में सब मिलाकर मथें। यह प्रसिद्ध पंचामृत है। इसे सभी वैद्य जानते हैं। प्रत्येक संग्रहणी तथा पुराने दस्तों के रोगी को उसकी शक्ति के अनुसार दे सकते हैं। रोगी को केवल इसी का कल्प करावें, पीने को पानी भी न दें। पथ्य में केवल इसी को देते रहें अन्न बिलकुल न दें, जब तक रोगी चंगा न हो जाय।

३ रक्तशोधक तथा चर्मरोग नाशक—

ढकनी १ तोला २ तोला जल के साथ साफ सिल पर पीस लें। यह एक मात्रा है।

सेवन विधि—प्रातःकाल उपर्युक्त औषधि पिएं। इस प्रकार नये रोग में २१ रोज और पुराने में पूर्ण चंगा होने तक। बच्चों को इसकी चौथाई मात्रा दें।

नोट—यह औषधि बिहार तथा उत्तर प्रदेश के देहातों में मिलती है। यह एक प्रकार की लता है जो ठीक वनफसा के पत्ते के समान होती है, प्रायः नई मिट्टी या ताल पर पायी जाती है। जिनको न मिले वह मुझ से मंगालें। चिकित्सा बहुत सुगम व सरल है।

पथ्य—चावल, रोटी, चना, घृत मामूली, लौका, तोरई, मूली।

अपथ्य—खटाई, गर्म मसाले तेल लाल मिर्च व स्त्री प्रसंग।

—शेषांश पृष्ठ ६१५ पर।

आयुर्वेदरत्न पं० केशवदेव शर्मा आयुर्वेदाचार्य

इन्चार्ज गवर्नमेंट चिकित्सालय, नगला मई
पो० बरखेड़ा (भरतपुर)

"वैद्य तो सभी हैं और वे अपने सिद्ध योग ही भेजते हैं पर शर्मा जी के योग वास्तव में अचूक गुणकारी हैं। पाठक देखेंगे पांचों योग सरल और उपादेय हैं। आप आयुर्वेदरत्न और आयुर्वेदाचार्य हैं। पहिले आप कोसी खुर्द में प्राइवेट चिकित्सक थे अब आप गवर्नमेंट औषधालय नगला मई जिला भरतपुर में जनसेवा कार्य में रत हैं, प्रयोग निम्न हैं ।"

—सम्पादक।

१ नेत्र रोग पर—

फिटकरी ५ तोला लेकर तवे पर गर्म करें। जब पिघल जावे तब उसमें १। तोला सोना गेरू का चूर्ण डालकर चम्मच की डण्डी से उसे एक जीव कर दें। जब उसका खील (लावा) बन जावे तब नीचे उतार कर अच्छे काले पत्थर के खरल में घोंटे और उसमें घोंटते समय ६ माशा नवसादर पुष्प मिला दें। फिर उसे बारीक कपड़े में छानकर नीले रङ्ग की शीशी में भर लें। सलाई से आंखों में अञ्जन की तरह लगावें।

गुण–इससे परवाल, रोहे, धुन्ध, फुली आदि शीघ्र ही ठीक हो जाते हैं। नेत्र स्वच्छ हो जाते हैं तथा नेत्रों में किसी भी प्रकार की शिकायत नहीं रहती और न आगे होने का भय ही रहता है।

नोट—इस योग में फिटकरी गुलाबी होनी चाहिए।

२ मेद रोग पर—

रोगी को प्रथम दिन २॥ तोला एरण्ड तैल के द्वारा जुलाब दें। फिर शरीर पर धतूरे के पत्रों के स्वरस की मालिश करें। इस प्रकार पांच दिन तक करते रहें, छठवें दिन लोह भस्म २ रत्ती त्रिफला चूर्ण ३ माशा उत्तम शिलाजीत १ माशे मधु के साथ कुछ दिन तक सेवन करने से मेद वृद्धि रुक जाती है। किन्तु उपवास दो चार अवश्य करने चाहिए। भोजन में गरिष्ठ पदार्थ अपथ्य हैं।

३ बगल गन्ध पर—

बबूल की पत्ती जल में पीसकर लेप करने से एक सप्ताह में रोग दूर हो जाता है। ऐसा लेप दिन में दो बार करना चाहिए।

४ रक्तविकार पर—

नीम का मद (जिसे नीम के रोने का पानी कहते हैं) एक तोला लें और शहद १ तोला या गौ-दुग्ध १ पाव में मिला कर १० दिन पीने से चर्म रोग रक्तविकार कुष्ठ आदि ठीक हो जाते हैं। रामबाण है, किन्तु नमक नहीं खाना चाहिए। चने की रोटी घी चीनी से खावें अन्य चीजों का परहेज रखें।

५ मासिकधर्म का बन्द होना

नीम की छाल के छोटे छोटे टुकड़े	६ माशे
काले तिल	२ तोले
गाजर के बीज	६ माशे
पुराना गुड़	२ तोले
ढाक के बीज	६ माशे

विधि—मिट्टी के पात्र में ऽ।= जल डालकर औटावें जब आधा पाव अवशेष रहे तब उतार छानकर पीवे। १ सप्ताह भर करने से मासिकधर्म खुल कर शुद्ध होजाता है।

नोट– गर्भिणी को इसका उपयोग नहीं कराना चाहिए।

लोक सभा में—

अमृतकौर की आयुर्वेद विरोधी नीति का

❖ कड़ा विरोध ❖

गत् १८ फरवरी को राजकुमारी अमृतकौर द्वारा लोक सभा में अखिल भारतीय चिकित्सा विधेयक विचारार्थ उपस्थित किया गया था। विधेयक को उपस्थित करते हुए राजकुमारी ने अपने भाषण में यह घोषणा की कि इस चिकित्सा विज्ञानशाला में केवल "आधुनिक चिकित्सा पद्धति" अर्थात् ऐलोपैथी की ही उच्च शिक्षा, अनुसंधान, प्रसार आदि का प्रबन्ध होगा तथा आयुर्वेद यूनानी आदि चिकित्सा पद्धतियों को जो आधुनिक विज्ञान नहीं, इसमें स्थान नहीं मिलेगा। इस पर लोक सभा के बहुत से सदस्यों ने इस बिल का बहुत ही उत्तेजनापूर्ण विरोध किया। श्री मोहनलाल सक्सेना ने इसका विरोध करते हुए कहा "मैं जानता हूँ कि केन्द्र तथा राज्यों में जो सत्तासीन व्यक्ति हैं वे ऐलोपैथ ही हैं जो आयुर्वेद के विषय में कुछ भी नहीं जानते। इस पर भी वे अपने आपको इस योग्य समझते हैं कि आयुर्वेद को अवैज्ञानिक कह सकें।'

"आयुर्वेद को वैज्ञानिक चिकित्सा पद्धति स्वीकार न करना एक अत्यन्त ही दयनीय और लज्जापूर्ण कार्य है, विशेषकर उस समय जब अन्य देशों में विचारधारा आयुर्वेद के पक्ष में होती जारही है।"

"आयुर्वेद के विना यह एक ऐसा ही कार्य होगा जैसे कि प्रिंस आफ डेनमार्क के विना हेमलेट का अभिनीत करना। अगर हम आयुर्वेद को चिकित्सा विज्ञान स्वीकार नहीं करते तो यह सब निरर्थक है।"

"यह राष्ट्रीय महत्व की संस्था है किन्तु इसके पीछे कोई राष्ट्रीय नीति नहीं है यह सर्वथा अराष्ट्रीय है। ऐसी कोई भी नीति जो कि इस देश की चिकित्सा पद्धति को चिकित्सा विज्ञान स्वीकार नहीं करती वह अराष्ट्रीय है और लोक-सभा से बाहर फेंक दी जानी चाहिए।"

"......जामनगर में स्थापित संस्था की बात की जाती है। इस संस्था के लिये योजना में काफी रुपया रखा गया था किन्तु उसमें से १० लाख रुपया ही व्यय किया गया है। शेष सब बेकार पड़ा है। इस पर स्वास्थ्य मंत्रिणी कहती हैं कि धन का अभाव है, किन्तु यहां तो वह बेकार पड़ा है और वे इसका उपयोग नहीं कर सकीं। तिब्बिया कालेज को ही लीजिये ''धन के अभाव में यह संस्था हानि उठा रही है। क्या सरकार इतनी ही सहानुभूति रखती है? आयुर्वेद को चिकित्सा विज्ञान नहीं स्वीकार किया जाता, यह जले पर नमक छिड़कने के समान है। मैं इस बिल का तब तक विरोध करूँगा जब तक की चिकित्सा विज्ञानों में आयुर्वेद को नहीं मान लिया जाता।"

सदन के वयोवृद्ध एवं पुराने कांग्रेसी सदस्य श्री पं० ठाकुरदास जी भार्गव ने भी आयुर्वेद को आधुनिक चिकित्सा विज्ञान न स्वीकार किये जाने का बहुत कड़ा विरोध किया। आपने कहा, "आयुर्वेद यूनानी मार्डन सिस्टम्ज आफ मेडिसिन नहीं हैं यह सुनकर मुझे बड़ा आश्चर्य होता है। मैं समझता हूँ कि हमारी मिनिस्टर साहिबा जब यह कहती हैं तो उन्हें कुछ शर्म आनी चाहिये, कुछ हया आनी चाहिए। मैंने सैकड़ों ऐसे केस देखे हैं जिनमें ऐलोपैथिक चिकित्सा सर्वथा विफल रही तथा आयुर्वेदिक चिकित्सा सफल रही। बम्बई में पं० शिवशर्मा के पास दूसरे देशों से लोग चिकित्सार्थ आते हैं। इस सौतेले व्यवहार को

मैं सहन नहीं कर सकता। मैं ऐसे बिल को जो केवल ऐलोपैथी को 'माडर्न सिस्टम' कहे कभी वोट देने को तैयार नहीं।'' 'कहा गया है कि ग्रामीण क्षेत्र की अवस्था में इससे सुधार होगा। आज भी ग्रामों के अन्दर लोग वैद्यों के पास चिकित्सा के लिए बड़ी संख्या में जाते हैं और उनको थोड़े पैसे देकर चिकित्सा सुविधायें प्राप्त हो जाती हैं।

'हमारे देश के लोगों को कोई लाभ होगा, उनको चिकित्सा सुविधायें मिलेंगी उनका स्वास्थ्य अच्छा होगा तो वह ऐलोपैथी से नहीं जो कि बहुत महँगी है बल्कि इस देश की अपनी चिकित्सा पद्धतियों से। हो सकता है कि इस पद्धति (ऐलोपैथी) से दिल्ली के कुछ बड़े अफसरों, मन्त्रियों और हम सदस्यों को लाभ पहुंचे। किन्तु यह कहना कि इससे ग्रामीण क्षेत्रों को लाभ पहुँचेगा सर्वथा असत्य और धोखे की बातें हैं। मैं कहूंगा कि यह ऐसा बिल है जिसे पास नहीं किया जाना चाहिये।'

''ऐलोपैथी के लिए आज ५ करोड़ रुपये रखे गये हैं। मुझे देखना है कि आयुर्वेद और यूनानी के लिए वे कब कोई रकम रखती हैं। मैं जानता हूँ कि वे कदापि कोई रकम नहीं देंगी क्योंकि उनके दिमाग में यह बात ही नहीं है कि देशी चिकित्सा पद्धतियों को बढ़ावा दिया जाय।

'देशी चिकित्सा पद्धतियों के साथ जिस प्रकार सौतेला व्यवहार किया जा रहा है उससे हमारा सर लज्जा से झुक जाता है आयुर्वेद को चिकित्सा विज्ञान न कहना हमारी राष्ट्रीय बेइज्जती है।'

स्मरण रहे कि उक्त विधेयक पर वाद-विवाद के लिए केवल एक घण्टे का समय ही रखा गया था किन्तु सदन का बहुमत इसके सर्वथा विरुद्ध था। ऐसे महत्वपूर्ण बिल को जिससे एक ही चिकित्सा पद्धति पर इतना अधिक खर्च किया जाने वाला हो केवल एक ही घण्टे का समय दिया जाय। विवश होकर लोक सभा के माननीय अध्यक्ष को २० व २१ फरवरी को भी कई-कई घण्टे इसे देने पड़े। श्री मोहनलाल सक्सेना ने इस बिल को प्रवर समिति के सुपुर्द करने की मांग की थी किन्तु स्वास्थ्य मंत्रिणी ने इसे अस्वीकार कर दिया। हमारी मंत्रिणी ने जिस घृणित एवं अशोभनीय शीघ्रता के साथ इस बिल को पास करवाने का प्रयत्न किया वह सर्वथा अप्रजातंत्रात्मक एवं निन्दनीय है।

—आ० म० सम्मेलन पत्रिका से साभार।

महासम्मेलन द्वारा संसदीय आयुर्वेदिक कक्षा का आयोजन

भारतीय संसद् में सबल आयुर्वेदिक पक्ष के निर्माण के लिए बहुत समय से यह आवश्यक समझा जा रहा था कि संसद् सदस्यों में आयुर्वेद के प्रचार तथा समुचित ज्ञान के प्रसार के लिए एक प्रभावशाली योजना का निर्माण किया जाये। आयुर्वेद के पृष्ठ-पोषक कुछ संसद सदस्यों से इस सम्बन्ध में बातचीत करने पर उन्होंने एक संसदीय आयुर्वेदिक कक्षा प्रारम्भ करने का सुझाव दिया था। यह विषय गत ४१ वें महासम्मेलन, कुरनूल में विचारार्थ रखा गया था तथा विचार के अनन्तर यह प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकार किया गया था कि संसदीय आयुर्वेदिक कक्षा का समारम्भ किया जाय।

उक्त प्रस्ताव को कार्यान्वित करने के लिए कुछ संसद सदस्यों के हस्ताक्षरों से एक पत्र संसद् सदस्यों के पास महासम्मेलनाध्यक्ष की ओर से भेजा जा रहा है। ज्ञात हुआ है कि अधिकांश सदस्य उक्त आयुर्वेदीय भाषण माला में सम्मिलित होने के लिए सहमत हैं। आशा की जाती है कि आगामी अप्रैल मास में यह कार्य प्रारम्भ हो जायगा। प्रथम भाषण में आयुर्वेद के प्रमुख विद्वान वैद्य श्री पार्थनारायण जी पंडित, वैद्यरत्न श्री पं० शिवशर्मा जी तथा अन्य विद्वानों के भाषणों की व्यवस्था की जा रही है।

आयुर्वेद के महान् कर्णधार दिवंगत

यादवे तु दिवंगते ★

गताकर्मण्यता लोकाद् गता चैव गुणज्ञता।
गता च निश्छला वृत्तिर्गता चापि सहिष्णुता॥
प्रतिपत्तिज्ञता नष्टा नष्टा पर्य्यवदातता।
आचार्यत्वं प्रणष्टं च नष्टं दाक्षिण्यमेव च॥
निराश्रया बन्धु जनाः सुहृदश्च निराश्रयाः।
निराश्रयाश्च भिपजो भिषग्विद्या निराश्रयाः॥
पाठ्यक्रमा निरालम्बा निरालम्बं प्रशिक्षणम्।
पाठ्यग्रन्था निरालम्बा निरालम्बा गवेपणा॥
शरणं न प्रपश्यामो दुर्दैव हतकावयम्।
अकाले सर्वतो ग्रस्ता यादवे तु दिवंगते॥

—श्री दामोदर शर्मा गौड़ वैद्य, प्राध्यापक
आयुर्वेद कालेज, हिन्द विश्वविद्यालय, काशी।

आयुर्वेद जगत् के कर्णधार आयुर्वेद मार्तण्ड आचार्य यादव जी त्रिकम जी महाराज का देहावसान गत् ७ मार्च को प्रातः जामनगर (सौराष्ट्र) में ७२ वर्ष की आयु में होगया, इस दुःखद समाचार से सम्पूर्ण आयुर्वेद-जगत् को महान् दुःख हुआ है। आप गुजराती ब्राह्मण थे तथा मातृभाषा गुजराती के साथ-साथ मराठी, हिन्दी, संस्कृत एवं अंग्रेजी भाषा के भी आप पूर्ण ज्ञाता थे। आपने आयुर्वेद साहित्य भण्डार को भरने में अपना योगदान जीवन पर्यन्त दिया तथा आपकी सत्प्रेरणा ने अनेक विद्वानों को आयुर्वेद-साहित्य-सृजन की ओर आकृष्ट किया। आप आयुर्वेद महासम्मेलन अधिवेशनों के तीन बार अध्यक्ष निर्वाचित हुए हैं। आयुर्वेद शास्त्रीय गूढ़ ग्रन्थियों को सुलझाने के हेतु आयोजित पटना एवं हरिद्वार सम्भाषा परिषदों की अध्यक्षता आपने बड़ी लगन एवं सफलता के साथ की थी। आप भीष्म-पितामह एवं आचार्य द्रोण के समान महान् कर्मवीर थे। बनारस हिन्दू विश्व विद्यालय के आयुर्वेद कालेज के भी आप कुछ समय तक प्रिंसीपल रहे थे और इस समय केन्द्रिय सरकार द्वारा संस्थापित जामनगर की आयुर्वेदिक अनुसंधानशाला के तत्वावधान में वैद्यों के लिए खोले गये पोस्ट ग्रेजुएट ट्रेनिंग कोर्स के आयुर्वेद महाविद्यालय के प्रिंसीपल पद पर कार्य कर रहे थे।

आपके स्वर्गारोहण से आयुर्वेद संसार की महान् क्षति हुई है जिसकी पूर्ति होना कठिन प्रतीत होता है। आपकी मृत्यु का समाचार प्राप्त कर भारत के कोने-कोने में सर्वत्र वैद्य-सभाओं, आयुर्वेद कालेज एवं विविध संस्थाओं द्वारा शोक सभाओं का आयोजन किया गया है तथा उनके द्वारा स्वीकृत प्रस्तावों की प्रतिलिपि धन्वन्तरि में प्रकाशनार्थ प्राप्त हुई हैं। स्थानाभाव के कारण उन सभी प्रस्तावों को हम धन्वन्तरि में प्रकाशित करने में असमर्थ हैं, अतएव

[★ काशी मण्डल वैद्यसभा द्वारा आयोजित शोकसभा में पठित]।

जहां-जहां से ये शोक प्रस्ताव प्राप्त हुए हैं उनका नामोल्लेख मात्र नीचे कर रहे हैं।

१—छात्रसभा-दयानन्द आयुर्वेद कालेज, जालंधर।
२—अर्जुन आयुर्वेद महाविद्यालय, काशी।
३—आयुर्वेद छात्रावास यूनियन, बनारस यूनिवर्सिटी काशी।
४—श्री सनातन धर्म आयुर्वेद महाविद्यालय, बीकानेर।
५—छात्र यूनियन-अर्जुन आयुर्वेद महाविद्यालय, काशी।
६—श्री मूलचन्द खेरातीराय ट्रष्ट आयुर्वेद धर्मार्थ औषधालय, दहली।
७—काशी मण्डल वैद्यसभा, काशी।
८—जिला आयुर्वेद सम्मेलन, अलीगढ़।
९—तहसील वैद्यसभा, पाली (राजस्थान)।
१०—वैद्यसभा, मेरठ।
११—आयुर्वेद सेवा समिति बाबा कालीकमली वाले हृषीकेश।
१२—आयुर्वेद चिकित्सक संघ सेवासमिति, मुरादाबाद।
१३—वैद्यसभा, भाटापारा (म० प्र०)
१४—तहसील वैद्यसभा, सुजानगढ़ (राजस्थान)
१५—तहसील वैद्यसभा, सूरतगढ़
१६—वैद्य कार्यालय, मुरादाबाद
१७—उदयपुर कमिश्नरी वैद्यसभा, उदयपुर।
१८—श्रीहनुमान आयुर्वेद विद्यालय, रतनगढ़।
१९—श्री० सार्वजनिक औषधालय, श्रीमाधोपुर।
२०—श्री० मारवाड़ आयुर्वेद प्रचारिणी सभा जोधपुर।
२१—उपजिला वैद्यसभा, कांकरौली।
२२—वैद्यसभा, हिंगणघाट। आदि-आदि।

श्री. स्वामी जी का देहावसान

आयुर्वेद समाज के प्रसिद्ध रसायनाचार्य एवं वनौषधि-विशेषज्ञ श्री. पं० भागीरथ जी स्वामी का देहावसान तारीख २० फरवरी को प्रातः ४ बजे झांसी में हुआ। शरीर त्याग के समय स्वामी जी की आयु लगभग ८० वर्ष की थी।

संदिग्ध वनौषधियों के निर्णय में आप अद्वितीय प्रतिभा-सम्पन्न थे, आपका दिया हुआ निर्णय सिद्ध प्रमाण माना जाता था। आपके निधन से आयुर्वेद का एक मुख्य विशेषज्ञ संसार से विदा होगया और इस रूप में आयुर्वेद की एक महान् क्षति हुई है। आपके शोक में भी भारत के विविध स्थानों पर शोक सभाएँ हुई हैं, उनमें से कतिपय सभाओं में स्वीकृत प्रस्तावों को यहां प्रकाशित कर रहे हैं। भगवान आपकी आत्मा को शान्ति एवं आपके सन्तप्त परिवार को धैर्य प्रदान करे।

शोक प्रस्ताव

काशी मण्डल वैद्यसभा—

कविराज हरिरञ्जन मजूमदार के सभापतित्व में 'काशी मण्डल वैद्यसभा की साधारण सभा में वनस्पति शास्त्र के विद्वान् श्री भगीरथ स्वामी वैद्य की असामयिक मृत्यु पर शोक प्रकट किया गया एवं मौन होकर निम्नलिखित प्रस्ताव स्वीकृत हुआ—

"काशी मण्डल वैद्यसभा की साधारण सभा का यह अधिवेशन वनस्पति शास्त्र के विद्वान् श्री भगीरथ स्वामी वैद्य की असामयिक मृत्यु पर अत्यन्त

—शेषांश पृष्ठ ६१७ पर।

पृष्ठ ६१० का शेषांश

४—प्रदर नाशक

नरमा (रंगीन) कपास के पत्ते २॥ तोला
नागकेशर मिश्री ६-६ माशा

विधि—सभी औषधियां बारीक पीसकर पानी ६-७ तोले में मिला कपड़े में छानकर प्रातः काल पिलावें, उपरोक्त एक मात्रा है। ऐसी ही शाम को दें।

उपयोग—स्त्रियों के अनियमित मासिक स्राव से रक्त अधिक आने पर तथा रक्त प्रदर पर अचूक औषधि है सैकड़ों पर परीक्षित है। गर्म मसाले तथा बादी वस्तुओं का सेवन न करें। रोटी, दूध, चावल, चना, साग, लौका इत्यादि खाने को दें।

समाचार एवं सूचानाएं

जीवो और जीने दो

श्री जोशी जी का भाषण

नागौर वैद्य सभा के तत्वावधान में बुलाये गये अधिवेशन में अध्यक्षपद से भाषण देते हुए वैद्य श्री नित्यानन्द जोशी ने कहा कि करीब १० वर्षों से डाक्टरों ने आयुर्वेद के प्रति जो नीति अपना रखी है, वह जनता व उनके लिए सर्वथा अहितकर है। आज उन्हें समय की गति-विधि को देखते हुए अपने इस रवैये को बदल देना चाहिए। क्योंकि आज तो 'जीवो और जीने दो' का युग है। इसलिये आज चिकित्सा पद्धतियों के झगड़ों में न फंसकर सबको साथ लेकर मेल जोल से जन स्वास्थ्य रक्षा में जुट जाना चाहिए। इस पर भी अगर डाक्टर लोग इस छींटाकसी के ध्येय को अपनाये रहे तो वह दिन दूर नहीं कि किकित्सा जगत में एक नई क्रांति पैदा हो जायेगी जिनसे जनता के स्वास्थ्य पर बड़ा बुरा प्रभाव पड़ेगा।

आगे बोलते हुए श्री जोशी जी ने कहा कि आयुर्वेद भारतकी सर्वोच्च चिकित्सा प्रणाली है। इस ध्येय का केवल चिकित्सा करना ही अपितु मानव को प्रकृति अनुकूल रखपूर्ण स्वस्थ बनाये रखना है। इस पवित्र आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति का जन्म भारत की परिस्थितियों के फलःस्वरूप हुआ था। इस लिये आज भी भारतवासियों की स्वास्थ्यरक्षा में अन्य पद्धतियों की अपेक्षा अधिक हितकर साबित होती है।

आयुर्वेद की महानता बतलाते हुए श्री जोशीजी ने कहा कि आयुर्वेद एक महान् चिकित्सा शास्त्र है। यह अपनी सेवाओं के कारण ही भारत की अस्सी प्रतिशत जनता के हृदय में घर किये बैठा है। अगर यह निरर्थक या अवैज्ञानिक होता तो मुगल व ब्रिटिश शासकों द्वारा नष्ट-भ्रष्ट किये जाने पर भी आज इस गौरवपूर्ण अवस्था में न मिलता। और देश की जनता का आयुर्वेद चिकित्सा से विश्वास उठ गया होता। आज भी लाखों वैद्य देश के कोने कोने में लाखों की संख्या में रोगियों की चिकित्सा करते हुए व अन्य चिकित्सा पद्धतियों के समक्ष खड़े दिखाई नहीं देते। इसलिये यह स्वयं सिद्ध है कि आयुर्वेद बहुत प्राचीन व देशवासियों का प्रिय चिकित्सा शास्त्र है। यह अवश्य है कि हमारे परतंत्रकाल में सरकार द्वारा प्रोत्साहन न मिलने से यह विशेष प्रगति नहीं कर सका। अब हमारा देश स्वतंत्र है। इसलिए प्रत्येक वैद्य व डाक्टर को चाहिए कि वे पद्धतियों के झगड़े में न फंस कर आयुर्वेद की उन्नति के साथ साथ 'जीवों और जीने दो' के सिद्धान्त को अपनाते हुए स्वास्थ्य रक्षा में जुट जांये।

—वैद्य नित्यानन्द जोशी साहित्य-आयुर्वेद विशारद

'धन्वन्तरि कूप' का शिलान्यास

आज दिनाङ्क २७-२-५६ को स्थानीय "श्री धन्वन्तरि मन्दिर" में श्रद्धेय श्री पं० कृष्णचन्द्राचार्य जी के सभापतित्व में दानवीर श्री सेठ प्रहलादराय जी अजीतसरिया के करकमलों द्वारा "धन्वन्तरि कूप" का शिलान्यास- पं. परमेश्वर प्रसाद आदि पण्डितों के वेदध्वनिपूर्वक सानन्द सम्पन्न हुआ।

श्री पं० गजानन्द जी शास्त्री द्वारा मंगलाचरण के पश्चात् श्री सेठ वंशीधर जी धानुका ने भाषण देते हुए धनिक वर्ग से अधिकाधिक सहायता देने की अपील की। वैद्य पं० धनाधीश जी ने शिलान्यास कर्त्ता के सत्कार्यों की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए

तथा आयुर्वेद की महत्ता बताते हुए, मन्दिर के उत्थान के लिए जोर दिया।

सभा में प्रसिद्ध फर्म "सूरजमल नागरमल कलकत्ता" के अध्यक्ष श्री बाबू मोहनलाल जी जालान के सुपुत्र श्री बाबू तोताराम जी जालान एवं स्थानीय धनीमानी प्रतिष्ठित व्यक्ति समुपस्थित थे। श्री सभापति के सारगर्भित भाषणान्तर मन्दिर के मन्त्री श्री मणिराम जी शर्मा ने उपस्थित सज्जनों को धन्यवाद प्रदान किया। तदनन्तर श्री धन्वन्तरि के जय घोष के साथ सभा विसर्जित हुई।

—वैद्य मणिराम जी शर्मा मंत्री।

अर्जुन आयुर्वेद विद्यालय काशी की राज्य मान्यता

अर्जुन आयुर्वेद विद्यालय काशी, सहायक वैद्य एवं गृह स्वास्थ्य विशारद पाठ्यक्रम के लिए उत्तर-प्रदेशीय इण्डियन मेडिसन बोर्ड द्वारा सम्बद्ध हो गया। —प्रधानाचार्य।

मेरठ आयुर्वेदिक कालेज नौचन्दी, मेरठ का वार्षिकोत्सव

५ फरवरी को मेरठ आयुर्वेदिक कालेज का वार्षिकोत्सव समारोह पूर्वक माननीय श्री बलदेवसिंह जी आर्य नियोजन, स्वास्थ्य, उद्योग एवं खाद्य मंत्री उत्तर प्रदेश के सभापतित्व में सम्पन्न हुआ। समारोह का आरम्भ मंगलाचरण तथा वन्देमातरम् से हुआ। श्री कमल नेत्र शर्मा वकील सेक्रेटरी ने सभापति जी को अभिनन्दन पत्र समर्पित किया। कालेज के विद्यार्थियों की ओर से भी अभिनन्दनपत्र समर्पित किया गया जिसमें परीक्षा केन्द्र की मेरठ में स्थापना के लिए विशेष रूप से मांग की गई। तत्पश्चात् कालेज के सभापति श्री मूलचन्द्र जी शास्त्री *M. A.* अध्यक्ष जिला बोर्ड मेरठ ने कालेज का विकास तथा उद्देश्य एवं प्रगति पर प्रकाश डाला।

इसके पश्चात् श्री सभा सचिव महोदय का ओजस्वी भाषण हुआ, जिसमें उन्होंने आयुर्वेद में नवीन आविष्कारों के लिए अभ्यागत वैद्यों का ध्यान आकृष्ट किया। आपने आयुर्वेदिक कालेज की प्रगति पर सन्तोष प्रकट किया तथा उसको सरकार द्वारा पूर्ण सहयोग एवं सहायता के लिए आश्वासन दिया। अन्त में जलपान द्वारा सभी आमंत्रितों का स्वागत किया गया।

खाचरौद समाचार—

श्री मध्य भारत प्रान्तीय वैद्य सम्मेलन का नवम अधिवेशन एवं श्री उज्जैन जिला सम्मेलन का तृतीय अधिवेशन परगना आयुर्वेद मंडल खाचरौद में ही करने का निश्चय किया है। सम्मेलन ता० ७ जून १९५६ से ९ जून १९५६ तक होगा। दोनों सम्मेलनों की स्वागत समितियों का निर्माण होगया है। तथा उसकी तैयारियां प्रारम्भ होगई हैं।

—पृष्ठ ५१९ का शेषांश—

शोक प्रकट करता हुआ ईश्वर से प्रार्थना करता है कि वह दिवंगत आत्मा को शांति स्वयं दुःखित परिवार को धैर्य प्रदान करें।

प्रधानमन्त्री—श्री ताराशंकर मिश्र वैद्य।

छात्रसभा, जालंधर—

दयानन्द आयुर्वेदिक कालिज जालंधर के छात्रों और अध्यापकों का यह अधिवेशन आयुर्वेद के प्रसिद्ध रसायनाचार्य श्री स्वामी भगीरथ जी की मृत्यु पर हार्दिक शोक प्रगट करता है।

आपने राजस्थान में रहते हुए आयुर्वेद की अनन्य सेवा की है। परमपिता परमात्मा से प्रार्थना है कि दिवंगत आत्मा को शान्ति प्रदान करे। —मन्त्री।

सचित्र प्रसूति विज्ञानाङ्क

के विषय में

प्राप्त हजारों सम्मतियों में से

कतिपय सम्मतियों

का सारांश

❖

श्री वैद्यरत्न पं० शिवशर्मा आयुर्वेदाचार्य, बम्बई लिखते हैं---

"धन्वन्तरि का प्रसूति विज्ञानांक पढ़कर प्रसन्नता हुई। चिकित्सा-शास्त्र की इस महत्त्वपूर्ण शाखा का प्रायः सम्पूर्ण उपादेय ज्ञान इस बृहद् प्रकाशन में उपस्थित कर दिया है। यह कार्य केवल विशेष सम्पादक की योग्यता तथा संकलनकला और प्रकाशकों के अथक परिश्रम तथा प्रभूत साधन द्वारा ही सम्पन्न हो सकता था। निश्चय ही यह अंक विद्यार्थियों, अध्यापकों और चिकित्सकों के लिए विशेष ज्ञानप्रद तथा सहायक सिद्ध होगा।" ७-३-५६

श्री० पं० घनानन्द जी पंत, आयुर्वेदबृहस्पति देहली---

"मैंने धन्वन्तरि के प्रथमाङ्क से आज तक के अङ्क देखे हैं इनमें आकाश-पाताल के बराबर उन्नति हुई है। प्रसूति विज्ञानाङ्क देखा---इसमें स्त्री के प्रजनन अङ्गों का सचित्र वर्णन है। तदनन्तर बीजगर्भ से लेकर गर्भ के दशम मास पर्यन्त यावतीय कार्य कलाप व रोगों का वर्णन तथा शिशु पालन चिकित्सा सरलतया होने से वैद्यों व विद्यार्थियों के उपयोग का तो है ही, प्रसूता व साधारण गृहस्थों के लिए भी यह अङ्क अतीवोपयोगी है।" ६-३-५६

"प्रसूति विज्ञान सम्बन्धी यावतीय ज्ञातव्य विषयों का ऐसा सुन्दर-सरस संकलन अब तक किसी भी भाषा में उपलब्ध नहीं था। साथ ही प्राच्य तथा पाश्चात्य प्रणालियों का समन्वयात्मक विश्लेषण यत्र-तत्र इसकी अपनी खासी विशेषता है। हिन्दी में यह एक अपेक्षित वस्तु प्रकाशित हुई है।" --६-३-५६

❖ ❖ ❖

श्री आचार्य नित्यानन्द जी

अध्यक्ष---राजस्थान आयुर्वेद सेवा मण्डल, पिलानी---

"मैं धन्वन्तरि को आयुर्वेद का कल्याण मानता हूं। प्रसूति विज्ञानाङ्क को देखकर तो यह धारणा और भी दृढ़ हो गई है। प्रसूति तन्त्र आधुनिक वैद्य द्वारा उपेक्षित विषय रहा है, अब इस विशेपाङ्क द्वारा प्रसूति सम्बन्धी प्राचीन और नवीनतम ज्ञान उपस्थित कर धन्वन्तरि ने आयुर्वेद संसार का महदुपकार किया है। समस्त विषय सप्रमाण और चित्रों से सुबोध होने से विशेषांक प्रत्येक वैद्य के लिए संग्रहणीय हो गया है।" ५-३-५६

आचार्य कविराज श्री कृष्णपद भट्टाचार्य

प्र० सम्पादक---स्वास्थ्य, झांसी---

"प्रसूति विज्ञानाङ्क के लेख इतने सारगर्भित

हैं कि आयुर्वेद के प्रत्येक छात्र और अध्यापक को इसकी प्रति अपने पास रखनी ही चाहिए।"

❖ ❖ ❖

न्यायायुर्वेदाचार्य पं० चन्द्रशेखर जैन शास्त्री सम्पादक-'आयुर्वेद चिकित्सक' जबलपुर—

"पांच सौ पृष्ठों से भी अधिक विशालकाय, सचित्र यह धन्वन्तरि—विशेषांक कोटानुकोटि प्रसूताओं का प्राण संरक्षक होगा। आपका यह स्तुत्य पुण्य-यत्न आयुर्वेद संसार में एक नवीन धारा है। आप अपने गौरव को दैनंदिन वृद्धिगत कर रहे हैं। ऐसी सेवाओं के लिए परमप्रभु परमात्मा आपको चिरायु रखे।" ८-३-५६

❖ ❖ ❖

श्री पं० नानकचन्द शास्त्री, विद्यापीठ मंत्री, दिल्ली—

"आपका प्रेषित धन्वन्तरि का प्रसूति विशेषांक प्राप्त हुआ, उसका दिग्दर्शन करके मन अत्यन्त आह्लादित हुआ। इससे वैद्यों तथा छात्रों का विशिष्ट लाभ हो सकता है।"

❖ ❖ ❖

श्री कविराज महेन्द्रनाथ पाण्डेय, इलाहाबाद—

"जैसा विशालकाय यह विशेषांक है वैसी ही उपयोगी पाठ्य सामग्री से सज्जित है। यह अंक जितना चिकित्सकों को लाभ पहुँचाने वाला है। उतना ही गृहस्थों और पाठकों के लिए भी उपयोगी है। धन्वन्तरि की आयुर्वेद की सेवाओं की अपनी परम्परा है, उस परम्परा को अभी तक उसके संचालक कायम रखे हैं। जिस समय आयुर्वेद का इतिहास लिखा जायगा धन्वन्तरि की सेवाओं का उल्लेख स्वर्णाक्षरों में होगा। 'धन्वन्तरि' आयुर्वेद के रिक्तस्थलों की पूर्ति में भरपूर योग दे रहा है।"

❖ ❖ ❖

श्री० पं० प्रियव्रत शर्मा *M. A., A. M. S.* प्रोफेसर-आयुर्वेद कालेज, हिन्दू यूनि० काशी—

'धन्वन्तरि का प्रसूति विज्ञानांक प्राप्त हुआ। बड़े परिश्रम से इसमें प्रसूति सम्बन्धी सामग्री संकलित की गई है। इसके लिए धन्वन्तरि परिवार को बधाई।"

❖ ❖ ❖

आचार्य महेन्द्रकुमार शास्त्री बी० ए० आयु० बम्बई—

"इस अंक के द्वारा आपने श्री धन्वन्तरि की विशेषांकों की शानदार परम्परा को न केवल कायम ही रखा है अपितु इसे सर्व प्रकार से आगे बढ़ाया है।"

❖ ❖ ❖

वैद्य श्री बिहारीलाल शर्मा मिश्र आयु० विशा० सिहोरा (भण्डारा)

"इस विशेषांक में एक भी लाइन ऐसी नहीं है जो पिष्टपेषण या निरर्थक कही जा सके। धन्वन्तरि का यह प्रसूति विज्ञानांक पहले प्रकाशित सभी विशेषांकों से अधिक सारपूर्ण तथा उपादेय साहित्य सिद्ध होगा। यह अंक विद्वान् वैद्यों से लेकर जन साधारण तथा आयुर्वेद के विद्यार्थियों, नर्स मिडवाइफ आदि सबके लिए मार्गदर्शक तथा उपादेय सिद्ध होगा।"

❖ ❖ ❖

डा० शंकरलाल जी भेडा, M. B. B. S. आयुर्वेदाचार्य बम्बई—

"धन्वन्तरि उत्तरोत्तर विशिष्टांकों द्वारा वैद्य समाज एवं जनता की महती सेवा कर रहा है। विशिष्टाङ्क में बहुत ही गम्भीर विषयों पर अत्यन्त मार्मिक विवेचनों के साथ सम्पादकीय लेख वैद्य समाज को सामयिक स्थिति से पूर्ण परिचय कराता है। मैं इसकी उत्तरोत्तर मंगल कामना करता हूँ।"

❖ ❖ ❖

वैद्यराज दौलतराम सोनी आयुर्वेद रत्न, जबलपुर।

"प्रसूति तन्त्र पर इतनी उच्च कोटि का साहित्य अभी तक हिन्दी भाषा में नहीं था। यह विशेषांक विद्यार्थियों के लिए अत्यन्त उपयोगी प्रमाणित होगा।"

कविराज सन्तोषकुमार जैन A. M. S. आयुर्वेदाचार्य
मैडीकल आफीसर-सरकारी अस्पताल, नजीराबाद (भोपाल)

"मेरा विश्वास है कि यह अंक भारत की वर्तमान संकटपूर्ण स्वास्थ्यहीन नारी समाज की डगमगाती अस्थिपंजर मात्र नौका को एक सफल कर्णधार की भांति संक्रमणात्मक रोगों से भरे हुये समुद्र से पार करने में सिद्धहस्त साबित होगा। अतः यह अंक प्रत्येक आयुर्वेदाभिमानी के लिए ही नहीं किन्तु प्रत्येक गृहस्थ के लिये अत्यन्त उपयोगी, मननीय-पठनीय और संग्रहणीय है।"

❖　❖　❖

श्री वैद्य मणिराम जी शर्मा भिषगाचार्य
भू० पू० सभापति-नि० भा० आयु० विद्यापीठ, रतनगढ़-

"प्रसूति विज्ञानाङ्क देखा। आयुर्वेद मर्मज्ञों द्वारा प्रसूति विषय पर सुन्दर लेख लिखे गये हैं। यह प्रत्येक वैद्य, छात्र एवं सर्वजन के पठन योग्य है।"

❖　❖　❖

आयुर्वेदाचार्य कवि० श्री हरदयाल वैद्यवाचस्पति
K. R., A V., M. A. S.
प्रधान—बोर्ड आफ आयु० एवं यूनानी मैडी० पंजाब—

"प्रसूति विज्ञानाङ्क को आद्यन्त पढ़ने से यथा शीर्षक स्थापित विषयों में नूतन जानकारी प्राप्त होती है। प्रसूति विज्ञानानुबन्धित कोई भी विषय छूटने नहीं पाया। इस अङ्क में लगभग ३० विषयों का समावेश हुआ है। प्रत्येक विषय के योग्य और अनुभवी लेखक को प्रतिपादन शैली पर पूर्ण अधिकार प्राप्त है ऐसा जान पड़ता है। प्रसूति विज्ञान पर पौर्वात्य एवं पाश्चात्य अन्वेषणों और अनुभवों का प्रत्यक्षदर्शन होता है।"

❖　❖　❖

पं० नागेशदत्त शास्त्री आयुर्वेदाचार्य काव्यतीर्थ
जालना (दक्कन)—

"वर्तमान काल में धन्वन्तरि प्रसूतिविज्ञानाङ्क आयुर्वेद साहित्य निर्माण की महती पूर्ति है। विद्वानों के अथक परिश्रम से परिपूर्ण यह प्राचीन और अर्वाचीन साहित्य का केवल संकलन ही नहीं अपितु समन्वय द्वारा नव निर्माण है। यह विशेषांक नहीं कालेजों का पाठ्यग्रन्थ है।"

डा० आशानन्द पंजरत्न आयुर्वेदाचार्य M. B. B. S.
सवाई माधोपुर—

"प्रसूति विज्ञानाङ्क बहुत परिश्रम और यत्नों से तैयार किया गया है। ऐसे संग्रहों से वैद्यों को लाभ होता है, इनसे ज्ञानवृद्धि होती है। कुछ लेख विशेष उपयोगी हैं।"

❖　❖　❖

श्री पं० श्रीवत्स जी वैद्यराज, कनखल।

"आयुर्वेद के जितने भी मासिकपत्र वर्तमान समय से निकलते हैं उनमें धन्वन्तरि का स्थान ऊंचा है और मेरे को उस समय का स्मरण आता है जब कि ला० राधावल्लभ जी ने देहली में अपनी धन्वन्तरि निकालने की योजना पर अपने विचार प्रकट किये थे, उस समय यह ध्यान में नहीं आता था कि धन्वन्तरि आयुर्वेदजगत की भारी सेवा करेगा। प्रसूति विज्ञानांक आयुर्वेद में नई चीज है। यदि वैद्य महानुभाव ध्यान से पढ़कर इस पर विचार कर चिकित्सा में प्रवृत्त होंगे तो वह वे अपने व्यवसाय में विशेष स्थान प्राप्त कर सकेंगे।

❖　❖　❖

पं० हरिनारायण जी शर्मा आयुर्वेदाचार्य, काव्यतीर्थ
प्रिंसीपल-बी० एन० मेहता संस्कृत विद्यालय, प्रतापगढ़।

"इसके सभी लेख प्रसूतिशास्त्र के सिद्धान्तानुकूल एवं विद्वत्तापूर्ण हैं। इस अङ्क को यदि प्रसूतिशास्त्र कहा जाय तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। जनता तथा नूतन वैद्यों का इससे बहुत उपकार होगा।"

❖　❖　❖

वैद्य मिश्रीलाल गुप्ता विशारद
चैयरमैन—म्यूनिसपिल बोर्ड, इछावर (भोपाल)।

"धन्वन्तरि ने आयुर्वेद संसार की जो सेवाएं की हैं वह अविस्मरणीय हैं। प्रसूति विज्ञानाङ्क आयुर्वेद की अमरकृति है जिसके द्वारा न केवल जन-साधारण ही प्रत्युत वैद्यसमाज भी बहुत कुछ प्राप्त कर सकेंगे।

आयुर्वेद के बोल

बूढ़ा हूँ, अजर-अमर हूँ,
त्याग-तपस्या में जीवन निसार है।
नरक के दानव आये, विनाश के भय दिखाये, पर मैं तो अविनाशी हूं,
माता कहूँ या पिता कहूँ, वो तो एक ब्रह्म है।
वर्षों बीते! धूप खाय, छांया खाया, पर रंग तो मेरा वही है,
वही है, वही रहेगा, जब तक ये जीव हैं औ दुनिया है।
सत्संगति औ सच्चे प्रेममय जीवन से ओतप्रोत,
पैथियों के झूठे प्रचारों को दूर छोड़—
सर्वदा स्वयं को तुममें आत्मसात रखा
तो क्या, इस अमर प्रेम को ठुकरा दोगे?
Foreign body की तरह शरीर स्रोत से निकाल दोगे।
मैंने! नुकसान तो नहीं किया, बल्कि जीवन दिया,
क्या जीवन को निकाल आजीवन बनोगे।
एक ओर त्याग, दूसरी ओर जीवन,
एक ओर क्रांति, दूसरी ओर प्रेमशांति,
विस्मय में पड़ गये! बड़े कमजोर हो—
तुम मानव हो, तुम्हें जीवन चाहिये, गति चाहिये।
जीवन ज्ञान मैं देता हूं, तुम्हें आपत्ति क्या है,
अरे भई! मूक बनने से हंसते हो, तो तकलीफ क्या है,
तुम मानव हो, तुम्हें जीवन चाहिये, गति चाहिये।

श्री० वेंकटप्रसाद मढ़रिया।

आत्म-निरीक्षण

(रचियता—श्री एम० पी० रंजन, आसनजोली)

कपट भाव से अंग्रेजों ने, हमको खूब छकाया था।
तभी तो हिन्दी के बदले, अंग्रेजी हमें पढ़ाया था॥
औषधि के व्यापार हेतु, यह 'एलोपैथी' आया था।
इसी तरह सब भांति विवश कर उसने दास बनाया था॥

अपने शासन में अंग्रेजों ने, हमको ठुकराया था।
थे गुलाम इसलिए उन्होंने, जी भर हमें सताया था॥
कूट नीति के द्वारा उसने, नाकों चने चबाया था।
दमन नीति अपनाकर उसने, हमको सदा दबाया था॥

पर अब तो आजाद देश है, ढांचा यद्पि पुराना है।
शासक तो बदले जरूर पर, उनका वही तराना है॥
काले गोरे के परिवर्तन से क्या होने जाना है।
शासन नीति बदलने को, आन्दोलन हमें मचाना है॥

किसी देशवासी को अपना देश हमेशा प्यारा है।
उसी तरह औषधियां औ' जलवायु उसका प्यारा है॥
नहीं सिर्फ प्राचीन मगर दुनियां में सबसे न्यारा है।
ऐसे गौरवमय अतीत का, वैधक शास्त्र हमारा है॥

अतः देश के हम वैद्यों ने, मिल कर यही विचारा है।
दूर हटो ऐ "पैथी" वालो, सब अधिकार हमारा है॥
पूर्ण विवश होने पर ही हमने तुमको ललकारा है।
'आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति हो' अपना यह नारा है॥

आओ बन्धु! जाग पड़ें अब; समय नहीं है सोने का।
और न किस्मत के ऊपर, मन मार बैठकर रोने का॥
सोने से भी मूल्यवान् यह अवसर कभी न खोने का।
करना है उद्योग स्वयम् वर्ना कुछ भी नहीं होने का॥

आयुर्वेद हमारे जीवन में सुख का इक झरना है।
जन्म सिद्ध अधिकार मांगने में फिर कैसा डरना है॥
आपस के मत-भेद भुला कर हमें संगठन करना है।
ध्येय प्राप्ति के लिये हमें हंसते-हंसते ही मरना है॥

अब 'अतीत के गीत' नहीं गा गा कर हमें सुनाना है।
और न अपना दुखड़ा रो कर, हमको समय गंवाना है॥
गान्धी का आदेश 'करो या मरो' हमें अपनाना है।
और पुनः सत्याग्रह द्वारा, वह खोया हक पाना है॥

यक्ष्मा और बी. सी. जी.

आचार्य श्री परमानन्दन शास्त्री डी० लिट्।

स्वतंत्र सार्वभौम भारत में आज के देश-नायकों ने देशवासियों को स्वाधीनता प्राप्त होने के बाद जिस रामराज्य-को धरती पर उतारने का आश्वासन दिलाया था उसके संबंध में एक आश्वासन चिकित्सा संबंधी भी था जिसे अखिल भारतीय कांग्रेस महासमिति करांची अधिवेशन में स्वीकृत किया था। उक्त प्रस्ताव में देशी चिकित्सा-पद्धति को व्यापक प्रोत्साहन देने की बात की गयी थी जो आज भी गरीब भारत के ६० प्रतिशत जनता की स्वास्थ्य रक्षा कर रही है। किन्तु आज उन्हीं कांग्रेस जनों की सत्तारूढ़ सरकार आयुर्वेद के उद्धार के लिए क्या-क्या कर रही है, यह बताना इस लेख का उद्देश्य नहीं है, और न मैं उस पर प्रकाश डालना ही यहां उचित समझता हूँ।

कहना न होगा कि आज भारत में मलेरिया के पश्चात् क्षय रोग (टी. बी.) का ही स्थान आता है, और भारत के किस कोने में कितने व्यक्ति इससे आक्रांत होते रहते हैं और उनके द्वारा राष्ट्रीय मृत्यु-संख्या कितनी प्रतिवर्ष होती है इसका लोमहर्षण आंकड़ा बताना भी व्यर्थ है। भारत-सरकार इस महामारी को रोकने के लिये जिस बी० सी० जी० के टीके का व्यापक प्रयोग करती है और द्वितीय पंचवार्षिक योजना में जिसकी व्यापकता और बढ़ाने जा रही है, क्या वह वस्तुतः राष्ट्र को भयंकर क्षय-रोग से बचा सकेगा, यह एक महाभयंकर प्रश्न है, जिस पर शांत मस्तिष्क से विचार करना आवश्यक हो गया है।

कुछ दिन पहले कोयम्बुतूर (मद्रास) की कुमारी बसन्त को लेकर मद्रास राज्य में बी० सी० जी० टीके की दुष्प्रभावकारिता के संबंध में जो विवाद खड़ा हुआ था, उसमें भारत के भूतपूर्व गवर्नर जनरल तथा महात्मा गांधी के समधी श्री राजगोपालाचारी ने व्यापक विरुद्ध आवाज उठाई थी और जिसकी प्रबलता को देखकर भारत सरकार के स्वास्थ्य विभाग ने, जैसा कि बताया जाता है, सरकारी प्रत्येक डाक्टर को खुले रूप में उक्त टीके के संबंध में कुछ भी राय देने से मना कर रखा है।

पिछले ६ सितम्बर को भारत सरकार के स्वास्थ्य सेवा विभाग के डायरेक्टर जनरल श्री लक्ष्मणन ने दिल्ली रेडियो से वार्ता प्रसारित करते हुए कहा था कि यह संतोष की बात है कि जिस व्यापक पैमाने पर हमने टीके लगवाये हैं, खतरों की संख्या यद्यपि गलती से बी० सी० जी० के कारण से बताए गये हैं, बहुत ही कम हुई है। परन्तु यदि सत्य कहना दोष नहीं तो जिस रूप में इन टीका वाले व्यक्तियों का रजिष्टर रखा जाता है उस रूप में तो शतप्रतिशत की कौन कहे, सहस्र प्रतिशत-लक्ष-प्रतिशत तक सफलता सरकारी आंकड़ों पर बताना आसानी की ही बात है।

अभी उस दिन दिल्ली में होने वाले त्रयोदश अखिल भारतीय-यक्ष्मा कार्यकर्त्ता सम्मेलन में भाषण करते हुए भारत-सरकार के यक्ष्मा-सलाहकार डाक्टर पी० वी० बेन्जामिन ने अन्तरराष्ट्रिय प्रति-यक्ष्मा संघ की पूर्वाञ्चल समिति के संघटन की संभाव्यता की चर्चा करते हुए विदेशी प्रतिनिधियों को आश्वासन दिया है कि यक्ष्मानियंत्रण में सहायक सभी सुझावों का समादर किया जायगा किन्तु उन्हें यह उदारता नहीं है कि भारत की अपनी चिकित्सा-पद्धति, जिसकी मौलिकता शतों-सहस्त्रों वर्षों से सम्बद्ध संसार में मान्यता प्राप्त कर चुकी है और जो वस्तुतः संसार की चिकित्सा पद्धतियों का मूल रहते हुए भी आज भी समान भाव से सफल है; के विशेषज्ञों से राय ले सकते।

ऐसा राष्ट्रियता के अपमान का दूसरा उदाहरण संसार में नहीं मिल सकेगा।

आकड़ा संग्रह में धांधली

कहना न होगा कि बी० सी० जी० टीका देकर जिस प्रकार प्रति व्यक्ति के स्वास्थ्य-संग्रह की व्यवस्था है, उसमें एक भी व्यक्ति को इसके दुष्प्रभाव का शिकार होना बताना कठिन है, और दैव-योग से यदि कोई आंकड़े संग्रहीत कर यह बताने की चेष्टा भारत में करेगा कि बी० सी० जी० का टीका वस्तुतः घातक परिणाम लासकता है तो उसके आंकड़ों की व्याख्या ठीक उसी प्रकार ये पाश्चात्य प्रणाली के वैज्ञानिक डाक्टर कर देंगे जैसा कि श्री राजाजी के आंकड़ों की हुई है और उसकी आवाज भी राजा जी की आवाज की भांति ही अनसुनी कर दी जायगी। इसलिए आंकड़े के संबंध में कुछ भी प्रकाश करना मात्र अरण्यरोदन होगा। फलतः इस लेख में मैं केवल पाश्चात्य वैज्ञानिकों के कुछ मत ही उपस्थित करूंगा।

विशेषज्ञों की राय में बी०सी०जी०

लंदन विश्वविद्यालय के निदानाध्यापक प्रोफेसर जेम्स मैक इन्तोस का स्पष्ट कहना है कि 'वैज्ञानिक दृष्टि से इसमें किसी को भी विचारान्तर नहीं होगा कि सभी दृष्टियों से 'वायरुस' का इन्जेकशन करना बुरा होगा जिस वायरुस में शरीर में प्रगुणित होने की क्षमता हो।' निःसंदेह उक्त प्राध्यापक का उक्त वचन एक अकाट्य वचन है जिसका उत्तर बी० सी० जी० के समर्थकों के द्वारा आज तक नहीं दिया जा सका है। और इस पृष्ठ भूमि पर बी० सी० जी० का टीका लगवा कर मानव जीवन को संकट में डालना कहां तक ठीक होगा इसे पाठक ही सोच सकते हैं।

पाश्चात्य वैज्ञानिकों के अनुसार बी० सी० जी० के टीके के द्वारा शरीर में यक्ष्मा के कीटाणु के निर्बलीकृत जीवन्त वायरुस का प्रवेश कराया जाता है। इस निर्बलीकरण को उनकी शब्दावली में एटेन्यूएशन कहा जाता है और इन के अनुसार यह शरीर में प्रवेश कराकर शरीर को यक्ष्मा के आक्रमण से बहुत अंश तक बचाया जा सकता है। अब प्रश्न उठता है कि 'विषस्य विषमौषधम्' के सिद्धान्त पर आद्धृत इस चिकित्सा का समर्थन उक्त सिद्धान्त के अन्ध-अनुयायी होमियोपैथी द्वारा वांछनीय रहने पर भी नहीं हो रहा है बल्कि वे इसके प्रबल विरोधी ही दीखते हैं। ऐसी स्थिति में एलोपैथी द्वारा इसका प्रयोग कहां तक उचित है, विज्ञ पाठक स्वयं सोच सकते हैं।

जहांतक इसके परीक्षण द्वारा उपयोगी होने का प्रश्न है, यह अनर्थक सिद्ध हो चुका है। प्रमाणस्वरूप अमेरिका के सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक जोन बी० मैकडौगल का कहना है कि अमेरिकनों ने पशुओं पर पर्याप्त परीक्षण के बाद पशुओं में यक्ष्मा-संक्रमण रोकने में बी० सी० जी० को असफल पाया। यही अमरीकी जनस्वास्थ्य सेवा के विशेष परामर्शदाता तथा अमरीकी सेना के ट्रापीकल मेडिसीन के सर्जन जेनरल डाक्टर विलियम फ्रेने, जो अभी भारतकी यात्रा में आये थे, ७ जनवरी १९५६ को बम्बई में पत्रकारों को स्पष्ट कह दिया है कि बी० सी० जी० का व्यापक टीका लगवाने से यक्ष्मा संक्रमण रुक जायगा। उनके अनुसार अमरीकी स्वास्थ्य विभाग इसके यथार्थ प्रभाव की परीक्षा कर ही रहा है और कुछ हद तक सहायता पहुँचाने की संभावना ही उन्होंने व्यक्ति की है। उनके मत में इस टीके से कोई हानि होने की संभावना भी नहीं है। परन्तु कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय के यक्ष्मा सेवा के डाक्टर सीमूर एम० फार्वर का कहना है कि ४० वर्षों के परीक्षण के बाद भी इस टीके के संबंध में मत भेद रह रहा है इससे यह प्रमाणित होता है कि इसके संबंध में सतर्कता उचित ही है। और मिनेसोटा (अमेरिका) विश्वविद्यालय के डाक्टर मायर्स ने भी सन्देह की गुंजाइश बतलायी है। इसलिये पर्याप्त सतर्कता से प्रचुर सामग्रियों को यथावसर उट्टंकित कर उनके माध्यम से विचार किये बिना यह कह

देना कि यह नुकशान नहीं करता या लाभ पहुँचाता है, सरासर अन्याय होगा।

जाग योगी यश विक्रम को !

चिकित्सा विज्ञान के मुख्य पत्रों के अध्ययन करने से यह भी पता चलता है कि जिन विदेशी आंकड़ों के बलपर इस टीका को लाभप्रद बताया जाता है वहां यह मान लेना कि यथार्थतः इस टीके से ही यक्ष्मा के आंकड़ों में ह्रास हुआ है सर्वथा अवास्तविक कहा जायगा। वहां के प्राकृतिक वातावरण ही यक्ष्मा प्रसार में मुख्यतः बाधक है जिसकी पुष्टि में एकाध प्रमाण यहां उपस्थित करना भी अनावश्यक नहीं होगा।

उत्तरपूर्व मेट्रोपोलिटन रेजिनल हास्पिटल बोर्ड के वक्षःपरीक्षक डाक्टर एफ० केल्जरमान का कथन है कि पिछले ५० वर्षों से विश्व के अधिकांश भागों में यक्ष्मा की मारात्मकता में ह्रास होता आ रहा है। और उन्होंने इसकी पुष्टि में कहा है कि अमेरिका के राज्यों में जहां टीका नहीं प्रयुक्त हुआ है वहां भी यक्ष्मा की मारात्मकता में उल्लेखनीय ह्रास हुआ है। डाक्टर मारथुस मायर्स का भी कहना है कि न्यूयार्क शहर में १६२४ से १६५४ तक (कुल ३० वर्षों में) बिना बी० सी० जी० के प्रयोग के ही लगभग ६५ प्रतिशत यक्ष्मा मृत्यु संख्या में ह्रास हुआ है। इस लिए प्राकृतिक यक्ष्मा प्रसार प्रतिबंध को बी० सी० जी० टीके के परिणाम के रूप में मानना कभी भी बुद्धि संगत नहीं है। यह तो उसी कहानी को पुष्ट करेगा कि 'जाग आये योगी और यश मिला विक्रम को' भला कौन विवेकी इसको मान सकेगा।

ब्रिटिश स्वास्थ्य सचिवालय में

१६५३ ईसवी में ब्रिटिश स्वास्थ्य-सचिवालय द्वारा प्रत्येक स्वास्थ्य मेडीकल अफसर के नाम जो बी० सी० जी० टीके के संबंध में स्मृति पत्र भेजा गया था उसमें स्पष्ट कहा गया था कि विराट संख्या में टीके २० वर्षों तक ताजे तरल पदार्थ किंवा उसके जमाये सूखे वैक्सिन, लगाये जाने के बावजूद भी इसकी यथार्थ अर्हा (मूल्य) का वैज्ञानिक सबूत नहीं है। और टौप्ले और विल्सन के वेत्राणु विद्या तथा इम्युनिटी के सिद्धांत नामक ग्रंथ में यह स्पष्ट बताया गया है कि इतने व्यापक पैमाने पर इसकी परीक्षा करने पर भी इसके परिणामों का असेसमेंट अत्यन्त ही कठिन है। ऐसी स्थिति में इस टीके के व्यापक प्रयोग पर भारत सरकार के स्वास्थ्य विभाग का पिलकर पड़े रहने का कोई राष्ट्रिय या जनहितात्मक प्रयोजन कथमपि नहीं माना जायगा।

टीके से खतरा

डाक्टर टौप्ले तथा विल्सन की उक्त पुस्तक के अनुसार टीकोत्तर कालिक आपत्तियों में एनसेफलिटिस किंवा मस्तिष्क शोथ की बीमारी देखी गयी है और जेनराइज्ड बी० सी० जी० इन्जेक्शन इन मैन नामक निबन्ध में डाक्टर ई० वालर तथा पी० ओडिंग ने यक्ष्मा रिएक्शन का निगेटिव से पोजेटिव होना बतलाया है। और डाक्टर मेयर ने अमेरिकन रिव्यू आफ ट्युवरक्यूलोसिस नामक पत्र में टीका लगाने के बाद मारात्मक यक्ष्मा के कतिपय उदाहरण दिये हैं। ऐसी स्थिति में इस टीके को लगाकर तथा कथित लाभ की प्रत्याशा में मानव जीवन से खिलवाड़ करने का घृणित प्रयत्न डाक्टरी चिकित्सक भले ही करें मगर सचेतन जनता को तो इससे अवश्य ही अलग रहने की इच्छा होगी।

प्राणिशास्त्र और बी० सी जी०

प्राणिशास्त्र के अनुसार परिस्थितिक अनुकूलता के द्वारा निर्बल शक्तियां भी प्रबल हो जाया करती हैं। फिर इस टीके के निर्बलीकृत वायरस सदा ही निर्बल ही रहेंगे, सबल कदापि नहीं होंगे, इसमें कोई राजाज्ञा या वेदाज्ञा नहीं। फिर स्वस्थ शरीर में इस कीटाणु को प्रवेश कराना भगवान के भरोसे जीवन रक्षा छोड़ते हुए कहां तक ठीक है, इसे पाठक

—शेषांश पृष्ठ ६३० पर।

पारद का महत्व

लेखक—कविराज महेन्द्रनाथ पाण्डेय, सम्पादक—घरेलू चिकित्सा, इलाहाबाद]।

पारद एक तरल धातु है जो सृष्टि के आदि काल से खनिज के रूप में उपलब्ध है। अनेक प्रकार के इसके यौगिक भी मिलते हैं जिनसे पारा अलग किया जा सकता है। पारा की उत्पत्ति के सम्बन्ध में रसरत्नसमुच्चय में एक पौराणिक कथा को आधार मानकर लिखा है कि पारद शिव जी का वीर्य है। इस विषय पर कोई अन्य विद्वान् प्रकाश डालेंगे। पारद की उत्पत्ति पर कुछ लिखना प्रस्तुत विषय के बाहर होगा।

पारद हिमालय के खोहों में और विदेशों के पर्वतों पर मिलता है। बहुत सा पारद विदेशों से आता है। पारद के सम्बन्ध में लोगों को जानकारी कब हुई यह ऐतिहासिक रूप से ज्ञात नहीं है। परन्तु इतना अवश्य है कि नागार्जुन के समय में लोग पारद के गुणों से उतने ही अवगत थे जितना आजकल लोग जानते हैं।

हिंगुल या सिंगरफ पारद का एक यौगिक है। इससे भी पारा निकाला जाता है। आयुर्वेदज्ञों का मत है कि हिंगुल से निकाला हुआ पारद शुद्ध रूप में होता है और बिना शुद्धि के भी वह औषधि रूप में प्रयोग किया जा सकता है। हमारी राय में हिंगुल से निकले हुए पारद को भी नीबू के रस में घोंटकर शुद्ध कर लेना अधिक अच्छा होता है। अधिक अच्छा यह होता है कि उसका भी उर्ध्व और अधः पातन कर लिया जाय अथवा स्वेदन कर लिया जाय।

बाजार में बिकने वाले पारद में अनेक धातुएं जैसे सीसा, रांगा, जस्ता, बिस्मथ आदि मिली रहती हैं, इनके अतिरिक्त अन्य और भी अशुद्धियां रहती हैं। जब तक पारद से इन सब अशुद्धियों को अलग न किया जाय वह औषधि रूप में व्यवहार के योग्य नहीं होता। पश्चिमी ढंग के विद्वान् धातुओं को अलग करने के लिए केन्वायस लेदर (एक विशेष प्रकार से बनाया पतला चमड़ा) से छानते हैं और अशुद्धियों को दूर करने के लिए शोरे के तेजाब से विशेष रीति द्वारा एवं ऊर्ध्व पातन और अधः पातन करते हैं जिसे डिस्टिलेशन कहते हैं। आयुर्वेदीय मत से मोटे और गाढ़े ४ तह कपड़े में पारद छाना जाता है और ऊर्ध्व पातन और अधः पातन किया जाता है। परन्तु इतने से ही यह औषधि के काम लायक नहीं समझा जाता। औषधि के योग्य बनाने के लिए और भी अनेक संस्कार किये जाते हैं। संस्कार का अर्थ शोधन समझना चाहिए।

आयुर्वेद के मत से पारद में निम्न लिखित दोष होते हैं—

> नागो वंगो मलो वह्निश्चाञ्चल्यं च विषं गिरिम्।
> असह्याग्निर्महादोषा निसर्गात्पारदे स्थिताः॥

अर्थात् सीसा, वंग, मल, अग्निगुण, चंचलता, विष गिरि, और असह्याग्नि ये आठ महा दोष पारद में स्वभाव से ही एक ही खानि में इन सब के उत्पन्न होने के कारण होते हैं। इन दोषों के अतिरिक्त पारद में सप्त-कंचुकी होती है। आयुर्वेद के मत से इन कंचुकियों को अलग करना भी आवश्यक है तभी यह औषधि प्रयोग के योग्य होता है पाश्चात्य ढंग के विद्वान सप्त कंचुकियों का वर्णन नहीं करते। पता नहीं उन्हें इसकी शोध लगाने में सफलता मिली है या नहीं।

यदि इन आठ दोषों युक्त पारद खाने के काम में लाया जाय तो सीसा के दोष से शरीर में व्रण उत्पन्न होते हैं, वंग दोष से कुष्ठ होता है, मल दोष से जड़ता आती है, अग्निदोप से दाह होता है, चंचलता

दोष से वीर्य नाश होता है, विष दोष से मृत्यु होती है, गिरिदोष से जड़ता आती है और असह्याग्नि दोष से फोड़े आदि होते हैं। इसीलिए प्राचीन आचार्यों ने कहा है—

दोष हीनो यदा सूत स्तदा मृत्यु ज्वरापहः।
शुद्धोऽयममृतः साक्षाद् दोष युक्तो रसो विषम्॥

अर्थात् जब पारद सब दोषों से रहित अर्थात् शुद्ध होता है तब मृत्यु और ज्वर को दूर करता है। (यहां ज्वर शब्द कहकर शरीर में होने वाले सम्पूर्ण रोगों का बोध कराया गया है। क्योंकि आयुर्वेद में रोगों की गणना ज्वर से ही आरम्भ की जाती है।) शुद्ध पारद साक्षात् अमृत है और अशुद्ध पारद साक्षात् विष।

पारद सामान्य उष्णता पर तरलावस्था में रहता है और चांदी या रजत की तरह स्वच्छ होता है। इसीलिए अङ्गरेजों में लिकड सिलवर (तरल चांदी) कहते हैं। यह ३९° डिग्री सेंटीग्रेड पर जम जाता है। और ३५७.२५° सेंटिग्रेड पर खौलने लगता है। परन्तु सामान्य गरमी पर भी यह वाष्प रूप में परिवर्तित हो जाता है। अब तक की ज्ञात समस्त धातुओं की अपेक्षा सामान्य उष्णता पर यह सबसे भारी धातु है। इसी कारण प्रायः सब धातुएं इसमें तैरती हैं। इसमें न कोई स्वाद होता है और न कोई गन्ध।

पारद चितकबरा, पीले रंग का और धुआं जैसे काले रंग का भी होता है परन्तु वह पारद की अशुद्ध अवस्था है। आयुर्वेद में स्पष्ट उल्लेख है—

अन्तः सुनीलो बहिरुज्ज्वलो
यो मध्याह्नसूर्यो प्रतिय प्रकाशः।

शस्तोऽय धूम्रः परिपाण्डुरश्च
चित्रो न यो ज्यो रस कर्म सिद्धौ॥

अन्दर से सुन्दर (आकर्षक) नीली आभा वाला और बाहर से उज्ज्वल और सूर्य के समान दीप्तिमान (चमकता हुआ) पारद उत्तम होता है इसे रस कर्म (औषधि और कीमियागीरी) के लिए उत्तम समझना चाहिए। जो पारा धुआं के रंगवाला सर्वतः पीलापन लिए श्वेत या चितकबरे रंग का हो वह रस कर्म में नहीं काम में लाना चाहिए।

पारद का उपयोग अनेक प्रकार से होता है। इससे भौतिक और रासायनिक यन्त्र बनते हैं जैसे थर्मामीटर बैरोमीटर आदि, शीशे आदि में कलई की जाती है। सोना चांदी निकालने में इसका प्रयोग होता है और अनेक प्रकार के यौगिक बनाये जाते हैं। अनेक स्थलों पर ऐसा उद्धरण मिलता है कि राजा भोज के समय में हवाई जहाज उड़ाने के लिए किसी प्रकार इसका प्रयोग होता था और पेट्रोल की आवश्यकता का निवारण किया जाता था।

यह एक बड़ी विशेषता है कि पारद का प्रयोग सोना और चांदी बनाने में होता है। अष्टादश संस्कारित पारद विशेषतः स्वर्ण बनाने के उपयोग में आता है। कुछ औषधियों के उपयोग से भी सोना चांदी बनाये जाते हैं। इस राजवती और हेमवती विद्या का उल्लेख हमारे रस ग्रन्थों में है परन्तु आज एक भी एसा रसायन शास्त्री नहीं है जो अपनी इस विद्या का, जो अधोगति में पड़ी हुई है, उद्धार करे। रसायन विद्या के प्रथम आचार्य नागार्जुन ने भी अपने ग्रंथ में उस विद्या का उल्लेख किया है। बनारस के प्रसिद्ध रसायनाचार्य स्वर्गीय श्यामसुन्दराचार्य केवल तांबे को पीतवर्ण में पलट सके परन्तु उनके जीवन काल में सोना नहीं बना। यों आज भी अनेक साधु और रसायनी ऐसे हैं जो सोना बनाते हैं परन्तु इस विद्या का कोई प्रचार नहीं करता।

हमारे प्राचीन शास्त्रों में स्वर्ण ग्रास चांदी ग्रास आदि का उल्लेख है और एसा भी लिखा है कि पारद बुभुक्षित बनता है और धातुओं को खाजाता और पारद का वजन नहीं बढ़ता। परन्तु इस विद्या को करके दिखाने वाला एक भी रसायन शास्त्री नहीं है। इस क्रिया में व्यय और परिश्रम अधिक है। बड़ी बड़ी फार्मेसियां यदि चाहें तो उद्धार हो सकता है। एक दो वैतनिक विद्वान इस कार्य

पर लगा दिये जांय और १०००, २०००, रुपये व्यय कर दिये जांय तो बुभुक्षित पारद तैयार कर लेना कठिन नहीं है परन्तु इस ओर कोई आकर्षित नहीं होता।

पारद एक ऐसी औषधि है कि इसका प्रयोग अकेले नहीं हो सकता इसमें कुछ अन्य औषधियों का संयोग करना आवश्यक होता है। एलोपैथी चिकित्सा पद्धति में भी यह अनेक योगिकों के रूप में व्यवहार में आता है जिनमें रसकपूर (कोरोसिव सब्लियेट) केलोमेल (क्लोराइड आफ मर्करी) सलफेट आफ मर्करी और सलफाइड आफ मर्करी आदि मुख्य हैं। कार्बोनेट आफ मर्करी भी बनता है, रसकपूर केलोमेल और सलफेट आफ मर्करी सफेद रंग के होते हैं। सलफाइड आफ मर्करी लाल बनता है। वैसे ही कार्बोनेट आफ मकरी पीले रंग का चूर्ण होता है और प्रकाश के पड़ने से काला पड़ जाता है। विषों के संयोग से भी पारे की औषधियां बनती हैं जैसे बाई-साइनाइड आफ मर्करी, मर्क्यूरियस आयोडेट्स इत्यादि।

आयुर्वेद की विधि से पारे की चार प्रकार की भस्में बनती हैं। श्वेत भस्म रसकपूर है। परन्तु एलोपैथी के केलोमेल कोरोसिव सब्लिमेट और सलफाइड आफ मर्करी में और आयुर्वेदीय रसकपूर में क्या अन्तर होगा यह हमें ज्ञान नहीं है। पारे की लाल भस्म रससिंदूर है। स्वर्णसिंदूर ताम्रसिंदूर शिलासिंदूर, मल्लसिंदूर, तालसिंदूर आदि अनेक भस्में लाल बनती हैं। पारे की पीत भस्म सर्वाङ्ग सुन्दर के नाम से विख्यात है। वैसे ही पारे की कृष्ण भस्म भी बनती है। इन भस्मों के गुण के सम्बन्ध में आयुर्वेद का मत निम्न प्रकार है—

> श्वेतं पीतं तथा रक्तं कृष्णञ्चेति चतुर्विधं।
> लक्षणं भस्म सूता नां श्रेष्ठं स्याद उत्तरोत्तरम्॥

अर्थात् गुण में श्वेत भस्म से पीली भस्म, पीली से लाल भस्म, लाल से काली भस्म श्रेष्ठ है।

इन भस्मों की विधि रस की पुस्तकों में मिलती हैं, यहां इनको लिखने से विस्तार बढ़ेगा इस लिये हमने इनको छोड़ दिया है। पारद को विषों के साथ घोटने से उसमें मुख हो जाता है अनेक धातुओं के खाजाने की शक्ति हो जाती है। इस क्रिया के करने के बाद जो पारद की भस्म बनेगी वह अधिक गुणशाली बनेगी और उग्र वीर्य भी होगी। मकरध्वज भी पारे की एक प्रकार की भस्म ही है जिसके मुकाबिले की औषधियां अभी तक बहुत कम निकल पाई हैं।

रस चिकित्सकों से यह बात छिपी नहीं है कि पारद का प्रयोग अन्य औषधियों के साथ मिलाकर सभी रोगों में होता है आयुर्वेद ने अकेले पारद का कहीं प्रयोग नहीं होता। सदैव इसके साथ गंधक का संयोग किया जाता है। इस लिये पारे का संयोग करने से जो औषधि में अमोघता आती है वह केवल पारद का ही गुण नहीं है उसमें गंधक का संयोग मिला हुआ है। इसलिए हम कहते हैं कि गंधक का संयोग पारद को अमृत बनाता है। यदि गंधक का संयोग न हो तो पारद विष के समान मारक है। जैसे सर्व शक्ति मान परमेश्वर बिना प्रकृति की सहायता के सृष्टि रचना नहीं कर सकता उसी प्रकार पारद बिना गंधक के संयोग के पंगु रहता है। पारद की सफेद भस्म जिसे रसकपूर कहते हैं बिना गन्धक के बनाई जाती है यह भस्म कम गुणकारी है और यदि दांत या जीभ से लग जाय तो मसूड़ा फूल जाता, घाव होजाता है और लार बहने लगती है, इसी लिए इसे आटे या मुनक्के के भीतर रखकर निगलवाया जाता है। आधुनिक युग में कैपशूल में रख कर खिलाते हैं जिससे मुंह में इस औषधि का स्पर्श न हो। यही दुर्गुण केलोमेल में है क्योंकि इसमें भी गंधक नहीं पड़ती। रसकपूर फिरङ्ग रोग की प्रसिद्ध औषधि है और इस रोग में पारद का सर्व प्रथम प्रयोग आयुर्वेद ने किया। आजकल फिरङ्ग रोग में संखिया घटित औषधियों का अधिक प्रयोग होता है। एलोपैथी का सालवर्सन भी संखिया का ही योग है। ये विषैली औषधियां जहां रोग को दबाती हैं

वहां अपना विष प्रभाव भी रखती हैं और कभी कभी रोगी को पंगु तक बना देती हैं। आयुर्वेदीय मत से प्रस्तुत रसकपूर हानिकर नहीं है यदि बुद्धिमानी से प्रयोग किया जाय।

आयुर्वेद में पारद का प्रयोग गंधक के योग से ही होता है। शुद्ध पारद एक भाग और शुद्ध गन्धक दो भाग दोनों को तब तक पत्थर के खरल में घोटते हैं जब तक पारद अदृश नहीं हो जाता। यह पारद की कज्जली है। इसे मूर्च्छित पारद भी कहते हैं। यह कज्जली सभी योगों में मिलाई जा सकती है और स्वतंत्र रूप से भी व्यवहार की जा सकती है। पारद में बहुत बड़ा गुण यह है कि अपने गुण के अतिरिक्त यह योगवाही है। योगवाही का अर्थ होता है जिस गुण वाली औषधि के साथ इसको मिलाया जाय उसके गुण को और बढ़ा दे। पारद के इसी गुण के कारण प्रायः सभी रोगों में इसका प्रयोग होता है। यह प्रबल वृष्य है। सभी धातुओं की वृद्धि करता है।

पारद का प्रयोग मूर्च्छित करके और भस्म करके दोनों प्रकार से होता है। भस्म के सम्बन्ध में यह याद रखना चाहिए कि पारद की भस्म कभी नहीं बनती। रससिंदूर और मकरध्वज आदि प्रसिद्ध पारद भस्में हैं परन्तु यदि इनमें से पारद अलग किया जाय तो शुद्ध और जीवित-पारद अलग होता है। पारद गंधक जारण कई प्रकार से होता है। समभाग पारद और गन्धक का जारण दो भाग गन्धक और एक भाग पारद का जारण किया जाता है। इसी प्रकार छः गुने गन्धक तक का जारण किया जाता है और आयुर्वेद के मत से इन सब जारणों के अलग-अलग गुण होते हैं। षड्गुण गन्धक जारित पारद से जो चन्द्रोदय या मकरध्वज तैयार होता है वह विशेष गुणकारी होता है। आधुनिक रसायन शास्त्री (पश्चिमी विद्वान्) षड्गुण गन्धक जारण के महत्व को स्वीकार नहीं करते। वे कहते हैं कि चाहे जितनी गन्धक का जारण किया जाय पारद में गंधक की निश्चित मात्रा का संयोग होता है फिर अधिक जारण करके परिश्रम और धन दोनों का अपव्यय क्यों किया जाय; परन्तु हम दोनों प्रकार के बने मकरध्वज के गुणों का अन्तर प्रत्यक्ष देखते हैं।

आयुर्वेद में लिखा है—

> समे गंधे तु रोगघ्नो द्विगुणे राजयक्ष्मनुत्।
> जीर्णे तु त्रिगुणे गंधे कामिनी दर्पनाशनः॥
> चतुर्गुणे तु तेजस्वी सर्व शास्त्र विशारदः।
> भवेत पंच गुणे सिद्धः षड्गुणे मृत्यु नाशनः॥

पारद में समभाग गन्धक जारण करने से वह सब रोगों का नाश करने वाला होता है। द्विगुण गन्धक जारित पारद राजयक्ष्मा को नष्ट करता है। त्रिगुणित गन्धक जारित पारद कामिनीदर्पनाशक है अर्थात् अपूर्व वाजीकरण है। चतुर्गुण गन्धक जारित पारद सेवन करने वाला तेजस्वी और सर्व शास्त्र विशारद हो जाता है। पंचगुण गन्धक जारित पारद सिद्ध होता है और षड्गुण गन्धक जारित पारद मृत्यु का नाश करने वाला होता है।

पारद के गुण के सम्बन्ध में आयुर्वेद का मत निम्न प्रकार है—

> सूतोऽशुद्धतया गुणं न कुरुते, कुष्ठाग्निमान्द्य क्रमीन्।
> छर्दी रोचक जाड्य दाह मरणं धत्ते मृणां सेवनात्॥
> शुद्धः स्यात् सकलामयौघ शमनो यो योगवाही मृतो।
> युक्त्या षड्गुण गन्ध युगवं हरो योगेन धात्वादि भुक्॥१॥
> मूर्च्छातो गदहृत्तथैव खगति दत्ते निबद्धोर्थदः।
> तद्भस्मामय वार्धकादि हरणं दृक् पुष्टि कान्ति प्रदम्॥
> वृष्यं मृत्यु विनाशनं बलकरं कान्ता जना नन्ददम्।
> शार्दूला तुल सत्व कृतक्रम भुजां योगानुसारी स्फुटम्॥२॥

अर्थात् अशुद्ध पारद गुण नहीं करता, यदि अशुद्ध पारद सेवन किया जाय तो कुष्ठ, अग्निमांद्य, कृमिरोग, वमन, अरोचक, जड़ता, दाह और मृत्यु तक हो जाती है। शुद्ध पारद सभी रोगों को शमन करने वाला है, योगवाही है, युक्तिपूर्वक षड्गुण गन्धक जारण द्वारा भस्म किया पारद रोगों का नाश

करने वाला है और धातुओं का भक्षण करने वाला भी औषधियों के योग से हो जाता है। मूर्च्छित पारद समस्त रोगों को नष्ट करता है, बद्ध पारद की गोली मुख में रखने से आकाश में उड़ने की शक्ति प्रदान करती है, पारद की भस्म वृद्धता आदि रोगों को दूर करती है, दृष्टि शक्ति पुष्टि और कान्ति प्रदान करती है, वृष्य है, मृत्यु का नाश करती है अर्थात् असाध्य रोगों को दूर करके मृत्यु से बचाती है। स्त्रियों को आनन्ददायक है, अर्थात् शुक्र आदि धातुओं को बढ़ाकर रमण में स्त्रियों को आनन्द देता है, और रसायन की विधि से सेवन करने से सिंह के समान पराक्रम देता है और योगानुसारी गुण प्रदान करता है।

होमियोपैथी में भी पारद का प्रयोग होता है और प्रायः सभी रोगों में होता है। केलोमेल और रस-कपूर का भी होमियोपैथी में प्रयोग होता है। स्फोटक, हड्डियों के रोग, प्रमेह, उपदंश, सर्दी, पामा, मसूड़ों, में फोड़े, अतीसार, प्रवाहिका, अजीर्ण, मूर्च्छा, ज्वर, कटिवात, उन्माद, मस्तिष्कावरण प्रदाह, शरीर में बदबू, आमवात, जीभ के रोग, छोटी माता, खांसी, वमन आदि रोगों में होमियोपैथी मत से प्रयोग होता है।

आयुर्वेद में सिंगरफ का प्रयोग भी खूब होता है इससे डमरू यन्त्र से पारद निकाला भी जाता है। कहीं-कहीं हिंगुल के साथ अलग से गंधक भी मिलाया जाता है जैसे मृत्युञ्जय रस में। यदि आयुर्वेद के मत से योगों की गणना की जाय और योगों का नामकरण किया जाय जिनमें पारद का प्रयोग होता है तो विस्तार बहुत बढ़ जायगा और सम्भवत् उतना लम्बा लेख सम्पादक जी छाप भी न सकेंगे। इसलिए हम ऐसा नहीं कर रहे हैं।

जितने भी कष्टदायक और असाध्य रोग हैं सबमें पारद का प्रयोग होता है। राजयक्ष्मा में रसों के अतिरिक्त अन्य औषधियों से प्रायः काम नहीं चलता। हेमगर्भ पोटली रस, मकरध्वज, चन्द्रोदय आदि सबमें पारद का योग है। प्रमेह की सर्वश्रेष्ठ औषधि वसन्तकुसुमाकर में भी पारद पड़ता ही है इसी से आप समझ सकते हैं कि असाध्य रोगों को दूर करने के लिए पारद से बढ़कर अन्य कोई औषधि नहीं है। ♦♦

: पृष्ठ ६२५ का शेषांश :

स्वयं विचार सकते हैं। इस संबंध में पोजेटिव चर्म रिएक्शन को हाइपर सेन्सिटिविटी तथा इम्यूनिटी के आधार पर विवेचन करना 'बाल का खाल' निकालना ही होगा। इस लिये प्रोफेसर होफ के शब्दों में मैं भी यही कहूंगा कि शायद बी० सी० जी० टीके के साथ सबसे बड़ी हानि यह है कई देशों में अबोध (लेमैन) व्यक्तियों में इसके प्रति अनुचित आस्था बंध गई है। (सर्वाधिकार सुरक्षित।) ♦♦

"पारा सारां ना मरै–गँधक तैल न देय !"

[आलोचना]

लेखक— स्वामी पारसनाथ. पो. गाँधीनगर. दिल्ली

हमारे देश में, यह उपरोक्त आधा दोहा परम प्रसिद्ध है। इसका अर्थ यह किया जाता है कि—'पारे की भस्म नहीं बन सकती और गन्धक से तैल नहीं निकल सकता। यह दोनों बातें असंभव हैं।'

परन्तु यह अर्थ नहीं—अनर्थ है!

अब इसका यथार्थ अर्थ अवलोकन कीजिये। पहिले इस चरण का अन्वय यों कीजिये—

'गंधक तैल न देय–पारा सारां ना मरै।'

अर्थ—यदि गन्धक का तैल डालकर खरल न करोगे तो परिपूर्ण रीति से पारे की भस्म तैयार नहीं होगी। सारां मानी–सही तौर पर।

यदि गन्धक का तैल तैयार हो जावे और उसके द्वारा पारद भस्म तैयार की जाय, तो वह भस्म दो कार्य करेगी—

१—अगर पान में, सुई की नोंक पर रखकर कोई व्यक्ति, पारदभस्म नित्य खावेगा तो वह 'अजर-अमर' हो जायगा, यानी न तो कभी बूढ़ा होगा और न कभी मरेगा।

२—शुद्ध तांवा गलाकर वह भस्म डाली जावे तो वेशक सोना बन जायेगा। 'जो रंगे माया–वही रंगे काया।'

माया (धन) और काया (अमर जीवन) के लिए पारद भस्म की आवश्यकता है।

सिंगरफ से पारा निकालना चाहिए और गौमूत्र द्वारा उसका संस्कार करना चाहिये।

गंधक का तैल

अगर किसी जड़ी बूटी की सहायता से गन्धक का तैल निकाला जायगा तो वह औषधि का काम दे सकता है, परन्तु रसायन का काम नहीं दे सकता। विना लाग-वेलाग तैल निकालने का विधान नीचे दिया जाता है।

दो आतशी शीशी लो। आमलासार गन्धक के चना बरावर टुकड़े करो और एक शीशी में भर दो। नीचे खाली शीशी रहे—ऊपर गंधक वाली रहे। दोनों के मुंह में–घोड़े की पूंछ के काले वाल-ठूंस दो। खूब कड़ाई के साथ वह डाट लगा दो। फिर दोनों शीशियों के मुंह पर कपड़ मिट्टी करके उसे तांवे के पतले तार से ऐसा कस दो कि भाप न निकले। नीचे वाली शीशी को किसी काठ या पत्थर के टुकड़े में गढ़ा करके जमा दो, ताकि वह प्रयोग करते समय, लुढ़क न सके। सीधी खड़ी रहे।

एक वड़ा वटुआ या तसाड़ी लो। यदि वह तांवे का पात्र हो तो अति उत्तम। मिट्टी का न हो–फूटने का अंदेशा रहता है।

उसमें एक सेर बाजरे का दलिया भरो। पाव भर गुड़ डालो। पानी से गले तक भरदो। फिर वे शीशियां, बीच में करदो। खाली शीशी नीचे रहेगी।

एकांत पत्थर का कोयला भरदो। वह बहुत ज्यादा न हो–कम भी न हो। दस-बारह सेर कोयला ठीक रहेगा। उसमें आग लगादो। जब आग तैयार हो जावे, उस समय रात के दस बज जाना चाहिए।

सोमवार का दिन हो, रात के १० बजे हों।

'ॐ नमः शिवायः' मंत्रोचारण करते हुए, वह पात्र, भट्टी पर जमाकर रखदो। प्रातः उठकर वर्तन

—शेषांश पृष्ठ ६४० पर।

शिरःशूल (HEAD ACHE)

डा० सन्तोषकुमार जैन आयुर्वेदाचार्य ए० एम० एस०, मैडिकल आफीसर, नजीराबाद (भोपाल)।

इस समय सारा संसार रोगों से भरा हुआ दिखलाई देरहा है। क्षय, हृद्रोग, विशूचिका, मलेरिया, आन्त्रिकज्वर, संग्रहणी आदि अनेक ऐसे भीषण रोग हैं जिनसे मनुष्य का बचना प्रायः असम्भव सा हो रहा है। इस प्रकार के रोगों से नित्य सैकड़ों हजारों की तादाद में मनुष्य काल के कराल गाल में कवलित हो रहे हैं और आश्चर्य यह है कि आधुनिक पाश्चात्य चिकित्सा विज्ञान की इस सरगर्मी में ज्यों ज्यों सभ्यता की वृद्धि हो रही है अति कठिन रोगों की चिकित्सा की जा रही है, त्यों त्यों अनेकानेक नए रोगों का झंझावात इस भारत वसुन्धरा पर उमड़ पड़ रहा है। कोई भी पाश्चात्य विज्ञान के अच्छे से अच्छे वेत्ता स्पष्ट और निश्चयात्मक नहीं कह सकते कि इन रोगों का कहां, कब और कैसे अन्त होगा।

आजकल के भारतवासियों में जो अनेक प्रकार के दुःखदायी और स्थायी रोग देखने में आरहे हैं उनमें से शिरःशूल (सिर का दर्द) भी एक है। यद्यपि कहने सुनने को यह रोग बहुत साधारण और छोटा जान पड़ता है परन्तु वास्तव में यह बहुत अधिक कष्टदायक होने के अतिरिक्त क्षय-पाण्डु आन्त्रिक ज्वर एवं मानसिक आदि अनेक भीषण रोगों का मूल समझना चाहिए और है भी यह सत्य। यदि प्रारम्भ में ही इसके कारणों लक्षणों उपद्रवों एवं इसकी चिकित्सा की ओर ध्यान नहीं दिया जाय तो आगे चलकर यह रोग बहुत ही घातक सिद्ध होता है।

कदाचित् हमारे बहुत से पाठकों को यह जान कर आश्चर्य होगा कि सिर का दर्द वास्तव में कोई स्वतंत्र रोग नहीं है जिसका यहां वर्णन करना उपयुक्त समझा जाय लेकिन जब मस्तिष्क में शरीर के किसी अंग का विष मज्जारज्जु या ज्ञान-तन्तुओं की सहायता से पहुंच जाता है तभी सिर में दर्द होता है और यह इस बात का सूचक है कि हमारे शारीरिक या मानसिक तत्वों में से कोई ऐसा तत्व है जिसका काम ठीक नहीं हो रहा है उसमें कोई बाधा या विकार उत्पन्न हो गया है। इस तरह यह आन्तरिक रोगों का ज्ञापक होने से स्वतंत्र मार्गदर्शक इसको जरूर समझा जाना चाहिए और हमारे पूज्य ऋषि महर्षियों ने इसका अपने अपने ग्रन्थों में स्वतंत्र रूप से वर्णन भी किया है जिसको ग्रन्थों में यथास्थान पढ़ लेना चाहिए।

यहां मैं संक्षेप में अपने पाठकों को जानने के लिए मस्तिष्क, मज्जारज्जु और ज्ञानतन्तुओं आदि के संबंध की कुछ मुख्य मुख्य बातों का प्राचीन एवं अर्वाचीन प्रणाली से वर्णन करता लेकिन लेख के विस्तार भय से फिर कभी आवश्यकतानुसार समझाने की चेष्टा करूंगा। यहां पर मेरा लेख लिखने का प्रयत्न करना शिरःशूल लक्षणों को समझाते हुए मुख्य चिकित्सा की ओर लक्ष्य दिलाना है, अतः आगे कारणों को विभिन्न दृष्टियों से पाठकों को समझाने का यत्न करूंगा।

आयुर्वेद दृष्टि से निदान और सम्प्राप्ति

महर्षि चरक ने अपने सूत्रस्थान के १७ वें अध्याय में शिरोरोग के निदान और सम्प्राप्ति का इस प्रकार वर्णन किया है कि—

'संधारणाद्दिवास्वप्नाद्रात्रौ जागरणान्मदात्।
उच्चैर्भाष्यादवश्यायात्प्राग्वातादतिमैथुनात् ॥
गन्धादसात्म्यादाघ्रातादजोधूमहिमातपात् ।
गुर्वम्लहरितादानादतिशीताम्बु सेवनात् ॥
शिरोभितापाद् दुष्टामाद्रोदनाद्वाष्पनिग्रहात् ।
मेघागमान्मनस्तापाद्देशकालविपर्ययात् ॥
वातादयः प्रकुप्यन्ति शिरस्यस्रं च दुष्यति ।
ततः शिरसि जायन्ते रोगा विविधलक्षणाः ॥

(१) मल मूत्रादि वेगों का अवरोध करने से—आंसुओं को रोकना ।
(२) दिन में शयन और रात्रि जागरण ।
(३) मद्य चायादि नशीली वस्तुओं का सेवन।
(४) जोर-जोर से चिल्लाना या रोना।
(५) अधिक ठण्डे पदार्थों का सेवन (रात्रि के ओस में सोने से)।
(६) सीधी वायु या पूर्व दिशा की वायु लगना।
(७) अत्यन्त काम भोगों का सेवन (बहुत अधिक सम्भोग करने से)।
(८) निकृष्ट या अप्रिय पदार्थों का सेवन करने या उनकी गन्ध लेने से।
(९) धूलि धूओं, शीत तथा धूप से।
(१०) गुरु, खट्टे, तथा मिर्च मसाले का अत्यधिक सेवन तथा अधिक ठंडा जल पीने से।
(११) शिर पर चोट आदि लगने अथवा शिर के अत्यन्त तपने से।
(१२) दुष्ट हुए आमरस (कच्चा आहार रस) से।
(१३) आकाश के मेघाच्छन्न होने से।
(१४) मन के संताप से।
(१५) देश एवं काल की विपरीतता से (देश एवं काल की विपरीतता से अभिप्राय यह है कि जिस जांगल आनूप आदि देश वा हेमन्त आदि काल से जो जो अपने अपने लक्षण हैं उनसे उस उस काल में विपरीत लक्षणों का होना) सिर में दर्द होना शुरू हो जाता है।

इन उपरोक्त कारणों से वातादि (वात-पित्त कफ) दोष प्रकुपित हो जाते हैं जिससे शिर में रक्त दूषित हो जाता है। उसके बाद शिर में विविध प्रकार के लक्षणों से युक्त रोग उत्पन्न हो जाते हैं, यही शिरःशूल के मुख्य कारण एवं सम्प्राप्ति है।

सामान्य कारण—

शिरःशूल के सामान्य कारणों में उन कारणों का समावेश है जिनका सम्बन्ध केवल मिथ्या आहार विहार आदि से है। जैसे—

(१) चाय या कहवा पीना—

परीक्षा से यह सिद्ध हुआ है कि चाय में टेनिन नाम का जो विषाक्त पदार्थ होता है वह शरीर में प्रविष्ट होकर रक्त को दूषित करता है। जब वह दूषित रक्त शिर में पहुँचता है तब सिर में दर्द शुरू हो जाता है। आधुनिक समय में हमारे भारतवासी अन्य देशवालों का अनुकरण करने में औरों की अपेक्षा बहुत आगे बढ़े चढ़े हैं। उन अनुकरणों में से एक प्रकार का अनुकरण चाय और कहवा आदि पीना भी है। हमारे पूर्वज इसका नाम तक नहीं जानते थे लेकिन आधुनिक सभ्यता की सूची में

हम लोगों ने चाय को प्रमुख स्थान देकर शरीर के साथ भारी अत्याचार किया है। भारत के अनेक प्रान्तों में तो चाय की इतनी प्रभुता बढ़ गई है कि किसी मित्र या मेहमानों के घर पर आने पर उनको चाय पिलाना अनिवार्य शिष्टाचार माना गया है। जब परीक्षा का समय आता है तब प्रायः विद्यार्थी लोग अपना अध्ययन रात्रि में बराबर करने के लिए चाय का हद से ज्यादा सेवन करते हैं और शरीर में अनेक प्रकार के स्वयं विकार उत्पन्न करके मुख्य रूप से शिरःशूल की बीमारी का परीक्षाफल के साथ साथ बहुत बड़ा सर्टिफिकेट अपने जीवन में मोल ले लेते हैं।

(२) मद्यपान करना—

मद्य पीने से आमाशय और आंतों में भीषण दाह उत्पन्न होता है जिससे पाचन शक्ति का बिल्कुल नाश हो जाता है। इसका मस्तिष्क और ज्ञान तन्तुओं पर बहुत विषाक्त प्रभाव पड़ने से शिरःशूल की बीमारी हो जाती है और बराबर सिर में दर्द रहने लगता है।

(३) नींद पूरी न लेना—

आजकल नाटक और सिनेमा आदि तमाशे देखने की चाल बहुत बढ़ गई है। दिन भर तो लोग काम धन्धा करते हैं और रात के समय मनोविनोद के लिए किसी थियटर या सिनेमा आदि खेलों में चले जाते हैं इससे उनके शरीर को पूर्ण विश्राम प्राप्त नहीं होता है और उनका मस्तिष्क बहुत अधिक पीड़ित होने से उनको बराबर सिर दर्द की बीमारी चालू हो जाती है।

मैं जब काशी विश्वविद्यालय एवं कलकत्ता यूनिवर्सिटि में था अपने साथियों को अधिकतर देखा कि आरम्भ में वे अपने अध्ययनकाल में सैर सपाटा किया करते थे और परीक्षा के ठीक समय पर रात्रि में अभ्यास करने के लिये चाय मद्यादि मादक द्रव्यों का सेवन करके बहुत अधिक मानसिक परिश्रम करते थे जिसका फल यह निकलता था कि उनका सारा किया कराया परिश्रम पर पानी फिर जाता और सबसे अधिक बहुमूल्य स्वास्थ्य भी नष्ट हो जाता था। कारण स्पष्ट है कि कृत्रिम उपायों से निद्रा रोकने के कारण मस्तिष्क की ओर रक्त बहुत प्रबलता से प्रवाहित होने लगता है, रक्तवाहिनियों पर बहुत अधिक दबाव पड़ने से उनकी कार्यक्षमता बहुत घट जाती है और सिर में भीषण रूप से पीड़ा रहने लगती है। इस तरह निद्रा पूर्ण रूप से न लेने से लोग अपने हाथों ही सिर दर्द मोल लेते हैं।

(४) दांतों के रोग—

आम लोगों के दांत साफ न करने और बहुत अधिक बीड़ी तमाखू चायादि पीने, भांग-गांजा पीने के कारण उनके दांतों पर मैल जम जाता है और दांतों में उस मैल की सड़न से कीड़े पैदा हो जाते हैं। ऐसे मैले दांतों से भोजन चबाने का काम लेना अपने आमाशय एवं आंतों में विष भरना है। इस विषैले प्रभाव से मुख में छोटे-छोटे घाव उत्पन्न हो जाते हैं। मसूड़े फूल जाते हैं। दन्तवेष्ट (*pyorrhoea*) पायरिया जैसा भीषण रोग पैदा होजाता है। इन सब कारणों से सिर में बराबर दर्द होना शुरू हो जाता है।

(५) मलावरोध एवं प्राकृतिक वेगों का अवरोध—

आजकल बहुत अधिक पढ़ने-लिखने एवं आफिस में काम करने वाले एवं शहरों में रहने वाले लोगों में प्रायः यह देखने को मिलता है कि वे प्राकृतिक नियमानुसार सुबह-शाम दोनों समय दस्त नहीं जाते हैं और आलस्यवशात् मूत्रादि का वेग बढ़ जाने पर भी उनका बराबर त्याग करते हैं, इस तरह त्वचा नाक (फुफ्फुस-मूत्रपिण्ड और आंतों) आदि उत्सर्जक इन्द्रियों की क्रियाएँ आवश्यकतानुसार ठीक समय पर न होने से आंतरिक विषों के बाहर निकलने में रुकावट हो जाती है। उन विषों का आंतों द्वारा शोषण होकर रक्त में विषाक्तता फैल जाती है और उस दूषित रक्त के मस्तिष्क में पहुंचने पर सिर में दर्द होना शुरू हो जाता है।

(६) आंखों पर बहुत जोर पड़ना—

पूरी नींद न लेने से, बराबर लगातार दिन-रात पढ़ने-लिखने से, महीन अक्षरों की किताबें अधिक पढ़ने से, पोषकतत्वों के सेवन न करने से आंखों पर काफी जोर पड़ता है जिससे मस्तिष्क बहुत जल्दी थक जाता है और सिर में दर्द होने लगता है।

(७) बालों की अस्वच्छता—

आजकल आधुनिक सभ्यता के अन्तर्गत सिर पर बहुत बड़े एवं अधिक बाल रखने की चाल तो बढ़ गई है लेकिन उनमें तैल न डालकर या सेन्टेड तैल डालकर और कंघी बराबर न करके उनकी रक्षा लोग नहीं कर पाते हैं। हमारे देश के जो गरीब लोग नित्य ठीक तरह से स्नान भी नहीं कर सकते, उनसे केशों की स्वच्छता की आशा रखना दुराशा मात्र है। जब केशों की ठीक-ठीक सफाई नहीं हो पाती है, तब उनमें बहुत सा मैल जम जाता है और जूं आदि कीड़े उत्पन्न हो जाते हैं। उनसे सिर में दर्द होना शुरू होजाता है।

(८) अशुद्ध और अस्वच्छ वायु—

प्राचीनकाल में लोग देहातों में रहना अच्छा समझते थे क्योंकि उन्हें वहां पर सदा शुद्ध और स्वच्छ वायु सेवन करने को एवं साफ-सुथरा रहने को मकान मिलता था। किन्तु आजकल कुछ ऐसी परि-स्थिति लोगों में उत्पन्न होगई है कि शहरों में रहना दिन पर दिन बढ़ता जारहा है। बड़े-बड़े शहरों में प्रायः देखा जाता है कि बहुत ही छोटी, तंग और अंधेरी कोठरियों में रहकर लोग बहुत कठिनता से समय बिताते हैं। वहां उन लोगों के रहने से एवं कल कारखानों की कोयलों की गैसों में श्वास-प्रश्वास लेने से अनेक प्रकार की विषाक्त गैसें पैदा होजाती हैं, जिनसे वहां की और उसके आस-पास के स्थानों की हवा बहुत खराब हो जाती है जिनसे स्वास्थ्य का काफी नुकसान होता है और शरीर में उनके कारण काफी विकार होकर सिर दर्द होना शुरू हो जाता है और आगे चलकर वे क्षय आदि भीषण रोगों से आक्रान्त हो जाते हैं।

विशेष कारण—

शारीरिक दृष्टि से सिर के दर्द नीचे लिखे चार कारण होते हैं—

(१) वात वाहिनियों पर दबाव पड़ना—इसमें स्वयं सिर के रोग आते हैं।

(२) वात वाहिनियों में अधिक रक्त पहुँचना—इसमें चाय, भांग, गांजा, मद्यादि मादक पदार्थ आते हैं।

(३) वात वाहिनियों में कम रक्त पहुँचना—इसमें धातु क्षय, पाण्डु, शोक, चिन्ता आदि कारण आते हैं।

(४) वात वाहिनियों में रक्त में मिले हुए दूषित पदार्थों का जा पहुँचना—इसमें उपदंश एवं आमवात जन्यविकार, यकृत्विकार, आन्त्रविकार गर्भाशय विकार और मूत्र पिण्डादि उत्सर्जक इन्द्रियों के विकार आते हैं।

प्रकार—

शिरःशूल एक शारीरिक विकार है, उसके ३ भेद किए जा सकते हैं जो कारणों के अन्तर्गत ही समझने चाहिए।

(१) स्थानिक में—मस्तिष्क का विकार–मस्तिष्का-वरण का दाह–सिर के किसी हिस्से में होने वाली वृद्धि जिससे आवरणादि पर दबाव पड़ता हो और सिर की अस्थियों के विकार आते हैं।

(२) परावर्त्त में–हृदय, फुफ्फुस, यकृत, मूत्रपिण्ड और गर्भाशय के विकार, मलावरोध, अग्निमांद्य और अजीर्ण आदि दोष आते हैं।

(३) प्रकृति-विशिष्ट अथवा दूषित रक्तजन्य में–पाण्डु रोग, ज्वर, विषमज्वर, विषी, आमवात और उपदंश रोग आते हैं।

उपरोक्त रूपेण सिरदर्द के तीन स्थूल विभाग हुए हैं किन्तु बड़े बड़े आधुनिक चिकित्सकों ने कारण के विचार से इसके नीचे लिखे दस विभाग किए हैं—

(१) रक्ताधिक्यजन्य (२) रक्तक्षयजन्य (३) कृमिजन्य (४) वातजन्य (५) पित्तजन्य (६) कफ-जन्य (७) उपदंश जन्य (८) आमवातजन्य (६) अग्निमांद्य ज्वर (१०) मस्तिष्क जन्य।

इसके अतिरिक्त स्थान के विचार से भी इसके चार भेद किए गए हैं जो इस प्रकार हैं–

(१) आंखों के ऊपर भंवों पर या दोनों भंवों के बीच में होने वाला।

(२) आंखों में होने वाला।

(३) मस्तिष्क में होने वाला।

(४) सिर के पिछले भाग में होने वाला।

आयुर्वेद दृष्टि से प्रकार और लक्षण

शिरोरोगों के प्रकारों को बताते हुए महर्षि चरक ने लिखा है कि—

"अर्धावभेदको वा स्यात्सर्वं वा रुज्यते शिरः।
प्रतिश्यायमुख नासाक्षिकर्ण रोगशिरोभ्रमाः॥"
अर्दितं शिरसः कम्पो गलमन्या हनुग्रहः।
विविधाश्चापरे रोगा वातादि क्रिमि संभवाः॥
पृथग्दृष्टास्तु ये पञ्च संग्रहे परमर्षिभिः।
शिरोगदांस्तांछृणु मे यथास्वैर्हेतुलक्षणैः॥

शिरोरोग अर्धावभेदक, वा सम्पूर्ण सिर में पीड़ा होना, प्रतिश्याय, मुख रोग, नासा रोग कर्णरोग, शिरोभ्रम, अर्दित, शिरःकम्प, गलग्रह, मन्याग्रह, हनुग्रह तथा अन्य वात आदि दोषों से एवं कृमियों से उत्पन्न होने वाले विविध प्रकार के रोग होते हैं किन्तु इन रोगों से पृथक् रोग संग्रहाध्याय (अष्टोदरीयनामक अध्याय) में जो पांच प्रकार के शिरोरोग कहे गये हैं उन प्रत्येक के जो कारण और लक्षण बताए गये हैं उन्हें निम्नोक्त प्रकार से जानना चाहिए–

(१) वातज शिरःशूल का निदान और सम्प्राप्ति—

"उच्चैर्भाष्यातिभाष्याभ्यां तीक्ष्ण पानात्प्रजागरात्।
शीतमारुतसंस्पर्शाद्व्यवायाद्वेग निग्रहात्।
उपवासादभिघाताद्विरेकाद्वमनादति।
वाष्पशोकभयत्रासाद् भारमार्गातिकर्षणात्॥
शिरोगता वैधमनीर्वायुराविश्य कुप्यति।
ततः शूलं महत्तस्य वातात्समुपजायते॥

उपरोक्त वातिक कारणों से शिर की धमनियों में वायु प्रविष्ट होकर कुपित हो जाती है। तदनन्तर उस वायु से सिर में महान शूल उत्पन्न होता है।

वातिक शिरोरोग के लक्षण—

निस्तुद्येते भृशं शंखौ घाटा संभिद्यते तथा।
भ्रुवोर्मध्यं ललाटं च तपतीवातिवेदनम्।
बध्येते स्वनतः श्रोत्रे निष्कृष्येते इवाक्षिणी।
घूर्णतीव शिरः सर्वं संधिभ्य इव मुच्यते॥
स्फुरत्यतिशिराजालं स्तम्भ्यते च शिरोधरा।
स्निग्धोष्णमुपशेते च शिरोरोगेऽनिलात्मके।

वातिक शिरोरोग में शंख स्थलों पर सुई चुभने की सी अतीव पीड़ा होती है। ग्रीवा का पिछला भाग विदीर्ण होता हुआ प्रतीत होता है। दोनों भौंहों के बीच का स्थल तथा ललाट संतप्त हुआ प्रतीत होता है और वहां अत्यन्त वेदना होती है। कानों में आवाजें होती हैं और वे अत्यन्त पीड़ा-युक्त होते हैं। आंखें बाहर की ओर खींची जाती हुई तथा सिर घूमता हुआ प्रतीत होता है। मालूम होता है कि शिर की संधियां खुला ही चाहती हैं। शिराओं में स्निग्ध एवं उष्ण आहार एवं औषध अथवा स्नेह और स्वेद आदि (सुख के कारण) सात्म्य होते हैं। इन्हीं लक्षणों से तथा उपशय से हमें शिरोरोग के वातिक होने का निश्चय कर लेना चाहिए। यहां पर मैंने शिरोरोग का वर्णन शिरःशूलार्थ में शुरू किया है वह वास्तव में ठीक है क्योंकि रुक् या रोग शब्द का प्रधान अर्थ पीड़ा है अतः यहां शिरोरोग से सिर के दर्द से ही मतलब लेना चाहिए।

(२) पैत्तिक शिरःशूल का निदान और लक्षण—

कट्वम्ल लवणक्षार मद्यक्रोधातपानलैः।
पित्तं शिरसिसंदुष्टं शिरोरोगायकल्पते॥
दह्यते रुज्यते तेन शिरः शीतं सुखायते।
दह्यते चक्षुषी तृष्णाभ्रमः स्वेदश्चजायते॥

मरिच आदि कटु, खट्टे, लवण, क्षार, चाय मद्यादि पदार्थों के सेवन करने से क्रोधादि करने से, अग्नि से दुष्ट हुआ पित्त शिर:शूल को पैदा करके आंखों में दाह उत्पन्न कर देता है, इस तरह पैत्तिक शिर:शूल वाले रोगी में तीव्र दर्द होता है और वह शीतलता को चाहता है, उसे तृष्णा लगती है—चक्कर और पसीना आता है।

(३) श्लैष्मिक शिर:शूल का निदान और लक्षण—

'आस्या सुखैः स्वप्न सुखैर्गुरुस्निग्धातिभोजनैः।
श्लेष्मा शिरसि संवृद्धः शिरोरोगायकल्पते॥
शिरोमन्द रुजं तेन सुप्तस्तिमितभारिकम्।
भवत्युत्पद्यते तन्द्रा तथाऽऽलस्यमरोचकः॥"

अत्यधिक सुखपूर्वक बैठे-लेटे या सोये रहने से, गुरु, स्निग्ध और अति भोजन करने से शिर में कुपित हुआ श्लेष्मा सिर में हल्की-हल्की वेदना पैदा करता है उससे सिर बोधरहित होजाता है। वह गीले कपड़े से आच्छादित की तरह औरो भार से लदा हुआ सा प्रतीत होता है और रोगी को तन्द्रा आलस्य और अरुचि होती है।

(४) त्रिदोषज शिर:शूल का निदान और लक्षण—

वाताच्छूलं भ्रमः कम्पः पित्तदाहो मदस्तृषा।
कफाद् गुरुत्वं तन्द्रा च शिरोरोगे त्रिदोषजे॥

त्रिदोषज शिर:शूल में वात से शूल, भ्रम और कम्प; पित्त से दाह, मद तथा प्यास; कफ से गुरुता और तन्द्रा होती है।

(५) क्रिमिजन्य शिर:शूल का निदान और लक्षण—

तिल क्षीर गुडाजीर्ण पूति संकीर्ण भोजनात्।
क्लेदोऽसृक्कफमांसानां दोषलस्योपजायते॥
ततः शिरसि संक्लेदात्क्रिमयः पापकर्मणः।
जनयन्ति शिरोरोगं जाता वीभत्स लक्षणम्॥

निस्तुद्यते यस्य शिरोतिमात्रं,
संभक्ष्यमाणं स्फुरतीवचान्तः।
घ्राणाच्च गच्छत्सलिलं सपूयं,
शिरोऽभितापः क्रमिभिः सघोरः॥

तिल, दूध, गुड़ इनके अत्यधिक सेवन से, भोजन पर भोजन कर लेने से, सड़े गले द्रव्यों के एवं वीर्यादि विरुद्ध बहुत से द्रव्यों को एकत्र मिलाकर खाने से बहुत दोषयुक्त पुरुष के रक्त, कफ तथा मांस में क्लेद (सड़ांद-सड़ने से गीलापन) उत्पन्न होता है, उससे पापकर्मा पुरुष के शिर में क्रिमि पैदा होते हैं और वे घृणित लक्षणों से युक्त शिर:शूल को उत्पन्न करते हैं। उससे नाक द्वारा रक्त तथा पूय आदि की प्रवृत्ति होती है। शिर में सूइयों के चुभने की सी तीव्र व्यथा होती है। शिर में किसी के रींगने का अनुभव होता है। यह प्रकार अत्यन्त दुःख-दायी है यहां तक कि जल्दी ही प्राण को हरण करने वाला है।

कुछ आचार्यों ने इन पांच प्रकारों के सिवाय सूर्यावर्त्त अनन्तवात-शंखक और अर्धावभेदक, इस प्रकार इस शिर:शूल के नौ प्रकार माने हैं और लक्षण बतलाये हैं कि—

(६) सूर्यावर्त्त में—

सिर के दाहिने या बायें किसी एक पार्श्व में एक भौंह और एक आंख में सूर्योदय के समय धीमी-धीमी पीड़ा शुरू होती है, और ज्यों-ज्यों सूर्य ऊपर चढ़ता है, त्यों-त्यों वेदना भी तीव्र होती जाती है। फिर जब सूर्य ढलने लगता है तब वेदना भी कम होने लगती है और सन्ध्या समय शिर:शूल बन्द हो जाता है।

(७) अनन्तवात में—

गरदन के पिछले भाग से पीड़ा शुरू होकर आंखों और भौंवों पर पहुँचती है। गरदन जकड़ी हुई सी मालुम देती है। आंखों की ज्योति नष्ट होती हुई जान पड़ती है।

(८) शंखक में—

आंखों में कुछ सूजन आ जाती है और वे लाल हो जाती हैं। भीषण दाह और पीड़ा होती है। गले में सूजन होने के कारण तीन दिन के अन्दर रोगी का अन्त हो जाता है।

(६) अर्धावभेदक में—

दिन रात आधे मस्तक में कुल्हाड़ी मारने जैसी तीव्र पीड़ा रहती है। यदि यह वेदना अधिक बढ़ जाती है और बहुत समय तक रहती है तो इससे मनुष्य अन्धा या बहरा हो जाता है।

यह तो हुआ इस शिरःशूल का आयुर्वेदानुसार विवेचन। अब संक्षेपेण चिकित्सा शास्त्र के अनुसार मानव शरीर क्रिया विज्ञान के आधार पर लक्षणादि विवेचन करता हूं। वह निम्नोक्त है—

(१) रक्ताधिक्यजन्य शिरोवेदना (*Congestive Headache*)—प्रायः मध्यम अवस्था के लोगों में रक्त की अधिकता होती है। जब ऐसे लोग तमाखू, भांग, गांजा, चाय, कहवा या मद्य आदि पीते हैं, या अधिक व्यायाम, भोजन, परिहास, संताप या चिन्ता आदि करते हैं, तो कभी कभी उनके सिर में अधिक रक्त पहुँचने लगता है, जिसके कारण सिर के भीतरी भाग पर दबाव पड़ता है और सारे सिर में दर्द होने लगता है। इसमें मस्तिष्क की सारी शिराएं उठी या फूली हुई दिखाई पड़ती हैं और धमनियां कुछ जोर से फड़कने लगती हैं। ऐसी अवस्था में सोते, खांसते या थोड़ा परिश्रम करने पर भी सिर दर्द और बढ़ जाता है। कभी-कभी ऐसा होता है कि रक्ताशय या फुफ्फुस आदि अवयवों के अधिक रोगी होने के कारण भी मस्तिष्क की ओर अधिक रक्त जाने लगता है जिससे सिर में दर्द होता है। युवावस्था में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों में यह बात अधिकता से होती है। आंखों में रक्त उतरा हुआ दिखाई पड़ता है और सिर को छूने में भी कष्ट होता है।

(२) रक्तहीनताजन्य शिरःशूल (*Anaemic Headache*) (*Low Blood pressure*)—

धातुक्षय, पांडु, रक्तस्राव आदि रोगों और शोक तथा चिन्ता से सिर में जितना रक्त रहना चाहिए, उतना नहीं रह जाता और जिन द्रव्यों से रक्त बनता है उनकी मात्रा में कमी आ जाने से भी सिर में दर्द होने लगता है। इसमें चेहरा पीला पड़ जाता है। प्रायः सिर के अगले भाग में मन्द-मन्द दर्द बराबर बना रहता है। रोगी चिड़चिड़ा बन जाता है, उसे चक्कर आने लगते हैं। रात के समय बराबर नींद नहीं आती है। हृदय की गति तीव्र हो जाती है, नाड़ी मन्द पड़ जाती है।

(३) यकृत रोग और अपचन जन्य शिरोवेदना

(*Billious & gastric-headache*)

यदि यकृत में किसी प्रकार का रोग या विकार उत्पन्न होजाता है, तब मूत्रसत्त्व (*uria*) का बनना रुक जाता है और मूत्र-पिण्ड (*kidney*) की स्वाभाविक क्रिया में बाधा पड़ जाती है, इसके कारण मूत्रपिण्ड में मूत्र सत्त्व का विसर्जन नहीं होकर उसका रक्त में ही परिभ्रमण होने लगता है और सिर में कभी मन्द और कभी तीव्र शूल होने लगता है। इसी तरह यकृत् से जब पित्त वियोजन का कार्य ठीक तौर से नहीं हो पाता है तब वह पित्त रक्त में ही मिल जाता और सिर में दर्द होने लगता है। यह दर्द बहुत तेज होता है और किसी एक आंख की ओर होने लगता है। यदि यकृत् में किसी प्रकार का विकार होता है और गरिष्ठ पदार्थों का भोजन कर लिया जाता है तब उनसे अपक रस बनकर रक्त में मिल जाता है और मस्तिष्क में पहुंचकर वातवाहिनियों में प्रकोप पैदा करता है, इससे शिरोवेदना शुरू होजाती है और तीव्र श्वास हिचकी मिचली तथा नाड़ी की गति में अन्तर होने लगता है।

(४) दूषित रक्तजन्य शिरःशूल (*Syphilatic & Rheumatic headache*)—

जब मनुष्य को गर्मी सुजाक आमवात आदि दूषित रक्तजन्य रोग होते हैं तब मूत्र में यूरिक एसिड (*uric acid*) बढ़ जाती है। वह रक्त में मिलकर चक्कर लगाने लगती है और मस्तिष्क में पहुंचकर वहां की सूक्ष्म पेशियों को कष्ट पहुंचाती है और सिर में दर्द होने लगता है।

(५) रक्त की गति में प्रतिबन्ध होने से शिरोवेदना (*Nervous headache*)—

जब मस्तिष्क के किसी भी भाग की ओर बहने वाले रुधिर-प्रवाह में चोट लगने से, भारी वजन सिर पर बहुत देर तक उठाने से, वात वाहिनियों पर उसका दबाव पड़ने से अजीर्ण होने से शरीर की नैसर्गिक क्रिया ठीक नहीं होने से सिर में कहीं पर शोथ (*inflamation*) होने से और वात-वाहिनियों में वात का उल्टा प्रवाह होने से, रुकावट पैदा हो जाती है इससे ज्ञानतन्तुओं सम्बन्धी विकार उत्पन्न होने से तीव्र शिरःशूल होने लग जाता है इसीलिए इसको वातजन्य (*nervous*) शिरःशूल कहा है।

(६) गर्भाशय-अण्डकोष और मूत्रपिण्ड में दाह या क्षोभ होने से शिरःशूल (*Reflexation headache*)-

यदि इन अङ्गों में किसी भी कारण से दाह या क्षोभ उत्पन्न हो जाता है तब उन अङ्गों का दोष रक्तवाहिनियों और वात वाहिनियों द्वारा ज्ञान तन्तु मज्जारज्जु और मस्तिष्क आदि भागों तक पहुँच जाता है और उसके कारण सिर में दर्द होने लगता है। यह दर्द सिर के ऊपरी और पिछले भागों में कभी कम और कभी अधिक होता है।

(७) मानसिक और शारीरिक श्रमजन्य शिरःशूल—

अधिक शारीरिक श्रम करने, विशेष मानसिक व्यथा होने, अधिक पढ़ने, लिखने और मस्तिष्क से बहुत अधिक काम लेने से स्नायु और ज्ञानतन्तु बहुत शिथिल हो जाते हैं और उनमें थकावट आजाती है। इसके परिणामस्वरूप रुधिर का परिभ्रमण भी मन्द पड़ जाता है और मस्तिष्क तक पूरा-पूरा रक्त नहीं पहुँचने के कारण सिर में दर्द होने लगता है। जब शरीर की शक्ति का व्यय शरीर में उत्पन्न होने वाली शक्ति की अपेक्षा अधिक होता है, तभी इस प्रकार का दर्द होता है। यह दर्द सिर के पिछले भाग और गरदन में मन्द-मन्द और अधिक कष्टदायक होता है।

(८) सूचनाजन्य—

कभी-कभी ऐसा होता है कि किसी पदार्थ का उपयोग करने से क़ै हो जाती है और उस पदार्थ की ओर से दिल हट जाता है। फिर जब कभी उस पदार्थ का स्मरण आता है अथवा कभी वह सामने आजाता है, तब उसके कारण सिर में दर्द होने लगता है। जिन लोगों का मन दुर्बल और अशक्त होता है, आत्म-संयम की शक्ति बहुत कम होती है, वे अपने मन पर किसी प्रकार का वश नहीं रख सकते। इसका परिणाम यह होता है कि ज्ञान तन्तुओं में विकार आजाता है और शिरःशूल होने लगता है। यह दर्द कभी-कभी तीव्र स्वरूप का होता है।

(९) *Throbbing headache*—

शरीर में बहुत तंग और कसे हुए कपड़े पहनने, गले में कड़ा और कसा हुआ कालर या टाई आदि पहिनने से शरीर पर दबाव पड़ता है जिससे रक्त का ठीक ठीक संचालन नहीं होता है। इससे हृदय में जितना रक्त सिर में पहुंचना चाहिए नहीं पहुंचता। इसमें सिर की नाड़ियां फड़कती हैं और यह दर्द उसी प्रकार होता है जिस प्रकार फोड़े आदि में रह रह कर टीस या टपक होती है, इसी लिये इसको *throbbing headache* कहते हैं।

(१०) अर्ध-कपारी (*Intermittant headache*)—

मस्तिष्क में जो अनेक वातवाहिनियां निकली हैं, उनमें से पांचवी वातवाहिनी (*Trigiminal nerve*) सिर के दोनों ओर गई है जिसकी आगे चलकर और भी तीन शाखाएँ हुई हैं। यह अधिक सर्दी लगने, जागने, लिखने, बहुत परिश्रम करने, बहुत अधिक औषधियों का सेवन करने और अधिक चाय कहवा मद्य मदिरा आदि पीने से क्षुब्ध होजाती और शिर के दाहिने या बायें किसी एक हिस्से में दर्द होने लगाता है। इसी लिए इसको अर्ध-कपारी या आधा सीसी आदि कहते हैं। इसके दो मुख्य कारण हैं, प्रथम–मस्तिष्क के विकार के कारण इसके भी

दो उपभेद हैं एक में तो दिन और रात आधे सिर में दर्द रहता है और दूसरे में प्रातःकाल से दोपहर तक जैसे-जैसे सूर्य ऊपर की ओर चढ़ता है वैसे-वैसे सिर में तेज दर्द होता है और सूर्य जैसे जैसे दोपहर बाद नीचे ढलता है वैसे वैसे सिर का दर्द कम होने लगता है और संध्या के समय एक दम बन्द हो जाता है। द्वितीय मज्जा तन्तुओं की एक शाखा के विकार के कारण। इसमें जी मिचलाने लगता है शिर फटता हुआ जान पड़ता है। इस तरह संक्षेप से मैंने यथाशक्ति पाश्चात्य विज्ञानानुसार शिरःशूल के प्रकारों एवं लक्षणों का वर्णन किया है, इसमें प्राचीन एवं अर्वाचीन विज्ञान के मतानुसार शिरःशूल के कारणों और लक्षणों में कोई भी विशेष अन्तर नहीं है। ऐसी इस लेख में आपको पठन और मनन करने योग्य सामग्री अवश्य मिलेगी। यदि इसमें कोई भेद हो और किसी विज्ञान वेत्ता को अपने दिमाग से विशेष जानकारी कराने की सूझ हो तो अवश्य ही धन्वन्तरि जैसे आयुर्वेद जगत में प्राण फूंकने वाले और प्राचीन अर्वाचीन विज्ञान का समन्वयात्मक दृष्टि से सन्तुलित ज्ञान देने वाले और चिकित्सा क्षेत्र में नव-जागृति फैलाने वाले पत्र में प्रकाशनार्थ भेजने की मेरी ओर से विनम्र प्रार्थना है।

मैं आगे के लेख में शिरःशूल की विस्तृत चिकित्सा पर प्रकाश डालूंगा कृपाकर आगे के अंक में पढ़ने की प्रतीक्षा करें। ♦♦

: पृष्ठ ६३१ का शेषांश :

उतारो और खोल डालो। फिर उसे ठण्डा होने दो अगर बाजरे का दलिया जल कर कड़ा हो गया हो तो पानी डाल उसे ढीला करो और ठण्डा होने पर सावधानी के साथ दोनों शीशियां बाहर निकाल लो।

नीचे वाली शीशी में--शहद जैसा गाढ़ा और सुर्ख तैल भरा होगा। ऊपर वाली शीशी खाली होगी। उस तैल को छान लो। बस यही गन्धक का शुद्ध तैल है। यही तैल डालकर उस पारे को खरल करो। पारद भस्म तैयार हो जायगी।

एक बूंद गन्धक का तैल गुनगुने दूध में डालकर पीने से रक्त शुद्ध होता है, खून बढ़ता है, दाद-खाज खुजली और कोढ़ का सत्यानाश होता है। गन्धक में थोड़ा तैल नहीं होता है। गन्धक में तैल के सिवा और कुछ है ही नहीं। तोला भर गन्धक में तोला भर ही तैल तैयार होता है। यह प्रयोग पटने में सन् १९२५ ई० में मैंने खुद करके देखा है। परीक्षित चीज है।

बाबा हरीशंकर दास जी का रसायन सम्बन्धी एक लेख 'धन्वन्तरि' की एक विगत संख्या में प्रकाशित हुआ था। वह किसी सहयोगी की तलाश में हैं। यदि मेरा यह लेख उनकी नजर से गुजरे तो उनको चाहिए कि मेरे नाम, अपने पते का पत्र भेज मुझसे पत्र-व्यवहार करने की कृपा करें। ♦♦

औपसर्गिक अणुखण्डीय श्वसनकज्वर

(Secondary Broncho-Pneumonia)

लेखक— कविराज एस० एन० बोस एल. ए. एम. एस. भिषग्रत्न, इन्दौर।

इस प्रकार में प्रथमतः प्रदाह स्थूलतर श्वासनलिकाओं में उत्पन्न होकर फुफ्फुस कोषाणुओं तक संक्रमित हो सकता है, अधिकांश क्षेत्र में ही इस प्रकार के श्वसनक ज्वर में विषसंक्रमण अथवा पूयःसंचार नहीं होता है, श्लेष्मोल्वण प्रदाह में ही सीमित रहता है।

निदान—विप्रकृष्ट - औपसर्गिक श्वसनकज्वर किसी भी उम्र में हो सकता है—परन्तु बाल्य वृद्धावस्था में ही साधारणतः इसका प्रकोप अधिक दिखाई पड़ता है। अधिकांश क्षेत्र में यह व्याधि रोमान्तिका, कुकुर खांसी, श्लेष्मकज्वर आदि व्याधि के उपसर्ग के रूप में प्रकट होती है। आन्त्रिक व लघु आन्त्रिक ज्वर, रोहिणी, ग्रन्थिक, लोहित ज्वर आदि में भी यह व्याधि उपसर्ग के रूप में हो सकती है। कभी-कभी यह व्याधि वृद्ध व दुर्बल रोगियों में अन्तिम उपसर्ग के रूप में आकर मृत्यु का कारण बन जाती है, कभी कभी हृद्रोग में, वृक्करोग में तथा वात व्याधि में भी खतरनाक उपसर्ग के रूप में प्रकट होती है। शरीर के किसी भी आभ्यन्तर भाग में पूयःसंचार के कारण, यथा पूतिकर्ण, उण्डुक प्रदाह में अथवा स्त्रियों में बीजनलिका के प्रदाह में पूयःसंचार मस्तिष्क व्रण आदि में फुफ्फुस में रोग जीवाणुओं के संक्रमण से इस व्याधि का आक्रमण हो सकता है।

आयुर्वेदीय मतानुसार उपरोक्त व्याधियों में वात-श्लेष्मवर्द्धक आहार विहार, शैत्य सेवा आदि के कारण इस व्याधि का प्रकोप होता है। आयुर्वेदोक्त वात-श्लेष्मोल्वण सन्निपात सभी प्रकार के श्वसनक ज्वर की उत्पत्ति का कारण माना जाता है, और दोष संचय-प्रकोप प्रसार व परिमाण के तारतम्य के अनुसार आन्त्रिक विकृति में तथा लक्षण चिन्हों में अन्तर आता है।

सन्निकृष्ट निदान—पाश्चात्य खण्डीय श्वसनक ज्वर के उत्पादक सभी रोग जीवाणु इस प्रकार के श्वसनक ज्वर के भी कारण बताये गए हैं।

विकृति विज्ञान—इस व्याधि में सूक्ष्म श्वास नलिकाओं में से प्रदाह फुफ्फुस-कोषाणुओं में तीन प्रकार से प्रसारित हो सकता है। (१) श्वासनलिका स्राव के कारण आवद्ध हो जाने से उससे संश्लिष्ट फुफ्फुस खण्ड वायुशून्य होकर संकुचित हो जाता है। (२) प्रदाह श्वासनलिकाओं से फुफ्फुसकोषाणुओं में संक्रमित होकर उक्त खण्ड में दोषावस्था उत्पन्न कर सकता है। (३) कभी कभी पार्श्ववर्त्ती फुफ्फुस कोषाणुओं में अतिरिक्त वायु के दबाव के कारण प्रसारित होकर तरुण फुफ्फुस विस्फारण की अवस्था उत्पन्न हो सकती है। फुफ्फुस के आकार में शायद ही कुछ परिवर्त्तन होगा, परन्तु फुफ्फुस का वहिस्तल असमान तथा रंग बिरंगा बन जाता है। कुछ अंश बाहर की ओर निकला हुआ तथा दोषावस्था के कारण रक्तिम श्याव वर्ण तथा कुछ अंश अथवा मध्यवर्ती अंश स्वाभाविक अथवा हल्का गुलाबी रंग का तथा विस्फारित सा प्रतीत होता है। प्रदाह फुफ्फुस के ऊपरितल तक पहुँच जाने से फुफ्फुस-धरा कला में मामूली रूक्षता अथवा ज्योति हीनता नजर आ सकती है, परन्तु साधारणतः कलान्तराल में जलीय अथवा पूयः स्राव दिखाई नहीं पड़ता है। फुफ्फुस के आक्रान्त अंश के कटने से सूक्ष्म श्वास-नलिका व फुफ्फुस कोषाणु एक प्रकार के स्राव से भरण हुए मिलते हैं जिसमें काफी संख्या में श्वेतरक्त कणिका तथा विकृत अन्तःकोष के साथ अल्पसंख्या में लाल रक्त कणिका परन्तु अत्यल्प जालिका अथवा बिलकुल अनुपस्थित रहती है।

पूर्वरूप —

शिशुओं में तरुण श्वास-कास ज्वर के परिणाम

स्वरूप अथवा वृद्धों में कैशिक-श्वासनलिकाओं के प्रदाहजनित अणुखण्डीय श्वसनक ज्वर के पूर्वरूप साधारण श्वास कास ज्वर के मामूली लक्षणों के रूप में प्रकट होते हैं जिसमें ग्लानि, अंगमर्द, मामूली ज्वर ताप वृद्धि तथा शुष्क अथवा सकफ कास ही प्रधान हैं।

रूप—पूर्वोक्त मानसिक रोग का अणुखण्डीय श्वसनक ज्वर के रूप में परिणत होना-अर्थात् श्वास नलिकाओं के प्रदाह का उनके अन्तिमांशों में तथा वायु कोषों में प्रसारित होना ज्वर ताप में अकस्मात् वृद्धि, अत्यधिक दुर्बलता, प्रश्वास में वृद्धि तथा शुष्क, रूक्ष अविराम कास से प्रतीत होता है। शिशुओं में वासापुट-विस्फारण, पसली चलना तथा श्वसनक ज्वर का द्रुत तथा अगम्भीर श्वास प्रश्वास आदि नजर आता है। रोगी का मुख-नख आदि श्यामाभा-युक्त, नाड़ी गति द्रुत, १२० अथवा ततोधिक और श्वासगति ५०-६० तक प्रति मिनट होजाती है। शिशुओं में रोग चिन्ह साधारणतः प्राथमिक अणुखण्डीय श्वसनक ज्वर के करीब करीब समान ही होते हैं—परन्तु श्वासध्वनि रूक्ष तथा असम्पूर्ण सुनाई पड़ती है, अधिकांश क्षेत्रों में तीव्र श्वासनलिका ध्वनि सुनाई नहीं पड़ती, कभी-कभी विशिष्ट अंश में ही सुनाई पड़ सकती है। वृद्ध रोगियों में अस्थिरता, श्यामाभा आदि के साथ प्रलाप हो सकता है और दिन प्रति दिन खांसी कम होती जाती है, रोगी क्रमशः निस्तेज तथा तन्द्रा ग्रस्त होने लगता है, प्रथमतः रोगी बैठा रहा करता था—क्योंकि लेटने से श्वास कष्ट ज्यादा होता था—परन्तु बाद में रोगी लेटा हुआ ही पड़ा रहता है। ये सब अरिष्ट लक्षण ही माने जाते हैं जो कि श्वास संस्थान की कार्यक्षमता के द्योतक हैं। रोगी परीक्षा में तरुण श्वास कास ज्वर के चिह्न जैसे कर्कश अथवा दुर्बल श्वासध्वनि, मृदु अथवा वंशीध्वनि, सूक्ष्म चिटचिटध्वनि अथवा बुद्बुद्-ध्वनि, विशेषतः फुफ्फुस तल में, आदि परिलक्षित होते हैं। बीच बीच में सौरंगिक ध्वनि संकुल अंश में प्रवृद्ध वाचिक तरंग ध्वनि भी सुनाई पड़ सकती है।

अन्य प्रकार के अणुखण्डीय श्वसनक ज्वर में साधारणतः उपरोक्त सभी लक्षण प्राथमिक रोग काल में अधिकतर धीरे धीरे प्रकट होते हैं। किसी भी तरुण व्याधि या ज्वर की किसी अवस्था में कास, कफनिर्गम, श्वास कष्ट, उरोवेदना के साथ अविसर्गी ज्वर देखने से औपसर्गिक श्वसनक ज्वर का सन्देह होना चाहिये। उपरोक्त लक्षणों के अलावा सभी प्रकार के औपसर्गिक श्वसनक ज्वर में अरुचि पिपासा, जिह्वास्यशोष, मूत्राल्पता तथा रक्तमूत्रता आदि लक्षण प्रकट होते हैं। मूत्र परीक्षा में मामूली लसीका स्राव सचराचर मिलता है- परन्तु युरेट भी मिल सकता है।

उपसर्ग व परिणति—इस व्याधि में उपसर्ग साधारणतः कम ही प्रगट होते हैं। फुफ्फुसधराकलान्तराल में स्राव संचय हो सकता है—और साधारणतः वह स्राव पूयःज होता है। खण्डीय श्वसनक ज्वरोक्त उपसर्ग भी हो सकते हैं।

इस व्याधि की परिणति में फुफ्फुस में तन्तुमय परिवर्त्तन अधिकतर पाया जाता है—जिसके फलस्वरूप बाद में फुफ्फुस में वातोत्फुल्लता (*Emphysema*) होजाती है। इसके अलावा साधारणतः अणुखण्डीय श्वसनक ज्वर की परिणति में क्षय रोग का आक्रमण भी बताया जाता है, परन्तु अधिकांश क्षेत्र में चाहे वह अणुखण्डीय श्वसनकज्वर क्षयरोग जीवाणुओं से ही उत्पन्न हुआ होगा अथवा फुफ्फुसों में उस रूप में क्षय रोग का केन्द्र रहा होगा—जिससे वह रोग फैल गया होगा।

रोगनिर्णय—रोमान्तिका, कुकरखांसी आदि पूर्वोक्त व्याधियों में श्वसनक ज्वरोक्त लक्षण व चिह्न प्रकट होने से रोग निर्णय सरल हो जाता है। क्षय रोग से भेद ज्ञान के लिये कफ की परीक्षा एकमात्र उपाय है, परन्तु अणुखण्डीय श्वसनक ज्वर में तीन हप्ते से अधिक दिन तक ज्वरताप में वृद्धि रहने से

अथवा रोग लक्षण व चिह्नों में विशेष उन्नति न देखने से क्षय रोग का सन्देह करना ही चाहिये। श्वास कास ज्वर में ज्वर ताप की स्वल्पता, स्वल्प-स्थायित्व, रोग चिह्नों की विभिन्नता तथा फुफ्फुस में दोषावस्था का अभाव रोग निर्णय सरल बना देता है, फुफ्फुस कलान्तराल में जलीय अथवा पूयः स्रावयुक्त प्रदाह में वाचिक तरंग तथा हृत्स्पन्दन स्थान में परिवर्त्तन रोग निर्णय में सहायता कर सकता है। विशेष सन्देह स्थल में सूचीवेध के सहारे कलान्तराल में स्राव के लिये अन्वेषण के फल से सन्देह निराकरण करना चाहिये।

रोग प्रगति—औपसर्गिक अणुखण्डीय श्वसनक ज्वर अथवा प्राथमिक अणुखण्डीय श्वसनक ज्वर की अपेक्षा रोग भोग काल दीर्घतर होता है–साधारणतः २-३ सप्ताह से लेकर २-३ महीने तक भी हो सकता है, परन्तु दीर्घतर क्षेत्रों में क्षय रोग का सन्देह होना ही स्वाभाविक है। इसमें ज्वरमोक्ष प्रायशः अदारुण होता है और रोगी जीर्ण-शीर्ण, दुर्बल पाण्डुवर्ण होजाता है—जिससे स्वास्थ्य लाभ में अधिक विलम्ब होता है।

साध्यासाध्यत्व निर्णय—साधारणतः औपसर्गिक अणुखण्डीय श्वसनक ज्वर एक खतरनाक व्याधि मानी जाती है। व्याधियों के उपसर्ग के रूप में–विशेषतः रोमान्तिका, कुकरखांसी, श्लेष्मक ज्वर, श्वास कास ज्वर आदि के उपसर्ग के रूप में यह व्याधि असंख्य मृत्यु का कारण बन जाती है। दुर्बल, वृद्ध तथा शिशुओं में यह व्याधि साधारणतः खतरनाक ही होती है। प्रलाप, चेहरे पर श्यामाभा श्वासकष्ट तथा १५० प्रति मिनट के ऊपर नाड़ी गति विपदात्मक लक्षण माने जाते हैं। वृद्धों में तन्द्रा, मोह, कास निवृत्ति आदि विपज्जनक अवस्था का परिचायक है।

चिकित्सा—इस व्याधि की चिकित्सा खण्डीय श्वसनक ज्वर के ही समान है—पार्थक्य केवल इतना ही है कि अणुखण्डीय श्वसनक ज्वर में साधारणतः अदारुण ज्वर मोक्ष ही होता है जिसके लिये विशेष तैयारी की आवश्यकता नहीं रहती है। परन्तु अणुखण्डीय श्वसनक ज्वर में उत्तेजक औषधियों में कमी करना नहीं चाहिये। रोगी की बलरक्षा, हृदय तथा श्वास-संस्थान की उत्तेजना की व्यवस्था इस व्याधि में भी परमावश्यक है—एतदर्थ खण्डीय श्वसनकज्वरोक्त सभी औषधियां प्रयोग में लानी चाहिये। पाश्चात्य शास्त्रोक्त सभी औषधियां तथा चिकित्सा विधि जो कि खण्डीय श्वसनक ज्वर में बताई गई हैं—सब ही विचार से प्रयोग की जाती हैं। अणुखण्डीय श्वसनक ज्वर में विश्लिष्टावस्था आने के पश्चात् स्वर्णमालिनी वसन्त का प्रयोग लाभदायक प्रतीत होगा। सर्वांगसुन्दर रस (कासाधिकार) प्रवाल अथवा मोती भस्म तथा चौंसठ प्रहरी पीपल के साथ प्रयोग करने से कासनिर्गम तथा फुफ्फुसीयरोपण में सहायता मिलती है। ज्वर-मोक्ष के पश्चात् अथवा मामूली ज्वर रहने से महालाक्षादि अथवा चन्दनबला-लाक्षादि तैल का अभ्यङ्ग किया जासकता है जिससे ज्वर मुक्ति तथा स्वास्थ्य लाभ होता है।

इस व्याधि में रोगी की साधारण चिकित्सा खण्डीय श्वसनक ज्वर के अनुरूप ही है। प्रारम्भ में खण्डीय श्वसनक ज्वर के समान पथ्य देना चाहिये, परन्तु ज्वर मोक्ष के पश्चात् अथवा ज्वरवेग कम होजाने के बाद रोगी को पुष्टिकर लघु पथ्य, विशेषतः जीवित मछलियों का शोरुआ, मांसरस, अर्द्ध सिद्ध अण्डे, सोंठ साधित दुग्ध तथा पुष्टिकर मेवा आदि रोगी के अग्निबल को ध्यान में रखकर प्रयोग कराना चाहिये–जिससे रोगी का स्वास्थ्य लाभ त्वरान्वित हो सके।

कामला-पीलिया पर

तीन चिकित्सकों के अनुभव

[१]

श्री० पं. उमादत्त जी त्रिवेदी आयुर्वेदाचार्य
राजा का रामपुर (एटा)

समाचार पत्रों द्वारा ज्ञात होरहा है, कि देहली आदि स्थानों में कामला (महामारी) रूप में फैल रहा है। शतशः व्यक्ति इस रोग से पीड़ित होकर सरकारी अस्पतालों में दाखिल हो रहे हैं।

एलोपैथिक डाक्टर परेशान हैं क्योंकि उनकी कोई भी औषध तत्काल लाभ नहीं कर रही है, निदान बहुत से व्यक्ति इससे पीड़ित होकर यमधाम के अतिथि बनते जारहे हैं। अतः इस तरफ सरकार का भी ध्यान गया है, इसकी चिकित्सा एवं निदान की खोज की जारही है।

अतः इस पर आयुर्वेदिक दृष्टिकोण से भी विचार करना अत्यन्त आवश्यक है।

> पाण्डु रोगी तु योत्यर्थं पित्तलानि निषेवते।
> तस्य पित्तमसृङ्मासं दग्ध्वा रोगायकल्पते॥

जो पाण्डुरोगी (जिसके यकृत् के विकार के कारण रक्ताणुओं की कमी एवं श्वेताणुओं की वृद्धि हो जाया करती है। ऐसी) अवस्था में उष्ण तीक्ष्ण पदार्थ, चाय, वनस्पति घृत, तैलादि, पित्त को बढ़ाने वाले पदार्थों का सेवन करता है उसका वृद्ध एवं विकृत पित्त रक्त एवं मांस को जलाकर कामला उत्पन्न करता है।

दूसरे प्रकार का स्वतन्त्र कामला भी होता है, जो कि बिला पाण्डु रोग के भी उपरोक्त उष्णादि पदार्थों के अत्यन्त सेवन से कामला उत्पन्न होजाया करता है। वर्तमान समय में जो देहली आदि बड़े नगरों में कामला महामारी रूप में फैल रहा है, उसका कारण दूषित जल (जैसा कि शहर का गन्दा पानी जमुना में गिराया जाता है उससे जल दूषित होजाता है और वही जल फिर जल-कल द्वारा शहर में पीने के लिये दिया जाता है। एवं दूषित खाद्य पदार्थ (जिनमें अधिकांश में) वनस्पति घृत एवं उससे निर्मित खाद्यपदार्थ तथा दूषित तैल एवं उससे निर्मित पदार्थ, तथा चाय आदि का अधिकांश सेवन एवं रोगों के ठीक निदान न होने पर संल्फा श्रेणी की औषधों का अधिक प्रयोग आदि पित्त को दूषित एवं वृद्ध करने वाले पदार्थों का प्रयोग ही कारण है।

अतः सरकारी विभाग द्वारा अविलम्ब ही दूषित जल एवं वनस्पत्ति घृत का प्रयोग तथा अन्य हानिकारक पदार्थों का सेवन कानूनन बन्द करना परम कर्त्तव्य है, अन्यथा आए दिन कोई न कोई नवीन रोग पैदा होकर सरकार के चिन्ता का कारण बना रहेगा जिसके लिये सरकारी स्वास्थ्य विभाग लाखों रुपये व्यय करने पर भी सफलता प्राप्त नहीं कर सकेगा।

लक्षण—

> हरिद्र नेत्रः सभृशं हारिद्रत्वङ्नखाननः।
> पीतमूत्र शकृन्नेत्रो भेकवर्णो हतेन्द्रियः॥
> दाहाविपाका दौर्बल्य सदनारुचि कर्षितः।
> कामला बहु पित्तैषा कोष्ठ शाखाश्रयामता॥

अर्थात् नेत्र पीले तथा त्वचा नख आनन भी पीतवर्ण, मूत्र एवं मल भी पीला यहां तक कि कपड़े पर इसका दाग लगने पर भी पीतवर्ण होजाना। पीले मेंढक का वर्ण के सदृश वर्ण का होजाना, इन्द्रियों का हतश्रम होना, दाह अपचन दौर्बल्य अशक्तिअरुचि आदि से पीड़ित होना, आदि लक्षण होते हैं।

अरुचि आदि से पीड़ित होना, आदि लक्षण होते हैं।

कालान्तरात् खरीभूता कृच्छ्रसाध्यात् कुम्भकामला।

अधिक समय बाद ज्यादा बढ़ जाने पर कष्टसाध्य कुम्भ कामला होजाया करता है।

चिकित्सा

आयुर्वेदिक सिद्धान्तानुसार इसकी चिकित्सा करने पर रोगी को शीघ्र ही लाभ होजाता है।

फलत्रिकामृतावासा तिक्ताभूनिम्ब निम्बजः।
क्वाथः क्षौद्रयुतोहन्यात् पाण्डुरोग सकामलम्॥

अर्थात् हरड़ की बकली. आमला, बहेड़ा, गुडूची वासा (अडूसा), कुटकी, चिरायता, नीम की छाल इनका क्वाथ शहद मिलाकर सेवन करने से कामला संहित पाण्डुरोग भी अच्छा होजाता है। इस क्वाथ का प्रयोग प्रातः-सायं दोनों समय करना चाहिए।

तथा कटुकी एवं मिश्री समानभाग मिलाकर १ तोला अथवा अवस्थानुसार ६-६ माशा ताजे पानी से दिन में २ बार सेवन कराना चाहिए। तथा कटु-तुम्बी अथवा देवदाली फल को पानी में रात्रि को भिगोकर प्रातः मलकर कपड़े से छानकर नस्य देना चाहिए, इससे कुछ समय बाद ही नासिका द्वारा पीला पानी अधिक मात्रा में निकलता है। करीब ४-६ घण्टे प्रतिश्याय की तरह बराबर नाक के द्वारा पानी निकल जाता है और आंखों का पीलापन शीघ्र ही कम होजाता है।—

पथ्यापथ्य—इसमें सभी प्रकार के तीक्ष्ण एवं उष्ण पदार्थों का सेवन तथा चाय वनस्पति घृत एवं तज्जनित खाद्यपदार्थों का त्याग सर्वथा कर देना चाहिए।

गेहूं का दलिया खिचड़ी थोड़ा उत्तम घृत, गव्य तक्र, लौकी, टमाटर, मूली का शाक, अनार, संतरा, गन्ना आदि पित्तशामक पदार्थों का सेवन नित्यप्रति कराना चाहिए।

इस प्रकार नित्यप्रति उपरोक्त औषध के प्रयोग एवं पथ्य से शीघ्र ही कामला शान्त होजाता है।

प्रातः ही विना भोजन किये मूली तथा गन्ना का सेवन अवश्य नित्यप्रति करना चाहिए।

इस रोग में पेट साफ रखना अथवा नित्यप्रति रेचन देना अत्यन्त लाभप्रद होता है। जोकि उप-रोक्त क्वाथ के प्रयोग से २-३ दस्त प्रतिदिन आजाया करते हैं। यदि रोगी उपरोक्त क्वाथ बना कर न पीवे तो प्रत्येक वैद्य एवं डाक्टर को प्रातः ही उपरोक्त क्वाथ को औटाकर बोतलों में रखकर अपने रोगियों पर प्रयोग करना चाहिए।

तथा यदि स्वस्थ पुरुषों को भी कटुकी मिश्री वाला प्रयोग दिन में २ मात्रा दे दिया जावे तो कामला होना ही असम्भव हो जावेगा। साथ ही दूषित जल को अर्ध शृतशीत करके ही प्रयोग करना चाहिये।

उपरोक्त औषध मेरी कामला पर शतशः अनुभूत है, अतः चिकित्सकों से प्रार्थना है कि इस औषध का प्रयोग अवश्य करके शीघ्र ही सफलता प्राप्त करें।

[२]

कविराज श्रीराम शर्मा एल० ए० एम० एस०
संजीवन औषधालय मानकपुरा, देहली।

पिछले दिनों पाण्डुरोग (पीलिया) इस भयंकरता से अचानक प्रकट हुआ कि कितने ही मनुष्य इस भयङ्कर रोग का ग्रास बन कर स्वर्ग सिधार गये। इस का अधिक प्रकोप देहली स्टेट में और विशेष रूपेण देहली नगर में हुआ और थोड़ा थोड़ा प्रभाव तो सारे भारतवर्ष में ही हुआ। दूसरे बड़े बड़े नगरों बम्बई कलकत्ता आदि से भी रोगी देहली चिकित्सा कराने आये। डाक्टरी चिकित्सा से इस रोग में कम

लाभ हुआ, आयुर्वेदिक और यूनानी चिकित्सकों ने इसको दूर करने में पूरी सफलता प्राप्त की। जैसा कि डायरेक्टर आफ हैल्थ सर्विसिज के विभाग से ज्ञात हुआ कि आयुर्वेदिक चिकित्सा द्वारा हजारों रोगी शीघ्र ही स्वस्थ होगये। पीलिया रोग का अचानक इतनी तेजी से फैलना बड़े अचम्भे की बात थी। इसका कारण देहली नगर में पिछले दिनों दूषित जल का प्रयोग ही ज्ञात हुआ, इसके अतिरिक्त वायु का दूषित होना और खान पान का ठीक न होना कई प्रकार के कारण हो सकते हैं। इस के लक्षणों से पता चला कि यह पैत्तिक पाण्डु है केवल एक दो दिन में ही रोगी में निम्नोक्त लक्षण उत्पन्न हो जाते थे।

मल, मूत्र और नेत्रों में पीलापन, दाह, प्यास, ज्वर और रोगी देह की कांति अत्यन्त पीली होजाती थी। शास्त्रोक्त विचार से पाण्डु रोग पांच प्रकार का होता है

पाण्डु रोगाश्च पञ्चस्युर्वातपित्त कफैस्त्रिधा॥
त्रिदोषै र्मृत्तिकाभिश्च तथैका कामला स्मृता॥
स्यात्कुंभकामला चैकातथैव च हलीमकम्॥

पाण्डु रोग पांच प्रकार का होता है—

वात पांडु, पित्त पांडु, कफ पांडु, सन्निपातज और मृत्तिका भक्षण से।

कामला एक प्रकार का रोग है। यह रोग पांडु की अपेक्षा करने से होता है। यह स्वतंत्र है। उस कामला के दो भेद हैं।

१—वातादि दोष कुपित होकर रुधिर को दूषित करके शरीर की त्वचा पीली करता है उसको पांडु रोग (पीलिया) कहते हैं। वात पांडु में त्वचा, मूत्र, आंखों में रूखापन और कालापन आजाता है, कंपकपी, सूई से छेदन का सा चभका अफारा, भ्रम और शूल आदि होते हैं।

२—पित्त पाण्डु रोग के यह लक्षण होते हैं—मल, मूत्र और नेत्र पीले हों, दाह प्यास ज्वर इनसे पीड़ित रहे, मल पतला और देह की कांति अत्यन्त पीली हो जाती है।

३—कफ पांडु—मुख से कफ का गिरना, सूजन, शरीर का भारी होना, त्वचा, मूत्र, नेत्र मुख का सफेद होना इसके लक्षण हैं।

४—त्रिदोषजन्य पांडुरोग में—ज्वर अरुचि प्यास और वमन होते हैं। इन्द्रियों का अपना अपना विषय ग्रहण करने की शक्ति जाती रहती है।

५—मृत्तिका भक्षण से—मिट्टी खाने से नेत्र, कपोल, भृकुटी, नाभी और लिंग में सूजन हो, कोठे में कृमि पड़ जायें, रुधिर और कफ मिला दस्त उतरे।

वमन, अरुचि, ज्वर, अनायास श्रम इनसे पीड़ित तथा श्वास खांसी हो, अतिसार हो ऐसा कुम्भ कामला वाला रोगी मर जाता है।

जिस समय पांडु रोगी का वर्ण हरा, काला, पीला होवे और शक्ति और हौसला न रहे, तन्द्रा, मंदाग्नि, ज्वर, स्त्री संभोग की इच्छा का नाश, अंगों का टूटना दाह, प्यास, अन्न अच्छा न लगना और भ्रम ये उपद्रव वात पित्त में प्रकट हलीमक रोग के हैं।

सारांश

साधारण बोली में इसे पीलिया या कमलवायु कहते हैं, इसमें रोगी सुस्त हो जाता है, जी मिचलता है, भूख कम हो जाती है, मुंह प्रायः कड़वा रहता है। पेट में भारीपन और आंखें पीली हो जाती हैं, कभी दस्त आते हैं, कभी कब्ज हो जाती है, रोग बढ़ने पर मल, मूत्र, पसीना, थूक समस्त शरीर पीला हो जाता है बल्कि सब कुछ पीला दिखाई देने लगता है, दाहनी पसली में दर्द होने लगता है। ज्वर के साथ या बिना ज्वर कंपकपाहट।

कारण—

जब पित्त गर्मी पाकर खून (रक्त) की पतली रगों में मिल जाय या जिगर से पित्त बढ़ कर रुक जाये या ज्वर का आना या गरम वस्तुओं का

अधिक सेवन या दूषित जल वायु और अस्वच्छ भोजन आदि अतिश्रम करना, तप में गरम वस्तु खाना, अधिक धूप में भ्रमण करना।

कामला, पांडु हलीमक आदि इसके भेद शास्त्रानुसार पहले लिखे जा चुके हैं।

यह रोग संक्रामक है जो एक प्रकार के जहरीले कीटाणुओं से उत्पन्न होता है। इस रोग में यकृत (जिगर) में सूजन आजाती है।

हमारा कर्तव्य—

१—कभी कब्ज नहीं रहने दो। गर्म चीजों का अधिक सेवन न करो।

२—भोजन में अधिक मिर्च मसाले की चीजें नहीं खानी चाहिए।

३—गले सड़े और गंदे फलों का सेवन नहीं करना चाहिये और कटे हुए फल या कच्चे फल भी नहीं खाने चाहिए।

४—भोजन ताजा खाना चाहिये, नींबू और गन्ने का रस सेवन करना चाहिए। गरिष्ट भोजन और गंदी मिठाईयां (जिन पर मक्खियां बैठती हों या स्वच्छता का ध्यान रख कर न बनाई गई हों) कभी सेवन न करें।

५—अपने घरों में सफाई का पूरा पूरा ध्यान रखना चाहिए और कूड़े कर्कट को दूर फैंका जाये।

६—पीलिये के दिनों में स्वच्छ पानी (छान कर या औटा कर शीतल किया हुआ) पीना चाहिए।

अब हस्थ-लिखित पुस्तकों द्वारा वह सरल प्रयोग लिखे जा रहे हैं जिनसे हमने सैकड़ों रोगियों को तीन या पांच या सात दिन में (रोगी की अवस्था अनुसार) इस भंयकर रोग से छुटकारा दिलाया।

१—पोटली—

दोहा-फल वृंदाल जो पीस के करो पोटली जोग।
सूंग नासिका सांस भर जाय कामला रोग॥

अर्थ—वृंदाल फल को बारीक पीस कर थोड़ा सा लेकर मलमल के बारीक कपड़े में डालकर छोटी सी पोटली बना लें और नाक से पोटली लगा कर जोर से सांस अन्दर को खींचो, नाक में से एक घंटे बाद पीला पीला पानी निकलेगा, उसे रूमाल से पौंछते रहें। इसी प्रकार तीन दिन तक करे और हलका भोजन खायें, तीन दिन करने से पीलिया रोग जड़ से चला जायेगा और सारी आयु फिर कभी इस भयङ्कर रोग के दर्शन भी न होंगे।

दूसरी रीति—जो पोटली बनाई गई है इसे सूखी न सूंघो तो कटोरे में थोड़ा पानी लेकर उसमें पोटली भिगो भिगो कर नाक को लगाओ और सूंघो उसी प्रकार तीन दिन करो।

तीसरी विधि—एक तोला वंदाल फल लेकर बारीक पीस लो और आध पाव शीतल जल में मिलाकर रख दो एक घंटे बाद किसी मोटे कपड़े में छान लो या फिल्टर कर लो। प्रातः रोगी को लिटा कर उस के नाक में (नथनों में) दो दो बूंद पानी टपका दो। इसी प्रकार तीन दिन या पांच दिन करने से रोग जड़ से चला जाता है।

ऊपर लिखी औषध को किसी भी प्रकार प्रयोग करें, खाने की कोई दवा देने की आवश्यकता नहीं, केवल नाक में डालने से ही तीन या पांच या सात दिन में पूरा आराम आ जाता है। तीसरी रीति हम ने स्वयं निकाली है क्योंकि आजकल के रोगी प्रत्येक दवा को (पोटली जैसे प्रयोग में) सेवन करना अच्छा नहीं समझते और ड्रापर से डालना उचित समझते हैं। जितने दिन यह दवा नाक में डाली जाये गुड़ तेल मिर्च खटाई की वस्तुऐं और गर्म वस्तुऐं न खावें।

१—पांडु (पीलिया) पर क्वाथ—

दोहा—त्रिकुटा, कुट, चिरायता, बांसा, नीम गिलोय।
काथ जो पीजे सहत सौ नाश पांडु का होय॥

त्रिकुटा (सोंठ, पीपल, काली मिर्च), कुट मीठा, चिरायता, बांसा, नीम की गिलोय।

सब वस्तुओं को तीन-तीन माशे लेकर एक पाव पानी में पकावें, आध पाव रहने पर २ तोला अच्छा शहद डाल कर रोगी को पिलावें, दस दिन में पीलिया रोग ठीक हो जाता है।

३-दोहा—कृष्ण धैन के दूध में मधु डार कै पीव।
सात दिवस कमला नस सुखी होवे जीव॥

श्याम रङ्ग (काले रङ्ग) वाली गाय का आधा सेर दूध लेकर उसमें दो तोले असली शहद डालकर पीवें। सात दिन ऐसा करने से कामला रोग नष्ट हो जाता है और मनुष्य को सुख प्राप्त होता है।

यदि काली गाय का दूध न मिल सके तो किसी भी रङ्ग की गाय का दूध लेकर शहद डालकर पीने से भी आराम आजाता है, परन्तु दिन अधिक लगते हैं।

एक प्रयोग बहुत दिन से आजमा रहे हैं जो न खाने का है और न डालने का, केवल गले में माला पड़ी रहने से (छाती से छूती रहे) पीलिया रोग से मुक्ति दिलाता है।

४—पुनर्नवा की जड़ें लेकर उसके टुकड़े करके लाल धागे (नाले) में बांधकर रोगी के गले में डाल दें। ऐसा करने से शीघ्र आराम आता है।

५—एक प्राचीन काल के लिखे हुए इन्द्रजाल (हस्तलिखित है) में से एक मंत्र आजमाया गया जिसको नीचे लिखते हैं विश्वास रखने वाले लाभ उठावें।

मंत्र—ॐ वीर वेताल असराल नरसिंह नर्सिंह देव
पादितु पादितु भालतु भालतु पीलिया भेदतु
नाशतु नाशतु पीलिया नाशुतु शब्द साचा॥

विधि—हरी दूब (घास) तैल सरसों का तोला भर कटोरे में रखकर माथे पर दूब तैल में भिगोकर रखें और मंत्र पढ़ते जायें, तैल में पीलापन आता जायेगा। इसी प्रकार सात बार मंत्र पढ़-पढ़कर दूब द्वारा पीलिया उतारें। तैल का रङ्ग हल्दी के समान पीला हो जायेगा। तीन दिन प्रातः इसी प्रकार करें।

मंत्र की सिद्धि—सूर्य तथा चन्द्र ग्रहण होते समय इस मंत्र को इक्कीस बार पढ़ें और जब भी ग्रहण हुआ करे तभी दो बार पढ़ लिया करें, सदैव काम देगा।

शास्त्रोक्त औषधियां जिनमें लोहभस्म पीलिये रोग पर उत्तम कार्य करती है। नवायस लोह, पुनर्नवादि मांडूर, शंखभस्म और पीली कौड़ी की भस्म भी प्रयोग कराने से (रोग के वेगानुसार शास्त्रोक्त रीति से और अपनी बुद्धि अनुसार) रोग शीघ्र शान्त होता है।

पथ्य—इस रोग वाले को गन्ने का रस अधिक सेवन करना चाहिये, गाय की छाछ, अनार, सन्तरा, मूली, टमाटर हल्का भोजन, हरे पत्तीदार साग सेवन करने चाहिये। प्रातः सैर करना भी अत्यन्त आवश्यक है।

परहेज - व्यायाम रोग का प्रकोप होने पर नहीं करना चाहिए। गुड़, तैल, लाल मिर्च, खटाई, तेल की बनी हुई वस्तु, घी, दालें और अधिक गरम वस्तुएं और गरिष्ठ भोजन सेवन नहीं करना चाहिए

[३]

ले०—श्री. लालबहादुर सिंह चौहान, दिल्ली।

गत दो मास से दिल्ली नगर में पीलिया (*Jaundice*) का प्रकोप बढ़ रहा है। राजधानी के बाहर समीपवर्ती ग्रामों भी इस रोग का आतंक छाया रहा है और वहां के निवासियों को भी लक्षण लाक्षित हुए हैं। यहीं तक नहीं नगर से बाहर गए पीलिया से पीड़ित व्यक्तियों के अन्य क्षेत्रों में पदार्पण करने पर वहां की जनता पर भी इसका कुप्रभाव पड़ा है।

और इन बीमारों के सम्पर्क में आने से अन्य लोग भी इस व्याधि से पीड़ित हुए हैं। एलोपैथिक तब से अभी तक अनुसन्धान (*research*) और रोग के विश्लेषण में ही व्यस्त हैं, इधर जनोपदोध्वंस होरहा है। इधर भयंकर आग लग रही है, उधर अभी तक कुआं ही खोदा जा रहा है। जहां रोग-पीड़ित जनता की सेवा का प्रश्न आता है एलोपैथिक पीछे होते हैं और वहां त्रस्त जनता की सेवा के लिए आयुर्वेद को ही सम्मुख आना पड़ता है, पर जहां सरकार से अधिक संरक्षण पाने तथा झूंठी धाक जमाने की बात होती है वहां एलोपैथी के समर्थक अपनी वैज्ञानिकता की दुहाई देने के लिए अविलम्ब जा पहुँचते हैं।

दिल्ली की जनता ने ऐसे दुःखद अवसर पर सब कुछ भली प्रकार देख लिया और जान लिया कि विदेशी चिकित्सा पद्धति एलोपैथिक कहां तक इस पीलिया रोग में सफल रही? जरा एलोपैथिक सामने आएं और बतायें, क्यों हाथ पर हाथ रखे बैठे रहे? क्यों नहीं इस भयंकर स्थिति पर काबू कर सके? ऐसे अवसरों पर उनकी वैज्ञानिकता कहां विलुप्त होजाती है? पीछे फिर आयुर्वेद चिकित्सा प्रणाली को कोसने के सिवाय उनके पास चारा ही क्या रहता है? केवल राजधानी निवासियों को ही नहीं अपि तु समस्त देशवासियों को भी ज्ञात है कि पीलिया में आयुर्वेद चिकित्सा ने क्या किया? इस सफलता पर कलकत्ता के विद्वान् पं० श्रीनिवास शास्त्री का मेरे पास पत्र आया है, उसमें उन्होंने लिखा है कि निस्सन्देह पीलिया के ऊपर दिल्ली के वैद्यों ने बाजी मार ली। एक नहीं, ऐसे अनेक पत्र आए हैं। क्या हमारे वैद्य-समुदाय के लिए यह गौरव और सम्मान की बात नहीं?

इधर २२ जनवरी को इण्डियन मेडीकल कौंसिल के लब्ध प्रतिष्ठ सदस्य प्रिंसीपल डा० बी० एस० शर्मा एम० एस० एम० डी० ने आयुर्वेदिक एवं यूनानी तिब्बिया कालेज दिल्ली में होने वाली एक विराट प्रेस रिपोर्टर्स कान्फ्रेन्स में स्पष्ट कहा कि पीलया रोग के विनाश में देशी चिकित्सा ही अधिक कारगर सिद्ध हुई है। फिर मेरी समझ में नहीं आता कि सरकार के कानों पर जूं क्यों नहीं रेंगती? आयुर्वेद के साथ सरकार सौतेली मां जैसा अभद्र व्यवहार क्यों करती है। यदि सरकार आयुर्वेद चिकित्सा-पद्धति को गोद नहीं उठा सकती तो कम से कम इसकी अंगुली पकड़ कर सहायता तो करती रहे। प्रोत्साहित करना तो दूर, उल्टे गिराने का ही प्रयास हो रहा है। पर खैर, वह दिवस भी नहीं रहे और यह भी नहीं रहेंगे।

मुझे आयुर्वेद का सीनियर छात्र होने के नाते कालेज-अस्पताल में पूज्य आचार्यों के साथ पीलिया के रोगियों को देखने व उनकी चिकित्सा आदि करने का अवसर मिला है। मुझे जब भी समय मिला है मैं इन रोगियों के दुःख दर्द की कहानी सुनता रहा हूं और आचार्यों के काम में हाथ बंटाते हुए इन रोगियों की सेवा में मेरी बड़ी दिलचस्पी रही है।

इस रोग के कारण के बारे में निश्चित तय है कि सन् ५५ में दिल्ली के नलों के जल में दूषण हुआ था जिसके परिणाम स्वरूप इस व्याधि का प्रादुर्भाव हुआ। इसके अतिरिक्त खान-पान में मिर्च, खटाई, बासी चीजों तथा चाय आदि पित्त दूषक पदार्थों के अधिक सेवन तथा अशुद्ध वायु ने भी प्रभाव डाला होगा साथ ही वे लोग इस व्याधि से आक्रांत हुए हैं जिन्हें अजीर्ण था और जिनका यकृत (*liver*) कुछ खराब था।

इस रोग में निम्न चिकित्सा से आरोग्य-लाभ होते देखा है।

पित्तस्रावक एवं पित्तशामक तथा तीक्ष्ण मूत्रल औषधियां—

पित्तपापड़ा, कलमी शोरा, नीलोफर, रक्तचन्दन, नौसादर, सोंठ आदि पेट की सफाई के लिए मिश्री १ तोला कुटकी ६ माषा ठण्डे जल के साथ प्रति-दिन दिन में एक बार प्रयुक्त करें।

आंखों की पीलिया को दूर करने के लिए बढ़िया गुलाबजल दिन में दो तीन बार डालें।

यकृत-बल वर्द्धक चिकित्सा (जब ज्वर न हो)—

ताप्यादि लोह	४ रत्ती
प्रवाल पञ्चामृत	२ रत्ती
शुभ्र पर्पटी	२ रत्ती

—मूली के रस व मिश्री डाल कर प्रातः सायं सेवन करें। यदि साथ में साधारण ज्वर हो तो—

नवायस माण्डूर	४ रत्ती
चन्दनादि लौह	२ रत्ती
प्रवाल पिष्टि	२ रत्ती
टंकण शुद्ध	२ रत्ती

—प्रातः सायं शहद के साथ दें।

तृष्णा अधिक होने पर षडंग पानी दें। यदि छाती में जलन हो और खट्टी डकारें आती हों तो गाय के दूध में पीपल डालकर लोहे की कड़ाही में औटा कर मिश्री डाल कर पिलावें। जलन या डकार न होने पर मट्ठा या मीठी लस्सी पिलावें।

प्रारम्भ में धातु घटित जैसे लोहा मिश्रित औषधि न दें तो सुन्दर होगा। रोग प्रारम्भ होने के कुछ दिवस पश्चात् निम्न धातु घटित औषधि दें।

पित्तान्तक लोह, नवायस लोह, ताप्यादि लोह, आरोग्यवर्द्धिनी और पुनर्नवा माण्डूर आदि।

पथ्य में जौ का पानी (*Barley water*) और हल्के पदार्थ जैसे दलिया, मूङ्ग की खिचड़ी, मट्ठा आदि दें। फलों में सन्तरा, मौसमी, अनार, अनन्नास, मूली, गाजर दें। दोपहर को गन्ने का रस और रात्रि को सोते समय पिण्ड खजूर गाय के दूध के साथ विशेष लाभकारी है। रोगी को पूर्ण विश्राम और सफाई वांछनीय है। जल उबला हुआ अधिक उपयोगी है।

मसालेदार खाद्य पदार्थ या बासी चीजें, चाय, मद्य, गुड़, तैल, मिर्च, खटाई, सूखे फल, बादाम, चिलगोजे और रात्रि जागरण आदि त्याज्य हैं।

मूत्रातिसार—उदकमेह

(POLYURIA)

लेखक—वैद्य मुन्नालाल गुप्त B. I. M. कानपुर।

प्रथम बहुमूत्र व मूत्रातिसार नामक रोग के सम्बन्ध में यह विचार करना है कि इस रोग का हेतु क्या है, यह किस दोष, दूष्य और स्थान की विकृति से उत्पन्न होता है। इस सम्बन्ध में आयुर्वेद तथा अन्यान्य चिकित्सा शास्त्रकारों का क्या मत है। तत्पश्चात् स्वानुभवपूर्ण चिकित्सा का उल्लेख किया जायगा।

आयुर्वेद संहिता ग्रंथों में बहुमूत्र का नाम प्रमेह है। फिर भी भैषज्यरत्नावलीकार ने तन्त्रान्तरों से सोम=बहुमूत्र=मूत्रातिसार रोग की निम्न व्याख्या की है।

रोग का हेतु—

> स्त्रीणामति प्रसङ्गाद्वा शोकाद्वापि श्रमाद्वापि।
> आभिचारिक दोषाश्च गरदोषात्तथैव च ॥१॥

सम्प्राप्ति—

> आप सर्व शरीरस्थाः क्षुभ्यन्ति प्रस्रवन्ति च।
> तस्मात्ताः प्रच्युताः स्थानान्मूत्र मार्गं व्रजन्ति च ॥२॥

लक्षण—

> प्रसन्ना विमलाः शीता निर्गंधी नीरुजःसिताः।
> स्रवन्ति याति मात्रन्तु दौर्बल्यं गति हीनता ॥३॥
> शिरसः शिथिलत्वञ्च मुख तालु विशोषणम्।
> सोमरोग इति ज्ञेयो देहे सोम क्षयान्नृणाम् ॥४॥
> स्रोऽतिक्रान्तः क्रमेणैव स्रावेन्मूत्रमभीक्ष्णशः।
> मूत्रातिसार मप्येव तमाहुर्बल नाशनम् ॥ ५॥
> तेन तृष्णाभि भूतोऽसौ जल पिवति चाधिकम्।

किसी किसी ने सोमरोग को स्त्रीरोग माना है, यथा—

> ततः सोम क्षयात् स्त्रीणां सोमरोग इति स्मृतः।
> —मा० नि० परिशिष्ट।

माधव निदान परिशिष्ट में कथित सोमरोग के पाठ में भी काफी अन्तर है।

यहां सम्प्राप्ति और लक्षणों में स्पष्ट किया है कि इस रोग में शरीरस्थ जल क्षुब्ध होकर जब स्थान-च्युत होता है, तब मूत्रमार्ग में आकर अधिक मात्रा में बाहर निकलता है। वह निर्मल, शीतल, गंध-रहित और शुभ्र वर्ण का होता है।

अधिक मात्रा में शरीरस्थ जल के बाहर निकल जाने से शरीर में दुर्बलता गतिहीनता और शिर की शिथिलता, मुख और तालु का सूखना यह विशेष लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं।

इस रोग में सौम्य गुणों के क्षीण होने से यह सोमरोग कहलाता है। जब यह रोग बढ़ जाता है। तब इसे ही मूत्रातिसार कहते हैं। इसमें दुर्बलता अधिक आती है। अत्यन्त पिपासा के कारण रोगी जल अधिक पीता है।

मेरी सम्मति में इस रोग को पूर्व शास्त्रकारों ने उदकमेह रोग ही माना है। इसीसे इसकी प्रथक व्याख्या नहीं पाई जाती।

कारण स्पष्ट है कि प्रमेह शब्द की निम्न शाब्दिक निरुक्ति के आधार पर यह सिद्ध है कि अधिक मात्रा में अथवा बारम्बार मूत्र का परित्याग-प्रमेह का लक्षण है। यथा—

> प्रकर्षेण प्रभूतं प्रचुरं बारम्बार वा मेहति-मूत्र त्यागं करोति यस्मिन रोगे स प्रमेहः ॥

प्र=प्रभूत

मेह=(मिह धातु से सेचने अर्थ में) मूत्रत्याग।

अर्थात् जिस रोग में बहुत और बारम्बार मूत्र का त्याग हो वह प्रमेह कहलाता है।

प्रमेह का सामान्य लक्षण--

सामान्य लक्षणं तेषां प्रभूताविलमूत्रता।

यहां बहु-मूत्रता को प्रदर्शित करके मूत्र का रंग मलिन होता है यह बताया है।

महर्षि चरकाचार्य ने उदकमेह की व्याख्या में मूत्र—स्वच्छ, बहुत उज्ज्वल, ठण्डा, गंधरहित, जल के तुल्य होता है ऐसा स्पष्ट कथन किया है यथा—

अच्छं बहु सितं शीतं निर्गन्धं मुदकोपमम्।
श्लेष्म कोपान्नरो मूत्र मुदमेही प्रमेहति॥
—चरक निदान अ० ४ सू० १२

माधवनिदानकार ने उदक मेही के मूत्र को "किञ्चिदाविल पिच्छिलम्" (किंचित् अस्वच्छ और चिपचिपापन लिए होना) बताया है।

चरक चिकित्सा स्थान अध्याय ६ में भी उदकमेह के मूत्र को "जलोपम्" जल सदृश्य ही होना बताया है। इससे स्पष्ट होता है कि कफज प्रमेहान्तर्गत उदकमेह से प्रथक् "बहुमूत्र" मूत्रातिसार नामक रोग का कोई अस्तित्व नहीं है।

इस व्याख्या से यह पता लगा कि इस रोग का हेतु है कफ दोष, और दूष्य है शारीरिक जल।

अब विकृत स्थान का पता लगावें—

प्रमेह की सम्प्राप्ति में लिखते हैं--

दोषो हि वस्तिं समुपेत्यमूत्रं संदूष्य मेहान् कुरुते यथा स्वम्॥
—च. चि. अ. ६

अर्थात् दोष ही 'वस्ति' में पहुँच कर मूत्र को दूषित करके यथास्व—जैसा वह खुद है वैसा लक्षण वाले प्रमेह को करता है।

यहां वस्ति से वृक्क अभिप्रेत है। वृक्क की गुच्छिकाओं में शरीरस्थ रक्त सब पदार्थों के साथ हानिकर अंशों के साथ प्राप्त होता है। वहां से छनने के बाद हानिकारक द्रव्यों की छांट गुच्छिकाओं और नलिकाओं में हो जाती है। वस्तिगत मेद, मांस, क्लेद, शुक्र, रक्त, वसा मज्जा, लसीका, रस और ओज के अंशों पर दूषित दोष की क्रिया होती है। उनमें से कितनों को, वस्ति में ही रोक रखता है। शेष पदार्थ पुनः शरीर में व्याप्त हो जाते हैं। उत्तर वस्ति वृक्क से अधोवस्ति—मसाने में वे पदार्थ मूत्र के साथ पहुँच कर, मूत्र के साथ ही बाहर निकल जाते हैं। लगातार क्लेद के साथ शरीर संरक्षणात्मक शक्ति ह्रास होती रही है। जिसके कारण निर्बलता आदि का होना स्वाभाविक है।

और भी महर्षि चरकाचार्य कहते हैं—

शरीर क्लेदस्तश्लेष्म मेदो मिश्रः प्रविशन्मूत्राशयं मूत्रत्वमापद्यमानः श्लैष्मिकैरेभिर्दशभिर्गुणैः रूप युज्यते वैषम्य युक्तै तद्यथा—श्वेत शीत मूर्त पिच्छिलाच्छ स्निग्ध गुरु मधुर सान्द्र प्रसाद मंदं। —च. नि. अ. ४

तत्रयेन गुणेनैके नानेकेन वा भूयस्तर मुपसृज्यते।
तत्समाख्यं गौणं नाम विशेषं प्राप्नोति॥

इसका पूर्व सूत्र भी देखें—

शरीर क्लेदं पुनर्दूष्यन्मूत्रत्वेन परिणमयति, मूत्रवहानां च स्रोतसां वंक्षण वस्ति प्रभवाणां मेदः क्लेदोपहितानि गुरूणि।

अर्थात् कफ और मेद से मिला हुआ शरीर का क्लेद मूत्राशय में प्रविष्ट होकर मूत्र भाव को प्राप्त होता हुआ, कफ के इन दश गुणों से युक्त होजाता है। परन्तु वे गुण विषमता से रहते हैं। अर्थात् सब में समान संख्या और बल में नहीं रहते। वे दश गुण ये हैं।

(१) श्वेत (२) शीत (३) मूर्त-ठोस, (४) चिपचिपा (५) स्वच्छ (६) स्निग्ध (७) भारी (८) मधुर (९) गाढ़ा स्वच्छ (१०) मंद। इनमें से जिस एक या अनेक गुणों से अधिकतर युक्त होता है उसी संज्ञा से गुण के अनुसार विशेष नाम को पाता है।

शारीरिक जलीय अंश दूषित हो मूत्र रूप में बदल जाता है और वंक्षण और वस्ति प्रदेश में स्थित मूत्रवह स्रोतों को मेद और क्लेद से युक्त हो प्रभावित करता है।

इससे पता चलता है कि शारीरिक क्लेद और मेद कफ द्वारा दूषित होकर वृक्क मूत्रवह स्रोत और वस्ति पर भी दूषित प्रभाव डालते हैं।

यह रोग किन पुरुषों के होता है इस सम्बन्ध में महर्षि चरकाचार्य का मत है कि।

गृध्रमभ्यवहार्येषुस्नान चङ्क्रमण द्विषम्।
प्रमेह क्षिप्र मभ्येति नीड द्रुम मिवाण्डजः॥

अर्थात्-खाने पीने के पदार्थों का लाभी तथा स्नान और पैदल चलने से द्वेष रखता हो, जो शारीरिक श्रम व्यायाम आदि न करता हो, उसके पास प्रमेह पहुँच ही जाता है, जैसे पक्षी अपने घोंसले वाले वृक्ष पर।

इस रोग के हेतु भूत कारण—

आस्यासुखं स्वप्नसुखं दधीनि
ग्राम्यौदकानूपरसाः पयांसि।

नवान्नपानं गुड वैकृतञ्च
प्रमेहहेतुः कफ कृच्च सर्वम॥
—च. चि. अ. ६

बैठने का सुख, निद्रासुख, दही, ग्राम्य औदक, आनूप (पशु पक्षियों के) मांसरस, दूध (तथा दूध से बने खोया, रबड़ी, खुर्चन आदि) नये अन्न, जल और गुड़ विकार-चीनी, बूरा आदि सर्व कफकारक प्रमेह के पूर्व रूप-पदार्थ ये सभी प्रमेह के हेतु हैं।

स्वेदोऽङ्गगंधः शिथिलाङ्गता च,
शय्यासन स्वप्न सुखे रतिश्च।

हृन्नेत्र जिह्वा श्रवणोप देहो;
घनाङ्गता केशनखाभिवृद्धिः॥

शीत प्रियत्वं गल तालु शोषो,
माधुर्यमास्ये कर पाद दाहः।

भविष्यत मेहगदस्य रूपं,
मूत्रेऽभिधावन्ति पिपीलिकाश्च॥
—च० चि० सू० प्र० अ०

पसीना आना, शरीर में दुर्गन्ध, अङ्गों की शिथिलता, शैया आसन तथा सोने के सुख में प्रीति, हृदय, नेत्र, जिह्वा, कर्ण में भारीपन, शरीर में स्थूलता, बाल और नखों का जल्द-जल्द बढ़ना, शीत पदार्थों में रुचि, गला और तालु का सूखना, मुख में भारीपन रहना, हाथ पैरों में जलन, मूत्र पर चींटियों का आना यह प्रमेह का भविष्यत लक्षण (पूर्व रूप) बताये हैं। ये लक्षण प्रमेह होने पर भी रहते हैं।

प्रमेह निदान में चरकाचार्य ने निम्न लक्षण भी पूर्व रूप के दिये हैं। यथा—

१—जटिलीभावं केशेषु=बाल उलझे हुए।

२—माधुर्यास्ये=मुख में मधुरता।

३—कर पादयोः सुप्ततां, दाहं=हाथ पैर में सुसुप्तता और दाह।

४—मुखतालु कण्ठ शोषं=मुंह, तालु और कण्ठ का सूखना।

५—पिपासाम्=प्यास की अधिकता।

६—आलस्यम्=आलस्य होना।

७—मलं च काये=शरीर अधिक मैला।

८—कायच्छिद्रेषूपदेहम्=शरीर के छिद्रों का मल से लिप्त रहना।

९ परिदाहं=अङ्गों में सर्वदा दाह होना।

१०—सुप्ततां चाङ्गेषु=शरीर सोया सा।

११—मूत्र पर चींटियों का आना।

१२—दोष दूष्य का परिचायक सिकता क्षार शर्करा आदि का मूत्र सहित स्राव होना।

१३—शरीर से गन्ध आना।

१४—निद्रा।

१५—तंद्रा च सर्वकालम्=सर्वदा तन्द्रालु रहना।

बहुमूत्रता को देख कर ही हमें यह नहीं मान लेना चाहिए कि यह उदकमेह (बहुमूत्र मूत्रातिसार व सोम रोग) है। मूत्र की परीक्षा भी करना आवश्यक होगा। कहीं ऐसा न हो कि वह दूसरा कोई प्रमेह का रूप हो।

प्रमेह के भेदों के साथ-साथ ग्रन्थकारों ने मूत्र के रंग रूप और चिकित्सादि का भी उल्लेख कर दिया है। जिससे उसका पृथक्-पृथक् भेद को जाना जा सकता है। उदकमेह में तो स्पष्ट बता दिया गया है कि मूत्र जलवत् उज्ज्वल शुभ्र और स्वच्छ होता है।

उदकमेह को यूनानी ग्रन्थकार जयाबीतस कहते हैं। जयाबीतस कहते हैं "डोल" को। इस कारण से कि पानी को एक तरफ से ग्रहण करे और दूसरी ओर से निकाल दे। इसी कारण इस रोग का नाम भी जयाबीतस रखा गया। इस रोग में गुर्दे की निर्बलता के कारण गुर्दे की ग्रहण शक्ति तो बढ़ जाती है और धारक अवरोधक शक्ति निर्बल होती है। इस कारण जल जैसे ही गुर्दे की ओर आया, तत्काल पेशाब के द्वारा बाहर निकल जाता है जो अवयव जल को ग्रहण करते हैं, उससे गुर्दे बराबर मांगते रहते हैं, इस कारण प्यास अधिक बढ़ जाती है, ज्यों-ज्यों रोगी पानी पीता है, पेशाब भी वैसे-वैसे ही अधिकहोता है। जब यह रोग पुराना हो जाता है तब कलेजे को भी निर्बल कर देता है और क्षय का कारण बन जाता है। यूनानी ग्रन्थकार इसके दो मुख्य कारण मानते हैं।

(१) गर्म दुष्ट प्रकृति।

(२) ठण्डी दुष्ट प्रकृति।

जो गर्म दुष्ट प्रकृति के कारण उत्पन्न होता है उसमें दाह अधिक होती है। दूसरे में दाह, जलन नहीं होती। प्यास दोनों में रहती है किन्तु शीत दुष्ट प्रकृति की अपेक्षा उष्ण दुष्ट प्रकृति में प्यास अधिक होती है यह थोड़ा भेद है।

एलोपैथिक मतानुसार

(संक्षेप में)

इसे डायेबेटिस इनसिपिडिस व पालियूरिया (*Diabetes insipidus or polyuria*) कहते हैं इस रोग में रोगी बहुत परिमाण में मूत्र-त्याग करता है किन्तु मूत्र में शर्करा व चीनी नहीं रहती। इस रोग का कोई निर्दिष्ट कारण अभी तक पता नहीं चला है किन्तु मस्तक में किसी प्रकार का आघात लगना, मानसिक अस्थिरता, स्वाभाविक शारीरिक धर्म, एतादृश पैतृक पीड़ा इत्यादि इस रोग के प्रधान हेतु हैं। मस्तिष्क में किसी प्रकार का ट्यूमर होने से अक्सर मूत्र वृद्धि होती है। किसी अवस्था के भी कारण हो, असल में स्नायुमण्डल के कोई दोष हेतु ही इस पीड़ा की उत्पत्ति होती है।

बहुत परिमाण में मूत्रत्याग और प्यास की अधिकता ही इस रोग का प्रधान लक्षण है। इसमें बहुत बार, बहुत परिमाण में, पानी की तरह पतला बे-रंग पेशाब होता है। इस रोग में पेशाब का स्पेसिफिक ग्रेविटी (भार) बहुत कम हो जाता है। शरीर की त्वचा खरदरी सी हो जाती है। दुर्बलता भी आ जाती है। किन्तु मधुमेह की तरह यह रोग खतरनाक नहीं होता। किन्तु अधिक दिनों का होने पर हानि पहुंचाता है।

मूत्र परीक्षा

परीक्षार्थ मूत्र २४ घण्टों का एकत्र करना चाहिए मूत्र के कुछ काल तक पड़ा रहने से उसमें कुछ परिवर्त्तन हो जाता है। अतः २४ घण्टे का मूत्र लेना हो, तो उसे शीत तथा अन्धकारमय स्थान में रखें, ताकि परिवर्तन न्यून से न्यून हो। इस प्रकार एकत्र किए गये मूत्र की यथार्थ मात्रा का ज्ञान हो सकता है।

साधारणतया मात्रा का ज्ञान प्राप्त न करना हो तो भोजन के तीन घण्टे पश्चात्, पहली बार जो मूत्र आये, उस की परीक्षा उपयुक्त होगी।

मात्रा—साधारणतया दिन-रात में १॥ सेर व १॥। सेर के लगभग मूत्र आता है। स्त्रियां पुरुषों की अपेक्षा कुछ न्यून तथा बालक बड़ों की अपेक्षा कुछ अधिक मूत्र त्यागते हैं। इसका कारण–बालक के भोजन में अधिक तरल पदार्थों का रहना है।

मात्रा और आपेक्षिक घनत्व की एक तालिका आयु के अनुसार नीचे दे रहे हैं। मात्रा भिन्न-भिन्न व्यक्तियों में न्यूनाधिक (भिन्न-भिन्न) हो सकती है, यह सामान्य मात्रा दिखाई गई है।

आयु.	२४ घंटे में मूत्रकीमात्रा	आपेक्षिक घनत्व	आयु.	२४ घंटे में मूत्रकीमात्रा	आपेक्षिक घनत्व
३ वर्ष	३० तोला	१°२४	९ वर्ष	६१ तोला	१°२०
४ ,,	२५ ,,	१°२७	१० ,,	६४ ,,	१°२६
५ ,,	३३ ,,	१°२४	११ ,,	५६ ,,	१°१८
६ ,,	३४ ,,	१°२७	१२ ,,	७० ,,	१°२१
७ ,,	४७ ,,	१°१८	१५ ,,	के पश्चात्	मूत्र की
८ ,,	५२ ,,	१°२१		मात्रा एक	व्यक्ति में

समान रहती है।

नोट—स्वस्थ अवस्था में बिना किसी रोग की उपस्थिति के कारण भी कभी-कभी मूत्र की मात्रा में स्वमेव न्यूनाधिक हो जाया करता है। जैसे शीत ऋतु में स्वेद न आने से, या चाय आदि मूत्रल तथा दुग्ध, गन्ना का रस, लस्सी इत्यादि तरल पदार्थों के सेवन से मूत्र की मात्रा बढ़ जाया करती है। ग्रीष्म काल में स्वेद-प्रवाह से, व्यायामादि से, स्वेद आने के कारण अथवा ठोस और रूक्ष पदार्थों के अधिक सेवन से मूत्र की मात्रा न्यून हो जाती है। जब इन कारणों की अनुपस्थिति में मूत्र की मात्रा न्यूनाधिक होजाय तो कारण का जानना आवश्यक हो जाता है।

बहुमूत्र—(उदकमेह)—और मधुमेह में मूत्र की मात्रा बहुत बढ़ जाती है। कभी-कभी तो १० से २० गुणा तक पहुंच जाती है। रक्त भाराधिक्य, शार्करिक वृक्क, प्रमेहादि रोगों में मूत्र की मात्रा अधिक बढ़ जाती है। आर्द्र फुफ्फुसावरण प्रदाह, जलोदर आदि में भी जब जल-तरल लीन होने लगता है तब मूत्र अधिक आने लगता है। योषापस्मार जैसी व्याधि में भी कई बार मूत्र की मात्रा अधिक हो जाती है। इसका भी पूरा-पूरा ध्यान रखना चाहिए।

वर्ण—उदकमेह, योषापस्मार आदि रोगों में, या अधिक जलपान तरल पदार्थों का सेवन चायादि से जो पेशाब आता है उसमें मूत्र रंजकों का अभाव देखा जाता है और पेशाब स्वच्छ व विवर्ण होता है।

वैसे साधारणतया स्वस्थ पुरुष के मूत्र में एक प्रकार का रंजक जिसे मूत्र रंजक (*Urochrome*) कहते हैं होता है। साधारणतया स्वस्थावस्था में मूत्र का वर्ण तृणसमान किंचित् पीत होता है। किन्तु मूत्र का वर्ण इसकी मात्रा, प्रतिक्रिया और आहार पर निर्भर करती है।

गन्ध—उदकमेह रोगी का पेशाब निर्गन्ध होता है। वैसे साधारणतया स्वस्थ व्यक्ति के मूत्र में विशेष प्रकार की मंद मंद गन्ध आती है। थोड़े काल के अनन्तर उसमें से अमोनिया निकलने के कारण गन्ध में तीव्रता आजाती है। मूत्र में एसिटोन–मधुमेह का उपद्रव–की विद्यमानता से फलों की सी गन्ध प्रतीत होती है। मधुमेह में मधुर भीनी भीनी गन्ध आती है जैसे ताजे कटे घास में।

घनत्व—स्वस्थ अवस्था में आपेक्षिक घनत्व १'१५ से १'२४ तक रहता है। १'१० से न्यून तथा १'३० से अधिक किसी रोग विशेष का सूचक होता है।

उदकमेह, योषापस्मार, जीर्ण वृक्करोग और शार्करिक वृक्क रोग में मूत्र का आपेक्षिक गुरुत्व न्यून होता है। अधिक घनत्व अन्य प्रमेह व मधुमेहादि में और ज्वर में होता है।

मूत्र का घनत्व एक विशेष प्रकार के यन्त्र से जाना जाता है जिसे यूरिनोमीटर (*Urinometer*) कहते हैं, उस पर १'०० से १'६० तक के चिह्न

अंकित रहते हैं उसको १५° C पर अंकित किया जाता है।

स्वस्थ अवस्था में मूत्र का घनत्व बहुत कुछ यूरिया की उपस्थिति पर निर्भर है। यूरिया की अधिकता से घनत्व अधिक, और न्यूनता से न्यून होता है।

यह ध्यान रहे कि मूत्र के कुछ काल पड़ा रहने पर और शीत होने पर उसका आपेक्षिक घनत्व कुछ बढ़ जाता है यथा—मूत्र त्यागने पर जिसका घनत्व १·२० होता है शीतकाल में ठण्डा होने पर १·२३ १·२४. १·२५ तक हो जाया करता है। इसलिए मूत्र त्यागने पर जो आपेक्षिक घनत्व हो वही वास्तविक है।

घनत्व की परीक्षा विधि—

मूत्र लेने के पश्चात् मूत्र को कुछ काल तक रक्खा रहने दो ताकि वह स्थानीय स्वाभाविक तापक्रम को प्राप्त करले। फिर उसे कुछ चौड़े गिलास या जार में भरें और धीरे से उसमें यूरिनोमीटर डाल दें। यह ध्यान रक्खें कि यूरिनोमीटर मध्य में रहे। किनारे से न लगे, साथ ही यह भी सावधानी रक्खें कि यूरिनोमीटर साफ करके अच्छी तरह पोंछ लिया गया है। साथ ही मूत्र फेनरहित हो गया है। उसे पढ़ते समय नेत्र तरल की सतह के समानान्तर होने चाहिए।

दूसरी विधि—

मूत्र में आधा,समान,ड्यौढ़ा या दूना जल मिलाकर परीक्षा करें, जल निश्चित मात्रा में मिलाना चाहिए। फिर यूरिनोमीटर से देखें यदि आधा जल भाग मिलाया हो तो १·०० से ऊपर जितने अंक है उसे डेढ़ गुणा कर दें। इसी प्रकार समभाग जल मिलाया है तो द्विगुण करें। डेढ़ गुणा जल मिलाया हो तो त्रिगुणा, द्विगुण जल मिलाने पर चतुर्गुण आदि। इस प्रकार प्राप्त अंक में १·०० मिलाकर मूत्र का वास्तविक घनत्व जान सकते हैं।

उदाहरण—मूत्र में डेढ़ गुणा जल मिलाने के पश्चात यूरिनोमीटर मूत्र का सापेक्ष घनत्व १·०८ बताता है तो ८ के अंक को ३ से गुणा किया २४ हुए १·०० जोड़ दिया तो मत्र का घनत्व निकला १·२४ निकला, यह उसका आपेक्षिक घनत्व है।

तीसरी विधि—

बाजार में आपेक्षिक घनत्व अंकित मनके मिलते हैं जिसे स्पेसेफिक ग्रेवेटी बीड्स (*Specific Gravity Beads*) कहते हैं। इनको मूत्र में एक एक करके डालते जाओ। यदि यह डूब जायें तो मूत्र का घनत्व अंकित अङ्क से न्यून समझना चाहिए। और उससे हलके मनके मूत्र में डालने चाहिए। समान अङ्क वाला मनका, जहां मूत्र में रखा जाय, वहीं ठहरा रहता है। हलका ऊपर तैरता है।

स्वस्थ अवस्था में यदि मूत्र १५०० ग्राम होगा तो उसमें १४४० ग्राम जल, और ६० ग्राम, अन्य पार्थिव पदार्थ रहते हैं जिसमें भी ३५ ग्राम यूरिया रहता है शेष दूसरे पदार्थ होते हैं।

यूरिया की मात्रा का ज्ञान—

विस्तार में न जाकर संक्षेप में ही यह बता देना आवश्यक समझते हैं कि यूरिया की मात्रा का ज्ञान (अनुमानिक ज्ञान) आपेक्षिक घनत्व के द्वारा भी जाना जा सकता है। १°०० से ऊपर जो भी संख्या हो उसे १० में विभक्त कर दें, प्राप्त अंक यूरिया की प्रतिशत मात्रा को दर्शाता है। जैसे-यदि मूत्र गुरुत्व १०·२० हो तो २० के अंक का १० से विभक्त किया तो २ प्राप्त होता है। परिणाम निकला कि १०० भाग मूत्र में २ भाग यूरिया है। यह केवल उदकमेह आदि के जानने की ही विधि है। जब शर्करा एलव्यूमिन आदि मूत्र में मिले हों तो यह विधि कार्यकर न होगी। विशेष ज्ञान के लिए मूत्रपरीक्षा पद्धति का अवलोकन करें।

चिकित्सा

आयुर्वेद मतानुसार प्रमेह रोग की चिकित्सा रोगी के स्थूलकाय होने पर संशोधनोपरान्त बृंहण

तथा कृशकाय होने पर आदितः संतर्पणजन्य होगी। बृंहण भी अग्नि बल जानकर ही करना चाहिए।

अपकर्षण चिकित्सा से – गुल्म, धातुक्षय, लिंग नाश, वृक्कशूल, वस्तिशूल मूत्र ग्रह के उपद्रव उत्पन्न हो सकते हैं। ऐसा महर्षि चरकाचार्य का मत है।

देखो चरक चि० अ० ६ सू० १४ से १६ तक।

प्रमेह रोगी के लिए जौ, जौ का सत्तू सर्वोत्तम खाद्यान्न बताया है। यथा–

भृष्टान यवान भक्षयतः प्रयोगान् शुष्कांश्च सक्तून न भवन्ति मेहा। —च० चि० अ० ६

अर्थात्—भुने हुए जो वा सूखे हुए जौ के सत्तुओं के प्रयोग को करने से प्रमेह नहीं होते।

स्थूलकाय पुरुष के लिये जौ, कृशकाय पुरुष के लिए गेहूं, जौ और चना (मिश्रित) का सेवन हितकर है। किन्तु ये नये नहीं होने चाहिए।

राजनिघण्टुकार ने जौ को "प्रमेहजित्" लिखा है।

पेय पदार्थों में—

सारोदकं वाऽथ कुशोदकं वा मधूदकं वा त्रिफला रसं वा सीधु पिवेद्वा निगदं प्रमेही माध्वी मद्यंचिर संस्थितम् वा।

अर्थात्—प्रमेहरोगी सारोदक (कत्था, जामुन सीसम आदि वृक्षों के सार भाग से प्राप्त जल) या उनकी लकड़ी के बुरादे को उबाल कर बनाया जल अथवा कुशोदक या मधुयुक्त जल या त्रिफला का रस या सीधु या निगद या बहुत पुराना श्रेष्ठ माध्वीक मद्य को पीवें।

आसवों में लोध्रासव श्रेष्ठ होता है। कब्ज रहती हो तो दन्त्यासव भी कभी कभी दे सकते हैं। यदि अग्निमांद्य हो तो भल्लातकासव देवें।

क्वाथ में–कायफल, नागरमोथा और लोध्र को समान भाग लेवें। पूर्ण मात्रा २ तोले की है। जल ऽ।= शेष ऽ–॥ रहने पर ठंडा करलें और उसमें १ तोला शहद मिलाकर उदकमेही को देवें। इससे निश्चय उदकमेह नष्ट होगा।

कायफर, नागरमोथा और लोध्र का चूर्ण अवलेह (मधु से) गुटिका, आसव और अर्क बनाकर दिया जाय तब भी उतना ही लाभकर हैं जितना की क्वाथ।

शरीरस्थ संरक्षण द्रव्यों के मूत्र द्वारा निकल जाने से या किसी विशेष कारण से आई निर्बलता तथा सम्बधित शारीरिक अवयवों की निर्बलता एवं शिथिलता को दूर करने वाले द्रव्य—जोकि उदकमेह में सर्वथा प्रयोजनीय एवं निश्चित लाभकारी है उसकी एक तालिका–

१–पूर्ण चन्द्रोदय, स्वर्णभस्म, लोहभस्म, स्वर्णमाक्षिक भस्म, नागभस्म, रससिंदूर, माणिक्य, पन्ना, पुखराज, वैदूर्य, वैक्रांत, मोती, शिलाजीत, गूगल, हरड़, आमला, अष्टवर्ग, असगंध, गिलोय, गंधक, माषपर्णी, मुद्गपर्णी, जीवन्ती, मुलहठी, रुद्रवन्ती, भांगरा, विधारा, सालममिश्री इत्यादि।

सर्वांगिक पिपासा निवारक औषधियां—

वंशलोचन, अफीम, पितपापड़ा, धमासा, चिरायता, कड़वीनाई, गुडमार और वेलपत्र इत्यादि।

उदकमेह—(बहुमूत्र-मूत्रातिसार-वा सोमरोग) में प्रयोजनीय एवं निश्चित लाभकारी आयुर्वेदीय शास्त्रीय प्रयोग—

१—वसन्तकुसुमाकर रस का स्थान सर्वोपरि माना जाता है।

भै० र० बहुमूत्राधिकारोक्त लेना चाहिए। इसमें भस्में सर्वोत्तम डालकर बनाना चाहिए। यदि इस रस में माणिक्य, पुखराज, संगेयशव, नीलम और अकीक भस्म भी चन्द्रोदय के समान डालकर बनाया जाय तो इसकी उपयोगता और भी बढ़ जाती है।

२—बहुमूत्रान्तरस, (३) बृहद् बहुमूत्रान्तक रस, (४) हेमनाथरस, (५) अहिफेन पाक, (६) सिंदूर

भूषण रस, (७) हर्षोदयावटिका (८) बृहद वंगेश्वर रस (६) सर्वेश्वर रस (१०) सोमेश्वर रस (११) मेह-केशरी (१२) योगेश्वर रस (१३) गगनादि लोह (१४) सोमनाथ रस (१५) वृ० सोमनाथ रस (१६) कस्तूरी मोदक (१७) गोक्षुरपाक (१८) पाषाणभेदपाक (१६) हिमांशुरस (२०) कासीसबद्ध रस, (२१) संजीवनी रस (२२) प्रमेह गजसिंह रस (२३) वसन्ततिलक रस (२४) मेहवद्धरस (२५) प्रमेहारि रस (२६) आनन्दभैरव वटी (२७) त्रिवंग भस्म (२८) देवदार्व्यारिष्ट (२६) सुवर्ण कल्प। इत्यादि।

आयुर्वेदाचार्य पं० प्रतापनारायण जी वायपेयी कानपुर द्वारा परीक्षित ४ प्रयोग—

(१) सिद्ध गंधक, फौलाद भस्म, आधी-आधी रत्ती लेकर मिश्रित कर तुलसीपत्र के रस और शहद में मिलाकर दें। तो ३ दिन में ही, अपूर्व लाभ प्रतीत होगा।

(२) जायफल जवित्री, कनक बीज, अहिफेन, वंग भस्म अभ्रक भस्म, लोहभस्म समान भाग लेकर बेलपत्र के रस में मिला १-१ रत्ती की गोली सेवन करें। मात्रा १ गोली, दोनों समय, अनुपान—जल।

(३) मृतसंवनीसुरा २० तोला शिलाजीत, कस्तूरी, अम्बर, कोढ़िया लोबान, भीमसेनी कपूर, अफीम, केशर ये प्रत्येक १-१ तोला। सुरा में मिलाकर एक सप्ताह तक धूप में रखें। शीशी का मुंह बंद रखें। बाद में इसका सेवन करावें, मात्रा २ से ५ बूंद मिला कर ऊहर से आधापाव दूध पिलावें।

उदकमेह में इससे शीघ्र और निश्चय लाभ होता है।

(४) सप्तरंगी, गुडमार, जामुन की मज्जा, सोंठ शिलाजीत ये सब समान भाग लेकर चूर्ण बनावें। मात्रा—१ माशे, अनुपान जल। इससे भी पूर्ण लाभ होता है।

धन्वन्तरि पत्र में प्रकाशित चंद प्रयोग जो बहुमूत्र रोग में अद्वितीय लाभकर सिद्ध पाये गये हैं इस प्रकार हैं—

(१) स्वर्णभस्म ६ माशे शुद्ध गंधक १ तोला अभ्रक भस्म १०० पुटी १ तोला पारद शुद्ध १ तोला।

प्रथम पारद गन्धक की कज्जली करे, उसे कदली पुष्प के स्वरस में घोट कर स्वर्णभस्म आदि मिला दें तत्पश्चात् (फिर) छाया में सुखाकर रखलें। मात्रा १ गोली। समय—सुबह शाम, अनुपान गुर्च का स्वरस २ तोला। २१ दिन सेवन से पूर्ण लाभ मिलेगा।

(२) रससिंदूर, अर्जुन छाल चूर्ण और वंगभस्म समान भाग लेकर एक रस करें। बराबर की मिश्री मिलावें, और सेमल की जड़ के रस में मर्दन कर गोली करें। मात्रा २ रत्ती से ४ रत्ती, अनुपान जल व मधु।

(३) जामुन की पत्ती, बिल्व की पत्ती और गुड़मार की पत्ती ४-४ माशे, गौदूध और जल आधा आधा सेर क्षीर पाक विधि से पकाकर दोनों समय सेवन करें।

नोट—ऊपर जितने भी प्रयोग दिये गये हैं वे उदकमेह के लिये ही हितकर हों यह बात नहीं है। जिनके पेशाब में शर्करा जाती है उनके लिये भी सभी हितकर प्रमाणित हुए हैं।

हमारे अनुभव

(१) शारङ्गधरोक्त संजीवनी वटी का उपयोग मक्खन के साथ किया गया। बहुमूत्र, में तत्काल लाभ होता है।

(२) नागभस्म का उपयोग मधु से किया, इससे भी मूत्र कम मात्रा में आने लगता है।

(३) त्रिवंगभस्म के उपयोग से भी बहुमूत्र में लाभ होता है।

(४) हुलहुल के बीजों को अजवाइन और गुड़ के साथ सेवन करने से बहुमूत्र में लाभ होता है।

(५) आम के पत्तों को या अशोक पत्रों को जल में क्वाथ कर पीने से बहुमूत्र में ही नहीं मधुमेह में भी पूर्ण लाभ मिलता है।

(शेषांश पृष्ठ ६६३ पर)

व्यायाम का महत्व

लेखक—श्री भगवानदत्त शर्मा वैद्य विशारद ।

व्यायाम पुष्ट गात्रस्य बुद्धिस्तेजो यशोबलम् ।
प्रवर्धन्ते मनुष्यस्य तस्माद् व्यायाममाचरेत् ॥

व्यायाम (कसरत) के महत्व की व्याख्या करते हुए स्वस्थवृत्त विषयक विद्वानों की सम्मति है कि संसार में यश चाहने वाले मनुष्यों को व्यायाम अवश्य करना चाहिए। क्योंकि इसके द्वारा मनुष्य के शरीरान्तर्गत प्रत्येक अंगप्रत्यंग दृढ़ होते हैं और दृढ़ता को प्राप्त हुए शरीर वाले मनुष्य की बुद्धि तीव्र होती है। तथा बल और पराक्रम की वृद्धि होना तो व्यायाम के द्वारा स्वाभाविक ही है। बुद्धि एवं बल सम्पन्न मनुष्य अपना तथा पराया कार्य साधन करके शीघ्र ही यशस्वी होकर समाज में प्रतिष्ठा को प्राप्त होता है। अतः व्यायाम नित्य प्रति यथासाध्य शक्तिवर्धन हेतु करना चाहिये। वैद्यक ग्रन्थों में भी इसके महत्व की विशिष्ट विवेचना की गई है। आचार्य वाग्भट्ट कहते हैं—

लाघवं कर्म सामर्थ्यं दीप्तोऽग्निर्मेदसः क्षयः ।
विभक्तघनगात्रत्वं व्यायामादुपजायते ॥
नित्यं व्यायामशील स्नूनरोग उपजायते ।

भावार्थ—शरीर में हल्कापन, काम करने की शक्ति, जठराग्नि प्रदीप्ति, मेद का क्षय (मुटापा दूर होना) शरीर बेतुका मोटा न होना तथा सुडौल और गठीला होना ये सब व्यायाम से ही सम्पन्न होते हैं। सबसे बड़ा लाभ यह है कि नित्य प्रति व्यायाम करने वाले मनुष्य रोग दोष से सर्वथा मुक्त रहते हैं। क्योंकि व्यायाम करने से शरीर में नवीन बल एवं रक्त संचार होकर शरीर धारी मानव में जीवनी शक्ति *vitality* तथा रोग प्रतिरोधक्षमता *immunity* बढ़ जाती है। जिसके कारण मनुष्य बड़ी से बड़ी व्याधि का सामना बिना औषधि एवं रोग निवारण सहायता के अभाव में भी निःशस्त्र योधा के समान व्याधि रूप शत्रु को पराजित कर सकता है। और रोग एवं रोगोत्पादक जीवाणु का संक्रमण *infection* नहीं होपाता वरन् उसकी प्रत्येक कुचेष्टा निष्क्रिय होजाती है। संसार में प्रत्येक प्राणी मात्र सुख चाहता है। किन्तु इसके मूलाधार आरोग्य जो कि सभी सुखों में अग्रगन्य माना गया है। सभी संसारिक सुख स्वस्थ शरीर से ही निकटतम संबंध रखते हैं। व्याधि ग्रस्त के लिये सुख की अनुभूति कहां, उसे तो सुखकर वातावरण भी दुख एवं भारस्वरूप ही दिखाई पड़ता है। अतः सभी वांछित सुखों की प्राप्ति के लिये आरोग्य एवं रोग निवृति का होना परमोपादेय है। हमारे महर्षियों ने आयुर्वेद शास्त्र ग्रन्थों में मिताहार विहार और संयम विश्राम के ठीक ठीक अनुशीलन को ही आरोग्य का मूल बतलाया है। व्यायाम का विशेष उल्लेख इस कारण से नहीं किया कि उनकी दिन चर्य्या में स्वाभावित तौर पर व्यायाम हो जाता था अतः इसकी पृथक् रूप से विशिष्ट विवेचन करने की आवश्यकता नहीं समझी गई। वे लोग अरण्य में अपने आश्रम बनाकर रहते थे। ऐसे भयानक जङ्गलों में उन्हें अपनी आजीविका के उपार्जन करने के साथ-साथ हिंसक पशुओं से भी अपनी शरीर रक्षा करनी पड़ती थी जिसमें उनको अपेक्षित शारीरिक व्यायाम होजाता था, किन्तु आज के मानव में और उस समय के मानव में पृथ्वी और आकाश का अन्तर है। सांसारिक परिवर्तन के साथ-साथ उसके कार्य व्यवहार दैनिक व्यवसाय आदि में बड़ा भारी परिवर्तन हो गया है। जहां हम अपनी सुविधाओं की समस्त सामिग्रियों को अपने अत्यन्त समीप पाकर प्रसन्नता एवं आरामतलबी का अनुभव

करते हैं। जिसका हमें आज से हजारों वर्ष पूर्व का ध्यान करने पर एक स्वप्न अर्ध-निद्रा का सा बोध होता है और पुराने समय के प्राणी, उनके कार्य एवं परिश्रमजन्य कार्य-कुशलता पर हमारा ध्यान इस विलासितापूर्ण वातावरण से युक्त स्वप्न के पृथक् होने पर ही जाता है। धन के कारण एवं धन से उपलब्ध सभी साधन हम अपने निवास स्थान पर ही स्थान कर लेते हैं। आधुनिक समय में टेलीफोन, रेडियो बिजली मोटर-कार आदि उपयोग हम पैसे खर्च करके कर लेते हैं। हमारे नवयुवकबन्धु तो यहां तक आराम तलब देखे जाते हैं कि शहरों में सब्जी आदि खरीदने जाते समय या ऐसे मामूली कार्यों के समय जो कि दस-बीस कदम चलने का काम हो उसमें साइकिल को ही अपनी जीवनसंगिनी समझे हुए हैं। वर्तमान समय को लोग कलयुग कहते हैं उसकी व्याख्या सम्भवतः इस प्रकार करना चाहिये कि कल यानी यन्त्र या मशीन। जिस समय में छोटे से छोटा और बड़े से बड़ा सभी कार्य मशीन के द्वारा किया जासके उसे कलयुग कहना चाहिए। बहुत से लोग कहते हैं कि समय का सदुपयोग करने के लिए ही मशीनों द्वारा सालों का काम महीनों में, महिनों का काम दिनों घण्टों में और घण्टों का काम मिनट सैकिण्डों में किया जाता है। विज्ञान के द्वारा मनुष्यों ने गर्व करके ऐसा सिद्ध कर दिया हो किन्तु मनुष्य प्रकृति को नहीं बदल सकता, मशीनों और यन्त्रों का उपयोग मनुष्य शक्ति से परे कार्यों में ही किया जाना उचित है। यह नहीं कि हम कलों का उपयोग इस प्रकार करें कि हम पद-पद पर मशीन का ही सहारा लें। व्यायाम के अभाव में मनुष्य कमजोर होगया है। कमजोर ही नहीं बल्कि रोगग्रस्त भी है। प्राचीनकाल में हमारा दैनिक जीवन स्वाभाविक व्यायाम से पूर्ण था, बल्कि दिनचर्या का एक अङ्ग समझा जाता था. किन्तु फिर भी पुराने ग्रन्थों में स्वास्थ्य की दृष्टि से व्यायाम की प्रशंसा की गई है। आजकल स्वाभाविक व्यायाम का स्थान कृत्रिम व्यायाम ने ले लिया है। किन्तु इस कृत्रिम व्यायाम को भी बहुत कम लोग ही कर रहे हैं। जिसके कारण इनका दैनिक जीवन कमजोर होता जारहा है। तथा मामूली से रोग का आक्रमण भी सहन नहीं होता और उससे आक्रान्त होकर शीघ्र ही मौत का शिकार होजाते हैं। दूसरी ओर स्वाभाविक तरीके से खुली स्वच्छ शीतल मन्द सुगन्धित वायु में स्वेच्छा से विचरण करने वाले श्रमजीवी निर्धन और अनपढ़ किसान मजदूर आरोग्य एवं दीर्घायु देखे गये हैं। अच्छे उपचार के अभाव में भी वे कठिन से कठिन रोगों को चुटकियों में उड़ा देते हैं। यह व्यायाम की ही उपयोगिता का जीता-जागता उदाहरण है। आज प्रत्येक स्कूलों कालेजों एवं संस्थाओं में जहां मनुष्य जीवन ढाला जाता है वहां स्वाभाविक व्यायाम के साथ कृत्रिम व्यायाम की भी नितान्त आवश्यक है। नवयुवक बन्धुओं को वेशभूषा और श्रृङ्गार रस प्रधानता में ही अपने को सर्वसम्पन्न नहीं समझ लेना चाहिए।

बेल की उपयोगिता

लेखक—श्री. महावीर प्रसाद सिंह 'माधव'

भारत के प्रायः प्रत्येक क्षेत्र में बेल होता है। यह एक ऐसा प्रचलित फल है कि जिसका विशेष परिचय देना अनावश्यक होगा। यह आकार में बड़ा और छोटा कई प्रकार का होता है। स्वाद के विचार से भी कई प्रकार के हैं। किसी किसी बेल में मुश्किल से एक या दो बीज रहते हैं।

बेल एक ऐसा उपयोगी फल है जिसका उपयोग हर बीमारी में किया जाता है। इसके पत्ते से लेकर जड़ तक दवा के रूप में व्यवहार किया जाता है। बेल एक सुस्वादु भोजन है तथा महौषधि भी। यह खाने में मधुर होता है। इससे कफ-पित्त और वात शान्त होता है।

अधिकतर पका बेल ही खाने में प्रयोग किया जाता है। इससे कब्जियत दूर होती है। यह पेट में बहुत दिनों का जमा मल निकाल देता है। तारीफ तो यह है कि बेल से कब्जियत तो दूर होती ही है अधिक दस्त वालों का मल भी बांधता है।

अधपके बेल को आग में पका कर खाया जाता है। इससे भूख लगती है, पाचन शक्ति तीव्र होती है यह आंव और अतिसार वालों के लिए टॉनिक का काम करता है।

बेल कफ-पित्त-वातनाशक, बलवर्द्धक, दस्तावर क्षुधावर्द्धक, शक्तिदायक, मधुर, हलका और गर्म होता है।

०·१८%प्रोटीन, ४·५%कार्बोहाइड्रेट, ०·२% वसा और २०·८%उष्णांक होता है।

यह उपयोगिता तथा आर्थिक दृष्टिकोण से अन्य फलों की अपेक्षा अधिक अच्छा और लाभ प्रद है।

कच्चा बेल स्निग्ध और ग्राही होता है। यह स्वाद में कड़वा और फीका होता है। इससे अग्नि तेज होती है। यह संग्रहणी और कफ विकार के लिए हितकर है। शूल और आमवात में लाभकारी है। यह गर्म होता है।

पके बेल का शर्वत बड़ा उम्दा होता है। उससे धातु पुष्ट होती है, बल बढ़ता है। यह मस्तिष्क को तर रखता है।

इसके अतिरिक्त बेल की उपयोगिता वैद्यक शास्त्रों में अधिक मिल सकती है। यहां पर पाठकों के लाभार्थ कुछ प्रयोग दिये जा रहे हैं।

१—यदि किसी कारणवश कान से कम सुनाई पड़ता हो तो बेल के गूदे को गौमूत्र के साथ पीसकर उसे कपड़छन्न करलें। बाद उसमें शुद्ध कड़वा तेल मिलाकर गुनगुना कर कान में डालें।

२—बेल का गूदा बालकों के आमातिसार के लिए रामबाण है।

३—धातुक्षीणता की बीमारी होने पर पाव भर हरे बेलपत्र के रस में १ तोला शक्कर और छः माशे जीरा मिला कर पीने से अधिक लाभ होता है।

४ - बेलपत्र के रस को शरीर में रगड़ने से शरीर की बदबू जाती रहती है।

५—विशूचिका की शिकायत पर सोंठ जायफल बेल का काढ़ा अधिक फायदा करता है।

६ -मुंह आने पर हरे बेल को पानी में उबाल कर कुल्ला करना चाहिए। इससे मुंह आना बन्द हो जाता है।

७—बेलपत्र को शक्कर के साथ पीसकर गोली बनावें और विषमज्वर वालों को खिलावें। ज्वर भाग जायगा।

८—यदि बच्चे को हरा, लाल और पतला दस्त होता हो तो बेल की गरी सौंफ के अर्क में घिसकर चटावें।

९—यदि किसी कारण से गले में खरखराहट हो अथवा हल्का दर्द होता हो तो पके बेल का गूदा खाने से यह दूर हो जाता है।

१०—धातु पुष्टि के लिए बेल की छाल का रस और जीरे का चूर्ण गाय के दूध के साथ पीना चाहिए।

११—यदि वमन होता हो तो बेल और आम की गुठली के रस में शहद मिलाकर पीने से लाभ होता है।

१२—कभी कभी पेट में छोटे छोटे कीड़े हो जाते हैं जो आगे चल कर स्वास्थ्य को खराब कर देते हैं, इसको दूर करने के लिए बेलपत्र का रस पीना चाहिए।

१३—छोटे बच्चे की संग्रहणी पर बेल के गूदे को सोंठ के चूर्ण और शक्कर के साथ खिलाना चाहिए।

१४—प्रति दिन बेल पत्र का रस पीने से कफ-पित्त और वात व्याधि दूर होती है।

१५—वातगुल्म, वातव्याधि, पेट की सर्दी आदि बीमारी में कच्चे बेल का गूदा गुड़ के साथ खाने से लाभ होता है।

१६—दस्त के साथ खून आना एक कड़ी बीमारी समझी जाती है। इससे छुटकारा पाने के लिए सूखे बेल के गूदे के चूर्ण में शक्कर मिलाकर खाना चाहिए।

१७—गर्भ धारण करने पर प्रायः स्त्रियों को मचली और उलटी हुआ करती है। इस समय उन्हें बेल के गूदे को धनियां के पानी में मिलाकर पीना चाहिए।

१८—अतिसार वालों को बेल के गूदे को आम की गुठली के साथ पीसकर उसमें शक्कर मिलाकर खाने से फायदा होता है।

१९—आंख दुखने पर बेलपत्र की पुल्टिस बांधनी चाहिए

२०—मधुमेह रोग असाध्य कहा जाता है। पर यह भी हरे बेल पत्र को काली मिर्च के साथ पीसकर कुछ दिनों तक पीने से आराम हो जाता है। बेलपत्र का रस चीनी के साथ पीने से भी आराम होता है।

२१—कब्जियत वालों को पके बेल का गूदा खाना चाहिए। इसका शर्बत भी पीना चाहिए।

२२—अधिक दस्त के कारण जो दुर्बल होगया हो उसको बेल को आग में पकाकर खाना चाहिए।

२३—बेल के बीज का तेल बच्चे के सूखा रोग, गठिया, उदर कृमि, कफ विकार नपुंसकता आदि बीमारियों में फायदा करता है।

खजूर तथा यूनानी वैद्यक

लेखक—वैद्यराज हकीम दलजीतसिंह जी आयुर्वेदीय विश्वकोषकार

पर्या०—खजूरी, खजुरिका—सं०। खजूर, खजुरिया, सेंधी, छुहारी, देशी खजूर, जंगली खजूर—हिं०। संदोले का झाड़—द०। जांगलेर खेजुर, गाछ, खेजुर-ब०। खजुरी, खजूरी—गु०। सिंदी, खजुरी-मरा०। ईशचेटटु—ता०। ईत चेटटु, खजूरम्—ते०। काट्टिन्त, ईन्तेचेटि—मल०। तो-सोम्बलोञ्जी ब्रह्म०। वाइल्ड डेट ट्री wilddate tree वाइल्ड डेट पाम wild datepalm (दी डेट सूगर पाम (The date sugar palm) इण्डियन वाइन पाम Indian wine palm—अं०। फीनीक्स सील्वेष्ट्रीस phoenix sylvestris, Roxb—ले०। खुर्माए हिंदी—फा०। रुतबे हिंदी अं०। हिन्दुस्तानी खजूर—उ०।

वक्तव्य—प्राचीन यूनानी निघण्टु ग्रन्थों में 'खजूर' का उल्लेख नहीं मिलता। मख्जनुल् अद्विया में खजूर को तमूर वा खुर्मा अर्थात छुहारे का हिन्दी पर्याय लिखा है। परन्तु तालीफ शरीफी में उसे ताजे छुहारे (रुतब) और पिंड खजूर का पर्याय स्वीकार किया है। उसमें लिखा है कि गुण में प्रायः छुआरे के समान है और इसे खजूर भी कहते हैं। इनसे पूर्व के ग्रन्थों में खजूर शब्द देखने को भी नहीं मिलता परन्तु मुफरेदात् हिन्दी नामक ग्रन्थ के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि 'खजूर' खुर्मा जातीय, पर उससे भिन्न एक वृक्ष का हिन्दी नाम है। अस्तु मुहीत के लेखक ने खुर्मा शब्द में मख्जन की भांति उसकी हिन्दी संज्ञा 'खजूर' न देकर और खजूर का उससे पृथक् वर्णन करके इसका पार्थक्य दिखलाने में सुविचार प्रदर्शन किया है। मुहीत के रचयिता ने पिंड खजूर को इसका सर्वोत्कृष्ट भेद लिखा है। उनके कथनानुसार इसे गुजरात से लाते हैं और इसका दूसरा भेद अर्थात खजूर समस्त भारतवर्ष में होता है। मुहीत में खजूरी को काली मुसली का हिन्दी नाम लिखा है। परन्तु अनुभूत चिकित्सा-सागर में इसे पिंड खजूर का गुजराती नाम और साधारण खजूर का मराठी नाम लिखा है। उसमें काली मुसली के लिए खजूरी पद का प्रयोग किया गया है। निघंटु-प्रकाश में भी ऐसा ही लिखा है। अस्तु, काली मुसली

(पृष्ठ ६५८ का शेषांश)

प्रिय पाठकगण! ज्ञात हो कि आयुर्वेद के दृष्टिकोण से यह रोग सुसाध्य है। इसकी चिकित्सा भी साधारण है। केवल पथ्य के सेवन का ही ध्यान रक्खा जाय तो रोग शीघ्र ही अपने आप नष्ट हो जाता है। अतः हम यहां पथ्यापथ्य पर कुछ प्रकाश डालना हितकर समझते हैं।

भोजन में—मिष्ठान, पिष्टयान्न, दूध-दही तथा दूध व खोये से बने पदार्थों को उस समय तक सेवन नहीं करना चाहिए जब तक रोग समूल नष्ट न हो जाय। अधिक जल में तैरना, शीतल जल से स्नान, बर्फ, गन्ना इत्यादि का सेवन हितकर नहीं। गेहूं, जौ, चना का सेवन हितकर है चावल हितकर नहीं। व्यायाम और प्रातःकाल का घूमना सर्वथा लाभदायक है। आलस्य त्याग कर प्रातः नित्य घूमने जाना चाहिए। जल एक बार बहुत सा नहीं पीना चाहिए, थोड़ा-थोड़ा वार-वार पीना चाहिए, शीतल जल में बैठकर कटिस्नान लाभदायक नहीं है, इसी प्रकार मूत्रल दवाएं भी हितकर नहीं। इसका ध्यान रक्खें; जिन प्रयोगों में निम्न औषधियां हों वे बगैर चिकित्सक की सम्मति के सेवन नहीं करना चाहिए। जैसे गोखरू, अनन्तमूल, शीतलचीनी, कलमीशोरा, नवसादर, जवाखार, पाषाणभेद' कुशकासादि।

के लिए गृहीत लिखित खजूरी संज्ञा को प्रामाणिक समझना चाहिए। इसी प्रकार बुस्तानुल् मुफरेदात के रचियता का बुलूनी को खजूर लिखना कम प्रामादिक नहीं कहा जा सकता। आयुर्वेद में इसका यथेष्ट वर्णन किया गया है। प्राचीन-से-प्राचीन आयुर्वेद के ग्रन्थों यथा चरक, सुश्रुत आदि में इसका वर्णन मिलता है। किन्तु यहां पर केवल यूनानी वैद्यकोक्त विवरण अभीष्ट है। अस्तु, आयुर्वेदीय वर्णन के लिए अगले लेख की प्रतीक्षा करें।

तालादि वर्ग (N. O. Palmeae)

उत्पत्ति स्थान—

इसके वृक्ष बंगाल, विहार, कारोमंडलतट, गुजरात, रुहेलखंड, मैसूर इत्यादि प्रदेशों अर्थात् प्रायः समस्त भारतवर्ष में जंगली होते हैं।

वर्णन—

इसके वृक्ष ४०-५० फुट ऊंचे होते हैं। इसकी पेडी ठोस काष्ठ-निर्मित न होकर, तंतु-निर्मित होती है। इसमें २-६ फुट लम्बी डालियां लगती हैं। फल हरा, एक इंच लम्बा, पकने पर कुछ लाल पीले रंग का हो जाता है। फल के गूदे का स्वाद कुछ मधुर कषाय होता है। चैत-वैसाख में इसके पेड़ फूलते हैं और भादों क्वार में फल पकते हैं। इसके पेड़ में एक प्रकार का गोंद लगता है। नाड़ी की भांति इसके पेड़ से भी एक प्रकार का रस निकलता है जिसे सेंधी[1] कहते हैं। इससे सिरका, गुड़ और मद्य भी बनाते हैं।

प्रकृति—द्वितीय कक्षा में उष्ण और प्रथम कक्षा में रूक्ष या प्रथम कक्षा में उष्ण एवं तर। वैद्य शीतल स्निग्ध और कोई गरमी लिये समशीतोष्ण बतलाते हैं। द्वितीय कक्षा में शीतल और रूक्ष है। रंग (फल)—रक्ताभ श्याम व श्यामाभ रक्त। स्वाद-मधुर। अहितकर-खजूर यकृत और प्लीहा में अवरोध और सिर में शूल और वायु (सौदा) उत्पन्न करती है। यह रक्त को दहन करती है। निवारण-अनार का रस, सिकंजबीन, स्नेह तैलादि पोस्ते के बीज और मीठे बादाम की गिरी। वैद्यों के मत से कालीमिरच इसका निवारण है। प्रतिनिधि-किशमिश।

गुण कर्म तथा प्रयोग—यह पाचन और वाजीकरण है तथा वायु और सूजन को विलीन करती, आमाशय और यकृत को बल प्रदान करती, रक्त उत्पन्न करती, शरीर को बृंहित वा स्थूल बनाती और शीतल (तीक्ष्ण) प्रकृति वालों को बहुत ही सात्म्य है। (मख्जन मुफरेदात)।

इसे खाने के पश्चात् पानी से कुल्ली करना चाहिए। अथवा गुलाबजल और सिरका से या सुमाक को पानी में भिगोकर उस पानी से गण्डूष करना चाहिए। क्योंकि मुंह और दांतों में शूल उत्पन्न करती है। (ख० अ०)।

खजूर की गुठली परस्पर विरोधी गुणधर्म युक्त (मुरक्किबुलकुवा) है। इसमें किंचिन्मात्र शीत और अधिक उष्णता है। इसे जलाकर और बारीक चूर्ण करके बुरकने से रक्तस्राव बंद हो जाता है, यह क्षतों को शुद्ध करती है इसके मंजन से दांत स्वच्छ एवं चमकीले हो जाते हैं। म० मु०। इसीलिये दुष्ट व्रणों पर इसका चूर्ण अवचूर्णित करते हैं। खजूर का फूल आमाशय को शक्ति देता है, मलावरोध उत्पन्न करता, दस्त बंद करता और गरमी को शमन करता है। यह रक्तष्ठीवन और रक्तस्राव में लाभकारी है। (खजाइनुल् अदविया)

वैद्यों के मत से❖खजूर शीतनिवारक, तृष्णा-

---

[1] इसे खजूरी भी कहते हैं। कैयदेवनिघंटु में इसका संस्कृत नाम 'खर्जूरिकावृक्षतोयं' (खजूरतोय) लिखा है। भावप्रकाशकार ने इसे 'खर्जूरीतरुतोयं' लिखा है।

❖आयुर्वेद में लिखा है—

मधुरं बृंहणं वृष्यं खर्जूरं गुरु शीतलम्।
क्षयेऽभिघाते दाहे च वातपित्ते च तद्धितम्॥
(च, सू. अ. २७)।

हारक संतापशामक तथा वात पित्त एवं उपवास जन्य मुखशोष को लाभकारी, क्षयरोगनाशक, क्षुधावर्धक और स्वर्ग्य है। (मुहीत आजम)

खजूर का गूदा और चिरचिटे की जड़ को पान के पत्ते में रखकर खाने से शीतज्वर छूटता है। इसके पेड़ का भीतर का भाग पुराने सूजाक को मिटाता है। इसकी जड़ से दातून करने या उसकी राख से मंजन करने से दंतशूल आराम होता है। जड़ के क्वाथ से कुल्लियां करने या इसकी राख से मंजन करने से दंतशूल मिटता है। खजूर का रस (सेंधी) नशा लाता है तथा यह पित्तवर्धक, रुचिकारक, बल्य, शुक्रल वीर्यपुष्टिकर और वातकफनाशक है।

(खजाइनुल अदविया)

पिण्डखजूर

पर्य्या० –(वृक्ष)—पिण्डखजूर, खजूर—हिं०। पिंडि खेजुर-बं०। खजूर-मरा०, पं०, गु०। मच-बलू०। पिंडि चिर्डि–सिंध। कजूर–पश्तु०। फिनिक्स डेक्टिलिफरा *Phoenix dactylifera*, Roxb–ले०। अरेबिअन डेट पॉम *Arabian date palm*, कल्टिह्वेटेड डेट पॉम *Cultivated date palm* एडिबल डेट *Edible date*, लार्ज वा पर्शियन डेट *Large or persian date*—अं०। फोइनिक्स *Phoinix*—यू०। *Dattier (cultive)*–फ्रां०। *Dattel palme*–जर०। *Chhomer jomer (Heb.)* *Dattero palma*–इट०। *Datilera, Datilera palma*—स्पे०। खजूर पंडु, खजूर-पपण्डु–ते०। सिंह इञ्चिलु–कना०। नख्ल, नखील (बहु व०), शज्रतुत्तीब—अ०। दरख्त खुर्मा–फा०।

क्षतक्षयापहं हृद्यं शीतलं तर्पणं गुरु।
रसे पाके च मधुरं खार्जूरं रक्तपित्तनुत्॥
(सु. सू. अ. ४६)।

खर्जूरिका वृक्षतोयं मदपित्तकरं परम्।
वातश्लेष्महरं रुच्यं दीपनं बलशुक्रकृत्॥
(कै. नि.)।

पक्व ताजा फल—पिंड खजूरी, द्वीप्या-सं०। पिंड खजूर, खजूर—हिं०। रुतब, तमर रुतब–अं०। खुर्माएतर, खुर्माए ताजा–फा०। तर व ताजा छुहारा –उ०। कसारकर्सन (मुहीत) कसारकर्नीन (ख०अ०) –रू०।

वक्तव्य–मुहीत में प्रमादवश इसका उच्चारण 'पंडखजूर' लिखा है। रुतब का उच्चारण किसी-किसी ने रतब भी लिखा है। खजूर शब्द से तालीफ शरीफी के रचियता को 'पिंडखजूर' ही अभिप्रेत है। ऐसा उनके लेख से ज्ञात होता है। परन्तु मख्जन के लेखक ने छुहारे का हिंदी नाम खजूर लिखा है।

तालादि वर्ग

(*N. O. Palmeae*)

उत्पत्तिस्थान—पिंड खजूर उत्तरी अफरीका, मिश्र, सीरिया और अरब का आदि निवासी है और यूनान इटली एवं सिसली में इसके पेड़ लगाये भी जाते हैं। अब भारतवर्ष के सिन्ध और पंजाब आदि प्रदेशों मुख्यतया मुलतान में भी इसकी खेती की जाती है। अस्तु नुस्खा सईदी तथा तालीफ शरीफी में लिखा है कि यह प्रायः मुलतान और ठठ की तरफ से (किसी-किसी प्रति के अनुसार मुलतान, अजमेर, सूरत और बम्बई की ओर से) आती है। अरबी में इसे रुतब कहते हैं और रुतब मक्के से आया करता है। गुण में पिंडखजूर रुतब के करीब होती है। उक्त दोनों में केवल यह अन्तर है कि पिंडखजूर भारतीय वृक्ष का फल है और रुतब विदेशीय। सूखे हुए पिंडखजूर वा रुतब को ही छुहारा कहते हैं। अर्थात् छुहारे के साथ उसका वह सम्बन्ध है जो ताजा मेवे को शुष्क मेवे के साथ होता है।

सईदी और प्लेफेयर कृत तालीफ शरीफी के आंग्लानुवाद में इसका नाम भूमखजूर भी लिखा है। परन्तु शरीफी के पर्यालोचन से यह ज्ञात होता है कि ये दोनों एक जातीय वृक्ष के दो उपभेद हैं और पहली किस्म दूसरी किस्म से श्रेष्ठतर है। आयुर्वेद

का भी यही मत है। इसके अन्यान्य भेदोपभेद भी होते हैं। मख्जन में पिंडखजूर शब्द देखने को नहीं मिलता।

मुहीत में पिंडखजूर को खजूर का उत्कृष्ट भेद लिखा है और रुतब में इसकी हिंदी संज्ञा पिंड-खजूर और पंडखजूर में खुर्मापतर अर्थात् इसके मत से पिंडखजूर और खुर्मापतर (रुतब) एक ही वस्तु के दो नाम हैं।

वर्णन—तालीफ शरीफी के अनुसार इसका वृक्ष लगभग पाढल वृक्ष के बराबर ऊँचा (सफेयर के अनुवाद में ताड़वृक्षवत् उच्च, खजाइनुल अदविया के अनुसार एक सौ से एक सौ बीस फुट ऊंचा) होता है। पेड़ी दन्दानादार और खुरदरी होती है जिसे हाथ से स्पर्श नहीं किया जा सकता। वृक्ष के सिरे से ही लम्बी और कड़ी पत्तियां निकलती हैं, जिनसे चटाई बनाते हैं। ता० श०। फल पकने पर एक से तीन इञ्च लम्बा प्रायः कुछ लाल या कुछ भूरे रङ्ग का होता है। इसका गूदा मीठा होता है। फागुन और चैत में इसमें पुष्प आते हैं। भादों-क्वार में फल पकते हैं। मादा वृक्षों की अपेक्षा इसके नर वृक्ष कम मिलते हैं। इससे एक प्रकार का गोंद निकलता है जो औषध के काम आता है। ख० अ०।

गुण कर्म तथा प्रयोग—

आयुर्वेद के मतानुसार पिण्डखजूर—शीतल, स्निग्ध और मधुर है तथा अभिघात एवं संन्यास (जर्वः व सक्तः) जन्य वेदनापहारक, रक्तविकारनाशक वा रक्तप्रसादक, वातपित्तनाशक और जराजन्य दौर्बल्य-नाशक है। ता० शा०। यह तृष्णाहारक है तथा पांडुरोग, आमाशय शोथ, क्षय रोग और ज्वर में लाभकारी है। (मुहीत)

यूनानी मतानुसार मक्का से आने वाला रुतब—वाजी-करण, वृक्क एवं पृष्ठ को बलप्रद, शोणितवर्धक, आमाशय बलप्रद और कफज प्रकृति के शीत को दूर करने वाला है। यह अनुभव सिद्ध है। इसके अतिसेवन से अनभ्यासी व्यक्ति के रक्त में दहन प्रारम्भ होजाता है अर्थात् शोणित प्रकोप उत्पन्न हो जाता है। ता० श०। मुहीत में प्रकृति उष्ण और तर इतना अधिक लिखा है।

बादाम की मींग के साथ खाने से यह शरीर को परिबृंहित करती है। पिंडखजूर वाजीकरण है तथा वृक्क एवं कटि को शक्ति प्रदान करती है। इससे खुलकर मलोत्सर्ग होता है। यह रक्तविकार, मूर्च्छा और वायु को लाभकारी, शोणितवर्धक और वृष्य है। यह अर्दित एवं पक्षाघात को लाभकारी और फुफ्फुस एवं वक्ष को सात्म्य है तथा कफज्वर को नष्ट करती और वायु एवं शोथ को विलीन करती है। अनभ्यासी व्यक्तियों में इसके अधिक सेवन से शोणित-प्रकोप उत्पन्न हो जाता है। वैद्य कहते हैं कि इसके गोंद की फंकी देने से दस्त बन्द होते हैं। इसके बीजों को पानी में घिसकर पपोटों पर लेप करने से आंखों की मैल और गदलापन दूर होता है। इसका ताजा रस शीतल एवं मृदुसारक है। इक्षु शर्करा की अपेक्षा एतद्रसजात शर्करा स्वास्थ्य को अधिक स्थिर रखने वाली और हृद्य है। नेत्रपिंड एवं नेत्रशुक्ल भाग की पैत्तिक सूजन मिटाने के लिये नेत्र के ऊपर इसके बीजों का लेप करते हैं। मूत्र और शुक्र सम्बन्धी रोगों को दूर करने के लिये इसका गोंद ब्रह्मास्त्र सिद्ध होता है। पिंडखजूरों के निरंतर सेवन से मसूढ़े व्रणित होजाते हैं। इसके ताजे रस में मिश्री मिलाकर पीने से कृच्छ्रमूत्र आराम होता है। पिंडखजूर खाने से दमे की दुर्गंध जाती रहती है। इसका हलुआ बनाकर खाने से बल बढ़ता है। शरीर को बलिष्ठ करने के लिये इसके फलों का सेवन बहुत गुणकारी है। ख० अ०।

विदेशीय पिंडखजूर वा रुतब

प्रकृति—द्वितीय कक्षा मध्य में उष्ण और प्रथम कक्षा में स्निग्ध। मतांतर से द्वितीय कक्षा में उष्ण एवं तर (इसहाक) मतान्तर से यह द्वितीय कक्षा के प्रथमांश में गरम है। कहते हैं कि तरी की अपेक्षा

इसमें गरमी स्वल्पतर है। जितनी ही इसमें मिठास बढ़ती है इसकी गरमी भी उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है। अहितकर दांत, नेत्र, स्वरयन्त्र और स्वर को हानिप्रद है। अधिक खाने से शिरोशूल उत्पन्न करता है (मख्जन)। मुहीत में मसूढ़ों के लिये भी हानिकर लिखा है। निवारण—काहू, सिरका, सिकंजबीन और खीरा।

गुण धर्म तथा प्रयोग—बादाम की गिरी के साथ इसे नित्य सेवन करने से शरीर अत्यन्त मेदावी और स्थूल होजाता है। यह कामोद्दीपक और वृक्क एवं कटि को शक्तिप्रद तथा मदुसारक है। (मख्जन)

रुतब मअसल

(शहद में पाला हुआ ताजा छुहारा)

विधि-प्रथम ताजे छुहारे लेकर धूप में फैला दें जिसमें थोड़ी आर्द्रता सूख जाय। इसके बाद उसकी पेंदी में छिद्र करके गुठलियाँ निकालकर उनकी जगह बादाम की गिरी रख देवें फिर इन्हें शीशे (व चीनी) के बरतन में भर कर ऊपर इतना शहद डालें कि छुहारे छिप जायँ। उसमें थोड़ी केसर भी पीसकर मिला दें और तीन-तीन दिन के बाद ताजा-ताजा मधु बदलते रहें। यहाँ तक कि सम्पूर्ण द्रवांश निःशेष हो जाय। इसे ही रुतब मअसल कहते हैं।

गुण प्रयोग—इससे गरमी बढ़ जाती है और रतूबत (तरी) कम हो जाती है तथा यह शीतल और तर प्रकृति वाले को सात्म्य है। उक्त प्रकृति का व्यक्ति यदि इसका सेवन करे, तो उसके आमाशय की निर्बलता जाती रहे, अवरोधों का उत्सर्ग हो शुक्र की वृद्धि हो और कामोद्दीपन हो। परंतु इसके सेवन से शिरो शूल उत्पन्न हो जाता है जिसका प्रतिकार गुलाब, खसबीज, काहू और सिरका (मुहीत) सेवन से होजाती है बादाम की गिरी भी इसका दर्पघ्न है।

छुहारा

पर्य्या०—छुहारा, छुवारा, छुआरा, खारक, छोहारा, खारिक, खुरमा—हिं०। खाजूर, खर्मा-बं०। खुर्माए याबिस, तमूर-अ०। खुर्मा, खुर्माए खुश्क फा०। खुर्मा-उ०। कर्मा-तु०। कजूर-पश्तु.। खजूर मरा० कना०। खजूर, खारिक-गु० पेरिच्चङ्काय ता०। कजूरु काय-तं०— तेनिचन् काय मल०— इंदि, जरिख, कुरमा—सिंध। पिंडपं०। खुर्मा-बलु०। सोम्ब्लोञ्जि-ब्रह्म। डेट (*Date*) अं०। फ़राफोमीन (मुहीत) यु०। फित्वीन, फ़साफिनीन (मुहीत) रू०।

वक्तव्य—मख्जन और मुफरिदात् नासिरी में तमूर, मुहीत में खुर्मा और तालीफ शरीफी एवं खजाइनुल अद्वीया में छुहारा शब्द में इसका वर्णन आया है। मख्जन और मुफरिदात नासिरी में इसकी हिन्दी संज्ञाएं खजूर और छुआरा वा छुवारा पर मुहीत में छुवारा एवं खारक लिखी हैं। बुरहान के के अनुसार खारक एक प्रकार का छुवारा है। रशीदी ने फरहंग फारसी में लिखा है कि यह एक प्रकार का छुवारा है जो प्रायः खारक नामक द्वीप और उसके आस-पास के स्थानों में होता है। वास्तव में यह खुर्माए खारक है जिसे प्रायः प्रयोग बाहुल्य से खारक कहने लगे। अन्य ग्रन्थों से यह मालूम होता है कि यह पकने से पूर्व सूखा हुआ छुवारा है जिसे वरशूम एवं कस्ब और खुर्माए संगे शिकन भी कहते हैं। उदयपुर में छुवारे को खारक कहते हैं। यह प्रागुक्त खारकका ही अपभ्रंश है जिसे खुर्माए खरक भी कहते हैं। खरक खारक का संक्षिप्त रूप है। कोई कोई कच्चे छुवारे को भी खरक कहते हैं।

वर्णनादि—विदेशीय पिंडखजूर वृक्ष का सूखा हुआ पक्व फल अर्थात् मेवा जो अंगूठे के बराबर लंबा, बेलनाकार और गावदुमी होता है। यह एक अत्यन्त बारीक एवं स्वच्छ और रक्त वा पीताभ छिलके से आवरित होता है। इसके वृक्ष नर और मादा होते हैं। नर में केवल फूल आता है, फल नहीं आता और मादा में फल भी आता है। उभय प्रकार के वृक्षों में धूलि की भांति एक प्रकार के सूक्ष्म अवयव होते हैं जिन्हें 'कुश्न खुर्मा' कहते हैं जब मादा वृक्ष में फल आना प्रारंभ होता है, तब उसकी अपरिपकावस्था में ही नर की धूलि लेकर मादा के

कच्चे फलों पर छिड़क देते हैं। इससे फल बृहत्तर, मधुर और पुष्ट हो जाता है और गुठली छोटी हो जाती है। इसे जन साधारण की भाषा में 'शादी' कहते हैं। बिना इसके फल अच्छे नहीं हो सकते। इसके वृक्ष ४०-५० फुट तक की ऊंचाई के होते हैं। इसमें २ से ६ फुट लम्बी डालियां लगती हैं। इसका सर्वाङ्ग कषाय रस विशिष्ट होता है। अरब निवासी फल के उत्तरोत्तर वृद्धि क्रमानुसार उत्पत्ति के प्रारम्भ से अन्त तक इसकी सात अवस्थाओं की सात कक्षायें निर्धारित करके उनके पृथक् पृथक् नाम रख देते हैं। यथा—

(१) तल्अ—यह वह अवस्था है, जब फूल में छुहारे जौ के दाने से भी छोटे होते हैं। इसलिए इसे छुवारे का फूल भी कहते हैं। इसे अरबी और फ़ारसी में क्रमशः लीग़ और बहार खुर्मा भी कहते हैं।

(२) बलह्—इस अवस्था में छुवारा बहुत कच्चा होता है। फ़ारसी में इसे 'गोरहे खुर्मा' कहते हैं।

(३) खिलाल—इस अवस्था में छुवारा यद्यपि हरा होता है, तथापि बड़ा हो जाता है और किंचित् मिठास आजाती है। अस्तु, यह थोड़ा कच्चा छुवारा है। किसी-किसी ने इसका उच्चारण 'खलाल' भी किया है।

(४) बुस्र—इस अवस्था में छुवारा गदरा जाता है।

(५) कुस्र—यह वह अवस्था है, जब कि छुवारा पकने से पूर्व सूख जाता है।

(६) रुतब—इस अवस्था में छुवारा तरोताजा होता है (पकने पर जब तक तरोताजा है)। इसके उक्त गुण पिंडखजूर से मिलते-जुलते हैं।

(७) तम्र—इसकी यह अवस्था वस्तुतः वह है जिसे छुवारा कहते हैं अर्थात् रुतब या पिंडखजूर की पक्व शुष्कावस्था। यह अरबी का शब्द है।

फ़ारसी में इसे खुर्मा और हिन्दी में छुवारा और खारक कहते हैं। किसी-किसी ने उक्त कक्षाओं का क्रम कुछ बदल दिया है। अर्थात् उनके क्रमानुसार प्रथम कक्षा में तल्अ, फिर बुस्र, फिर बलह् का हुआ है।

फ़ारस के देश में जहरम एक स्थान है जहां का छुवारा उत्तम होता है। इसके बाद अमान का उत्तम होता है। जहरम के सिवाय छुवारे के अन्यान्य भेदों में से आजाद, सक़तुम और खस्तावी (खुतावी) यथा पूर्व उत्कृष्ट हैं। क्योंकि ये मोटे बारीक छिलके के और अधिक गुदार होते हैं। गुठली छोटी होती है। ये अत्यन्त मधुर एवं रेशारहित होते हैं और रंग ऊपर से पीला होता है।

प्रकृति—द्वितीय कक्षा के प्रथमांश में उष्ण और प्रथम कक्षा में तर है। किसी-किसी ने उष्ण भी प्रथम कक्षा में कहा है। पर गरमी तरी से बढ़ी हुई है। किसी-किसी के मत से यह तर नहीं, अपि तु प्रथम कक्षा में रूक्ष है। अहितकर इसका अधिक सेवन उचित नहीं है, क्योंकि यह सौदाकारक है तथा यकृत् और प्लीहा में अवरोध उत्पन्न करता, रक्त को जलाता, दोषों को दूषित करता और शिरोशूल, दंतशूल, नेत्राभिष्यंद और मुखपाक विशेष (कुलाअ) उत्पन्न करता है। (मख्जन)। इसे निरंतर खाते रहने से दांतों को हानि पहुंचती है, वृक्क और वस्ति में अश्मरी पड़ जाती है और खून जल जाता है। उक्त दोषों का निवारण मधुमिश्र शर्करा वा सिकंजबीन से हो जाता है। यह अवरोधजनक गुरु और दीर्घपाकी है। उष्णप्रधान प्रदेशों के और जिन देशों में छुहारा नहीं होता, वहां के अधिवासियों को इसका अधिक सेवन वर्ज्य है। एतज्जन्य सौदोत्पत्ति, रक्तदाह और दुष्ट दोषों का शमन पूर्व लिखित दर्पघ्न द्रव्यों से होता है। तात्पर्य यह कि उष्ण प्रकृति में बहुशः रोगोत्पादक और शीत प्रकृति में शीतजन्य रोगनाशक और श्लेष्महारक (रतूबात वलियः) है। इसके सेवन का उपयुक्त काल शरद् ऋतु है। इसके अधिक खाने से कण्डू, कच्छु, फोड़े-फुन्सी (दमामील) और कास रोग होजाता है। विशेषतः यकृत और प्लीहा के रोगियों में। (मुहीत)।

निवारण—अनार का रस और सिकंजवीन (यकृत और प्लीहा के रोगी को यह उचित है कि इसे किसी) स्नेह वा पोस्त के दाने व बादाम की गिरी के साथ खाय। इसे खाने के बाद कोष्ण जल से, विशेषकर सुमाक के दाने भिगोकर बनाये हुए फांट से मुख प्रक्षालन करें, इसी प्रकार सिरका, वा गुलाब और सुमाक भिगोकर उससे गण्डूष करें। तरखून चावकर दीर्घकाल तक मुख में धारण किये रखने से दांतों की निर्बलता, मुखपाक और खुनाक (रोहिणी) इनका नाश होता है। शीतल प्रकृति में एतज्जन्य अवरोधों का उद्‌घाटन, निचोड़ कर विरेचन लाने वाले जवारिशों से होता है। (माख्जन)।

प्रतिनिधि—किसी-किसी गुण में मवेज, मुनक्का और किशमिश (ताजा)।

ग्रह—प्रकृति के विचार से वृहस्पति। प्रधान कर्म—यह शोणितवर्द्धक है और शीतल प्रकृति में वाजीकरण है। मात्रा—इच्छानुसार खाया जा सकता है। रोगियों को बलानुसार देवें।

गुण कर्म तथा प्रयोग—यह धातुपोषक (कसीरुल् गिजाऽ) एवं सांद्र रक्त उत्पन्नकर्त्ता है और पक्षाघात, अर्दित और भ्रान्ति को दूर करता, क्षीण वृक्क को शक्ति देता, शरीर को स्थूल एवं परिवृंहित करता, शीतल प्रकृति वालों में वाजीकरण करता, सरदी और कफ के रोगों और कटिशूल को दूर करता, जोड़ों को मृदु करता और शीतल प्रकृति के उरोफुफ्फुस को सात्म्य है। इसके काढ़े में मेथी मिलाकर पीने से कफज्वर दूर होता है और पथरी टूट कर निकल जाती है। यह परीक्षित है। दुर्बल और कृश मनुष्य इसे चावल के साथ पीने से स्थूल हो जाते हैं। छुहारों को विशेषतः थोड़ी दारचीनी के साथ ताजे दुहे हुए दूध में भिगोकर हिम तैयार करें। इसे पीकर ऊपर से धारोष्ण दूध पीने से अनुपम वाजीकरण होता है। कच्चा छुहारा आध्मानकारक, दीर्घपाकी, गुरु एवं अवरोधक है।

(मख्जन)

'मुहीत' में यह विशेष है—यह उष्ण एवं बल्य है एवं यकृत की सरदी दूर करता है। संधियों की कठोरता को दूर करके उसे मृदुल बनाता है। शीतल उरोफुफ्फुस की सरदी दूर करता और उन्हें (दोषों से) शुद्ध करता (सालेह है)। कटि और कूल्हों (वरिक) में यदि चिरकालीन शीतजन्य वेदना होती हो, तो वह इसके खाने से जाती रहती है। शीतल कफज रोगों में मेवा की भांति इसका सेवन उत्तम आहार है। पिण्डखजूर (रुतब) के साथ इसके सेवन से शरीर का वर्ण निखर आता है और शरीर स्थूल हो जाता है। मीठा छुहारा यद्यपि धातुपोषक (कसीरुल् गिजाऽ) है, तथापि यह दीर्घपाकी है और इससे सांद्र, पिच्छिल और उष्ण रक्त उत्पन्न होता है और यकृत, प्लीहा एवं आन्त्र में अवरोध उत्पन्न करता है। विशेषकर खूब मोटा छोहारा कठिन शोथयुक्त यकृत रोगों में और जितने यकृत में अवरोध एवं अन्यान्य व्याधियां उत्पन्न होने की प्रकृति पाई जाय उन में, अत्यन्त हानिप्रद है। इसी प्रकार प्लीहा रोग और उष्ण प्रकृति वाले को तथा जिसमें ज्वर होने की प्रकृति पाई जाय उनको एवं शिरोशूल, नेत्राभिष्यंद, मुखपाक (कुलाअ) और रोहिणी (खुनाक) इन रोगों में यह हानिकारक है। क्योंकि इसमें उक्त रोगों के उत्पादन, वर्धन और उत्तेजना का विशेष प्रभाव है। जिनके दांत और मसूढ़े कमजोर हों, उनके मसूढ़ों को और खराब करता है। ऐसे लोगों को चाहिए कि छुहारा खाकर ऐसे मीठे कोष्ण जल से कुल्ली कर डालें जिसमें सुमाक डालकर पकाया गया हो या सिरके वा गुलाब से कुल्ली करें। जिनकी आंतें स्वस्थ हों और प्रकृति शीतल हो, वे इससे भरपूर लाभ उठाते हैं। यदि इसके साथ बादाम की गिरी और पोस्ते के दाने भी खायं, तो अत्यधिक उपकार हो। 'गीलानी' कहते हैं कि यह अनुत्कृष्ट आहार है क्योंकि इसका जो पोषणांश शरीर में प्रविष्ट होता है, वह सांद्र होता है और आमाशय द्वार में क्षोभ पैदा करता है। उष्ण प्रकृति वालों को इससे परहेज करना चाहिए। यदि इसे खाना ही पड़े

तो तज्जन्य दोषों के निवारणार्थ इसे खाकर ऊपर सादा सिकंजवीन शकरी पिये या खट्टे अनार के दाने खाय। सिरका और सिकंजवीन का गंडूष करें। इसके ऊपर शर्करा निर्मित मद्य सेवन अनिष्टकर है। इसका काढ़ा थोड़ा कब्ज करता है। यह सांद्राहार (गलीजुल् गिजाऽ) और मृदुसारक (मुलय्यिन तवअ) है। दुष्ट क्षतों में इसे कूट-पीसकर लेप करने से लाभ होता है। विशेषतया पीस कर लेप करने से बहुत उपकार होता है। इसे अधिक खाने से खर्जू उत्पन्न हो जाता है। ढीले जोड़ मजबूत हो जाते हैं। इसका उसारा पीने से शीतल आमाशय और यकृत को उष्णता प्राप्त होती है। इसे दूध के साथ खाने से अधिक रक्त उत्पन्न होता है और धातुओं का पोषण एवं संतर्पण होता है। इसे कूट-पीसकर शराब अफस के साथ सेवन करने से अतिसार और श्वेतप्रदर और अर्श का खून बन्द हो जाता है। शराब विशेष (वज़्माली) के साथ इसका काढ़ा पीने से शरीर के भीतर की सूजन (इल्तिहाब बदन) का उपशय होता है और शरीर की अग्नि (हरारत गरीजी) को बल प्राप्त होता है इसी प्रकार इसे अकेला सेवन करने से वाजीकरण होता है। इसका काढ़ा और मद्य पीने से पथरी टूट कर निकल जाती है। इसके क्वाथ के साथ चावल खाना प्रसवशोणितस्रावयुक्ता स्त्री को सात्म्य है। कूटा और कुचला हुआ दरदरा छुहारा गुण में बलवत्तर होता है। बारीक पिसा हुआ अपनी शक्ति से परम काबिज़ बन जाता है। घिसकर थोड़े से मुरदासंग के साथ चना प्रमाण की गोलियां बनाकर बालकों को देने अतिसार बन्द होजाता है। विवृद्ध प्लीहा रोगी को छुहारा अपथ्यकर एवं वर्ज्य है।

खजाइन में यह विशेष है—छुहारों को सुई से छेद करके ताजे दूध में भिगो दें। जब मुलायम पड़ जाय; तब निकाल कर एक दिवस शहद में तर रखें। फिर धीरे-धीरे पोंछकर, काम में लेवें। बस तरोताजा छुहारा (रुतब) तैयार समझें।+

वैद्य कहते हैं कि छुहारा दूध के साथ खाने से वाजीकरण है। इसे कूटकर अकेल या सालममिश्री (स्टेफेयर के मत से सालम *salep* और मिश्री *sugar*) और इसी की तरह (अन्य वाजीकरण) औषध के साथ इतना पकायें कि तिहाई चौथाई वा आधा जल जाय, फिर इसे उपयोग करें। यदि यह पच जाय, तो शरीर स्थौल्यकरण और वाजीकरण के लिये परमोपयोगी सिद्ध होता है। इसे भूनकर और विशेषत: अफीम के साथ सेवन करने से यह धारक है। अतिसार को नष्ट करता है। उसके लिये परीक्षित है। (ता० श०) मुहीत।

छुहारा शीतल, मधुर, स्निग्ध, रुचव्न, रक्तपित्त वात तथा मद (मस्ती) और प्रेम (इश्क)……है।… सुलेमानी छोहारा क्लम, अन्यथा ज्ञान (वसवास), शोणित और पित्त प्रकोप तथा प्रेमोन्माद को शमन करता है। (मुहीत)

अब मैं कहता हूँ कि वैद्य कहते हैं कि छुहारा हिन्दुस्तान में पैदा नहीं होता, बाहर के देश से आता है। इर खजूर और पिंडखजूर प्रायः समान गुणधर्म रखते हैं। खजूर निर्बल किस्म है। तीनों शीतल, रस और विपाक में मीठे और स्निग्ध हैं तथा क्षुधाजनक, हृद्य और उरःक्षतरोग नाशक हैं। इनके खाने से आराम और उल्लास प्राप्त होता है। ये रक्तपित्तनाशक शरीरपुष्टकर, बल्य, स्थौल्यकर और वाजीकरण है तथा श्वास, मद और मूर्च्छा, वादी, कफ, कास और ज्वर इनको नष्ट करते हैं। छुवारों को दूध में औटाकर पिलाने से प्रतिश्याय आराम होता है। स्वेदन के लिये उक्त विधि परमोपयोगी है। छुवारा, सतावर और मिश्री इनको औटाकर पीने से शुष्क कास आराम होता है। छुवारे में अफीम और जायफल चूर्ण भरकर पुटपाक

—शेषांश पृष्ठ ६[illegible] पर।

+रुतब (ताजा छुहारा) को लोहे के बरतन में रखकर मजबूती से मुख बन्द करके गाड़ देने के बाद जब खोलेंगे, तब ताजे छुहारे प्राप्त होंगे।
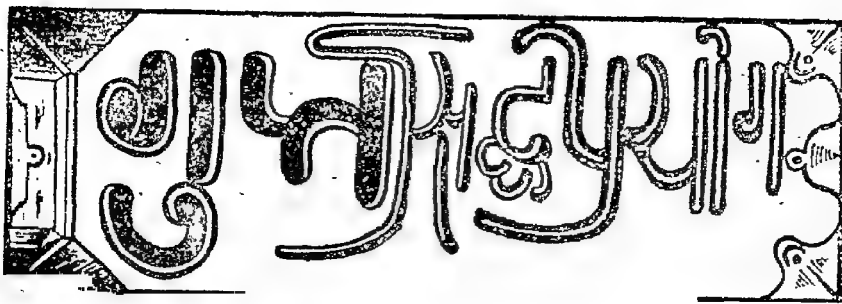
भिषग्रत्न वैद्य पं० गणेशदत्त पाण्डेय

श्री गणेश आयुर्विज्ञान शाला, ग्वालटोली, कानपुर।

"श्री० पाण्डेय जी ने अपने चिर-परिचित प्रयोग प्रकाशनार्थ भेजकर हमको आभारी किया है। आपके प्रयोग उपयोगी प्रतीत होते हैं, पाठक व्यवहार में लाकर लाभ उठावें।"

—सम्पादक।
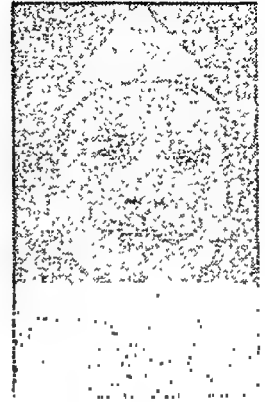
१ श्वासनाशक चूर्ण—

छोटीपीपल कालफल काकड़ासिंगी

—तीनों समभाग मिलाकर कपड़-छन चूर्ण करें।

मात्रा—४ से ६ रत्ती। २-२ घण्टे पर दिन में ४ बार।

अनुपान—शहद।

गुण—इससे श्वासावरोध श्वासवेग शमन होता है। आसानी से कफ निकलता है।

२ श्वासदमन चूर्ण—

शुद्ध मैनसिल भुनी हींग वायविडंग

कूठ काली मिर्च सेंधानमक

—समभाग मिलाकर कपड़छन चूर्ण करे।

मात्रा—१-१ माशे, २-२ घण्टे पर।

अनुपान—शहद ६ माशा। इस औषधि में कूठ है इसलिए यह कण्ठ को पकड़ती है। अतः त्रिदोष प्रकोप न हो तो थोड़ा घी मिलाकर दें।

गुण—श्वास प्रकोप कफ हिक्का का दमन करता है।

३ मूर्च्छानाशक योग—

आंवलासार गन्धक सैंधा नमक

—समभाग मिलाकर नीबू के रस में १२ घंटे खरल कर सूखा चूर्ण कर लेवे। उसमें से सलाई द्वारा नेत्रों में अंजन करने से तन्द्रा और बेहोशी दूर हो जाती है।

४ अरुचिनाशक योग—

सेंधा नमक सोंठ काली मिर्च पीपल

—इन सबको अदरख के रस में मिलाकर चाटने से मुंह का स्वाद ठीक हो जाता है। मुंह में दुर्गंध और चिपचिपापन हो तो वह भी दूर होजाता है।

५ कमलादि फाण्ट—

कमल के फूल खस सफेद चन्दन

लाल चन्दन मिश्री काली अनन्तमूल

नागरमोथा मुलैठी (मोरेठी)

—सबको समभाग मिलाकर जौकुट चूर्ण करे, फिर उसमें से २ तोला लेकर ६४ तोला खौलते हुये जल में डालकर शीतल होने तक ढंक कर रख देवे। फिर कपड़े से छानकर ज्वरावस्था में तृषा पीड़ित को थोड़ा-थोड़ा जल पिलाते रहें। यह फाण्ट हृदयरक्षक, दाहशामक, तृषानाशक मूत्रल और विषहर है। यह तृषा-पीड़ित के लिये अति हितकर है।

शेषांश पृष्ठ ६७- पर

चिकित्सक-रघुवरदयाल याज्ञिक वैद्य विशा.

मु० मालवीनगर, कोंच ।

"श्री याज्ञिक जी वयोवृद्ध अनुभवी चिकित्सक है । आप गत २५ वर्षों से चिकित्सा व्यवसाय कर रहे हैं तथा अच्छी सफलता प्राप्त की है । आपके ये सरल प्रयोग अवश्य लाभप्रद प्रमाणित होंगे एसी आशा है ।"

—सम्पादक ।
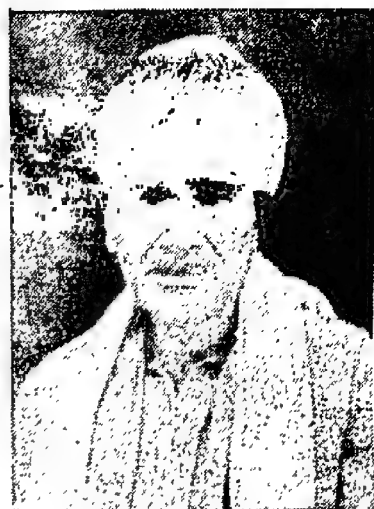
१ प्रसव वेदना—

अगर बच्चा होने में देर हो रहीहो—तो २॥ काली मिरच २॥ पत्ता अजाभारे (लटजोरे या अपामार्ग) घोट पीसकर २॥ तोला पानी में मिलाकर पिला देवें। एक या १॥ घंटे में बचा सुखपूर्वक पैदा हो जावेगा। कई बार का परिक्षित है।

२ व्रण भेदनार्थ—

चूना कलई का	१ माषा
साबुन	१ माशा
शहद	४ रत्ती

—तीनों को पीस कर पक्के हुए फोड़ा के मुंह के ऊपर रख देवें तो १० मिनट में फोड़ा फूट जावेगा।

३ विषमज्वरांतक वटी—

नीम की छाल का सत	कंजा की मिंगी
गिलोयसत्व	चिरायते का सत
पीपल का सत गौदन्ती तथा कसीस की भस्म	
अतीस	फिटकरी की भस्म
कुटकी	—प्रत्येक ६-६ माषा

—इन सबको कूट-पीस कर कपड़छान कर तुलसीपत्र स्वरस की भावना देवे, फिर गूमा के रस की भावना देवें, फिर करेला के रस की भावना देकर एक-एक रत्ती गोली बना लेवें।

अनुपान—गर्म पानी से ३ मात्रा दें।

गुण—इससे सर्व प्रकार का ज्वर अच्छा हो जाता है। ३-४ बार दिन में दवा खाना चाहिए।

४ शिर दर्द की दवा—

चूने का पानी	१ पाव
एमोनिया लाईकर	५ तोला
युकेलिपटिस आयल	१ तोला
कपूर	६ माषा
नौसादर टिकड़ी का	३ माषा

—चूना कलई का ५तोला १ पाव पानी घोलकर पानी नितार लेवें और सबको मिलाकर कार्क लगाकर रख देवें और छोटी-छोटी शीशियों में भरकर रख लेवें। किसी प्रकार का दर्द होकान का दर्द, दाढ़ का दर्द, शिर का दर्द, शीशी हिला कर सुंघाने मात्र से दर्द जाता रहता है। और जहरीले जानवर के काटने पर भी लगाया जाता है जैसे कि बिच्छू, मधुमक्खी, ततैया इत्यादि पर फुरैरी से लगाने से दर्द व जलन अच्छा होजाता है।

वैद्य बलिराम क्षत्रीय

मु० पो० चांदवड (नासिक)
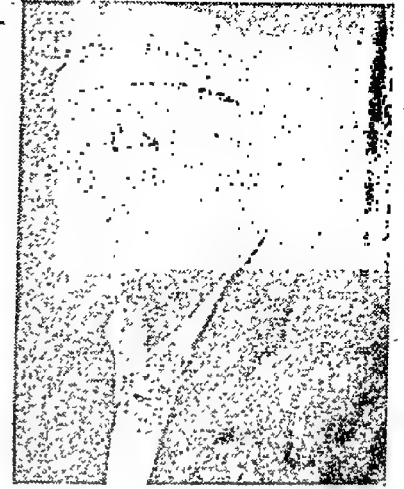
"श्री वैद्य जी योग्य नवयुवक चिकित्सक हैं। आप गत १५ वर्ष से चिकित्सा व्यवसाय कर रहे हैं तथा आपने धन्वन्तरि की आयुर्वेद-समाज के लिए उपयोगिता से प्रभावित होकर अपने ५ अनुभूत प्रयोग भेज कर अपनी उदारता का परिचय दिया है।" —सम्पादक।

१ नन्दचूर्ण—

लताकरंज बीजों की गिरी (थोडीभून कर) २ तो.

कुटकी आमाहल्दी डिकामालि
कालाजीरा कालानमक सेंधानमक
—प्रत्येक १-१ तोला

निर्माण विधि—उक्त सब द्रव्यों को कूटकर कपड़ छान चूर्ण करके ३ घंटा खरल में अच्छी तरह घोटकर शीशी में भरकर रख लें।

मात्रा—बड़ों के लिये १ से २ माषे तक, दिन में ३ बार गरम पानी के अनुपान से देवें। छोटे बालकों को १ रत्ती से ४ रत्ती तक दिन में ३ बार मां का दूध या शहद या गरम पानी से।

उपयोग—सब प्रकार के ज्वर, विषमज्वर, पांडु, यकृत, प्लीहा वृद्धि, शूल, रक्तदोष, शोथ, अग्निमांद्य, जीर्णज्वर, आध्मान, अजीर्ण इत्यादि पर उपयुक्त है।

२ शूलकुठार चूर्ण—

लताकरंज बीजों की गीरी (भूनकर) १ तो.

सोंठ सेंधानमक काला नमक
—तीनों ६-६ माषा।

सोहागे का फूला ३ माषा
हींग (घी में भून कर) ६ माषा
यवक्षार ६ माषा
सोडाबाइकार्ब १। तोला

निर्माण विधि—उक्त सब द्रव्यों को कूटकर उसका कपड़छान चूर्ण करे और उसे ३ घंटे खरल में अच्छी तरह घोटकर शीशी में भरकर रखले।

मात्रा—बड़ों के लिये १ से २ माषा तक, दिन में तीन बार गरम जल से देवें। छोटे बालकों को-१ से ४ रत्ती तक दिन में ३ बार, मां का दूध, गरम जल, अजवाइन अर्क या शहद के साथ दें।

उपयोग—सब प्रकार के शूल, अग्निमांद्य, अरुचि, जी मिचलाना, कृमि, अफारा, गुल्मशूल, छर्दी, आमाशय शूल, स्त्रियों का ऋतुकालीन शूल, प्रसूति के बाद का शूल, मक्कलशूल, इत्यादि रोगों पर इस चूर्ण का अतीव उपयोग होता है।

३ डब्बानाशक गुटिका—

शु० जयपाल रेवाचीनी शीरा
हींग (घी में भूनकर) सुहागे का फूला
—प्रत्येक १-१ तोला

सोंठ गौरोचन ६-६ माषा

निर्माण विधि—उपरोक्त सब द्रव्यों का कपड़छान चूर्ण करके उसको खरल में लेकर करेले के रस में ३ घंटे घोटकर आधा रत्ती की गोली बनावे, छाया शुष्क करके रख लेवें।

मात्रा–१ से २ गोली तक, दिन में १ या २ बार, करेले का रस, हल्दी का चूर्ण, शहद या मां का दूध।

उपयोग—इस वटिका का बालकों के डब्बा रोग में अच्छा उपयोग होता है।

४ श्वास कुठाररस–

शु० संखिया १ तोला लेकर उसे थूअर के दूध में ३ घंटे खरल कर उसकी टिकिया बना लेवे।

निर्माण विधि–पीपल वृक्ष के झाड़ के ऊपर की छाल लाकर उसको जलावे उसकी सफेद राख करे फिर एक मिट्टी का शरवा लेकर उसके अंदर वह राख बिछादे, दो अंगुल राख होने के बाद उस पर संखिया की बनाई हुई टिकिया रखकर फिर उसके ऊपर और दो अंगुल राख रख दें। और अच्छी तरह दबा देवें बाद में उस पर दूसरा शराव रख कर उसका मुंह पहले उडद के आटे से अच्छी तरह बन्द करके फिर ऊपर से सात कपड़मिट्टी करे (मुलतानी मिट्टी में कपड़ा भिगोकर करे) फिर उसको कुक्कुट पुट में फूंक दें, स्वांग शीतल होने पर उस संखिया को निकाल कर खरल में घोंटकर शीशी में भर कर रखलें।

मात्रा—आधा चावल से १ चावल तक।

अनुपान—मलाई, मक्खन, या शहद के साथ दिन में २ बार।

उपयोग—श्वास, कास, कफ वात, ज्वर उपदंश इत्यादि पर अति उपयुक्त है।

नोट–पित्त प्रकृति के बालकों को प्रवालपिष्टी गुलवेल (गिलोय) सत्व के साथ देवे।

(५) नेत्रबिंदु—

सफेद फिटकरी का लावा	६ माषा
रसांजन	१ तोला
बोरिक एसिड	९ माषा
पोटाश परमेंगनेट	आधी रत्ती
उत्तम भीमसेनी कपूर	६ माषा
केशर	३ माषा
उत्तम गुलाबजल	१० तोला

निर्माण विधि—पहिले गुलाबजल में बोरिक एसि[ड] अच्छी तरह मिलाले फिर उसमें केशर भिगोदे बाद में रसांजन मिलाले, और फिटकरी क[ा] लावा और भीमसेनी कपूर मिला सबके पी[छे] पोटाश परमेंटनेट मिला दे। फिर उस मिश्र[ण] को अच्छे बड़े खरल में ३ घंटे घोटें, घोटने [के] बाद उसे फिल्टर पेपर से या ऊनी वस्त्र [से] छानकर शीशी में रखें।

उपयोग—प्रातः सायं २-२ बूंद आंखों में डालने [से] सब प्रकार के नेत्राभिष्यंद, नेत्रों का शोथ, लाल[ी] जलन, रोहे इत्यादि नष्ट होते हैं।

पृष्ठ ६७१ का शेषांश

६ गुडूच्यादि क्वाथ—

नीम गिलोय नीम की अन्तर छाल
नया पद्माख लाल चन्दन धनियां

—इन पांच औषधियों को समभाग मिलाकर ज[ौ] कुट चूर्ण करे। इसमें से ४ तोले का क्वाथ करे फिर ४ हिस्सा करे। आवश्यकतानुसार १-२[-३] या ४ बार पिलावे। यह क्वाथ पित्त-कफ प्रधा[न] ज्वर पर प्रयोजित होता है। जिन रोगियों [को] अपचन हो, आमाशय की श्लैष्मिक कला [में] प्रदाह होने से उबाक या वमन आती ह[ै] उनके लिए यह अति हितावह है। इस क्व[ाथ] के सेवन से विष जल जाता है। कीटाणु न[ष्ट] हो जाते हैं और पचन क्रिया सुधर जाती ह[ै] दाह उबाक तृषा वमन और अरुचि दूर हो जा[ती] है। एवं प्रस्वेद आकर ज्वर निवृत्त हो जाता [है]।

डा० जयदेव जैन A. S. U.

वीर भवन, हिसार।

"आपने आयुर्वेद विद्यापीठ से आयुर्वेद भिषक् परीक्षा उत्तीर्ण की है। प्रसिद्ध काश्मीरी वैद्य स्वर्गीय पं० दुलीचन्द्र जी के शिष्य हैं। आप जयपुर एवं पंजाब दोनों स्थानों से रजिस्टर्ड हैं तथा योग्य चिकित्सक हैं। आपके निम्न प्रयोगों की पाठक परीक्षा अवश्य करें।" —सम्पादक।

१–सफेद सुर्मा १ सेर कूट-छान कर खरल में डाल ३ भावनाएँ बकरी के दूध की देकर सुखा टिकड़ी २ २ तोला की बना लो, फिर उसे एक हांडी में अपामार्ग की लुगदी १ सेर के करीब नीचे-ऊपर रखकर कपड़मिट्टी करो और ३० अरने उपलों के मध्य रख कर पुट दे दो, स्वांग शीतल होने पर निकाल खरल कर टिकियों को पीस कर रख लो।

मात्रा—१ रत्ती से ४ रत्ती तक।

अनुपान—अर्क गुलाब या सादा जल।

गुण—दिमाग के रोगों के लिए अकसीर है, सिर में चक्कर आना (सिर में दर्द नहीं) दिमाग की गर्मी, बच्चों के कमेड़े, मिर्गी, मूर्च्छा व उन्माद आदि में प्रयोग करना चाहिए।

२–सर्पगन्धा की जड़ की छाल	५ तोला
वच	५ तोला
काली मिर्च	१ तोला
रससिंदूर	१ तोला

—पीस-कूट कर ब्राह्मी रस की २ भावना देकर मटर के दाने बराबर गोली बनाओ।

अनुपान—अर्कगुलाब ५ तोला के साथ प्रातः १० बजे तथा सायंकाल ४ बजे २-२ गोली।

रोग—ब्लडप्रेशर (रक्तचापाधिक्य) के लिए अनुभूत है। उन्माद आदि में भी अच्छा लाभ करती है।

३–सत गिलोय	१० तोला
वंसलोचन	२ तोला
इलायची छोटी के बीज	२ तोला
अभ्रक भस्म	२ तोला
शङ्ख भस्म	२ तोला
मुक्ताशुक्ती भस्म	२ तोला
मिश्री	२० तोला

—कूट पीस कर रख लें।

गुण—साधारण निर्बलता के लिए ज्वर के बाद की निर्बलता, मोतीझला के ठीक होने के पश्चात् २ माह तक इसका सेवन कराने से बड़ा लाभ होता है। पित्तज रोगों में प्रयोग करें।

४–काला नमक १२ तोला-कूट छान कर १ सेर नीबू के रस में कलईदार वर्तन में मध्यम अग्नि से पकावें, उफान आयेंगे, जब खूब उफान आने लगें तो पहले से निम्न वस्तुओं का तय्यार किया चूर्ण—

सोंठ मिर्च पीपल
जीरा सफेद जीरा काला अकरकरा
सौभाग्य पुष्प २-२ तोला मिश्री १२ तोला

—कपड़छान कर अग्नि पर गर्म होते हुए नीम्बू रस व काले नमक में डालो और गोली बनने लायक गाढ़ा होने पर चने प्रमाण गोली बनाओ। चूसने के लिए प्रयोग करो, गर्म पानी से भी दे सकते हैं।

गुण—मन्दाग्नि, अरुचि, अजीर्ण, आध्मान आदि में लाभप्रद प्रमाणित हैं।

समाचार एवं सूचनाएं

यू० पी० सरकार का पुरुष्कार

कैंसर की आयुर्वेद चिकित्सा पुस्तक ‡ पर उसके लेखक श्री. कविराज डा० प्रभाकर चटर्जी राजवैद्य M. A., D. Sc. आयुर्वेद वाचस्पति कलकत्ता को युक्त प्रान्तीय आयुर्वेद एवं यूनानी एकेडेमी द्वारा द्वितीय पुरस्कार स्वरूप २००) भेंट किए गए हैं। श्री. डा० चटर्जी सर्व प्रथम बङ्गाली कविराज हैं जिनको यह पुरस्कार मिला है।

शाहाबाद जिला वैद्य सम्मेलन

तृतीयाधिवेशन बक्सर में सम्पन्न

दिनांक ३१ मार्च व १ अप्रैल १९५६ को शाहाबाद जिला वैद्य सम्मेलन का तृतीयाधिवेशन आरा नगर के लब्ध प्रतिष्ठित चिकित्सक वैद्य श्री: राजेन्द्रदत्त जी तिवारी आयुर्वेदाचार्य की अध्यक्षता में बड़े समारोह एवं सफलतापूर्वक धरिक्षणा कुंअरी धर्मशाला बक्सर में सम्पन्न हुआ। ३१ मार्च को प्रात: ७ बजे धन्वन्तरि पूजन बड़े समारोह के साथ विहार के सुप्रसिद्ध विद्वान् वैदिक पं० आचार्य जगदानन्द जी शास्त्री वेद-वेदान्त व्याकरण-सहित्याचार्य जी ने कराया। तदुनन्तर धन्वन्तरि झण्डोतोलन अध्यक्ष महोदय द्वारा किया गया। इस अवसर पर आयोजित विशाल आयुर्वेदीय प्रदर्शनी (जिसमें गर्भ के विभिन्न स्थितियों के प्रत्यक्ष माडल तथा अन्यान्य आयुर्वेद सम्बन्धी उपयोगी चीजें, जड़ी बूटियां रखी गयीं थी) का उद्‌घाटन विहार विधान सभा के अध्यक्ष श्री. विन्देश्वरी प्रसाद जी वर्मा के कर कमलों द्वारा १ बजे दिन में सम्पन्न हुआ। ३ बजे दिन में जिला कार्य समिति की बैठक हुई जिसमें महत्त्वपूर्ण विचार विनिमय हुए। और आयुर्वेद के विकाश एवं प्रसार के लिए अनेक प्रस्ताव आये। रात्रि को ६ बजे से जिले के कोने कोने से आए हुए ४०० वैद्यों ने एक विचार गोष्ठी की जिसमें नाड़ी विज्ञान, त्रिदोष विज्ञान एवं अन्यान्य विषयों पर अपना-अपना मत एवं भाषण दिये।

१ अप्रैल को १ बजे दिन से खुले अधिवेशन की कार्यवाही सुसज्जित एवं विशाल पण्डाल में शुरू हुई। सर्व प्रथम ईश-बन्दना वेद के प्रकाण्ड विद्वान् आचार्य जगदानन्द जी शास्त्री वैद्य महोदय ने वैदिक मन्त्रों द्वारा की। स्वागत गान कविवर पं० कमलाप्रसाद मिश्र 'विप्र' महोदय ने किया। तदनन्तर स्वागताध्यक्ष पं० विष्णुदत्त जी पाण्डेय वैद्य बक्सर ने अपना मुद्रित स्वागत भाषण पढ़ कर सुनाया। तत्पश्चात् विहार सरकार के भू० पू० चिकित्सा मन्त्री माननीय पं० विनोदानन्द जी झा ने खुले अधिवेशन का उद्‌घाटन किया एवं एक महत्वपूर्ण भाषण दिया जिसमें उन्होंने आयुर्वेद की उपयोगिता सिद्ध की। उद्‌घाटन भाषण के बाद आयुर्वेद जगत के नेताओं, राजकीय अधिकारियों तथा आयुर्वेद प्रेमियों के आई हुई शुभकामनाओं को स्वागत मंत्री पं० कमलकान्त जी शर्मा

(पृष्ठ ६७० का शेषांश)

में पकाकर गोलियां बनाकर एक-एक रत्ती खिलाने से अतिसार बन्द हो जाता है। छुवारा और सोंठ को पान में रखकर खिलाने से श्वास आराम होता है। छुवारे को कागजी नींबू के रस में भिगोकर उसमें लवण और गरम मसाला मिलाकर अचार बनाकर खाने से अरुचि का नाश होता है। इसके अचार को खटमिट्ठा बनाने के लिए उसमें चीनी वा चीनी की चाशनी मिलाते हैं। उससे भी भूख पैदा होती है। (ख० अ०)

‡यह पुस्तक धन्वन्तरि कार्यालय से भी मिल सकती है। मूल्य ५) मात्र है।

ने पढ़कर सुनाया। भारत के उपराष्ट्रपति डा. राधाकृष्णन, रामपुर आयुर्वेदिक कालेज के आचार्य पं० शुकदेव शर्मा, प्रसिद्ध लेखक श्री रणजितराय देसाई सूरत तथा झांसी के पं० रामनरायण जी शर्मा वैद्य महोदय का नाम शुभकामना भेजने वाले में उल्लेखनीय है। इसके उपरांत सभापति वैद्य पं० राजेन्द्रदत्त जी तिवारी आयुर्वेदाचार्य का सारगर्भित सामयिक भाषण हुआ। अध्यक्षीय भाषण के बाद प्रधान मंत्री कविराज नन्द जी प्रसाद गुप्ता ने वार्षिक रिपोर्ट सुनाई एवं सहयोगियों का अभिनन्दन किया। वार्षिक रिपोर्ट के पश्चात विहार प्रान्तीय वैद्य सम्मेलन के सभापति एवं आयुर्वेद शास्त्र के प्रकांड विद्वान त्रिपाठी, कमलाप्रसाद मणि महोदय का विद्वत्तापूर्ण भाषण हुआ। आपने अपने विद्वतापूर्ण भाषण में आयुर्वेद के विभिन्न पहलुओं पर सुन्दर प्रकाश डाला। सम्मेलन में आयुर्वेद के विकाश, प्रसार एवं उन्नति के लिये अनेक महत्वपूर्ण प्रस्ताव पास हुए। इस अवसर पर निम्नलिखित वैद्यों को उनके निबन्धों, पुस्तकों तथा औषधि निर्माण सम्बन्धी विषयों पर प्रशंसापत्र और पदक दिये गये।

(१) पं० कमला प्रसाद मिश्र "विप्र" (२) आचार्य जगदानन्द जो शास्त्री (३) पं० रुद्रदत्त जी द्विवेदी (३) पं० आशुतोषदत्त तिवारी (४) पं० सिद्धनाथ त्रिपाठी (५) डा. मिथिलेश कुमारी जी वैद्या (६) पं. विश्वनाथ जी मिश्र (७) श्री प्रहलाद चन्द्र पोद्दार (८) पं० विद्यापति जी चतुर्वेदी (९) श्री रामेश्वरराय (१०) पं० भुवनेश्वर उपाध्याय।

करीब ४०० प्रतिनिधि और प्रतिष्ठित नागरिक सम्मेलन में पधारे। ८ हजार लोगों ने प्रदर्शनी का अवलोकन किया। अन्त में धन्यवाद के बाद सभा समाप्त हुई। —एन० सी० गुप्ता।

पटना राजकीय आयुर्वेदिक महाविद्यालय नव-भवन का

उपराष्ट्रपति द्वारा शिलान्यास

राजकीय आयुर्वेदिक महाविद्यालय के नवीन भवन एवं आयुर्वेदिक अस्पताल का शिलान्यास बड़ी धूम-धाम से २० मार्च को ४ बजे सन्ध्या समय भारत के उपराष्ट्रपति महान् दार्शनिक डा० सर्वपल्ली राधाकृष्णन् के कर-कमलों से हुआ।

कालेज भवन के सुसज्जित एवं पटना के प्रमुख नागरिकों, प्रान्त के अधिकारियों, और विधायकों से परिपूर्ण पंडाल में बिहार के राज्यपाल, मुख्य मन्त्री डा० श्रीकृष्णसिंह, स्वास्थ्य मन्त्री पं० हरिनाथ मिश्र आदि के साथ पधारे।

प्रारम्भ में प्रोफेसर नन्दकिशोर मिश्र रचित धन्वन्तरि-गीतिः को सुमधुर स्वर से कालेज के छात्र-छात्राओं ने गाया। कालेज के प्राचार्य एवं देशी चिकित्सा के अधिक्षक पं० हजारीलाल शुक्ल ने कालेज के विवरण में बतलाया कि उत्तर भारत का यह सर्व प्रथम सरकारी आयुर्वेदिक कालेज है। इसकी स्थापना १९२६ ई० में वैद्यरत्न पं० बृजविहारी चतुर्वेदी के प्रयत्न से हुई थी। अब तक ५०६ आयुर्वेदिक ग्रेजुएट यहां से निकले हैं।

सभापति पद से स्वास्थ्य मन्त्री ने कहा कि इस कालेज की स्थापना से पहले बिहार में आयुर्वेद की सुव्यवस्थित पढ़ाई की व्यवस्था न थी। करीब ३० वर्षों में कालेज इतना समुन्नत हो गया कि उसके पुराने भवन में कार्य न चलता देखकर बिहार सरकार ने बीस लाख रु० स्वीकृत कर इसके लिए व्याख्यान कक्ष, प्रशासन कक्ष, १०८ सीटों का आतुरालय, छात्र और छात्राओं के लिए आधुनिक ढंग का छात्रावास बनाना निश्चय किया है। सौभाग्य है कि इसके लिए विश्वविख्यात शिक्षा-शास्त्री तथा विचारक राजनीतिज्ञ डा० राधाकृष्णन् महोदय शिलान्यास करना स्वीकार कर पधारे हैं। आशा है इस नई व्यवस्था से आयुर्वेद और आधुनिक चिकित्सा विज्ञान का उच्च से उच्च व्यावहारिक शिक्षा दी जा सकेगी और यहां से आयुर्वेद के अच्छे चिकित्सक एवं डाक्टर निकल कर देश की उल्लेखनीय सेवा करेंगे।

शिलान्यास करते हुए भारत के उपराष्ट्रपति ने कहा कि आयुर्वेद सिर्फ रोगों की ही चिकित्सा नहीं करता बल्कि इसके द्वारा अच्छी आयु प्राप्त की जाती है जैसा कि इसके नाम से प्रकट है। आयुर्वेद अत्यन्त समुन्नत एवं वैज्ञानिक चिकित्सा रही है। सुश्रुत में सौ यन्त्रों का वर्णन आया है। प्लास्टिक सर्जरी का भी वर्णन आया है। आयुर्वेद की अवनति का कारण देश की उथल-पुथल तो है ही वैद्यों में इस सम्बन्ध में नये आविष्कार करना बन्द कर देना भी है। आयुर्वेद में पूर्ण तत्परता से नवानुसंधान कर चिकित्सा जगत को आज भी अपनी नव-दान से आकर्षित करना चाहिए। इसके चिकित्सा सिद्धान्त वैज्ञानिक हैं फिर भी इसमें आज तक जो नवानुसन्धान चिकित्सा जगत में हुआ है उसे भी विचारपूर्वक आत्मसात करना चाहिए। आयुर्वेद यदि इसमें समर्थ हुआ तो मानवता की अच्छी सेवा कर सकता है।—आचार्य, राज. आ. महाविद्या., पटना।

क्षत्रिय वैद्यसभा शाहपुर का

सम्मेलन सानन्द सम्पन्न

वैद्यों के वेतनस्तर की कटु आलोचना

शाहपुरा, डाक से—क्षत्रिय वैद्य सभा द्वारा आयोजित वैद्य सम्मेलन का उद्घाटन करते हुए राजस्थान आयुर्वेद विभाग के डायरेक्टर श्री प्रेमशंकर भिषगाचार्य ने बाहर से आये हुए सैंकड़ों वैद्यों को आह्वान करते हुए वैद्यों से अपील की कि वे इस द्वितीय पंचवर्षीय योजना में अपने त्याग-तपस्या के साधनों के बल पर आयुर्वेद के बाग को सरसब्ज बनादें। आपने आज आशावादी निर्देशों से यह बताया कि राजस्थान में प्रान्तीय आयुर्वेद के अनुसंधान की ओर एक शक्तिशाली कदम उठाया जारहा है। आपने कहा आज हमारी सरकार आयुर्वेद विकास के लिए मुक्त हस्त से दान देना चाहती है। किन्तु इसमें दान लेने की यो क्षमता अपने परिश्रम से बढ़ानी होगी। आपके वक्तव्य के बाद वैद्य सम्मेलन के संयोजक कविराज मोहनलाल दाधीच ने आयुर्वेद की कई समस्याओं पर प्रकाश डालते हुए बाहर से आये हुए अतिथियों का स्वागत किया और सम्मेलन में आपने वैद्यों से यह आशा कि की यहां बैठकर आयुर्वेद की विकास की बातों को भली प्रकार सोचें। रात में उदयपुर कमिश्नरी वैद्यसभा की महा समिति की बैठक हुई जिसमें अभी भी राजस्थान सरकार द्वारा प्रकाशित वैद्यों के नये स्तर की कटु आलोचना करते हुए सभा के मन्त्री श्री मिश्रीप्रसाद जी ने बताया कि हमारी सरकार एक ओर आयुर्वेद के विकास में वैद्यों को आह्वान करती है, दूसरी ओर ६०) वेतन देकर वे खाने तक को भी पूरा नसीब नहीं होने देती; आपने आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा कि इसी विभाग में उपवैद्य का वेतन ८०), ९०) का है जबकि एक वैद्य ६०) रुपये ही लेता है तो ६ वर्ष तक आयुर्वेद पढ़ने की परेशानी को क्यों लेगा। आपने राजस्थान सरकार से अपील की कि इस नये वेतन स्तर में वैद्यों का वेतन बढ़ाने के बजाय घटाया गया है। राज्य सरकार शीघ्र ही वेतन को बढ़ावे। आपने अन्त में कहा कि "भूखे भजन न होय गोपाला ले लो अपनी कण्ठी माला" इसी प्रकार आज भी भूखे और नंगे क्या आयुर्वेद की सेवा कर सकेंगे, इसलिए एक विशेष प्रस्ताव स्वीकृत किया गया।

दूसरे दिन गांव-गांव से आये हुए हजारों की संख्या में जटिल रोगियों का बोर्ड द्वारा पृथक्-पृथक् रोग निरीक्षण कर चिकित्सा व्यवस्था की गई। ऐसा मालूम पड़ रहा था कि रोगियों का बड़ा भारी मेला लग गया है। दिन में संचालक महोदय आयुर्वेद विभाग ने पारोली ग्राम में औषधालय का शिलान्यास किया। गांव में आयुर्वेद की मांग को व आयुर्वेद के प्रति प्रेम को देखा और संचालक महोदय गद्गद् होगये। इस अधिवेशन में श्री श्यामसुन्दर जी उपसंचालक महोदय के सभापतित्व में कुष्ठ और पाण्डु रोग पर विचार किये गये। शाम को राजस्थान के उप-निर्माण मन्त्री शाहअलीनुद्दीनजी से एक डेपूटेशन मिला जिसमें वैद्य श्री मिश्रीप्रसाद

जी ने अपनी आयुर्वेद की कई स्थितियों को बताते हुए उनको म्यूनिसिपल एक्ट में यह संशोधन करने की प्रार्थना की जिसमें कि आयुर्वेद और यूनानी औषधालयों को खोलने का निषेध था, श्री शाह जी ने आश्वासन दिया कि शीघ्र ही इस नियम में परिवर्तन कर दिया जावेगा और म्यूनिसपलटी आयुर्वेद औषधालय खोलने में स्वतन्त्र रहेगी। आपने बताया कि भीलवाड़ा म्यूनिसपलटी दस हजार रुपया खर्च कर औषधालय खोलने वाली है। इसके बाद कविराज श्री मोहनलाल जी दाधीच ने बाहर से आये हुए वैद्यों को आभार प्रदर्शन करते हुए धन्यवाद अर्पित किया। साथ ही प्रदर्शिनी का विराट आयोजन रहा जिसमें महावीर औषधालय का कार्य सराहनीय रहा।

प्रचार मन्त्री—श्री. मोहनलाल दाधीच।

मंत्री—नि. भा. आयु. विद्यापीठ की सेवा में

दो विचारणीय पत्र

श्रीमान् मंत्री महोदय,

नि० भा० आ० विद्यापीठ, देहली।

सेवा में,

निवेदन है कि कोट्टाकल सम्मेलन में यह प्रस्ताव उपस्थित हुआ था कि सामान्य परीक्षा वालों की सुविधा के लिए संस्कृत मय प्रश्नपत्र का भाषानुवाद श्यामपट पर अनूदित कर दिया जावेगा, पुनः वह प्रस्ताव जनवरी की सम्मेलन पत्रिका में क्यों नहीं रक्खा गया, हमें इससे पूर्ण असन्तोष है, अतः इसका उत्तर किसी व्यापक समाचार पत्र द्वारा प्रचारित करने की कृपा करें।

निखिल भारतीय आ० विद्यापीठ ने अपनी नियमावली में दो प्रकार की परीक्षायें निर्दिष्ट की हैं जिनमें पहले क्रम में आयुर्वेदाचार्य हैं, दूसरे क्रम में अल्प संस्कृतज्ञों के लिए सामान्य परीक्षाऐं आयु० भिषक् वैद्य विशारद तथा वैद्याचार्य हैं। जब कि विशिष्ट परीक्षायें संस्कृत में होने के नाते चार वर्ष में सम्पादन की जाती हैं तो सामान्य परीक्षायें छः वर्ष में समाप्त की जाती हैं, अल्प संस्कृतज्ञ होने के नाते ही सामान्य परीक्षाओं में वैठने वाले अपने छः वर्ष का जीवन लगाते हैं, और उतना ही अधिक व्यय भार सहन करते हैं, यदि वे संस्कृतज्ञ ही हों तो क्यों ड्योढ़ा समय लगावें और क्यों ड्योढ़ा खर्च करें। अतः स्पष्ट है कि वे लोग संस्कृत में कोई विशेष गति नहीं रखते हैं कि जिससे संस्कृतमय प्रश्न पत्रों को वे यथावत् समझ सकें और उनका समुचित उत्तर दे सकें, वे तो आयुर्वेदिक ग्रन्थों के हिन्दी अनुवाद से ही अपना आयुर्वेदिक ज्ञान प्राप्त करते हैं, ऐसी स्थिति में संस्कृतातिरिक्त भाषा की सुविधा का सदुपयोग तभी हो सकता है जब कि ये परीक्षार्थी प्रश्नों को समुचित रूप से समझ लेंवे, अन्यथा इनके जीवन और व्यय से एक खिलवाड़ किया जाना स्वाभाविक है, आज के जनतंत्र में इस प्रकार की व्यवस्थाएं न केवल हास्यास्पद हैं अपि तु घातक भी हैं।

उपसंहार में निवेदन है कि या तो ये सामान्य परीक्षाएं समाप्त कर दी जावें अन्यथा इन परीक्षार्थियों के लिए प्रश्नपत्र भी ज्ञेय भाषा में होने चाहिए ताकि वे प्रश्नों का समुचित उत्तर देकर अपने जीवन व व्यय को सफल बनायें, आज के इस बेकारी के युग में इस प्रकार की खिलवाड़ किसी को भी सम्भव नहीं होगी।

निवेदक—
समागत–अध्यापक वर्ग,
मथुरा केन्द्र।

एलोपैथिक पुस्तकें हिन्दी में

वैद्य-हकीमों को भी एलोपैथिक चिकित्सा विज्ञान का थोड़ा ज्ञान होना सम्प्राप्ति आवश्यक है। जो वैद्य हकीम अंग्रेजी भाषा की पुस्तकों को नहीं समझ सकते उनको चाहिए कि वे इन हिन्दी की पुस्तकों को मंगाकर अवश्य पढ़े।

आधुनिक चिकित्सा विज्ञान—(प्रथम भाग) श्री डा० आशानन्द जी पंचरत्न M. B., B. S. आयुर्वेदाचार्य का यह ग्रन्थ हाल ही में प्रकाशित हुआ है। यह चिकित्सा विज्ञान की सुन्दर रचना है। इसमें १६ अध्यायों में रोगों का वर्णन तथा उनकी सफल एलोपैथिक एवं आयुर्वेदिक चिकित्सा बड़ी खूबी के साथ दी है। रोगों के चुनाव में इनकी अपनी विशेषता रहती है, इस प्रथम भाग में एलोपैथी की नवीन से नवीन औषधियां दी गई हैं। इनकी वर्णन शैली तुलनात्मक दृष्टि से ही महत्वपूर्ण नहीं वरन् सफल चिकित्सा दृष्टि से भी यह ग्रन्थ चिकित्सकों को उपादेय है। कपड़े की सुन्दर जिल्द, मूल्य १०)

आयुर्वेद एण्ड एलोपैथिक गाइड—लेखक आयुर्वेदाचार्य पं० रामकुमार जी द्विवेदी। हिन्दी में प्राच्य पाश्चात्य विज्ञान का विस्तृत ज्ञान देने वाली बेजोड़ पुस्तक है। हर विषय को सरलतापूर्वक समझाया गया है। वैद्यों, विद्यार्थियों, डाक्टरों, एवं अन्य सभी के लिए पठनीय है। मू० ८)

इञ्जेक्शन—(चतुर्थ संस्करण) लेखक डा० सुरेशप्रसाद शर्मा, अपने विषय की हिन्दी में सर्वोत्तम सचित्र पुस्तक है। थोड़े समय में ४ संस्करण होजाना ही इसकी उत्तमता का प्रमाण है। पृष्ठ संख्या ७६४ सजिल्द मूल्य १०) मात्र।

इञ्जेक्शन-तत्वप्रदीप—लें० डा० गणपतिसिंह वर्मा, सभी इञ्जेक्शनों का वर्णन है तथा उनके भेद व लगाने की विधि सरलतया दी गई है। पृष्ठ ३७२ मूल्य ५)

इञ्जेक्शन विज्ञानाङ्क—(दो भाग) धन्वन्तरि के विशेषांक। सभी प्रकार के आयुर्वेदिक व एलोपैथिक इञ्जेक्शनों का संकलन है तथा इञ्जेक्शन सम्बन्धी सभी विशाल साहित्य उपलब्ध है। दोनों भागों का मूल्य ४)

एलोपैथिक इञ्जेक्शन चिकित्सा—(पञ्चम संस्करण) एलोपैथिक इंजेक्शनों की उत्तम पुस्तक, सभी प्रकार की विधियां सहित रोगानुसार इञ्जेक्शन वर्णन तथा कौन इञ्जेक्शन किस रोग में दिया जायगा, बताया है। ले० डा० भवानीप्रसाद श्रीवास्तव। मूल्य ३)

वर्मा एलोपैथिक गाइड—(चतुर्थ संस्करण) लेखक डा० रामनाथ वर्मा। हिन्दी में एलोपैथिक चिकित्सा की सर्वोत्तम पुस्तक। तीन संस्करण केवल ४ वर्ष में निकल जाना ही इसकी उपयोगिता का प्रमाण है। मूल्य १०)

वर्मा एलोपैथिक निघण्टु—डा० वर्मा जी की द्वितीय कृति। इसमें २००० से अधिक पेटेण्ट तथा साधारण औषधियों के वर्णन के अतिरिक्त सैकड़ों नुस्खे तथा अन्य उपयोगी बातों पर प्रकाश डाला है। एलोपैथी औषधियों से जानकारी प्राप्त करने के इच्छुक इसे अवश्य पढ़ें। पृष्ठ संख्या ५७० मू० १०॥)

वर्मा एलोपैथिक चिकित्सा—एलोपैथिक गाइड और निघण्टु के ख्याति प्राप्त लेखक की ही यह कृति है। पुस्तक उपयोगी और पठनीय है। छपाई कागज जिल्द आदि सर्वोत्तम है। एलोपैथी चिकित्सा को जानने के अभिलाषी वैद्यों विद्यार्थियों को पुस्तक अवश्य मंगानी चाहिए। इसमें सभी रोगों की परिभाषा, लक्षण, कारण, चिकित्सा, प्रयोगादि डाक्टरी मतानुसार वर्णित है। मूल्य १०)

एलोपैथिक चिकित्सा—(द्वितीय संस्करण) डा० सुरेशप्रसाद शर्मा कृत। इसमें रोग सम्बन्धी वर्णन, लक्षण निदान आदि पर संक्षेप में वर्णन करके उन रोगों की चिकित्सा विस्तृतरूप में दी गई है। योग आधुनिकतम अनुसन्धानों को मथकर और अनुभव सिद्ध लिखे गये हैं। ८२५ पृष्ठों के विशालकाय सजिल्द ग्रन्थ का मूल्य ८)

एलोपैथिक पाकेट गाइड—एलोपैथिक चिकित्सा का सूक्ष्म रूप यह पाकेट गाइड है। इसे आप जेब में

भाग ३० अङ्क ८ | धन्वन्तरि कार्यालय बिजयगढ़ का मुखपत्र | अगस्त सन् १९५६ ई०

धन्वन्तरि के प्रति

स्वागत हे धन्वन्तरि ! जग में नूतन जीवन लाना होगा ।
मिटें भ्रम, सन्देह विश्व के, वह शुभ गान सुनाना होगा ॥
चिरकालिक परतन्त्र शृङ्खला से जो निज पथ भूल गये हैं ।
मृदु, मोहक वाणी से उनको पुनः मार्ग पर लाना होगा ॥
दीन हीन निस्तेज रुग्ण जो व्याधि-शोक दुःखादि विकल हैं ।
जीवन से उकताये-से नैराश्य ग्रसित बिल्कुल निर्बल हैं ॥
जग में सुख भी कोई वस्तु है कभी स्वप्न में जान न पाये ।
उनके जीर्ण शुष्क आंगन में सुधा मेघ बरसाना होगा ॥
जन्तु यस्य देशस्य सखे ! जो बस उसकी ही औषधि-उत्तम ।
हरती है दुख व्याधि सकल फिर कहो न क्यों हमको हो प्रियतम ॥
जहां शस्त्र उपचार किये जाते वहां जड़ी काम देती हैं ।
इसी लिये तो आयुर्वेद का विजय केतु लहराना होगा ॥
स्वागत हे धन्वन्तरि ! जग में नूतन जीवन लाना होगा ।

—वैद्य बनवारीलाल गुप्त 'विनोद' आयुर्वेद शास्त्री बी० ए०

रामायण में रोग और चिकित्सा।

लेखक—श्री० वैंकट प्रसाद मढ़रिया।

यह तो प्रायः सभी मानते हैं कि भारत की आयुर्वेदीय चिकित्सा अति प्राचीन है, किंतु कुछ लोग यह कहने में अपनी शान समझते हैं कि आयुर्वेद विज्ञान अवैज्ञानिक है। इस लेख में रामराज्य में रोगोत्पत्ति तथा उसकी चिकित्सा में तुलसीदास जी का आयुर्वेद के सूक्ष्म वैज्ञानिक अध्ययन का दिग्दर्शन है।

रामायण के अध्ययन से ज्ञात होता है कि रामराज्य के समय में भी अनेक प्रकार के रोग होते थे। उनके कारण दूषित मन से उत्पन्न लोभ, मोह, मद, ईर्षा, जलन आदि थे। मन की चिकित्सा ही करते थे। रोग निवारण की औषधि केवल 'राम-भजन' था।

शरीर निर्माण

रामयण में कहा गया है—

> छिति जल पावक गगन समीरा,
> पंच रचति यह अधम शरीरा ।

अर्थात्-पृथ्वी, जल, अग्नि आकाश और वायु से ही यह अधम शरीर का निर्माण हुआ है। अधम का अर्थ कमजोर एवं गूढ़तापूर्वक विचार करने पर निःश्चलता का बोध होता है। इस निःश्चल शरीर को चल एवं गतिमान बनाने के लिए चेतना याने आत्मा का संयोग हुआ है। यही कारण है कि यह पंचभूतात्मक अधम शरीर एक जीवित-चेतनामय रुप धारण कर सका।

आत्मा का शरीर से किस प्रकार सम्बंध है इसका दिग्दर्शन तुलसीदास जी इन पंक्तियों से कराते हैं।

> जड़ चेतनहि ग्रन्थि परि गई,
> जदपि मृषा छूटत कठिनई ।

अर्थात् जड़ याने प्रकृति और चेतन याने आत्मा में गांठ पड़ गई है और यद्यपि वह झूठी है किन्तु उसके छूटने में बड़ी कठिनाई है। उनका कहना है। कि—

> तब ते जीव भयऊ संसारी,
> छूट न ग्रंथि न होइ सुखारी।
> स्रुति उपाय बहु कहेऊ उपाई,
> छूट न अधिक-अधिक अरुझाई ॥

तभी से यह जीव संसारी होगया और वह गांठ न छूटती है और न वह सुखी होता है। वेद और पुराणों ने भी बहुत से उपाय बताये हैं परन्तु गांठ का छूटना तो दूर रहा वह और अधिकाधिक उलझती जाती है। यह बात ध्यान देने की है। इसका यथार्थ मतलब यह है कि आत्मा का शरीर से वियोग अल्प समय के लिए ही होता है पश्चात् उसे पुनः नया शरीर धारण करना पड़ता है। वह अधिक दिनों तक स्वतन्त्र नहीं रह सकता अर्थात इस सृष्टि के जन्म-मरण के निरन्तर चक्र में उसे एक शरीर से अलग होते ही दूसरे शरीर का नेतृत्व करना पड़ता है।

शरीर निर्माण के विषय में आयुर्वेद में बताया गया है; 'शरीरे प्रकृतिः पुरुष समवायः' ॥ अर्थात् जीवित मानव शरीर प्रकृति और पुरुष (आत्मा) का संयोग है। आयुर्वेद की यह उक्ति तुलसीदास जी द्वारा की गई वर्णन से पूर्णतः मिलती है।

प्रकृति के रूप एवं कार्य—

प्रकृति सीमाबद्ध, विशेष रूप वाला, नाशवान, स्थूलता के गुणों से युक्त दृश्य है। किसी भी चीज के निर्माणार्थ इसका उपयोग होता है।

आत्मा के रूप एवं कार्य—

आत्मा चेतन, आमरण, रंगरूपहीन, सूक्ष्म बुद्धि-

गम्य अर्थात् अदृश्य है। निःश्चल शरीर में चेतना प्रदान करने के लिये इसका संयोग आवश्यकीय है। अर्थात् जब तक शरीर में आत्मा का वास है, शरीर चेतनायुक्त होगा और आत्मा के प्रथक् होने पर अचेतन (निःश्चल) हो जावेगा।

तुलसीदास जी ने इस आत्मा को ईश्वरांश कहा है जो अविनाशी, चेतन, निर्मल और सुख की राशि है। रामायण की चौपाई है—

ईश्वर अंश जीव अविनाशी।
चेतन अमल सहज सुखरासी॥

उन्होंने सभी ब्रह्म (ईश्वर) गुणों को आत्मा का गुण कहा है जो आयुर्वेद की उक्ति से पूर्णतः मिलती है जैसे—

'निर्विकारः परमात्मा सत्वभूत गुणेन्द्रियै।
चैतन्ये कारणं नित्यो द्रष्टा पश्यंति हि क्रियाः॥

अर्थात् आत्मा विकारहीन, घटने-बढ़ने के गुणों से रहित, सूक्ष्म तथा उत्कृष्ट है। यह हमेशा चैतन्य क्रियाशील देखने वाला द्रष्टा व साक्षी है।

मन और आत्मा का द्वन्द—

मन की उत्पत्ति भूतों से है, इसलिये भूत गुण ही उसके गुण हैं और उन्हीं गुणों द्वारा शरीरेन्द्रियों का संचालन करता है। मन का किसी वस्तु के लिये आकर्षित होना उसका स्वाभाविक गुण है, क्योंकि शरीर को स्वस्थ रखने के लिये उन्हीं गुणों से युक्त चीजों की आवश्यकता पड़ती है जिसके प्राप्त्यर्थ मन विचलित होता है।

आत्मा का गुण मन के गुणों से परे है जिसका कि वर्णन ऊपर हो चुका है। आत्मा मन को नियंत्रित करता है। उसकी आवश्यकताओं की नैतिक सीमा निर्धारित करता है। अनुचित एवं अनैतिक कर्म करने पर मस्तिष्क में ग्लानि उत्पन्न करता है। इस तरह वह सर्वदा सच्ची बुद्धि उपजाता है।

रोग के कारण स्वयं प्रकुपित दोष—

तुलसीदास जी कहते हैं कि सभी रोगों की जड़ मोह है जिससे अनेक प्रकार के रोग पैदा होते हैं। उन्होंने काम को वात, अपार लोभ को कफ और क्रोध को पित्त बताया है जो छाती को जलाता है। चौपाई है—

मोह सकल व्याधन कर मूला।
तेहि ते पुनि उपजहिं बहु शूला॥
काम वात कफ लोभ अपारा।
क्रोध पित्त नित छाती जारा॥

उनका और भी कहना है कि जब ये तीनों भाई अर्थात् वात, पित्त कफ आपस में मिलते हैं तो दुखदाई सन्निपात हो जाता है जो अत्यन्त दारुण प्रकार का होता है। वे लिखते हैं कि—

'प्रीति करहिं जो तीनिहु भाई।
उपजै सन्निपात दुःखदाई॥

आयुर्वेद में भी दूषित मन से रोगों की उत्पत्ति बताई गई है। मानसिक चिन्ता, शोक, क्रोध, लोभ भय आदि से वातादि दोष प्रकुपित होते हैं और शरीर को क्लान्त करते हैं। आयुर्वेद में भी तीनों दोष के आपस में मिलने से सन्निपात का होना बताया गया है। अतः यहां भी तुलसीदास जी के विचारों से साम्यता है।

रोग प्रकार—

रामायण की चौपाई है—

ममता दादु कंडु इरपाई।
हरस विषाद गरह बहुताई॥
परसुख देखि जरनि सोइ छई।
कुष्ठ दुष्टता मन कुटलई॥
अंहकार अति दुखद डवंरुआ।
दंभ कपट मद भाव नहरुआ॥
तृष्णा उदर वृद्धि अति भारी।
त्रिविध ईषना तरुन तिजारी॥
जुग विधि ज्वर मत्सर अविवेका।

अर्थात् ममता ही दद्रु रोग है। ईर्षा ही खुजली है। हर्ष और विषाद ही दुष्ट ग्रह है। दूसरे के सुख देख जो जलन होती है, वही क्षय रोग है।

मन की कुटिलता और दुष्टता ही कुष्ठ रोग है। अहंकार एक प्रकार का भारी डमरूवा वात रोग है। दंभ कपट मद और मान ही नहरूआ रोग है। तृष्णा बहुत बड़ा जलोदर रोग है। सभी प्रकार की इच्छा ही प्रचंड तिजारी रोग है। मत्सर और अविवेक दो प्रकार के ज्वर हैं।

आयुर्वेद में भी उपरोक्त अनेक रोग विस्तार-पूर्वक वर्णित हैं।

रोग चिकित्सा—

तुलसीदास जी कहते हैं—

एक व्याधि नर मारहि,
ए असाध्य बहु व्याधि॥
पीड़नि संतत जीव कहं,
सो किमि लहै समाधि॥

अर्थात् एक रोग से ही मनुष्य मर जाता है। और असाध्य व्याधियों (रोगों) की संख्या अनेक हैं जो जीवों को निरंतर पीड़ित करते हैं। अतः उनकी शान्ति कैसे प्राप्त की जा सकती है? वे कहते हैं कि—

नेम धर्म आचार तप, ग्यान जग्य जप दान।
भेषज पुनि कोटिक नहीं, रोग जाहिं हरिजान॥

नेम धर्म आचार तप ज्ञान यज्ञ जप दान आदि औषधियां हैं परन्तु उपरोक्त असाध्य रोग [illegible] धियों से दूर नहीं होते। उन रोगों की [illegible] पर हैं।

[illegible] असाध्य रोगों को त्याज्य कहा है। [illegible] पराधीन समझे जाते हैं।

[illegible] हते हैं—

[illegible] रोगी,
[illegible] भय प्रीति वियोगी।

[illegible] का नर बापुरे।
[illegible] हैं और शोक

हर्ष, भय एवं प्रेम से पीड़ित हैं। इस मानस रोग के बारे में वे कहते हैं कि विषयरूपी कुपथ्य पाकर मुनियों के हृदय में भी ये अंकुरित हो जाते हैं तो फिर साधारण मनुष्य की तो बात ही न पूछो।

तुलसीदास जी कहते हैं कि—

सद्गुरु वैद्य वचन विश्वासा,
संजम यह न विषय के आसा।
रघुपति भगति संजीवन मूरी,
अनूपान श्रद्धा मति पूरी॥

सद्गुरु रुपी वैद्य के वचनों में विश्वास करने से, विषयों की आशा न करने से, संयम करने से और ईश्वर भक्ति रुपी संजीवन बूटी को श्रद्धापूर्ण बुद्धि रुपी अनुपान द्वारा ग्रहण करने से ही रोगों से मुक्ति मिल सकती है।

तुलसीदास जी की ईश्वरभक्ति रुपी संजीवन बूटी आयुर्वेद की रामबाण एवं मृतसंजीवनी बटी से कहीं अमोघ गुणकारी है। उनका कहना है कि—

हिम ते अनल प्रगट बरु होई,
विमुख राम सुख पाव न कोई।
बारि मथे घृत होई बरु,
सिकता ते बरु तैल।
बिनु हरि भजन न भव तरिय,
यह सिद्धांत अपेल॥

बर्फ से अग्नि भले ही प्रगट हो जाय किंतु श्रीराम से विमुख रहकर कोई भी मनुष्य सुख प्राप्ति नहीं कर सकता। इस संबंध में उनका और भी जोर है कि चाहे जल मंथन से घृत एवं बालू पेरने से तैल की प्राप्ति भले ही हो जाय किंतु भगवान् के भजन बिना संसार समुद्र को पार नहीं किया जा सकता। यह सिद्धांत अमिट है।

तुलसीदास जी अपने श्रीराम भजन रुपी संजीवन बूटी का शरीर में किस प्रकार असर होता है एवं किस प्रकार की स्वस्थता शरीर को मिलती है इसके विषय में कहते हैं कि—

—शेषांश पृष्ठ ८०४ पर देखें।

जीवनिका (VITAMINS)

लेखक—वैद्य श्रीकृष्णचन्द्र महान्ती, निराकारपुर (उडीसा)

(वर्ष २९ अंक ११ पृष्ठ ११५८ से आगे)

"पृथिव्ययां गुणैर्युक्तं जीवनीयमिति स्थितिः (र० वै० अ० ४ सू० ३० भाष्य), भूम्याम्बुगुणबाहुल्यान्मधुरः। (सु. सू. अ. ४२) मधुर रसः शरीरसात्म्याद्रस-रुधिर-मांस-मेदोऽस्थि मज्जौजः शुक्राभिवर्धन, आयुष्यः × × ×, मधुररसगुणे आयुष्यो जीवनीयः। (च. सू. अ. २६) शस्तानां रसादीनां शुक्रान्तानां धातूनां लाभोपायः प्राप्त्युपायः × × अतः रसायनमित्युच्यते। (यो० सेन० च० व्याख्याकार) अथवा रसनां रस-वीर्य-विपाकादीनामायुः प्रभृतिकारणानामयनं विशिष्टलाभोपायो रसायनम्।" (पा० अष्टाध्यायी)।

जीवनीय (जीवनसंज्ञा-जीवनिका) द्रव्य पृथिवी और जल के गुणों की अधिकता वाला होता है अर्थात् पार्थिव और आप्य (सौम्य) द्रव्यों के जो गुरु स्निग्ध-शीत आदि गुण और बृंहण स्तम्भन आदि कर्म हैं जीवनीय द्रव्य उन गुण-कर्मों से युक्त होता है, उन गुण-कर्मों को प्राचीन शास्त्र में रस से व्यपदेश दिए रहे हैं। उक्त भूमि और जल की अधिकता से जो मधुर रस उत्पन्न होता है। मधुर रस (मधुर रस वाला द्रव्य) जन्म से ही मनुष्य के शरीर को निरुपाधिक (परिशुद्ध) सात्म्य होने से रस-रक्त-मांस मेद अस्थि-मज्जा-ओज-शुक्र को बढ़ाने वाला आयुष्य (आयु को टिकाने और बढ़ाने वाला) जीवनीय (आयुष्य के प्राण धारण) के लिए हितकर (आयुष्य को स्थिर रखने वाला) है। जो द्रव्य शरीर के रस से शुक्र पर्य्यन्त धातुओं को बढ़ाता है उसे रसायन कहते हैं। अथवा जो द्रव्य रस-वीर्य-विपाकादि से आयु को बढ़ने का कारण होता है उसको रसायन कहते हैं। मात्र रसायन कर्म वाले द्रव्य मनुष्य के लिए सामयिक (समयोचित) सात्म्य होते हैं, 'पूर्ववयसि मध्य वा मनुष्यस्य रसायनम्।" (च. चि. अ० १) पूर्ववयस (यौवन की प्रारम्भावस्था) में या मध्य वयस में (यौवन की शेषावस्था में) मनुष्य को रसायन सेवन करना चाहिये। तथा वाजीकरण (वृष्य) कर्म वाला द्रव्य पार्थिव और जलीय होने पर भी मनुष्य के लिए सदा सात्म्य नहीं होते हैं। नचवै षोडशादर्वाक् सप्तत्याः परतो नच।" (आ० सं० परार्द्ध) सोलह वर्ष के न्यून वयस्क बालक को और ७० वर्ष के ऊर्ध्व वयस्क वृद्ध को वाजीकरण औषधि सेवन करना निषिद्ध है। किन्तु मनुष्य शरीर के लिए जीवनीय द्रव्य सदा सात्म्य होने के कारण शरीर में प्रतिक्षण धात्वग्नियों की परिपाक क्रिया से धातुओं का क्षय होता रहता है। उसकी पूर्ति के लिये जीवनीय द्रव्यों का प्रतिदिन प्रयोग करना आवश्यक है। और भी जीवनीय द्रव्य स्वस्थावस्था में रक्त में या शरीर में जो परिमाण में रहते हैं रोगावस्था में वे द्रव्य उससे कम हुए होते हैं। उनकी कमी की पूर्ति के लिए इनके सेवन की आवश्यकता होती है। प्राचीन आयुर्वेद में कहे हुए सूत्र में स्पष्ट प्रतीत होता है कि रस वीर्यादि के कर्म जितने प्रकार के हैं प्रभाव का कर्म उतने प्रकार के होने पर भी और बहु प्रकार के स्वतन्त्र हैं। यह कारण से जीवनीय द्रव्यों के कर्म दो भेद होते हैं। एक रस वीर्यादि गत पर कर्म सामान्य है और प्रभाव युक्त जीवनीय कर्म विशेष है अर्थात् जो आजन्म सात्म्य द्रव्य में रहने वाले वह सामान्य है, एवं जो रसायनादि में आयुष्कर आदि कर्म करने वाले वह विशेष हैं।

जीवनीय कर्मवाले द्रव्य रसादि धातुओं को सम्यक् प्रकार वृद्धि करने वाला और शरीर--इन्द्रिय

सत्व आत्म इनके नित्यसंयोग अनुबन्ध को नियत काल रक्षा करने का कारण होता है। आहारवाले जीवनीय द्रव्यों में रसायन वृष्य बृंहण आदि जो प्रभाव कर्म स्वतंत्र रहते हैं वह द्रव्य विशेष और कर्म-विशेष में दो भेद होते हैं। (१) नित्य व्यवहारीय और (२) सामयिक व्यवहारीय होते हैं। उससे नित्यव्यवहार होने वाले द्रव्य यथा-गाय का दूध रस वीर्यादि से जीवनीय होता है,प्रभावगुण से शुक्रजनक-वाजीकरण और रेचक होता है तथा घी रस-वीर्यादि गुण से जीवनीय होता है, प्रभावगुण से आयुष्क रसायन और अग्निदीपक वाले अर्थात् प्रभाव गुण से द्रव्य रसायन के साथ आग्नेय या त्रिदोष नाशक हो रहे तो, वह द्रव्य मनुष्य शरीर के लिये सदा सात्म्य होता है। तथा प्रभाव गुण से द्रव्य शुक्र प्रवर्तक या शुक्ररेचक या शुक्र स्तम्भक न होकर दूध की तरह शुक्रजनक वाजीकरण हो तो उसे सदा सात्म्य द्रव्य कहते हैं। जैसे दिव्य जल दूध घी चीनी मिश्री गेहुं शालिधान्य षष्टकधान्य सैन्धानमक आमला पका केला आम पिंडखजूर नारियल गोला सेव द्राक्षा आदि द्रव्य जीवनीय होते हैं। इसे कुछ रसायन कुछ वाजीकरण और कुछ बृंहण होने से भी यह सदा सात्म्य होते हैं।

जीवनीय द्रव्य होने पर भी जो रसायन वाजीकरण और बृंहण कर्म में समयोचित व्यवहार होने वाले द्रव्य यथा मुशली-अश्वगन्धा-बला नागबला मण्डूकपर्णी आदि रसायन द्रव्य कौंवाच का बीज उड़द कांकोली बकरे के अण्डकोष चटकमांस मछली के अण्डा आदि वृष्य और शतावरी चिरौंजी मांस मछली आदि बृंहण द्रव्य इनके कारण "रस वीर्य विपाकादि गुणातिशयवानतम द्रव्यस्वभावो निर्दिष्टो यः प्रभावः स कीर्तिः। "(अ०हृ०अ०)" द्रव्याणिहि द्रव्य प्रभावाद् गुणप्रभात्। (च० सू० अ० २६) द्रव्य प्रभाव और रस वीर्य-विपाकादि गुणातिशय या कर्म प्रभाव से सम्पन्न रहता है।

जीवनीय द्रव्य मनुष्य का बाल्य-मध्यम-वार्द्धक्य के स्वस्थ और अस्वस्थ दोनों अवस्था में उपयोग के लिये प्राचीन आयुर्वेद शास्त्रों में जो उपदेश है और प्रकृति की नित्यनूतन परिवर्त्तनता से जो मात्रा आदि के परिवर्त्तन हो रहे हैं सो क्रमशः नीचे वर्णित होगा।

"वयस्त्वाषोड शाद्बालं तत्र धात्विंद्रियौजसाम्।
वृद्धिरासप्ततेर्मध्यं तत्रावृद्धिः परं क्षयः

—अ० हृ० शा० अ० १

अवस्था-सोलह वर्ष से पूर्व 'बाल्यावस्था' कही जाती है। यह बाल्यावस्था भी तीन प्रकार की होती है। अल्पावस्था में (१ वर्ष तक) क्षीरपायी, किञ्चित बड़े (२ वर्ष तक) होने पर दूध और अन्नभोजी और उसके ऊपर सोलह वर्ष तक अन्नभोजी बालक कहे जाते हैं। सोलह वर्ष से २० वर्ष तक के ४ वर्ष वृद्धि अवस्था कही जाती हैं, इन ४ वर्षों में धातु इन्द्रिय और ओज की वृद्धि होती है,सब इन्द्रिय बलवान् होती हैं। इसलिये इसको 'वृद्धि अवस्था' कहते हैं। २० से ७० वर्ष तक 'मध्यमावस्था' कही जाती हैं। ७० वर्ष से उपरान्त शरीर का क्षय होता है' इस अवस्था को वृद्धा या 'जीर्णावस्था' कहते हैं।

दुग्धपायी बालक के लिये माता के स्तन्य या धात्री के स्तन दूध सर्वोत्तम है। "जीवनं बृंहणं सात्म्यं स्नेहनं मानुषं पयः।"(चरक) स्तन दूध जीवनी शक्ति से बालक शरीर के जो दश जीवन आधार होते हैं यथा 'दश जीवितधामानि शिरोरसनबंधनम्। कण्ठोऽस्रं हृदयं नाभिर्वस्तिः शुक्रौजसी गुदम् ॥ (अ० हृ० शा० अ० ३)। शिर, रसनबंधन, कण्ठ, रक्त, हृदय, नाभि, वस्ति, शुक्र, ओज और गुदा ये स्थान "शरीरेन्द्रियसत्त्वात्मसंयोगधारी जीवितः 'अर्थात् जीवन के आधारों को पुष्ट करता है। बृंहण-जो द्रव्य शरीर में मोटापन लाता है (शरीर को पुष्ट करता है) उसे बृंहण कहते है। स्तन दूध बालक को सात्म्य और स्नेहन होता है अर्थात् जो द्रव्य बालक की जठराग्नि दीप्त रखता है, कोष्ठ शुद्ध कराता है। तथा रसादि धातुओं को उत्तमता-मल और वर्ण युक्त करता है, और इन्द्रियों को दृढ़ बनाता है।

दुग्धपायी शिशु के लिये स्तनों के दूध के अभाव में बकरी या गौ का दूध "स्तन्याभावे पयश्छागं गव्यं वा तद्गुणं पिबेत्, ह्रस्वेन पंचमूलेन स्थिरया वा सितायुतम्" (अ. हृ. उ. अ. १) यदि स्त्री का दूध न मिल सके तो उसके समान गुणों वाला बकरी का दूध या गौ का दूध, लघुपंचमूल से सिद्ध करके अथवा शालपर्णी और पृष्ठपर्णी से सिद्ध करके मिसरी युक्त दूध पिलाना चाहिए। बकरी का दूध मधुर है; खांसी और श्वास को नाश करता है, बकरियों का शरीर छोटा और हलका होता है इसलिये जङ्गल में ऊंची नीची भूमि से सब प्रकार की बूटियों को खाती है, और जल बहुत थोड़ा पीती है, सब जगह ऊंचे नीचे कूदती हैं, इसलिये उसका दूध सब दोषों को हरने वाला है। शालपर्णी का प्रभाव गुण जैसे कृमिनाशक है इसी प्रकार बकरी का दूध अग्निदीपन होने के कारण भी कृमि उत्पन्न न होने का एक कारण है, और भी अग्निदीपन द्रव्य का विशेषत्व है कि जठराग्नि की वृद्धि होने पर अन्य ५ प्रकार के भौतिकाग्नि और ६ प्रकार के धात्वग्नियों का वृद्धि करते हैं, क्योंकि इसकी स्थिति के आधीन ही मनुष्य की अन्य द्वादश अग्नि आयु एवं बल की स्थिति रहती है।

शालपर्णी पुष्टिकारक है, रसायन है, तिक्त-मधुर रस है, दूषी विष सेवन जनित दोष, छर्दि, ज्वर श्वास, अतिसार, शोष, विष, क्षत, कास को हरने वाला प्रभाव गुण से त्रिदोष नाश करने वाला है।

बालकके लिये छाग दूध योग—

बकरी का दूध और शालपर्णी सिद्ध करके मिसरी युक्त पिलाने से यह बालक का शरीर में सार्वदैहिक रस-व्यापार पर रसायन और बृंहण असर करने वाले; स्तम्भनीय अर्थात् जो द्रव्य गतिमान (स्पष्टगतियुक्त ग. वमन अतिसार आदिक रूप में शरीर से बाहर निकलते हुए-यो.) या चल (किंचित् गतिमान रुधिर और पित्त-यो.) द्रव पदार्थ को रोके यह महास्रोत पर असर करने वाले द्रव्यों को स्तम्भन कहते हैं। कास और श्वास नाश करने वाले अर्थात् जो द्रव्य श्वसन यन्त्र पर क्रिया करके कास श्वास रोग के कारणभूत दोष को दूर करने वाले एवं कास श्वास वेग को भी कम करने वाले; त्वचा की केशिकाओं को विकसित करके ज्वरनाश करने वाले अर्थात् जिससे परिणाम रूप में उष्णता स्वयं बाहर निकलती है। इसकी दीपन कर्म महास्रोत पर कदाचित आम का पाचन करता है, कदाचित नहीं भी करता है मात्र जठराग्नि को दीप्त करने वाले और उक्त संस्थान पर उत्पन्न होने वाले नाना प्रकार की क्रिमि तथा उनसे उत्पन्न होने वाले विकारों को नष्ट करने वाले एवं पेट में क्रिमि उत्पन्न नहीं करने वाले; अपने प्रभाव से गुण से त्रिदोषनाशक या सर्वरोगनाशक वाले हैं।

गाय दूध योग—

गाय का दूध और पिठवन सिद्ध करके मिश्रीयुक्त योग बालक को पिलाने से यह सार्वदैहिक रस व्यापार पर रसायन कर्म अर्थात् रस आदि सप्त धातुओं को, आयु एवं शरीर को बढ़ाने वाले, त्वचा पर असर करके केश-हितकर और कान्ति को अच्छा रखने वाले; मन-प्रसन्न आदि कर्मों से नाड़ी यन्त्र पर मन सहित छः इन्द्रियों को प्रसन्न करने वाले बुद्धिवर्धक तृप्तिकर, घ्राणेन्द्रिय-मुख-कण्ठ-ओष्ठ को आनन्द देने वाले मल संस्थान और मूत्रसंस्थान पर क्रिया करने वाले· मल एवं मूत्र को साफ करने वाले हैं।

बालक के लिये मिश्री योग—

माता के दूध के अभाव में, जल सहित मिश्री और शालपर्णी सिद्ध करके बालक को पिलाने से यह सार्वदैहिक रस व्यापार पर रसायन क्रिया अर्थात् रस आदि सप्तधातु एवं आयुष्य को बढ़ाने वाले, लघु, अपने प्रभाव गुण से सारक, शरीर वर्द्धक और त्रिदोष नाशक है।

दूध आदि द्रव्य के मान—

दूध या मिश्री जल तीन पल (२४ तोला) लघु

पञ्चमूल या शालपर्णी अथवा पृष्ठपर्णी दो मापा (२४ रत्ती) चूर्ण योग करना चाहिये। सिद्ध होने पर चूर्ण छान कर बलाबल अनुसार बालक को पिलाना चाहिये।

कमजोर बालक को ताकतवर बनाने का उपाय

अगर बालक कमजोर हो तो बलाबल अनुसार ६ माशे से ३ तोले तक छुहारे पानी में धोकर साफ करलो और गुठली निकाल कर दूध में भिगो दो। थोड़ी देर बाद छुहारों को निकाल कर सिल पर पीस लो और कपड़े में रख कर रस निचोड़ लो; इस तरह दिन में ३ बार, हर बार ताजा रस निकाल कर, बालकको पिलाओ। बालक में खूब ताक़त आजायगी, एक महीने से कम उम्र के बालक को यह रस न पिलाना चाहिये।

आहार की मात्रा—

बालक को सर्वदा ही उचित मात्रानुसार दूधादि पिलाना चाहिये। क्योंकि ठीक मात्रा से ही जठराग्नि यथार्थ प्रवृत्ति का कारण होकर देह की स्थिति का हेतु होती है। इसलिये अग्नि बलानुसार ठीक मात्रा का ही प्रयोग करना चाहिये। मात्रा गुरु और लघु द्रव्यों के अनुसार होती है। इसलिये भारी द्रव्यों को अर्ध तृप्ति करके सेवन करना चाहिये और लघु द्रव्यों को तृप्ति से किंचित् न्यून खाना चाहिये। जो आहार ठीक समय में पाचन हो जाय और किसी प्रकार का विकार न करे वह मात्रा का यथार्थ प्रमाण जानना चाहिये।

पृष्ठ ८०० का शेषांश

जानिय तब मन विरुज गोसाई,
जब उर बल विराग अधिकाई।
सुमति छुधा बाढ़त नित नई,
विषय आस दुर्बलता गई॥
विमल ज्ञान सो जल जब नहाई,
तब रह राम भगति उर छाई॥

जब हृदय में वैराग्य का बल अधिक हो, उत्तम बुद्धि रुपी क्षुधा नित्य बढ़ने लगे और विषयों की आशा रुपी दुर्बलता चली जाय तब मनुष्य को स्वस्थ समझना चाहिये और यह तभी हो सकता है जबकि मनुष्य निर्मल ज्ञान रुपी जल में स्नान करे और उसके हृदय में रामभक्ति छाजाये।

षण्ढता—आधुनिक दृष्टि से

(Sterility in the modern light)

लेखक—आयुर्वेद वाचस्पति आयुर्वेदाचार्य डा० दिवाकर प्रसाद पाण्डेय A. M. S.

पूर्ण प्रगल्भ पुरुष और पूर्ण प्रगल्भ नारी के परस्पर मैथुन करने से गर्भ की स्थापना होनी चाहिए, फिर भी बहुधा यह देखा जाता है कि बहुतेरे दम्पतियों को सन्तानोत्पत्ति नहीं होती है। स्पष्ट शब्दों में इस प्रकार के नर-नारी को षण्ढ कहा जाता है तथा ऐसे व्यक्ति षण्ढता रोग से पीड़ित कहलाते हैं।

वस्तुतः यह विषय इतना विवादास्पद है कि अभी तक इसके मूल कारणों का पूर्ण ज्ञान नहीं किया जा सका है। यदि किसी रोगी के कारण का ज्ञान खोज द्वारा कर भी लिया जाता है तो चिकित्सा में प्रायः असफलता ही मिलती है।

कुछ समय पहले सन्तानोत्पत्ति न होने का प्रधान कारण स्त्री का बन्ध्यापन ही माना जाता था परन्तु आधुनिक चिकित्सक समाज अब तक इस निष्कर्ष पर पहुंचा है कि इसमें पुरुष का दोष किसी भी माने में स्त्री से कम नहीं है। बल्कि ज्यादा कहने में भी कोई अतिशयोक्ति नहीं।

गर्भ के स्थिर होने के लिए प्राथमिक आवश्यकता यही है कि पुरुष वीर्यगत शुक्राणु (Spermatozooa) और नारी रजगत बीजाणु (ovum) पूर्ण स्वस्थ हों तथा ये दोनों स्वस्थ क्षेत्र में मिलें। जहां तक पुरुष के सन्तानोत्पादक शक्ति के निदान का प्रश्न है वह वीर्य की सूक्ष्मदर्शक यन्त्र (Microscope) द्वारा परीक्षा करने से निश्चित रूप से बताया जा सकता है। नारी में यह बताना बड़ा ही कठिन है कि प्रतिमास बीजाणु (ovum) पैदा होते हैं या नहीं? उसके प्रजोत्पादक मार्ग में कोई रुकावट तो नहीं है जिससे शुक्राणु को बीजाणु से मिलने के लिए लम्बा सफर करके बीजवाहिनी नलिका (Fallopian tube) के बाह्य द्वार तक जाना पड़ता है।

एक स्त्री जिसे प्रतिमास मासिक होता है यह कोई निश्चय नहीं है कि उसके बीजग्रन्थि (Ovary) से बीजाणु (ovum) पैदा होते ही रहते हैं। या स्त्री जो ठीक रूप से मैथुन कर सकती है वह सन्तान पैदा कर ही सकती है। बहुत से आधुनिक उपकरण ऐसे हो चुके हैं जिसके द्वारा हम लोग आसानी से पता लगा सकते हैं कि बीजाणु नियमित रूप से पैदा होते हैं। ये पद्धतियां साधारण चिकित्सक की सुविधा के परे हैं परन्तु पाठकों के लाभार्थ संक्षेप में कुछ प्रस्तुत किया जायगा।

पुरुषगत कारण—

षण्ढत्व दो प्रकार का होता है। पहिला-अस्थायी, दूसरा स्थायी।

अस्थायी के कारण—

शरीरगत वे तमाम व्याधियां जो जीवनीय शक्ति को कम करती हैं और वीर्यगत शुक्राणुओं की उत्पत्ति को रोक देती हैं जैसे रक्ताल्पता, पोषक तत्वों की कमी प्रमुख है।

स्थायी के कारण—

यह दो प्रकार का होता है—शारीरिक (Physical) और अन्तःस्रावीग्रन्थियों (Endocrinal) जन्य।

शारीरिक कारणों में प्रमुख ये हैं—

१—दोनों अण्डकोषों का निष्क्रियशील हो जाना। यह चोट लगने से हो सकता है जैसे उस पर

किसी प्रकार से धक्का लगाना या कुछ रोगों के द्वारा जैसे मियादी बुखार (Typhoid Fever) मधुमेह (Diabetes) कर्णफेर (Mumps), चेचक, फिरंग (Syphilis), पूयमेह आदि ।

२—अण्डकोषों का पूर्ण विकास न होना जैसे (Crypto-orchitism Double)

३—अण्डकोषों का सूजन (orchitis)

४—अण्डकोषों या शिश्न का श्लीपद होना या जल आना ।

५—मूत्र मार्ग का अत्यधिक संकोच हो जाना ।

६—वीर्य-क्षरण करने वाले अङ्गों में किसी प्रकार की रुकावट ।

७—जीर्ण पौरुषग्रन्थिशोथ, मूत्राशयशोथ आदि ।

८—अति स्थूलता ।

९—लैंगिक अङ्गों में कुछ विकृति होना ।

१०—बुढ़ापा ।

११—वीर्यगत शुक्राणुओं का विकृत होना जैसे अल्पशुक्रता, शुक्राणुओं की अनुपस्थिति, शुक्राणुओं का निश्चल होना आदि ।

१२—किसी भी प्रकार का जीर्ण उपसर्ग जैसे क्षय, जीर्ण विषमज्वर, पूयमेह, आतशक आदि ।

३—मद्य, अहिफेन, मारफिया (अफीम का सत्व) सीसा (Lead) आदि विषों के अत्यधिक प्रयोग करने से ।

अन्तःस्रावी ग्रन्थियों जन्य के प्रमुख कारण ये हैं —

षण्ढता से सम्बधित कई ग्रन्थियां हैं उनमें अण्डकोष (Testes) चुल्लिका ग्रन्थि (Thyroid) अधिवृक्क ग्रन्थि (Suprarenal) और पिच्यूटरी ग्रन्थि हैं जो इस रोग से सम्बन्धित हैं। इन किसी भी ग्रन्थियों में विकार होने पर वीर्यगत शुक्राणुओं में खराबी हो जाती है। परन्तु खुलासा रूप में इसमें अण्डकोष (Testes) ही प्रधान है दूसरी ग्रन्थि वीर्यगत शुक्राणुओं की उत्पत्ति पर प्रभाव यदि डालती भी हैं तो स्वयं अंडकोष के ऊपर प्रभाव डालकर उसके द्वारा ही, सारांश यह है कि अण्डकोष ही इसका प्रधान अङ्ग है ।

नारीगत कारण—

इसमें भी अस्थायी कारण वही है जो पुरुष के होते हैं जैसे रक्ताल्पता, पोषक तत्वों की कमी आदि ।

स्थायीकरण दो प्रकार का होता है—शारीरिक (Physical) और अन्तःस्रावी ग्रन्थियों जन्य (Endocrinal)

शारीरिक के कारण प्रमुख ये हैं—

अ—जन्मगत प्रवृत्त (congenital)—

१—गर्भाशय बीजग्रन्थि और डिम्बप्रणाली वीर्य-वाहिनी नलिका का सर्वथा अभाव ।

२—अप्रगल्भ और अपूर्ण विकसित गर्भाशय (Infantile uterus)

३—गर्भाशय आदि अङ्गों का अपने स्थान से अलग हट जाना ।

४—कुमारीच्छद (Hymen) आदि का बन्द रहना ।

५—उभयलिंगी होना (Hermaphrodite)

आ—प्राप्त किया हुआ (Acquired)

६—गर्भाशय में गांठ (Tumor) आदि का होना ।

७—गर्भाशय का शोथ ।

८—बीजवाहिनी नलिका (fallopian tube) और बीजग्रन्थि (ovary) का शोथ ।

९—गर्भाशय में अंगूर के गुच्छे के समान अर्शवत् होना (Polypus uterine) ।

१०—योनिपथ का कर्कटार्बुद (Cancer) होना ।

११—गर्भाशय का कैन्सर ।

१२—गर्भाशय में ग्रंथि ट्यूमर आदि ।

१३—योनि आदि में छिद्र होना (fistula)

१४—योनि का मैथुन करने के लिए असहयोग या असहिष्णु होना Vaginismus & Dysparunia)

१५—जीर्ण उपसर्ग किसी भी अङ्ग में जैसे यक्ष्मा, पूयमेह फिरङ्ग आदि ।

१६—अति स्थूलता

१७—वार्द्धक्य

१८—मद्य अहिफेन आदि विषों का अत्यधिक उपयोग ।

अन्तःस्रावी ग्रन्थियोंजन्य कारण

षण्ढता से सम्बन्धित नारी के शरीर में कई ग्रन्थियां होती हैं इनमें चुल्लिका ग्रन्थि (Thyroid) बीजग्रन्थि (ovary) अधिवृक्कग्रन्थि (suprarenal) और पिच्यूटरी ग्रन्थि मुख्य हैं । परन्तु नारियों में चुल्लिका ग्रन्थि की खराबी से और बीज ग्रन्थि की खराबी से ही इस प्रकार के उपद्रव हो सकते हैं । प्रायः इससे 'कारपसल्यूटियम' विकृत होजाता है जिससे गर्भाशय के झिल्ली का विकास ठीक रूप से नहीं होता है, अनार्तव की या अनियमित स्वरूप से मासिक की शिकायत रहती है ।

निदान—

इस रोग का पता लगाना बड़ा दीर्घ सूत्री काम है । इसमें पर्याप्त व्यय की आवश्यकता पड़ती है । क्योंकि नाना प्रकार की प्रायोगिक परीक्षायें इसके लिए करनी आवश्यक है । परन्तु जांच पूरी करने के लिए यह सबसे पहिले पता लगाना चाहिए कि नारी का स्वास्थ्य कैसा है ? क्या वह गर्भ के बोझ को सह सकती है ? रजोनिवृत्ति काल के पास पहुंचने वाली नारी इसके लिये उपयुक्त नहीं है, उन्हें समझा देना चाहिये कि गर्भाधान के अवसर उन्हें कम हैं । २० से ३० साल की आयु इस रोग की चिकित्सा के लिये रहती है । इस रोग के निदान के सिलसिले में पुरुष और नारी दोनों की परीक्षा की जाती है । सबसे पहिले नारी की ही परीक्षा करनी चाहिए । नारी की परीक्षा निम्न भांति सिलसिलेवार करे :—

१—इतिहास—

रोगी के रोग का पूरा व्यौरा जाने, उसकी आदतें, भोजन, पूर्वरोग, मासिक धर्म का होना, गर्भनिरोध का प्रयोग, बचपन में योनिगत कोई रोग, आतशक, पूयमेह या इसी प्रकार के रोग, गर्भाशय बीजग्रन्थि आदि अङ्गों का शोथ इत्यादि बातों के विषय में खूब विस्तारपूर्वक ज्ञान करे ।

२—सार्वदेहिक परीक्षा—

शरीर के प्रत्येक अङ्ग, प्रत्यङ्ग की जांच बड़े ध्यान से करनी चाहिए । रोगिणी की स्थूलता तो नहीं है ? प्रमुख कामाङ्गों या सहायक अङ्गों का जैसे स्तन आदि का विकास ठीक रूप से हुआ है या नहीं ? चुल्लिका ग्रन्थि के स्राव में कोई कमी तो नहीं है ? नारी में पुरुष के समान लैंगिक गुण तो नहीं है ? आदि २ बातों का विस्तारपूर्वक ज्ञान करे ।

३—योनिगत परीक्षा—

योनिगत परीक्षा जहां अपने साधन में नहीं है वहां किसी स्त्री-चिकित्सक से इसकी परीक्षा कराना उत्तम है । ध्यान रखना चाहिए कि कोई कुलज विकृति तो नहीं है ? योनि, गर्भपथ, बीजवाहिनी नलिका और बीजग्रन्थि आदि में किसी प्रकार की सूजन तो नहीं है या कोई ग्रन्थि (Tumor) तो नहीं है ? गर्भाशय अपने स्थान से विचलित तो नहीं है ? यदि स्थान भ्रष्ट है तो उसे अपनी जगह पर उचित रूप से कर देना चाहिए । गर्भपथ (vagina) का PH क्या है, इसकी जांच करनी चाहिए ।

४—रक्त, पेशाब आदि परीक्षा—

रक्त में वासरमैन की जांच (आतशक के उपसर्ग के लिए) और कानटेस्ट कराना चाहिए । पेशाब की पूरी जांच से शर्करा आदि किसी प्रकार की भी खराबी का पता लगाया जाय । चुल्लिकाग्रन्थि की कमी को ज्ञात करने के लिए 'बेसल मेटाबोलिक' रेट दिखाया जाय ।

५—ओव्यूलेशन को ज्ञात करना—

प्रत्येक मास में नारी की बीजग्रन्थि से एक परिपक्व बीजाणु निकलता है उसी के साथ शुक्राणु का

संयोग जब होता है तब गर्भाधान होता है। कुछ स्त्रियों को मासिक आदि तो बराबर होता रहता है परन्तु बीजाणु परिपक्व होकर तैयार नहीं होने पाते, या बिल्कुल होते ही नहीं। अतः कुछ परीक्षायें होती हैं जिनके द्वारा (ovulation) बीजाणु के उत्पत्ति का समय मालुम किया जाता है। उसकी दो परीक्षायें अच्छी हैं जो सर्वत्र-सुलभ है।

विटामन सी परीक्षा-

बीजाणु का उत्पत्ति काल (ovulation time) जानने के लिये—

यदि किसी स्त्री को विटामिन सी मासिक धर्म होने के काल में दिया जाय; तो मूत्र द्वारा उसका निष्कासन जब होता है तो कुछ ऐसा समय आता है कि वह बिल्कुल कम होता है। वह समय प्रायः मासिक चक्र के मध्यकाल के करीब होता है। यही काल बीजाणु के बीजग्रन्थि में से निकलकर बाहर आने का (ovulation time) है। इस परीक्षा को निम्न-लिखित रीति से करे।

विटामिन 'सी' १५० से ३०० मिलीग्राम तक लेकर रुग्णा को परीक्षा करने के तीन घंटा पहिले देवे। इसकी मात्रा रोगी के बलाबल या उसके शरीरगत विटामिन "सी" के अभाव पर रखना चाहिए। डाइक्लोरफेनाल-इन्डोफेनाल (Dichlor-phenol-Indophenol) की एक टेबलेट ५० सी. सी. जल में घोली जाय। इस घोल का ५ सी. सी. इस पिपेट यंत्र के द्वारा एक बीकर (शीशे का पात्र) में लिया जाय, फिर रोगी का ताजा मूत्र इस घोल में एक ब्युरेट के द्वारा डाला जाय, जितनी मात्रा मूत्र की उस घोल के रंग को बदलने में लगे उतना ही विटामिन सी. उस मूत्र में रहता है। इस पद्धति से जब निम्नतम निष्कासन हो तब ovulation time पता लगावे।

तापमान द्वारा बीजाणु के बीजग्रंथि से निकलने का पता लगाया जा सकता है। कुछ विद्वानों का मत है कि जिस दिन शरीर का तापमान थोड़ा ज्यादा हो वही दिन स्त्री के ovulation का है। लगातार तापमान नोट कर इसका पता लगाना चाहिए।

(६) हूनर की परीक्षा—

शुक्राणु के पूर्ण स्वस्थ और गतिमान होते हुये भी जब तक वह श्रोणि (cervix) में प्रवेश न कर सकें तो व्यर्थ हैं। इस प्रकार की विकृति जानने के लिए हूनर की परीक्षा की जाती है। यह परीक्षा बीजग्रथि से बीजाणु निकलने के समय (ovulation time) में होनी चाहिए या उसके समीप। इस प्रकार के समय को उपरोक्त पद्धति से ज्ञात करे कि किस दिन (ovulation) होता है। पद्धति यूं है। श्रोणि से यहाँ गर्भशय का अग्रिम पतला भाग का बोध करे। मैथुन कर्म करने के बारह घंटे के पश्चात् स्त्री की श्रोणि (cervix) से एक पिपेट के द्वारा थोड़ा स्राव लिया जाता है। उसे तुरंत शीशे के स्लाइड पर रखकर सूक्ष्मदर्शक यंत्र द्वारा परीक्षा करें। सजीव (Fertile) दम्पति में १५-२० शुक्राणु प्रत्येक 'हाई पावर फील्ड' में रहते हैं। यदि यह संख्या प्रति हाई पावर फील्ड में १० शुक्राणु है या इससे ज्यादा है तो पुरुष दोषी नहीं है।

७—ट्यूबल पेटेन्सी टेस्ट—

इसके लिए सबसे उपयुक्त समय मासिकस्राव समाप्त होने से आठवें दिन से लेकर सोलहवें दिन तक होता है। किसी अपारदर्शी (opague media) जैसे 'लिपियोडोल' आदि का ८ से १० सी० सी० गर्भाशय में प्रविष्ट किया जाता है और एक्स-किरण द्वारा देखा जाता है कि अंगों में रुकावट कहाँ है? यदि रुकावट Ampulla या fimbriated end of the tube पर है तो शस्त्र-कर्म द्वारा लाभ पाया जा सकता है अन्यथा नहीं? यह जाँच यदि प्रजनन संस्थान में किसी प्रकार का उपसर्ग है तो नहीं करनी चाहिये।

८—इण्डोमेट्रियल बायोप्सी—

यदि तमाम उपाय करने पर भी कारण का कोई

पता नहीं लगे तो यह जाँच की जाती है। मासिक धर्म होने के एक-दो दिन पहिले या उसी समय किसी कुशल शल्य चिकित्सक द्वारा इस प्रकार की परीक्षा कराई जाय। इस परीक्षा द्वारा पता लगाया जाता है कि नारी को ovulation होता है या नहीं। मेरी दृष्टि में यह जाँच विटामिन सी० द्वारा कर लेनी उत्तम है। यदि उसकी या तापमान वाली परीक्षा में अड़चन है तो इसे करके ovulation होता है कि नहीं यह पता लगावें।

पुरुष की परीक्षा निम्नलिखित भाँति करे:—

१—इतिहास—

यहां पर फिर उन्हीं बातों पर ध्यान देना चाहिये जिसका कि पीछे वर्णन किया जा चुका है। पिछली बीमारियों जैसे आतशक, पूयमेह, कर्णफेर, मैथुनजन्य अन्य औपसर्गिक रोग, शल्यकर्म आदि कुछ पेशे जैसे बहुत दिनों तक रेडियम धातु के संसर्ग में रहना, बहुत गर्म वातावरण में काम करना, ज्यादा इंजिन चलाना, फरेन्स (भट्टी) में काम करने आदि से वीर्यगत शुक्राणु नष्ट हो जाते हैं। मानसिक चिंता, झंझट, ज्यादा काम, भोजन की कमी से कभी-कभी अल्प शुक्रता पैदा होजाती है।

२—सार्वदैहिक परीक्षा—

उन रोगों के बारे में ध्यान देना चाहिए जिनके द्वारा शरीर में असाधारण कमजोरी आ जाती है। मैथुनजन्य बहुत से औपसर्गिक रोगों पर विशेष ध्यान देना चाहिए। लैंगिक अङ्गों के बारे में विकास सम्बन्धी कोई विकृति तो नहीं है या अन्य कोई लैंगिक रोग तो नहीं है?

३—वीर्यगत परीक्षा—

यह परीक्षा पुरुष के निदान में खास महत्व रखती है अतः इस पर विशेष ध्यान देवे। वीर्य को परीक्षा करने के लिए इकट्ठा करने के तरीके में सूई की नोंक बराबर भी उपेक्षा न करे। वीर्य लेने की दो पद्धतियां काम में लाई जाती हैं।

अ—खण्डित सम्भोग (Coitus interruptus) द्वारा।

ब—हस्तमैथुन (*Masturbation*) द्वारा।

रोगी को हिदायत दी जाय कि वीर्य का क्षरण करके उसे एक चौड़े मुख वाले शीशे के ट्यूब (Test tube) में जो सूखा हो लाना चाहिए। तुरंत प्राप्त वीर्य की ही जांच करना चाहिए। वीर्य को यदि चिकित्सक के यहां ही लिया जाय तो सर्वोत्तम है अन्यथा यदि बाहर से लाना हो तो एक से दो घण्टे के भीतर जरूर जांच हो जानी चाहिए। जाड़े के दिनों में कपड़े में लपेट कर लाना चाहिए। शीशे की परीक्षा-नली को खून के तापमान के बराबर (ज्यादा कदापि नहीं) बानगी लेने के पहिले गर्म कर लेना चाहिए। शुक्राणुओं को एकाएक शीतल शीशे के सम्पर्क में आने से उनकी गति में फर्क पड़ जाता है और जीवनीय शक्ति घट सकती है। जैसे ही वीर्य शीशे की नली में डाला जाय उसे कार्क से तत्काल बन्दकर दिया जाय, ट्यूब को रुई से लपेट दिया जाय और उसको बक्स में रखा जाय। गोकि शुक्राणु ठण्डे तापमान पर ज्यादा जीवित रहते हैं बनिस्पत स्वस्थ रक्त के तापमान के, तथापि बहुत जल्दी ही ठण्डा हो जाना शुक्राणुओं के लिए अहितकर है। रुई में लपेटने से एकाएक ठण्डा न होकर धीरे-धीरे ठण्डा होता है जो ठीक रहता है।

वीर्य की राशि गर्भाधान में विशेष महत्व की होती है ऐसे रोगियों के लिए जिनमें शुक्राणुओं की संख्या न्यूनतम है। साधारणतः मैथुन में जो वीर्य की राशि निकलती है वह ४ से ५ सी. सी. तक होती है। किन्हीं किन्ही में मात्रा इससे कम-अधिक भी हो सकती है। मैथुन के पश्चात् एक समय में इसका ध्यान रखना चाहिए कि पुरुष के शुक्राणुओं की संख्या कितनी ही ज्यादा हो यदि नारी में बन्ध्या दोष है तो सब व्यर्थ है चाहे कोई भी संख्या हो। वीर्य की गर्भोत्पादक शक्ति के बारे में निर्णय देने में शुक्राणुओं के साथ-साथ उन शुक्राणुओं की जीवनीय

शक्ति पूर्ण स्वस्थ और गतिमानावस्था पर ध्यान देना एक प्रमुख बात है।

शुक्राणुओं का निश्चल होना (Necrospermia) भी वीर्यगत एक लक्षण है जो कभी-कभी मिलता है। वीर्य की बानगी जब रबर की थैली में लीजाती है तभी यह ज्यादातर पाया जाता है। यहां तक कि पूरा नियम पालन करने पर भी प्रायः देखा जाता है कि शुक्राणु गतिहीन हो जाते हैं। परन्तु वही वीर्य की बानगी यदि शीशे की परख-नली में एकत्रित की जाय तो इस प्रकार की क्षति नहीं होने पाती, शुक्राणु ठीक स्थिति में रहते हैं। अतः इस धोखे से बचने के लिए हमेशा वीर्य को क्षरण करके शीशे के पात्र में जैसा ऊपर बताया जाचुका है लिया जाय। मैथुन करने के तुरन्त बाद एक लम्बे ड्रापर से खींच कर के लिया जाय।

शुक्राणु गतिमान (Motile) तभी रहते हैं जब वीर्योत्पादक सहायक ग्रन्थियों के स्राव के संसर्ग में आते हैं जैसे वीर्यक्षरण के समय शुक्राणुओं का गतिमान होना इकट्ठा करने के तरीके पर मुनहसर करता है समय और तापमान पर यदि ध्यान दिया जाय तो गति ठीक रखी जा सकती है जब कि बानगी द्रव करके रखा जाय। उसे साफ खूब सूखे बर्तन में ६० F. से ७० F. तापमान पर रखा जाय तो ७० से ८० प्रतिशत करीब ६ घण्टे तक ठीक तरह से गतिमानावस्था में रक्खे जा सकते हैं।

शुक्राणुओं की जीवनीय क्षमता (Viability) बीजवाहिनी नलिका में ४८ घण्टे तक जीवित रहने की है। कमरे के तापमान में २४ घण्टे के अन्दर मर जाते हैं। स्थूल दृष्टि से एक वीर्य की बानगी जिसमें शुक्राणु ३ या ४ घण्टे कमरे के तापमान पर जिन्दा रहता देखा जाता है। उन वीर्यगत शुक्राणुओं को गर्भ-स्थापना की क्षमता रखने जितना वीर्य निकलता है उसमें शुक्राणुओं की संख्या २ से २० मिलियन के लगभग रहती है। इसकी लम्बाई 1000 से 500 इंच के लगभग होती है। इनका अगला भाग मोटा और अण्डाकार होता है। पूंछ नुकीली होती है।

वीर्य की जांच कराते समय निम्न बातों पर ध्यान रक्खें—

१—Quantity वीर्य की राशि
२—Consistency वीर्य का गाढ़ापन
३—वीर्यगत, शुक्राणुओं की संख्या
४—वीर्यगत शुक्राणुओं की गति
५—Abnormalities of the body शरीर के अन्य असाधारण पदार्थों का वीर्य में मिलना।

जिन रोगियों को वीर्य की राशि एक या दो बूंद रहती है वे वीर्य की राशि बहुत कम होने (Oligospermia) वाले रोग से ग्रसित रहते हैं। जब किसी रोगी का वीर्य मैथुनोपरान्त स्वप्नदोष, या हस्तमैथुन द्वारा निकलता ही नहीं तो फिर या तो रोगी का लैंगिक विकास ठीक नहीं है, या कोई शारीरिक कारण है जिससे वीर्य निकलने के रास्ते में रुकावट है, या यदि यह दोनों बातें नहीं है तो कोई मानसिक रुकावट (Inhibition) है। लैंगिक विकास का पता बड़ी आसानी से चल जाता है। यदि यह नहीं है तो फिर खोज करनी चाहिए कि कोई रुकावट रास्ते में तो नहीं है या मानसिक रुकावट है जिसका निदान बड़ा ही दुरूह है। मनोविश्लेषण चिकित्सा द्वारा पता लगाना चाहिए।

स्वाभाविक रूप से वीर्य की बानगी में शुक्राणुओं की संख्या १००–२००० मिलियन प्रत्येक शीशी में रहती है कुछ लोगों में ऐसा भी देखा गया है कि संख्या इससे ज्यादा थी फिर उस पुरुष की स्त्री संतान-सुख से वंचित थी। प्रश्न यह उठता है कि कम से कम कितनी शुक्राणुओं की प्रति सी० सी में हो कि वह संतानोत्पादन कला में समर्थ गिना जाय क्रियात्मक दृष्टि से सुविधा हेतु जिनके वीर्य की डेनसिटी- आयतन ५ मिलियन प्रत्येक में है वह निःसंदेह पण्ड (Sterile) है और।

के शुक्राणुओं की संख्या २५ मिलियन प्रत्येक शीशी में है वह बिना संदेह के संतानोत्पादक शक्ति रखता है। ३ घण्टे के बाद बानगी बिलकुल व्यर्थ हो जाती है।

कभी-कभी वीर्य में श्वेतकरण (W.B.C.) नाना प्रकार के जीव कोष और कण आदि मिलते हैं। यदि पुरुष का वीर्य दोषयुक्त पाया जाता है तो रक्त की वासरमैन और कान परीक्षा, सापेक्ष श्वेत-कण परीक्षा, सेडीमेंटेशन रेट, आदि की जांच करानी चाहिए। पौरुषग्रन्थि मर्दन के बाद के स्राव की परीक्षा सूक्ष्मदर्शक यंत्र द्वारा करानी चाहिए या यदि साथ में कोई और रोग हो तो उसकी चिकित्सा व्यवस्था करनी चाहिए।

४—बारम्बार वीर्य की परीक्षा करने पर भी यदि वीर्य में शुक्राणु न मिलें तो अंडकोषों के अन्दर से सूई द्वारा तरल पदार्थ लेकर और शीशे की स्लाइडपर लेकर शुक्राणुओंकी परीक्षा करें। वीर्योत्पादक और अन्य प्रजोत्पादन से सम्बन्धित सब अवयवों का कुशल शल्यकर्म-चिकित्सक द्वारा निर्णय कराना चाहिए।

चिकित्सा

षण्ढता रोग बहुत से कारणों से होता है अतः इसके कारण का पता ठीक रूप से लगाकर उसी शिकायत को दूर करने का प्रयत्न करना चाहिए। रोगी का स्वास्थ अच्छे भोजन, पूर्ण शारीरिक और मानसिक आराम, नियमित व्यायाम आदि से बढ़ाना चाहिए। शराब, तम्बाकू आदि बिल्कुल बन्द कर देना चाहिए। प्रत्येक लैंगिक बातों को रोगियों को समझा देना चाहिए। मैथुन किन-किन दिनों में करना चाहिए। कैसे-कैसे सफलता तुरन्त मिल सकती है सब स्पष्टतया निःसंकोच होकर बता देना चाहिए। किन-किन आसनों में मैथुन से गर्भाधान के अवसर ज्यादा हैं बताना चाहिए।

स्त्रियों में गर्भाशय शोथ या अन्य किसी भी संतानोत्पादक अङ्ग में शोथ हो तो उसे दूर करना चाहिए। यदि गर्भाशय टेढ़ा मेढ़ा हो गया है या किसी तरफ झुक गया है तो उसे अपने यथा-स्थान ठीक करना चाहिए। बीजवाहिनी नलिका में यदि कोई रुकावट हो तो शल्यकर्म द्वारा ठीक कराया जाय।

आतशक (Syphilis) पूयमेह (Gonorrhoea) ये दोनों रोग दूसरे प्रधान कारणों में से हैं पेनीसलीन और अन्य मल्ल के यौगिकों द्वारा जहां जैसी आवश्यकता हो ठीक की जाय। पूयमेह की वजह से गर्भाशय के अग्रिम भाग में शोथ रहता है जिससे बराबर अस्वस्थ स्राव होता रहता है फलस्वरूप शुक्राणु को आगे बढ़ने से रुकना पड़ता है और गर्भाधान नहीं हो पाता है।

चुल्लिका ग्रन्थि का (Thyroid) प्रयोग षण्ढता (Sterility) में पुरुष और नारी दोनों में लाभप्रद पाया जाता है। कई मास तक आधा ग्रेन दिन में २ या ३ बार तक देना चाहिए। यह औषधि खाने से हृदय की गति तीव्र हो जाती है और नाड़ी का वेग बढ़ जाता है अतः बीच-बीच में बन्द कर देना चाहिए तथा बड़ी सतर्कता से रोगी की हृदय गति की बारम्बार परीक्षा करके ध्यान देते हुए प्रयोग करना चाहिए।

डाइलेटेशन और क्यूरेटिंग (D & C operation) करने से कुछ केसेज में अच्छा लाभ मिलता है। किन्हीं-किन्हीं को हानि भी करने का डर रहता है कि बाहर से उपसर्ग पहुँच सकता है। फिर भी जब डाइलेटर गर्भाशय के मुख द्वारा प्रवेश किया जाता है तो हमेशा कुछ न कुछ हवा अन्दर प्रविष्ट होती रहती है जिससे यदि बीजवाहिनी नलिका में रुकावट होती है तो वह भी ठीक होने की आशा पाई जाती है, साथ ही साथ गर्भाशय मुख में औजारों के डालने से गर्भाशय की वृद्धि भी होती है।

उन रोगियों में जिनमें पुरुष के वीर्यगत शुक्राणुओं की संख्या कम है उन्हें हिदायत दी जाय कि वे मैथुन बीजाण के बीजग्रंथि से निकलने वाले

दिन (ovulation time) में ही करें। ओव्यूलेशन समय ऊपर दिये गये विटामिन सी० टेस्ट या तापमान द्वारा ज्ञात करे। यदि यह जांच असम्भव है तो स्थूल दृष्टि से अन्दाजन पता उस समय लगाया जा सकता है जैसे जिस नारी का मासिक चक्र २८ दिन का चलता है उसका ओव्यूलेशन समय तकरीबन १४ वें दिन माना जा सकता है जिसका चक्र २७दिन का है उसका १३ वें दिन, जिसका चक्र ३० दिन का है उसका १५ वें दिन माना जा सकता है। अतः पुरुष और नारी को बता देना चाहिए कि वे यदि २८ दिन का मासिक चक्र हो तो १३ वें और १५ वे दिन २७ दिन का मासिक चक्र हो तो १२ वे और १४ वे दिन, यदि ३० दिन का मासिक चक्र हो तो १४ वे और १६ वे दिन मैथुन गर्भाधान के निमित्त करें इससे सफलता की ज्यादा आशा रहती है।

तापमान वाली क्रिया के लिए स्त्री को चाहिए कि थर्मामीटर अपने बिस्तरे पर रखे। सुबह सोकर उठने के बाद सबसे पहिले मुख में ४ मिनट तक रखे। जब से मासिक शुरू हो तब से लेकर ओव्यूलेशन के दिन तक ५/१०° के हिसाब से क्रमशः तापमान बढ़ता है। ओव्यूलेशन के दिन तापमान १/२° से १° तक गिर जाता है फिर दूसरे दिन प्रातः १° से १,१/२° तक बढ़ जाता है। तदनन्तर दैनिक ५/१०° के हिसाब से घटकर नारमल तक पहुँच जाता है।

मैथुन करने के उन आसनों को पूर्ण रूप से बता देना चाहिए जिनके द्वारा वीर्य देर तक रुके। सबसे अच्छा होता है कि जंघाओं के नीचे एक तकिया लगाकर ऊंचा कर दिया जाय या मैथुन करने के तत्काल बाद में स्त्री अपने जंघाओं को किसी स्टूल के सहारे या किसी वस्तु के सहारे ऊंचा कर लेवे फिर इसी स्थिति में १/२ घण्टे तक कम से कम रहे। यदि यह दोनों उपाय न कर सके तो मैथुन के बाद किसी साफ कपड़ा या गाज से योनि के बाह्य मुख को बन्द कर देवें ताकि अन्दर से वीर्य बाहर न आ सके।

यदि लैङ्गिक अवयवों का विकास समुचित रूप से न हो तो "गोनाडो ट्रापिक हारमोन" किसी अच्छी कम्पनी का ५०० इण्टर नेशनल यूनिट की मात्रा में प्रयोग करें। या नारीगत फालीकूलर हारमोन Follicular Hormone जैसे ovacylin (ciba) oestoform (B. D. H.) आदि का ५ मिलीग्राम और टेस्टीकूलर हारमोन (Testicular Hormone) का जैसे Perandron ciba या Testaform (B. D. H.) आदि का ५ मिलीग्राम दोनों मिला कर दिया जाय तो लैङ्गिक अवयव का विकास शीघ्रातिशीघ्र होता है।

यदि मासिक नहीं होता है तो पुराने तरीके से मासिक चक्र के प्रथम १६ दिनों में फालीक्यूलर हारमोन (Follicular hormone) जैसे ovacyclin और चक्र के पिछले बारह दिन वाले ल्यूटियल हारमोन Luctial hormone जैसे Lutocyclin आदि का प्रयोग क्रमशः ५ मिलीग्राम और १० मिलीग्राम की मात्रा में करें। इससे नियमित रूप से मासिक चक्र चलने लगता है।

यदि मासिक धर्म अवयवों की खराबी के अलावा अन्य कारण से रुका हुआ है तो थोड़े से फालीक्यूलर हारमोन के साथ ज्यादा मात्रा में ल्यूटियल हारमोन मिला कर देने से आर्तव नियमित रूप से आने लगता है इससे गर्भाशय शुद्ध होता है और नारी में गर्भ-स्थापना होने के ज्यादा अवसर आते हैं। इस प्रकार की औषधि मिश्रित दोनों आजकल बाजार में मिलती है जैसे Dicecron or onasecron डाइसेक्रान सूई और वोरासेक्रान मुख द्वारा प्रयुक्त की जा सकती है। इस नई पद्धति से यदि लगातार कई मास तक चिकित्सा की जाय तो हारमोन की कमी से गर्भाशय में जो कुछ भी विकार होता है वह सब दूर हो जाता है। जो रोगी डी० एण्ड० सी० आपरेशन नहीं कराने को तैयार है उसको भी यह लाभप्रद सिद्ध हुई है।

यदि किसी प्रकार से भी सफलता न मिले तो

कृत्रिम वीर्य प्रवेश (Antificial insemination) द्वारा संतानोत्पत्ति कराकर रुग्णा की इच्छा पूरी करे। वीर्य रुग्णा के पति से लेवे या यदि असम्भव है तो किसी दाता से लेवे।

पुरुष रोगी के स्वास्थ्य पर विशेष ध्यान देवे। पूर्ण शारीरिक मानसिक विश्राम, नियमित जीवन, मद्य आदि का प्रयोग बन्द करा देवे। यदि पूयमेह फिरङ्ग या कोई भी इसी प्रकार का रोग हो तो उसकी चिकित्सा करे। पेनीसलीन या मल्ल के यौगिक द्वारा इन दोनों को जहां जैसा मुनासिब हो औषधि देकर ठीक रक्खे। चुल्लिका ग्रन्थि(Thyraid) मुख द्वारा प्रयोग करे। आसनों के बारे हिदायत पुरुष को विशेष रूप से देवें। स्त्री के ओव्ल्यूशन काल में मैथुन करने की सूझ देवें पुरुष के वीर्य की उत्पत्ति और उसको ठीक रखने में शरीर की तीन ग्रन्थियां ही हैं जिनके द्वारा काम होता है। अण्डकोष चुल्लिका ग्रन्थि तीसरा पिच्यूटरी एण्टीटीयर अतः इन तीनों ग्रन्थियों का उपयोग साथ-साथ या अलग अलग करे।

अण्डकोषों का अतः स्रावीमद टेस्टीकूलर हारमोन जैसे Parandren (ciba) पैरेण्ड्रीन सिबा या अन्य किसी अच्छी कम्पनी द्वारा निर्मित यह हारमोन १० मिलीग्राम में देना चाहिए इसके देने से वीर्यगत जितनी भी खराबी होती है वह सब ठीक की जा सकती है। मात्रा के बारे में आवश्यकता और रोगी का बलाबल देखकर निर्णय करे।

स्त्री के शरीर में पैदा होने वाला फालीक्यूलर हारमोन Follicular hormone जैसे ovacyclin p. (ciba) या अन्य किसी और जगह का बना यही हारमोन यदि पुरुष के शरीर में प्रविष्ट किया जाता है तो ठीक शरीर पर वही असर पड़ता है जो टेस्टीक्यूलर हारमोन का। इस सिद्धान्त को लेकर इस हारमोन को अकेले या सबसे बढ़िया टेस्टीक्यूलर हारमोन के साथ क्रमशः। १ मिलीग्राम और १० मिलीग्राम की मात्रा में वीर्यगत तमाम विकारों को दूर करने में किया जाता है। यूं तो अकेले अकेले देने पर भी लाभ करता है परन्तु प्रत्यक्ष यह देखा गया है कि यदि फालीक्यूलर हारमोन जैसे ओवेसाइक्लीन और टेस्टीक्यूलर हारमोन जैसे पैरेन्ड्रीन का मिश्रित योग दिया जाता है तो वीर्यगत सारे के सारे विकार नष्ट हो जाते हैं और वीर्य शीघ्रातिशीघ्र गर्भ स्थिर की क्षमता रखने लायक हो जाता है। दोनों औषधियों को मिलाने से औषधियों की मात्रा भी कम होती है। आजकल सीबा कम्पनी ने इन दोनों हारमोनों को मिश्रित करके एक योग बनाया है जिसे फेमेन्ड्रीन कहते हैं उसे भी प्रयोग में लाया जाय तो अच्छा रहेगा। कुछ लोग इस संदेह में बराबर बने रहते हैं कि फालीक्यूलर हारमोन के प्रयोग करने से पुरुष में क्लीत्व के कुछ लक्षण आ सकते हैं सो बात नहीं है। सिर्फ कभी-कभी किसी-किसी रोगी में इसको देने से स्तन बढ़ जाता है थोड़ा, और दर्द भी थोड़ा हो सकता है परन्तु वह सिर्फ सूइयों के लगने तक। यदि किसी रोगी को इस प्रकार का लक्षण हो तो फालीक्यूलर हारमोन की मात्रा १ मिलीग्राम से लेकर नीचे घटाकर आधा कर देना चाहिए। इसे ज्यादा मात्रा में कभी प्रयोग नहीं करना चाहिए। या ज्यादा कष्ट होवे तो बन्द कर देवे। आयुर्वेद में औषधियों की व्यवस्था अति उत्तम है। उन औषधियों में बङ्गभस्म, त्रिवङ्गभस्म, पुष्पधन्वा रस, चन्द्रप्रभावटी, वाजीकरण और प्रमेह रोगाधिकार की तमाम औषधियां पुरुष और नारी दोनों में सफलता पूर्वक व्यवहृत की जाती हैं। स्त्रियों में खास तौर से फलघृत, अशोकघृत, लक्ष्मण लौह यदि कोई विशेष विकृति न हो तो शतप्रति शत लाभ करती है परन्तु कारण के दूर करने पर ही यदि किसी को कोई और रोग है उसी में इनका प्रयोग किया जाय तो असफलता मिलेगी अतः चिकित्सक षण्ढता Sterility के मूल कारण को दूर कर देवे फिर स्वमेव ठीक हो जायगा।

आधुनिक चिकित्सा शास्त्र में हारमोनस के द्वारा ही चिकित्सा की जाती है अपने यहां भारतीय

—शेषांश पृष्ठ ८२० पर

उरस्तोय (PLEURISY)

कविराज एस० एन० बोस; एल० ए० एन० एस०, भिषगूरत्न, इन्दौर।

आयुर्वेद शास्त्र में "उरस्तोय" नाम की व्याधि का वर्णन हमें प्राप्त नहीं है, स्वर्गत गुरुदेव महामहोपाध्याय कविराज गणनाथ सेन जी ने अपनी पुस्तक प्रत्यक्ष शारीर द्वितीय भाग में फुस्फुसधरा कला के वर्णन प्रसङ्ग में "उरस्तोय" (Pleurisy with effusion) संज्ञा का प्रथम वर्णन किया है-जिससे आज यह नाम प्रख्यात है। वस्तुतः 'उरस्तोय 'शब्द का अङ्गरेजी अनुवाद Hydro thorax होना चाहिये। परन्तु Plurisy-जो कि फुस्फुसधरा कला का प्रदाह जनित व्याधि है। इसका वर्णन अर्थात् निदान पूर्वरूप, सम्प्राप्ति आदि के रूप में या नाम से आयुर्वेदीय ग्रन्थों में उपलब्ध नहीं है। अतः इस व्याधि के दोष दूष्य निर्णय के पश्चात् नवीन नाम करणों का अधिकार आयुर्वेद विद्वानों को है-जिसका उपयोग महामहोपाध्याय जी ने किया था। वस्तुतः इस व्याधि के विकृत शरीर विज्ञान के ऊपर ध्यान देने से Pleurisy की साधारण संज्ञा के रूप में 'उरस्तोय' शब्द की सार्थकता अवश्य ही प्रतिपन्न होती है। किसी आधुनिक वैद्य ने Pleurisy को विशेषतः Dry Pleurisy को 'उरःक्षत' संज्ञा दी थी, परन्तु 'उरःक्षत' संज्ञा तो किसी भी दृष्टि से समीचीन प्रतीत नहीं होती है। इस सम्बन्ध में वैद्य जगत से संज्ञा निर्देश अवश्य ही अपेक्षित है-परन्तु जब तक इससे योग्यतर संज्ञा निर्दिष्ट नहीं होती है तब तक Pleurisy के साधारण अनुवाद के रूप में 'उरस्तोय' को ग्रहण किया जावे-इसी दृष्टि से प्रस्तुत लेख में 'उरस्तोय' संज्ञा को ग्रहण किया गया है।

उरस्तोय फुस्फुसधरा कला की प्रदाह जनित व्याधि है। चिकित्सा क्षेत्र में जिसके कई रूप नजर आते हैं। इन रूपों के अनुसार उरस्तोय का श्रेणी विभाग किया गया है। फुस्फुसधरा कला के प्रदाह में जहां स्राव का संचय नहीं होता है, प्राथमिक स्राव शुष्क होजाता है। वहां इसे शुष्क उरस्तोय यानी Dry Pleurisy संज्ञा दी जाती है। जहां स्राव संचय होता है वहां इसे 'सास्राव उरस्तोय' यानी Pleurisy with effusion कहा जाता है, जहां स्राव पूयः में परिणत होजाता है वहां इसे 'पूयज उरस्तोय' यानी Empyema संज्ञा दी जाती है; इसके अलावा प्राथमिक अथवा औपसर्गिक रोगाक्रमण के अनुसार भी इस व्याधि का श्रेणी विभाग प्राथमिक याने Primary तथा औपसर्गिक यानी Secondary उपसंज्ञा से किया जाता है। तरुण तथा जीर्ण रूप के भेद से इस व्याधि का तरुण यानी Acule तथा जीर्ण यानी Chronic उपसंज्ञाओं से अभिहित किया गया है। परन्तु निश्चित रूप से यह समझ लेना आवश्यक है कि उपरोक्त सभी प्रकार की श्रेणियों में प्राथमिक विकृत विज्ञान समान है, रोग के दोष दूष्य की शक्ति व प्रतिक्रिया के तारतम्य के अनुसार रूप में पार्थक्य उत्पन्न होता है। पाश्चात्य शास्त्र के अनुसार यह व्याधि विभिन्न रोग जीवाणुओं से उत्पन्न हो सकती है, परन्तु अधिकांश क्षेत्रों में रोग जीवाणुओं का पृथक्करण असम्भव होने से इस व्याधि के उत्पादक जीवाणुओं के अनुसार श्रेणी विभाग नहीं किया जा सका। परन्तु अभी निश्चित रूप से यह प्रमाणित हो चुका है कि 'उरस्तोय' के आक्रमणों के अधिकांश क्षेत्रों में यह व्याधि क्षय रोग जीवाणुओं (Tubercle Bacilli) से ही उत्पन्न होती है।

संज्ञा व निदान—

फुस्फुसधरा कला के प्रदाह का यह एक प्रकार है जिसमें कला में प्रदाह जनित प्राथमिक स्राव शुष्क हो जाता है। यह व्याधि प्राथमिक अथवा औपसर्गिक रूप से प्रगट हो सकती है, परन्तु औपसर्गिक रूप से ही इस व्याधि का आक्रमण

अधिकतर होता है। शुष्क उरस्तोय का अधिकांश तरुण आक्रमण जिन्हें सामान्य दृष्टि से प्राथमिक समझा जाता है, वे वस्तुतः फुफ्फुस अथवा तत्सन्निकटवर्ती अपरांशों में अज्ञात अथवा उस रोगाक्रमण का ही औपसर्गिक रूप है। ऐसा ही पाश्चात्य विद्वानों की मान्यता है।

प्राथमिक शुष्क उरस्तोय--

आकस्मिक शैत्य सेवा इस व्याधि का प्रधान कारण है। आकस्मिक ऋतु परिवर्तन, शीतल वायु प्रवाह, दीर्घ समय तक पानी में भीगना अथवा आर्द्र वस्त्र परिधान आदि शैत्य सेवा का प्रधान उपाय है। मनुष्य के जीवनोपाय तथा वासस्थान, काल व आवहवा से शरीर को रोगाक्रमण के उपयुक्त बनाने में सहायता मिलती है। अधिक रूप से यह व्याधि पुरुषों में विशेषतः दुर्बल व्यक्तियों में होती है। प्रति अवस्था में होते हुए भी यह व्याधि अधिकतर २० से ४० साल की उम्र के भीतर ही होती है। पाश्चात्य विद्वानों का मत है कि प्राथमिक शुष्कउरस्तोय का अधिकांश आक्रमण क्षय रोग जीवाणु जन्य है और शैत्य सेवा, आघात आदि कारण केवल रोगी की रोग प्रतिषेधिका शक्ति के ह्रास करने में ही सहायता करते हैं। जिससे रोग जीवाणु अधिकतर कर्मठ बनकर लक्षणों के उत्पादन में सक्षम हो जाते हैं। सम्भवतः कुछ प्राथमिक शुष्क उरस्तोय का कारण तरुण आमवात भी हो सकता है।

औपसर्गिक शुष्क उरस्तोय--

फुफ्फुस के विभिन्न रोगों के विशेषतः किसी भी प्रकार के फुफ्फुसीय क्षय रोग के उपसर्ग के रूप में यह व्याधि साधारणतः नजर आती है। खण्डीय श्वसनकज्वर के उपसर्ग के रूप में प्रायशः यह व्याधि सदा ही आ जाती है। फुफ्फुसीय विभिन्न रोगों के अलावा वक्ष प्राचीर में आघात, जीर्ण वृक्क प्रदाह, पर्शुका के रोग तथा रक्त में विष अथवा पूयः संचार के कारण भी शुष्क उरस्तोय का आक्रमण हो सकता है।

आयुर्वेदीय मतानुसार "उरस्तोय" एक प्रकार की वातश्लेष्मोल्वण सन्निपातज व्याधि है। शुष्क उरस्तोय में वायु का प्रकोप अधिक होता है। जिससे प्राथमिक प्रदाह जनित स्राव शुष्क हो जाता है। अतः आयुर्वेद के अनुसार वातश्लेष्म प्रकोपक मिथ्या आहार विहार-जैसा कि ऊपर बताया गया है इस व्याधि का विप्रकृष्ट निदान कहलाया जा सकता है। रोगाक्रमण के पश्चात् वायुवर्द्धक आहार विहार से अथवा औषधोपचार से तथा वात प्रकृति के मनुष्यों में उरस्तोय की प्राथमिक शुष्क रूप में परिणति होती है। सन्निकृष्ट निदान के रूप में प्राथमिक शुष्क उरस्तोय में रोग जीवाणुओं का आक्रमण माना जा सकता है, परन्तु औपसर्गिक क्षेत्रों में रोग जीवाणु विप्रकृष्ट निदान हो कर शैत्य सेवा आदि वात कफ वर्द्धक मिथ्याहार विहार सन्निकृष्ट निदान बन जाता है।

विकृति विज्ञान--

इस व्याधि में फुफ्फुसधराकला में प्रदाह उत्पन्न होता है-जोकि किसी स्थानविशेष में सीमित रहता है। कभी कभी वह प्रदाह इतने व्यापक रूप से फैल जाता है जिससे सम्पूर्ण कला तक में भी प्रदाह उत्पन्न हो जाता है। इससे कभी कभी फुफ्फुसधरा कला का अन्तर्भाग, कभी कभी बहिर्भाग, परन्तु साधारणतः उभय भाग ही आक्रान्त हो जाते हैं। इस प्रदाह की प्रथमावस्था में फुफ्फुसधरा कलान्तस्तल में अधिक रक्त संचार के साथ लसीका स्राव होता है और उस समय कला ज्योति हीन तथा जड़ सरीखी दिखाई पड़ती है। अधिकतर लसीका स्राव होने के पश्चात् वात प्रकोप के कारण रूक्ष कला के ऊपर एक जालिकामय वस्तु जम कर एक पतला पर्दा सरीखा बन जाता है जिसमें फुफ्फुसधरा कला की आकृति अधिकतर रूक्ष अथवा खुरखुरी हो जाती है। उक्त पर्दे में जालिकामय पदार्थ में

श्वेत रक्त कणिका, कुछ लाल रक्त कणिका तथा स्थानभ्रष्ट कलान्तरीय कोष संबद्ध रहते हैं। विश्लिष्टावस्था में साधारणतः स्थानिक बन्धनियों की सृष्टि हो जाती है कभी कभी अन्तिमपरिणति के रूप में फुस्फुसधरा कला में स्थूलता उत्पन्न हो जाती है।

रूप—

साधारणतः इस व्याधि का आक्रमण अकस्मात् ही होता है और रोगी अचानक तीव्र सूचीविद्धवत् वेदना से ग्रसित हो जाता है। कभी कभी पूर्वरूप के रूप में कुछ घण्टे अथवा कई दिन पहिले से शरीर में ग्लानि, अङ्गमर्द आदि लक्षण प्रगट हो सकते हैं। गंभीर श्वास कास अथवा हिलने जुलने से पीड़ा अधिकतर तीव्र हो जाती है। साधारणतः रोग के प्रारम्भ से ही खांसी शुरू हो जाती है। प्रथम से ही वायु के प्रकोप के कारण शुष्क कास रोगी को परेशान कर डालता है। कफ बिलकुल नहीं निकलता है। ज्वर ताप बढ़ जाता है, साधारण क्षेत्र में १०० से १०१ डिग्री तक ही सीमित रहता है। किसी किसी क्षेत्र में ज्वरताप स्वाभाविक भी रहता है, ऐसा भी देखा गया है। उरस्तोय के औपसर्गिक आक्रमण के क्षेत्र में प्राथमिक रोग के साथ ये लक्षण सम्मिलित रूप से प्रगट होते हैं।

रोगी परीक्षा—

रोगी का अवस्थान इस व्याधि में एक ही रूप में नहीं दिखाई पड़ता है। कभी कभी रोगी आक्रान्त पार्श्व को दबाकर सोता है, कभी कभी इस अवस्थान में दर्द ज्यादा मालूम पड़ता है। जिस लिए रोगी चित या विपरीत पार्श्व में मामूली-सा करवट लेकर सोता रहता है। आक्रान्त पार्श्व में श्वास प्रश्वास जनित स्पन्दन मन्द हो जाता है और श्वासगति द्रुत प्रतीत होती है। स्पर्शन द्वारा आक्रान्त पार्श्व में वाचिक तरङ्ग अपरिवर्तित प्रतीत होती है, कभी कभी स्थानिक वेदना का तथा कभी घर्षणजनित तरङ्ग का अनुभव हो सकता है। श्वासध्वनि साधारणतः अपरिवर्तित, कभी कभी ह्रस्व अथवा रुकावट के साथ प्रतीत हो सकती है। शुष्क उरस्तोय का विशिष्ट लक्षण वहां घर्षणध्वनि का मिलना है। यह ध्वनि स्पष्टतः किसी नरम चमड़े के दो पर्दे के आपस में घर्षण से उत्पन्न ध्वनि के समान है जो कि साधारणतः श्वास ग्रहण की अन्तिमावस्था में तथा कभीकभी निश्वास त्याग की प्रथमावस्था में सुनाई पड़ती है। रोगाक्रमण के आरम्भ में कभी कभी सूक्ष्म चिट चिट ध्वनि से सम्मिलित घर्षण ध्वनि श्वास की अन्तिमावस्था में सुनाई पड़ती है। ये ध्वनियां फुस्फुसान्तर्गत सूक्ष्म चिट चिट ध्वनि के समान ही होती हैं, परन्तु शुष्क उरस्तोय में स्थानिक वेदना की उपस्थिति तथा खांसी के बाद उस शब्द का लोप या कम न होना दोनों के पहचान में काफी सहायक होते हैं।

उपसर्ग व परिणति—

शुष्क उरस्तोय के अन्त में दो प्रकार की परिणति हो सकती है। एक तो फुस्फुसधरा कलान्तराल में स्राव सञ्चय होकर आर्द्र उरस्तोय में परिवर्त्तित हो सकता है। नहीं तो फुस्फुसधरा कलान्तराल में बन्धनी की सृष्टि हो सकती है जिसके परिणाम में कभी-कभी फुस्फुसान्तरीय तन्तुमयता की सृष्टि भी हो सकती है। साधारणतः उरस्तोय की अन्तिम परिणति क्षय रोग ही दिखाई पड़ता है जो कि कई वर्ष के बाद भी अपना रूप प्रकट कर सकता है। बार-बार उरस्तोय का आक्रमण क्षय रोग का द्योतक ही माना जाता है। कभी-कभी सामयिक रूप से श्वास कष्ट के साथ पार्श्व देश में तीव्र वेदना का अनुभव भी होता रहता है।

रोग निर्णय—

उरस्तोय व्याधि से वक्ष प्राचीर में वेदना उत्पन्न करने वाली अथवा प्रसारित करने वाली व्याधियों का पृथक्करण सदा ही सहज साध्य नहीं होता है एवं उरस्तोय रोग के निदान करते समय इस बात का

ध्यान रखना चाहिये कि उरस्तोय व्याधि के निदान से भविष्य में अन्य प्रकार की ज्वरादि व्याधि में सहज ही क्षय रोग का सन्देह हो सकता है-जिससे रोगी के ऊपर बुरा असर पड़ सकता है। पशु कान्तरालीय मांस पेशियों तथा कलाओं के प्रदाह में जो तीव्र वेदना होती है वह साधारणतः गम्भीर श्वास ग्रहण से अन्य मांस पेशियों के सञ्चालन से तथा स्थानिक दवाव से अधिकतर अनुभव हो सकती है, परन्तु वहां ज्वर ताप की वृद्धि नहीं होती है-तथा घर्षण ध्वनि की अनुपस्थिति विशिष्ट लक्षण माना जाता है। पशु कान्तरालीय वायुजनित वेदना में साधारणतः वेदना नाड़ी के मार्ग के अनुसार ही अनुभूत होती हैं तथा वात व्याधि के साधारण नियमानुसार कभी उपस्थित कभी अनुपस्थित-ऐसी रहती है। श्वास-प्रश्वास के कारण उरस्तोय में वेदना जितनी तीव्र होती है इसमें इतनी तीव्र नहीं होती है। कभी-कभी अर्बुद अथवा अवरोध जनित धमनी स्फीत के दवाव से पशु कान्तरालीय नाड़ी प्रतान पीड़ित होने के कारण, सुषुम्ना काण्ड अथवा सुषुम्नाधरा कला की मारात्मक व्याधियों के कारण अथवा कशेरुकाओं में क्षय रोग के कारण इस प्रकार की वेदना अनुभूत हो सकती है, परन्तु जहां वह वेदना दीर्घ दिन तक रहती है तथा घर्षण ध्वनि सुनाई नहीं पड़ती है-वहां उपरोक्त व्याधियों का सन्देह होना चाहिये।

कभी-कभी वक्षःप्राचीर की मांस पेशियों में, अंससन्धि में, पृष्ठ देश की मांस पेशियों में एक प्रकार की अस्वाभाविक ध्वनि उत्पन्न होती है-जिसके साथ फुफ्फुसधराकलान्तरालज घर्षण ध्वनि का भ्रम उत्पन्न हो सकता है; परन्तु रोगी को श्वासरोध पूर्वक उपरोक्त अङ्गों को सञ्चालित करने के लिये कहने पर इस भ्रम का दूरी करण हो सकता है। कभी-कभी प्रकृति घर्षण ध्वनि हृत्स्पन्दन, की यति के अनुसार सुनाई पड़ती है। साधारणतः हृत्पिण्ड धरा कला के सन्निकटवर्ती फुफ्फुसधरा कला आक्रान्त होने पर इस प्रकार से घर्षणध्वनि सुनाई पड़ती है-जिसे उत्पन्न करने में हृत्पिण्ड तथा फुफ्फुसधरा कला दोनों का उत्तरदायित्व माना जाता है।

उरस्तोय व्याधि निर्णीत होने के पश्चात् इस ओर ध्यान देना चाहिये कि सचमुच यह व्याधि प्राथमिक तथा अभिन्न है या नहीं। एतदर्थ शरीर के किसी भी अंश में क्षय रोग का आक्रमण नहीं है इस निश्चय पर पहुँचना चाहिये। प्राथमिकता निर्णय के लिये श्वसनक सन्निपात, क्षय रोग तथा श्वसनिका प्रसार आदि व्याधियों की अनुपस्थिति प्रतिपन्न होना आवश्यक है।

रोग प्रगति—

साधारणतः २-३ दिन में ज्वरताप स्वाभाविक होजाता है। क्रमशः श्वास कष्ट वेदना तथा कास कम होजाता है और रोगी शीघ्र ही आरोग्य लाभ करता है। परन्तु जहां स्राव सञ्चय होता है-वहां रोग प्रगति विलम्बित होजाती है।

साध्यासाध्यत्व निर्णय—

अमिश्र प्राथमिक उरस्तोय सुसाध्य व्याधि कही जा सकती है। परन्तु अधिकांश क्षेत्र में यह व्याधि प्रकट अथवा गुप्त क्षय रोग से उत्पन्न होने के कारण फुफ्फुसों में सक्रिय व्याधि का रूप धारण कर सकती है-जो कि स्वल्पकालान्तर में सांघातिक हो सकती है।

चिकित्सा

साधारण—

रोगी को हवा व रोशनीयुक्त कमरे में पलङ्ग पर रखना चाहिये। चाहे रोग आक्रमण मृदु हो या तीव्र रोगी को शय्याशायी रखना विशेष आवश्यक है। साधारणतः वेदना के लिये धतूरे की पत्ती के रस में समुद्रफेन व मृगशृङ्ग घिस कर गर्म करके लगाया जाता है जिससे काफी आराम मिलता है। कभी-कभी धतूरे की पत्ती के रस में सोंठ भूना हुआ चावल, समुद्रफेन, बकरी की लेण्डी बराबर लेकर एक साथ पीस कर गर्म करके लगाया जाता है। सरसों की पत्ती पीस कर अथवा लाल

मिर्च पीस कर वेसलीन के साथ मिला कर लगाने से दर्द कम होजाता है। दर्द कम करने के लिये चिपकने वाला प्लास्टर भी लगाया जाता है जिसमें श्वास-प्रश्वास के समय वक्षप्राचीर की गति कम होने के कारण वेदना का अनुभव कम होजाता है। प्लास्टर नीचे से ऊपर की ओर उरः फलक से शुरू कर पृष्ठ वंश तक लगाया जाता है। कभी-कभी इससे रोगी का श्वास कष्ट भी होजाता है, ऐसा होने से प्लास्टर ढीला कर देना चाहिये। वेदना कम करने के लिये जलौका का प्रयोग किया जाता है। कभी-कभी वेदना इतनी तीव्र होती है जो रोगी के लिये असहनीय सी होजाती है। ऐसे क्षेत्र में मर्फिया या तज्जात अन्यान्य औषधियों के सूचीवेध की आवश्यकता पड़ती है। डोभर्स पावडर (Dovers powder) जिसमें १० प्रतिशत अहिफेन रहता है उसके प्रयोग से वेदना के लिये सामयिक शान्ति मिल सकती है। सायंकाल के प्रयोग से रात्रि काल कुछ आराम से बिताया जा सकता है, नींद आ जाती है।

औषधोपचार

इस व्याधि में शुष्क कास बहुत ही कष्ट दायक होता है। एतदर्थ वायुनाशक तथा शामक औषधियां जैसे कि भैषज्यरत्नावली कासाधिकारोक्त विश्वादिलेह, भार्ग्यादिलेह, अपराजितालेह, आदि कासयोग अपेक्षित हैं। इस प्रकार कास के लिये मुलहठी का प्रयोग विशेष हितकर है। विशेषतः बराबर द्राक्षा, मुलेठी,खजुर, पिपल व कालीमिर्चका चूर्ण घृत शहद (असमान अंश में) के साथ अवलेहार्थ प्रयोग करने से अधिकतर लाभ होता है। तालीसादि या सितोपलादि चूर्ण का प्रयोग भी किया जा सकता है। वच व तालमिश्री के चूसने सेभी लाभ होता है।

पाश्चत्य औषधियों में से Cedeine व Belladona प्रधान है। Syrup codeine phosp (Dose ½ to 2 dr.) तथा Tr. Belladona (Dose ५ to १५ minim) की मात्रा में प्रयोग करने से काफी लाभ होता है। आयुर्वेदीय कनकासव प्रयोग किया जा सकता है।

पहिले ही बतया गया है कि शुष्क उरस्तोय वात श्लेष्म प्रधान सन्निपातज व्याधि है जिसमें प्रथमतः खासतौर से वायु प्राबल्य रहता है। एतदर्थ स्वल्प-कस्तूरीभैरव एक श्रेष्ठ औषधि है। स्वल्पकस्तूरी भैरव १रत्ती+प्रवाल पिष्टी १ रत्ती पान के रस व शहद के साथ देने से काफी लाभ होता है। शाम को चिन्तामणि चतुर्मुख २ रत्ती चावल का धोवन व शहद के साथ अथवा जटामांसी का शीतकषाय, बड़ी इलायची चूर्ण व, शहद के साथ देने से वायुशन्ति में सहायता मिलती है। इसके अलावा शृंग्यादि चूर्ण, वृ० वासावलेह,अष्टांगावलेह आदि के प्रयोग से कफ ढीला होने में मदद मिलती है। ज्वरताप कम होने के पश्चात् अर्थात ३ दिन के बाद स्रावसंचय को रोकने की दृष्टि से नारदीय लक्ष्मीविलास का प्रयोग विशेष लाभदायक होगा। नारदीय लक्ष्मीविलास २ रत्ती व प्रवालभस्म २ रत्ती सुबह एक दफे दवना (दौना) मरवे की पत्ती के रस व शहद के साथ प्रयोग करना अत्युत्तम होगा। ज्वरवेग तीव्र होने से श्वेतपर्पटी का प्रयोग—चाहे थोड़ासा रससिन्दुर या स्वर्णसिंदुर (मकरध्वज) के साथ सौंफ का पानी, मिश्री आदि अनुपान से प्रयोग करना चाहिये। असिश्र साधारण शुष्क उरस्तोय में इससे अधिक कुछ करने की आवश्यता नहीं पड़ती है।

पाश्चात्य चिकित्सा विज्ञान के अनुसार इस व्याधिमें पेनिसीलिन तथा आजकल क्षयरोग की अत्यन्त प्रबलता के युग में—स्ट्रेप्टोमाइसीन सह पेनिसीलिन का सूचीवेध शुरु से ही दिया जाता है। आवश्यक क्षेत्र में आयुर्वेदीय औषधियों के साथ इसका प्रयोग सरलता से तथा विशिष्ट लाभ के साथ किया जा सकता है।

पथ्यापथ्य—

ज्वरताप विवृद्ध रहते हुए रोगी को तरल सहज पाच्य पथ्य जैसे—जौ का पानी, साबुदाना, शुण्ठी-साधित दुग्ध, मीठा अनार व मुसम्बी, संतरा, का रस आदि दिया जा सकता है। ज्वरताप कम हो जाने के बाद धान या चावल का लाई, विस्कुट

आदि हल्का भोजन दिया जा सकता है। रोग लक्षण सम्पूर्ण रूप से दूर होने के पहले अन्न भोजन देना उचित नहीं है। रोगी के सम्पूर्ण स्वास्थ्य लाभ के पहिले इस व्याधि से मुक्त समझ कर सभी बाधानिषेध से छुटकारा दिलाना या पूर्ण कार्य भार ग्रहण करना कदापि उचित नहीं है। चिकित्सकों को सदा ही इस बात को ध्यान में रखना चाहिए कि आधुनिक युग में अधिकांश उरस्तोय व्याधि के साथ क्षयरोग का सम्पर्क रहता है। अतः क्षयरोग के आक्रमण से निःसंशय होने के पहिले रोगी को पूर्ण स्वस्थ कह देना या समझ लेना कदापि उचित नहीं है।

स्थानभेद से शुष्क व्याधि का कुछ विशिष्ट रूप का भी वर्णन पाश्चात्य चिकित्सा शास्त्र में मिलता है। इसमें से महा प्राचीरा संलग्न तरुण शुष्क उरस्तोय का विशेष महत्व है, एतदर्थ यहां वर्णन किया जा रहा है।

महा प्राचीरा संलग्न शुष्क उरस्तोय (Diaphragmatic Acute Dry Pleurisy)

निदान–

यह व्याधि साधारण तरुण शुष्क उरस्तोय के समान महा प्राचीरा संलग्न फुफ्फुसधरा कला में उत्पन्न हो सकती है। परन्तु कुछ औदरिक व्याधि जैसे कि यकृत प्रदाह, यकृत शोष, प्लीहा प्रदाह, उदर्याकला प्रदाह, अधिवृक्कज व्रण आदि से प्रसारित होकर इस व्याधि की उत्पत्ति हो सकती है। जिससे इसमें महत्ता सूचित होती है। कभी कभी इस प्रकार का प्रदाह फुफ्फुस के अन्यांशों में उरस्तोय के औपसर्गिक रूप में भी प्रगट होता है।

लक्षण–

इस व्याधि में वेदना अतितीव्र होती है औरसाधारणतः गर्दन के पास पृष्ट देश में तथा उदर में ही अनुभव होती है। उदर में सचराचर नाभि देश के ऊपर मध्य अथवा पार्श्वदेश में ही अनुभूत होती है। आक्रान्त पार्श्व में निःश्वास प्रश्वास के समय पर महा प्राचीरा का उत्थान-पतन करीब करीब बन्द सा हो जाता है तथा औदरिक मांसपेशियों में कुछ कड़ापन आ जाता है। कभी कभी हिक्का शुरू हो जाती है और एक कष्टदायक लक्षण का रूप ले लेती है। दक्षिण पार्श्व आक्रान्त होने से महाप्राचीरा की पतनावस्था में निश्चल हो जाने के कारण यकृत कुछ नीचे की ओर दब जाती है। शुष्क उरस्तोय में साधारणतः जिस घर्षणध्वनि को एक विशिष्ट चिन्ह माना जाता है इस प्रकार के शुष्क उरस्तोय में कचिंत ही वह घर्षणध्वनि सुनाई पड़ती है। अस्वाभाविक लक्षणों में से आक्रान्त पार्श्व में वायु प्रवेश की हीनता तथा कभी कभी अंगुलिप्रताड़न से उक्त स्थान में अपेक्षाकृत जड़ता का अनुभव हो सकता है।

रोग निर्णय–

साधारणतः उदर में तीव्र वेदना आदि लक्षणों से कुछ औदरिक व्याधि का भ्रम हो सकता है। विशेषतः अन्त्रादि के विदारण के समान चिह्न नजर आते हैं। परन्तु अन्त्रादि के विदारण से रोगी की होने वाली मोहावस्था, उदर में मुक्त-वायु जनित स्फीति आदि के अभाव में रोग निर्णय कुछ सरल हो जाता है। परन्तु साधारणतः सम्यक् रूपेण रोग निर्णय कुछ दुःसाध्य सा प्रतीत हो सकता है।

चिकित्सा–

साधारण तथा औषध उपचार तरुण शुष्क उरस्तोय के समान ही है। परन्तु केवल अहिफेन जातीय औषधि प्रयोग के पहिले रोग निर्णय के सम्बन्ध में निश्चित होना एकान्त आवश्यक है क्योंकि अन्त्र विदारण आदि क्षेत्र में अहिफेन घटित औषधियों का प्रयोग कभी कभी अत्यन्त हानिकारक सिद्ध हो सकता है।

शुष्क उरस्तोय में केवल खण्डान्तरीय फुफ्फुसधरा कला का प्रदाह हो सकता है। परन्तु साधारणतः यह अवस्था क्षय रोग अथवा श्वसनक ज्वर

के उपसर्ग के रूप में ही उपस्थित हो सकती है। जब तक आक्रान्त कला में स्राव संचय नहीं होता है तब तक चिकित्सा क्षेत्र में इसको कुछ विशेष महत्व नहीं दिया जाता है। साधारण शवव्यवच्छेद के समय पर इस अवस्था का ज्ञान प्राप्त होता है।

जीर्ण शुष्क उरस्तोय—

इस संज्ञा के अन्दर जीर्ण शुष्क उरस्तोय नाम की व्याधि जिसमें दीर्घ दिन तक शुष्क उरस्तोय के लक्षण वर्तमान रहते हैं अथवा कुछ दिन तक अच्छे रहने के बाद बारबार शुष्क उरस्तोय के लक्षण प्रगट होते हैं। इनके अलावा जिसमें शुष्क उरस्तोय की परिणति में फुफ्फुसधरा कला में बन्धनियों की सृष्टि होती है अथवा फुफ्फुसधरा कला में स्थूलता आ जाती है इन अवस्थाओं का भी समावेश किया जाता है। पश्चातोक्त अवस्थाओं में साधारणतः किसी प्रकार के लक्षण प्रकट नहीं रहते हैं। कभी कभी भारोत्तोलन आदि के कारण श्वासकष्ट अथवा तीव्र वेदना का अनुभव हो सकता है। बन्धनियों की सृष्टि से आक्रान्त पार्श्व में वक्षःप्राचीर के संचालन में ससीमावस्था की उत्पत्ति हो सकती है। वाचिक प्रतिस्वनन में ह्रास तथा अंगुलिप्रताड़न में मामूली स्तब्धता आ जाती है। श्वास प्रश्वास ध्वनि की मृदुता तथा शब्दतरङ्ग की स्वल्पता भी मिल सकती है।

महाप्राचीरा संलग्न फुफ्फुसधरा कला के जीर्ण प्रदाह में बन्धनियों की सृष्टि होने से जीर्ण अन्तद्रव-शूल के लक्षणों के सदृश लक्षण उत्पन्न हो सकते हैं। परन्तु लक्किरण से तथा आमाशयिक व्रत के अन्य लक्षणों के अभाव से रोग निर्णय सरल हो सकता है।

चिकित्सा—

साधारणतः जीर्ण शुष्क उरस्तोय को यक्ष्मज के रूप में ही माना जाता है। अतः चिकित्सा भी तदनुसार ही की जाती है। अन्यान्य क्षेत्र में लाक्षणिक चिकित्सा ही प्रधान है।

पृष्ठ ८१३ का शेषांश

चिकित्सा शास्त्र में मुख द्वारा अण्डकोष, नक्रवीर्य आदि को खिलाने की व्यवस्था की है वह और कुछ नहीं है हारमोनस ही समझना चाहिए। इन शास्त्रोक्त औषधियों के अलावा अन्य बहुत सी औषधियां वृद्ध वैद्यों द्वारा प्रयोग की जाती है उन्हें अपने अनुभवों को जनता के लाभार्थ प्रकाशित करना चाहिए।

पण्ढता रोग का निदान पाश्चात्य दृष्टिकोण से अच्छा है अतः जहां तक रोग के निदान का और शल्यकर्म का प्रश्न है वह इसी के सहारे करना आसान है परन्तु औषधियों की व्यवस्था आयुर्वेद में से लेकर प्रयोग करे तो शतशः लाभ और यश वैद्य समुदाय को मिले। आशा है कि इस विषय पर विशेष सिद्धहस्त वैद्यगण और प्रकाश डालेंगे।
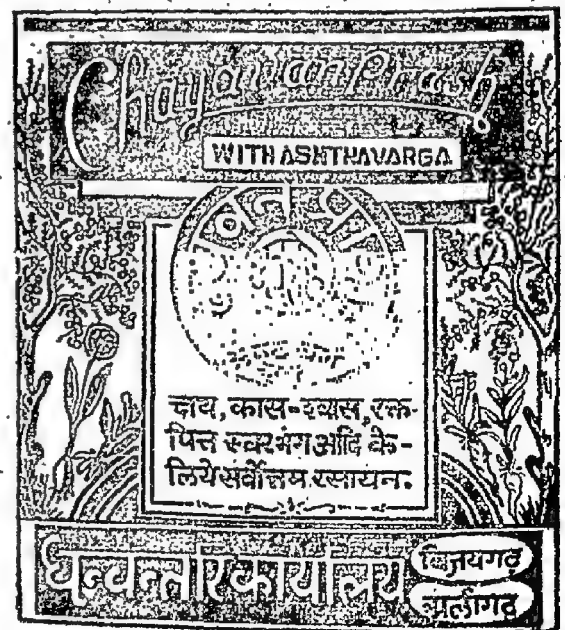
दही और स्वास्थ्य

लेखक—डा० कुलरंजन मुखर्जी, कलकत्ता।

स्मरणातीत काल से मनुष्य की खाद्य की तालिका में दही एक विशिष्ट अधिकार किए हुए है। भारतवर्ष, टर्की, यूरोप, अमेरिका, यूगोस्लाविया, रूमानिया, एशिया एवं मध्य यूरोप में दही एक पुष्टिकर खाद्य के रूप में विवेचित होता आ रहा है। विगत अर्ध शताब्दी से पश्चिम यूरोप एवं अमेरिका में भी इसका प्रचलन क्रमशः वर्धित हो रहा है।

साधारणतः यूरोप एवं अमेरिका में गाय का दूध ही दही तैयार करने के लिए व्यवहृत होता है। भारतवर्ष में गाय के दूध के साथ-साथ भैंस का दूध भी व्यापक रूप से व्यवहृत होता है। एशिया में भेड़ बकरी तथा गधे के दूध के द्वारा प्रचुर परिमाण में दही तैयार होता है।

दही एक अति प्रयोजनीय दुग्ध जात द्रव्य एवं अतिशय पुष्टिकर खाद्य है। एक मात्र शर्करा के अलावा दूध के सभी उपादान इसमें अविकृत रहते हैं। दूध की इसी शकर का दो तृतीयांश ही ल्याकटोबेसिलस द्वारा लेक्टिव एसिड में परिणत होता है। दूध का मक्खन निकाल लेने पर दही में ५ से ८ प्रतिशत स्नेह जातीय पदार्थ, ३·२ से ३·४ प्रतिशत प्रोटीन, ४·६ से ५·२ प्रतिशत लैक्टोज, ०·५ से ०·११ प्रतिशत लैक्टिक एसिड, ०·७० से ०·७५ प्रतिशत धातव लवण ०·१२ से ०·१४ प्रतिशत चूना, ०·०६ से ०·११ प्रतिशत फासफोरस एवं ०·३ प्रतिशत लोहा पाया जाता है। दही में ८५ से ८८ प्रतिशत जल वर्तमान रहता है।

दही में हर १०० ग्राम में ३० मिलिग्राम रिवोफ्लाविन पाया जाता है एवं इसके अन्दर विटामिन ए किंचित परिमाण में वर्तमान रहता है।

यह देखा गया है कि इसका राइबोफ्लाविन (एक श्रेणी का विटामिन बी) दही जमने के समय स्वयं वर्धित होता है अधिकतर आश्चर्य का विषय यह है कि दही के जीवाणु आंतों के भीतर बी विटामिन उत्पन्न करते हैं। एवं वहां से वह शरीर में शोषित होता है।

दही अत्यन्त सुपाच्य खाद्य है। यह दूध से भी शीघ्र एवं आसानी से पच जाता है। दही के लैक्टिक एसिड द्वारा इसका प्रोटीन आंशिक रूप में हजम हो जाता है। एवं कैलसियम भी अंशतः द्रवीभूत हो जाता है। इसलिए ये सभी पदार्थ अति सहज ही शरीर में शोषित हो जाते हैं। एवं शरीर के काम आते हैं। डा० विलियम मैकीकन मैरियट, एम० डी० का कहना है कि 'दही दूध की अपेक्षा भी आसनी से हजम हो जाता है। दही का अम्लरस पित्त क्लोमयंत्र एवं आंतों के रस में निःसरण में सहायता करता है। यह दूध के छेने को कोमल दही में परिणत करता है। जिसके फलस्वरूप सभी पाचक रस सहज ही इसमें प्रवेश कर सकते हैं। एवं दूध पीने के पश्चात् साधारणतया जो वृहत् आकार का छेना पाकस्थली में उत्पन्न होता है उसकी अपेक्षा यहां बहुत शीघ्र ही पाकस्थली को त्याग कर देता है; दही का अम्लरस भी सहज ही शरीर के काम में आता है।

दही इसीलिये अत्यन्त प्रयोजनीय समझा जाता है कि दही के जीवाणु आंतों के भीतर अवस्थित रोग-जीवाणुओं को ध्वंस कर उस स्थान पर शरीर के लिए हितकर जीवाणुओं का प्रवर्तन करते हैं।

मनुष्य शरीर की आंतों के भीतर स्वभावतः ही लैक्टोबेसिलस एसिडोफिलस जीवाणु दिखाई देते हैं। जब दिन प्रतिदिन पर्याप्त परिमाण में दही ग्रहण किया जाता है तब आंतों के भीतर इन हितकर जीवाणुओं का एक उपनिवेश गठित होजाता है। ये सभी जीवाणु आंतों के भीतर खाद्य-पदार्थ को सड़ने नहीं देते एवं जिन सभी अहितकर जीवाणुओं के कारण

पेट के भीतर खाद्य विकृत हो उठता है, ये क्रमशः उनका स्थान अधिकार कर बाद में उन्हें सम्पूर्ण रूप से आंत से बाहर कर देते हैं। मानव शरीर के पक्ष में हानिकारक विभिन्न जीवाणुओं को ध्वंस करने की जो शक्ति दही में है यह कई एक परीक्षाओं द्वारा पूर्ण रूप से प्रमाणित होगया है। आमाशय टायफायड एवं कालरा के जीवाणु अत्यधिक संख्या में दही में मिला कर देखा गया है कि वे सभी जीवाणु बहुत शीघ्र ही मर गये एवं केवल ३ घण्टे के बाद उन्हें पृथक् करना असम्भव होगया।

यह स्मरण रक्खा जा सकता है कि दही केवल शरीर में अनिष्टकारी जीवाणुओं की वृद्धि को ही नहीं रोकता, अधिकंतु वे सभी जीवाणु जो शरीर के अन्दर विष उत्पन्न करते हैं उन्हें भी नष्ट करता है।

कुछ परीक्षकों ने गवेषणा करके देखा है कि नियमित दही का व्यवहार त्याग करने के ११ से १२ महीने के बाद भी आंतों के भीतर दही के जीवाणु सक्रिय रहते हैं; दीर्घ गवेषणा के फलस्वरूप उनके मन में यह धारणा बद्धमूल होगई है कि कोष्ठबद्धता अजीर्ण पुराना आमाशय, एवं क्षत संयुक्त ग्रहणी आदि रोगों में दही एक अत्यन्त हितकर खाद्य है। परीक्षा मूलक रूप से यक्ष्मा के कई एक रोगियों को दही दिया गया है। उन्हें प्रतिदिन २५० से १००० मिली-मीटर तक दही खाने के लिए दिया जाता था। इसके फलस्वरूप उनके शरीर में रोग आरोग्य के लक्षण सुस्पष्ट हो उठे।

चिकित्सा सम्बन्धी विस्तृत गवेषणा के फलस्वरूप यह निःसंदेह प्रमाणित हो गया है कि नियमित रूप से दही सेवन करने पर आंतों का स्वास्थ्य यथेष्ट रूप से उन्नति लाभ करता है।

एशिया के विख्यात गवेषणाकारी प्रोफेसर मैचीन-कफ का अटल विश्वास था कि यथेष्ट रूप में दही खाने पर अकाल वार्धक्य एवं शारीरिक क्षय दूर होता है। उनका विचार था कि जिन जीवाणुओं द्वारा शीघ्र बुढ़ापा आ जाता है वे जीवाणु बड़ी आंत में रहते हैं। कई एक वृद्ध व्यक्तियों के मत से उन्होंने एक प्रकार का सीरम तैयार किया तथा उसे कुछ बन्दरों के शरीर में प्रवेश कराकर उनके शरीर में अकाल वार्धक्य लाने में समर्थ हुए थे। बाद में पुनः दही से दही-जीवाणु लेकर उसे ही बन्दरों के शरीर में प्रवेश करा दिया, फलस्वरूप उनके शरीर में पुनः स्वास्थ्य लौट आया। बहुतों का यह विश्वास है कि एक या एकाधिक बार दही व्यवहार करने पर दीर्घ जीवन लाभ होता है। इस विषय में बुलगेरिया-वासियों की बात प्रायः ही उल्लेख की जाती है। वे पृथ्वी की अन्यान्य बहुत सी जातियों की अपेक्षा बहुत अधिक मात्रा में दही भोजन करते हैं। यही कारण है कि बुलगेरिया में शतवर्ष जीवी लोगों की संख्या बहुत अधिक पाई जाती है।

बाजार में दही हमेशा ही खरीदने पर मिल जाता है। किन्तु दूध में थोड़ा ज्यावन मिलाकर घर पर अनायास ही दही तैयार किया जा सकता है।

दही जमाने के लिए सर्वदा ही खांटी एवं सर्वोत्तम दूध व्यवहार करना उचित है। दूध में ज्यावन मिलाने से पहले दूध को १० मिनट तक गर्म करना उचित है। बाद में जब वह थोड़ा ठंडा होजाय तब उसमें ताजा दही का ज्यावन भली भांति मिलाना जरूरी है।

साधारणतया हर आध सेर दूध के लिए चाय के चम्मच का एक चम्मच ज्यावन ही यथेष्ट है। जो ज्यावन व्यवहार किया जाता है उसके ऊपर ही दही का गुण अवगुण बहुत कुछ निर्भर करता है। ज्यावन जितना अच्छा होगा, दही उतना ही सुगन्धयुक्त एवं घना होकर जमेगा। पुराने अथवा खराब ज्यावन से अच्छा दही तैयार करना असम्भव है।

गरमी के दिनों में थोड़े से यत्न द्वारा ही दूध जमकर दही हो जाता है। किन्तु शीतऋतु में उसे

कंबल आदि के द्वारा भली भांति ढक देना आवश्यक है तथा गरम स्थान में रखना उचित है।

ग्रीष्मकाल में दही जमाने के लिए पांच से ६ घण्टे समय की आवश्यकता होती है। किन्तु शीतऋतु में इसके लिए काफ़ी समय का प्रयोजन होता है। तथापि चेष्टा करने पर जिस किसी भी ऋतु में जिस किसी भी समय केवल दो घण्टे के अन्दर दही जमाया जा सकता है। इसके लिए ज्यावन का कुछ हिस्सा दही जमाने के वर्तन में लेप देना होता है एवं अवशिष्ट अंश दूध के साथ मिला दिया जाता है। बाद में इसे कंबल आदि द्वारा ढक कर धूप में रख देना होता है। इससे दो घण्टे के अन्दर ही दही घना होकर जम जाता है। यदि सूर्य्य बादल से ढका हो अथवा सूर्य्य का ताप कम हो तब एक वर्तन में जल रख कर उसमें दही के वर्तन को रख देना उचित। इससे थोड़े समय के अन्दर ही दही जमकर तैयार हो जाता है।

इस तरह से जमाया हुआ दही कुछ समय तक गर्म रहता है। जब यह पूर्ण रूप से ठण्डा हो जाय केवल तभी इसे व्यवहार में लाना चाहिए। साधारणतया दही घना जमाने के लिए दूध अत्यधिक खौलाया जाता है। इससे दही दुष्पाच्य हो उठता है। किन्तु अत्युत्कृष्ट श्रेणी का दही तैयार किया जाता है, दूध गर्म करने के पहले उसमें दूध की बुकनी मिलाकर। दूध की बुकनी यदि विशुद्ध हो तो वह मक्खन निकाला हुआ होने पर भी कुछ नुकसान नहीं होता। कारण उसमें अन्दर केवल चर्बी के अलावा और सभी उपादान वर्तमान होते हैं। दूध की बुकनी मिलाने पर दही इतना ठोस होता है कि वर्तन उलटने पर भी दही नहीं गिरता।

दही उत्कृष्ट श्रेणी का है या नहीं इसे समझने के लिए कई एक लक्षण हैं। बढ़िया दही ठोस होकर जमता है। उसमें पानी नहीं रहता, बुलबुले नहीं उठते, फटा चिन्ह अथवा किसी प्रकार का छेद नहीं रहता एवं दही के ऊपर मलाई की एक चादर सी पड़ जाती है। दही के इस ऊपरी भाग वाली मलाई में ४६.० प्रतिशत स्नेह जातीय पदार्थ रहता है। दूसरे स्तर में रहता है २३.५ प्रतिशत, तृतीय स्तर में १६.० प्रतिशत, एवं सर्व निम्न स्तर में स्नेह पदार्थ का ७.६ प्रतिशत रहता है। इसीलिए दही का पहला हिस्सा सबको अत्यन्त प्रिय है।

दही ग्रहण करने के बहुत से उपाय हैं। साधारणतः वर्तन से चम्मच द्वारा उठा कर इसे खाया जाता है। चावल के साथ मिला कर भी इसे ग्रहण किया जाता है। दक्षिण भारत के बहुत से स्थानों में लोग इसी तरह दही खाते हैं। फल अथवा सब्जी के सलाद के साथ भी दही खाया जा सकता है। दही मिलाने पर सलाद का स्वाद कई गुणा बढ़ जाता है। स्वास्थ्य तथा खाद्य मूल्य की दृष्टि से भी वह उन्नति लाभ करता है।

दही के साथ २५ से ५० प्रतिशत तक पानी मिलाकर एवं उसे छानकर मट्ठा तैयार किया जाता है। सारे भारतवर्ष में इसे आदर के साथ ग्रहण किया जाता है। एवं यह दही की अपेक्षा भी सहज ही हजम हो जाता है। किसी किसी समय इसमें से मक्खन निकाल लिया जाता है। यह और भी सुपाच्य हो जाता है। स्नेह वर्जित पुष्टिकर खाद्य के रूप में यकृत का रोग कामला (Jaundice) एवं स्प्रू आदि रोगों में यह व्यापक रूप से व्यवहृत होता है।

दही के साथ पानी, नमक, चीनी एवं नीबू मिला कर उत्तम शर्वत तैयार किया जाता है। यह अत्यन्त जनप्रिय पेय है। विशेषतः ग्रीष्मकाल में सर्व साधारण के प्रिय पेय के रूप में यह सर्वत्र समादर लाभ करता है। यदि पानी के बदले फल अथवा कच्चे नारियल का जल मिला कर यह शर्वत तैयार किया जाए तो स्वाद एवं पुष्टिकारिता की दृष्टि से इसका मूल्य विशेष रूप से बढ़ जाता है।

शेषांश पृष्ठ ८२६ पर।

विसूचिका की सफल चिकित्सा

लेखक—श्री वैद्य रेवाशंकर शर्मा, रटलाई (झालावाड़)

रोगिणी—आयु २५ वर्ष। शारीरिक बल ठीक (गर्भावस्था-हीन)।

१५ जुलाई १९५५ को लगभग ३ बजे सायं एक युवक चिन्तित किन्तु आशा की विचारधारा से मेरे पास आया; बड़ी नम्रता से कहा 'आप अभी मेरे घर चलिए, मेरी स्त्री को प्रातः ४ बजे से उल्टी दस्त हो रहे हैं, हालत बहुत खराब है।'

मैंने अविलम्ब जाकर रोगी देखा।

वह बिस्तर से चिपटी हुई, जिह्वा सूखी, विवर्णता युक्त चेहरा, शरीर कांप रहा था। मुखाकृति टेढ़ी, थोड़ी थोड़ी देर में दस्त, वमन हो रहे थे, वेग अत्यंत तीव्र (श्वेतवर्णयुक्त मल व वमन द्रव्य था) शरीर हाथ- पांव की उङ्गलियों, मांसपेशियों में भयङ्कर ऐंठन आ रही थी। त्वचा पसीने से आर्द्र थी। नेत्र भीतर धँस चुके थे। गाल पिचक कर रह गये थे। नख, ओष्ठ, त्वचा, दांत श्यामवर्ण युक्त हो चुके थे। रोगिणी दाह व हृदय पीड़ा तथा नाभि प्रदेश में सूचिकावत् पीड़ा से व्याकुल थी। उच्छ्वास ठण्डा श्वासोश्वास उथला था, प्रातःकाल से ही मूत्राघात था।

शरीर का तापमान ९५'८° था।

मैं इस भयङ्कर स्थिति को देख कर एक क्षण के लिए पाषाणवत् होगया। निम्न श्लोक का ध्यान कर 'असाध्य विसूचिका' ही निश्चय किया।

मूर्च्छातिसारो वमथुः पिपासा,
शूलो भ्रमोद्वेष्ठन जृम्भ दाहाः।
वैवर्ण्य कम्पौ हृदयोरुजश्च,
भवन्ति तस्यां शिरसश्च भेदः॥

निद्रानाशोऽरतिः कम्पो मूत्राघातो विसंज्ञता।
अमी उपद्रवा घोरा विसूच्यां पञ्च दारुणाः॥

यः श्यावदन्तोष्ठनखोऽल्प संज्ञो,
वम्यर्दितोऽभ्यन्तरयातनेत्रः॥
क्षामस्वरः सर्व विमुक्त सन्धि—
र्यायान्नरोऽसौ पुनरागमाय॥

चिकित्सा क्रम—

स्थानीय स्वच्छता कराकर चिकित्सा आरम्भ की क्योंकि कहा है कि—

दूष्यं देशं बलं कालमनलं प्रकृतिं वयः।
सत्वं सात्म्यं तथाऽऽहारमवस्थाश्च पृथग्विधा।
सूक्ष्म सूक्ष्माः समीक्ष्यैषां दोषौषध निरूपणे।
यो वर्त्तते चिकित्सायां न स स्खलति जातुचित॥

व्यवस्था निम्न प्रकार की गई—

अन्तर्प्रयोगार्थ—

विसूचिकाहर वटी (रसतन्त्रसार) १ गोली
ताम्रभस्म १ रत्ती

—१-१ घण्टे से मुस्तकारिष्ट (१ तोला चार तोला जल मिश्रित कर) प्रति मात्रा १ तोला से।

मर्दनार्थ—

समस्त शरीर पर त्वकपत्रादि उद्वर्तन (रसतन्त्रसार) सरसों के तैल से।

सूचीवेध—

५० c. c. लवण जल शिरान्तर्गत प्रविष्ट किया गया। Camphor in oil 3 gr. in 1 c.c. दो इञ्जेक्शन दिए।

तृषाशमनार्थ—

ग्लूकोज (मधुरी) का जल यथोचित देने का निर्देश कर वापस घर आगया।

रात्रि के आठ बजे थे, रोगिणी का परिचारक एक आशा की झलक चेहरे पर लिये हुये आया।

'बाबूजी ! कमाल कर दिया, हालत बहुत अंशों में ठीक है।' प्रसन्नता से कहा।

मैं फिर गया—देखा तो तापमान ९७.५° होगया, एक बार मूत्र त्याग भी हुआ। अब वमन व अतिसार मात्रा व संख्या में कम होगये। ऐंठन में पर्याप्त लाभ था। श्वासोच्छ्वास कुछ उष्ण होगया, रोगी के पेट का दर्द बिल्कुल कम होगया। हृदयशूल एक दम मिट गया। मैंने सन्तोष की सांस ली।

अब योग में निम्न प्रकार अन्तर किया—

विसूचिकाहर वटी	१ गोली
संजीवनी वटी	१ गोली
लहसुनादि वटी	१ गोली
लघु सूतशेखर	आधी रत्ती
अग्निकुमार रस	१ गोली
ताम्रभस्म	१ रत्ती

—प्रति दो-दो घण्टे के अन्तर से ऐसी १-१ मात्रा पूर्ववत् मुस्तकारिष्ट से।

मर्दनार्थ—

त्वकपत्रादि उद्वर्तन सरसों के तैल से।

सूचिवेध—

Camphor in oil. १. c.c. ३ gr.

तृषा अब काफी शांत हो चुकी थी तथापि पूर्ववत् ही व्यवस्था रखी।

निद्रा आने पर बिना छेड़े सोने का आदेश दे आया।

प्रातः जाने पर देखा—

रोगिणी अब बैठी हुई थी 'रात घणी नींद आई बाबूजी' उसने कहा।

रात को वमन, अतिसार बिल्कुल नहीं हुए, पेट की पीड़ा बन्द हो गई। तापमान ९८° था, मूत्र दो बार रात्रि में त्यागन हो चुका था। अब उसकी मुखाकृति परिवर्तित हो चुकी थी। हाथ नखों की नीलिमा अव्यक्त थी। मुख में आर्द्रता पर्याप्त हो चुकी थी। नेत्र कुछ उभर आये, ठीक बोला जा सकता था।

अब मैंने शक्तिवर्धनार्थ निम्न व्यवस्था की—

विसूचिका हर वटी	१ गोली
अग्निकुमार रस	२ रत्ती
लघु सूतशेखर	आधी रत्ती
प्रवाल पिष्टी	२ रत्ती
लक्ष्मीविलास रस	१ गोली

प्रातः सायं—पूर्ववत मुस्तकारिष्ट से

आचूषणार्थ—लहसुनादि वटी ६ चौबीस घण्टे में।

पथ्य—अन्नवर्जित केवल तक्र, हिंग्वाष्टक चूर्ण से स्वादिष्ट बनाकर यथा इच्छा पीने को दिया।

शयनकाल निंबू स्वरस,लवणभास्कर १ माशा से। मर्दन क्रिया बन्द कर दी।

तीन दिन और यही क्रम चालू रक्खा। रोगी ने मलावरोध व तन्द्रा की शिकायत की तब विसूचिकाहर वटी बन्द कर दी। शेष क्रम ३ दिन और चालू रख कर अन्न की योजना केवल गेहूँ की पेय, लवणभास्कर दो माशा से स्वादिष्ट कर प्रातःकाल। सायं केवल दुग्ध।

इस प्रकार कुल १ सप्ताह में रोगी को चिकित्सा से मुक्त किया।

मुझे यह कहते हुए तनिक भी संकोच नहीं कि इनमें से अधिकांश औषधियां "धन्वन्तरि कार्यालय" की ही निर्मित थीं जिनके व्यवहार से मैं यश का भागी बना और गांव में आयुर्वेद के प्रति लोगों की श्रद्धा बढ़ी।

आम की उपयोगिता

लेखक—श्री. पं. सोमदेव शर्मा सारस्वत साहित्यायुर्वेदाचार्य ए. एम.एस., डी. एस.सी. (आ)

आम का घरेलू उपयोग—

प्रत्येक भारतीय गृह में पके रसीले आम का उपयोग साधारणतया चूसने और कलमी आम का चाकू से काट कर खाने के रूप में होता है, और कच्चे आम का उपयोग अमचूर, खटाई, चटनी, अचार, शर्बत, पानक (पना), हलुआ, मुरब्बा और अमावट आदि के रूप में हुआ करता है। मुरब्बा को संस्कृत भाषा में 'रागषाडव' या 'रागखांडव' और अमावट को 'आम्रावर्त' कहते हैं, इनके बनाने की विधि निम्न-लिखित प्रकार से है।

मुरब्बा † (रागखांडव) की निर्माण विधि—

कच्चे आमों को छील कर दो-दो या तीन-तीन टुकड़े कर कुछ घृत में भून लें और फिर खांड की चाशनी में पकावें। शीतल हो जाने पर उसमें काली मिर्च, छोटी इलायची और थोड़ा कपूर मिला कर किसी मिट्टी के चिकने वर्तन में रख दें। मुरब्बा के लिए अधपके आम अच्छे होते हैं।

आम्रावर्त ‡ (अमावट) बनाने की विधि—

पके आम के रस को किसी मोटे कपड़े टाट या बोरी पर फैला कर धूप में रख कर सुखावें और फिर इसी प्रकार बार बार रस डाल कर धूप में सुखाते रहें तो आम का रस पपड़ी के आकार में जम जाता है इसी को अमावट (आम्रावर्त) कहते हैं।

आम का औषधि रूप में प्रयोग—

आयुर्वेदीय चिकित्सा में आम के पत्ते, छाल और मज्जा और (गुठली के भीतर की मींग) तथा पके आम के फलों के रस का उपयोग हुआ करता है।

आम के पत्तों का उपयोग—

आम के पत्तों का उपयोग रस, क्वाथ और तैल बना कर विभिन्न प्रकार के रोगों में होता है।

विभिन्न आचार्यों के मत—

१—मुनिवर चरक ने आम के पत्तों का उपयोग निम्नलिखित रोगों में किया है।

प्रयोग—

१—हृद्य

२—छर्दिनिग्रह (विशेष रूप से पितज वमन नाशक)

३—पुरीष संग्रहणीय (ग्राही)

४—मूत्रसंग्रहणीय (बहुमूत्ररोधक)

२—सुश्रुत मुनि का मत—

५—मूत्रशोधक

६—प्रमेहनाशक

३—आचार्य वाग्भट्ट का मत—

७—पित्तजवमननाशक

४—आचार्य चक्रपाणि का मत—

८—मुखपाकनाशक

९—रक्तातिसारनाशक

---

† आममात्रं त्वचाहीनं द्विखिर्वा खण्डितंततः।
भ्रष्टमाज्ये मनागस्तं खण्डपाकेऽथ युक्तितः ॥
सुपक्वं च समुत्तार्य मरीचैलेन्दु वासितम् ।
स्थापितं स्निग्धमृद्भाण्डे रागखाण्डव सम्मितम् ॥
(योगरत्नाकर)

‡ पक्वस्य सहकारस्य पटे विस्तारितो रसः।
घर्मशुष्को मुहुर्दत्त आम्रावर्त इति स्मृतः ॥
(भावप्रकाश)

५–आचार्य शार्गधर का मत—

१०—पित्तज वमन, ज्वर, प्यास, अतिसार तथा मूर्च्छानाशक

११—पूतिकर्णनाशक

प्रसिद्ध प्रयोग

पित्तज वमन नाशक

चरक–(क) आम और जामुन के कोमल पत्तों को समान भाग लेकर क्वाथ (काढ़ा) बना लें और शीतल होने पर शहद मिला कर पीवें, इससे पित्तज वमन नष्ट होजाता है। ❖

आचार्य वाग्भट्ट— (ख) आम के पत्ते, जामुन के पत्ते, खस और वटजटांकुर समान भाग ले क्वाथ अथवा हिम बना शहद डालकर पीवे।

आचार्य शार्गधर— (ग) वाग्भट्ट के प्रयोग का फांट बनाकर पिलाने से पित्तज वमन के साथ ज्वर प्यास, अतिसार और भयंकर मूर्छा भी दूर हो जाती है।

आचार्य चक्रपाणि—

आम के पत्ते, जामुन के पत्ते, धनियां, खस, सुगन्धवाला और गवेधुक (एक जंगली कुधान्य) समानभाग लेकर 'हिम' (शीतकषाय) बना कर पिलावें तो पित्तज वमन नष्ट हो जाता है।

रक्तातिसार नाशक योग—

चक्रपाणिदत्त

आम के पत्ते और जामुन के पत्ते और आमले के कोमल पत्ते समान भाग लेकर कूट लें। और फिर उनका स्वरस निकाल कर उसमें बकरी का दूध समान भाग मिलालें। इसको शहद डाल कर पीने से रक्तातिसार नष्ट हो जाता है।

पूतिकर्ण नाशक आम्रादि तैल—

शार्ङ्गधर

आम, जामुन, महुआ और वट (बरगद) के कोमल पत्तों के स्वरस से पकाया हुआ सरसों का तैल (या नीम का तैल या करञ्ज का तैल) पूतिकर्ण रोग में होने वाले पूय के स्राव को नष्ट कर देता है।

मुखपाक नाशक क्वाथ—

चक्रपाणि दत्त

आम, जामुन, नीम, पटोल (परवल) तथा मालती के नवीन कोमल पत्तों के क्वाथ द्वारा मुख धोने (कुल्ला करने) से मुख-पाक (छाले) दूर हो जाते हैं।

आम की छाल का प्रयोग

१ रक्तपित्तनाशक योग—

आम, जामुन और अर्जुन की छाल समान भाग ले चूर्ण कर हिम (शीत कषाय) बना शहद डाल कर प्रातःकाल पीने से रक्तपित्त नष्ट हो जाता है।

आम की मज्जा के प्रयोग

आम की मज्जा का प्रयोग चूर्ण और क्वाथ के रूप में होता है।

१–चरक मुनि का मत—

१—पित्तातिसार नाशक

२—प्रदर नाशक

२–सुश्रुत मुनि का मत—

१—पित्तातिसार नाशक

२—पक्वातिसार नाशक

३–आचार्य वृन्द का मत—

१—मूत्र शोधक

२—प्रमेह नाशक

४-५–आचार्य चक्रपाणि तथा शार्ङ्गधर का मत—

१—सब प्रकार के अतिसार नाशक

२—वमन नाशक

❖ जम्ब्वाम्रयोः पल्लवजं कषायं।
पिबेत्सुशीतं मधुसंयुतं वा॥
(चरक-चिकित्सा अ० २०-३०)

१ आम्र जम्बू च ककुभं चूर्णीकृत्य जले क्षिपेत्।
हिमं तस्य पिबेत्प्रातः सक्षौद्रं रक्त-पित्तजित्॥
—शार्ङ्गधर मध्यम ४।७

सिद्ध प्रयोग

पित्तातिसार नाशक-

क —चरक—

आम की मज्जा, जामुन की मज्जा, कायफल, सोंठ, पाठा और जवासा को समान भाग लेकर पीस ले और तन्दुलोदक (चावलों को भिगोकर बनाया हुआ पानी) तथा शहद मिलाकर पीने से पित्तातिसार नष्ट होजाता है।

ख–सुश्रुत मुनि—

आम की मज्जा, मुलहठी, बेलगिरी, नीलकमल, सुगन्धवाला, खस और सोंठ को समान भाग लेकर क्वाथ बना कर शीतल होने पर शहद मिला कर पीने से पित्तातिसार नष्ट होजाता है।

पक्वातिसार नाशक (सुश्रुत)-

सम भाग आम की मज्जा, लोध, बेलगिरी और प्रियंगु को पीस कर तण्डुलोदक और शहद मिलाकर पीने से पक्वातिसार नष्ट होजाता है।

सर्वातिसार तथा वमन नाशक-

(आचार्य चक्रपाणि और शार्ङ्गधर)

सम भाग आम की मज्जा और बेलगिरी का क्वाथ बना कर शीतल होने पर शहद और मिश्री डाल कर पीने से सब प्रकार का अतिसार तथा वमन नष्ट होजाता है।

प्रमेह नाशक

मूत्र शोधक न्यग्रोधादि चूर्ण- (आचार्य वृन्द)

समान भाग आम की मज्जा, जामुन की मज्जा बट, जटांकुर (बरगद की लटकी हुई जटा) गूलर पीपल, सोनापाठा, अमलतास, विजयसार, कैथ का फल, चिरौंजी, अर्जुन, धव, महुआ, मुलहठी, लोध, वरुण, फरहद, पटोलपत्र, मेढ़ासिङ्गी, दन्ती, चित्रक की जड़ की छाल, अरहर, करंज (कंजा) का फल, त्रिफला, इन्द्रजौ और शुद्ध मिलावा को कूट छान कर बनाया हुआ यह न्यग्रोधादि चूर्ण शहद के साथ चाट कर त्रिफला का क्वाथ पीने से बीस प्रकार के प्रमेह नष्ट हो जाते हैं और मूत्र शुद्ध होजाता है।

प्रदरनाशक पुष्यानुग चूर्ण (आत्रेय)-

आम की मज्जा, जामुन की मज्जा तथा पारा आदि औषधियों को पीस कर बनाया हुआ यह पुष्यानुग चूर्ण (चरक चि० अ०३) खाने से सब प्रकार के प्रदर रोग को नष्ट करता है।

पके हुए आम का प्रयोग-

१—वृष्य आम्र पाक १—आम्र कल्प

वृष्य आम्रपाक-

पके आमों का रस १२ सेर १२ छटांक ४ तोला, मिश्री ३ सेर ३ छटांक १ तोला, घृत १२ छटांक ४ तोला, सोंठ का चूर्ण ६ छटांक २ तोला, काली मिर्च ३ छटांक १ तोला, छोटी पीपल का चूर्ण १ छटांक ३ तोला, जल ३ सेर ३ छटांक १ तोला,

इन सब को एक मिट्टी के बड़े बर्तन में डाल कर चूल्हे पर रख कर मध्यम अग्नि से पकावें और लकड़ी के एक चमचे से चलाते जांय तथा गाढ़ा हो जाने पर चूल्हे पर से पृथ्वी पर उतार कर रख लें और फिर उसमें—

धनियां, जीरा, चित्रक की जड़ की छाल, तेजपत्र, नागरमोथा, दालचीनी, कलौंजी, पीपरामूल, छोटी इलायची, जावित्री, लौंग, तथा जायफल प्रत्येक का चूर्ण चार-चार तोला डालकर मिलावें और शीतल हो जाने पर उसमें ६ छटांक २ तोला शहद डाल कर मिला के रख दें।

मात्रा—१ तोला से २ तोला तक, भोजन के दो घण्टे पीछे खावें।

गुण—यह आम्रपाक अत्यन्त वाजीकरण है और ग्रहणी, क्षय, श्वास, अरुचि अम्लपित्त, कुष्ठ और पाण्डु रोग ना

आम्रकल्प–

ग्रहणी रोग की चिकित्सा में पर्पटियों के प्रयोग के समय अनुपान एवं भोजन के रूप में पके आमों का रस तथा दूध का प्रयोग करना सब वैद्यों को विदित ही है।

उपसंहार–

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से ज्ञात होता है कि औषधि रूप में आम अनेक रोगों का नाशक है और स्वस्थावस्था में चूसने से सब इन्द्रियों को तृप्त करने वाला बलदायक अत्यन्त वृष्य, कामशक्ति-वर्धक तथा मन को प्रिय लगने के कारण और अपने गुणों के द्वारा यह आम का फल वास्तव में फलाधिराज † ही है।

† सन्तर्पणीयः सकलेन्द्रियाणां,
बलप्रदो वृष्यतमश्च हृद्यः।
स्त्रीषु प्रहर्षं प्रचुरं ददाति,
फलाधिराजः सहकार एव ॥

—योगरत्नाकर

पृष्ठ ८२३ का शेषांश

कई बार दही से पानी निकाल कर उसका छेना बनाया जाता है। पहले कपड़े में बांध कर झुला रखने पर उसका सारा पानी झर जाता है। तब उसे किशमिश एवं चीनी के साथ खाया जाता है। यह अत्यंत स्वादिष्ट होता है एवं भारतवर्ष के बहुत से स्थानों में परम स्वादिष्ट एवं पुष्टिकर खाद्य के रूप में गृहीत होता है। गुजरात के अञ्चल में इसे श्रीखण्ड कहते हैं। किन्तु साधारण अवस्था में इसका पानी कभी भी नहीं फेंकना चाहिए। यद्यपि दही के जल में नाम मात्र को प्रोटीन एवं स्नेह जातीय पदार्थ रहता है, तथापि इसमें दही के कैलसियम का आधा एवं चीनी का पूर्ण भाग पाया जाता है।

यूरोप में भी दही के साथ क्रीम व चीनी मिला कर एवं उसे सुगन्धित करके खाया जाता है। उस देश में इसे 'जैकेट' कहते हैं। यह अत्यन्त स्वादिष्ट एवं जनप्रिय खाद्य है।

यद्यपि शरीर रक्षाकारी खाद्यों में दही का स्थान बहुत ऊंचा है तथापि सभी कोई दही खाकर सहन नहीं कर सकते। जो सभी रोगी मलेरिया अम्ल पुरानी सर्दी, खांसी अथवा वात-व्याधि से पीड़ित हैं दही खाने पर उनका रोग प्रायः बढ़ जाता है। किन्तु इन सब रोगों में भी थोड़े समय में जमाया हुआ ताजा दही खाने पर कुछ विशेष हानि की सम्भावना नहीं रहती।

पृष्ठ ८३३ का शेषांश

भी कभी देखेंगे कि भोली जनता को राजाज्ञा कह कर जबरन रोग-कुण्ड में धकेलने से हिचकेंगे नहीं। अगर एलोपैथिक स्वास्थ्य का पूरा-पूरा ध्यान रखने का दावा भरते हैं और रोग को रोकने का प्रबन्ध करते हैं तो उन्हें चाहिए कि स्वच्छता एवं दूसरे के स्वास्थ्य का पूरा-पूरा ध्यान रखते हुए टीकों को तरीके से लगाये जांय। वरना बड़ी से बड़ी हानि हो सकती है।

गन्धक द्रावकादि निर्माण विधि

लेखक—वैद्याचार्य उदयलाल महात्मा, देवगढ (उदयपुर)

आयुर्वेद के रसतरङ्गिणी नामक रसग्रन्थ में गन्धक द्रावक (Acid Sulphuric) गन्धकाम्ल शोरक द्रावक (Acid Nitric) शोरकाम्ल लवण द्रावक (Acid Hydrochloric) लवणाम्ल शङ्ख द्रावकादि निर्माण करने की अनुभूत और उत्तम विधियें वर्णित हैं। परन्तु जितनी भी प्रसिद्ध रसायन शालाएँ तथा फार्मेसियां औषधि निर्माण करती हैं वे उक्त द्रावक नहीं बनातीं। इन द्रावकों के बनाने का श्रेय एलोपैथिक औषधि निर्माण-शालाओं को ही है। ये चीजें घर की होकर भी पराई बनी हुई हैं। ये औषधियां प्रयोग में बाह्याभ्यान्तर काफी काम में आती हैं। अतः हमें इनका निर्माण करना चाहिए और झण्डू, ऊंझा, वैद्यनाथ, गोंडल जैसी रस-निर्माण शालाओं को अपने यहां उक्त द्रावक बनाकर वैद्यसमाज को देना चाहिए। इस सम्बन्ध में प्रत्यक्षी-करण क्रिया द्वारा जो जो नये अनुभव कमियां साव-धानी और परिवर्तन जिन वैद्य बन्धुओं को निर्माण के समय अपने अनुभव में आये हों वे अपना विशद अनुभव धन्वन्तरि पत्र द्वारा प्रकट करने का कष्ट करें।

रस तरङ्गिणी ग्रन्थ में जो विधि बतलाई गई है वह निम्न लिखित है—

गन्धक द्रावक निर्माण विधि—

एक लोहे के पात्र में सौ पल गन्धक डालकर इसको चल्हे पर रख कर अग्नि दें, इसी तरह एक दूसरे लोह पात्र में साढ़े छः पल शोरा डालकर चूल्हे पर रख के अग्नि दें। अग्नि पर रखने के पूर्व इन दोनों के मुखों को पृथक् पृथक् अच्छी तरह बन्द करदें और दोनों पात्रों के मुख पर छिद्र करके एक लम्बी नली फिट करके इन दोनों नलियों के मुखों को एक कुप्पी के आकार के शीशे के पात्र में जोड़ दें जिससे शोरक और गन्धक वाले पात्र से बाष्प उड़ कर शीशे के पात्र में इकट्ठी हो जाय। अब एक अर्क निकालने वाले साफ भबके में दो सौ दस पल जल भर कर इसके मुख को भी बन्द कर एक नली लगा कर इस नली को भी उक्त शीशे के पात्र के मुख में जोड़ दें, इस तरह तीन नलियों का मुख एक पात्र में जोड़ देने से वाष्प जम कर जलके रूप में पात्र के अन्दर तीन सौ पल परिमाण में इकट्ठा हो जायगा। यही सुन्दर पीताभ वर्ण का गन्धक द्राव कहा जाता है।

शोरक द्राव निर्माण विध—

एक स्वच्छ कांच की शीशी में शुद्ध शोरा एक भाग डाल कर उसी में शोरे से आधा भाग गन्धक द्राव डालदें। अब कांच की कुप्पी के मुख में एक कांच की नली जोड़ कर इस नली का दूसरा मुख एक दूसरी जल में रखी हुई कांच की शीशी या कुप्पी को सुरा प्रदीप के ऊपर त्रिपादिका पर रख कर मन्द मन्द अग्नि से तपायें, इस प्रकार वाष्प रूप से तिरछी नली से निकल कर दूसरी शीशी में इकट्ठे हुए जल सदृश शोरक द्रावक को सावधानी से लेवें।

यह स्वच्छ वर्ण रहित दाहक आम्लीय द्रव्य होता है।

लवण द्रावक—

एक स्वच्छ पात्र में सैंधानमक के सूक्ष्म चूर्ण को अच्छी तरह भूने जब भूनने पर उसका जली-यांश सूख जाय तो पात्र को चूल्हे से नीचे उतार लें। अब इस भूने हुए सैंधानमक चूर्ण में से छः भाग चूर्ण लेकर कांच की शीशी में डालें और इसी में धीरे धीरे ग्यारह भाग गन्धक द्राव भी डाल कर मिला दें। अब इस सैंधानमक वाली शीशी को सुराप्रदीप अथवा चूल्हे के ऊपर रख कर इस

दें और नली का दूसरा मुख एक दूसरी अर्ध जल-पूरित और शीतल जल युक्त पात्र के बीच में रक्खी हुई शीशी के मुख से जोड़ दें। यह शीशी सैंधानमक वाली शीशी से बड़ी होनी चाहिए। अब सैंधव चूर्ण वाली हांडी के नीचे मन्द मन्द अग्नि ताप देकर पकायें। इस प्रकार लवण द्राव वाष्प रूप में तिरछा उड़कर जल वाली शीशी में जल मिला हुआ प्राप्त होगा।

शङ्खद्राव निर्माणविधि-(रस० त० पृ० २६१)

शुद्ध शंखचूर्ण, सुहागा, फिटकरी, जवाखार, सज्जीखार, नौसादर, पांचों नमक, प्रत्येक को सम-भाग लेकर एकत्र चूर्ण कर लें। अब इस चूर्ण को कपड़ मिट्टी की हुई कांच की शीशी में आधे भाग तक भर दें और चूल्हे पर रख कर इसके मुख में एक तिरछी कांच की नली फिट कर के इस नली का दूसरा सिरा एक दूसरी शीशी के मुख पर अच्छी तरह जोड़ दें और इस दूसरी शीशी को किसी जल युक्त पात्र में रखदें। अब पहिले की द्रव्य युक्त शीशी के नीचे मन्द मन्द अग्नि जलायें जिससे द्रव्य पिघल कर वाष्प रूप में उड़ कर पुनः जल रूप में दूसरी शीशी में संचित हो जाय। इस तरह बनाया हुआ द्रव, शंख, सीप, कौड़ी आदि के टुकड़ों को उसमें डालने से गला देता है, अतः इसे शंख द्राव कहते हैं।

गुण—

उक्त विधि से बनाया हुआ शंखद्राव, अग्नि-मांद्य, भयंकर विषूचिका, ग्रहणी, मूत्रकृच्छ, गुल्म प्लीहा, उदररोग, अष्टविध शूल तथा अर्श रोगों को दूर करता है। यदि इस शंखद्राव को भोजन के बाद एक बूंद पर्याप्त जल (२॥ तोला) में मिला कर पीलिया जाय तो भर पेट खाने पर थोड़ी ही देर में फिर खाने की इच्छा हो जाती-है और भोजन शीघ्र ही पच जाता है। इसके प्रयोग से उदर कृमि और तीव्र प्रकार की वमन में शीघ्र आराम आता है।

स्वानुभूत विधि—

साधनाभाव में याने तिरछी कांच की नली तैयार नहीं हो तो उक्त द्रव्यों को एक छोटे मिट्टी के कुल्हड़ में चौथाई भाग भरकर उस पर अन्दर की ओर उठी हुई काली बोतलें आती है उसके युक्ति से बीच के भाग में अंगुली चली जाय उतना छेद कर दें। गिलासनुमा हिस्सा नहीं तोड़े। अब इस को कुल्हड़ पर फिट कर दें याने कपड़मिट्टी मजबूत कर दें फिर इसको चूल्हे पर रख कर आंच दें। शंख-द्राव वाष्प रूप में उड़ कर शीशी के अन्दर उठे हुए भाग में जमा होगा, जब कुछ भाग द्राव से पूरित होने से बाकी रहे तिरछा कर अन्य चीनी मिट्टी के बरतन में ले लें। फिर आंच देकर शेषांश उक्त तरीके से प्राप्त कर लें।

इस समय सब साधन सुलभ हैं हम लोगों को विधिवत् शंखद्राव बनाकर काम में लाना चाहिए।

एक कटु अनुभव—

हैजे के टीके

लेखक—श्री पं० मोहनलाल शर्मा, आगर (म. भा.)

अभी कुछ समय की बात है, मैं आगर से रतलाम कार्यवश गया था। आगर से रतलाम जाने को बीच में उज्जैन आता है। जब बस उज्जैन ऑक्ट्राय नाके पर रुकी, तो वहां देखा २-३ मिलिट्री सिपाही सड़क के ऊपर मय वर्दी के खड़े हुए हैं। मैंने पास बैठे हुए यात्री भाई से तलाश किया। क्यों भाई मामला क्या है ? यह सड़क पर पहरा कैसा ? मेरे प्रश्न का उत्तर देते हुए यात्री साथी ने कहा हैजे के इञ्जेक्शन लगाए जायेंगे। कहते-कहते उसका चेहरा उदास हो गया। मैंने कहा भाई एक दम से हताश क्यों होरहे हो ? कॉलरा होने का डर नहीं रहेगा। हमारी गवर्नमेण्ट ने तो बहुत अच्छा प्रबन्ध किया है। ये संक्रामक रोग फैले नहीं इसी की रोक-थाम के लिए तो यह सब हो रहा है। टीका लगवाना तो कोई बुरी बात नहीं। हैजा एक ऐसा भयङ्कर रोग है कि इसके फैल जाने पर इसकी रोक-थाम करना अति दुष्कर कार्य है। इसीलिए पहले से रोक होजावे, जनता ऐसे भयङ्कर रोग में न आवे इसी हेतु तो गवर्नमेंट सैकड़ों रुपया खर्च कर रही है और एक आप हैं कि अच्छे कार्य की सराहना तो दूर वरन् उदास हो रहे हैं। आपको तो खुशी माननी चाहिए कि सैकड़ों गरीबों को वगैर कीमत के शरीर की सुरक्षा का प्रबन्ध होगया। भाई-पानी आवे उसके पहले ही पाल बांधना चाहिए। और ऐसे शुभ कार्य को भी अच्छी निगाह से न देख सकेंगे तो वह कहावत होगी कि आग लगे तब कुआं खोदने चले। साथी यात्री एक दम झल्ला गए और उन्होंने कहा कि रोग के रोक-थाम का जहां तक प्रश्न है वहां तक तो ठीक है, परन्तु जिस रोक-थाम से स्वस्थ भी रोगी बन जाए, उससे तो अच्छा है कि इस प्रकार का नाटक भोली जनता के साथ नहीं खेला जाए। और वह कहता ही चला गया, उसके बोल में रूक्षता थी। फिर उसने बतलाया कि मेरा छोटा भाई कुछ समय हुए उज्जैन आया था, और उसको भी टीका लगाया गया। उसी रात को उसको इतने जोरों का बुखार आया कि आठ दिन होगए अभी तक उतरा ही नहीं है। हाथ पक गया आखिर ये है क्या ? रोग की रोक-थाम अथवा रोग को निमन्त्रण देने का एक रास्ता। मैं उसके लिए उज्जैन दवा लेने को जा रहा हूँ। ऐसे दो-चार स्वस्थ आदमियों के विषय में और बतलाता, जो पूर्ण स्वस्थ अवस्था से टीका लगाने के पश्चात् अस्वस्थ होगए मैं यात्री की बात सुन कर चुप होगया।

वहां टीके लगाने का कार्य-प्रारम्भ हो चुका था। कोई हाय-हाय कर रहा था, कोई इधर-उधर दुबक रहा था कोई राक्षस है राक्षस आदि; जिस की समझ में जो आता कह रहा था। कोई टीके लगाने वाले महानुभावों से कुछ प्रश्न व कोई तर्क कर रहा था। यह सब देख मैं भी दङ्ग रह गया। साथी यात्री की सब बातें मेरे सामने नाचने लगीं और मैं सहम गया। इतने में एक सिपाही ने आकर टोका ही, बाबूजी चलिए टीके लगवाइये। यात्री सहमा और सिपाही से उलझ ही तो गया। वह हताश यहां तक कह गया कि गवर्नमेंट को किसी के प्राण ही लेना है तो गोली से क्यों नहीं उड़वा देती ? आखिर इस प्रकार दुख क्यों देती है ? मेरे मुंह से सहसा निकल पड़ा इस प्रकार का घृणित प्रयत्न क्यों ? मानव जीवन से इस जनतन्त्रात्मक युग में भी इस प्रकार से खिलवाड़ क्यों ? जिसे मैं थोड़े समय पहले अच्छा कह रहा था, वहां के वातावरण को देख घृणा सी

हो गई और मन बोल उठा कि अच्छा हो सरकार जनता के साथ इस प्रकार का अमानुषिक व्यवहार न करे। राजाज्ञा है वहां तक सही है परन्तु कार्य सही रूप को लेकर यदि हो तो जनता का हित है वर्ना अहित तो प्रत्यक्ष है ही।

मैं भी टीके लगाने के स्थान पर गया, देखा ३ नवयुवक रोग रोकने का ठेका लिए, अभद्रता-पूर्ण व्यवहारों से जैसे समझ में आवे जहां सुई लग जावे टीके लगाए जा रहे थे। एक ही सुई (नीडिल) से १५-२० की संख्या में व्यक्तियों को टीके लगाए जा रहे थे। यह दृश्य देख मैं भी सहम गया। मेरी भी आंखें ऊँची-नीची होने लगीं। सराहनीय कार्य को घृणित अवस्था में आंखें देखने लगीं, मेरा भी नम्बर आया मुझसे भी कहा 'हाथ निकालो, मैंने इन्कार किया। सिरेञ्ज हाथ में लिए एक महानुभाव आगे बढ़े। सिपाही से कहा पकड़ो। मुझसे फिर न रहा गया। मैंने उनसे कहा मुझे अपने स्वास्थ्य का पूरा ध्यान है, आपको इतना उद्विग्न होने की कोई आवश्यकता नहीं। जीना सब चाहते हैं, आप भी और मैं भी। स्वस्थ रहकर खुशी का जीवन बिताने को सभी की लालसा है, न कि रोग को निमंत्रण देने की। इतने में दूसरा नवयुवक तमक कर बोला व्यर्थ की बात करने की हमें फुर्सत नहीं आप जैसे सैकड़ों नित्य-प्रति आते हैं। दिमाग खाने की जरूरत नहीं। सीधे से लगवा लीजिए, नहीं तो हमें सख्ती से काम लेना पड़ेगा। मैंने बड़े नम्र शब्दों में कहा, वास्तव में भाई इतनी चिंता तो हमारे माता-पिता ने भी नहीं की, जितनी कि मेरे लिए आपके हृदय में समाई हुई है आपकी सहानुभूति के लिए धन्यवाद। परन्तु मैं इस प्रकार के रवैये से तो टीका लगवाने को कभी भी तैयार नहीं रहूँगा। इतने में एक ने कहा बतलाइये आप कैसे तैयार होंगे। मैंने कहा, सिरेञ्ज का जोकि १५-२० मिनिट पूर्व का भरा हुआ वेक्सीन है उसे खाली किया जाय। सिरेञ्ज और दूसरी सुई को भली प्रकार से उबाल और स्प्रीट से धोकर साफ करने के बाद मुझे लगवाने में कोई हिचकिचाहट नहीं है। आप स्वास्थ्य विभाग के आदमी हैं। एक दूसरे के जर्म्स एक दूसरे के शरीर में प्रवेश कर सकते हैं अथवा नहीं? काश कोई कुष्ठ का रोगी हो अथवा क्षय-कास, श्वास, गर्मी, सुजाक, खाज, खुजली किसी भी संक्रामक-रोग से पीड़ित व्यक्ति है। उसको टीका लगाने के पश्चात् आप एक स्वस्थ व्यक्ति को उसी सुई से सूचीवेध करते हैं, तो उस रोग-युक्त मनुष्य के शरीर के अन्दर रक्त में रहने वाले जर्म्स स्वस्थ शरीर में प्रवेश करेंगे अथवा नहीं? इस बात का शांति पूर्ण अवस्था से बगैर चिढ़े उत्तर तो दे देवें? अगर ये बातें न होती हों तो आपके पास सिरेञ्ज है इसी से टीका लगवाने को मैं तैयार हूँ। मुझे कोई एतराज नहीं है वे सब शर्मिन्दा हो गये। और कहा भाई साहब हम सब इस बात को मानने से इन्कार नहीं करेंगे। आपका कथन सत्य है। परन्तु ड्यूटी हमारी है, पेट सामने है और बहु-संख्या में आने वाली भीड़ का अगर तरीके से टीके लगाने का उपक्रम करें तो सुवह से शाम हो जावे और फिर भी कार्य समाप्त न हो। उनकी बातें सुनकर मैं हँस पड़ा। शीघ्र उज्जैन पहुँचने की लगन में ड्रायर की नाराजी उसे तड़पा रही थी। वह भी चिढ़ने लग गया था। क्योंकि वह नित्य ही यह दृश्य अपनी आंखों देखता था।

राजाज्ञा से इस प्रकार का खिलवाड़ क्यों? मैं उन स्वास्थ्य के ठेकेदारों से प्रश्न करता हूँ। हमारे भारत के स्वास्थ्य रक्षा के सिरताज एवं दूसरे योग्य कहाने का दावा भरने वाले उच्चाधिकारियों से प्रश्न करना चाहता हूँ कि क्या ये टीके लगाने का तरीका सही है। "समरथ को नहीं दोष गुसाईं" वाली कहावत हो रही है। अगर ये भारतीय-मानव का उनके जीवन से इस प्रकार खिलवाड़ होता रहा तो क्या संक्रामक-रोग बढ़ेंगे नहीं? स्वच्छता की दुहाई देने वाले एलोपैथी के कार्यकर्त्ता इस ओर

—शेषांश पृष्ठ ८२६ पर।

जन्म-शासन BIRTH-CONTROL

ले०—डा० श्री श्यामदास प्रपन्नाश्रमी, 'पीयूष-पाणि'।

(गताङ्क से आगे)

बहिः निषकासन विधि—

(Withdrawal method)

ऐच्छिक गर्भ-सम्बन्धी प्रणालियों में बहिःनिष्कासन प्रणाली का नियम यह है-दाम्पत्य विहार काल में क्रिया-निष्पत्ति शुक्र-क्षरण के अव्यवहित पूर्व ही संसर्ग त्याग कर स्त्री-पुरुष दोनों ही अलग हो जाँय जिससे वीर्य का पतन जरायु गह्वर में न हो। अङ्गरेजी भाषा में इस विधि से काम लेने को 'वीथ-ड्रायेल मेथड' कहते हैं। इस प्रणाली के अपनाने पर गर्भ संचार की सम्भावना अति कम ही रहती है।

केवल एक निश्चित समय पर ही उक्त प्रणाली से सामान्यतया काम चल सकता है। परन्तु है यह अत्यन्त असुविधाजनक। यह प्रणाली यूं ही अयौक्तिक सिद्ध हुई, क्योंकि क्रिया निष्पत्ति के अन्तिम मुहूर्त में जो आनन्द वीर्य के त्याग से पुरुष को तथा उसके ग्रहण से स्त्री को उपलब्ध होना चाहिए वह नहीं होता। नतीजा यह निकलता है कि नियमित सहवास के अभिलाषी को यह पर्व चालू रखने से नाना विधि उपद्रवों और व्याधियां उनके आनन्द को चकनाचूर कर डालती हैं। यह अभिमत Sexual life of woman पुस्तक में प्रेग यूनिवर्सिटी के प्रो० ग्रा०इ० हेनरिच-क्रिच ने व्यक्त किया है।

स्पंज का प्रयोग—

(Administration of sponges)

दो औंस गुनगुने जल में ढाई ग्रेन (सवा रत्ती) क्विनाइन सल्फेट मिलाकर एक इञ्च व्यास के गोलाकार स्पञ्ज को भिगोकर जरायु मुख में ठूस कर बन्द करदे। परन्तु सहवास समय कारणवश यदि अपने स्थान से यह हट जाय तो जरायु के अन्दर वीर्य का प्रवेश होना अनिवार्य होने से गर्भ-सञ्चार हो सकता है। औषधि-मिश्रित स्पञ्ज का सम्पर्क होते ही शुक्र तत्काल विनाश को प्राप्त होजाते हैं। इससे कुछ भी हो उत्तम रीति से गर्भोत्पत्ति की आशङ्का नहीं रहती।

स्पंज के व्यवहार से केवल सुष्ठू रूप के गर्भ संचार की आशङ्का से सुरक्षित रहना सम्भव है। अन्य प्रकार के गर्भ निरोध के हेतु से कुछ लाभ नहीं हो सकता। यह ही नहीं सहवास के समय संघर्षण व संचाप जन्य वेदना यन्त्रणा का अनुभव अवश्य होता है-it feels a kind of sensitiveness abnormal pains.

स्पंज द्वारा जरायुमुख को ढक देना जितना आसान है उसका निकालना उतना ही कष्टदायक होता है। इस असुविधा को सहज-साध्य बनाने की विधि यह है कि, सूत्र-संलग्न रेशमी जालिका द्वारा आवृत स्पंज का व्यवहार ही आरामप्रद है। सहवास के पूर्व औषधि घोल में तरकर जरायु गह्वरोपरि रख देना चाहिए। सम्भोग के जालिका से बन्धे हुए डोरे को खींच स्पंज बाहर निकाल देना चाहिए। असावधानी खिंचने से जालिका से बँधा हुआ डोरा टूट जाने की सम्भावना रहती है। इससे लाभ के बजाय ही होगी। इसके अतिरिक्त केवल डोरा से गठा हुआ स्पंज जिस पर जालिका नहीं चढ़ी हुई होती उसके व्यवहार से भी असुविधा होती है। जरा असावधानी से डोरा की गांठ स्पंज से टूट कर अन्दर ही रह जायगी।

कई वर्ष पहले इङ्गलैण्ड में जन्म-शासन निषयक पांचवां सम्मेलन The fif

al Birth control conference हुई थी। उस विराट अधिवेशन में वहां की जन-संख्या के नियन्त्रण सम्बन्धित विचार विमर्श के लिए अनेक विद्वानों तथा वैज्ञानिक चिकित्सकों के भाषण हुए थे। जिनमें जन्म-नियन्त्रण पर हर पहलुओं से विचार और अनुसन्धानों का परिणाम प्रकट किया गया था। सर्वश्रेणी के ज्ञानार्थ सम्मेलन अधिवेशन का विवरण प्रकाशित किया गया था। उसमें रसायन शास्त्री पण्डित डा० सोमरवील तथा डा नोरमैन हैरी के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। इन दोनों विशेषज्ञों के मतानुसार गर्भ का नियन्त्रण और इस पर अजमाये जाने वाले औषधोपचारों का सहारा लेना अयौक्तिक है।

उत्तर वस्ति (Douching method)–

सहवास के अनन्तर तत्काल ही क्विनाइन का घोल, पेलफ्रीस पाउडर का जल, रोजर्स पाउडर का पानी आदि धावनों से स्त्री-अङ्ग को बाहर-भीतर से भलीभांति धो दिया जाय, तो गर्भ-निरोध का अभिप्राय सिद्ध हो सकता है। शुक्र-कीटों से सुरक्षित रहकर सन्तान की इच्छा न रखने वाली स्त्री को हमेशा ही इसी प्रणाली का सहारा लेना उचित होगा।

पिचकारी (Syringe) की सहायता से औषधि द्रव को योनि गह्वर में पहुँचाकर भली प्रकार से धो डालना चाहिए। इसी रीति से काम लिया जाय तो आशातीत फल प्राप्त होगा।

विविध वैज्ञानिक साधन-सामग्रियों का उपयोग वर्तमान समय में जहां-तहां होने लगा है और सम्बन्धित सामान सर्वत्र उपलब्ध भी हो रहा है। इन सब साधनों के अतिरिक्त सरल प्रयोग केवल मात्र सुखोष्ण जल ही पिचकारी द्वारा स्त्री-अङ्ग के भीतर पहुँचाकर धो देना चाहिए जिससे शुक्रकीटों का नाश और गर्भ-नियन्त्रण दोनों समस्यायें हल हो सकती हैं।

क्विनाइनका जलीय द्रव–

चौबीस औंस (तीन पाव) के लगभग गरम जल (शारीरिक उत्ताप समतापन्न) में सोलह रत्ती परिमाण वाई हाईड्रोक्लोरेड आफ क्वनाइन मिलाकर, रति-क्रिया के अनन्तर इसी जलीय द्रव द्वारा अङ्ग-धावन कर लेना चाहिए। अधिक खर्च से बचत करने वाले लोग तो क्विानाइन सल्फेट से ही काम लिया करते हैं।

पेलफ्रीस पाउडर—

यह एक विचूर्ण औषधि है। इनको बनाने की विधि यह है—

सल्फोकार्बोलेट आफ जींक दो तोला, पालवएलम-प्योर (विशुद्ध स्फटिक चूर्ण) आठ तोला, सल्फेट आफ जींक दो तोला। इन तीनों को पीस घिस एक जी कर मिला ले, डाट वाली शीशी में भर रख दे। आवश्यकता के समय जल में मिला 'आभ्यन्तरिक धावन' Internal wash के रूप में काम लिया जाना चाहिए। इसके बनाने में असमर्थ व्यक्ति केवल फिटकरी के विचूर्ण से ही लाभ उठा सकता है।

रोजर्सपाउडर Rodger's Powder—

सल्फेट आफ जींक दो तोला, सल्फोकार्बोलेट आफ जींक दो तोला, सल्फेट आफ कॉपर दो तोला पलविस एलम प्योर ६ तोला, इन सबको घोट पीस मिला शीशी में भर कर रख लें। तीन पाव जल में दस माशा के लगभग मिलाकर पिचकारी की सहायता से आभ्यन्तरिक तथा वाह्यिक धौत करने में प्रयोग करें।

क्विनाइन–पेसरी (Quinine pessary)—

कोकोया बटर (Coccoa Butter), क्विनाइन, ग्लेसेरीन और कई किस्म की जन्तुनाशक औषधियों के संयोग से यह पैसरियां बनाई जाती हैं। इङ्गलैण्ड, अमेरिका, अफ्रीका, आस्ट्रेलिया तथा भारत में रहने वाले अङ्गरेज सम्प्रदायों में इनका अधिक रिवाज है। रति-विहार के समय बहुधा इन सब औषधियों का उपयोग होता है।

रति कर्म से पहले भी इनका उपयोग होता है। जरायु के ऊपर योनि गह्वर में पैसरी को चढ़ा कर दस-बारह मिनट पर्यन्त प्रतीक्षा करनी चाहिए। शारीरिक उत्ताप से पिघलते हुए यह जब भीतर के सारे हिस्से में फैल जाती है तब रति-क्रिया में प्रवृत हो, इससे सम्मिलित औषधियों के प्रभाव से शुक्र-कीट निस्तेज हो जाते हैं। गर्भ की आशङ्का नहीं रहती है।

लन्दन के लब्ध-प्रतिष्ठत डा०हेयर साहब ने कई वर्ष हुए गर्भ-नियामक अनुसंधान पर अपना अभिमत प्रकट किया था, कि किनाइन संयुक्त किसी भी प्रयोग का योनि-जरायु के सम्पर्क में किया जाना अनिष्टकर ही सिद्ध हुआ है।

इच्छामति गुटिका

यह गुटिका गर्भ-नियन्त्रण के लिए निरापद है ऐसा कहा गया है, इसी कारण इसका प्रचार और प्रयोग क्षेत्र भी व्यापक है। गर्भ नियन्त्रण सम्बन्धी जितनी औषधियां आविष्कृत हुई हैं उनमें यह सर्वोत्तम है। इसके समान ही आजकल वेजिलफेव आदि पैसरी तथा पिचु भी उपलब्ध होने लगा है।

रबड़ चेक पेसरी—

स्त्रियों के हित में यह पेसरी भी उपयोगी हैं। जरायु-मुख पर रखने के बाद सहवास करने से गर्भ की सम्भावना कम ही रहती है। यह पेसरी छोटी बड़ी दो प्रकार की होती हैं। छोटी वाली ही अधिक आरामदेह है। शीघ्र खराब होती नहीं और यत्नपूर्वक व्यवहार किया जाय तो वर्ष भर इससे काम चल सकता है। व्यवहार के उपरान्त गरम जल से धो, स्वच्छ कर सुखा रखने से ही दीर्घस्थायी होगी। इस पेसरी का व्यवहार लगभग पचास वर्ष से चला आ रहा है।

चेक पेसरी की विशेषतायें—

इस पेसरी का उपयोग बहुत से लोगों को अविदित ही है जिससे वे लाभ नहीं उठा सकते। यह एक प्रकार का टोप (Hat) जैसा और दूसरी जो (Capsule) जैसा कि अनेक सुगन्धित तैल की शीशियों की डाट पर चढ़ा हुआ रहता है। [illegible] की जैसी आकृति होती है। अधिकांश इसको उलटकर जरायु मुख पर रख देती हैं। वास्तव में इनके गढ़हे वाले भाग को ही जरायु पर चढ़ा देना चाहिए सम्भोग मन्थित शुक्रार्तव गर्भाशय के अन्दर होसके। उचित ढंग से प्रयोग का ज्ञान होने तथा [illegible] हत होने पर ही इनसे उद्देश्य सिद्ध होसकेगा। कार्य के अनन्तर जन्तुनाशक औषधि के घोल से स्व[illegible] सुरक्षित रखना चाहिये। व्यवहार में लाने से भी उष्णोदक से यह धोया हुआ होना चाहिए यह भी ध्यान रखना जरूरी है कि [illegible] होने के साथ ही साथ पेसरी को बाहर [illegible] जरायु योनि मार्ग को पूर्वोक्त रीति से वस्ति प्रयोग द्वारा दोष मुक्त करना अत्यावश्यक है। यह सिद्धा[illegible] The Sexual life of our time-By Dr. Iwan Block. M. D., पुस्तक में है।

आधुनिक वैज्ञानिक गवेषणा से यह [illegible] है कि किनाइन तथा अन्यान्य रासायनिक [illegible] के जिस परिमाण में प्रयोग किया जाता है, उस गर्भ नियन्त्रण कार्य असम्भव सा है। जितने परिमाण की आवश्यकता है, यदि व्यवहार में ली जाय तदनुसार मात्राधिकताजन्य स्वास्थ्य की हानि ही अधिक होगी, अतः अधिकांश क्षेत्र में [illegible] इसका समर्थन नहीं करते।

ठोली कैप Caps—

ठोली का भी गर्भ-निवारणार्थ अधिक [illegible] रहा है। यह विभिन्न प्रकार की होती है। स्त्री-पुरुष दोनों के व्यवहार योग्य ठोलियां मिलती हैं। उत्कृष्ट बनावट की ठोली से आराम ही मिलता है, परन्तु सिद्धि के लिए यथेष्ट सन्तोषजनक नहीं मानी है। टूटी-फूटी व पुरानी ठोली का व्यवहार देही बन सकता है। कामावेग में जननेन्द्रिय [illegible] से शुक्रोच्छ्वास द्वारा फट जाने का [illegible] सौ फीसदी रहता है।

साधारणतया उसकी उपयोगिता पर कुछ भी सन्देह नहीं। पुरुष-वीर्य, स्त्री-आर्तव में संयोग क्रिया से मिलने के व्यतिक्रम होने से ही गर्भोत्पत्ति नहीं होती। सदा इसका ध्यान रखना चाहिए कि ठोली के निचले हिस्से में शुक्राधार मजबूत हो। संभोग काल में शुक्र-क्षरण होना तो निश्चित है। यदि ठोली टूटी-फूटी, कमजोर है तो शुक्रावेग से यह निश्चय ही फट जायगी और शुक्रार्तव के संयोगजन्य गर्भोत्पत्ति भी नहीं रुकेगी।

गर्भ-नियन्त्रणार्थ वर्तमान युग में इसका प्रचार, उपयोगिता की दृष्टि से भोगासक्त स्त्री-पुरुषों में प्रचुरता के साथ है और इससे आशातीत लाभ भी उत्तरोत्तर ठोलियों की मांग वृद्धि पर है। फिर भी सर्व-साधारण की अज्ञानतावश इसका अपनाना भंझट सा समझा जाता है।

आवश्यकता है स्वभाव सिद्ध। स्वास्थ्य-हीना स्त्रियों के पतियों को इसका व्यवहार करने के लिए बाध्य किया जाय। जिन स्त्रियों का स्वास्थ्य साथ नहीं देता और सन्तान प्रसवकाल में जिनका जीवन सङ्कटापन्न मृत्यु के सन्धि-स्थल को प्राप्त हो, प्रदीप्त जीवन ज्योति के बुझने की आशङ्का सदा विद्यमान रहती है। इस कारण वह गर्भोत्पत्ति से स्वतन्त्र रह, वासना पूर्ति के ख्याल से संयम-बद्ध नहीं रह सकती उनके पति-देवों से हमारा साग्रह निवेदन है कि वह अपनी प्रियतमा प्राण-प्रतिमा चिर-सङ्गिनी के सरस जीवन को सुखपूर्वक देखना चाहें तो, इस ठोली का व्यवहार अवश्य करते रहें।

पुरुषों के व्यवहारोपयोगी प्रचलित विभिन्न ठोली जैसे फ्रेंच लेदर कोण्डम आदि। इन ठोलियों के नीचले हिस्से में गोल घुण्डी सी जगह होती है-जिसे शुक्राधार Teat या Nipple कहा जाता है। सम्भोग के परिणाम शुक्र-क्षरण हो, इसमें एकत्रित होजाता है ताकि गर्भोत्पत्ति में संरक्षणता इससे भली भांति मिल जाती है। यदि कारणवश ठोली किसी भी प्रकार से जरा भी फट जाय तो तत्काल ही पिचकारी द्वारा जरायु वस्ति प्रयोग करना चाहिए।

शुक्राधार-विहीन ठोली के व्यवहार करने में कई असुविधायें हैं जैसे-वीर्य-निर्गमन काल में स्थानाभाव-वशतः दबाव से फट ही जाता है; इसके अतिरिक्त रबड़ की स्थिति-स्थापकता स्वभाव के कारण इससे पुरुषाङ्ग पर अत्यधिक दबाव पड़ता है। परिणाम में स्नायु-विधान और कैशिक शिराओं को आघात प्राप्त होता है। जिससे पुरुषत्व-हानि की सम्भावना आ जाती है। इस कारण पूर्वापर विचार कर शुक्राधार विहीन ठोली के व्यवहार को चिकित्सकों ने अनुचित अग्राह्य बताया है।

अब जब व्यवहार में अनभिज्ञता के कारण से उद्देश्य व्यर्थ होना ही स्वाभाविक है तब अन्धाधुन्ध प्रयोग से यान्त्रिक दुर्बलता की बात उठाने की आवश्यता ही क्या है?

काम-केलि, रति-सुखास्वादन में यदि जरायु पर पुरुष वीर्य का पतन नहीं हुआ तो स्त्री को सम्भोग से आनन्द का आस्वादन अधूरा ही रह जाता है। सहवास जनित अदृश्य अथच अभावनीय शक्ति के पारस्परिक विनिमय द्वारा ही दम्पति हृदय में अनिर्वचनीय आकर्षण विकर्षण जो एक दूसरे से प्राप्त करता है यानी यह कहिए जो प्रीति-परितृप्ति होनी चाहिए, वह हो ही नहीं सकती।

अतः दम्पति की हृदय कोमल वृत्ति स्नेह ममता आसक्ति आदि के अभाव होने पर प्रेम विकास में बाधा पड़, दाम्पत्य सुख का मूल नाश हो जाता है। पारस्परिक सेवा भाव से उभय के हृदय मन सन्तुष्ट न हो पारवारिक कलह आदि अनर्थों के साथ रोग भोग शिकार बन बैठते हैं।

गोल्डपीन बिस-बोन पेसरी —

पाश्चात्य स्त्री-समाज में इसका अधिक प्रचलन है। इसे जरायु-ग्रीवा की खाई में स्प्रिङ्ग के सहारे अटका कर दबाये रखना पड़ता।

इस पेसरी के बारे में डा० हेयर का मत है कि यह पेसरी स्त्रियों के लाभदायक तो क्या जीवन को

भी सङ्कट में फंसाने वाली है। गर्भ नियन्त्रण में तो निश्चितता इससे रहती ही नहीं, इसका व्यवहार भी विपज्जनक और यन्त्रणादायक ही सिद्ध हुआ है। स्वाभाविक संवेदनशील स्त्री-अङ्ग के गह्वर में रख छोड़ने से शरीर सञ्चालन क्रिया की स्वाभाविक गति में वाधा होने से सदैव एक प्रकार का आश्राव निकलने लगता है। जरायु सम्वन्धी जटिल पीड़ाओं की उत्पत्ति जिसका भयावह परिणाम है।

अमेरिका आदि देशों की स्त्रियां गर्भ-निवारणार्थ एक वर्षावधि इसे जरायु ग्रीवा में रख छोड़ती हैं। आश्चर्य की वात नहीं, यह सब श्वेताङ्गी कोमल कुमुदनी रमणी वहुत ही नाजुक जगह जरायु के अन्दर में धातु निर्मित कठोर वस्तु को दवाये हुए भी वड़ी आसानी और आराम के साथ घूमती फिरती हैं।

इन देशों के रमणीय भवनों में इस प्रकार की वस्तुओं का व्यवहार विना किसी हिचकिचाहट से होता है। फिर भी धर्मप्राण-भूल-भुलैयों के फूल-वन में भटकने वाली भारतीय स्त्री-समाज के लिए मेरी सम्मति में ऐसी वस्तुओं के व्यवहारोचित प्रयोग से पृथक् रहना चाहिए। किसी कारणवश यदि स्प्रिङ्ग अलग होजाय तो जरायु को तो वह क्षत-विक्षत कर देगा ही अधिकन्तु मृत्यु तक भी होना कोई गम की वात नहीं।

इस प्रकार की और भी कई क़िस्म की पैसरियां Pessaries हैं-उनमें 'स्टाड पेसरी' उल्लेख योग्य है। व्यवहार प्रणाली इसकी साधारण ही है, इसके व्यवहार का सानुभव देख कर ही अनुमानित किया जा सकता है जो साधारण साधन सापेक्ष ही है।

डच मैनसिङ्गा पैसरी-

इसके उपयोग के वारे में प्राय: विज्ञ चिकित्सक एक मुख हैं। इसके प्रयोग से जरायु द्वार वास्तविक ही वन्द हो सकता है जिससे पुरुष वीर्य अन्दर प्रविष्ट हो ही नहीं सकता। सब पैसरियों से इसका मूल्य भी कुछ वड़-चढ़ कर है। इन सब पैसरियों के प्रयोग चित्रों के देखने से मालूम नहीं किये जा सकते, परन्तु कुछ अनुभव तो होता है।

सहज साध्य उपाय-

गर्भ- नियन्त्रण की अभिलाषिणी को सदैव स्मरण में रखने की वात यह है कि सम्भोग समाप्ति के अव्यवहित मुहुर्त्त ही क्षिप्रता के साथ शैय्या से उठ कर खड़ी हो जाय, और तत् का उद्दण्ड उपवेशन अर्थात् शौच के समय जिस प्रकार वैठाजाता है उसी अवस्था से कुछ समय वैठे, वाद शीतल जल पीवे, नासिका में वस्त्रांचल के छोर की वत्ती सी वना नथुओं के अन्दर भर दें या तृण टुकड़ा या सींक डाल छींक लें। योनि जरायु को शीतल जल द्वारा ऊंगलियों को प्रविष्ट कर भली-भांति धो डाले, सम्भव है इस सरल विधि को सराहने पर 'जन्म-शासन' सिद्ध हो जाय।

बम्बई राजकीय आयुर्वेदीय अन्वेषण समिति

शरीर संज्ञा परिषद्

दिनांक ४ से १० मई तक

निर्णीत संज्ञा

क्रमांक	संज्ञा	संदर्भ	संस्कृत व्याख्या	अर्वाचीन प्रतिशब्द या व्याख्य
१	शारीरम्	सु० शा० च० सू० २	शारीरं अधिकृत्य यद् तद् शारीरम् च० शा० ७	Complete Knowledge pertaining to body.
२	षडंग	सु० शा० ५		One having six parts.
३	षडंगं अंगं	अ. हृ. शा. ३		Body having six parts.
४	शाखा	सु० शा० ५	हस्तौ पदौ	Extremities
५	प्रत्यंगानि	सु० शा० ५	अवयवं अवयवं प्रतियो अवयवः तत् प्रत्यंगं उच्यते वा० शा० ३ तत्र अङ्गानि अंतराधिः सु.सू. ३५-१२ सक्थि बाहु शिरांसि तदवयवाः प्रत्यंगानि इति. अंगं अंगं प्रति यद् अंगं तत् प्रत्यंगम्	Limbs.
६	मध्यशरीरम् अंतराधिः	सु० शा० ५ च० शा० ७	शाखाशिरोग्रीववर्जितं शारीरम्	Trunk of the body.
७	शिरोग्रीवम्	चरक शा० ७	ग्रीवासहितं शिरः	The head and the nack.
८	शिरः	सुश्रुत	,,	do
९	शारीराणि	सु० सू० ३	शारीरस्थानाध्यायाः	Chapters in Sharir.
१०	शरीरसंख्या	सु० शा० ५	शरीरांगानां संख्याकरणम्	Calculation or numbering of the various parts of the body.
११	शरीरविचयः	च० शा० ६	शरीरस्य प्रविभागेन ज्ञानम्	Knowledge of the various parts of the body.
१२	गर्भावक्रान्ति—शारीर	सु० शा०	गर्भस्य उपगमनं अवतरणं इति यावत्. (डल्हण) गर्भस्य उत्पत्तिर्मेलकः इति यावत् (चक्रपाणि) गर्भस्य अवक्रांतिः—संप्राप्तिः यथा गर्भो गर्भतां संपद्यते–अरुणदत्त अवक्रमणं प्राप्तिः स्वरूपलाभः–इंदुः	Embryology.
१३	अस्थिविज्ञानम्		अस्थिव्याकरणम्	Osteology.

१४	संधिविज्ञानम्	...	संधिव्याकरणम्	Arthrology.
१५	सिरावर्णविभक्तिशारीरम्	सु. शा. ७	अध्यायस्य नाम—	Name of one chapter.
१६	मस्तक	...	शिरसः उपरितनो भागः मूर्धा	Vault
१७	शिरः	सु० शा० ५	ग्रीवाविरहितं शिरः, मस्तकम्, ग्रीवासहितं शिरः	Head, head & neck, Vault
१८	ललाटम्	सु० शा० ५	भ्रुवोरुपरिभागः	Fore head
१९	वदन	सु० शा० ३५	मुखम्	Mouth
२०	वदनान्तरम्	सु० शा० ३५	व्यातस्य मुखस्य अन्तरम्-डल्हण	Distance between the two lips after opening the mouth.
२१	भ्रु	सु० शा० ५		Eye brow
२२	नासा	सु० शा० ५		Nose
	नासिका	च० शा० ८		
२३	ओष्ठौ	च० वि० ७		Lips
२४	अधरोष्ठ	सु० सू० ३५ (डल्हण टीका)		Lower lip
२५	सृक्किण्यौ	च० शा० ७	वदनान्ते (चक्रपाणि)	Angles of the mouth
२६	कपोलः	सु० शा० ५	गल्लः	Cheek
२७	गण्डः		कपोलाद्वयोर्मध्यप्रदेशः (याज्ञवल्क्यस्मृति टीका)	Zygoma
२८	शङ्खः	सु० शा० ५	भ्रुवोरंतयोरुपरि कर्णललाटयो— र्मध्ये शङ्खौ-(सु० शा० अ० ६-२०)	Temple
२९	शिरस्तालु	च० शा० ८, भेल		Ant. fontenelle
३०	चिबुकम्	सु० शा० ५	अधरोष्ठात् अधस्तात् हनुमध्यस्योन्नतो भागः	Chin
३१	कर्णशष्कुलिः	च० शा० ६	(१) कर्णगतावर्तकौ (२) कर्णस्यशष्कुल्याकृतिभागः	The pinna of the ear
३२	कर्णपालिका	अ० सं० च० शा० ७		Lobule of the ear
३३	कर्णपुत्रक	च० शा० ७		Tragus
३४	कर्णपुत्रिका	सु. शा. १०-१६	बाह्यकर्णवेध	Anterior tragus
३५	कर्णपीठम्		कर्णपीठं पुत्रिकोपरिप्रदेशः	
३६	नासापुट	अ.हृ.सू.२०	नासारन्ध्र (पुटाकृतिः)	Nare (nose)
३७	नासावंश	च० वि० ८	नासास्थिदण्डः	Bridge of the nose
३८	कर्णमूल	अ. हृ चि १०	कर्णपालिकायाः पुरोधः स्थितः भागः	Parotid region

		सु० सू० ३५		
३९	दंतवेष्टकौ	च० शा० ७	दंतमांसपंक्तिः	
४०	अक्षिकूटम्		नेत्रपर्यंत भागः	Surrounding area of the ey
४१	अक्षिगोलम् नयनबुद्बुदम्	च० शा० ७		Eye ball.
४२	अक्षिवर्त्म	सु० उ० १		Eyelid
४३	अक्षिकनीनिका		नासासमीपे अवस्थितः वर्त्म सन्धिः	Inner canthus of the eye.
४४	अपाङ्ग		भ्रू पुच्छान्तः स्थितः वर्त्म सन्धिः	Outer canthus.
४५	पक्ष्म			Eye lashes.
४६	ग्रीवा			Cervix, neck
४७	अवटुः	सु० चि० ३-३७	कृकाटिका भागसन्धौ अवटुः—डल्हण कृकाटिकान्ते ग्रीवायाः पश्चात् कृकाटिकापर्यन्ते सु० चि० २-३५	Nape of the neck.
			अवटुर्घाटा —चक्रपाणि मन्यापुरोभागः ग्रीवायाः पश्चिमो भागः सु.भानुमति	Adam's apple.
४८	कण्ठः	सु० चि० १६	गलसहितः कण्ठभागः	Larynx & Pharynx
४९	जत्रुः	च० शा० ७	एकंजत्रुः	Sternum
५०	अंसः	सु० शा० ६	वाहुमूर्धग्रीवामध्ये अंसपीठस्कन्ध निबंधनौ अंसौ० सु० शा० ६ अंसफलकभुजशिखरयोर्बंधनौ अंसौ- (डल्हण)	Acromial region
		सु० शा० ५	अंसो भुजशिरः याज्ञवल्क्यस्मृतिटीका	
५१	अंशपीठ	सु० शा० ५ सु० सू० ३५	अंसपीठो वाहुशिरः	Aeromian process
५२	कक्ष कक्षा	सु० शा० ५	वाहुमूलं	Axilla
५३	उखा	च० शा० ७	कक्षागतोगर्तः	Axilary fossa
			कक्षस्यधाश्वयोः निम्नभागौ चक्रपाणि	Armpit
५४	पार्श्व	सु० शा० ५	कक्षाधः प्रदेशः याज्ञवल्क्य स्मृति	Lateral side of thorax
५५	स्तन	च० शा० ७		Mamma
५६	विप्पलक स्तनाग्रम स्तनचूचुकः	 च० शा० ७ सु. चि० १७		Nipple

५७	स्तनमण्डल	च० शा० ३	तनचूचुकपरिवर्तीवर्णमंडलम्	Areola of the Mamma
५८	बाहुपिण्डिका	च० शा० ७	बाह्वोः पिण्डीकारः भागः	Bicipital prominence
५९	प्रगंडः	भा० प्रकाश	कूर्परांसयोमध्यं भुजः	Arm, Brachium.
	भुजः	सु० सू० अ० ३५	चक्रपाणि टीका	
६०	प्रकोष्ट		प्रकोष्ठो मणिवंधोपरिष्टात् चतुरंगुले डल्हण	Forearm.
	प्रवाहु	सु० शा० ३५		
	अरत्नि		कूर्परात्मणिवंधपर्यन्तोभागः	Antibrachium.
६१	कूर्परः			
	कफोणिः	सु० शा० ५		Elbow.
६२	मणिवन्धः			
	कलायिका	सु० शा० ५		The wrist.
६३	पाणि			The hand.
६४	पाणिहृदय	च० शा० ७	हस्ततलमध्यम्	Centre of the palm.
६५	पाणितल	च० शा० ७	मणिवंधादंगुल्यग्रपर्यन्तोभागः	Palm of the hand.
६६	अंगुल्यः			Digits.
६७	कनिष्ठिका	सु० सू० ३५		The little finger.
६८	अनामिका	सु० सू० ३५		The ring finger.
६९	मध्यमा	,,		The middle finger.
७०	तर्जनी	,,		Index finger.
	आदेशिनी	याज्ञवल्क्य०		
७१	अंगुष्ठ	सु०सू० ३५		Thumb, Toe.
७२	अंगुष्ठमूलम्	सु० सू० ३५		Root of the thumb.
७३	उरः	(वाह्याङ्ग)	अन्तराधेः वाह्य	Anterior aspect of thorax.
	वक्षः	सु० शा० ५		
७४	उदरम्	(वाह्याङ्ग) च० शा० ७		1) Anterolateral aspect of abdomen. 2) Abdomen.
७५	कटि			Lumbar part of the back.
७६	नाभिकम्			Umbilical depression.
७७	नाभि	वाह्याङ्ग		Umbillicus
७८	कुक्षिः		वंक्षपार्श्वान्तरालम्	Lateral aspect of the abdomen
७९	पृष्ठः	सु० शा० ५		Thorasic part of the back, back as a whole.
८०	स्फिक्	सु० शा० ५	कटिप्रोथः नितंबमांसपिण्डम्	Gluteal prominence.
८१	वंक्षण	च० शा० ७	उदरसंधिप्रदेशः	Inguinal region.

८२	कुकुंदर	च० शा० ७	स्पिचोरुपरि उन्नतो भागो च० शा० ७ चक्रपाणि	Highest point of illiac crest
८३	उरू	सु० शा० ५	वंक्षणजान्वतराल:	Thigh
८४	उरूपिण्डिका	च० शा० ७		Quadriceps Prominence.
८५	जानु	सु० शा० ५		Knee —Genu.
८६	वृषण	सु० शा० ५-४	उपांग की दृष्टि से	Scrotal half.
	मुष्क	सु० नि० ७		
८७	फलकोष			Scrotum.
८८	शेफ	च० शा० ७		Penis
	मेढ्			
	मेहन			
	शिस्नम्			
८९	मेढ्चर्म	सु० नि०		Prepuce.
९०	मेढ्राग्र मेढ्मणि }	मा० नि०		Glanspenis.
९१	मेढ्रांगम्	सु० उ० ४२-३५	मेढ्मूत्रांत्रमुण्टीका०	Corpus Songiosum penis
९२	गुद	सु० शा० ३		Anus.
९३	गुदमंडल	सु० चि० ८-२४		Area Surrounding the anal opening.
९४	श्लेष्मभुवौ	च० शा० ७	कंठपार्श्वयो: मांससंघातौ	?
९५	जंघा	च० शा० ७	जानुगुल्फमध्यप्रदेश	Leg
९६	जंघापिण्डिका	च० शा० ७		Calf prominence.
९७	गुल्फ	सु० शा० ५		Ankle.
	खुडक	सु० वि०अ० १८-२६	जंघापार्श्वयोर्सन्धि:	
९८	गुल्फकर्णौ	सु० वि० १८-१६		Malleoli.
	घुण्डिके	भावप्रकाश		
९९	पादतल	सु० सू० ३५		Sole of the foot.
१००	पाद			Foot.
१०१	पार्ष्णि	सु० शा० ५		Heel.
१०२	प्रपद पादाग्र }	सु० शा० ३५ सु० डल्हण	अंगुल्यंतरं प्रपदं	Forefoot
१०३	पादहृदय	सु० शा० ७		Center of the sole of the foot.
१०४	प्रदेशिनी	सु० सू० ३५		Second finger of the foot
१०५	पादांगुष्ठ	सु० सू० ३५		Hallux.
१०६	पृष्ठवंश:	सु० शा० ५		Spinal column.

	पृष्ठेपिका			
१०७	बर्हिमुखस्रोतांसि	सु० शा० ९		Outlets of the openings of the body.
१०८	जघन	सु० शा० ६	स्त्रीकट्याः पूर्वभागः	Hip
१०९	त्वक्	सु० शा० ५		Skin.
११०	मूर्धा	अ० सं० शा० ५		Uppermost part of the head
१११	लोमानि	सु० शा० ३		Hair on the body
११२	रोमराजिः	सु० शा० ३		Hair line.
११३	रोमकूपाः	च० शा० ७		Hair roots.
११४	त्वक्	सु० शा० ५		Skin
११५	नखाः	सु० शा० ५		Nails.
११६	अस्थि	सु० शा० ५		Osteon, a bone
११७	अस्थिप्रकाराः	सु० शा० ५		Varieties of bones.
११८	कपालास्थि	सु० शा० ५	कपालवत् अस्थि	The flat bones.
११९	रुचकास्थि	स० शा० ५	रोचन्ते इति रुचकः रुपकनिभाः रुचकाः	The Teeth.
१२०	तरुणास्थि	सु० शा० ५		Cartilages.
१२१	वलयास्थि	सु० शा० ५		Curved bones.
१२२	नलकास्थि	सु० शा० ५		Long bones.
१२३	अण्वस्थि	सु० शा० ५		Short (small) bones.
१२४	अक्षिकोष	सु० शा० ५	अक्षिवर्त्म	Eyelid
१२५	दंताः	च० शा० ७		The teeth(variety of bone)
१२६	दंतोदूखलानि	च० शा० ७		The tooth sockets.
१२७	दंतमांसानि	अ० हृ० सू० २		Gums.
१२८	अंगुल्यस्थि	सु० शा० ५		The Phalanges.
१२९	पाणिशलाका	च० शा० ७		Metacarples.
१३०	पादशलाका			Meta tarsals.
१३१	पादकूर्चास्थि			Tarsals excluding Talus & Calcaneum.
१३२	गुल्फास्थि	सु० शा० ५		Talus.
१३३	पार्ष्ण्यस्थि	सु० शा० ५		Os Calcaneum.
१३४	जंघास्थि	सु० शा० ५		Bones in the leg.
१३५	बहिः जंघास्थि			Fibula.
१३६	अन्तर्जंघास्थि			Tibia.
१३७	जान्वस्थि	सु० शा० ५		Patella.

	जानुकपालिका	च० शा० ७		
१३८	उर्वस्थि	सु० शा० ५		Femur.
	ऊरुनलक	च० शा० ७		
१३९	हस्तकूर्चास्थि	सु० शा० ५ (डल्हणटीका)		Carpals.
१४०	अंतः प्रकोष्ठास्थि			Ulna.
१४१	वहिःप्रकोष्ठास्थि			Radius.
१४२	वाहुमूलक	च० शा० ७		Humerus.
	प्रगण्डास्थि	भावप्रकाश		
१४३	अक्षकास्थि	सु० शा० ५		Clavicle.
१४४	अंसफलक	सु० शा० ५		Scapula.
१४५	पार्श्वास्थि पशुका	सु० चि० अ० २-२६		Ribs.
१४६	श्रोणिफलक	च० शा० ७		Hip-bone excluding pubic part.
१४७	नितंबास्थि	सु० शा० ७		
१४८	भगास्थि	च० शा० ७ सु० शा० ५		Two pubic bones together
१४९	हन्वस्थि	सु० शा० ५		Maxila-Mandible.
	हनुबंधास्थि			
१५०	हन्वस्थि	च० शा० ७ काश्यपसंहिता		Mandible.
१५१	त्रिकास्थि	सु० शा० ५	यः त्रिकसंश्रितः	Sacrum.
१५२	गुदास्थि	सु० शा० ५		Cocyx.
१५३	गण्डास्थि	सु० शा० ५		Malar bone.
१५४	तालवस्थि	सु० शा० ५		Bony palate.
१५५	शिरःकपालानि	च० शा० ७		Four flat bones of the skull.
१५६	पुरःकपाल			Frontal bone.
१५७	पार्श्वकपाली	च० शा० ७	चत्वारिशिरःकपालानि	2 Parietals.
१५८	पश्चिमकपाल			Occipital.
१५९	अस्थिभग्न	सु० नि० १५		Fracture.
१६०	संधिमुक्त	सु० नि० अ० १५		Dislocation.
		अवयवनिश्चितः		
१६१	क्लोम	...		Pancreas.

क्रमांक	संज्ञा	अर्वाचीन प्रतिशब्द	क्रमांक	संज्ञा	अर्वाचीन प्रतिशब्द
१६२	आकुंचन	Flexio	१७९	गर्भाशय / गर्भशय्या / धरा	Uterus
१६३	आशयाः	Viscera.			
१६४	अधरगुद	The anal canal.			
१६५	उत्तरगुद	Rectum.	१८०	गर्भाशयमुख / गर्भछिद्र	The cervix uteri.
१६६	आन्त्रसरणि	Intestines.			
१६७	अपत्यपथ	Vaginal+Genital-passage.	१८१	गर्भनाभिनाडी	Umbilical Cord.
१६८	अपरा	Placenta.	१८२	गलशुण्डिका	Uvula.
	अपरा आविला		१८३	गवीन्यौ	Ureturs.
१६९	अश्रुमार्याः	Lacrimal apparatus.	१८४	गुद	Anal canal.
१७०	आमाशयः	The stomach.			
१७१	इंद्रियाधिष्ठानानि	The sense organs.	१८५	गोजिव्हिका	The tongue
१७२	उत्तमांगम्	Head	१८६	चेष्टावन्तः संधयः	The movable joints.
१७३	उलूखल (संधि)	Ball & socket joint.			
१७४	कण्ठनाडी	The trachea.			
१७५	क्षुद्रांत्र	Small intestine.	१८७	उल्व / जरायु	Faetal membrances.
१७६	किक्किस	The stria gravidarum.			
१७७	वृक्कौ (कुक्षिगोलकौ	Kidneys			
१७८	कोरसन्धि	Hing+Condyloid. Joint.	१८८	जिव्हासेवनी	Median raphe of the tongue

क्रमांक	आशयनाम्	स्थानम्	अन्तर्भूताः शारीरावयवाः
१८९	वाताशयः	पुरःस्थानं	फुफ्फुसः प्राणवाहिन्यश्च
		[उदरं कटिः	पक्वाशयः (बृहदांत्रस्य अधोनाभेः गुदोपरिभागः
१९०	पित्ताशयः	उदरम्	क्लोम (तिल) (Pancreas)
			यकृतः आमाशयः पच्यमानाशयः
			Small intestine
१९१	श्लेष्माशयः	उरः	फुफ्फुसः
		संधयः	संधिकोषः
१९२	रक्ताशयः	कोष्ठ	यकृत्प्लीहानौ
			हृदयम् (जीवरक्ताशयः)

— शेषांश पृष्ठ ८५१ पर देखें।
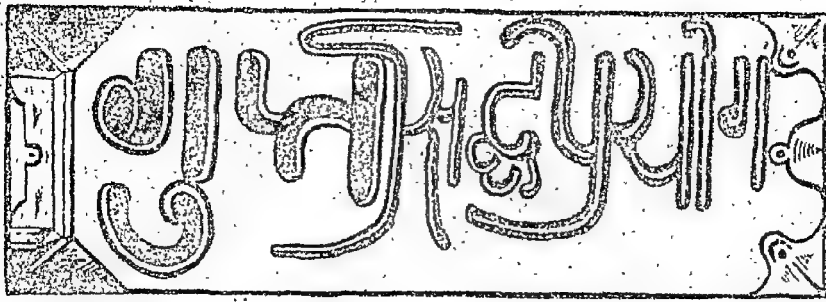
श्री महेन्द्रसिंह भारप बी. ए. भिषग् भूषण

खारी कुआ (शाहवासा मण्डी) मेरठ।

"आप आयुर्वेदाचार्य श्री महाराज वृजेन्द्र विक्रमसिंह भारप संस्थापक श्री भारत आयुर्वेद भवन मेरठ व देहली के पुत्र हैं। आपकी आयु इस समय केवल १८ वर्ष है। परन्तु इतनी छोटी आयु होते हुए आप औषधि निर्माण कार्य व सूचीवेध चिकित्सा में विशेषतः सिद्ध-हस्त हैं। आशा है अपने पिता की सहकारिता में कार्य करते हुये एक दिन भारत के प्रसिद्ध आयुर्वेदज्ञों में आपकी गणना होगी। अपने पिता के साथ रहकर आपने अनेक सिद्ध नवीन औषधियों का आविष्कार किया है।"

—सम्पादक।
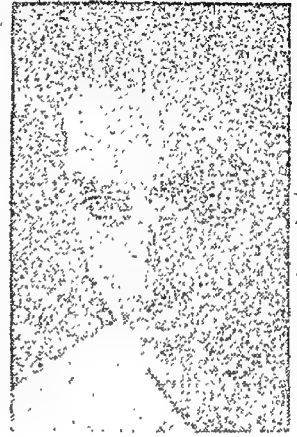
कुकरान्तक–

संतरा स्वरस	५ तोला
शुद्ध मधु	५ तोला
हीरा कसीस (हरा)	३ माशा
जङ्गार	१ माशा
भीमसैनी कपूर	४ रत्ती

निर्माण विधि—सब द्रव्यों को उत्तम चीनी के खरल में डाल ३ घण्टे मर्दन कर स्वच्छ वस्त्र में सुरक्षित रखें।

प्रयोग—१-१ बूंद दिन में ४ वार आंखों में डालें।

गुण—रोहों की एक मात्र सिद्ध औषधि है।

मधुमेहादि द्रव–

करेला स्वरस	१० तोला
मधुनाशनी (गुड़मार) स्वरस	१० तोला
जामुन फल स्वरस बिल्व (वेलपत्र) स्वरस प्रत्येक	१०-१० तोला
विजयसार काष्ठ चूर्ण	२ तोला
मृतसंजीवनी सुरा	१० तोला

निर्माण विधि—सब द्रव्यों को एक शीशी में भर दृढ़ कार्क लगा सुरक्षित रखें, १५ दिन पश्चात् छान कर कार्य में लें।

उपयोग—१-१ ड्राम दिन में ४ वार खट्टा अनार स्वरस १।-१। तोला के ३ लें।

गुण—मधुमेह की अमोघ औषधि है।

नव शक्ति–

रौप्य पत्र (चांदी के वर्क)	१ तोला
स्वर्ण पत्र (सोने के वर्क)	१ माशा

निर्माण विधि—विल्लोरी खरल में स्वर्ण व रौप्य पत्र डाल १ माशा शुद्ध मल्ल, १ माशा शुद्ध पारद के साथ आर्द्रक स्वरस द्वारा ८ घण्टे मर्दन कर पतली-पतली टिकिया बना शुष्क कर दो प्यालियों में सम्पुट कर ३ छटांक उपलों (कर्सी) की अग्नि

—शेषांश पृष्ठ ८५१ पर देखें।

श्री० वैद्य शेषराव जैन आयुर्वेद रत्न

प्रधानाध्यापक—प्राथमिक पाठशाला, सोहागपुर (बैतूल)

"आपने अध्यापकीय कार्य करते हुए श्री. देशपाण्डे वैद्यभूषण, श्री गोकुलप्रसाद जी आयुर्वेद भिषक् गुरुद्वय के सामान्य नेतृत्व एवं शिष्यत्व में आयुर्वेद का ज्ञान प्राप्त किया है। नगरपालिका आयुर्वेदा धर्मार्थ औषधालय में भी गुरुदेव वैद्यराज श्री० रा० श० दीक्षित के संरक्षण में उपवैद्य के पद पर रहते हुए ज्ञान प्राप्त किया। लगभग १५ वर्ष से अध्यापकीय कार्य करते हुए चिकित्सा कर रहे हैं। इसी वर्ष हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग से आयुर्वेदरत्न प्रथम खण्ड में उत्तीर्ण किया है।"

—सम्पादक।

१—स्वरभेद नाशक—

सोंठ कुलिंजन वच
काली मिर्च छोटी पीपल

—समान भाग लेकर चूर्ण कर रख लें।

प्रयोग-विधि—१ माशा से २ माशा तक इस चूर्ण को पान के बीड़े में रख कर सेवन करें। अथवा—

—उपरोक्त पांचों का समान भाग चूर्ण कर पान (बङ्गला) के स्वरस की भावना देकर उचित शहद मिश्रण कर वटी बनावें। वटियां मटर के समान बनाना चाहिये। इन्हें चूसने पर भी लाभ होता है।

गुण—उक्त चूर्ण अथवा वटियों का सेवन करने से सर्व प्रकार का स्वरभेद नष्ट होता है। गायकों को इसका प्रयोग सदैव ही करना चाहिये। इसका प्रयोग वातज कास में भी आशुफलप्रद प्रमाणित हुआ है।

नोट—यह नुस्खा (प्रयोग) मेरे श्वसुर वैद्य श्री० ना० रा० साखरे द्वारा प्रदत्त है। इसे मैंने शत-शत रोगियों पर सफल प्रमाणित किया है।

२—उदररोगहर मोदक—

चने के १ पाव बेसन में पांचों नमक, नौसादर, यवक्षार, २॥-२॥ माशा कालीमिर्च और अजवायन १-१ तोला कूट कर मिला दें। घृतकुमारी के गूदे में ही आटे के समान मांड लें (मिला लें) पश्चात् २॥ तोला के मोदक बनाकर घी में सेंक लें। प्रतिदिन २ मोदक (बच्चों को १ मोदक) खिला कर गौमूत्र (तीव्र रोग में) पिलाया करें। सभी प्रकार के उदर रोग अवश्य नाश होवेंगे।

चिरापाटला ग्राम में एक दीन आदिवासी जो अपने जीवन से निराश हो चुका था। चिकित्सा के लिये इस गरीब ने अपने एक मात्र आधार दो बैल जो उसकी पूंजी थे बेचकर सभी चिकित्सा में वैद्य-डाक्टरों को भेंट देदी, किन्तु लाभ कुछ भी नहीं हुआ। रोगी का पेट बहुत कड़ा था; समस्त शरीर में सूजन थी, पेट में नीचे की ओर अधिक, सम्पूर्ण शरीर में अत्यधिक पीड़ा। शौच काला कड़ा, मूत्र गन्दला रक्ताभ-पीत। भोजन बहुत ही कम। मेरा वहीं स्थानान्तर होने पर लोगों ने मुझसे उक्त रोगी की चिकित्सा करने का अनुरोध किया। मैंने उन्हीं अनुरोध करने वालों के द्वारा उपरोक्त प्रकार से मोदक बनवाकर उसे खिलाये। रोगी लगभग १५ दिन पश्चात् ही स्वयं चलकर मेरे पास आया। रोगी का शोथ समाप्त हो गया था। पेट का कड़ापन नष्ट हो

चुका था, कास तथा थोड़ा ज्वर जो रहता था वह भी समाप्त था। रोगी की शिकायत थी कि पेट में दाह अधिक होती है। ५-६ दस्त प्रतिदिन काले और पतले होते हैं, कमजोरी अधिक मालूम होती है। मैंने रोगी को उक्त चिकित्सा चालू रखते हुए ही शङ्खलोह भस्म की २८ पुड़िया १-१ रत्ती की बनाकर घी व शक्कर १-१ माशा के साथ खाने का निर्देश कर देदीं। ईश्वर की कृपा से आज भी रोगी स्वस्थ और बलवान है। रोगी मेरे निवास स्थान के पास का ही है। अतः वह छुट्टी जाने पर मुझे मिलता ही रहता है।

नोट—ध्यान रहे गौमूत्र प्रति दिन १॥ तोले से अधिक न लें। क्रमशः प्रतिदिन बढ़ाते हुए अधिकतम मात्रा १ छटांक तक ले जायें। गौमूत्र बिल्कुल ताजा ही प्रयोग करें।

३—दन्तरोगहर मञ्जन—

नीम बबूल मौलश्री की छाल

तीनों १०-१० तोले

—छाया में सुखाकर कोयला बना लेवें।

फिटकरी	नौसादर
देशीकपूर	अजवायन का फूल

—प्रत्येक १-१ तोला

शक्कर १० तोला

—लेकर सबको एकत्रित खरल करे। चन्द्रज्योति का दूध पूर्ण गीला होने तक डाल कर एक प्रहर खरल करें। इस तरह ७ दिन तक ७ भावना देकर खरल करें। पश्चात् शीशी में भर दें। इसके मञ्जन करने से तथा, त्रिफला क्वाथ का कवल धारण करने से समस्त दन्तरोग यहां तक कि पायोरिया जैसी महा व्याधि भी नष्ट होती है।

४—बालशोष हर—

अतीस	लघु पिप्पली
काकड़ासिङ्गी	हरड़
बहेड़ा	आंवला

भारङ्गी —प्रत्येक १-१ तोला

—सबके वजन के बराबर वंशलोचन लेकर सब चूर्ण बनाकर उसमें १४ स्वर्णवर्क मिला कर अश्वगन्धा के काढ़े से भावना देकर प्रतिदिन १ पहर की घुटाई करे। प्रतिदिन एक भावना देता जावे। २२ वें दिन यथोचित मधु से घुटाई कर २-२ रत्ती की बटियां बनालें। माता के दुग्ध से या शहद से अथवा दोनों मिलाकर दिन में ३ बार (सायं प्रातः मध्यान्ह) देवें। यह आवश्यक है कि मातृ-दुग्ध का शोधन कर लिया जाय। यदि माता गर्भवती है तो बच्चे को उसका दूध न पिलाया जाय। महालाक्षादि अथवा शङ्खपुष्पी तैल से बालक शरीर की मालिश करना भी अनिवार्य है। इस योग से मैंने कई बालशोष से पीड़ित बच्चों को प्राणदान दिया है।

कासान्तक वटी—

पुष्करमूल	लघु पिप्पली
भारङ्गी	हरड़ का वक्कल
काकड़ासिङ्गी	टङ्कण

—समान भाग, मदार और कटेरी के फूलों में की केशर समान भाग, वंशलोचन और छोटी इलायची दोनों समान भाग। इन्हें तीन भागों में विभक्त करो—

काकड़ासिङ्गी और टङ्कण तक	१ भाग
पुष्पों की केशर	दूसरा भाग
वंशलोचन इलायची	तीसरा भाग

गुरु यह है कि तीसरा भाग यदि १ भाग तो दूसरा भाग २ भाग और १ ला भाग ४ भाग। इस तरह १:२ और ४ के अनुपात से लेना चाहिये। इन्हें इकट्ठे पीसकर अलग रखलें। अद्रक रस तथा वासारस दोनों समान भाग में इतना लो जिसमें गुड़ सहित चासनी में उपरोक्त द्रव्य मिश्रित होकर वटी बनाने योग्य अवलेह तैयार होजावे। तब मटर

—शेषांश पृष्ठ ८५१ पर।

आयुर्वेदाचार्य काशीनाथ जी गुप्त

जयनगर (हजारीबाग)

"आपने १९५१ में विहार संस्कृत एसो . येशन से आयुर्वेदाचार्य की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की है तथा स्वर्ण-पदक प्राप्त किया है। सम्प्रति आप डिस्ट्रिक्ट बोर्ड औषधालय हजारीबाग में चिकित्सक हैं तथा जनता की सेवा करते हुए आयुर्वेद-प्रचार में संलग्न हैं। आपके निम्न प्रयोग परीक्षित हैं, पाठक अवश्य लाभ उठावें।"

दन्त-कृमि पर मिट्टी का तैल–

अगर दांत में कीड़े लग गये हों, दांत में दर्द हो रहा हो तो सफेद किरासन तैल को लेकर मुंह में (मिट्टी तैल का) कवल धारण करें। ५ मिनट तक मुंह को चलावें। फिर मिट्टी-तैल को मुंह से फूंक (निकाल) दें। बाद गरम पानी से कुल्ला कर लेवें। गन्ध चली जायगी। मैंने कइयों को दिया है, लाभ-प्रद प्रमाणित हुआ है।

नासिका से रक्तस्राव पर–

यदि किसी मनुष्य को रक्तपित्त एवं किसी भी कारण से नाक से खून आ रहा हो तो आप फौरन १ कागजी निबू मंगाकर उसका रस कपड़े से छान कर ड्रोपर के जरिये दो से १० बूंद तक नथुनों के भीतर डाल देवें। रोगी को धीरे से ऊपर की ओर दवा को सुरक लेने के लिए कह दीजिये। यदि भगवान चाहे तो एक बार के प्रयोग से ही आराम हो जायगा। नहीं तो यही प्रयोग बार-बार करें, आराम हो जायगा।

एक्जीमा-नाशक दवा–

पैर में जो एक्जीमा हो जाता है। जो जंघास्थि में ज्यादा बाल रहने के कारण होजाता है। बालों की जड़ों के नीचे फुन्सी जैसी होती है और वह पकती भी है जब उसे दोनों हाथों के अंगुठे के अग्र-भाग से दबा देने पर पानी जैसा निकलता है चमड़ा मोटा पड़ जाता है। खुजली तो इतनी होती है कि रास्ता चलते-चलते खुजली शुरु हो जाय तो बैठकर खुजलाये बिना आगे बढ़ना मुश्किल हो जाता है।

इसे शायद आप उकवात, छाजन, या एक्जीमा कहेंगे। मेरी समझ से एक्जीमा कहने से दोनों का बोध हो जायगा। चूंकि एक्जीमा की औषधियां इन दोनों में लाभप्रद हैं। अस्तु जो हो योग निम्नांकित है—

सुरगुंजा जिसका तैल निकाला जाता है और सरसों के तैल से निम्न तैल समझा जाता है। यह सरसों के तैल के बदले में व्यवहार किया जाता है। उसे १ सेर लेकर खपरी में देकर भून लें। जलने न पावे और कचा भी नहीं रहना चाहिए। उसे उतार कर गर्म-गर्म ही सिल पर पीस डालें। पीसने से तैल निकलना शुरु हो जायगा। उसमें १ छटांक तूतिया (नीलाथोथा) खूब जलाया हुआ, मुर्दाशंख, मैनसिल और सत्यानाशी के बीज प्रत्येक २॥ तोला उसमें मिला कर पीस डालें। बश दवा तैयार है, इसे व्यवहार में लावें। अनुभूत है।

अग्निदग्ध में दो अनुभूत प्रयोग–

१—जौ (यव) को लेकर उसे तवे पर भूने, भूनते २ चार बना लेवें। उस चार को कपड़छान करके

१ तोला लेवें और उसमें १० पाव तिल का बढ़िया तैल मिला लें। बस दवा तैयार है। कितना भी जला हुआ होगा आराम हो जायगा। पर हर समय दग्ध-स्थान को तैल से तर रखना पड़ेगा।

नोट—तिल तैल को जलाने की कोई आवश्यकता नहीं है।

२—सरसों के आधा सेर तैल में ५ तोला गुड़ जला देवें। गुड़ के जल जाने पर तैल उतार लेवें। इसे कपड़े में छान कर तैल को शीशी में रख व्यवहार करें। अग्निदग्ध पर अनुभूत है।

पृष्ठ ८४७ का शेषांश

दें। शीतल होने पर निकाल १ माशा पारद १ माशा मल्ल डालकर अदरक स्वरस से मर्दन कर पूर्ववत् अग्नि दें। इस प्रकार ५ पुट दें, फिर ७ अग्नि पारद व मल्ल की वृद्धि करते हुये अदरक स्वरस से मर्दन कर १-१ पाव उपलों की अग्नि दें। इस प्रकार १२ अग्नि द्वारा १ तोला शुद्ध मल्ल, १ तोला शुद्ध पारद मिश्रित कर दें। पश्चात् खरल कर १ सप्ताह नम (शीत युक्त) पृथ्वी में गाढ़ दें।

प्रयोग—२ चावल प्रातः मक्खन या मलाई में मिला कर लें, घृत दूध आदि का अधिक सेवन करें।

गुण—उदर, आमाशय, आन्त्रिक निर्बलता को दूर कर दस्त साफ लाती है। हृदय, मस्तिष्क, यकृत, आदि को शक्ति प्रदान कर शरीर में नवीन रक्त का संचार करती है। मात्र १५ दिन के सेवन से पौंडों वजन बढ़ जाता है।

दमा हरण—

सोडियम बेंजोएट	१० तोला
कैलिशियम लेक्टेट	१५ तोला
एफैड्रीन (पाउडर)	६ माशा
वंशलोचन	सवा तीन तोला

निर्माण विधि—सब द्रव्यों को खरल द्वारा मर्दन कर वस्त्र में छान सुरक्षित रक्खें।

उपयोग—१-१ माशा प्रातः सायं जल के साथ।

गुण—हर प्रकार के श्वास-कास को नष्ट करता है।

पृष्ठ ८४६ का शेषांश

बराबर वटियां बना लेवें। मुख में रखकर चूसें, छोटे बच्चों को दूध में घिसकर माता की चूची पर लेप कर सूखने पर पिलाने से भी चूसने के समान ही लाभ करता है। सभी प्रकार के कास के लिये उत्तम है। बच्चों की कुकर-खांसी में मयूरपक्षभस्म और मिश्री मिला कर बादाम घिसे हुए दूध में देना चाहिये। रोगानुसार पथ्य सेवन करना आवश्यक है।

पृष्ठ ८४६ का शेषांश

१६३	आमाशयः	कोष्ठः (नाभिस्तनांतरम) आमाशयः	
१६४	पक्वाशयः	कोष्ठ	बृहदन्त्रम् मलाशयश्च
१६५	मूत्राशयः	कटिः	बस्तिः (मूत्राशयः)
१६६	गर्भाशयः	कटिः (प्राकृतावस्थायाँ) गर्भाशयः	
	धरा (शारंगधर)	उदरम् (सगर्भावस्थायां)	
१६७	स्तन्याशयौ (शारंगधर)	उरोभागः स्त्रीणाम्	स्तनद्वयम

वैद्यालंकार श्री दुर्गाशंकर गर्ग आयुर्वेद विशारद M.D.A.

नवजीवन फार्मेसी, अजमेर।

"आप अजमेर के सुप्रसिद्ध हकीम रामचन्द्र जी गर्ग के सुपुत्र तथा आयुर्वेद के प्रकांड विद्वान वयोवृद्ध श्रीमान् पं० गोवर्धन जी शर्मा छांगाणी के शिष्य हैं। आपकी योग्यता पर छाङ्गाणी जी ने प्रसन्न होकर आपको वैद्यालंकार की उपाधि प्रदान की है। नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ से विशारद परीक्षा पास की है, अन्य भी कई संस्थाओं से परीक्षायें उत्तीर्ण करके प्रमाणपत्र तथा स्वर्णपदक प्राप्त किये हैं। अजमेर राज्य आयुर्वेद संघ के प्रचार मंत्री रह चुके हैं। अनेक सार्वजनिक संस्थाओं के सदस्य, मंत्री आदि हैं। अच्छे लेखक तथा वक्ता भी हैं।"

—सम्पादक

रक्तार्श—

रीठे के छिलके जले हुए	३ तोला
कत्था सफेद	३ तोला
मगज वकायन	२ तोला
कांतिसार भस्म	६ माशे

विधि—सबको बारीक पीस कर चूर्ण बनायें।

मात्रा—३ माशे दवा प्रातः व ३ माशे रात को सोते समय गाय के मट्ठे के साथ सेवन करें। सहस्रों रोगियों पर मेरा अनुभवी प्रयोग है।

रक्तप्रदर व रक्तातिसार नाशक योग—

केले का पका हुआ ताजा गूदा	१ पाव
गाय का घी	१ पाव
मिश्री	१ पाव
दालचीनी	१॥ तोला
बड़ी इलायची के बीज	६ माशा
लोध पठानी	६ माशा
धाय के फूल	६ माशा

विधि—प्रथम बाद की चारों दवाओं का बारीक कपड़छन चूर्ण कर लें। बाद में प्रथम केले के गूदे को खरल में डाल कर घोटें और गाय का घी तथा मिश्री (मिश्री को प्रथम ही खूब बारीक पीस कर रख लें) तथा उपरोक्त दवाओं का चूर्ण शामिल कर दें। बस अवलेह बन कर तैयार है।

मात्रा—२ तोला अवलेह प्रातः व २ तोला सायंकाल को दें।

गुण—रक्तप्रदर तथा रक्तातिसार नाशक है।

नोट—यह अवलेह औषधालय में पहिले से ही बना कर न रखें, वरन् रोगी को ताजा बना कर दें। अन्यथा खराब हो जाने का भय है।

नकसीर नाशक प्रयोग—

अडूसे के पत्ते का स्वरस, धमासे का स्वरस (यदि धमासा प्राप्त न हो सके तो जवासा का स्वरस ही लें) प्रत्येक २-२ तोला मधु (शहद) असली १ तोला तीनों को मिला कर के कुछ दिनों तक लें।

नोट—गधे की लीद का रस नाक में लगाने से भी नकसीर को आराम पहुँचता है।

यक्ष्मा के लिए—

गोदन्ती हरताल भस्म	२ रत्ती

—शेषांश पृष्ठ ५५ पर।

ऐलोपैथी डाक्टर्स और आयुर्वेद के वैद्यों की योग्यता समान है

आयुर्वेदीय चिकित्सकों को शल्यचिकित्सा करने का कानूनन पूरा अधिकार है। नागपुर के प्रथम श्रेणी न्यायाधीश श्री डी० डबल्यू० भोपकर महोदय का महत्वपूर्ण फैसला

मन्त्री मध्य प्रदेश रजिस्टर्ड वैद्य हकीम संघ, कार्यालय दुर्गा आरोग्य मन्दिर सीतवर्डी नागपुर सूचित करते हैं कि कुछ स्थानीय डाक्टरों ने नागपुर के नेत्र-वैद्य श्री उमाशङ्कर शर्मा के विरुद्ध नेत्र-वैद्य के नाते आंखों की शल्य-चिकित्सा नहीं करनी चाहिये इस दृष्टि से पुलिस के द्वारा प्रथम श्रेणी के न्यायाधीश के कोर्ट में मामला दायर किया।

श्री उमाशङ्कर नेत्रवैद्य मध्य प्रदेश रजिस्टर्ड वैद्य हकीम संघ के सदस्य होने के नाते संघ ने इस मामले में श्री उमाशङ्कर को सभी प्रकार की सहायता पहुँचाने का निश्चय किया और तदनुसार संघ के प्रमुख मन्त्री श्री व्यासनारायण शुक्ल, आयुर्वेदाचार्य ने न्यायाधीश महोदय के सामने दी हुई अपनी गवाही में बतलाया कि उमाशङ्कर वैद्य आयुर्वेदीय चिकित्सा पद्धति के १९४७ के द्वारा रजिस्टर्ड मैडीकल प्रैक्टीशनर हैं। मध्य प्रान्त और बरार के सन् १९४७ के कानून में आयुर्वेदीय पद्धति की परिभाषा करते स्पष्ट कहा गया है कि आयुर्वेद माने अष्टाङ्ग आयुर्वेद।

अष्टाङ्ग आयुर्वेद के ८ अंग इस प्रकार हैं (१) शल्यतन्त्र (सर्जरी) (२) शालाक्य तन्त्र (आंख, कान नाक, दांत और गले की बीमारियों की चिकित्सा) (३) काय चिकित्सा (डाइग्नोसिस और ट्रीटमेंट) (४) कौमारभृत्य (शिशु सङ्गोपन और प्रसूतितन्त्र) (५) अगदतन्त्र (विषतन्त्र न्याय-वैद्यक) (६) भूत विद्या (तन्त्र-मन्त्र तथा मानस शास्त्र) (७) रसायन तन्त्र, (मानव को दीर्घजीवी बनाने के लिये किये जाने वाले काया-कल्पादि उपाय) (८) वाजीकरण तन्त्र (अनैसर्गिक कारणों द्वारा नष्ट हुई पौरुष शक्ति को उद्दीपन करने के उपाय तथा कामशास्त्र) यज्ञ तथा उससे सम्बन्धित अन्य विषयों से समाविष्ट वैद्यक पद्धति माने आयुर्वेद।

इस वैद्यक पद्धति में या उक्त पद्धति के कानून में नेत्र-विशेषज्ञ, दन्त वैद्य आदि छोटे छोटे चिकित्सा के विषय न होकर आयुर्वेद-शास्त्र के पारङ्गत व्यक्ति को इन सभी विषयों में निष्णात समझा जाता है।

आयुर्वेद के शल्य-चिकित्सा प्रधान सुप्रसिद्ध सुश्रुत-संहिता इस ग्रन्थ में नेत्र-चिकित्सा के सम्बन्ध में तथा नेत्रों पर की जाने वाली शल्य-चिकित्सा के सम्बन्ध में इतना विस्तृत वर्णन किया गया है कि उसमें का अभी बहुत सा भाग बड़े-बड़े मशहूर पाश्चात्य डाक्टरों के भी व्यवहार में तथा मस्तिष्क में नहीं उतर सका है। (सुश्रुत-संहिता, वाग्भट संहिता आदि ग्रन्थों के नेत्रों पर की जाने वाली शल्य-चिकित्सा के सम्बन्ध के प्रमाण श्री शुक्ल जी ने न्यायाधीश को दिखाये) नेत्र-वैद्य श्री उमाशङ्कर ने आयुर्वेदीय पद्धति से रोगी के नेत्र पर शल्य चिकित्सा की है, वह शास्त्रीय दृष्टि से बिल्कुल ठीक है।

सन् १९४७ के मध्य प्रान्त और बरार के आयुर्वेद और यूनानी प्रैक्टीशनर्स कानून की धारा १९ में ऐसा स्पष्ट उल्लेख है कि मध्य प्रदेश सभा ने स्वीकृत किए हुए या असेम्बली में उक्त प्रान्त को लागू किए हुए किसी भी कानून के अनुसार कानूनन पात्रतायुक्त मैडीकल प्रैक्टीशनर के नाते आयुर्वेदीय तथा यूनानी पद्धति के रजिस्टर्ड प्रैक्टीशनरों को माना जाये। उसी प्रकार उसी धारा के कण्डिका 'ज' में चिकित्सक (फिजिशियन) अथवा शल्य-चिकित्सक (सर्जन) के नाते वैद्यक व्यवसाय करने

का ही तो क्या अपितु सरकारी नौकरी में करने का भी रजिस्टर्ड मैडीकल प्रैक्टीशनर को अधिकार दिया गया है।

सन् १९४४ का मध्य प्रान्त और वरार कोचिंग एक्ट यह वैद्य हकीम के रजिस्ट्रेशन का कानून बनने के पहले का है तथा वैद्य हकीमों को उपरोक्त अधिकार देने वाला कानून उसके बाद बना और अमल में आया है। इसलिए हजारों वर्ष के इस भारतीय वैद्यक शास्त्र के ज्ञान को कोचिंग एक्ट किसी भी दशा में बाधा पहुँचाने में सर्वथा असमर्थ है। अतएव नेत्र-वैद्य श्री उमाशङ्कर शर्मा यह उपरोक्त सब दृष्टियों से निर्दोष हैं।

नागपुर के प्रसिद्ध विधि-पण्डित श्री मा. वि० निगम एम० ए०, एल. एल. बी. एडवोकेट महोदय ने बड़ी आत्मीयता तथा निष्ठा के साथ इस मामले की जिरह की।

नेत्र-सुधार संघ के डाक्टर पटवर्धन को पूछे गये एक प्रश्न के उत्तर में उन्हें यह मानने के लिये बाध्य होना पड़ा कि उन्होंने किए हुए आज तक के आपरेशन में ३०-४० प्रतिशत आपरेशन असफल रहे हैं।

न्यायाधीश महोदय के फैसले का सारांश

फरियादी का कहना है कि आरोपी वैद्य उमाशङ्कर शर्मा यह मध्य प्रान्त और वरार के मेडीकल रजिस्ट्रेशन कानून १९१६ के अनुसार रजिस्टर्ड मेडीकल प्रैक्टीशनर नहीं है। वैसे ही वह नेत्र-विशेषज्ञ की कोई योग्यता प्राप्त भी नहीं है। इसलिये उसने की हुई नेत्र की शल्य चिकित्सा सन् १९४४ के मध्य प्रान्त और वरार के कोचिंग एक्ट की धारा ३ के अनुसार गुनाह है।

आरोपी वैद्य उमाशङ्कर की ओर से ऐसा कहा गया है कि सन् १९४७ के मध्य प्रान्त और वरार के आयुर्वेदिक और यूनानी प्रैक्टीशनर्स कानून के अनुसार यह रजिस्टर्ड मेडीकल प्रैक्टीशनर हैं इस लिए उन्हें शल्यचिकित्सा करने का अधिकार है अर्थात् उन्होंने कोई गुनाह नहीं किया है।

अब इस मुद्दे का निर्णय करना अनावश्यक है कि आयुर्वेदिक और यूनानी प्रैक्टीशनर एक्ट के अनुसार रजिस्टर्ड व्यक्ति को मोतियाबिन्दु इस नेत्र-विकार पर शल्य-चिकित्सा करने का अधिकार पहुँचता है या नहीं?

इस मामले के गवाहों के बयान दर्ज करने पर हमें यह नजर नहीं आया कि आरोपी द्वारा की हुई शस्त्र-क्रिया आयुर्वेद अथवा अन्य किसी चिकित्सा पद्धति में दिग्दर्शित नहीं है आरोपी द्वारा की हुई शल्यक्रिया साधिकार नहीं है। इसलिये उसे आरोपी को नहीं करना था ऐसा कोई प्रमाण (फरियादी की ओर से) प्रस्तुत नहीं किया गया।

आरोपी के पास उत्तर प्रदेश इण्डियन मेडीसन बोर्ड तथा मध्य प्रदेश आयुर्वेद यूनानी चिकित्सा बोर्ड के रजिस्ट्रेशन प्रमाणपत्र हैं। दूसरे प्रमाणपत्र में आयुर्वेद यूनानी प्रैक्टीशनर्स कानून की धारा १६ के कण्डिका २ के अनुसार रजिस्टर्ड मेडीकल प्रेक्टीशनर्स के नाते (उसका नाम) दर्ज किया गया है।

आयुर्वेद शास्त्र के आठ भाग हैं। उन्हें अष्टाङ्ग-आयुर्वेद कहा गया है। यह बात प्रसिद्ध सुश्रुत वाग्भट-संहिता आदि ग्रन्थों में स्पष्ट की गई है। उपरोक्त ग्रन्थों में नेत्र को शल्य-चिकित्सा का भी वर्णन किया गया है। इसलिये मेरा स्पष्ट अभिप्राय है कि आरोपी यह आयुर्वेदीय चिकित्सक है। अतः नेत्र की शल्य चिकित्सा करने के लिये सर्वथा योग्य है।

विद्वान न्यायाधीश महोदय ने अपने फैसले में आगे कहा कि आरोपी यह सन् १९१६ के मेडीकल रजिस्ट्रेशन कानून के अनुसार रजिस्टर्ड न होते हुए मध्य प्रान्त और वरार के आयुर्वेद यूनानी प्रैक्टीशनर्स कानून के अनुसार रजिस्टर्ड है। इसलिये उसे शल्य चिकित्सा का अधिकार नहीं है यह सही नहीं है।

सन् १९४४ के कोचिंग एक्ट के धारा ३ में १९१६

के मैडीकल रजिस्ट्रेशन कानून के अनुसार रजिस्टर्ड न हुए व्यक्तियों को नेत्र की शल्य चिकित्सा करने का कानूनन अधिकार नहीं था, कारण १६१६ के अनुसार रजिस्टर्ड प्रैक्टीशनर समझा जाता था।

सन् १६१६ के मेडीकल रजिस्ट्रेशन कानून की धारा ३ के कण्डिका ५ में रजिस्टर्ड प्रैक्टीशनर की परिभाषा की गई है। परन्तु सन् १६४७ का आयुर्वेदिक युनानी प्रैक्टीशनर कानून आयुर्वेद युनानी चिकित्सा पद्धतियों को प्रोत्साहित करने के लिये तथा इन चिकित्सा पद्धतियों के चिकित्सकों के नियमन के लिये स्वतंत्र रीति से तैयार किया गया और वह सन् १६१६ के कानून के बाद असल में आया।

आरोपी यह उपरोक्त १६४७ के कानून के अनुसार प्रैक्टीशनर्स है और इस बात को प्रमाणित करने के लिए इन पद्धतियों के द्वारा उसे इस सम्बन्ध का प्रमाणपत्र मिला है। मध्य प्रान्त बरार के आयुर्वेदिक युनानी प्रैक्टीशनर्स एक्ट १६४७ के धारा १६ में स्पष्ट कहा गया है कि—

समय-समय पर अमल में आने वाले किसी भी कानून में कुछ भी हो तो भी-

कानूनन अर्हता प्राप्त चिकित्सक या उचित अर्हता प्राप्त चिकित्सक इस संज्ञायों में या वैद्यक व्यवसाय का व्यक्ति के नाते कानून ने स्वीकार किया हुआ इस आशय के किसी भी शब्द में मध्यप्रदेश विधान सभा ने मंजूर किये गये कानून में और मध्य प्रदेश को लागू होने वाले केन्द्र के सभी कानूनों में उस कानून का सन् १६३५ के हिन्दुस्तान के राज्य घटना के ७ वें परिशिष्ट की सूची २ या ३ में निर्दिष्ट किये हुए किसी भी विषय से सम्बन्ध आवेगा वहां तक मेडीकल प्रैक्टीशनर का समावेश किया जावेगा।

उपरोक्त धारा में स्पष्ट उल्लेख किया गया है कि इस कानून के द्वारा रजिस्टर्ड किये हुए प्रैक्टीशनर यह कानूनन रजिस्टर्ड मेडीकल प्रैक्टीशनर समझे जाते हैं।

इसलिए मेरा अभिप्राय है कि सन् १६१६ और १६४७ के दोनों कानूनों के अनुसार रजिस्टर्ड मेडिकल प्रैक्टीशनर की की गई परिभाषा समान है वैसे ही उनके अधिकार भी। कारण इसी १६४७ के कानूने के धारा १६ कण्डिका 'क' में आगे कहा गया है कि रजिस्टर्ड मैडीकल प्रैक्टीशनर यह किसी भी सरकारी आयुर्वेदिक अथवा युनानी चिकित्सालय, रुग्णालय, सूतिकालय में चिकित्सक अथवा शल्यचिकित्सक के नाते कोई भी नियुक्ति धारण करने के लिए पात्र रहेगा।

मुझे स्पष्ट मालूम होता है और मैं ऐसा निर्णय देता हूँ कि सन् १६४७ के कानून द्वारा रजिस्टर्ड व्यक्ति ने नेत्र की शल्यचिकित्सा करने में कोई भी अपराध नहीं किया। सन् १६४७ के कानून के अनुसार रजिस्टर्ड व्यक्ति को वा सन् १६१६ के मेडीकल रजिस्ट्रेशन के अनुसार रजिस्टर्ड होने की आवश्यकता नहीं है।

वैद्यकीय दृष्टि से १६१६ के अनुसार रजिस्टर्ड व्यक्ति एलोपैथ डाक्टर्स और १६४७ के कानून के अनुसार रजिस्टर्ड हुए (आयुर्वेदिक चिकित्सक) की पात्रता समान है।

पृष्ठ ८५२ का शेषांश

प्रवाल चन्द्रपुटी	१ रत्ती
सितोफलादि चूर्ण	१॥ रत्ती

विधि—तीनों को २ तोला शहद में मिला कर चटावें। इस प्रकार कुछ दिनों के सेवन से कितना भी पुराना राजयक्ष्मा हो नष्ट होजाता है।

रक्तबन्द चूर्ण

गेरू ग्वालियर का संगजराहात

—दोनों समभाग

—लेकर बारीक चूर्ण बना रख लें।

१ माशा दवा शरबत खशखाश २ तोला में चटायें। दिन में ऐसी ३ खुराकें दें। यदि स्त्री का मासिक स्राव खून के नाले के समान वह रहा हो ऐसी अवस्था में उपरोक्त दवा में २ रत्ती अनार के छिलके का चूर्ण मिला कर दें। तत्काल लाभप्रद है।

समाचार एवं सूचनाएँ

अनुसंधान-क्रम—

श्री दयानन्दायुर्वेदिक कालेज की अनुसंधान परिषद ने प्रिन्सिपल श्री ओमदत्त जी एम० ए० की अध्यक्षता में अपने अनुसंधान क्रम में पारद के संस्कार प्रारम्भ कर दिये हैं। संस्कार सम्पन्न होने के अनन्तर संस्कृत पारद की कज्जली तथा रससिन्दूर बनाये जावेंगे। तदनु उनसे भिन्न भिन्न रोगाधिकारोक्त प्रसिद्ध प्रसिद्ध योग बनाए जांयगे। फिर अपने आतुरालय में रोगियों पर प्रयोग कर यह अनुसंधान किया जावेगा कि सामान्य शुद्ध पारद से बने योगों की तुलना में इनकी स्थिति क्या है।

अनुसंधान का दूसरा विषय ज्वरघ्न औषधि का अनुसंधान चुना गया है। सर्वप्रथम कुटकी को लिया जावेगा। इसकी चूर्ण,सत्व, वारुणी-सार, तरलसार आदि कल्पनायें बना उनकी विषम-ज्वरघ्न शक्ति का निरीक्षण और निर्णय किया जावेगा और अन्त में यह निर्णय किया जावेगा कि कौनसी विषमज्वरघ्न कल्पना सर्वोत्तम है।

इन अनुसंधानों की प्रगति की सूचना इस पत्र द्वारा दी जाती रहेगी। हमने प्रथम कुटकी को लिया है। यदि कोई अनुभवी महानुभाव किसी और औषधि का सुझाव भेजेंगे तो उस पर भी सहर्ष विचार किया जावेगा। यदि वह हमारी सूची में न भी हो तो लिया जावेगा।

—श्री० दीनानाथ शास्त्री वै० वा० मन्त्री-अनुसंधान परिषद, दयानन्द आयुर्वेदिक कालेज, जालन्धर।

\+ \+ \+

आयुर्वेद का विकास अयुर्वेद के तरीके से हो

केन्द्रिय सरकार द्वारा आयुर्वेद यूनानी एवं होम्योपैथी के विकासार्थ स्थापित दवे कमेटी के सदस्यों के समक्ष काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में, इण्डिय मैडीशन बोर्ड के सदस्य, अर्जुन आयुर्वेद विद्यालय के प्रधानाचार्य एवं काशी वैद्य सभा के प्रधान मंत्री श्री पं० ताराशंकर वैद्य ने अपना मत प्रगट करते हुये कहा कि आयुर्वेद का विकास आयुर्वेद के तरीके से ही होना चाहिये। उसमें अशुद्धता न होनी चाहिये। क्या सर्जरी भी आयुर्वेद द्वारा संभव है? इस प्रश्न का उत्तर देते हुये आपने दृढ़तापूर्वक कहा कि अवश्य। रक्त-स्राव-युक्त हाथ के घाव में आप क्या करेंगे? इस पूरक प्रश्न के उत्तर में आपने बताया कि आयुर्वेदीय औषधियों द्वारा रक्तस्राव बन्द कर उसे सींकर कुशा (काष्ट पट्टिका) बांध देंगे। इस प्रकार के वैद्य का वेतन क्या देना चाहिये? इस प्रश्न के उत्तर में आपने बताया कि डिप्टी-डायरेक्टर का दुना। अर्थात प्रारम्भ में १००० रुपया मासिक। इसलिये कि वैद्य जीवन की रक्षा करता है। इसके अतिरिक्त एक योग्य वैद्य प्राइवेटप्रैक्टिस में ५०० रुपया से१००० रु० मासिक कमा लेता है। प्राइवेट प्रैक्टिस बन्द होने पर इतना न प्राप्त होने से योग्य वैद्यों का आकर्षण इधर न होगा। पुनः धर्म-सम्बन्धी जिरह के उत्तर में आपने स्पष्ट कहा कि किसी भी परिस्थित में वेतन ऐलोपैथी के अनुसार तो होना ही चाहिये। शुद्ध आयुर्वेद तो शूद्र नहीं पढ़ सकता। इस शंका के समाधान में आपने सुश्रुत के "कुल गुण सम्पन्नम् शूद्रमपि अध्यापयेत्" का प्रमाण देते हुए कहा कि कुल गुण सम्पन्न शूद्र भी आयुर्वेद पढ़ सकता है।

—कैलाशनाथ जैतली, सहायक मंत्री-मण्डल वैद्य सभा, काशी।

\+ \+ \+

श्री मारवाड़ आयुर्वेद प्रचारिणी सभा का वार्षिक अधिवेशन सम्पन्न

मारवाड़ आयुर्वेद प्रचारिणी सभा का वार्षिक

अधिवेशन दिनांक ३-६-५६, को मध्यान्ह २ बजे मारवाड़ से आये वैद्य प्रतिनिधियों की उपस्थिति में सानन्द सम्पन्न हुआ, श्री धन्वन्तरि वन्दना के अनन्तर प्रथम वैद्यराज श्री अम्बालाल जी जोशी मंत्री जिला सभा ने गत वर्ष की रिपोर्ट पढ़कर सुनाई, जिसमें विशेष कर राजस्थान में हो रहे वैद्यों के रजिस्ट्रेशन सम्बन्धी अव्यवस्थाओं की ओर सरकार का ध्यान खींचा गया। संगठन की प्रगति की सराहना की गई और बताया गया कि आयुर्वेद के विकास के लिये हमें एक होकर कार्य करने की प्रणाली को बल देना चाहिये।

पश्चात् अग्रिम वर्ष के लिये पदाधिकारियों के चुनाव का कार्य आरम्भ हुआ, अध्यक्ष के लिये कविराज श्री माधव प्रसाद शास्त्री एवं श्री लक्ष्मीनारायण आसोपा का नाम सदस्यों ने उपस्थित किया। बहुमत से कविराज श्री माधवप्रसाद शास्त्री अग्रिम वर्ष के अध्यक्ष निर्वाचित किये गये। अन्य पदाधिकारियों तथा कार्य समिति के सदस्यों का चुनाव निम्न प्रकार किया गया—

२–उपाध्यक्ष–वैद्यराज श्री सत्यदेव शर्मा,
३–प्रधान मंत्री–वैद्यराज श्री गौरीशङ्कर व्यास,आयुर्वे०
४–उपमंत्री–वैद्यराज श्री जेठमल शर्मा, आयुर्वेदरत्न,
५–कोषाध्यक्ष–वैद्यराज श्री देवेन्द्रचन्द्र मुनि
६–आयव्यय निरीक्षक–श्री खूबचन्द जी शर्मा,
७–सदस्य–श्री मानचन्द्र, एल० ए० एम० एस०
८–" " श्री अम्बालाल जोशी, साहित्यायर्वेदरत्न
९–" " श्री मनशाराम शास्त्री, आयुर्वेदाचार्य,
१०–" " श्री रामचन्द्र शास्त्री,
११–" " श्रीलक्ष्मी नारायण आसोपा, आयुर्वेदाचार्य
१२–" " श्री अम्बादत्त व्यास,
१३–" " श्री मदनलाल महात्मा, आयुर्वेद शास्त्री
१४–" " रिक्त

अन्त में नव-निर्वाचित अध्यक्ष श्री कविराज जी ने सभी वैद्यों से भेद-भाव भुलाकर सहयोग की अपील की और आयुर्वेद के लिये तन मन से कार्य करने की शपथ ली। पश्चात् धन्वन्तरि जयघोष के साथ सभा की कार्यवाही सम्पूर्ण हुई। —प्र० मंत्री।

+ + +

श्री अवन्तिका देशी चिकित्सक मण्डल—

अवन्तिका देशी चिकित्सक मण्डल उज्जैन की साधारण सभा की महत्वपूर्ण बैठक दि० २४।६।५६ रविवार को २ बजे श्री डा० कमलसिंह जी की अध्यक्षता में श्री अवन्तिका आयुर्वेद विद्यालय नई पेंठ में हुई।

सर्व प्रथम वैद्यराज पं० अम्बाशंकर जी भीमाशंकर जी जोशी का दुकान संस्थान विधान सम्बन्धी नगरपालिका से चल रहे वाद में सफलता प्राप्त करने पर अभिनन्दन दिया गया। इस वाद में उच्च न्यायालय द्वारा भी सभी चिकित्सक वर्ग को नगरपालिका के दुकान-संस्थान विधान से मुक्त कर दिया गया है।

तनदन्तर नगर के सुप्रसिद्ध चिकित्सक एवं मध्यभारत देशी औषधि पर्षद् के सदस्य माननीय वैद्यराज पं० अनन्तराज जी सा० जैन ने पर्षद् की अभी तक की कार्यवाही पर प्रकाश डालते हुए कहा कि पर्षद् द्वारा स्वीकृत पंचवर्षीय कोर्स इसी वर्ष से चालू कर दिया है एवं वैद्यों के वेतन मान का स्तर बढ़ाने की जो सिफारिश पर्षद कारा कीगई थी वह शासन द्वारा स्वीकृत कर लीगई है।

इसके बाद कार्य-कारिणी द्वारा स्वीकृत मंडल के नवीन विधान पर विचार किया गया एवं कुछ संशोधनों के साथ विधान सर्व-सम्मति से स्वीकृत हुआ।

उज्जैन में निखिल भारतवर्षीय आयुर्वेद विद्यापीठ की पूरक परीक्षाओं के केद्र की भी व्यवस्था के हेतु पं० वासुदेव जी शास्त्री मेहता का भी मण्डल की ओर से अभिनन्दन किया गया।

आज की बैठक में नगर के सभी प्रसिद्ध वैद्य एवं हकीम महानुभाव बहुसंख्या में उपस्थित थे।

प्रधान मंत्री श्री हीरालाल जैन द्वारा आभार प्रदर्शन के पश्चात् सभा की कार्यवाही समाप्त हुई।

—प्रचारमंत्री।

वार्षिक चुनाव—

तहसील वैद्य मण्डल जिन्द का ता० १३-५-५६ को अधिकारी वर्ग का वार्षिक चुनाव निम्नलिखित हुआ है-

१ प्रधान-वैद्य मामचन्द जी
२ वरिष्ठ उपप्रधान-वैद्य लछमनसिंह जी
३ कनिष्ठ उपप्रधान-वैद्य बनवारी लाल जी
४ मंत्री-वैद्य रामदयाल जी आर्य
५ उपमंत्री-वैद्य खुशीराम जी
६ कोशाध्यक्ष-वैद्य ज्ञानचन्द जी
७ निरीक्षक-वैद्य प्यारेलाल जी
८ प्रचार मंत्री वैद्य गिरधारी लाल जी

निम्नलिखित सदस्य और कार्य-कारणी के लिये चुने गए—

९ वैद्य भगवानसिंह जी
१० ,, दलीपसिंह जी
११ ,, सूरतराम जी
१२ ,, धर्मसिंह जी
१३ ,, श्यामलाल जी
१४ ,, तारासिंह जी
१५ ,, मालिक चन्द जी

-मंत्री।

\+ + +

अर्जुन आयुर्वेद विद्यालय काशी में

बी० आई० एम० एस० पाठ्यक्रम चालू

अर्जुन आयुर्वेद विद्यालय के सभी विभाग पूर्ववत् चालू हो गये। कक्षा ८ या संस्कृत प्रथमा के समकक्ष योग्यता वालों के लिये द्विवर्षीय सहायक वैद्य और उपर्युक्त योग्यता या ज्ञान प्रभा या प्रवेशिका के समकक्ष योग्यता वाली महिलाओं के लिए द्विवर्षीय गृहस्वास्थ्य विशारदा पाठ्यक्रम तो यहाँ गतवर्ष से चालू है ही। अब १ जुलाई से मैट्रिक या पूर्वमध्यमा के समकक्ष योग्यता वालों के लिये पञ्चवर्षीय बी. आई. एम. एस. पाठ्यक्रम की सभी कक्षायें यहाँ चालू होगीं, प्रवेश जुलाई भर होगा। महिलाओं के लिए विशेष सुविधा है।

—प्रधानाचार्य।

तदेव युक्तं भेषज्यं यदारोग्याय कल्पते ।
स चैव भिषजां श्रेष्ठो रोगेभ्यो यः प्रमोचयेत् ॥

भाग ३०	धन्वन्तरि कार्यालय विजयगढ़	सितम्बर
अङ्क ९	का मुख पत्र	१९५६

धन्वन्तरि--भगवान्

जयति हे धन्वन्तरि भगवान्
हुआ सृष्टि में आधि-व्याधियों का जब से निर्माण ।
मानव सहने लगा विकल हो, जरा-ताप के बाण ॥
अमृत-कलश हाथ में लेकर, आए देने त्राण ।
और स्वास्थ्य का देने आए, तुम निर्भय वरदान ॥
जग ने भिन्न-भिन्न रूपों में, दिया तुम्हें सम्मान ।
इच्छा के अनुरूप उन्हें भी हुआ आयु का ज्ञान ॥
काय-चिकित्सा, शल्य और शालाक्य आदि विज्ञान ।
करा रहे हैं तेरे ही रूपों का विस्तृत भान ॥

—कविराज गौरीशङ्कर श्रीवास्तव ।

वैद्य वृत्तिश्चतुर्विधा

लेखक—श्री वैद्य गोपालप्रसाद जोशी, श्रीमाधोपुर (राजस्थान)

शास्त्र को कण्ठाग्र करने की पुरातन प्रथा आज भी शिक्षाक्षेत्र में बहुतायत से पायी जाती है। आयुर्वेद या एलोपैथी के क्षेत्र में ही नहीं अन्य विद्याओं और कलाओं के क्षेत्रों में भी ऐसे विद्यार्थी व गुरुजन मिलेंगे जो "शब्द घोटू" के पक्षपाती व "विद्या कंठ की, रुपया अन्ट का" कहते हुये रटन्तरी की महत्ता सिद्ध करते हैं। केवल शब्द ग्रहण व्यर्थ ही नहीं होता बल्कि बड़ी भारी हानि भी पहुँचाता है। यह विज्ञान सम्मत है कि एक क़दम चलने, एक नजर फेरने यहां तक कि एक शब्द बोलने तक में भी शक्ति व्यय होती है तो फिर अर्थज्ञानरहित केवल शास्त्र का मुख पाठ करने में प्रवीण विद्यार्थी अपनी अमूल्य शक्ति खोकर मूढ़ हुवा अपने को भारभूत न बनाले इसमें क्या सन्देह है। अर्थशून्य शास्त्र विद्यार्थियों के लिये परिश्रमकारी और भारभूत ही होता है, इसको सुश्रुताचार्य ने बड़ी ही युक्ति से दर्शाया है।

अधिगत मप्यध्ययनमप्रभाषितमर्थतः खरस्य चन्दन भार इव केवलं परिश्रमकरं भवति। भवति चात्र—

यथा खरश्चन्दन भारवाही
भारस्य वेत्ता न तु चन्दनस्य।
एवं हि शास्त्राणि बहून्य धीत्य
चार्थेषु मूढा खरव द्वहन्ति ॥ सु० सू० ४।३-४

गर्दभ भार से ही परिचित होता है चन्दन के गुणों से नहीं, तद्वत् अर्थ के विषय मूढ़ विद्यार्थी गर्दभ के समान केवल भारवाही होते हैं। इसलिये आयुर्वेद के विद्यार्थी वर्ग को विशेष रूप से इस विषय में समझना चाहिये। "शास्त्रं गुरु मुखोद्गीर्ण मादायोपास्य चासकृत्" अर्थात् गुरुमुख से निर्गत शास्त्र को शब्दशः ग्रहण कर तथा अर्थतः अनेक बार समझकर जो कर्म करेंगे वे ही वास्तविक वैद्य हैं। इसलिये शास्त्र का अध्ययन शब्द अर्थ दोनों से करना चाहिये और ये ही नहीं शास्त्र के साथ-साथ कर्म की शिक्षा भी अनिवार्य है। कोरा शास्त्र हवाई महल है। संगीत शास्त्र समझ तो लिया किन्तु यदि कण्ठ से संगीत प्रगट करने की कला न सधी तो नाद ब्रह्म की सजावट नहीं होगी। इसीलिये उभयज्ञ वैद्य की प्रशंसा शास्त्रों में लिखी गयी है।

शास्त्र और कर्म चिकित्सा रूप रथ के दो पहिये हैं दोनों के संयोग बिना अपूर्ण रथ प्रयोजन सिद्धि नहीं कर सकता। "उभयज्ञो हि भिषग् राजार्हो भवति"। तन्त्रकारों ने शास्त्र और कर्म की प्रशंसा मुक्तकण्ठ से की है—

यस्तु केवल शास्त्रज्ञः कर्म स्वपरिनिष्ठितः
स मुह्यत्यातुरं प्राप्य प्राप्य भीरुरिवाहवम्
यस्तु कर्मसु निष्णातो धार्ष्ट्याच्छास्त्र बहिष्कृतः
स सत्सु पूजां नाप्नोति वधं चार्हति राजतः
उभावेत्ताव निपुणाव समर्थौ स्व कर्मणि
अर्ध वेदधरावेत्तावेक पक्षाविव द्विजौ।

सु०सू०३।४८-४०

इसलिये चिकित्सा युद्ध क्षेत्र में विजय प्राप्त्यर्थ, सत्पुरुषों में सम्मानित होने अर्थ एवं चिकित्सा रूप उड़ने कर्म में समर्थ हेतु शास्त्र व कर्म का वैद्य को पूर्ण ज्ञान होना चाहिये। "वधं चार्हति राजतः" कहकर विशेष जोर देना इस बात का परिचायक है कि जो कर्मदर्शनहीन वैद्य चिकित्सा व्यवसायी बन जन-जीवन से खिलवाड़ करते हैं यह शासन की अयोग्यता है। इस प्रकार शास्त्र को शब्दार्थतः जान कर कर्म की शिक्षा पाकर चिकित्सा व्यवसायी होना चाहिये, यही नहीं पूर्णरूप से योग्या (कर्माभ्यास) भी किया हुआ हो तभी विशिखानुप्रवेश (व्यवसायार्थ) का अधिकारी है जैसा लिखा है—

अधिगत सर्व शास्त्रार्थमपि शिष्यं योग्यां कारयेत्। तथा इतना ही नहीं विद्यालय में आचार्य के शिष्यों

को सहायक के रूप में रहकर शास्त्र का जिसने उप-देश भी किया है ऐसे ही अधिकारी को शासन की ओर से व्यवसाय करने की स्वीकृति मिलनी चाहिये। इस प्रकार—

अधिगत तन्त्रेणोपासित तन्त्रार्थेन दृष्टकर्मणा कृत योग्येन शास्त्रं निगदता राजानुज्ञातेन वैद्येन विशिखानु-प्रवेष्टका,,

इस प्रकार विधिवत् अध्ययन व कर्म-दर्शन कर लेने पर शिष्य को वाणी की सौष्ठवता सर्वप्रथम प्राप्त करनी चाहिये और अपने आयुर्वेद का पूर्ण नेतृत्व समुचित ढंग से निभाना चाहिये। वैद्य में स्वामी होना आयुर्वेद की दिव्य आभा में कलुषता का हेतु होता है। इसलिये इस विषय में गम्भीर विचार कर अपने आयुर्वेद का सुन्दर स्वरूप धारण किये हुये रहना चाहिये। आज के समयानुकूल ढंग से प्रत्येक वर्ग को अपने में व अपने शास्त्र में श्रद्धा उत्पन्न करने हेतु वाग्सौष्ठवता का होना अत्याव-श्यक है।

वाग्सौष्ठवेऽर्थे विज्ञाने प्रागल्भ्ये कर्मनैपुणे।
तदभ्यासे च सिद्धौ च यतेताध्ययनान्तगः।
सु.सू.३।४४-४६

युक्तिपूर्वक, सप्रमाण व तर्कों से व प्रत्यक्षतः दिखलाकर जनता का आकर्षण बढ़ाना चाहिये-इसके लिये कर्म में निपुणता व कर्म का अभ्यास जरूरी है। आयुर्वेद के नियम स्वयं पचाकर आदर्श रूप से चिकित्सा क्षेत्र में प्रवेश करना चाहिये। और सबसे जरूरी गुण जिससे आयुर्वेद की महिमा प्रगट होती है वह है "अथ भूतदयां प्रति" केवल प्राणी-मात्र की हित भावना को लेकर अलोभ वृत्ति को धारण करते हुये चिकित्साकार्य प्रारम्भ करे। अन-जाने में भी गरीब से अधिक द्रव्य लेना आयुर्वेद सिद्धान्त के विरुद्ध है।

एवं अपनी भाषा रहन-सहन वेषभूषा को उत्तम रूप में बनाये हुये प्राणिमात्र के स्वजन भूत होकर ही चिकित्सा व्यवसायी बनना चाहिये। किसी की बहिन बीमार पड़ी है किसी का भाई माता पिता व अन्य कोई सम्बन्धी पीड़ित हैं तो उस बहिन भाई माता पिता आदि को अपने बहिन भाई माता पिता के रूप में समझता हुआ उसके परिवार की व्यथा को स्वयं अनुभव करने का अभ्यास डालने पर कोई कारण नहीं कि वह आयुर्वेद के भूतदयां प्रति वाले सिद्धान्त को अक्षरशः न निभा ले।

ह्रित्वा वैवस्वतान् पाशान् जीवितं यः प्रयच्छति।
धर्मार्थं दाता सदृशस्तस्य नेहोपलभ्यते॥

न हि जीवित दानाद्वि दानमन्य द्विशिष्यते वाला प्राणाचार्य यदि केवल उदर पूर्त्यर्थ-कुर्वते येतु वृत्यर्थं चिकित्सा पुण्य विक्रयं ते हित्वा काञ्चनं राशिं पांसु राशि मुपासते,; सदृश है।

वरमाशी विष विषं क्वथितं ताम्रमेव वा।
पीतमत्यग्नि संतप्ता भक्षिता वाप्ययोगुडा॥
न तु श्रुतवतां वेशं विभ्रता शरणागतात्।
गृहीतमन्नं पानं वा वित्तं वा रोग पीडितात्॥

तांवा औटाकर पीले, गरमा-गरम लोहे के चने खाले पर शरणागत रोगी से पीडित जन से बे-कायदा द्रव्य लेना उचित नहीं, वैद्यक धर्म के विरुद्ध है। ऐसे-"त्यक्त धर्मस्य पापस्य मृत्युभूतस्य दुर्मतेः नरो नरक पाती स्यात्तस्य संभाषणादपि" कहकर दर्शन खोटा बनना क्या पसन्द है? इसलिये—

परोभूत दया धर्म इति मत्वा चिकित्सया।
वर्तते यः स सिद्धार्थः सुखयत्यन्तमश्नुते—

का सिद्धान्त हृदयङ्गम करें।

मैं यह स्पष्ट देख रहा हूँ कि यदि आयुर्वेद के स्नातक इस संकट-कालीन समय में जिसमें आयुर्वेद की सत्ता तक को खतरा है सर्वस्व त्यागकर अभ्युत्थान के लिये जोरदार प्रयत्न नहीं करेंगे तो पानी पावा तो दूर नाम लेवा भी आयुर्वेद का कोई नहीं रहेगा। इसलिये वैद्य बन्धुओं से समय की मांग है कि अपना अस्तित्व बचाने के लिये जागकर अपने जीवन तक को होम देने पर कटिबद्ध होना चाहिये और अपनी चतुर्धा वैद्यवृत्ति को जगाना चाहिये—

मैत्री कारुण्यमार्तेषु शक्ये प्रीतिरुपेक्षणम्।
कृतिस्थेषु भूतेषु वैद्यवृत्तिश्चतुर्विधा॥

आयुर्वेद का त्रिदोष विज्ञान

लेखक—डाक्टर सन्तोष कुमार जैन ए. एम. एस., आयुर्वेद मैडिकल आफीसर
नजीराबाद (भोपाल)

आयुर्वेद का त्रिदोष विज्ञान बड़ा महत्वपूर्ण विज्ञान है। इसका ज्ञान कुशल चिकित्सक को तो होना आवश्यक ही है लेकिन यदि सर्व-साधारण को भी इसका ज्ञान होजाय या कुशल वैद्यों के द्वारा जानकारी करा दी जाय तो दोनों के हक़ में स्वास्थ्य सम्पादन का कार्य विशेष अच्छा हो सकता है।

शरीर-क्रिया में त्रिदोष विज्ञान का अत्यन्त महत्व है और आयुर्वेद शास्त्र में अमूल्यरत्न है। मानसिक क्रिया विज्ञान में सत्व रज तम इन तीन गुणों का बहुत महत्व है जो प्रकृति के गुण हैं। ये तीन गुण ही रूपान्तर से त्रिदोष कहलाते हैं। इस तरह शारीरिक एवं मानसिक क्रिया विज्ञान की आधार शिला अन्योन्याश्रित होने से त्रिदोषों पर ही दृढ़ है।

आधुनिक युग के नूतन चिकित्सक, जो आयुर्वेद शास्त्र का ज्ञान रखते हैं त्रिदोष विज्ञान को ठीक न समझ कर उसकी अप-व्याख्या करते हैं और कहते हुए व लिखते हुए देखे गये हैं कि वायु का अर्थ हवा (wind-विण्ड), पित्त का अर्थ पीले रङ्ग का तरल पदार्थ विशेष (बाइल Bile) और कफ का अर्थ बलगम है। किन्तु वास्तव में त्रिदोष विज्ञान से शारीरिक स्वाभाविक एवं विकृत अवस्थाओं की क्रियाओं के तथा चिकित्सा क्षेत्र में भैषज्य प्रयोग करने के जो अपूर्व नियम बांधे हैं उन नियमों को दूरदर्शिता एवं तीव्र बुद्धि से दृष्टिपात करने से महर्षियों के दिव्य ज्ञान का पता लगता है तथा सभी को विस्मित एवं मुग्ध होना पड़ता है।

वात–

'वा' गतिगन्धनयोः इस धातु से वायु शब्द बना है। गति रूपी जितनी भी क्रियायें संसार में हैं वे सब वायु की ही हैं लेकिन चैतन्य शरीर में प्रधानतः शब्द-स्पर्श-रूप-रस गन्ध को जो पंच महाभूतों के गुण हैं मन के पास पहुँचाना और पेशियों में वेग उत्पन्न करके चेष्टाओं का करना ही गति रूप क्रिया है। इस क्रिया को पाश्चात्य विज्ञान (Allopathic Science) में सेन्सेशन (Sensation) मस्क्युलर एक्शन (Muscular Action) कहते हैं। चित्त में जो कुछ संकल्प विकल्पादि वृत्तियां होती हैं वे सब भी वायु के आधार-भूत मन की गति रूप क्रिया है। पाश्चात्य मतानुसार इसे इन्टरलेक्शन (Interllection) कहा गया है। महर्षि चरक ने भी अपने ग्रन्थ के सूत्र स्थानाधिकार के १२ वे अध्याय में उपरोक्त कथन का वर्णन प्रामाणिक रूप में किया है–

"वायुस्तन्त्र यन्त्रधरः प्राणोदान समान व्यानापान् प्रवर्तकश्चेष्टानामुच्चानावचानां, नियन्ता प्रणेता च मनसः सर्वेन्द्रियाणामुद्योतकः सर्वेन्द्रियाणामभिवोढ़ा"

—च. सू. अ. १२

अर्थात् वायु शरीर के सब आशय और यन्त्रों को धारण करता है, इनकी क्रियाओं को चलाता है, इस वायु के प्राण, उदान, समान, व्यान और अपान में पांच स्वरूप हैं जो हृदय, कण्ठ, उदर, त्वक और गुह्य आदि स्थानों में इनके कार्य क्रमशः प्रथक् प्रथक् स्पष्ट रूप से करते हुए देखे जाते हैं। वायु ही बड़ी और छोटी सब क्रियाओं का प्रवर्तक है। मन की वृत्तियों का निर्माणकर्त्ता तथा चालक है। वायु सब इन्द्रियों में चैतन्य देने वाला है और शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध इन क्रियाओं का वहन करता है। चरक के इस वचन को देख किसको न प्रतीत होगा कि पाश्चात्य डाक्टर लोग जिसे नर्व फोर्स (Nerve force) कहते हैं हमारे आचार्य इस दुर्ज्ञेय वस्तु को 'वायु' कहते हैं। षट्चक्र और

नाड़ी मण्डल पाश्चात्य शास्त्र का प्रसिद्ध नर्वस सिस्टम (Nervous System) ही है। पाश्चात्य-मत से महर्षियों के मत का प्रभेद उतना ही है कि पाश्चात्य मतवालों ने (Nerve force) नर्व फोर्स को स्वीकार करके उसको अजेय कह कर छोड़ दिया है और हमारे महर्षियों ने अतीन्द्रिय ज्ञान से प्रकृतिस्थ वायु का स्वरूप वर्णन किया है जो आज प्रत्यक्ष है।

"रूक्षः शीतो लघुः सूक्ष्मश्चरोथ विशादः खरः विपरीत गुणैर्द्रव्यै मारुतः सम्प्रशाम्यति" —चरक

अर्थात् वायु रूक्ष,शीत,लघु,सूक्ष्म, चल,विशद और खर गुणों वाला है। इनके विपरीत गुण सम्पन्न द्रव्यों से वायु की शांति होती है। वायु के वर्णित गुण स्व-कपोल-कल्पना नहीं है जैसाकि अधिकांश मूर्ख लोग समझते हैं। विजली का पङ्खा और बिजली को गाड़ी आदि जब तक लोगों ने नहीं देखी थी तब तक कहने से विश्वास नहीं होता था कि बिजली के द्वारा ऐसे-ऐसे अपूर्व कार्य हो सकते हैं। अब प्रत्यक्ष कार्य को देखकर अबोध लोग भी विजली की अपूर्व शक्ति को मान रहे हैं। इसी तरह वे लोग तनिक विचार करके वायु की शक्ति एवं गुणों को नहीं देखते हैं कि जब वायु ही विपरीत गुणों वाले द्रव्यों से शांति हो रही है तो महर्षियों के दिव्य ज्ञान से वर्णित वायु की सत्यता क्यों नहीं प्रमाणित हो सकती है। अवश्य आचार्यों का कहा हुआ वायु का प्रमाण प्रत्यक्ष है। शवच्छेद करके मस्तिष्क सुषुम्नादि को देखने से और जीवित प्राणी पर नाना विध परीक्षा करने से प्रत्यक्ष देखने में आ रहा है कि बिजली के समान कोई एक अपूर्व सर्वव्यापिनी शक्ति शरीर में है जिसके प्रभाव से शरीर के सब कल पुर्जे चल रहे हैं।

पूर्व में प्रकृतिस्थ वायु के विषय पर स्पष्ट कहकर विकृत वायु से शरीर में क्या-क्या परिवर्तन देखने को मिलते हैं जो कि विकृतस्थ वायु का स्वरूप है, महर्षि चरक लिखते हैं—

"कुपितस्तु खलु शरीरं नानाविधैर्विकारै रुपतपति, बलवर्ण सुखायुषामुपघातम्य भवति, मनो व्यावर्त्तयति, सर्वेन्द्रियाण्युपहति" इत्यादि अर्थात् कुपितवायु शरीर में आध्मान, स्तम्भ, रौक्ष्य आदि नाना-विधि विकारों को उत्पन्न करता है। मनुष्य का बलवर्ण सुख और आयु को नष्ट करता है। मन की विकृति उपजाता है। इन्द्रियों की शक्ति को नष्ट करता है। इसी कारण पाश्चात्य शास्त्र में जिन रोगों को नर्वस डिवीलिटी (Nervous Debility), न्यूरस्थिनिया (Neurosthenia) आदि नाम से निर्देश करते हैं, महर्षियों ने आज से बहुत काल पहले ही उन सब रोगों को वायु के अन्तर्गत अर्थात् वायु ही समझाया है। और पाश्चात्य मत में जिनमनुष्योंको नर्वस यूरोटिक (Nervous Eurotic) या हिस्ट्रीकल (Hysterical) कहते हैं आचार्यों ने उनको वात प्रकृति ही कहा है, और सत्य भी है। जिस वात प्रकृति का स्वरूप आचार्यों ने स्पष्ट लिखा है—

"अधृतरिद्द सौहृदः, कृतघ्नः, कृश पुरुषो धमनी ततः प्रलापी, द्रुतगति, रटनो नवस्थितात्मा" इत्यादि (सुश्रुत शारीरः अध्याय ४)।

इन सब लक्षणों-युक्त पुरुषों को देखकर कौन स्वीकार नहीं करेगा कि ऋषि लोग समग्र नाड़ी-मण्डल की क्रिया को नर्वस सिष्टम (Nervous System) हस्तामलक समान समझते थे और "वायु" इन दो अक्षरों में इन सबको अन्तर्गत कर चुके थे। अतएव सुश्रुत स्पष्ट कहता है कि "प्रस्पन्दनोद्वहन, पूरण, विवेक, धारण, लक्षणो वायुःपञ्चधा प्रविभक्ता शारीरं धारयति" (सु० सू० अ० १५) अतः स्पष्ट प्रतीत होता है कि वायु का अर्थ हवा नहीं है किन्तु शरीर में उद्गार अधोवायु आदि धातुभूत नहीं हैं, ये सब मलभूत वायुरूप हैं।

पित्त—

"तप सन्तापे" इस धातु से पित्त शब्द बना है। शरीर में सन्ताप का मूलभूत जो कुछ सूक्ष्म अतीन्द्रिय वस्तु है वही पित्त है। शरीर में जो कुछ तेजो

गुण के कार्य्य होते हैं उनका परिचालक पित्त ही है। शरीर के स्वाभाविक सन्ताप की रक्षा, जिससे शरीर का सन्ताप ९०° से ९८° डिगरी तक बना रहता है, और त्वक् की शोषण शक्ति, अन्न का विपाक, मन की तेजस्विता, दृष्टि की उज्ज्वलता और रक्त का उज्ज्वल लालवर्ण, ये ही तेजोगुण के प्रधान कार्य्य शरीर में हैं जिनका मूलभूत तत्त्व पित्त को आचार्यों ने अतीन्द्रिय ज्ञान से बहुत काल पहले प्रत्यक्ष कर लिया था। आधुनिक समय पाश्चात्य मत में इसको कोई अज्ञेय संताप देने वाला अतीन्द्रिय वस्तु हीट-प्रोड्यूसिंग मेकेनीजम (Heat producing mechanism) कहकर पुकारते हैं। पाश्चात्य विद्वान कहते हैं कि निरन्तर शरीर में जो धातुक्षय हो रहा है इसी धातुक्षय व धातुदाह से कम्बशन (Combustion) अग्नि गुण उत्पन्न होकर शरीर का सन्ताप रक्षित होता है। इस मत (Theory) को प्राचीन आचार्यों ने बहुत पहले ही सिद्ध कर दिया था और उसका प्रमाण महर्षि चरक ने लिखा है-

"अग्निरेवहि पित्तान्तर्गतः कुपिता कुपितः शुभाशुभानि करोति स यदा नेन्धनं युक्तं लभते तदा देहजं रसं हिनस्ति" इस वचन का अभिप्राय यह है कि अग्नि के प्रभाव से शरीर की सब धातुओं का निरन्तर क्षय होता रहता है, उस क्षय की पूर्ति के लिए आहार रूप इन्धन शरीर में पहुँचना चाहिए, इसके बिना शरीर में रस परिपाक न होकर शरीर को रहा हुआ रस अग्नि के प्रभाव से नष्ट होजाता है। पाश्चात्य-मत के साथ ऋषियों के मत का इतना सादृश्य रहने पर भी स्मरण रखना चाहिए कि अग्नि केवल आकार रूप इन्धन से ही शरीर में अग्नि गुण सम्पन्न सर्व-व्यापी पित्त की संज्ञा को सूक्ष्मदर्शी महर्षि लोग स्वीकार करते हैं और कहते हैं-

"वात पित्त श्लेष्माण एव देह सम्भव हेतवः"।

परन्तु पाश्चात्य मत वाले अभी तक उतनी सूक्ष्मता को नहीं पहुँच पाए हैं। उस धातुभूत पित्त के गुण आचार्य लोग अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष करके लिखे हैं—

"सस्नेह मुष्णं तीक्ष्णं च द्रवमम्लं सरं कटु।
विपरीत गुणैः पित्तं द्रव्यैराशु विशाम्यति॥

अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष करके लिखने का तात्पर्य्य इतना ही है कि यकृत से निस्तृत पीतवर्ण तरल पदार्थ पित्त में उपरोक्त सब गुण वर्तमान नहीं दिखाई पड़ते। वह पित्त तो मल रूप वा किट्ट रूप पित्त है जिसको पाश्चात्य मतानुसार बाइल (Bile) कहते हैं, धातुरूप पित्त के साथ इसका अर्थ मिलाना महान् भूल है, ऋषियों के अतीन्द्रिय ज्ञान की सत्यता का अनुमान तो उपरोक्त श्लोक में वर्णित गुणों के आधार भूत पित्त के वर्णन से प्रमाणित है।

आयुर्वेद में मलभूत पित्त का लक्षण तो निम्न प्रकार से वर्णित है—

"पित्तं तीक्ष्णं द्रवं पूति, नील पीतं तथैव च।
उष्णं कटुरसञ्चैव विदग्धं चाम्लमेव च॥
— सु० सू० अ २१

कफ (श्लेष्मा)

श्लेष्म "श्लिष आलिंगन" इस धातु से श्लेष्मा बना है। श्लेष्मा सोम गुणात्मक वस्तु है। पित्त के समान धातु-भूत श्लेष्मा भी अतीन्द्रिय पदार्थ है। शरीर में तर्पण-तरावट रखना, श्लेषणसंयोजित रखना पोषण आदि सोमधातु के सब कार्य श्लेष्मा के ही हैं। पित्त यदि अग्नि रूप है तो श्लेष्मा जल रूप है। केवल अग्नि से दाह मात्र होता है। जल से उस अग्नि की तीक्ष्णता दूर होती है। सब स्थानों पर तरावट पहुँचती है। इसी को सुश्रुताचार्य ने प्रमाणित किया है-

"सन्धि संश्लेषण स्नेहन,रोपण,पूरण,बृंहण,तर्पण बलस्थैर्यकृत् श्लेष्मापञ्चधापुनिभक्त उदक कर्मणानुग्रहं करोति।"

अर्थात् सन्धियों को तैल के सदृश पदार्थ से चिकना रखना,कण्ठ जिह्वादि स्थानों को तर रखना,अन्न का क्लेदन,धातुओं का चूरण और पोषणादि जल के कार्य से कफ शरीर को तर रखता है। यदि शरीर में इस श्लेष्मा की तरावट न रहे तो शरीर थोड़े ही दिनों में दग्ध हो जाये इसमें संदेह नहीं है। अतीन्द्रिय श्लेष्मा

—शेषांश पृष्ठ ८९८ पर देखें।

दोषी मैं नहीं ?

लेखक—कविराज श्री० शिवकुमार 'व्यास' दिल्ली।

"..........डाक्टर हूँ !"

..........."जी हां ! वही डाक्टर जिसके हाथ में कितने ही प्राणियों के प्राण रहते हैं। अनजान रहते हुए भी जो सबके लिए जाना पहिचाना है। जो रोगियों के लिए ईश स्वरूप होता है। जो भू स्वास्थ्य निर्माता है। जो मानव शरीर का स्वामी है। जो मनुष्य को सुख शांति देने वाला है। शरीर और मन की विकृति को जो ठीक करता है। जो जाति का एक होनहार वीर है। जो देश नींव का एक सुदृढ़ पत्थर है, वही डाक्टर हूँ मैं !"

"......हां सहाब; जिसके लिए काले गोरे समान हैं। गरीब अमीर का जिसकी दृष्टि में कोई अन्तर नहीं। जिसकी निगाह में सभी स्त्री-पुरुष एक जैसे हैं। जो सुख जीवन पथ निर्माता है। जिसका उर कंचनवत् ज्योतित है, वही डाक्टर हूँ मैं !"

"......ठीक वही; सेवा ही जिसका जीवन है। स्वास्थ्य शिक्षा ही जिसकी देह है और स्वास्थ्य लाभ कराना जिसके प्राण है। जो प्रकृति को प्रकृति में रखने वाला है, विकृति को प्रकृति में लाने वाला है, जो मानव को प्रभु की एक देन है, वही डाक्टर हूँ सहाब !"

"क्या कहा; मैं दोषी हूँ ? नहीं-नहीं गलत कह गये आप। सोच-विचार कर बोलिए, कोई जल्दी नहीं है। क्या आपने यह सोच-विचार कर कहा है ? कुपित न होना बन्धु, यदि ऐसी ही बात है तो आपकी अक्ल को देख सभी को आकाश की ओर ताकना चाहिए। खैर, जो भी है, आप मेरी पूरी बात तो सुन लीजिए।"

"......हां-हां आप चाहे कुछ भी समझें, मेरी निगाह में दोषी वही है जो अपने कर्तव्यों का पालन न करे। किन्तु मेरे लिए तो यह बात लागू नहीं होती,
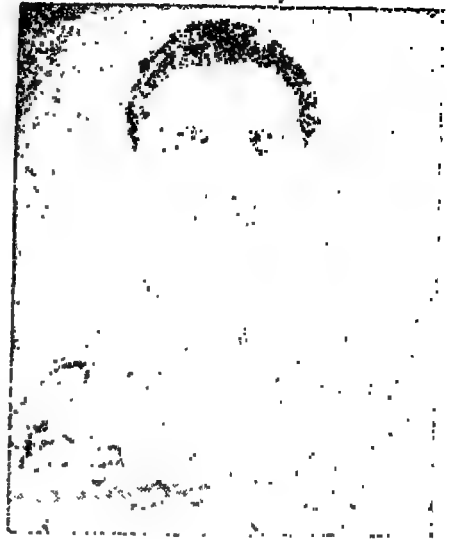
क्योंकि मैंने अपने सभी कर्तव्य निभाए हैं।"

"......चौदह वर्ष तक पढ़ कर बी. एस-सी. किया और फिर पांच वर्ष तक परिश्रम कर एम. बी. बी. एस. की डिग्री प्राप्त की और इस सब पढ़ाई में ४० हजार रुपया खर्च किया और फिर इस पढ़ाई में भी एकसट्रा ओरडीनरी (विशेष) रहा। क्या आप मुझे देख नहीं पा रहे, मेरी चांद के बाल और नेत्रों का तेज कहां गया ? यह सभी इस पढ़ाई के पीछे गवां दिया। क्या आप यह सब जानते हुए भी मुझे दोषी कहने से न हिच-किचायेंगे। बोलिए; भगवान् के लिए बताइये, मैं दोषी किस प्रकार हूँ, बोलिए !"

"......क्षमा कीजिए, मैंने न जाने आवेष में आपको क्या-क्या कह दिया, आप पहले से ही यह बात साफ-साफ बोल देते ! मैं कुछ कमजोर होने के कारण क्रोध में शीघ्र आ जाता हूँ, इसी से मैंने आपके प्रति भी सम्भवतः कुछ कह दिया होगा !"

"......किन्तु श्रीमान् जी, इसके लिए दोषी मैं नहीं।......यह ठीक है अपना देश गरीब है, पेट भर रोटी भी लोगों को नसीब नहीं। यह भी ठीक

है कि देशी औपधियां बहुत गुणकारी हैं और फिर यह भी है कि जिस देश में जो पैदा होता है, उसको प्रकृति से ही उस देश के द्रव्य हितावह होते हैं। यह भी मैं मानता हूँ कि विदेशी दवाईयां उन्हीं देशों के लिए हितावह हो सकती हैं और स्व-देशी औपधियां अपने देश के लिए। और फिर इस बात से भी इनकार नहीं कि अपने खून पसीने की कमाई का पैसा दूसरे देश में जाने से अपने देश की क्षति होती है।"

"·····हम जो कमाते हैं, अपने लिए नहीं, अपने भाईयों के लिए नहीं अपने देश के लिए नहीं अपितु सुदूरवासी उन विदेशियों के लिए जो हमारे चिकित्सा व्यवसाय के स्वामी बने हुए हैं।······ किन्तु इसके लिए दोपी मैं नहीं, दोपी कहिए उस राज्य को जो यह सब जानते-बूझते आज भी केवल विदेशी चिकित्सा-शास्त्र पढ़ाने वाले कितने ही कालेज खुलवाने में जुटा हुआ है। मुझे जो पढ़ाया, सिखाया गया है, वही तो मैं करूंगा, आप ही बताइए मैं क्या करूँ !"

"······हां आपका यह कहना बिलकुल हितकर होगा ! यदि ऐसा हो जाय तो उन्नति सम्भव है। हमें साथ-साथ देशी चिकित्सा विज्ञान का भी ज्ञान कराया जाय। हम आयुर्वेदिक चिकित्सा के सिद्धांतों को भी जानें ताकि हम विदेशी औपधि-निर्माताओं के हाथ की कठपुतली न बने रहें अपितु अपने देश की उन्नति में कुछ हाथ बटा सकें।"

"·····जी हां ! आप ठीक कह रहे हैं। अब एक दूसरे को कोसने और गाली देने का समय नहीं रहा। हम भाई-भाई हैं, एक जाति के हैं, एक देश के हैं, फिर आखिर यह अन्तर क्यों ?···हमें कन्धे से कन्धा मिलाकर इस कार्य को सफल बनाना है। सभी द्वेप भाव मिटा कर अब हम अपने राष्ट्र की जाति की उन्नति के लिए बढ़ेंगे।"

पृष्ठ ८६६ का शेषांश

यद्यपि एक ही है, तथापि कार्य के अनुसार पित्त के सदृश इसके भी पाँच विभिन्न रूप हैं, जिनके नाम श्लेषक=साइनोविया (Synovia) क्लेदक=सलाइवा (Saliva) आदि रक्खे गए हैं। धातुरूप श्लेष्मा के अतीन्द्रिय रूप का प्रत्यक्ष करके आचार्यों ने निम्नोक्त प्रकार से वर्णन किया है—

गुरु शीत मृदुः स्निग्ध, मधुर स्थिर पिच्छिता।
श्लेस्मणः प्रशमं यान्ति, विपरीत गुणंर्गणः॥

महर्पियों के इस उपदेश की सत्यता चिकित्सा के समय सभी को प्रत्यक्ष प्रतीत होती है। किन्तु स्मरण रखना चाहिए कि नासिका और मुख से जो श्लेष्मा गिरती है वह किट्ट या मल रूप है और उसके विपय में श्लेष्मा का शरीर-धारकत्व नहीं कहा गया है। सुतरां धातुभूत कफ, पित्त और वायु के विपय में ही कहा गया है—

विसर्गादान विक्षेपैः सोम सूर्यानिला यथा।
धारयन्ति जगद्देहं कफपित्तानिलस्तथा॥

अर्थात् विसर्ग, आदान और विक्षेप से चन्द्र, सूर्य्य और वायु जिस प्रकार जगत को धारण करते हैं उसी प्रकार कफ, पित्त और वायु भी शरीर को धारण करते हैं। मल, मूत्र, वायु, पित्त और कफ के विपय में चरकाचार्य्य ने स्पष्ट ही निर्देश किया है—

"पक्काशयन्तु प्राप्तस्य शोषमानस्य वह्निना।
परि पिण्डित पक्वस्य वायुः स्यात्कटु भावतः॥
किट्टमन्यस्य विण्मूत्र रसस्य च कफोऽसृजः।
पित्त मांसस्य च मलोमलः स्वेदस्तु मेदसः॥"
—चरक

वायु, पित्त और कफ केवल शरीर के ही तीन स्तम्भ रूप हैं। यही नहीं किन्तु समस्त आयुर्वेद में हेतु लक्षण और औपध के तीन स्कन्ध स्वरूप हैं। मनुष्य का वय क्रम अहोरात्रं पड्ऋतु अन्न विपाक आदि सभी में वात-पित्त-कफ का प्रभाव महर्पियों ने स्पष्ट प्रतिपादन किया है, जिससे कार्य सम्पादन में पूरी-पूरी सहायता मिलती है।

हार्दिक-शस्त्रकर्म

वर्त्तमान एवं भावी सम्भावनाओं का एक सर्वेक्षण

लेखक—डा. पद्मदेव नारायण सिंह एम. बी. बी. एस.

चिकित्सा क्षेत्र के प्रत्येक विलक्षण चमत्कारपूर्ण नूतन आविष्कारों वा उनके विकास से विसारित द्युति एवं प्रदीप्ति आजकल हार्दिक शस्त्रकर्म को आच्छादित कर रही है। मानवीय हृदय पर होने वाली शस्त्रकर्मों की दैदीप्य एवं चमत्कारपूर्ण कृति तथा कीर्ति सामान्य रूप से चिकित्सक एवं जन-साधारण दोनों पर आच्छादित हो रही हैं। यद्यपि कुछ व्यक्ति इन शस्त्रकर्मों को उन्मूलक (radical) मानकर मानवीय आत्मा के निवास स्थल के इतने सन्निकट अवस्थित क्षेत्रों में शस्त्रकर्मीय प्रविधियों के कार्य-क्षेत्र विस्तारण निमित्त किये गये प्रयासों का विरोध करते हैं।

राबर्टग्रास द्वारा सन् १९३८ में सर्व-प्रथम विवृत तथा प्रवाही महाधमनी संयोजक (Patent ductus arteriosus) के सफलतापूर्वक बन्धन क्रिया सम्पादन पश्चात् अत्यल्प कालान्तर्गत ही चिर-विकसित-शल्यकीय-प्रविधियों का व्यवहार अधिकाधिक जन्मगत या अर्जित हार्दिक वैरूप्यताओं या व्याधियों के शोधन या उपचार निमित्त अनेक क्षेत्रों में विस्तारित होगया है। हृदय तथा वृहत् वाहिनियों के अनेक रोगों या वैरूप्यताओं की चिकित्सा आज शल्यात्मक-प्रविधियों (Surgical procedures) द्वारा सम्पादित हो रही है और अनेक विशिष्टि व्याधियों के चिकित्सा निमित्त विश्वसनीय तथा बहुमूल्य शल्यकीय-प्रविधियां उपलब्ध हैं, प्रत्युत दूसरी ओर कुछ अन्य शस्त्रकर्म जैसे महाधमनिक या द्विदलकपाटीय-प्रत्युद्गरण (aortic or mitral regurgitation) तथा निलय-प्राचीरक वैरूप्यताओं (ventricular septal defects) के शोधनार्थ प्रयुक्त होने वाले शल्यकर्म अभी विकासावस्था में ही हैं, अतएव इन्हे अशक्य, असंदिग्ध या प्रमाणित नहीं माना जा सकता। अनेक अन्य जन्मगत तथा अर्जित हृद्रोग आज भी शल्य द्वारा अजेय हैं।

शल्योपचार द्वारा लाभान्वित या ऐसे रोग जिन्हें लाभान्वित होने की आशा की जाती है, निम्न लिखित हैं—

(१) हृदय के विविध प्रकार –

(१) वेधित क्षत (stale wounds)

(२) हृत्कपाटिकाओं के रोग (Valvular heart disease)

- (क) द्विदल कपाटकीय संकीर्णन (Mitral stenosis)
- (ख) द्विदल कपाटकीय प्रत्युद्गिरण (Mitral regurgitation)
- (ग) महाधमनीय सङ्कीर्णता (Aortic stenosis)
  - (१) जन्मजात
  - (२) अर्जित
- (घ) महाधमनीय प्रत्युद्गिरणता (Aortir cegurgitation)

(३) त्रिदल कपाटीय सङ्कीर्णता (Tricuspid stenosis)

- (i) अलिन्द प्राचीरक वैरूप्यता (Ventricular septal defect)
- (ii) निलय प्राचीरक वैरूप्यता

(४) अक्षुण निलयिक प्राचीरयुत जन्मगत फौफ्फुसिक सङ्कीर्णता (Congenital pulmonary stenosis with intact ventricular septum)

(५) हृद्वाहिन्य रोग (diseases of coronary vessels)

(६) फेलोट्स चतुष्टयत्व (Fellott's tetralogy)

(२) परिहृदयावरण के विभिन्न विकार
(Various lesions of pericardiume)

जीर्ण सांकुचिक हृदयावरण शोथ
(Chronic constructive pericarditis)

(३) वृहत् वाहिनियों के विभिन्न विकार

(क) प्रवाही महाधमनी संयोजक
(Patent ductus arteriosus)

(ख) महाधमनिक सङ्कोच
(Coarctation of aorta)

(ग) जन्मगत वाहिन्यवलय मण्डल
(Congenital vascular rings)

(घ) महाधमनीय संवाहिनी प्रसार
(aneurysm of aorta)

(i) वाक्षसी (औरस) धमनीय
(of thoracic aorta)

(ii) उदरीय महाधमनिक
(of abdominal aorta)

(च) वृहत् वाहिनियों का सम्पूर्ण विपर्य्यय
(Complete transposition of the great vessels)

(छ) उदरिक महाधमनी की समावरोधक अवरोध

शल्योपचारक्षम्य हृदय-व्याधियों को विवरण सुविधा निमित्त तीन वर्गों में विभक्त किया जा सकता है—

(१) प्रथम वर्ग उन रोगों का है जिनमें प्रकृत-प्रत्यास्थापन (Normal restoration) या लगभग इसी प्रकार की पुनःस्थिति अधिकांशतः रोगियों में सम्भव होती है—यथा प्रवाही-महाधमनी-पुजा, महाधमनिक संकोच, वाहिन्य वलय मण्डल, फौफ्फुसिक-सिरा धमनी-नाड़ीव्रण या संचार मार्ग (Pulmonary artereovenous communication or fistula) तथा सांकुचिक हृदयावरण शोथ के अधिकांशतः रोगी।

(२) द्वितीय वर्ग उन रोगों का है जिनमें कम से कम अधिकांश रोगियों के कुलक्षणों तथा कष्टों के निवारण की आशा की जा सकती है जैसे—द्विदल कपाटीय संकीर्णता, कपाटिक-फुफ्फुसीय संकोच (Valvular pulmonary stenosis) फेलौट्स-चतुष्टयत्व तथा त्रिदल कपाटीय-नीरन्ध्रता (Tricuspid atrisia)

(३) तृतीय वर्ग उन रोगों का है जिनमें निकट भविष्य में शल्यकीय प्रविधियों में और अधिक सुधार तथा उन्नति होने के पश्चात् लाभान्वित होने की आशा की जाती है जैसे—महाधमनी-फुफ्फुसाभिगा वाहिन्य-नाड़ीव्रण (aortico-pulmonary fistula), अलिन्द या निलय प्राचीरीय वैरूप्यतायें, वृहत् वाहिन्य विपर्य्यय, महाधमनीय संकीर्णता, महाधमनिक-कपाटीय-अक्षमता (aortic incompetence or insufficiency) तथा हार्दिक-वाहिनियों की विभिन्न विकारों द्वारा उत्पन्न हृदय-कार्याक्षमता (coronary insufficiency) या अपर्याप्तता।

उल्लिखित तीनों श्रेणियों में परिगणित रोगों के अतिरिक्त अनेक अन्य रोग भी हैं जिनका समावेश उन्हीं किसी वर्ग में किया जा सकता है किन्तु स्थानाभाव के कारण यहां नहीं लिखा जा सकता।

मानवीय प्रयासों के किसी भी क्षेत्र में जिसमें चिकित्सा तथा शल्यकर्म भी सम्मिलित हैं, ठीक-ठीक भविष्यवाणी करना असंभव है, उसमें भी हृदय-वाहिन्य-शल्य (cardio-vascular surgery) शाखाओं जैसे दुरूह विषय में। फिर भी हृदय एवं वृहत् वाहिन्य शल्यकर्मों के भावी विकास में अंशदान या संभावित योगदान देने वाले कारकों (factors) का मूल्याङ्कन एवं विचार करना संभव तथा वांछनीय होने के कारण अत्यावश्यक है।

हार्दिक शल्य के भावी विकास की चार आधार-शिला हैं

१—चिकित्सकों द्वारा इस वास्तविकता का

अनुभव किया जाना कि अनेक हृदय-वाहिन्य-विकार या व्यतिकार निरापद एवं कुशल शस्त्रोपचार द्वारा साध्य होते हैं।

२—और अधिक निदानात्मक साधनों, यन्त्रों तथा शल्योपकरणों की उपलब्धि, उपार्जन या प्राप्ति।

३—नूतन एवं विशिष्ट शल्यात्मक प्रविधियों का आविष्कार तथा वर्त्तमान विधियों की परिष्कार तथा परिमार्जन एवं विकास।

४—आवश्यक शल्यकीय प्रविधियों के प्रयोग-सिद्धि निमित्त वांछनीय सुसंयोजित, दक्ष एवं प्रवीण कार्य-कुशल शल्यकर्त्ताओं की सामूहिक-सङ्गठन तथा विकास। अब हम इनमें प्रत्येक पर अलग-अलग विचार करें।

१-प्रथम—

अन्य व्याधियों के सदृश हृदय-वाहिन्य-व्याधियों में भी साधारण चिकित्सक ही सम्पूर्ण चिकित्सा-व्यवस्था एवं संरक्षण के पृष्ठाधार स्तम्भ हैं क्योंकि सामान्यत: वे ही प्रथम चिकित्सक होते हैं जो रोगी की सर्वप्रथम परीक्षा या उपचार करते हैं। अतएव गम्भीर हृदय-वाहिन्य व्याधियों को प्रारम्भमान अवस्था में अत्यावश्यक एवं वांछनीय समुचित निदान—(सम्भवत: जब रोगी आलक्षणिक अवस्था (Asymptomatic stage) में ही हो) उन्हीं पर आश्रित है, जिससे कि शल्योपचार द्वारा होने वाले सम्भावी फलों का अविलम्ब उचित गुणावगुण तथा मूल्याङ्कन कर चिकित्सा-व्यवस्था का उचित प्रबन्ध हो सके।

२—भावी निर्माण तथा विकास का द्वितीय स्तम्भ "अचूक एवं निश्चित निदान" है। विगतकाल के सदृश "आमवात" या "आमवातज व्याधि" का निदान कर देना ही पर्याप्त नहीं होगा, क्योंकि आमवातज हृद्रोग के प्रत्येक रोगी में हृत्-कपाटों की दशा तथा अवस्था का उचित आङ्कन या अनुमान अवश्य होना चाहिए और शायद इतना भी अपर्याप्त ही होगा।

उदाहरणार्थ द्विदलकपाटीय व्याधिवर्णन प्रसंग-वश इस क्षेत्र में होने वाले सभी परिवर्तनों का वर्णन कर यह निर्देश करना आवश्यक है कि रोग केवल शुद्ध द्विदल-कपाटीय संकीर्णता (Pure mitral stenosis) या शुद्ध (संकीर्णतारहित) द्विदल कपाटीय प्रत्युद्गिरणयुक्त संकीर्णता (Mitral stenosis regurgitation) या शुद्ध (संकीर्णता रहित) द्विदल कपाटीय प्रत्युद्गिरणता (pure mitral regurgitation)

इसी प्रकार आज केवल फेलौट्स-चतुष्टयत्व का निदान कर देना ही पर्याप्त नहीं। एतर्थ जन्मगत-फौफ्फुसीय-अवरोध (Congenital pulmonary obstruction) के निश्चित या यथार्थ कारण तथा प्रकृति का–जैसे दोष यथार्थ रूप से फौफ्फुसीय कपाट में ही या दक्षिण-अलिन्द के निकास मार्ग या प्रवाह पथ में अवस्थित किसी निकटस्थ अवयव या अन्यत्र कहीं अवस्थित है, इसका निश्चित निदान करना अत्यावश्यक है।

अलिन्द या निलय प्राचीर में अचूक स्थान निर्देशन कर (Localising accurately) इस सिरा-धमनी-पार्श्वायन (Venous-arterial shunt) का यथार्थ रूप तथा प्रकृति विनिश्चयन आवश्यक है। अन्य अवस्थाओं में भी इसी प्रकार विभेद करना चाहिए।

ज्यों-ज्यों शल्यकीय प्रविधियों का और अधिक विकास एवं विस्तार हो रहा है त्यों-त्यों हृदय एवं वृहत् वाहिनियों के अधिकतम जटिल वैरूप्यताओं तथा व्याधियों की, यथार्थ एवं अचूक निदान की परमावश्यकता परिलक्षित होती जा रही है और इसी का अचूक निदान केवल अत्यन्त सावधानी एवं सतर्कतापूर्वक रोगी के शय्यास्थानिक अध्ययन-मनन तथा रोगवृत्तान्त, दैहिक लक्षणपुञ्ज, परीक्षागारीय-परीक्षा (Laboratory investigations) या अनुसन्धान तथा एक्स-रे परीक्षा के फलों की प्रज्ञानिक विवेचन द्वारा ही सम्भव है।

आवश्यकतानुसार कुछ आतुरों में हृदय-वाहिन्य चित्रण या आलेखन (Angiocardiography) का प्रयोग वांछनीय हो सकता है।

प्रमाणित, जटिल अचूक प्रविधिओं द्वारा सम्पादित हृदय-शालावयण (cardiac eatheterization) का अनुभवी शल्यतन्त्रक द्वारा सम्पादित किया जाना सामान्यतः अनेक रोगियों में आवश्यक या वांछनीय हो सकता है। दुर्भाग्यवश हृदय-वाहिन्य-शल्य की प्रगति तथा विकास के साथ-साथ आवश्यक शल्यकीय प्रविधियों तथा उपकरणों की जटिलता भी बढ़ती जा रही है।

नूतन शल्यकीय-प्रविधियों का सूत्रण या व्यवस्थापन तृतीय आधार स्तम्भ है जिस पर हृदय-वाहिन्य शल्य की भावी स्थैतिक-सम्भाव्यता अवलम्बित है।

प्रसगंवश यहां एक अति महत्वपूर्ण विषय--शरीरोष्माहरण विधि (Hypothermia) या तापाहरण विधि की चर्चा की जा सकती है।

हृदय-फुफ्फुस-पार्श्ववाहन-यन्त्रकला (Mechanical devices for by-passing heart and-lungs) का अभियन्त्रणकलोन्नयन या यान्त्रिक विकास द्वारा शीघ्र ही विकसित होकर ऐसे यन्त्रों तथा साधनों के निर्माण की आशा है जिनकी सहायता से शीघ्र ही शल्यकर्त्ता रक्तशून्य मानव हृदय पर आवश्यकता तथा इच्छानुसार विलम्बित या द्रुतिगति से कार्य कर सकेंगे।

कुछ व्यक्तियों का यह विचार या अनुमान है,, कि रोगी के प्राण को विपत्ति में डाले बिना ऐसा कर सकना अत्यन्त कठिन, दुरूह या असम्भव ही है किन्तु सफलता प्राप्ति के पश्चात् ये ही लोग कहने लग जायेंगे कि ऐसा कर सकना तो प्रत्यक्ष सरल तथा सम्भव था।

डा॰ गिब्बन एक यान्त्रिक-हृदय-फुफ्फुस उपकरण (Mechanical heart-lung apparatus) की सहायता से एक युवती रुग्णा के हृदय एवं फुफ्फुस का लगभग ३० मिनट तक पार्श्वायन कर एक हृदयान्तरिक शल्यकर्म (Intracardiac operation) करने में सफलीभूत हुए थे। रुग्णा शस्त्रकर्म को भली-भांति सहनकर आज भी स्वस्थ्य तथा जीवित है। अतएव यह सिद्ध होगया कि ऐसा पार्श्वायन सम्भव तथा साध्य है। आवश्यकता अब केवल सम्बद्ध प्रविधियों के ऐसे सुधार एवं विकास की रह गयी है जिससे वे पूर्णरूप से सुरक्षित तथा निरापद हो जाय।

अनन्तः हृदय-वाहिन्य-शल्य की भावी उन्नति एवं विकास के निमित्त अतिविशिष्टकृत विज्ञजनों की एकत्रित या सामूहिक संगठित सहकार्यता एवं वर्गगठन आवश्यक है। अब केवल एक प्रमुख शल्यकर्त्ता के ही वश की बात नहीं।

अब भी वह शल्यक्रिया में प्रमुख व्यक्ति के स्थान पर विद्यमान एवं प्रतिष्ठित होता है किन्तु केवल उस समुदाय के एक विशिष्ट सदस्य के रूप में ही, जिसमें कदाचित् हृद्-विशेषज्ञ, संज्ञालोपक या सम्मोहक (anesthetist), क्रियाशरीर-विज्ञ (physiologist) बालरोग-विज्ञ (pediatrician) तथा एक्स-रे-शास्त्र वेत्ता (Radiologist) भी सम्मिलित होते हैं।

इस सम्मिलित वर्ग के संकालीय एवं सन्निहित प्रयत्नों (Synchronised effort of this team) या सहकारिता द्वारा प्रदत्त योगदान के फलस्वरूप प्रतिफलित सिद्धि से ही निरापद निःशंक एवं सुरक्षित रूप से आधुनिक हृदय-वाहिन्य-शल्यकीय-प्रविधियों का निर्विघ्न एवं कुशलपूर्वक सम्पादन होता है।

केवल प्रत्येक सम्बद्ध व्यक्तियों द्वारा प्रदत्त इसी प्रकार के सहयोग एवं सहकारिता के परिणामस्वरूप ही ऐसे रोगियों को जो इस समुदाय को निश्चिन्ततापूर्वक निज जीवन, सुरक्षा एवं सर्वस्व सौंप देते हैं। आशा, प्रतीति, आश्वासन तथा सहारा दिया जा सकता है।

मसूरिका (चेचक) और उससे बचने के उपाय

लेखक—श्री० रामेश्वर दयाल अग्निहोत्री वैद्य, लखीमपुर (खीरी,)

प्रचलित नाम--मसूरिका, शीतला, चेचक, देवी, छोटी माता, बड़ी माता।

परिचय—

यह एक तीव्र संक्रामक रोग है जो देश के भिन्न भिन्न प्रदेशों में उष्ण-काल में महामारी के रूप में प्रकट होता है तथा हजारों लाखों प्राणियों को काल कवलित करता है। यह आबाल वृद्ध सभी को होता है किन्तु अधिकांश रूप में बालक तथा नवजात शिशु ही इसके शिकार बनते हैं।

कारण—

किन्हीं-किन्हीं का मत है कि इस रोग का कारण निष्यन्दनशील जीवाणु है। किन्तु कुछ विद्वानों का मत है कि इसके उत्पत्तिकर्ता सूक्ष्मदर्शक से देखे जाने वाले जीवाणु हैं। किन्तु इस विषय में अभी तक इसके जीवाणु का ठीक-ठीक निर्णय नहीं हुआ है।

आयुर्वेद मतानुसार अधिक कड़ुये, तीखे, अधिक नमकीन, क्षार तथा क्षारयुक्त पदार्थों को खाने से विरूद्ध आहार-विहार (यथा मछली-दूध के साथ-साथ प्रयोग, शीतल तथा गरम पदार्थों के साथ-साथ प्रयोग आदि) एक भोजन पचा नहीं उसके ऊपर पुनः भोजन करना, दूषित शराब, सड़ी हुई साग-सब्जी, विषैले पदार्थों के सम्पर्क से दूषित वायु तथा जल के सम्बन्ध से और देश के दुष्ट ग्रहों की दृष्टि से वातादि दोष कुपित होकर रक्त को दूषित कर शरीर में मसूर के दाने के आकार की फुंसियों को उत्पन्न करते हैं (मसूरा कृति संस्थानः पिडिकास्ता मसूरिका) उन्हें मसूरिका कहते हैं।

आयुर्वेद शरीर धारण के लिए तथा रोग का उत्पत्तिकर्ता वात पित्त तथा कफ को मानता है इन्हीं पर उसकी नींव है। इनकी साम्यावस्था को आरोग्यावस्था तथा विषमावस्था को रोग का कारण माना है। स्वस्थावस्था का परिचय देते हुए हमारे ऋषियों ने लिखा है, समदोष समाग्निश्च समधातु मलक्रिया प्रसन्नात्मेन्द्रिय मनः स्वस्थ इत्यभिधीयते अर्थात् जिसके दोष (वात पित्त कफ) सम है, धातुयें सम हैं, अग्नि सम है तथा जिसकी इन्द्रिय तथा मन प्रसन्न हैं वह व्यक्ति स्वस्थ है। वात पित्त कफ साम्यावस्था में रहने से शरीर को धारण करते हैं अतः धातु कहे जाते हैं विषमावस्था में रोगोत्पादक हैं अत दोष कहे जाते हैं।

मसूरिका के लिए आयुर्वेद ने इसके वातज, पित्तज, कफज, सान्निपातिक, रसगत, रक्तगत, मांसगत, मेदगत, अस्थिगत, मज्जागत, शुक्रगत आदि भेद किये हैं। इसमें एक त्वचागत भी है। लेख बढ़ जाने की आशंका से सभी के प्रथक्-प्रथक् भेद कहां तक लिखूँ जिज्ञासु पाठकगण आयुर्वेद ग्रन्थों में देख सकते हैं। अतः केवल साध्य-असाध्य का संकेत मात्र कर रहा हूँ।

त्वचागत, रक्तगत, पित्तगत, कफज, कफज-पित्तज मिश्रित यह बिना उपचार के भी सम्यक् देख भाल करने से अपने आप शांत हो जाती हैं। वातज, वातपितज-मिश्रित, वात-कफज मिश्रित कष्टसाध्य हैं।

सान्निपातिक मसूरिका असाध्य है जोकि प्रवाल के समान लाल रङ्ग अथवा जामुन के रङ्ग की अथवा लोह के रङ्ग की अथवा अलसी के फूल के रङ्ग की आदि सम्मिलित दोषों के प्रकोप से जिस रोगी में मसूरिका के साथ-साथ हिचकी, मोह, तीव्रज्वर, प्रलाप, मूर्छा, बेचैनी, अधिक प्यास, दाह जिसके मुख से नाक से नेत्रों से रक्त निकलता हो, श्वास लेने में घुर-घुर शब्द हो, उर्ध्वश्वास हो ऐसा रोगी नहीं बच सकता। तथा मसूरिका के अन्त में कूर्पर संधि (कोहनी) पर या अंसफलक (कन्धे के पीछे) शोथ उत्पन्न हो जावे तो ऐसा रोगी भी असाध्य है।

मसूरिकाऽन्ते शोथ स्यात्कूपरे मणिबन्धके तथांऽस-फलके वापिदुश्चिकित्स्यः सुदारुणः ।

—भाव० प्र० मसूरिकाधिकार ३१ ।

पाश्चात्य वैद्यक के अनुसार अभी तक इस रोग के जीवाणु का ठीक-ठीक ज्ञान नहीं हुआ है फिर भी कई विद्वानों का कहना है कि मसूरिका को उत्पन्न करने वाला अति सूक्ष्म जीवाणु है जो पिडिकाओं के पीव में तथा उनके खुरण्डों में उपस्थित रहता है और वही अन्य व्यक्तियों में पहुँच कर रोग उत्पन्न करता है। यह तीव्र संक्रामक (छुआ-छूत) का रोग है रोगी को छूना विस्फोटों से दूषित रूमाल कपड़े तथा परिचारकों आदि के हाथ वस्त्र द्वारा यह रोग प्रसार पाता है। सूखे खुरण्ड उड़-उड़ कर वायु द्वारा रोग प्रसार में सहायक होते हैं। इस विषय में पाश्चात्य वैद्यक मतावलम्बी जिस जीवाणुवाद के सिद्धांत को लेकर अपने को विज्ञान की चरम सीमा पर पहुँचा हुआ समझते हैं तथा आयुर्वेद को अवैज्ञानिक घोषित करने में भी नहीं हिचकिचाते उन महानुभावों की इस खोज को हमारे ऋषियों ने हजारों वर्ष पूर्व ही जान लिया था। पाठकों के दर्शनार्थ महर्षि सुश्रुत के कुछ शब्द इस प्रसङ्ग में दे रहा हूँ।

प्रसंगात् गात्रसंस्पर्शात् निश्वासात् सहभोजनात् ।
सहशय्या सनाचापि वस्त्र माल्यानुलेपनात् ॥
कुष्ठम् ज्वरश्च शोषश्च नेत्राभिष्यन्द एव च ।
औपसर्गिक रोगाश्च संक्रामन्ति नरान्नरम् ॥

सुश्रुत निदान स्थान ५।३३।३४

दर्शनात् स्पर्शनात् दानात् संक्रामन्ति नरान्नरम् ।
उरश्नेत्र नासा रन्ध्रानुगतेन वायुना कास श्वास-प्रतिश्याय शिरोरुज त्वगिन्द्रिय गतेन ज्वर मसूरिकादय ।

—सु०—सूत्रस्थान ।

सम्प्राप्ति—इसका जीवाणु रक्त में संचार करता हुआ त्वचा के नीचे बैठ जाता है। जहां-जहां पर यह बैठते हैं वहां-वहां की सेलें रक्तमय तथा शोथयुक्त हो जाती हैं त्वचा पर हाथ लगाने से त्वचा के नीचे छोटी-छोटी मसूर के आकार की ग्रन्थियों का ज्ञान होता। फिर इनमें तरल भर जाता है, जिससे यह छोटे-छोटे छालों के समान प्रतीत होती हैं। कुछ काल पश्चात् यह तरल पीवमय हो जाता है। कभी-कभी स्फोट फटते हैं अधिकतर पीव जम कर खुरण्ड पर कई दिनों तक लगी रहती हैं, तरल पीव और खुरण्ड में इसके जीवाणु अधिक होते हैं इन्हीं से रोग प्रसार होता है। जब तक अन्तिम खुरण्ड उखड़ न जावे रोगी से रोग फैलने का भय बना रहता है।

परिपाक काल—१० से १४ दिन,

सीमा—५ से १० दिन,

लक्षण—

प्रायः शीत लगकर अचानक यह ज्वर बढ़ जाता है, ज्वर आरम्भ से ही तीव्र होता है, शिर तथा कमर में दर्द, उल्टी (वमन) एवम् भोजन से अरुचि होती है, रोगी शीघ्र ही बलहीन होकर खाट पकड़ लेता है। कभी-कभी दूसरे दिन शरीर पर छोटी-छोटी पिडिकायें निकल आती हैं। यह एक या दो दिन रह कर मिट जाती हैं, इसके पश्चात् अर्थात् चौथे दिन वास्तविक पिडिकायें निकल आती हैं। पहले पहल मुख, कलाई, मस्तक आदि खुले अङ्गों पर निकलती हैं जो स्थान वस्त्रों से सदा आच्छादित रहते हैं ऐसे स्थानों पर कम निकलती हैं। कभी-कभी नाक आंख मुख गुदा आदि की श्लैष्मिक कला पर भी निकल आती हैं। साधारणतः पिडिका निकलने के ४८ घण्टे बाद उनमें पूय पड़ जाती है और वह उलटे हुये छालों के समान दीखने लगती है। इनके आस-पास के स्थान दृढ़ तथा लाल होते हैं, जब पिडिकायें निकलने लगती हैं तो ज्वर कम होने लगता है और जब छाले बनने लगते हैं तो बहुत कम हो जाता है। छाले बनने के ४८ घण्टे बाद यानी सातवें दिन उनमें पीव पड़ जाती है। पीवमय पिड़िकायें उभरी हुई तथा पीव के कारण चमकती हुई दिखाई देती हैं। इनका आधार दृढ़ तथा आस-पास का स्थान शोथ-युक्त रहता है। यदि स्फोट बहुत से हों और इकट्ठे हों तो समस्त शरीर सूजा हुआ तथा लाल दिखाई देता है। ज्यों ही पूय पड़ने

लगती है त्यों ही ज्वरादि तीव्र हो जाते हैं। इस समय रोगी को विशेष कष्ट होता है, स्फोटों के कारण बिल्कुल हिल डुल नहीं सकता-यदि स्फोट मुख नासा तथा नेत्र की श्लैष्मिक कला पर हों तो उसे बोलने खाने-पीने तथा आंख झपकाने में भी कष्ट होता है। स्फोटों के पक जाने पर रोगी के पीव से दुर्गन्ध आने लगती है। स्फोटों के पूर्णतः पक जाने पर शिखर बैठने लगते हैं और शिखर मध्य में पिचके हुये प्रतीत होते हैं, यह अवस्था नवें दिन उत्पन्न होती है।

११ वें दिन स्फोट शुष्क होने पर खुरण्ड जमने लगते हैं अथवा फटने लगते हैं ज्वर कम होने लगता है तथा अन्य लक्षण भी कम होने लगते हैं। ३-४ दिन में रोगी शान्ति अनुभव करने लगता है परन्तु खुरण्ट कई दिन बाद तक धीरे-धीरे उतरते रहते हैं। इनके उतरने के बाद प्रायः मुख पर गढे पड़ जाते हैं यदि यह गढ़े गहरे हों तो आजीवन बने रहते हैं अन्यथा शीघ्र या देर में भर जाते हैं या मिट जाते हैं यदि आंख की कनीनिका पर स्फोट बना हो तो आंख में फूला पड़ जाता है।

इस रोग में लक्षण बहुत तीव्र होते हैं रोगी अति दुर्बल हो जाता है कोष्ठबद्धता रहती है नाड़ी भरी हुई और तीव्र होती है ज्वरादि लक्षणों की तीव्रता के साथ-साथ प्रलाप कभी-कभी नींद न आना आदि उपद्रव होते हैं ३०-४० प्रतिशत रोगी काल कवलित होते हैं, पिडिकाओं का न निकलना या कम निकलना एक भयानक लक्षण है बाल्यावस्था में मृत्यु अधिक होती है। टीका लगवाये हुए रोगियों में मृत्यु संख्या बहुत कम होती है।

भेद

१—मृदु शीतला (Vairioloid modified)

कभी-कभी विशेषकर टीका लगाये हुये मनुष्यों में यह रोग बहुत मृदु होता है। शरीर पर केवल थोड़ी सी पिडिकायें मिलती हैं और ज्वरादि लक्षण भी कम होते हैं।

२—मिथ्या शीतला (Vairiola minor)—

कई बार शीतला से मिलता-जुलता एक रोग होता है जिससे ज्वर और पिडिकायें शीतलावत् होती हैं परन्तु वेग कम होता है, जिनको एक बार शीतला होचुकी हो या जिन्होंने टीका कराया हो उन्हें भी यह हो जाती है। सम्भवतः यह शीतला से पृथक् कोई रोग है। ज्वर सातवें दिन उतर जाता है।

३—अन्योन्या व्यापी शीतला (Confluent)—

शरीर पर पिडिकायें अत्यधिक होती हैं, यहां तक कि यह एक दूसरे से व्याप्त हो जाती हैं। यह अति भयानक अवस्था है। इसमें ६० प्रतिशत रोगी मर जाते हैं।

४—रक्तस्रावी शीतला (Haemorrhagic)—

इसमें स्फोटों से तथा उनके इतस्ततः रक्तस्राव होता है जिससे कुछ कृष्णाभ प्रतीत होते हैं। यह भी अति भयानक है, इसमें भी रोगी मर ही जाते हैं।

५—कृष्णमसूरिका (Black, purpuric)—

जिसके टीका नहीं लगा है ऐसे युवा मनुष्यों में कभी-कभी दिखाई पड़ती हैं, यह भयङ्कर है। उपद्रव शिरदर्द, वमन, अतीव कृशता, पीठ तथा कमर में दर्द आदि आक्रमण काल में होते हैं। ज्वर लगभग १०२° होता है। दूसरे दिन कभी-कभी २४ घण्टे के अन्दर ही शरीर पर रक्तवर्ण की फुंसिया निकलती हैं। मुख तथा नेत्र लाल होते हैं। सारे शरीर में जलन होती है। तीसरे दिन नाक, शिश्न, गुदा तथा आमाशय आदि के श्लेष्मलकला से रक्तस्राव होने लगता है।

इसमें वास्तविक विस्फोट जब निकलते हैं तब संख्या में कम तथा अप्रगल्भ होते हैं। तीव्र विषमयता रक्तनाश तथा रक्तस्राव के कारण रोगी की मृत्यु विस्फोट निकलने के दूसरे अथवा तीसरे दिन अधिक से अधिक छटे दिन होजाती है।

इसप्रकार पाश्चात्य वैद्यक में इन पांच प्रकारों के अतिरिक्त ४ प्रकारों का और वर्णन है यथा—१-सौम्य २-असम्मिलित (Disrete) ३-सम्मिलित (conflunt) ४-कृष्ण मसूरिका (Black small

pox) ५—रक्तस्रावी मसूरिका (Variola Haemorrhagica) ६—मृदु मसूरिका (Modified small pox) ७—अप्रगल्भ प्रकार (alortive) ८—क्षुद्र मसूरिका (alastrim variola minor) ९—गार्भिणी मसूरिका (Foetal) आयुर्वेद ने रोमान्तिका को लेकर १३ भेद किये हैं। पाश्चात्य वालों ने रोमान्तिका का पृथक् वर्णन किया है जिसे कि अगले अङ्क में पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत करूंगा।

उपद्रव—

फुफ्फुस प्रदाह, तीव्र कास, विसर्प, सन्धि-शोथ, नेत्ररोग आदि।

चिकित्सा

चिकित्सा के मुख्य तीन उद्देश्य हैं :—

१—प्रथम कर्तव्य प्राणों की रक्षा करना है। प्रतिरोधक टीका (Vaccination) ही सर्वप्रथम और सर्वश्रेष्ठ साधन है। औपसर्गिक रोगों में मसूरिका ही एक ऐसा रोग है जो किसी को भी क्षमा नहीं करता। प्रत्येक व्यक्ति देश, काल, लिंग, वय, व्यवसाय, वंश तथा जाति पर अपना प्रभाव दिखाता है। टीका से क्षमता उत्पन्न की जाती है। टीका का प्रभाव ७-८ वर्ष तक रहता है। टीका लगवाने के बाद यदि इसका आक्रमण होता है तो मृदु होता है। अधिक क्षमता उत्पन्न करने के लिये ७-८ वर्ष बाद पुनः टीका लगवाना चाहिये।

२—रोग मुक्ति के बाद अनेक स्थायी विकार शरीर में रह जाते हैं। यह विकार न रहने पावें यह दूसरा उद्देश्य है। विकार यथा नेत्र में शुक्ल या अन्धापन, बहरापन, कण्ठ से शोथ कण्ठ-कर्णगी नाली द्वारा मध्य कर्ण में पहुँच जाती है और वहां की अस्थियां गल कर गिर जाती हैं, परिणाम स्वरूप व्यक्ति सदा के लिये बहरा हो जाता है।

३—उपस्थित कष्टों तथा उपद्रवों का निवारण, तीसरा उद्देश्य है यथा खुजली, पीड़ा, विषमयता तथा विषमयता से उत्पन्न हृदय-कार्यावरोध, रक्तसंचार शिथिलता, कनीनिका व्रण आदि।

प्रतिरोधक चिकित्सा—

मसूरिका अति तीव्र संक्रामक रोग है। रोग निदान होते ही रुग्ण-व्यक्ति को अन्य व्यक्तियों से पृथक् कर दें। जब तक उसके शरीर पर से अन्तिम खुरण्ट उतर नहीं जाते तब तक प्रसार का भय रहता है। जब कभी घर में या पड़ौस में किसी के शीतला होजावे तो घर में सबको तत्काल शीतला का टीका लगवा लेना चाहिये।

परिचर्या—

इस रोग की वास्तविक चिकित्सा समुचित परिचर्या ही है। प्राण रक्षा का यही प्रधान साधन है। रोगी को पृथक् कमरे में रक्खें, परिचारक के अतिरिक्त उसके पास कोई अन्य व्यक्ति न जाने पावे। घर का बालक तो कोई निकट भी न फटकने पावे। रोगी के पहनने के कपड़े, बिस्तरे की चादर तथा अन्य जो भी वस्त्र रोगी के सम्पर्क में आवें उसे बिना कृमिहीन किये कमरे के बाहर न जाने दिया जावे। उन्हें किसी कृमिघ्न विलयन यथा लाइसोल लोशन, कार्बोलिक लोशन, डी. डी. टी. लोशन में आधा घण्टा सींचकर रखना चाहिये।

रोगी के रहने का निवास हवादार हो, किन्तु वायु के झोंके रोगी को सीधे स्पर्श न करें यह ध्यान रखना चाहिये। सेवा में पवित्रता का अधिक प्रबन्ध करना चाहिये। पवित्र साफ सुथरे स्थान पर रखना चाहिये, साफ सुथरे वस्त्र का व्यवहार करना चाहिये, कमरे में धूपन करने के लिये सुगन्धित द्रव्यों को जलाना चाहिये। रोगी के कमरे में किसी भी प्रकार की अपवित्रता नहीं होनी चाहिये स्वयं किसी भी अशुद्ध व्यक्ति का प्रवेश निषिद्ध है कारण किसी प्रकार से रोगी को अपवित्रता का स्पर्श न हो इससे व्याधि बलवती होती है तथा जीवन मरण का प्रश्न उपस्थित होता है।

कमरे में धूप की ओर तथा झरोखों पर लाल वस्त्र लटका देना चाहिये; इस बात का ध्यान रहे कि उस

की छाया रोगी पर पड़ती रहे कारण कि सूर्य की लाल रश्मियां इसमें लाभप्रद कही गई हैं।

शीतल वस्तुओं का प्रयोग करें, पङ्खा करने के लिये पत्तों सहित नीम की टहनी का प्रयोग करें, घर में तथा रोगी के समीप मिर्च मसाले तथा तैल युक्त पदार्थों को न बनावें, रोगी को पीने के लिये ज्वर की अवस्था में भी औटाया हुआ जल न देकर शीतल ताजे जल ही का प्रयोग करें। मुख को मुलेठी के काढ़े तथा शहद से साफ करना चाहिये। आंख को टङ्कण घोल (बोरिक) से साफ करना चाहिये, नाक को साफ करते रहें तथा किसी प्रकार का चिकना तरल पदार्थ सुंघाते रहें ताकि खुश्की न होने पावे।

स्थानिक चिकित्सा में सौ बार धुला (शतधौत) घृत दानों पर लगावें, स्फोटों में स्राव और पाक अधिक हो तो जङ्गली उपलों की राख छिड़कें, जब दानों में पीप पड़ जावे तो वैसे ही छोड़ दें अथवा ५।१० प्रतिशत कार्बोलिक घोल का प्रयोग करें (लेपन करें) जब दाने सूख जावें, उनमें खुरण्ट निकलने लगे तो साबुन आदि से धोकर बाद में कपूर मिला हुआ गरी का तैल अथवा ग्लीसरीन अथवा चन्दनादि तैल लगावें।

खुजली—

जब पिडिकाओं में पीव पड़ने लगती है तब जोरों की खुजली चलती है। रोगी को खुजलाने से मना करना चाहिये। किन्तु वयस्क व्यक्ति भी मना करने पर जब नहीं मानते ऐसी अवस्था में बालकों का तो कहना ही क्या। ऐसी अवस्था में रोगी के हाथों पर थैली चढ़ा देना चाहिये अथवा हाथों को चारपाई से बांध देना चाहिये। खुजली को कम करने के लिये प्रातः सायम् दिन में दो बार जात्यादि तैल अथवा पञ्चगुण तैल लगाना चाहिये। तैल शनैः शनैः सावधानी से कपड़ा के फाहे से प्रति पिडिका पर लगाना चाहिये पिडिकाओं पर तैल लगाने से खुजली कम होती है। खुरण्ट उतरने के बाद गड्ढे नहीं पड़ते और दाग भी नहीं रह जाते हैं तथा दुर्गन्धि भी दूर होती है।

लाक्षणिक चिकित्सा में पिडिकायें समुचित रूप से निकलनी चाहिये। ज्योंही शीतला का संदेह हो अन्यथा ज्योंही पिडिकायें निकलनी प्रारम्भ हों तत्काल निम्न लिखित कोई सा उपचार करना चाहिये।

१—रससिन्दूर १ रत्ती, शृङ्गभस्म ४ रत्ती ऐसी ४ मात्रा, हर ४-५ घण्टे बाद ४ बार मधु से, ६ माह के बालक के लिये चौथाई मात्रा।

२—मुनक्के ४-५ दाने बार-बार खाने को दें यदि बालक न खा सके तो मुनक्के का क्वाथ दें।

आधी रत्ती कस्तूरी अवस्थानुसार दिन में दो बार दूध में मिला कर दें।

४—दूध में अथवा मुनक्के में केशर का प्रयोग करावें।

उपरोक्त औषधियां जब तक पिडिकाओं में तरल न भर जावे देते रहना चाहिये। उनसे जितनी पिडिकायें निकलना चाहिये पूर्ण रूप से निकल आती हैं। पिडिकाओं का कम निकलना या न निकलना भयावह है। जिन रोगियों में पिडिकायें नहीं निकलतीं उन्हें विषमयता अति तीव्र होजाती है। ऐसे रोगी तीसरे से पांचवें दिन तक महा-प्रस्थान कर जाते हैं।

अक्षिव्रण—

यदि आंखों में पिडिकायें तथा व्रण हो जावें तो टेरामाइसीन या पेन्सिलीन-आई-आइण्टमेण्ट का प्रयोग करें, कम से कम दिन में दो बार।

कण्ठ-व्रण—

में पञ्चगुण तैल अथवा मेण्डाल्स-थ्रोटपेण्ट प्रतिदिन लगाते रहें। तथा पेन्सिलीन लाजेंज, खदिरादि वटी, लवङ्गादि वटी, कपूरादि वटिका आदि यथा लाभ चूसने को दें।

पिडिकाओं द्वारा संक्रमण शरीर के अन्दर न जावे इसको रोकने के लिए पेन्सिलीन व स्ट्रेप्टोमाइसीन का प्रयोग छठे दिन से प्रारम्भ कर ग्यारहवें दिन तक करना चाहिये। रोग शान्ति के बाद क्षीणता तथा

—शेषांश पृष्ठ ८८१ पर देखें।

आवरण रक्तस्राव

(स्कर्वी Scurvy)

लेखक—कविराज पं० दीनदयाल सौभरि प्रभाकर, भिषगाचार्य धन्वन्तरि D. A. M. S. (Hons)

व्याख्या—

यह एक असंतुलित भोजन से उत्पन्न रोग है। शरीर को नित्यप्रति स्वस्थ्य रखने के लिये जिस प्रकार भोजन के वसायुक्त, प्रोटीन, कार्बोहाइडेट्स,जल एवं नमक युक्त होने की आवश्यकता है उसी प्रकार कुछ जीवनीयगणों के सेवन की भी नितान्त आवश्यकता है। उन्हीं जीवनीयगण में से जीवनीय 'स' (Vitamin c) की भोजन में लगातार कमी से कुछ ऐसे लक्षण उपस्थित हो जाते हैं, जो चिकित्सक को अन्य रोगों के भ्रम में डाल देते हैं। अतः इस रोग से सम्बन्धित लक्षण उपस्थित होने पर निदान पर तुलनात्मक दृष्टि से विचार करते समय इस रोग का भी ध्यान रखना आवश्यक है।

यह एक रोगी को कृशकाय करने वाला मसूड़ों से रक्तस्रावयुक्त त्वचा तथा अस्थ्यावरण के नीचे रक्तस्राव के लक्षणों वाला रोग है। इसमें रक्त में कोई विशेष परिवर्तन दृष्टिगोचर नहीं होता।

कारण—

जैसा ऊपर कहा जा चुका है, यह एक भोजन में जीवनीय की कमी से उत्पन्न होने वाला रोग है। जो हरी शाक सब्जियों, फलों के ताजे रसों में पाया जाता है। यह पानी में हल हो जाता है। खारी व नमकीन तथा उष्णता से नष्ट हो जाता है। अतः हरे शाकों को अधिक भूनने या सोडा मिला कर पकाने से नष्ट हो जाता है। फलों में नीबू, नारंगी, अनार आदि में अधिक व दूध माँस आदि में कम होता है। शाकों में सबसे अधिक गोभी और प्याज में होता है। कम क्रमशः शलगम, टमाटर, कचीमटर, लोबिया, आलू, गाजर, चुकन्दर, अंगूर, माँसरस व दूध में होता है।

यह जीवनीय डिब्बों में बन्द भोजन, दालों व अनाजों में नहीं पाया जाता।

अतः जो लोग दाल रोटी व माँस आदि पर ही रहते हैं तथा ताजे फल व हरे शाक नहीं खाते उनमें यह रोग अधिक होता है। भारतवर्ष, पाकिस्तान में यह रोग इसीलिए अधिक देखा जाता है। ग्रामों में ५० प्रतिशत लोग इसके प्रारम्भिक लक्षणों से रुग्ण देखे जाते हैं। प्राचीन काल में मनुष्य इससे कम रुग्ण होते थे। क्योंकि उनका भोजन शाकाहार था, वे कन्दों, व मूलों को अपना मुख्य भोजन समझते थे। और गरीब लोग भी गाजर, मूली, शकरकन्द, नीबू, अमरूद आदि फलों तथा बथुआ, पालक, लोकी तोरई आदि शाकों का खूब प्रयोग करते थे, किंतु लगभग २५-३० वर्ष से लोग इन वस्तुओं का प्रयोग अपनी शान के विरुद्ध समझने लगे तथा संतरा अनार आर्थिक या स्थानिक परिस्थितियों-वश मिलते नहीं। अतः रोग व्यापक हो गया है।

भेद

उम्र के अनुसार तथा कुछ लक्षण भेद से इसके दो वर्गीकरण किये गये हैं। (१) शिशुओं का आवरण रक्तस्राव (२) वयस्क आवरण रक्तस्राव।

शिशुओं का आवरण रक्तस्राव

(Infantile scurvy)

आयु—यह ८ माह से १२ माह के शिशुओं को अधिक होता है। ऐसे बच्चे जिन्हें मां के दूध के स्थान पर ऊपरी दूध या डिब्बों के दूध पर रखा जाता है अधिक रुग्ण होते हैं।

शारीरिक परिवर्तन—रक्त-केशिकाओं में रक्ताधिक्य होजाता है। प्रथम अस्थ्यावरण के नीचे रक्तस्राव होता है। लम्बी अस्थियां विशेष आक्रान्त होती हैं

अस्थि उपान्त पृथक् होजाते हैं और कभी-कभी अस्थियों का विश्लेष हो जाता है। मृदु अस्थियों में स्रोत सामान्य अवस्था से कम होजाते हैं । फुफ्फुसों में अवरोध उत्पन्न हो जाता है । आन्त्र व वृक्कों में भी रक्तस्राव होने लगता है।

अव्यक्तिकाल—

भोजन में लगातार ६ से ८ मास तक जीवनीय "स" की अनुपस्थिति रहने के उपरान्त लक्षण प्रकट होते हैं।

लक्षण—

बच्चा अपने हाथ पैरों को नहीं छूने देता यदि छूयें तो चीखता है। अथवा किसी एक पैर या हाथ को नहीं हिलाता । मसूड़ों, दस्तों (टट्टी) या मूत्र से रक्त आता है। एक आंख शोथयुक्त एवं नेत्र के पास नील पड़ जाता है। बच्चा धीरे-धीरे निर्बल होता जाता है। पूंछने पर अव्यस्थित भोजन का इतिहास मिलता है। प्रथम में कुछ बालशोष के लक्षण उपस्थित मिलते हैं।

परीक्षा—

रंग पीत, एवं रक्त की कमी । तापमान कुछ अधिक लगभग १००° F. छूने पर चिल्लाता है। प्रथम के बालशोष लक्षणों के उपरान्त मुख, शरीर व तालु में रक्तस्राव से नील पड़े हुये दीखते हैं । रक्तस्राव निष्कासन केवल संक्रमित दंत के मूल से होता है। हस्त, पाद, पार्श्व की अस्थियों में पीड़ा होती है इस कारण कभी-कभी हाथ पैर नहीं हिलता और ऐसा ज्ञात होता है मानो पक्षाघात होगया है। स्वभाव चिड़चिड़ा होजाता है। दाँत ढीले पड़ जाते हैं। उर्वस्थि के निम्न सिरे पर मुख्यतया मांस में शूलयुक्त शोथ ज्ञात होता है। मुख व शाखाओं पर शोथ आजाता है। मूत्र परीक्षा करने पर अल्व्यूमिन व रक्त पाया जाता है। एक नेत्र का वर्त्मस्तम्भ पाया जाता है। क्योंकि नेत्र खात में भी रक्तस्राव हो जाता है। नाड़ी की गति निर्बल शीघ्रगामी होती है।

रक्त-परीक्षा करने पर पाण्डु के लक्षण मिलते हैं। किन्तु पट्टिकासंख्या रक्तनिष्कासन काल एवं रक्त के जमने की क्रिया सामान्य रहती है । रक्तरस में फास्फे कम होजाते हैं । एक्सरे परीक्षा में अस्थिविश्लेपण के लक्षण मिलते हैं। अस्थियों के उपान्त एवं गात्रान्त के मध्य "श्वेत रेखा" नामक डेन्स ट्रान्सवर्स शैडो (Dense transverse shadow) दिखाई देती है।

भिन्नता सूचक निदान—

निदान करते समय श्वेतरक्तता शरीर पर रक्त के धब्बे पड़ना (Purpura त्वकूरक्तस्राव) पर भिन्नता से विचार लें। अधः त्वकूरक्त-स्राव में दंतमांस आक्रान्त नहीं होता और भोजनकी अव्यस्थिति का इतिहास भी नहीं पाया जाता। श्वेत रक्तता के लिये रक्त परीक्षा करने पर श्वेताणु वृद्धि नहीं मिलती ।

अस्थिमज्जौप एवं धूसरमज्जौप में एक्स-रे परीक्षा सहायक होगी। तीव्र आमवात २ वर्ष की आयु से पूर्व नहीं होता। फिरंगज उपान्त ३ मास की आयु से पूर्व ही होता है। वर्त्मस्तंम्भ से नेत्र-खात में कोई रोगज वृद्धि एक्सरे द्वारा परीक्षा करें तथा आघात को इतिहास से ज्ञात करें।

साध्यता—आवरण रक्तस्राव (शिशु) साध्य रोग है। किन्तु शीघ्र ही चिकित्सा एवं भोजन-व्यवस्था ठीक न करने से प्राणघातक होजाता है। १ सप्ताह में चिकित्सा से स्वास्थ्य लाभ।

उपद्रव—श्वासनालकीय फुफ्फुसौप, बाल अस्थ्यौप, डिप्थीरिया, अतिसार, मध्यमकर्ण शोथ आदि।

चिकित्सा

बच्चे को डाढ़ें निकलने से पूर्व केवल माँ के या दाई के दूध पर रखे। यह न मिल सके तो ताजे गाय के दूध पर रखें।

रुग्णावस्था का निदान होते ही भोजन की त्रुटि दूर करें। दिन भर में आधा या एक सेर गाय का

धारोष्ण दुग्ध पिलायें। टमाटर, संतरा, नीबू, शलगम आदि का ताजा रस आयु-अनुसार पिलायें। यदि बच्चा एक माह के लगभग हो तो एक चाय चम्मच रस उचित है। बड़े बच्चों को भुने हुये आलू हरे शाक लाभप्रद हैं। हाथ व पैरों पर रुई लपेट दें और बच्चे को कम से कम हिलायें जुलायें। मलबन्ध न होने दें। पचन-क्रिया ठीक रखें। आवश्यकतानुसार खटिक के योग प्रयोग करें। जीवनीय 'स' की पूर्ति के लिये (Ascorbic Acid) ५० मिलीग्राम की गोलियां दिन में तीन बार दें या Ascorbic Acid के सूचीवेध प्रयोग करें। Code-liver oil का प्रयोग भी लाभदायक होता है। खटिक पूर्ति के लिये सुधापटक योग (सिद्ध प्रयोग संग्रह) का १ रत्ती की मात्रा में दिन में दो बार दें। साधारण स्वास्थ्य रक्षा व ज्वरनाश के लिये वसंतमालती व कुमारकल्याण रस में से अधी-आधी रत्ती प्रवाल-पिष्टी १ रत्ती ऐसी दो मात्रा मधु के साथ दें।

वयस्क--आवरण रक्तस्राव
(adult scurvy)

कारण—जीवनीय 'स' की भोजन में अनुपस्थिति या हीनता।

लक्षण—रोग मन्दगति 'स' बढ़ता है। रोगी निर्बल पाण्डुवर्ण तथा निष्तेज होता जाता है। खड़े होने पर चक्कर आते हैं। पिंडलियों की मांसपेशी कठिन हो जाती हैं। हाथ-पैरों में पीड़ा होती है। किंचित कारण से दंतमाँस से रक्त निकलने लगता है। नेत्र के चारों ओर काले धब्बे पड़ जाते हैं। नेत्र दृष्टि कम होजाती है। कभी-कभी रात्रान्ध उत्पन्न हो जाता है। काली पुतली पर श्वेतता आ जाती है। मुख से दुर्गन्धि आती है। कुछ समय पश्चात् मसूड़े (दंतमाँस) फूल जाते हैं। और दाँत उनके भीतर छिप जाते हैं। और दंतमाँस नीलवर्ण के हो जाते हैं और उनमें व्रण उत्पन्न होजाते हैं। अन्त में दंत अपने आप गिरने लगते हैं। शरीर पर त्वचा के नीचे मच्छरों के काटे जैसे नील पड़ जाते हैं जो वास्तव में रक्तस्राव के कारण होते हैं। यह १० या १२ दिवस तक रहते हैं फिर स्वयं नष्ट हो जाते हैं। कभी रक्तातिसार, कभी नाक से रक्तस्राव कभी रक्त वमन उपस्थित हो जाता है। यत्किंचित आघात से भी रक्त बहने लगता है। अर्थात् रक्तपित्त के लक्षण उपस्थित होते हैं। रोगी को मलबन्ध रहता है। ज्यों-ज्यों रोग बढ़ता जाता है रोगी चिन्तित हो जाता है। रक्त में रक्तकण कम हो जाते हैं। लम्बी अस्थियाँ अधिक बढ़ जाती हैं। उनमें विश्लेष उत्पन्न होजाते हैं। अन्त में रोगी को ज्वर या शोथ आदि उत्पन्न हो जाते हैं। और रोग कुरूप धारण कर लेता है।

साध्यासाध्यता—

यदि रोग की शीघ्र चिकित्सा की जाय तो रोगी शीघ्र ही आरोग्य प्राप्त कर लेता है। यदि इसके साथ दूसरे रोग हों तो देर में आरोग्य होता है।

चिकित्सा

भोजन में नमक, माँस मछली एवं बासी भोजन त्याज्य कर दें। स्वच्छ वायु एवं स्वच्छ स्वस्थवृत्त का पालन करें। हरे शाक, टमाटर, पालक, गाजर, मूली शलजम, चुकन्दर, आलू, तोरई, कद्दू, करेला, बैंगन, प्याज तथा हरे फल, सन्तरे, नारंगी, नीबू, अलूचे, अनार, सेव, नासपाती आदि खूब प्रयोग करायें।

औषधिरूप में नीबू व संतरे का स्वरस २॥ तोला प्रातः सायं थोड़ा जल मिलाकर पिलायें। यदि ताजा स्वरस न मिल सके तो कारडियल लाइम-जूस प्रयोग करें। Ascorbic Acid 100 mg. से ३०० mg. तक सूचीवेध द्वारा दिन में दो बार प्रयोग करें। दंत माँस की शुद्धि हेतु हाइड्रोजन पर-आक्साइड से पो० परमेगनेट से बारम्बार गण्डूष करायें। तथा मसूड़ों पर कारबोलिक ग्लीसरीन लगावें। दशनसंस्कार मंजन या दंतवज्रकर मंजन का प्रयोग करें। मुख में-गुड़-च्यादि तेल से या खदिरादि तैल से गण्डूष करायें। खदिरादिवटी चूसने को दें। स्वास्थ्यवर्द्धनार्थ वसंत-कुसमाकररस, मकरध्वज, मलसिन्दूर आदि का प्रयोग करायें। कोष्ठबद्धता दूर करने के लिए मुंजिस या त्रिफला चूर्ण नित्य रात को प्रयोग करें। फ़िरंग, विषम-

मज्वर, प्रवाहिका आदि कोई रोग हो तो उसके साथ साथ चिकित्सा करें। रक्तस्राव को रोकने के लिए रक्तपित्तनाशक चिकित्सा एवं योग दें। तथा खटिक के योग प्रवालपिष्टी, सुधाषटक योग केल्सियम क्लोराइड या केल्सियम लेक्टेट प्रयोग करें।

निम्नचिकित्सा क्रमउ पद्रव--रहित रोगियों पर सफल एवं अनुभूत है।

(१) रक्तपित्तान्तक लौह १ र० प्रवालपिष्टी ४ र० शतमूल्यादिलौह १ र० मकरध्वज पाव र० एसी दो मात्रा प्रातः सायं संतरे के रस २॥ तोला के साथ।

(२) केल्सियम लेक्टेट १५ ग्रेन २ मात्रा १० बजे ४ बजे नीवू स्वरस १ तोला से।

(३) इन्जेक्शन एजकारबिक एसिड १०० मि.ग्राम प्रातः सायंः नित्य।

(४) हाइड्रोजन-पर--आक्साइड गण्डूप शौच पश्चात् तदनान्तर दशनसंस्कार मंजन, तदनन्तर पो० पर मेगनेट १% कुल्ली करना, प्रातःकाल व सायं।

पृष्ठ ८७७ का शेषांश

कमजोरी अधिक हो जाती है, एतदर्थ पौष्टिक तथा रासायनिक योगों की शरण लेना चाहिये। भोजन को क्रमशः लघु से गुरू पर लेजावें। पौष्टिक औषधियां स्वर्णमालती वसंत, सितोपलादि चूर्ण, लोहभस्म, चन्द्रोदय, द्राक्षासव, अश्वगन्धारिष्ट आदि।

वालकों के लिये कुमारकल्याण रस, कुमारकल्याण घृत, द्राक्षासव, अरविन्दासव आदि।

कुछ अन्य प्रयोग

१—इमली के बीज की गिरी, हल्दी पानी में पीस कर पिलाना चाहिये।

२—मोचरस, सफेद चन्दन पानी में पीस कर पिलाना चाहिये।

३—वांसास्वरस मुलेठी पीस शहद के साथ पिलाना चाहिये।

४—सच्चे मोती निगलवाना चाहिये।

५—नीम के बीज, बहेड़े के बीज, हल्दी, शीतल जल के साथ पीसकर जो पीते हैं उनके मसूरिका नहीं होती है ऐसा आयुर्वेद का मत है।

नोट—उपरोक्त ५ योग मसूरिका की प्रतिबन्धक चिकित्सा के हैं। पहले ही उनका प्रयोग करते रहने से अथवा बीमारी फैलने के समय जो व्यक्ति इनका व्यवहार करता है इस रोग से बच जाता है।

आर्द्र (सस्राव) उरस्तोय (Pleurisy with effusion)

लेखक—कविराज एस. एन. बोस., एल. ए. एम. एस. भिषग्रत्न. इन्दौर।

फुफ्फुसधरा कला प्रदाह की अन्तिम परिणति साधारणतः सस्राव उरस्तोय में ही होती है और अधिकांश क्षेत्र में यह स्राव जलीय ही होता है। कभी-कभी रक्त मिश्रित स्राव भी हो सकता है।

निदान—

साधारणतः शुष्क उरस्तोय की द्वितीय अवस्था में ही आर्द्र उरस्तोय की उत्पत्ति होती है अतः शुष्क उरस्तोय तथा आर्द्र उरस्तोय के निदान अनेकांशतः समान ही माने जाते हैं।

प्राथमिक आर्द्र उरस्तोय के निदानों के अलावा आर्द्र उरस्तोय के औपसर्गिक रूप में विविध प्रकार के श्वसनक सन्निपात, फुफ्फुसार्बुद, फुफ्फुलीय अवरोध, आन्त्रिक ज्वर, आमवात ज्वर, रक्त-विषमयता आदि विशिष्ट कारण माने जाते हैं। इन क्षेत्रों में साधारणतः पूयःज उरस्तोय में ही अन्तिम परिणति दिखाई पड़ती है। तीव्र पांडु रोग में, जीर्ण वृक्क शोथ में, हृदयधराकला प्रदाह में तथा वक्ष-प्राचीर में अभिघात के कारण भी आर्द्र उरस्तोय की उत्पत्ति हो सकती है।

आयुर्वेद के मतानुसार यह व्याधि वातकफज होते हुए भी कफोल्वण सन्निपात के रूप में ही मानी जाती है। रोग की तीव्रता विशेषतः रोग की अन्तिम परिणति के ऊपर ध्यान रखते हुए इसे त्रिदोषज व्याधि माननी चाहिए। परन्तु प्रधानतः कफ दोष की वृद्धि के द्वारा रसधातु दूषित होने के कारण यह प्रधानतः कफज व्याधि ही है। जिसमें वायु व पित्त अन्तर्भाव भी प्रकट रहता है। अतः इसे कफोल्वण सन्निपातज व्याधि ही कहा गया है। पाश्चात्य चिकित्सा-शास्त्र के अनुसार यह व्याधि अधिकांशतः क्षय रोग जीवाणुओं से उत्पन्न माना है।

विकृति-विज्ञान—

पहिले ही बताया गया है कि फुफ्फुसधरा कला प्रदाह की प्राथमिक अवस्था शुष्क उरस्तोय ही है। जिसमें फुफ्फुसधरा कला के ऊपर एक जालिकामय पर्दे की उत्पत्ति होती है। परन्तु अधिकतर स्राव होने से यह स्राव फुफ्फुसधरा कलान्तराल में संचित होता जाता है। जैसे-जैसे स्राव बढ़ता है-फुफ्फुस के ऊपर दबाव ज्यादा होता जाता है और उस स्राव के स्थान संकुलान के हेतु फुफ्फुस सिकुड़ता जाता है। वृन्तबन्धनियों के कारण फुफ्फुस ऊपर की ओर अन्दर सिकुड़ता जाता है जिससे स्राव का संचय साधारणतः तल देश में तथा कक्षाधर भाग में ही होता है और क्रमशः बढ़ता जाता है। फुफ्फुधरा कला के जीर्ण प्रदाह के कारण पहिले से ही बनी हुई बन्धनियों के कारण यह स्राव सीमित रह सकता है। दबाव के कारण हृदय दूसरी ओर स्थान भ्रष्ट हो सकता है साथ ही साथ महाप्राचीरा तथा यकृत या प्लीहा भी नीचे की ओर दबे जाते हैं। दीर्घ दिन तक इस तरह से दबे रहने के कारण फुफ्फुस में स्थिति-स्थापकता कम हो जाती है और फुफ्फुस का रङ्ग गहरा लाल या मटमैला धूसर हो जाता है, फुफ्फुस कठिन, वायु शून्य तथा अधिकतर वजनदार प्रतीत होता है। स्राव के परिमाण तथा स्थान-संश्रय के ऊपर ही उपरोक्त परिवर्तन निर्भर है। कभी-कभी स्राव ३-४ सेर तक संचित होता है। साधारणतः स्राव पाण्डुवर्ण परन्तु स्वच्छ रहता है।

लक्षण—

प्रारम्भ में शुष्क उरस्तोय तथा आर्द्र उरस्तोय दोनों व्याधियों में एक ही प्रकार के लक्षण उत्पन्न होते हैं, परन्तु सार्वांगिक लक्षण व ज्वरताप कुछ अधिक विवृद्ध प्रतीत हो सकते हैं। स्राव-संचय के पश्चात् अधिकांश क्षेत्रों में वेदना कम हो जाती है

जो कि कफवृद्धि के प्रधान लक्षण हैं। शीघ्र स्राव-संचय होने के कारण फुफ्फुस संकोच तथा फुफ्फुसान्तराल वर्त्ती यन्त्रों में क्रिया व्याघात के कारण तीव्र श्वास कष्ट का अनुभव होता है, परन्तु स्राव धीरे-धीरे संचित होने से श्वास कष्ट उतना तीव्र नहीं होता है। साधारणतः कास शुष्क रहता है, मामूली पतला थूक निकल सकता है। पहिले से ही फुफ्फुस अन्य व्याधि से आक्रान्त रहने के कारण ही ज्यादा तथा गाढ़ा थूक निकल सकता है। अत्यधिक स्राव से स्वस्थ फुफ्फुस के ऊपर अप्रत्यक्ष दबाव के कारण उसमें रक्ताधिक्य होकर शोथ उत्पन्न हो सकता है—ऐसे क्षेत्रों में भी काफी थूक निकल सकता है। अधिकतर क्षेत्रों में रोगी आक्रान्त पार्श्व को दबाकर लेटा रहता है। जिससे रोगी का श्वास-कष्ट कुछ कम रहता है, कभी-कभी वह अर्द्ध शायित अवस्था में आराम अनुभव करता है। द्वितीय फुफ्फुस में उपरोक्त प्रकार से रक्ताधिक्य न होने से साधारणतः चेहरे पर श्यावाभा दिखाई नहीं पड़ती है--कारण दूसरा फुफ्फुस स्वस्थ रहने से रक्तविशोधन कार्य में विशेष बाधा नहीं पहुँचती है। यद्यपि श्वासगति की वृद्धि अवश्य ही होती है। स्राव संचय के स्थान पर कुछ ऊँचाई नजर आती है। पर्शुकान्तराल भरा हुआ प्रतीत होता है। परन्तु सुस्पष्ट उत्सेध नजर नहीं आता है। आक्रान्त पार्श्व के फुफ्फुस में विशेपतः तल देश में निष्क्रियता एवं वक्षः प्राचीर में संचालनाभाव दिखाई पड़ता है। अनधिक स्राव संचय-क्षेत्र में फुफ्फुस शीर्ष में संकोच प्रसार साधारण अव्याहत रहता है। दबाव के कारण हृत्स्पन्दन अस्वाभाविक स्थान में—स्राव सञ्चय-स्थान से दूर अनुभूत होता है। वामपार्श्विक स्राव-सञ्चय में हृदस्पन्दन दक्षिण पार्श्वे स्तनवृन्त के नीचे चतुर्थ पर्शुकान्तराल में भी प्रतीत हो सकता है। इतने दूर तक की स्थानच्युति हो सकती है। स्राव-सञ्चय स्थल पर वाचिक तरङ्ग अतीव मृदु, कभी-कभी सम्पूर्ण अनुपस्थित तक हो सकती है—अंगुलि ताड़नध्वनि पत्थर के समान ठोस प्रतीत होती है। इस तरह से स्राव सञ्चय की व्यापकता का निर्देश हो सकता है—और रोगी की उपविष्टावस्था तथा शायितावस्था में इस प्रकार निर्देश की विशेष आवश्यकता भी है। साधारणतः स्राव-सञ्चय की उर्द्ध सीमा बगल के मध्यभाग तक पहुँचती है—परन्तु कभी-कभी यह सीमा ऊपर अक्षकास्थि तक सामने उरःफलक तक एवं नीचे आमाशय के ऊपरिभाग तक प्रसारित हो सकती है। संचित स्राव के दबाव के कारण स्वस्थ फुफ्फुस में भी स्थान-स्थान पर ताड़नध्वनि कुछ ठोस प्रतीत होती है, बाकी अंशों में ताड़नध्वनि कुछ अधिक प्रतिध्वनित सुनाई पड़ सकती है। सञ्चित स्राव के दबाव के कारण हृदय विपरीत दिशा में काफी दूर तक—दक्षिण पार्श्व में स्तनवृन्त की निम्न रेखा तक एवं वामपार्श्व में कक्षामध्यरेखा तक—स्थानभ्रष्ट हो सकता है। ठोस स्थलों पर श्वासध्वनि कभी तो दूरागत, मृदु तथा अस्पष्ट अथवा सम्पूर्ण अनुपस्थित रह सकती है—कभी-कभी श्वासध्वनि स्पष्ट तथा तीक्ष्ण प्रतीत होती है, कभी-कभी श्वासनिकाज अथवा सौरङ्गिक श्वासध्वनि सुनाई पड़ सकती है। इस प्रकार की अनियमितता फुफ्फुस के क्रियाहीन स्थान की व्यापकता तथा श्वसनिका में कम ज्यादा दबाव के कारण ही नजर आती है। साधारणतः किसी प्रकार की अस्वाभाविक ध्वनि सुनाई नहीं पड़ती है—कभी-कभी स्राव-सञ्चय के ऊपरिभाग में घर्घरध्वनि सुनाई पड़ सकती है। वाचिक प्रतिस्वनन् मृदु अथवा अनुपस्थित प्रतीत होता है, परन्तु स्राव-सञ्चय की ऊपरिसीमा पर अथवा ऊपरिभाग में दूरागत वाचिक तरङ्ग की प्रतीत हो सकती है--जिसमें एक विशिष्ट अनुनासिक अथवा मिमियाना-सी आवाज सुनाई पड़ती है। फुफ्फुस धराकला में जलीय-स्राव संचित होने से अत्यन्त धीरे बोलने से उसका प्रतिस्वनन सुनाई पड़ता है, परन्तु पूयः स्राव संचित होने से उस प्रतिस्वनन का संवहन नहीं होता है। अस्थिकास्थि नीचे साधारणतःश्वासध्वनि कर्कश अथवा शैशवीय रूप से सुनाई पड़ती है। अत्यधिक स्राव-संचय के कारण रक्त-सञ्चार में बाधा उत्पन्न होती है--जिससे फुफ्फुस तल में रक्ताधिक अथवा शोथ उत्पन्न हो सकता है, हृत्प्रदेश में एक अस्पष्ट मर्मरध्वनि सुनाई

पड़ सकती है। यह ध्वनि स्थानच्युति के कारण ही उत्पन्न होती है। साधारणतः उरस्तोय में श्वेतरक्त-कणिकाओं की वृद्धि नहीं होती है परन्तु उपसर्ग की उपस्थिति में अवश्य ही होती है।

उपसर्ग व परिणति—

दीर्घ दिन तक स्राव-संचय मौजूद रहने के कारण फुफ्फुस में आंशिक सामयिक क्रियाहीनता स्थायी रूप में परिणत हो सकती है। साधारणतः फुफ्फुस-धराकला में स्थूलता अथवा वन्धनियों की सृष्टि होती है। क्षय-रोगज आर्द्र उरस्तोय में साधारणतः संचित स्राव पूयः में परिणत नहीं होता है परन्तु अन्यान्य क्षेत्रों में पूयः में परिवर्तित होना अधिकतर स्वाभाविक है। कभी कभी संचित स्राव वक्षः प्राचीर के अथवा फुफ्फुस के जरिये से बाहर अन्दर भी प्रवाहित हो सकता है। साधारणतः आर्द्र उरस्तोय के आक्रमण के कई वर्ष वाद क्षय रोग के लक्षण प्रगट होते हैं—कभी कभी साथ ही साथ प्रगट हो सकते हैं।

रोग निर्णय—

अधिक स्रावसंचय के क्षेत्रों में रोग-निर्णय में विशेष असुविधा नहीं होती है परन्तु अल्प अथवा स्थानिक स्राव-संचय के क्षेत्रों में कुछ असुविधा हो सकती है—परन्तु हृदय की स्थान-च्युति वाचिक तरङ्ग की अनुपस्थिति तथा ताड़न-ध्वनि से ठोसावस्था की प्रतीति आदि लक्षण रोग-निर्णय में विशेष सहायक होते हैं। साधारणतः निम्न-लिखित अवस्थाओं से आर्द्र उरस्तोय का भ्रम उत्पन्न हो सकता है। (१) स्थूल फुफ्फुसधराकला वेष्टित तथा श्वसनिका प्रसारयुक्त फुफ्फुस तन्तुमयता, (२) व्यापक फुफ्फुस प्रदाह, (३) फुफ्फुस, फुफ्फुसधराकला अथवा फुफ्फु-सान्तराल में घातक रोग (४) फुफ्फुस में व्यापक क्रियाहीनता (५) हृदयधरा-कला में अत्यधिक स्राव-संचय व (६) किसी वृहदाकार क्लोमकाण्डिका के ऊपर धमनीय प्रसार दवाव।

(१) फुफ्फुस की तन्तुमयता में वक्षः प्राचीर में साधारणतः समतलता अथवा दव जाना दिखाई पड़ता है, परन्तु आर्द्र उरस्तोय में वक्षःप्राचीर में उभार आता है। इस क्षेत्र में हृदय की स्थानच्युति साधारणतः आक्रान्त पार्श्व में होती है—आर्द्र उरस्तोय के क्षेत्र में वह स्थान—च्युति आक्रान्त पार्श्व की दूसरी ओर होती है। वाचिक तरङ्ग मृदु प्रतीत होता है—परन्तु ताड़न ध्वनि पत्थर के समान ठोस कदापि नहीं होती है।

(२) व्यापक फुफ्फुस प्रदाह में श्वास ध्वनि तथा वाचिक तरङ्ग अनुपस्थित रह सकता है। परन्तु हृदय की ध्वनि स्वस्थान में ही सुनाई पड़ती है।

(३) घातक रोग अथवा धमनी प्रसार में विशेष लक्षण—जैसे कि ग्रन्थियों की विवृद्धि अथवा विशिष्ट रक्त-प्रवाह ध्वनि आदि रोग-निर्णय में सहायक होते हैं। अधिकांश क्षेत्रों में क्ष-किरण के द्वारा रोग का निर्णय सरल होजाता है। फुफ्फुसधरा-कला के घातक रोग में शुरू-शुरू में साधारणतः आर्द्र उरस्तोय के लक्षण प्रकट होसकते हैं—परन्तु स्राव-निष्काशन के पश्चात् पुनः स्राव-संचय, संचित स्राव में रक्त की उपस्थिति तथा शीघ्रोत्पन्न क्षीणता आदि घातक रोग के निर्णायक माने जाते हैं।

(४) फुफ्फुस व्यापक क्रिया-हीनता में हृदय उसी ओर स्थान च्युति होता है—तथा हृत्स्पन्दन उसी ओर अनुभूत होता है।

(५) हृदयधराकला में अत्यधिक स्राव-संचय के कारण हृत्स्पन्दन का अनुभव करना कठिन होता है—हृदय के सामने ठोस जगह के आकार में परि-वर्त्तन होजाता है, हृदय के पीछे फुफ्फुस में ताड़न ध्वनि से उतनी ठोस आवाज की उत्पत्ति नहीं होती है जितनी कि आर्द्र उरस्तोय में हो सकती है। सब क्षेत्रों में क्ष—किरण की सहायता रोग-निर्णय के लिये श्रेष्ठ निश्चयात्मक कही जा सकती है। जलीय स्राव के क्षेत्रों में क्ष-किरण से जो प्रतिच्छवि उत्पन्न होती है वह गहरी तो रहती है—परन्तु इतनी गहरी नहीं होती है जिससे पर्शुकाओं की प्रतिच्छवि मुद्रित नहीं होती है। प्रतिच्छवि में स्राव-संचय की ऊपरी

सीमा वक्र तथा रोगी के अवस्थान के अनुसार इधर उधर सञ्चालित हो सकती है। स्राव-संचय के सम्बन्ध में निःसंशय होने के लिये पशु कान्तराल में सूचीवेध के द्वारा संचित स्राव का कुछ अंश आहरण करना ही विशिष्ट उपाय है—जिससे संचित स्राव के स्वरूप के सम्बन्ध में भी ज्ञान-प्राप्ति हो सकती है। फुफ्फुसधरा कला में संचित जलीय स्राव का रङ्ग हल्का हरिताभ पीत से लेकर भूरा रङ्ग तक हो सकता है, आपेक्षिक गुरुत्व साधारणतः १.१८ या ततोधिक उसमें कुल आमिष जातीय पदार्थ ४ प्रतिशत के ऊपर रहता है। निष्काशन के पश्चात् साधारणतः वह स्राव जम जाता है। उस स्राव में साधारणतः बहु-कोष्ठीय तथा लसीकण जातीय श्वेत रक्तकणिका अपुष्ट लाल रक्तकणिका तथा परिवर्त्तित अन्तः कोष्ठ मौजूद रहते हैं। लसीकण जातीय श्वेत रक्तकणिकाओं का अत्यधिक संख्याधिक्य क्षयरोगज उरस्तोयका द्योतक माना जाता है-वैसे ही बहु-कोष्ठीय श्वेत रक्त कणिकाओं की संख्याधिक्य से पूयः सजनक रोग जीवाणुओं का संक्रमण सूचित होता है। इस स्राव के कल्चर से क्षय रोग के जीवाणु की उत्पत्ति साधारणतः नहीं होती है—अन्य रोग जीवाणुओं की उत्पत्ति हो सकती है। क्षय रोग जीवाणुओं की उपस्थिति को प्रमाणित करने के लिये उक्त स्राव १५ सी. सी. की मात्रा में खरगोश जातीय जानवरों में सूचीवेध के द्वारा प्रवेश कराने की पद्धति भी चालू है।

रोग प्रगति–

मध्यमाकृति के स्राव-सञ्चय में साधारणतः ७ से १० दिन के अन्दर-अन्दर ज्वरताप स्वाभाविक हो जाता है; स्राव भी २-३ अथवा ४ हफ्ते में शुष्क हो जाता है। अत्यधिक स्राव-सञ्चय में जहां अन्तकास्थि अथवा उससे कुछ निम्न प्रदेश तक स्राव-सञ्चय होता है वहां ज्वरताप स्वाभाविक होने में कई हफ्ते तक लग जाते हैं, स्राव अति धीरे-धीरे शुष्क होने लगता है-कभी-कभी होता भी नहीं। इन क्षेत्रों में एक बार स्राव निष्काशन के पश्चात् रोगोपशम त्वरान्वित हो जाता है अवशिष्ट स्राव भी शीघ्र ही शुष्क होने लगता है। कभी-कभी बार-बार स्राव निष्काशन के पश्चात् भी स्राव-सञ्चय होता ही रहता है, ऐसे क्षेत्रों में यावज्जीवन कुछ न कुछ स्राव फुफ्फुसधराकला में सञ्चित रह जाता है।

साध्यासाध्यत्व निर्णय–

साधारणतः आर्द्र उरस्तोय सुसाध्य व्याधि मानी गई है। परन्तु अत्यधिक स्राव-सञ्चय के क्षेत्रों में फुफ्फुसों में तरुण शोथ, हृदयावसाद अथवा रक्त मार्ग में पिण्डावरोध के कारण आकस्मिक मृत्यु हो सकती है। क्षय रोग जीवाणुओं के अलावा अन्य कारणों से उद्भूत आर्द्र उरस्तोय में पूर्ण उपशम ही स्वाभाविक है, कुछ क्षेत्रों में कलाभ्यन्तर में बन्धनियों की सृष्टि होती है। कभी-कभी जलीय स्राव में परिणत हो सकता है। क्षयरोगज आर्द्र उरस्तोय में रोगोपशम हो सकता है-परन्तु सक्रिय क्षय रोग की आशङ्का बलवती रहती है।

चिकित्सा–

साधारण--रोगी को स्वच्छ, शुष्क हवा व रोशनीदार कमरे में पलङ्ग के ऊपर रखना ही अच्छा है। जब तक ज्वरताप स्वाभाविक न हो तब तक इस तरह से शय्याशायी रहना ही अच्छा है। स्राव-सञ्चय की प्रथमावस्था में ही आक्रान्त पार्श्व में प्रलेप की व्यवस्था की जानी चाहिये। एतदर्थ धतूरे की पत्ती, सोंठ, भुना चावल व बकरी की लेण्डी अथवा समुद्रफेन बराबर लेकर धतूरे की पत्ती के रस में पीसकर गर्म करके लेप लगाना चाहिए। केवल सोंठ अथवा मृगशृङ्ग पानी में घिसकर लेप लगाया जाता है। उसके ऊपर से रुक्षस्वेद (ऊनी कपड़े से अथवा पोटली से) भी दिया जा सकता है। रोगी के श्वासकष्ट के लिये इस अवस्था में स्राव-निष्काशन के अलावा और विशेष कुछ किया नहीं जा सकता है। रोगी स्वयं ही जिस अवस्था में रहने से अधिकतर आराम अनुभव करता है उसी अवस्था में ही लेटा रहता है। रोगी का सिर तकिये से अथवा अन्य उपायों से कुछ ऊँचा कर दिया जा सकता है।

पथ्य–

रोगी के पेय में सदा ही उबाला हुआ कुनकुना पानी उपयोग में लेना चाहिये। जहां तक हो सके रोगी को तरल पदार्थ की मात्रा कम करनी चाहिये। दुग्ध भी सोंठ से साधित करके ही देना चाहिये। ज्वरताप कम रहने से साधित दुग्ध के साथ धान का लाई दिया जा सकता है। चाय में आर्द्रक का स्वरस डाल कर दिया जा सकता है। ज्वरताप कम हो जाने के पश्चात् बिस्कुट, चावल का लाई, डबल रोटी (टोष्ट की हुई) आदि दी जा सकती है। किशमिश मुनक्का आदि से ऐसे क्षेत्रों में दोनों प्रकार के लाभ–जैसे पुष्टिकारिता तथा मृदुरेचन मिल सकते हैं। स्राव शुष्क होने के बाद ही मुसम्बी, सन्तरा आदि सरस फलों का प्रयोग करना ही अच्छा है। सेव व मीठा अनार दिया जा सकता है। ज्वर-मुक्ति तथा स्राव शुष्क होने के पश्चात् रोगी को मधुपाक तथा पुष्टिकर भोजन देकर शीघ्रातिशीघ्र पूर्णस्वस्थ बनाने की प्रचेष्टा करनी चाहिये।

औषधोपचार–

पहिले ही बताया गया है कि यह कफप्रधान सन्निपातज व्याधि है। इस बात को ध्यान में रख कर औषधियों का निर्देश करना चाहिये। रोगी की बल रक्षा करना भी आवश्यक है। एतदर्थ कस्तूरी व वत्सनाभ–घटित स्वल्पकस्तूरीभैरव एक आदर्श औषधि है। आर्द्र उरस्तोय के क्षेत्र में कम से कम एक बार और आवश्यक होने पर दो बार तक स्वल्प कस्तूरीभैरव १ से २ रत्ती तक आर्द्रक तुलसीपत्र या पान के रस के साथ देना ही चाहिये। स्वल्प कस्तूरी-भैरव उपलब्ध न होने से सौभाग्यवटी आनन्दभैरव रस, सन्निपातभैरव रस (धतूरा बीज व वत्सनाभ घटित) बृ० कफकेतु आदि से काम लिया जा सकता है। स्राव-संचय को ध्यान में रख कर एक बार श्री रामबाण रस के साथ लक्ष्मीविलास रस का प्रयोग उपरोक्त अनुपान अथवा व्यूषणादि क्वाथ, पञ्चकोल क्वाथ भार्ग्यादि क्वाथ आदि के साथ करना अच्छा है। इसके, अलावा अष्टांगावलेह, तालीसादि या सितोपलादि चूर्ण, चन्द्रामृतरस, कास-लवङ्गादि वटी आदि लाक्षणिक कास के लिये उपयोग में लिये जा सकते हैं। इस व्याधि में मूत्रल औषधियों का प्रयोग विशेष अपेक्षित है–क्योंकि इससे शरीरस्थित प्रवृद्ध जलीय धातु का ह्रास अवश्य ही होता है। एतदर्थ रससिन्दूर अथवा स्वर्णसिंदूर मिश्रित श्वेतपर्पटी का प्रयोग तृणपञ्चमूल व गोखरू के काढ़े के साथ किया जा सकता है। दिन में कम से कम दो बार इसका प्रयोग करना चाहिये। अन्यान्य चिकित्सा लाक्षणिक होनी चाहिये। प्रवालभस्म, शृङ्गभस्म आदि का प्रयोग इस व्याधि में प्रारम्भ से ही किया जा सकता है। आवश्यक होने से बृ० कस्तूरीभैरव आदि उत्तेजक औषधियों का प्रयोग भी करना पड़ता है।

पाश्चात्य औषधियों में पेनिसीलिन तथा स्ट्रेप्टोमाइसीन व पेनिसीलिन का सम्मिलित प्रयोग प्रधान है। सल्फाड्रग्स से आयुर्वेदीय चिकित्सकों को दूर रहना ही अच्छा है। पेनिसीलिन अथवा स्ट्रेप्टो-पेनिसीलिन का प्रयोग आयुर्वेदीय औषधियों के साथ भी किया जा सकता है और इससे अधिकतर लाभ की आशा भी की जा सकती है।

स्राव-निष्काशन–

आर्द्र उरस्तोय में पाश्चात्य चिकित्सा पद्धति के अनुसार स्राव-निष्कासन ही प्रधान उपाय है। आज-कल स्राव-निष्काशन पहिले से अधिकतर प्राथमिकावस्था में तथा एकाधिक बार किये जाते हैं। स्राव-निष्काशन कहां उपयुक्त तथा आवश्यक है–इस सम्बन्ध में मतभेद है, परन्तु साधारणतः निम्न लिखित बातों पर ध्यान देकर स्राव-निष्काशन की आवश्यकता मानी जाती है। (१) अगर स्राव का संचय अत्यधिक होकर अक्षकास्थि अथवा द्वितीय पर्शु का तक पहुँच गया हो जिससे श्वासकष्ट तीव्र होरहा हो, निम्ने यकृत या प्लीहा स्थान-भ्रष्ट हो रहा हो या स्वस्थ फुफ्फुस में रक्ताधिक्य होता हो (२) अगर स्राव-संचय के बाद उसका शोषण अत्यन्त धीरे-धीरे से या नहीं होता हो, संचित स्राव की ऊर्ध्व सीमा दो

हप्ते या इससे भी अधिक दिन तक एक ही स्थान पर रहती हो (३) अगर स्वस्थ फुफ्फुस में तरुण शोथ उत्पत्ति हो और तज्जन्य श्वेताभ कफ काफी निकल रहा हो (४) अगर दोनों तरफ स्राव संचित हुआ हो–तो जिस तरफ स्राव अधिक संचित हुआ हो उधर से ही स्राव-निष्काशन करना चाहिये।

स्राव-निष्काशन की विधि—

काय-चिकित्सकों को इस विधि से सर्वथा परिचित रहना चाहिये। यह विधि सरल भी है–तथा सावधानी से अपनाने में रोगी को तात्कालिक लाभ पहुँचता है। इसमें विपदाशङ्का भी नहीं रहती है।

(क) साईफन-विधि—

शस्त्र-क्रिया के पहिले यन्त्र-शस्त्रादि का अच्छी तरह विशोधित व जीवाणुरहित किया जाना चाहिये। उसके बाद ट्रोकर-केनुला फुफ्फुसधरा कलान्तराल में प्रवेश कराकर साईफन विधि से काफी नीचे रखे हुए एक वर्तन में स्राव-निष्काशित किया जाता है। इससे सुविधा यही है कि एक निर्दिष्ट वेग से स्राव का निष्काशन होता रहता है और धीरे-धीरे स्राव निकलने के कारण फुफ्फुस में धीरे-धीरे प्रसारण होता जाता है। परन्तु इस विधि से काफी मात्रा में स्राव-निष्काशन दुरूह हो जाता है, विशेषतः सीमावद्ध स्राव-संचय में यह पद्धति कार्यकारी नहीं होती है।

(ख) आहरण-विधि—

यही विधि आजकल अधिकाधिक उपयोग में ली जाती है। साधारणतः द्विमुख पिचकारी (Martin's syringe) की सहायता से स्राव आहरण किया जाता है। परन्तु इस विधि से सम्पूर्ण रूपेण स्राव आहरण असम्भव होता है–अतः स्राव आहरण के साथ-साथ फुफ्फुसधरा कलान्तराल में वायु प्रवेश कराने की विधि से आजकल विशेष लाभ लिया जाता है–जिससे स्राव आहरण के साथ ही साथ वायु प्रवेश कराने से सम्पूर्ण रूप से स्राव निष्काशन किया जा सकता है। इससे स्राव आहरण के कारण कास तथा पीड़ा का उदय नहीं होता है, बारम्बार स्राव-संचय नहीं होता है, फुफ्फुस प्रसारण में सहायता मिलती है।

अग्र कर्म–

स्राव–आहरण के लिए रोगी को शय्या पर उपविष्ट अथवा आक्रान्त पार्श्व में अर्द्ध शायितावस्था में रखना चाहिए। आवश्यक यन्त्र-शस्त्रादि का विशोधन तथा औषधियों का संग्रह होना आवश्यक है। आक्रान्त पार्श्व में वेधन के स्थान के चारों ओर टिंचर आयोडिन से विशोधित कर लेना चाहिए। स्राव-सञ्चय के स्थान के अनुसार वेधन का स्थान कक्ष मध्य रेखा में षष्ठ पर्शुकान्तराल में, कक्ष-पश्चिम रेखा में सप्तम पर्शुकान्तराल में तथा अंसफलकास्थि के निम्न कोण से ठीक नीचे अष्टम पर्शुकान्तराल में निर्दिष्ट किया जाता है।

मध्य कर्म–

वेधन के निर्दिष्ट स्थान को पहले संज्ञाहीन बना लेना चाहिये। एतदर्थ उक्त स्थान पर कोकेन अथवा नोभोकेन का सूचीवेध चर्माभ्यन्तर में तथा मांसपेशी में दिया जाता है। उक्त स्थानसंज्ञाहीन होने के पश्चात् निम्नस्थ पर्शुका के ठीक ऊर्द्ध सीमा के ऊपर से होकर केनुला अथवा द्विमुख पिचकारी की सुई सावधानी के साथ फुफ्फुसधरा कलान्तराल में प्रवेश कराया जाता है। निम्नस्थ पर्शुका के ठीक ऊपर से वेधन कार्य होने से पर्शुकान्तरालस्थित धमनी में आघात की आशङ्का कम हो जाती है। ट्रोकर निकाल लेने से केनुले के जरिये से आसानी से स्राव निकलता जाता है। पिचकारी की सुई प्रवेश कराने से, पिष्टन खींचने से, स्राव पिचकारी के अन्दर भर आता है और बाद में उस मुंह को बन्द कर बाजु में नली लगी हुई दूसरे मुंह से उस स्राव को अन्य वर्त्तन या बोतल में निष्काशित किया जाता है। इस क्रम को बार-बार करना पड़ता है। अगर खांसी आने लगे या तीव्र वेदना का अनुभव होने लगता हो अथवा खांसी के साथ

श्वेताभ कफ निकलना शुरु हो जाता हो तो स्राव आहरण बन्द कर देना चाहिए। कभी-कभी फुफ्फुस-धराकला में सद्मा के कारण अचानक मृत्यु तक हो सकती है, एतदर्थ किसी-किसी ग्रन्थकर्त्ता ने फुफ्फुस-धरा कला तक में नोभोकेन का सूचीवेध पहुँचाने की सलाह दी है। इस विधि में विपदाशङ्का प्रयोग-कर्त्ता के भूल-त्रुटि पर ही निर्भर है-जिसमें असावधानता और त्रुटिपूर्ण नली संयोग के कारण कलान्तराल में वायु प्रवेश, फुफ्फुस में आघात तथा सम्यकरूपेण विशोधन के अभाव में फुफ्फुसधरा कला में पूयःज जीवाणुओं के संक्रमणजन्य स्राव में पूयःज परिवर्त्तन आदि प्रधान है।

पश्चात् कर्म–

स्राव-निष्काशन के पश्चात् वेधस्थान पर वेनजाइन का फाया रख कर मुंह बन्द कर दिया जाता है। ऊपर से विशुद्ध वस्त्र खण्ड (गाज) व कपास रख कर पट्टी बांध देना चाहिए। चिपकने वाली पट्टी (Adhesive plaster) से काम लिया जा सकता है। रोगी को चाय, गरम दुग्ध आदि पिला कर शय्या पर शायित अवस्था में रखना विशेष आवश्यक है। सद्मा अथवा अन्याय उपसर्गों के लिए यथोचित चिकित्सा की जानी चाहिए।

फुफ्फुसधराकलान्तराल से स्राव-निष्काशन अथवा वहां स्राव शोषित होने के पश्चात् फुफ्फुस-प्रसारण में सहायतार्थ धीरे-धीरे प्राणायाम का अभ्यास करना अच्छा है। प्राणायाम के समय पर स्वस्थ फुफ्फुस को काफी हद तक स्थिर रखने के लिये निःश्वास की अवस्था में चिपकने वाली प्लास्टर उस तरफ के वक्षः प्राचीर में लगा लेना चाहिये-फिर जहां तक हो सके रोकने की चेष्टा करनी चाहिए। जब तक रोगी पूर्ण स्वस्थ न हो तब तक बाहरी कार्य में भाग नहीं लेना चाहिए, विशेषतः क्षय रोग का सन्देह होने से दीर्घ दिन तक सुचिकित्सा के साथ-साथ आराम करना परम आवश्यक है।
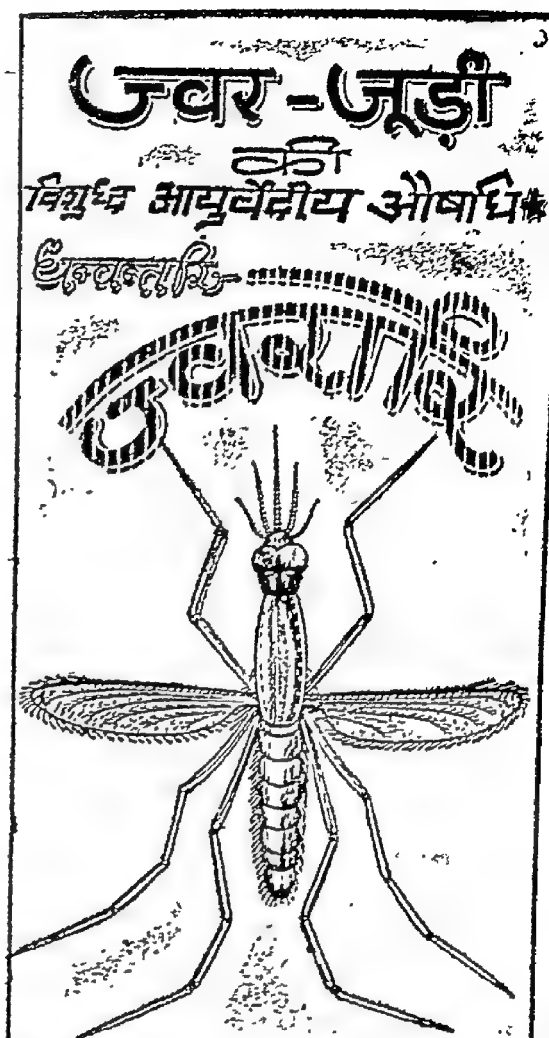
रोहे–पोथकी (TRACHOMA)

लेखक—श्री वैद्य चोरूलाल व्यास, नेत्रचिकित्सालय, सादुलपुर (राजस्थान)

रोग परिचय—

यह एक नेत्र-श्लेष्मावरण की व्याधि है। आयुर्वेद में पोथकी व हिन्दी में रोहे-कुकरे-दाने कहते हैं। अङ्गरेजी में ट्रेकॉमा कहते हैं। यह अति छूत की बीमारी है। एक बार होजाने के बाद इसे जड़ से मिटाना साधारण बात नहीं। लोग इसे मामूली रोग समझ इलाज की उपेक्षा करते रहते हैं। पर इसके उपद्रव कितने कष्टकारक होते हैं उनकी तरफ वे ध्यान नहीं देते। इस रोग का प्रसार समस्त भारत में है। पर शीत-प्रधान देशों की अपेक्षा उष्ण प्रधान देशों में अधिक होता है। प्रत्येक नेत्र चिकित्सालयों में इसी रोग के रोगियों की संख्या अधिक रहती है। इसलिए प्रत्येक वैद्य को भी इसकी पूर्ण जानकारी अवश्य रखनी चाहिए।

कारण—

इस रोग की उत्पत्ति का सच्चा कारण क्या है, यह बताना कठिन है। अनेक नेत्र-विशेषज्ञ व जन्तु-शास्त्री इसके मूल कारण की खोज के लिए प्रयत्नशील हैं। जर्मनी के एक कीटाणु वैज्ञानिक का कथन है कि इस रोग की उत्पत्ति Provazek's inclusion bodies प्रोवाझेक्स इन्क्लूजन बोडीज नामक कीटाणुओं द्वारा होती है।

स्वस्थ नेत्र के श्लेष्मावरण में भी उन कीटाणुओं की विद्यमानता पाई जाती है। पर नेत्र में होने वाले अश्रुओं द्वारा वे नष्ट हो जाते हैं। जब कभी स्थिति उनके अनुकूल होती है तभी वे वहां अपना केन्द्र बना कर वृद्धि को प्राप्त होते हैं और रोहे जैसी व्याधि को जन्म देते हैं। वायु-धूप-धूआं-धूल का संसर्ग भी इसकी उत्पत्ति में सहायक कारण माने जाते हैं।

जिन स्थानों में आंधी जोरों की चलती है, धूल उड़ती है, वहां इस रोग की उत्पत्ति ज्यादा होती है। राजस्थान व पञ्जाब में इसके रोगी अधिक पाये जाते हैं।

पहले कहा जा चुका है कि यह छूत का रोग है। इस रोग से पीड़ित एक व्यक्ति अनेकों को स्पर्श द्वारा यह रोग दे देता है। यह संक्रामकता रोगी के नेत्र में से गिरने वाले स्राव में रहती है। यह स्राव किसी तरह स्वस्थ व्यक्ति के नेत्र में लग जाता है तो वह भी रोहे का शिकार हो जाता है। यह संसर्ग अनेक प्रकार से होता है। रोगी अपने हाथों से नेत्र-स्राव को पोंछता है, वही हाथ दूसरों के नेत्रों को लग जाते हैं। अथवा जिस रूमाल या वस्त्र से नेत्र पोंछता है, और वह वस्त्र दूसरे स्वस्थ नेत्र को लग जाता है।

इस रोग को फैलाने में एक और चीज है, वह है काजल, जो नित्यप्रति हमारे घरों में इस्तेमाल होता है। राजस्थान व अन्य कई प्रान्त ऐसे हैं जहां बालक जन्मने के ८-१० वर्ष तक काजल का नित्य व्यवहार होता है। माता अपनी अंगुली से अपनी आंख में काजल लगाती है। फिर उसी अंगुली से अन्य बालकों की आंखों में भी काजल लगाती है। अगर घर में काजल अच्छा बना हुआ न हो तो पास-पड़ौसी के यहां से काजल की डिब्बी मांग ली जाती है या पड़ौसी के यहां अच्छा काजल न तो वे मांग कर ले जाते हैं। बिना अंगुली साफ किये ही सब की आंखों में काजल लगाया जाता है। दैवयोग से किसी एक की आंखों में रोहे हो तो सबकी आंखों में रोहे हो जाते हैं। इस प्रकार इस रोग को फैलाने में काजल का बहुत बड़ा हाथ है।

पूर्व लक्षण—

जिसे रोगी स्वयं बयान करता है। आंखों से पानी गिरना, खुजली चलना, जलन रहना, रड़कन होना, प्रकाश में पूरी आंखें न खोल सकना, प्रातः

उठने पर पलकों का चिपके रहना, नेत्र में कुछ गिर गया हो इस प्रकार खटकते रहना इत्यादि लक्षण रोहें की पूर्व अवस्था के हैं। तेज वायु धुआं, धूप, धूल के संयोग से तथा अधिक लिखने-पढ़ने व सिलाई का काम करने से उपरोक्त लक्षणों में वृद्धि होती है। रोगी को न्धिक कष्ट-अनुभव होता है। यह अवस्था कई माह तक रहती है।

लक्षण-

जिसे चिकित्सक स्वयं देख सकता है। आंखों में लाली, रड़कन, जल-स्राव, नेत्र का न खुलना, प्रकाश का सहन न होना, वेदना इत्यादि लक्षण रहते हैं।

लाली—अगर रोग साधारण हुआ तो समस्त नेत्र में लाली न होकर केवल श्लेष्मावरण में ही लाली रहती है। रोग के उग्र होने पर समस्त नेत्र में गहरी लाली आ जाती है।

रड़कन—पलकों के नीचे जैसे कोई कङ्कर गिर गया हो इस प्रकार आंख में रड़कन रहती है।

स्राव—नेत्र में से हर समय पानी जैसा या कुछ चिपचिपा जल स्राव होता है। रोगी हर समय नेत्रों को पोंछता रहता है। कभी-कभी यह स्राव इतना चढ़ जाता है कि रोगी नेत्र पोंछते-पोंछते परेशान हो जाता है।

नेत्र का न खुलना—रड़कन के कारण आंखें खुल नहीं सकती हैं।

प्रकाश का सहन न होना—अगर रोग बल अधिक हुआ तो प्रकाश में आखें नहीं खुल सकतीं। रोगी अन्धेरे कमरे में पड़ा रहता है। रोग साधारण रहने पर काला चस्मा लगाकर घूम-फिर सकता है।

वेदना—रोग तीक्ष्ण होने पर नेत्रों में बड़ी वेदना होती है। यह वेदना तारामण्डल का प्रदाह अथवा शुक्ल मण्डल का क्षत होजाने पर और भी बढ़ जाती है। इस वेदना के कारण रोगी रोने लगता है।

रोग निर्णय-

रोगी के नेत्र की परीक्षा करने पर पलकों के भीतर छोटे-छोटे सरसों के दानों के बराबर चमकीले साबुदाने के आकार के अपंक्तिबद्ध रोहे के दाने प्रतीत होते हैं। ये दाने मात्रा में कम हों तो रोग-बल भी कम होगा। अधिक होने पर रोग भी बलवान होगा।

रोग प्रभेद—इस रोग के सभी लक्षण स्पष्ट रहने पर भी रोग-निर्णय में कभी-कभी भूल हो सकती है। अतः नीचे लिखे रोगों के साथ इसका प्रभेद समझना चाहिये।

प्रारंभिक अवस्था में जब तक पलकों में रोहे के दाने स्पष्ट दिखाई न दें तब तक यह बताना कठिन है कि रोग अभिष्यन्द है या रोहे। इसकी परीक्षा के लिए एक उपाय है। नेत्र में से जो स्राव होता है, वह अभिष्यन्द रोग में गाढ़ा और चिपचिपा रहता है। पर रोहे में स्राव साफ पानी की तरह या किंचित चिपचिपा रहता है। दूसरी परीक्षा यह कि अभिष्यन्द रोग की उत्पत्ति विविध कीटाणुओं के द्वारा होती है। नेत्र में से होने वाले स्राव की अणुवीक्षण यंत्र द्वारा परीक्षा करने पर उन कीटाणुओं की विद्यमानता पाई जाती है। पर रोहें के स्राव की परीक्षा करने पर प्रोवामेक्स इन्क्लूजन बोडिज नामक कीटाणुओं के अतिरिक्त अन्य किसी प्रकार के कीटाणु नहीं पाये जाते।

परीक्षा के बाद रोहे के दाने स्पष्ट दिखाई दें तब दो रोगों के साथ इसकी समानता पाई जाती है। १ दानेदार अभिष्यन्द (Follicular Conjuctivitis) २—बसन्त ऋतु-जनित अभिष्यन्द (Spring catarrh) रोग।

१—दानेदार अभिष्यन्द—रोग में भी रोहे के दानों की तरह पलकों के भीतर दाने होते हैं। पर इसके दाने रोहे की अपेक्षा छोटे, रक्ताभ, मात्रा में अधिक पंक्तिबद्ध लगे रहते हैं। ऊपर के पुटों की अपेक्षा नीचे के पुट में अधिक होते हैं। ये दाने योग्य उपचार से शीघ्र मिट जाते हैं। पर रोहे के दाने जल्दी नहीं मिटते। इतना प्रभेद होते हुए भी इन दोनों के लक्षणों में इतनी समानता है कि कभी-कभी रोग पहिचान करने में विज्ञ नेत्र-चिकित्सक भी चूक

जाते हैं।

२—वसंत ऋतुजनित श्लेष्म-प्रदाह में भी पलकों के भीतर दाने होते हैं। ये दाने चिपटे अव्यवस्थित ढङ्ग से लगे रहते हैं। इस रोग की परीक्षा सहज है। इस रोग का प्रधान लक्षण नेत्रों में अति खुजली चलने का है। इतनी खुजली किसी दूसरे रोग में नहीं चलती। पलकों को उलट कर थोड़ा छूते ही खुजली शुरु हो जाती है। यह खुजली सर्दी के दिनों में मिट जाती है, और गर्मी की ऋतु शुरु होते ही इसका बढ़ना शुरु हो जाता है। यह रोग एक बार हो जाने केबाद कई वर्षों तक नहीं मिटता।

चिकित्सा

सर्वप्रथम ऐसा उपाय करना चाहिए कि रोग फैले ही नहीं। इसकेलिए रोगी के प्रयोग में आने वाले वस्त्र, रूमाल, गद्दी, तकिये का प्रयोग दूसरा व्यक्ति न करे। अगर माता के रोहे हो तो वह अपनी आखों के लगाये हुए हाथ बिना साबुन से धोये बालक की आंख में नहीं लगाये। यदि काजल लगाना हो तो जिस अंगुली से अपनी आंख में काजल लगाया है उसको साबुन से धोकर बालक की आंख में काजल लगाये।

पाठशाला या ऐसे सामूहिक स्थानों में जहां अधिक लोग रहते हों, उनमें कोई रोहे का रोगी हो तो उसे अलग रखें। इस रोग के रोगियों को रेलवे बैंक तथा अन्य कई दफ्तरों में नौकरी के लिए नहीं रखे जाते।

नेत्र-चिकित्सक एवं परिचारक को भी बड़ी सावधानी रखनी चाहिए। रोग-पीड़ित नेत्र के हाथ लगाने के पश्चात् शीघ्र किसी कीटाणुनाशक द्रव द्वारा अपने होथों को साफ कर लेना चाहिए।

औषध परिचर्या—

रोग परीक्षा के बाद अगर रोग साधारण हो तो सिलवर नाइट्रेट १० ग्रेन वाष्पजल १ औंस में मिलावें। इसको २%कास्टिक कहते हैं। इस दवा को रूई की फरेरी से रोगी के पलकों को उलट कर रोहें के दानों पर लगावें, ५ मिनिट बाद बोरिक के पानी से धोकर आर्जिरोल ५ प्रतिशत घोल की बूंद डालें।

२—आर्जिरोल २५ ग्रेन वाष्पजल ५ बूंद ग्लेसरिन ५ बूंद को लेकर एक कांच की छोटी प्याली में मिलावें। रोगी के पलकों को उलट कर इस का पेण्ट कर दें। १० मिनिट बाद टेरामाईसिन-आई आइन्टमेण्ट लगा दें। यह प्रयोग रोहे की उग्र दशा में बड़ा लाभप्रद है। दूसरे ही दिन रोगी को आराम मालूम होने लगता है।

३—कॉपरसल्फ २ ग्रेन, वाष्पजल ४ ड्राम, ग्लेसरिन ४ ड्राम को एक शीशी में मिला लेवें। रोहे की प्रारम्भिक अवस्था में या जब आंख में लाली आदि न रहें तब इसकी बूंद दिन में दो बार डालें। इस दवा को जब तक रोहे पूरी तरह से न मिट जांय तब तक हमेशा डालें। रोहे को जड़ से मिटाने के लिए यह सब से अच्छी दवा है।

४—कई चिकित्सक रोहे के दाने पर नीलेथोथे का प्रयोग करते हैं। प्रयोग-विधि यह है कि रोगी के पलकों को उलट कर नीलेथोथे के टुकड़े को दानों पर फेर देवें। इससे नेत्र में जलन होगी और नीले रङ्ग का स्राव होगा। जब तक यह स्राव होता रहे, इसे पोंछते रहें। स्राव बन्द हो जाने के बाद आर्जिरोल५ प्रतिशत की बूंद डाल कर टेरामाइसीन-आई-आइन्टमेंट लगा दें।

सूचना—

नीलेथोथे के प्रयोग से आंखों में बड़ी जलन होती है। किसी-किसी को यह अनुकूल भी नहीं पड़ता तब इसके प्रयोग से आंखें और भी खराब हो जाती है। इसके स्राव का कुछ भी अंश नेत्र के भीतर रह जाता है तो शुक्ल-मण्डल का क्षत (Corneal ulcers) हो जाता है। अतः इसके प्रयोग में सावधानी रखनी चाहिए।

५—नीलाथोथा और फिटकरी दोनों को समभाग

—शेषांश पृष्ठ ८६५ पर।

मूँगफली और स्वास्थ्य

लेखक—डा. कुलरंजन मुखर्जी।

मूँगफली का जन्मस्थान दक्षिणी अमेरिका है जहां यह शताब्दियों से उपजायी जा रही है।

अमेरिका के आविष्कार होने के पूर्व श्वेतकाय लोगों को इसके विषय में कुछ भी ज्ञान न था। ऐसा अनुमान किया जाता है कि पोर्चुगीज दास-व्यापारियों द्वारा यह सर्व-प्रथम ब्राजील से अफ्रीका लायी गयी थी, जो अपने जहाज स्थित हब्शी-बंदियों को ताकतवर बनाने के लिए इसका उपयोग करते थे। शीघ्रता के साथ यह अफ्रीका से सारे यूरोप एवं पश्चिमी एशिया में फैल गयी। सन् १८४० में सर्वप्रथम जब लोगों ने इसे तैल बीज के रूप में पहचाना तब सारे यूरोप में इसकी खेती जोरों से फैल गयी। वर्तमान समय में यह भारत, चीन, युनाइटेड स्टेट्स, पश्चिमी अफ्रीका तथा संसार के सभी ग्रीष्मप्रधान एवं समशीतोष्ण देशों में विस्तृत रूप से उत्पन्न की जाती है। यह ध्यान रखने की बात है कि इस समय भारत मूँगफली की उत्पत्ति में सारे संसार का नेतृत्व कर रहा है। विश्व के व्यापार की ४० प्रतिशत मूँगफली हिन्दुस्तान में उत्पन्न होती है।

मूँगफली ही, जिसके अंग्रेजी में पीनट, मंकीनट तथा मैनीला नट आदि कई नाम हैं, एक मात्र ऐसा बादाम है जो पृथ्वी के नीचे उत्पन्न होती है। इसका पौधा बहुत छोटा होता है और इसकी ऊँचाई १ से २ फीट है। इस पौधे के फूल से जो डंठल निकलता है, वह पृथ्वी में समा जाता है और बीजकोष का आकार धारण कर लेता है। इनमें साधारणतया २ बीज होते हैं। दो महीनों के अन्दर वे परिपक्व हो जाते हैं और पौधे के पत्ते पीले पड़ जाते हैं। तदुपरांत पौधे को मिट्टी से अलग कर बीज सहित सुखाया जाता है। ३ से ६ हफ्तों के अन्दर उन्हें पौधे से अलग कर लिया जाता है। बाद में बीज को थैलों में बंद कर पौधे-मवेशियों को खिला दिये जाते हैं।

यद्यपि मूँगफली मटर एवं सेम की समजातीय ही है, तथापि अत्यन्त पुष्टिकर होने के कारण इसे बादाम की संज्ञा दी गई है।

मूँगफली का विश्लेषण करने पर इसमें प्रोटीन २६.७ प्रतिशत, चर्बी ४०.१, खनिज द्रव्य १.६, रेशा ३.१. शर्करा २०.३, चूना ०.५, फासफोरस ०.३६ लोहा १.६ (मिलिग्राम्स) तथा जलीय भाग ७.६ प्रतिशत है। इसमें विटामिन ए भी है, जिसकी मात्रा ६३ आई० यू० है, थियामिन ६०० का माइक्रोग्राम्स, रिबोफ्लाविन ३०० माइक्रोग्राम्स, निकोटिनिक एसिड १४.१ मिलिग्राम्स, पाइरोडोक्सिन ७.२६

माइक्रोग्राम्स एवं विटामिन ई हर १०० ग्राम में २६ आई० यू० है। इसका कैलोरिफिक मूल्य हर १०० ग्राम में ५४६ है।

इसमें स्थित प्रोटीन के कारण ही यह सर्वाधिक रूप से मान्य है। मूँगफली स्थित प्रोटीन बहुत ही उच्च श्रेणी का है तथा गुण में प्रायः मांस, अंडा एवं सोयाबीन के बराबर है।

अमेरिका में मूँगफली से प्रस्तुत विभिन्न खाद्य द्रव्यों को बदाम का मांस कहा जाता है। यह स्मरण रक्खा जा सकता है कि १ सेर मूँगफली का प्रोटीन, ८·२ सेर दूध के प्रोटीन के बराबर है। विशेषतया यह लाइसीन प्राप्ति के लिए महत्वपूर्ण है जो कि शरीर में स्नायुओं के निर्माण के लिए आवश्यक है। अतएव दूध, मांस, मछली तथा अण्डे के बदले में मूँगफली ग्रहण किया जा सकता है जिसमें लाभ ही है।

मूँगफली स्थित चर्बी खाने योग्य एक महत्वपूर्ण तैल है। यह पीतवर्ण का मनोरम सुगन्धि वाला स्वादिष्ट खाद्य पदार्थ है। इस तैल की रासायनिक बनावट एवं गुण बहुत अंशों में जैतून के तैल के बराबर है।

डा० आर० एन० चोपड़ा, एम० ए०, एम० डी० का कहना है कि जैतून के तैल में पाये जाने वाले प्रायः सभी गुण मूँगफली के तैल में मिलते हैं। अतः इसे जैतून के बदले में व्यवहार किया जा-सकता है। वास्तव में यह उन सभी कार्य्यों में बड़ा लाभदायक है जिनमें जैतून का तैल व्यवहृत होता है। ये दोनों तैल आपस में इतने मिलते-जुलते हैं, कि जैतून के तैल में मिलावट करने के लिए इसका बहुत बड़े परिमाण में उपयोग किया जाता है। इसकी दूसरी विशेषता यह है कि इसे काफी दिनों तक रखा जा सकता है और यह खराब नहीं होता। समस्त संसार में भोजन पकाने के काम में भी इसका विस्तृत रूप से व्यवहार होता है। सलाद के तैल के रूप में भी यह बहुत जनप्रिय है। निकृष्ट श्रेणी का तैल जो ग्रहण योग्य नहीं होता उसे उद्योग-धंधों के काम में लाया जाता है। विशेषतया साबुन बनाने के लिए।

सभी बादामों में मूँगफली ही विस्तृत रूप से खाद्य के लिए व्यवहृत होती है। ग्रीष्म-प्रधान देशों के कुछ हिस्सों में वहां के निवासियों के लिए यह मुख्य भोजन के रूप में व्यवहृत होती है। सिनिगाल तथा पश्चिमी अफ्रीका के कई भागों में वहां के निवासियों के भोजन में मूँगफली का एक महत्वपूर्ण स्थान है। समशीतोष्ण देशों में भी यह व्यापक रूप में काम में लाया जाता है। अमेरिका में प्रतिवर्ष बहुत बड़े परिमाण में मूँगफली की खपत होती है।

इसे कई रूप में एवं असंख्य तरीकों से व्यवहार किया जाता है। भूनी हुई मूँगफली में नमक लगा देने पर यह बहुत ही स्वादिष्ट होती है। कभी-कभी इस पर चीनी का पाक देकर इसे मिठाई की तरह भी खाया जाता है। पश्चिम में इसे मिष्ठान्न के लिए महत्वपूर्ण माना जाता है।

अमेरिका तथा यूरोप में जलपान के लिए पीनट बहुत जनप्रिय है। यह प्रायः मिठाई के रूप में ग्रहण की जाती है।

मूंगफली से बहुत बड़ी संख्या में खाद्य सामग्री तैयार की जाती है। पश्चिम के बाजार में मूंगफली का आटा धीरे-धीरे अपना स्थान बना रहा है। इसका पुष्टिकारक गुण, गेहूँ के आटे से बहुत अच्छा है। इस आटे में ५६·० प्रतिशत प्रोटीन है, ६.७ प्रतिशत चर्बी, २०·६ प्रतिशत शर्करा, २·५ प्रतिशत रेशा, ३·२ प्रतिशत भस्म, ०,०७ प्रतिशत चूना, ०·५७ प्रतिशत फासफोरस और हर १०० ग्राम में ७·०१- प्रतिशत मिलिग्राम लोहा और इसके अलावा थियामिन, रिबोफ्लाविन, एवं नियाचिन भी पाया जाता है। सफेद आटे को गुणकारी एवं बलकारक बनाने के लिए इसका बहुत अधिक उपयोग होता है। पाँव-रोटी, बिस्कुट तथा बेकरी की अन्यान्य वस्तुयें बनाने में इसके सफेद आटे का २० प्रतिशत मिल सकता है।

अमेरिका में मूँगफली से एक ऐसा मक्खन तयार किया जाता है जिसे मूँगफली का मक्खन कहते हैं। यह कुछ चुने हुए बादामों को थोड़ा सा भूनकर उन्हें लेई की तरह बनाकर तैयार किया जाता है। इसमें साधारणतया थोड़ा सा नमक भी मिलाया जाता है।

अमेरिका में इसे रोजाना खाद्य की तरह व्यवहार किया जाता है। इसके ग्रहण करने का साधारण तरीका यह है कि इसे कुछ घना सा लेकर पाँवरोटी के ऊपर चुपड़ दिया जाता है। इस मक्खन में भुने हुए बादाम के सभी उपादान वर्तमान होते हैं और यह बहुत जल्द पच भी जाता है।

सूंगफली से एक प्रकार का स्वादिष्ट एवं सस्ता दूध आसानी से तैयार किया जा सकता है। इसके लिए सर्वप्रथम मूङ्गफली को पानी में भिगो देना चाहिए और हर आध घण्टे पर उसका पानी बदल देना जरूरी है। इसके बाद छिलके पानी में घिस कर छुड़ादें। बाद में उन्हें सिल पर पीस कर महीन कर लें तथा पीसे हुए बादाम को तीन गुने पानी में मिला दें। पीने से पूर्व इसे एक महीन कपड़े से छान लिया जाता है। इसे खौलाया भी जा सकता है। खौलाने पर इसके खाद्य मूल्य में कोई फर्क नहीं पड़ता।

खाद्य मूल्य में तथा बनावट में यह गाय के दूध के बराबर ही है तथा उसके बदले में निःसङ्कोच व्यवहार किया जा सकता है। यह २३ घण्टे तक खराब नहीं होता। मूङ्गफली से बने दूध में थोड़ा दही (ज्यावन) मिलाकर बढ़िया दही तैयार किया जा सकता है। यह गाय अथवा भैंस के दूध से बने दही के समान ही गुणकारी होता है। मूङ्गफली के दूध को खौलाकर उसमें खट्टे नीबू का रस देकर उसका छेना भी तैयार किया जा सकता है और उस छेने से विभिन्न प्रकार की मिठाइयां भी तैयार की जा सकती हैं।

इसके दूध से स्वादिष्ट आइस्क्रीम भी बन सकती है। दूध बनाकर बचे भाग में घी तथा चीनी मिला कर हलवा भी तैयार किया जा सकता है।

बादाम जब बहुत ही कच्ची अवस्था में हों तब उन्हें तरकारी कीतरह भी उपयोग किया जासकता है। ये रुचिकर, पुष्टिकारक तथा सहजपाच्य है।

कभी-कभी मूङ्गफली में अंकुर पैदाकर उसे कच्चा ही खाया जाता है, साधारणतया चीनी या भूरी चीनी के साथ।

बहुतों को यह आश्चर्य सा लगेगा कि बादाम के तैल की खली भी मनुष्य के भोजन में इस्तेमाल की जाती है। पहले यह खाद के अथवा मवेशियों खिलाने के काम में आती थी। वर्तमान समय में इस खली से आटा तथा हमारे भोजन की और बहुत सी वस्तुऐं बड़े परिमाण में तैयार की जाती हैं। बादाम की खली एक गाढ़ा प्रोटीन खाद्य है। इसका खाद्य मूल्य मांस के समान है।

यह बात ध्यान में रखने लायक है कि जर्मन सेना के राशन में बादाम की खली का व्यापक रूप से उपयोग किया गया था जो अत्यन्त सफल रहा। स्पेन में अभी भी इसे भोजन के रूप में व्यवहार किया जाता है। पटना के एक अनाथालय में ६ से लेकर १४ वर्ष तक के लड़कों को प्रतिदिन चावल के साथ १ औंस बादाम भी खली का आटा भी दिया जाता था। आठ महीनों के बाद यह देखा गया कि उन सभी लड़कों में रक्त की मात्रा बढ़ गई और ऊंचाई तथा वजन में भी उन्होंने उन्नति की। इस प्रयोग के अधिकांश लड़के कई तरह की बीमारियों से पीड़ित थे पर प्रयोग के कुछ महीनों बाद उनकी बीमारियां खत्म हो गईं और वे अधिकाधिक स्वस्थ एवं कांतिवान होने लगे।

कभी-कभी मूङ्गफली के हजम होने में सन्देह किया जाता है। किन्तु यथार्थ में यह कहना निराधार है कि यह हजम नहीं हो सकती। मूङ्गफली का प्रोटीन ९४.६ प्रतिशत तक पच जाता है। इसे भली-भांति चबाकर खाने पर पेट में किसी प्रकार की गड़बड़ी नहीं होती। किन्तु प्रत्येक दिन मूङ्गफली खाने पर इसे बहुत सहजपाच्य रूप में लेना चाहिए **जैसे**

दूध, दही, आटा इत्यादि। ऐसा करने पर बादाम बिल्कुल सूक्ष्म कणों में परिवर्तित हो पाचन रसों के साथ मिल जाता है। अथवा इसे अंकुरित अवस्था में ग्रहण किया जाता है। अंकुर निकलने के पश्चात् यह केवल पचनशील ही नहीं होता वरन् इसके खाद्य मूल्य में भी वृद्धि होती है। विशेपतया इसमें स्थित बी और सी विटामिनों में।

पृष्ठ ८६१ का शेषांश

लेकर आग पर तपावें। इसकी सलाइयों को बनाकर रोहों पर लगावें।

६—कुप्रो आर्जेन्टिक आइन्टमेन्ट दिन में २-३ बार आंख में डालने से रोहे मिट जाते हैं। यह मलहम ३% ५% और १०% शक्ति की मिलती है।

७—औरियो-माइसीन आई आयन्टमेंट दिन में ३-४ बार आंख में लगाने से शीघ्र लाभ होता है।

कई- नेत्र चिकित्सक स्थानीय दवा प्रयोग के साथ खाने के लिए सल्फा वर्ग की गोलियां देते हैं। पर हमारे विचार से वे गोलियां कोई विशेष लाभ नहीं पहुँचातीं। इसी प्रकार पेनिसिलिन का भी प्रयोग इस रोग में बेकार है। किसी को फायदा होता नहीं देखा गया।

रोहे की प्रारम्भिक अवस्था में लोग चिकित्सा पर विशेष ध्यान नहीं देते। जब रोग उग्र रूप धारण कर लेता है तभी चिकित्सक की शरण लेते हैं और रोग के थोड़ा शमन होते ही चिकित्सा बन्द कर देते हैं। कई दिनों के बाद रोग फिर उखड़ आता है। इस प्रकार इस रोग की बार-बार पुनरावृत्ति होती रहती है। रोग जीर्ण अवस्था में चला जाता है। इस अवस्था में रोग के कई उपद्रव भी पैदा हो जाते हैं, जो इससे भी अधिक कष्टकारक एवं दृष्टि अवरोधक देखे गये हैं। इसलिए रोग पैदा होते ही चिकित्सा आरम्भ करवा देनी चाहिए। यह चिकित्सा जब तक रोहे जड़ से न मिट जांय तब तक बराबर चालू रखनी चाहिए।

योषापस्मार और हींग

लेखक—पं. हरिनन्दन जी मिश्र वैद्य, भुड़िया पो. सन्हौला (भागलपुर)

परिचय—

शेख हमीद की स्त्री। उम्र—१८ वर्ष।

ग्राम—असनाहां, पो० सन्होला।

रोगिणी को रोगग्रसित हुए करीब एक सप्ताह हो चुका था, जब यह अन्य स्थान से यहां लाई गयी। यहां लाने के पूर्व कई हकीमों की चिकित्सा हो चुकी थी। बीमारी बढ़ती ही जाती थी। यहां आकर समीपस्थ दातव्य चिकित्सालय के सरकारी डाक्टर साहब को बुलाया गया किन्तु ये असफल रहे। लड़की के अचानक बेहोश हो जाने पर शेख साहब ने समझा कि कजा कर गयी और दरवाजे की सीकड़ी बंद कर खुद भी विह्वल हो उठे। किन्तु बात ऐसी नहीं थी। मुझे बुलाया गया।

मैंने देखने के साथ ही कहा कि यह योषापस्मार (Hysteria) की रोगिणी है। पूछने पर पता लगा कि मूर्च्छा होने के पहले बांयी ओर पेट में दर्द का होना, रह-रह कर जम्भाई का आना और सर में चक्कर आकर आंखों के सामने अन्धेरा छा जाना आदि लक्षण उपस्थित हो जाते हैं। कभी-कभी अप्रासङ्गिक रोना, चिल्लाना और हँसना आदि भी हो जाया करता है। विशेष लक्षण—पेट में भयानक दर्द (जो एक हकीम साहब की कृपापूर्ण भेंट थी, इन्होंने कोई औषधि पैखाना कराने के लिये दी थी जब कि पैखाना तो दूर रहा उल्टे पेट में भयानक दर्द पैदा हो गया) का होना, जोरों का डकार आना, और रह-रहकर बेहोश होना लक्षण मौजूद थे।

तीन दिनों तक की दवाई का क्रम—

१—वातकुलान्तक रस दिन-रात में चार बार अर्जुन त्वक् २ तोला के काथ के साथ।

२—पञ्चसकारचूर्ण दस बजे रात्रि में गरम जल के साथ।

३—सर्पगन्धादिचूर्ण संध्या को ५ बजे दही के साथ।

४—कट्फलादि नस्य (समयानुसार)।

५—महानारायण तैल शिर पर मालिश के लिये (कभी-कभी गव्यघृत और कपूर को मिलाकर भी शिर पर मालिश किया जाता था)।

इन तीन दिनों में उपरोक्त औषधियों से कोई खास फायदा नजर नहीं आया। हां, साधारण फायदा अवश्य नजर आता था। पुनः बुलाया गया। ऐसी अवस्था देखकर घर वालों को किसी प्रकार सान्त्वना देकर मैं घर वापस आया।

मेरा ध्यान हींग की ओर आकृष्ट हुआ क्योंकि कई बार इसके अनुभव मुझे प्राप्त हुये थे। करीब १२ रत्ती हींग को पानी के साथ एक कर शीशी में रख लिया और दूसरे दिन मौलवी हमीद जी को काफी दिलासा देकर औषधि के साथ विदा कर दिया। उन्हें यह भी कह दिया कि यह हींग मिश्रित एक योग है जो अस्वादिष्ट है। इसे किसी प्रकार अवश्य खिलायेंगे, दिन भर में तीन बार दिया जाय। शाम को मौलवी साहब मेरे चिकित्सालय में आये और कहा—क्या कहूँ साहब यह दवाई नहीं बल्कि मर्ज को ठीक करने के लिये जादू की छड़ी है। मैंनें पुनः वैसा ही किया। इस क्रम से दवाई ४ दिनों तक दी गई। उसके सारे दोष रफूचक्कर होगये। बाद में तीन सप्ताह तक दवाई निम्नलिखित क्रम से दी और रोगिणी पूर्ण स्वस्थ हो गई।

१—वातकुलान्तक रस सायं प्रातः एक-एक गोली हींग के साथ।

१—अर्जुनारिष्ट सवा-सवा तोले बराबर का जल मिला कर दोनों समय भोजनोपरान्त।
पथ्य में दूध भात।

तीन वर्ष होता है रोगिणी पूर्ण स्वस्थ है। अभी गोद में एक वर्ष की बच्ची भी है।

गोमूत्र पर मेरे अनुभव

लेखक—श्री वैद्य शेषराव जैन आयुर्वेदरत्न (प्र०खं०)
सोहागपुर पो० सापना-सरोवर (वैतूल)

गोमूत्रं कटु तीक्ष्णोष्णं क्षारं तिक्तकषायकम् ।
लघ्वग्निदीपनं मेध्यं पित्तकृत्कफवातहृत् ॥
शूलगुल्मोदरानाहकण्डूवक्षिमुखरोगजित् ।
किलासगदवातामवस्तिरुक्कुष्ठनाशनम् ॥
कासश्वासापहं शोथकामलापाण्डुरोगहृत् ।
कण्डूकिलासगुदशूलमुखाक्षिरोगान् ,
गुल्मातिसारमरुदामयमूत्ररोधान् ।
कासं सकुष्ठजठरक्रिमिपाण्डुरोगान् ,
गोमूत्रमेकमपि पीतमपाकरोति ॥
सर्वेष्वपि च मूत्रेषु गोमूत्रं गुणतोऽधिकम् ॥
अतो विशेषात्कथने मूत्रं गोमूत्रमुच्यते ।
प्लीहोदरश्वासकासशोथवर्चोग्रहापहम् ॥
शूलगुल्मरुजानाहकामलापाण्डुरोगहृत् ।
कषायं कटु तीक्ष्णं च पूरणात्कर्णशूलनुत् ॥
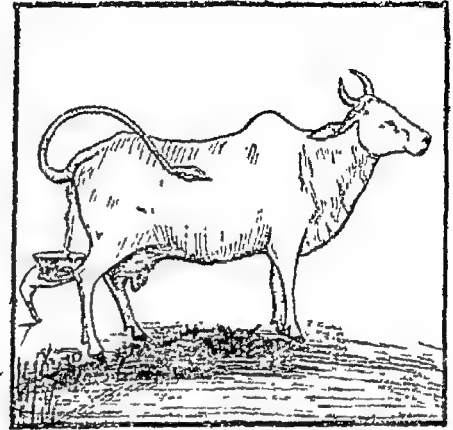
आचार्य भावमिश्र की उपरोक्त पंक्तियां गोमूत्र की महत्ता का जाज्वल्यमान प्रमाण देकर अतीत अनागत और वर्तमान को अपने वैज्ञानिक चरमोत्कर्षीय ज्ञान का शंखनाद दशों दिशाओं में कर रही हैं।

गुण दोष प्रभाव

आयुर्वेदानुसार—

गोमूत्र शास्त्रानुसार चरपरा,तीक्ष्ण,उष्ण, क्षारीय, कषाय, हल्का, कटु, अग्निप्रदीपक और मेधा को हितकारी है। यह पित्तकारक और कफ-वातनाशक है। इसका विविध प्रकार से सेवन करने से कफ,वात, शूल, गुल्म, उदर आनाह, कण्डू, मुखरोग, नेत्ररोग, किलासकुष्ट, वातिक रोग, वस्तिरोग, कास,श्वास,शोथ पाण्डु-कामला, तथा क्रमि रोगों का नाश होता है।

समस्त मूत्रों में गोमूत्र ही सर्वश्रेष्ठ कहा गया है। अतः जहां केवल मूत्र ही कहा गया हो वहां गोमूत्र ही लेना उचित एवं अपेक्षणीय है।

१ कर्णशूल—

ताजा गोमूत्र एक चम्मच में लेकर थोड़ा सा सेंधानमक डाल कर गर्म करें और सुहाता-सुहाता कर्ण में पूरण करें। इससे कर्णनाद और कर्णशूल में लाभ होता है।

२ कर्ण-बाधिर्य—

गोमूत्र ५ तोला, बकरी का दूध ५ तोला, नीबू का रस १५ तोला, यवक्षार १ तोला, बेल का गूदा १० तोला, इन समस्त वस्तुओं को एकत्र घोट लें। शुद्ध तिली का तैल १। सेर लेकर उसे मन्द अग्नि पर तप्त करें उसमें बिच्छु जीवित (काला) और मोर का १ पैर डाल दें जब दोनों जलकर ठठरी बन जावें तो निकाल देवें। पश्चात् उपरोक्त घोटा हुआ द्रव्य डाल कर चम्मच से हिलाते जावें जब अनुमानित आधा जलने सा लगे तब बकरी का दूध और नीबू

का रस १-१ पाव समुद्रफेन ४ तोला में घोट कर छोड़ दें। जब सब जलकर चड़चड़ाहट बन्द हो जावे तब उतार कर छान लें तथा शीशियों में भर दें। प्रतिदिन कर्ण का प्रक्षालन कर सतत २-३ बार प्रतिदिन ३ माह तक डालने से जन्म के बहरे को भी सुनाई देने लगता है। मैंने कई रोगियों पर आजमाया है। परीक्षा प्रार्थनीय है। यह योग मैंने आज तक कहीं नहीं बताया है।

शुष्क कण्डू—

सूखी खाज (फोड़े वाली नहीं) पर सुबह भैंस जैसे ही गोबर करे वह गर्म-गर्म गोबर समस्त शरीर में खूब मर्दन करें पश्चात् उसी पर तत्क्षण किये हुए गर्म-गर्म गोमूत्र से समस्त शरीर धो डालें। धूप में एक घण्टा सिर को ढांक बैठें (सूर्य स्नान करें) पश्चात् नीम की पत्तियों से उबाले हुए जल से स्नान कर शरीर पर चिकनाई के लिये थोड़ा आमले का तैल लगा लें। तीन दिन में ही शुष्क कण्डू का पता न मिलेगा।

गीली खाज—

यदि खाज फोड़ों के समान है। तो निम्न मलहम बनावें।

अर्कपत्र स्वरस	५ तोला
कलई के चूने का नितारा जल	५ तोला
मैनसिल	६ माशा
मुर्दाशंख	६ माशा
नीलाथोथा	१॥ माशा
आंमलासार गंधक	१ तोला
लाल फिटकरी	१॥ माशा
गोमूत्र	५ तोला
करञ्जी का तैल	१० तोला
नीबू का रस	५ तोला

विधि—करञ्जी के तैल को आग पर गर्म करने रखें उसमें चूने का पानी, अर्कपत्र रस, गोमूत्र तथा नीबू का रस डाल दें। जब चटचटाना बन्द हो जावे, तब उतार कर शेष औषधियां पीसकर मिला दें। प्रथम त्रिफला और नीम की पत्तियों के क्वाथ से धोकर पानी सुखा कर रूई (कपास) की फुरेरी से उपरोक्त औषधि लगावें। अधिक से अधिक ७ दिन में कैसी ही खाज क्यों न हो ठीक हो जावेगी। साथ ही ७ दिन तक लगातार लगभग ४ तोला गोमूत्र २॥ माशा शहद और २ रत्ती शुद्ध गंधक मिला कर केवल प्रातः सेवन करना चाहिये।

कृमि-विकार—

वायबिडङ्ग चूर्ण	१ तोला
बेलगिरी	१ तोला
कबीला	६ माशा
अजवायन खुरासानी	१ तोला
डीकामाली	६ माशा

सबका चूर्ण कर गोमूत्र की २१ भावना देकर पश्चात् मकोय स्वरस और शहद समभाग यथावश्यक डालकर घोट लें और चना बराबर गोलियां बना लें। एक या आधी गोली अवस्थानुसार दें। अनुपान गोमूत्र २॥ माशा + शहद २॥ माशा अथवा अवस्थानुसार अथवा केवल शहद से देकर पश्चात् एरण्ड तैल पिला दें।

२—गोमूत्र १ चम्मच में १ माशा हींग १ माशा शहद और २ रत्ती कबीला मिला कर पिला देने से भी कृमि विकार अपने उपद्रवों सहित समाप्त हो जाता है।

उदर शूल—

१—४ तोला गोमूत्र में लोहा गर्म कर बुझा दें और पिला दें अधिक से अधिक २ घण्टे में उदरशूल शांत हो जावेगा।

२—घोड़े की लीद का रस १ तोला, गोमूत्र १ चम्मच और शहद ६ माशा मिला कर पिलाने से भी उदरशूल में लाभ होता है। अनुभूत योग है।

३—गोमूत्र २॥ तोला शहद ६ माशा कच्चा चूने का पानी २॥ तोला नौसादर १ माशा गर्म कर पिलाने से उदरशूल में लाभ होता है।

पाण्डु कामला—

१- गोमूत्र		४ तोला
नवसादर		१ माशा
कुटकी	शहद	२॥-२॥ माशा

—प्रथम गोमूत्र में लोहा अच्छा लाल-लाल गर्म करके पश्चात् उपरोक्त चीजें मिलाकर केवल सुबह शाम पीवें, भोजन में केवल मट्ठा जीरा काली मिर्च और सैंधव डालकर लेवें। ७ दिन बाद दूध और शहद पीवें। तृतीय सप्ताह में पपीते अथवा मूली का साग, मूंग की दाल, पुराने चावल का भात और हाथ से पीसे हुए गेहूँ के आटे की रोटी के ऊपर की पपड़ी लें। पांडु और कामला से पीड़ित दिल्ली राज्य के आस-पास की रुग्ण जनता को वैद्यजन इस प्रयोग को करके देखें। पीने को सौंफ का औटाया पानी दें।

२--त्रिफला १॥ माशा त्रिकुटा १॥ माशा और नवायसलौह गोमूत्र में रात्रि को फूलने डालें। सुबह गोमूत्र नितार दें, और शेष पीसकर शहद और मूली का रस २ तोला मिलाकर चटादें। इसी प्रकार सुबह को भीगने (फूलने) रखकर शाम को प्रयोग करें। पथ्य क्रमांक १ के अनुसार करें। कई बार का अनुभूत है।

उक्त दोनों प्रयोग साथा साथ भी किये जासकते हैं, जबकि रोग की अवस्था अत्यन्त तीव्र हो और शोथ भी हो तब प्रथम प्रयोग ४ बजे प्रातः तथा दूसरा प्रयोग ८ बजे लें उसी प्रकार शाम को भी दें। कटुतुम्बी के स्वरस की नस्य भी दिया करें।

उदर रोग—

४ तोला गोमूत्र में शंखभस्म २ रत्ती पुनर्नवादि मंडूर २ रत्ती से ४ रत्ती और शहद १॥ माशा मिलाकर प्रतिदिन पीने से यकृतप्लीहोदर सहित जलोदर को छोड़ सब उदर रोगों में लाभ होता है। पथ्य में पपीता, मूली, चौलाई का शाक, दूध गाय या बकरी का पुराने चावल का भात, मूंग की दाल, अंगूर, संतरा, आदि फल दें।

जलोदर—

गोमूत्र २ सेर को लोहपात्र में औटावें और नीचे का क्षार ग्रहण करें। अथवा यह क्षार गोमूत्र को सूर्यताप से तापित कर प्राप्त करें। यह क्षार २ रत्ती नौसादर २ रत्ती, पुनर्नवादि मंडूर ४ रत्ती और जलोदरारि रस १ रत्ती लेकर गर्म जल अथवा मूली के रस व शहद से दें। पथ्य--उदर रोगानुसार करें।

पार्श्वशूल निमोनियां में लेप—

गोमूत्र में सांबर का सींग चन्दनवत् घिसें। इसमें सिंदूर ३ माशे, चूने का पानी २ तोला और शहद २॥ तोला डालकर गर्म करें। पश्चात् वक्ष अथवा पीड़ित स्थान पर सुहाता-सुहाता प्रलेप कर ईंट के टुकड़े को अग्नि में लालकर चिमटी से पकड़कर सेंक करें, सूखने पर फलालेन का टुकड़ा रख लपेट दें। एण्टीफ्लाजिस्टीन के प्लास्टर के बाप का काम देगा। प्रयोग प्रार्थनीय है।

कास-श्वास—

१--अद्रक स्वरस १ तोला, वासा स्वरस १ तोला, गोमूत्र १ तोला शहद १ तोला चारों वस्तुओंको दिन में ४ बार तक दें। बालकों को भी अर्ध और चतुर्थांश मात्रा में ४ बार तक रोगावस्थानुसार दें। बहुत छोटों को भी २-२ बूंद प्रतिदिन चाटने या घुटी रूप में दें और चमत्कार देखें।

२--लेंडी पीपल १, कृष्ण जीरा १ माशा, कुलिञ्जन १ माशा, कार्कटशृङ्गी २, गोमूत्र में रात्रि को फूलने डाल दें। सुबह गोमूत्र फेंक कर पीसकर कल्क बनालें, इस कल्क को शहद के साथ सेवन कर ऊपर से ७ लहसुन की कलियां डालकर उबाला हुआ १ पाव दूध पीवें। इसी प्रकार शाम को भी लें। पुराने श्वांस-रोगी लगभग १ माह प्रयोग कर फल देखें।

शोथ—

चाहे जिस प्रकार का शोथ हो गर्म-गोमूत्र का परिषेक करो। आवातिक शोथ में अङ्ग को गोमूत्र में डुबा ही देना चाहिये। डूबने योग्य न हो तो लोटे

से गो-मूत्र शोथ स्थान पर धार से छोड़ना चाहिये, पश्चात् गो-मूत्र में ही हल्दी, आमाहल्दी और पुनर्नवा चन्दनवत घिस गर्म करें, गर्म करते समय १ तोला प्याज का स्वरस और १ माशा अफीम डालदें। पश्चात् गर्म सुहाता-सुहाता प्रलेप करें। दूसरे ही दिन शोथ उतरता दृष्टिगत होगा। अन्य प्रकार के शोथ में चाहे भयंकर शोथ क्यों न तो १० सेर गो-मूत्र में १० तोला कबूतर की विष्ठा और २० तोला पुनर्नवा (सांठी) डालकर गर्म करें। पश्चात् बंद स्थान में शोथ रोगी को स्नान करावें, हो सके तो टब में या अन्य लम्बे वर्तन में इस गोमूत्र द्रव को डालकर रोगी को इसमें लिटादें, यह क्रिया क्रम से ५ मिनिट से ३० मिनिट तक बढ़ाते ले जावें। पश्चात् रोगी को गर्म कपड़े से पोंछकर, दूध १० तोला में २॥ तोला ब्रांडी या मृतसंजीवनी सुरा १ गोली शोथहर लोह, १ गोली महालक्ष्मीविलास देकर सुला दें। दो घंटे पश्चात् ही पसीना निकलेगा। दूसरी बार गोमूत्र २ तोला, नवसागर २ रत्ती, शोथहर लोह १ गोली, अभ्रक भस्म १ रत्ती शहद से दें। इस प्रकार भयंकर शोथ भी पलायन करेगा। मैंने इस योग को अभी-अभी 'रवाग' ग्राम में १ देवी को (नाम याद नहीं आ रहा) जिनके पति को गौली समाज महंत जी कहता है, मरणासन्न अवस्था से अच्छा किया है।

गोमूत्र के द्वारा ही समस्त धातुओं का शोधन होता है। गोमूत्र द्वारा ही हम अपने धार्मिक कृत्यों में शुद्धि करते हैं। शीतला प्रकोप के समय गोमूत्र और नीम रखकर हम गृहबाधा और प्रेत-बाधा के पलायन में विश्वास करते हैं। गोमूत्र द्वारा ही आत्म शुद्धि और समस्त शुद्धि तथा मंगल कार्यों की पूर्ति होती है। पंचगव्य जिसके द्वारा मानव का काया-कल्प तक हो सकता है, गोमूत्र उसी पंचगव्य का एक अंश है।

पृष्ठ ६०२ का शेषांश।

(१५) कासनी (१६) जलापा
(१७) बेलाडोना (१८) कालमेघ
(१९) हाड़जोड़ (अस्थिसंहारी) (२०) मैदा लकड़ी
(२१) सालम (२२) कुलञ्जन
(२३) कोलकन्द (२४) हृत्पत्री
(२५) गिरिपर्पट (२६) सर्पगन्धा
(२७) गुड़मार (२८) विजयसार (असन)
(२९) अनन्तमूल (३०) जितियान
(३१) जैतून (३२) उन्नाव
(३३) आलू बुखारा (३४) बनफशा
(३५) गावजवां (३६) जूफा
(३७) रेवन्दचीनी (३८) इफेड्रा (सोम)
(३९) ममीरा (४०) चालमोंगरा
(४१) बला चतुष्टय (४२) विदारीकन्द
(४३) वाराहीकन्द (४४) चिरायता
(४५) रतनजोत (४६) शालपर्णी
(४७) पृष्ठपर्णी (४८) अरलू
(४९) खतमी (५०) खंभारी
(५१) पाढ़ल (५२) जीवक
(५३) ऋषभक (५४) मेंदा
(५५) महामेदा (५६) ऋद्धि
(५७) वृद्धि (५८) काकोली
(५९) क्षीरकाकोली (६०) विडङ्ग
(६१) कबीला (६२) सतौना
(६३) देवकांडर (६४) चोपचीनी
(६५) उशबा (६६) मुचकन्द
(६७) वनहल्दी (६८) वन आदा
(६९) जख्मेहयात (७०) कपूर
(७१) पिपरमेंट

उपरोक्त वनस्पतिओं का भेदादि सहित रङ्गीन सचित्र वर्णन 'धन्वन्तरि' में होकर निर्णयान्तर निघण्टु का जितना शीघ्र अङ्ग वन जाय उतना ही आयुर्वेद और आयुर्वेदज्ञों का गौरव है। वैद्य समाज इस ओर शीघ्र ध्यान देगा।

एरण्ड के सफल प्रयोग

लेखक—श्री डा० सन्तोषकुमार जी जैन A. M. S. आयुर्वेदाचार्य ।
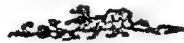
यह मानी हुई बात है कि 'एरण्ड' का पेड़ ऐसी भूमि में भी उग आता है जहाँ हरियाली तक नहीं उगती और रेगिस्तान जैसी भूमि ही क्यों न हो उसमें इसकी उत्पत्ति हर गांवों में देखी गई है ।

(१) जहाँ पर एरण्ड के पेड़ों का बगीचा खड़ा हुआ रहता है वहाँ पर सर्पों एवं मच्छरों का निवास-स्थान नहीं रहता है, तथा वहाँ की हवा शुद्ध एवं स्वास्थ्य के लिए लाभप्रद सिद्ध हुई है । यह मलेरिया (विषमज्वर) से बचने का सबसे बड़ा प्राकृतिक साधन है । प्रत्येक व्यक्ति को इस प्राकृतिक साधन से अवश्य लाभ उठाना चाहिए ।

(२) साँप के काट लेने पर प्रारम्भिक आवश्यक बंधनादि देकर तुरन्त ही एरण्ड के पत्तों का स्वरस निकालकर गुलाबजल में बराबर मात्रा में मिलाकर एक-एक घण्टे से सर्पदंष्ट्र रोगी को एक एक तोला की मात्रा में देते रहने से विष का पचन रक्त में न होकर उल्टी द्वारा विषवमन हो जाने से शरीर पर सर्पविष का असर नहीं हो पाता है और रोगी भी विष के असर से मुक्त होकर मृत्यु के कराल गाल से ग्रसित होने से बच जाता है ।

(३) बिच्छु के काट लेने पर प्रारम्भिक बन्धनादि आवश्यक काम करके जल्दी से एरण्ड के पत्तों का स्वरस निकाल कर सिरके में सम भाग मिलाकर दस-दस मिनट के अन्तर से उस बने हुए स्वरस को काटे-हुए अङ्ग के विपरीत कान में डालते रहने से आधा घंटे के अन्दर ही विष दूर हो जाता है । स्थानिक जलन एवं दर्द में भी काफी फायदा होता है ।

(४) एरण्ड की जड़ को घिसकर गाय के घी में डालकर गरम करें, कुछ गरम रहने पर औरतों को बच्चा पैदा होते समय पिलाने से प्रसव वेदना ज्यादा नहीं होती है और बच्चा भी आसानी से हो जाता है । किसी प्रकार की रुकावट नहीं होती है । बशर्ते कि बच्चा गर्भाशय में सिर नीचे और पैर ऊपर सीधी तौर पर (Normal Presentation or Normal Position) अपना स्थान लिए हो । प्रसव होते समय दाइयों एवं ग्रामीण अनुभवी औरतों को ठीक स्थान पर बच्चा है या नहीं, इस दवा को इस्तेमाल करने से पहले मालूम कर लेना चाहिए, नहीं तो हानि होने की सम्भावना रहती है । जहां कहीं मुझे प्रसव केस देखने को मिले वहाँ इस प्रयोग को सिद्धहस्त पाया और कोई तकलीफ उठाने का मौका नहीं आया ।

(५) बच्चों के दांत जब निकलने वाले होते हैं उस समय बच्चों को काफी तकलीफ उठानी पड़ती है और आंख आना, टट्टियां लगना, बुखार आना आदि हो जाते हैं । इनसे बचने के लिए बच्चों के दांत निकलते समय एरण्ड के पत्तों का स्वरस निकालकर थोड़ी सी मात्रा में रस को लेकर शहद में मिलालें और बच्चों को आवश्यकतानुसार चटाते रहें । इससे दांत आसानी से निकल आते हैं । इस प्रयोग को मैंने गांवों के बच्चों में प्रयोग करके देखा है, इसमें भी मैं सफल रहा हूँ ।

(६) बच्चों की आंखों की बराबर सफाई न होने से बच्चों को आंखों में रोग हो जाया करते हैं और बार बार आंखें आ जाया करती हैं । इस लिए आंखों के रोगों से बचने के लिये एरण्ड के तैल का दीपक जलाकर उससे काजल बना लें और बारीक पीसकर अंजन की तरह आंखों में उस

—शेषांश पृष्ठ ६०२ पर ।

आयुर्वेद की संदिग्ध वनस्पतिएँ

लेखक—श्री वैद्यचार्य उदयलाल महात्मा, देवगढ़ (उदयपुर)

वर्त्तमान तीव्रगति से प्रगतिशील वैज्ञानिक युग में जब हम अपने वनौषधि भण्डार याने निघण्टुओं की ओर दृष्टिपात करते हैं तब हमें बड़ा भारी दुःख और सन्ताप होता है। राष्ट्र की आजादी का आठवां वर्ष बीत रहा है, हमारे यहां जो वनौषधियें आज से ५० वर्ष पूर्व संदिग्ध थीं आज भी बनी हुई हैं। आयुर्वेद की पत्र-पत्रिकाऐं भी सब ओर से निकल रही हैं। परन्तु शोध और पुनर्निर्माण की ओर प्रकाशकों, और आयुर्वेद के कर्णधारों का ध्यान नहीं है। हर वर्ष महासम्मेलन होता है फिर भी हमारा औषध-ज्ञान जहां का तहां है। डाक्टरी में हर वर्ष वर्षान्त में नूतन (Latest) जो उस वर्ष में निर्णय हुए हैं वो सर्वानुमति से काफी ऊहापोह के बाद निकलते हैं और वे भी सब क्षेत्र में याने वनौषधि निर्णय, कायचिकित्सा, भैषज्य-निर्माण, शल्य, शालाक्यादि में; पश्चात् वे निर्णय आगे छपने वाली आवृत्तियां में समावेश हो जाते हैं। आयुर्वेदज्ञ इतना सब कुछ देखते हुए भी अपनी गति में तेजी, ठोसपन, पुनर्निर्माण और शोध के क्षेत्र में नहीं लारहे हैं; तो फिर कब लावेंगे ?

हमारे निघण्टु से यूनानी में तीन गुनी और डाक्टरी में दसगुनी वनौषधियां हैं उनके गुण धर्म और पहिचान का निर्णय होकर अब तक भी उनको हमारे द्रव्य गुण का अङ्ग नहीं बनाया गया है, यह खेद का विषय है।

सिनकोना (Cinchona) की खेती हमारे देश में होती है। क्वीनाइन देश में बनती है और उसका उपयोग भी बचा-बचा करता है, लेकिन भावप्रकाशादि निघण्टुओं में आज तक भी उसका कहीं जिक्र नहीं आया है। किसी आयुर्वेद पत्रिका ने उसका रङ्गीन चित्र प्रकाशित नहीं किया है। इससे हमारी ज्ञान पिपासा कितनी है ? नवीन जानकारी की ओर वैद्य समाज की कितनी लगन है ? अपने शास्त्र का पुनर्निर्माण करने एवं शोध करने की ओर क्या स्थिति है ? यह इस उदासीनता से ही प्रगट है। इस ओर आयुर्वेदज्ञों को तत्काल ध्यान देने की आवश्यकता है।

यूनानी वनस्पतिओं का सचित्र वर्णन और उनके गुण धर्म पर विचार करके उनको शीघ्र निघण्टु में समावेश कराना चाहिए।

चिकित्सा में निम्न वनस्पतियां सदा ली जाती है ? निघण्टु में उनका सचित्र वर्णन नहीं है। इससे वैद्य समाज में ये वनौषधियां आज भी संदिग्ध बनी हुई हैं।

आयुर्वेद के कर्मठ विद्वान, व्यवसायी श्री. देवीशरण जी गर्ग से प्रार्थना की जाती है कि वे इस ओर भी ध्यान दिलावेंगे और योग्य विद्वानों से सचित्र लेख तैयार कराकर उनका प्रकाशन आगामी धन्वन्तरि के अङ्कों में कराके फिर प्रमाणिक निघण्टु में समावेश करावेंगे।

वनस्पतियां जो संदिग्ध बनी हुई हैं और जिनका जिक्र वर्तमान निघण्टुओं में नहीं है या नहीं के बराबर है वे ये हैं—

(१) उलट-कम्बल (२) सिंकोना
(३) यूकेलिप्टस (४) कलम्बा
(५) अयापान (विपल्यकरणी) (६) चाय
(७) काफी (८) पपीता (Egnesia)
(९) दरियाई नारियल (१०) गोंद कथीरा
(११) सुदाब (१२) हरमल
(१३) बोल (१४) रूमी मस्तङ्गी

—शेषांश पृष्ठ ६०० पर।

फरीद बूटी

लेखक—वैद्य स्वामी रामनाथ "वियोगी" पो० छापर (राजस्थान)

धन्वन्तरि के जौलाई के अंक में मैंने एक स्वप्नप्रमेह-नाशक योग लिखा था उसमें फरीद बूटी का समिश्रण था, अतः कई वैद्यों के पत्र "फरीद-बूटी" के परिचय सम्बन्धी मेरे पास आये, अतः फरीद बूटी का विशेष विवरण इस प्रकार है।

फरीद बूटी—

यह एक कठोर जाति की झाड़ी होती है, जो उत्तरी हिन्दुस्तान व राजस्थान प्रान्त में कहीं-कहीं पाई जाती है। पश्चिमी राजपूताना व सिंध में भी पैदा होती है।

हिन्दी-संस्कृत में फरीद बूटी का कहीं नाम नहीं मिलता, युनानी ग्रन्थों में फरीद बूटी का उल्लेख मिलता है। ग्रामीण लोग 'मुलेई' या फरीद मूली कहते हैं।

जहां जल अधिक मात्रा में ठहरता हो वहां एवं ताल नदी या सरोवर के किनारे भी मिलती हैं। इसके फूल गुलाबी रङ्ग के होते हैं। पत्तों पर सफेद रोम से निकले रहते हैं। यह पौधा जमीन से करीब १०-१२ इञ्च ऊंचा होता है, इसके पत्ते गोल और काले होते हैं, पुष्प गुलाबी रङ्ग से युक्त एवं सफेद रोमदार होते हैं।

गुण—

प्राचीन समय में ग्रामीण लोग इसका उपयोग रक्त-स्राव एवं प्रदर में किया करते थे। पित्त जनित-स्राव एवं प्रदर और प्रमेह में, ठंडाई की तरह घोटकर मिश्री मिलाकर पीने से उपरोक्त रोग जड़ से नष्ट हो जाते हैं। इसका स्वाद तीक्ष्ण एवं चेपदार होता है।

पंजाब में सन्धिवात पर इसका प्रयोग करते हैं, सन्धिवात पर प्राचीन जमाने में इस जड़ी का विशेष उल्लेख मिलता है।

प्राचीन हस्त-लिखित प्रति में स्वप्नमेह-मधुमेह (डाई-विटीज) पर काफी वर्णन मिलता है।

स्वप्नमेहनाशक योग—

फरीद बूटी	२॥ तोला
आमला	२॥ तोला
गुलाब पुष्प	१। तोला
मिश्री	५ तोला

—उपरोक्त चारों औषधियों को कूट, पीसकर चूर्ण करलें, सुबह शाम ६-६ माशा एक पाव दूध के साथ लें। ४१ दिन लगातार लेने से अप्राकृतिक मैथुन सम्बन्धी स्वप्नदोष नष्ट होता है, शरीर में स्फूर्ति एवं ओज की वृद्धि होती है। इस औषधि के साथ "विद्युत-तिला" जो धन्वन्तरि के जौलाई अङ्क में दिया गया है उसकी मालिश करने से स्नायु-दौर्बल्य नष्ट होता है।

मधुमेह (डाईविटीज)—

फरीद बूटी के ३१ सेर पचाङ्ग को कूट-पीसकर ८४ सेर जल में भिगोवें। दूसरे दिन भभके द्वारा अर्क निकाल लें। १-१ तोला सुबह-शाम भोजन के बाद पीने से मधुमेह नष्ट होता है।

पृष्ठ ६०१ का शेषांश।

काजल को सोते समय लगावें। इससे नेत्रों की ज्योति अच्छी बनी रहती है, और रोग नहीं होपाते। इस अंजन का प्रयोग तो मैंने गांवों में अधिकतर होता हुआ देखा है, और ग्रामीण जनता डाक्टर या वैद्य के न होने से आंखों की बीमारी में तो पीढ़ियों से ही इसका प्रयोग करती आरही है।

इन सफल प्रयोगों को यदि विज्ञजन गांवों की दीन-हीन जनता जनार्दन की सेवा के लिए प्रयोग करके देखें और लाभप्रद होने पर विवरण इस सुप्र-सिद्ध मासिक आयुर्वेदप्रचारक "धन्वन्तरि" पत्र में प्रेषित करने की कृपा करें तो इससे आयुर्वेद जगत की विशेष सेवा हो सकेगी।

पैप्सु राज्य में आयुर्वेद की प्रगति

आयुर्वेद वृहस्पति पं० कान्तिनारायण जी मिश्र D. Sc. A. डायरेक्टर ऑफ आयुर्वेद द्वारा पैप्सु में आयुर्वेद की बहुत उन्नति हुई है। आपने अपनी विद्वत्ता के प्रभाव से त्रिदोषवाद के सिद्धांतों का अनुसरण करते हुए आयुर्वेद को पुनः सजीव रूप दे दिया है।

आयुर्वेदिक चिकित्सा से असाध्य से असाध्य रोग दूर होते हैं। अन्य पैथियों से इसमें यह भी विशेषता है, कि इस आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धति का अनुसरण करते हुए मनुष्य कभी रोग से ग्रस्त नहीं होता।

यह आयुर्वेदिक चिकित्सा मनुष्य को आध्यात्मवाद की ओर ले जाने में भी प्रमुख है। जो व्यक्ति आयुर्वेद के अनुसार दिन-चर्या और रात्रि-चर्या करते हैं, उनकी मानसिक व्याधियां ईर्ष्या, शोक, क्रोध आदि भी शारीरिक व्याधियों के साथ-साथ ही नष्ट हो जाती हैं। इसीलिए इस आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति को सारा विश्व अपनाता रहा है और भविष्य में भी यह अपना पूर्ववत् विश्वव्यापी रूप धारण कर लेगी। यदि हमारी सरकार इसी प्रकार से प्रान्त-प्रान्त में सहायता करने में तत्पर रही। क्योंकि इस आयुर्वेद की उन्नति आयुर्वेद के प्रकाण्ड विद्वानों द्वारा ही सम्भव है, जोकि इस पद्धति के मार्मिक तत्वों को सम्यक्तया समझे हों और जनता में उसका प्रत्यक्षीकरण करा सकें। आज आयुर्वेद के सच्चे कारनामों से स्वतंत्र भारत भी पूर्व काल की भांति प्रभावित हो चुका है, यह इसकी अपनी ही सम्पति है जिससे भारत गौरवशाली था।

आयुर्वेदिक कालेज—

इसका उद्देश्य आयुर्वेद को पुनः समृद्धि-शाली बनाना है। यह कार्य सुशिक्षित आयुर्वेद अनुयायियों द्वारा ही सम्पन्न हो सकता है। इस उद्देश्य की पूर्ति के निमित्त पैप्सु राज्य ने आयुर्वेदिक कालेज की स्थापना की। इसमें तुलनात्मक रूप से आयुर्वेद का अध्ययन आयुर्वेद की महत्ता रखते हुए कराया जाता है। इसमें २ कोर्स पढ़ाये जाते हैं—एक डिग्री कोर्स जिसका अध्ययन-काल ५ वर्ष का है, उत्तीर्ण होने के बाद छात्र को आयुर्वेदाचार्य G. A. M. S. की उपाधि प्रदान की जाती है। दूसरा कोर्स उपवैद्य का है जिसका अध्ययन काल १ वर्ष है।

विशेषता इस बात की है, कि अन्य प्रान्तीय संस्थाओं के मुकाबले में फीस केवल नाम मात्र ही सरकार लेती है। डिग्री कोर्स में ३० छात्र और उपवैद्य कोर्स में ५० छात्र प्रतिवर्ष लिये जाते हैं।

प्रथम पञ्चवर्षीय योजना में छात्रावास का उचित प्रबन्ध न था। इस कठिनाई को दूर करने के लिये एक नवीन छात्रावास बनाया जा रहा है, जिसमें कि २२६ छात्र सुविधापूर्वक रह सकते हैं। इस पर ७,६४,००० रुपया व्यय किया जायगा।

इसके अतिरिक्त एक विशाल एवं सुन्दर म्यूजियम और विस्तृत लायब्रेरी खोलने का भी पूर्ण आयोजन है।

आयुर्वेदिक होस्पिटल—

प्रथम पञ्चवर्षीय योजना के पूर्व जीर्ण एवं कष्टसाध्य रोगियों की चिकित्सा के लिए यहाँ पर कोई भी प्रबन्ध न था जहाँ पर उनकी शास्त्रानुसार चिकित्सा हो सके। इस कठिनाई का अनुभव कर गवर्नमेंट ने ५० शय्याओं का आतुरालय बनाया।

श्री. पं. कान्तिनारायण जी मिश्र

रोगियों की सुविधा के लिये ५ फैमिली वार्ड और ३४ क्वाटर बनाने का भी आयोजन है, जिससे रोगियों को किसी भी प्रकार की असुविधा न हो सके। इस आतुरालय में प्रतिवर्ष १८०:० रोगियों की चिकित्सा की जासकेगी।

वनस्पति संग्रहालय—

आयुर्वेद जानने वालों के लिए जड़ी बूटियों का ज्ञान परमावश्यक है। इस ज्ञान के बिना आयुर्वेदज्ञ दक्ष नहीं कहला सकता। इसकी पूर्त्ति के लिये पैप्सु राज्य ने द्वितीय पंचवर्षीय योजना में वनस्पति उद्यान बनाने की योजना स्वीकृति की है। जिससे कि वनौषधि संग्रहालय भी सुचारु-रूप से औषधियों का विक्रय करके वनस्पति उद्यान शालाओं का खर्चा पूरा कर सके। जो-जो जड़ी बूटी जिस-जिस स्थान पर हो सकती है उस स्थान के अनुसार उन्हें उगाने का प्रबन्ध किया जायेगा।

इसके प्रारम्भ करने से पैप्सु गवर्नमेन्ट की आय में वृद्धि के साथ-साथ आयुर्वेद कालेज के छात्रों को भी प्रत्यक्ष कर्म में सुविधा होगी। इन शुद्ध वनस्पतियों से औषधियाँ भी फार्मेसी में शुद्ध एवं शीघ्र लाभकारी बन सकेंगी।

इस कारण तीन स्थानों पर वनस्पति उद्यान लगाये जायेंगे।

१—जो जड़ी बूटियां एक हजार फुट की ऊंचाई पर उत्पन्न होती हैं। उनके उगाने का प्रबन्ध पञ्जौर में किया जायेगा।

२—२००० फुट से ५००० फुट की ऊंचाई पर कण्डाघाट में।

३—५००० फुट से ऊपर की ऊंचाई पर उत्पन्न होने वाली जड़ी-बूटियां टूटु के समीप जंगली प्रान्तों में।

फार्मेसी और स्टोर—

आयुर्वेद में चिकित्सा पद्धति को दो भागों में विभक्त किया हुआ है। १. उपकार-मूलक पद्धति २. व्यापार मूलक। उपकार मूलक दृष्टिकोण को लक्ष्य में रखते हुए पैप्सु गवर्नमेन्ट ने एक केन्द्रीय फार्मेसी का संचालन किया। इसमें व्यपारिक ढंग से औषधियें तैय्यार न होकर शास्त्रीय विधि अनुसार औषधियें तैय्यार होती हैं। इस फार्मेसी का कर्तव्य है, कि अपने आयुर्वेद विभाग के अधीन औषधालयों को जो निःशुल्क जनता की सेवा कर रहे हैं औषधियें शास्त्ररीति से बनी हुई देकर उन्हें सफल बनाये। और अब उसे ५१ औषधालयों के स्थान पर ११० औषधालयों को औषधियें देनी पड़ेगी, जिनका निर्माण बिना मशीनरी के होना असम्भव है। इसलिये मशीनरी एवं फार्मेसी के भवन और कर्मचारियों में भी वृद्धि की जायेगी।

५० आयुर्वेदिक औषधालय—

जिस देश का जो मनुष्य हो उसे उस देश का जलवायु के अनकूल उत्पन्न हुई औषधि ही अधिक लाभकारी रहती है। इस कारण आयुर्वेदिक औषधालयों द्वारा पैप्सु की तिहाई जनता अर्थात् १२ लाख जनता की प्रति वर्ष सेवा पूर्वक स्वास्थ्य प्रदान किया जाता है। इस पैथी के सेवाभाव से जनता में आयुर्वेद के प्रति श्रद्धा और विश्वास बढ़ता जारहा है। इसी कारण से ही जनता द्वारा आयुर्वेदिक औषधालयों की मांग भी बढ़ाती जारही है।

जनता की इस बढ़ती हुई अभिलाषा को स्वतन्त्र भारत में रोका नहीं जासकता। इस प्रकार पैप्सु गवर्नमेन्ट ने प्रति वर्ष ५-५-मील पर एक-एक औषधालय खोलने का आयोजन किया है। इस लिये प्रति वर्ष दश-दश अयुर्वेदिक औषधालय खोले जायेंगे।

डिवीजनल इन्स्पैक्टोरेट—

द्वितीय पञ्चवर्षीय योजना में ५० अन्य औषधालय खुल जाने से ११० हो जायेंगे। जिनका निरीक्षण करना भी आवश्यक है। तन्निमित्त पैप्सु के चार विभाग करके प्रत्येक इलाके के लिये एक-एक इन्स्पैक्टर रखने का आयोजन था। परन्तु धनाभाव से यह नहीं हो सका। अतः महेन्द्रगढ़, भटिण्डा और संगरूर जिला के निरीक्षणार्थ एक इन्सपैक्टर और पटियाला एवं कपूरथला जिला के लिए एक इन्स्पैक्टर, इस प्रकार पैप्सु के औषधालयों के निरीक्षणार्थ दो इन्स्पैक्टर रखें जायेंगे।

भगन्दरनाशक मरहम—
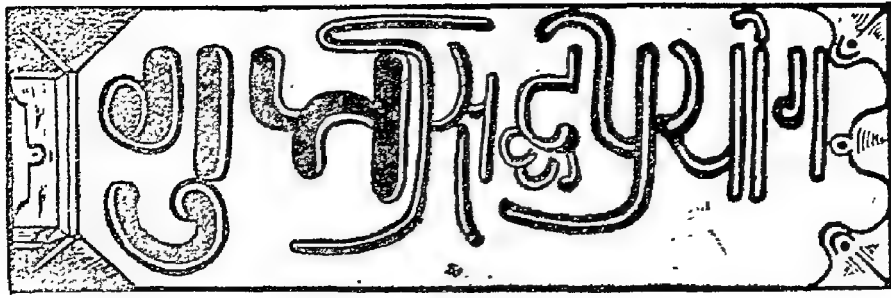
शुद्ध गंधक, भुना हुआ सुहागा
रस कपूर, भुनी हुई सुपारी
—प्रत्येक १-१ तोला

मुर्दे की जली हुई हड्डी	२ तोला
नीलाथोथा	४ माशा
१०१ बार धुला हुआ घी	६ तोला

विधि—ऊपर लिखी समस्त औषधियों का चूर्ण कर घी में भली भांति मिलाकर डब्बी में रख लेना चाहिए। पहिले नीम के पत्तों के क्वाथ से भगन्दर के व्रण को खूब धोकर तथा पोंछकर व्रण के अनुमान से बनाई हुई कपड़े की बत्ती को मरहम में डुबाकर सलाई या अंगुली से व्रण में रख देना चाहिए, इस प्रकार उपचार करने पर भगन्दर रोग बिलकुल ठीक हो जायगा।

तृष्णा शान्ति—

अकरकरा सैंधा नमक
सतमुलैठी दालचीनी
गोदन्तिहरताल —प्रत्येक ६-६ माशा
लौंग पिपरमेंट शुद्ध सिंगरफ
—प्रत्येक १॥-१॥ माशा

जायफल	१ माशा
चिकनी सुपारी	२ तोला

विधि—सबको बारीक पीसकर पानी से २-२ रत्ती की गोलियां बनावें।

मात्रा—बार-बार १ गोली मुंह में रखकर रस चूसना चाहिये।

गुण—प्यास की शान्ति होती है, जी मिचलाना, पेट-दर्द, अजीर्ण रोग दूर होता है।

—वैद्य शंकरलाल वर्मा वैद्यविशारद
आयुर्वेदिक औषधालय, हरणगांव (म. भा.)

× × ×

नेत्रानी गुलाब—

औषधि द्रव्य—अर्क गुलाब १ बोतल
रसौत शीतलचीनी
कपूर मूँगाभस्म फूलाजस्त
—प्रत्येक ३-३ माशा

फिटकिरी	४ रत्ती
मजीठ	३ माशा
अफीम	आधी रत्ती
तूतिया भुना	आधी रत्ती
शोरा कलमी	१ माशा
खश	३ माशा

विधि—उपरोक्त सब औषधियां कुछ गुलाबजल में एक साफ धुले मजे खरल में डालकर घोटें। घुटने पर इस दवा को उस १ बोतल गुलाबजल में डाल बोतल पर डाट लगाकर ५ दिन तक धूप में रक्खें। छानकर फिल्टर करें। छानने में मलमल का कोरा कपड़ा लें। बाद में बोतल में दवा भर कर रखलें।

उपयोग—एक-एक बूंद दवा को नेत्र में डालें। इससे दुखती आखों (नेत्राभिप्यन्द) में विशेष लाभ होता है। ४-५ दिन में ठीक होजाता है। नेत्रों की लाली, खटक, खाज, खुजली, जख्म, जलन-

दाह, कीचड़ पानी जाना आदि को नष्ट करता है, २० वर्ष का परीक्षित है।

—वैद्यराज नारायणदास वर्मा
कल्याणकारी औषधालय, देवनन्द (सहारनपुर)

× × ×

१-महानिम्बादि वटी—

मिश्रण द्रव्य—शुद्ध रसौत १० तोला
कहरवापिष्टी विजयसार का गोन्द
निम्ब फल की गिरी बकायन फल की गिरी
—प्रत्येक ५-५ तोला

उक्त द्रव्यों को वारीक कर दूर्वा के स्वरस में १ सप्ताह खरल करें। ४-४ रत्ती की गोली बनाकर सुखावें। तत्पश्चात् सूखने पर बोतल में भरकर रखलें।

मात्रा—१ गोली से २ गोली दिन में ३ बार दें।

अनुपान—शुद्ध जल।

उपयोग—रक्तार्श के धारा प्रवाह रक्त को ३ खुराक में रोकता है। जड़ से नष्ट करने के लिये धैर्य से २ माह तक सेवन करना चाहिये। मस्सों पर कासीसादि तैल का प्रयोग करना चाहिये।

सूचना—मलावरोध रहता हो, तो ४ माशे काली हरड़ का चूर्ण रात्रि को सोते वक्त सेवन करते रहने से शौच शुद्धि होती रहती है। और मस्से नष्ट होने में सहायता मिल जाती है।

पथ्य—सात्त्विक भोजन।

अपथ्य—गरिष्ठ भोजन, मैथुन, घोड़ा, ऊँट, साईकल की सवारी, गर्म पदार्थ हानिकारक हैं।

—वैद्य पं० परशुराम जी जोशी
श्री महावीर औषधालय, भीलवाड़ा (राजस्थान)

× × ×

दुखती आंखों पर-

फिटकिरी का फूला	१ तोला
कलमी शोरा	३ माशा
समुद्रझाग (फेन)	१ तोला
कपूर	आधा तोला

—कपूर के विना सब दवाईयां कूट-पीस कपड़छान कर अर्क गुलाब की एक बोतल में डाल दें। कपूर को उसी गुलाबजल से रगड़ते जायें जब घुलसा जाये वह भी उसी बोतल में डाल दें। जोर से हिलाकर एक दिन धूप में रक्खें। दवा तैयार है।

प्रयोग—दिन में तीन बार दोनों आखों में २-२ बूंद डालें। लाली एक दिन में ही दूर हो जायगी। इसके अतिरिक्त कुकरे रोहे और नजर की कमजोरी भी कुछ दिनों के प्रयोग से दूर होती है। रात को सोते समय नित्य प्रति इसको डालने से आंखों में कोई बीमारी नहीं होती।

कृष्णाञ्जन-

काला सुरमा	१ छटांक
फिटकिरी का फूला	२॥ तोला
समुन्द्र झाग	२ तोला
मुर्गी के अण्डे की जर्दी	२॥ तोला
काले सिरस के बीज	१ तोला

—सर्व प्रथम काले सुरमे को तपा-तपा कर सात बार त्रिफले के काढ़े में बुझावें। फिर खरल में डालकर घुटाई करें। जर्दी के सिवाय सब औषधियां वारीक कर मिला लें। फिर अर्क गुलाब में ३ दिन पर्यन्त रगड़ें। फिर जर्दी डालकर १ दिन अर्क गुलाब में रगड़ कर तीन माशे पिपरमेंट डाल दें। शीशी को बन्द रक्खें। व्यापार की दृष्टि से इसमें इच्छानुसार बोरिक मिलाकर बेचें।

प्रयोग—रात को सोते समय एक सलाई दोनों आंखों में डालें। चिट्टे फोले के लिए तांबे की सिलाई का प्रयोग करें।

गुण—इससे नजर की कमजोरी, खुजली, परवाल, कुकरे-रोहे आदि सब नेत्र-व्याधियां निर्मूल हो जाती हैं।

फोड़ा-फुंसीनाशक तैल-

निम्बपत्रस्वरस	३ छटांक
गिलोयस्वरस	२ छटांक
कलई	१ पाव
तैल सरसों	८ छटांक

—तैल सरसों को आग पर चढ़ा दें। जब झाग आने बन्द हो जावें तो नीचे उतार कर निम्ब और गिलोयपस्वरसत्र डाल दें। फिर अग्नि पर रक्खें। जब चिड़चिड़ शब्द बन्द होजावे तो उतार लें। गर्म-गर्म में कलई डाल दें। शीतल होने पर शीशियों छानकर में भर लें।

प्रयोग—खारिश (खुजली-खाज) पर सारे शरीर में मालिश करें। फोड़े फुंसियों पर रुई के फोहे से लगावें। घाव में फोहा रक्खें, कुछ ही दिनों में फुन्सियां फोड़े शान्त हो जाते हैं। यह चमत्कारिक तैल है। साधारण न समझें। ५ बूंद से १० बूंद तक अवस्थानुसार दुग्ध में डालकर पिलाया भी जा सकता है।

कर्णरोगान्तक तैल-

तैल सरसों	१ सेर
ऊँटनी	गाय
भैंस	गधी
घोड़ी	इनका पेशाब १-१ पाव
लहसुन	१ छटांक
गड्ढे का पानी	१ पाव
आक के पीले पत्ते	७-८

तैल आग पर चढ़ावें। जब झाग दूर हो जावे तब सब वस्तुयें डाल दें। तैल भाग अवशिष्ट रहने पर उतार छानकर रखलें।

प्रयोग—कान के अन्य रोगों की बात ही क्या इसके निरन्तर प्रयोग से बहरे भी अच्छे हो जाते हैं।

कब्जकुशा-

यह योग रसतन्त्रसार का है। मामूली लगता है पर इसका प्रभाव चकित करने वाला है।

एलुआ	२॥ तोला
सोंठ	२॥ तोला
शुद्ध देशी साबुन	२ तोला
हींग भुनी	६ माशे

—सब औषधियों को पीस कर इन्द्रायण के गूदे में गोलियां तैयार करें। चने बराबर गोली बनावें। मूलग्रन्थ में पानी के साथ गोली बनाने को कहा है। पर इस तरह बनाकर गोली अत्यन्त प्रभावशाली हो जाती है।

प्रयोग—एक से तीन गोली सोते समय दूध से लें। सुबह एक या दो टट्टी खुल कर आयेगी। अरुचि दूर होकर भूख लगेगी।

—वैद्य प्रीतमसिंह 'राही' दुख निवारण औषधालय सदर बाजार, बरनाला मण्डी।

× × ×

हृद्रोग की अमूल्य औषधि-

प्रवालपिष्टी	१ तोला
अनबिंधे मोती	१ तोला
सङ्गयशब सब्ज	जहरमोहरा पिष्टी
वंसलोचन	अकीक भस्म
छोटी इलायची का दाना प्रत्येक	१-१ तोला
कस्तूरी	३ माशा
केशर	३ माशा

—इन सबको खरल में डालकर १-१ सप्ताह अर्क गुलाब, अर्क केवड़ा, अर्क बेदमुश्क में घोट कर सुखा कर शीशी में रखें।

मात्रा और प्रयोग विधि—इसी की मात्रा ४ रत्ती की है। प्रातः मलाई में रख कर खिलावें, दोपहर को शर्बत अनार में मिलाकर चटावें, सायंकाल को आमले के मुरब्बे में रख कर खिलाकर ऊपर से अर्क गावजुबां १० तोला पिला देवें। बहुत गुणकारी है।

मस्तिष्क बलवर्धक-

जदिवार खताई	जहरमोहरा पिष्टी

चांदी के वर्क	सोने के वर्क
प्रवाल भस्म	प्रत्येक १-१ तोला

—इन सबको खरल में डालकर एक सप्ताह अर्क केवड़ा या अर्क वेदमुश्क में घोटकर मटर के बराबर गोलियां बनावें।

मात्रा—१ गोली एक समय में, दिन में तीन बार प्रातः दूध के साथ, दोपहर को अर्क गावजुवां के साथ और सायंकाल को दूध के साथ देवें।

—इन गोलियों के साथ में शराब, खटाई, चाय और उत्तेजक पदार्थों से परहेज रखें। ये गोलियां कई वार अनुभव में ली गई हैं; अत्यन्त गुणकारीहैं।

—श्री. वैद्य ऊधवदास जे. ललवानी आयु. रत्न कटनी।

× × ×

पीलिया पर—

कड़वा चिरायता	१ तोला
अजमोद	१ तोला
काली मिर्च	३ माशा
सुवर्णमाक्षिक भस्म	१॥ माशा
स्फटिका (फिटकरी) लाल	६ माशा
सोंठ	६ माशा
कुटकी	३ माशा
भारंगी	१ तोला
कपूर देसी	३ माशा
मुलहठी	१ तोला
मुनक्का बड़ा	१ तोला
स्वर्णमुखी (सनाय)	१ तोला
नेत्रवाला या सुगंधवाला	६ माशा

विधि—उपरोक्त सब वस्तुओं को पीस-कूटकर कपड़छन करके तुलसीपत्र स्वरस में मक्का प्रमाण गोली बनालें, यदि तुलसीपत्र स्वरस अधिक न मिल सके तो चूर्ण को शीशी में भरकर रखलें और नित्य आवश्यकतानुसारस्वरस निकाल गोली बना कर सेवन करें। मात्रा १-१ गोली क्रमशः सुबह-दोपहर-शाम पान के साथ सेवन करें, पान में सुपारी का निषेध है। तेल गुड़ खटाई वर्जित है। ५-७ दिन सेवन करने से पीलिया रोग में लाभ होता है। कुछ ही दिनों में जड़ से नष्ट होजाता है।

उपयोगी—पीलिया की दशा में।

पथ्य—दलिया-रोटी-मूंग की दाल आदि हल्के पदार्थ दें।

—वै० डा० तुलसीदास नाथूदास पुजारी H. L. M. S. गवली. पलासिया।

+ + +

पीलिया पर—

—गाय का सीत (मट्ठा) उसमें जीरा भुना और शक्कर (देशी खांड) मिला कर पीने को देवें। दिन में चार-पांच वार दें, भूख लगने पर शाम को चने की रोटी दें। इस प्रकार रोग शीघ्र शांत हो जायगा। हमने करीब १५ रोगी अपने गांव में इसी से ठीक किये हैं। अनुभूत है रोगियों के लाभार्थ प्रस्तुत है।

—प्रे. भीमसिंह आर मोरार E. M. E., C. O. D. जबलपुर।

+ + +

सुजाक पर—

काबुली हरड़	रेवनचीनी (लकड़ी)
आंवला (सूखा)	तवाशीर
वंशलोचन	शीतलचीनी

—हरेक १-१ तोला

विधि—उपरोक्त औषधियों को कूट कपड़छान करके कुल औषधि की ११ पुड़ियां बनालें।

उपयोग—रोगी को प्रातःकाल खमु हाथ धोने के बाद १ पुड़िया खिलाकर ऊपर से एक गिलास ठंडा पानी पिलावें। नित्य दस्त साफ आयेगा, मूत्र की

जलन बंद होगी। औषधि ११ दिन को होगी, उसका दूना २२ दिन परहेज करें।

अपथ्य—तेल गुड़ खटाई का बचाव करें। रोग नष्ट होगा। सैंकड़ों पर यह योग अजमाया हुआ है।

ताजी गुप्त चोट पर—

आंवा हल्दी मेदा लकड़ी
रक्तबोल घी गुवार (ग्वारपाठा) का गूदा

विधि—उपरोक्त-औषधियाँ पत्थर पर पानी में पीसकर (घिसकर) एक कटोरी में लेकर उसमें ग्वारपाठे का गूदा मिला कर अग्नि पर पकावें। गुप्त चोट पर (जो ताजी है) यह लेप गरम गरम लगावें, ऊपर से उपलों की आग से सेकें। चिमटा से अंगार पकड़कर। ३-४ दिन रोजाना दो बार ऐसा करें, सुबह और शाम करने से खून फट जायगा। फिर दर्द कभी नहीं उठेगा, योग अनुभूत है।

नेत्र रोगों पर—

काला नमक—मराठी में पादे लोंण, पादरा मीठु नाम है। काला नमक को पत्थर के खरल में पीसकर अंगार पर गरम करें, बाद में खरल में फिर एक पहर तक पीस कर खूब बारीक करें और सुरमेदानी में भरकर रखलें। नित्य प्रति रात्रि में १-१ सलाई दोनों आंखों में सोते समय लगाना चाहिए। बिस्तर पर चित्त ही लेटा रहे, आंख में का पानी नहीं छोड़े। नेत्र में नेत्र-गोलक (दीदा) चलाता फिराता रहे नींद आने के वक्त एक तरफ से आंखों में का पानी छोड़ देना चाहिए। बाद में इसी दशा में शांत सोजावे प्रातःकाल आंखों का सब मैल निकल जाता है। आंखें साफ कर लेनी चाहिए।

उपयोग—इसके प्रयोग से धुन्ध, जाला पड़ना, आंख से पानी बहना बन्द हो जाता है। यदि कोई चश्मा लगाने वाला है तो उसका चश्मा छूट जायगा। यह प्रयोग मैंने स्वयं अपने ऊपर अनुभूत किया है। मेरी आयु इस समय ६५ वर्ष की है बिना चश्मा के दिन और रात्रि में भली भांति लिख पढ़ सकता हूँ।

—राजवैद्य महंत सन्तोषानन्द गिरि जागीरदार
कल्याणी (बीदर-हैदराबाद)

+ + +

नेत्र सुधार—

लाल फिटकरी का फूला	१ तोला
सफेद फिटकरी	३ माशा
स्वच्छ जल	२ तोला

यह सब अग्नि पर पकाओ। पानी का चौथा भाग जल जाने पर उतार लो। पिपरमेन्ट १॥ रत्ती डालकर दो-तीन बार छानकर तीन तोला गुलाब-जल में मिला दो। दूसरे दिन साफ करके पुनः छान लो। प्रयोग में लाओ, दिन में तीन बार दो-दो बूँद आंख में दवाई डालो।

गुण—आँख की लाली, दर्द, खुजली, गर्दा, जलन, कीचड़ आदि दूर कर आँख स्वच्छ एवं शीतल रहती हैं।

खांसी की गोली—

अद्रक स्वरस	२॥ तोला
शक्कर	३ तोला
बगलापान का रस	१॥ तोला

—कलईदार पात्र में पकावें चाशनी तैयार होने पर आग से उतार लें।

सफेद इलायची	४ माशा
कत्था पपरिया	४ माशा
मोरैठी (मुलहठी)	३ माशा
बहेड़ा का छिलका	३ माशा
सोंठ	२ माशा

—महीन चूर्ण कर चाशनी में मिला मंग प्रमाण गोलियां बना छाया में सुखा लें।

गुण—गोली चूसने से सूखी खांसी, गले में [illegible]

पड़ जाता, आवाज बैठी हो तो कफ को बाहर निकाल कर गला साफ करती हैं ।

दन्त मञ्जन सफेद–

साफ अरारोट	५ तोला
भीमसेनी कपूर	१॥ माशा
पिपरमेन्ट	२ रत्ती

—सब एक में घोट दो ।

कोई भी इत्रादि सुगन्धि के लिए डालकर छान लो । प्रातः मंजन करने से दांत साफ होते हैं और आनन्द प्राप्त होता है ।

गुण—मुंह की दुर्गन्धि, कच्चा रक्त निकलना आदि कष्ट दूर करता है, दाँत चमकदार रहते हैं ।

कान की दवा–

कौड़ी भस्म (आग में भूनकर) पीस दो यह २॥ रत्ती, कान में डालकर ऊपर से नीबू का रस डाल दो । कान में दवाई खौलेगी। कान को साफ करके ऊपर से तिली का तेल डाल दो ।

गुण—कान का बहना, दर्द, सूजन, बहरापन दूर होता है ।

—श्री. कुंवर छविनाथसिंह जी रामपुर पो० मकरंदपुर (कन्नौज) ।

उपयोगी चुटकुले

[वैद्य हुकमचन्द जैन, आयुर्वेद विशारद ।]

१—गाय के गोबर में पीपल घिस कर नेत्रों में लगाने से रतौंधी में अवश्य लाभ होता है ।

२—यदि कर्ण में रक्तश्राव या शूल वेदना होती हो तो शतावरी का स्वरस डालना चाहिये ।

३—यदि किसी को भूत या प्रेत लगने से ज्वर आगया हो तो हुरहुर की जड़ कान में डालना चाहिये ।

४—करौंदा की जड़ को सिरके में पीस कर लगाने से दद्रु (दाद) मिट जाती है ।

५—दन्त-कृमि में अकलकरा या कपूर दाढ़ में दबाने से कृमि दूर हो जाते हैं ।

६—नागकेशर को चूर्ण करके अर्श रोग में देने से शीघ्र फायदा हो जाता है ।

७—कुटकी का चूर्ण करके रोगी को खिलाने से पाण्डु रोग दूर हो जाता है ।

८—सफेद सुरमा का चूर्ण प्रदर रोग में लाभदायक है ।

समाचार एवं सूचनाएँ

आयुर्वेद विश्वभारती
शिक्षा का माध्यम हिन्दी

इसी वर्ष ग्राम ज्योतिः केन्द्र द्वारा सरदारशहर राजस्थान में आयुर्वेद विश्वभारती का कार्य आरम्भ किया जारहा है। इसमें दीर्घ कालीन अनुभवों के आधार पर विभिन्न सरकारों द्वारा जिनका रजिस्ट्रेशन होगया है और इसी कारण जिन्हें चिकित्सा करने का अधिकार प्राप्त होगया है ऐसे वैद्यों को तथा आयुर्वेद की विभिन्न संस्थाओं से डिप्लोमा तथा उपाधि प्राप्त वैद्यों के लिए इसी अगस्त माह से विशेष योग्यता सम्पादन प्रशिक्षण "रिफेशर कोर्स" का पाठ्यक्रम प्रारम्भ किया जारहा है। साथ में विभिन्न सम्मानित विद्यालयों और संस्थाओं की अन्तिम उपाधि प्राप्त आयुर्वेद के स्नातकों के लिये विशेष योग्यता सम्पादन के लिए स्नातकोत्तर प्रशिक्षण और अनुसंधान कक्षायें चालू की जारही हैं।

रिफेशरकोर्स, स्नातकोत्तर प्रशिक्षण और अनुसन्धान की कक्षाओं में सम्मिलित होने वाले आयुर्वेद के विभिन्न वयः प्राप्त विद्यार्थियों के लिये आयुर्वेद विश्वभारती में शिक्षण का माध्यम कौनसी भाषा रहे? यह प्रश्न कई महीनों से विचार का विषय बना हुआ था।

आजकल आयुर्वेद के कुछ विद्यालयों में संस्कृत माध्यम शिक्षण होरहा है। कुछ नवीन पद्धति के आयुर्वेद के कालेजों में नवीन विषयों के लिये इंगलिश के अध्ययन-अध्यापन को जरूरी माना जारहा है। इस प्रकार संस्कृत इंगलिश और हिन्दी में से कौन सी भाषा को चिकित्सा विज्ञान के लिये माध्यम के तौर पर स्वीकार किया जाय इसके निर्णय में बड़ी दिक्कत आरही थी।

आयुर्वेद विश्वभारती की शिक्षा समिति ने यह निश्चय किया कि आयुर्वेद विश्वभारती में रिफेरश-कोर्स, स्नातकोत्तर प्रशिक्षण और अनुसन्धान सम्बन्धी पाठ्यक्रमों के लिए राष्ट्रभाषा हिन्दी ही शिक्षा का माध्यम रहेगी। विद्यार्थियों के लिए यह जरूरी है कि साथ में वे आयुर्वेद के शास्त्रीय अध्ययन के लिए संस्कृत भाषा का पर्याप्त ज्ञान प्राप्त करें। नवीन वैज्ञानिक विषयों के लिए कुछ एक स्थलों पर इंगलिश के पारिभाषिक शब्द अपनाने जरूरी होजांयगे। इसलिए इंगलिश का सामान्य ज्ञान हो तो विशेष अच्छा रहेगा। लेकिन शिक्षा और परीक्षा का माध्यम राष्ट्रभाषा हिन्दी रहेगी। यह भी प्रयत्न किया जायेगा कि संग्रह ग्रंथ राष्ट्रभाषा हिन्दी में काफी मिल सकें। ताकि पढ़ने-पढ़ाने में विद्यार्थियों को इंगलिश और संस्कृत के लिये विशेष परेशानी न उठानी पड़े।

आयुर्वेदिक प्रमाणपत्र को मान्यता

श्री वैद्य पं० कन्हैयालाल जी आयुर्वेदरत्न राजकीय एडेड औषधालय श्रीछत्रपुर से 'गांधी सागर बंध' रामपुरा मध्यभारत के एक क्लर्क श्री तेज प्रतापसिंह ने रुग्ण होने पर अपनी चिकित्सा करवाई। स्वस्थ होने पर नियमानुसार अपने विभाग में अवकाश स्वीकृत कराने के लिए रोगी प्रमाणपत्र लेकर पेश किया। किन्तु अधिकारी महोदय श्री. एम० डी० शिन्दे ने उसे मेडीकल मान्यता देने से इन्कार कर दिया। यह सूचना वैद्य जी को मिलने पर उन्होंने शिन्दे सा० को प्रमाणपत्र को मान्यता न देने पर एक नोटिस दिया। नोटिस मिलने पर शिन्दे सा० की आंखें खुलीं और वैद्य जी को लिख दिया कि आपका प्रमाणपत्र मान लिया जावेगा। इसलिए अन्य अधिकारियों को भी चाहिए कि वे आयुर्वेद के रजिस्टर्ड वैद्य द्वारा दिये गये प्रमाण-पत्र को बिना किसी हिचकिचाहट के मान्यता दें। आप आयुर्वेद के साथ मेडीकलजन्य सौतेला व्यवहार न कर उसके उत्थान में योग देंगे। ऐसी आशा ही नहीं पूर्णविश्वास है। —पं. कृष्णगोपाल शर्मा वैद्य आयु.

श्री दयानन्द आयुर्वेद कालेज जालंधर का परीक्षाफल

निम्नांकित रोल नम्बर वाले विद्यार्थी उत्तीर्ण घोषित किये गए हैं—

१, ३, ४, ५, ७, १०, ११, १२, १३, १४, १५, १६, १७, २१, २३, २४, २५, २६, २७, २८, २९, ३१, ३३, ३४, ३८, ३९, ४०, ४२, ४३, ४५, ४८, ४९, ५०, ५१, ५२, ५३, ५४, ५७, ५९, ६०,

निम्नांकित रोल-नम्बर वाले विद्यार्थियों का साथ लिखे विषय में कम्पार्टमेंट है—

८, १९, २०,—Biology
३०, ३२—Anatomy & Physiology
४४—Ras-Shastras —प्रिंसीपल।

\+ \+ \+

हिमाचल आयुर्वेद सम्मेलन की कार्यकारिणी का अधिवेशन

दिनाङ्क ६ जुलाई १९५६ को माजरा (जिला सिरमौर) में श्री यशमन्तराय की अध्यक्षता में उक्त अधिवेशन सम्पन्न हुआ।

सर्वप्रथम श्री भीमदत्त मन्त्री सम्मेलन ने उपस्थित सदस्यों का स्वागत किया और कहा कि इस शुभ स्थान पर हम गत तीन वर्षों सेइस कार्यकारिणी का अधिवेशन बुलाते आ रहे हैं। यहां पर किए निर्णय प्रायः सफल होते रहे हैं।

सम्मेलन का आय-व्यय विवरणपत्र उपस्थित किया गया जो सर्वसम्मति से प्रमाणित किया गया।

एक प्रस्ताव द्वारा हिमाचल सरकार का धन्यवाद किया कि उसने सम्मेलन की प्रार्थना पर प्रतिवर्ष १२५ रु० ७५ रु० ५० रु० के क्रमशः तीन पारितोषिक आयुर्वेद की उपयुक्त लेखों के पर देने की घोषणा की है।

एक अन्य प्रस्ताव द्वारा हिमाचल सरकार से मांग की गई कि 'राजकीय चिकित्सालयों में काम करने वाले वैद्यों को प्रान्तीय, जिला तथा तहसील पंचायतों में उसी प्रकार निर्वाचित किया जावे जैसे कि अन्य विभाग के कर्मचारी नियुक्त हैं इससे आयुर्वेद विभाग की प्रगति समुचित होगी।

इसके पश्चात् सम्मेलन के आगामी वार्षिक अधिवेशन बुलाने पर निम्न विचार निश्चय किया गया।

आगामी पंचमवार्षिक अधिवेशन मण्डी में ९-१० अक्टूवर १९५६ को बुलाया जावे।

इसके प्रबन्ध के लिए एक स्वागत-समिति निर्वाचित की गई जिसके स्वागताध्यक्ष श्री गौरीप्रसाद जी स्वास्थ्य मन्त्री हिमाचल प्रदेश और श्री-बुद्धसिंह स्वागत मन्त्री चुने गए। इनके अतिरिक्त ७ और सदस्य स्वागत समिति के सदस्य होंगे।

मन्त्री महोदय ने बताया कि पंचम अधिवेशन का उद्‌घाटन करना श्री उपराज्यपाल महोदय हिमाचल प्रदेश ने बड़ी कृपा से स्वीकार किया है।

रात्रि को अन्य विमर्श होता रहा तथा १० वजे प्रीति भोजन के साथ सभा विसर्जित हुई।

× × ×

श्री केदारनाथ धर्मार्थ औषधालय गुप्तकाशी (गढ़वाल)

श्री केदारनाथ धर्मार्थ औषधालय गुप्तकाशी, जिला गढ़वाल की एक सुप्रसिद्ध प्राचीन धर्मार्थ संस्था है। इस औषधालय का वनौषधि संग्रह तो अपनी ख्याति के लिये अन्य प्रान्तों तक प्रसिद्धि पाचुका है।

श्री बद्रीनाथ केदारनाथ मंदिर कमेटी द्वारा संचालित यह धर्मार्थ औषधालय वास्तविक रूप से एक जनकल्याण कारी कदम है।

गत दो मास के अन्तर्गत उक्त औषधालय का निरीक्षण निम्न लब्ध प्रतिष्ठित अधिकारियों व सज्जनों ने किया।

१—सर्वश्री जी-पी० बागची जिलाधीश (गढ़वाल) २—श्री यू. के. जैन जिला स्वास्थ्य अधिकारी (गढ़वाल) ३—श्री भगवतशरण एम. एल. ए. उपाध्यक्ष हरिजन सहायता बोर्ड (उत्तरप्रदेश) आदि सज्जनों ने अपने निरीक्षण नोट में औषधालय एवं इसके सुयोग्य चिकित्सक श्री राधाकृष्ण किमोठी आयुर्वेदाचार्य की सेवाओं की प्रशंसा की।

ता० १ जनवरी ५६ से अब तक ३६०० रोगियों की निःशुल्क चिकित्सा की गई।

राजगढ़ बीकानेर निवासी श्री सेठ सूरजमल मोहता ने औषधालय की सेवाओं से प्रसन्न होकर स्वेच्छा से २००) की औषधियां समर्पित कीं।

+ + +

मालवा आयुर्वेद मण्डल जगराओं

का खास अधिवेशन स्वामी सुन्दरदास जी की प्रधानता में हुआ। श्री दर्शनदास जी, स्वामी सरूपानन्द जी, स्वामी सुन्दरदास जी ने आयुर्वेद पर अपने-अपने विचार रखे और स्वामी सुन्दरदास जी ने "त्रिदोष" पर विद्वत्ता-पूर्ण भाषण दिया और आयुर्वेद की उन्नति के लिये कार्यक्रम निश्चित किया गया—

शोक समाचार—

श्री नत्थूईशान चौधरी के पिता श्रीयुत ईशान शिवराम चौधरी ब्रह्मपुरी शहादे का स्वर्गवास आषाढ़ सुदी ६ गुरुवार को होगया। आपने २० वर्ष की आयु से ८० वर्ष की आयु पर्यन्त आयुर्वेद पद्धति से चिकित्सा करते हुए आयुर्वेद की सच्ची सेवा की थी। आप एक सफल चिकित्सक थे।

शोक ! शोक !! महाशोक !!!

बड़े दुख के साथ पाठकों को सूचित कर रहे हैं कि धन्वन्तरि कार्यालय के भूतपूर्व संचालक एवं प्राणाचार्य भवन लिमिटेड, विजयगढ़ के संस्थापक श्री वैद्यभास्कर बांकेलाल जी गुप्त प्राणाचार्य का देहावसान ता० ३-८-५६ शुक्रवार को दोपहर ३.३० बजे होगया। आप गत एक वर्ष से उदर रोग से पीड़ित थे। २ माह पूर्व आपको जलोदर रोग हुआ। अनेक आयुर्वेदिक, होमियोपैथिक एवं एलोपैथिक चिकित्सकों की चिकित्सा करने-कराने पर भी उक्त रोग उत्तरोत्तर भीषण रूप धारण करता गया तथा अन्ततोगत्वा वह उनकी मृत्यु का कारण बना। मृत्यु के समय आपकी आयु ६४ वर्ष की थी।

आपसे धन्वन्तरि के पाठक सुपरिचित हैं। आप बड़े प्रतिभाशाली, अध्यवसायी एवं योग्य अनुभवी आयुर्वेदिक चिकित्सक थे। आपको देखकर तथा आपसे सम्भाषण करने पर व्यक्ति आपकी ओर अनायास ही खिंच जाता था। आपने अपने जीवन में स्वयं की प्रतिभा एवं लगन से बड़ी उन्नति की थी। आप अपने पीछे विधवा पत्नी, दो पुत्र एवं चार पुत्रियां तथा पौत्र-पौत्री छोड़ गये हैं। ईश्वर से प्रार्थना है कि आपकी आत्मा को सद्गति तथा आपके परिवार को कष्ट सहन की शक्ति प्रदान करे।

वर्ष ३२ (सन् १९५८) का

धन्वन्तरि का विशाल विशेषाङ्क

गुप्तसिद्ध प्रयोगाङ्क (चतुर्थ भाग)

यह आपको विदित ही है कि वर्ष ३१ (जनवरी-फरवरी १९५७) का विशेषांक—धन्वन्तरि-निदानाङ्क प्रकाशित होगा। इसका सम्पादन श्री वैद्यरत्न दौलत राम जी सोनी बड़ी तत्परता से कर रहे हैं। इसमें सम्पूर्ण माधवनिदान मूल एवं सरल हिन्दी टीका सहित प्रकाशित किया जायगा। चरक चिकित्सांक के समान प्रारम्भ के कुछ पृष्ठों में निदान विषयक उपयोगी लेख भी रहेंगे। यह विशेषांक वैद्य-समाज तथा आयुर्वेद विद्यार्थियों के लिये बड़ा ही उपयोगी होगा, इसमें सैकड़ों ही उपयोगी चित्रादि भी दिए जायगे। इस विशेषांक की पृष्ठ संख्या ७०० से अधिक होगी तथा मार्च १९५७ में प्रकाशित हो जायगा।

इसके आगामी वर्ष (अर्थात् १९५८) का विशाल विशेषांक—गुप्तसिद्ध प्रयोगांक (चतुर्थ भाग) प्रकाशित करने का निश्चय किया गया है। यह विशेषांक प्रयोगों की दृष्टि से अभूतपूर्व होगा। इसमें सर्वथा परीक्षित और अत्युत्तम प्रयोगों को ही प्रकाशित किया जायगा और इसीलिए इतने समय पूर्व इसके लिए प्रयत्नशील हो रहे हैं।

ऐसा कौन सा वैद्य है जिसे रोग रूपी शत्रु पर विजय प्राप्त करने के लिए आशुफलप्रद प्रयोगों की चाह न हो। कहने के लिए हम चाहें यह कहें कि हमारे शास्त्रों में प्रयोगों का भण्डार भरा हुआ है और इतना वह पूर्ण है कि उसके रहते हुए अन्य प्रयोगों की आवश्यकता ही नहीं रहती किन्तु उस समय जब कि हम अपने प्रयोग भण्डार के प्रयोगों को असफल होते हुए और एक साधारण अर्ध-शिक्षित व्यक्ति को एक साधारण औषधि से अपने ऊपर विजय प्राप्त करते देखते हैं तो हमारी उत्कट इच्छा उस प्रयोग को जानने की होती है। ऐसा अवसर एक बार नहीं बहुत बार आता है। अभी हाल ही की एक घटना है कि एक सम्पन्न सेठ जी के पुत्र के चेचक निकली और प्रसिद्ध-प्रसिद्ध वैद्यों एवं डाक्टरों की चिकित्सा होते हुए भी बच्चे की हालत खराब होती गई। डाक्टरों ने भी कह दिया कि सेठ जी! अब हमारे इन्जेक्शन काम नहीं देते, वैद्य जी तो पहिले ही कह चुके थे कि बच्चे की दशा ठीक नहीं है। ऐसी भयङ्कर दशा में समीप के एक भगत जी बुलाए गए जोकि शिक्षित न होते हुए भी शीतला की चिकित्सा के लिए प्रसिद्ध थे। उन्होंने बच्चे को देख कर कहा सेठ जी आपके बच्चे की हालत तो वैद्यों और डाक्टरों ने बहुत खराब कर दी है, शीतला का यथोचित उभार नहीं हुआ है और जो विष शीतलाओं में आना चाहिए था अन्दर चला गया है; किन्तु कोई बात नहीं है मैं अब भी इसकी चेचक उभार कर ठीक कर दूंगा।' उसने एक औषधि अपनी जेब से निकाल कर गङ्गा-जल में घोटकर बच्चे को पिला दी और थोड़ी सी गङ्गाजल में ही घोटकर शरीर पर लगा दी। बच्चे को कपड़े से ढंक दिया गया। ३-४ घण्टों में ही औषधि का अनुकूल प्रभाव हुआ। चेचक उभर आई और बच्चे की दशा ठीक होने लगी। वैद्य जी और डाक्टर साहब दोनों आश्चर्यान्वित होगए और उन भगत जी से उस औषधि को जानने की चेष्टा करने लगे, जोकि उन्हें प्राप्त नहीं हुई। इस प्रकार की घटनायें कौन से वैद्य के सामने नहीं आतीं और यह घटनायें ही हमें उत्तम प्रयोग प्राप्ति के लिए लालायित कर देती हैं।

चिकित्सक समाज की इस तीव्र लालसा की पूर्ति के लिए ही भिन्न-भिन्न वैद्यवरों ने सिद्ध प्रयोगों की अनेक पुस्तकें प्रकाशित कीं, किन्तु उनसे उतना लाभ नहीं हुआ जितना होना चाहिए। इसका कारण स्पष्ट है कि किसी भी चिकित्सक के पास सम्पूर्ण

रोगों के अत्युत्तम प्रयोग नहीं हो सकते किसी के पास कोई प्रयोग है तो किसी के पास कोई। फलतः इस प्रकार की पुस्तकों में १०-५ उत्तम प्रयोग होने के अतिरिक्त अन्य प्रयोग बहुत साधारण होते हैं। इस कमी की पूर्ति के लिए ही धन्वन्तरि ने इस विषय के कई विशेषांक प्रकाशित करके वैद्य समाज के समक्ष उपस्थित किये और उनका पर्याप्त आदर भी हुआ। किन्तु इन विशेषांकों में भी सभी प्रयोग अत्युत्तम एवं आशुफलप्रद ही हों यह नहीं कहा जासकता।

जहां अधिकांश प्रयोग अत्युत्तम एवं अद्वितीय प्रकाशित हुए है वहां कुछ प्रयोग निष्फल भी प्रकाशित हो गए हैं। इसका मुख्य कारण कतिपय वैद्यों की नाम प्रकाशित करने की अभिलाषा या प्रसिद्धि प्राप्त करने की मनोवृत्ति है। इस विशेषांक में ऐसे व्यक्तियों से बचने की भरसक चेष्टा की जायगी।

हमारी दृष्टि में ऐसे व्यक्तियों से बचने का एक मात्र उपाय यही है कि इस विशेषांक में केवल उन्हीं वैद्यराजों के प्रयोग प्रकाशित किये जांय जो ख्याति प्राप्त हैं और जिनके विषय में इस प्रकार की कल्पना भी नहीं की जा सकती है कि वह निरर्थक प्रयोग केवल नाम प्रकाशित कराने की दृष्टि से भेजेंगे।

आप भी यदि सफल और आदरणीय चिकित्सक हैं तो आपसे प्रार्थना है कि इस विशेषांक के लिए कम से कम ४-५ अत्युत्तम प्रयोग जो आपकी चिकित्सा में विशेष महत्व रखते हों भेजने का कष्ट करें। आपके अनुभव सागर की ये बिन्दुएँ नवीन चिकित्सकों के लिए अमृतवत सिद्ध होंगी और वह जीवन पर्यन्त आपका आभार मानेंगे।

अन्त में हम पुनः निवेदन करना चाहते हैं कि आप जो प्रयोग भेजें वह स्वयं अनुभव किया हुआ ही भेजियेगा। आयुर्वेद की प्रतिष्ठा आपके हाथ में है यदि आपका भेजा प्रयोग असफल होता है तो आपके प्रति पाठकों की अश्रद्धा होने के साथ-साथ आयुर्वेद की अवनति होना अनिवार्य है।

विश्वास है कि हमारा यह साग्रह निवेदन निष्फल नहीं होगा और शीघ्र ही आपके प्रयोग प्राप्त होंगे।

निवेदक—

देवीशरण गर्ग

प्रयोग भेजते समय
ध्यान देने योग्य बातें

१—प्रयोग पूर्ण सफल व परीक्षित होने चाहिए।

२—प्रयोग सरल हों तथा उनकी निर्माण प्रक्रिया अधिक झंझट-युक्त लम्बी नहीं होनी चाहिए। जिससे आपके प्रयोग से चिकित्सक समुदाय के साथ-साथ सामान्य व्यक्ति भी लाभ उठा सकें।

३—प्रयोग में व्यवहृत द्रव्यों को स्पष्ट और चालू नाम से लिखियेगा। यदि आपके प्रयोग में आपके यहां का कोई द्रव्य-विशेष या वूटी विशेष हो तो उसका परिचय विस्तार से लिख दें।

४—निर्माण विधि स्पष्ट तथा विस्तृत दीजिये। प्रयोग रोग की किस अवस्था में तथा किस प्रकार व्यवहार करना चाहिए यह भी विस्तार से लिखें। प्रयोग के गुणों को किंचित भी बढ़ा कर न लिखें, आपको जो अनुभव हुआ है वही लिखें।

५—प्रयोग के साथ अपना फोटो तथा संक्षिप्त परिचय अवश्य भेजें। बिना फोटो भेजे प्रयोग प्रकाशित नहीं होंगे। परिचय में अपना नाम, उपाधि, आयु, चिकित्सा-करना कब से प्रारम्भ किया है, पिता का नाम, अन्य आवश्यक विवरण संक्षिप्त में लिखिये।

६—यदि किसी शास्त्रीय प्रयोग के विषय में आपको विशेष अनुभव है तो आप उसे भी लिख सकते हैं। निर्माण विधि, किस ग्रंथ का है? क्या विशेष अनुभव है? सभी स्पष्ट एवं विस्तार से लिखें।

७—३० वर्ष से कम आयु के चिकित्सक कृपया अपने प्रयोग इस विशेषांक के लिए नहीं भेजें।

८—अपने प्रयोग, फोटो, परिचय कृपया शीघ्र भेजिये।

तदेव युक्तं भेषज्यं यदारोग्याय कल्पते।
स चैव भिषजां श्रेष्ठो रोगेभ्यो यः प्रमोचयेत् ॥ —च० सू० १-१३०

भाग ३०	धन्वन्तरि कार्यालय विजयगढ़	दिसम्बर
अङ्क १२	का मुख पत्र	१९५६

आयुर्वेद-प्रशस्ति

हे वसुन्धरा के कण्ठ-हार !
शाश्वत, चिर सत्य, सनातन हो, तुम सहनशील औ' चिर उदार !!

तुम तो हिमगिरि से भी महान,
तुझ में अगाध, आदर्श ज्ञान,
जन सेवा का तू मूर्तमान,
हे नव भारत के सूत्रधार !!

तुम तो गंगा जल सा पुनीत,
था स्वर्णिम तेरा भी अतीत,
गाओ प्रमुदित हो विजय गीत,
हे वैद्यराज ! तुम बार बार !!

तू तो कुन्दन सा चोखा है,
लेना क्या लेखा-जोखा है,
तेरा तप, त्याग अनोखा है,
तेरी महिमा सचमुच अपार !!

है ओजमयी तेरी वाणी,
सब हैं समान जग के प्राणी,
तू शिव समान औढ़र दानी,
तुम तो हो सच्चे कलाकार !!

तुम हो प्राचीन अरे जग में,
लहराये जोश तेरे रग में,
औ' शक्ति जगे तेरे पग में,
आरोग्य सिन्धु के कर्णधार !!

रचयिता—आचार्य डाक्टर एम० पी० रंजन, विद्यावाचस्पति।

वैद्यों के प्रति

सखे वैद्य वन करके कर्तव्य क्या है, आयुर्वेद है भानु जग को वता दो।

१

अरे वेदगर्भा तुम्हारी प्रणाली चतुर्मुख से निर्मित प्रजापति ने पाया।
प्रजापति से पा भास्कर के सुतों ने दिया इन्द्र को यज्ञ का भाग पाया॥
शचीपति ने देखा व्यथित मानवों को विविध व्याधियों से सताये हुये हैं।
पढ़ाया द्रवित हो यही धन्वन्तरि को, कहा धार अमृत की जग में बहा दो॥
सखे वैद्य वन करके कर्तव्य क्या है, आयुर्वेद है भानु जग को वता दो।

२

बनी डाक्टरी आज महिमामयी जो तुम्हारी प्रणाली की तामस कला है।
तदपि बन्धुओ छोड़कर सत्व अपने तुम्हें भी लगी डाक्टरी की बला है॥
बहुत क्या सभी कुछ चरक ने दिया है, हमें शल्य सर्वस्व सुश्रुत बताता।
मिले तत्व पाश्चात्य के जो खरे हों उन्हें पानकर अपनी महिमा दिखा दो॥
सखे वैद्य बन करके कर्तव्य क्या है, आयुर्वेद है भानु जग को बता दो।

३

चतुर्विधि की वृत्ति का आदर्श लेकर बढ़ो विश्व में तुम सफलता मिलेगी।
भंवर में पड़ी जो तरणि है तुम्हारी रहे मौन जो फिर दशा कौन होगी॥
महामंत्र पंचक-निदानों का लेकर तुरत रोग दानव का सब कुछ समझ लो।
विषम वात कफ पित्त को सम बनाकर गदों की जहां से निशानी मिटा दो॥
सखे वैद्य वन करके कर्तव्य क्या है, आयुर्वेद है भानु जग को बतादो।

४

हिमालय पै एकत्र हो पूर्वजों ने मनन रस-रसायन का विधिवत् किया था।
संजीवन सी जैसी विविध बूटियों से विजय-पत्र यमराज से ले लिया था॥
हमारी कला का ही रूपक बनाकर हमी को प्रतीची चकित कर रही है।
सदा पूर्व से ही उदित भानु होते यही सत्य है अब जगत को बता दो॥
सखे वैद्य बन करके कर्तव्य क्या है, आयुर्वेद है भानु जग को बतादो।

रचयिता—श्री० पं० रामेश्वरदयाल अग्निहोत्री "आयुर्वेदरत्न"

आयुर्वेदीय चिकित्सा विज्ञान के विकास का प्रश्न

लेखक—आचार्य परमानन्दन शास्त्री।

कुछ ही दिन हुए पटना जनरल अस्पताल के राजेन्द्र सर्जिकल वार्ड के उद्‌घाटन तथा पटना आयुर्वेदिक कालेज भवन के शिलान्यास के अवसर पर भारत के उपराष्ट्रपति डाक्टर राधाकृष्णन ने एलोपैथी डाक्टरों से एक नयी दिशा अपनाने का संकेत करते हुए जो यह कहा था कि डाक्टरों को तद्‌व्यक्ति की चिकित्सा करनी चाहिये न कि वाह्य लक्षणों की ही। और अपने इस चिकित्सा सूत्र की औपपत्तिक व्याख्या करते हुए आपने उपनिषदोक्त 'अण्ड' और 'ब्रह्माण्ड' के सादृश्य व तादात्म्य वताया था और कहा था कि पांचभौतिक विश्व के समान ही मनुष्यों में अन्न, प्राण, विज्ञान, मनस् और जीव ये पांच स्तर होते हैं। उन्होंने केन्भथ वाकर की स्टोरी आफ मेडिसन' नामक ग्रन्थ का उद्धरण देते हुए भारतीय चिकित्सा विज्ञान की महत्ता वतलायी थी और यह भी कहा कि शल्य-क्रिया में भी ये भारतीय चिकित्साचार्य बहुत ही प्रवीण थे। आपने यह भी घोषणा की थी कि भारतीय डाक्टर प्राचीन भावनाओं से विभूपित हों तो वहुत ही उच्च स्थान उन्हें प्राप्त होगा। यह ठीक है कि उन्होंने आयुर्वेदिक कालेज के शिलान्यास के अवसर पर यह विचार प्रकट किया था कि आयुर्वेद का जो भी अंश जीवित हो उसका ग्रहण और मृत अंश का परित्याग करना उचित है। किन्तु, यह विचारणीय प्रश्न है कि केवल वाचिक रूप से यह कह देने से कि आयुर्वेद का अमुक अंश मृत हो गया है मृत मान लिया जाय या नहीं। वर्तमान वैज्ञानिक युग में उचित तो यह था कि उस प्रत्येक अंश को वैज्ञानिक कसौटी पर जांचा जाय और तव उसके जीवित या मृत होने की घोषणा की जाय। किन्तु इस वैज्ञानिक जांच के सम्वन्ध में यह कहना नहीं भूलूंगा कि प्रत्येक सृजन का एक अपना पृथक्‌-जनक संस्कार विशेष होता है, और उसके अनुकूल ही उसकी परीक्षा भी की जाय तो कोई ठोस निष्कर्ष निकाला जा सकता है अन्यथा नहीं।

संस्कार पार्थक्य का दुष्परिणाम—

उक्त संस्कार पार्थक्य के कारण जो भयंकर परिणाम परिलक्षित होते हैं उन पर पाश्चात्य चिन्तन-धारा के लोगों में महत्व प्रतिष्ठा भले ही न हो मगर भारतीय चिरन्तन विचार धारा के लोगों में उसका वहुत ही आदर होता है। इस विषय का यहां एक उदाहरण देकर अधिक स्पष्ट कर देना अनवसरोचित नहीं होगा।

कुछ ही वर्ष हुए मेरे एक निकट सम्पर्की व्यक्ति को सांघातिक रक्ताल्पता का रोगी होकर पटना जनरल अस्पताल में चिकित्सार्थ आना पड़ा था। उन्हें डाक्टरों ने रक्तानुप्रवेशन आवश्यक वताया था। एक वार रक्तदाता मुसलमान के रक्त से इनकी रक्त की जाति मिल जाने पर भी मैंने डाक्टर को मना किया था कि यह रक्त नहीं दिया जाय, वही अच्छा होगा। किन्तु एलोपैथी डाक्टर को मेरी वातों पर सत्यप्रतिष्ठा नहीं हुई और उन्होंने वह रक्त सूची प्रवेशित कराकर उन्हें कुछ दिनों के लिए नीरोग कर तो अवश्य दिया मगर जव वे घर गये तो उनकी विवेक शक्ति दुर्वल हो गयी थी और उन्होंने उन्माद में आकर वैल को दांतों से काटा था। मैंने जव इस उत्तर परिणाम की सूचना डाक्टर को दी तो वे आश्चर्य में आये थे। पर उन्होंने फिर भी मेरी मूलकारणता सम्वन्धी वातों पर आस्था नहीं की थी।

रक्तदोष का कारण—

कहना न होगा कि पाश्चात्य चिकित्सा विज्ञानानुसार रक्त की अवान्तर जातीय में भारतीय ब्राह्मण क्षत्रियादि वर्णगत वैशिष्ट्य की कोई मात्रा नहीं मानी गयी है। किन्तु भारतीय परम्परानुसार उसकी मात्रा हमारे पुराने आचार्य जानते थे। तभी तो विचित्र प्रत्ययारब्ध जनितत्वहेतु इन अचिन्त्य प्रभावों का माना गया है और पुराणों में यह जो कथा मिलती है कि विनता ने अमृत लाने को प्रस्थित गरुड़ से पाथेय को निर्देश करते हुए कहा था कि जिसे गले के पास रखने से कष्टदाह हो उसे ब्राह्मण समझ कर उगल देना, खाना नहीं, वह भी विज्ञानानुमोदित होती है।

आयुर्वेद के कुछ आचार्यों ने तो ब्राह्मण आदि जाति भेद से रजस्वला गर्भधारण योग्य काल में भी अन्तर बताया है जिसकी गूढ़ वैज्ञानिकता आज के जीव-वैज्ञानिक (बायोलोजिस्ट) लोगों की बुद्धि से परे की बात है। क्योंकि उनकी बुद्धि इतनी परिपक्व नहीं हो सकी है जो ऐसे-ऐसे सूक्ष्म तत्वों का अवगाहन कर सके। उन्हें तो अपनी मिथ्या-अनुसन्धानशालीनता के अभिमान में साधारण ज्ञान का भी सर्वनाश हो चुका रहता है जिसके सम्बन्ध में एक आकर्षक कहानी 'थियोसोफिकल फ्रोटैक्टस' संख्या १३ पृष्ठ ३ में २५ जून १९४८ में प्रकाशित हुई थी। कहानी यह है कि माता-पिता की असावधानी से एक बच्चे ने थोड़ा मिट्टी का तैल पा लिया और पी लिया। इस पर अमेरिका में विस्तृत परीक्षण प्रारम्भ हुआ और कई एक छुछून्दरों, चूहों को मुंह और सुई के द्वारा विभिन्न मात्राओं में मिट्टी का तैल पिला-पिला कर चीर-चीर कर देखा जाता रहा। निष्कर्ष यह निकाला गया कि 'गैस्ट्रोइन्टेरिकट्रैक्ट' में जब तक यह मिट्टी का तैल रहेगा नुकसान पहुँचाता रहेगा, इसलिए यथाशीघ्र मिट्टी के तैल को निकाल बाहर करना अच्छा है। इसे तो कोई भी साधारण बुद्धि वाला भी चिकित्सक तत्काल बता सकता था।

उक्त कथा में यह नहीं बताया गया है कि उक्त बच्चे का क्या हुआ जो मिट्टी का तैल पी गया था। फिर भी यह अनुमान किया जा सकता है कि उक्त अनुसन्धान मनोवृत्ति के डाक्टरों द्वारा उसकी कैसी चिकित्सा की गयी रही होगी। क्या ऐसा ही अनुसन्धान प्रवृत्ति को प्रोत्साहन देने के उद्देश्य से उन्होंने यह कहा था कि अनुसन्धान में जितना भी रुपया व्यय हो सके किया जाना चाहिये? शायद नहीं।

पाट्कौशिक शरीर—

आज बिहार राज्य की कौन कथा? सारे भारत में कितने ऐसे डाक्टर मिलते हैं जिन्हें पाट्कौशिक शरीर का ज्ञान हो। जिसके बारे में हमारे उपराष्ट्रपति ने ही नहीं, अपितु विद्या-वयोवृद्ध राज्यपाल ने भी चर्चा की थी और कहा था कि आजकल निर्माताओं की अत्यधिक आवश्यकता है। भारतीय जीवन चिंतन धारा सदा अन्तरंग और सुन्दर रही है। आयुर्वेद ने स्वास्थ्य की परिभाषा शरीर और मन दोनों की स्वस्थता से की है। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान भी साइको-सोमेटिक सिद्धांत मानता है जिसमें स्वास्थ्य के सम्बन्ध में शरीर और मन का घनिष्ट सम्बन्ध माना गया है। इसलिये यह बहुत ही युक्तियुक्त हुआ है कि आत्मनिर्माता इस खण्ड का उद्घाटन करते हुए इसके द्वारा हमें यह सूचित करते हैं कि शरीर को आपरेट करना ही पर्याप्त नहीं है बल्कि यह आवश्यक है कि आत्मा पर भी आपरेट करें, हमारी उन्नति में बाधक व्रणों और ग्रंथियों को निकाल बाहर करें।

आसुरी चिकित्सा त्याज्य—

भारतीय आचार्यों ने इसलिए आसुरी चिकित्सा के रूप में शस्त्र-साध्य चिकित्सा को मानकर उससे पृथक् रहने का उपदेश दिया और अत्यन्त आवश्यक होने पर ही उसका विधान किया था जिस ओर यदि आज के डाक्टरों का ध्यान जाय तो देश का बहुत बड़ा श्रेय साधन हो सकता है।

—शेषांश पृष्ठ १०३६ पर।

रक्तमेह (*HAEMATURIA*)

लेखक—डा० शंकरलाल मेढ़ा एम० बी० बी० एस० आयुर्वेदाचार्य, बम्बई।

आयुर्वेद में मूत्र सम्बन्धी रोग मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात, प्रमेह और अश्मरी भेद से चार प्रकार के माने गये हैं। इन चार भेदों को प्रमेह और मूत्राघात भेद से दो विभागों द्वारा वर्णन किये हैं।

जिन रोगों में अधिक मात्रा में और असाधारण पदार्थयुक्त मूत्र रासायनिक स्वरूप 'कैमिकल कम्पोजीशन' में परिवर्तन द्वारा मानव मूत्र का परित्याग करता है, उसको आयुर्वेद तन्त्रों में प्रमेह शब्द व्यवहार किया गया है। जिन रोगों में मूत्र के निर्गमन सम्बन्धी विकृति में 'मेकेनिकल ऑवस्ट्रक्शन होती हैं, उन्हें मूत्राघातादि वर्ग में समाविष्ट किया गया है। इसी आधार पर प्रमेह की निरुक्ति इस तरह होती है।

तत्राविल प्रभूतमूत्र लक्षणाः सर्व एव प्रमेहाभवन्ति †।
(सु० नि० अ० ६)

"धातु सम्पर्कात् पुनः सर्वमेहेषु मूत्रमाविलं भूरि च भवति। (वृ० वा०)।

चरक सुश्रुत वाग्भट्टादि प्राचीन तन्त्रों में प्रमेह के बीस प्रकार के भेद माने हैं, किन्तु इन तीनों आचार्यों का मत परस्पर में भिन्नता रखता है। जैसे चरक में आलालमेह, सान्द्रप्रसादमेह, कालमेह बतलाये हैं, ये सुश्रुत में नहीं मिलते हैं। इसी तरह सुश्रुत निर्दिष्ट सुरामेह, फेनमेह, लवणमेह चरक में नहीं मिलते हैं। वाग्भट्ट में चरक और सुश्रुत में बतलाये हुए प्रमेहों को स्वकीय इच्छानुसार मिलाकर बीस संख्या बना दी है। माधव-निदान में वाग्भट्ट के मतानुसार उनके ही श्लोकों का संग्रह कर दिया है। इन तीनों संहिताओं में बतलाये हुए सभी की गणना करने पर तेईस २३ हो जाते हैं! इनमें १२ कफज, ७ पित्तज ४ वातज प्रमेह होते हैं। पित्तज प्रमेहों में नील, हारिद्र, मञ्जिष्ठ, रक्त, क्षार प्रमेह सम्पूर्ण तन्त्रकार मानते हैं, किन्तु चरकोक्त कालमेह तथा सुश्रुतोक्त अम्लमेह भिन्न ही होता है। इसलिये समष्टि रूप से पित्तमेह सात हो जाते हैं।

यद्यपि सभी प्रमेह त्रिदोषज होते हैं "सर्व एव मेहाः सर्व दोषजाः।" (सु० नि० ६) किन्तु इनका विभाग तत्तद्दोषों की उल्वणता के आधार पर 'व्यपदेशस्तु भूयसा" इस न्याय से किया गया है।‡

रक्तमेह (Haematuria)—

जिसमें विस्रगन्धी, उष्ण, लवण रस वाले रक्त के सदृश मूत्र का त्याग होता है, उसको "रक्तमेह" कहते हैं।

१—विस्रं लवणमुष्णञ्च रक्तं मेहति योनरः।
पित्तस्य परिकोपेण तं विद्याद् रक्तमेहिनम्। (चरक)

२—शोणित प्रकाशं शोणितमेही मेहति। (सुश्रुत)

३—विस्रमुष्णं सलवणं शोणित संकाशं शोणित मेही मेहति। (वृ० वाग्भट्ट)

४—विस्रमुष्णं सलवणं रक्ताभंरक्तमेहतः (अ० हृदय)

इन वचनों में आये हुए रक्त, शोणित प्रकाश, शोणित संकाश, रक्ताभ शब्दों का अर्थ होता है—

---

† तत्राविलत्वं मूत्रस्य प्रमेह दूष्याणां मेदो रक्त मांस मज्जा शुक्रोदक वसा लसीकौजसां क्वचिदेव प्रमेहे कस्यचिदेव दूष्यस्यावयव मिश्रीभावात्। तेषामेव च दूष्याणां द्रवैरेकी भूतत्वान्मूत्र प्रभूतत्वम्। (न्याय चन्द्रिका)

‡ वातपित्त मेदोभिरन्वितः श्लेष्मा श्लेष्म मेहान् जनयति, वात कफ शोणित मेदोभिरन्वितं पित्तं पित्त मेहान्, कफपित्तवसामज्जमेदोभिरन्वितो वायुर्वात मेहान्"।
(सु० नि० अ० ६)

रक्तवर्ण तथा विस्र शब्द का विवर्ण (आमगन्धी-दुर्गन्धी युक्त) अर्थात् रक्तविकृति से उत्पन्न पदार्थ के संयोग से मञ्जिष्ठादि वर्ण वाला। चरक ने स्पष्ट "रक्त" पद दिया है, इसका अर्थ रक्त। यह तभी होता है, जब अत्यन्त विकृत रक्त के संयोग वाले मूत्र प्रमेही को मसीवर्ण कहेंगे। इसलिये—

रक्तमेह १— माञ्जिष्ठमेह Heamoglobinuria (Smoky urine)

२— अरुणमेह Haematuria

३—कालमेह Blackwater fever।

भेद से तीन तरह का होता है। £

इनमें माञ्जिष्ठमेह प्रायः वृक्क वस्तुओं में रक्त-स्राव होने से होता है।

सम्प्राप्ति—

इस प्रमेह की उत्पत्ति में निदान, दोष-दूष्यों के भेदों के एक साथ मिल जाने पर पित्त के अत्यधिक होने से प्रथम पित्त ही प्रकुपित हो जाता है। इसमें प्रधान दोष पित्त है, तथा वात कफ अनुबन्धी हैं। दूष्यों में रक्त और मेद प्रधान हैं। इसलिये दूषित पित्त से मेद, रक्त, कफ, शरीरगत क्लेद (जलीय भाग) दूषित हो जाते हैं। तद्गत द्रव भाग वृक्कों द्वारा वस्ति मुख में आकर इस व्याधि को उत्पन्न करता है। § इसीलिए ये पित्तमेह पित्त के गुण धर्म विशेष द्वारा ही भिन्न-भिन्न नाम वाले हो जाते हैं। इसलिए विषमावस्था प्राप्त पित्त के विस्रगन्ध, लवण रस, रक्त वर्ण, उष्ण स्पर्श से युक्त प्रमेह की लोहित (रक्त) मेह संज्ञा बन जाती है। $

आचार्यों ने हारिद्रमेह तथा रक्तमेह ये दोनों प्रमेह मूत्र में रक्त की उपस्थिति से उत्पन्न होने वाले माने हैं। इनमें जब रक्त केवल रङ्ग द्रव्य के रूप में ही मिलता है, तब उस प्रमेह को हारिद्रमेह "हीमोग्लोबीन्यूरिआ" नाम देते हैं। इस प्रमेह में मूत्र की परीक्षा करने पर रक्त के कण नहीं मिलते हैं।

रक्तमेह "हीमाट्यूरिआ" में ही पूर्णतया रक्त मिलता है।

यह प्रमेह—

वृक्कार्बुद
वस्तिका अर्बुद
विषम ज्वर
पीतज्वर
शोणित मेहज्वर
हीमोफायलिआ
पर्प्युरा
स्कर्वी

इत्यादि रक्त-विकारों में मिलता है। अधः प्रवृत्त मूत्र मार्ग के रक्तपित्त में भी रक्तवर्ण तथा हारिद्र रङ्ग के मूत्र का निस्सरण होता है, किन्तु इसमें प्रमेह के अन्य लक्षणों के न होने से इनको प्रमेह नहीं कहते हैं।

हारिद्र वर्णं रक्तंवा मेह प्राग्रूप वर्जितम्।
यो मूत्रयेन्न तं मेहं रक्तपित्तं तु तद्विदुः॥
(अ० हृ० नि०)

चिकित्सा

सामान्यतः प्रमेही दो तरह के होते हैं। १—स्थूल तथा बलवान् (दोष बलाधिक) २—कृश

£ पित्तस्य लोहितादगुणान् मञ्जिष्ठा शोणितमेही। (न्यायचन्द्रिका)
लवण विस्रोष्णगुणयोगात् रक्त साद्दश्यात् रक्तमेहः। (योगीन्द्र)

§ उष्णाम्ल लवणादिसेविनस्तथाऽतितीक्ष्णातपाग्न्यादि सेविनश्च प्रकुपितं पित्तं प्रमेहान् पैत्तिकान् जनयति।
(चरक निष्कर्ष)

वात मेदः क्लेद मांस शुक्ररसैः कफ शोणिताभ्यां च युक्तं पित्तं पित्तप्रमेहान् जनयति। (वृ० वा० भाव:)

पित्तं रक्तमपि क्षीणे कफादौ मूत्रसंश्रयम्। (अ. हृ.)

$ लोहित मेहश्चेति—वैषम्यमापन्नैः पित्तस्य विस्रगन्ध लवण रस रक्त वर्णोष्णस्पर्शैर्लोहित मेह संज्ञा। (गङ्गाधर)

(मांसकृश) तथा अत्यन्त दुर्बल (हीन बल) इनमें स्थूल एवं बलवान् पुरुष की संशोधन करके चिकित्सा करें। कृश तथा दुर्बल के लिए प्रारम्भ में संशोधन कर्म नहीं करके पुष्टिकर औषधि का प्रयोग करें। इसलिए इस पित्तजनित रक्तमेह में विरेचन द्वारा पित्त का अपहरण करके सन्तर्पण चिकित्सा करें। यदि रोगी अत्यन्त दुर्बलता के कारण संशोधन योग्य होने पर भी संशुद्धि नहीं कर सकते हों तो संशमन चिकित्सा करें। यह आचार्यों का चिकित्सा सूत्र है ‡। डल्हणाचार्य ने पैत्तिक प्रमेहों में आमाशय स्थित पित्त की शान्ति के लिए भी वमन बतलाया है, अन्यथा पक्वाशय स्थित पित्त की शान्ति के लिए तो विरेचन ही देवे। †

चरक में उशीरादि दश प्रयोग अत्यन्त ही लाभप्रद हैं, अथवा दोष-दूष्य देशानुसार स्थिति को ध्यान में रख कर कुछ परिवर्तन करके क्वाथ बनाकर मधुमिश्रित प्रयोगों से उत्तम लाभ हो सकता है।

सुश्रुत में—साधारण शुद्धि करके आमलक रस ४ तोला हरिद्रा चूर्ण ३ माशा तथा मधु ३ माशा मिलाकर देने को बतलाते हुए त्रिफलादि ५ प्रयोग उत्तम फलप्रद प्रतीत होते हैं। किन्तु रक्तमेही के लिये स्वतन्त्रतया—

"गुडुची तिन्दुकास्थि काश्मर्य खर्जूर
कषायं मधुमिश्रं पाययेत् ॥

यह सुश्रुत योग अत्यन्त लाभप्रद है।

यहां यह ध्यान रखने की आवश्यकता है कि प्रायः रक्तमेही के जब धातुक्षीण हो जाते हैं, तथा उसके विरोधी पित्त की वृद्धि होजाने पर कभी-कभी दाहादि उपद्रव भी हो जाते हैं। उनकी शान्ति के लिये शालूक "औदककन्द" के क्वाथ के साथ दुग्ध इक्षुरस से साधित शीत मधु मिश्रित यवागू पिलावे।†

औदक कन्द (कमल की जड़, बिस कसेरु, सिघाड़ा आदि जल में होने वाले शीतवीर्य द्रव्य) शब्द से मैं कभी-कभी काम में लेता हूँ।

द्रव्य—यह साधारण नियम है कि आग्नेय गुण भूयिष्ट द्रव्यों से ही पित्त की वृद्धि होती है, इसलिये साधारणतः जो पदार्थ गरम (मिरच, सर्पप, हिंगु आदि) हैं उनका सर्वथा परित्याग करे।

अन्न—शालि, मुद्ग, यव, मकुष्ठक, केला, जम्बु, गोधूम, मधुर फल, दाड़िम, आमलक, सेव, मौसम्बी, कूष्माण्ड, इक्षुरस, शीतजल तथा नारिकेल, ग्रीष्मकालीन, ऋतुचर्या पालन, द्राक्षा, घृत, दूध, मक्खन, विदारीकन्द आदि सेवन करने चाहिये।

शाकों में—पटोल, घीया, ककड़ी, मूली, हरा धनियां, तुरैया, पके हुए टमाटर, अमरूद, पोदीना, मतीरी, सूखी दाख आदि।

शालीय गण—विदार्यादि, सारिवादि, गुडूच्यादि, तृणपञ्चक, लाक्षादि आदि।

भस्म—लोहभस्म, यशदभस्म, मौक्तिकपिष्टी, कहरवापिष्टी, जहरमोहरा खताई, प्रवालपिष्टी आदि चन्दनादि क्वाथ या चन्दन शर्बत के योग से परम लाभप्रद है।

---

‡ जयन्ति पित्त प्रभवान् विरेकः
सन्तर्पणः संशमनो विधिश्च।
मेहेषु सन्तर्पण मेव कार्यम्।
संशोधनं नार्हति यः प्रमेही
तस्य क्रिया संशमनी प्रयोज्या। (चरक)

† पित्तमेहे विरेचयेत्, आमाशयस्थे
कफपित्ते वामयेत्, पक्वाशयस्थे
पित्ते विरेचयेत्। (सु. अ. ११ श्लो. ७ की व्याख्या)

† दह्यमान मौदक कन्द क्वाथ सिद्धां
यवागूं क्षीरेक्षुरस मधुरां पाययेत् ॥
—सु. चि. ११

प्रमेहिणोश्रवधातौ क्षीणे तद् विरोधि निमित्ते वृद्धे दाहो भवतीति। (डल्हण)

क्षीरेक्षु रस मधु मधुराया यवाग्वाः पानं पित्तमेहे एव। (डल्हण)

यहां यह भी स्मरणीय है कि—वृद्ध जीवकीय तन्त्रकार ने प्रमेह तथा मूत्रकृच्छ्र में भेद बताया है, वे कहते हैं कि—

मनुष्यों में प्रमेह रोग बहुत देर से प्रकुपित होता है, किन्तु मूत्रकृच्छ्र आदि शीघ्र ही उत्पन्न होजाते हैं, तथा दूसरा यह भी भेद है कि मूत्रकृच्छ्रादि व्याधियों में शिश्नेन्द्रिय में अत्यन्त दाह होता है। एवं जैसे साधारण कारणों से इनकी उत्पत्ति होती है, वैसे ही साधारण चिकित्सा से शीघ्र अच्छे भी होजाते हैं। किन्तु प्रमेह रोग जैसे धीरे-धीरे होते हैं, वैसे ही दोष-दूष्य को खूब ध्यान देकर चिकित्सा करने से धीरे-धीरे ही लाभ होता है। मूत्रकृच्छ्रादि में पित्त की प्रधानता होती है, तथा वायु के स्थान इसके आश्रय होते हैं। प्रमेह भिन्न-भिन्न दोष दूष्यों के सम्बन्ध से नाम, लक्षण तथा चिकित्सा में पर्याप्त भिन्नता रखते हैं।

चिरात् प्रमेहाः कुर्वन्ति सद्यः कृच्छ्राणि देहानाम् ।
विशेषः कृच्छ्रमेहानां कृच्छ्रे दाहोऽति चेन्द्रिये ॥
कृच्छ्राण्याशु निवर्तन्ते प्रमेहास्तु प्रसङ्गिनः ।
पित्तप्रायाणि कृच्छ्राणि वातस्थानाश्रयाणि च ॥

—काश्यपसंहिता ।

पृष्ठ १०३१ का शेषांश ।

मैं तो विहार सरकार तथा केन्द्रीय सरकार के स्वास्थ्य विभाग से अनुरोध करूंगा कि वह प्रत्येक चिकित्सा केन्द्र में स्वीकृत व्ययतक धनराशि में से ही थोड़ा अंश काट कर डाक्टरों और वैद्यों का सम्मिलित अनुसन्धान केन्द्र खोलने की व्यवस्था करें और समय-समय पर दोनों प्रकार के विद्वानों के सेमिनार का आयोजन करें और उसके निष्कर्षों का विशुद्ध भाव से जनता के समक्ष उपस्थित करने का प्रयत्न करें। यदि वह ऐसा नहीं करती तो वह अपने राष्ट्र विधाताओं की उपेक्षा करती है और जनता की अपूरणीय क्षति कर रही है। क्या मैं आशा करूं कि हमारे प्रान्त के चिकित्सा मन्त्री इधर ध्यान देंगे और भगवान् तथागत के चिकित्सक आचार्य जीवक के कर्म-क्षेत्र पटने में एक आदर्श आयुर्वेदिक उत्थान का कदम उठा कर सारे भारत का पथ प्रदर्शन करने को अग्रसर होंगे।

ज्वर चिकित्सा

लेखक—श्री वैद्य गोपाल प्रसाद जोशी

ज्वर की प्राधान्यता के विषय में, सर्व-रोग व्यापकता के विषय में सभी वैद्य सहमत हैं, अपने रोगी रजिस्टर में ज्वर पीड़ितों की संख्या को देखते हुए यह सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि वैद्य की सफलता किस रोग पर पूर्ण अधिकार जमाने पर हो सकती है। यद्यपि ज्वर का सर्वाङ्गीण पूर्ण विवेचन, सर्वव्यापी परमात्मा की तरह वर्णनातीत होने से कोई नहीं कर सकता तथापि इस दिशा में चिकित्सक जितना प्रयास करता जायगा उतनी ही सफलता उसके हाथों में आती जायगी। वैसे तो इस विषय में काफी विवेचन निकल चुका है और हो रहा है और सभी को इस पर ज्यादा से ज्यादा अन्वेषण कर पत्रिकाओं के माध्यम से वैद्य जगत के लिए प्रदान करना चाहिए। हमारा परम लक्ष्य चिकित्सा होने से ज्वर के विषय में वही जानकारी मैं लिखूंगा जो उसकी चिकित्सा में सहयोगी हो। साधारण से साधारण आदमी ज्वरी को पहचान सकता है पर यह पहचानना कोई अर्थ नहीं रखता; हमें तो यह जानना है कि ज्वर किस दोष से है। दोषों का अंशांश विवेचन करने में असमर्थ चिकित्सक किसी भी रोग पर विजय प्राप्त नहीं कर सकता क्योंकि दोषों की गड़बड़ी के बिना शरीर में विकृति नहीं हो सकती। ज्वर भी इसका अपवाद नहीं। आजकल हम लोग दोषों का ज्ञान भूल से गए हैं, जीवाणुवाद से प्रभावित होकर हम अपना अमूल्य ज्ञान दूर फेंक रहे हैं। ऐसा नहीं चाहिए। हमें अपने स्वरूप में ही उन्नति प्रगति करनी चाहिए। नवाविष्कृत ज्ञान को अपने निज के सांचे में ढालकर ही उपयोग में लाना होगा वर्ना यह हमारी उन्नति नहीं कहलायेगी। इसलिए सर्व प्रथम ताप बढ़े हुए का दोषज्ञान करना चाहिए वर्ना अन्धाधुन्ध चिकित्सा होगी। जिस प्रकार आजकल नवीन चिकित्सक जीवाणु परीक्षा कर लेने पर उपक्रम आरम्भ करते हैं और अच्छी सफलता प्राप्त करते हैं उसी प्रकार हमें भी दोषों का ठीक-ठीक ज्ञान कर लेने के बाद ही चिकित्सा आरम्भ करना चाहिए। ज्वर है यह तो रोगी भी जानता है और उसके अभिजन भी पहचानते हैं पर वातादि विशेष ज्वर यदि चिकित्सक नहीं बतलायेगा तो विशेषता क्या रही। आजकल बहुत कम लोग ऐसे हैं जो दोषों की अंशांश कल्पना कर दवा देते हों। वर्ना सभी नवीन अङ्गरेजी ढङ्ग के सन्ताप की दृष्टि से किये वर्णन के अनुसार अविसर्गी, अल्प विसर्गी, अविराम ज्वर टौक्जीमिया, स्थानिक शोथ आदि से कहकर दवा दे देते हैं यह ठीक नहीं। हमें जैसा हमारे शास्त्रों में ज्वर के भेदों द्वारा सभी ध्यान देने योग्य प्रकरण बतला दिये हैं उन्हें पूर्ण अभ्यास में लाना चाहिये। जिससे चिकित्सा सौकर्य हो जाता है। आयुर्वेदीय वैद्य वही है जो संक्षेप में "शारीर दाहपूर्वक वहिर्वेगी-प्राकृत साध्य-सन्तत रसधातुगत द्वन्द्वज वात-पैत्तिक ज्वर है" वा 'मानस-शीतपूर्वक-वहिर्वेगी वैकृत साध्य-सन्तत रस धातुगत वातिक ज्वर है अथवा शारीर शीतपूर्वक अन्तर्वेगी वैकृत असाध्य सन्तत मेदो धातुगत सन्निपातिक ज्वर है इस प्रकार निदान करता हुआ उसकी संप्राप्ति में विशेष ध्यान देकर चिकित्सा प्रारम्भ करता है। यह सब कल्पना करने से चिकित्सा में क्या लाभ है इस विषय में यदि प्रत्येक पर वर्णन किया जाय तो बहुत हो जायगा मुझे केवल ज्वर की चिकित्सा पर ही अपने उद्गार लिखने हैं। सम्प्राप्ति पर विशेष ध्यान देने की बात मैंने इसलिये कही है कि जब मिथ्याहार विहार से दोष विकृत हो जाते हैं तब मल रूप हुये वे शरीरस्थ स्रोतों को विगाड़

देते हैं। संप्राप्ति इन्हीं मलों द्वारा की गई कार्यवाही की रिपोर्ट है। इसलिये ज्वर की सम्प्राप्ति का भी ज्ञान करना परमावश्यक है। ज्वर में कुपित मल रस धातु में प्रविष्ट कर उसकी अग्नि को दूषित कर देते हैं रसाग्नि के उत्तेजित होने पर इसका प्रभाव सभी अग्नियों पर पड़ता है। जिससे शारीरिक व्यापार अव्यवास्थित हो जाता है। इसलिये हमें दोषों का पाचन करना है इस दृष्टि से दोषों की तीन अवस्थाओं का चिकित्सक को पूर्ण ध्यान रखना चाहिये। आमावस्था, पच्यमानवावस्था और परिपक्वावस्था। आमावस्था दोषों को देखकर उनके पाचनार्थ लंघन प्रधान उपाय है इसलिये प्रत्येक चिकित्सक तरुण ज्वर के रोगी को उसके बल का ध्यान रखते हुये खाना बन्द करवा दे। दूध फलों का रस द्रवप्राय हल्के पदार्थ आवश्यकता पर ले सकता है। ज्वर में किया हुआ भोजन दोष वृद्धि का हेतु बन जाता है यह सभी जानते हैं। लंघन से दोषों का पाक होता है जिससे अग्नि प्रदीप्त होकर शरीर को हल्का करके भूख प्यास एवं अन्न में रुचि पैदा करती है और रोगी स्वस्थ हो जाता है। इसलिये सभी ज्वरों में उपवास करना श्रेयष्कर होता है किन्तु यदि कफ की अधिकता वाला बुखार हो रोगी का जी मचलाता हो लालास्राव होता हो और दोष चलायमान से हो रहे हों तो वमन के योग्य व्यक्ति को देखकर वमन करवा देना चाहिये। मैं ऐसी अवस्था में मुलहठी और मैनफल के चूर्ण को नमक मिले गरम पानी में घोल कर पिला देता हूँ जिससे अच्छी खासी (युक्त) उल्टी होकर दोष निकल पड़ते हैं और रोगी स्वस्थ हो जाता है।

अब रही ज्वरी को पानी देने की सो सभी बुखारों में औटाकर शीतल किया हुआ जल प्रशस्त रहता है। वैसे पित्तज्वर को छोड़कर वात-कफाधिक ज्वर में उष्ण जल का सेवन बड़ा लाभकारी देखा गया है। यहां तक कि सिर्फ नमक डाले हुये गरम जल का सेवन कर लेने पर शरीर के स्रोत शुद्ध हो जाने हेतु निद्रा जड़ता आदि दूर होकर अग्नि का प्राबल्य हो जाता है जिससे दोष व्यवस्थित होकर शरीर को स्वस्थ कर देते हैं। तथा पित्तज्वर में षडङ्ग जल बहुत ही लाभकारी है। पीपल की त्वचा को जलाकर बुझाया हुआ पानी व ईंट को गर्म करके बुझाया हुआ जल कितना गुण करता है यह किसी से छिपा नहीं। पित्ताधिक्य ज्वर की प्रत्येक दशा में ग्लुकोज मिश्रित जल देना अतीव गुणकारी है तथा इसके अलावा स्नान अभ्यङ्ग प्रलेप आदि सभी बुखारों में त्याज्य हैं। स्वच्छता का ध्यान रखते हुये व रोगी की रुचि को समझते हुये दोषों का बलाबल देखते हुए चिकित्सा करने से सफलता अच्छी मिलती है।

वातज्वर की चिकित्सा में जवासे की जड़, सोंठ गिलोय, इन तीनों का क्वाथ बना हिंगुलेश्वर रस के साथ अनुपान में ले-लेने पर वात ज्वर दूर हो जाता है। मेरा बहुत बार का अनुभूत यह योग यश दिलाने वाला है। तथा पिप्पलीमूल, सोंठ, गिलोय का काढ़ा करके भी पी लेने से बहुत फायदा करता है। वातज्वर में घृतपान का विधान शास्त्रों में है। मैंने भी इस प्रयोग को उपयोग में लिया है किन्तु जिस रोगी को वातज्वर पूर्ण निश्चित हो उसे ही लाभ करता है वर्ना हानिकर होता देखा गया है। मैं दूध (गाय के) में सोंठ डाल कर औटा उसमें घी डाल कर पिला देने का प्रयोग कई बार बतला देता हूँ जिससे अकूत लाभ होते देखा गया है। यदि इसमें मुनक्का भी डाल दी जाय तो अत्युत्तम कार्य करता है। इसके साथ ही वातज्वर की चिकित्सा में वस्तिचिकित्सा का ज्यादा महत्व है। इसके लिये नीम के पत्तों का काढ़ा बना कर उसमें अमलतास, कुटकी, गिलोय का फांट बना शहद घी और गुड़ मिलाकर यथावश्यक मात्रा में वस्ति दे देने से जो चमत्कार देखने में आया है उससे मेरी श्रद्धा वैद्यक में अतीव बढ़ती जा रही है। वैद्य बन्धुओं से मेरा आग्रह है कि ये मामूली प्रयोग अपने रोगियों के ऊपर आजमा कर देखने से मालूम हो जायगा कि हमारे पास ही रत्न

भरे पड़े हैं। दूसरे की ओर मुखापेची होने की कोई आवश्यकता नहीं, आवश्यकता है केवल वैद्यक सागर में डुबकी लगा कर रत्न खोज निकालने की हिम्मत, फिर देखिये इन रत्नों से आप चमत्कृत हो उठेंगे, वक्ष में धारण कर लेने पर अलंकृत हो उठेंगे।

पित्तज्वर की चिकित्सा में जो उत्तम दवा मेरे देखने में आयी है जिससे शतप्रतिशत लाभ होने की आशा दृढ़ है वह है "पित्त में विरेचन" वाले सिद्धान्त पर खरी उतरने वाली कुटकी। कुटकी का अलग से भी प्रयोग कर सकते हैं अथवा 'आरोग्य वर्द्धिनी' इसके लिये उत्तम है। आरोग्यवर्द्धिनी को गिलोय के ताजा रस में दे देने से बहुत फायदा होता है। कुटकी के चूर्ण में दुगनी मात्रा से शर्करा मिला कर ले लेने से भी वैसा ही लाभ होता है। नीम की छाल का लेप पत्तों के फांट का लेप भी दाहनाशक बहुत ही लाभकारी योग है। कुटकी चिरायते का महत्त्व किससे छिपा है। खश, पित्तपापड़ा, फालसा खम्भारी के अद्भुत प्रयोग चिकित्सा में खरे उतरते हैं। 'नव ज्वरांकुश' पित्तज्वर के लिये उत्तम देखने में आया है।

कफज्वर की चिकित्सा में अपना उत्तम प्रयोग जो वैद्य-बन्धुओं के समक्ष रखता हूं बड़ा ही आजाद प्रयोग है। किसी वस्तु के अन्वेषण आदि की आवश्यकता नहीं घर में ही प्राप्य 'चाय' का प्रयोग है। चाय में मीठा न डाल कर सेंधा नमक डालकर सोंठ पीपर की औटाई हुई चाय में जवाखार मिलाकर पी लेने मात्र से कफज्वर का पाचन हो जाता है। ऐसा दिन में दो-तीन बार कर लेने पर शरीर स्वस्थ हो जाता है। बिजौरे नीबू का कई विधियों से प्रयोग गुणकारी है। 'अग्निकुमार रस' कफज्वर के लिये कुठार है।

इस प्रकार दोष भेद से दोषों के तर-तम भेद को पूरी रीति से जानता हुआ 'बुद्ध नेनैक दोषस्य क्षयरोनोन्द्रितस्य च' के सिद्धान्तानुसार चिकित्सा करने वाला वैद्य असाध्य व्याधियों पर भी सफलता प्राप्त कर सकता है।

इस लेख द्वारा मेरा विचार 'चिकित्सा के क्रियात्मक पहलू किस प्रकार स्पष्ट होने चाहिये' यह दिखाने का रहा है। यदि धन्वन्तरि के पाठक ऐसा पसन्द करेंगे तो मैं ज्वर व ज्वर के भेद जो आजकल बहुतायत से देखने में आते हैं उनकी चिकित्सा के विषय में अपने अनुभूत मामूली से प्रयोग जो अद्भुत चमत्कारी हैं धन्वन्तरि के सम्पादक गण की प्रेरणा पा लेने पर आगे भी लिखता रहूँगा।

आजकल सभी लोग आरामदेही हो रहे हैं। कड़वी औषधि व बड़ी मात्रा में दवा लेने से नाक भौं सिकोड़ते हैं। लाभ जल्दी चाहते हैं। ऐसे वातावरण में प्राचीन युग के वे प्रयोग किस प्रकार किस तरीके से आज उपयोग में लाये जा सकते हैं इन पर दृष्टिपात कर क्रियात्मक हल उपस्थित करने चाहिये। यह तो सभी जानते हैं कि इस प्राचीन प्रयोग-पुष्पावलि का यदि नये ढङ्ग से फिर निर्माण होकर समाज में लाया जाय तो वैद्यक का अतीत पुनः गौरवान्वित होकर समक्ष उपस्थित आ होगा।

हमारी एक और विशेषता नाड़ी-परीक्षा जिसका आज कितने अंश तक ज्ञान मौजूद है देखने पर बरबस रो देना पड़ता है। जब कई बार कइयों से किसी के नाड़ीज्ञान की चमत्कारपूर्ण आख्यायिकायें कर्णगोचर होती हैं तब लज्जान्वित होकर चुप रह जाना पड़ता है। 'जीव साक्षिणी' नाड़ी के द्वारा दोषों की गतिविधि की जानकारी करना वैद्यक की कितनी अपूर्व अद्भुत चमत्कारपूर्ण विशेषता है पर अब तो साधारण से भी साधारण बनते जा रहे हैं। मेरा नम्र निवेदन है कि धन्वन्तरि का एक स्तम्भ 'नाड़ी ज्ञान व उसके चमत्कार' का जरूर होना चाहिये जिसमें वैद्यक जानने वाले जो नाड़ी ज्ञान पर अपना अधिकार रखते हैं अपने लेख प्रकाशित करें। आजकल कहां रही है शकुन परीक्षा, दूत परीक्षा आदि। धकोसले कह कर मजाक उड़ायी जा रही

—शेषांश पृष्ठ १०४२ पर।

कुष्ठ का निदान एवं चिकित्सा

लेखक—वैद्य किशोरीलाल शर्मा "किशोर" विशारद
श्री हनुमान आयुर्वेद विद्यालय, रतनगढ़ (राजस्थान)

कुष्ठ एक भयङ्कर रोग है तथा महाव्याधियों के अन्दर इसकी गणना होती है। कुष्ठ रोग रक्त विकृति से होता है, अतः प्रथम यह दिखलाना आवश्यक है कि रक्त शरीर में क्या है तथा कैसे बनता है। रक्त के विषय में महर्षि सुश्रुतादिकों ने लिखा है—

स खल्वाप्यो रसो यकृत् प्लीहानौ प्राप्य रागमुपैति।
रञ्जितास्तेजसा त्वापः शरीरस्थेन देहिनाम्॥
अव्यापन्ना प्रसन्नेन रक्तमित्यभिधीयते ॥१॥

अर्थात्—आहार द्वारा परिपक्व रस जब यकृत (जिगर) प्लीहा में जाता है, तब उस (रस) का रंजक पित्त के साथ संयोग होने से उसमें वर्णता (रक्तिमा) आ जाती है। वही रक्त संज्ञा कहलाता है।

रक्त के अन्दर श्वेताणु रक्ताणु के अतिरिक्त एक तरल अंश होता है, जिसे रक्तद्रव कहते हैं। यह रक्त का एक तरल भाग है. रक्त के शेष घन द्रव्य इसी तरल भाग में व्याप्त रहते हैं। यह सारे रक्त का ५५% होता है। रक्त की उत्पत्ति यकृत प्लीहा एवं आमाशय से होती है। जैसा कि उपरोक्त श्लोक से प्रतीत हो रहा है।

अब देखना यह है कि रक्त कुपित व दुष्ट किन-किन कारणों से होता है। क्योंकि विना दुष्ट हुये यह (कुष्ठ) भयङ्कर व्याधि उत्पन्न नहीं हो सकती। रक्त का प्रकोप दोषों के कारण होता है। सुश्रुत में लिखा है—

पित्त प्रकोपणैरेव चाभीक्ष्णं द्रवस्निग्ध गुरुभिराहार... कोधानलातप श्रमाभिघाता जीर्णं विरुद्धा-... विशेषै रसृक् प्रकोपमापद्यते। पित्तप्रकोपणै-... शोणितयोः समानत्वात् त्वङ्ः मांस शोणित-... क्षुद्र रोगान् कुष्ठानि विसर्पाश्च जनयन्ति।

पित्त और शोणित का समान धर्म होने से पित्त प्रकुपित होकर अथवा विरुद्ध अन्नपानादि सेवन से रक्त प्रकुपित होकर रक्त सम्बन्धी रोगों को उत्पन्न कर देता है। जैसाकि चरकाचार्य ने लिखा है—

विदाहि न्यन्न पानानि द्रवस्निग्ध गुरुणि च।
रक्त वाहिनि दुष्यन्ति भजतां चातपा निलैः॥

विदाहि अन्नपान तथा द्रवस्निग्ध, उष्णधूप ताप आदि के सेवन से रक्त प्रणालियां दूषित होकर रक्तज व्याधियां उत्पन्न होती हैं।

परिचय—

यह एक भयानक रोग है जिसके स्मरण मात्र से ही शरीर कम्पायमान हो जाता है। तथा रोगी किसी के पास बैठने लायक नहीं रहता, अर्थात् महान् दुश्चिकित्स्य व्याधि है।

उक्तं च माधवेन—

म्रियते यदि कुष्ठेन पुनर्जन्मस्य यद्भवेत्।
अतो निन्दित रोगोऽयं कुष्टं कष्टं प्रकीर्तितम्॥

यदि कोई मनुष्य कुष्ठ रोग से मर जाता है तो वह दूसरे जन्म में भी कुष्ठ युक्त पैदा होता है। वास्तव में यह (कुष्ठ) रोग बहुत गर्हित (निन्दित) है। इस रोग में शरीर पर ग्रन्थियां बन जाती हैं। जोकि चर्म एवं नाड़ियों में कहीं भी हो सकती हैं। यह (ग्रन्थियां) फूट-फूट कर व्रण (घाव) कर देती हैं। यह (कुष्ठ) रोग भारत अफ्रीका एवं चीन में हजारों वर्षों से पाया जाता है। पारस्परिक सम्बन्ध एवं आहार विहार से अधिक प्रसरण होता है। यह रोग जन्म एवं परम्परागत माना जाता है। लिखा है—

दम्पत्यो कुष्ठ बाहुल्या तद् दुष्ट शोणित शुक्रयोः।
यदपत्यन्तयोजातं ज्ञेयं तदपि कुष्ठितम् ॥

कारण—

इस व्याधि का कारण विरोधी अन्नपानादि है। जैसाकि माधवकार ने लिखा है—

प्रजीर्णाध्यशिनां चैव पंच कर्मापचारिणाम्।
नवान्न दधिमत्स्याति लवणाम्ल निषेविणाम् ॥
माष मूलक पिष्टान्न तिल क्षीर गुड़ाशिनाम्।
व्यवायं चाप्य जीर्णेन्ने निद्रांच भजतां दिवा ॥
विप्रान् गुरून् धर्षयतां पापं कर्म च कुर्वताम्।

आयुर्वेद मतानुसार इसके उपरोक्त कारण माने जाते हैं। आधुनिक मतानुसार यह (कुष्ठ) प्रायः उष्ण प्रदेशों में पाया जाता है। परन्तु महर्षियों ने तो इसे यहां तक संसर्गज माना है—

प्रसङ्गाद्गात्र संस्पर्शान्निश्वासात् सह भोजनात्।
एक शय्याऽसनाच्चैव वस्त्रमाल्यानुलेपनात् ॥
कुष्ठं ज्वरश्च शोषश्च नेत्राभिष्यन्द एव च।
औपसर्गिक रोगांश्च संक्रामन्ति नरान्नरम् ॥

परिपाक काल—

इस (कुष्ठ) का परिपाक काल दो वर्ष से ३० तीस वर्ष तक माना जाता है। बाद में कुष्ठ के कीटाणु शरीर में कम प्रवेश करते हैं। मनुष्यों में स्त्रियों की अपेक्षा कुष्ठ अधिक देखा गया है।

सम्प्राप्ति—

मिथ्याचारी मनुष्य के पित्त और श्लेष्मा प्रकुपित होकर प्रवृद्ध वायु को साथ लेकर तिर्यक् जाते हुए सिराओं में पहुँच कर एक तरफ फेंक देते हैं।

उक्तं च—

यत्र यत्र दोषो विक्षिप्तो निश्चरति तत्र-तत्र मण्डलानि प्रादुर्भवन्ति, एव समुपन्नस्त्वचि दोषास्तत्र तत्र च परिवृद्धि-माप्याप्रतिक्रियमाणोऽभ्यन्तर प्रतिपद्यते धातूनभि दूषयन्।
—सु० नि० ५।

इससे मालूम होता है कि यह रोग सर्वव्यापी है। इसका कीटाणु शरीर में जाकर गण्ड उत्पन्न कर देता है। इसकी प्रवृत्ति त्वचा और श्लैष्मिक कला एवं वात तन्तुओं की ओर है। धीरे-धीरे गण्ड फूटकर व्रण के रूप में परिणत होकर, पुनः इस (गण्ड) से पूय बहने लगता है। यह प्रायः मुख एवं शाखाओं में अधिक होता है।

पूर्वरूप—

जिस स्थान में कुष्ठ होने वाला होता है, वहां की त्वचा (स्थान) कोमल होजाती है। एवं बिना कारण स्वेद आना तथा कारण (धूप इत्यादि) होने पर भी स्वेद न आना। दाह एवं त्वचा का स्पर्श ज्ञान न होना। चकते पड़ जाना ग्लानि शूल की अधिकता, व्रणों का दिनों दिन बढ़ना तथा रक्त कृष्ण वर्ण का हो जाना। ये कुष्ठ के पूर्वरूप जानना अर्थात् यह जानना कि कुष्ठ होने वाला है। ऐसे लक्षण प्रकट होने पर चतुर वैद्य द्वारा भावी होने वाले रोग के प्रतीकार के लिए शीघ्र चिकित्सा प्रारम्भ कर देनी चाहिए। जैसे सुश्रुत में भोज ने टीका में लिखा है—

अति स्वेदोन वा स्वेदः कण्डू निस्तोद सुप्तता।
त्वचः पारूष्य मत्यर्थं रोमहर्षो विवर्णता ॥
शुक्लता शोणितं कृष्णं व्रणानाम प्ररोहणाम्।
दाहपाकौ च संप्राप्ते त्वचि सेवनयो हितम् ॥

स्वरूप—

दोषों के स्थिर होने से त्वचा को शिथिल करके चारों तरफ से त्वचा के रंग को बदल देती है। उसको कुष्ठ कहते हैं। कुष्ठ अट्ठारह प्रकार का होता है। ११ ग्यारह क्षुद्रकुष्ठ ७ सात महाकुष्ठ।

महाकुष्ठ ये हैं—अरूणोदुम्बरर्ष्य (र्श) जिह्वा कपाल काकणक पुण्डरीक दद्र कुष्ठानीति।

क्षुद्र कुष्ठों के नाम स्थूलारूष्कं महाकुष्ठमेककुष्ठं विसर्पः परिसर्पः सिध्मं विचर्चिका किटिभं (मं) पामा रकसा चेति।

चिकित्सा

कृष्ण सर्पमसी—एक मरे हुए कृष्ण सर्प को लेकर

हांडी में रखकर कपड़मिट्टी करके फिर गजपुट में रख दें। पश्चात् कण्डों की अग्नि में उस (सर्प) को फूंक दें। बाद में कपड़छान करके बहेड़ा के तैल में मिलाकर कुष्ठ के चिह्नों पर लेप करने से शीघ्र दो या तीन मास के अन्दर मनुष्य कुष्ठरोग से मुक्त हो जाता है।

महाखदिर घृत—

कत्था पांच तुला, शीशम (का बुरादा) तथा विजयसार (की लकड़ी का बुरादा) एक तुला, कंजा, नीम, बेतस, पर्पट (पित्तपापड़ा), कुटज, अडूसा विडङ्ग तथा हल्दी, दारूहल्दी, अमलतास, गिलोय, त्रिफला, निशोथ, सप्तपर्ण, ये आधा-आधा तुला (ढाई सेर) इनको जल के दस द्रोण (द्रवद्वै गुण्य से २० द्रोण) में पकाकर (जब) अष्टमांस शेष रहे तो क्वाथ को उतार लें। (उसे छानकर छने हुये रस में) बराबर भाग आमला स्वरस तथा एक आढक (चार सेर) घृत (डालकर) महातिक्त घृत के पूर्वोक्त कल्क द्रव्यों को एक-एक पल लेकर उससे पकावें। यह महाखदिर घृत पीने, लगाने तथा सेवन करने से सब कुष्ठों को मूल से नष्ट करता है, यह परम कुष्ठ विकार नाशक योग है। च० चि० ७

भूतभैरवोरस—

शुद्ध हरताल पन्द्रह भाग, शु० गन्धक छः भाग, नई इमली का फल पन्द्रह भाग, करेला दस भाग लेकर सब द्रव्यों को चूर्ण करें और सेहुण्ड (थूहर) तथा आक के दूधों में घोटें तथा सात भावनाएं दें।

पश्चात् रोहिड़े की जड़ का रस दे-देकर खूब खरल करे और अन्त में सुखाकर महीन पीसले। इसमें चार माशा दवा लेकर कुछ कपड़े में छानकर शुद्ध पानी के साथ पीवें तथा कपूर डालकर खावे। जब शरीर सुखी एवं प्रसन्न जाने, तब बकरी का दूध या मठा पीने को देवे। यह रस नित्य शान्ति देता, किसी प्रकार से भी न गया कुष्ठ आम दोषों से युक्त सब कुष्ठों से भयंकर नीला पीला सफेद एवं शोथ-युक्त आदि अट्ठारह प्रकार के कुष्ठों को नष्ट करने में रामबाण है।

पथ्य—

सदा घी मिला अन्न, खूब गरम किया हुआ दूध या उससे बने पदार्थ तथा पथ्यान्न दूध के साथ जैसा शरीर को सुखदायक हो खावे तो एक मास के अन्दर निःसन्देह सब प्रकार के कुष्ठों को नाश करके शरीर को कोमल बना देता है।

पृष्ठ १०३९ का शेषांश

है। हमारा ज्ञान लुप्त होता जा रहा है। अब हमें संभलना चाहिये और अपने अतीत ज्ञान से जो हमारे ऋषि महर्षियों के अतुलनीय परिश्रम का फल है प्रेरणा लेकर आगे बढ़ना चाहिये। पर वह प्रगति होनी चाहिये अपने स्वरूप की ही। अपने ढांचे में ढाल कर ही; आज के सारे ज्ञान-विज्ञान को इस प्रकार पचा जाना चाहिये कि उद्गार भी न लेनी पड़े। जय आयुर्वेद।

वार्षिक मूल्य

आगामी वर्ष का वार्षिक मूल्य ५।।) मनियार्डर से शीघ्र ही भेज दीजियेगा। नये-पुराने-स्थायी सभी ग्राहकों से निवेदन है कि वे अपना वार्षिक मूल्य मनियार्डर से शीघ्र भेजने की कृपा करें। इसमें हमको सुविधा रहती है। आपको विशेषाङ्क प्रकाशित होते ही रजिस्ट्री से भेज दिया जायगा। आशा है आप हमारी प्रार्थना पर ध्यान देंगे तथा अपना वार्षिक मूल्य अविलम्ब भेजकर आभारी करेंगे।

—वैद्य देवीशरण गर्ग।

काय चिकित्सा-धारावाहिक लेख (१३)

आन्त्रिक ज्वर (TYPHOID FEVER)

लेखक—कविराज एस. एन. बोस, भिषग्रत्न, एल. ए. एम. एस. इन्दौर।

(गताङ्क से आगे)

रोगनिर्णय—

आन्त्रिक ज्वर में रोगनिर्णय के हेतु पूर्वोक्त लक्षणों के ऊपर ध्यान रखना पर्याप्त होता है। प्रारम्भिक लक्षणों में से तीव्र शिरःपीड़ा नासामार्ग से मामूली रक्त-स्राव, मामूली शुष्ककास, निद्राव्याघात, कोष्ठबद्धता या अतिसार, तथा मामूली आध्मान संदेहोत्पादक हैं। ज्वरताप की क्रमिक वृद्धि तथा द्वितीय सप्ताह में १०३° या १०४° डिग्री में ज्वरताप स्थिर रहना उतार चढ़ाव में मामूली अन्तर, दक्षिण कुक्षि में दबाने पर हल्का गड़गड़ शब्द के साथ मामूली वेदना, प्लीहाभिवृद्धि तथा रक्तवर्ण मण्डलोत्पत्ति आदि लक्षण रोग-परिचायक कहे जा सकते हैं। नाड़ी गति में तुलनात्मक वृद्धि का अभाव द्विरता, जिह्वा के मध्यभाग श्वेताभ मैल-युक्त और पार्श्व व अन्तिम भाग रक्तवर्ण, उदराध्मान की वृद्धि रोगनिर्णय में विशेष सहायक होते हैं।

रोगनिर्णय में सहायता के लिये प्रयोगशाला में रक्त आदि की परीक्षा की जाती है। एतदर्थ Widal Test एक विश्वसनीय परीक्षा है, जिसका सहारा सदा ही लिया जाता है। आन्त्रिक ज्वर में प्रथम सप्ताह के अन्त में से यह परिक्षा सफल होने लगती हैं और अठारह से तेईसवें दिन में पूर्ण रूप से अपना रूप प्रकट करती हैं। १:१०० परीक्षाफल 'सकारात्मक' माना जाता है। क्योंकि स्वस्थावस्था में यह परीक्षाफल १:५० से ऊपर होना असाधारण ही कहा जाता है। ४।५ दिन के अन्तर में कई बार रक्तपरीक्षा की जानी चाहिए और क्रमवर्द्धमान रक्तपरीक्षाफल से रोगनिर्णय निश्चित हो जाता है। साधारणतः बेसिलस टाईफोसस तथा बेसिलस पेराटाईफोसस 'ए' श्रेणी के रोगजीवाणुओं के आक्रमण में यह परीक्षा सफल होती है। इसके अलावा रक्त, मूत्र, पित्त, मल, तथा मज्जा में से रोगजीवाणुओं की उत्पत्तिमूलक परीक्षाओं (Cultures) के द्वारा भी रोगनिर्णय में सहायता की जा सकती है।

भेदाभेद ज्ञान—

श्वास-संस्थानोत्पन्न अथवा आन्त्रिक लक्षणों के बाहुल्य से आन्त्रिक ज्वर में भ्रमोत्पन्न हो सकता है। विशेषतः शिशुओं में अणुखण्डीय श्वसनक ज्वर अतिसार आदि से सम्मिलित रहने से अथवा वयस्कों में गम्भीर प्रदेश स्थित या फुफ्फुसशीर्ष में खण्डीय श्वसनक ज्वर में आन्त्रिक ज्वर के लक्षण प्रकट हो सकते हैं। चिन्ह व लक्षणों के ऊपर विशेष ध्यान देने से, विशेषतः रक्त-परीक्षा आदि के द्वारा रोग-निर्णय सरल हो सकता है।

राजयक्ष्मा के तरुण आक्रमण में आन्त्रिक ज्वर का सन्देह हो सकता है—क्योंकि उसमें भी धीरे-धीरे रोग प्रकट होना, अङ्गमर्द, शिरःपीड़ा, क्रमिक ज्वर ताप वृद्धि, प्रातः ज्वरताप में कमी, कभी-कभी नाड़ीगति की मृदुता, श्वसनिका प्रदाह तथा प्लीहाभिवृद्धि आदि लक्षण उत्पन्न होते हैं। परन्तु राजयक्ष्मा में ज्वर अधिकतर अनियमित, घर्मोद्गम, श्वासकष्ट तथा चेहरे पर श्यावाभा आदि लक्षण एवं उरस्तोय की उत्पत्ति भेदाभेद ज्ञान में सहायक होती है। राजयक्ष्मा में मण्डलोत्पत्ति नहीं होती है, रक्तपरीक्षा में नकारात्मक Widal test अन्तिम रूप से रोग-निर्णय में सहायक होती है।

क्षयज मस्तिष्क सुषुम्नाधरकाला प्रदाह (आक्षेपक ज्वर) में प्रथम सप्ताह के बाद में भी–आक्षेप, वमन, शिरःपीड़ा आदि लक्षणों का प्रगट रहना, नाड़ीगति में वृद्धि का अभाव, गर्दन जकड़ जाना या पीछे की ओर खिच जाना, कर्निग चिन्ह (रोगी को चित लिटाकर उसके पैरों को कमर से मोड़कर फिर उसके जंघा को ऊपर की ओर उठाने में अशक्यता तथा रोगी को काफी वेदनानुभव होना) की उपस्थिति, उदर प्राचीर का संकुचित होना तथा नेत्रसंचालक मांसपेशियों का क्रियानाश आदि से भेदाभेद ज्ञान सम्भव होता है। इस रोग में रोगी संकुचित अवस्था में करवट पर लेटा रहता है–परन्तु आन्त्रिक ज्वर में रोगी असहाय मुद्रा में चित लेटा रहता है। अन्तिम निर्णय तो कटि देश में सूचीवेध के द्वारा निष्कासित सुषुम्ना द्रव की परीक्षा से हो सकता है। क्षयज आक्षेपक ज्वर में सुषुम्ना द्रव में लसीकाणु की पर्याप्त वृद्धि मिलती है और कभी-कभी क्षय रोग जीवाणुओं की उपस्थिति प्रत्यक्ष हो सकती है। आक्षेपक ज्वर तथा आन्त्रिक ज्वर का सम्मिलित आक्रमण हो सकता है। क्षय रोग जीवाणु से उत्पन्न उदर्याकलाप्रदाह में आन्त्रिक ज्वर का सन्देह हो सकता है, परन्तु उदयकलाभ्यन्तर में अथवा फुफ्फुसधराकलान्तराल में स्राव-संचय इस व्याधि में होना सचराचर दिखाई पड़ता है। शरीर के अन्य अङ्ग या यन्त्र में क्षय रोगाक्रमण के चिन्ह के अभाव में रक्त-परीक्षा आदि के द्वारा अन्तिम रोग–निर्णय हो सकता है।

उण्डुकपुच्छ प्रदाह, उदर्याकलान्तरस्थित व्रण-शोथ, वृक्कावयवस्थित व्रणशोथ, पित्ताशय प्रदाह, प्रस-वान्तिक विषसंक्रमण, हृदयाभ्यन्तर कला प्रदाह तथा गम्भीर अस्थि मज्जा प्रदाह में आन्त्रिक ज्वर के समान लक्षण उत्पन्न हो सकते हैं। परन्तु रोगेतिहास तथा प्रारम्भिक अवस्थाओं से विश्लेषण, रोग प्रगति के ऊपर विशेष ध्यान तथा विशेष मनोनिवेश के साथ रोगी परीक्षा से रोग निर्णय सम्भव हो सकता है। उपरोक्त व्याधियों में बहुकोष्ठीय श्वेत-कणिकाओं की संख्यावृद्धि तथा *widal test* का नकारात्मक फल-फल रोग निर्णय में विशेष सहायक माने जाते हैं। उपरोक्त अवस्थाओं में साधारणतः प्रारम्भ में कम्प के साथ ज्वरताप की वृद्धि तथा घर्मोद्गम एवं ज्वरताप की अनियमित वैशिष्ट्य के रूप में नजर आती है।

आन्त्रिक ज्वर प्राथमिक अवस्था में श्लेष्मक ज्वर के साथ भ्रमोत्पन्न कर सकता है। परन्तु श्लेष्मक ज्वर का प्रारम्भ अकस्मात् होता है–तथा उसके लक्षण शीघ्र ही तीव्रतर रूप में प्रगट होते हैं। ज्वरताप जल्दी ही शिखर में पहुँच जाता है, अङ्गमर्द तथा शारीरिक वेदना–विशेषतः कटि देश में वेदना तीव्रतर होती है, शिरःपीड़ा प्रायशः आंखों के ऊपर ही अधिक मालूम होती है, नाक तथा आंखों से पानी बहना, आंखों में लालीपन, काफी पसीना आना, श्लेष्मक ज्वर की विशिष्टता है, कई दिनों के अन्दर ज्वर मोक्ष होता है। परन्तु दीर्घदिन स्थायी श्लेष्मक ज्वर में आन्त्रिक ज्वर का संदेह होना चाहिये।

टाईफस नामक रक्त विषमज्वर के स्वरूपाक्रमण के क्षेत्र में अथवा तीव्र आन्त्रिक ज्वर में विषरक्तता, मोह तथा अत्यधिक मण्डलोत्पत्ति के क्षेत्र में रोग निर्णय में विभ्रम उत्पन्न हो सकता है। ध्यान रखना चाहिये कि आन्त्रिक ज्वर में रोगारम्भ धीरे-धीरे होता है। मण्डलो-त्पत्ति विलम्ब में होती है, मंडलों का रूप चर्माभ्यन्तर में रक्तस्राव के समान नहीं होता है तथा आन्त्रिक लक्षण सदा ही उपस्थित रहता है, परन्तु टाईफस में आकस्मिक रोगारम्भ से ही ज्वरताप की तीव्रता तथा प्रातःकाल में ह्रास का अभाव, नेत्रों की रक्त वर्णता तथा मदा-त्यय रोगी का चेहरा. चतुर्थ दिन में ही मण्डलोत्पत्ति, अत्यधिक अवसाद, स्वल्पकाल में ही प्रलाप अथवा मोहावस्था का आविर्भाव आदि विशिष्ट लक्षण हैं—जिनके द्वारा रोग-निर्णय में भेदाभेद ज्ञान सम्भव हो सकता है। रक्त परीक्षा में Widal Test का नका-रात्मक फलाफल रोगनिर्णय में विशेष सहायक होता है।

मलेरिया जातीय विषमज्वर में, विशेषतः सन्तत रूप में आन्त्रिक ज्वर का संदेह होना स्वाभाविक है। परन्तु मलेरिया साधारणतः स्थान विशेषों में ही होता है। तथा रोगारम्भ अति शीघ्र होता है। रक्त अथवा

मज्जा परीक्षा में मलेरिया के रोग जीवाणुओं की उपस्थिति प्रकट होती है। यह भी स्मरण रखना चाहिए कि मलेरिया तथा आन्त्रिकज्वर एक साथ भी उत्पन्न हो सकता है।

फिरंग रोग की द्वितीय अवस्था में उत्पन्न तीव्र सन्ततज्वर में आन्त्रिक ज्वर का फिरंगज अर्बुदोत्पत्ति जनित दीर्घदिन व्यापी सन्तत ज्वर में आन्त्रिक ज्वर का सन्देह हो सकता है। परन्तु रोगेतिहास, प्राथमिक शिश्न-व्रणोत्पत्ति तथा फिरंगज मंडलों की विशिष्टता तथा रक्त परीक्षा आदि उपद्रवों से रोग निर्णय सरल हो सकता है।

साध्यासाध्यत्व निर्णय—

उम्र, रोगाक्रमण की गुरुता तथा उपसर्गों की उपस्थिति इन सब बातों को ध्यान में रखकर मोटे रूप से यह कहा जा सकता है कि आन्त्रिक ज्वर में मृत्यु का भय करीब-करीब ५ से २५ प्रतिशत है। दुग्धपोष्य शिशुओं में आन्त्रिक ज्वर से मृत्यु अधिक होती है, परन्तु ५-१० साल के उम्र के भीतर मृत्यु संख्या सबसे कम है। इसके बाद वयोवृद्धि के साथ मृत्यु संख्या अधिक होती जाती है। मेदो-रोगग्रस्त व मदात्यय के रोगियों में, श्रांतक्लांत व्यक्तियों में आन्त्रिक ज्वर साधारणतः असाध्य होता है। १३० से १४० तक प्रतिमिनट नाड़ी गति, चहरे पर श्यावाभा के साथ हृदयावसाद के लक्षण, फुफ्फुस में रक्तसंचय, घोरतर प्रलाप, तन्द्रा या मोह, मूत्राल्पता, दीर्घ दिन व्यापी अतिसार, विशेष उदराध्मान तथा मलमूत्र के वेगरोध में अक्षमता आदि लक्षण आन्त्रिक ज्वर की गम्भीर अवस्था के द्योतक कहे जा सकते हैं। तृतीय या चतुर्थ सप्ताह के बाद भी १०३° या १०४° डिग्री तक ज्वर ताप का स्थायी रहना अथवा तीव्र ज्वर ताप के साथ हृदयावसाद के लक्षणों का प्रगट होना विपज्जनक माना जाता है। विलम्ब से *widal test* का सकारात्मक प्रकट होना रोग की तीव्रता का सूचक माना जाता है।

रक्त विषज हृदयावसाद के बाद अन्त्रविदारण को आन्त्रिकज्वर में मृत्यु का अन्यतम मुख्य कारण माना जाता है। तात्कालिक शस्त्र-क्रिया की सहायता के विना रोगी की मृत्यु अधिक सम्भव है-तात्कालिक शस्त्रक्रिया की सहायता से कुछ रोगियों की जीवन रक्षा होसकती है, परन्तु अधिकांश क्षेत्र में मृत्यु ही होती है। अन्त्र से रक्तस्राव-विशेषतः अगर बार-बार होने लगा—तो गम्भीर परिस्थिति का द्योतक है। तीव्र उदराध्मान, मस्तिष्क सुषुम्नावराकला प्रदाह, खण्डीय श्वसनक-ज्वर, तरुण वृक्क प्रदाह विपज्जनक उपसर्ग के रूप में परिणत हो सकता है।

आन्त्रिक ज्वर में कभी-कभी रोग की तीव्रावस्था में अथवा ज्वरमोक्ष के पश्चात् अकस्मात् मृत्यु होती है- साधारणतः इसके लिये रक्त में विष-संचार की तीव्रता, हृदय अथवा फुफ्फुस में रक्त-स्कन्दन अथवा फुफ्फुस में रक्तग्रन्थिजनित रक्ताभिसरण में अवरोध की उत्पत्ति प्रधान है।

चिकित्सा।

साधारण—

आन्त्रिक ज्वर को एक औषधि-साध्य व्याधि न समझ कर एक सुश्रुषा-साध्य व्याधि समझना ही अच्छा है, संयत और व्यवस्थित शुश्रुषा, योग्य पथ्य तथा जलाभिषेक इस रोग के निरामय के लिए विशेष सहायक माने जाते हैं। रोगी को एकान्त में एक हवा व रोशनीदार कमरे में पलंग या चारपाई के ऊपर कोमल शय्या पर रखना चाहिये।

आन्त्रिक ज्वर में शुरू से ही रोगी को शय्यागत रखना भोगकाल को स्वल्पतर बनाने तथा उपसर्गों से बचने के लिये विशेष लाभदायक है। प्रयोजनानुसार मलमूत्र त्याग की व्यवस्था भी शय्या पर ही रखना चाहिए। पीठ के नीचे से लेकर जानु तक एक मोमी कपड़ा (*Rubber cloth*) बिछाकर ऊपर से एक साफ चद्दर फैलाकर उसी के ऊपर रोगी को लिटाना चाहिये-क्योंकि आवश्यकतानुसार केवल ऊपर का चद्दर बदल देने से ही काम चल जायगा। रोगी को जितना हो सके कम हिलाना-डुलाना चाहिये।

रोगी का मल-मूत्र, वमन, थूक रक्तस्राव आदि को रोग संक्रमण के प्रधान उपाय समझ कर उनका ख्याल करना चाहिए। सदा ही उन चीजों को पृथक्-पृथक् ढक्कनदार शोधक-द्रव्यों जैसे कि कार्बोलिक एसिड, डेटल

आदि के घोल में काफी देर तक मिलने के बाद पानी की जगह से दूर किसी गड्ढे में डालकर ऊपर से राखड़ ढक देना चाहिए। रोगी के कपड़े, चद्दरें, उपयोग में आने वाले बर्तन, मल-मूत्र व थूक के भांड, वस्तिकर्म की पिचकारी वगैरह इसी तरह से शुद्ध कर लेना चाहिए। परिचारकों को भी विशेष सावधान रहना चाहिए। इन लोगों को रोग संक्रमण साधारणतः अपरिच्छन्न हाथों के जरिये से होता है एवं अच्छी तरह से सदा-सर्वदा हाथ शुद्ध करते रहने से शुश्रुषाकारियों में रोग-संक्रमण कम हो सकता है।

स्थानिक रूप से आन्त्रिक ज्वर संक्रमण का प्रकट होना साधारणतः रोगवाहकों के कारण हो सकता है। आन्त्रिक ज्वर से मुक्ति लाभ के पश्चात् कुछ दिनों तक रोग जीवाणु, अन्त्र, मूत्राशय तथा पित्ताशय में सजीव रह कर समय-समय पर बाहर निकलता रहता है और रोग संक्रमण का कारण बन जाता है। इन रोग वाहकों में समय-समय आन्त्रिक, मूत्राशयिक अथवा पित्ताशयिक रोग लक्षण प्रकट हो सकते हैं। परन्तु उन लोगों का पता लगाना तथा चिकित्सा के द्वारा निरामय करना मुश्किल सा है।

विशुद्ध जल रोगप्रतिषेध में विशेष सहायक होता है। आन्त्रिक ज्वर के संक्रमण का पता लगते ही पानीय जल व दूध अच्छी तरह से उबाल कर उपयोग में लेना चाहिये। इसी तरह से कच्चा खाद्य पदार्थ अच्छी तरह से गरम पानी में धोकर ही उपयोग में लेना चाहिये। बाजारू चीजें, विशेषतः दही मिठाई आदि इस समय वर्जन करना ही अच्छा है।

रोग प्रतिषेध के लिए पाश्चात्य चिकित्सा शास्त्र में एक प्रकार का टीका (T.A.B. Vaccine) का प्रयोग किया जाता है। इसका सूचीवेध १ सप्ताह के अन्तर में दो भाग में दिया जाता है। इसमें मामूली अङ्गमर्द, ज्वर-बोध या मामूली ज्वर ताप की वृद्धि आदि लक्षण उत्पन्न हो सकते हैं परन्तु साधारणतः १-२ दिन में ये लक्षण मिट जाते हैं। इससे जो रोगप्रतिरोधिका शक्ति की सृष्टि होती है वह १ से २ वर्ष तक स्थायी होती है। कभी-कभी पहिले रोग-संक्रमण के पश्चात् टीका लगाने से रोगाक्रमण तीव्रतर हो सकता है, परन्तु साधारणतः ऐसा नहीं होता है।

प्रति दिन आन्त्रिक ज्वर रोगी का मुंह, हाथ धुलाना अत्यन्त आवश्यक है। सुबह और शाम नियमितरूप से दन्तधावन व कुल्ला करवा कर मुंह साफ रखना चाहिये। जीभ के ऊपर का मैल निकालने की कोशिश करना व्यर्थ है उससे हानि पहुंचती है। प्रतिबार कुछ खिलाने-पिलाने के पहले व पश्चात् मुंह धुलाना परम आवश्यक है। परिचारक के लिये हाईड्रोजन पेरक्साइड (Hydrogen peroxide) में रुई भिगोकर दांत और मुंह साफ करना सरल और सुविधाजनक भी है। फिटकरी का पानी मुंह में छाले न रहने से सेंधा नमक का पानी, बबूल की छाल या गूलर की पत्ती से उबाला हुआ पानी Glycothymolin आदि से मुंह धुलाना लाभदायक है। ओंठ और मुंह के छाले के लिये सौभाग्यलाज शहद के साथ मिलाकर लगाने से शीघ्र क्षतरोपण हो सकता है। ज्वर-वेग तीव्र अर्थात् १०२° डिग्री से ऊपर रहने से सिर में ठण्डे पानी का प्रयोग करना चाहिये। अगर पानी ही देना पड़े तो वह जितना ही ठण्डा हो उतना ही अच्छा है। आडिकोलन (Eau-de-cologne) मिला हुआ पानी दे सकते हैं। कपाल में पान का रस लगा कर पंखा करने से ज्वर वेग व सिर का दर्द कम होता है। सिर दर्द के लिये बहुत से योग मिलते हैं, परन्तु इस क्षेत्र में कोई भी लाभकर नहीं होता है। बर्फ न मिलने पर पानी का उपयोग आवश्यकता के अनुसार सम्पूर्ण अथवा आंशिक मुण्डन करा लेना चाहिये। परन्तु पानी देते समय यह ध्यान हर समय रखना चाहिये कि गर्दन के नीचे का कपड़ा भीगने न पावे।

आन्त्रिक-ज्वर काल में सोच समझ कर ज्वराधिक्य के समय ठण्डे और नहीं तो कुनकुने पानी से प्रतिदिन नहीं तो एक रोज के अन्तर में सारा शरीर पोंछ देना चाहिये, इसमें डरने का कोई कारण नहीं है। बन्द कमरे में इस तरह से गात्र-मार्जन कराने से कुछ भी हानि नहीं होती है—बल्कि इससे प्रलाप व आक्षेप में कमी होती है, हृत्पिण्ड का काम तथा नाड़ी की गति सुधरती है, वृक्कद्वय का

काम बढ़कर पेशाब साफ होने लगता है, खांसी कम हो जाती है, ज्वर वेग कम होजाता है और रोगी का शय्या-क्षत होने की आशङ्का कम हो जाती है। प्रथम सप्ताह के अन्त से रोगी का बल, मांस क्षय आरम्भ होता है—अतः इस समय से प्रतिदिन गात्र-मार्जन के पश्चात् त्रिकास्थि, गुल्फ आदि शय्या-संलग्न अस्थिमय प्रदेश के ऊपर का भाग भली-भांति मेथिलेटड स्प्रिट (Methylated spirit) से पोंछ कर ऊपर से बोरिक एसिड (Boric Acid) तथा सुगन्धित पावडर (Toilet powder) बराबर मिलाकर लगाना चाहिये। उन जगहों में लालीपन, दर्द वगैरह शय्याक्षत के पूर्व लक्षण दिखाई पड़ने से—उन स्थानों के नीचे छोटी छोटी कोमल गद्दी रखनी चाहिये। शय्याक्षत होजाने से उन स्थानों के नीचे चक्राकार व मध्यान्तर एक रुई की गद्दी अथवा उपलब्ध होने से रबर की हवा-भरी गद्दी (Air cushion) रखनी चाहिये—तथा प्रतिदिन विशेष रूप से उस क्षत को साफ सफाई करनी चाहिये। शय्याक्षत जीवनी शक्ति ह्रास का परिचायक है। रोगी के नेत्रों को साफ धोकर उसमें पारिभंद्र की छाल पर बनाया हुआ घी का काजल लगाना अच्छा है। रोगी को एक ही करवट पर अथवा चित्त लेटा हुआ रहना उचित नहीं है इससे फुफ्फुस में रक्त-सञ्चय, की आशङ्का बलवती होजाती है। एतदर्थ प्रतिदिन २-४ बार धीरे-धीरे करवट बदल देना चाहिये। किसी समय भी रोगी को तकलीफ नहीं देना चाहिये। उसके विश्राम में व्याघात न होने पावे इसका हर समय ध्यान रखना चाहिये। क्योंकि विश्राम से ही रोगी को बहुत कुछ लाभ मिलता है।

पथ्य—

आन्त्रिक ज्वर का सन्देह होते ही रोगी को तरल पथ्य पर रखना विशेष आवश्यक है। प्रारम्भ से ही सहज पाच्य व बलकारक पथ्य की व्यवस्था करनी चाहिये। एतदर्थ अनार बेदाना का रस, मीठा सन्तरा या मुसम्मी का रस, अनन्नास का रस तथा दुग्ध आदि उपादेय पथ्य कहा जा सकता है। साधारणतः उबाला हुआ दूध बार्ली के पानी के साथ मिला कर कुछ मिश्री, शक्कर या ग्लुकोज डाल कर देना चाहिये। केवल दुग्ध से पेट में वायु उत्पन्न हो सकती है—और इससे अतिसार तक हो सकता है। परन्तु बार्ली का पानी मिलाकर पिलाने से यह तकलीफ नहीं होती है, कोष्ठबद्धता के क्षेत्र में पतला साबूदाने का पानी दुग्ध में मिलाकर दिया जा सकता है। साबूदाना पानी में पकाकर बाद में दुग्ध मिलाकर देना अच्छा है। दुग्ध में साबूदाना पकाना रोगी के पथ्य के लिये कदापि उचित नहीं है। अतिसार के क्षेत्र में नीबू का रस व शक्कर डालकर केवल बार्ली का पानी अथवा दूध फाड़ के पानी अधिक हितकर है। अतिसार में दुग्ध देना बिलकुल बन्द कर देना चाहिये। मक्खन निकाला हुआ ताजा मट्ठा छानकर रोगी को दिया जा सकता है। उदराध्मान ज्यादा रहने से नीबू के रस या साईट्रिक एसिड (Citric acid) से दुग्ध फाड़ना चाहिये, अतिसार ज्यादा रहने से फिटकरी से दूध फाड़ना अधिक लाभदायक होगा, रोगी को काफी मात्रा में तरल पदार्थ पीने के लिये देना चाहिये। इसलिये उबाला हुआ पानी, षडङ्ग पानीय, बिना गिरी के नारियल का पानी, पानी सरीखा पतला बार्ली का पानी, शाठी का पानी, श्वेतसार (Albumen) का पानी आदि में प्रयोगानुसार मिश्री या ग्लूकोज मिलाकर रोगी को पिलाया जा सकता है। २४ घण्टे के अन्दर तरल पदार्थ का परिमाण कम से कम दो सेर से कम नहीं होना चाहिये और वह चार सेर तक भी हो सकता है। २४ घण्टे के अन्दर जितना पानी पिलाया गया और २४ घण्टे में जितना पानी मल मूल के रूप से निकला है—उसका ठीक-ठीक हिसाब रखना चाहिये। रोगी को कुछ भी कड़ी चीज पथ्य में नहीं देना चाहिये। जो कुछ भी पथ्य रोगी को दिया जाय उसे अच्छी तरह से साफ कपड़े में छानकर उपयोग में लेना चाहिये। पथ्य वगैरह हर समय ढंक कर रखना, पिलाने का वर्तन प्रति बार गर्म पानी में धोकर उपयोग में लेना तथा पिलाने के पहिले परिचारकों को हस्तादि विशोधित करना आवश्यक है। निर्दिष्ट समय पर ही पथ्य देना चाहिये। अच्छा सोडा या लिमनेड का पानी दिया जा सकता है। ज्वर मुक्ति के पश्चात् कम से कम एक सप्ताह तक रोगी को तरल पथ्य के सिवा और कुछ नहीं देना

चाहिये। इस बात को भली भाँति याद रखना चाहिये कि आन्त्रिक ज्वर में पुनराक्रमण का एक विशिष्ट कारण अनुचित तथा असामयिक खाद्य द्रव्यों का उपयोग है। ज्वर मोक्ष के पश्चात् धीरे-धीरे तथा सावधानी के साथ रोगी को अन्न पथ्य देना चाहिये। पहिले पहल गाढ़ा साबूदाना दूध में अथवा मूंग के दाल के पानी में मिलाकर देना अच्छा है, बाद में पतली खिचड़ी (बिना घी की) दी जा सकती है। रोगी आमिषाशी होने से बलाधान के लिये अण्डे का पीला हिस्सा और बाद में पूरा अण्डा, कलेजी तथा हड्डी का शुरुआ जिन्दा मदनूर आदि छोटी मछलियों का शुरुआ, आदि दिया जासकता है। फलों का रस विशेषतः मुसम्मी का रस दीर्घ दिन तक रोगी को देते रहना चाहिये। इससे केवल बलाधान ही नहीं बल्कि अन्त्रों में क्षतरोपण में काफी सहायता मिलती है। रोगी पूर्ण स्वस्थ होने के बाद गेंहूं की रोटी देनी चाहिये।

औषधोपचार—

यदि प्रथम सप्ताह में ही रोगी चिकित्सा के लिए आवे और तब तक रोग का निर्णय न हुआ हो तो शुरू-शुरू में अमृत घटित औषधि दी जा सकती हैं, परन्तु रोग का निर्णय हो जाने के पश्चात् अमृत औषधियों का प्रयोग उचित नहीं है। पहिले सप्ताह में सौभाग्य वटी, मृत्युंजय रस, आनन्द भैरवी, संजीवनी वटी, त्रिभुवनकीर्त्ति रस आदि ज्वर के लिये, सितोपलादि चूर्ण, शृंग्यादि चूर्ण, चन्द्रामृत रस आदि खांसी के लिये और पेशाब साफ रखने के लिये दवक्षार, शुभ्रपर्पटी आदि दे सकते हैं। पेट की खराबी ले आने ऐसी कोई भी वस्तु नहीं देना चाहिये। कोष्ठबद्धता रहने से हारसिंगार की पत्ती का रस, विषमज्वर का सन्देह होने से सम्भालू की पत्ती का रस, कफ प्रकोप में आर्द्रक तथा पान या तुलसी पत्ती का रस, पित्त प्रकोप में सेका हुआ परवल का रस, पटोलपत्र का स्वरस, पित्तपापड़ा का स्वरस आदि उपयुक्त अनुपान कहा जा सकता है। आन्त्रिक ज्वर में पित्त का प्रकोप रहता ही है, एतदर्थ पित्तनाशक अनुपान के साथ मृत्युंजय रस आदि दिन में दो-एक बार देना ही चाहिये। उदराध्मान रहने से शुभ्र पर्पटी, मकरध्वज या रससिन्दूर के साथ मिलाकर सौंफ का पानी धनियां व सौंफ का फाण्ट, बतासे का पानी, बिना गिरी के कच्चा नारियल का पानी और नहीं तो केवल गर्म पानी मिश्री के साथ देने से लाभ होता है। यदि प्रलाप निद्रानाश तथा वायु के अन्य लक्षण प्रकट रहे तो कृष्णचतुर्मुख या वातचिन्तामणि रस आदि दवाईयां वायुनाशक अनुपान जैसे तण्डुलोदक, बड़ी इलायची का चूर्ण जटामांसी का शीतकषाय आदि अनुपानों के साथ व्यवस्था की जा सकती है। कोष्ठबद्धता रहने से भी किसी प्रकार का जुलाब नहीं देना चाहिये। पहिले सप्ताह में भी जुलाव देना खतरनाक है-क्योंकि प्रथम सप्ताह के अन्त तक या दूसरे सप्ताह के प्रारम्भ में आन्त्रिक ज्वर में अतिसार होना स्वाभाविक है, इस समय जुलाव देकर आमाशय, पक्वाशय तथा रोगी को कमजोर बना देना बिलकुल अनुचित है। पाखाना साफ करवाने के लिए या तो बाहर से कोई दवा मलद्वार में प्रवेश कराना चाहिए जैसे कि बच्चों में मुक्तावली की पत्ती को पीसकर थोड़ा सा घी मिलाकर अथवा तुत्थक भस्म बराबर रससिन्दूर के साथ मिलाकर दो तीन रत्ती की मात्रा में घी के साथ मिलाकर अथवा ग्लिसरीन की बत्ती (glycerine-suppository) से काम लिया जा सकता है। अन्यथा ग्लिसरीन और कुनकुना पानी बराबर मिलाकर अथवा ग्लिसरीन,आलिभ अयेल व कुनकुना पानी एक साथ मिलाकर बस्ति प्रयोग के द्वारा पाखाना साफ कराया जा सकता है। अतिशय कोष्ठबद्धता रहने से मुलहठी, मुनक्का आदि दूध या पानी में उबालकर दिया जा सकता है। मुनक्का को सबीज अच्छी तरह पीसकर गरम दूध में मिलाकर पिलाने से बड़ी आसानी से पाखाना साफ हो सकता है।

दूसरे सप्ताह में अमृत घटित औषधि बन्द कर देना चाहिये, परन्तु इसमें एक व्यतिक्रम नजर आता है। यह दवा भांग की पत्ती के क्वाथ से भावना दीगई धतूरे के बीज और अमृत घटित भैषज्यरत्नावली की आनन्दभैरवी है। आन्त्रिक ज्वर में आनन्दभैरवी की विशेष योग्यता वैद्य लोग बहुत मानते हैं। आन्त्रिक ज्वर में पहला दस्त रहने से नागरमोथा, गंध प्रसारिणी का रस व तण्डुलोदक के साथ देने से ज्वरवेग व मलभेद में बहुत ही लाभ पहुंचता है। कोष्ठबद्धता के क्षेत्र में आनन्दभैरवी पान के

रस के साथ देने से कोष्ठ साफ होकर ज्वर वेग कम हो सकता है। वस्तुतः आन्त्रिक ज्वर में आनन्दभैरवी एक विशिष्ट फलदायी तथा अपरिहार्य दवा सरीखी प्रतीत होती है

शुभ्रपर्पटी, मकरध्वज या रससिन्दूर के साथ मिला कर दिन में दो बार पूर्वोक्त अनुपान से देते रहने से ज्वर वेग की तीव्रता का ह्रास होता है, उदराध्मान कम होजाता और पेशाब भी बढ़ता है। उदराध्मान अधिक रहने से शुभ्रपर्पटी, लवणभास्कर के साथ मिलाकर पूर्वोक्त अनुपान के साथ देने से लाभ होता है, परन्तु हिंग्वाष्टकचूर्ण अथवा हींग घटित अन्य औषधियों का प्रयोग आन्त्रिकज्वर में कदापि उचित नहीं है इससे अन्त्र विदारण की आशङ्का बढ़ जाती है। इस सप्ताह में बहुत से वैद्य लोग सुबह कृष्णचतुर्मुख, सेंके हुए परवल के रस के साथ देते हैं—यह वायु-पित्तनाशक योग है जो कि इस सप्ताह में विशेष उपयोगी माना जाता है। इसको छोड़ कर प्रलाप, निद्रा-नाश तथा अन्यान्य वायु के लक्षण प्रवल रहने से बृ० वातचिन्तामणि अथवा रसराज रस आदि वायुनाशक औषधि बड़ी इलायची का चूर्ण, तण्डुलोदक व मिश्री अनुपान से अथवा जटामांसी के फान्ट से शाम को और एक बार दी जानी चाहिये। ज्वरवेग की तीव्रता के साथ कफ प्रकोप के अथवा श्वसनक ज्वर के लक्षण प्रकट रहने से बृ० कस्तूरीभैरव १ रत्ती या दो रत्ती की मात्रा में दे सकते हैं। फुफ्फुस प्रदाह के लक्षण मिलने से पहिले ही सावधान होना परमावश्यक है—और श्वसनक ज्वरोक्त चिकित्सा पूरी तरह से अपनाई जानी चाहिये।

अतिसार के लिये उदरामय अधिकारोक्त सर्वांगसुन्दर रस, श्री रामबाण रस व महागन्धक योग, नागरमोथा, गन्धप्रसारिणी का रस तथा तण्डुलोदक के अनुपान से अथवा स्वल्प मात्रा से अतिसार अधिकारोक्त काढ़ा—जैसे धान्यपञ्चक, मुस्तकादि आदि के साथ प्रयोग करने से लाभ होता है। यदि आवश्यक हो तो कर्पूर रस वगैरह अहिफेन घटित दवाईयां देकर अतिसार को रोकना चाहिये अन्यथा रोगी का जीवन खतरे में पड़ सकता है। परन्तु अहिफेन घटित औषधि अति मामूली रूप से या एक दो मात्रा से अधिक उपयोग में नहीं लेना चाहिये—इससे अधिकतर हानि हो सकती है। उदराध्मान व मूत्राल्पता को दूर करने के लिये तथा ज्वर वेग की तीव्रता का ह्रास करने के लिये एक डाक्टरी नुसखा—जिसमें ग्लूकोज १ औंस, सोडाबाई-कार्ब १ ड्राम, सोडासाईट्रस १ ड्राम तथा हैक्सामीन २/३ ड्राम (४० ग्रेन) ढाई पाव उबाले हुए पानी में मिलाकर बनाया जाता है विशेष उपकारी सिद्ध हुई है। यह पानी एक बोतल में भर कर दिन भर में थोड़ा थोड़ा करके पिलाना चाहिये और २४ घण्टे में इतना पानी पिला देना चाहिये। आन्त्रिक ज्वर में पेशाब रोग जीवाणु मिश्रित होता है। Hexamine पेशाब के इस विष दोष को दूर करता है, इस दृष्टि से इस औषधि की उपयोगिता विशिष्ट मानी गई है। अतः उपरोक्त औषधियों से उदराध्मान कम होकर तथा पेशाब का विष दोष दूर होकर रोगी को लाभ पहुंचता है। एत-दर्थ आयुर्वेदोक्त औषधियों के भीतर गोखुरू व जटामांसी सम्मिलित तृणपञ्चमूल काढ़ा पानी के रूप में बना कर मिश्री के साथ मिला कर देने से उपरोक्त लाभ हो सकता है। उदराध्मान के लिये कृष्ण कासमर्द की पत्ती का रस सरसों के तैल के साथ मिलाकर उदर के ऊपर लेप करने से अथवा थोड़ा तारपीन का तैल गर्म पानी में छोड़ कर उसमें ऊनी कपड़ा भिगोकर और निचोड़कर धीरे-धीरे पेट सेंकने से अच्छा लाभ मिलता है। आवश्यक होने से वस्ति-क्रिया में पानी के साथ थोड़ा सा तारपीन का तैल मिलाकर प्रयोग किया जाता है अथवा गुदनलिका के प्रयोग से तात्कालिक लाभ उठाया जा सकता है। पेट के ऊपर देवदार, सोआ के बीज, कूठ, वच व सेन्धा नमक कांजी में पीसकर लेप करने से लाभ होता है।

प्रथम सप्ताह में ज्वर निर्णय के पहिले रोगी को क्विनीन दिन में १५-२० ग्रेन की मात्रा में मुंह के द्वारा २-३ दिन तक दिया जा सकता है, परन्तु द्वितीय सप्ताह में क्विनीन का प्रयोग कदापि उचित नहीं है। विशेषतः मलेरिया निश्चय न होने से क्विनीन का सूचीवेध कदापि उचित नहीं है।

तीसरे हफ्ते में दूसरे हफ्ते के अनुसार ही औषधि प्रयोग करना चाहिये। उपसर्गों के अनुसार उसमें फेर-

वदल किया जा सकता है। रोगी का प्रलाप घोरतर होने से अथवा आक्षेप वढ़ने से चतुर्भजरस की व्यवस्था करनी चाहिए। फुपफुस के प्रदाह के लिए विशेप सावधान होना अत्यन्त आवश्यक है।

प्रायशः इस सप्ताह के अन्त में रोगी की हालत धीरे-धीरे सुधरने लगती है। अगर ज्वरवेग व अन्यान्य उपसर्ग वर्त्तमान रहे तो तदनुसार चिकित्सा की जानी चाहिये। चतुर्थ सप्ताह में रोग की अवस्था के अनुसार दवाइयां धीरे-धीरे कम करना चाहिये। रोगी की हालत समझकर विवेचनापूर्वक चिकित्सा करनी चाहिए। हालत सुधरने के साथ साथ रोगी का पथ्य धीरे-धीरे वढ़ाना चाहिए। परन्तु पथ्य तरल ही देना जरूरी है।

विशिष्ट उपसर्गों की चिकित्सा

रक्तस्राव—

आन्त्रिक ज्वर में रोगी के अन्त्र से मामूली रक्त निकल सकता है जो नग्नचक्षु से दृष्टिगोचर नहीं भी हो सकता है, अणवीक्षण यन्त्र की सहायता से पता लग सकता है। परन्तु इससे अधिक रक्त निकल सकता है—जो अधिकांश क्षेत्र में हलके या गहरे डामर के रंग के काले मल के रूप में नजर आता है। रक्तस्राव अधिक न होने से ताजा लाल रक्त नजर नहीं आता है। अधिक मात्रा में काला मल निकलने से अथवा मामूली ताजा रक्त देखने से रक्तस्राव का सन्देह होना चाहिये। इस समय रोगी को पूर्णरूपेण शय्यागत रखना चाहिए, हिलना-डुलना या उठना-बैठना विलकुल वन्द कर देना चाहिए। रक्तस्राव होने पर विछोने पर मलमूत्र त्याग की व्यवस्था सख्ती से अपनानी चाहिए। रोगी को थोड़ा-थोड़ा वर्फ चूसने के लिए दिया जाय और वहुत हलका करके वर्फ की थैली पेट पर रखना चाहिए। मुंह से अन्य पथ्य देना वन्द कर देना चाहिए और अन्त्र विदारण के चिन्ह के ऊपर सदा ध्यान रखना चाहिए। रक्तरोध के लिए रक्तातिसार अधिकारोक्त औपधियों का प्रयोग किया जा सकता है। प्रवाल, कपर्द, शुक्तिभस्म आदि चूना जातीय औपधियों के साथ रसांजन चूर्ण मिलाकर लाक्षा के क्वाथ के साथ अथवा अन्य रक्तरोधक अनुपान—जैसे दूर्वा का रस, कुकरुण्डा की पत्ती का रस, विशल्यकरणी या आयापान का रस आदि के साथ देने से लाभ होता है। लाक्षा, दारुहल्दी, गुडूची, इन्द्रायन, नागरमोथा, सुगंधवाला, अतीस बरावर लेकर उसका काढ़ा महागंधक के साथ अथवा अकेला थोड़ा-थोड़ा करके पिलाने से अथवा तण्डुलोदक के साथ धान्वन्तर चूर्ण के प्रयोग से रक्तातिसार में लाभ होता है। रोगी की चारपाई या पलंग पैर की तरफ से कुछ ऊंची कर देना अच्छा है। लाक्षा का क्वाथ अच्छी तरह से छानकर अथवा उदुम्बरसार पानी में घोलकर अन्त्रपथेन विन्दु-विन्दु करके प्रवेश करवाने से लाभ पहुंचता है। दूसरी सव दवाईयां वन्द रखना चाहिये। विशेष आवश्यक न होने से उत्तेजक औषधियों का प्रयोग कदापि उचित नहीं है। डाक्टरी दवाईयों के अन्दर रक्तरोध के लिये अहिफेन घटित दवाइयां, जैसे १० बुंद लडेनम (Landanm) अथवा १/४ ग्रेन की मात्रा में मर्फिया का सूचीवेध दिया जाता है। इसके अलावा केपिलीन (वि-ामिन 'के'), विटामिन 'सी', केलसियम. क्लोराईड, कोयागुलीन (सिवा कम्पनी का), Haemostatic Serum तथा Normal horse Serum के सूचीवेध भी दिये जाते हैं। वल रक्षा के लिए ग्लुकोज सेलाईन का सूचीवेध सिरापथे देते हैं। इसके अलावा सिरापथे रक्त संचारण की व्यवस्था की जाती है।

आन्त्र विदीर्ण होना—

अन्त्र विदीर्ण होने के लक्षण प्रगट होते ही रोगी को शल्य चिकित्सक के शरण कर देना चाहिये—नतु वा रोगी का जीवत तुरन्त विपदापन्न हो सकता है अथवा उदर्याकला का प्रदाह होकर कुछ दिनों में जीवनाशङ्का प्रवल हो सकती है।

हृदयावसाद—

हृत्पिण्ड के काम की मृदुता या स्तब्धता परिलक्षित होने से उत्तेजक औषधि यथा वृ० कस्तूरीभैरव रस कस्तूरी मकरध्वज, मृदमदासव, मृतसंजीवनी सुरा Brandy हेमगर्भ पोटली रस आदि का प्रयोग करना चाहिये। रोगी का वल माँस क्षय अधिक न होने से सर्प विषघटित

औषधि जैसे सूचिकाभरण रस अथवा अघोर नृसिंह रस का प्रयोग अन्तिम उपाय के रूप में उपयोग में लेना चाहिये। डाक्टरी दवाइयों के भीतर Coramine, Strychnine, Digitalis, Atropin, Cardiozol, Adrenalin chloride, Comphor-in-oil, वगैरह उत्तेजक सूचीवेधों का प्रयोग होता है। बूंद-बूंद करके Glucose-Saline का प्रयोग भी शिरापथे किया जाता है। हाथ पैर गरम पानी की थैली से सेंकना अथवा सोंठ या कट्फल के चूर्ण से रगड़ना, पसीना निकलते रहने से सारे शरीर में फाग, वार्लो या टायलेट पावडर मलना विशेष हितकर है। पसीना रोकने के लिए कपर्दकभस्म व मकरध्वज अनार के रस के साथ दिया जाता है, Atropine के सूचीवेध से तुरन्त पसीना निकलना बन्द हो जाता है। हाथ-पैरों में तथा वक्षः के दोनों ओर गरम पानी की थैली अथवा बोतल रखनी चाहिए, परन्तु ध्यान रहे उससे रोगी का शरीर जल न जाय।

कर्णमूल शोथ—

आन्त्रिक ज्वर के अन्त में साधारणतः कर्णमूल प्रदाह होकर शोथ उत्पन्न हो जाता है। यह एक वात-श्लैष्मिक उपसर्ग है अतः इसकी चिकित्सा तदनुसार होनी चाहिए। कर्णमूल शोथ के लिए श्रीरामबाण युक्त महालक्ष्मी विलास, (हृद्दौर्बल्य रहने से श्री रामबाण नहीं देना चाहिए) स्वल्प कस्तूरीभैरव, श्लेष्मशैलेन्द्र रस वगैरह दवाइयां वातश्लेष्मनाशक अनुपान के साथ देनी चाहिए। शोथ पर प्रलेप के लिए नालुका चूर्ण (तज) नालुका और सहिजन की छाल बराबर लेकर उसका चूर्ण पानी में मिलाकर अथवा धतूरे की पत्ती, समुद्रफेन, भुजा हुआ चावल व सोंठ एक साथ धतूरे की पत्ती के रस में पीसकर गर्म करके लेप करने से अच्छा लाभ होता है। डाक्टरी दवाइयों के अन्दर Ext. Belladona व Glycerine, Empl. Belladona अथवा Antiphlogistine का प्रयोग होता है। लेप लगाकर सदा ही गर्म कपड़ा या रुई से बांधकर रखना चाहिए। डाक्टरी दवाइयों में से सल्फाथायाजीन अथवा पेनिसीलिन का सूचीवेध विशेष उल्लेखनीय है। पीव हो जाने से शल्यचिकित्सा की सहायता लेनी ही चाहिए।

आन्त्रिक ज्वर के अन्त में किसी-किसी क्षेत्र में उन्माद रोग के लक्षण दिखाई पड़ते हैं। सुचिकित्सा से अधिकांश क्षेत्र में (करीब-करीब सब ही क्षेत्र में) सुफल मिलता है और कुछ दिनों के अन्दर रोगी अच्छे हो जाते हैं।

अन्यान्य उपसर्गों की चिकित्सा लक्षणानुसार होनी चाहिये।

पुनराक्रमण—

आन्त्रिक ज्वर में पुनराक्रमण अनेक क्षेत्रों में दिखाई पड़ता है। साधारणतः इसके चार स्थूल कारण कहे जाते हैं।

१—कोष्ठबद्धता,

२—शरीर में मैल जम जाना,

३—अनियमित तथा अनुचित आहार तथा

४—परिश्रम।

इन विषयों के ऊपर ध्यान रखने से अधिकांश क्षेत्र में रोग के पुनराक्रमण से बचा जा सकता है। प्रतिदिन कोष्ठ साफ रखने के लिये पथ्य को नियमित तथा प्रयोगानुसार औषधि साधित कर लेना चाहिए। आवश्यक होने से वस्ति प्रयोग के द्वारा अथवा हलका जुलाब लेकर पाखाना साफ रखना चाहिये। प्रतिदिन अथवा एक रोज के अन्तर से गात्रमार्जन करते रहने से शरीर में मैल जमने की आशङ्का ही नहीं रहेगी। २।१ रोज के बाद साबुन का उपयोग भी करना चाहिए। पथ्य के सम्बन्ध में पहिले ही बताया जा चुका है। दृढ़ता के साथ उन नियमों का पालन करना चाहिये। आन्त्रिक ज्वर से मुक्ति के पश्चात् रोगी को पूर्ण विश्राम लेना परमावश्यक है—इस नियम का पालन जरा भी मुश्किल नहीं है। इसकी अवहेलना से फिर से आन्त्रिक ज्वर के समान घोरतर व्याधि का सामना करना पड़ता है जिससे प्रत्येक रोगी को बचना चाहिए। पुनराक्रमण के क्षेत्र में प्राथमिक

आन्त्रिक ज्वर के समान चिकित्सा की जानी चाहिए।

आधुनिक चिकित्सा—

आन्त्रिक ज्वर में आधुनिक पाश्चत्य चिकित्सा में एक युगान्तर की सृष्टि हुई है। Chloromycetin (क्लोरोमाईसिटीन) के आविष्कार के बाद आन्त्रिक ज्वर उतना खतरनाक नहीं माना जाता है। इसका एक मात्र कारण Chloromycetin के प्रयोग से २-३ दिन के अन्दर ज्वरताप स्वाभाविक हो जाता है—अतः अन्य उपसर्गों की सृष्टि का अवसर ही नहीं मिलता है। यद्यपि Chloromycetin के प्रयोग से आन्त्र का क्षत रोपण ज्वरमोक्ष के साथ-साथ नहीं होता है—तथापि ज्वरताप वृद्धि के अभाव में उपसर्गों से रोगी को तकलीफ नहीं उठानी पड़ती है, उपसर्गों के कारण जीवनाशङ्का उत्पन्न नहीं होती तथा रोग का भोगकाल कम हो जाने से रोगी का बल मांस क्षय अति स्वल्प होता है। इन दृष्टियों से Chloromycetin की उपयोगिता प्रशंसनीय है, परन्तु Chloromycetin से कुछ हानियां भी हो सकती हैं। किसी-किसी रोगी में अचानक हृदयावसाद उत्पन्न होकर मृत्यु तक होती है—ऐसा भी देखा गया है। किसी-किसी रोगी में विवमिषा, वमन, क्षुधामान्द्य उत्पन्न हो सकता है। दीर्घ दिन तक प्रयोग चालू रखने से पाण्डु रोग की सृष्टि हो सकती है। परन्तु सावधानी से इस औषधि के प्रयोग से काफी लाभ उठाया जा सकता है—इसमें सन्देह नहीं है।

Chloromycetin का स्वाद अत्यन्त तिक्त तथा अरुचिकर है—अतः इसे कैपशूल में भरकर प्रयोग किया जाता है और बाजारों में भी इसी रूप में यह औषधि मिलती है। साधारणतः यह औषधि २५० मि.ग्रा. की मात्रा में एक-एक कैपशूल में मिलती है।

शुरु-शुरु में यह औषधि प्रथम मात्रा में शारीरिक वजन के अनुसार प्रति ५० मिलिग्राम के हिसाब से दी जाती थी और बाद में जब तक ज्वरताप स्वाभाविक स्तर पर न आ जाय तब तक प्रति २ घण्टे में ·२५ ग्राम दी जाती थी। परन्तु अभिज्ञता से देखा गया है, कि इस तरह के प्रयोग से हृदयावसाद, विवमिषा तथा वमन आदि विषक्रिया के लक्षण अधिकतर उत्पन्न होते हैं। अतः अधुना ३ से ६ घण्टे के अन्तर में Chloromycetin का केपसुल इस तरह से विभाजित मात्रा में किए जाते हैं जिससे २४ घण्टे में रोगी को २ से ३ ग्राम तक औषधि प्राप्त हो सके। रोगी को रोगनिर्णय के पश्चात् अर्थात् प्रथम सप्ताह के आखिरी में इस तरह से प्रयोग करने से विशेष लाभ होता है। तीव्रतर आक्रमण के क्षेत्र में अथवा विलम्ब से औषधि प्रयोग का अवसर मिलने से प्राथमिक मात्रा में ३ से ४ केपसुल दिए जाते हैं और बाद में पूर्वोक्त क्रम चालू किया जाता है। साधारणतः ३ से ५ दिन के भीतर रोगी का ज्वरताप स्वाभाविक स्तर पर आ जाता है। बाद में ७ दिन तक रोगी को मात्रा कम कर Chloromycetin चालू रखना चाहिए। ऐसा देखा गया है कि एक साधारण आन्त्रिक ज्वर रोगी को स्वस्थ होने के लिये १० से १५ ग्राम से अधिक Chloromycetin की आवश्यकता नहीं पड़ती है। शिशुओं में उम्र के अनुसार अर्द्ध अथवा एक तृतीयांश मात्रा पर्याप्त होती है।

Chloromycetin के प्रयोग के समय रोगी को पूर्ण विश्राम के साथ शय्याशायी रखना विशेष आवश्यक है। ज्वरमोक्ष के पश्चात् कुछ उपसर्ग न रहने से भी कम से कम ७ दिन तक शय्याशायी रहना ही चाहिए। उठकर बैठना भी अनुचित है। इस नियम की अवहेलना से आकस्मिक विपद की सृष्टि होकर रोगी का जीवनान्त तक हो सकता है। पथ्य भी पूर्वोक्त रूप से दृढ़ता के साथ नियमित व संयत रखना चाहिए। ध्यान रहे कि Chloromycetin से अन्त्रों का क्षतरोपण ज्वर मोक्ष के साथ ही साथ नहीं होता है, और शक्तिशाली औषधि होने की बजह से उतनी ही हानि पहुंचा सकती है। अतः इन सावधानियों का पालन करना परमावश्यक हो जाता है।

Chloromycetin के द्वारा चिकित्सित रोगियों में पुनराक्रमण हो सकता है। पुनराक्रमण के क्षेत्र में पुनः Chloromycetin के प्रयोग की आवश्यकता होती है

—शेषांश पृष्ठ १०५६ पर।

कर्ण-बाधिर्य

लेखक—श्री वैद्य शेषराव जैन आयुर्वेदरत्न प्रधानाध्यापक प्राथमिक पाठशाला, भडूस (बैतूल)

गत सितम्बर १९५६ के धन्वन्तरि अङ्क में मेरे "गोमूत्र पर मेरे अनुभव" शीर्षक निबन्ध के प्रकाशनोपरान्त आज तक मुझे लगभग ३० पत्र प्राप्त हुए। केवल एक पत्र को छोड़ शेष सभी पत्र "कर्णबाधिर्यनाशक तैल के योग के सम्बन्ध में हैं। कुछ पत्र वैद्य महाशयों के प्रयोगार्थ तैल भेजने के प्रति हैं तथा शेष पत्र बाधिर्य रुग्णों के हैं। इन पत्रों में इन रुग्णों ने अपनी करुण अवस्था का वर्णन अत्यन्त मर्म-भेदी शब्दों में किया है। कर्णबाधिर्य पर अधिक प्रकाश डालने की प्रेरणा देकर कुछ प्रश्न भी मुझ से पूछे हैं जिनका आशय निम्न प्रकार है।

१—क्या जन्म के बहरे भी इस तैल के प्रयोग से अच्छे होते हैं?

२—आपने (मैंने) अभी तक कितने बहरों का बहरापन दूर किया है?

३—उपरोक्त बहरे क्या जन्म से बहरे थे अथवा मध्यावस्था से तथा किस प्रकार बहरे हुए। उनकी चिकित्सा का क्रम क्या था?

४—क्या आन्त्रिक ज्वर अथवा शीतला (मसूरिका) के प्रकोप से बाधिर्य रोगी भी अच्छे हो सकते हैं? यदि हां! तो किस प्रकार। कृपया कर्ण-बाधिर्य पर धन्वन्तरि अङ्क द्वारा विस्तृत प्रकाश डालें?

५—कुछ रोगियों तथा वैद्यों के तैल भेजने के विषय में पत्र प्राप्त हुए।

पाठकों के पञ्चम प्रश्न का उत्तर देते हुए मैं उनकी प्रेरणावश कर्णबाधिर्य पर एक विहङ्गम दृष्टि डालूंगा। मैं एक प्राथमिक पाठशाला का अध्यापक हूँ। मेरा प्रधान व्यवसाय अध्यापकीय कार्य है। चिकित्सा कार्य नहीं। अध्यापकीय कार्य के अवकाश मात्र ही का उपयोग मैं आयुर्वेद सेवा में व्यतीत कर सकता हूँ। अतः मेरे पास कोई वृहद् औषधालय या फार्मेसी अथवा दवाखाना नहीं है। जिससे मैं अधिकांश रुग्णों एवं वैद्यों की अधिकाधिक सेवा कर सकूं। फिर भी मेरे पास अभी तक जितने पत्र आये हैं उन्हें मैं प्रयोगार्थ तैल अवश्य भेजूंगा। पश्चात् पाठकों तथा विज्ञ महाशयों से अनुरोध है कि सितम्बर अङ्क में तैल योग स्पष्ट दिया है। कृपया स्वयं तैयार कर प्रयोग कर लें। स्थिति, अनावकाश तथा प्रतिकूल विपन्नावस्था के कारण मैं तैल भेजने में असमर्थ रहूंगा। जिन महाशयों को तैल भेजा जायगा वे महाशय प्रस्तुत लेख में वर्णित बातों का अध्ययन कर तदनुसार आचरण करें। भगवान धन्वन्तरि की कृपा से वे स्वास्थ्य लाभ करेंगे। लाभा-लाभ से धन्वन्तरि के द्वारा सूचित भी अवश्य करें। मैंने अभी तक जितने कर्ण-बाधिर्य रोगियों की चिकित्सा की है उनमें जन्म का बहरा तो एक भी नहीं था। २० से २५ वर्ष एक के बधिर अवश्य थे। उन सबका दोषानुसार उपचार विविध प्रकार का था। किंतु असफल कहीं नहीं हुआ इतना कह सकता हूँ।

कर्ण-बाधिर्य पर एक विहंगम दृष्टि

हेतु—

प्रवश्याय नव क्रीड़ा कर्णकण्डू यनैर्मरुत।
मिथ्या योगेन शस्त्रस्य कुपितोऽन्यैश्च कोपिनः॥

प्राप्य स्त्रोत्र शिराः कुर्यातः शूलं स्त्रोतसिवेगवान।
ते वैकर्ण गता रोगाः अष्टाविंशति रीरिताः॥

यह तो सामान्य कर्णरोगों का हेतु हुआ।

प्रायः समस्त कर्णरोग इसी कारण के अन्तर्गत ही होते हैं। इसके अतिरिक्त—

यदा शब्दवहं वायुः स्त्रोत आवृत्य तिष्ठति ।
शुद्धः श्लेष्मान्वितो वापि वाधिर्यं तेन जायते ॥

तथा—

स एव शब्दानुवहा यदा शिराः
कफानुयातो व्यवसृत्य तिष्ठति ।
तदा नरस्या प्रतिकार सेविनो।
भवेत्ति वाधिर्यम संशयं खलु ॥

उपरोक्त श्लोकों से यह ज्ञात हो ही जाती है कि कर्णबाधिर्य वायु तथा श्लेष्मा की विकृतावस्था-जन्य अनुबन्धीय व्याधि है। अब केवल वायु अथवा श्लेष्मान्वित वायु शब्दवह स्त्रोतों को आवद्ध कर लेता है तब वाधिर्य रोग की उत्पत्ति होती है। "शब्दवहा यदा शिरा" का अर्थ नाड़ी-जन्य विकृति समझना अर्थ संगत होगा। इस नाड़ी वाधिर्य में निम्न प्रकार आते हैं—

१–वृद्धावस्था जनित नाड़ी वाधिर्य—यह प्राकृतिक क्रमशः बढ़ने वाली वधिरता है। ६० वर्ष से ऊपर क्रमशः इसकी उत्पत्ति होती है। आचार्यों ने इसे असाध्य कहा है। मैंने भी इसकी चिकित्सा नहीं की।

२–विषमयता जनित वाधिर्य—आन्त्रिक ज्वर, रोमान्तिका, शीतला प्रभृति रोगों के कारण यह विकार आता है। यद्यपि इसके वधिर मेरे पास नहीं आये तथापि मेरा विश्वास है कि नियमित चिकित्सा से यदि अवस्थादि दोष नहीं हों तो यह वाधिर्य लाभान्वित हो सकता है। ऐसे पत्र मेरे पास आये हैं तथा मैंने उन्हें परीक्षा करने का परामर्श दिया है।

३–भेषजजन्य नाड़ी-वाधिर्य—कुनैन, सैलिसिलेट, सेन्टोनीन आदि औषधियों के अत्यधिक सेवन से यह वाधिर्य उत्पन्न होता है। इस वाधिर्य की नियमित चिकित्सा से लाभ होता है। मैंने इसका अनुभव किया है।

४–मानसिक नाड़ी वाधिर्य—इसमें अन्तःकर्ण में कुछ भी विकार नहीं रहता फिर भी असाधारण अभिघात (Shock) इसका कारण है। मैंने इसकी चिकित्सा नहीं की। यह विषय भी अध्यात्म तथा मनो-वैज्ञानिकों का है। ऐसा विद्वानों का मत है। इस नाड़ी-वाधिर्य के सम्बन्ध में विशेष ज्ञाति देने में असमर्थ हूँ। विद्वान वैद्य महानुभाव इस ओर लेखनी उठाकर पाठकों की जिज्ञासा शांत करेंगे।

५–सवाधिर्य मूकता—जो लोग गूंगे होते है वे प्रायः वधिर भी होते हैं। यह वाधिरता दो प्रकार की होती है।

अ—सहज—कर्ण के भीतर श्रवण यंत्र का न होना, उसका पूर्ण विकास न होना, अथवा यन्त्र की अपूर्ण बनावट का होना अथवा फिरङ्गादि व्याधियों के कारण गर्भाशय के भीतर ही विकृति होना सहज विकार के अन्तर्गत है।

व—जन्मोत्तर—प्रारम्भिक आयु में ही कर्णरोग जैसे मध्यकर्ण शोथ, पूतिकर्ण, जन्तुकर्ण, एडीनायड्स आदि अथवा विविध उपसर्ग होने के कारण जीर्ण व्याधियां कर्ण–वाधिर्य उत्पन्न कर देती हैं। इस प्रकार अतःकर्ण की रचना में विकार हो जाने से वाधिर्य उत्पन्न हो जाता है। समूक वाधिर्थ असाध्य है। मैंने इसकी चिकित्सा भी आज तक नहीं की। जन्मोत्तर वाधिर्य प्रायः वातिक नाड़ी जन्य विकार के कारण होता है। वाह्य कर्ण के विकार में कर्णस्त्रोत का अवरोध जैसे कर्णगूथकर्णविद्रधि वाह्यकर्णशोथ कर्ण-संस्राव के कारण कर्ण-पटल सच्छिद्र होकर विदीर्ण हो जाते हैं। इससे मध्यकर्ण के विकार शोथ या पाकोत्पत्ति तथा अन्तःकर्ण के विकार कोकिला कांतारक प्रभृति कारण वाधिर्योत्पादन करते हैं। तीव्र प्रतिश्याय अथवा जीर्ण प्रतिश्याय के कारण भी व्याधिर्य रोग उत्पन्न होता है।

साध्यासाध्यता—

वाधिर्यं बाल वृद्धोत्थं चिरोत्थं च विवर्जयेत्

अत्यन्त शैशवावस्थाजनित, अत्यन्त पुरातन वाधिर्य आचार्यों ने असाध्य कहा है।

अपथ्य—

दन्त काष्ठं शिरः स्नानं, व्यायामं श्लेष्मलं गुरू।
कण्डूयनं तुषारं च कर्ण रोगी परित्यजेत ॥

दातौन करना, शिर में पानी डालकर स्नान करना या सरोवर में डुबकी लगाना, अधिक व्यायाम करना, वायु तथा कफवर्धक भारी पदार्थों का सेवन करना, कानों को सदैव काड़ी, आलपीन आदि से खुजलाना, सर्दी, ओस, तेज ठंडी वायु में घूमना अथवा रहना कर्णरोगियों के लिए अहितकर है। यदि कर्णरोगी उपरोक्त अपथ्य का सदैव त्याग कर नियमित चिकित्सा करे तो उसे अवश्य ही कर्णारोग्य सम्पति प्राप्ति होगी।

पथ्य—

स्वेदो विरेको वमनं, नस्यं, धूम्रं शिराव्यधः।
गोधूमः शालयो मुद्गा यवांच प्रतनं हविः ॥

कर्णरोगों पर स्वेदन वमन विरेचन नस्य धूम्र प्रयोग तथा शिरावेधन आदि हितकारी हैं। गेहूं मूंग जौ पुराना घृत, लवामोर हरिण तीतर का मांस परवल, मुंगना, बैंगन, चौपतिया तथा करेले की तरकारी पथ्य में लेना हितकारी है। चयवनप्राश आदि रसायन प्रयोग मधु घृत सेवन ब्रह्मचर्य पालन अधिक सम्भाषण न करना हितकारक है। कर्णरोगी अन्तःप्रयोज्य औषधि प्रातःकाल तथा कर्णक्षेपक औषधि भोजन के पश्चात् सेवन करना चाहिये।

चिकित्सा

१—प्रथम सतत ३ दिन तक १ रात्रि में १ औंस कॉस्टर आयल में ११ कालीमिर्च पीस मिला कर गर्म कर गुनगुना पीवें। दिन में पेया पीकर नीम पत्र क्वाथ पान कर गले में उंगलियां डाल कर वमन करे। इस प्रकार कोष्ठ शुद्ध हो जावेगा।

२—चौथे दिन से प्रतिदिन प्रातःकाल १ पाव गो-दुग्ध में २॥ तोला से ४ तोला तक वलावल के अनुसार गोघृत मिलाकर ३ माह तक सेवन करे। यथा—

सामान्यं कर्णरोगेषु घृतपानं रसायनं।
अव्यायामो, शिरस्नानं, ब्रम्हचर्यं कत्थनमः ॥

नव प्रतिश्याय वाले घृतपान न करें।

३—अन्तःप्रयोज्य औषधि—

अ—मृगशृंगभस्म	८ रत्ती
अभ्रकभस्म शतपुटी	४ रत्ती
महारास्नादि गुग्गुल	२ गोली
सारिवादि वटी	२ गोली

—ये ४ मात्राएँ हैं।

अनुपान—शहद से ४-४ घण्टे पर लेकर भोजन के पश्चात् दिन में दो बार २ तोले दशमूलारिष्ट कस्तूरीयुक्त २ तोले गर्म पानी मिलाकर लें। यह प्रयोग मैंने समस्त कर्णबाधिर्य वालों को दिया है।

अथवा—

आ—कर्णरोगहर रस ३-३ रत्ती की ३ मात्रा शहद के साथ प्रातः सायं मध्यान्ह में देकर रास्नादि क्वाथ पिलावें। अथवा—

इ—इन्दुवटी १-१ गोली शहद से दिन में ४ बार लेकर रास्नादि क्वाथ देवें। मैंने केवल ३ (अ) योग का ही प्रयोग किया है।

४—ठीक १० वजे भोजन के पश्चात् गोमूत्र १० तोला में सेंधानमक १ माशा, हींग २ माशा गर्म कर गुनगुना कर, पिचकारी से कर्ण-प्रक्षालन करें। दिन-रात में २ बार, गोमूत्र ताजा ही लें।

५—रूई की फुरैरी से कान को स्वच्छ कर अग्नि पर बैंगन की सूखी अथवा गीली पत्ती तथा हल्दी डालकर कर्ण में धूपन करें।

६—तदनन्तर कर्णबाधिर्यनाशक तैल का पूरण कर मुंह चलावें। उपरोक्त तैल निर्माण विधि धन्वन्तरि के सितम्बर अङ्क में 'गोमूत्र पर मेरे अनुभव' नामक निबन्ध में देख लें। उसके अभाव में हिंग्वादि-क्षार तैल अथवा बिल्वादि तैल का ही पूरण करें। यदि कान बहता हो तो श्वेत फिटकरी का फूला और गोदन्ती हरताल भस्म समान भाग ४ रत्ती प्रथम कान में प्रधमन करे, पश्चात् उल्लिखित तैल का पूरण करें। प्रत्येक कान में पूरण का काल १० से १५ दिन तक का तो अवश्य ही रहे। कई व्यक्ति रूल्का वर्ग की औषधियों का व्यवहार प्रधमन आदि में करते हैं। मैंने भी प्रयोग किया। किंतु मेरे विचार से यह व्यर्थ सिद्ध हुई और होगी भी।

७—५ तोला चावलों को धोकर उसे मदार के दूध में भिगोकर सुखा लें, इस प्रकार ७ बार भिगो कर सुखायें। इसमें १ छटांक कटफल (कायफल) मिलाकर दोनों का वस्त्रपूत चूर्ण करलें। इसकी नस्य दिन में २ बार ८ बजे प्रातः ४ बजे सायं लिया करें।

८—प्रति सप्ताह शिरा से प्रथम २ c. c. रक्त लेकर नितम्ब में गहरे मांस में दें। दूसरे सप्ताह ३ c.c. इस प्रकार १० c.c. तक ले जावें, पश्चात् बन्द कर दें।

उक्त क्रिया इतनी आवश्यक नहीं किन्तु रोगी की स्थिति देखकर करना चाहिये। जब कि डेढ़ माह तक रोगी को लाभ न हो तो यह क्रिया अवश्य करें। यदि १॥ माह में कचित् भी लाभ का ज्ञान हो तो नं० ८ की क्रिया करने की कोई आवश्यकता नहीं।

इस प्रकार यत्नपूर्वक चिकित्सा करने पर कोई कारण नहीं कि रोगी को लाभ न हो। मैं तो कहूँगा कि असाध्य कहे जाने पर वे कर्णरोगी भी नियमतः इस प्रकार कार्य करें। हृदय में बल, विश्वास तथा श्रद्धा रक्खें, यद्यपि शास्त्र उन्हें असाध्य कहे तो भी संयम व्रत तो युगान्तर उपस्थित कर सकता है। अतः संयमपूर्वक चिकित्सा कर जीवन में आयुर्वेद का चमत्कार देखें। इसमें किसी वैद्य डाक्टर को तो आपको पैसा देना ही नहीं है जो कुछ आप करेंगे अपने स्वास्थ्य के लिये। अतः प्रभु का नाम लेकर चिकित्सा आरम्भ करें। मुझे विश्वास है भगवान धन्वन्तरि आपको अवश्य ही लाभान्वित करेंगे।

: पृष्ठ १०५२ का शेषांश :

एवं प्राथमिक आक्रमण के समान उपचार किया जाता है।

कभी-कभी Chloromycetin के बार-बार प्रयोग से आन्त्रिक ज्वर के रोग जीवाणु Chloromycetin से अप्रभावित बन जाते हैं। ऐसे क्षेत्रों में Terramycin नामक एक और औषधि का प्रयोग कर लाभ मिल सकता है। इसकी मात्रा तथा प्रयोग विधि भी Chloromycetin के समान है।

अधुना Achromycin नामक एक नवीन औषधि को Chloromycetin से अधिक लाभदायक के रूप में प्रचार किया जा रहा है। इस सम्बन्ध में अभी तक निर्विवाद तथा निश्चित मत अपेक्षित है, अतः इस सम्बन्ध में विशेष वर्णन अभी अनावश्यक ही प्रतीत हो रहा है।

Chloromycetin के प्रयोग के साथ आयुर्वेदीय औषधियों का प्रयोग कहां तक युक्तियुक्त है—इस सम्बन्ध में विद्वानों का विचार अभी तक अपेक्षित है, परन्तु काष्ठौषधि का प्रयोग हानिकारक नहीं हो सकता है अथवा Chloromycetin प्रयोग के पश्चात् आयुर्वेदीय औषधियों के प्रयोग से अप्रत्यक्ष लाभ अवश्य ही उठाया जा सकता है—इसमें सन्देह नहीं है।

मलेरिया (विषमज्वर)

लेखक—श्री. पं. जटाशंकर मिश्रा वैद्यशास्त्री
सुख विलाश औषधालय, मकरन्दपुर (मैनपुरी)

मलेरिया (विषमज्वर) एक साधारण रोग है। प्रारम्भ में यह भारतवर्ष के पूर्वीय प्रान्तों में प्रायः बंगाल और आसाम में ही हुआ करता था। पर अब इस ज्वर का प्रकोप सम्पूर्ण भारत पर परिलक्षित होता है। इस रोग के कारण प्रति वर्ष सहस्रों की संख्या में नर नारी एवं शिशु कालकवलित होकर इस संसार से बिदा हो जाते हैं। इसकी भीषणता दिन-प्रतिदिन वृद्धि पा रही है। आवश्यकता आविष्कार की जननी है। इसके अनुसार मलेरिया से त्राण पाने के हेतु अनेक प्रकार की औषधियों का पता लगाया गया है। वैज्ञानिकों, वैद्यों एवं डाक्टरों ने आये दिन इसके विषय में प्रयोग किये। अपने अथक परिश्रम के फलस्वरूप उन्होंने अनेक नवीन औषधियां आविष्कृत की हैं।

मलेरिया शब्द का शाब्दिक अर्थ (Mal=दूषित, Aria=वायु) दूषित वायु है। कहने का सारांश यह है कि मलेरिया दूषित वायु द्वारा फैलने वाला रोग है। यही कारण है कि वर्षा कालोपरान्त ही इस रोग का आक्रमण होने लगता है। वर्षा ऋतु में पानी के कारण विभिन्न वस्तुऐं सड़ जाती हैं। पानी समाप्त होते ही उनसे दुर्गन्ध आने लगती है। जो वायु को दूषित करती है और इस भयंकर रोग का जन्म होने लगता है। यथा—

वर्षासु दोषैर्दुष्यन्ति तेऽम्बुलम्बाम्बुदेऽम्बरे।
सतुषारेण मरुता सहसा शीतलेन च॥
भूवाष्पेणाम्लपाकेन मलिनेन च वारिणा।
वहिनेनैव च मन्देन तेष्वित्यन्योन्य दूषिषु॥

—अष्टाङ्ग हृदय।

पूर्वरूप –

इस ज्वर से संतप्त व्यक्ति सर्व प्रथम शीत का अनुभव करता है। उसे रोमांच हो आता है। शरीर में कम्पन प्रारम्भ हो जाता है। प्राचीनता को प्राप्त होने पर यह ज्वर बिना ठंड देकर ही आ सकता है। इसमें व्यक्ति की जठरानल शांति हो जाती है। फलतः उसकी भूख थक जाती है। उसका शरीर आलस्य के सिकंजे में जकड़ जाता है। इस ज्वर में किसी भी प्रकार का कार्य सम्पादित करने से चित्त घबड़ा उठता है। शरीर में वेदना का अनुभव होने लगता है, जिह्वा का स्वाद कड़ुआ हो जाता है। जी मचलाने लगता है। सिर में पीड़ा होने लगती है। इसकी अधिकता में मनुष्य संज्ञा-शून्य होकर प्रलाप करने लगता है।

मलेरिया प्रायः त्रिदोषज होता है और इसकी तीन ही प्रधान अवस्थायें होती हैं।

१—कम्पावस्था
२—सन्तापावस्था
३—प्रस्वेदावस्था

कम्पावस्था—

कुछ लोग इसे शीतावस्था भी कहते हैं। यह मलेरिया की प्रथम अवस्था है। इसमें पहले व्यक्ति को आलस्य छा जाता है कुछ समय बाद शीत का अनुभव होता है। यह कहना अत्युक्त न होगा कि कम्बल और इसी प्रकार के अन्य गर्मी प्रदान करने वाले वस्त्रों के प्रयोग द्वारा भी शीत कम होता हुआ प्रतीत नहीं होता है। शीत के साथ पिपासा भी अधिक लगने लगती है। अधिक पानी पीने से वमन भी प्रारम्भ हो जाता है। यह दशा लगभग १ घण्टे तक रहती है।

सन्तापावस्था—

इसको कुछ लोग उष्णावस्था भी कहते हैं।

कम्पावस्था के उपरान्त सन्तापावस्था प्रारम्भ हो जाती है। इसमें शीत और शरीर का कम्पन क्रमशः कम होने लगता है। व्यक्ति ओढ़े हुए वस्त्रों को फेंकने लगता है। ताप बढ़कर लगभग १०५ से १०६ डिग्री तक हो सकता है। श्वांसोच्छ्वास में कठिनता का अनुभव होता है। प्रायः माथे में पीड़ा होने लगती है।

प्रस्वेदावस्था—

सन्तापावस्था के उपरांत प्रस्वेदावस्था का आगमन होता है। इस दशा में प्रायः शरीर के सभी भागों में स्वेद निकलना आरम्भ हो जाता है। विशेषतः माथे पर पसीना अधिक निकलता है। कपड़े भींग जाते हैं। ताप शनैः-शनैः न्यूनता को प्राप्त होने लगता है। ज्वर समाप्त हो जाता है। किन्तु पसीना आने पर ज्वर का समाप्त होना द्वितीय बार पुनः ज्वर आने की सूचना ही है। इस प्रकार मलेरिया से पीड़ित व्यक्ति लगभग १०-१२ घण्टे तक उपरोक्त दशाओं में रहता है। इकतरा तिजारी तथा चौथिया मलेरिया की ही किस्में हैं।

प्रायः व्यक्ति इस मलेरिया ज्वर को साधारण ज्वर ही समझा करते हैं। हमारे ग्रामीण क्षेत्रों में तो इसे भयानक नहीं समझा जाता है। ग्रामवासी यह कह कर कि "मियाद आने पर स्वतः ही यह ज्वर चला जावेगा।" इसका कोई उपचार नहीं करते हैं। वे अपने अज्ञान के कारण उसकी हानियों से परिचित नहीं होते हैं। यदि इस मलेरिया के प्राबल्य को अबाध गति से चलने दिया जाय तो निःसन्देह इसकी उग्रता नवीन प्रकार के अन्य रोगों को जन्म दिये बिना नहीं रह सकती है। इसकी दो-चार पारी आने के बाद अन्य उपद्रव भी देखे जाते हैं। यथा—

१—रोगाणु रक्त के लाल कणों को चूस लेते हैं और शनैः-शनैः रक्त की न्यूनता हो जाती है।

२—मूत्र में कभी-कभी रक्त आने लगता है।

३—शोथ आ जाता है।

४—यकृत तथा प्लीहा बढ़ जाते हैं।

५—विबन्ध बना रहता है।

६—गर्भवती स्त्रियों को मलेरिया के कारण प्रायः गर्भपात हो जाता है।

७—व्यक्ति संज्ञा शून्य हो जाता है।

८—उदर में शूल होने लगता है।

९—वमन प्रारम्भ होजाते हैं। यदा-कदा रक्तयुक्त वमन भी होने लगते हैं।

१०—पतले दस्त होने लगते हैं।

११—चेहरा पीला पड़ जाता है।

इस प्रकार उपरोक्त बातों के प्रारम्भ ह जाने पर कुछ भयङ्कर रोग उत्पन्न हो जाते हैं। जैसे—क्षय, निमोनिया, हैजा आदि रोग आक्रमण कर बैठते हैं और मृत्यु का कारण बन जाते हैं।

पाश्चात्य चिकित्सकों ने सिद्ध किया है कि यह रोग मच्छरों द्वारा उत्पन्न होता है। अतः मच्छरों से बचना मलेरिया से बचना है। यदि आप मच्छरों से बचना चाहते हैं तो निम्न उपाय काम में लाइये।

आधुनिक वैज्ञानिकों ने यह सिद्ध कर दिया है कि मलेरिया एनाफिलीज मच्छर द्वारा ही फैलता है। ऐसी दशा में हम सबका यह कर्त्तव्य होजाता है कि मलेरिया से त्राण पाने के हेतु मच्छरों से छुटकारा पाने का प्रयत्न करें। प्रायः यह देखने में आता है कि मच्छर अँधेरे और गन्दे स्थानों में रहना रुचिकर समझते हैं। अतः मकान इस प्रकार बनवाना चाहिये जिसमें वायु तथा प्रकाश दोनों ही आयोजित मात्रा में मिल सकें।

रात्रि में जब व्यक्ति दिन के कठोर परिश्रम के उपरान्त निन्द्रा देवी के अङ्क में आश्रय पाकर अकथनीय सुख का अनुभव करता है। तब इन स्वतंत्र रूप से विचरण करने वाले मच्छरों की बन आती है। अतः रात्रि में शयन करते समय मच्छरदानी का प्रयोग करना अत्यन्त लाभप्रद

होता है। परन्तु कुछ व्यक्तियों को छोड़ कर यह साधन सबको उपलब्ध नहीं हो सकता है। अतः उन्हें रात को कडुए तैल की मालिश करके सोना चाहिये।

खाद आदि के गढ्ढे मकानों से दूर होने चाहियें। घास खर पतवार आदि मकान के पास नहीं होना चाहिये। यदि मकान के पास में पानी के गढ्ढे हों तो उन्हें या तो समतल कर देना चाहिये या उन पर मिट्टी का तैल छिड़क देना चाहिये। ताकि उस पानी में दिये हुये मच्छरों के अण्डे आदि नष्ट हो जावें।

मकानों में नीम के पत्तों का धुआँ कर देना चाहिये। जिससे मच्छर न रहने पावें। इसके अतिरिक्त जहां D. D. T. सरलतापूर्वक मिल सके वहां इसे छिड़कना चाहिये।

मकान में तथा उसके निकट तुलसी का पौधा लगाना हितकर होता है। इसकी गन्ध से मच्छर पास नहीं आते हैं।

चिकित्सा

आजकल अनेक पैथियां चल रही हैं। हर पैथी वाले अपनी-अपनी डींग हांका करते हैं। यहां हम आयुर्वेद तथा एलोपैथी चिकित्सा पर इस रोग के सम्बन्ध में थोड़ा प्रकाश डाल रहे हैं।

आयुर्वेदिक—

इस रोग में प्रायः विबन्ध बना रहता है अतः ज्वर का अनुभव होते ही भोजन बन्द कर देना चाहिए। या आवश्यकता हो तो हल्का भोजन लिया जा सकता है। इस रोग में दुग्ध अमृत का कार्य करता है।

१—हम ऊपर कह आये हैं कि यह ज्वर त्रिदोषज होता है अतः इसमें त्रिफला का प्रयोग अधिक लाभप्रद है क्योंकि त्रिफला त्रिदोषघ्न है।

२—गुलाबी फिटकरी की भस्म २ रत्ती से ४ रत्ती तक देने से मलेरिया का वेग नहीं होने पाता है। यदि ज्वरावेग में भी दे दी गई तो भी कोई हानि नहीं, यह ज्वर को शीघ्र उतार देती है तथा वेदना को भी शमन करती है।

३—त्रिभुवन कीर्तिरस — १ रत्ती
प्रवाल पिष्टी — १ „
गौदन्ती हरताल भस्म — १ „

—यह एक मात्रा है। इसी तरह की दिन में तीन मात्रायें तुलसी पत्र स्वरस तथा शहद के साथ देने से शीघ्र लाभ होते देखा गया है।

४—काली मिर्च, छोटी पीपर, सोंठ, अर्क मूलतत्व, करंज बीज —२-२ तोला

—कृष्ण तुलसी के स्वरस में घोटकर ४ रत्ती की एक वटी बना लीजिये और छाया में सुखाइये। ज्वर का प्रकोप होने से पूर्व १ तोला तुलसीपत्र के स्वरस के साथ एक एक गोली खिलाइये। इस प्रकार एक एक घण्टे बाद दीजिये। बुखार आने तक यदि ३ मात्रायें पेट में पहुँच गई तो उसी दिन बुखार रुक जाता है। भोजन केवल दूध।

५—करञ्ज बीज का चूर्ण, कुनैन, फिटकरी (लाल) —तीनों १-१ तोला

—पानी डालकर दो दिन तक घोटें। तदुपरांत २-२ रत्ती की वटी बनालो। २ से ४ गोली तक जल के साथ सेवन करने से तत्काल लाभ होता है।

६—तालीसपत्र — १ तोला
काली मिरच — २ तोला
सोंठ — ३ तोला
छोटी पीपल — ४ तोला
वंशलोचन — २ तोला
छोटी इलायची दाने — २ तोला
दालचीनी — ६ माशा
मिश्री — ३२ तोला

—इन सब को कूट कर कपड़े से छान लिया जाय। पश्चात् एक-एक माशा मधु तथा अद्रक स्वरस के साथ सेवन करें। सभी प्रकार का

विषमज्वर ठीक होता है । तथा श्वास-खांसी में भी पूर्ण लाभ करता है।

७—चिरायता कुटकी करंजछाल
नीम की छाल गिलोय

—सम भाग लेकर क्वाथ करें तथा बलानुसार पीने को दीजिये। बहुत अच्छा लाभ करता है।

इसके अतिरिक्त कुछ पेटेन्ट दवाइयां भी लाभ प्रद हैं जैसे—वैद्यनाथ प्राणदा, जूड़ीताप, मलेरिया मिक्चर आदि-आदि । धन्वन्तरि कार्यालय से जो "ज्वरारि" निकला है वह मलेरिया पर आश्चर्यजनक लाभ पहुँचाता है। मैंने इसी वर्ष उसे आजमाया है।

आयुर्वेद में अनेक ऐसी औषधियां हैं जो किसी भी ऐलोपैथिक दवा से कम नहीं है। यथा—

विषमज्वरान्तक लोह, महा ज्वरांकुश, सप्तपर्ण-वटी, सुदर्शन चूर्ण, अमृतारिष्ट, सुदर्शन अर्क आदि। यह शास्त्रीय औषधियां आश्चर्यजनक लाभ करती हैं, यदि ठीक ढंग से इनका निर्माण किया जाय। इसके अतिरिक्त आयुर्वेद में मलेरिया के लिये ऐसी बहुत सी औषधियां हैं जिनमें एक भी पैसा खर्च नहीं होता है और यह बिना पैसे वाली औषधियां इञ्जेक्शन के समान गुण करती हैं। ग्रामीण वासी इन्हीं जड़ी-बूटियों पर गर्व करते हैं और वह किसी डाक्टर को अपने पास फटकने नहीं देते हैं।

जैसे—नाय, द्रोणपुष्पी (गूमा), गिलोय, चिरायता आदि।

ऐलोपैथिक—

कुनैन मलेरिया की अति उत्तम औषधि है। वैद्य तथा अन्य चिकित्सक भी इसी का प्रयोग अधिक मात्रा में करते हैं। परन्तु इसका प्रभाव कुछ देर में होता है। यदि कुनैन बाईहाईड्रोक्लोराइड का इञ्जेक्शन मांस-पेशी में दिया जाय तो जल्दी लाभ होते देखा गया है।

मेपाक्रीन-हाइड्रोक्लोराइड भी मलेरिया की अचूक दवा है और कुनैन की ही भांति मुख द्वारा तथा सूचीवेध द्वारा शरीर में प्रविष्ट की जाती है।

ज्वरवेग रोकने के लिये—

कुनीन सल्फ	५ ग्रेन
एसिड सल्फ्युरिक डिल.	१० मि०
टिंचर सिनकोना क्रं०	३० मि०
एक्वा कुल	१ औंस

—ज्वर आने से पूर्व देने से ज्वर नहीं आता है।

ज्वर कम करने के लिये—

लिकर अमोनिया ऐसीटेट्स	२ ड्राम
पोटास साइट्रेट	२० ग्रेन
स्प्रिट ईथर नाइट्रोसी	२० मि०
मेगसल्फ	१ ड्राम
टि० कारडेमम को०	१५ मि०
एक्वा कुल	१ औंस

—तीन-तीन घण्टे बाद दीजिये।

इञ्जेक्शन्स तथा पेटेन्ट-ऐटब्रीन, पैलोड्रीन, सोडियम कौकोडिलेट, फैरी क्वीनारसीन, हिनोजिन, रिसोचिन, केमोक्वीन, पेन्टाक्वीन आदि अनेक ऐलोपैथिक लाभप्रद औषधियां हैं।

परन्तु ऐलोपैथी में ऐसी औषधियों बहुत कम हैं जो बिना मूल्य के निर्धन लोगों का कल्याण कर सकें। इन औषधियों से हमारा अधिक धन बाहर जाता है, उसे रोकना ही चाहिये।

चिकित्सा-क्रम पर पूर्णरूपेण विचार करने के उपरान्त हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि इस ज्वर में दोनों ही पद्धतियों द्वारा चिकित्सा की जासकती है। अपने-अपने क्षेत्र में दोनों ही प्रभावशाली हैं। पर इतना होते हुये भी मेरी राय में ऐलोपैथिक चिकित्सा में कुछ त्रुटियां हैं। ऐलोपैथिक औषधियों का प्रभाव क्षणिक होता है। यद्यपि इनके कारण तत्काल ही रोग में अवरोध उत्पन्न हो जाता है तथापि रोग को समूल नष्ट करना इनकी शक्ति के परे ही है। रोग को समूल नष्ट करने के लिये आयुर्वेदिक औषधियां ही उपयुक्त होती हैं। इनके द्वारा रोग समूल नष्ट हो जाता है। साथ ही इनसे रोगों के उपद्रव भी शान्ति हो जाते हैं।

पोल्यो रोग पर हमारा अन्वेषण

लेखक—श्री बनवारीलाल जी साहणी आयुर्वेदाचार्य, दिल्ली।

पोल्यो (Polio Mallitis or Infantile paralysis) नाम से एलोपैथिक एक नवीन रोग की व्याख्या करते हैं और साथ ही इसे असाध्य भी मानते हैं, क्योंकि उन्हें अभी तक इस रोग के गुप्त रहस्य का पता नहीं लगा। अर्थात् कौन से कृमि इस रोग के कारक हैं और वह कृमि इस रोग को कैसे उत्पन्न करते हैं, यह अभी तक इनके ज्ञान में नहीं आया। मेरा विश्वास है कि जब तक उनकी यह मान्यता है कि प्रत्येक रोग के उत्पादक कारण कृमि होते हैं, तब तक वह अपने ध्येय में कभी सफल नहीं हो सकते। जैसे रेल की दो पटरियां (Railway Lines) मीलों दूर चलने पर भी आपस में कभी मिलती नहीं (समानान्तर होने के कारण) इसी प्रकार यह रोग किसी भी प्राकृत ढङ्ग से नहीं जाना जा सकता अर्थात् इस के जानने के लिये किसी कला मशीनरी (Machanical Brain) की आवश्यकता नहीं अपितु यह बुद्धिगम्य विषय है, जो आयुर्वेद के एक अत्यन्त सरल परन्तु मुख्य सिद्धान्त का थोड़ा सा भी अनुशीलन करने से किस प्रकार इस रोग का रहस्य अपने आप खुल जाता है और चिकित्सा भी कैसे सफल होजाती है, आप निम्न लिखित कुछ उद्धरणों से ही जान जायेंगे।

१—डेढ़ वर्ष की आयु की एक क्षीरपायी बालिका को ज्वर हुआ। कहते हैं कि ज्वर में उसकी टांगों को हवा लग गई। अतः टांगें कर्महीन हो गई हैं। बालिका पीड़ा से दुखी होकर हर समय रोती तथा चिल्लाती रहती है। डाक्टर के पास ले गये। वह रोग को देख कर कहने लगे कि हमें इस रोग की समझ नहीं। पोलियो (Polio) रोग प्रतीत होता है। अभी तक एलोपैथिक में इस रोग का कोई सफल चिकित्साक्रम निश्चित नहीं हुआ। बालिका के कर्णमूल के समीप शोथ भी आ चुका था। वहां उन्होंने कोई लेप लगवा दिया था। परन्तु लाभ कुछ नहीं हुआ, इस प्रकार एलोपैथि की अपूर्णता को देखकर एलोपैथि के भक्त बालिका के माता-पिता बहुत निराश हुए और हार कर मरता क्या न करता—आयुर्वेद की शरण में आये। रोगी की परीक्षा की गई। निश्चय हुआ कि बालिका का शरीर आम से पूर्णतया व्याप्त हो चुका है। इसी के प्रभाव में ज्वर, कर्णमूल शोथ तथा सक्थिसाद (टांगों में अकर्मण्यता) होगई है।

चिकित्सा—

पहिले दिन आम को पकाने तथा ज्वर को निकालने के लिये मृत्युञ्जय रस १ रत्ती दिन में चार बार मधु के साथ दिया गया। साथ में अश्वगन्धारिष्ट और दशमूलारिष्ट मिला कर दिन में ३–४ बार दिया गया। पहले दिन ही पीड़ा शान्त हो गई और ज्वर का वेग भी थोड़ा हो गया। दूसरे दिन ही बालिका चलने का यत्न करने लगी परन्तु पूर्णतया चल नहीं सकी। तीसरे दिन चलने में समर्थ हो गई और चौथे दिन तो वह सर्वथा स्वस्थ हो गई। ज्वर भी सम्पूर्णतया शान्त हो गया। अब पुनः आम तथा वात का प्रकोप बालिका को न दबा सके, इसके लिये अश्वगन्धारिष्ट, दशमूलारिष्ट पूर्ववत् चलाते रहे और इसके साथ ही वातगजांकुश रस २ रत्ती मधु के साथ दिन में दो बार देते रहे। ५–७ दिन में ही बालिका भावी रोग की सम्भावना से भी रहित होगई।

अब बालिका के माता-पिता को आयुर्वेद पर पूर्ण विश्वास है।

२—चार वर्ष आयु की एक बालिका ज्वर से आक्रान्त हो गई। एलोपैथिक चिकित्सा करवाते रहे, उस छोटी सी बालिका पर अनेक प्रकार के इञ्जेक्शनों का भी प्रयोग कर डाला गया। परन्तु कुछ लाभ नहीं हुआ, रोग बढ़ता ही गया ज्यों ज्यों दवा

की। अब उसे साथ ही अर्दित तथा अर्द्धाङ्ग दोनों ही रोग भी हो गये थे। दायां हाथ कर्महीन हो चुका था। मुख का दक्षिणार्ध वक्र हो गया था। बोलने, खाने तथा पीने आदि कामों में अत्यन्त कष्ट होता था। दक्षिण आंख भी वक्र हो गई थी। सारे शरीर में विशेषतया मुख पर शोथ की भी प्रतीति होती थी एलोपैथिक चिकित्सा करवा कर जब सर्वथा हार चुके तब उसी बूढ़े बाबा—आयुर्वेद—की शरण में आये। नाड़ी देखने पर प्रतीत हुआ कि बालिका को अभी तक ज्वर भी है और सारे शरीर में आम का विसर्पण भी हो चुका है। आम सहित वात ने मिल कर अर्दित तथा अर्द्धाङ्ग दोनों ही रोग उत्पन्न कर दिये हैं।

चिकित्सार्थ व्यवस्था करते हुए निश्चय हुआ कि पहले केवल आम को पकाने और निकालने का यत्न किया जाये। आम को पकाने वाले द्रव्य प्रायः रुक्ष होते हैं, अतएव यह वात को बढ़ा देते हैं और वात को नाश करने के लिये मधुर और स्निग्ध द्रव्यों का प्रयोग किया जाता है, जिनसे प्रायः आम बढ़ जाती है। इस प्रकार दोनों के चिकित्सा-क्रम में विषमता-परस्पर विरोध-होने से चिकित्सा में कठिनाई अवश्य होती है। तो भी कुछ द्रव्य ऐसे मिल जाते हैं, जो आम का पाचन भी करते हैं और वात का भी नाश करते हैं। यह सब विचार कर हमने बालिका को पहले दिन अमृतावटी २ रत्ती, कट्फल चूर्ण २ रत्ती मिला कर मधु तथा अद्रक के रस के अनुपान से दिन में दो बार दीं, और रात को एरण्ड तैल देने को कह दिया गया। चार दिन तक यही क्रम चलता रहा। बालिका को लाभ प्रतीत हुआ। पांचवे दिन बालिका के पिता से पूछने पर पता चला कि वह रात को एरण्ड तैल नहीं दे रहे हैं। उन्हें विरेचन से कुछ भय लग रहा था। हमारा यह निश्चय था कि एरण्ड तैल से अधिकाधिक तथा शीघ्र ही लाभ होगा क्योंकि वह आम तथा वात दोनों का नाश करने में समर्थ है। परन्तु उन्होंने हमारी भावना को पूर्ण नहीं होने दिया। अतः हमने औषधि व्यवस्था में ही ऐसा परिवर्त्तन किया जिससे उन्हें विरेचन देने तथा उनसे भय मानने का कोई अवसर ही न मिले।

अब पांचवें दिन से प्राणवल्लभरस २ रत्ती, कटफल चूर्ण २ रत्ती मधु अद्रक के स्वरस से दिया गया। इससे मल भी शुद्ध होने लगा, आम का पाचन तथा निःसरण तथा वात का नाश होना—यह तीनों क्रियायें एक साथ ही होने लगीं। बालिका शनैः शनैः स्वस्थ होने लगी। ज्वर भी उतर गया। हाथ ठीक होगया, नेत्र तथा मुख भी सीधे होगये। सात दिन यही क्रम चलता रहा और बालिका सर्वथा स्वस्थ हो गई।

इससे आपको निश्चय होगया होगा, कि रोग विशेष का नाम सुन कर उसकी चिकित्सा करने की बजाय दोषों का निर्णय कर अर्थात् दोषों की अंशांश कल्पना कर चिकित्सा करने से अधिक सफलता प्राप्त होती है।

विशेष वचन—

(१) अमृतावटी भावप्रकाश के ज्वराधिकार का योग है। इसमें वत्सनाभ विष पड़ता है।

(२) प्राणवल्लभ रस—भैषज्यरत्नावली का योग है। इसमें जयपाल पड़ता है। हम अशुद्ध जयपाल ही प्रयोग करते हैं।

ग्राहकों से अपील

आगामी वर्ष का वार्षिक मूल्य शीघ्र ही मनिआर्डर से भेज दीजियेगा। मनियार्डर से रुपया मिल जाने से हमको विशेष सुविधा रहती है इसलिए हम नये-पुराने सभी ग्राहकों से आग्रहपूर्ण अपील करते हैं कि इस अङ्क में भेजे गये मनियार्डर फार्म को भर कर तुरन्त मनियार्डर भेजने की कृपा करें। राजसंस्करण (ग्लेज कागज का) विशेषांक प्राप्त करने के इच्छुक ग्राहक ६॥) भेजें। आशा है हमारी अपील को आप मान्यता देंगे तथा अपना वार्षिक मूल्य शीघ्र भेजेंगे।

—वैद्य देवीशरण गर्ग

छूत और उससे होने वाले रोग

लेखक—श्री प्रोफेसर पं० गंगाचरण शर्मा आयुर्वेदाचार्य, आयुर्वेदमार्तण्ड, भिवानी।

छूत अर्थात् उपसर्ग का वर्णन प्राचीन भारतीय चिकित्सा शास्त्र एवं प्राचीन यूनानी हिकमत में भी है आजकल के वैज्ञानिकों ने जो नवीन शोध, विशेष अन्वेषण अर्थात् मजीद तहकीकात की है वह भी उपेक्षणीय नहीं है। यहां पर इस विषय का कुछ संक्षिप्त वर्णन करना अभीष्ट समझकर लिखा जाता है।

छूत अर्थात् उपसर्ग के दो भेद माने जाते हैं। १—स्थानीय उपसर्ग (local infection) और २—साधारण उपसर्ग (General infection)।

१—स्थानीय उपसर्ग—

जब रोगोत्पादक कीटाणु शरीर के किसी स्थान विशेष पर आक्रमण करते हैं। जिसके फल स्वरूप उन जीवाणुओं से उत्पन्न विष का प्रभाव भी उस स्थान विशेष तक ही सीमित रहकर उसी स्थान पर शोथ, फोड़ा, विद्रधि आदि उत्पन्न कर देता है उसे स्थानीय उपसर्ग कहते हैं।

२—साधारण उपसर्ग—

जब शरीर में रोग—प्रतिरोधिनी शक्ति का अभाव होता है तो स्थानीय उपसर्गस्थ जीवाणु जो विष उत्पन्न करते हैं वह विष उसी स्थान विशेष तक सीमित न रहकर रक्त में मिश्रित होकर शरीर में जहां-तहां फैल जाता है उसे ही साधारण उपसर्ग कहते हैं। जबकि कीटाणु रक्त में मिश्रित हो जाते हैं उस अवस्था को अंग्रेजी में Bacteramia या Septicaemia कहते हैं। यदि इस प्रकार का रक्त सिरिंज द्वारा निकाल कर किसी स्वस्थ पुरुष के शरीर में प्रविष्ट कर दिया जावे तो निस्सन्देह वही रोग उस पुरुष के शरीर में भी प्रगट होजाता है।

इसके अतिरिक्त उपसर्ग के निम्नलिखित भेद भी जानने योग्य और महत्व के हैं जो पाठकों की जानकारी के लिये लिखे जाते हैं—

१—परिवर्तनीय उपसर्ग (Auto-infection)—जब किसी औपसर्गिक व्याधि का विष शरीर के किसी भाग से दूसरे भाग में परिवर्तित हो जाता है तो उसे परिवर्तित या परिवर्तनीय उपसर्ग या Auto-infection कहते हैं। जैसे एक मनुष्य को पहिले फुफ्फुसीय यक्ष्मा रोग होता है और फिर दूषित श्लेष्मा के न थूकने से अर्थात् भीतर ही निगल जाने से उसकी आंतों में भी कीटाणु संक्रमण कर जाते हैं तब उसे आन्त्रिक क्षय अर्थात् Intestinal tuberculosis भी हो जाता है।

२—सामान्य उपसर्ग (Simple infection)—इसमें केवल एक ही प्रकार के कीटाणुओं की छूत लगती है और कोई दूसरे प्रकार के कीटाणु इसमें सम्मिलित नहीं होते।

३—मिश्रित उपसर्ग (Mixed infection)—इसमें एक ही समय में कई प्रकार के कीटाणुओं की छूत लगती है और कभी-कभी ऐसा भी होता है कि एक पुरुष एक ही समय में दो औपसर्गिक व्याधियों से आक्रान्त हो जाता है। एक व्याधि रोगी को दूसरी औपसर्गिक व्याधि के लिये क्षेत्र बना देती है—जैसे रक्त ज्वर (सुर्ख बुखार) या Malta fever के साथ-साथ कंठरोहिणी खुन्नाक या Diphtheria भी हो जाया करती है और रोमान्तिका-खसरा या measles के साथ श्वसनक सन्निपात या Pneumonia भी हो जाया करता है।

४—मुख्योपसर्ग—(Specific infection)—इसमें एक मुख्य जाति या प्रकार के कीटाणुओं की छूत लगती है और उनसे जो मुख्य औपसर्गिक व्याधि अर्थात् Specific infectious disease उत्पन्न होती है, वह दूसरी प्रकार के कीटाणुओं से उत्पन्न नहीं हो सकती, जैसे धनुस्तम्भ (tetanus)

जो धनुस्तम्भ कीटाणुओं से ही उत्पन्न होता है यह और दूसरी प्रकार के कीटाणुओं से उत्पन्न नहीं हो सकता।

५-अमुख्योपसर्ग-Non-specific infection-इसमें भिन्न प्रकार के कीटाणुओं की छूत लगती है अर्थात् विभिन्न प्रकार के कीटाणु शरीर में प्रविष्ट होकर रोगोत्पन्न करते हैं जैसे पूय अर्थात् Pus और प्रसूति उपसर्ग ये विभिन्न प्रकार के कीटाणुओं से उत्पन्न होते हैं।

६-व्रणोपसर्ग—(Wound infection)—कोई भी किसी भी प्रकार का व्रण चाहे वह सद्यो व्रण या शारीर व्रण हो या शस्त्रक्रिया द्वारा किया हुआ व्रण हो जब कीटाणुओं को भोजन सामग्री से सम्पन्न हो जाता है तो कीटाणुओं की छूत को ग्रहण कर लेता है, इस अवस्था को व्रणोपसर्ग कहते हैं।

७-अंतिम उपसर्ग Terminal infection—कतिपय पुराने रोग जैसे यक्ष्मा आदि में रोग के अन्तिम समय में तीव्रतर उपसर्ग हो जाया करता है जो प्रायः घातक होता है।

यहां यह भी बताना आवश्यक है कि संक्रामक रोग अर्थात् छूतदार बीमारियों की छूत किस प्रकार लग जाती है। अर्थात् रोग का विष किस प्रकार मनुष्यों के शरीर में प्रविष्ट होता है। भिन्न-भिन्न संक्रामक रोगों का संक्रमण भिन्न-भिन्न प्रकार से होता है। संक्रामक रोगों का संक्रमण ५ प्रकार से होता है यथा-१ वायु द्वारा, २ जल द्वारा, ३ दंश द्वारा, ४ क्षत द्वारा और ५ वस्त्रों द्वारा।

१—निम्न लिखित रोगों की छूत वायु द्वारा लगती है—रक्त ज्वर (Scarlet Fever) प्रतिश्याय महामारी या श्लेष्मक ज्वर (Influenza) रोमांतिका या खसरा (Measles) कर्णमूल ज्वर (Mumps) औपसर्गिक कास या काली खांसी (Whooping cough) कण्ठ रोहिणी या खुन्नाक चबाई (Diphheria) मसूरिका या चेचक (Small pox) उरःक्षत-राजयक्ष्मा या सिल (Tuberculosis of the lungs) महाकुष्ठ या कोढ़ (Leprosy)

२—निम्न लिखित रोगों की छूत जल के द्वारा फैलती है—औपसर्गिक अतिसार या छूतदार दस्त (Infectious Diarrhoea) औपसर्गिक प्रवाहिका या छूतदार पेचिश (Dysentry) विसूचिका या हैजा (cholera) आन्त्रिक ज्वर या मुहरका इसहाली या मोतीझरा (Typhoid fever) माल्टा ज्वर (Malta fever) कण्ठरोहिणी या खुन्नाक चबाई (Diphtheria) स्मरण रहे कि कण्ठरोहिणी वायु द्वारा भी फैलती है और जल द्वारा भी, अतः इससे बचने के लिए वायु और जल दोनों पदार्थों से सावधान रहना चाहिये।

३-निम्नलिखित रोगों की छूत दंश द्वारा फैलती है यथा मलेरिया ज्वर (Malarial fever) मच्छरों के दंश से इसी प्रकार पीतज्वर (पीला बुखार) या जर्द-बुखार (Yellow fever) दंडकज्वर, हड्डीतोड़ बुखार या लङ्गड़ा बुखार (Dengue Fever) श्लीपद ज्वर (जिससे पांव में शोथ होकर पानी भर जाता है) अथवा कभी अण्डकोषों में भी शोथ होकर पानी भर जाता है। इन दोनों रोगों को फील-पांव या फील-फोता भी कहते हैं और अंग्रेजी में (Eliphantiasis) कहते हैं, इसी प्रकार पिष्टमेह (जिसमें उर्द की दाल की पिट्ठी घुली हुई के सदृश पेशाब आता है। वस्तुतः इसमें भोजन का रस मिलकर आता है इसलिए इसको यूनानी हिकमत में बोल कैलूसी और अंग्रेजी में chyluria कहते हैं) आदि दंश द्वारा उत्पन्न होते हैं इनके अतिरिक्त ग्रन्थिक महामारी (Plague) पिस्सुओं के दंश द्वारा और कालज्वर (Kala-Azar) खटमलों के दंश से तथा प्रलापक सन्निपात ज्वर या मुहरका दिमागी (Typhus Fever) चिचढ़ी के द्वारा तथा Tick Fever जूओं के द्वारा और दुर्भिक्ष जन्यज्वर-क़हत का बुखार (Famine Fever) तथा गफलत की नींद Sleeping Sickness मक्खियों के द्वारा और इसी प्रकार सिकता मक्षिका ज्वर, रेत मक्खी का बुखार Sand fly fever है जो एक विशेष प्रकार की मक्खी के दंश द्वारा

फैलता है।

(घ) निम्नलिखित रोगों का संक्रमण अर्थात् सरायत या Infection क्षत अर्थात् घाव, व्रण या जख्म के द्वारा होता है यथा—विसर्प-सुर्खबाद या Erycepelas धनुस्तम्भ- पवात Tetanus तथा रक्त का विषैला होना Blood-poisoning आदि आदि।

(ङ) निम्न रोगों की छूत वस्त्रों के द्वारा लगती है, जो जो व्याधियां जल, वायु और क्षत से संक्रमण करने वाली हैं, यथा दद्रु और कण्डू आदि वे सब कपड़ों और रोगियों के सवाद से भी फैलती हैं।

रोग का शरीर में गुप्त रूप से रहना—यह एक ऐसा विषय है कि जिसका ज्ञान सर्व साधारण और परिचारिकों को होना नितान्त आवश्यक है। इसको यूनानी हिकमत में मुद्दते हिज़ानत और अंग्रेजी में Period of Incubation कहते हैं। क्योंकि रोगोत्पादक कीटाणुओं के शरीर में प्रविष्ट होते ही रोग उत्पन्न नहीं हो जाया करता है। कारण जब तक कीटाणु शरीर में दोषण पाकर वृद्धि को प्राप्त नहीं अर्थात् उनकी संततियां न फैलें, तब तक वे कीटाणु रोगोत्पन्न करने में समर्थ नहीं हो सकते हैं। इसी समय को Incubation Period मुद्दते हिज़ानत और रोग का शरीर में गुप्त रूप से रहना कहा जाता है। जब रोग पूर्ण रूप से प्रगट होजाता है तब उसे आक्रमण काल और जब तक रोग की छूत रोगी में इस योग्य रहती है कि दूसरे मनुष्य पर आक्रमण कर अपना प्रभाव डाल सके तब उसे संक्रमण काल और तिब्ब में मुद्दते सरायत और डाक्टरी में Period of infectivity कहते हैं। रोग के शरीर में गुप्त रूप से रहने का समय और संक्रमणकाल तथा आक्रमण काल आदि भिन्न-भिन्न रोगों में भिन्न-भिन्न प्रकार का होता है और छूतदार रोगियों के लिये जो क्वारंटीन लगाई जाती है अर्थात् छूतदार रोगों से आक्रान्त रोगियों को जो शहरों से बाहर पृथक् रक्खा जाता है उसमें उपरोक्त तीनों प्रकार की अवधियों पर विचार किया जाता है।

भिन्न-भिन्न रोगों के शरीर में गुप्त रूप से रहने का समय, संक्रमण काल, आक्रमण काल और उनके फैलने का तरीका तथा उनसे बचने के उपाय आदि आवश्यक बातों के बताने के लिये नीचे एक तालिका दी जाती है जिसके द्वारा सर्व साधारण ये सभी बातें सुगमता से समझ सकेंगे।

(तलिका आगे के दो पृष्ठों पर देखिये)

संख्या	रोग का नाम प्रचलित और शास्त्रीय	डाक्टरी नाम	रोग के शरीर में गुप्त रूप से रहने का समय	रोग का आक्रमण काल या अवधि	रोग का संक्रमण काल	रोग के फैलने का तरीका	रोग से बचने के उपाय व तत्सम्बन्धी स्वास्थ्य रक्षा
१	प्राकृत ज्वर मौसमी बुखार	malarial fever	दैनिक और निरंतर चढ़े रहने वाले प्राकृत ज्वर की गुप्त रूप से रहने की अवधि २८ दिन तृतीयक ज्वर की २ सप्ताह चातुर्थिक ज्वर की ३ सप्ताह	ज्वर के भेद के अनुसार	जब तक कीटाणु रक्त में विद्यमान रहते हैं।	ऐसे मैलेरिया के मच्छरों के काटने से जिनमें मैलेरिया का विष मौजूद हो।	मच्छरों का नाश करना, मच्छरदानी से शरीर को मच्छरों से सुरक्षित रखना, क्वनाईन, करंजवा और चिरायता, कुटकी आदि का सेवन करना।
२	बृहन्मसूरिका शीतला-चेचक	Small pox	२ सप्ताह	२ से ३ सप्ताह	१ मास तक और रोगी के मृतशरीर से भी संक्रमण हो जाता है।	वायु, त्वचा, और श्वासद्वारा	जो रोगी के संसर्ग में रहें उन्हें टीका लगवाना चाहिये।
३	लघु मसूरिका छोटी माता	Chicken pox	२ सप्ताह	४ से ७ दिन	२ सप्ताह	रोगी संसर्ग से	स्वच्छता रखना और रोगी के संसर्ग से बचना।
४	विपूचिका-हैजा	cholera	२ या ३ दिन	३ घंटे से ६ दिन पर्यन्त	जब तक रोगी के मल में से कीटाणु निकलते रहें।	रोगी के मल, मूत्र, धूलि, मक्खी और वस्त्रों से	हल्की चाय और उबले हुए पानी के सिवाय कुछ न पीवें, कच्चे फल और बिना पका भोजन न खावें और अजीर्ण न होने दें।
५	कण्ठ रोहिणी (औपसर्गिक) खुन्नाक (बवाई)	Diphtheria.	३ से ७२ दिन तक	भिन्न-भिन्न रोगियों में रोग की अवधि भिन्न भिन्न होती है।	६ सप्ताह	श्वास के द्वारा	रोगी के संसर्ग से बचना और Diphtheria, anti-toxic Vaccine का टीका लगवाना।

संख्या	रोग का नाम प्रचलित और शास्त्रीय	डाक्टरी नाम	रोग के गुप्त रूप से रहने का का समय	रोग का आक्रमण काल या अवधि	रोग का संक्रमण काल	रोग के फैलने का तरीका	रोग से बचने के उपाय व तत्सम्बन्धी स्वास्थ्य रक्षा
६	औपसर्गिक प्रवाहिका	Dysentery	कीटाणुजन्य २ से ७ दिन; एनेविक ४ से १४ दिन	भिन्न-भिन्न	जब तक रोगी के मल में कीटाणु पाये जावें।	रोगी के मल-मूत्र और खाद्य पदार्थ तथा मक्खियों से	रोगी से अलग रहना और मल मूत्रादि व मक्खियों की सफाई रखना
७	औपसर्गिक कास	whooping cough	४ से १४ दिन या अधिक	६ सप्ताह या अधिक	जब तक खांसते समय 'हुप' शब्द होता रहे।	रोगी के श्वास वस्त्र और कदाचित परिचारकों से भी	रोगी के संसर्ग में न रहना और स्वच्छता रखना
८	कर्णमूल ज्वर	Mumps	१२ से २१ दिन पर्यन्त	७ से १० दिन	२ सप्ताह	रोगी के संसर्ग से	रोगी के संसर्ग में न रहना और स्वच्छता रखना।
९	माल्टा ज्वर	Malta fever	६ से १७ दिन तक	४ मास	—	बकरी के कच्चे दूध से	बकरी के कच्चे दूध से परहेज रखना
१०	रोमान्तिका खसरा	Measles	१ से २ सप्ताह	१० दिन	३ सप्ताह	रोगी के श्वास के द्वारा	रोगी के संसर्ग से बचना और स्वच्छता रखना
११	जलत्रास हड़काव	hydrophobia	१ सप्ताह से २ वर्ष पर्यन्त	—	—	रोगी जानवर कुत्ता गीदड़ और भेड़िये आदि के काटने से	दंश स्थान को तुरन्त अग्नि से दग्ध कर देना या पास्चर साहब का आविष्कृत टीका लगवाना
१२	आन्त्रिक ज्वर मन्थर ज्वर मोतीझला	Typhoid fever entric fever	२ सप्ताह से ३ सप्ताह तक	२१ दिन या अधिक	१ मास या इस से भी अधिक	रोगी के मल-मूत्र थूक मक्खी धूल तथा दूध आदि दूषित खाद्यपदार्थ	एकान्त वास, स्वच्छता, धूल मक्खी और विकृत खाद्यसामिग्री से बचना
१३	श्लेष्मक ज्वर पीनस महामारी जुकाम का फैलने वाला बुखार	Influenza	१ से ५ दिन	१० दिन	२ सप्ताह से ६ सप्ताह पर्यन्त	श्वास और वस्त्रों के द्वारा	रोगी के संसर्ग से बचना और पूर्ण स्वच्छता रखना

नीबू

लेखक—श्री० हेमन्त कुमार जैन 'फणीन्द्र' नैकौरा
दि० जैन कालिज (आयुर्वेद विभाग), जयपुर ।

नाम—

संस्कृत-निम्बुक, अम्लजम्मीरी, हिन्दी-नींबू, अंग्रेजी Lamons, इस प्रकार अनेक नामों से पुकारा जाता है।

वर्णन—

नीबू का फल सारे भारतवर्ष में खटाई के काम में आता है । इस उत्तम फल से सारे भारतीय परिचित हैं, अतः इसका विशेष परिचय देने की आवश्यकता नहीं ।

इसकी ५-६ जातियां होती हैं। जैसे-कागजी नीबू, जम्मीरी नीबू, कन्नानीबू, बिजौरानीबू, मीठा नीबू इत्यादि । पर मैं यहां पर सिर्फ नीबू के विषय में कहना चाहता हूँ ।

गुणदोष और प्रभाव—

आयुर्वेदिक मतानुसार नीबू खट्टा, वातनाशक, दीपन पाचक, हलका, कृमिनाशक, तीक्ष्ण, उदर रोगों को दूर करने वाला, श्रमहारक, शूल में हितकारी, अरुचि-निवारक और रोचक होता है।

नीबू त्रिदोषजन्य रोग, तत्काल के ज्वर, अनेक प्रकार की मन्दाग्नि, मुंह से पानी का गिरना, कब्जियत, बद्धकोष्ठता और विषूचिका रोग में लाभ करता है।

आधुनिक चिकित्सकों के मतानुसार-नीबू का रस दीपन, पाचन, हृदय को बल देने वाला, प्यास निवारक, रक्तपित्तनाशक, पार्यायिक ज्वरों को दूर करने वाला, ज्वरनाशक और मूत्रल होता है। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में भी इस वस्तु ने अच्छी ख्याति प्राप्त की है। अनेक प्रामाणिक खोजों से यह साबित हो चुका है कि नीबू में जीवन पोषक खटाई के तत्व दूसरे फलों की अपेक्षा अधिक प्रमाण में रहते हैं, दूसरे फल कच्चे होने पर खट्टे रहते हैं और पकने पर मीठे हो जाते हैं और बहुत अधिक पकने पर उनमें कई प्रकार की एसिड जैसे-एसिटिक एसिड, लेक्टिक एसिड, ब्यूटीरिक एसिड और आक्सेलिक एसिड इत्यादि शरीर की क्रियाओं को नुकसान पहुँचाने वाली बहुत सी एसिड्स रहती हैं। मगर नीबू की खटाई इस प्रकार की नहीं है, नीबू अच्छी तरह से पक जाने के पश्चात् भी अपनी खटाई नहीं छोड़ता । इसमें ऐसा मालूम होता है जैसे संसार की प्रयोगशाला में प्रकृति ने इसकी रचना विशेष तत्वों के मेल से की है। नीबू की यह खटाई दूसरी खटाई से बिलकुल भिन्न प्रकार की होती है। इसकी यह खटाई बिलकुल प्राकृतिक है ।

नीबू के रस में कृमियों को नष्ट करने की ताक़त

भी बहुत अधिक पाई जाती है, आन्तों के अन्दर बेक्ट्रिया इत्यादि अनेक प्रकार के कीटाणुओं के पड़ने से टायफाइड, अतिसार, कालरा इत्यादि जितने रोग होते हैं नीबू के रस से इन सब रोगों के कीटाणुओं का नाश हो जाता है। इसी कृमि-नाशक शक्ति के कारण नीबू का रस नियम-पूर्वक लेते रहने से सन्धिवात और आमवात में भी लाभ होता है।

४—दुग्धोपचार के साथ नीबू के प्रयोग—

अमेरिका के विख्यात फिजिकल कल्चरिस्ट मिस्टर बर्नरमेक फेडन, अपनी दुग्धचिकित्सा में नीबू का उपयोग करते थे। जिनको दूध अनुकूल नहीं पड़ता है, उनके लिये नीबू एक बहुत मूल्यवान वस्तु है ऐसा उनका मत है। जब किसी रोगी की दुग्ध चिकित्सा चल रही हो और कुछ दिनों के बाद उसे दूध नहीं पचता दिखे उस समय दुग्ध बन्द करके उसको नीबू के रस के ऊपर ही रखा जाय। इससे उसकी पाचन क्रिया बहुत अच्छा काम करने लग जाती है। एसिड के अभाव से जिसको दूध नहीं पचता है वह नीबू के उपयोग के पश्चात् बहुत सरलता से पचने लगता है।

५—शरीर क्रिया प्रणाली पर नीबू का प्रभाव—

शरीर के अन्दर से जहरों को निकालने के लिए जितने द्वार हैं उन सबके द्वारा नीबू शरीर के अन्दर एकत्रित दोषों को (Waste poisons) बहुत खुशी के साथ निकाल देता है। मूत्रपिंड और चर्म छिद्रों के द्वारा नीबू अनेक प्रकार के दोषों को बाहर निकालता है। यकृत की शुद्धि के लिए नीबू के समान उत्तम औषधि आज तक दूसरी कोई भी दृष्टिगोचर नहीं हुई है। अजीर्ण, पानी में जलन होना, अतिसार, कालरा, खट्टी डकारें आना, कफ, जुकाम, श्वास, इत्यादि रोगों में नीबू की खुराक औषधि का काम भी करती है, पर नीबू हमेशा अकेला ही लेना चाहिए। किसी खाद्य पदार्थ के साथ नहीं।

जब नीबू का रस खाली आमाशय में जाता है तब सबसे पहिले जिन कृमियों से आमाशय में बादी (Fermentation) पैदा होती है, उन कृमियों को नष्ट करना शुरु करता है। जब नीबू का रस रक्त के साथ मिल जाता है और यकृत और लिम्फेटिक-सिस्टम (Lymphatic System) तक पहुँचता है। तब वहां पर एकत्रित दुष्ट पार्थिव द्रव्यों को (Earthy types of Waste Matter) को छिन्न-भिन्न कर डालता है। यही दुष्टपार्थिव द्रव्य शरीर में एकत्रित होकर संधिवात, ग्रन्थिवात, गठिया इत्यादि रोगों को पैदा करते हैं।

पेट के अन्दर कृमियों की क्रिया को रोक कर, अवांछित पार्थिव द्रव्यों को नष्ट-भ्रष्ट करके नीबू का रस रक्त में मिलता है और रक्त को शुद्ध करके उसे दुष्ट पदार्थों के संसर्ग से बचाता है। शरीर में तन्दुरुस्ती कायम रखने के लिये रक्त में अम्ल प्रतियोगी तत्वों का होना जितना आवश्यक है, नीबू का रस रक्त में उतना ही अम्ल तत्व पैदा करता है।

यह बात अनेक प्रकार की खोजों से सिद्ध हो चुकी है कि अगर रक्त को अम्ल प्रतियोगी बनाना हो तो प्रतिदिन ४ से लेकर १४ नीबू तक का रस उपयोग में लेना चाहिये। नीबू चिकित्सा का सारा आधार ही इस बात पर है कि नीबू के सेवन से रक्त अम्ल प्रतियोगी बनता है और अम्ल प्रतियोगी रक्त सब प्रकार के जहरों को शरीर से धकेल कर बाहर निकाल देता है।

यह बात आवश्यक रूप से हमेशा ख्याल में रखना चाहिये कि नीबू का रस हमेशा भूखे पेट पर ही लिया जाय। गर्मी की अपेक्षा सर्दियों में नीबू का रस कम लेना चाहिए। क्योंकि जाड़े में ठण्डी हवा नीबू के द्वारा त्वचा के रास्ते बाहर निकलने वाले दुष्ट पदार्थों को रोकती है।

६—नीबू और मलेरिया—

सिसली टापू में नीबू मलेरिया के ऊपर बहुत अक्सीर प्रयोग माना जाता है। बहुत उग्र कॉफी बनाकर उसमें नीबू का रस मिलाकर देने से मलेरिया में बहुत अच्छा लाभ होता है। बहुत से पुराने हठीले रोगों में भी नीबू का रस देने से अद्भुत परि-

णाम होते हुए सुने हैं। नीबू के मावे में एक जाति का उग्र कृमिनाशक तेल रहता है। जिसे लेमन ऑइल कहते हैं। इसके सिवाय इसमें दूसरे भी अनेक कटु पौष्टिक तत्व रहते हैं। सिनकोना झाड़ की छाल में जैसे गुण हैं वैसे ही नीबू के कटुपौष्टिक तत्वों में भी माने जाते हैं।

७–नीबू क्षय और केन्सर—

डाक्टर विल्स ने लाइफ और हेल्थ नामक पत्र में क्षय (consumption) के लिये एक बहुत ही अच्छा नुस्खा लिखा था। कैंसर के लिये भी यह नुस्खा लाभदायक हुआ है। यह इस प्रकार है—

थोड़े रसदार पके हुए अच्छे नीबू ठण्डे पानी में रख देना चाहिये। फिर पानी को गर्म करना चाहिये इस प्रकार के नीबुओं को या तो ज्यों का त्यों चूस लेना चाहिये। या रस निकाल कर शहद मिला कर पी लेना चाहिये। इस प्रकार नीबू की संख्या बढ़ाते जाना चाहिये। १२ नीबू तक बढ़ा कर फिर एक-एक नीबू घटाना चाहिये।

८–नीबू और चर्मरोग—

बाह्योपचार में नीबू का रस चर्मरोगों को नष्ट करने के लिये एक सफल इलाज है। दाद, खाज, चमड़ी पर के काले दाग, इन्द्रलुप्त इत्यादि रोगों पर नीबू को काट कर रगड़ने से बड़ा लाभ होता है डाक्टर नाडकरनी लिखते हैं कि नीबू का रस कफ उत्पन्न करने वाले अवयवों की खराबी से पैदा हुए अतिसार में बहुत उपयोगी है। बिलकुल आशा छोड़ते हुये रोगी को भी दिन भर में तीस तोला की मात्रा में देते रहने से आश्चर्यजनक परिणाम नजर आता है।

९–उपयोग—

उदरशूल—कच्चे नीबू का छिलका खाने से पेट में होने वाला बादी का उदरशूल मिटता है।

विष विकार—१०-१२ नीबू का रस निकाल कर उसमें थोड़ी शकर मिलाकर पिलाने से अफीम और सांप के विष में लाभ होता है।

वमन—भोजन के बाद होने वाली वमन को दूर करने के लिये ताजे नीबू का रस पिलाना चाहिये।

बादी का दर्द—नीबू के रस में यवक्षार और शहद मिलाकर पिलाने से जोड़ों में होने वाला बादी का दर्द मिटता है।

ज्वर—इसके पेड़ की छाल का काढ़ा बनाकर पिलाने से ज्वर में लाभ होता है।

कृमि—इसके बीजों के चूर्ण की फंकी देने से पेट की कृमि नष्ट होती हैं।

खुजली—इसके रस में बारूद मिलाकर लगाने से खुजली मिटती है।

तिल्ली—नीबू का अचार बनाकर खाने से बढ़ी हुई तिल्ली में लाभ होता है। ●●

मुझे भी परखिये—

चणक (चना)

चने का एक अनुभूत किन्तु नितान्त नवीन प्रयोग लिखा जा रहा है। अतः परखियेगा।

एक तोला या सवा तोला रेंड़ी का तैल अथवा विलायती कैष्ट्रायल आधा औंस, एक पाव गेहूँ के आटे में मिलाकर (मोमन देकर) आटा गूंथ लें और ३ या ४ मोटी रोटी पकालें। रोटियां खूब सिकी हुई होनी चाहिए। घी से चुपड़ कर दूध के साथ रात्रि में खाइये। यदि चाहें तो आटे में नमक भी मिला सकते हैं। प्रातः काल ही पाखाना एकदम साफ लगेगा। रेंड़ी के तैल का यह जुलाब अत्युपयोगी है।

—कविराज सुधाकर त्रिवेदी, सिमडेगा (रांची)

सुवर्णवंग निर्माण में

हमारा अनुभव

लेखक—श्री वैद्याचार्य उदयलाल महात्मा, देवगढ़ (उदयपुर)

सुवर्णवंग निर्माण के लिए जो प्रक्रिया रसायनसार पृष्ठ ३१६, रसतंत्रसार व सिद्ध प्रयोग संग्रह पृष्ठ २७१, आयुर्वेद सारसंग्रह ४२६ पर दी हुई है उस प्रकार उतने समय तक आंच देने से शीशी टूट जाती है और रस, परिश्रम एवं अर्थ की हानि होती है जिससे निर्माणकर्त्ता वैद्य हताश होजाता है। मेरी श्रद्धा रसायनसार पर अधिक है क्योंकि श्यामसुन्दराचार्य जी ने अधिकतर रस-निर्माण क्रियायें स्वयं अनुभव करके लिखी हैं। इस ग्रंथ में इसके निर्माण में समय नहीं दिया गया है और यह भी नहीं बतलाया गया कि शीशी के मुख से धूम्र निकलना बन्द होजाने के बाद तुरन्त या कितने समय के बाद आंच ठण्डी करदी जाय तथा शीशी को वालुका यंत्र से निकाली जाकर ठण्डी होने के वास्ते रखदी जाय।

इसी रसायनसार के आधार पर रसतंत्रसार व सिद्ध प्रयोग संग्रह (कॉलेडा-बोगला) में सुवर्ण वंग निर्माण की विधि संकलित की गई है जो निम्न है—

यहां चार प्रहर के १२ के बजाय २४ घण्टे मानकर वालुकायंत्र द्वारा अग्नि देकर पाक करना लिखा है। "शीशी के गले में पहले से चार लगता है; इसलिए सावधानता पूर्वक बार-बार तप्त शलाका से गला साफ करते रहें। ८-१० घण्टे में गन्धक जारण हो जाने पर डाट लगा कर १६ घण्टे अग्नि देने से औषधि तैयार होजाती है।"

जैसा रसतंत्रसार व सिद्ध प्रयोग संग्रह में उपरोक्त निर्माण विधि में आंच देना लिखा है ठीक उसका ही अनुकरण 'आयुर्वेद सारसंग्रह' (वैद्यनाथ) में किया गया है, किस ग्रंथ का पाठ है यह उसमें उल्लेख नहीं।

इन ग्रंथों के अलावा भारत भैषज्य रत्नाकर भाग ४ पृष्ठ १८३ में प्रयोग संख्या ५५२७ 'सस्कमृगाङ्को रस' (र. रा. सु.। प्रमेह.) में निर्माण समय अग्नि देने के लिए यह सूचना दी है—"शीशी का मुख बन्द न करना चाहिये और उससे निकलने वाले धुएं को देखते रहना चाहिये। "जब धुंआ निकलना बन्द होजाय तो रस को तैयार समझें।"

भैषज्य-रत्नावली प्रमेहाधिकार में "वालुकायंत्र में मृदु अग्नि पर ४ प्रहर पाक करें। पाक के समय शीशी का मुख खुला रहना चाहिए, जिससे गन्धकादि का धूम बाहर निकलता रहे। जब धूम निकलना बन्द हो तत्क्षण शीशी को उतार लें, और शीतल होने पर शीशी को चतुराई से तोड़कर स्वर्णवङ्ग को बाहिर निकाल लें।"

रसतरङ्गिणी पृष्ठ ४५० में "वालुकायंत्र में रख चार पहर की अग्नि में पकावें, अग्नि देते हुए जब शीशी के मुख से धुंआ निकलना बन्द होजाय तो शीशी को सावधानी से एक सड़ासी से पकड़कर नीचे उतार कर ठण्डा करलें।"

कूपीपक्व रस-निर्माण-विज्ञान (स्वामी हरिशरणानन्द जी कृत) पृष्ठ ५६३ में "उत्ताप १७५° शतांश से अधिक नहीं लगना चाहिए। जब कूपी में से श्वेत धुंआ निकलना बन्द होजाय तो शीतल लेंकर अवशिष्ट नवसादर बलि उड़ जाता है और कुछ भाग कूपी की ग्रीवा पर आकर लग जाता है नीचे तल में सुवर्ण सदृश वंग होता है।"

रसेन्द्रसार संग्रह पृ० ५८६ में "बारह घण्टे पाक का काल प्रत्येक द्रव्य को ६ तोला लेने से ठीक रहेगा कांच कूपी के मुख को अन्त तक बन्द नहीं किया जाता, यदि मुख नौसादरादि के धूम से बन्द हो तो उसे खोल दिया जाता है। धूम के कम होने पर लोह शलाका से जिसका एक सिरा पालिक कृति हो डालकर परीक्षा करते रहना चाहिए। औषधि का ठीक वर्ण होने पर नीचे से आग को हटालें।"

निजी अनुभव–

रसतंत्रसार व सिद्ध प्रयोग संग्रह, रसायनसार, आयुर्वेदसार संग्रह के आधार पर दो वर्ष पूर्व और गत अगस्त में सुवर्णवङ्ग बनाने की शीशी चढ़ाई गई। शीशी पक्की ली गई और ४ बजे अग्नि शुरू की गई। ८ बजे बाद से नवसादर गंधक का धुंआ ११ बजे तक निरन्तर शीशी के मुंह से निकलता रहा। शुरू में शोरा और नौसादर ने उड़कर शीशी का गला बन्द कर दिया जो तप्त शलाका से साफ किया जाता रहा। ११ बजे तक लगातार हर ५-१० मिनट बाद शीशी का गला बन्द न होजाय, इस हेतु शलाका से गला सम्हालते रहे। ११॥ बजे करीब शीशी का मुंह वङ्ग सिन्दूर की नाल से कतई बन्द होगया फिर भी रसतंत्रसार, रसायनसार, आयुर्वेदसार संग्रह के आधार पर अग्नि देते रहे, जिससे २॥ बजे के करीब शीशी पैंदे से धड़ाकेके साथ टूट गई।

टूटी हुई शीशी ठण्डी होने पर दूसरे दिन तोड़ी गई, गले में वंगसिन्दूर की नाल मिली और ३ तोला के करीब स्वर्णवङ्ग के खण्ड शीशी में प्राप्त हुए जो पाक में पूर्ण थे।

हमारी हुई भूल के प्रति रस ग्रन्थों को अवलोकन किये और निर्माण विधि में जो सावधानी भा० भै० र०, भै० र; रसतरङ्गिणी ने बतलाई पाठकों की जानकारी हेतु वर्णित करदी है। रसायनसार के आधार पर नवनिर्मित रसतंत्रसार व सिद्ध प्रयोग संग्रह, आयुर्वेदसार संग्रह के अनुसार इस रसायन को अग्नि नहीं देनी चाहिए।

हमारा इससे यह अनुभव हुआ कि—

(१) आतिशीशीशी पक्की लेनी चाहिए और सात कपड़मिट्टी के तार से अच्छी कसावट कर लेनी चाहिए।

(२) वालूकायंत्र में शीशी के नीचे वालू दो इञ्च रखनी चाहिए, आंच साधारण देनी चाहिए।

(३) वङ्गसिन्दूर की नाल बंध जाने बाद आंच नहीं देनी चाहिए और भट्टी में आंच बन्द कर देना चाहिए या शीशी को निकाल ठण्डी होने के वास्ते रख देना चाहिए।

(४) योग ५-५ तोले के अनुपात से ही बनाना चाहिए।

(५) आंच—८ घण्टे की सर्वार्थकरी भ्राष्ट्री में मृदु अग्नि पर्याप्त होती है।

संक्षेप में—

शीशी के मुंह से धुंआं निकलता रहे तब तक गला बन्द न होने दें और तप्त शलाका से शीशी का गला साफ रखें। ८ घण्टे के बाद में क्षार न जमकर वंग सिन्दूर की ठोस नाल जम जाने पर इस रस को तैयार समझें। तब आंच बन्द करदें और शीशी को चाहें तो चतुराई से पकड़कर वालुकायंत्र से निकाल ठण्डी होने को रखदें जैसी कि प्राचीन ग्रंथों की प्रेरणा है। ऐसा किया जायगा तो कभी शीशी नहीं टूटेगी और उत्तम रस बनेगा। विज्ञ रसायनाचार्यों से भी प्रार्थना है कि वे इसके बारे में अपना अनुभव पूरे विवरण सहित 'धन्वन्तरि' के आगामी अङ्कों में डालने का कष्ट करेंगे। इसके साथ रसतंत्रसार, रसायनसार और आयुर्वेदसार संग्रह के प्रबन्धकों से भी प्रार्थना है कि वे आगामी संस्करण में सही सुधार अवश्य करेंगे।

स्वर्णवंग निर्माण की सही विधि–

शुद्धवंग शुद्ध पारद
शु० गंधक शु० नौसादर (भूना हुआ)
—प्रत्येक ५-५ तोला

विधि—पहले वंग को लोह अथवा मिट्टी के पात्र में गलावें। जब तरल हो जावे तब उसको पास में रखे हुए लोह खरल के अन्दर ५ तोला उक्त शुद्ध पारद में मिला तत्काल खरल करें। इससे पारद वंग की मुलायम पिण्टी बन जायगी अब इसमें ५ तोला सेंधानमक १० तोला नीबू का रस डालकर ४ प्रहर घोटें। बाद में साफ पानी डालकर घोटते जावें और पानी के श्याम पड़-जाने पर उसे निकाल दें। फिर नया पानी डाल-डाल कर घोटें और पानी को बदलते रहें जब-तक कि पानी का रङ्ग घोटने से विशुद्धावस्था में न रहें। पश्चात् इस पिण्टी के सूखने पर शुद्ध गंधक मिलाकर कज्जली करें। इसके लिए गन्धक स्नेहांश से रहित होनी चाहिए। उर्ध्वपातन से शोधित गन्धक लीजाय तो सर्वोत्तम है। कज्जली के तैयार होने पर नौसादर मिला अच्छी प्रकार खरल करें।

इसके बाद पक्की आतिशी शीशी सात कपड़मिट्टी की हुई और ऊपर लोह तारों से कसी हुई में उक्त कज्जली भर कर वालुकायंत्र द्वारा मृदु अग्नि (१७५ शतांश) से पाक करें और शीशी का मुंह खुला रक्खें। चार घण्टे बाद गन्धक नवसादर का धुआं निकलना शुरू होगा और नवसादर उड़-कर शीशी का मुंह और गला बन्द करेगा, इसके लिए लोह की पतली तप्त शलाका से जिसका एक सिरा पालिका कृत हो डालकर परीक्षा करते रहना चाहिए। धुआं बराबर सफेद रङ्ग का निकलता रहेगा। लगभग चार घण्टे के जब धुंआ निकलना कम पड़कर बंद होजावे और शीशी के गले में रस-सिन्दूरवत् वंगसिन्दूर की ठोस नाल बंध जाने पर रस को सिद्ध समझें और अग्नि देना बन्द करदें। नीचे से आग को ढंक दे या भट्टी से बाहर करदें जिस से भट्टी ठण्ठी हो जाय। ऐसी संभावना न हो तो शीशी को सावधानी से एक संडासी से पकड़ कर नीचे उतार कर ठण्डी होने को रखदें। यदि इस प्रकार रस सिद्ध हो जाने के बाद भी आंच दी जाती रही तो सुवर्ण वंग शीशी में फूलकर शीशी को जरूर तोड़ देगा। स्वांग शीतल हो जाने पर शीशी स्वच्छ कर जहां से तोड़ना हो घासलेट में भीगा डोरा बांध कर दियासलाई से जलाकर बाद में जल का छींटा देदें। शीशी वहीं से टूट जायगी। रस को सावधानी से संग्रहीत करलें। इसकी कांति स्वर्ण के समान चमकते हुए कणों से व्याप्त होती है अत-एव इसका नाम स्वर्ण वंग है।

मात्रा—१ से २ रत्ती।

गुण—यह रसायन बलवर्धक, प्रमेह को हरने वाली तथा कांति, बुद्धि, वीर्य और अग्नि को बढ़ाती है। अनुपानादि के वास्ते औषधि गुण धर्मशास्त्र तथा आयुर्वेदसार संग्रह के पृष्ठ ४३० से ४३४ तक अवलोकन करें।

ब्राह्मी गुटिका

१—जायफल — खितावर
दालचीनी — अजवाइन
जावित्री — तमालपत्र
चित्रक — नागकेशर
लौंग — अजमोद
शंखाहूली — सोया
अकलकरा — पीपरामूल
छोटी पीपर — काली मिर्च
तेजबल — कस्तूरी
अभ्रक भस्म — कस्तूरी

—प्रत्येक १-१ तोला

—अभ्रकभस्म को अलग रख लें, काष्ठादि औषधियों को कूट पीस करके कपड़छन चूर्ण करके कस्तूरी अभ्रकभस्म मिलाकर दाख (मुनक्का) के रस में खरल करें। अच्छी तरह से घोट कर मूंग के समान गोलियां बनाकर रख लें।

मात्रा—दो से तीन गोली।

अनुपान—गरम जल के साथ।

गुण—मोतीझला, शीतज्वर, कफज्वर, शितांग, वात-विकार, प्रसूतिज्वर, सन्निपात, डब्बा रोग (पसली चलना), जुकाम और वात कफ विकार वाले रोगों में अति उत्तम पाया गया है।

सप्तामृतधारा

२—देशी कपूर — सत्व अजवायन
यूकेलिप्टस आइल — सत्व पीपरमेंट

—प्रत्येक १-१ तोला

दालचीनी का तैल — ६ माशा
सोंठ का तैल — ३ माशा
लौंग का तैल — ३ माशा

—सब औषधि एक चौड़े मुख की कांच के कार्क वाली बोतल में डाल दें और कार्क लगा दें, २६ घण्टों में सब औषधि प्रवाही रूप बन जायगी। यह सप्तामृतधारा तैयार हो गया।

मात्रा—दस बूंद से बीस बूंद, दिन में तीन बार दें। बालकों को चौथाई मात्रा दें।

अनुपान—जल या बताशे में।

गुण—बेचैनी, जी मिचलाना, अजीर्ण, मन्दाग्नि, आलस्य, आमातिसार, पेट का हर दर्द, हैजा, अफरा, मस्तिष्क-शूल में मलना, कान के दर्द में ग्लीसरीन के साथ, दांत व दाढ़ के दर्द में रूई का फाया बनाकर रख दें, बिच्छु काटने में फाया बनाकर रख दें, छाती के दर्द में मले अति उत्तम औषधि है।

—वैद्य जयन्तिलाल बी. भट्ट R. M. P.
पीलुदरा (भरोंच)

\+ \+ \+

१—खुजलीजा—

बावची — शिलामरी के बीज
पमार के बीज — बनगोभी
नीम — महानिम्ब

—प्रत्येक १-१ तोला

—लेकर खरल में अधकुटे कर लें। पश्चात् १ सेर गौमूत्र में काढ़ा करें, जब १ पाव शेष रहे, तब उतार कर ४ तह वाले कपड़े में से छान लें।

संखिया	पाव तोला
गंधक	आधा तोला
हरा थोथा	आधा तोला
कपूर	पाव तोला
माजूफल	४ नग

—सबको खरल से बारीक पीस कपड़े से छान लें। ऊपर लिखे काढ़े में सब चीजें डाल कर लोहे की कढ़ाही में डाल कर खूब घोटें, जब मल्हम के समान बन जावें तब एक शीशी में भर कर कड़ा कार्क लगा कर रखदें, दवा तैयार है।

प्रयोग—हर किस्म के फोड़े, घाव एवं उपदंशज व्रण, हर प्रकार के फोड़े पर अँगुली से लगा दें; लगाने से फौरन घाव ठण्डा पड़ जावेगा और चमक दर्द एवं खुजली हटकर फौरन शान्ति मिलेगी। फोड़ा पका होने पर लगाने के १ घण्टे बाद फूट कर साफ हो जावेगा और पुरना शुरु हो जावेगा। यदि किसी नस में दर्द हो रहा हो तो तैल में दवा घोल कर गर्म करके मालिश कर दें। ऊपर से थोड़ा सेक दें, ३ घण्टे के अन्दर दर्द शान्त हो जावेगा।

मासिकधर्म खोलने के लिए—

१—अपामार्ग की जड़	१ तोला
नंदन वन (बड़ा कपास) के फूल	१ तोला
गाजर के बीज	१ तोला

—एक पाव पानी में खौलने डाल दें। जब पानी १॥ तोला शेष रहे उतार कर रात्रि में ८ बजे पिला दें। प्रातःकाल होते ही मासिक श्राव होना प्रारम्भ हो जावेगा।

२—कपास के बीज	१० तोला
गाय का दूध	२० तोला

विधि—पहले कपास के बीज १ सेर पानी में डाल कर २ घण्टे रखा रहने दें। पश्चात् उनको खरल से कूट कर एक पाव पानी में घोल दें। जब उनसे पानी का सफेद रङ्ग (दूधिया) होजावे तब सब द्रव्य को कपड़े से छान लें और दूध डाल कर खीर के समान पकाने रख दें।

जब खीर तैयार होने लगे तब उसमें ५ तोला शक्कर डाल कर उतार लें और गर्म-गर्म खीर जिसका मासिक श्राव रुका हो खिला दें। एक या दो घण्टे बाद मासिक-श्राव प्रारम्भ हो जावेगा। यदि बहुत समय का होगा तो समय ज्यादा लगेगा। इसे ३ दिन लगातार खिलाना चाहिये।

नोट—ध्यान रहे इन प्रयोगों को गर्भ-धारण हो उस दशा में प्रयोग न करें।

दमा पर—

१—मल्ल चन्द्रोदय	२ रत्ती
श्वासकुठार	४ रत्ती
कफकेतु रस	४ रत्ती
अभ्रक भस्म	२ रत्ती
शृङ्गभस्म	४ रत्ती

—इन सबको खरल कर ४ खुराक बनावें। हर दूसरे घण्टे पर अदरक स्वरस शहद से दें फौरन दमा शान्त होकर बैठ जाता है।

२—धतूरे के पत्ते	२॥ नग
बांस के पत्ते	६ नग
कबाबचीनी	१४ नग

चिलम में भरकर पिलाने से दमा फौरन शान्त होजाता है। नाक से धूम्रपान न करने दें।

रक्तप्रदर पर—

कोइनी के फूल	१ तोला
माजूफल	४ तोला
फिटकरी का फूला	१ तोला
बहेड़े की छाल का चूर्ण	१ तोला
छोटी केवटी की जड़	१ तोला

नोट—छोटी केवटी को गोंड़ी भाषा में छोटी गुर-शुकलू भी कहते हैं। हमारे यहां इसे स्वर्णचोरी

कहते हैं जो सज्जन पहचानना चाहें वे मुझे पोस्टेज भेज कर पत्ते आदि अंग प्राप्त कर सकते हैं।

सब वस्तुओं को खरल कर कपड़े से छान लें। और एक शीशी में भरकर रख लें, दोनों समय ३-३ माशा खिला कर ऊपर से दूध मिश्री युक्त पिलावें। ५ दिन लगातार दवा खिलाने से कठिन से कठिन प्रदर शांत होता है, यह मेरी सैकड़ों रोगियों पर आजमाई दवा है।

पथ्य—मूंग की दाल का यूप, समा के चावल, तूहर की दाल से, कठिया गेहूँ का दलिया दूध-शक्कर में बनाकर दें, सांठी के चावल दूध शक्कर से दें।

संधिग सन्निपात—

यह सन्निपात सर्व प्रथम देखने में गठिया जैसी प्रतीत होती है पर नाड़ी देखने से बिल्कुल निमोनियां है। इसके साथ यदि गठिया या सन्निपात का इलाज किया जावे तो रोगी शायद ही बचता है, इसका इलाज बिल्कुल निमोनियां जैसा ही करना चाहिए।

प्रयोग—रससिंदूर	१ रत्ती
कफकुठार	१ रत्ती
शृङ्ग भस्म	$1\frac{1}{2}$ रत्ती

—सबको घोंट कर अदरख स्वरस एवं शहद से दें। पेनसिलीन ५ लाख प्रतिदिन १ सूचीवेध देना ही चाहिए। दोपहर में १ गोली एम. बी. ६६३ देना चाहिए।

अथवा—रससिंदूर	१ रत्ती
संजीवनी वटी	१ गोली

—दोनों को उपरोक्त ढंग से दोनों समय प्रयोग करना चाहिए।

दो दिन के बाद एक इन्जेक्शन सियोलिन सी आयोडीन मांसान्तर्गत प्रयुक्त करना चाहिए। ४ या ५ दिन बाद रोग मुक्त हो जावे तब १ रत्ती मल्लसिंदूर, १ रत्ती शितोपलादि चूर्ण, १॥ रत्ती शृङ्ग भस्म अकेली शहद से देना चाहिए।

पथ्य—अरहर की दाल, समरिया (चावल) मूंग की दाल का यूप या राजगिर के लाई का यूप पिलाना चाहिए।

—डा० रविशंकर शर्मा A. I.V.

× × ×

नेत्र प्रकाशक अंजन

हल्दी कबाबचीनी जीरा
पठानी लोध्र शुद्ध मुर्दाशङ्ख
शुद्ध फिटिकरी सुहागे का फूला
कपूर कौड़ी शङ्खनाभि
जशद का फूला —ये वस्तुऐं समान भाग
शुद्ध तुत्थ आधा भाग अफीम ¼ भाग

—इन उपरोक्त तेरह वस्तुओं को पहिले महीन पीस लेना, पश्चात् खरल में डाल लगभग ३ दिन तक गुलाबजल से घोटाई करें, यहां तक कि सुरमा जैसा सूखा हो जावे। नेत्रप्रकाशक अंजन तैयार समझिए।

गुण—यह नेत्र सम्बन्धी अनेक रोगों को दूर करता है। तथा नेत्रों की ज्योति को बढ़ाता है। सलाई से सुबह शाम आंखों में लगाइये।

पथ्य— दूध-घी का सेवन आवश्यक है।

अपथ्य—तैल, मिर्च, खटाई, गुड़ तथा गरम वस्तुओं का सर्वथा त्याग करदें।

बालकों का कुन्कुड (कुथ्थू) नाशक तंत्र

छिहोर वृक्ष की पतली तथा कोमल डाल को रविवार अथवा मंगलवार सुबह स्नान करके लावें। डाल लाने जाते तथा लाते समय पिशाब करना तथा डाल को जमीन पर रखना निषेध है। डाल लाये पश्चात् उसका छिलका निकालकर बच्चे की गर्दन के अनुसार शुद्ध सूत से उसकी सुतली (गर्दन में पहिनाने का कंठा) बनावें और बच्चे को पहिना देवें। इससे बच्चों के कुथ्थू नष्ट होकर बच्चों को लाभ प्राप्त करता है। यह तंत्र एक संन्यासी जी द्वारा प्राप्त हुआ है।

सूखा रोग नाशक–

पंचुनियां बूटी–यूनानी में इसे पाजापोथी कहते हैं। यह ऊसर वाली पृथ्वी में अधिकता से प्राप्त होती है। यह शंखाहुली की लघुजाति में से है। शंखाहुली का पुष्प श्वेत, बड़ा तथा पत्र रोमयुक्त होते हैं। परन्तु पंचुनियां के पत्र अतिलघु और पुष्प श्वेत छोटे मोती के भांति के होते हैं और यह बूटी पृथ्वी में फैली हुई रहती है।

प्रयोग–पंचुनियां बूटी का पंचाग लेकर उसका रस निकालिये। उसे बच्चे की मां के दूध और शहद के साथ चटाइये। रस की मात्रा ३ माशा बड़े बच्चे के लिये, छोटे को अवस्थानुसार दीजिये। रस निकाले बाद जो लुगदी है उसे बच्चे की पीठ पर तथा मेरुदण्ड पर मलना अति आवश्यक है।

इसके एक घण्टा बाद पंचुनियां बूटी को पानी में उबालकर गुनगुना पानी रहने पर बच्चे को स्नान कराइये।

सूचना–चटाने का समय सुबह-दोपहर-शाम। साथ-साथ लुगदी मेरुदण्ड तथा पीठ पर तीनों समय मलें। स्नान केवल दोपहर को ही करावें। इस प्रकार नित्य प्रति एक सप्ताह कराने से बच्चा रोगमुक्त होजाता है। अनुभूत है।

नोट–पंचुनियां बूटी को चाय जैसा उबालकर पीने से अति स्वादिष्ट-सुगन्धयुक्त चित्त प्रसन्न करने वाली तथा आलस्य दूर करने वाली होती है।

अर्श निवारक औषधि–

गंगावती अर्थात् कुकरौंधा का पंचांग, पंडालू (प्याज) और फूली हुई फिटकरी तथा कलिहारी (लांगली) की जड़ इन समस्त वस्तुओं को कूटकर लुगदी बनावें तथा गरम करके गुनगुना मस्से पर बांधे।

खाने के हेतु–गंगावती का रस दो तोला, योगराज गुग्गुल दो गोली शहद के साथ, सुबह-शाम सेवन कराइये। अवश्य लाभ होगा।

पथ्यापथ्य अर्श का पालन करावें जो शास्त्र सम्मत है।

—वैद्य दयाशंकर जी त्रिपाठी, ग्राम–भरीपुर
पो० गोविन्दपुर भीरा (रायबरेली)

\+ \+ \+

अफीम अहार वटी–

खुरासानी अजवायन	शु० वत्सनाभ
शु० कुचला	शु० अफीम
गिरी आंमला	हरड़
वायविडंग	छोटी इलायची
तवासीर	पोस्त

—समभाग लेकर कूट कपड़छान कर जल के सहयोग से वटी बनावें।

मात्रा—आवश्यकतानुसार सेवन करें।

गुण—यह वटी अफीम का नशा छोड़ने में अत्यन्त गुणकारी है।

–गुल्महर मिक्चर–

कुमारी रस	आधा सेर
खाण्ड देशी	एक पाव
सुहागा फूल	१ तोला
नौसादर	१ तोला

—सबको मिलाकर कार्क लगादें और धूप में रखें। जब बोतल का कार्क स्वयं खुलने लग जाए तब मिक्चर तैयार समझें।

मात्रा—१-१ तोला प्रातः सायं दें।

गुण—यह मिक्चर तापतिल्ली, गुल्म तथा उदर विकार पर अत्यन्त गुणकारी है।

अकसीर दमा—

अर्क प्याज	अर्क रसोन
अर्क अदरख	शहद

—सबको मिलाकर बोतल में डाल दें। इसे जमीन में दबा दें। चालीस दिन के बाद निकालें और कार्य में लें।

गुण—श्वास रोग पर लाभकारी है।
मात्रा—१-१ तोला प्रातः सायं दें।

लक्ष्मीबालामृत—

शंखभस्म वराट भस्म
शुक्ति भस्म प्रवाल भस्म
—प्रत्येक १-१ तोला
अर्क गुलाब २० तोला

—मिलाकर भिगो दें। उसे नितार कर खाण्ड २० तोला मिलाकर अग्नि पर एक तार का शर्बत बनावें। फिर सुहागा फूल १ तोला मिलादें।

मात्रा—३ मास की आयु के बच्चे को—५ से १० बूंद तक
१ वर्ष की आयु के बच्चे को—२० से २५ बूंद तक।
३ वर्ष की आयु के बच्चे को—४० से ५० बूंद तक दूध में मिलाकर प्रातः सायं दें।

गुण—आमाशय रस विकृति से उत्पन्न बालकों का अपच रोग, दूध फेंकना, उदर पीड़ा, जुकाम, मन्दाग्नि, कब्ज आदि रोगों को दूर कर शरीर को बलवान बनाता है।

कण्डुहर मलहम—

गन्धक आमलासार नीलाथोथा
मुरदासंग कबीला
—प्रत्येक १-१ तोला।
गाय का घृत ६ तोला

—उपरोक्त औषधियों को कूटकर फिर घृत मिलादें।

गुण—सब प्रकार के कण्डु पर लाभकारी है।

—आयुर्वेदाचार्य सोहनलाल शर्मा 'वत्स'
लक्ष्मी आयुर्वेद फार्मेसी, दलालपुरा (पटियाला)

\+ \+ \+

अदीठ व्रण पर—

आंमा हल्दी ३ माशा
मेदा लकड़ी ३ माशा
फिटकरी सफेद ३ माशा

—तीनों को बारीक पीसकर थोड़ा जल डालकर गरम करलें और खूब गरम होजाने पर १ पट्टी पर लेप करदें। इस प्रकार ८ दिन तक रोग के व्रण पर पट्टी चढ़ा दें। पीने को महामंजिष्ठादि अर्क देदें। रोगी को शीघ्र आराम होगा।

—वैद्य कुञ्जबिहारीलाल पारीक
पारासर आयुर्वेद औष०, चेचट (कोटा)
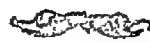
धन्वन्तरि जयन्ती समारोह

धन्वन्तरि जयन्ती पर—

धन्वन्तरि के प्रति

हे तक्षक मानमर्दन !
चिकित्सक शिरोमणि !!
धन्वन्तरि !!!
आज-
तव काव्य-
कर सम्मुख वैद्य समाज-
अर्चना करूंगा,
कुछ निवेदन करूंगा,
कुछ भर्त्सना सहूंगा।
कि-
आप हैं देव तुल्य-
स्वयं प्रबुद्ध-
देवता।
हां! देवता कहा मैंने।
किन्तु, दुःख-
महादुःख-
देव को भुलाया,
देव-कर्म को भुलाया,
दैवी गुणों को भुलाया,
अतः
अन्वेषण करो !
साधना करो !!
उज्वलतम् भावना भरो !!!
जिससे नर, नारायण होगा,
मनुज स्वयं देवता बनेगा।
किन्तु-
हमने न माना;
तव मर्म न जाना।
तुम्हें देवता बनाया,
नैष्कर्म्य अपनाया,
आलस्य के समुद्र में-
दम्भ-मल-पुञ्ज में-
निराशा अहं-प्रपञ्च में-
स्वयं को डुबोया।
अतः आपके नाम पर,
पूर्व साधकों के काम पर,
कब तक जिये आयुर्वेद।
यदि, अन्वेषण हो !
साधना हो !!
तो कण-कण बने देवता !!!

... ...

दान दो !
हां ! दान चाहता हूं।
जन से न मागूं,
राजसत्ता से न मागूं;
किसी अन्य से न मागूं,
अतः दान दो।
दान दो वरदान दो-
अजेय शक्ति !
अमर भक्ति !!
तीव्र आयुर्वेदाशक्ति !!!
जिससे नवीन हो अपना यह आयुर्वेद;
मिटे तव आत्म खेद,
हो व्याधि-पुञ्ज भेद ॥

... ...

दृष्टि दो, तेज दो !
और दो, विकासक दृष्टि !!
क्योंकि-
मैं शिशु हूँ,
मैं अबोध हूँ,
और, स्कन्धारूढ़ हूँ,
जन से-
जन सत्ता से-
पेथी प्रपञ्च से-
चकाचौंधमय हूँ मैं,
चूंकि स्कन्धारूढ़ हूँ मैं।
अतः दूर देखूंगा।
इसलिए मांगता हूं,
अमल !
धवल !!
विकासक !!!
दृष्टि।
जिससे-
स्वाद सहित-
सुस्वादु-सुमधुर-
सुशोभना हो कल्पना,
न हो वृथा जल्पना,
गुण ग्राहक हों न अल्पमना ॥

... ...

जगाओ, हे धन्वन्तरि !
जन गण के महा प्राण-
कण-कण में-
अन्वेषण का महानाद,
कर्म रहित अङ्गसाद।
मिटाओ, हे धन्वन्तरि !
दम्भदोष दानव का
आलस्य मद मानव का
जय धन्वन्तरि !
हे धन्वन्तरि !!
कण-कण बोल उठे-
जय जय जय आयुर्वेद !
जीवित है आयुर्वेद !!
महामान आयुर्वेद !!!

—वैद्य महेशकुमार शुक्ल।

धन्वन्तरि जन्मोत्सव समाचार

३१ अक्टूबर १६५६ बुधवार के दिन भारतवर्ष के कोने-कोने में, सभी नगर-ग्राम एवं शहरों में, धन्वन्तरि जयन्ती बड़े धूम-धाम से मनाई गई। धन्वन्तरि जयन्ती समाचार जो धन्वन्तरि में प्रकाशनार्थ प्राप्त हुए हैं, वे इतने अधिक और इतने विस्तृत हैं कि उनको यथावत् प्रकाशित करना नितान्त असम्भव है। अतएव उन समाचारों को अति संक्षिप्त रूप में यहां प्रकाशित करते हुए समाचार प्रेषक महानुभावों से विनीत प्रार्थना करते हैं कि वे ऐसा करने के लिए हमें क्षमा करें। —सम्पादक

कोटा—

श्री धन्वन्तरि-जयन्ती के उपलक्ष में वैद्य सभा कोटा ने एक समारोह कोटा राज्य के भूतपूर्व चीफ मैडिकल–आफीसर माननीय रायबहादुर डा० विद्याशंकर जी के सभापतित्व में मनाया। आरम्भ में कोटा के वरिष्ठ वैद्य आयुर्वेद मार्तण्ड श्री मोतीशंकर जी सनाढ्य ने धन्वन्तरि वन्दना की। पश्चात् वैद्यसभा के प्रधान मंत्री श्री वैद्य कपूरचन्द्र आयुर्वेदाचार्य ने आयुर्वेद के आद्य प्रवर्तक भगवान धन्वन्तरि का ऐतिहासिक परिचय तथा आयुर्वेद के महत्व पर संक्षिप्त प्रकाश डाला। श्री वैद्य जोधराज जी आर्य प्रधान मन्त्री झालावाड़ वैद्य सभा ने महर्षि धन्वन्तरि के आयुर्वेद सम्बन्धी उपदेशों को संसार की सर्वोत्कृष्ट निधि के रूप में प्रस्तुत किया। कोटा के जनप्रिय नेता विद्वत्वरेण्य माननीय श्री शम्भूदयाल जी एम० ए० ने वैदिक दृष्टि से आयुर्वेद का महत्व प्रकट किया। आपने आयुर्वेद वैद्यों के प्रति प्रेरणात्मक भाषण दिया जिसमें कहा कि वैद्यों को सरकार के भरोसे ही नहीं बैठा रहना चाहिये बल्कि स्वयं में ऐसी शक्ति इकट्ठी करनी चाहिये जिससे लोगों को आयुर्वेद जीवित प्रतीत हो। प्रस्तुत महोत्सव के प्रमुख वक्ता आयुर्वेद जगत के सुपरिचित विद्वान कविराज नित्यानन्द जी आयुर्वेद बृहस्पति बून्दी ने आयुर्वेद का तुलनात्मक विवेचन किया। आपने आयुर्वेद की उन्नति में जो बाधायें हैं उनकी ओर लोगों का ध्यान आकृष्ट किया। सरकार आयुर्वेद को कितना सहयोग दे रही है और अनुपात से आयुर्वेद कितने लोगों की सेवा कर रहा है यह सब जनता से छिपा हुआ नहीं है। आपने अपने एक घण्टे के भाषण में अनेक महत्वपूर्ण बातों पर प्रकाश डाला। अन्त में सभापति महोदय ने शोधपूर्ण भाषण दिया। यह उत्सव स्थानीय कोआपरेटिव बैंक के विशाल भवन में सम्पन्न हुआ। —श्री कपूरचन्द्र जैन, प्रधान मंत्री।

लश्कर—

ग्वालियर चिकित्सीय जिला वैद्यसभा द्वारा धन्वन्तरि जन्मोत्सव गवर्नमेंट आयुर्वेदिक कालेज के प्रिन्सिपल श्री लक्षमनप्रसाद जी जोशी की अध्यक्षता में मनाया गया जिसमें अनेक विद्वानों के आयुर्वेद सम्बन्धी सारगर्भित भाषण हुए।

प्रवक्ताओं में श्री गौतम शर्मा, श्री आनन्दनबिहारी मिश्र एवं श्री नन्दनन्दन भारद्वाज के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

—श्री वैद्य श्रीकृष्णदास छापरवाल, मंत्री।

चूरू—

दिनांक ३१।१०।५६ को श्री धन्वन्तरि त्रयोदशी के दिन श्रीमान् गुसाई रामलाल जी यति के सभापतित्व में श्री चूरू जिला वैद्य सभा का आयोजन किया गया। सर्वप्रथम 'भगवान्' का विधिवत् पूजन हुआ। उसके बाद वैद्य श्री छगनलाल मिश्र ने भगवान् श्री धन्वन्तरि के पवित्र चरित्र पर शास्त्रीय विवेचन करते हुए बताया कि वैद्य लोग रोगाक्रान्त जनता की सच्ची सेवा करना ही अपना कर्तव्य समझें, आज का दिन हमारा राष्ट्रिय पर्व है अतः इसे बड़े उत्साह

से मनावें। इसके बाद सर्वश्री सुखदेव जी, सत्यनारायण जी, हरिश्चन्द्र, घेवरचन्द्र आदि वैद्यों ने "स्वास्थ्य की परिभाषा" का विस्तृत उल्लेख किया।

अन्त में सभापति जी ने बताया आयुर्वेद पद्धति से ही रोग पीड़ित जनता की सच्ची सेवा करनी चाहिये और संगठन को सुदृढ़ बनाना चाहिये।

प्रतापगढ़—

दिनांक ३१।१०।५६ को रात्रि के ७-३० बजे नगर वैद्य सभा प्रतापगढ़ की ओर से धन्वन्तरि जयन्ती महोत्सव बड़े समारोहपूर्वक मनाया गया। सभा के अध्यक्ष पद पर स्थानीय एम० एल० ए० श्रीमान् बद्री-प्रसाद जी साहेब सुशोभित थे। इस अवसर पर वैद्य श्री प्रहलादराय बी० आई० एम० एस०, वैद्य चांदमल जी जोशी, वैद्य श्री चतुर्भुज, वैद्य श्री चन्द्रशेकुमार जी, वैद्य श्री जनार्दन जी त्रिपाठी एवं चैयरमैन म्युनिसिपल बोर्ड श्री अमृतलाल जी पायक तथा नगर कांग्रेस के मन्त्री श्री चूनीलाल प्रभाकर के आयुर्वेद की महत्ता पर ओजस्वी भाषण हुए। अध्यक्ष द्वारा वैद्यों को सङ्गठित एवं आयुर्वेद के प्रति निष्ठावान होने की सलाह दी गई तत्पश्चात् प्रसाद वितरण कर सभा विसर्जित की गई। —वैद्य प्रहलादराय देराश्री

B.I.M.S. आयुर्वेदाचार्य

उज्जैन—

तारीख ३१।१०।५६ रात्रि को ७॥ बजे श्री अवंतिका आयुर्वेद विद्यालय उज्जैन के छात्र संघ द्वारा आयोजित श्री धन्वन्तरि जयन्ति महोत्सव श्रीमान् पं० गोपीकृष्ण जी शास्त्री की अध्यक्षता में समारोहपूर्वक सम्पन्न हुआ। भगवान् धन्वन्तरि के पूजन-अर्चन पश्चात् पंडित राधेलाल जी व्यास एम० एल० ए० पं० दयाशंकर जी बाजपेयी, विद्यालय के आचार्य पं० वासुदेव जी शास्त्री, पं० लक्ष्मीनारायण जी शर्मा और पं० चन्द्रगुप्त जी भारतीय के सारगर्भित भाषण हुए।

पं० वासुदेव जी ने चरक आदि अनेक शास्त्रों के उद्धरण पूर्वक वैद्यों के कर्त्तव्य का उल्लेख किया। शेष वक्ताओं ने पं० वासुदेव जी शास्त्री की २४ वर्षीय निःस्वार्थ सेवाओं और विद्यालय द्वारा अब तक ४०० से भी अधिक वैद्य तैयार करने के गौरवशाली कार्य का उल्लेख करके पं० जी को धन्यवाद दिया।

यह विद्यालय उज्जैन में आयुर्वेद कालेज की स्थापना की आवश्यकता की ओर संकेत कर रहा है, आशा है मध्यप्रदेश सरकार उस संकेत की ओर ध्यान देगी। सभा में वैद्यों और आयुर्वेद प्रेमियों की उपस्थिति अच्छी थी।

—पं० रामेश्वरदयाल शर्मा, प्रचार मंत्री।

फीरोजाबाद—

३१ अक्टूबर सन् १९५६ ई० को श्री तिलक भवन फीरोजाबाद में श्री हजारीलाल जी जैन बी० ए० एल० एल० बी० वकील के सभापतित्व में फिरोजाबाद तहसील वैद्य सभा की ओर से श्री धन्वन्तरि जयन्ती महोत्सव बड़े समारोह से मनाया गया। आगत विद्वानों ने श्री-भगवान् धन्वन्तरि को श्रद्धाञ्जलियां अर्पित कीं और बताया कि फिरोजाबाद नगर की जनता एलोपैथी चिकित्सालय के साथ-साथ एक आयुर्वेदिक चिकित्सालय की आवश्यकता अनुभव करती है। श्री सभापति महोदय ने उपस्थित जनता और वैद्य समाज के अनुरोध पर यह आश्वासन दिया कि यदि जनता ने आयुर्वेदिक चिकित्सालय की स्थापना हेतु आर्थिक सहयोग और हार्दिक सहानुभूति प्रदर्शित की तो निःसन्देह ही आयुर्वेदिक चिकित्सालय बनकर रहेगा और मैं पूर्ण प्रयत्न करूंगा। अनेक एलोपैथी के चिकित्सालयों के होते हुए भी गांव की दीन हीन जनता को जितना वैद्य समाज से आश्रय मिल रहा है वह किसी से छिपा नहीं है यदि आयुर्वेदिक चिकित्सालय की स्थापना में राजकीय सहायता मिल जाती है तो फिर कहना ही क्या 'सोने में सुगन्ध' है फिर तो आयुर्वेदिक चिकित्सालय को एलोपैथी चिकित्सा के समानान्तर कार्य करने का अवसर मिलेगा और जनता कई गुना लाभ उठा सकेगी। —मंत्री।

बांसवाड़ा—

जिला वैद्यसभा के तत्वावधान में धन्वन्तरि महोत्सव वैद्यसभा की अध्यक्षता में भव्य रूप से मनाया गया। भगवान् धन्वन्तरि का पूजन, मंगलाचरण तथा अनेक वैद्यों ने आयुर्वेदोन्नत एवं संगठन पर विचार प्रगट किये और सर्व सम्मति से जिला वैद्यसभा का वार्षिक निर्वाचन

सम्पन्न हुआ।

महेन्द्रगढ़—

३१-१०-५६ तदनुसार का० कृष्णा १३ बुधवार को सायं ३ बजे श्री ताराचंद जी धर्मार्थ औषधालय में आयुर्वेदाचार्य जोशी जगदीश प्रसाद जी वैद्य सदस्य प्रदेश कांग्रेस के सभापतित्व में धन्वन्तरि महोत्सव (जयन्ति) पूर्ण समारोह से सम्पन्न हुआ। निम्नलिखित कार्यवाही की गई।

१—श्री भोलानाथ जी द्वारा झंडाभिरोहण तथा श्री धन्वन्तरि जी का पूजन।

२—श्री शंकरदत्त जी की कविता एवं भाषण।

३—श्री ग्यारसीलाल जी एवं विश्वंभरदत्त जी के प्रभावशाली भाषण।

४—श्री मदनमोहन जी मदनलाल जी का सुन्दर गान।

५—मंत्री द्वारा वार्षिक रिपोर्ट सुनाई गई।

६—प्रधान जी का आयुर्वेद विषयक भाषण एवं श्री धन्वन्तरि जी की जय-जय ध्वनि से उत्सव की कार्यवाही समाप्त की गई। —सहायक मंत्री।

मथुरा—

श्री धन्वन्तरि जयन्ती समारोह दिनांक ३१-१०-५६ को सायं ५॥ बजे मथुरा जिला वैद्य सभा एवं नगर वैद्य सभा के सभासदों द्वारा श्री धन्वन्तरि पूजन महोत्सव श्री ऋषिकुल ब्रह्मचर्याश्रम धर्मार्थ आयु० औषधालय विश्राम घाट पर श्री चक्रपाणि शास्त्री आयुर्वेदाचार्य काव्य व्याकरणतीर्थ के सभापतित्व में मनाया गया, जिसमें सर्व प्रथम नागरिक विद्वानों द्वारा मंगलाचरण हुआ। तदन्तर श्री वंशीधर जी शास्त्री साहित्याचार्य द्वारा श्री धन्वन्तरि स्तुति में कविता पाठ हुआ एवं पौराणिक रत्न श्री गिरराज जी शास्त्री द्वारा प्रवचन हुआ एवं राजवैद्य श्री रामगोपाल जी शास्त्री आयुर्वेदाचार्य सभापति जिला वैद्य सभा द्वारा आयुर्वेद विज्ञान पर सारगर्भित भाषण हुआ तथा श्री वंशीधर जी शास्त्री एवं श्री दामोदराचार्य वैद्योपाध्याय को क्रमशः "आयुर्वेदसूरि" एवं "वैद्य भास्कर" उपाधि प्रदान की गई। सभापति महोदय के भाषण के अनन्तर प्रसाद वितरण हुआ एवं श्री भगवान् धन्वन्तरि के जय घोष के साथ सभा का कार्य सानन्द सम्पन्न हुआ।

—श्री दामोदराचार्य वैद्योपाध्याय, मंत्री।

सरदार शहर—

ता० २५ अक्टूबर से ३१ अक्टूबर १९५६ तक आयुर्वेद विश्व-भारती सरदार शहर राजस्थान ने धन्वन्तरि सप्ताह बड़े उत्साह से क्रियात्मक रूप में मनाया। छात्रों और अध्यापकों की टोलियां ग्रामों में जाकर रोगियों को निःशुल्क औषधि वितरण और जनता में स्वस्थ रहने का उपदेश दिया। ग्रामों का निरीक्षण किया गया और रात्रि में बड़ी-बड़ी सार्वजनिक सभाएं की गई। लगभग ५० गावों में कार्य किया गया और लगभग १२०० रोगियों की चिकित्सा की गई। ता० ३१ को धन्वन्तरि पूजन सरदारशहर में आयुर्वेद विश्व भारती के प्रांगण में उत्साह सहित किया गया और आयुर्वेद की उन्नति के लिए उपयोगी भाषण हुए।

—प्रिंसीपल, आयुर्वेद विश्व भारती।

एटा—

एटा नगर वैद्यसभा की ओर से स्थानीय आर्यसमाज मंदिर में श्री धन्वन्तरि जयन्ती महोत्सव पूज्य गुरुदेव श्री पं० विद्याभूषण जी वैद्यशिरोमणी आयुर्वेदाचार्य के सभापतित्व में सानन्द सम्पन्न हुआ, पूज्य गुरुदेव जी ने श्री धन्वन्तरि जी के जीवन तथा प्राचीन शल्य चिकित्सा पर बड़ा सुन्दर प्रकाश डाला।

—वैद्य गोवर्धनदास चागलानी।

जगराओं—

३१ अक्टूबर को धन्वन्तरि महाराज जी का जन्म दिन बड़े उत्साहपूर्वक मालवा आयुर्वेद मण्डल की ओर से मनाया गया। सारे प्रान्त से वैद्य बन्धु आये हुए थे। श्री सत्यपाल गुप्ता ने भगवान धन्वन्तरि जी का पूजन कराया, स्वामी सुन्दरदास जी वैद्य इस स्थान के प्रसिद्ध ऐलोपैथिक चिकित्सक डा० चाननसिंह मान ने आयुर्वेद तथा भगवान् धन्वन्तरि जी के जीवन पर प्रकाश डाला। २ प्रस्ताव पास किये गये।

पहले प्रस्ताव में सरकार से मांग की गई कि औषधि उपयोग के लिए अहिफेन वैद्यों को खरीदने की आज्ञा हो।

(२) आयुर्वेद का सञ्चालक पृथक् हो।

इन प्रस्तावों की नकल पञ्जाब सरकार तथा केन्द्रीय सरकार को भेजी जावेगी।

—श्री सत्यपाल गुप्ता, प्रधान मंत्री।

खन्ना (पञ्जाब)—

३१ अक्तूबर प्रातःकाल श्री धर्म फार्मेसी में आयुर्वेद के प्रवर्तक भगवान धन्वन्तरि का जन्मोत्सव मनाया गया। उत्सव के सभापति का आसन श्री वैद्य कविराज धर्मदत्त जी चौधरी आयुर्वेदाचार्य ने सुशोभित किया। सर्व प्रथम स्वस्ति-वाचन श्रीमान् प्रो० चिरंजीवी शास्त्री, ज्योतिषाचार्य, सरस्वती संस्कृत कालिज ने किया। तदनन्तर, ए० एस० कालिज, खन्ना के प्रोफेसर ब्रह्मस्वरूप जी सक्सेना ने भगवद मूर्ति का अनावरण किया। इस अवसर पर आपने स्वास्थ्य-रक्षा तथा आयुर्वेद के अधिक प्रचार पर बल दिया। अन्त में श्री चौधरी जी ने आयुर्वेदोन्नति पर सारगर्भित भाषण दिया और सरकार से नये पंजाब राज्य में स्वतन्त्र आयुर्वेद डायरेक्टर बनाने, वैद्यों को कर्मचारी-स्वास्थ्य बीमा-योजना में पूर्ण भाग देने के विषयों पर कई महत्वपूर्ण प्रस्ताव स्वीकृत हुए।

शिमला—

आज ता० ३१-१०-५६ को ठयावोला शिमला हिल्ज में श्री धन्वन्तरि जयन्ती बड़े धूम-धाम से मनाई गई। अध्यक्षपद श्री प्रेमचन्द गुप्ता ने ग्रहण किया। सर्वप्रथम श्री धन्वन्तरि भगवान् का पूजन किया गया, पश्चात् श्री काहनचन्द वर्मा और श्री देवीशरण शर्मा ने आयुर्वेद उन्नति के विषय में अपने-अपने विचार प्रगट किए। इसके पश्चात् सभापति जी ने आयुर्वेद और भारतवर्ष विषय पर गंभीर भाषण दिया।

भाटापारा—

दिनांक ३१-११-५६ को सायं ५ बजे स्थानीय नगर पालिका आयु० औषधालय में श्री धन्वन्वतरि महोत्सव बड़े उत्साह से मनाया गया—जिसमें कई एक विद्वानों के आयुर्वेद पर सारगर्भित भाषण हुए। जिनमें वैद्य चिरंजीलाल आयुर्वेदाचार्य तथा प्राणाचार्य श्री वैद्य हर्बल जी मिश्र बी० ए० एवं वैद्य इन्द्रमणि शास्त्री मलहोत्रा के नाम विशेषरूप से उल्लेखनीय हैं।

नसीराबाद—

कार्तिक कृष्णा त्रयोदशी ता० ३१-१०-५६ को श्री परमार्थ जैन औषधालय में वयोवृद्ध श्री पं० गणेशदत्त जी वै० शा० के सभापतित्व में धन्वन्तरि जन्मोत्सव समारोह मनाया गया। वैद्य समुदाय के साथ-साथ नगर के प्रमुख प्रतिष्ठित व्यक्तियों ने बड़ी संख्या में भाग लिया। आयुर्वेदोन्नति के हेतु आयुर्वेद चिकित्सक परिषद (वैद्य सभा) की स्थापना की गई।

—मंत्री।

निजामाबाद—

वैद्य भूषण पं० रूपराम जी शर्मा के भवन पर भगवान धन्वन्तरि की जयन्ती आयुर्वेद केशरी वैद्य पं० गोवर्धन जी शर्मा (हैदराबाद) की अध्यक्षता में बड़ी धूम-धाम से मनाई गई। प्रातःकाल ही स्वस्ति-वाचन पूजन प्रसाद का मधुर कार्य-क्रम सम्पन्न हुआ। तत्पश्चात् मध्यान्ह में पं० गोवर्धन जी शर्मा की अध्यक्षता में निजामाबाद जिला वैद्य हकीमों की सभा हुई। रात्रि को ७ बजे तक निजामाबाद जिला के मनोनीत और जन प्रिय कामोकार साहेब श्री सी०के० मूर्ति जी की अध्यक्षता में सार्वजनिक सभा का आयोजन किया गया।

—मंत्री।

चंवरग्राम—

३१।१०।५६ बुधवार को सायंकाल ५॥ बजे श्री जनपद आयुर्वेदिक चिकित्सालय बटेरल में भगवान धन्वन्तरि के पूजन का आयोजन किया गया। पूजन श्री पं० वासुदेव प्रसाद जी त्रिपाठी शास्त्री आयुर्वेदाचार्य, आयुर्वेदरत्न की अध्यक्षता में वैदिक मंत्रों द्वारा एक-नवीनतम रीति से सम्पन्न हुआ।

इस पूजनान्त में त्रिपाठी जी ने श्री धन्वन्तरि जयन्ती एवं आयुर्वेदिक सूक्तियों पर विशेष रूप से चर्चा की।

—आयोजक।

बुलन्दशहर—

कार्तिक कृष्णा त्रयोदशी बुधवार को प्रातः ११ बजे नगर के सभी वैद्यों ने धन्वन्तरि जयन्ती समारोह मनाया। इस अवसर पर धन्वन्तरि पूजन व हवनादि सर्व वैद्यों की ओर से वैद्य पं० विश्वनाथ कौषिक आयुर्वेदाचार्य मंत्री—वैद्य सभा बुलन्दशहर ने किया तथा प्रान्तीय वैद्य सम्मेलन के उपाध्यक्ष पं० रघुवीरशरण शर्मा आयुर्वेदबृहस्पति का

धन्वन्तरि के सम्मान में सारगर्भित भाषण हुआ। अन्त में सभी वैद्यों ने भगवान् धन्वन्तरि को श्रृद्धाञ्जलि अर्पित की। —मंत्री।

सरदारनगर पो० बनेड़ा—

राजकीय आयुर्वेद औषधालय में दिनांक ३१।१०।५६ को श्री धन्वन्तरि त्रयोदशी महोत्सव में धन्वन्तरि भगवान् की पूजा आदि धार्मिक कृत्य के पश्चात् स्थानीय पं० मदनलाल जी जोषी की अध्यक्षता में सभा का आयोजन किया जिसमें ग्राम के गण्यमान्य व्यक्ति सम्मिलित हुए। वैद्य सिद्ध शंकर शर्मा ने श्री धन्वन्तरी त्रयोदशी के महोत्सव एवं आयुर्वेद के महत्व पर प्रकाश डाला जिसके बाद सर्वश्री मथुरेश जी, बद्रीप्रसाद जी बंशीलाल जी के भाषण हुए।

डीडवाना—

दिनांक ३१।१०।५६ को श्रीराम आरोग्य सदन डीडवाना में धन्वन्तरि जयन्ति उत्सव मनाया गया। आदरणीय नागरिक तथा वैद्य बन्धुओं द्वारा आयुर्वेद के गौरव को अक्षुण रखने के लिये वैद्य पं० रामेश्वर प्रसाद शर्मा आयुर्वेदाचार्य द्वारा भाषण हुआ, तदनन्तर राष्ट्रीय चिकित्सा के स्थान पर आयुर्वेद का ही मुख्य स्थान है ऐसा भाषण होकर सभा विसर्जित हुई।

भिवानी—

ता०—३१-१०-५६ सायंकाल ५ बजे आयुर्वेद प्रवर्तक भगवान धन्वन्तरि के जन्म दिवस पर कार्तिक कृष्णा त्रयोदशी बुधवार को धन्वन्तरि जयन्ती महोत्सव बड़ी धूम-धाम से श्री मोहन कृष्ण जी शर्मा सदस्य बोर्ड ओफ आयुर्वेद एण्ड यूनानी सिस्टम ओफ पंजाब की अध्यक्षता में मनाया गया। जिसमें नगर के प्रतिष्ठित वैद्य सर्वश्री गंगाचरण जी शर्मा, कृष्णदत्त जी शर्मा, विष्णुदत्त पोडियाल, अयोध्याप्रसाद जी, डा० वैद्यनाथ शर्मा कौशिक, डा० जगदीशचन्द्र भारद्वाज, गंगादत्त जी शर्मा, वैद्य पन्नालाल, वैद्य मुरारीलाल तथा महेन्द्रनाथ शर्मा आदि वैद्य तथा शहर के प्रसिद्ध व्यक्तियों ने भी सम्मिलित हो उत्सव के प्रति रुचि प्रगट की।

सतना—

ता० ३१।१०।५६ तदनुसार कार्तिक कृष्णा त्रयोदशी बुधवार सायंकाल ३ बजे प्राणाचार्य प्रयाग दत्त राज्यवैद्य के औषधालय में श्री धन्वन्तरि महाराज की पूजन स्तुति नगर निवासी वैद्य एवं आयुर्वेद प्रेमियों के सहित विधिवत् की गई। तत्पश्चात् वैद्यों के आयुर्वेद सम्बन्धी व्याख्यान हुऐ। उपस्थित विद्वानों को प्रसाद वितरण करके सभा विसर्जित हुई।

पुष्पविन्यास (INFLORESCENCE)

वनस्पति में पुष्प की स्थिति तथा स्वरूप किस प्रकार को 'पुष्पविन्यास' संज्ञा से बताया जाता है। कुछ वनस्पति का वर्धमान भाग (*vegetative*) की अक्षि अन्त में एकाकी (अकेला) पुष्प को धारण करती है या पुष्प पत्र की अक्ष से भी उत्पन्न हो सकता है। दूसरे प्रकार की वनस्पतियों में पुष्प का भाग वर्धमान भाग से सर्वथा भिन्न होता है। यह पुष्पभाग बहुत से पुष्पों का समूह होता है। जिसे 'पुष्पावलि' कहते हैं। यह 'पुष्पावलि' शाखाग्रीय (*terminal*) और अक्षीय (पत्रकोण की आंख से उत्पन्न) दोनों प्रकार की होती है। यह पुष्पावलि क्रम मुख्यतः दो प्रकार का होता है :--

(१) अपरमित या अमर्यादित (*Racemose or indefinite*)

(२) परिमित या मर्यादित (*Cymose or definite*)

अमर्यादित पुष्पविन्यास
(*Racemose Inflorescence*)
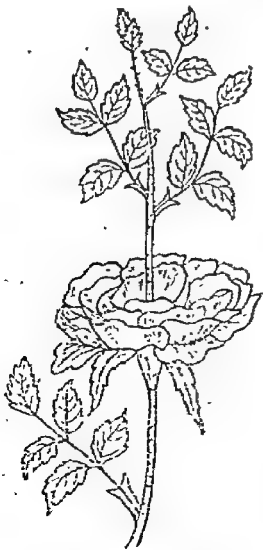
चित्र संख्या ७२
पुष्प का विराट रूप
(जंगली गुलाब में शाखा रूप)

इस प्रकार में मुख्य अक्षि (शाखा) कभी भी पुष्प के रूप में परिवर्तित नहीं होती। वह अपरिमिति या अमर्यादित रूप में बढ़ती चली जाती है और अग्राभिवर्धी क्रम (*acropetal*) अर्थात् जिसमें नीचे और बाहर के पुष्प पुराने हो जाते हैं - से पार्श्व में पुष्प उत्पन्न होते जाते हैं, फलतः सबसे अधिक अवस्था वाला फूल नीचे और सबसे कम अवस्था वाला सिरे पर या केन्द्र में होता है। इस पुष्पविन्यास क्रम को केन्द्राभिग (*centripetal*) भी कहते हैं। इस अपरिमित क्रम को तीन उपशीर्षकों में विभक्त किया जा सकता है।

(१) दीर्घाक्षीय—इनमें 'मुख्य अक्षि' या कलिका लम्बी होती है।

(२) ह्रस्वाक्षीय—इस प्रकार में मुख्य अक्षि छोटी होती है।

(३) स्थालाक्षीय—जिसमें मुख्याक्षि स्थाली के समान चौड़ी 'उन्नतोदर या नतोदर' होजाती है।
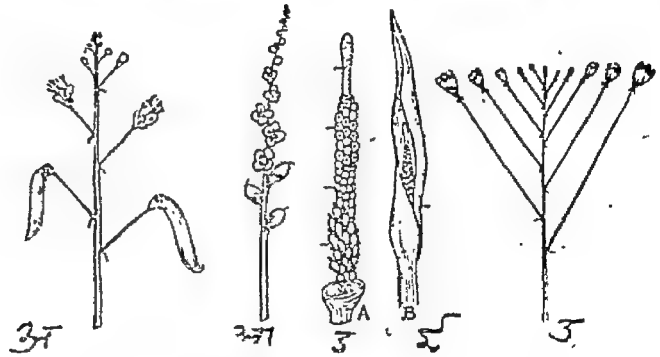
चित्र संख्या ७३
अमर्यादित पुष्प विन्यास
(अ) दीर्घाक्षीय सरलसवृन्तीय पुष्पविन्यास
(आ) मंजरीय या अवृन्तीय
(इ) मांसलमंजरी
(ई) मांसलमंजरी (पुष्पोपदल सहित)
(उ) समशिख

(अ) दीर्घाक्षीय पुष्पविन्यास या पुष्पावलि

(१) सरल सवृन्तीय (*Simple racemose*) इस प्रकार में प्रधान अक्ष (*peduncle*) बढ़ता जाता है और उसके पार्श्व से पुष्प निकलते

जाते हैं। निचला पुष्प बड़ा और बड़ी अवस्था वाला तथा ऊपर का छोटा और छोटी आयु वाला होता है। यथा मूली, सरसों कंटकी करंज आदि में। यदि मुख्य अक्ष में से निकलने वाली शाखाओं में पुष्प लगते हों और मुख्य अक्ष बढ़ती जाये तो उसे संयुक्त अपरिमित क्रम (*Compound Racemose* या *panicle*) कहते हैं यथा गोल्ड मुहर में।

(२) अवृन्तीय या मंजरी (*Speke*) इनमें प्रधानाक्ष तो लम्बा होता चला जाता है और सरल अपरिमित क्रम के समान ही पुष्प लगते हैं किंतु वे अवृन्त या दण्ड (डंठल) रहित होते हैं यथा वासा (अडूसा) तण्डुलीयक (चौलाई) अपामार्ग में।

(३) लघुमंजरी (*spikelets*) यह छोटी मंजरी होती है और पुष्पों की संख्या भी न्यून पाई जाती है। कभी तो एक ही पुष्प होता है। मूल में तुषों से घिरे रहते हैं। यथा अनेक तृणों में। यद्यपि प्रधान पुष्पावलि तो सरल अपरिमित जैसी लगती है किन्तु अन्तिम शाखायें 'लघुमंजरी' ही होती है।

(४) लम्बाविदण्डिक (*Catkin*) यह पुष्पावलि भी मंजरी का ही भेद है। इसमें एक लिंगी फूल ही होते हैं। पंखडियां या दलपत्र बहुत छोटे होते या होते ही नहीं। यथा सहतूत, बर्च आदि में।

(५) मांसलमंजरी (*Spadix*) इसमें अक्ष मांसल होता है और एक या अधिक पुष्पोपदलों (*spathes*) द्वारा ढका रहता है। यथा केले ताडादि में। यह एक बीजपत्रकीय वनस्पतियों में ही पाया जाता है।

(आ) ह्रस्वाक्षीय पुष्पविन्यास

(१) समशिख (*Corymle*) इस प्रकार में प्रधान अक्ष अपेक्षाकृत छोटी होती है तथा सब फूल एक ही ऊंचाई पर रहते हैं क्योंकि निचले पुष्पों के वृन्त (डंठल) ऊपरी फूलों के वृन्तों से कहीं अधिक लम्बे होते हैं अतः सब पुष्पों की सीमा एक ही हो जाती है।
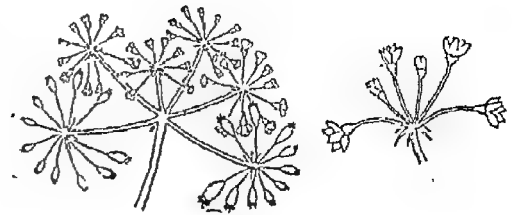
चित्र संख्या ७४
ह्रस्वाक्षीय पुष्पविन्यास
(अ) छत्रक (संयुक्त) (ब) छत्रक साधारण

(२) छत्राकार (*umbel*) इनमें प्रधान अक्ष समशिख प्रकार की अपेक्षा छोटी होती है। जिससे सब फूल लगभग एक ही तल से निकलते और बराबर ऊंचाई तक पहुंचते हैं। यथा अर्क (आक) सुदर्शन (*crinum*) प्रायः छत्राकार में शाखाएँ प्रशाखाएँ निकलती हैं, जिन पर फूल लगे रहते हैं। यथा धनियां, जीरा, सौंफ, गाजर आदि में। इन्हें 'संयुक्त छत्राकार' (*compound umbel*) कहते हैं। यदि प्रधान अक्ष पर सीधे ही 'फूल' लगे हो तो उसे सरल छत्राकार' (*simple umbel*) संज्ञा दी जाती है यथा ब्राह्मी बूटी में।
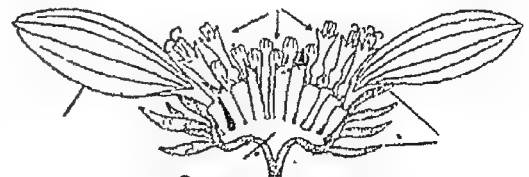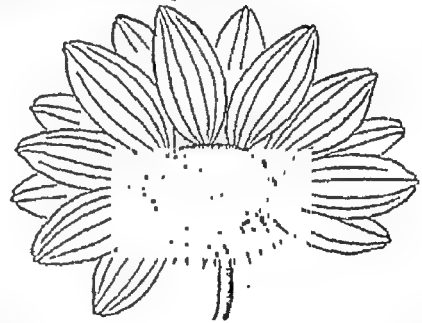
चित्र संख्या ७५
स्थालाक्षीय पुष्पविन्यास सूर्यमुखी का मुण्डक पुष्प

(इ) स्थालाक्षीय पुष्प विन्यास

(१) मुण्डक या मूर्धाकार (*Head or capitulam*) इसमें प्रधान अक्ष या पुष्पासन दबा हुआ चौड़ा होजाता है। पुष्पकें बहुत छोटी और वृन्त-

हीन होती हैं तथा दबे चपटे पुष्पासन के तल के चारों ओर लगे रहते हैं। जिससे सारी पुष्पावलि एक ही पुष्प जैसी दीखती है। बाहर की ओर की पुष्पके केन्द्र वालों की अपेक्षा अधिक आयु की और जल्दी खिलती हैं। सारी पुष्पकें (*florets*) एक साथ अनेक छोटे और साधारणतः हरे पुष्पोपदलों (*bracts*) द्वारा घिरी रहती हैं। जिन्हें सामूहिक रूप से निवेष्ट (*involucre*) कहते हैं, इनके उदाहरण सूर्यमुखी, गेंदा, कदम्ब, बबूल, लज्जालु आदि में पाए जाते हैं। मुण्डक प्रकार के फूलों को उन्नत पुष्पावलि समझा जाता है। यद्यपि प्रत्येक पुष्प बहुत छोटा होता है तथापि वे परस्पर इतने घने रूप मिले होते हैं कि उससे एक ही पुष्प का भान होता है जो अत्यन्त आकर्षक बन जाता है। इस प्रकार दलचक्र आदि के निर्माण में पर्याप्त सामग्री का भान होता है। किञ्च केवल कीड़ा ही इनमें पराग निषेचन (गर्भाधान) कर सकता है।

परिमित या मर्यादित पुष्पविन्यास
(*Cymose inflorescence*)

इनमें प्रधान अक्ष की वृद्धि अग्रीय फूल उत्पन्न करने के बाद समाप्त होजाती है। पार्श्व शाखाओं से वृद्धि होती रहती है। जो मूल अक्ष के समान अन्य शाखाओं को उत्पन्न कर स्वयं फूल देकर समाप्त होजाती है। अर्थात् उनका 'पुष्पान्तं जीवनं' रहता है। इस प्रकार कई फूल बन सकते हैं। पर अग्रीयपुष्प सदा पार्श्व फूलों से पुराने होते हैं अर्थात् फूलों का विकास केन्द्रापग (*centrifugal*–केन्द्र से दूर) होता है। परिमित पुष्प विन्यास का मुख्य विभाग शाखाओं या भुजाओं द्वारा किया जाता है। यथा (१) एकशाखीय या एकभुजीय (*Uniparous*) (२) द्विशाखीय या द्विभुजीय (*Biparous*) (३) बहुशाखीय या बहुभुजीय (*Multiparous*)

(अ) एक शाखीय परिमित पुष्पविन्यास

(*Uniparous or monochosial cyme*)

इस प्रकार में प्रत्येक प्रधान अक्ष पार्श्व में एक शाखा को जन्म देकर स्वयं फूल में परिणत हो जाती है। यदि ये शाखाएं एकान्तर क्रम से दायें बायें उत्पन्न होती हैं तो इसे 'उभयतो विकासी' (*Scorpioid cyme*) कहते हैं यथा अलसी, हाथी सूरन, कार्पास में, किन्तु यदि सभी शाखाएं एक दिशा में ही उत्पन्न होती जायें तो उसे 'एकतो विकासी' (*Helicoid cyme*) संज्ञा दी जाती है। यथा कटंकारी वर्ग की वनस्पतियों में।
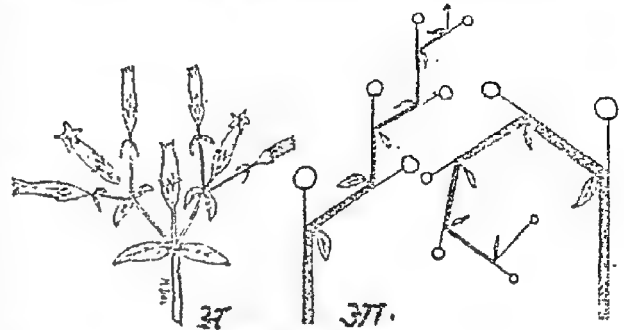
चित्र संख्या ७६

परिमित पुष्प विन्यास

(अ) द्विशाखीय परिमित पुष्प विन्यास।

(इ) एकतो विकासी परिमित, पुष्प विन्यास।

(ई) उभयतो विकासी परिमित पुष्प विन्यास।

इन दोनों प्रकारों में, प्रारम्भिक दशाओं में, प्रधान अक्ष के स्वाधीन सिरो का गेंडुरी बनाने की ओर झुकाव होता है, पर बाद में सीधा होजाता है। अक्ष वास्तव में कूट (*sympodial*) होती है। यदि पुष्पोपदल विद्यमान हों तो वे फूलों के अभिमुख होते हैं।

(आ) द्वि शाखीय परिमित पुष्पविन्यास

Biparous cyme or dichasium

इनमें प्रधान अक्ष दो पार्श्विक शाखाओं को उत्पन्न करके स्वयं पुष्परूप में परिणत हो जाती है। ये पार्श्व शाखायें पुनः दो शाखायें उत्पन्न करती हैं। और स्वयं फूल में समाप्त हो जाती हैं। यही क्रम चलता रहता है। यथा शाकवृक्ष (*Teak*) चमेली और रजनीगन्धा में।

(इ) बहुशाखीय परिमित पुष्पविन्यास

Multiparous cyme or polychasial

उक्त दोनों प्रकारों के अनुसार इसमें भी प्रधान अक्ष का अन्त पुष्प में हो जाता है किन्तु वह पार्श्व

में कई शाखाओं (दो से अधिक) को उत्पन्न करती है। ये शाखायें पुनः स्वयं पुष्प में परिणत होकर अनेक पार्श्विक शाखाओं को जन्म देती हैं। इस प्रकार सारी पुष्पावलि छत्रका-कार सी दीखती है। किन्तु इसकी विशेषता यह है कि इस प्रकार में बीच का फूल सबसे पहले खिलता है।

संयुक्त और मिश्रित पुष्पविन्यास

(*Compound and mixed inflorescence*)

प्रकृति में सब पुष्पावलियां इतनी सरल नहीं होती जितनी ऊपर बताई गई हैं। बहुत से उद्भिदों में अक्ष में शाखायें होती हैं जो फूलों को उत्पन्न करती हैं। इन्हें 'संयुक्त पुष्पावलि' कहते हैं। ये सवृन्त या अवृन्त होती हैं। इनमें कुछ एक वर्ध्यक्ष (*panicle*) यथा निम्ब में, कुछ में संयुक्त मंजरी के रूप में यथा गेहूँ में, अन्यों में 'संयुक्त छत्रक' के रूप में (*Compound umbel*) यथा धनियां में, आदि आदि भेद देखे जाते हैं।

कभी कभी दो प्रकार के 'पुष्पविन्यास' एक साथ भी देखने में आते हैं। यथा सवृन्त और छत्रक, मुण्डक और सवृन्तीय आदि आदि। अपरिमित और परिमित दोनों भी मिश्रित देखे जाते हैं, यथा अर्क में। इस प्रकार की 'पुष्पविन्यास' को 'मिश्रित पुष्प विन्यास' कहते हैं।

विशिष्ट प्रकार—
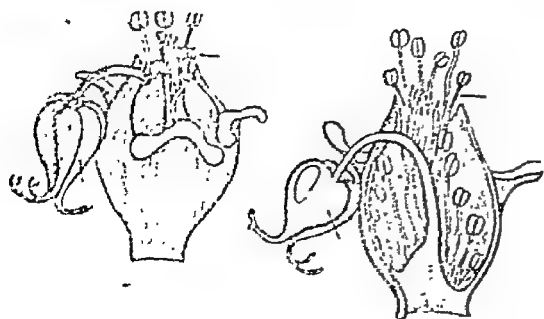
चित्र संख्या ७७
विशिष्ट प्रकार का पुष्पविन्यास
शरावाकार या चपकाकार

ये पुष्पविन्यास उक्त दोनों में से किसी में अन्तर्भूत नहीं होते। अतः इन्हें पृथग् बताया जाता है। इनके तीन भेद हैं—

(१) शरावाकार या चपकाकार (*Cyothium*) यह प्रकार पानसेतिया या आमलकी वर्ग (*Euphorbia*) जाति के पौधों में पाया जाता है। यह परिमित पुष्प विन्यास की ही एक संक्षिप्त तथा विचित्र किस्म है जो एक फूल की तरह मालूम होता है। यह प्याले के आकार का होता है। यथा चित्र ७७ में।
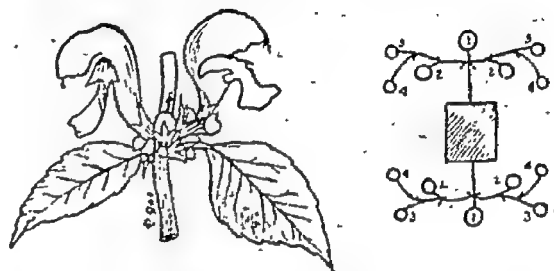
चित्र संख्या ७८
अभियुग्म विशिष्ट पुष्प विन्यास

(२) अभियुग्म या आवर्तित (*verticillaster*) तुलसी वर्ग की वनस्पतियों में यह क्रम पाया जाता है। इनमें पत्ते अभिमुख क्रम से लगे होते हैं। अतः प्रत्येक गांठ पर फूलों के दो गुच्छे एक
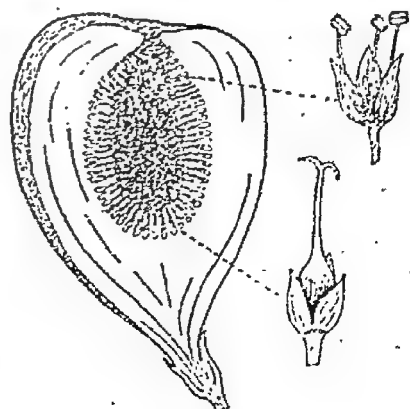
चित्र संख्या ७९
कोटरीय पुष्पविन्यास
(विशिष्ट पुष्पविन्यास) अंजीर का पुष्प
(A) पुंपुष्प (B) नारिपुष्प

एक दूसरे के आमने सामने लगे रहते हैं। प्रत्येक गुच्छा 'उभयतो विकासी' किस्म के एक शाखी परिमित पुष्पावलि की द्वि-शाखी परिमित पुष्पावलि है। इसका पहचानना कठिन होता है। पोदीना, तुलसी, पत्थरचूरा, द्रोणपुष्पी में यह प्रकार पाया जाता है।

(३) कोटरीय पुष्पविन्यास (*Hypanthodium*) इस प्रकार में पुष्पाधार कुछ गोलाई लिए मांसल होती है। जो एक खोखली गुहा बनाती है जिसमें एक सूक्ष्म छिद्र शीर्पस्थान में होता है। जिसकी रखवाली वल्कपत्र करते हैं। गुफा के भीतरी भाग में छोटे छोटे असंख्य एक लिंगी फूल होते हैं। साधारणतः नर फूल सिरे की ओर और नारीपुष्प नीचे की ओर होता है यथा उदुम्बर-(गुलर) आदि क्षीरी वृक्षों में। चित्र ७६ में।

पुष्पविन्यास बोधक सरणि

पुष्पविन्यास

अपरिमित

(१) सरल या शुद्ध परिमित, यथा मूली
(२) मंजरी (चौलाई में)
(३) लघुमंजरी (घासों में)
(४) लम्बविदण्डिक (सहतूत में)
(५) मांसल मंजरी (केले)
(६) समशिख (केन्डीटफ्ट में)
(७) छत्रक (धनिया में)
(८) मुण्डक (सूरजमुखी में)

परिमित

(१) एक शाखीय
- A एकतो विकासी
- B उभयतोविकासी

(२) द्वि-शाखीय
(३) बहुभुजीय

विशिष्ट

(१) शरावाकार भूजामलकी
(२) आमियुग्म तुलसी
(३) कोटरीय यथा गुलर
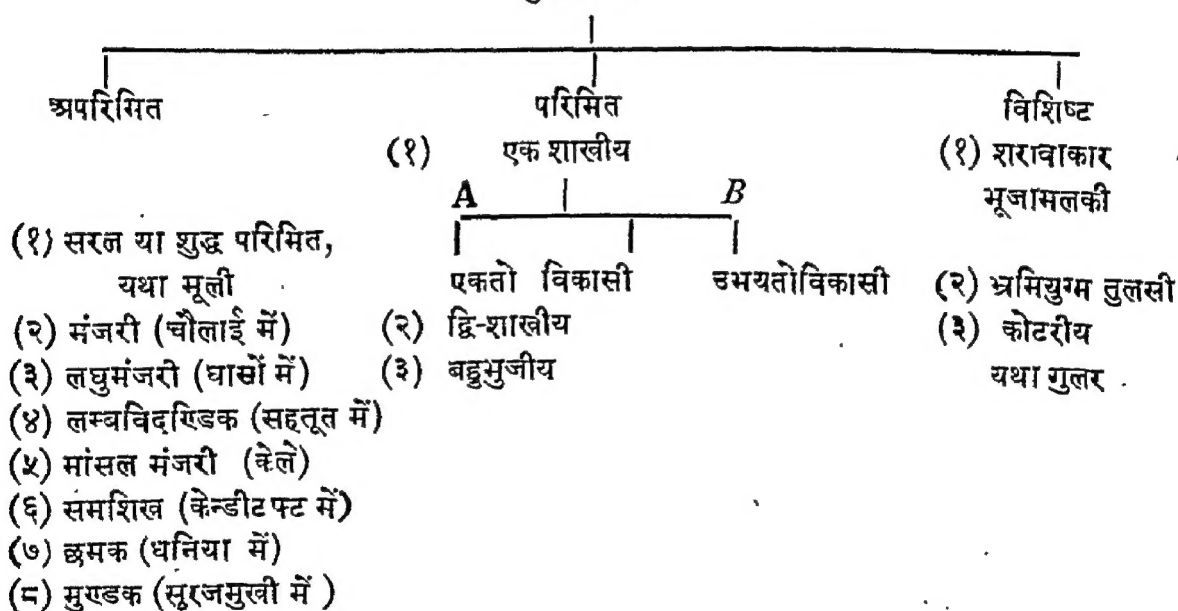
अपरिमित और परिमित पुष्पविन्यासों में भेदक लक्षण

अपरिमित	परिमित या मर्यादित
(१) फूल एक अपरिमित लम्बी अक्ष पर विकसित होते हैं।	(१) फूल अक्ष के अन्त में लगते हैं। जिस अक्ष पर वे लगे होते हैं वे 'कूटाक्ष' होते हैं।
(२) जब पुष्पोपदल होते हैं तो उनकी कक्ष में फूल लगते हैं।	(२) जब पुष्पोपदल होते हैं तो फूल उनके अभिमुख लगते हैं।
(३) अपरिमित प्रकारों में विशेषकर समशिखों छत्रकों और कुछ अंश तक मुण्डकों में भी फूलों का एक ही साथ खिलने की ओर झुकाव होता है। यह स्पष्टतः अहितकर होता है। क्योंकि फूलने की अवधि	(३) फूल एक के बाद दूसरे काफी अवकाश के बाद खिलते हैं। इसलिए कोई दुर्भाग्य आने पर भी सब फूलों पर हानिकारक प्रभाव नहीं पड़ सकता।

छोटी होती है और उस समय मौसम की दशा बुरी हो सकती है और सब फूलों को आघात पहुँच सकता है।

(४) समशिखो छत्रकों और मुण्डकों में सबसे पुराने फूल घेरे के पास और सबसे नये केन्द्र के पास होते हैं (केन्द्राभग की व्यवस्था)।

(५) वृद्धि विन्दु के क्षति ग्रस्त होने पर नये फूलों का निकलना बन्द हो सकता है।

(४) परिमित मुण्डकों में सबसे पुराने फूल केन्द्र में और नये वाले घेरे के पास होते हैं। (केन्द्रागप की व्यवस्था)।

(५) शीर्ष की क्षति का तात्पर्य केवल एक फूल की हानि से है। और पार्श्व शाखायें अपनी बाढ़ जारी रखती हैं।

पुटचक्र (*Calyx*)

यह फूल का सबसे बाह्य कोश या चक्र होता है और पुट पत्रों (*sepals*) का बना होता है। जो प्रायः हरे वर्ण के किन्तु कभी-कभी दलपत्रों (पंखुड़ियों) के समान विविध वर्णों के भी होते हैं। जैसे गोल्ड मोहर। ये पत्र विभिन्न प्रमाण, आकार, वर्ण के होते हैं। जो नियमित या अनियमित दोनों प्रकार के हो सकते हैं। जब पुटपत्र एक दूसरे से पृथक् होते हैं तो उन्हें "पृथग्पुटीय" या विभक्त पुटीय (*Polysepalous*) यथा मूली, सरसों आदि और यदि वे परस्पर संयुक्त हों तो 'युक्तपुटीय (*Gamosepalous*) कहाते हैं। यथा वृन्ताक (बैंगन) लालमिर्च, जया (गुड़हल) आदि में। सेहुण्ड तथा जलकुमुदिनी में पुटपत्रों की संख्या बहुत अधिक होती है। किन्तु सामान्यतः यह संख्या २-५ तक होती है। कपास, जया आदि में पुटचक्र के नीचे एक और चक्र पुष्पोपदलों का होता है। उसे पुष्पोपदलीय चक्र (*epicalyx*) कहते हैं।

पुटचक्रों के कार्य—

(१) फूल की कली का तथा फूल का धूप और वर्षा से रक्षण करना।

(२) सात्म्यीकरण—जब ये हरे वर्ण के हों तो आहार निर्माण का कार्य करते हैं।

(३) आकर्षण—जब ये रंग-विरंगे होते हैं तो कीड़ों को अपनी ओर आकर्षित करते हैं जिससे गर्भाधान होने की संभावना रहती है।

(४) विशेष कार्य यथा रोम चूड़ाओं (*pappus*) द्वारा फल को हवा में फैलने में सहायक होते हैं।

अवधि—आयु के अनुसार इनके निम्न भेद होते हैं

(१) विकासपाती या आशुपाती (*Caducous*) ये कली के खिलते ही गिर जाते हैं यथा पोस्त (अहिफेन में)।

(२) सहपाती (*Deciduous*) फूल जब मुरझा जाता है उस समय ये भी गिर जाते हैं।

(३) स्थायी (*Persistent*) जब पुटपत्र फल के साथ भी लगा रहता है। कार्पास में यह मुरझाया हुआ रहता है। विरलों में यह फल के साथ बढ़ता रहता और मांसल हो जाता है यथा भव्य (चालता *Dilleria*) में।

दलचक्र (*Corolla*)

यह दूसरा सहायक चक्र है जो दलपत्रों या पंखड़ियों से बना होता है। विरल दलपत्र ही पुटपत्रों के समान होते हैं। ये प्रायः विविध वर्ण वाले और सुगन्धित भी होते हैं। पुष्प की कलिकावस्था में ये प्रजनन अङ्गों को अपने अन्दर सुरक्षित रखते हैं। पुटचक्र के समान ये भी विभक्त दल या पृथग् दल या युक्त दल दो प्रकार के भी होते हैं। प्रथम प्रकार में प्रत्येक दलपत्र नीचे से तङ्ग या लम्बा हो जाता है जो डंठल जैसा लगता है। इस तंग भाग को नखर (*claws*) कहते हैं और पंखड़ी को नखरीय

(*clawed*)। पृथक् दलों के फैले हुए भाग को अङ्ग (*limb*) कहते हैं। युक्त दल चक्र की पंखड़ियों के नीचे के भाग को नली (*tube*) और फैले हुए भाग को अङ्ग (*limb*) कहते हैं। ये संयुक्त दलपत्र बहुधा पालिदार (*lobed*) होते हैं जिनसे दलपत्रों की संख्या गिनी जाती है। पुटचक्र के समान ये भी नियमित या अनियमित होते हैं। नियमितों में सब पत्रों का आकार और नाप समान होता है।

दलचक्रों के भेद (*Forms of Corollas*)

चार प्रधान भेद है जिनका वर्णन नीचे किया जाता है—

(अ) नियमित पृथग् दलीय दलचक्र--
(*Regular polypetalous corollas*)

(१) स्वस्तिकाकार (*Cruceform*) यह चार विभक्त दलपत्रों से बना होता है। प्रत्येक पालि या दलखण्ड एक दूसरे के सामने लगे रहते हैं। यथा सरसों, मूली आदि मूली वर्ग (*Cruciferae*) के द्रव्य। (चित्र ८० में १)
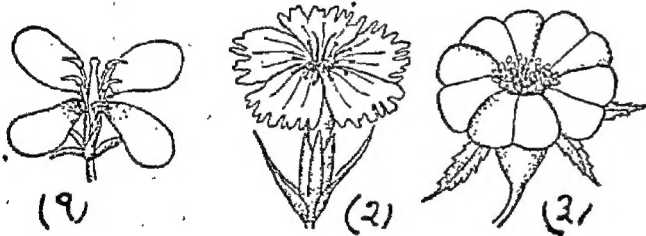
चित्र संख्या ८०
(नियमित पृथग् दलीय दलचक्र)
(१) स्वस्तिकाकार (२) लवंगाकार
(३) शतपत्र्याकार

(२) लवंगाकार (*Caryophyllaceous*) इनमें दलचक्र पांच लम्बे दलपत्रों से बना होता है। और दलपत्रों के 'खंडों' या 'पालि' उसके ऊपर लगे रहते हैं। (चित्र ८० में २)

(३) शतपत्रीवत (*Rosaceous*) इनमें भी दलपत्र पांच होते हैं किन्तु नखर छोटा होता है या बिल्कुल नहीं होता और दलपत्र सीधे बाहर की ओर फैले रहते हैं। यथा गुलाब, मटरादि। (चित्र ८० में ३)

(आ) नियमित युक्त दलीय दलचक्र

(१) घण्टाकार (*Bell-shaped or campanulate*) इसमें दलचक्र की आकृति घन्टे जैसी होती है यथा रसभरी में (चित्रसंख्या ८१ में अ)

(२) नलिकाकार (*Tubular*) जब दलचक्र नली के आकार का हो और नली की चौड़ाई नाचे से ऊपर तक समान होती है। यथा सूरजमुखी में। (चित्र ८१ में आ)
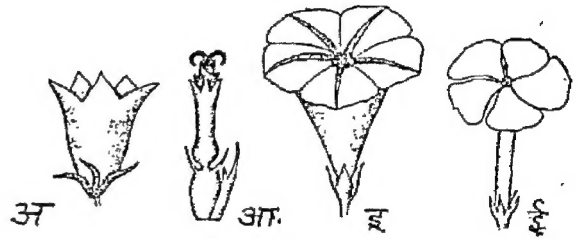
चित्र संख्य ८१
नियमित युक्त दलीय दलचक्र
(अ) घण्टाकार (इ) पीकाकार
(आ) नलिकाकार (ई) चक्राकार

(३) पीकाकार (*Infundibulifrom or Funnel-shaped*) जब बोतल में तैलादि भरने वाले पीक के समान शकल हो यथा धतूरा, पीला कन्हेरादि में। (चित्र ८१ में इ)

(४) चक्राकार (*Rotate* या *wheelshaped*) जब दल चक्र की नली छोटी हो और पत्र का अङ्ग या खण्ड उसके साथ (*right angle*) सम-कोण पर लगा हो यथा हारसिंगार (सेफालिका पारिजात) में। (चि० ८१ में ई)

(इ) अनियमित विभक्तदलीय दलचक्र

(१) तित्तलीवत (*Papilionaceous or Butter-flylike*) यह तितली की शकल का होता है। यथा अपराजिता (कोयल), मटर, झुनझुनियां आदि में। यथा (चित्र ८२ में)
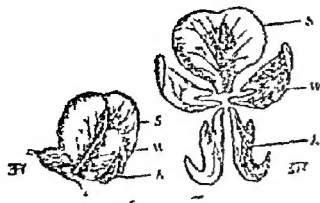
चित्र संख्या ८२
अनियमित विभक्त दलीय दलचक्र

(अ) तित्तलीवत प्रकार

(आ) (*S*) ध्वज (*W*) पक्ष

(*K*) धुरी (*Keel*)

(ई) अनियमित युक्तदलीय दल चक्र

(१) द्विऔष्ठीय (*Bilabiate*) जब दल चक्र ऊपर और नीचे दो ओष्ठों में विभक्त हो और मुख खुला हुआ हो। यथा तुलसी, द्रोण, वासा में। (चित्र ८३ में १)।

(२) मिलितौष्ठ – (*Personate or masked*) इनमें दोनों ओष्ठ इस प्रकार मिले रहते हैं मानों वे एक ही हों। (चित्र ८३ में २)

चित्र संख्या ८३
अनियमित युक्त दलीय दलचक्र

(१) द्विओष्ठीय
(२) मिलितौष्ठ
(३) स्फीताकार

(३) स्फीताकार (*Ligulate or strap-shaped*) इसमें दलचक्र नीचे छोटा होता है और ऊपर की ओर फूला हुआ यथा सूरजमुखी में (चित्र ८३ में ३)।

पुंचक्र (Androceum)

यह प्रजनन सम्बन्धी पुमान चक्र है जो कई पराग केसरों से बना होता है। प्रत्येक पराग केसर के तीन भाग होते हैं।

(१) लिंग सूत्र (*filament*)।
(२) परागाशय (*anther*)।
(३) योजी (*connective*)।

लिंग सूत्रों को हरी पत्ती के पत्रवृन्त के स्थान पर परागाशय परिवर्त्तित पत्रदल और योजी को मध्यसिरा माना जा सकता है। परागाशय के दो खण्ड होते हैं या कोप होते हैं जिन्हें 'परागाशय पालि' कहते हैं। यह दो गुहाओं में बटी होती है। जिन्हें परागकोप (*Pollen sacs or microsporangia*) कहते हैं। इनमें सूक्ष्म धूलिकण भरे रहते हैं जो परागकण (*Pollen grain or microspores*) कहाते हैं।

सूत्र और परागाशयों का संयोग क्रम
(*Attachment of the filament of the anther*)
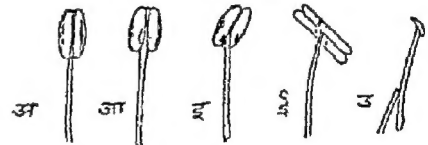
चित्र संख्या ८४
लिंगसूत्र तथा परागाशयों का संयोग

(१) (अ) आधार लग्न (इ) पृष्ठलग्न
(२) (आ) संश्लिष्ट (ई) चक्रामक
(उ) चक्रामक का भेद

लिंगसूत्र और परागाशय चार प्रकार से आपस में जुड़े रहते हैं।

(१) आधार लग्न (*Basifixed or innate*)।

(२) अभिलग्न या संश्लिष्ट (*Adnate*) इसमें सूत्र आधार से लेकर अग्र (शिखा) तक परागाशय पर लगा होता है यथा चम्पा में। (चि. ८४ में आ)